रामायण.

पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र-मुरादाबाद

धन्यवादः ।

संतु कोटिशस्तरयानन्तजगदुत्पादकस्य भगवतः श्रीरामचंद्रस्य धन्यवादाः यस्यात्र सकलकलुषमयकलिमलविध्वंसनाय कृतावतारस्य विचित्राणि पवित्राणि चरित्राणि सर्वसद्भक्तनोघुष्यमाणानि निखिलैहिकामुष्मिकचतुर्विधपरमपुरुषार्थसार्थसंसाधकानि भवंति । तस्य च भूतभाविवर्तमाननिःशेषगुणगणगुम्फनैकनिपुणो भगवान्महर्षिर्वाल्मीकिर्नाम सकलजगज्जनपावनैकपरायणतया रामायणनाम्ना प्रसिद्धं चारित्रकाव्यप्रबंधं निबबंध । सैषा हि श्रीरामचंद्रकीर्तिरक्षरनिबद्धा भुवनत्रयं पवित्रयति "कीर्तिरक्षरसबद्धा पुनाति भुवनत्रयम् ।" इति काव्यादर्शप्रामाण्यात् । अतश्च "स्वयं तरन्नान्यांश्च तारयति" इति शास्त्रोपलक्षितादिकाव्यरचनागुरुलक्षणाय भगवत्प्रेमरसविचक्षणाय जगज्जननीजानकीदेवीसुरक्षणदक्षिणाय सच्छिष्यकुशलवशिक्षणप्रख्यातविलक्षणावलक्षभूरियशसे काव्यरचनाचतुराय भगवते वाल्मीकये संतु शतशो धन्यवादाः । यदीयां काव्यरचनां गुरूकृत्य भूतलेऽस्मिन्वृत्तनिबंधनपुरःसरकाव्यरचनासरणिरप्रतिहता सर्वतः प्रसृतास्ति । तदेतच्छ्रीमद्वाल्मीकीयरामायणमद्यावधि सर्वैरपि परमपवित्रतया पंडितजनैः नित्यनियमविहितप्रबंधादिवाचनावसरे पापठ्यमानं, सकलसद्भक्तसद्गृहस्थप्रभृतिभिः श्रोतृजनसमाजैः शोश्रूयमाणं च दरीदृश्यते तत्तद्भक्तजनसमाजेषु । अस्माच्च रामायणादनंतरं बहूनि रामायणानि महानुभावैर्विरचितानि निखिलाघौघविघातकानि सर्वतो जेगीयमानानि संति । तेषां संख्यापि कर्तुं कैश्चिदपि न शक्यते । किं पुनः प्रत्येकशो वाचयितुमिति विजयते समन्ततः सन्तोषजनको जानकीजानेश्चरित्रस्य गरिमा । अस्तु प्रकृतमनुसरामः । अस्य ग्रंथस्य भाषानुवादपूर्वकं मुद्रणं भविष्यति चेज्जनोपरि भूयानेवोपकारः स्यादितिच्छा अस्माकं बहुदिनावधि आसीत् । परंतु तादृशः पंडितो न मिलितः यः समर्थो यथार्थभाषार्थकरणे । सांप्रतं हि आसेतुशीताचलमध्यवर्तिभरतभूमिजन्मभाजां भक्तसज्जनानां भाग्योदयेन अस्य श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणाभिधानस्यादिकाव्यस्यापामरपण्डितजनमनोहारिणी भाषाटीका श्रीमत्पण्डितमण्डलीमण्डनश्रीमुरादाबादनगरनिवासिकात्यायनगोत्रालंकरण **श्रीज्वालाप्रसादमिश्रैः** प्रणीतास्ति, इयं च भाषाटीका **पीयूषधाराभिधा** सरलसुबोधमधुरललितप्रामाणिकपदयोजनापुरःसरं सुस्पष्टार्थप्रबोधनैकधुरीणास्ति । अनया च भाषाटीकया स्वल्पसंस्कृतज्ञोऽसंस्कृतज्ञोऽपि वा वाचनैकनिपुणोऽपि पौराणिकः श्रीरामचन्द्रचरित्रं सभामध्ये व्याख्यातुं शक्नोत्येव । किं पुनः साधारणसंस्कृतज्ञः सन्नपि । अस्तु । एष हि प्रोक्तपंडितैः समस्तभव्यजनोपरि महानेवोपकारोऽकारि । अतस्तेभ्यो यावंतो धन्यवादा देयास्तावंतोपि स्वल्पा एवातोऽनन्ता एव धन्यवादाः संतु । एभिश्च पंडितैरेतद्रामायणभाषाटीकापुस्तकं अस्माकं समीपे परमविद्यानुरागितया सर्वाधिकारसमर्पणपूर्वकं प्रेषितम् । तदस्माभिः स्वकीये **"श्रीवेङ्कटेश्वर"** मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ॥

इदं च पुस्तकं ये सज्जनाः सादरं संगृह्य प्रतिदिनं वाचयिष्यंति तेभ्यः सर्वेभ्योऽपि संतु सहस्रशो धन्यवादाः सुमंगलं वर्द्धतां श्रीरामचन्द्रो जयताद्भक्तपक्षपाती भगवानिति शं सर्वतः ।

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-मुंबई.

धन्यवाद ।

दोहा ॥

धन्य सच्चिदानंद प्रभु, रावणारि यशभूरि ॥
नर चरित्र आनंदनिधि, पावन मंगल मूरि ॥ १ ॥
सत त्रेता द्वापर कलिः, चारो युग परमान ॥
श्रीमद्रामायण श्रवण, सुर नर मुनि लह ज्ञान ॥ २ ॥

यह श्रीमद्रामायण तपोधन महामुनि वाल्मीकिद्वारा कथितहो इस अथाह संसार सागरके भवभय दूर करनेकी अतुलनीय सामग्री है कि, जिसके पठन श्रवण मात्रसेही महापापी सुरापीभी इस असार संसारमें नानाप्रकारके सुखभोगकर अन्तमें परमहर्ष पूर्वक स्वर्गधामको प्राप्त होताहै इस आदिकाव्यकी महिमा परम अगाध और अकथनीयहै इससे हमारे मनमें परम इच्छाथी कि, जैसे स्वर्गलोकमें देवगण और नरलोकमें संस्कृतज्ञविद्वान पंडित लोग इसका अपार आनंद लूटकर भक्ति मुक्तिके भागी होते हैं वैसेही हरिचरणारविंदावलम्बी भाषाके रसज्ञभी इस महान पुण्यमय ग्रंथका परमलाभ उठावें और घर घर इसका प्रचार हो हरीच्छासे यह हमारी सफल कामना पूर्ण हुई इस महान् ग्रंथके भाषान्तर करनेका भार " गुणिगण मण्डली मण्डन सकल पाखण्डखण्डन विद्वद्वर वरिष्ठ सुप्रसिद्ध श्रीयुत पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्रने " अत्यन्त उत्साह पूर्वक अंगीकार किया और ऐसा सुमधुर ललित रोचक मनोविलास मनहरण पीयूषधारा भाषामृत किया कि जिसकी प्रशंसा करना मन और लेखनीसे बाहर है जिसकी प्रशंसाका अनुभव प्रत्येक श्लोकानुवादकी लालित्यता विचित्रता भाषा भंडार मात्रका परम सराहनीय गौरवहै हम सहर्ष श्रीयुत उक्त पण्डितजीके अनेक धन्यवादक और कृतज्ञहैं और उनकी दीर्घायु सुख संपत्ति व संततिके सदैव अयोध्यानाथ रघुनाथजीके प्रार्थी हैं जिससे संसारोपकारी ऐसेही महा पुण्यमय कार्य निर्गत होतेरहें ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना--मुंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

भूमिका.

यह वाल्मीकि रामयाण इस देशके आबालवृद्धवनिताओंके निकट परम पूज्य और अत्यन्तही श्रद्धाकी सामग्रीहै, इसका परिचय धर्मविप्लव, राज्यविप्लव सामाजिक परिवर्तन प्रभृति नानाविधनैसर्गिक बाधाओंके होने और कभी कभी विभक्त वा विध्वस्त और विच्छिन्न होनेसेभी अबतक भारतवासियोंके हृदय पर अधिकार जमा रहाहै, समयके हेरफेर होनीके आधीन, व भाग्यकी ताडनासे देश विदेशोंमें नई नई आकृति असामञ्जस्य भावसे प्रकाशित होनेपरभी, इस देशके लोगोंकी भक्ति, श्रद्धा, सन्मान, कल्याण और अनुशीलनके अनुग्रहसे, सबसे ऊंचेस्थानपर स्थापित हुई है, इसके विषयमें यद्यपि अब विशेष कुछ कहनेको नहींहै, किन्तु न कहनेसे फिर महर्षिके निकट घोर अकृतज्ञ बनना पडै और पीछे वर्तमानकालमें ग्रंथप्रचार करकै, भूमिका न लिखनेसे कालोचित सभ्यता जाती रहै; फिर नवरुचिसम्पन्न नये ग्राहक गणके सामने इस कसरके लिये लजाना पडै इसही कारण थोडी भूमिका लिखनेका प्रयोजनहै । वास्तवमें कुछ थोडाही सोच विचार और ढूंढभाल करनेसे यह बात एकवारही मनमें पैठतीहै कि भारतवर्ष जिस्के खेलका स्थान, भाषा जिसकी दासी, सरस्वती जिसकी आज्ञा कारिणी कविकुलगुरु वाल्मीकीजीके सम्बन्धमें—उनकी अनुपम शक्तिके सम्बन्धमें—उनकी असाधारण प्रतिभाके सम्बन्धमें—उनके विचित्रभावोंके सम्बन्धमें हमारा जहांतक ज्ञान—जहांतक विचार—जहांतक ढूंढ भाल होसकै कुछ कहनाही चाहिये जिस रामायणको पढ सुनकर मनुष्य स्वर्गसुखभोग करतेहैं, जिसके प्रत्येक स्थानसे पीयूषकी लजानेहारी सुधा निकलती है, जिसको परम पवित्र अमृत पीकर मृत्यु लोकवासी अमरगतिलाभ करते हैं, इस अनुपम ग्रन्थके रचयिता वही अतुलनीय महामहिमान्वित महर्षि वाल्मीकिहैं । हमारे कविगुरु प्रशस्त मन व स्वाधीन भावसे सरस्वतीकी कृपा पाय काव्य काननमें प्रवेशकर, नित्य सुगन्धभरे शोभायुक्त खिलें हुवे फूलोंसे कैसी दिव्यमाला गूंध गये हैं जैसे त्रिलोकतारिणी गंगाने हिमालयसे निकलकर मनुष्योंके वासस्थान मृत्युलोकको पवित्र किया, उसीभांति वाल्मीकि रामायणने महीमंडलको धन्य, पवित्र और विख्यात कर दिया है । हमही कुछ

रामायणकी प्रतिष्ठा बढानेको यह बात नहीं कहते, किन्तु प्रसिद्ध टीका करने वाले रामानुजस्वामीनेभी टीकाके मंगलाचरणमें कहा है कि ।

"वाल्मीकिगिरिसम्भूता रामाम्भोनिधिसंगता ॥
श्रीमद्रामायणी गंगा पुनाति भुवनत्रयम् ॥"

तात्पर्य्य–"रामायणरूपी गंगा वाल्मीकिरूपी पहाडसे उत्पन्न हो रामरूप समुद्रमें गिरी है, और उससे त्रिलोक पवित्र हुआहै"

जो हो, महर्षि वाल्मीकिके रसभावसमन्वित, अपूर्व ग्रंथके संबंधमें कुछ कहनेसे पहिले उनकी अनुपम शक्ति, असाधारण चिन्ताशीलता, अपूर्वरचनाप्रणालीके विषयकी आलोचना करनेसे पहिले, यह विचारना चाहिये कि वाल्मीकिरामायण क्यों इतनी श्रद्धा, भक्ति व गौरवकी सामग्री हुई है । यद्यपि यह अनुपम मनोहर ग्रंथ अपौरुषेय नहीं, तथापि इसको अनुच्च, अप्रमाणिक, अलीक, कभी कोई नहीं कहसकता; हां इतना मानते हैं कि-स्वाधीनलेखक और सहज कवियोंके पक्षमें जो स्वाधीनता; खुली और फैली रहनी चाहिये वाल्मीकिजीने भी उसका अन्यथाचरण नहीं किया है । इन्होंने कवि होकर काव्य लिखा तो है । परन्तु मनुष्योंके प्रसन्नार्थ लक्ष्यभ्रष्ट होकर खुशामदमें प्रवृत्त नहीं हुए हैं । बहुतोंका यह विश्वास है कि रामायण एक ऊंची श्रेणीका महाकाव्यहै, आलङ्कारिकभी ऐसेही मानते हैं । वह कहते हैं कि जो काव्य आठसे अधिक सर्गोंमें लिखागया वह महाकाव्योंमें गिनाजाता है परन्तु हम इन अलङ्कारियोंकी सम्मतिमें अपनी सम्मति नही देसकते । वह औरोंके काव्योंमें जो इच्छा हो कहैं हमारा कुछ हानि लाभ नहीं-परन्तु रामायणके संबंधमें हम उनकी उक्तिका समर्थन नहीं करसकते क्योंकि उनके लक्षणोंसे प्रगटहै–

"काव्यं–यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥"

तात्पर्य्य–"काव्यानुशीलनमें यशकीप्राप्ति, अर्थलाभ; अमंगलविनाश, आवृत्तिमात्रमें परम सुखानुभव, इतना क्या (बरन्) मोक्ष प्राप्ति; इन रसोंमें यह सुरसिका स्त्रीकी तुल्य और उपदेशविधायी है."

सहृदय पाठकगण ! विचारिये । इन्ही लक्षणोंसे क्या वाल्मीकिजीकी उक्तिका पर्य्यवसान होना संभवहै ? उपलखंड और पहाडको यदि एकही वस्तु समझे

तौ कहिये कि बडे छोटेका तारतम्य कहां रहा ? पंख रहनेहीसे पक्षी कहलाताहै, इस लक्षणके अनुसार यह कहदें कि बगले और राजहंसमें कुछ फरक नहीं रहा ।

शास्त्रमें लिखाहै कि—

"वेदे रामायणे पुण्ये पुराणे भारते तथा"

क्या इस अर्द्ध श्लोकसे यह प्रमाण नहीं होता कि, रामायण वेदसम होनेसे अति पवित्रहै । क्योंकि पुण्य अर्थात् पवित्रका विशेषण दियाहै, यदि आप इस बातको नमाननाचाहैं, तो वाल्मीकिजीकी उक्तिकी तरफ दृष्टि फेरिये मूलमें लिखाहै-

"शृण्वन् रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा ।
स याति ब्रह्मणःस्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा"॥

अर्थात्—"जो भक्तिभावसे सम्पूर्ण रामायण, वा पदमात्र, वा उससेभी थोडा श्रवण करतेहैं, वह सदा ब्रह्मासे पूजे जाकर ब्रह्मलोकमें वास करतेहैं ॥"

इसी ग्रंथमें और जगह वर्णन हुवाहै कि—

"प्रयागाद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ।
नैमिषादीन्यरण्यानि कुरुक्षेत्रादिकान्यपि ॥
कृतानि तेन लोकेस्मिन् येन रामायणं श्रुतम् ॥"

अर्थात्—"जिन्होंने रामायण श्रवण कीहै, उनके प्रयागादि तीर्थ, गंगादि पवित्र नदी नैमिषारण्य और कुरुक्षेत्रादि पवित्र अरण्य दर्शन, और वहांकी क्रियादि सब सिद्ध होगई"

जो हो, यह तो मानलियागया कि, रामायण पवित्र और पुण्यजनक ग्रंथहै परन्तु क्यों इसकी इतनी पवित्रता और इतना माहात्म्यहै उसके संबंधमें कुछ कहे विना, इस कालमें ऊनविंशशताब्दीके सभ्यताके अधिकारमें, मनुष्योंके मनमें नाना संदेह नाना कुतर्क और नाना जल्पनाकी सृष्टि होना कुछ असंभव नहीं है; इस कारण, इस संबंधमें कुछ कहना चाहिये । वाल्मीकिजीके कहे हुए ग्रंथमें प्रतिपाद्य विषय रामोपाख्यान है । इन्ही रामको वर्त्तमान समयमें कोई मनुष्य कोई लोकातीत शक्तिसम्पन्न, कोई एक राजाही, कहकर मन समझाते हैं, परन्तु शास्त्रसमूहके मथनेसे जाना जाताहै कि रामचन्द्र ब्रह्म पदार्थ स्वयंही ईश्वर हैं "अवतारा ह्यनेकशः" यह जो शास्त्रीय वचन सुना जाताहै, भगवान् रामचन्द्र उसी अवतारके अन्यतमहैं । गीतामें कि—

परित्राणायसाधूनां, विनाशायचदुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामियुगेयुगे ॥

अर्थात्–"साधुओंकी रक्षा करनेके निमित्त, दुष्टोंके नाश करने और धर्मस्थापन करनेके उद्देशसे युग युगमें अवताररूपसे अवतीर्ण होताहूं"

इसही महद्वाक्यकी रक्षा करनेको भगवान् रामचन्द्रका अवतार हुआ । यहांपर ऐसा प्रश्न उठना अनुचित नहींहै कि, रामचन्द्रही अवतारहैं इसका प्रमाण क्या इसके उत्तरमें कहा जाताहै कि वेदमें लिखाहै कि भगवान ईश्वर सृष्टिके कार्य संभालनेको दश अवतारोंमें अवतीर्ण हुए हैं; यथा–

"रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव । तदस्यरूपं प्रतिचक्षणाय ।
इंद्रो मायाभिः पुरुरूपईयते । युक्ता ह्यस्य हरयःशतादश॥" ऋग्वेदे.

अर्थात्–परमात्मा अपनी शक्तिओंसे मन्वन्तरादिमें अनेक रूपोंसे प्रतीत होताहै क्योंकि "तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय" इस अपने उस रूपके बोधन करनेके निमित्त रूपरूपके प्रति अर्थात् अपनी संकल्पजनित प्रकृतिसे मिलकर तत्सदृश होतेहुए आशय यह है कि जब परमात्मा संकल्पकर दिव्य रूपको प्रगट करेगा, तब अपने भक्तवात्सल्यादिगुणविशिष्ट रूपका प्रकाशक होगा (वोह ऐसे अवताररूप कितने हैं उसका उत्तर स्वयं वेदमें है) "युक्ता ह्यस्य हरयःशता दश" संसारके दुःखहरनेसे वोह हरिहैं वे रूप निश्चय करके संसाररक्षामें नियुक्तहैं सन्नद्ध बद्धकर सर्वदा "शता" अनन्तहैं और दश अवतार तो अति प्रसिद्धहैं, इस प्रकार वेदमें अवतार होना लिखाहै उसीकी पुष्टता पुराण करते हैं । वोह दश अवतार यहहैं--

"मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा ।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्की दश स्मृताः ॥"

अर्थात्–"मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, बलराम, परशुराम, रामचन्द्र, बुद्ध और कल्की यह दश भगवानके अवतारहैं"

बहुतसे महात्मा इसमेंभी मीनमेख लगावेंगे. कि दश अवतारोंमें रामका नाम निर्दिष्टहै,परन्तु राम ईश्वरहै, इसका क्या प्रमाणहै ? तौ सुनो–

राशब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः ।
विश्वेषामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः ॥

परिपूर्णतमो रामो ब्रह्मशापात् स विस्मृतः ।
ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखंड ११० । ११६ ।

अर्थात्—"राशब्दका अर्थ विश्व मशब्दका अर्थ ईश्वर । जो विश्वके ईश्वर सोही रामनामहैं" पद्मपुराणमें वर्णितहै--

"रामो दाशरथिश्शूरो लक्ष्मणानुचरोबली ।
काकुत्स्थःपुरुषःपूर्णः कौशल्येयोरघूत्तमः ॥"

अर्थात्—"रामचन्द्रजी दशरथके पुत्र, यह शौर्य वीर्यसंपन्न लक्ष्मण इनके अनुवर्ती, कौशल्याके गर्भमें इनका जन्म, यह पूर्ण पुरुषहैं"

अध्यात्मरामायणमें लंकाकाण्डके पंद्रहवें सर्गमें शिवकी उक्तिमें प्रकाशहै कि--

"ब्रह्मादयस्तेनविदुःस्वरूपंचिदात्मतत्त्वंबहिरर्थभावाः ।
ततोबुधस्त्वामिदमेवरूपं भक्त्याभजन्मुक्तिमुपैत्यदुःखम् ॥"

अर्थात्—"ब्रह्मादि देवतागणभी तुम्हारी आकृति मात्र चिन्तना करके प्रकृत स्वरूपको नहीं जानते किन्तु जब भक्तिके प्रभावसे तुम्हारे रूपको जान जातेहैं, तब वे सुखपूर्वक, मुक्तिमार्ग पालते हैं ।"

रामायणके टीकाकार सूक्ष्मदर्शी रामानुजने अपने टीकेके मंगलाचरणमें कहाहै कि—

" जयति रघुवंशतिलकः कौशल्याहृदयनन्दनो रामः ॥
दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः ॥
जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ॥
अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना "

अर्थात्—"जिन रामचन्द्रने रघुवंशमें जन्म ग्रहण कियाहै । जो माता कौशल्याके आनंद बढानेहारेहैं, जो दशरथजीके पुत्रहैं, जिनके हाथसे रावण मारा गया है इन्ही कमलनयन रामचन्द्रजीकी जयहो । वोह लोक धारण करनेवाले भगवान् हरि त्रिलोकीको आक्रमणपूर्वक अवस्थिति करतेहैं, वह निर्गुण और अज होनेसेभी गुणके आश्रयद्वारा संसारमें व्याप रहेहैं ।"

इसी भांति अगस्त्यसंहितामें लिखाहै कि—

"आविरासीत् स कलया कौशल्यायां परःपुमान् ॥

सुविज्ञ पाठक गण ! यहां " परःपुमान् " इस शब्दके प्रयोगको एकवार देखिये आपही कहिये कि क्या इससे रामचन्द्रजीका ईश्वर होना प्रमाण नहीं होता ।

श्रीमद्भागवतके ग्यारवें स्कंधके पांचवें अध्यायमें तेईसवें श्लोकार्धकी ओर एकवार दृष्टि कीजिये । वहां लिखाहै—

"एवंविधानि कर्माणि जन्मानिच जगत्पतेः । "

अर्थात्—"जगत्पति जगदीश्वरके जन्म और कर्म व्यापार इसी प्रकारहैं । "

सृष्टिरक्षा, दुष्टदमन, और शिष्टपालन इत्यादि कार्यही उनकी लीलाके परिचयहैं । जबहीं प्रयोजन हुआ, तबहीं वह निर्गुण पुरुष सत्व, रज और तम इन गुणोंके आधीन होकर प्रगटतेहैं । अपने सुखकी इच्छा और भोग वृत्ति चरितार्थ करनेके लिये ईश्वरका अवताररूपमें अवतरण नहीं है. लोकोंको शिक्षा देनाही इनका उद्देश्यहै ।

हम प्रथमही लिख आयेहैं कि, रामायण केवल लक्षणाक्रान्त महाकाव्य होनेके कारण इतनी प्रसिद्ध नहीं है किन्तु जैसे श्रुति, स्मृतियोंके विहितमत, जिस प्रकार विधि निषेधसे रचे गयेहैं, यहभी कुछ २ उसी आकारके संकेतमें है ॥ "एकादश्यां न भुञ्जीत, निद्रां जह्यात गृही राम, नित्यमेवारुणोदये । " अर्थात् एकादशीको भोजन न करै; हे रामचन्द्र ! गृही लोगोंको नित्य अरुणोदय होतेही निद्रापरित्याग करना चाहिये यह वाक्य जैसा विधिबद्धहै, सो इसके न करनेसे जैसा पापग्रस्त होना होताहै, रामायणके सुननेका फलभी इसकीही समानहै। प्रमाण स्वरूप नीचे लिखाहै--

"रामायणं वेदसमं श्राद्धेषु श्रावयेद्बुधः "
उत्तरकांड (१२४) । (३)

अर्थात्—" यह रामायण वेदके सम तुल्य है, श्राद्धके समय इसे पण्डितके [illegible] " ।

जो हो, वर्त्तमान समयमें जो भक्ति विश्वासको दूर रखकर, शुष्क हृदयसे शुष्क धर्मके खोजनेवाले हैं, जो प्रत्यक्षके अतिरिक्त परोक्ष प्रमाणका विश्वास नहीं करते। जिनकी युक्तिमें भूतेश्वर महादेवजीकी रजतगिरिके समान आकृति, मशानमें वास [illegible]

[illegible] कश्यपके वासके नामानुसार " कास्पियानसि " नाम करनेका कारण निकालाहै.

जिन्होंने ऐतिहासिक तत्त्व अनुसंधान करते करते दश कालिदास ढूँढकर निकाले हैं, जो दूरदर्शिताके प्रभावसे मनुष्यको सर्व नाशका कारण कह, गुप्त प्रगट स्थानोंमें चिल्लाकरभसे भीगते हुये बालकोंसे यश पा सकते हैं, उनके सामने हमारी शास्त्रीय कथा कितनी देर ठहर सकेगी और वह उनको कहांतक पक्षपातरहित होकर सुनेंगे इसके कहनेका तो कुछ प्रयोजनही नहीं। तौ भी संक्षेपसे इतनाही कहेसे काम चल जायगा कि जिसको वसन्त रोग हो जाताहै। वह जहां देखेगा पीले रंगके अतिरिक्त कुछ नहीं देखेगा मूल बात यहहै कि इन विधर्म्मियोंकी बात मानताही कौनहै हम यहभी जानते हैं कि हमारा इन लोगोंके कहनेसे लाभके अतिरिक्त हानि नहीं है। क्योंकि, आक्रमण और कटुवचन न कहनेसे हम काहेको शास्त्र देखते, जो हो इस विषयमें अधिक कहना वृथाहै।

कहना बाहुल्यमात्रहै कि, शिक्षाके संग धर्मज्ञान और सदाचार जैसा प्रार्थनीय है, और उस्से मनुष्यका मन इस प्रकारसे उन्नत होताहै, जैसे आकाशमें पूर्ण शशिधरकी शोभा, जैसे दक्षिणानिलके संग कुसुमसौरभका संयोग होताहै, इसी भांति यदि सुयोग्य कवि वा ग्रंथकारके हाथ वर्णन करनेका उपयुक्त विषय पडै, तौ सोने और सुगंधका संयोग कहा जासकताहै। वाल्मीकिजी जैसे असाधारण कवि थे, उनकी दृष्टिमें उनके भाग्यसे वैसाही वर्णनीय विषयभी पडाथा। बहुत मनुष्य कहसकतेहैं, कि जो निर्जीवको सजीव करनेको समर्थहैं। जो नगरको श्मशान बनानेकी प्रतिज्ञा करनेवालेहैं, जो सुख दुःखके विधाताहैं, उनकी शक्तिकी निपुणतासे सब विषय कवित्वमें आसकतेहैं हम इसके उत्तरमें कह सकतेहैं कि खीर बनानेमें जिस सब सामानका प्रयोजनहै, उस सब सामग्रीके इकट्ठाहोनेसेभी,जो पाक बनाना नहीं जानता,उसको वह खीर बनानी जैसी कठिन है, हमारी समझमें कवियोंके पक्षमें भी यही बातहै। वह यदि न हो तौ कोई स्वभावके वर्णनमें कोई भावकी तेजीमें, कोई रचना सौन्दर्य्यमें, ऊंचे नीचे क्यों होते? एक उद्भट श्लोकमें लिखाहै कि-

" पयसः कमलं कमलेन पयः पयसा कमलेन विभाति सरः।
मणिना वलयं वलयेन मणिर्मणिना वलयेन विभाति करः" ॥

अर्थात्-" जलसे कमल; और कमलसे जलकी शोभा होतीहै किन्तु जलयुक्त कमलसे सरोवर शोभा पाताहै। मणिके संयोगसे वलयकी और वलय के संयोगसे

मणिकी शोभा होतीहै. किन्तु इन दोनोंका संयोग होनेसे हाथकी शोभा होतीहै!! ”

हमारे विचारमें वाल्मीकिजीसे वर्णनीय विषयके उत्कर्ष और वर्णनीय विषयसे कविके कवित्व, इन दोनोंके गुणसे रामायणका जन्महुआहै । रत्नावली नाटककारने अभिनयकी प्रस्तावनामें नटके मुखसे प्रकाश करवायाहै—

“ श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी
लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम् ।
वस्त्वेकैकमपीह वांछितफलं प्राप्तं पदं किं पुन-
र्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ॥ ”

अर्थात्--“श्रीहर्ष एक उपयुक्त कविहै, यह सभा गुणीजनोंसे पूर्णहै, वत्सराज जीमूतवाहनके चारित्र अति मनोहरहैं ॥– (और फिर)--नाटक करनेहारे हमभी अनोखेहैं, जब ऊपर कहेहुए गुण समावेशके मध्य एकके होनेसे भी मनवांछित फल मिलसकताहै, तब यहां जो इतने गुणोंका समावेश देखतेहैं, यह हमारे भाग्यका फलहै । ”

हमभी कहते हैं कि वाल्मीकिजीका कवित्व, वर्णनीय विषय और कुशलवद्वारा वीणा झंकार, वह संगीतके संयोगसे श्लोकाकारमें रचित और गीत होनेसे, सर्वत्र अतिशय प्रशंसाका विषय होगयाहै ।

संस्कृतभाषामें जो रामायणहैं उन चारका अधिक प्रचारहै, उनमें अध्यात्मरामायण वेदव्यासजीकी बनाई हुई कहकर प्रचारितहै । वह ब्रह्मांडपुराणके अन्तर्गतहै,उमामहेश्वरके संवादसे ग्रंथ पुष्ट कलेवरहै । संक्षपसे रामचंद्रजीकी लीलाओंका परिचयदेकर, उनका ब्रह्मत्व प्रतिपादन करनाही ग्रंथकारका उद्देश्यहै, उसके अनुसार वाल्मीकिजीकी मूलघटनासे मिलाकर यह ग्रंथ बनाया गयाहै, शेष तीन रामायणोंके नाम--योगवाशिष्ठ, वाल्मीकि और अद्भुतरामायण । सबही महर्षियोंकी चिन्ताशीलताकी निदर्शनहै। वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण इत्यादि कई विषय लेकर, रामचंद्रजी और वशिष्ठजीके प्रश्नकी मीमांसाके मिससे यह ग्रंथ बनायागयाहै । यद्यपि, वशिष्ठजीके मुखसे रामचंद्रजीके सब प्रश्न मीमांसित और संदेहजाल दूर होगये किन्तु महर्षि वाल्मीकिजीही इस अनुपम ग्रंथके बनानेवाले हैं । रामायण और अद्भुतरामायणभी वाल्मीकिजीके हाथसे प्रकाशित हुई हैं; । उनमें यह पिछला ग्रंथ सहस्र मुख रावण विनाश

विषयावलम्बनसे लिखा गयाहै "पुरुष निश्चेष्ट, पुरुष, प्रकृतिही प्रधानहै" यह दिख लानेको सीताजीके हाथसे उक्त दुरात्मा मारागया है।

वाल्मीकीरामायणके सात कांडहैं—प्रथम बालकाण्ड। दूसरा अयोध्याकाण्ड। तीसरा आरण्यकाण्ड। चौथा किष्किन्धा। पांचवा सुन्दर। छठा लंका वा युद्धकाण्ड। और सातवां उत्तरकाण्डके नामसे परिचितहै। रामका जन्म, ताडकावध, अहिल्याउद्धार, विवाह, परशुरामका गर्व तोडना विवाहके होजानेपर गृह प्रवेश, इत्यादि घटनाओंसे बालकाण्ड पूरा हुआहै इस कांडमें ७७ सर्ग हैं। अयोध्याकाण्ड ११९ सर्गोंमें पूर्ण हुआहै। रामके राजतिलककी तैयारी, मन्थराकी सम्मतिसे कैकेयीका वर पाना, सीता लक्ष्मण सहित रामचंद्रजीका वनगमन करना, निषाद पुरीमें प्रवेश भरद्वाजजीके आश्रममें जाना, चित्रकूटपर वास, महर्षिसे मिलना, दशरथजीका तनुत्याग करना, भरतमिलाप, फिर आगेके वनोंको जाना प्रभृति कथाओंमें अयोध्याकांड वर्णन किया गयाहै। आरण्यकाण्डमें ७५ सर्गहैं। विराधवध, महार्षि शरभंगकी स्वर्ग प्राप्ति, रामजीका सुतीक्ष्णके आश्रममें जाना, महर्षि अगस्त्यसे मिलना शूर्पणखाके नाक कान काटना, खर, दूषण और मारीचका, प्राणसंहार, सीताहरण, जटायुमरण, सीताजीका ढूंढना इत्यादि विषय इसकाण्डमें हैं। किष्किन्धामें ६७ सर्गहैं। इस काण्डमें सुग्रीवसे मित्रताई, वालिवध, बन्दरोंकी सेनाको एकत्र होना और बंदरोंका सीताजीको खोजने जाना, सम्पातिसे सीताजीकी सुधिपाना वर्णन कियाहै। सुन्दरकाण्डमें ६८ सर्ग हैं। हनुमानजीका समुद्र पार होना, लंकादाह, अक्षविनाश, रामको सीताजीकी निशानी दिखाना, इत्यादिक घटना लेकर इस कांडकी उत्पत्तिहै। युद्धकाण्डमें १३० सर्ग हैं। सेतुबांधना, विभीषणसे रामचन्द्रजीकी मैत्री, अतिकाय, अकम्पन, प्रहस्त, धूम्राक्ष, इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, रावणवध, विभीषणको राज्य, सीताकी अग्निपरीक्षा, प्रभृति कथा इस काण्डमें वर्णन कीगई हैं। उत्तर कांडमें १११ सर्ग हैं। रामजीका अगस्त्यजीके मुखसे कुबेर और राक्षसोंकी उत्पत्ति श्रवण करना, देवताओंसे युद्ध करनेमें माल्यवान राक्षसोंकी मृत्यु, रावणकी तपस्या, कुबेरका पराजय, रावणका वरुण लोक देखना, कुम्भीनसी हरण, नल कुबेरका शाप, वालिसे रावणकी सख्यता, सीतावनवास, नैमि वसिष्ठका संवाद, लवणवध, शूद्र तपस्वीका वध, अश्वमेधयज्ञारम्भ, सीताजीका पृथ्वीमें समाना, कौशल्यादि रानियोंका देह

त्याग, दुर्वासासमागम, लक्ष्मण विसर्जन, और श्रीरामचन्द्रजीका साकेतगमन प्रभृति प्रधान प्रधान घटनाओंसे उत्तर कांडका अंग पुष्टहै।

रामायण सुन्नेके फलमें ग्रंथकारने अपने कहे ग्रंथमें जो वर्णन कियाहै, इस स्थानपर उस्के लिखनेकाभी प्रयोजनहै–

" धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्यञ्च विजयावहम् ॥
आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥ १ ॥
यः शृणोति सदा लोके नरः पापात्प्रमुच्यते ॥
पुत्रकामश्च पुत्रान्वै धनकामो धनानि च ॥ २ ॥
लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥
महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥ ३ ॥
श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति ॥
रामस्य विजयं चेमं सर्वमक्लिष्टकर्मणः ॥ ४ ॥
शृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥
श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यातितरत्यसौ ॥ ५ ॥
शृण्वन्ति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥
ते प्रार्थितान् वरान् सर्वान् प्राप्नुवंतीह राघवात् ॥ ६ ॥
विजयते महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान्भवेत् ॥
स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान् सूयुरनुत्तमान् ॥ ७ ॥
पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम् ॥
सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ८ ॥
रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा ॥
प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ॥ ९ ॥
भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम् ॥
ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥ १० ॥
इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनम् ॥
रामायणं वेदसमं श्राद्धेषु श्रावयेद्बुधः ॥ ११ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ॥
सर्वपापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य यः पठेत ॥ १२ ॥

पापान्यपि च यः कुर्यादहन्यहनि मानवः ॥
पठत्येकमपि श्लोकं स पापात्परिमुच्यते ॥ १३ ॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥
लभते श्रवणादेवाध्यायस्यैकस्य मानवः ॥ १४ ॥
हेमभारं कुरुक्षेत्रे ग्रस्ते भानौ प्रयच्छति ॥
यश्च रामायणं लोके शृणोति सम एव सः ॥ १५ ॥
सम्यक् श्रद्धासमायुक्तो लभते राघवीं कथाम् ॥
सर्वपापात्प्रमुच्येत विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १६ ॥"

अर्थात्--"पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिजीने इस महाकाव्यको बनायाहै, यह धर्मका उत्पन्न करनेवाला, आयु बढानेवाला, यश देनेवाला, और राजाओंको जयदायकहै जो मनुष्य रामायण श्रवण करतेहैं, वह पापसे छूटजातेहैं। पुत्र और धनके चाहनेवाले मनुष्य, इसको श्रवणकर पुत्र और धन पातेहैं। राजा रामचंद्रजीके राज्यकी कथा श्रवण करनेसे, पृथ्वीको जय विजय, और शत्रुको क्षय कर सकतेहैं। अक्लिष्टकर्मा रामचंद्रजीकी कथा श्रवण करै तो लोकमें दीर्घायु प्राप्त करताहै। जो मनुष्य क्रोधको जीतकर श्रद्धासे वाल्मीकिकृत रामायण सुनै वह कठिन संकटोंसे उत्तीर्ण होजाय। जो रामायण श्रवण करतेहैं, वह श्रीरामचंद्रजीसे मनोवांछित फल पाते हैं। रामायणके श्रवणसे राजा पृथ्वीजय, और परदेशी मंगल लाभ करतेहैं,। रजस्वला स्त्री इसके श्रवण करनेसे पुत्र प्रसव करती है। रामायणकी पूजा या पाठ करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटकर बडी आयु पाते हैं। जो समस्त रामायण पाठ या श्रवण करते हैं, भगवान् सनातन रामचंद्र उनपर प्रसन्न होजातेहैं। जो भक्तिपूर्वक ऋषिकी बनाई यह संहिता लिखतेहैं, उनका स्वर्गमें वास होताहै। यह उपाख्यान आयुका बढानेवाला, सौभाग्यजनक और पापनाशक है। श्राद्धकालमें पंडितके मुखसे वेदतुल्य यह रामायण ग्रंथ सुनै जो मनुष्य इसका एक चरण भी पढै, वह अपुत्र होनेसे पुत्रवान्, निर्धन होनेसे धनवान्, और पापी होनेसे पुण्यवान् होजाताहै। जो मनुष्य दिन रात पाप करता है, वहभी यदि ध्यानधरके इसका एक श्लोक पढले तो सब पाप ताप विलापसे छूटजाय। अश्वमेध वाजपेय यज्ञ करनेसे जो फल मिलताहै, रामायणके एक अध्याय पढनेसे उसी फलकी प्राप्ति होती है। ग्रहणके समय कुरु-

क्षेत्रमें सुवर्णदान करनेसे जो पुण्य होता है, रामायणके श्रवण करनेका फलभी वैसाही है। जो मनुष्य श्रद्धासे रामचरित्र श्रवण करतेहैं, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णु लोकको चले जाते हैं।"

अब रामायणके बनानेवाले महर्षि वाल्मीकिजीके सम्बन्धमें कुछ कहना चाहतेहैं। आलंकारिक कहते हैं कि–उपमा और उपमेय पदार्थोंके बीचमें निकृष्ट वस्तुकी तुलना उत्कृष्टके सहित होसकतीहै, और यही गौरवका परिचय है, परन्तु इस कहनेसे उत्कृष्ट वस्तु निकृष्टके साथ बराबरीमें तो नहीं आसकती, और होनेसे अलंकारका दोष कहा जायगा। इमली स्वभावसेही अम्लरसपूर्ण (खट्टी) होतीहै, परन्तु इसका गुण वर्णन करते हुए बुरासे बराबरी करदी, यह हमभी मानतेहैं. परन्तु इस कहनेसे बूरा इसकी समान यह उपमा ठीक नहीं। हमने जहांतक ढूंढ खोजके मालूम कियाहै, वहांतक कहसकतेहैं। कि जिससे रामायणकी तुलना होसकै, ऐसा ग्रंथ हमारे नेत्रोंके सामने अबतक नहीं आया, और होगा, यहभी नहीं कह सकते। हम इस सम्बन्धमें इतनाही कहैंगे कि, वाल्मीकिजीने राम रावणका युद्ध वर्णन करनेके संबन्धमें कोई उपमा न देख करकै,

"रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव"

यह बात कहीहै इसी प्रकार रामायणकी रचना वाल्मीकिजीकोही सोहतीहै, और वाल्मीकिजीभी रामायणके प्रकृत अनरूप प्रणयनकर्ताहैं। टीकाकार रामानुजने कहाहै—

"कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरूढं कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥"

अर्थात् "--मैं वाल्मीकि स्वरूप कोकिलको अभिवादन करता हूं, यह कोकिल कविता शाखापर आरोहण करकै, मीठे स्वरसे राम राम शब्दसे कूजन करताहै"

हम पक्षपातरहित होकर इस बातके पक्षपातीहैं यथार्थमें विचार कर देखनेसे रामायणको एक प्रधान पेड़ मनमें समझ सकतेहैं। सच्चिदानंद ब्रह्म इसके अमल बीज, चिन्मय इसका अंकुर, यह विस्तारित वृक्ष सप्त काण्डोंमें विभक्तहै ऋषिगण इसके आलवाल स्वरूपमें मूलकी रक्षा करतेहैं, तत्वज्ञानपूर्ण चौवीस सहस्र पत्रोंसे यह शोभायमानहै, इसमें छःसौग्यारह शाखास्वरूप सर्ग विराजमानहैं, यह वृक्ष ब्रह्म प्राप्ति फल देताहै इसके फल नित्यपके हुए और अनन्त कालतक

रसनाको तृप्ति करतेहैं, और इस ग्रंथमें जैसे सूक्ष्म और सदुपदेश मिले और कहीं ऐसे उपदेश मिलतेहैं अथवा नहीं, इस्में संदेह है, केवल ऐसा नहीं कि ग्रंथ रसभावपूर्ण, चित्तचमत्कारक, और मनोहारकहीहै, नहीं इसमें प्राचीन कालके आचार, व्योहार, जातिधर्म, पातिव्रत्य, सौभ्रातृ, और राजधर्म इत्यादिक भरे पड़ेहैं। यद्यपि भाग्यदोषसे वह सब चिन्ह, वह अनुष्ठान, वह सुखके दिन इस समय नहींहैं। परन्तु रामायणकी ओर दृष्टि फिरानेनेसे, स्मृतिकी सहायमें,--कविके सुचित्रमें--रचनाकी पंडिताईमें. वह स्पष्ट भावसे अबभी माना प्रत्यक्ष कीनांई मूर्ति धारण किये खड़ेहैं। किसी किसी सूक्ष्मदर्शी पंडितके मतसे यह ग्रंथ करुणारसकाहै; अर्थात्--इस्में करुणारस प्रधानहै। परन्तु सुप्रसिद्ध-टीकाकार नागोजीभट्टने कहाहै कि--

"वयं तु शृंगार एव प्रधानः सीतायाश्चरितं महदित्युक्तेः"

यह कहतेहैं,--हम शृंगाररसको प्रधान मानतेहैं, क्योंकि सीताजीका महत् चरित्रही इसका मुख्य अंगहै।

हमारे विचारमेंभी नागोजी भट्टकी उक्ति अप्रमाणिक नहीं जानपड़ती। अलंकारिकोंने शृंगारको संयोग और विप्रलंभ इन दो भागोंमें विभक्त कियाहै, सुतराम् उनके कथनसे सीताजीके सहित सीतापतिका सहवास काल संयोग, और फिर उसके उपरान्त सीता हरणसे उद्धारके पूर्व कालतक विप्रलंभका प्रत्यक्ष दृष्टान्तहै। इस ग्रंथमें रामचंद्रजीके विरहमें दशरथ और कौशल्यादिका विलाप और परिताप करुणारसका झरना, शूर्पणखाके संयोगसे हास्य रसका प्रदीप्त चित्र, हनुमान प्रभृति वानर गणोंके वीरकार्योंमें वीर रसका नमूना, राम रावणके युद्धमें वीररसकी दिव्य मूर्ति, विराध और कबंधके चरित्रमें अद्भुत पराकाष्ठा, रामके चरित्र, और परस्पर व्यवहारमें शान्तिरसका अपूर्व अनुपम निदर्शनहै। जो हो रामायणकी बडी समालोचना करनेका हमारा आशय नहींहै तौभी संक्षेपसे कुछ बातोंकी पर्य्यालोचना करनेसे ग्रंथकर्ताकी शक्तिकी कुछ आभा देनाही हमारा उद्देश्यहै। मनुसंहिताके दशवें अध्यायके ८१। ८२। श्लोकमें लिखाहै कि--

"अजीवंस्तुयथोक्तेन ब्राह्मणा स्वेन कर्मणा।
जीवेत् क्षत्रियधर्मेण सह्यस्त्यप्रत्यनन्तरः॥ १॥

"उभाभ्यामथजीवंस्तु कथंस्यादितिचेद्भवेत् ।
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥"

अर्थात्--"यदि ब्राह्मण अध्यापनादि नियत कर्म करके कुटुम्बप्रतिपालन पूर्वक जीविका निर्वाह नहीं कर सकै तो क्षत्रिय धर्म,—अर्थात्-ग्रामादिकी रक्षामें दिन रात व्यतीत करै । यदि निज धर्म वा क्षत्रियधर्मभी ग्रहण करकै जीविका न चलै तो खेती और गोरक्षादि वैश्यवृत्ति करै ।"

रामायणमेंभी इन नियमोंके विरुद्ध दृष्टि नहीं आता उस समय गर्गवंशसम्भूत त्रिजट नाम ब्राह्मण वैश्यवृत्ति अवलम्बन करकै दिन व्यतीत करताथा । ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यादि सभी अपने निर्दिष्ट धर्मकार्यमें जीवनयात्रा निर्वाह करतेथे और जो तपस्वी या संसारत्यागीहैं उनका विषय प्रस्तावनाके बाहर समझ कर हम वर्णन नहीं करेंगे । उससमय मुख्य और गौण दो प्रकारका ब्रह्मचर्यथा ; ब्राह्मणोंकी अपने धर्ममें अवस्थिति और उसके अनुष्ठानका नाम ब्रह्मचर्यहै । मनुजीके मतसे यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह, यह कई एक ब्राह्मणोंके निर्दिष्ट काम गौण ब्रह्मचर्य कहातेहैं । यही ब्रह्मचर्यावलम्बी ब्राह्मण संसारी हो गृहधर्म पालन करते, और श्रुति स्मृति, आचारोंके अनुसार चलतेहैं . अपर सम्प्रदायमें मुख्य ब्रह्मचारीहैं । यह संसारत्यागी, परिव्राजक, छत्र, खडाऊं,—और कमंडलधारी होतेहैं । रामायणमें लिखाहै—

"श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही ।
वामेचांसेऽवसज्याथ शुभेयष्टिकमंडलू ॥"

अर्थात्—"उनके पहिरनेके मनोहर वल्कल वस्त्र, मस्तकपर चुटिया और छत्र, खडाऊँ, बायें कन्धेपर लकडी और कमंडलु" ।

तपस्वियोंके आश्रय सबंधमें वाल्मीकिजीने क्या सुन्दर वर्णना कीहै ।

" प्रविश्यतु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् ।
रामो ददर्श दुर्द्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥
कुशचीरपरिक्षितं ब्राह्मया लक्ष्म्यासमावृतम् ।
यथाप्रदीप्तं दुर्दर्शं गगने सूर्यमंडलम् ॥ २ ॥
शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरंसदा ।

मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैस्समावृतम् ॥ ३ ॥
पूजितश्चोपनृत्यं च नित्यमप्सरसां गणैः ।
विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भांडैरजिनैः कुशैः ॥ ४ ॥
सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतम् ।
पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः ॥ ५ ॥

अर्थात्—"आत्मवान् दुर्द्धर्ष रामचंद्रजी महारण्य दंडकवनमें प्रवेश करके तपस्वियोंके आश्रमसमूह देखने लगे । जहां कि कुश चीर इधर उधर पडेहैं । ब्रह्म संबंधी लक्ष्मीसे युक्तहैं जिसप्रकार आकाशमध्यवर्ती भगवान् भास्करको तेजके कारण कोई नहीं देख सक्ता, इसी प्रकार तपस्वीभी कठिनसे देखने योग्यहैं । उनके आश्रमोंके आंगन शोभित और सब प्राणियोंके शरणदेनेवालेहैं वहां नाना प्रकारके पक्षी और मृगगण विचरण करतेहैं । अप्सराओंके गण इन स्थानोंमें नित्य नृत्य करतेहैं । विशाल अग्निहोत्र, स्रुग्भांड, अजिन और कुशसमूह उस स्थानमें व्याप्तहैं । सूर्य और अग्नि तुल्य तेजस्वी फलमूलाहारी परमकारुणिक परम पुण्यवान् महर्षिगण शोभा पारहेहैं । "

हे चतुर सहृदय पाठक ! एक वार संसार विषसे जले शान्तिमय मनुष्यकी वास भूमि और इस पुण्यभूमिकी तुलना करनेसे जान जाइयेगा कि--स्वर्ग और नरकमें जितना अंतरहै,संसारसे और ऋषिलोगोंके आश्रमोंमें उससे ज्यादा अंतरहै।वहां मिथ्या प्रलोभन, विषयचर्चा, अधर्म स्रोत, पाप पहाड, इन सबका नामतक नहीं । सरलता, दया, पवित्रता, शांति, और अच्छे अनुष्ठान, सबही मानो स्वाभाविक सहोदरताके सूतमें सदा एक स्थानमें अवस्थिति करतेहैं । विचार देखिये, कि उस समयके ब्राह्मण कैसे देवभावापन्न, कैसे विद्यावान्, कैसे शास्त्रदर्शी, और कैसे सन्मान पाने योग्यथे । यह प्रभातही नियमित सन्ध्या वंदनादि, मध्याह्नमें योगादि और सायाह्नमें देवकार्योंके अनुष्ठानमें लगे रहतेथे । इनके शिष्य नौकर चाकरकी समान सब निर्दिष्ट कर्म करतेथे । पवित्रभाव, पवित्रकाय और पवित्र आचारमें वृत्ति रहनेसे इन्होंने असंतोषका मुखभी नहीं देखाथा । हाय ! कालके दोषसे अब इनके वंशधरोंका क्या परिणाम होरहाहै ! जो हो, उस समयमें राजधर्मके साथ, संक्षेपसे कुछेक उसकाभी परिचय देतेहैं । उसके अनुसार चित्रकूट पर्वतपर भरतको रामका दर्शन होनेपर रामचंद्रजीने बूझाथा;--

"कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थं धर्मेण वा पुनः ॥
उभौ वा प्रतिलोमेन कामेन न विबाधसे ॥ १ ॥
कच्चिदर्थञ्च कामञ्च धर्मञ्च जयतां वर ।
विभज्य कलिकालज्ञ सर्वान् वरद सेवसे ॥ २ ॥
मंत्रिभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेव वा ।
कच्चित् समस्तैर्व्यस्तैश्च मंत्रं मंत्रयसे बुध॥ ३ ॥
कच्चिद्देवान् पितॄन् भृत्यान्गुरून् पितृसमानपि ।
वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे ॥ ४ ॥"

भूमिका बढनेके भयसे केवल इतनेही श्लोक उद्धृत किये, इनका अर्थ यह है कि- "तुम अर्थद्वारा धर्म, धर्म द्वारा अर्थ, और काम द्वारा इन दोनोंको निपीडित तो नहीं करते ? तुम यथा कालमें धर्म, अर्थ, और कामको समभावसे तो ग्रहण करतेहो ? तुम देवता, पितृ, पितृतुल्य, गुरुव्यक्ति वृद्ध, वैद्य, और नौकर चाकरोंका अनुरूप सन्मान तो करतेहो ?"

उस समयके राजधर्म सम्बन्धमें और क्या कहैं, रामके राज्यकी बडाई अबतक आबाल वृद्ध वनिताओंके हृदयमें जाग रहीहै । चोर या ठगोंका भय तो दूसरी बातहै, उन सबकी ऐसी धर्मपर दृष्टि और ऐसे निष्पाप अनुष्ठान थे कि अकाल मृत्युभी अपनी प्रभुता जमानेमें समर्थ नहीं हुईथी । समाजधर्मके विषयमें केवल इतनाही कहनेसे काम चलजायगा कि, उस समय वैर हिंसा प्रभृति कुभावोंने मनुष्योंके मनमें स्थान नहीं पायाथा । मनुष्यके तीन शासनके वश होने उपरान्त उसको निरापदकी भावना और उन्नतिकी बाधा नहीं होतीथी, उस समय वही तीन अर्थात् राजशासन, धर्मशासन, समाजशासन अटलभावसे स्थिर करतेथे, यदि ऐसा न होता, तौ रामचन्द्रकी समान भूपति, सामान्य लोकापवादके भयसे गृहलक्ष्मी प्राणोंसेभी अधिक प्यारी जानकीको क्यौं त्यागन करते ? इस समयके नये सभ्योंको इस कार्यका अनुचित कहना कुछ असंभव नहींहै, परन्तु जो राजपदके कर्म, कर्तव्य कर्मको जानतेहैं जो सब उपायोंसे प्रजाको प्रसन्न करनाही राजाशब्दका अर्थ बतातेहैं, वह लोग कहसक्तेहैं कि, यह कार्य अनुचित वा उचितहै । यदि हमारी प्रकृति कुछभी वैसी होती यदि उन मर्य्यादा पुरुषोत्तमकी अवस्था हमारे ऊपर बीतती, यदि हमारा और सीतापतिका दायित्व एकसा

होता, यदि हम उस समयकी रुचि, प्रवृत्ति और अवस्था जानते होते, अधिक क्या कहैं, यदि उस समयके मनुष्यभी होते तो नहीं समझमें आती कि ऐसे स्थानमें रामचन्द्रको कहां तक अनुचित कहते? जो हो, अब हमें यह बतानेका प्रयोजन हुवाहै कि रामायणसे संसारी मनुष्योंके अर्थ क्या क्या उपदेश निकलतेहैं; और हमारा विश्वासहै कि इससे वाल्मीकिजीकी शक्तिकी सीमा अवधारित होजायगी । अलंकार ग्रंथमें लिखाहै कि-

"रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्"

अर्थात्—हमें रामचंद्रजीकी समान चलना उचितहै, रावण आदिकका अनुवर्ती होना उचित नहीं । अब रामचंद्रजीके कार्यसंबंधमें कुछ पर्य्यालोचना करनी चाहिये, महर्षि वाल्मीकिजीने रामचंद्रजीको सर्व गुणोंके आधार, सर्वके प्रिय, और अमानुषीप्रकृतिसे सजायाहै । देखिये, माता कौशल्याका अनुरोध भ्राता लक्ष्मणका अतिशय निर्बन्ध, सीताजीकी प्रार्थना, पुरवासियोंका निषेध बरन् महाराज दशरथजीकीभी आकांक्षापरित्याग करकै, राजतिलकको जलांजलि दे वह विकाररहित चित्तसे जटा वल्कल धारण कर वनवासी हुये । 'पितृदेवोभव' 'मातृ देवोभव' इस श्रुतिकी महिमा पूर्ण रूपसे प्रगट कर दिखाई । पिताका सत्य पालनही उनका मूलमंत्र और प्रधान धर्म होगया । उन्होंने उस सधर्मके आगे सबको सामान्य समझा उनकी केवल यही उक्ति रही "रामो द्विर्नाभिभाषते" । "राम किसी बातमें द्विरुक्ति नहीं करता" । कैकेयीका चरित्र यहांतक अंकित हुआ कि उससे विमातृ शब्दही भली प्रकारका शक्तिसंपन्न हुआहै पुरुषकी वृद्ध वयसमें स्त्रियोंमें आसक्त होनेसे कैसी दुर्गति होतीहै, कैकेयीकी उक्ति, और कार्य व उसके किये पुत्रशोकसे दशरथजीका प्राण त्यागन करना, इस घटनाका सर्व श्रेष्ठ नमूना है । नीच और पराये विभवको देखकर जलनेवालोंके परामर्शसे जैसी इष्टसिद्धि होतीहै, यहां मंथराका स्वभाव उसको बता रहाहै । जो जीव मात्रमेंही श्रद्धा करते हैं । उनके बडप्पनकी सीमा नहीं रहती, इसी कारण निषादाधिपति गुहसे रामचंद्रजीकी मित्रता हुई ।

अब कुछ लक्ष्मणजीके चारित्रका अनुसंधान करें, यदि परिचय जाननेका सुभीता न होता तो कौन लक्ष्मणजीको सौतेला भाई समझता अबभी दो भाइयोंकी परस्पर बडी प्रीत देख आदमी कहा करतेहैं "जैसे राम लक्ष्मणकी जोडी" अर्थात्—इनमें कुछ भिन्नता नहीं थी भाई वनको जायँगे; लक्ष्मणभी तैयार हुये; रामके वारंवार निषेध करनेसेभी लक्ष्मण न माने । आहार, निद्रा, भोग इन सबोंका त्यागन

कर परछांहीकी समान संगी होना, ऐसा भाव क्या अबभी दृष्टि आताहै ? मनुष्य क्रोधोदय होनेपर गुरुजनोंकोभी अनुचित वाक्य कह बैठतेहैं, किन्तु लक्ष्मणजीने एक दिनभी राम वा सीताजीके ऊपर व्यवहार विरुद्ध आचरण वा और युक्ति प्रयोग नहीं की। और इसी प्रकार रामचन्द्रभी लक्ष्मणको देखतेथे दोनोंका व्यवहार समान न होनेसे मनका मिलना, व अनुगामी होना नहीं होसकता? लोकव्यवहार दर्पणमें मुख देखनेकी समानहै,तुम यदि मुझसे प्रीत चाहो, तौ प्रथम प्रीत देनी होगी, जब लक्ष्मणजीके शक्ति लगी, तब उनकी अवस्था देख रामचंद्रजीका अंतःकरण कैसा व्याकुल हुआथा? और उस समय उन्होंने कैसा शोक परिताप कियाथा, इस स्थानपर प्रमाणार्थ महर्षिजीकी उक्ति उद्धृत करके लिखी गईहै—

"विजयोऽपिहि मे शूर न प्रियायोपकल्पते।
अचक्षुर्विषयश्चंद्रः कां प्रीतिं जनयिष्यति ॥ १ ॥
किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते।
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्द्धनि लक्ष्मणः ॥ २ ॥
देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तन्तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ ३ ॥"
युद्धकां० १०२ स० १०। ११। १४।

अर्थात्—"हे शूर! रणमें जय पाना मुझे अच्छा नहीं लगता, क्योंकि यदि आंखोंसे चंद्रमाके दर्शन न किये जा सकैं, तो संतोष कैसे होगा, जब भ्राता लक्ष्मणही रणभूमिमें निहत हो शयन करतेहैं, तो मेरा युद्ध वा जीवन धारण करनेसे क्या प्रयोजन है? देश देशमें कलत्र, वा बंधु, बांधव मिल सकतेहैं, परन्तु ऐसा देश दृष्टि नहीं आता कि जहां सहोदर भ्राता मिलजाय।"

आहा! अबभी कहीं भाइयोंमें इस प्रकारका स्नेह देखनेमें आताहै? राम लक्ष्मण भिन्न यह भायप और किसीमें संभव होसकता है? हम साधारण भूमि धन दौलतके लिये भाईका त्यागन करतेहैं। परन्तु लक्ष्मण सौतेले भाई होकरभी रामचंद्रके कार्यके अर्थ धराशायी हुये।

पाठक गण! सीता महारानीका सदय भाव और महत्व देखनेको और जगह विचारिये। रावणके विनाश होनेपर रामचंद्रजीकी आज्ञासे रामभक्त केशरीनंदन हनूमान अशोकवनमें प्रवेश करके, शुभ संवाद दे सीताजीसे कहने लगे,—देवि-खोटी वृत्तिवाली राक्षसियोंने रावणकी आज्ञासे तुम्हारे प्रति तर्जन, गर्जन और नाना

प्रकारकी पीडा दीहै; अतएव अनुमति हो तो, मैं उन्हें यमलोककी यात्रा कराऊं, सीताजीने निषेधपूर्वक इसके उत्तरमें जो कुछ कहाहै, उसे एकवार देख लीजिये;—

"भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च ॥
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥ ३७ ॥
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः ॥
प्राप्तव्यन्तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम् ॥ ३८ ॥"
यु० ११६ । ३७ । ३८ ।

तात्पर्य—"मेरे जन्मांतरकी दुष्कृति और दुर्भाग्योंके निबन्धनसे मुझे यह फल भोगना पडा । तुमने राक्षसराजके नौकर चाकरोंको वध करनेको जो कहा, यह बात अब मत कहना, हे महाबाहो ! दैवकी गति जो निर्धारितहै, उसको कौन खडन कर सकताहै, सुतरांतक दशाके योग यह अवश्यही हमें भोगना पडैगा ।"

क्या चमत्कार, साधुता, क्या असाधारण सद्व्यवहार, क्या अलौकिक महत्त्व, और क्या देवभावमय दृष्टांतहै !

अब रावणके चरित्रकी कुछ आलोचना करनी उचितहै । किसी २ ग्रंथमें लिखाहै कि—रावण एक भक्त था । द्वेषभावसे वैर कर उद्धार होनाही उसकी इच्छाथी । कोई कोई रावणके कार्योंको देख उसे बर्ब्बर, अत्याचारी, अधार्मिक, और लोककंटक कहतेहैं । हमारे मतमें महात्मा विभीषणके मुख और वाल्मीकिजीकी उक्तिसे रावण एक सुपंडित, शास्त्रज्ञ, कर्मी, वेदान्तवित, नीतिज्ञ, और विक्रांत, कहके परिचितहै । प्रमाणके लिये नीचे श्लोक लिखाहै;—

"एषोऽहिताग्निश्च महातपाश्च वेदांतगः कर्मसु चाग्र्यशूरः ॥
एतस्य यत् प्रेतगतस्य कृत्यं तत्कर्तुमिच्छामि तव प्रसादात् ॥"

अर्थात्—"यह रावण अग्निहोत्री, महातपा, वेदान्तवित, कर्मी एवं वीरचूडामणि था । अब इसकी प्रेतावस्थामें जो कर्तव्यहै, आपकी अनुमतिसे करनेकी इच्छा करताहूं ।"

जो कुछभीहो,हजारगुण रहतेभी,जैसे,"दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी"यह एक महा वाक्य सुननेमें आताहै,रावणके पक्षमेंभी इसी भांति नाना प्रकारके गुणोंका समावेश

होनेसेभी अत्याचार, पीडन, देवब्राह्मणकी हिंसा और कामुकताने उसके गुणोंका ग्रासकर लिया था, वह भक्तहो, अथवा नहो, इस बातमें हमारा वाद विवाद व्यर्थहै; परन्तु हम कहना चाहतेहैं कि उसके जैसे कर्म, व्यवहार और प्रवृत्ति थी, वैसाही फलभी उसने पाया। विश्वविचारक विश्वेश्वरके निकट आजहो, कलहो,—अवश्यही सुविचार होतारहा और होगा। पापकी उत्तेजना और अधर्मकी वृद्धि न होनेसे क्षय पानेकी संभावना नहीं रहती।

उपसंहारमें श्रीसीताजीके गुण और उनके निष्कलंक चरित्रोंकीभी कुछ समालोचना करनी चाहिये। पति जटावल्कलधारी और वनवासी हुये, अतएव पतिप्राणा जानकीजी उनकी अनुवर्तनी होंगी, इसमें आश्चर्यही क्याहै। सो हम यह बात नहीं कहते! पाठकगण! विचारकर देखिये कि जगज्जननी सीताजीके उद्धार करनेको बालिवध, बन्दरोंकी सेनाका एकत्र करना, समुद्रमें पुल बांधना, वंशसहित रावणको ध्वंस करना इन सब घोर कार्योंके पीछे, विभीषणके साथ रामचन्द्रजीकी आज्ञासे, उनके सन्मुख वही सीताजी उपस्थित हुईं, वैसेही सीतानाथने दुर्वाक्यरूपी बाणोंसे उनको जर्जरित किया और उनको किसी प्रकारसे ग्रहण करनेमें सम्मत न हुये। तब सती साध्वी जानकीजीने अग्निमें प्रवेश करनेको उद्यतहो जो प्रार्थनाकी थी, एकवार उस स्थलकी पर्य्यालोचना करनेका प्रयोजनहै—

"यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥ १॥
कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम्।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः॥ २॥"

अर्थात्—"जो मेरे हृदयने किसी प्रकारसेभी रामके निकटसे अन्यत्र गमन नहीं किया हो तो लोकसाक्षी अग्नि मेरी रक्षा करै। जो मैंने काय, मन और वाक्य, किसी भांतिसे रामको अतिक्रम नहीं कियाहै, तो अग्निदेव मेरी रक्षाकरैं।"
फिर रामचन्द्रजीके राजतिलक होनेपर, लोकापवादके भयसे सीताजी वाल्मीकिजीके आश्रमके निकट तपोवनमें त्यागीगईं। और फिर यज्ञके समय उनको तपोवनसे बुलायागया, उससमय देवता, गंधर्व, मनुष्य, और सर्वसाधारणके सामने फिर उनकी परीक्षाका विषय छिडनेपर उन्होंने जो प्रार्थनाकीथी, वह नीचे लिखी जातीहै;—

"यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ १ ॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्च्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ २ ॥
यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं नच ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ ३ ॥"

अर्थात्–"जो मैंने रामके अतिरिक्त मनसेभी और किसका चिन्तवन नहीं किया, तो हे देवि पृथ्वी ! तुम विदीर्ण होकर मुझे स्थानदान दो । जो मैंने काय, मनो, वाक्यसे केवल रामकीही अर्चनाकीहै, तो हे देवि ! मुझे स्थानदान दो । जो मैं सत्य सत्यही कहतीहूं कि,–मैं रामके अतिरिक्त और किसीको नहीं जानती तो हे पृथ्वी ! मुझे स्थानदान दो ।

हाय ! इतना कष्ट–इतनी यंत्रणा–इतनी लांछना–और इतना अपमान भोगकरके जिस स्त्रीने पतिको त्यागकरना, रूठ जाना तो क्या परुषवाक्यतक कहनेकी इच्छा नहीं की, उसकी उपमा, उसका दृष्टान्त, उसका गौरव, क्या किसी लोकमें मिलसकताहै ? सीताका ऐसा कष्टपाना, और ऐसा व्यवहार सहना देखकर भारत वासियोंने सीताजीका नाम स्त्रियोंमेंसे उठा दियाहै ।

जोहो, रामायण साधारणके निकटमें सत्कृत और परिचित होनेपरभी संस्कृत भाषाके कारण सर्वसाधारणोंकी समझमें नहीं आती "इस देशमें श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी रामायण भाषाछन्दोंमें विरचितहै. सब छोटे बडे उसीको पढकर आनंदमें मग्न रहतेहैं । इसकारण हम गुसांई तुलसीदासजीके कृतज्ञ और ऋणीहैं" वाल्मीकीयरामायण सम्पूर्ण भाषामें न देखकर इसका सरल देशभाषामें टीका कियाहै, जिन्होंने भाषामें थोडाभी अभ्यास कियाहै, वहभी इसको पाठकर अपना मनवांछित फल प्राप्त करसकते हैं । विशेषतः मूल श्लोकसे कोईभी बात इसमें नहीं छोडीगई, किन्तु जहांकहां संस्कृतटीकाकारने कुछ विशेष लिखाहै वहां इसमेंभी अधिक टिप्पणी करदी गई है, यह सब परिश्रम आपको रामभक्त बनानेके निमित्तहै, यदि शास्त्रपर विश्वासहै तो रघुनाथजीको परब्रह्म जानकर इससे आप अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदार्थ पासकते हैं, यदि और कुछ भावना हो तो आप उनके आचरणही ग्रहणकीजिये, उसीसे धर्मार्थकी प्राप्ति

होनेसेभी अत्याचार, पीडन, देवब्राह्मणकी हिंसा और कामुकताने उसके गुणोंका ग्रासकर लिया था, वह भक्तहो, अथवा नहो, इस बातमें हमारा वाद विवाद व्यर्थहै; परन्तु हम कहना चाहतेहैं कि उसके जैसे कर्म, व्यवहार और प्रवृत्ति थी, वैसाही फलभी उसने पाया। विश्वविचारक विश्वेश्वरके निकट आजहो, कलहो,—अवश्यही सुविचार होतारहा और होगा। पापकी उत्तेजना और अधर्मकी वृद्धि न होनेसे क्षय पानेकी संभावना नहीं रहती।

उपसंहारमें श्रीसीताजीके गुण और उनके निष्कलंक चरित्रोंकीभी कुछ समालोचना करनी चाहिये। पति जटावल्कलधारी और वनवासी हुये, अतएव पतिप्राणा जानकीजी उनकी अनुवर्तनी होंगी, इसमें आश्चर्यही क्याहै। सो हम यह बात नहीं कहते! पाठकगण! विचारकर देखिये कि जगज्जननी सीताजीके उद्धार करनेको बालिवध, बन्दरोंकी सेनाका एकत्र करना, समुद्रमें पुल बांधना, वंशसहित रावणको ध्वंस करना इन सब घोर कार्योंके पीछे, विभीषणके साथ रामचन्द्रजीकी आज्ञासे, उनके सन्मुख वही सीताजी उपस्थित हुईं, वैसेही सीतानाथने दुर्वाक्यरूपी बाणोंसे उनको जर्जरित किया और उनको किसी प्रकारसे ग्रहण करनेमें सम्मत न हुये। तब सती साध्वी जानकीजीने अग्निमें प्रवेश करनेको उद्यतहो जो प्रार्थनाकी थी, एकवार उस स्थलकी पर्य्यालोचना करनेका प्रयोजनहै—

"यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥ १॥
कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम्।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः॥ २॥"

अर्थात्—"जो मेरे हृदयने किसी प्रकारसेभी रामके निकटसे अन्यत्र गमन नहीं किया हो तो लोकसाक्षी अग्नि मेरी रक्षा करें। जो मैंने काय, मन और वाक्य, किसी भांतिसे रामको अतिक्रम नहीं कियाहै, तो अग्निदेव मेरी रक्षाकरें।" फिर रामचन्द्रजीके राजतिलक होनेपर, लोकापवादके भयसे सीताजी वाल्मीकिजीके आश्रमके निकट तपोवनमें त्यागीगईं। और फिर यज्ञके समय उनको तपोवनसे बुलायागया, उससमय देवता, गंधर्व, मनुष्य, और सर्वसाधारणके सामने फिर उनकी परीक्षाका विषय छिडनेपर उन्होंने जो प्रार्थनाकीथी, वह नीचे लिखी जातीहै;—

"यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ १ ॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ २ ॥
यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं नच ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ ३ ॥"

अर्थात्—"जो मैंने रामके अतिरिक्त मनसेभी और किसका चिन्तवन नहीं किया, तो हे देवि पृथ्वी ! तुम विदीर्ण होकर मुझे स्थानदान दो । जो मैंने काय, मनो, वाक्यसे केवल रामकीही अर्चनाकीहै, तो हे देवि ! मुझे स्थानदान दो । जो मैं सत्य सत्यही कहतीहूं कि,—मैं रामके अतिरिक्त और किसीको नहीं जानती तो हे पृथ्वी ! मुझे स्थानदान दो ।

हाय ! इतना कष्ट—इतनी यंत्रणा—इतनी लांछना—और इतना अपमान भोगकरके जिस स्त्रीने पतिको त्यागकरना, रूठ जाना तो क्या परुषवाक्यतक कहनेकी इच्छा नहीं की, उसकी उपमा, उसका दृष्टान्त, उसका गौरव, क्या किसी लोकमें मिलसकताहै ? सीताका ऐसा कष्टपाना, और ऐसा व्यवहार सहना देखकर भारत वासियोंने सीताजीका नाम स्त्रियोंमेंसे उठा दियाहै ।

जोहो, रामायण साधारणके निकटमें सत्कृत और परिचित होनेपरभी संस्कृत भाषाके कारण सर्वसाधारणोंकी समझमें नहीं आती "इस देशमें श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी रामायण भाषाछन्दोंमें विरचितहै. सब छोटे बडे उसीको पढकर आनंदमें मग्न रहतेहैं । इसकारण हम गुसांई तुलसीदासजीके कृतज्ञ और ऋणीहैं" वाल्मीकियरामायण सम्पूर्ण भाषामें न देखकर इसका सरल देशभाषामें टीका कियाहै, जिन्होंने भाषामें थोडाभी अभ्यास कियाहै, वहभी इसको पाठकर अपना मनवांछित फल प्राप्त करसकते हैं । विशेषतः मूल श्लोकसे कोईभी बात इसमें नहीं छोडीगई, किन्तु जहांकहां संस्कृतटीकाकारने कुछ विशेष लिखाहै वहां इसमेंभी अधिक टिप्पणी करदी गई है, यह सब परिश्रम आपको रामभक्त बनानेके निमित्तहै, यदि शास्त्रपर विश्वासहै तो रघुनाथजीको परब्रह्म जानकर इससे आप अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदार्थ पासकते हैं, यदि और कुछ भावना हो तो आप उनके आचरणही ग्रहणकीजिये, उसीसे धर्मार्थकी प्राप्ति

हो जातीहै क्योंकि वोह सच्चिदानन्द कल्प वृक्षहैं, जैसी आपकी भावना होगी उ-सीके अनुसार फल मिलैगा.

तुलसीकृत रामायणकी टीका करके आपको रघुनाथजीके उदार चरितोंका परिचय देचुकेहैं परन्तु यह वह संहिताहै जिससे स्वयं महाराज रामचंद्रने अपने पुत्रोंके मुखसे श्रवण कियाहै गायत्रीके २४ अक्षरोंपर प्रत्येक अक्षरकी सहस्र श्लोकोंमें महिमा वर्णन कर महर्षिने सगुण ब्रह्मका निरूपण कियाहै, यद्यपि इसके अनुवाद करनेका बहुत कालसे मनोरथ था, परन्तु गुणग्राहक न मिलनेसे यह अ-भिलाषा मनहीं मनमें रही, जबकि गुणिगणमण्डलीमण्डन सज्जनमनरंजन वेङ्कटेश्वर यंत्राधीश, वैश्यवरिष्ठ, श्रीकृष्णदासात्मज खेमराजजीने इसमें पूर्ण कृतज्ञता दिखा-कर इसके भाषान्तर करनेमें पूर्ण उत्साह दिया. तब उनकी उत्तेजनासे मैंने प्रति श्लोक प्रतिचरण प्रतिपदकी भाषाकर अनुवाद कियाहै वेङ्कटेश्वर यंत्रालयकी उत्तमताको सब जानतेहैं, जो ग्रंथ इस यंत्रालयसे निर्गत होताहै वह कैसा सुन्दर होताहै अतएव यह रामायण सर्वांगसुन्दर इसी यंत्रालयमें मुद्रित हुई है जहां कहीं संस्कृत टीकाकारने अधिक लिखाहै इसमेंभी अनुवादकर वह विषय लिख दियाहै, और बडी सावधानीसे अनुवाद किया गयाहै, तथापि जहां कहीं, कुछ त्रुटि रहगई हो उसे सज्जन महात्मा क्षमाकर मेरे परिश्रमको सफल करें.

हमारे छोटे भ्राता बलदेवप्रसादने इस ग्रंथके निर्माण करनेमें बहुत कुछ सहाय-ता कीहै यद्यपि वह छोटेहैं तथापि उनको धन्यवाद दियेविना चित्तमें संतोप नहीं होता.

यह बहुत पुण्यमय ग्रंथ बहुत वडा होनेसे दो खंडोंमें विभक्त किया गयाहै प्रथम भागमें (बालका०—अयोध्याका०—आरण्यका०—और कि-ष्किन्धाकाण्डहै) एवम् दूसरे भागमें (सुन्दरका०—लंकाका०—और उत्तर काण्डहै.)

पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र.

मोहल्लादीनदारपुरा,

मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

सन्तु शतशो धन्य-
वादाः परोपकारनिरता
य सद्ग्रन्थप्रचारकाय गुणग्रा-
“श्रीवेङ्कटेश्वर” (स्टीम्)
यंत्राधीशाय श्रीकृष्णदासात्मजखेमराज
श्रेष्ठिने ... धनव्ययं स्वीकृत्य जगद्धिताय
परोपकाराय ऋषिमुनिप्रणीतप्राचीनग्रंथानां भाषानुवादं
कारयित्वा निजयंत्रालये मुद्रापयित्वा चास्मिन् भारते
वर्षे प्रचारः कृतः । उपर्युक्तस्य सद्गुणसम्पन्नस्यानुरो-
धात् विविधदानमानपरितुष्टचेतसा मया श्रीमद्वाल्मी-
कीयरामायणस्य “पीयूषधारा” नामकं
तिलकं कृत्वाऽस्य पुनर्मुद्रणाधिकारं
सर्वस्वत्वं च तस्मै
परब्रह्मतत्त्वचिरानंदसनातन
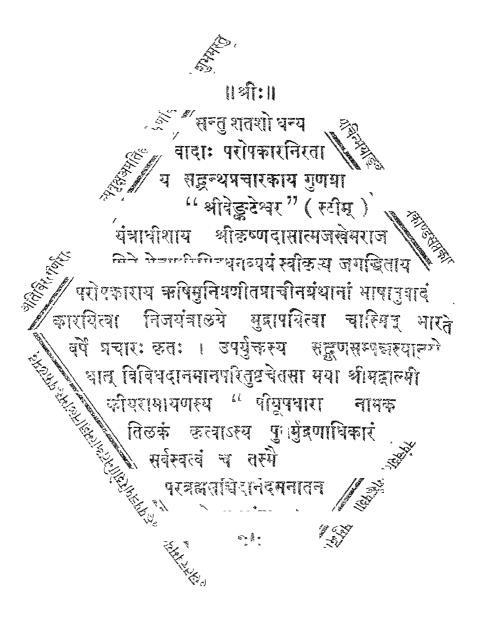
श्रेष्ठिनः श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजस्य
कीर्त्यायुर्लक्ष्मीसन्ततीनां वृद्धिं प्रार्थयामहे
ज्वालाप्रसादमिश्राः ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणभाषाविषयानुक्रमणिका ।

पूर्वखण्ड ।

सर्गसंख्या.	विषय.	पृष्ठ.

इति बालकाण्डम् ।

अथ अयोध्याकाण्डम् २.

इति अयोध्याकाण्डम् ।

अथ आरण्यकाण्डम् ३.

इत्यारण्यकाण्डम् ।

अथ किष्किन्धाकाण्डम् ४.

इति किष्किन्धाकाण्डम् ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ श्रीवाल्मीकीयरामायण माहात्म्य प्रारम्भ

अध्याय १.

श्रीरामःशरणंसमस्तजगतांरामंविनाकागतीरामेणप्रतिहन्यत
कलिमलंरामायकार्यंनमः ॥ रामात्त्रस्यतिकालभीमभुजगो
रामस्यसर्वंवशेरामेभक्तिरखंडिताभवतुमेरामत्वमेवाश्रयः ॥१॥

दोहा—विधि हरि हर गणपति गिरा, गौरि भवानि मनाय ॥ करत महातमको तिलक, कीजे आय सहाय॥१॥

रामचंद्रही समस्त जगत्के शरण देनेवालेहैं, रामके विना दूसरी गति नहीं है, रामके ही नामसे सम्पूर्ण कलिमल नाश होतेहैं, रामहीको नमस्कार करना योग्यहै, कालरूपी भयंकर सर्प राममेही भयभीत होताहै, रामहीके वशमें सब कुछहै, मेरे रामही आश्रयहैं, और मैं रामचंद्रमेंही अखण्ड भक्ति चाहताहूं ॥ १ ॥ लक्ष्मीके आनंद देनेहारे चित्रकूट पर्वतमें विहार करनेवाले भक्तोंके अभय देनेवाले परमानंद स्वरूप रामकी मैं वंदना करताहूं ॥ २ ॥ जिनके अंशसे ब्रह्मा विष्णु महेश लोककी उत्पत्ति पालन संहार करतेहैं उन परम विशुद्ध आदिदेव रघुनाथजीका मैं भजन करताहूं ॥ ३ ॥ ऋषिबोले हे सूतजी जो कुछ हमने आपसे पूछा वह सबही आपने वर्णन किया, परन्तु संसारके पाशमें बंधे हुओंको बडे २ दुःख होतेहैं ॥ ४ ॥ इन संसारके पाशोंका उच्छेद किस प्रकारसे हो सकताहै, और आपने कहाहै कि कलियुगमें वेदोक्त मार्ग नष्ट हो जायगा ॥ ५ ॥ अधर्मी पुरुषोंके निमित्त बडे २ दुःख वर्णन किये घोर कलियुगके प्राप्त होनेपर वेदमार्गके नष्ट होनेपर ॥ ६ ॥ जिस प्रकारसे पाखंड फैल जायगा, वह सब कुछ आप कहही चुकेहैं, कि कामके वशीभूत छोटी देहवाले लोभी परस्पर द्वेषी ॥ ७ ॥ बहुधा धनहीन, इस प्रकारके मनुष्य कलियुगमें उत्पन्न होंगे, स्त्री अपनीही पालना करेंगी, और वेश्यारूप यौवन संपन्न होंगी ॥ ८ ॥ स्त्री अपने पतिका कहना न मानकर सदा दूसरोंके घरोंमें निवास करेंगी, दुष्ट स्वभाव दुष्ट शील सदा दूसरोंसे विरोध करेंगी ॥ ९ ॥ कुलकी स्त्री पुरुषोंमें भय रहित रहेंगी और कठोर वचन झूठ भाषणमें तत्पर शुद्धता रहित ॥ १० ॥ बहुत बोलने हारी कलियुगमें स्त्रियें होंगी, भिक्षुक लोक कुटुम्ब मित्रोंके स्नेहोंमें फँसे रहेंगे ॥ ११ ॥ अनेक उपाधियोंसे भरे धन लेकर शिष्योंपर कृपा करने हारे, अनेक

पाखंडकी बातें बनानेवाले, पाखंडियोंके साथी ॥ १२ ॥ इस प्रकारके जब ब्राह्मण होंगे तभी कलियुगकी वृद्धि होगी, ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न होकर शिखा और सूत्र (यज्ञोपवीत) को त्यागन कर देंगे ॥ १३ ॥ हे सूतजी उनका उद्धार किस प्रकार होगा, सो कहो क्योंकि कलियुगमें राक्षस ब्राह्मणकी योनियोंमें जन्म लेकर ॥ १४ ॥ भगवत् धर्ममें विरोधकर आपसमें द्वेष करेंगे कहेंगे "पूजा मत करो, श्राद्ध मतकरो, ईश्वरका नाम मतलो, नियोग करो" इस प्रकार ईश्वरधर्म रहित और अनुष्ठान रहित ब्राह्मण होंगे ॥ १५ ॥ कलियुगमें ब्राह्मण बंडी वास्कट पहरे और मुँडासा बांधे फिरेंगे हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार घोर कलियुगके आनेसे पापी मनुष्य ॥ १६ ॥ जिनके मन शुद्ध नहीं हैं उनका उद्धार कैसे होगा, क्योंकि उस समय वह शूद्रके हाथका जल और शूद्रके यहांका पक्वान्न तक भोजन करेंगे ॥ १७ ॥ इन शूद्रके अन्न खानेवालोंका उद्धार कैसे होगा, इनके ऊपर देव गुरुनारायण कैसे संतुष्ट होंगे ॥ १८ ॥ हे करुणासागर सूतजी ! हमसे आप यह सब सुनाइये ॥ १९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ सूतजी ! हमारी तुष्टी आपके वचनामृतसे किसी प्रकार नहीं होती ॥ २० ॥ सूतजी बोले हे ऋषियो ! सुनो हम तुम्हें सब सुनातेहैं, जो कुछ महात्मा नारदजीने सनत्कुमारसे कहाहै ॥ २१ ॥ महाकाव्य रामायण जो सम्पूर्ण वेदार्थसम्मतहै यही सब पापका दूर करनेवाला और दुष्ट ग्रहकाभी निवारण करने हाराहै ॥ २२ ॥ दुःस्वप्नका नाशक, यश दायक, भुक्तिमुक्तिके फलका देनेहारा और सबही कल्याण सिद्धिका देनेहारा रामचंद्रके गुणोंसे युक्त है ॥ २३ ॥ धर्म अर्थ काम मोक्षके म[illegible]फलका देनेहारा यहीहै, यह अपूर्व पुण्योंके फलका देने हारा है, आप सावधान होकर सुनिये ॥ २४ ॥ चाहै महापातक वा पातक लगाहो इस दिव्य आर्ष काव्यको सुनतेही शुद्ध हो जाता है ॥ २५ ॥ जो सज्जन रामायणके श्रवण और पाठमें प्रवृत्त होतेहैं, वेही कृतकृत्य और सब शास्त्रार्थके जाननेवाले हैं ॥ २६ ॥ हे ब्राह्मणो ! धर्म अर्थ काम मोक्षका यही साधन है कि सदा भक्तिपूर्वक रामायण को श्रवण करें ॥ २७ ॥ जिसके पूर्व जन्मोंके पाप नष्ट हो जातेहैं, तब उसकी रामायणमें अवश्य प्रीति होती है ॥ २८ ॥ जब रामायण विद्यमानहै तो महापापसे युक्त पुरुष और ग्रंथ छोड़ इसमें अपना मन लगावें ॥ २९ ॥ इस कारणसे हे ऋषियो ! इस रामायणही परम काव्यको सुनना उचितहै इसके श्रवण करनेसे वारंवार जन्म और जराका नाश होकर मनुष्य दोषरहित और अच्युत होजाताहै ॥ ३० ॥ यह वरदायक काव्य जिसने कि अपनी कान्तिसे सब लोकोंको प्रकाशित कर रक्खाहै, यह संकल्पित अर्थ और आनंद दायक काव्यहै,

इसके सुन्नेसे मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा विष्णु शिव इन शरीरोंसे वही परमात्मा जगत्‌की उत्पत्ति पालन और संहार करतेहैं, उन्हीं आदि देव परब्रह्म परमेश्वरको हृदयमें धारणकर मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ३२॥ जो परमात्मा नाम जाति और कल्पना रहित परेसेपरे वेदान्त गम्य स्वप्रकाशमानहै वह सब पुराण जान्नेवालोंसे कथंचित् जाना जाताहै ॥ ३३॥ हे ब्रह्मणो ! कार्तिक माघ और चैत्र महीनेके शुक्लपक्षमें नव दिन इस काव्यको सुने ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जो इस उत्तम काव्य रामायणको श्रवण करतेहैं, वे इस लोक और परलोकमें सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होतेहैं ॥ ३५ ॥ उनके सातों कुल पवित्र हो जातेहैं, और साकेत लोकको प्राप्त होतेहैं, जहां जाकर मनुष्य किसी प्रकारके दुःखसे युक्त नहीं होता ॥ ३६ ॥ चैत्र माघ कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें नौ दिन नियमित हो इस ग्रंथको बांचे और नियमसे सुने ॥ ३७ ॥ यह आदि काव्य रामायण स्वर्ग और मोक्षका देनेहारा है, इस कारण घोर कलियुगमें जिसमें कि कुछभी धर्म नहीं है ॥ ३८ ॥ नौदिनतक रामायणरूपी कथामृत श्रवण करना चाहिये इस घोर कलियुगमेंभी जो ब्राह्मण रामायणके भक्त हैं ॥ ३९ ॥ वही मनुष्य कृतकृत्य हैं, कलियुग उनको किसी प्रकारकी बाधा नहीं देगा ॥ ४० ॥ हेमुनियो ! जब तक सम्यक् प्रकारसे मनुष्य रामायण नहीं श्रवण करते हैं, तभीतक देहमें पाप निवास करतेहैं॥ ४१॥ जबतक मनुष्य रामायणकी कथा श्रवण नहीं करतेहैं, दुःखसे नहीं छूटते लोकमें श्रीमद्रामायणकी कथा बड़ी दुर्लभहै॥४२॥करोड़ जन्मोंके पुण्योंसेही इसका सुन्ना मिलताहै कार्तिक चैत्र माघ शुक्ल पक्षमें इसका श्रवण करना उचितहै॥४३॥इस रामायणके श्रवणमात्रसेही सौदास राजा जो गौतमके शापसे राक्षस होगयेथे मुक्त होगये ॥ ४४ ॥ रामायणके प्रभावसेही उनकी मुक्ति हुई रामभक्तिपरायण होकर इससे भक्तिसे श्रवण करेंगे ॥ ४५ ॥ वह महापातक और अनगिन्त उपपातकोंसे छूट जांयगे ॥४६॥

श्रीस्कंदपुराणे उत्तरखण्डे नारद सनत्कुमार संवादे रामायणमाहात्म्ये पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाऽनुवादे प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

ऋषि बोले हे सूतजी ! किस प्रकारसे सनत्कुमारसे नारदजीने सम्पूर्ण धर्म रामायण संबन्धी कहेथे और उन दोनोंका समागम कहाँ हुआ ॥ १॥ हे सूत ! वह दोनों ब्रह्मवादी किस क्षेत्रमें स्थित होकर यह कथोपकथन करतेथे,हेसूत ! जो कुछ नारदजीने सनत्कुमारसे कहाथा वह आप हमें सुनाइये ॥ २ ॥ सूतजी बोले संनकादि

महात्मा ब्रह्माजीके पुत्रहैं, यह निर्मम निरहंकार और ऊर्ध्वरेतस हैं ॥ ३ ॥ उनके नाम सनक, सनंदन, सनत्कुमार और सनातन हैं॥४॥यह चारों महात्मा विष्णुभक्त और विष्णुके ध्यानपरायणहैं इनका प्रकाश सहस्र सूर्यकी समान और यह सत्यवंत तथा मुमुक्षुहैं ॥५॥ एक समय यह महातेजस्वी ब्रह्माके पुत्र सनकादि सुमेरु पर्वतपर ब्रह्माजीकी सभा देखनेको आये ॥६॥ वहां निर्मल नीर विष्णुके चरणोंमें उत्पन्न हुई गंगानदी जो वहां सीतानामसे विख्यातहै उसमें स्नान करनेको उद्यत हुए ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसी अवसरमें नारदजी नारायणका नाम उच्चारण करते वहां आये॥८॥ नारायण, अच्युतानंद, वासुदेव, जनार्दन, यज्ञेश, यज्ञपुरुष, राम, विष्णु, आपको नमस्कारहै॥९॥ इसप्रकार नारदजी भगवान्का नाम स्मरण करते सम्पूर्ण जगत्को पावन करते, लोकपावनी गंगाजीकी स्तुति करते उस स्थानमें आये ॥ १० ॥ नारदजीको आया देखकर महातेजस्वी सनकादिक अर्घ्यादिक देकर उनकी पूजा करते हुए, और नारदजीने उनकी पूजा की ॥ ११ ॥ उस समय सभाके बीचमें नारायणके भक्त नारदजीसे सनत्कुमारजी पूछने लगे ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे नारदजी ! आप पंडित और सर्वज्ञ हो,नारायणके भक्तोंमें तुमसे अधिक कोई नहींहै ॥ १३ ॥ यह तो कहिये जिस्से यह स्थावर जंगमात्मक जगत् उत्पन्न हुआहै, और जिनके चरणोंसे गंगाजी निकलीहैं वह नारायण किसप्रकार जाने जातेहैं॥ १४ ॥ यदि आप कृपा करते हैं तो तत्त्वसे यह कहिये नारदजी बोले परेसे परे रहनेहारे देवको नमस्कारहै ॥ १५ ॥ परेसे परे निवास करनेहारे सगुण निर्गुण ज्ञान अज्ञान धर्माधर्मस्वरूप ॥१६॥ विद्या अविद्या स्वरूप स्वस्वरूप ईश्वरके निमित्त नमस्कार है जो दैत्योंके मारने वाले नरकासुरके मारनेवाले जिन्होंने अपनी एक उंगलीपरही पर्वतको उठालिया ॥ १७ ॥ उन पृथ्वीके भार दूर करने हारे आनंद कर्ता रघुवंशके दीपक नारायणको नमस्कार करताहूं ॥ १८ ॥ जो वानरोंके सहित चारप्रकारसे उत्पन्न हुए, और राक्षसोंको मारा, उनको मैं भजन करताहूं, इस प्रकारके उन महात्माके अनेक चरित्रहैं ॥१९॥ उन चरित्रोंकी संख्या एक करोड़ वर्षमेंभी नहीं होसक्ती उनके नामकी महिमाके पार कोई नहीं होसक्ता ॥२०॥ मनुष्य मुनीश्वर किसीप्रकार पार नहीं पासके फिर मैं एक क्षुद्र क्या कहूं जिनके नाम श्रवण करनेसे महापातकी पापीभी ॥२१॥ पवित्र हो जातेहैं फिर मैं क्षुद्रबुद्धि किसप्रकारसे उनके गुण कहकर तुम्हें संतुष्ट करूं ॥२२॥ घोर कलियुगमें जो ब्राह्मण रामायणके भक्त होंगे, वही कृतकृत्यहैं, ऐसे ब्राह्मणोंको नित्य नमस्कारहै ॥२३॥ का-

लिक चैत्र माघ मासके शुक्लपक्षमें नौ दिनतक यह कथामृत श्रवण करना उचितहै ॥२४॥ राजा सौदासजो गौतमके शापसे राक्षस होगयाथा, इस रामायणके प्रभावसेही मुक्त हुआ ॥ २५ ॥ सनत्कुमार बोले सब धर्मोंके फल देनेहारी रामायण किसने कहीहै और गौतममुनिने किस प्रकारसे सौदास राजाको शाप दियाथा॥ २६॥ रामायणके प्रभावसे वह कैसे मुक्त हुआ, जो आप हमारे ऊपर कृपा और अनुग्रह करतेहो तो ॥ २७ ॥ हे मुनिराज यह सब कुछ आप सुनाइये, यह कथा कहने सुननेवालोंका पाप नाश करतीहै ॥२८॥ नारदजी बोले हे ऋषिजी वाल्मीकिजीकी बनाई रामायण कथा जो अमृतकी समानहै नौ दिन सुननी चाहिये ॥ २९ ॥ सतयुगमें धर्म कर्म विशारद एक धर्मपरायण सोमदत्त ब्राह्मणथे ॥ ३० ॥ इन ब्राह्मणने ब्रह्मवादी गौतम मुनिसे गंगाके किनारे अनेक धर्म सुने और उन्होंने पुराण शास्त्रकी कथासे इनको बहुत समुझायाभी ॥ ३१ ॥ इन ऋषिराजसे संपूर्ण धर्म श्रवण करके किसी समय वह ब्राह्मण परमेश्वर शंकरकी पूजा कर रहाथा ॥ ३२ ॥ उसी समय गौतमजीको आये देखकर इनको प्रणाम नहीं किया वह महातेजस्वी गौतमजी शांत स्वभाव थे ॥ ३३ ॥ यह विचारकर कि यह मेरे बताये हुएही कर्म करताहै प्रसन्न हुए परन्तु वह जगत्के गुरु महादेव जिनका वह पूजन कर रहेथे ॥ ३४ ॥ उन महादेवने गौतमके आनेसे और ब्राह्मणके अभिवादन न करनेसे इस गुरु निरादर करनेके पापसे उसे राक्षस हो जानेका शाप दिया ॥ ३५ ॥ तब वह ब्राह्मण हे सर्वधर्मज्ञ सर्वदर्शी देवेश्वर क्षमा करो, इस प्रकारसे नीतिपालक शिवजीकी करजोड स्तुति करने लगा ॥ ३६ ॥ हे भगवन् मेरे अपराधको क्षमा करिये, तब गौतमजीने उससे कहा कार्तिक शुक्लपक्षकी नौमीके दिन रामायण भक्ति और आदरसे श्रवण करो॥ ३७ ॥ कल्याण होगा बारहही वर्षमें तुम्हारा राक्षसपन नष्ट होजायगा ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण बोला हे गुरुजी ! मैं प्रीतिसे आपके चरण वंदन करके कहताहूं कि रामायण किसने बनाई, और उसमें किसका चरित्रहै ॥ ३९ ॥ हे महाप्राज्ञ ! यह सब संक्षेपसे मुझे सुनाइये, यह सुन गौतमजी बोले हे ब्राह्मण वाल्मीकिजीकी बनाई हुई रामायणहै॥ ४० ॥ इसके श्रवण करनेसे पापोंसे रहितहो फिर अपने स्वरूपकी तुझे प्राप्ति होगी, जिन्होंने राम अवतार लेकर रावणादि राक्षसोंको ॥ ४१ ॥ देवताओंके कार्यनिमित्त मारा, उनके चरित्र तू श्रवण कर, कार्तिकके शुक्ल पक्षमें रामायणकी कथा ॥ ४२ ॥ जो सब पापोंकी दूर करनेहारी है, नौ दिन सुननी चाहिये यह वचन कह समर्थ गौतमजी अपने आश्रमको चले गये ॥ ४३ ॥ और ब्राह्मण

बडे दुःखको प्राप्त होकर राक्षसी शरीरको प्राप्त हुआ भूंख प्याससे व्याकुल नित्य क्रोधित रहने लगा ॥ ४४ ॥ काले सांपकी समान भयंकरशरीर यह राक्षस निर्जन वनमें घूमने लगा वहां पर अनेक प्रकारके मृग मनुष्य सरीसृप ॥ ४५ ॥ पक्षी पशु कूदने हारा जीव (वानर) इनको खाने लगा, इनके पीले लाल शरीर और अस्थियोंके ढेरसे ॥ ४६ ॥ और विना मरोंके रुधिरसे इसने पृथ्वीको भयंकर कर दिया तीन ऋतुमें इसने सौ योजन विस्तारवाली पृथ्वीको ॥ ४७ ॥ दूषित किया फिर दूसरे वनमें गया और वहांभी नित्य मनुष्योंका मांस भक्षण करने लगा ॥ ४८ ॥ सब प्राणियोंको भय देनेहारा यह राक्षस नर्मदा नदीके किनारे आया उसी समय वहां कोई धर्मात्मा ब्राह्मण आया ॥ ४९ ॥ कलिंगदेशमें इसका जन्म गर्ग नाम था गंगाजलका कलश कंधेमें लिये परमेश्वरकी स्तुति करते ॥ ॥ ५० ॥ बडी प्रसन्नतासे रामके गुणानुवाद गाते उस स्थानमें मुनि आये सुदामा राक्षसने मुनिको आया देखकर कहा ॥ ५१ ॥ आज हमारे भोजनके करनेको यह आया ऐसा कह भुजा उठायकर दौडा, परन्तु उनके उच्चारण किये नामको सुनकर दूरही खडा होगया ॥ ५२ ॥ और उस ब्राह्मणके मारनेको समर्थ न होकर वह राक्षस कहने लगा हे महाभागी महामुनि आपको नमस्कार है ॥५३॥ नामस्मरणके माहात्म्यसे राक्षसभी आपसे दूररहते हैं मैंने पूर्वकालमें सहस्रों करोड ब्राह्मण भक्षण कर लिये ॥ ५४ ॥ परन्तु हे ब्राह्मण यह ईश्वरके नाम तुम्हारी महाभयसे रक्षा करते हैं हे प्रभो ! नामस्मरण करतेही हम राक्षसभी तो ॥ ५५ ॥ महाशांतिको प्राप्त हुए, उन नारायणकी महिमा कैसी होगी, हे बडभागी ! हम जान्तेहैं कि आप सब प्रकारसे रागादि दोषरहितहैं ॥ ५६ ॥ रघुनाथजीकी कथाके प्रभावसे मुझेभी इस अधमपनसे छुडाओ हे मुनिराज ! पूर्वकालमें मुझसे गुरुका तिरस्कार होगया था ॥ ५७ ॥ पीछे गुरुने कृपा करके मुझसे यह कहा कि पूर्वकालमें जो रामायण वाल्मीकिजीने बनाई है ॥ ५८ ॥ उसे तू कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें सावधानीसे श्रवण करना, यह कह फिर गुरुजी सुन्दर वचन बोले ॥ ५९ ॥ यह रामायण कथामृत नवदिनपर्यन्त श्रवणकरना, इसकारण हे सम्पूर्ण शास्त्रार्थके जान्नेवाले ॥ ६० ॥ कथा सुनानेमात्रसे हमारी इस पापसे रक्षा करो, नारदजी बोले जब इसप्रकार राक्षसने रामका उत्तम माहात्म्य वर्णन किया ॥ ६१ ॥ तब सुनकर वह ब्राह्मण बडा विस्मित हुआ, तब वह राम नाम परायण ब्राह्मण अत्यन्त कृपा करके ॥ ६२ ॥ सुदाम नाम राक्षससे इस प्रकार

वचन बोले ब्राह्मणने कहाकि हे महाभागी राक्षस ! तुम्हारी मति बडी विमल है ॥ ६३ ॥ इस कार्तिकके शुक्लपक्षमें रामायणकी कथा श्रवण कर अत्यन्त भक्तिसे रामका माहात्म्य सुन ॥ ६४ ॥ रामके ध्यान करनेवालोंको कोईभी बाधा करनेको समर्थ नहीं है जहां राम भक्तहैं, उसी स्थानपर ब्रह्मा विष्णु शिव निवास करतेहैं ॥ ६५ ॥ उसीस्थानमें देवता सिद्ध और रामभक्त निवास करतेहैं, इस कारण कार्तिकशुक्लपक्षमें रामायण सुन ॥ ६६ ॥ नौदिनतक सावधान होकर श्रवण-कर कथा श्रवण करतेही उसका राक्षसपन दूर हो गया ॥ ६७ ॥ और वह राक्षसभावको त्यागकर देवताकी समान हो गया, और वह करोडों सूर्यकीसमान देवतामें उत्तम स्वरूपवान होगया ॥६८॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथमें लिये रामचंद्रभी उस स्थानमें आये और ब्राह्मण उनकी स्तुतिकर वैकुंठलोकको गया ॥ ६९ ॥ नारदजी बोले हे ब्राह्मणो ! इसकारण कार्तिक शुक्ल पक्षमें नवदिनतक रामायण जो अमृतकी समानहै कहनी सुननी चाहिये ॥ ७० ॥ जिनके नामस्मरण करतेही मनुष्य करोडों पापोंसे छूटकर परमगतिको प्राप्त होताहै 'रामायण' यह शब्द जो एकवारभी उच्चारण किया जाय तो ॥७१॥ उसी समय पापरहित होकर मनुष्य अन्तकालमें विष्णुलोकको जाताहै जो मनुष्य इस आख्यानको पढते या भक्तिसे श्रवण करतेहैं, उनको निश्चय गंगास्नानके पुण्यका फल प्राप्त होताहै॥७२॥ इति श्रीस्कंदपुराणे उत्तरखण्डे नारद-सनत्कुमारसंवादे रामायणमाहात्म्ये राक्षसविमोचनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

सनत्कुमारजी बोले; हे नारदजी ! यह आपने बहुत उत्तम वार्ता कही, औरभी आप विस्तारसहित रामायणका माहात्म्य कहिये ॥ १ ॥ आप और महीनोंका व्रत माहात्म्यभी सुनाइये, आपके वचनसे हमारी तृप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ नारदजी बोले निःसंदेह तुम सब महाभाग्यवान और कृतार्थहो, इसमें संदेह नहीं जो रामचंद्रकी महिमा श्रवण करनेको उद्यतहो ॥ ३ ॥ जिन रामचंद्रके माहात्म्यका सुनना बडे २ ज्ञानी महात्माओंने दुर्लभ मानाहै ॥ ४ ॥ हे ऋषियो ! एक अद्भुत प्राचीन इतिहास श्रवण करो, जो संपूर्ण पाप और सम्पूर्ण रोगोंका नाश करनेहाराहै ॥५॥ पहले द्वापरमें एक सुमति नाम राजाथा, जो चंद्रवंशमें उत्पन्न और सब भूमंडलका अधिपतिथा ॥६॥ वह धर्मात्मा सत्यसागर सब सम्पत्तियोंसे पूर्ण सदा रामकी कथा सुनने और पूजन करनेहाराथा ॥७॥ अहंकाररहित हो रामभक्तोंकी शुश्रूषा करता पूजनीयोंकी पूजा करता, समदर्शी और गुणयुक्तथा ॥८॥ सब प्राणियोंका हितकारी

शान्त कृतज्ञ कीर्तिमान् था इसी प्रकार उसकी भार्याभी सबलक्षणसम्पन्नथी॥ ९ ॥ वह पतिव्रता पतिको प्राणोंकी समानप्यारी, सत्यवती नाम युक्तथी यह दोनों स्त्री पुरुष सदा रामायण सुनते॥ १० ॥ अन्नदान जलदान करते असंख्य सरोवर बावड़ी और कुयें इन्होंने बनवाये ॥ ११ ॥ इस प्रकार यह बड़भागी राजा बड़े प्रेमसे कभी रामायण पढ़ते, और कभी सुनतेथे, मनमें बड़ी भक्ति धारण करते ॥ १२ ॥ इसप्रकारसे धर्मपरायण रामभक्त राजाकी रानी सत्यवतीभीथी, सदा उसकी देवता बड़ाई करते॥ १३ ॥ वह दोनों स्त्री पुरुष भक्तिके कारण त्रिलोकीमें विख्यात होगये, एक समय उनके देखनेको बहुत चेलों सहित विभांडक ऋषि आये॥ १४ ॥ विभांडकको आते देख पुरवासियों और अपनी भार्यासहित राजा उनके निकट गये, और उनकी बड़ी पूजा की॥ १५ ॥ उनका अतिथि सत्कारकर आसनपर बैठाया, और उनसे नीचे आसनपर बैठ वह राजा हाथ जोड़कर कहने लगे ॥ १६ ॥ हे भगवन्! आपके इस स्थानपर पधारनेसे मैं कृतकृत्य हूं संत कहतेहैं सत्पुरुषोंका आगमन बड़े भाग्यसे होताहै ॥ १७ ॥ जहां बड़े पुरुषोंका प्रेम होताहै, वहीं सब संपत्तिभी होतीहैं, वहीं तेज कीर्त्ति और धन होताहै इसप्रकार पंडित कहतेहैं ॥ १८ ॥ हे मुनिराज ! वहां ही प्रतिदिन कल्याण वृद्धिको प्राप्त होतेहैं, वहीं बडे सज्जन पुरुष आकर कृपा करतेहैं ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो ब्राह्मणके चरणोंका जल अपने मस्तकपर धारण करतेहैं; वह बडे पुण्यात्मा हैं, और निश्चय सब तीर्थोंमें स्नान कर चुके ॥ २० ॥ मेरे पुत्र स्त्री धन सम्पत्ति सब आपहीकी है, हे शांत स्वरूप मुनिराज ! आज्ञा दीजिये हम आपका कौन प्रिय कार्य करें॥ २१ ॥ मुनिराज राजाका इसप्रकार विनय देख हाथ से राजाको स्पर्शकर, बड़ी प्रसन्नतासे बोले ॥ २२ ॥ ऋषि बोले, राजन् ! जो कुछ तुमने कहाहै वह सब तुम्हारे कुलके उचितही है, विनयी पुरुष परमकल्याणको पातेहैं ॥ २३ ॥ हे राजन् तुम सत्मार्गमें चलतेहो, इस कारण मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं, हेमहाभाग ! तुम्हारा मंगलहो जो मैं तुमसे पूछताहूं सो कहो ॥ २४ ॥ नारायणके संतोष करनेहारे बहुत पुराण विद्यमान हैं, और तुम रामायणके भक्त माघमासमें अधिक अनुष्ठान करते हो तुम्हारी यह भार्या भी नित्य रामचंद्रके ध्यानमें रहतीहै यह क्या बातहै वह सब वृत्तान्त हमें सुनाओ ॥ २५ ॥ २६ ॥ राजा बोले हे भगवन् ! यह जो आपने पूछाहै सो मैं सब वर्णन करता हूं हे मुनि ! हमारा चरित्र लोकोंको आश्चर्यदायक है मैं प्रथम जन्ममें मालिनी नाम शूद्रथा नित्य कुमार्गगामी सब लोकोंका अहितकारीथा ॥ २७ ॥ २८ ॥ चुगल, धर्मद्वेषी, देवताओंका द्रव्य हरनेनेहारा, महापातकियोंके निकट रहनेहारा दे-

वक्रव्यसेही जीविका करनेहारा गोघाती ब्रह्महत्यारा चोर नित्य प्राणियोंका वध करनेहारा नित्य निष्ठुरभाषी पापी वेश्यापरायण ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह सब मैं आचरण करताथा इस प्रकार मुझे देख बडे पुरुषोंने समझाया जब मैंने उनका वचन न माना इसपर उन्होंने मुझे त्यागन कर दिया तब मैं दुःखी हो वनमें चला आया ॥ ३१ ॥ वनमें नित्य मृग मांस खाता मार्ग लूटता एकाकी बडे दुःखसे मैं उस वनमें रहताथा ॥ ३२ ॥ एक समय भूंखसे व्याकुल श्रमी, निद्राके आनेसे दुःखी प्यांसा होकर मैंने निर्जन वनमें वशिष्ठजीका आश्रम देखा ॥ ३३ ॥ वहां मैंने हंसकारण्डव पक्षियोंसे सेवित उसके समीपमें बडा सरोवर देखा उसके चारों ओर वन और बहुतसे मुनिजन वहां वास करतेथे ॥ ३४ ॥ उस सरोवरके तटमें श्रमरहित हो मैंने जल पिया और वृक्षोंके फल तोडकर मैंने क्षुधा निवारण की ॥ ३५ ॥ और उस वशिष्ठजीके आश्रममेंही मैंने निवास किया वहां मैंने टूटे फूटे स्फटिकोंको इकट्ठा करके ॥ ३६ ॥ पत्ते तृण और काष्ठोंसे अच्छी प्रकार घर बनाया और व्याधेके कर्मकर बहुत प्रकारके पशुओंको मारकर ॥ ३७ ॥ आजीवका करके बीस अवतारतक निवास करा उसी समय विंध्यदेशसे यह साध्वी आयकर प्राप्तहुई ॥ ३८ ॥ इसका जन्म निषाद कुलमें था कालीनाम कुटम्बियोंसे त्यागी हुई दुःखित शरीर ॥ ३९ ॥ भूंख प्याससे व्याकुल अपने कर्त्तव्यकर्मका सोच करती दैवयोगसे यह उस निर्जन वनमें आनकर प्राप्त हुई ॥ ४० ॥ ग्रीष्म कालमें धूपसे व्याकुल इस दुखियाको देखकर मुझे करुणा उत्पन्न हुई ॥ ४१ ॥ मैंने इसे जल मांस और वनके फल दिये हे मुनिराज! जब यह भोजन कर श्रमरहित हुई तब यथातथ्य ॥ ४२ ॥ इसने अपना वृत्तान्त मुझे सुनाया सो आप सुनिये काली नामवाली निषादकुलमें उत्पन्न हुई ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह दाविककी कन्याथी जो विंध्यपर्वतपर रहताथा, यह नित्य पराया धन हरती; और चुगली करतीथी ॥ ४४ ॥ इसने अपने पतिको मारडाला इस कारण कुटुम्बियोंने इसे त्यागन करदिया, हे ब्रह्मन् ! तब यह निर्जन वनमें मेरे समीप आई ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसे इसने अपना कर्म मुझसे सुनादिया, वशिष्ठके सुन्दर आश्रमके निकटही यह और मैं ॥ ४६ ॥ वनके जीवोंका मांस खाते पति भार्याके भावसे निवास करनेलगे, एक समय मैं उच्छिष्ट लेनेके निमित्त वसिष्ठके आश्रमके निकट गया ॥ ४७ ॥ वहां मैंने देवता और ऋषियोंका समाज देखा, माघमासमें वहां प्रतिदिन रामायण होतीथी श्रोता प्रेम भक्तिसे सुनतेथे ॥ ४८ ॥ उस समय हम दोनो निराहार भूंखप्याससे व्याकुल थकेहुए वशिष्ठके आश्रमके निकट बैठगये ॥ ४९ ॥ नौंदिनतक रामायणकी कथा

वैसेही बैठे सुन्ते रहे, हे मुनिराज ! उसी समय हमारा दोनोंका शरीर छूट गया ॥ ५० ॥ इस कर्मसे हमारे भगवान मधुसूदन प्रसन्न हुए, और इस भार्याके सहित मेरे लेनेको दूतोंको भेजा ॥ ५१ ॥ वह हम दोनोंको विमानपर चढाय परमपदको ले गये जब हम देवदेव चक्रधारी नारायणके समीप पहुंचे ॥ ५२ ॥ तब करोड हजार और करोड सौ युग हमने स्वर्गलोकमें अनेक प्रकारके भोग भोगे ॥ ५३ ॥ रामके भवनमें इतने काल रहकर फिर ब्रह्मलोकको गये, उतनेही समय वहांपरभी निवास किया ॥ ५४ ॥ वहांसे शिवलोकको जाय और उतनाही काल बिताय अनेक सुख भोग अब यहां पृथ्वी लोकके राजा हुएहैं ॥ ५५ ॥ यहांभी रामायणके प्रतापसे हमारे अतुल संपत्तिहै, हे मुनिराज ! यह सब वस्तु हमें अनिच्छासेही प्राप्तहैं ॥ ५६ ॥ हे ब्रह्मन् ! जन्म मृत्यु जराकी नाश करनेहारी अमृत समान रामायणकी कथा भक्तिसे नौ दिनतक श्रवण करनी चाहिये ॥ ५७ ॥ हे मुनीश्वर रामायणके प्रभावसे परवश किये कर्मभी मनुष्योंको बहुत फल देतेहैं ॥ ५८ ॥ नारदजी बोले विभांडक ऋषि राजासे यह सब कथा श्रवणकर राजाको अभिवादनकर अपने तपोवनको गये ॥ ५९ ॥ इस कारण हे ब्राह्मणो ! कामधेनुकी समान चक्रधारी जनार्दनके गुणोंसे युक्त रामायण कथा अवश्य सुननी चाहिये ॥ ६० ॥ माघमासके शुक्लपक्षमें भक्तिपूर्वक नौ दिन रामायण सुननेसे सब धर्मोंके फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६१ ॥ जो कोई सब पापोंकी दूर करनेहारी इस पवित्र कथाको श्रवण करते हैं, या बाँचतेहैं उनकी रामचंद्रमें भक्ति होतीहै ॥ ६२ ॥ इति श्री स्कंदपुराणे उत्तरखण्डे नारदसनत्कुमारसंवादे रामायणमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

नारदजी बोले हे मुनीश्वरो!सावधान होकर सुनो, और महीनोंमेंभी इसके श्रवण करनेसे सब पाप और दुःख दूर होतेहैं॥ १ ॥ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्री सबकी सब कामना पूर्ण करने और सब व्रतोंका फल देनेहारी रामकथाहै ॥ २ ॥ दुस्स्वप्नका नाशक और धनधान्य भक्ति मुक्तिका दाता रामायणका माहात्म्य सावधान होकर सुन्ना चाहिये॥ ३ ॥जिसप्रकार इसके पढने सुन्नेसे सब पाप दूर होतेहैं इस विषयमें हम एक पुरातन कथाका उदाहरण कहतेहैं ॥ ४ ॥ एक कलिक नाम लुब्धक विंध्याचलके वनमें रहताथा,वह सदा पराई स्त्री और पराया द्रव्य हरण करता॥ ५ ॥सदा पराई निंदा करता, जीवोंको दुःख देता था,उसने सहस्रों गौ ब्राह्मणोंका घात कियाथा॥ ६ ॥ सदा देवताओंका तथा दूसरोंका द्रव्य हरताथा,इस प्रकारके उसने अनेक बड़े२पाप किये॥ ७ ॥जो

करोड वर्षमेंभी न कहे जाय, किसी समय जन्तुओंको कालकी समान वह ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्य युक्त सौवीर नगरमें आनकर प्राप्त हुआ, जहां वस्त्रालंकार पहरे अनेक स्त्री और निर्मल नीरके अनेक सरोवर विद्यमानथे ॥ ९ ॥ सुन्दर बजारोंसे शोभायमान वह देवनगरकी समानथा, उसके उपवनमें एक बडा शोभायमान नारायणका मंदिरथा ॥ १० ॥ जिसके ऊपर सोनेके कलश चढेथे, यह देख वह व्याधा बडा प्रसन्न हुआ कि यहां हीरे मोती और सोना बहुत होगा, यह निश्चय किया ॥ ११ ॥ धन चुरानेकी इच्छासे वह राम मंदिरमें गया वहां एक शांत तत्त्वज्ञानी ब्राह्मणको उसने देखा ॥ १२ ॥ जिनका नाम उत्तंक नारायणकी सेवामें तत्पर इकले इच्छा रहित दयालु ध्यानमें लवलीन ॥ १३ ॥ इनको इसप्रकार देखकर लुब्धकने विचारा कि यही हमारी चोरीमें बाधा करेगा, इसकारण रात्रिमें इसे मार चोरी करेंगे ॥ १४ ॥ तब महा गर्वसे तलवार हाथमें ले मारनेको दौडा पैरसे छाती दाब, और उन ऋषिके बाल हाथसे पकडे इसप्रकार मारनेको उद्यत उस व्याधसे उत्तंक बोले ॥ १५ ॥ उत्तंक बोले, हे साधु तू निरपराध हमें क्यों मारताहै, हे लुब्धक ! हमने तेरा क्या अपराध कियाहै संसारमें अपराध करनेवालेहीको मारतेहैं ॥ १६ ॥ हे सौम्य सज्जन पुरुष निरपराध किसीको नहीं मारते॥ १७ ॥ और विरोधी मूर्खोंमेंभी गुण देखकर शान्त तेजस्वी सज्जन किसीसे विरोधन नहीं करते ॥ १८ ॥ बहुत प्रकारसे क्रूर वचन सुनकरभी जो मनुष्य शान्ति करै, उसी उत्तम मनुष्यको नारायणका भक्त कहतेहैं ॥ १९ ॥ पराया हित करनेवाले सज्जन पुरुष विनाशकाल उपस्थित होनेसेभी किसीके संग वैर नहीं करते, चंदन अपने काटनेवाले कुल्हाडेकाभी मुख सुगंधित कर देताहै ॥ २० ॥ अहो प्रारब्धही बलवानहै जो मनुष्योंको बाधा देतीहै, उससेंभी संसारके दुर्जन साधुओंकोही अधिक पीडा देतेहैं ॥ २१ ॥ मृग मीन सज्जन जो कि तृण और जल और संतोषके भोजनसेही संतुष्ट रहतेहैं उनसेभी जगतमें लुब्धक धीवर और चुगल निष्प्रयोजन वैर करतेहैं ॥ २२ ॥ अहो माया बडी बलवान्है जिसने इस सब जगतको अधिक मोहितकर दियाहै, पुत्र मित्र कलत्र सबही दुःखकी खानहैं ॥ २३ ॥ जो स्त्री पराये द्रव्य हरणकर पुष्ट की हैं, अन्तमें वह सब छोडकर इकलेही जाना होताहै ॥ २४ ॥ मेरी मा मेरा पिता मेरी स्त्री मेरे पुत्र यह सब मेराहै, प्राणियोंको यह वृथा ममताही दुःख देतीहै ॥ २५ ॥ जबतक द्रव्य उत्पन्न करके लाताहै तभीतक कुटुम्बके लोग साथीहैं परन्तु यथार्थमें यहां और दूसरे लोकमें धर्म और अधर्मही साथीहै ॥ २६ ॥ उत्पन्न किये हुए ध-

नकूं सदा कुटुम्बीही भोगतेहैं, परन्तु इसके उपार्जनका पाप यह मूर्ख इकलाही भोगताहै ॥ २७ ॥ ऋषिके यह वचन सुनकर और विचार कर वह कलिक लुब्धक भयभीतहो हाथ जोड बार २ कहने लगा, हे मुनिराज ! क्षमा करिये क्षमा करिये ॥ २८ ॥ उनकी संगति और नारायण मंदिरमें स्थितिके प्रभावसे वह लुब्धक पापरहितहो अत्यन्त पछतानेलगा, और बोला ॥२९॥ हे ब्राह्मण ! मैंने बहुत कुत्सित कर्म कियेहैं, वह सर्व आज आपके दर्शनके प्रभावसे नष्ट होगये ॥३०॥ हे स्वामी ! मैंने नित्य पाप और महापाप कियेहैं, किसकी शरणमें जानेसे किसप्रकार उनसे छुटकारा होगा ॥ ३१ ॥ पहले जन्मके पापसे तो मैं लुब्धक हुआ, अब यहांभी अनेक पाप करनेसे मैं किस गतिकूं प्राप्तहूंगा ॥ ३२ ॥ इसप्रकार महात्मा कलिकके वचन सुनकर उत्तंक नामक विप्रर्षि उस्से कहने लगे ॥ ३३ ॥ उत्तंकजी बोले धन्य धन्य कलिक तुम बडे बुद्धिमान हो जो तुम्हारी मति ऐसी उज्ज्वल है जो संसारके दुःखोंके नाश होनेके उपायकी इच्छा करते हो ॥ ३४ ॥ तो चैत्र महीनेके शुक्लपक्षमें भक्ति भावसे आदर पूर्वक नौ दिनतक रामायणकी कथा सुनो ॥ ३५ ॥ इसके श्रवण मात्रसेही तेरे सब पाप नाश होजांयगे, उसी क्षणमें यह लुब्धक कलिक सब पापोंसे रहित होगया ॥ ३६ ॥ रामायणकी कथा सुनकर शीघ्रही शरीर त्यागन करदिया, उत्तंक लुब्धकको गिरा हुआ देख दयासे ॥ ३७ ॥ उसकी यह दशा देख विस्मित हो नारायणकी स्तुति करने लगे, और वह रामायणकी कथा सुन्नेसे पाप रहित हो दिव्य विमानमें चढकर मुनिराजसे कहने लगा ॥ ३८ ॥ कलिक बोला, हे मुनिशार्दूल उत्तंक सुव्रत ! तुम मेरे गुरुहो, आपहीके प्रसादसे मैं दुःख संकटसे मुक्त हुआहूं ॥ ३९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आपहीके प्रसादसे मुझे ज्ञानकी प्राप्ति हुई जिस्से शीघ्रही मेरे पापसमूह नष्ट होगये ॥ ४० ॥ हे मुनि रामायणकी कथा सुनकर तुम्हारे उपदेशसे मैं मुक्त हुआ हे भगवन् ! तुमनेही मुझे विष्णु भगवान्के परमपदको प्राप्त किया है ॥ ४१ ॥ हे करुणासागर गुरुजी आपने मुझे कृतकृत्य करदिया हे भगवन् ! मैं आपको प्रणाम करताहूं, आप मेरे कृत्यको क्षमा करना ॥४२ ॥ यह कह मुनिश्रेष्ठके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करके और तीन प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया ॥ ४३ ॥ पीछे सर्व कामना दायक विमानमें चढकर अप्सराओंसे सेवित वैकुंठ लोककूं चला गया ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस कारण चैत्रमासके शुक्लपक्षमें सावधानहो रामायणको सुनना चाहिये ॥ ४५ ॥ नौ दिनतक रामायणकी कथारूपी अमृत श्रवण करन

चाहिये, सबही ऋतुओंमें इसके सुन्ने और नारायणके पूजनसे कल्याण होताहै ॥ ॥ ४६ ॥ इसके श्रवण करनेसे मनके सबही मनोरथ पूर्ण होतेहैं, हे सनत्कुमार! जो कुछ आपने पूछा वह हमने सब सुनाया ॥ ४७ ॥ और अब रामायणके अन्य माहात्म्य सुन्नेकी इच्छा करते होतो बताओ ॥ ४८ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणोत्तरखण्डे नारदसनत्कुमारसंवादे रामायणमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

रामायणका माहात्म्य सुनकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए, और फिर मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे पूछने लगे ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे मुनिराज! आपने रामायणका माहात्म्य कहाहै, इस समय हम रामायणकी विधि सुनना चाहतेहैं ॥२॥ हे तत्त्वके जान्नेहारे महाभागी मुनीश्वर! यह विधिभी आप कृपा करकै सुनाइये ॥ ३ ॥ नारदजी बोले आप सावधान होकर रामायणकी विधि सुनिये, यह सम्पूर्ण लोकमें विख्यात और स्वर्ग मोक्षकी वृद्धि करनेहारी है ॥ ४॥ उसका विधान मैं कहताहूं, आप सावधान होकर सुनिये, जो रामायणकी कथा भक्ति भावसे कहलाते हैं ॥ ॥५॥ उनके जन्म जन्मान्तरके पाप नष्ट होजाते हैं, चैत्र माघ कार्तिकके शुक्लपक्षकी पंचमीसे सुन्नेका आरंभकरे ॥ ६ ॥ पुनः स्वस्तिवाचनपूर्वक संकल्प करे, पुनः नौ दिनतक रामायणकी कथा श्रवण करे ॥ ७ ॥ और कहै हे भगवन्! आजसे मैं आपकी कथा श्रवण करताहूं आपके प्रसादसे मैं प्रतिदिन पूर्णतासे श्रवण करूं ऐसी कृपा करो ॥ ८ ॥ अपामार्ग (चिंचिढा) की दतौन प्रतिदिन करे, पीछे रामका ध्यानकर विधि पूर्वक स्नान कर अपने बंधुओंके सहित जितेन्द्रिय हो कथा श्रवण करै ॥ ९ ॥ स्नान कर दंतधावनसे शुद्ध हो श्वेत वस्त्र धारणकर मौनता सहित स्थानमें आय ॥ १० ॥ चरण धोय आचमनकर प्रभु नारायणको स्मरण करे, संकल्पपूर्वक नित्य देवताओंका पूजन करके ॥ ११ ॥ भक्ति भावसे रामायणकी पुस्तकका पूजन करै, पीछे धूप दीप नैवेद्यकर आसन दे आवाहन करै ॥ ॥ १२ ॥ " ॐनमो नारायणाय " इस मंत्रसे भक्तिपूर्वक पूजन करे, एकवार दो वार तीन वार यथाशक्ति पूजन करै ॥ १३ ॥ फिर सब पापके दूर करनेके निमित्त होम करै, इस प्रकारसे जो नियमपूर्वक रामायणकी विधिको करै ॥ १४ ॥ वह विष्णु लोकको चला जाताहै. जहांसे फिर लौटकर नहीं आता, रामायणका व्रत धारण करनेवाला धर्मपूर्वक रहै ॥ १५ ॥ चण्डाल पतित इनके साथ बातभी न करै, नास्तिक, मर्यादारहित, निंदक चुगल ॥ १६ ॥ इनसे रामायणका व्रती बातभी न करै कुंडी वा हंडियामें खानेहार, तापक-तापदेनेहारे और देव द्रव्यके लेने

हारोंके यहां भोजन करनेहारे तथा वैद्य, कुत्सित काव्यकार देवता ब्राह्मणके विरोधी, परान्न भोजी, लोलुप, परस्त्रीमें रति करनेहारे ॥ १७ ॥ १८ ॥ रामायणके व्रतीको इनसे नौ दिनतक बात नहीं करनी चाहिये, इस प्रकार शुद्धतापूर्वक सबका हित करता हुआ ॥ १९ ॥ रामायणका भक्त परम सिद्धिको प्राप्त होताहै, गंगाकीसमान तीर्थ और माताकी समान गुरू नहीं है ॥ २० ॥ विष्णुकी समान देवता, और रामायणकी समान परम धर्म, वेदकीसमान शास्त्र और शांतिकीसमान सुख नहीं है ॥ २१ ॥ सूर्यकी समान ज्योति नहीं, और रामायणसे अधिक कुछ नहीं है, क्षमाकी समान सार और कीर्तिकीसमान धन नहीं है ॥ २२ ॥ ज्ञानकीसमान लाभ और रामायणसे अधिक कुछ नहीं है, श्रवण कर चुकनेपर वेदवादी बांचनेहारे पंडितकू दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २३ ॥ रामायणकी पुस्तक वस्त्र आभरण रामायण बांचनेहारेको जो देताहै ॥ २४ ॥ वह विष्णुलोकको जाताहै, जहां जाकर फिर शोच करना नहीं पडता, हे धर्मात्मन् ! आप इसके नौ दिन श्रवण करनेहारेको फल सुनिये ॥ २५ ॥ पंचमीके दिनसे राम कथामृत सुननेका आरंभ करे, श्रवण मात्रहीसे सब पाप दूर होजाते हैं ॥ २६ ॥ यदि दूसरे दिन इसी प्रकार सुने तो पुंडरीक यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है, तीसरी वार जितेन्द्रिय होकर व्रत धारणकर कथा सुननेसे ॥ २७ ॥ अश्वमेधयज्ञके दूने फलकी प्राप्ति होती है, हे मुनिश्रेष्ठ जिसने चौथे दिन सुनी ॥ २८ ॥ वह आठ अग्निष्टोमके किये पुण्य फलको प्राप्त होताहै, और जिसने पांचवां व्रत करके सुना ॥ २९ ॥ वह अति अग्निष्टोमके दूने फलको प्राप्त होताहै, और जो सावधानहो छठे दिन व्रतकर सुनता है ॥ ३० ॥ उससे अग्निष्टोम यज्ञका आठ गुणा फल होताहै, और जो व्रतधारी धर्मात्मा सप्तमवार सुने तो ॥ ३१ ॥ आठ गुणा अश्वमेध यज्ञके फलको पाताहै, हे मुनीश्वरो जो नारी या पुरुष आठवें दिन सुने ॥ ३२ ॥ उसको अश्वमेध यज्ञका पांच गुणा फल होताहै, रामभक्त मनुष्य इससे नव दिन श्रवण करनेसे ॥ ३३ ॥ गोमेध यज्ञके त्रिगुणे फलको प्राप्त होतेहैं जो शांत स्वभावसे जितेन्द्रिय रामायणकी कथा कहते हैं ॥ ३४ ॥ वह परमानंदको प्राप्त होतेहैं जहां जाकर फिर शोच नहीं करना पडता रामायण सुननेहारोंको गंगास्नान कर्त्तव्यहै ॥ ३५ ॥ धर्म मार्गके कथन करनेहारे निःसंदेह मुक्तहैं, हे ऋषिश्रेष्ठ! यति ब्रह्मचारी और दिगम्बरोंको ॥ ३६ ॥ नौ दिन कथा श्रवण करनी उचितहै राम कथाको श्रवण करनेसे और भक्तिसे प्रदीप्त हो ॥ ३७ ॥ यह प्राणी ब्रह्मलोकको प्राप्तहो ब्रह्माके साथ मुक्त होजाताहै सुनने योग्य यही परम वस्तुहै, पवित्रोंमें पवित्रहै ॥ ३८ ॥ दुःस्वप्न नाशक स्तुति

योग्य,यह रामायण यत्नसे सुननी चाहिये, जो मनुष्य श्रद्धासे एक श्लोक या आधा श्लोक॥३९॥ पाठ करताहै,वह करोडों उपपातकोंसे छूट जाताहै यह गुप्तसेभी गुप्त सत्पुरुषोंके निकट कहना चाहिये॥४०॥राममें प्रीति करके पुण्यक्षेत्र और सभामें इस ग्रंथका बांचना उचितहै, जो ब्राह्मण द्वेषी पाखंडाचारी ॥ ४१ ॥ बकलेकी समान व्रत करनेहारेहैं, उन पुरुषोंको यह कथा सुनानी उचित नहीं, जो कामादि दोष रहित रामभक्त ॥ ४२ ॥ गुरुभक्तिपरायणहैं उनसे यह मोक्ष साधन कथा कहनी चाहिये, रामचंद्रही सब देवताओंके स्वरूप हैं, अपने स्मरण करनेवालोंके दुःख दूर करतेहैं ॥ ४३ ॥ सद्भक्तोंके ऊपर वह नारायण कृपा करतेहैं, इसमें संदेह नहीं भक्तिसेही प्रसन्न होतेहैं, जो अवश्य होकरभी उनका नामका कीर्तन करते वा स्मरण करतेहैं ॥ ४४ ॥ वहभी पातकसे रहित हो परम पदको प्राप्त होतेहैं, संसाररूपी घोर वनकू नारायण दावाग्निकी समान हैं ॥ ४५ ॥ अपने स्मरण करनेवालोंके पापोंको वह शीघ्रही नाश कर देतेहैं, इस कारण इस पुण्यरूप काव्यका श्रवण करना उचितहै ॥ ४६ ॥ श्रवण पठन करनेसे यह सब पापोंका नाश करताहै, जिस पुरुषकी इस सरस कथामें भक्ति और प्रीतिहो ॥ ४७ ॥ वही कृतकृत्य और सम्पूर्ण शास्त्रार्थका जान्नेवालाहै, उसने जो कुछ पुण्य कियाहै उसका वह सफल है ॥ ४८ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसकी श्रवण करनेको जिस अर्थसे प्रीति होतीहै, वह कार्य उसका अन्यथा नहीं होता जो रामायणके सुन्नेहारे और रामके भक्तहैं॥४९॥हे ब्राह्मणो! वही इस घोर कलियुगमें कृतकृत्य हैं, जो रामकथामृतको नौ दिन कर्णपुटसे पान करतेहैं ॥५०॥वह महात्मा कृतार्थहैं, उन्हीके वास्ते नित्य नमस्कारहै, रामका नामही नामहै,यह नामही हमारा जीवन है॥५१॥संसारके विषयोंमें अंधे हुए पापात्मा मनुष्योंको कलियुगमें इस नामके सिवाय दूसरी गति नहींहै ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले महात्मा नारदजी इस प्रकार सनत्कुमारादिकोंको सम्यक् प्रकारसे माहात्म्य श्रवण कराय अत्यन्त शान्तिको प्राप्त हुए ॥ ५३ ॥ इस कारण हे ब्राह्मणो ! इस कथाकू श्रवण करनेसे प्राणी विष्णु लोकको जातेहैं जहांसे फिर आगमन नहीं होता ॥ ५४ ॥ इस घोर कलियुगमें रामायण परायणही सब पापरहित हो परमपदको प्राप्त होतेहैं ॥ ५५ ॥ इस कारण यह रामायण कथा सब पापोंके दूर करनेहारी नौ दिनतक सुननी चाहिये ॥ ५६ ॥ इस महाकाव्यको श्रवणकर जो वाचकका पूजन करै हे ब्राह्मणो उसके ऊपर लक्ष्मी सहित नारायणप्रसन्न होतेहैं ॥ ५७ ॥ वांचनेवालोंके प्रसन्न होनेपर ब्रह्मा विष्णु

महेश प्रसन्न होतेहैं, इसमें संदेह नहीं ॥ ५८ ॥ रामायणके बांचनेवालेको गौ वस्त्र सुवर्ण रामायणकी पुस्तक अपने वित्तके अनुसार देनी चाहिये ॥ ५९ ॥ जो ऐसा करतेहैं उनके पुण्य फलको आप श्रवण कीजिये, उनके घरोंमें भूत बेतालादि कोई बाधा नहीं करतेहैं ॥ ६० ॥ उनके सब मंगल वृद्धिको प्राप्त होतेहैं, अग्नि और चोरोंका भय उनके यहां नहीं होता ॥ ६१ ॥ करोडों जन्मके उत्पन्न किये पाप शीघ्रही नष्ट होजावेहैं, देहान्तमें वे सात कुल सहित मुक्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ ६२ ॥ यह नारदजीका विधान कहा हमने तुमसे सुनाया जो कुछ सनत्कुमारके पूछनेपर मुनिने भक्तिपूर्वक सुनायाथा ॥ ६३ ॥ इस रामायण आदिकाव्यमें वेदार्थका सम्मत है यह सब पाप दुःखका दूर करनेहारा और पुण्यरूपहै ॥ ६४ ॥ यही काव्य समस्त पुण्य और सब यज्ञोंका फलका देनेहाराहै, जो विद्वान् इसका एक या आधा श्लोक पढतेहैं ॥ ६५ ॥ उनको कभी पापबंध नहीं होताहै यह रामार्पण किया हुआ काव्य समस्त पुण्य और सब कामनाओंका देनेहारा है ॥ ॥ ६६ ॥ जो इसको भक्तिसे सुनते और गातेहैं उनके पुण्य फलको सुनो सौ जन्मके संचित किये पाप तत्कालहीमें छूट जाते हैं ॥ ६७ ॥ और सहस्र कुलके सहित वह परमपदको प्राप्त होतेहैं उसको तीर्थ गोदान तप यज्ञ करनेसे क्याहै ॥ ॥ ६८ ॥ जो प्रतिदिन रामकथाका कीर्तन सुनतेहैं, चैत्र माघ और कार्तिकमें रामकी अमृतसमान कथा ॥ ६९ ॥ नौ दिन सुननेसे सब पाप छूट जातेहैं, उनके ऊपर रामचन्द्रकी कृपा और रामभक्तिकी वृद्धि होतीहै ॥ ७० ॥ सब पापनाशक और सब संपत्तिका बढानेहारा यह ग्रंथहै; जो इसे सावधान होकर सुनते या पढतेहैं, वे सब पापोंसे रहित होकर विष्णुलोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्रामायणमाहात्म्ये नारदसनत्कुमारसंवादे पंण्डितवर मिश्र सुखानंदसूनु पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ इदं स्कंदोत्तरखण्डस्थ श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

व्योम बाणाङ्क चन्द्रेब्दे श्रावणस्य सितेदले । शुक्रवारे त्रयोदश्यां टीका पूर्तिमुपागमत् ॥ शुभमस्तु ॥

दोहा—पढहिं सुनहिं कर प्रेम जो, पावहिं सब मन काम ॥
नित ज्वाला प्रसादपर, कृपा करहु श्रीराम ॥ १ ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय–बम्बई.

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-भाषा ।

बालकाण्डम्-१.

मुरादाबादनिवासि पं० ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत-

पीयूषधारा भाषानुवाद ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया ।

संवत् १९६२, शाके १८२७.

बालकाण्डम्-१
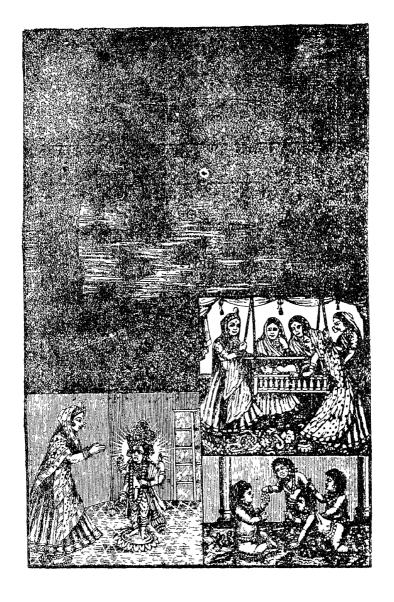
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

मंगलाचरणम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसीतारामचंद्राय नमः ॥ श्रीमद्रा-
घवपादपद्मयुगलं पद्मार्चितं पद्मया पद्मस्थेन तु पद्मजेन
विनुतं पद्माश्रयस्याप्तये ॥ यद्वेदैश्च नुतं सुखैकनिलयं सर्वा-
श्रयं निष्क्रियं शश्वच्छंकरशंकरं मुहुरहो सन्नौमि तल्लब्धये ॥१॥

दोहा—श्रीमद्रामसुजानकेचरणकमलसुखदान । पद्मजपद्मापद्मसैपूजितप्रीतिमहान ॥१॥ वेदनुतंसुखधामनितभक्तनसुखदातार । शंकरनिष्क्रियशान्तिमयद्रवहुसोकृपा अगार ॥ २ ॥ ब्रह्मबीजनिर्मलमहत्तचिन्मयअंकुरपीन । सप्तकाण्डविस्तारयुतआल वालऋषिकीन्ह ॥३॥ गुणसहस्रजेहिपत्रशुभशाखाजेहिशतपंच । आत्मज्ञानिफलदेत यहरामायणतरुमंच ॥ ४ ॥ वाल्मीकिगिरिसैप्रगटरामोदधिकेसंग । तीनलोकपावन करतयहरामायणगंग ॥ ५ ॥ वेदवेद्यपूरणपुरुषदशरथराजकुमार । रामायणकीआ-त्माजानोऋषिनविचार ॥ ६ ॥ रामलषणसीताभरतरिपुहनपवनकुमार । कीशराज सुग्रीवकोवन्दौंवारंवार ॥ ७ ॥ कविताशाखापरचढेकोकिलरूपमुनीश ॥ रामराम बोलतमधुरवन्दौंमहिधरिशीश ॥ ८ ॥ कवितावनविहरतफिरतवालमीकिमृगराज । रामकथाकीनादसुनिजातमृत्युभयभाज ॥ ९ ॥ प्रभुचरितामृतउदधिकोनितकीनोजि नपान । तृप्तनप्राचेतसभयेनमोनमःसुज्ञान ॥ १० ॥ गोखुरसमसागरकियोनिशिचर मशकसमान । रामायणमालारतनवंदौंश्रीहनुमान ॥ ११ ॥ अक्षमारलंकादहीजन-कसुतादुखटार । वीरअंजनानंदकोवंदौंवारंवार ॥ १२ ॥ लीलासैलांघोजलधिसिय दुःखानललीन । ताहीसौंलंकादहीनमोनमः परवीण ॥ १३ ॥ मनमारुतसमवेगजे-हिइन्द्रियजितमतिमान । रामचंद्रकेदूतशुभवायुसूनुहनुमान ॥ १४ ॥ रामचंद्ररघु

नाथश्रीरामभद्रसुखधाम । सीतापतिकेचरणमेंकोटि २ परणाम ॥ १५ ॥ रघुवंशिनकेतिलकहियकौशल्यासुखदान । रामपुण्डरीकाक्षदशवदननिधनभगवान ॥ १६ ॥ लोकधारिहारिअजअगुणविश्वरूपभगवन्त । जगज्जितंगुणआत्माइमिगावतश्रुतिसंत ॥ ॥ १७ ॥ शिवंसांबरघुनाथको पुनि २ शीशनवाय । करततिलकप्रमुदितहोकीजे आयसहाय ॥ १८ ॥ वाल्मीकिनारदऋषिजिमिकीनोसंवाद । सोसबभाषामेंकहत बुधज्वालापरसाद ॥ १९ ॥ रघुपतिकेगुणगणअमितकोकविपावैपार । तदपियथामति भाषिहौं वाल्मीकि अनुसार ॥ २० ॥ कृपाकरहिंसबभक्तजनपढहिंप्रेमकरनेम । रामभक्तिममहियबढे संततपावहुंक्षेम ॥ २१ ॥

॥ श्रीसीतारामचंद्रार्पणमस्तु ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

वाल्मीकीयरामायण-भाषा।

बालकाण्डम् १.

प्रथमः सर्गः १.

ॐ तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वीवाग्विदांवरम् ॥
नारदंपरिपप्रच्छवाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि जब सर्वोत्कृष्ट विषयके वर्णन करनेकी इच्छा करने लगे, तब उसके अनुरूप अलोकसामान्यकवित्वशक्तिलाभकेनिमित्त और उसके उपयोगी विषय जाननेके निमित्त समाधि आदि तपोनुष्ठानमें प्रवृत्त हुए. कुछकाल बीतनेपर जब अनन्य सुलभ पुण्यसमूहकी प्राप्ति हुई तब भगवान् विष्णु उनपर प्रसन्न हुए और उनकी आज्ञासे देवर्षि नारद वाल्मीकिजीके समीप आये, महर्षिने उनकी आतिथ्य क्रियाकर आसन दिया और स्वयं भी बैठे कुछकाल परस्पर सम्भाषण करनेके उपरान्त—तप और स्वाध्याय वेदपाठमें सदा तत्पर वेदके जाननेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ मुनियोंमें उत्तम नारदजीसे तपस्वी ऋषि वाल्मीकिजी पूँछने लगे ॥ १ ॥ हे मुने ! इसलोकमें इससमय गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवाक्य बोलनेवाला दृढव्रत ॥ २ ॥ सुन्दरचरित्रसे युक्त सर्व प्राणियोंका हितकरनेवाला, विद्वान्, सर्वशास्त्रका जाननेवाला, सर्वकार्यमें समर्थ, एक (अद्वितीय) ही प्रियदर्शन ॥ ३ ॥ आत्माको जाननेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, कांतिमान और असूया (गुणोंमें दोषका आरोप करना) से रहित कौन पुरुष है ! रणके बीचमें क्रोध करनेसे किससे सब देवता भय मानते हैं ॥ ४ ॥ इसमें मुझे बड़ा कौतूहल है, मैं श्रवण करनेकी इच्छा करता हूं. हे महर्षे ! आप इसप्रकारके नरके जाननेमें समर्थ हो, अर्थात् निश्चय करके जानते हो ॥ ५ ॥ त्रिलोकके जाननेवाले नारद मुनि इस वाल्मीकिके वचनको श्रवण करके सुनो इस

प्रकार अपने अभिमुख करके संतुष्ट हो सुन्दर वचन कहने लगे ॥ ६ ॥ हे मुने ! जो गुण तुमने कीर्त्तन किये वे बहुत दुर्लभ हैं, परन्तु मैं बुद्धिसे विचारकर कहता हूं तिन गुणोंसे युक्त नरको तुम श्रवण करो ॥ ७ ॥ वैवस्वतमनुके ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न राम नाम जनोंसे विख्यात, नियतात्मा, महावीर्य, द्युतिमान्, धृतिमान्, वशी (सर्वके स्वामी) वा जितेन्द्रिय ॥८॥ बुद्धिमान्, नीतिमान् (मर्यादा पालक) सुन्दरवाणी बोलनेवाले, श्रीमान्, शत्रुहंता, ऊंचे कंधेवाले, लंबी भुजावाले, शंखसमान ग्रीवा, महाहनु, सुन्दर ऊंची ठोढ़ीवाले ॥ ९ ॥ विशाल वक्षस्थलवाले, बड़े धनुषको धारे गूढ़जत्रु अर्थात् मांसमें छिपी हुई है दोनों हँसली जिनकी ऐसे शत्रुओंका दमन करनेवाले, जानुपर्यन्त लम्बी भुजावाले, सुन्दर शिर और ललाटसे शोभित, गजके समान सुन्दर गतिवाले ॥ १० ॥ सम (न छोटे न बड़े) तुल्य एक आकार, पृथक् २ अंग (कर चरण आदि) वाले स्निग्धवर्ण अर्थात् चिकने मनोहर वर्णवाले पीन (मांसल) वक्षस्थलवाले, विशालनेत्र, लक्ष्मीवान्, शुभलक्षणोंसे युक्त ॥ ११ ॥ धर्मज्ञ अर्थात् प्रजापालनादिरूप अपने धर्मके जाननेवाले, सत्यसंध अर्थात् सत्य प्रतिज्ञाके करनेवाले प्रजाके हित करनेमें तत्पर, उत्तम कीर्त्तिमान्, ज्ञानसम्पन्न, सर्वके पवित्र करनेवाले स्वयं पवित्र वा वंशपरम्परासे शुद्ध अपनेको वशमें रखनेवाले समाधिमान् ॥ १२ ॥ प्रजापति (ब्रह्मा) के तुल्य श्रीमान् सबके पोषक शत्रुओंके हनन करनेवाले, सब प्राणिमात्रके रक्षक, तथा धर्मकी रक्षा करने वाले ॥ १३ ॥ शरणागतरक्षणरूप अपने धर्मके पालक तथा अपने जनकी रक्षाकरनेवाले वेद और वेदांगके तत्त्वके जाननेवाले धनुर्वेदमें एकमात्र निष्ठा-वाले ॥ १४ ॥ सर्व शास्त्रोंके अर्थ तत्त्व (गूढ़ आशय) के जानने वाले, सदा स्मृति-मान अर्थात् ज्ञात अर्थमें विस्मरणलेशरहित, प्रतिभानवान् अर्थात् व्यवहारकालमें श्रुत और अश्रुतके शीघ्र भानवाले सर्वलोकके प्रिय साधु (परकार्यके साधक) और कृपणतासे रहित और सब विषयमें विचक्षण विद्वान् ॥ १५ ॥ नदियोंसे समु-द्रके समान सर्वकाल सत्पुरुषोंसे परिवारित आर्य अर्थात् सर्वश्रेष्ठ और सर्वशत्रु और मित्रोंके विषय सम (एकरस) और सर्वकालमें एकही प्रियदर्शन ॥ १६ ॥ ऐसे वह सब गुणोंसे युक्त कौशल्याके आनंदको बढ़ानेवाले गंभीरतामें समुद्रके समान और धैर्यमें हिमाचलके समान ॥ १७ ॥ वीर्यमें विष्णुके तुल्य, चंद्रके समान प्रियदर्शन, क्रोधमें कालाग्निके समान और क्षमामें पृथ्वीके समान ॥ १८ ॥ त्यागमें

कुबेरके तुल्य, सत्यभाषणमें उत्कृष्ट अन्यवस्तुरहित साक्षात् धर्मके समान स्थित, इसप्रकार सम्पूर्ण गुणसम्पन्न सत्यपराक्रमी रामको ॥ १९ ॥ श्रेष्ठगुणोंसे युक्त तथा प्रजाके हित करनेमें तत्पर ऐसे सर्व पुत्रोंमें ज्येष्ठ तिस प्रियपुत्र रामचंद्रको राजा दशरथने अमात्य आदिके प्रियकी इच्छासे ॥ २० ॥ युवराजपदमें युक्त करनेकी महीपति दशरथजीने प्रीतिसे इच्छा की. तिन रामचंद्रके राज्याभिषेकके संभारोंको उनकी कैकयी भार्या देखकर ॥ २१ ॥ अपने पूर्वमें पायेहुए वरोंको देवी राजासे माँगती हुई, जिसमें रामको वनवास और भरतको राज्य मांगा ॥ २२ ॥ उन राजा दशरथने सत्यवचनरूप धर्मपाशमें बँधकर प्रियपुत्र रामको वनवास दिया ॥ २३ ॥ वह वीर रामचंद्र कैकेयीके समक्ष करी प्रतिज्ञाको पालन करते हुए, कैकेयीकी प्रीतिके निमित्त पिताकी आज्ञासे वनको गये ॥ २४ ॥ और सुमित्राके आनंदको बढानेवाले स्नेह और विनयसे सम्पन्न अतिइष्टप्रिय भ्राता लक्ष्मण रामको वनजाते देखकर उनके पीछे चले ॥ २५ ॥ भ्राताके सौभ्रात्रभावको दिखातेहुए वे प्रियभ्राता लक्ष्मण इसप्रकार चले. उस समय रामचंद्रकी प्रियभार्या नित्य प्राणके तुल्य हितकारिणी वा नित्य रामके प्राण रखनेमें सावधान वा रामकी प्राणप्यारी तथा हितकारिणी ॥ २६ ॥ जनकके कुलमें उत्पन्न भगवान्की अघटित घटना पटीयसी मायाही मानो शरीर धारे है अथवा देव मायाके समान निर्मित हुई. आशय यह है कि, देवमायाके समान जानकी किसीकी रची नहीं किन्तु अप्रकृत हैं इस प्रकार सर्वलक्षणोंसे युक्त नारियोंमें उत्तमवधू ॥ २७ ॥ रामकी प्रिया भार्या सीता भी चंद्रमाके पीछे रोहिणीके समान रामके पीछे २ गई, सर्व पुरवासी जन तथा राजा दशरथ दूरतक पीछे गये ॥ २८ ॥ दूर जाकर रामचंद्रने गंगाके तटपर निषादोंके अधिपति धर्मात्मा प्रिय गुहसे मिलकर सूतको बिदा किया ॥ २९ ॥ लक्ष्मण, सीता और गुहके सहित रामचंद्र बहुत जलवाली नदी गंगाको उतरके सबके सहित एक वनसे दूसरे वनमें जाकर ॥ ३० ॥ पश्चात् भरद्वाजजीसे मिलके भरद्वाजजीकी आज्ञासे चित्रकूटको प्राप्तहो तहाँ रमणीक पर्णशालाकी कुटी बनाय तीनोंजने वनमें विचरने लगे ॥ ३१ ॥ बहुत कालतक देव गंधर्वोंके समान प्रकाशित रघुराज वहाँ सुखसे निवास करने लगे, जब रामचंद्र चित्रकूटपर विराजे तब पुत्रशोकसे व्याकुल ॥ ३२ ॥ राजा दशरथ सुतके उद्देश्यसे "हापुत्र" इस प्रकार विलाप करते हुए स्वर्गको गये, राजा दशरथके मरनेपर वसिष्ठादि ब्राह्मणोंके

द्वारा ॥ ३३ ॥ राज्यके निमित्त नियुक्त हुएभी महाबली भरतजीने राज्यकी इच्छा नहीं की, और रामचंद्रके चरणोंके सेवक वह वीर रामके प्रसन्न करनेको वनको गये ॥ ३४ ॥ वनमें जाय पूज्यपुरुषोंकी मर्यादाको आगेकर भरतजीने आर्यभावसे महात्मा सत्यपराक्रमी रामचंद्रके समीप जाय अपने इष्टमनोरथकी याचनाकी ॥ ॥ ३५ ॥ और रामचंद्रके प्रति यह वचन कहे कि, हे धर्मज्ञ ! राजा तो तुम्हीं हो और सुमुख परमउदार अति महायशस्वी ॥ ३६ ॥ महाबलवान रामचंद्रने पिताके आदेशसे राज्यकी इच्छा नहीं की, और राज्यके अर्थ अर्थात् राज्य करनेको अपनी प्रतिनिधिरूप पादुका देकर भरतको वारम्वार ॥ ३७ ॥ भरतके बडे भ्राता रामचंद्रने लौट जानेकी आज्ञादी. वह भरत अपने मनोरथको प्राप्त न होकर रामचंद्रकी दोनों पादुकाओंकी नित्य सेवा करते ॥ ३८ ॥ रामचंद्रके आगमनकी आशासे नंदिग्राममें राज्य करने लगे, भरतके जानेपर सत्यसंध जितेन्द्रिय श्रीमान् ॥ ३९ ॥ रामचंद्र नगरनिवासियोंका चित्रकूटमें वारम्वार आगमन देखके सावधान हो दंडकारण्यमें प्रवेश करगये ॥ ४० ॥ कमललोचन श्रीरामचंद्रने महावनमें प्रवेश करके विराध नाम राक्षसको मार शरभंगमुनिका दर्शन किया ॥ ४१ ॥ फिर सुतीक्ष्ण और अगस्त्यके तथा अगस्त्यमुनिके भ्राताके दर्शन किये, और अगस्त्यमुनिके वचनसे परमप्रसन्न हुए श्रीरामचंद्रने इन्द्रके धनुषको ग्रहणकिया ॥ ४२ ॥ तथा खड्ग और अक्षय बाणवाले दो तूणीरोंको परमप्रेमसे ग्रहण किया, तथा तिस वनमें वनचारी जीवोंके साथ वसतेहुए रामचंद्रजीके ॥ ४३ ॥ समीप कबंधआदि असुरोंके तथा खर, दूषणआदि राक्षसोंके वधके निमित्त बहुतसे ऋषि आये और उन रामचंद्रने तिस समय वनमें तिन ऋषिजनोंसे तिन राक्षसादिकोंके वधकी प्रतिज्ञा की ॥ ४४ ॥ अर्थात् उन अग्निके समान देदीप्यमान दंडकारण्यके वास करनेवाले ऋषिजनोंके समीप रामचंद्रजीने युद्धमें राक्षसोंके वधकी प्रतिज्ञा भी करी ॥ ४५ ॥ तिसी दंडकारण्यमें वास करतेहुए तिन रामचंद्रजीने जनस्थानके वासकरनेवाली कामरूपिणी अर्थात् इच्छानुसार रूप धारण करने वाली शूर्पणखा नाम राक्षसीके नाक कान छेदन करके विरूपिणी करी ॥ ४६ ॥ तिस शूर्पणखाके विरूपकरनेके अनंतर शूर्पणखाके वाक्यसे युद्धकरनेको उद्यत हुए सर्व राक्षसोंको और खरको, त्रिशिराको, तथा दूषण नाम राक्षसको तथा तिनके सर्व अनुचरोंको रणमें रामचंद्रने संहार किया ॥ ४७ ॥ इसप्रकार तिस वनमें निवास करनेवाले

चौदह सहस्र राक्षस मारेगये ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त खर दूषण आदि बंधुजनोंके वधको सुनकर क्रोधसे मूर्च्छित हो रावणने जायकर मारीच नाम राक्षससे सहायता माँगी ॥४९॥ हे रावण ! बलवान् रामचंद्रके साथ तुमको विरोध करना उचित नहीं है. इस भाँति बहुतवार मारीचने बरजा ॥ ५० ॥ तो भी कालसे प्रेरित वह रावण तिस मारीचके वाक्यको अनादरकरके मारीचसहित तिससमय तिन रामचंद्रजीके आश्रमस्थानको गया॥५१॥ और जब रामचंद्रजीकी पर्णशालाके समीप प्राप्त हुआ तब तिस मायावी अर्थात् विचित्र कनक मृगरूपधारी मारीचने नृपके पुत्र (राम लक्ष्मण) दोनोंको दूर लेजाकर प्राणत्याग किया, और रावणअवसर पाय सीताको ले चला.मार्गमें सीताके रुदनको श्रवणकरके जटायुने रोका, उस समय रावणने जटायुनाम गृध्रको मारके रामकी भार्याको हरण किया ॥५२॥ मारीचको मार लौटकर लक्ष्मणसहित रामचंद्रने पर्णशालामें सीताको न देखकर बहुत ढूँढा, आगे मार्गमें मारेहुए गृध्रको देखकर और रावणद्वारा मैथिलीका हरण सुनकर व्याकुलइन्द्रिय हो शोकसे संतप्त राघव विलाप करने लगे ॥ ५३ ॥ तिसके अनन्तर उसी शोकसे युक्त रामचंद्रजीने जटायु नाम गृध्रको दाहकर वनमें सीताको खोजते हुए राक्षसोंको देखा ॥ ५४ ॥ विकरालरूप घोरदर्शन कबंधनाम राक्षसको देखकर और तिसको मारकर महाबाहु रामचंद्रने उसका दाह किया और स्वर्गको जाताहुआ यह कबंध ॥ ५५ ॥ इनसे यह कहता गया कि, हे राघव ! अपने धर्ममें निपुण श्रमणी अर्थात् परिव्राजकरूप चतुर्थ आश्रमको प्राप्तहुई शबरीनाम धर्मचारिणी यहांसे थोडी दूरपर है उसके समीप आप जावो ॥ ५६ ॥ वह महातेजस्वी शत्रुओंके नाशक रामचंद्रजी शबरीके समीप गये और शबरीसे भलीप्रकार पूजितहो दशरथसुत रामचंद्र वहांसे पंपासरको गये ॥५७॥ और पंपासरके तीरपर हनुमान नाम वानरसे मिले, हनुमानके वचनसे सुग्रीव के साथ मिले ॥ ५८ ॥ महाबलवान् रामचंद्रजीने आदिसे जिस प्रकार हुआ वह सब वृत्तान्त तथा विशेष करके सीताका वृत्तान्त सुग्रीवसे कहा ॥ ५९ ॥ और सुग्रीव वानरनेभी रामचंद्रके तिस सब वृत्तान्तको श्रवणकर प्रसन्न हो अग्निको साक्षी करके रामचंद्रजीके साथ मैत्री की ॥ ६० ॥ तिसके अनन्तर दुःखित हुए वानरराज सुग्रीवने स्नेहसे वालिके विरोधका अनुकथन (रामचंद्रजीके प्रश्नके अनुकूल उत्तर) सम्पूर्ण रामचंद्रजीके प्रति निवेदन किया ॥ ६१ ॥ तब रामचंद्रजीने वालिके वधकी प्रतिज्ञा करी उस समय तिस ऋष्यमूक पर्वतपर

सुग्रीवने वालिके वधको रामचंद्रजीसे वर्णन किया ॥ ६२ ॥ और सुग्रीव दुंदुभिके शरीर दिखानेपर्यन्त नित्य रामचंद्रके बलके विषयमें शंकित था ॥ ६३ ॥ इसी कारणसे सुग्रीवने रामचंद्रके बलजाननेके अर्थ पर्वतको समान दुंदुभिके महान् शरीरको उन्हें दिखाया ॥ ६४ ॥ महाबाहु अमितबली रामचंद्रजीने दुंदुभिके शरीरको देखकर "यह कितना है" ऐसा अनादर करके वामपादके अंगुष्ठकी ठोकरसे उस सम्पूर्णको दश योजनपर फेंकदिया ॥ ६५ ॥ और तिस समय फिर विश्वास उत्पन्न करनेके निमित्त रामचंद्रने एकही बाणसे सात तालवृक्षोंको और तिनके समीपवर्ती गिरि और रसातलको भेदन करदिया ॥ ६६ ॥ इसके पीछे इस कर्मसे रामचंद्रजीमें विश्वासकर प्रसन्न चित्त हो महाकपि सुग्रीवने रामके सहित उस समय किष्किंधागुहाको गमन किया ॥ ६७ ॥ तदनंतर सुवर्णके समान पिंगलवर्ण कपियोंमें श्रेष्ठ सुग्रीव किष्किंधामें जाकर गर्जा, तब तिस नादको सुनकर कपीश्वर वालि घरसे निकल बाहर चला ॥ ६८ ॥ उस समय वर्जतीहुई ताराको समझाकर सुग्रीवके साथ आय युद्ध किया तिस युद्धमें रामचंद्रने इस वालिको एकही बाणसे मारदिया ॥६९॥ तदनंतर रामचंद्रने सुग्रीवके प्रार्थनावचनसे वालिको संग्राममें मार उस वालिके राज्यपर सुग्रीवको स्थापन किया ॥ ७० ॥ वानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवने जानकीके खोज करनेकी इच्छासे सब वानरोंको बुलायके जानकीके ढूँढ़नेके अर्थ भेजा ॥ ७१ ॥ हनूमान् संपातिनाम गृध्रके वचनसे सौ योजन विस्तारवाले खारी समुद्रको उल्लंघन करगये ॥ ७२ ॥ और रावणसे पालित लंकापुरीमें प्राप्त होकर तहां अंतःपुरकी अशोकवाटिकामें प्राप्त हुई रामचंद्रजीके ध्यानको करती हुई सीताको देखा ॥ ७३ ॥ महावीरजीने रामचंद्रके अँगूठी रूपचिह्नको निवेदन करके तथा रामचंद्रकी कुशलवार्त्ता आदि कहके वैदेहीका समाधान कर अर्थात् सब प्रकारसे धैर्य देकर अशोकवनिकाके बहिर्द्वारको चूर्ण करडाला ॥ ७४ ॥ सेनाके पंच अग्रगामियोंको अर्थात् प्रधानसेनापतियोंको और सात मंत्रियोंके पुत्रोंको मारकर तथा शूर अक्षयकुमारनाम रावणके पुत्रको चूर्ण करके इन्द्रजितके मारे हुए ब्रह्मास्त्रकरके बंधनको प्राप्त हुए ॥ ७५ ॥ ब्रह्माके वरदानसे प्रयत्नके विना ब्रह्मास्त्रसे मुक्त अपने शरीरको जानकरभी अपनेको बाँधे इधर उधर खींचते हुए अर्थात् तिन यंत्रणा करने वाले राक्षसोंके अपराधोंको सहनकरते हुए वह वीर हनुमान ॥ ७६ ॥ एक मिथिलाराजसुता सीताके स्थानको छोड़कर सम्पूर्ण पुरीको दग्ध

करके रामचंद्रजीसे सीताके दर्शनरूप प्रिय आख्यानके कहनेके निमित्त महावीर फिर लौट आये ॥ ७७ ॥ तिसके अनन्तर अनंतबुद्धि वीर हनूमानने महात्मा रामचंद्रजीकी प्रदक्षिणा करके सन्मुख स्थित हो हे भगवन् ! मैंने सीता देखी यह सत्यतासे निवेदन किया ॥ ७८ ॥ तिसके पीछे सुग्रीवसहित रामचंद्रने महोदधि समुद्रके तीरपर जाय सूर्यके समान प्रकाशते हुए बाणोंसे समुद्रको क्षोभित (व्याकुलित) किया ॥ ७९ ॥ नदियोंके पति समुद्रने रामचंद्रजीको अपना निजरूप दिखाया समुद्रके वचनसे नलवानरके द्वारा सेतुको निर्माण कराया ॥ ८० ॥ उस सेतुरूप मार्गसे लंकापुरीमें जाय युद्धमें रावणको मार सीताको पाय पीछे रामचंद्रको जानकीके कारण बहुत लज्जा हुई कि यह रावणके घर रहीं ॥ ८१ ॥ तिसके अनन्तर रामचंद्रने जनोंकी सभामें उस पतिव्रता सीतासे कठोरवचन कहे "कि तुम हमारे निकट रहने के योग्य नहीं हो तुम्हारी शुद्धिका प्रमाण क्या है" इस बातको नहीं सहन करती हुई सीतासति अग्निमें प्रवेश करगई ॥ ८२ ॥ तब अग्निके वचनसे सीताको दोषरहित जानकर रामचन्द्र अतिप्रसन्नहो सब देवताओंसे पूजित हो शोभित हुए ॥ ८३ ॥ महात्मा राघव रामचंद्रके उस महान्कर्मसे देवऋषिगणोंके सहित चराचर सम्पूर्ण त्रैलोक्य संतुष्ट हुआ ॥ ८४ ॥ लंकाके राज्यमें राक्षसेन्द्र विभीषणको अभिषिक्त करके रामचंद्र कृतकृत्य और शोकरहित हो प्रसन्न हुए ॥ ८५ ॥ सब देवताओंसे वरदान पाय तथा संग्राममें मरेहुए वानरोंको सम्यक् प्रकारसे जिवायके पुष्पकविमानमें विभीषणआदि सुहृदजनोंके साथ चढ़ रामचंद्रने अयोध्याको प्रस्थान किया ॥ ८६ ॥ मार्गमें प्राप्त हुए मुनि भरद्वाजके आश्रममें जाय सत्य पराक्रम रामचन्द्रजीने भरतजीके समीप हनुमंतको भेजा ॥ ८७ ॥ भरद्वाजजीके आश्रमसे तिस पुष्पकविमानपर चढ़के फिर आख्यायिका (पूर्व हुए वृत्तांत) को कहते हुए रामचन्द्र सुग्रीवसहित नंदिग्रामको चले ॥ ८८ ॥ वहां जाय नंदिग्राममें भ्राताओं सहित निष्पाप रामचन्द्र जटाको त्याग सीताको समीप ले फिर राज्यमें स्थित हुए ॥ ८९ ॥ तिस समय सर्वलोक (जन) प्रहृष्ट मुदित तुष्ट पुष्ट सुंदर धर्माचरणके करने वाले शरीरके रोगरहित तथा अरोग अर्थात् मानसी व्यथा रहित दुर्भिक्षके भयसे रहित हुए ॥ ९० ॥ इसके आगे भविष्य कहते हैं कि रामके राज्यमें कोई पुरुष कदाचित्भी कहीं पुत्रके मरणको नहीं देखेंगे; और स्त्रियेंभी सदा पतिव्रता वैधव्यदोषरहित होंगी ॥ ९१ ॥ और न अग्निसे उत्पन्न हुआ भय होगा, और न

जीव जलमें डूबेंगे, और न कदाचित् वायुजन्य भय होगा; और न ज्वरका किया भय ॥ ९२ ॥ और न क्षुधाका भय और न चोरकृत भय होगा, नगरराष्ट्र धन धान्यकरके युक्त होंगे ॥ ९३ ॥ जैसे कृतयुगमें सब प्रसन्न रहते हैं, तैसे सब नित्य प्रसन्न रहैंगे, सैकड़ों अश्वमेध तथा बहुसुवर्णकनाम यज्ञोंसे यज्ञ पुरुषका यजन करके ॥ ९४ ॥ दशसहस्रकोटि परिमित गौवें तथा असंख्यात धन ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक देकर महायशस्वी श्रीरामजी ॥ ९५ ॥ शतगुण राजवंशोंको स्थापन करेंगे, तथा इस लोकमें चारों वर्णोंको अपने २ धर्ममें नियुक्त करैंगे ॥ ९६ ॥ दश सहस्र दश सौ अर्थात् ग्यारह सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य करके रामचन्द्र ब्रह्मलोकको जायँगे ॥ ९७ ॥ पवित्र पापके नाशक पुण्यदायक वेदोंके संमत इस रामचरितको जो पुरुष पाठ करेगा वह सब पापोंसे मुक्त होताहै ॥९८॥ आयुकारक इस रामायण रूप आख्यानको पठन करता हुआ मनुष्य पुत्र पौत्र और बंधु भृत्यगणोंके सहित परलोकमें गमन कर स्वर्गमें महिमाको प्राप्त होताहै ॥ ९९ ॥ इस संक्षेप रामायण-को पठन करता हुआ ब्राह्मण वाणीकी श्रेष्ठताको प्राप्त होताहै अर्थात् समस्त वेद वेदांगका पारगामी होताहै, क्षत्रिय भूमिपति होता है, वणिक्जन व्यवहारके फलको प्राप्त होता है अर्थात् व्यवहारसे लाभ प्राप्त करता है और शूद्र महत्वको प्राप्त होता है ॥ १०० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषायां प्रथमः सर्गः १.

द्वितीयः सर्गः २.

वाक्यविशारद सशिष्य धर्मात्मा वाल्मीकिजी देवर्षि नारदजीसे यह श्रवण करके उन महामुनिकी पूजा करते हुये ॥ १ ॥ वाल्मीकिजीके देवर्षि नारदजीको यथाविधि पूजा करनेपर, वह उनसे संभाषण करके विदा ले देवलोकको चलेगये ॥ २ ॥ अनन्तर वाल्मीकिजी क्षण कालतक आश्रममें रहकर गंगाके निकटवाली तमसा नदीके निकट उपस्थित हुए ॥ ३ ॥ वह मुनि वहाँ जाय नदीका अवतरण स्थान कर्दम (कीच) विहीन देखकर समीपमें खडे हुए शिष्यसे यह कहने लगे ॥ ४ ॥ हे वत्स ! भरद्वाज ! यह अवतरण स्थान (घाट) कैसा कर्दम (कीच) शून्य और रमणीयहै.

देखो इसका जल सज्जनमनुष्योंकेचित्तकी नांई निर्मल है ॥ ५ ॥ जो हो हे तात ! तुम कलश रखके मुझे वल्कल दो कि मैं इस उत्तम तमसा तीर्थमें स्नान करूं ॥ ६ ॥ जब महात्मा वाल्मीकिजीने यह कहा तब गुरुके अनुगत शिष्य भरद्वाजने गुरुमुखसे यह वाक्य श्रवण कर उनको वल्कल प्रदान किया ॥ ७ ॥ जितेन्द्रिय वाल्मीकिजी शिष्यसे वल्कल ग्रहण करके तीरस्थित निविड अरण्य दर्शनपूर्वक इधर उधर फिरने लगे ॥८॥ मुनिने उस वनके निकट एक उत्तम चकवा चकवीका जोडा सुस्वरसे गान करते विचरण करता देखा ॥ ९ ॥ इसी अवसरमें एक महापापी अकारण वैर करने वाले निषादने आकर वाल्मीकिजीके देखते देखते उस जोडेमेंसे चकवेको मारडाला ॥ १० ॥ उसको रुधिरमें डुबे हुये पृथ्वीमें लोटते देखकर मरा जान उसकी भार्या क्रौंची अतिशय करुणाकर रोदन करने लगी ॥ ११ ॥ उस कामसे उन्मत्त रुधिर-से लालशिर दिनरात साथ रहने वाले पतिके संग [जिसके शरीरमें बाण लगा है] अब सहवास न होगा यह जान उसको बड़ा दुःख हुआ ॥ १२ ॥ धार्मिक महामुनि वाल्मीकिजी कामसे मत्तहुए विहंगमको व्याधके हाथसे मरा हुआ देख करुणाके वश हुए ॥ १३ ॥ तब चकवीको करुणासे रोताहुआ सुनकर ऋषि कहने लगे कि, यह कार्य्य अति अधर्मजनक है, और यह वचन बोले ॥ १४ ॥ रेनिषाद तैंने जब इस क्रौंचमिथुनके जोडेमेंसे कामके वश हुए एक क्रौंचको मारडाला इस कारण तू बहुत वर्षोंतक प्रतिष्ठा नहीं पासकेगा, अथवा हे रमानिवास राम तुमने जो क्रौंचरूप रावणमंदोदरीके मध्यसे एक कामरूपी रावणको मारा है इसकारण संसा-रमें बहुत वर्षोंतक प्रतिष्ठाको प्राप्त हूजिये अथवा हे लोकरावण रावण तूने क्रौंचवन वासादिकसे दुःखित रामजानकीके मध्यसे काममोहित सीताको हरणादिकके दुःखसे रामको मारनेके तुल्य किया, अतएव बहुत दिनोंतक प्रतिष्ठा विनापाये मरणको प्राप्त हो, इस श्लोकमें रामायणकी और कथाभी विद्यमान हैं पहले भृगुजीनेभी विष्णुभग-वानको शाप दिया था कि, तुमने मेरी स्त्रीका वियोग किया है तो तुम्हारी स्त्रीकाभी तुमसे वियोग होगा इसीकारण भगवानने व्याधरूप धारण कर वाल्मीकिजीके देखते २ क्रौंचरूपी राक्षसको मारडाला, तब सर्वान्तर्यामी भगवानकी प्रेरणासे वाल्मीकिजी यह विचारने लगे कि, यह इसने महा अधर्म किया है,यह विचार शापदिया कि, जैसे तुमने काममोहित इस क्रौंचको मारा है इसीप्रकार तुम्हाराभी बहुत कालतक स्त्रीसे वियोग हो, इसी बातको पद्मपुराणमें शिवपार्वतीके सम्वादमें कहा है, कि,

कोई लकडहेरा अपनी स्त्रीको मारता २ बोला कि, मैं राम नहीं हूं जो तुझे रावणके घरमें रही हुई जानकीके समान रखलूं यह सुन लोकापवादसे डरकर रामचंद्रने लक्ष्मणजीसे कहा कि, तुम जानकीको वनमें छोडि आवो, जिसकारण मैं जानकीको त्यागन करताहूं वहभी तुम सुनो कि, पूर्वकालमें भृगु और वाल्मीकिजीने मुझे शाप दियाहै कि, तुमसे स्त्रीका वियोग होगा, इसकारण मैं इन्हें त्यागन करताहूं. इसी कारण स्कंदपुराणके पातालखण्डमें अयोध्यामाहात्म्यमें लिखा है कि, महातपस्वी वाल्मीकिजी जब निषादको शाप देकर दुःखी हुए, तब ब्रह्माजी आनकर कहने लगे हे मुनि! जिनको तुमने शाप दिया है वह निषाद नहीं है किन्तु वह रामही वनमें मृगया खेलने आये हैं उनका चरित्र वर्णन करो तुम्हारा यह छंद पुण्यरूप श्लोक नामसे जगतमें विख्यात होगा, यह कहकर ब्रह्माजी तो चलेगये वाल्मीकिजीने सौ करोड़ श्लोकोंमें रामायण बनाई, वह सब ब्रह्मलोकमें है, यहां चौबीस सहस्र लवकुशने सुनाई योगवासिष्ठमें औरभी अवतार होनेके कारण हैं, एक समय वैकुंठमें भगवान विष्णुजी ब्रह्माजीकी सभामें आये सब देवताओंने उठकर सन्मान किया केवल कुमार नहीं उठे और ज्योंके त्यों बैठेरहे,ज्ञानका मनमें बडा अभिमान था यह देख भगवानने कहा,कि, तुमको निष्कामताका अभिमान है इसकारण तुम शरसे उत्पन्न होकर कामी होगे तब कुमार कहने लगे कि तुमको निष्कामताका अभिमान है सो इसे त्याग करके कुछ कालतक तुम अज्ञानी होगे, इसीप्रकार विष्णुजीके कर्तव्यसे अपनी भार्याको मृतक देख भृगुने शाप दिया था कि, तुम्हारीभी भार्यासे वियोग होगा.इसीप्रकार जब वृंदाके पतिने उपद्रव मचाया तब विष्णुजीने छलसे उसके पतिका रूप बनाकर उससे अपने चरण दबवाये परपुरुषके अंग स्पर्शसे उसका पातिव्रत्य नष्ट हुआ. तबही शिवजीके हाथसे उसका पति मारागया तब उसने यह भेद जानकर शाप दिया कि, तुमको स्त्रीका वियोग होगा, एक समय देवदत्तब्राह्मणकी भार्या सागरके तीर बैठीथी वह वहां नृसिंहजीका भयंकर रूप देख भयसे मरगई तब उसने विष्णुको शाप दिया कि, तुमभी भार्याके वियोगमें मेरे समान दुःखी होगे, फिर जो ताराने शाप दिया है वह किष्किंधामें कहेंगे इसीप्रकार और २ पुराणोंमेंभी लिखाहै कि तमसाके किनारे वाल्मीकिजीने.व्याधरूपरामको शाप दियाथा चौपाई "इहि विधि जन्म कर्म हरि केरे। सुन्दर सुखद विचित्र घनेरे ॥ कल्प २ प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं ॥ तब तब कथा मुनीशनगाई ॥ परम विचित्र प्रबन्ध बनाई ॥

परम अनूप प्रसंग बखानै । करहिं न मुनि आश्चर्य भयानै ॥ दोहा ॥ असुरमार थापहिं सुरहिं, राखहिं निजश्रुतिसेतु ॥ जग विस्तारहिं विमल यश, रामजन्म कर हेतु" ॥ १५ ॥ वाल्मीकिजी व्याधेको इसप्रकार शाप देकर वारंवार यह चिन्ता करने लगे कि, मैंने पक्षीके लिये व्याकुल चित्तहो क्या कथन किया ॥ १६ ॥ मुनिपुङ्गव बुद्धिमान् महर्षि मनहीं मन यह चिन्ता करते हुए अपने शिष्यसे इसप्रकार वचन बोले ॥ १७ ॥ हे वत्स ! जब मेरा यह वाक्य पादबद्ध समानअक्षरवाला वीणाकी लयसे युक्त शोकद्वारा कंठसे उच्चारित हुआहै तो यह श्लोकरूप होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ १८ ॥ वाल्मीकिजीके यह वचन सुन भरद्वाजने उनकी बडीबडाई की इससे वाल्मीकिजी परम सन्तुष्ट हुये ॥ १९ ॥ तदनन्तर महामुनि वाल्मीकिजी यथाविधि तमसामें स्नानकर उसी श्लोकउत्पत्तिविषयकी चिन्ता करते हुए अपने आश्रमको लौटे ॥ २० ॥ शास्त्राधिकारी विनीत शिष्यभी कंधेपर जलका भरा कलशा ले उनके पीछे पीछे आश्रमको लौटे ॥ २१ ॥ धर्मके जाननेवाले वाल्मीकिजी शिष्यके सहित आश्रममें उपस्थित हो बैठने उपरान्त नाना प्रकारके कथोपकथन होनेपर ध्यानमें मनको लगाते हुये ॥ २२ ॥ इतनेमें सृष्टिकर्त्ता शक्तिमान महातेजस्वी चतुर्मुख ब्रह्मा उन मुनिश्रेष्ठको देखनेके अर्थ वहां आये ॥ २३ ॥ ऋषि वाल्मीकिजी उनको देखतेही अतिशय विस्मय हो संयमसे सहसा उठकर कृताञ्जलिपुटसे सविनय खडे होगये ॥ २४ ॥ फिर पाद्य, अर्घ्य, आसन और स्तुतिद्वारा ब्रह्मदेवकी अर्चना करके उनके चरणोंमें प्रणाम करके कुशल पूछी ॥ २५ ॥ भगवान् पितामहने दिव्य आसनपर बैठ महर्षिजीसे कुशल प्रश्न पूछ आसनपर बैठनेको कहा ॥ २६ ॥ तब साक्षात् ब्रह्माजीके आसनपर बैठनेके उपरान्त ब्रह्माजीकी आज्ञासे वह आसनपर बैठे ॥ २७ ॥ वाल्मीकिजी उस समयभी उसी ध्यानमें क्रौंचवधकी वार्त्ता स्मरण कर मनहीमन चिन्ता करने लगे कि, हाय, वनचारी उसपापी व्याध-ने कैसा पाप कार्य्य किया ॥ २८ ॥ उसने अकारण अच्छे कंठवाले क्रौंचको मारा इस आशयसे मनही मनमें उसी श्लोकको स्मरण करते ॥ २९ ॥ शोक करने लगे और फिर मन मनमेंही कहनेकी बात छुपाकर शोक करने लगे तब प्रजापति ब्रह्मा-ने मुनिश्रेष्ठसे हँसकर कहा ॥ ३० ॥ हे महामुने ! तुम्हारे कंठसे जो वाक्य निर्गत हुआ है वह श्लोकरूपहो ख्याति लाभ करैगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं, हे ब्रह्मन् मेरी इच्छासेही तुम्हारे मुखमें सरस्वतीका आविर्भाव हुआहै ॥ ३१ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! तुम

धर्मात्मा गुणवान् बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके सब चरित्र वर्णन करो॥ ३२॥ नारदजीसे रामके संबंधमें जो कुछ सुना है, उसके अनुसार रहस्य चरित्र,और प्रकाशित चरित्र जगत्में प्रकाशित करो ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार लक्ष्मण, सीताका चरित्र और राक्षसोंका जाना अजाना गुप्त प्रगट सब विषय वर्णन करो ॥ ३४ ॥ जिन सब बातोंको कोई नहीं जानता तुम उनके जाननेको समर्थ होगे, और तो क्या इस काव्यमें तुम्हारी वाणीकी युक्तिभी मिथ्या नहीं होगी ॥ ३५ ॥ तुम रमणीय रामायण श्लोकोंमें बनाओ, जान लेना. कि—जबतक जीवलोकमें नदी व पहाड रहैंगे, तब तक तुम्हारी बनाई रामकथा संसारमें प्रकाशित रहेगी ॥ ३६ ॥ और जबतक तुम्हारी बनाई रामकथाका प्रचार रहैगा ॥ ३७ ॥ तब तक तुम ऊंचेसे ऊंचे मेरे लोकमें निवास करोगे यह कहकर भगवान् ब्रह्माजी वहीं अन्तर्ध्यान होगये ॥ ३८॥ तब भगवान् वाल्मीकिजी शिष्यसहित परम आश्चर्यको प्राप्तहुए और उनके शिष्य गण क्रमसे सबही वारंवार यह श्लोक गान करने लगे; जब वह गावें तब उनके सन्तोष और विस्मयकी सीमा न रहै ॥ ३९ ॥ समान युक्त अक्षरवाले चार पदकी जो रचना वाल्मीकिजीने गाईहै, वह श्लोकनामसे कहीगई है ॥ ४० ॥ उन ज्ञानी महात्मा महर्षिकी यह इच्छा हुई कि समग्र रामायण इसी भाँति श्लोकों में बनावेंगे ॥ ४१ ॥ उदारदृष्टि असीम कीर्त्तिमान् वाल्मीकिजीने सुन्दर छन्द उत्कृष्ट अर्थ और भले पदों करके युक्त बराबर अक्षरोंसे पूर्ण बहुतसे श्लोकोंके आकारमें इस महाकाव्यकी रचना की ॥ ४२ ॥ अब सब सन्धि समास प्रकृति और प्रत्यय साध्य दोषविहीन मधुरतासे युक्त प्रसन्नताके गुणका अवलम्बन करनेवाला ऋषिका कहा हुआ रामचरित्र और रावणके नाशका वृत्तांत श्रवण करो ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयसर्गः ३.

दो.रामायणके रचनकी, इच्छा कर मुनिराज।योगासनसे बैठकर, रचन लगे सबसाज॥

महामुनि वाल्मीकिजीने नारदजीसे जो धर्मार्थ युक्त हितजनक रामचरित्र श्रवण किया था इस समय फिर उसे भलीप्रकार जाननेको मुनिराज इच्छुक हुए ॥ १ ॥ तब वह पूर्वमुखहो कुशासनपर बैठ यथाविधि आचमन कर हाथ जोडके योगके प्रभावसे उस विषयमें सन्धान करने लगे ॥ २ ॥ देखते हुए कि राम लक्ष्मण और

सीता और राजा दशरथकी कौशल्यादि रानियोंने व अयोध्याके राज्यके निवासियों-ने जो सम्बन्ध पाया था वह सब मुनिराजने ध्यान देके देखा व जाना ॥ ३ ॥ जो कुछ हास परिहास खेल इन लोगोंका था वह सब धर्मात्मा मुनिजी प्रत्यक्षकि समान देखने लगे ॥ ४ ॥ सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीता-जीके सहित वनमें जो कष्ट भोगकिया था यह सब देखने लगे ॥ ५ ॥ तब धर्मात्मा वाल्मीकिजी योगमें स्थित होकर जो कुछ कथा हुई थी वह सब हाथमें स्थित आमलक फलके नाईं देखने लगे ॥ ६ ॥ इसभाँति योगमार्ग अवलम्बन किये महामति महर्षि-तत्त्वसे सब कुछ देखकर श्रुतिसुखकर रामचरित्र वर्णन करने लगे ॥ ७ ॥ जिस प्रकार रत्नाकर रत्नोंके समूहोंका आधार है इसी भाँति रामायण भी मनोहर व श्रुतिसुखकर सन्दर्भसे पूर्ण है इसमें धर्मार्थ और कामार्थकी कमी नहीं इसके अतिरिक्त इसमें और भी बहुतसे गुण हैं ॥८॥ महामुनिजीने इस ग्रन्थमें जैसा पहले नारदमुनिने कहा था उसीके अनुसार रघुवंशका चारित्र वर्णन किया है ॥ ९ ॥ इसमें रामचन्द्रजीका जन्मवृत्तांत शक्तिका परिचय लोकानुराग, सर्वजनप्रियता, क्षमा, सौम्यता, सत्यनिष्ठा ॥ १० ॥ महामुनि उग्रतपा विश्वामित्रजीके साथ जानेके समय मार्गमें जो जो अपूर्व कथा हुई थी और शिवका धनुष तोड़नेपर जानकीजीका विवाह वर्णन किया है ॥ ११ ॥ फिर परशुरामजीसे रामका विवाद, रामचन्द्रजीके गुण, रामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके विषे कैकयीकी दुष्टता ॥ १२ ॥ राज्याभिषेकके रंगका भंग होना, रामचन्द्रजीका वनको जाना राजा दशरथका विलाप और शोक करके परलोक गमन ॥ १३ ॥ प्रजाको क्षोभ, प्रजाको विदा देना निषादाधिपतिका संवाद सारथी सुमन्तजीका लौटना ॥ १४ ॥ गंगाजीका उतरना, भरद्वाजजीके दर्शन, भरद्वाजजीकी आज्ञासे चित्रकूटका दर्शन, ॥ १५ ॥ वहां कुटी बनाकर रहना भरतजीका आना भरतजीका लौट चलनेको कहना, रामचन्द्रजीका दशरथ पिताको तर्पण करना, ॥ १६ ॥ पादुकाका अभिषेक भरतजीका नन्दिग्राममें रहना, श्रीरामचन्द्रजीका दण्डकारण्यमें जाना ,विराध राक्षसको वध करना, ॥ १७ ॥ शरभंगदर्शन सुतीक्ष्णसे मिलना, अनसूयासे जानकीजीका मिलना, अनसूयाका अंगराग देना ॥ १८ ॥ रामचन्द्रजीका अगस्त्यजीका दर्शन करना,और उनसे शर धनुष ग्रहणकरना शूर्पणखा संवाद और उसके नाक कानोंका काटना ॥ १९ ॥ खर त्रिशिराका संहार, रावणका सीताजीके हरणको उद्योग करना; मारीचका मारा जाना, जानकीका हरण ॥ २० ॥

रामचन्द्रजीका विलाप, जटायुका मरण, कबन्धदर्शन, पंपाकिनारे पहुँचना ॥ २१ ॥ शबरीका दर्शन, फल मूल भोजन रामका विलाप करना, हनुमानजीसे साक्षात् होना ॥ २२ ॥ ऋष्यमूकपर्वतपर जाना, सुग्रीवसे समागम, सुग्रीवका विश्वास दिलाना और उससे मित्रता करना, बालि सुग्रीवकी लड़ाई ॥ २३ ॥ वालिवध, सुग्रीवको राज-तिलक, ताराका विलाप, सुग्रीवके कहनेसे वर्षाकालमें प्रवर्षणगिरिपर रहना ॥ २४ ॥ पुरुषसिंह रामचन्द्रजीका क्रोध, वानरसैन्यका संग्रह, सम्पूर्ण दिशाओंमें दूतोंका भेजना, पृथ्वीकी स्थिति कहना ॥ २५ ॥ हनुमानजीको अँगूठी देना, जाम्ब-वन्तका बिल देखना, वानरोंका मरणके निमित्त बैठना, संपातिको देखना ॥ २६ ॥ पर्वतपै चढना, हनुमानजीका समुद्रको लांघना, समुद्रके वचनसे मैनाकके दर्शन २७॥ राक्षसीका डरवाना, छाया पकडनेवालेको देखना, सिंहिका संहार, लङ्का दर्शन ॥ २८ ॥ निशासमय लंकामें प्रवेश और शेष कार्यकी चिन्ताकरना, मद्य-पानकी जगह जाना, अन्तःपुरका दर्शन करना ॥ २९ ॥ रावणको देखना, पुष्पक विमानको देखना, अशोकवनमें गमन, तहाँ सीताजीके दर्शन ॥ ३० ॥ अँगूठी देना, सीताजीसे वार्त्तालाप, राक्षसियोंका डरवाना, त्रिजटाका स्वप्न देखना ॥ ३१ ॥ सीताजीका मणि देना, पेडोंका उजाडना, राक्षसियोंका डरमें भागना, किंकरोंका मानमर्दन ॥ ३२ ॥ हनुमानजीका बँध जाना, लंका जलानेके समय भयंकर गर्जन करना, फिर समुद्र पार होना, मधुहरण अर्थात् मधुवनके फल खाना ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रजीको धैर्य देकर मणि देना, समुद्रसमागम, नलके हाथसे पुलका बँधना ॥ ३४ ॥ समुद्रको उतरना, रात्रिमें लंकाको घेरना, विभीषणका आना और रावणके मरनेका उपाय बताना ॥ ३५ ॥ कुंभकर्ण व मेघनादका वध, रावणनिधन, उसके नगरसे रामचन्द्रजीको सीताजीका मिलना ॥ ३६ ॥ विभीषणका राजतिलक पुष्पकदर्शन, अयोध्याकी यात्रा, भरद्वाजजीके आश्रमपर आना, हनुमानजीका भेजना, भरतजीसे महावीरजीकी भेट ॥ ३७ ॥ राज्याभिषेकका उत्सव, सेनाको विदा देना, अपनी प्रजाओंको प्रसन्न रखना, सीताजीको त्यागना ॥ ३८ ॥ इत्यादि और भी जो पृथ्वीमें भविष्य रामचरित्र होना था व और अप्रचारित विषयभी अर्थात् यमुनातीरवासी ऋषियोंका समागम लवणासुरवध, वाल्मीकि आश्रममें सीताके दो पुत्र होना, दुर्वासाका समागम, लक्ष्मण त्याग, स्वर्गारोहण यात्रा यह सब महामुनि वाल्मीकिजीने अपने बनाये रमणीय काव्यमें वर्णन किये ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थसर्गः ४.

भगवान् ऋषि वाल्मीकिजीने रामचन्द्रजीके सिंहासनपर बैठने उपरान्त विचित्र पदपूर्ण और अर्थयुक्त रामचरित्रसम्बन्धी काव्य रचना किया ॥ १ ॥ ऋषि-राजने यह काव्य चौवीस हजार श्लोकोंमें बनाया है पांचसौ सर्ग इसमें हैं छःकांड और पिछला उत्तर इन सात कांडोंमें यह काव्य रचा गया है ॥ २ ॥ भविष्यसहित उत्तर कांडको महामुनि वाल्मीकिजी बनाकर किस भाँति प्रकाशित होगा यह शोच रहे थे ॥ ३ ॥ विज्ञानी आत्मस्वरूपवेत्ता महामुनि यह शोच रहेही थे कि इतनेमें मुनिवेषधारी लव कुशने आनकर मुनिके चरणोंकी वन्दनाकी ॥ ४ ॥ वे दोनों भाई धर्मज्ञ राजपुत्र यशस्वी गानेके सुरसे युक्त आश्रमवासी थे ॥ ५ ॥ वाल्मीकिजीने इन्हें काव्यग्रहण करनेके योग्य देखा वह जैसे बुद्धिवान् थे उसीप्रकार वेदमें उनकी निष्ठा थी करुणामय मुनिजीने उनकी शक्ति देख वेदका तात्पर्य विदित होनेके निमित्त ऋषिने इनको यह काव्य पढाया ॥ ६ ॥ श्रेष्ठव्रतवाले ऋषिने रावणवध नामक सीताचरित्रके संबन्धमें अपना बनाया सम्पूर्ण रामायणरूप काव्य उनको पढाया ॥ ७ ॥ पढने और गानेमें मधुर तीन प्रमाणोंसे अर्थात् द्रुत, मध्य, विलंबितसे युक्त सुन्दर अधिक ताल लय मिलेहुये संगीतके साथ स्वरसे पूर्ण ॥८॥ शृङ्गार, करुणा, हास्य, रौद्र, भयानक, वीर, बीभत्स, अद्भुत, शान्त इन नवरसों समेत बनाय पढाया इसमें राम सीताका रमण शृंगार, राजा दशरथका विलाप इत्यादि करुणा, शूर्पणखा विरूप्य इत्यादि हास्य, लक्ष्मण सहित हनुमानके कर्म वीररसमय हैं, रावण इत्यादिके काम रौद्ररस, मारीचलीला भयानकरस, कबन्धका वृत्तांत इत्यादि बीभत्सरस, राम रावणके युद्धमें अद्भुतरस और श्रवण करनेमें सुखद होनेके कारण शान्तरस हैं ऐसे काव्यको दोनों जने गाने लगे ॥ ९ ॥ क्योंकि वे दोनों भ्राता गानविद्यामें बडे दक्ष वह सब ताल स्वर लयआदिमें प्रवीण मानों गन्धर्वोंकी मूर्त्ति हैं ॥ १० ॥ अधिक क्या कहैं उनका सुन्दर स्वर और सुलक्षण देखनेसे जिसप्रकार बिम्बसे प्रतिबिम्ब उठ आताहै वैसेही रामन्द्रजीके समान उनकी देहसे प्रगट हुए जान पडनेलगे ॥ ११ ॥ इसप्रकार अनिन्दित उन दोनों भाइयोंने सर्वश्रेष्ठ रामायणग्रंथ अध्ययन किया और अपनी शिक्षाकी निपुणतासे पढने-के समय और गीत गानेके कालमें ॥१२॥ ऋषि, द्विजाति और साधुओंके संगमें जैसा

पढाया था वह दोनों तत्त्वके जाननेवाले सावधानतासे गाकर संतुष्ट करने लगे ॥ १३ ॥ सर्व लक्षणसम्पन्न वह दोनोंभाई महात्मा महाभाग किसी समय इकट्ठे आत्मज्ञानी ऋषियोंके समाजमें ॥ १४ ॥ बैठकर यह काव्य गानेलगे श्रवण करतेही सुननेवाले सब धर्मवत्सलमुनि नेत्रोंमें जलभरकर ॥ १५ ॥ विस्मययुक्त हो परमप्रीति मनसे धन्यहो धन्यहो एकवाक्यसे वे धर्मवत्सल मुनि ॥ १६ ॥ गानेवाले लवकुश बालकोंकी प्रशंसा करनेलगे उनमें कोई कोई गानेवालोंकी प्रशंसा, कोई कोई गीतोंकी मधुरायी, कोई गीत रचनाकी पंडिताईकी बडाई करने लगे ॥ १७ ॥ किबहुत कालका हुआभी यह प्रत्यक्षके समान दीखताहै ऐसे वे दोनों इसप्रकार ऋषिसभामें प्रवेशकर भले भावसे काव्यको गानेलगे ॥ १८ ॥ मीठे स्वरसे ऊंचे स्वरसे मनोहर गानेलगे. जब इस प्रकारसे महातपस्वी ऋषियोंने उनकी बड़ाई की ॥ १९ ॥ तब वे और भी विशेष गानविद्याके भावोंसे गाने लगे और तो क्या किसी मुनिने प्रसन्न होकर इन्हें अपना कलशा देदिया ॥ २० ॥ किसी महायशस्वीने प्रसन्न होकर अपना वल्कल देदिया, किसीने मृगछाला, किसीने यज्ञोपवीत देदिया ॥ २१ ॥ किसी मुनिने कमंडलु, किसीने मौंजीबंधन, किसी मुनिने आसन किसीने कौपीन देदी ॥ २२ ॥ इसप्रकार किसीने प्रसन्न होकर कुठार, किसीने गेरुवा रँगेहुए वस्त्र किसी मुनिने चीरवस्त्र ॥ २३ ॥ किसीने जटा बांधनेके लिये डोरा, काठ संग्रह करनेके लिये रस्सी, किसीने यज्ञपात्र किसीने काष्ठ भार ॥ २४ ॥ किसीने गूलरकी रस्सी देदी जिन्होंने द्रव्यादि नहीं दिया उनमें भी किसीने स्वस्ति किसीने प्रसन्न हो दीर्घ-जीवी कहकर आशिर्वाद दिया ॥ २५ ॥ इसभाँति सत्यवादी ऋषियोंने लवकुश को वरदिया और सब अचंभेसे हो एकवाक्यसे वाल्मीकिजीकी अनुपम कविताकी प्रशंसा करने लगे कि, उत्तम काव्य बनाया है ॥ २६ ॥ ऋषि कहने लगे यह काव्य कवियोंका आधार होगा, यह कथाके क्रमसे समाप्त हुआ है फिर जैसा यह अद्भुत काव्य है वैसेही गानविद्यामें कुशल इन दोनों भाइयोंने गाया है सो सुनतेही मनको हरलेता है ॥ २७ ॥ तुमने जो गान गाया है यह उमरका बढ़ानेवाला पुष्टि-जनक और सुखोद्दीपक है, इसप्रकार दोनों भाई चारों ओरसे सुख्याति संग्रह करने लगे ॥ २८ ॥ एक दिन दोनों भ्राता अयोध्याके राजमार्गमें गाकर घूम रहे थे, इतनेमें रामचन्द्रजीने उन्हें देखा, और कुश लव दोनों भाइयोंको घरमें बुला लाये ॥ २९ ॥ शत्रुओंको मारनेवाले रामचन्द्रने उनका भलीप्रकार आदर किया

और आप प्रभु सोनेके दिव्यसिंहासनपर विराजे ॥ ३० ॥ उनके बैठतेही लक्ष्मण प्रभृति भ्राताभी और मन्त्रीभी उनके निकटही बैठगये, रामचन्द्रजीने उन दोनों भाइयोंको रूपवान् विनीत और बलवान् देखकर ॥ ३१ ॥ लक्ष्मण भरत शत्रुघ्नसे कहने लगे कि, तुम इन देवसमान तेजस्वी दोनों भ्राताओंसे अपूर्व आख्यान श्रवण करो ॥ ३२ ॥ यह कह उन्होंने इन दोनों भाइयोंको गानेकी आज्ञा दी, तब दोनों भाई ऊँचेस्वरसे राग रागिनी सहित ॥ ३३ ॥ वीणाकी समान मधुर और स्पष्टभावसे श्रवण करनेवालोंके शरीर रोमांचित और हृदय उद्वेलित कर संगीतमें प्रवृत्त हुए, यह कानोंका सुखदायक गाना जनसमाजमें शोभित हुआ ॥ ३४ ॥ तब रामचन्द्रजी अनुजोंसे बोले हे भ्रातृगण ! यद्यपि यह गानेवाले कुश और लव महातपस्वी मुनि-वेष धारण किये हैं तौभी इनके शरीरमें राजचिह्न शोभा पाते हैं यह गानेवाले और उपाख्यान दोनों माधुर्यगुण संपन्न हैं और मेरे यशसे परिपूरित यह चरित्र कल्याण करनेवाला है, इसलिये तुम स्थिर होके श्रवण करो ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रजीने भ्राता-ओंसे यह कहकर फिर दोनों गायकोंसे गानेको कहा. आज्ञानुसार वे दोनों भाई सुन्दर गीत गाने लगे, रामचन्द्रजी सभामें बैठ गीतश्रवणमें आसक्तचित्त होगये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ५.

महात्मा मनुजीसे लेकर जो जयशील सब नरपति इस समुद्रसे घिरी वसुमतिको एक क्षत्र शासन करते आये हैं ॥ १ ॥ जिनके गमन समय साठ हजार सन्तान बनका अनुगमन करती थीं जो सागर खोदकर सगरनामसे पुकारेगये, जिस वंशसे सागरकी उत्पति हुई ॥ २ ॥ इस रामायणमें उन्हीं महात्मा इक्ष्वाकु नृपश्रेष्ठोंके वंशका चरित्र वर्णन कियागया है यह "रामायण" नामसे विख्यात है ॥ ३ ॥ अब हम अर्थ धर्मकी देनेवाली इस कथाको आदिसे अन्ततक गावेंगे आप लोग निंदाको त्याग एकाग्र चित्त होकर सुनिये ॥ ४ ॥ सरयूके तीरपर धनधान्यसे भरापुरा आनन्दके कुलाहलसे पूर्ण कोशलनाम एक देश है ॥ ५ ॥ जगत्प्रसिद्ध अयोध्या उसकी राज-धानी बनी, और वह पुरी मानवेन्द्र महाराज मनुजीकी स्वयं बसाई हुई है ॥ ६ ॥ वह बारह योजनकी लम्बी तीन योजनकी चौड़ी है देखनेमें बड़ी सुन्दर और इस

१ इटलीदेशीय पुस्तकमें यहां एक सा[illegible] [illegible] उपक्रम[illegible]काका सर्ग

राजधानीके तीन प्रधान मार्ग हैं ॥ ७ ॥ जहांका बड़ा राजमार्ग सब शोभायुक्त फल मालाओंसे शोभायमान है और नित्य जहां छिड़काव होता है ॥ ८ ॥ जिसप्रकार देवेन्द्र देवलोकमें वास करते हैं इसी भाँति इस पुरीमें राज्यके बढ़ानेवाले प्रतापशाली राजा दशरथजी वास करते थे ॥ ९ ॥ इस नगरीके चारोंओर किवाड़ व तोरण लगे हुए सब प्रकारके यंत्र व आयुध धरे हुए कहीं कहीं शिल्पी लोग बैठे हुए हैं ॥ १० ॥ पुरीमें सूत और मागध सब रहते हैं, देखनेमें बड़ी धनधान्यसे पूर्ण और अतुलित शोभावाली ऊँची अटारियोंकी झंडी सब पवनसे उड़ती हुई किलेकी रक्षाके लिये तोपें लगी हुई हैं ॥ ११ ॥ कहीं स्त्रियोंकी नाटकशाला विराजमान हैं उद्यानोंमें फुलवाड़ी और आमोंके पेड़ लगे हुए, साल वृक्ष मानो जिस नगरीकी कांची हैं ॥ १२ ॥ किलेके चारों ओर गहरी परिखा खुदीहुई उनमें पानी भरा हुआ, सर्व साधारणके न पहुँचने योग्य, वहां कहीं कहीं हाथी, घोड़े, ऊँट, खिचड़, गाय, बैल बँधेहुए हैं ॥ १३ ॥ कहीं नृपतिवृन्द खड़े हुए कहीं नानाप्रकारके वणिकगण वाणिज्यकी वस्तुयें सजाये हुए हैं ॥ १४ ॥ वहांके रत्नमय राजमहल सब पर्वतोंकी समान शोभायमान हैं, कहीं स्त्रियोंके क्रीड़ा करनेके स्थान दूसरी अमरावतीकी नाईं सोह रहे हैं चित्र विचित्र जिनका आकार है ॥ १५ ॥ कहीं कहीं ऐसी श्रेष्ठ स्त्रियें शोभित हैं वहांके सब स्थानोंपर सोनेका झोल फिरा हुआ है, अनेक प्रकारके रत्नोंसे बिमानगृह परिपूर्ण हो शोभित होरहे हैं ॥ १६ ॥ बहुतसे सुन्दर घर हैं भूमि सब बराबर है यहांकी जमीन चावल और धानोंसे पूर्ण है और जल ऊखके रसकी समान मीठा है ॥ १७ ॥ नगरीमें बहुत स्थानोंपर नगाड़े मृदंग वीणा और शंख बज रहे हैं इनके महानादसे वहांकी बड़ी शोभा होरही है ॥ १८ ॥ अधिक क्या सिद्धपुरुष इस स्थानको तपस्याके उपयुक्त जान विमानकी समान आश्रय करते हैं यहां श्रेष्ठ पुरुषगण सुन्दर भेष धरे सदा शोभा पातेहैं ॥ १९ ॥ जो विविक्त अर्थात् सहायरहित है जो पिता और पुत्रसे रहित है जो विरोध डल-वाकर भाग जाते हैं ऐसोंकी भी जो बाणोंसे विद्ध नहीं होसके उनको लघुहस्तवाले चतुर शब्दवेधी शिकार खेलके मार डालते हैं जहां ऐसे सहस्रों वीर हैं ॥ २० ॥ मतवाले और शब्द करते हुए सिंह व्याघ्र और सूवरोंको वनमें तीक्ष्ण अस्त्र और बाहुबलसे मारनेवाले ॥ २१ ॥ ऐसे अनगिन्त महारथी इस नगरीकी निरन्तर रक्षा करते हैं ऐसी पुरीमें राजा दशरथ वास करते हैं ॥ २२ ॥ साग्निक गुणवान् वेदवेदाङ्ग

और षडङ्गके जाननेवाले सत्यपरायण सहस्रोंके दाता. महर्षिगणके समान ऋषि और ब्राह्मण दशरथजीकी राजधानीमें वास करते हैं ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां पंचमः सर्गः ॥५॥

: ६.

उस अयोध्यामें वेदके जाननेवाले सम्पूर्ण वस्तुओंके संग्रह करनेवाले दूरदर्शी महातेजस्वी अयोध्या और सबदेशमें रहनेवालेके प्रिय ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुवंशमें महारथी यज्ञ करनेवाले इन्द्रियजित् परमधर्मात्मा महर्षियोंके समान राजर्षि त्रिलोकीमें विख्यात ॥ २ ॥ बल- वान् जिन्होंने शत्रुओंको मारडाला जिनके बहुतसारे मित्र अधिक तो क्या कहैं धन- धान्यके इकट्ठा करनेमें इन्द्र और कुबेरके समान विख्यात ॥ ३ ॥ जैसे मनुजी महातेजस्वी लोककी रक्षा करनेवाले हैं वैसे ही महाराज दशरथजी प्रजाकी रक्षा करते थे ॥ ४ ॥ जिसप्रकार अमरावती अमरनाथ इन्द्रसे रक्षित होती है वैसेही सत्य प्रतिज्ञ महाराज दशरथजी धर्म अर्थ कामकी सेवा करतेहुये अयोध्याका पालन करते थे ॥ ५ ॥ उनके राज्यमें नगरीकी प्रजा धर्मपरायण शास्त्रवित, निर्लोभ और सत्य बोलनेवाली थी ॥ ६ ॥ लोग अपने २ धनसे सन्तुष्ट रहते थे सब आवश्यकतानुसार उत्तमोत्तमद्रव्य इकट्ठे कर रखते थे घरघरमें गौ घोड़े और धन धान्य संचय रहता था उनके शासनकालमें जिसकी जो अभिलाषा होती वह पूर्ण होजाती ॥ ७ ॥ कोई मनुष्य कामी कादर नृशंस क्रूर नहीं था न उस अयोध्यापुरीमें कोई नास्तिक और मूर्ख था ॥ ८ ॥ सब नरनारी धर्म शील और जितेन्द्रिय थे और सबही महर्षियोंके समान निर्मलस्वभाव और प्रसन्नथे ॥ ९ ॥ सबही कुण्डल किरीट और माला धारण करते पवित्रभोजन खाते पीते इतर सुगन्ध चन्दनादिक लगाते थे इनसे रहित कोई न था. ॥ १० ॥ न कोई ऐसा बसता था जो सुन्दर भोजन न करता हो, दाता न हो. कंठा बाजू और कंकणादि सब पहिरे थे सबका अन्तःकरण पवित्र था ॥ ११ ॥ न कोई ऐसा बसता था जो अग्निहोत्र और बलिवैश्वदेव न करता हो सबही यज्ञमें दीक्षित थे राज्यमें कोई नीच, तस्कर, दुश्चरित्र और वर्णसंकर नहीं था ॥ १२ ॥ ब्राह्मण इंद्रियोंके जी- तनेवाले आत्मकर्ममें रत रहनेवाले, दान ध्यानमें परायण और प्रतिग्रह दान नहीं लेते थे ॥ १३ ॥ कोईभी नास्तिक झूँठ बोलनेवाला थोड़ा पढ़ाहुआ निन्दा करनेवाला और व्रतादिकार्य्योंसे हीन मूर्ख नहीं था ॥ १४ ॥ सबही षडङ्गसहित वेद पढ़ते थे

कोई भी व्रतरहित अल्पज्ञानी दरिद्री, पागल या व्यथित नहीं था ॥ १५ ॥ नरनारी कोईभी रूपलावण्यहीन व कुरूप दृष्टि नहीं आता था किसीके मनका भाव राजभक्ति के विरुद्ध नहीं था ऐसे पुरुष अयोध्यामें वास करते थे ॥ १६ ॥ ब्राह्मणादि चारों वर्ण देवता और अतिथिकी पूजा करते थे यहांतक कि, सभी कृतज्ञ दाता और शूर थे पराक्रम करके संयुक्त थे ॥ १७ ॥ सभी मनुष्य बड़ी उमरवाले और सत्यधर्मावलम्बी थे किसीकी अकालमृत्यु नहीं होती थी. पुत्र पौत्र कलत्रसहित सब सुखपूर्वक उस नगरीमें कालयापन करते थे ॥ १८ ॥ क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी आज्ञासे चलते वैश्यगण क्षत्रियोंके अनुवर्ती रहते इसी भाँति शूद्र अपने कर्ममें अनुरक्त रहकर ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवामें नियुक्त रहते थे ॥ १९ ॥ जैसे पूर्वकालमें बुद्धिमान् प्रजापति मनुजीसे यह राजधानी रक्षित हुई थी इसी प्रकार इक्ष्वाकुनाथ दशरथजीने उसका शासन किया था ॥ २० ॥ जिसप्रकार सिंहोंद्वारा पर्वतोंकी गुफायें पूर्ण होजाती हैं वैसेही यह राजधानी अग्नितुल्य तेजस्वी असहिष्णु सरलस्वभाव धनुर्विद्यापारदर्शी वीरोंसे परिपूर्ण थी ॥ २१ ॥ यह पुरी काम्बोज बाह्लीकजातिके श्रेष्ठ घोड़ोंसे भरी रहती वनायुदेश और सिंधुनदके समीप देशके घोड़ोंसे जो उच्चैःश्रवाके तुल्य थे पूर्ण थी ॥ २२ ॥ इसीप्रकार विन्ध्यपर्वतके उत्पन्न हुए हिमालयोत्पन्न पर्वताकार अतिबली मदवाले हाथियोंसे अयोध्या भली भाँति रक्षित रहती थी ॥ २३ ॥ ऐरावतके कुलके महापद्मके कुलके अञ्जन और वामनवंशके हाथियोंसे ॥ २४ ॥ भद्र, मन्द्र, मृग, भद्र मन्द्र, मृग. और भद्र मन्द्र, भद्र मृग और मृगमंद्र नामक संकर हाथियोंसे यह पुरी ढकी रहती थी ॥ २५ ॥ सब हाथी मतवाले और पर्वतोंके समान रहते ऐसे हाथियोंसे यह पुरी पूर्ण थी कोई यहां युद्ध करने नहीं आता, इसकारण अयोध्या इसका नाम सार्थकही है. यद्यपि विस्तार इसका तीनही योजनका है परन्तु दो योजनके मध्यमेंभी कोई युद्ध करनेका साहसी नहीं होता था ॥ २६ ॥ तारानाथ जिसप्रकार उडगणका शासन करते हैं, वैसेही शत्रुमर्दनकारी महातेजस्वी राजा दशरथजी [illegible] पुरीको पालन करते थे ॥ २७ ॥ उस सत्यनामवाली सुदृढ तोरणोंसे शो[illegible]लयुक्त दिव्य विचित्र गृहोंसे शोभित कल्याणरूपा सहस्रों लोकोंसे व्याप्त अ[illegible]को राजा दशरथ इन्द्रके समान पालन करतेथे ॥ २८ ॥

[illegible]रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

इक्ष्वाकुवंशीय नृपति महात्मा दशरथजीके प्यारे मंत्र देनेवाले और चेष्टाके जानने-वाले नित्य हितकारी ॥ १ ॥ उन वीरके शुद्ध और यशस्वी निरंतर राजकाममें तत्पर ऐसे आठ अमात्य अर्थात् मंत्री थे यह सब जैसे पवित्र थे वैसेही राजकार्य्यमें नित्य लगेहुये थे ॥ २ ॥ धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और अर्थवित् सुमंत्र यही आठ अमात्य थे ॥ ३ ॥ ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ और वामदेव यह राजाको यज्ञ कराया करते थे, ऐसेही और भी ऋषि मंत्रीका कार्य्य करतेथे ॥४॥ इनके सिवाय सुयज्ञ, जाबालि, कश्यप, गौतम, बड़ी उमरवाले मार्कण्डेय व कात्यायन यह सब ऋषिलोगभी मंत्री थे ॥ ५ ॥ राजाके पीढ़ियोंके चले आये यह मंत्री सब ब्रह्मर्षियोंके साथ मिलित हो राजकार्यमें सहाय करते यह सब विद्वान् विनीत लज्जा चतुर और जितेन्द्रिय थे ॥ ६ ॥ यह देखनेमें सुन्दर महात्मा शास्त्रनिपुण बड़े शील पराक्रमी व कीर्तिमान् राजकाजमें सावधान जो कहैं सो करनेवाले थे ॥ ७ ॥ इनमें तेज, क्षमा, यश भरपूर था यह सब हास्यमुख हो बात करते थे, क्रोध व दुष्टमतिसे बाध्य होकर यह झूँठ नहीं बोलते थे ॥८॥ वह आत्मा और अनात्माका सब विषय जानते निजपक्ष व शत्रुपक्षके जो कुछ कार्य्य करते हैं, करदिये हैं व करैंगे, दूतद्वारा यह सब जान लेते थे ॥ ९ ॥ यह व्यवहारी कार्योंमें चतुर थे प्रथमही राजाने इन-की परीक्षा करली थी यदि पुत्रभी अपराधी हो तोभी यह लोग दंड देनेमें कसर नहीं करते थे ॥ १० ॥ खजाना इकट्ठा करने और सैन्य संग्रह करनेमें यह लोग बड़े यत्नवान् थे निरपराध शत्रुकाभी बुरा चाहनेका इनका स्वभाव नहीं था ॥ ११ ॥ यह सबही उत्साहवाले वीर नीतिशास्त्रके अनुष्ठान करनेवाले पवित्रलोग जो देशमें वास करते हैं सदा उनकी रक्षा करतेथे ॥ १२ ॥ यह सब मंत्री दोषीका दोष विचारके बल अबल देखकर उसे दंड देते ब्राह्मण क्षत्रियोंके प्रति हिंसाका परिचय न देकर राजकोष पूर्ण करते थे ॥ १३ ॥ निर्मलबुद्धि सब एकमतावलम्बी मंत्रियोंके विचा-रसे कोईभी मिथ्यावादी उस पुरी व देशमें नहीं था ॥ १४ ॥ खोटे स्वभाववाला दुष्ट व पराई स्त्रीसे प्रीति करनेवाला खोटे व्रतवाला या कुप्रकृतिका पुरुष वहां नहीं था नगरमें सब जगह शांति विराजमान थी ॥ १५ ॥ राजमंत्रीगण सदा पवित्र वस्त्र पहिनते, वह राजाका हित करनेकेलिये सदा तत्पर रहते, न्यायशास्त्रके अनु-सार सदा काम करते थे अर्थात् उनके न्यायका नेत्र सदा खुला रहता था ॥ १६ ॥

वह गुरुजनोंके गुण ग्रहण करते और अपने विक्रमके प्रभावसे विख्यात थे. दूसरे देशोंकी घटना इन्हें ज्ञात रहती और यह सब जगह अपनी बुद्धिमानीसे प्रसिद्ध थे ॥ १७ ॥ यह नानागुणोंसे सुपंडित तो थे परन्तु सत्त्व, रज, तम. इन तीन गुणोंसेभी हीन नहीं थे. जैसे यह सन्धिविग्रहमें निपुण थे वैसे मेल मिलापी भी बड़े थे ॥ १८ ॥ इन लोगोंकी गूढ मंत्रणाशक्ति जैसी प्रबल थी ऐसेही सूक्ष्म बुद्धिभी थी. यह नीतिशास्त्रके जाननेवाले और सदा प्रियभाषी थे ॥ १९ ॥ इस भाँति पापरहित राजा दशरथजी ऐसे गुणवान् मंत्रियोंके साथ पृथ्वीका पालन करते थे ॥ २० ॥ उन्होंने दूतके मुखसे परराष्ट्रोंका तत्त्व जानकर धर्मानुसार प्रजापालनपूर्वक अधर्मको त्यागदिया था ॥ २१ ॥ वह तीनों लोकोंमें दाता प्रसिद्ध थे युद्धोंमें अपनी प्रतिज्ञा सत्य करते थे. इस भाँति वह पुरुषसिंह पृथ्वीको शासन करते थे ॥ २२ ॥ देवनायक जैसे देवलोकका शासन करते हैं वैसेही उन्होंने जगत्में राज्य किया था उन्होंने अधिक बलवान् व समान शत्रुका मुख नहीं देखा, उनके मित्र जैसे प्रबल थे आधीनके राजाभी वैसेही उनको नमते थे. और अधिक क्या कहैं उनका राज्य निष्कण्टक था ॥ २३ ॥ वह किरणमाला मंडित उदय हुए सूर्यदेवके समान मंत्र जाननेमें चतुर परहितकारी अनुरागी सूक्ष्मदर्शी सामर्थ्ययुक्त मंत्रियोंके साथ अतिशोभा पाते थे ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे भाषायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

ऐसे प्रभावशाली महात्मा धार्मिक दशरथजीने पुत्रकी कामनाके अर्थ तपभी किया तोभी उनके वंशधर कुमार उत्पन्न नहीं हुआ ॥ १ ॥ एक समय यही चिन्ता करते २ उन महात्माने मनमें विचारा कि, पुत्रार्थ अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान मैं क्यों नहीं करता हूं ॥ २ ॥ फिर वह बुद्धिमान् राजा दशरथजीने नीतिकुशल मंत्रियोंके साथ यज्ञ करना चाहिये ऐसा दृढ निश्चय किया ॥ ३ ॥ तब श्रेष्ठ मंत्री सुमन्त्रसे संभाषण करके कहा कि, हे सुमन्त्र ! तुम गुरुजी और सब पुरोहितोंको मेरे पास लाओ ॥ ४ ॥ तब सुनतेही शीघ्र चलनेवाले सुमंत्र शीघ्र जाकर वेदपरायण गुरु वसिष्ठजी पुरोहितोंको राजाके पास लाये ॥ ५ ॥ तब सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, वसिष्ठ और अन्यऋषिश्रेष्ठगण वहां उपस्थित हुए ॥ ६ ॥ तब महात्मा दशरथजीने उनकी पूजा करके इसप्रकारके धर्मयुक्त मनोहर वचन

कहे ॥ ७ ॥ मैं पुत्रकी कामना करता हूं मेरे अंतःकरणमें सुखका लेशमात्रभी नहीं अतएव मैं पुत्रके लिये अश्वमेध यज्ञ करनेकी वाञ्छा करता हूं ॥ ८ ॥ मैं शास्त्रके अनुसार कार्य्य करना चाहताहूं अब आपलोग यह बात बतलाइये कि, किस-प्रकार मेरी मनोवांछा पूर्ण होगी ॥ ९ ॥ राजाके मुखसे यह बात सुनकर वसिष्ठादि मुनिगण राजाको वारंवार धन्यवाद व साधुवाद देने लगे ॥ १० ॥ उन्होंने परमप्रीतियुक्त हो राजासे कहा कि, यज्ञकी सब सामग्री मँगाकर यज्ञका घोड़ा छोड़ा जावे ॥ ११ ॥ सरयूके उत्तर किनारे यज्ञभूमि बने. हे पार्थिव ! हम कहते हैं कि, इस अनुष्ठानके करनेसे आपके पुत्र होंगे ॥ १२ ॥ जब आपकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त हुई है तो अवश्यही शुभ फल होगा ब्राह्मणोंकी यह वार्ता सुन राजा अतिसन्तुष्ट हुये ॥ १३ ॥ तदनन्तर राजाने हर्षविकसितनेत्रोंसे मंत्रियोंको सम्बो-धन कर कहा आप गुरुदेवकी आज्ञासे यज्ञका प्रयोजनीय सामान इकट्ठा करें॥ १४ ॥ अच्छे रक्षकोंसे रक्षित व उपाध्यायके सहित अच्छा समर्थ घोड़ा छोडाजावे सरयूके तीर यज्ञभूमि बनाई जावे ॥ १५ ॥ और कल्प तथा विधिके अनुसार शान्तिकी कल्पना कीजाय क्योंकि प्रत्येक राजा इस यज्ञको नहीं कर सक्ते ॥ १६ ॥ इस यज्ञमें बहुतसे विघ्नोंके होनेकी सम्भावना है विशेषतः इसको जानकर विद्वान् ब्रह्मराक्षस इसमें छिद्र ढूंढा करते हैं ॥ १७ ॥ विधिविहीन यज्ञ करनेसे यज्ञ कर्त्ताका शीघ्र नाश होजाता है अतएव ऐसा उपाय करना चाहिये कि, यज्ञका कार्य्य विधिपूर्वक हो जाय ॥ १८ ॥ तुम यही विधान करो कारण कि, इस साधनमें समर्थ हो. मंत्रियोंने जो आज्ञा महाराज कहके राजाज्ञा शिरोधारणकी ॥ १९ ॥ नरनाथका वाक्य श्रवण करके धर्मज्ञ द्विजगण राजासे सत्कृत हो इन्हें आशीर्वाद देनेलगे ॥ २० ॥ अन-न्तर विप्रमंडली उनकी आज्ञा ले अपने अपने आश्रमको गई राजा उनको बिदाकर सचिवोंसे बोले ॥ २१ ॥ ऋत्विजोंने जैसी आज्ञा दी है यज्ञके अर्थ वैसाही सामग्रीका विधान करो राजोंमें सिंहसमान राजा दशरथजी उन आयेहुए मंत्रियोंसे यह वचन कहकर ॥ २२ ॥ उनको बिदा दे बुद्धिमान् राजा अपने रनिवासको चलेगये और वहां जाकर अपनी हृदयको आनन्द देनेवाली रानियोंसे ॥ २३ ॥ यह वचन बोले कि, मैं पुत्रकी कामनासे यज्ञ करूंगा तुमभी इस कार्यमें दृढ निश्चय हो नियममें दीक्षित हो वे रानियें राजा दशरथके ऐसे मनोहर वचन श्रवण कर ॥ २४ ॥ वसन्तकालमें कमालना शोभाको प्राप्त होती है वैसेही उनका मुखकमल खिलगया ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायामष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

राजा यज्ञ निश्चय करैंगे यह जानकर सुमन्त्रने उनसे अकेलेमें कहा, महाराज ! मैंने इस यज्ञके विषयमें पुराणोंमें जो कुछ सुना है वह सुनिये ॥ १ ॥ सन्तानके अर्थ यज्ञ करना ऋषियोंका मत है परन्तु मैंने इसमें कुछ विशेष सुना है पूर्वकालमें भगवान् सनत्कुमारजीने ॥ २ ॥ ऋषियोंके निकट आयके पुत्रउत्पत्तिके विषयमें यह कथा कही थी कि, महर्षि कश्यपजीके विभाण्डक नामक एक पुत्र है ॥ ३ ॥ उनके पुत्र ऋष्यशृङ्ग नामवाले होंगे वह पिताके यत्नसे बड़े होकर वनवासीकी भांति काल व्यतीत करैंगे ॥ ४ ॥ उन ब्राह्मणश्रेष्ठको पिताकी आज्ञा पालन करनेके सिवाय और कुछ ज्ञान नहीं होगा वह महात्मा दो प्रकारका ब्रह्मचर्य्य करैंगे ॥ ५ ॥ यह बात द्विजातिगण सदा कहते हैं और यह लोकप्रसिद्ध वार्ता है, इस प्रकारसे अग्निकी परिचर्या और पितृसेवामें ऋष्यशृङ्गको कुछ काल बीतेगा उसी समय रोमपाद नाम एक बड़ा प्रतापी राजा ॥ ६ ॥ ७ ॥ अंगदेशमें प्रसिद्ध महाबलशाली होगा, इस राजाके दोषसे अत्यन्त राज्यमें दारुण सर्वलोकोंको भय देनेवाली ॥ ८ ॥ घोर अनावृष्टि होगी उससे सब लोक व्याकुल होजायँगे अनावृष्टिसे राजा अति चिन्तित हो ॥ ९ ॥ शास्त्रवेत्ता विप्रोंको बुलाकर कहैगा आप लोकाचार श्रुतिविहित कार्योंको जानते हैं ॥ १० ॥ अतएव इस मेरे पापका जो प्रायश्चित्त हो सो मुझे बताइये इस रीतिसे वे ब्राह्मणश्रेष्ठ उस राजाकी बात सुनकर ॥ ११ ॥ वे सब वेदपारग श्रेष्ठ ब्राह्मण कहैंगे हे महीपाल ! आप विभाण्डकके पुत्रको किसी उपायसे यहां लिवालाइये ॥ १२ ॥ हे राजन् ! उन वेदपारग विभाण्डकमुनिके पुत्र ऋष्यशृंगको लाय विधिपूर्वक सत्कार कर ॥ १३ ॥ उनको अपनी कन्या शान्ता विधिपूर्वक देदीजिये उनकी बात सुन राजाको चिन्ता होगी ॥ १४ ॥ कि, किस उपायसे उस वीर्यवान् ऋषिको यहां बुलाऊं उसकी यह चिन्ता प्रबल होजायगी ॥ १५ ॥ तदन्तर मंत्रियोंसे सलाह करके पुरोहित व और २ सेवकोंको वहां जाने की आज्ञा देंगे ॥ १६ ॥ वह लोग राजाके वचन सुन व्यथित हो और माथा नवाय हमलोग महर्षि विभाण्डकके डरसे ऋष्यशृंगके पास नहीं जासक्ते यह कह राजाकी बहुत विनती करैंगे ॥ १७ ॥ फिर वे सब शोचकर इसका उपाय कहैंगे कि, हम ऋष्यशृंगको यहां ले आवेंगे, हमने जो उपाय स्थिर किया है उससे कोई दोषभी नहीं

होगा ॥ १८ ॥ तदनन्तर अंगनाथने सुन्दर सुन्दर वेश्यागणोंकी सहायसे ऋष्यशृंगको अपने देशमें ला शास्त्रानुसार शान्ता अपनी कन्याको उन्हें विवाहकर अनावृष्टि दूर कराई ॥ १९ ॥ आपके जामाता ऋष्यशृंग आपकी पुत्रकामना पूर्ण करेंगे सनत्कुमारजीने जो कहा था वही मैंने आपको सुनाया ॥ २० ॥ राजा दशरथ जी सुमन्त्रकी सलाहसे सन्तुष्ट हो उससे कहने लगे हे सूत ! जैसे ऋष्यशृंगको बुलाया गया तुम वही उपाय कहो ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

अनतर राजा दशरथजीने हर्षचित्त हो सुमन्त्रसे कहा कि. जिसप्रकार अंगराज ऋष्यशृंगको लाये थे वह तुम मुझसे कहो. राजाके वचन सुन सुमंत्र बोले कि, जिस भाँति राजा लोमपाद ऋष्यशृंगको अपने राज्यमें लायेथे आप मंत्रियोंके सहित उसे श्रवण कीजिये ॥ १ ॥ राजा लोमपादकी बात सुनके उनके कुल पुरोहित और मंत्री उनसे कहने लगे कि, ऋष्यशृंगके लानेको हमने जो उपाय ठीक किया है वह कभी विफल नहीं होगा ॥ २ ॥ वह ऋष्यशृंग मुनी-न्द्र वेदाध्ययनसंपन्न व वनमें रहते हैं वह स्त्रीसहवासके सुख और विषयको नहीं जानते ॥ ३ ॥ हम लोग चित्तको उन्माद करनेवाले लोभनीय पदार्थोंकेद्वारा उनको यहां ले आनेमें समर्थ होंगे सो आप जल्दी उनको इकठा कीजिये ॥ ४ ॥ परमसुंदर वेश्यायें वहां शृंगार करके जावें, वह बहुतसे उपाय करके लुभायकर उन्हें यहां ले आवेंगी ॥ ५ ॥ राजाने यह बात श्रवणकर पुरोहितोंपर इस कार्यका भार सौंपा पुरोहितोंके सम्मतहोनेसे मंत्रीगण राजी हो इस कार्यका सामान करने लगे ॥ ६ ॥ वाराङ्गनाओंने मंत्रियोंकी आज्ञासे वनमें प्रवेशकर महर्षिके आश्रमके निकट एकान्तमें उनके देखनेका यत्न करने लगीं ॥ ७ ॥ वह ऋषिकुमार अतिशय धीर स्वभाव नित्य आश्रममें रहते और पिताके प्यारे थे इस कारण कभी आश्रम छोड़ कहीं न जातेथे इन महात्मा तपस्वीने ॥ ८ ॥ जन्मावधि स्त्री पुरुष या वहांका कोई जन्तु नगरका अथवा राष्ट्रका मनुष्यमात्र नहीं देखाथा ॥ ९ ॥ एक दिन वह विभांडकके पुत्र यहां अपनी इच्छासे घूमते हुये चले आये जहां यह वारविलासिनियें विराजती थीं जब इनको देखा ॥ १० ॥ तब

उनको आता हुआ देख विचित्रवेशवाली गणिकायें गीत गाने लगीं और ऋषि-पुत्रके पास आकर सब बोलीं ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मण ! आप कौन हैं ? क्या करतेहैं ? और इस वनमें इकले घूमनेका क्या कारण है ? यह हमको कहो ॥ १२ ॥ तब ऋषिकुमार उन अनदेखी कामरूप अंगनाओंको वनमें देख प्रीतिसहित अपना नाम धाम बतानेको अग्रसर हुये ॥ १३ ॥ उन्होंने कहा मैं विभाण्डक मुनिका औरस पुत्रहूं नाम ऋष्यशृङ्ग है तप करना जो हमारा कार्य्य है वोह तो लोकमें प्रसिद्धहै ॥ ॥ १४ ॥ हे चित्रदर्शनों ! यहांसे निकटही हमारा आश्रम है चलो वहाँ मैं तुम्हारा यथाविधि आदर सन्मान करूंगा ॥ १५ ॥ ऋषिकुमारके कहे जानेपर वह सब वेश्या उनके आश्रमको देखनेकी इच्छा करती हुईं और फिर वे सब वेश्या उनके आश्रममें गईं ॥ १६ ॥ उनके पहुँचतेही यह अर्घ्य, यह पाद्य, यह फल मूल. इत्यादि उपचार देकर ऋषिनंदनने उनका अतिथिसत्कार किया ॥ १७ ॥ उन्होंने सत्कार पाकर विभाण्डकके भयसे भीतहो शीघ्र वहांसे लौटना चाहा ॥ ॥ १८ ॥ उन्होंने फिरनेके समय कहा हे द्विज ! आपभी हमारे यह मीठे फल अंगीकार कीजिये आपका मंगल होगा और आप इनको शीघ्र खाइये ॥ १९ ॥ फिर उन सबने बहुत प्रफुल्लमनसे ऋषिकुमारको हृदयसे लगा उनको अनेक प्रकारके स्वादयुक्त लड्डू इत्यादि खानेके पदार्थ दिये ॥ २० ॥ पूर्वमें न खायेहुए वह सब खाकर तेजस्वी ऋषिकुमारने विचारा कि, ऐसे सुन्दर मीठे फल वनवासि-योंने कभी नहीं खाये और उनको फलही माना ॥ २१ ॥ तदनन्तर महर्षि विभा-ण्डकके भयसे भीत हो वह वाराङ्गनायें किसी प्रकारका व्रत कह ऋषिकुमारसे बिदाले उनके आश्रमसे चली आईं ॥ २२ ॥ उनके चले जानेपर कश्यपपुत्र ऋष्यशृं-गका हृदय उनके विरहसे अति व्याकुल हुआ ॥ २३ ॥ अनन्तर वह वीर्यवान् चिंता करते करते पहिले दिन जहां वह सब स्त्रियें मिली थीं दूसरे दिन फिर वहाँ आये ॥ २४ ॥ जहां मन मुग्ध करनेवाली शृंगार किये हुए वह स्त्रियें थीं उन विप्रको देखतेही अति सन्तुष्ट हुईं ॥ २५ ॥ और सबने आगे बढ़कर कहा हे सौम्य ! यहांसे कुछ दूर हमारा आश्रम है आप वहां चलिये ॥ २६ ॥ हमारे आश्रममें विचित्र कन्द, मूल, फल और भोजन यहांसे अधिक हैं वहां यहांकी अपेक्षासे आपका अतिथिसत्कार कुछ विशेष होगा ॥ २७ ॥ उनकी हृदयानन्ददायिनी बात श्रवणकर ऋषिपुत्र उसी समय वहां जानेको सम्मत हुए और वारनारियें उनको

लेकर नगरमें चली आईं ॥ २८ ॥ इस भाँति उन ऋषिकुमारको रोमपादके राज्यमें पहुँचतेही प्रजा आनन्दमें मग्न होगई और शचीनाथभी अनर्गल वृष्टि करने लगे ॥ ॥ २९ ॥ राजाने वर्षाके साथ तपस्वी ऋषिकुमारको आता देख सविनय आगे बढ़ उनके चरणोंमें वन्दना की ॥ ३० ॥ फिर उनको यथाविधि अर्घ्य देनेपर छलसे लाये गये हैं पीछे यह जानकर कुपित न होजायँ इस कारण उनकी प्रसन्नताके हेतु प्रार्थना करने लगे ॥ ३१ ॥ अनन्तर इन्हें रनिवासमें लेजाने और कन्या शान्ताको यथाविधि समर्पण कर देनेपर वह अति सन्तुष्ट हुए ॥ ३२ ॥ हे नरेन्द्र ! इस भाँति महातेजा ऋष्यशृंग सर्वकाम पूर्ण हो सहधर्मिणी शान्ताके सहित वहां रहने लगे ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे भाषायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥

सर्गः ११.

हे राजेन्द्र ! देवप्रवर धीमान् सनत्कुमारजीने जो कहा था आप फिर मुझसे वह हितकर वाक्य श्रवण कीजिये ॥ १ ॥ उन्होंने कहा था कि, इक्ष्वाकुवंशमें धर्मात्मा सत्यवादी श्रीमान् दशरथ नाम एक राजा जन्म लेंगे ॥ २ ॥ अंगराजसे उनकी मित्रता होगी; उन्हीं दशरथके शान्ता नाम एक कन्या उत्पन्न होगी ॥ ३ ॥ फिर अंग राजाके पुत्र रोमपादसे राजा दशरथकी मित्रता होगी. एक समय यशस्वी अवधनाथ अंगनाथके पास जाकर कहेंगे ॥ ४ ॥ कि, हे राजन् ! मेरे सन्तान नहीं है इस लिये आपके जामाता ऋष्यशृंगको लेजाकर यज्ञ किया चाहता हूं आप अनुमति दीजिये जिससे मेरे वंशकी रक्षाहो ॥ ५ ॥ सुहृद्वाक्य श्रवण करके अंगराज मनमें शोच समझ स्त्री पुत्र सहित ऋष्यशृंगको उनके समर्पण करदेंगे ॥ ६ ॥ नरनाथ प्रसन्न मनसे उनको ले चिन्तारहित हो पुत्रेष्टि यज्ञका अनुष्ठान करेंगे ॥ ७ ॥ और सन्तानकेद्वारा यशकी इच्छा करनेवाले धर्मवेत्ता राजा दशरथजी हाथ जोड़कर उन ऋष्यशृंग मुनिको यज्ञमें वरण करेंगे ॥ ८ ॥ पुत्रार्थ और स्वर्ग प्राप्तिके निमित्तसे जो दशरथ राजाको यज्ञकी कामना होगी वह कामना विप्रवर ऋष्यशृङ्गसे पूर्ण होगी ॥ ९ ॥ उससेही त्रिलोकविख्यात अमिततेज वंशधर सर्वप्राणीमात्रोंमें प्रसिद्ध ऐसे चार पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ १० ॥ इसप्रकारसे वह देवप्रधान सनत्कुमार पूर्व कालमें सत्ययुगमें ऋषियोंसे मिलनेपर यही बोलेथे ॥ ११ ॥ हे पुरुषसिंह ! इसलिये आप

अब सबल वाहनोंसे वेष्टित हो बहुत आदर सन्मानसे उन महर्षिको ले आइये॥ १२॥ सुमन्त्रके वचन सुन राजा दशरथ अतिशय प्रफुल्ल हुये और सुमन्त्रका कथन सुन वसिष्ठजीसेभी पूछकर ॥ १३ ॥ उनसे अनुमति ले मंत्री और अंतःपुरचारियोंके सहित अंगराज्यमें रानीसहित गये. जाते जाते वन और नदियोंको अतिक्रम करने लगे ॥ १४ ॥ तदन्तर जहां वह मुनिपुंगव रहतेथे वहां पहुँचे और रोमपादके समीप रहनेवाले उन ब्राह्मणश्रेष्ठको प्राप्तहो ॥ १५॥ वहां दीपते हुये अनलके समान रोमपादके निकटवर्ती उन ऋषिके दर्शन कर यथाविधि अर्चना की ॥ १६ ॥ फिर रोमपाद राजा दशरथ महाराजकी मित्रताके कारणसे अत्यन्त संतुष्ट अंतःकरण होकर बुद्धिमान् उन विभाण्डक ऋषिके पुत्र ऋष्यशृङ्ग महर्षिको॥ १७॥ परस्परकी मित्रताका संबंध कहा तब ऋष्यशृङ्ग ऋषिनेभी उन दशरथजीका यथोचित सत्कार किया. इसप्रकार राजा दशरथ रोमपादसे सत्कृत हो ॥ १८ ॥ सात आठ दिनपर्य्यंत एकत्र वास करके रोमपाद राजासे बोले कि, हे मित्र नरनाथ ! आपकी रोमपाद शान्ता नामक कन्याहै उसको भर्त्ता सहित दीजिये ॥ १९ ॥ हे राजन् ! एक कार्य्य उपस्थित हुआ है अर्थात् मुझे यज्ञ करना है इसकारण स्वामीसहित शान्ताको मेरे यहां भेज दीजिये. मित्रका अभिप्राय समझ अंगराज इस बातमें सम्मतहुये ॥ २० ॥ शान्ता समेत जामाताको मित्रके गृहमें जानेको कहा ऋष्यशृङ्गनेभी इस विषयको स्वीकार किया. ॥ २१ ॥ अनन्तर लोमपादके वचन मान ऋषिप्रधान ऋष्यशृङ्ग सहधर्मिणीको संगले अयोध्याकोगये जाते समय दोनों मित्र हाथपकड़ एक दूसरेको आलिंगन कर ॥ २२ ॥ फिर दशरथजी और बलवान् रोमपाद बड़े आनन्दको प्राप्तहुए फिर कोशल राजमित्रसे पूछकर अयोध्याको चले॥ २३॥ फिर राजाने अयोध्यामें शीघ्रगामी दूतको खबर करनेके लिये भेजा उसने कहा कि, नगरको भलीभाँति सजाओ ॥ २४ ॥ धूप जलाओ, छिडकाव करो पताकाओंको लगाओ इसप्रकार नगर सजाओ पुरवासियोंने यह सुनकर कि, राजा आतेहैं ॥ २५ ॥ प्रसन्नहो भलीप्रकार नगरको सजा दिया तदनन्तर नृपति सजीसजाई राजधानीमें प्रवेश करते हुये ॥ २६ ॥ उस समय सबने शंख और दुन्दुभी बजाकर उन ऋषिश्रेष्ठको आगे जाकर लिया और उनको पाकर अपार आनन्द अनुभव करने लगे ॥ २७ ॥ जैसे सुरराज वामनदेवको स्वर्गमें लगयेथे उस समय जैसी उनकी शोभा हुईथी इन्द्रके सहकारी नरेन्द्रभी ऋष्यशृङ्गके साथ ऐसेही शोभित हुये ॥ २८ ॥ अनन्तर स्त्रीसहित ऋष्यशृङ्गको

रनवासमें लेजाकर राजाने भलीभाँतिसे उनकी पूजाकी और उनके आनेसे अपनेको कृतकृत्य जाना ॥ २९ ॥ सब रनवास पतिके संग आईहुई बड़े नेत्रवाली शान्ताको देख प्रेमसे आन्दको प्राप्तहुआ ॥ ३० ॥ नृपनंदिनी शान्ता नृपति दशरथ और अन्यान्य अंतःपुरवासिनियोंकी प्रीतिसे यत्नकिये जाकर पति सहित वहां परमसुखसे कुछ दिन बसी ॥ ३१ ॥

इत्यार्षश्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये बालकाण्डे भाषायांएकादशःसर्गः॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

तदनन्तर बहुत दिन व्यतीत होनेपर मनोरम वसन्तकाल आपहुँचा और तभी राजा दशरथने अपना यज्ञ करना विचारा ॥ १ ॥ उस समय उन्होंने महर्षि ऋष्यशृङ्गके चरणकमलोंकी वंदना की और कुलरक्षा और सन्तानकी कामनासे उनको यज्ञमें वरण किया ॥ २ ॥ यज्ञकार्यमें वृती होकर उन्होंने राजाको आज्ञा दी कि, यज्ञका सब सामान होकर घोड़ा छोड़ा जाय ॥ ३ ॥ सरयूके उत्तर तीर यज्ञभूमि बनाई जाय तब राजाने सुमन्त्रको वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंके ॥ ४ ॥ लानेकी आज्ञा दी सुमन्त्रने राजाकी आज्ञासे सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, कश्यप॥५॥ पुरोहित वसिष्ठ और भी यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंको शीघ्र चलनेवाले सुमन्त्र जल्दीसे जाकर बुलालाये ॥ ६ ॥ जब वे सम्पूर्ण वेदके जाननेवाले ब्राह्मण आगये तब धर्मात्मा राजा दशरथ पूजन कर ॥ ७ ॥ धर्मानुगत मधुर वाक्य कहने लगे हे विप्रगण ! मैं पुत्रकी कामनासे बड़ा व्याकुलहूं और मुझे कुछ सुख नहीं है ॥ ॥ ८ ॥ सो मैंने पुत्रार्थ अश्वमेध यज्ञ करना विचारा है सो उसको हयमेधके कर्मानुसार करूंगा ॥ ९ ॥ मुझे विश्वास है कि, इन ऋष्यशृंगके प्रभावसे मेरी मनकामना सिद्ध होगी, राजाके वचन सुन ब्राह्मण बहुत अच्छा कहने लगे ॥ १० ॥ राजाके वचन सुन वसिष्ठादि सब वह विभाण्डकजीके पुत्रको आगे करके कहने लगे ॥ ११ ॥ आप यज्ञका सामान कीजिये घोड़ा छोड़िये सरयूके उत्तरतीर यज्ञभूमि बनवाइये ॥ १२ ॥ जब ऐसे धर्मानुष्ठान करनेमें आपकी प्रवृत्ति हुईहै तब भलेप्रकारसे इस कार्यका अनुष्ठान होनेपर विपुल विक्रमशाली चार पुत्र आपके होंगे ॥ १३ ॥ तब राजेन्द्र ब्राह्मणोंके वाक्य श्रवण कर बहुत प्रसन्न हुये और प्रसन्नहो मंत्रियोंसे यह सुन्दर वचन बोले ॥ १४ ॥ तुम सब इन गुरुदेवोंका वचन सुन

जल्दीसे यज्ञकी सब सामग्री लाओ और चतुर पुरुष यज्ञीय घोड़ेकी रक्षामें नियुक्त हों श्रेष्ठ यज्ञ करने वाले ऋषि मंत्रपूत करके घोड़ेको छोडें ॥ १५ ॥ सरयूके उत्तर भागमें यज्ञभूमि बनाओ और विधिपूर्वक शान्ति करो देखो सब राजाओंको॥ १६ ॥ यह यज्ञ करनेका अधिकार है परन्तु यह सरलतासे नहीं होता विशेष करके इस कार्य्यमें अनेक विघ्न व बाधायें पड़जाती हैं ॥ १७ ॥ विद्वान् ब्रह्मराक्षस विघ्न करनेको इसमें छिद्र ढूँढा करते हैं विधिको उल्लंघन करके यज्ञ करनेसे यज्ञकर्ताका नाश होजाताहै ॥ १८ ॥ अतएव जिससे मेरा यह यज्ञ विधिपूर्वक पूर्ण होजाय तुम इस विषयमें सावधान रहना क्योंकि तुमलोग विधिपूर्वक यज्ञ करने करानेमें समर्थहो ॥ १९ ॥ मंत्रीगण राजाज्ञा सुन जो आज्ञा महाराज कह उनके वाक्या-नुसार कार्य्य करनेमें प्रवृत्त हुये ॥ २० ॥ तदनन्तर विप्रवर्ग धर्मात्मा राजाकी स्तुति करके उनसे बिदा माँग अपने अपने आश्रमोंको लौटे ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंके जानेपर मंत्रियोंको बिदा दे महाबुद्धिमान् राजाने अपने रनवासको गमन किया ॥ २२ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

देखते देखते वर्ष बीतनेपर फिर वसन्त ऋतु आई राजा दशरथजीभी संतानके निमित्त यज्ञ करनेको उद्यत हुए ॥ १ ॥ तब महीपालने ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठ-जीको यथाविधि प्रणाम और पूजा कर पुत्रके निमित्त कहा ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् मुनिश्रेष्ठ! आप शास्त्रानुसार मेरा यज्ञकार्य्य समापन कीजिये आपसे यही प्रार्थना है कि, ऐसा उपाय कीजिये जिससे यज्ञमें कोई विघ्न न हो ॥ ३ ॥ आप हमारे हितकारी बन्धु और परम गुरु हैं अतएव इस उपस्थित कार्य्यमें सब बोझ आप-कोही ग्रहण करना पड़ेगा ॥ ४ ॥ राजाकी बात सुन वसिष्ठजी बोले कि, आपकी प्रार्थना अवश्य पूरी होगी मैं यह सब करूंगा जिसकी आपको अभिलाषा है ॥ ५ ॥ तदनन्तर उन्होंने यज्ञकार्य कुशल वृद्ध सुधार्मिक स्थापत्यकर्ममें निष्ठ ब्राह्मणोंको ॥ ६ ॥ समाप्तिपर्यन्त कर्मनिर्वाह करनेवाले तथा शिल्पकर भृत्य तक्षण कूपादि खोदनेवाले तथा ज्योतिषी तथा चर्मकारादि नट नर्त्तक ॥ ७ ॥ और पवित्र शास्त्रज्ञ बहुत पढ़े पुरुषोंको बुलाकर कहा कि, तुम राजाकी आज्ञासे यज्ञकार्यमें नियुक्त हो ॥ ८ ॥ शिल्पियोंसे कहा कि, जल्दीसे सहस्रों ईंट लाओ उनसे

राजाओंके रहने लायक घर बना उन्हें बहुतसी वस्तुओंसे सजाओ ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंके लिये नानाप्रकारके खाने पीनेकी वस्तुओंसे भरे पुरे असंख्य आश्रम बनाओ ॥ १० ॥ पुरवासी व राज्यनिवासियोंके व अनेक देशोंसे आयेहुये नरनाथोंके निमित्त पृथक्पृथक् स्थान बनाओ ॥ ११ ॥ अश्वशाला, हस्तिशाला, शयनागार व विदेशी योद्धाओंके रहनेके स्थान प्रस्तुतकरो ॥ १२ ॥ रहनेके स्थानोंमें सब आवश्यक वस्तु तैयार रहैं इस यज्ञमें औरभी बहुत मनुष्य आवेंगे उनके निमित्तभी सजे सजाये घर निर्माण करो ॥ १३ ॥ शास्त्रकी विधिसे परलोक प्रयोजनकी बुद्धिसे आदरपूर्वक योग्यपात्रको दान देना उत्सवमात्रकी बुद्धिसे व आदरतासे अनिच्छुकको दान न देना ऐसा करना कि, जिससे सब यही जानें कि, हमारा उचित सत्कार हुआ ॥ १४ ॥ और कामक्रोधके वशमें होकर किसीका निरादर न करना व जो पुरुष थवई आदिके कर्ममें लगेहों ॥ १५ ॥ तिनकी पूजाभी क्रमसे कीजाय और सबका आदर धन भोजनादिसे भलीभाँति किया जाय ॥ १६ ॥ जो अच्छीतरह चित्त लगाय काम करते हैं उनका कोई काम नहीं बिगड़ता इससे तुम प्रीतियुक्त चित्तसे काम करो ॥ १७ ॥ तब सब आयकर वसिष्ठजीसे बोले आप जो आज्ञा करते हैं उसमें कुछ कसर नहीं कीजायगी ॥ १८ ॥ हम सब जैसा आपने कहा है विधिसे इन सब कार्योंके करनेको तैयार हैं इसमें कुछ न्यूनता न होगी. तदनन्तर सुमन्तको बुला वसिष्ठजीने कहा ॥ १९ ॥ कि, पृथ्वीपर जितने धार्मिक नृपति ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र बसते हैं उन सबको इस कार्यमें विशेष आदर सन्मानसे न्यौता भेजो ॥ २० ॥ सब देशके मनुष्योंको सत्कारसे लिवा लाओ विशेष करके बली मिथिलाधिपति व महामति सत्यवादी ॥ २१ ॥ राजा जनकको तुम जाकर स्वयं न्यौता देआओ वह हमारे प्राचीन मित्र हैं. इसी कारण उनको सबसे आगे आदरपूर्वक न्यौतनेका प्रयोजन है ॥ २२ ॥ फिर विशुद्ध स्वभाव प्रियवादी देवोपम काशीराजको भी तुम्हीं जाकर न्योत आओ ॥ २३ ॥ वहांसे फिर महाराजके श्वशुर परमधार्मिक वृद्धपुत्र सहित कैकयराजको निमन्त्रण दो ॥ २४ ॥ फिर राजाके परममित्र महाधनुर्द्धारी अंगाधिप लोमपादको न्यौता दो ॥ २५ ॥ फिर कोशलराज भानुमान् और सर्वशास्त्रविशारद शूर मगधराजाको बुलवादो ॥ २६ ॥ अनेक प्रकारके ज्ञाता परमउदार पुरुष श्रेष्ठ राजाओंको राजा दशरथकी आज्ञासे आदरपूर्वक लाओ ॥ २७ ॥ और दक्षिण देशके रहनेवाले सम्पूर्ण राजाओंको बुलाओ फिर पूर्व

देश, सिन्धु, सौवीरदेश, सौराष्ट्र और दाक्षिणात्यके राजाओंकोभी वहां जाके नौता देआओ अधिक क्या कहूं भूमण्डलमें जितने आत्मीय हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ तुम उनको अनुचर और भाई बन्धुओं समेत जल्दी बुलाओ राजाकी आज्ञासे इन सबके पास दूत भेजदो ॥ ३० ॥ वसिष्ठजीके वाक्य सुन सुमन्तजीने शीघ्रगामी उपयुक्त दूत राजाओंको बुलानेके लिये भेजे ॥ ३१ ॥ और मुनिजीके वचनानुसार आपभी बुद्धिमान् सुमन्त शीघ्र बहुत नरनाथोंको बुलानेके लिये गये ॥ ३२ ॥ कर्मकार नौकरों चाकरोंने वसिष्ठजीके पास आकर वह सब यज्ञके कार्य उन्होंने जो कियेथे सब कहे ॥ ३३ ॥ तदनन्तर विप्रवरने प्रसन्नहो उनसे कहा कि, तुम किसीको भी कोई वस्तु निरादर व खेलके साथ न देना ॥ ३४ ॥ क्योंकि अवज्ञापूर्वक जो दान दियाजाताहै तो दाता उससे निःसंदेह नष्ट होताहै अनन्तर दो एक दिनके बीचमेंही राजालोग आने लगे ॥ ३५ ॥ राजा दशरथजीकी भेंटके लिये अनगिन्त रत्नभार लेकर न्यौते हुए राजा आये तब वसिष्ठजी प्रफुल्ल हो नरनाथ से कहनेलगे ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! आपकी आज्ञासे सब निमंत्रित राजालोग आये हैं हे राजसिंह ! मैंने उन सबका उचित सन्मान करदियाहै ॥ ३७ ॥ नौकर चाकरने सब यज्ञकी सामग्री प्रस्तुत कररक्खी है अतएव अब आप यज्ञमें दीक्षित होनेके लिये यज्ञस्थलमें गमनकीजिये ॥ ३८ ॥ हे राजेन्द्र ! यज्ञस्थल सब प्रकारसे अभीष्ट वस्तुओंसे भरापुरा है देखनेसे बोध होगा कि, मानो मनकी कल्पनाही इनकी रचनेवाली हैं प्रत्यक्ष देखनेपर आपको विदित हो जायगा ॥ ३९ ॥ अनन्तर वसिष्ठ और ऋष्यशृङ्गके वचनसे शुभनक्षत्रयुक्त दिनमें राजाने यज्ञस्थलमें गमन किया ॥ ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त वसिष्ठादिऋषिगणोंने ऋष्यशृंगको आगे करके यज्ञ आरम्भ किया ॥ ४१ ॥ सब विधान शास्त्रानुसार होताथा इस भाँति नरनाथ दशरथ रानियोंके सहित यज्ञमें दीक्षित हुये ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

अनन्तर संवत्सर बीत गया तब यज्ञका घोड़ा घूमकर आया उस समय सरयूके उत्तर किनारेके बागमें यज्ञ होनेलगा ॥ १ ॥ महात्मा दशरथजी महायज्ञमें श्रेष्ठ ब्राह्मण ऋष्यशृंगको आगे करके यज्ञ करनेलगे ॥ २ ॥ वेदपाठी व्रतीगण यथाविधि और मीमांसादिके अनुसार यथाकाल अनुसरण करके कर्म करनेलगे ॥ ३ ॥

जैसा शास्त्रमें लिखाहै वोह विधान करने लगे. प्रथम उन्होंने प्रवर्ग्य नामक कार्य्य समाप्त करके शास्त्रानुसार उपसद नामक इष्टि कार्य्य करना प्रारम्भ किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर देवताओंकी पूजा करके प्रफुल्लमनसे ये सब ब्राह्मण मुनिश्रेष्ठ प्रातः-सवनादिक कार्य करने लगे ॥ ५ ॥ प्रथम इन्द्रको आहुति दीगई, तदनंतर राजाकी स्तुति कीगई, फिर मध्यन्दिन सवनादि कार्य्यका अनुष्ठान हुआ ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त महात्मा राजाका तृतीय सवन उन ब्राह्मणश्रेष्ठोंने शास्त्रानुसार पूर्ण कराया ॥ ॥ ७ ॥ तब ऋष्यशृंग प्रभृतिऋषि वेदके मंत्र, शिक्षा, अक्षर, स्वर सहित पाठकरके इन्द्रादि श्रेष्ठ देवताओंका आह्वान करनेलगे ॥ ८ ॥ देवता उनके शिक्षा संयुक्त वेदमंत्रादि द्वारा आह्वान किये जाकर अपना अपना यज्ञभाग ग्रहण करनेलगे ॥ ९ ॥ इसकार्यमें कोई आहुति व्यर्थ न दी-गई न कोई कार्य छोडागया मंत्रपूत होकर कार्य्य होनेसे सब मंगलमेंही हुआथा ॥ ॥ १० ॥ कोई ब्राह्मण यज्ञके कार्यका न जाननेवाला नहीं था. विशेषतः किसी दिनभी याचक ब्राह्मणोंको थकावट या क्षुधा बोध नहुई. इन सबकी सेवा करनेके-लिये सैकडों सेवक रक्खे गयेथे ॥ ११ ॥ यज्ञभूमिमें ब्राह्मण, शूद्र, तपस्वी व संन्यासधर्मावलम्बी व्यक्ति नित्य भोजन पाने लगे ॥ १२ ॥ वृद्ध, व्याधिग्रस्त स्त्री और बालकतक इच्छाभोजन पाने लगे परन्तु रातदिन भोजन करनेसेभी किसीको तृप्ति नहीं होतीथी ॥ १३ ॥ अन्नदो अन्नदो वस्त्रदो संतत सबके मुखमें यही वाक्य निकलनेलगे और उन सबके मनोरथ पूर्ण होनेलगे ॥ १४ ॥ दिन २ पर्वत तुल्य ढेरके ढेर पक्के कच्चे अन्नके दृष्टि आने लगे ॥ १५ ॥ अनेक देशोंके नरनारीगण इन महात्मा राजाके यज्ञमें आकर बहुतसा खाने पीनेका अन्न खाने लगे ॥ १६ ॥ भोजनके समय ब्राह्मणलोग दिव्य स्वादयुक्त भोजनकी प्रशंसा करनेलगे और हम अघागये हेराजन् ! आपकी जयहो कहकर राजाका यश विस्तार करने लगे ॥ १७ ॥ सुवेशधारी ब्राह्मणगण द्विजातियोंको परोसने लगे और व्यक्ति गण मणिमय कुण्डलादि धारण करके परसनेवालोंकी सहाय करने लगे ॥ १८ ॥ इस कर्मके होनेपर धीर पंडितगणोंने औरोंको पराजित करनेके अभिप्रायसे हेतुवाद सहित विचार करना आरम्भ किया ॥ १९ ॥ इधर कर्मकुशल ब्राह्मण लोगभी शास्त्रानुसार सांकेतिक शब्दोंके वशवर्ती प्रतिदिन यज्ञके कर्म करने कराने लगे॥ २० ॥

१ यजुर्वेदके ३७ वें अध्यायमें इसका वर्णनहै ।

मूल बात यहहै कि, जिस ब्राह्मणने षडङ्ग सहित वेद नहीं पढाथा व जो व्रतपरायण व शास्त्रजाननेवाला नहींथा व जिसको शास्त्रके विचारमें चतुरता नहीं ऐसा कोई ब्राह्मण राजाके यज्ञमें व्रती व सदस्य नहीं हुआथा ॥ २१ ॥ यूपरचना कालमें इस यज्ञमें छः बेलके, छः खैरके, छः पलाशके खंभे गाडे गये ॥ २२॥ व एक बहेडाका व देवदारुके दो खंभ गाडे गयेथे, यह खंभ फैलीहुई भुजाओंकी बराबर लम्बेथे॥ २३॥ शिल्प व यज्ञकर्मोंमें निपुण शास्त्रके जाननेवाले पुरुषोंने यह बनायेथे यज्ञकी शोभाके-लिये इनपर सोना मढा व इसका पानी फेरा गयाथा ॥ २४॥ इक्कीस खंब २१ अरत्नि (चौवीस अंगुलकी १ अरत्नि) ऊंचे थे, हरेकपर कपडा लपेटा गया. इसप्रकार सजाये गयेथे ॥ २५ ॥ यह सब विधिपूर्वक करके शिल्पियोंने मनोहर और दृढ यह आठपहलू थम्भ विधिपूर्वक बनाये यह देखनेमें बड़े शोभायमान थे ॥ २६ ॥ वे कपडेसे ढके जाकर और गन्ध फूलोंसे पूजित हो दीप्तिमान् सप्तर्षि जैसे आकाशमें शोभा पातेहैं तैसे शोभा पानेलगे ॥ २७ ॥ इस यज्ञमें जितनी ईंटोंका प्रयोजनथा वह सब बन गईं. शिल्पनिपुण ब्राह्मणोंने इन ईंटोंसे अग्निकुंड बनाया इस कुण्डका प्रत्येक स्थान ईंटोंसे बनाथा ॥ २८ ॥ इस भाँति राजसिंह महाराज दशरथजीके यज्ञमें कुशल ब्राह्मणोंने वेदी बनाई उसपर सोनेकी ईंटोंसे पंख बनाय अठारह प्रस्तारका एक गरुड बनाया अश्वमेधमें इसकी विधिहै ॥ २९ ॥ यज्ञस्थलमें शास्त्रानुसार देवताओंके लिये अनेक प्रकारके सर्प विहङ्ग तुरङ्ग स्थापनकिये ॥ ३० ॥ और जलचर प्रभृति जन्तु जहांतक इकट्ठे कियेगयेथे यज्ञ करानेवालोंने उन्हें बलि देनेके अर्थ यथा स्थानमें शास्त्रानुसार बांधा ॥ ३१ ॥ पहले कहे हुये थंभोंमें तीनसौ पशु और महाराजका अश्वरत्न बँधाथा ॥ ३२ ॥ पटरानी कौशल्याजीने उस अश्वकी परिचर्य्या प्रोक्षणादि करके तीन खड्गसे प्रसन्नतापूर्वक उसका वधकिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर कौशल्याजी वहां धर्मप्राप्तिकी कामनासे स्वस्थ चित्त हो उस अश्वके निकट एक रात्रितक रहीं ॥ ३४ ॥ तब होता अध्वर्यु व उद्गाताओंने राजमहिषी व परिवृत्ति सहित वावाताको "क्षत्रिय राजकी वैश्या स्त्री वावाता और शूद्रा स्त्री परिवृत्ति कही जातीहै" यज्ञीय अश्वके साथ नियोजित किया ॥ ३५ ॥ तब श्रुतिका-र्य्यवित् जितेंद्रिय ऋत्विज उस घोडेकी चरबी ले शास्त्रानुसार होम करनेलगे ॥ ३६॥ नरपति दशरथ यथासमय न्यायपूर्वक अपने पाप कटनेके अश्व वसागन्धमय धूमगन्ध

सूँघने लगे ॥ ३७ ॥ अनन्तर सोलह ऋत्विज ब्राह्मण घोडेके सब अंग प्रत्यंगादि छेदनकर अग्निमें विधिपूर्वक आहुति देने लगे ॥ ३८ ॥ और यज्ञोंमें पाकरकी शाखामें हव्य स्थापन करके आहुति दीजातीहै परन्तु इस अश्वमेधयज्ञमें वेतमें स्थापित करनेका नियमहै ॥ ३९ ॥ तदनुसार ऋत्विजगण वेतके दंडकी आहुति देने लगे. अश्वमेधयज्ञमें जो तीन दिन सवन क्रिया करनी होतीहै वह कल्पसूत्र और ब्राह्मणोंकी समर्थन कीहुयीहै, पूर्वोक्त तीन दिनके मध्यमें प्रथम दिन अग्निष्टोम ॥ ४० ॥ द्वितीय उक्थ और तीसरे दिन अतिरात्र यज्ञ शास्त्रविधिके अनुसार अनुष्ठित हुआ ॥ ४१ ॥ फिर ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित् व आप्तोर्याम शास्त्रानुसार यह सब महायज्ञके कार्य्य होने लगे ॥ ४२ ॥ इस यज्ञमें कुलवर्द्धन राजा दशरथजीने होताको पूर्वदिशा, अध्वर्य्युको पश्चिमदिशा, ब्रह्माको दक्षिणदिशा ॥ ४३ ॥ उद्गाताको उत्तरदिशा, दक्षिणामें देदी. पूर्वकालमें स्वायम्भुव मनुजीने जिस प्रकारका यज्ञ अनुष्ठानकर दक्षिणा दीथी वैसेही यह यज्ञ हुआ ॥ ४४ ॥ न्यायपूर्वक समाप्तकर पुरुषसिंह राजा दशरथजीने ऋत्विजोंको पृथ्वी दान करदी ॥ ४५ ॥ श्रीमान् इक्ष्वाकुकुलनन्दन इस भाँति दानकार्य समाप्त करके अतिशय प्रसन्न हुये, तब ऋत्विज उन निष्पाप नरनाथसे कहने लगे ॥ ४६ ॥ हे राजेंद्र! आप एकाकी इस समस्त भूमंडलकी रक्षा करनेके लायकहैं, हमें पृथ्वी नहीं चाहिये ॥ ४७ ॥ क्योंकि हम इसके पालन करनेमें असमर्थहैं हे महीपाल! हम सदा वेद पढनेमें लगे रहतेहैं अतएव हमें कुछ धन दे दीजिये ॥ ४८ ॥ हम आपसे मणि रत्न सुवर्ण, गोधनादि कुछ थोडासा ले सक्ते हैं । वोही आप हमें देदीजिये परन्तु पृथ्वीका आधिपत्य ले हमें क्या करना है ? ॥ ४९ ॥ ऋत्विजोंके यह कहे जानेपर राजाने उन वेदपारग ब्राह्मणोंको एक लाख गायें दीं ॥ ५० ॥ और दश करोड सोनेकी मोहरें और इससे चौगुनी चाँदीकी मुद्राभी उन ऋत्विजोंको देदीं ऋत्विजोंने यह सब वस्तु धन ॥ ५१ ॥ ऋषि-ऋष्यशृंग और बुद्धिमान् वसिष्ठजीके हाथमें समर्प्पण करदिया. तदनन्तर उन दोनों ऋषियोंके न्यायानुसार भाग करदेनेपर यह सब विप्रवर अपना २ भाग लेकर ॥ ५२ ॥ प्रफुल्ल चित्तहो राजासे बोले महाराज! हम दक्षिणा पाकर बडे सन्तुष्ट हुयेहैं. अनन्तर अभ्यागतोंके निमित्त बहुत धन दिया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर राजा दशरथजीने जम्बूदेशका सोना ब्राह्मणोंको दिया इसमें कई करोड सुवर्ण खर्च

हुआ फिर एक अकिंचन ब्राह्मणके धन माँगनेपर ॥ ५४ ॥ राजाने उसे हाथका कंगन देदिया उस ब्राह्मणके अभिलषित पदार्थ पाकर चले जानेपर द्विजवत्सल ॥ ॥ ५५ ॥ महीपालने प्रसन्नतासे व्याकुलइन्द्रिय हो सब विप्रोंके चरणोंमें प्रणाम किया ब्राह्मणोंनेभी प्रणाम करते हुए राजाको बहुतसे आशिर्वाद दिये ॥ ५६ ॥ इसप्रकार परमउदार महावीर पृथ्वीमें झुकेहुए राजाको आशीर्वाद दिये तब वे बडे प्रसन्न होकर यज्ञको समाप्त करते हुए ॥ ५७ ॥ राजा दशरथजीने इस भाँति पापहारी स्वर्गकारी अश्वमेध यज्ञ जो और राजाओंसे नहोसके समापन करके परम प्रीतिसे मुनिवर ऋष्यशृंगसे कहा ॥ ५८ ॥ हे सुव्रत! जिससे मेरे वंशकी रक्षाहो आप उसकाही अनुष्ठान कीजिये ऋष्यशृंगने तथास्तु कहकर कहा ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे चार पुत्र वंशके बढानेवाले होंगे ॥ ६० ॥ राजा उनके मुखसे यह मधुर आश्वास्य वाक्य श्रवण करके उसको शिर नवा, अतिशय प्रफुल्ल हुए और परम प्रीतिसे ऋष्यशृंगसे फिर यह वचन बोले ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे भाषायां चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५.

तदनन्तर मेधावी वेदज्ञ महर्षि कुछ देरतक चिन्ता करके राजासे बोले ॥ १ ॥ हे राजन् ! मैं आपको पुत्र उत्पन्न होनेके लिये अथर्वणमें कहे हुये मंत्रोंमें देनेवाला पुत्रेष्टि यज्ञ कराऊंगा ॥ २ ॥ यह कहकर महातेजस्वी ऋषि यज्ञ आरंभ करके अथर्ववेदके विधानानुसार होम करने लगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर यज्ञस्थलमें देवता गन्धर्व सिद्ध और महर्षि मिलित होकर अपना २ यज्ञ-भाग लेनेको आये ॥ ४ ॥ इस यज्ञमें इकठे होनेपर सब देवता एकत्रहो न्यायानुसार सृष्टिकर्ता विधातासे यह वचन बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! आपके वरके प्रभावसे बलवान् रावण हमें व्यथित करताहै आपसे अधिक क्या कहैं हम उससे लडनेमें असमर्थहैं ॥ ६ ॥ हे भगवन ! आपने प्रसन्नहो उसे वरदान दियाहै यही कारणहै कि, उस अत्याचारीके हम सब अत्याचार सहन करतेहैं ॥ ७ ॥ यह दुर्मति राक्षसनाथ त्रिलोकीको व्याकुल करता फिरताहै और सौभाग्यशालियोंसे घोरतर घृणा करताहै उसके घमंडकी वार्त्ता कहाँतक कहैं; कि वह देवेन्द्रके पराभवकी वासना करताहै ॥ ८ ॥ इसीभाँति वह महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, ब्राह्मण व असुरोंको ताडन करताहै. महावरदान

पानेसे वह मोहित हो किसीको नहीं गिनता ॥ ९ ॥ अधिक तो क्याकहैं न तो इस रावणको सूर्य सन्तापित करते न वायु कभी जोरसे चळतीहै तरंगमाला संकुल समुद्र इसको देखकर अचल होजाताहै ॥ १० ॥ आपसे अधिक क्या कहैं हम विकट-मूर्ति उस निशाचरसे बडे शंकितहो भय पारहेहैं अब हे भगवन् ! यही प्रार्थनाहै कि, उसके वधका उपाय कहिये ॥ ११ ॥ स्वायम्भु यह बात सुनकर देवताओंसे बोले कि, मैंने उस दुरात्माके वधका उपाय स्थिरकर लियाहै ॥ १२ ॥ उसने मुझसे यह वर माँगाथा कि, देवता, गन्धर्व, यक्ष और राक्षससे न मरूं मैंनेभी उसे यह वर देदियाहै ॥ १३ ॥ मनुष्योंको कुछ नसमझकर उस राक्षसने अज्ञानसे इनसे अवध्यत्व नहीं मांगा, अतएव मनुष्योंके हाथमेंहीउसकी मृत्यु होगी ॥ १४ ॥ प्रजापति ब्रह्माजीकी वह वाणी सुन देवता व महर्षिगण परमप्रसन्न हुये ॥ १५ ॥ इतनेहीमें भगवान् कमलापति वहां आये उनके अंगकी शोभा शोभाको मात करतीथी, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये वह पीताम्बर पहरे हुयेथे ॥ १६ ॥ गरुडपै चढेहुयेथे बादलके ऊपर सूर्यनारायणकी जैसी शोभा होतीहै इसी भाँति रमापति शोभितथे. अंगोंमें तपाये सुवर्णके बाजू पहरेथे देखतेही सुरगण उनकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ वह आतेही ब्रह्माजीके सहित आसनपर बैठे, देवगण उनको अभिवादनपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥ बोले कि हे विभो ! सब लोगोंके मंगलार्थ हम लोग आपको किसीकार्यमें नियुक्त करैंगे राजा दशरथजी जो अयोध्याके राजाहैं ॥ १९ ॥ वह बडे दानी धर्मज्ञ और महर्षि तुल्य तेजस्वी हैं ह्री श्री और कीर्ति समान उनकी तीन ॥ २० ॥ आप पुत्रभावको प्राप्तहूजिये । आप अंशसहित चारभागोंमें उनका पुत्र होना स्वीकार कीजिये और मनुष्य अवतार धारणकर इस बढेहुए लोककंटक ॥ २१ ॥ देवताओंसे अवध्य रावणका युद्धमें नाश कीजिये । यह देवता गंधर्व सिद्ध और श्रेष्ठ ऋषियोंको ॥ २२ ॥ ब्रह्माके वरसे मूढ रावण महापराक्रमी हो निरन्तर सता रहाहै और उसने ऋषि गन्धर्व और अप्सराओंको सतायाहै ॥ २३ ॥ जो गन्धर्व और अप्सरागण नंदनकाननमें आमोद प्रमोद किया करतेथे वहभी इस भयानक रावणके हाथसे मारेगये. उसीके नाशकरनेके अर्थ ॥ २४ ॥ हम सिद्ध, गंधर्व, यक्ष और मुनिगणोंके सहित आपके शरण आयेहैं. क्योंकि हे परंतप ! हे देव ! आपही हमारे परमगतिहैं ॥ २५ ॥ आप उस देववैरी रावणके मारनेको मनुष्य अवतार लीजिये. इसप्रकारसे देवताओंके ईश्वर भगवान् विष्णुजी-

की ऐसी अमरगणोंसे स्तुति होनेपर ॥ २६ ॥ सर्वलोगोंके नमस्कार करना योग्य भगवान् धर्मयुक्त शरणमें आये हुये ब्रह्मादि देवताओंसे कहने लगे ॥ २७ ॥ हे सुरगण! तुम कुछ शंका मतकरो तुम्हारा मंगल होगा. मैं युद्धमें पुत्र पौत्र मंत्री भाई बन्धु और जाति सहित ॥ २८ ॥ दूसरेके नजीतें जानेके योग्य देवर्षियोंके भयदायक उस असुरको निर्मूलकर ग्यारह हजार वर्षतक ॥ २९ ॥ पृथ्वी पालन करते हुये मनुष्यलोकमें वास करूंगा, भगवान् नारायण आत्मस्वरूप देवता-ओंको ऐसा वर देकर ॥ ३० ॥ भूलोकमें अपने जन्मस्थानके सम्बन्धमें चिन्ता करने लगे. इसप्रकार वह पद्मपलाशलोचन अपनेको चार अंशोंमें विभक्तकर ॥ ३१ ॥ राजा दशरथके यहां जन्मलेनेकी इच्छा करते हुये, तब देवर्षि गन्धर्व व अप्सरागण यह जान प्रसन्नहो दिव्य स्तुतियोंसे मधुसूदन भगवानको प्रसन्न करने लगे ॥ ३२ ॥ और कहा हेभगवन्! आप उस वर पानेसे गर्वित बडे तेजस्वी सुरेन्द्रशत्रु बडे उद्धत त्रिलोकपीडक साधु तपस्वी जनोंके भयदायक और लोकके कंटक भयदायी रावणको कुलसहित संहार कीजिये ॥ ३३ ॥ अब यही प्रार्थना है कि, आप शीघ्रही उस भयानक बडे पुरुषार्थी रावणको सेना बन्धु बान्धव सहित संहार करके निश्चिन्ताईसे इन्द्रपालित पाप और दोषरहित स्वर्गमें फिर लौट आइये ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्ये बालकाण्डे भाषायां पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

तदनन्तर भगवान् नारायण रावणके विनाशका यद्यपि सब उपाय जानतेथे तदपि नम्रतासे देवताओंसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे देवगण! मैं कौनसे उपायसे उस देवकंटक राक्षसको संहार करूंगा इस विषयमें तुमनेभी कोई उपाय शोच रक्खाहै? ॥ २ ॥ तब अमरगण अव्यय विष्णुजीकी यह बात सुन उनसे कहने लगे कि, इस समय आपको मनुष्य तनु धारणकर उस रावणको वध करना होगा ॥ ३ ॥ हे शत्रुओंके मारनेवाले! उस निशाचरने पूर्वकालमें बहुत तप कियाथा इससे संसारसे पहले उत्पन्न हुये संसारके रचनेवाले ब्रह्माजी उसके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ ४ ॥ व संतुष्ट हो उन्होंने यह वर दिया कि; तुझको किसी प्राणीमें डर न होगा, सिवाय मनुष्यके ॥ ५ ॥ वह मनुष्योंको तुच्छ समझताथा इसकारण उसने म-नुष्योंसे अभय नहीं माँगा इसभाँति पितामहके वरसे वह रावण दर्पित हुआहै ॥ ६ ॥

इस समय वह तीनों लोकको उजाडकर नर नारियोंको बलपूर्वक आकर्षण करताहै. परन्तप निश्चय मनुष्यके हाथसे उसकी मृत्यु होगी यही उपाय है ॥ ७ ॥ भगवान् विष्णुने देवगणोंके मुखसे ऐसा वाक्य श्रवण करके दशरथजीको पिता कहकर जताया ॥ ८ ॥ जिस समय निःसन्तान महाकान्तिवाले राजा दशरथजी पुत्रेष्टि यज्ञमें दीक्षित हुए अर्थात् वह शत्रुनाश करनेवाले पुत्रेष्टि यज्ञ करनेलगे ॥ ९ ॥ उसी समय नारायण उनके यहां अवतार लेनेको कृतनिश्चय हुए. इसप्रकार विष्णु भगवान् निश्चयकर और ब्रह्माजीको आमंत्रणकर वह महर्षियोंसे पूजितहो देवताओंमेंसे अंतर्धान होगये ॥ १० ॥ तदनन्तर यज्ञदीक्षित दशरथजीके यज्ञकुण्डकी अग्निसे महावीर्य बलशाली अतुलप्रभाववाले पुरुष प्रगट हुए ॥ ११ ॥ वह लाल-वस्त्रधारे रक्तमुख कृष्णवर्ण दुन्दुभीकी समान शब्द करते प्रगट हुए. इनका शरीर सिंहके समान रोमवाला डाढी मूँछ करके युक्त और केश चिकनेथे ॥ १२ ॥ वह शुभलक्षणयुक्त व दिव्य अलंकारसे शोभित उनका शरीर शैलशृंगकी समान उतङ्ग विक्रम केशरी समान ॥ १३ ॥ इनकी आकृति सूर्य्यकी व चन्द्र किरणोंकी समान तेज अग्निसम जाज्वल्यमान पोशाक तपाये सोनेकी नाई राजचिह्नोंसे विभूषित ॥ १४ ॥ उनके हाथमें प्रियपत्नीकी नाईं दिव्य खीरका पात्र था वह उसको अच्छीतरह मायाकी समान अपने करोंमें लियेहुये ॥ १५ ॥ राजा दशरथको देखकर उनसे कहने लगे हेनृप! मुझ आये पुरुषको प्रजापतिजीका भेजाहुवा पुरुष जानो ॥ १६ ॥ तदनन्तर राजा उनका वाक्य श्रवण करके अति विनती कर हाथ जोड बोले हे भगवन् ! आप निरापद तो आये जो हो आज्ञा कीजिये मुझे क्या कार्य्य करना होगा ॥ १७ ॥ तदनन्तर वह पुरुष फिर कहने लगे हे राजा ! आपने देवताओंकी आराधना करकै अब यह पायस पायी ॥ १८ ॥ हे राजन् ! यह वस्तु देवनिर्मित वंशदायक और प्रशंसित पायस आयु और आरोग्यकी करनेवाली है अतएव इसे आप ग्रहण कीजिये ॥ १९ ॥ इसे अपनी अनुरूप रानियोंके खानेको देदीजिये इससे अवश्य तुम्हारे पुत्र होंगे जिनके निमित्त आपने यह यज्ञ कियाहै ॥ २० ॥ तब राजाने बहुत अच्छा कह उनके कहनेको शिर चढा उस देवान्नपरिपूर्ण देवताके दिये सुवर्ण पात्रको प्रसन्नहो लेलिया ॥ २१ ॥ और इस अद्भुत दिव्य प्रियदर्शन पुरुषको परम प्रसन्नतासे शिर नवा उसकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ २२ ॥ धन पानेसे दरिद्रिको जो आनन्द होता है इसीप्रकार उस देव-

अपने पितासेभी अधिक हुआ ॥ १३ ॥ विचित्ररूप सम्पन्न दोनों अश्विनीकुमारोंसे मयन्द व द्विविद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥ वरुणसे सुषेण नाम वानरकी उत्पत्ति हुई मेघदेवतासे शरभ नाम महाबली वानर उत्पन्न हुआ ॥ १५ ॥ और पवनसे श्रीमान् हनुमानजीकी उत्पत्ति हुई. इस वीरकी देह अशनिसे कडी व चाल पक्षीराज गरुडके समान हुई ॥ १६ ॥ हनुमान्जी सब वानरोंमें मुख्य हुए बल वीर्यमें सर्वसे अधिक इस प्रकार रावणके विनाशार्थ असंख्य वानरोंकी सृष्टि उत्पन्न हुई ॥ १७ ॥ वह सबही अमितबलशाली कामरूपी मातङ्ग व पर्वततुल्य देहधारी हुये ॥ १८ ॥ इसप्रकार ऋक्ष वानर और गोपुच्छ सब क्रमशः उत्पन्न हुये जिस देवताका जैसारूप जैसाभेष जैसापराक्रम था ॥ १९ ॥ वैसेही सबकी सन्तान पृथक् २ हुई जो गौ पुच्छसे पैदा हुये उनका बल और विक्रम दूसरोंसे अधिक हुआ ॥ २० ॥ इसभाँति ऋषि और किन्नरियोंमें वानर रीछ उत्पन्न हुए. देवता, महर्षि, गंधर्व, तार्क्ष्यवंशवाले, यशस्वी यक्ष ॥ २१ ॥ नाग, किम्पुरुष, सिद्ध. विद्याधर, उरग इन्होंने सैकडों पुत्र उत्पन्न किये ॥ २२ ॥ वेद बंदी चारणभी वनचारी बलवान् पुत्रोंको उत्पन्न करते हुए यह सब वानर बडे शरीरवाले वनचारीहुए॥ ॥ २३ ॥ उनकी उत्पत्ति मुख्य २ अप्सरा विद्याधर गन्धर्वों और नागकन्याओंके गर्भोंमें हुई यह सब कामरूप इच्छाचारी थे ॥ २४ ॥ यह लोग दर्प व बलमें सिंह अथवा शार्दूल समान हुए; शिला और पर्वत इनके सब अस्त्र शस्त्र हुए यह शिलाओंसे युद्ध करनेवाले थे ॥ २५ ॥ यह सब दांतोंसे काटनेमें चतुर सब अस्त्र शस्त्र चलानेमें पंडित, इनके घोर नादसे शैलेन्द्र कंपायमान व बडे २ पेड चूर्ण होजातेथे ॥ २६ ॥ वेगसे यह नदी और समुद्रको क्षुभित करसक्तेथे पैरोंसे पृथ्वीको विदारित और सब समुद्रोंको खलबला सकतेथे ॥ २७ ॥ अधिक क्या कहैं यह नभोमंडलमें प्रवेशकर बादलोंको चीर फाडडालें और इसीभाँति मत्त मातंगीको वनमें फिरते २ निपातित करदें ॥ २८ ॥ जिस समय गरजैं तौ नादसे पक्षी गिरजाँय इसप्रकार कामरूपी वानरकी उत्पत्ति हुई ॥ २९ ॥ ऐसे महापराक्रमी सहस्रों सैकडों लाखों वानर हुये। इनमें कुछ यूथपति और उनमें प्रधानयूथपति भी बहुत होगये ॥ ३० ॥ इसप्रकार महाबलवान् यूथनाथोंकी उत्पत्ति हुई इनमें कुछ ऋक्षवान् पर्वतोंमें रहते कुछ पर्वतोंके प्रस्थके ऊपर वास करनेलगे ॥ ३१ ॥ व दूसरे और २ पर्वतों व वनोंमें रहने लगे इन बन्दरोंमें कितने सुग्रीव सूर्यनन्दनके; व कितने मघवासुत वाली ॥ ३२ ॥

इन दोनोंके आश्रयमें रहने लगे और बन्दरोंने नल नील व हनुमान्‌जीकी अधीनता स्वीकार करली ॥ ३३ ॥ इसप्रकारसे गरुडकी समान अमितबलशाली युद्धविद्या-विशारद वह सब वानरगण सिंह व्याघ्र व उरगोंको मर्दित करते विचरण करने लगे ॥ ३४ ॥ महाबली कपिनाथ वाली अपनी भुजाओंके बलसे ऋक्ष गोपुच्छ आदि वानरोंकी रक्षा करने लगे ॥ ३५ ॥ इसप्रकारसे उन बहुतसे स्थानोंमें रहते हुये वीर्यवान् वानरोंसे जिनके अनेक प्रकारके रूप रंग थे पर्वत वन और सागर सहित पृथ्वी परिपूर्ण होगई ॥ ३६ ॥ उनके आकार मेघमाला व पहाडोंकी चोटियोंके समान थे उन महाबली वानरोंके यूथोंसे जिनके शरीर बड़े भयंकर थे पृथ्वी व्याप्त होगई यह रामकी सहायताके हेतु उत्पन्न हुये वह रामचन्द्रकी सहायताको उत्पन्नहो पृथ्वीको समाच्छन्न करने लगे ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे भाषायां सप्तदशःसर्गः॥ १७॥

अष्टादशः सर्गः १८.

महात्मा दशरथजीका यज्ञ समाप्त होनेपर देवता लोग स्व स्व भाग ग्रहण कर अपने २ स्थानको चले गये ॥ १ ॥ राजाभी दीक्षाकी विधि समाप्तकर रानियों सहित बल वाहन व भृत्योंको साथले अयोध्यापुरीमें जानेकी इच्छा करने लगे ॥ २॥ इधर विदेशीय नृपतिगण यथोचित सन्मानित हो ऋषिश्रेष्ठ ऋष्यशृंगको प्रणाम कर अपने २ देशोंको चलेगये ॥ ३ ॥ श्रीसम्पन्न उन नरनाथोंके अपने २ देशोंमें जानेके समय उनकी सेना सजी धजीहुई गमन करनेलगी और शोभित होने लगी ॥ ४ ॥ उन राजाओंके चले जानेपर राजा दशरथजी ब्राह्मणोंको आगे करके अयोध्यापुरीमें पैठे ॥ ५ ॥ तब ऋषि ऋष्यशृंग शान्ता सहित पूजे जाकर अपने घरको लौटे. राजा दशरथजी नौकर चाकरों समेत उन्हें कुछ दूर पहुँचाने आये ॥ ६ ॥ इस-प्रकार राजा दशरथजी सब आये हुए पाहनोंको बिदा देकर सिद्धकाम हो पुत्र होनेकी चि-न्ता करते सुखसे काल व्यतीत करनेलगे ॥७॥ तदनन्तर यज्ञ समाप्त होनेपर छः ऋतु अर्थात् द्वादश मास बीत जानेपर चैत्र मासकी नौमी तिथिमें॥८॥पुनर्वसु नक्षत्रमें रवि, मंगल, शनि, गुरु, शुक्र इन ग्रहोंके मेष, मकर, तुला, कर्क, मीन राशिमें आनेसे पंच

---

१ इटलीदेशके ग्यासपरमहोदयकी पुस्तकमें यहां दो सर्ग अधिकहैं उनका अनुवाद पीछे परिशिष्टमें लिखेंगे ।

ग्रहोंको मेष और बृहस्पति चन्द्रमाके सहित कर्क राशिमें उदित होनेपर ॥ ९ ॥ रानी कौशल्याजीने दिव्य लक्षणयुक्त सर्व लोकोंके नमस्कार करने योग्य जगन्नाथ दिव्य-लक्षणसे युक्त रामचन्द्रजीको उत्पन्न किया ॥ १० ॥ * यह राजा दशरथके पुत्र विष्णुके अर्धांशमें उत्पन्न हुये ओष्ठ लाल २ नेत्र लाल २ व इनका स्वर नगाडेकी समान गंभीर हुआ ॥ ११ ॥ देव माता अदिति जैसे वज्रपाणि इन्द्रको पाकर शोभित हुईथी वैसेही बड़े तेजस्वी पुत्ररत्नको प्राप्त होनेसे कौशल्याजी शोभित हुईं ॥ ॥ १२ ॥ तदनंतर कैकेयीके गर्भसे विष्णुके चतुर्थांश सर्वगुणालंकृत महाबलशाली भरतजी उत्पन्न हुये ॥ १३ ॥ विष्णुके अर्द्धांश मिलनेसे और सम्पूर्ण अस्त्रोंके जाननेमें चतुर वीर लक्ष्मण व शत्रुघ्न सुमित्राजीके गर्भसे उत्पन्न हुये ॥ १४ ॥ भरतजी पुष्य-नक्षत्रमें हुये तो परलग्न उस समय मीनथी इसीकारण सदा प्रसन्नचित्त बने रहे व लक्ष्मण शत्रुघ्न आश्लेषा नक्षत्र कर्क लग्नमें मध्याह्न समय जन्मे ॥ १५ ॥ इस भाँति राजा दशरथजीके पृथक् २ चार पुत्र हुये, यह चारोंही गुणवान् व रूप-वान् व पूर्वा व उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रकी नाईं प्रभासम्पन्न हुये ॥ १६ ॥ उस अवस-रमें गन्धर्व मधुर संगीत और अप्सरायें नृत्य करने लगीं देवदुन्दुभी बाजने व आका-शसे सुमनवृष्टि होने लगी ॥ १७ ॥ अयोध्यानगरीसे उत्सवका सोता बहने लगा; मार्गमें वाटोंमें नट नर्तक इकट्ठे हुये व बड़ीही भीड होगई ॥ १८ ॥ गायक और वादकगण गीत और बाजे बजाने लगे और सम्पूर्ण रत्नों करके गलियें शोभाको

---

* राग आसावरी ॥ आज सुदिन शुभघरी सुहाई । रूपशील गुणधाम राम नृप भवन प्रगट भये आई ॥१॥ अति पुनीत मधुमास लग्न ग्रह वार योग समुदाई । वर्षहिं विबुध निकर कुसुमावलि नभदुंदुभी बजाई॥२॥कौशल्यादि मातु सब हर्षित यह सुख वर्णि न जाई । सुन दशरथ सुत जन्म लिये सब गुरुजन विप्र बुलाई॥३॥वेदविहित कर क्रिया परम शुचि आनँद उर न समाई । सदन वेदध्वनि करत मधुर मुनि बहु विधि बाज बधाई ॥४॥ पुरवासिन प्रिय नाथ हेतु निज निज संपदा लुटाई । मणि तोरण बहु केतु पताकन पुरी रुचिर कर छाई॥५॥ मागध सूत द्वार बंदीजन जहँ तहँ करत बड़ाई । सहज शृँगार किये वनिता चलि मंगल विपुल बनाई॥६॥नावहिं देहि अशीश मुदित चिरजियो तनय सुखदाई । वीथिन कुंकुम कीच अरगजा अगर अबीर उडाई ॥७॥ नाचहि पुर नर नारि प्रेमभरि देह दशा बिसराई । अमित धेनु गज तुरँग बसनमणि जातरूप अधिकाई॥८॥ देत भूप अनुरूप जाहि जोइ सकल सिद्धि गृह आई । सुखी भये सुर संत भूमिसुर खलगण मन मलि-नाई ॥ ९ ॥ सबहि सुमन विकसत रवि निकसत विपिन कुमुद बिलखाई । जो सुखसिंधु सुकृत सीकरते शिव विरंचि प्रभुताई॥१०॥सो सुख उमँग अवध रह्यो दशदिशि कवन जतन कहो गाई। जो रघुवीर चरणचिन्तक तिनकी गति प्रगट दिखाई । अविरल अमल अनूप भक्ति दृढ तुलसिदास तब पाई ॥ ११ ॥

प्राप्त हुई ॥ १९ ॥ राजाने इस उत्सवमें सूत, मागध और बंदियोंको बहुत धन दान दिया, ब्राह्मणोंको भी असंख्य गायेंदीं ॥ २० ॥ इस भाँति ग्यारह दिन बीत जाने पर अवनीनाथने पुत्रोंका नामकरण करवाया, महात्मा वसिष्ठजीने ज्येष्ठका नाम "राम" और कैकेयीके पुत्रका नाम "भरत" रक्खा ॥ २१ ॥ सुमित्राके लड़कोंमेंसे एकका नाम "लक्ष्मण" व दूसरेका नाम "शत्रुघ्न" कहकर पुकारा गया, परमप्रीतिसे वसिष्ठजीने सब पुत्रोंका नामकरण किया ॥ २२ ॥ नामकरणके दिन राजाने पुरवासी व और राज्योंके रहनेवाले ब्राह्मणोंको भोजन करवाके दक्षिणामें अनेक प्रकारके रत्नदिये ॥ २३ ॥ इस भाँति पुत्रोंकी जातकर्म और नामकरण क्रिया हुई इन पुत्रोंमें रामचन्द्रजी पताका रूप व पिताके सबसे अधिक प्यारे हुये ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी जिसप्रकार सब प्राणियोंके प्रिय होतेहैं ऐसेही रामचन्द्रजी हुये, सब भ्राताभी शूर वेदवित् और सबके उपकारी हुए ॥ २५ ॥ सबही ज्ञानसम्पन्न और सर्व गुणोंके आधार हुये तिनमें भी रामचंद्रजी सबसे अधिक सत्यपराक्रमी हुये ॥ २६ ॥ चन्द्रमा जैसा निर्मल और सबका प्यारा होताहै वैसेही यह हुए, हाथी घोड़े व रथपर बैठनेमें यह बड़े चतुर हुए ॥ २७ ॥ यह जैसे धनुर्विद्यामें पारदर्शी थे वैसेही पितृसेवामें रतहुये लक्ष्मीके बढ़ानेवाले लक्ष्मणजीभी बालकपनसे रामचन्द्रजीके अनुरागी हुये ॥ २८ ॥ यह सदा लोकोंके आनन्ददेनेवाले ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको मानते अपने शरीरसेभी अधिक मानों रामचन्द्रको प्यार करने लगे ॥ २९ ॥ लक्ष्मीसम्पन्न लक्ष्मणजी मानों रामचन्द्रजीके दूसरे प्राणही हुये यह विना रामचन्द्रजी सोये शयन नहीं करते ॥ ३० ॥ मिष्टान्न इत्यादि जो खानेको पाते सो विना रामके नहीं खाते जब रामचन्द्रजी अश्वारूढहो शिकारको जाते ॥ ३१ ॥ तब लक्ष्मणजी धनुष धारण कर उनके साथ रहते लक्ष्मणकी नाईं शत्रुघ्नभी भरतजीके प्राणोंसे अधिक प्यारे होगये ॥ ३२ ॥ जिस प्रकारसे शत्रुघ्नजी भरतजीको प्यार करते थे इसीप्रकार भरतजी शत्रुघ्नजीको प्यार करतेथे उन चार महाभाग प्यारे पुत्रोंको पाकर दशरथजी ॥ ३३ ॥ देवगणोंसे ब्रह्माजी जैसे सन्तुष्ट हुएथे वैसेही अपनी समान पुत्रोंको पा प्रसन्न हुये. जिस समय वे ज्ञानयुक्त और सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त हुए ॥ ३४ ॥ जब कुमार लज्जा कीर्ति सर्वज्ञ और दूरदर्शितासम्पन्न हुए तब ऐसे उन प्रभावशाली और मनोहर कान्तिवाले पुत्रोंको देखकर * ॥ ३५ ॥

---

* पगिया शिर लाल हरी कलँगी उर चंदन केशर खौर दिये । मनमोहन रामकुमार सखी अनुहार नहीं जग जन्म लिये । पग नूपुर पीत कसे कछनी वनमालातिकी वनमाल हिये । विहरे सरयूतट कुंजनमें तहां राम सखे चित चोर लिये ॥

दशरथजी महाराज लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीकी समान परम प्रसन्न हुये और जिस समय वे पुरुषसिंह मन लगाकर वेद पढ़ने लगे ॥ ३६ ॥ जब वह धनुर्विद्यामें पारदर्शी और पिताकी सेवामें रत हुये तब राजा दशरथजी उनके विवाह करनेकी चिन्ता करने लगे ॥ ३७ ॥ राजाकी समान उनके मंत्री मित्र व पुरोहितोंने भी इस विषयकी चिन्ता की. इसप्रकार वह महात्मा मंत्रियोंके बीचमें इसप्रकारकी चिन्ता करतेही थे कि ॥ ३८ ॥ इसी अवसरमें महातेजधारी मुनिवर विश्वामित्र-जी आये उन्होंने राजाके दर्शनकी प्रार्थनासे उपस्थित हो द्वारपालोंसे कहा ॥ ३९ ॥ मैं गाधिका पुत्र विश्वामित्रहूं, तुम लोग जल्दीसे मेरे आनेका संवाद राजाको दो, द्वारपालोंने विश्वामित्रजीकी वार्ता सुन तत्काल राजभवनमें प्रवेशकिया ॥ ४० ॥ विश्वामित्रजीके वचन सुन व्याकुल होकर द्वारपालोंने राजभवनमें उप-स्थितहो विश्वामित्रजीके आनेका समाचार ॥ ४१ ॥ इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए राजा दशरथजीसे कहा द्वारपालोंके वचन सुन राजा दशरथजी पुरोहित और मंत्रियों-को साथले ॥ ४२ ॥ जिसप्रकार ब्रह्माजीकी अगुआनी इन्द्रजी करतेहैं वैसेही राजा संवाद पातेही विश्वामित्रजीको लिवानेगये. जाकर देखा कि, वह ऋषिश्रेष्ठ अपनी दीप्ति-से दीप्तिमान्हैं अति तीक्ष्ण कठोर व्रतधारी हैं ॥ ४३ ॥ अत्यन्त प्रसन्न हो राजाने मु-निजीको अर्घ्य दिया मुनिजीने शास्त्रानुसार राजाका दिया अर्घ्य ग्रहणकर ॥ ४४ ॥ राजासे कुशल प्रश्न किया और पुर, कोश, देश और बन्धु बान्धवोंका मंगल संवाद पूँछा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर फिर धर्मात्मा विश्वामित्रजी राजासे कुशल पूँछनेलगे हे अवनिनाथ ! आपके सामन्त नृपति और रिपुदल वशमें तो हैं ॥ ४६ ॥ देव और मनुष्योंके कार्य तो सुखसे होते रहते हैं यह बूझकर वसिष्ठजीसे मिलकर कुशल पूँछी ॥ ४७ ॥ फिर उन महात्मा विश्वामित्रजीने और ऋषियोंसे कुशल पूँछी तदन-न्तर सबके सब प्रफुल्ल मनसे राजभवनमें प्रवेशकर ॥ ४८ ॥ यथोचित पूज जाकर यथायोग्य आसनोंपर बैठे फिर प्रजानाथ प्रसन्न मनसे विश्वामित्रजीकी ॥ ४९ ॥ अच्छी तरहसे पूजाकर प्रसन्न होकर उनसे बोले आपका समागम अमृत प्राप्तिके समान निर्जल प्रदेशमें जल वर्षनेकी समान है ॥ ५० ॥ अपने समान रूप गुण अव-स्थावाली स्त्रियोंमें पुत्ररहितको पुत्र होनेके समान, खोई हुई वस्तुको फिर पानेके समान ॥ ५१ ॥ हर्षकालकी अवस्थाके समान, इस समयमें आनन्दित हुआहूं इसप्रकारसे मैं आपका आना मानताहूं हे महामुनि ! आप अच्छीतरहसे तो आये

अब आज्ञा कीजिये कि, आपका कौनसा प्रियकार्य करूं ॥ ५२ ॥ आप सेवा शु-श्रूषा करनेके योग्य पात्र हैं हे ब्राह्मण ! मेरे भाग्यसेही आपका यहां आना हुआ है; जो होय आज मैंने जाना कि, मेरा जीवन जन्म सफल हुआ ॥ ५३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! आज मेरे जीवनकी रजनीका सुप्रभात है क्योंकि आपसरीखे महात्मासे साक्षात् हुआ आप प्रथम राजर्षि थे तभी बड़ी तपस्यासे महातेजस्वी हुये थे ॥ ५४ ॥ अब आप तपस्याके प्रभावसे ब्रह्मर्षि होगये हैं सबही प्रकारसे आप हमारे पूज्य हैं और तो क्या कहूं आपके आगमनसे मुझे पवित्रता और विस्मय प्राप्त हुआ है ॥ ५५ ॥ हे प्रभो ! आपका दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य होगया अब किस कारण आपका आना हुआ सो कहिये मेरी यही प्रार्थना है ॥ ५६ ॥ यह अनुगृहीत व्यक्ति आपकी आज्ञा पालनेको प्रस्तुत है अतएव ऐसे दाससे संकोच करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ५७ ॥ मैं बहुत भाँतिसे कर्तृत्व कर्ता तो हूं किन्तु आप हमारे देवता हैं आपने जो यहां आगमन किया है इसमें मेरा बड़ा भाग्य व मुझे बड़ा पुण्य हुआ ॥ ५८ ॥ श्रेष्ठगुणोंकी राशि महा-यशस्वी परमऋषि विश्वामित्रजी दशरथजीके ऐसे हृदयके आनन्द देनेवाले श्रवण सुखकर और मनोहर स्वाधीन नम्रतायुक्त वचन श्रवण कर अतिशय सन्तुष्ट हुये ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदि० बालकाण्डे भाषायां अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः १९.

महातेजा महर्षि विश्वामित्रजी महीपाल दशरथजीके विचित्र विस्तृत वाक्य श्रवण करके पुलकित हो उनसे कहने लगे ॥ १ ॥ आपने जिस वंशमें जन्म ग्रहण किया है इसकारण ऐसे वचन औरसे संभव नहीं विशेषतः जब परमज्ञानी वसिष्ठजी आपके गुरु हैं तब तो ऐसा शिष्टाचार आपहीको शोभा देता है ॥ २ ॥ आपको अनुरोध करताहूं कि, जिस कार्यको मैं आपसे कहूं हे पुरुषशार्दूल ! वह आपको करना पडेगा आप प्रतिज्ञा कीजिये ॥ ३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं आजकल एक महाय-ज्ञमें दीक्षित हुआहूं कामरूपी दो राक्षस उसकी समाप्ति न होते होतेही विघ्न करदेते हैं ॥ ४ ॥ उनका नाम सुबाहु व मारीच है वह जैसे वीर्यवान हैं वैसेही अस्त्रशिक्षित हैं बहुत कालके किये व्रतकी समाप्तिके समयही विघ्न करते हैं ॥ ५ ॥ दुःखकी बात क्या कहूं जभी मैं यज्ञकार्यमें नियुक्त होताहूं तभी वह यज्ञवेदीपर मांसके टुकडे फेंककर रुधिरकी वर्षा करते हैं ॥ ६ ॥ जब हमारे यज्ञकी प्रतिज्ञा उनके ऐसा

करनेसे भ्रष्ट होजाती है तो हमें केवल श्रमही श्रम होता है इसकारण भग्नोत्साह होकर मैं यहां चला आयाहूं हे पार्थिव ! मैं उनको शाप देसक्ताहूं परन्तु इस यज्ञमें क्रोध करना वर्जित है ॥ ७ ॥ कारण कि, ऐसे यज्ञके साधनकालमें किसीको शाप नहीं देना चाहिये. हे राजोंमें सिंह ! अब आपसे यह प्रार्थना है कि, सत्यपराक्रमी रामचन्द्रजीको जो ॥ ८ ॥ काकपक्ष धारण किये महावीर श्रेष्ठ हैं उनको मेरे हाथमें सौंप दीजिये यह मेरे दिव्य तेजके प्रभावसे मुझसे रक्षित किये जाकर मेरे यज्ञकी रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ॥ ९ ॥ मैं जानताहूं कि, रामचन्द्रके हाथसे यज्ञविद्वेषी निशाचर अवश्य मारे जायँगे और यह आप मानलीजिये कि, मुझसे यह अनेक प्रकारके मंगल लाभ करेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं क्योंकि यह समर्थ हैं ॥ १० ॥ विशेषतः मैं वह अनुष्ठान करूंगा कि, जिससे रामचंद्रजीका नाम त्रिलोकमें विख्यात होजाय आप निश्चय जानिये कि, रामके सामने वह दो निशाचर कभी नहीं ठहर सकेंगे ॥ ११ ॥ मैं जानताहूं रामके अतिरिक्त उन दुष्टात्माओंको मारनेमें और कोई समर्थ नहीं है यद्यपि पराक्रमसे अहंकारी होगये हैं तथापि पापी होनेके कारण कालहीके वश हैं ॥ १२ ॥ हे राजशार्दूल ! वह निशाचर किसीप्रकारसे रामकी बराबरी नहीं करसक्के जो हो आप किसी प्रकारकी चिन्ता पुत्रोंकेलिये मत कीजिये ॥ १३ ॥ मैं प्रतिज्ञा करताहूं कि आप राक्षसोंको मरा जानिये यज्ञकी दशरात्रितक मेरे निकट यज्ञवैरी राक्षसोंका संहार करनेके लिये रामचन्द्रको भेजदीजिये मैं इन महात्मा रामचन्द्रजीके विक्रमको भलीप्रकार जानताहूं कि यह विष्णु भगवानके अवतार हैं ॥ १४ ॥ और वसिष्ठादि अन्यान्य तापसगणभी रामचंद्रजीकी लक्षण शक्तिको जानतेहैं हे राजेंद्र ! यदि इस संसारमें धर्म और अक्षय यशलाभकी आपको कामना हो ॥ १५ ॥ तो रामचंद्रको मेरे कार्य्यके लिये मुझको प्रदान करो. हे काकुत्स्थ ! यदि तुम्हारे मंत्री ॥ १६ ॥ वसिष्ठादि मेरी प्रार्थनाका समर्थन करें तो रामचन्द्रको मेरे साथ भेज दीजिये ॥ १७ ॥ मैं कहताहूं कि, यह रामचन्द्र यज्ञकी दशरात्रिसे अधिक मेरे यहां न रहेंगे अब आप ऐसा कीजिये जिससे मेरे यज्ञका समय बीत न जाय ॥ १८ ॥ आपका मंगल हो आप रामचन्द्रको मेरे साथ भेजदीजिये. अकारण शोक न कीजिये. धर्मात्मा विश्वामित्रजी इसप्रकार धर्मानुगत वाक्य कहकर ॥ १९ ॥ महातेजस्वी महाबुद्धिमान् विश्वामित्रजी मौनावलम्बी हुए. राजेन्द्र दशरथजी विश्वामित्रजीके यह वचन सुन ॥ २० ॥ अतिशय शोकसे

मोहित हुये और चलायमान हुए तदनन्तर चैतन्य लाभ करके भयभीत हो विपन्न-भावसे बैठे रहगये ॥ २१ ॥ नरनाथ इस प्रकार विश्वामित्रजीके मुखसे हृदय विदारण और मनके मथित करनेवाले वचनोंको सुन महाबुद्धिमान् महात्मा अतिशय व्यथित और आसनच्युत होगये ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येबालकाण्डे भाषायां एकोनविंशःसर्गः॥१९॥

विंशः सर्गः २०.

महीपति राजा दशरथजी विश्वामित्रजीके वचन सुन मुहूर्त भरतक मूर्च्छित रहे तदनन्तर संज्ञा प्राप्त करके यह बोले ॥ १ ॥ हे राजर्षे ! इस समय हमारे कमलसे नेत्रवाले राम कुछ कम सोलह वर्षके हैं (अर्थात् १६ वें वर्षमें क्षत्रियकुमार शस्त्रधारी होता है, कोई बारह वर्षका अर्थ करते हैं जैसा रावणसे मारीचने कहा है "बालो द्वादशवर्षोयमकृतास्त्रश्च राघवः" पर यह वचन रावणके भय दिखानेको है) राक्षसोंसे युद्ध करनेमें यह समर्थ नहीं हैं ॥ २ ॥ मैं इन कई अक्षौहिणी सेनाका अधिपति हूं इस सेनाको साथ लेकर मैं राक्षसोंसे संग्राम करूंगा ॥ ३ ॥ यह सब अस्त्रविद्यानिपुण महाबलवान् वीर मेरे आधीन हैं यह राक्षसोंसे युद्ध करनेमें चतुर हैं अतएव रामको न लेजाइये ॥ ४ ॥ जबतक मेरी देहमें प्राण रहेंगे तबतक मैं धनुष धारणपूर्वक राक्षसोंसे युद्ध करके आपके यज्ञकी रक्षा करूंगा ॥ ५ ॥ मेरे उपस्थित रहनेसे निर्विघ्न आपके यज्ञकी रक्षा होगी अतएव मैं चलूंगा रामको न लेजाइये ॥ ६ ॥ मेरा राम बालक है विशेष करके पूरी धनुर्विद्यादि पढ़ी नहीं दूसरोंका बलाबल, जानता नहीं अबतक अस्त्र चलानेमें चतुर हुआ नहीं और न युद्धविद्या अच्छी तरह जानता है ॥ ७ ॥ विशेषतः राम उन राक्षसोंसे युद्ध करनेके लायक नहीं क्योंकि राक्षस मायायुद्ध करतेहैं महाराज ! मैं रामके विना एक मुहूर्त नहीं जीसक्ता ॥ ८ ॥ हे मुनीश्वर ! मेरे जीवनस्वरूप रामको आप न लेजाइये और यदि रामचन्द्रको आप लेही जाना चाहतेहैं ॥ ९ ॥ (सब सुत प्रिय मुहिं प्राणकि नाईं । राम देत नहिं बनै गुसाईं) ॥ तो चतुरङ्गिणी सेना समेत मुझे भी साथ लीजिये, हे कौशिक ! इस समय मेरी उमर ६०००० साठ हजार वर्षकी हुईहै ॥ १० ॥ मैंने बड़े कष्टसे रामको पाया है अतएव रामको न लेजाइये चारों पुत्रोंमें रामकेही

ऊपर मेरी भारी प्रीति है ॥ ११ ॥ विशेषतः सब पुत्रोंमें रामही बड़े और प्रधान हैं अतएव उन्हें न लेजाइये मैं आपसे यह पूछताहूं कि, वह राक्षस कौन और किसके पुत्र हैं ॥ १२ ॥ हे मुनिवर ! उनका आकार प्रकार व शक्ति कैसी है और रामचन्द्र किस उपायसे उनको जीत सक्तेहैं ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! मैं या मेरी सेना किसतरह उन मायावी राक्षसोंसे संग्राम करनेमें समर्थ होगी. यह सब वृत्तांत मुझसे कहिये ॥ १४ ॥ मैं जानताहूं वह बड़े बलवान् हैं उन सब दुष्टाचारियोंके निकट किस प्रकारसे स्थिति करनी होगी राजाकी बात सुनकर मुनिवर विश्वामित्रजी कहने लगे ॥ १५ ॥ पौलस्त्य वंशमें उत्पन्न हुआ रावण नाम एक राक्षस है वह ब्रह्माके वरसे बली हो त्रिलोकीको सतारहाहै ॥ १६ ॥ विपुल बलशाली निशाचरगण सदा उसको घेरे रहतेहैं हे महाराज ! मैंने रावणका नाम सुनाहै वह महाबली राक्षसोंका राजा है ॥ १७ ॥ वह साक्षात् कुबेरका भाई है विश्रवा मुनिका पुत्र है वह यह विचार कर कि, छोटे यज्ञोंको मैं क्या विध्वंस करूं ॥ १८ ॥ यज्ञध्वंस करनेके लिये सुबाहु और मारीच नाम महाबली दो राक्षसोंको भेज देताहै ॥ १९ ॥ तब मुनिवरके वचन सुनकर नृपवरने कहा कि, मैं उस भयंकर दुरात्मा रावणसे संग्राम नहीं कर सक्ता ॥ २० ॥ आप इस समय मेरे रामपर प्रसन्न हूजिये जान लीजिये कि, आपही मुझ हतभाग्यके देवता व गुरु हैं ॥ २१ ॥ जब देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष व पन्नगगण प्रभृति रावणके प्रतापको नहीं सहसके तब मनुष्य तो हैं ही क्या ॥ २२ ॥ वह रावण रणक्षेत्रमें वीर्यवानोंका वीर्यभी क्षय कर देताहै अतएव उसके और उसकी सेनाके साथ सामना करनेको मेरा हियाव नहीं पड़ता ॥ २३ ॥ आप सेना सहित मेरे पुत्रके साथ उस रावणसे लडनेको समर्थ नहीं किस प्रकारसे मैं देवताओंके समान रूपवाले संग्रामके नहीं जाननेवाले रामको तुम्हारे साथ भेजदूं ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन ! मेरा राम बालक है मैं उसे कालके समान भयंकर मारीच व सुबाहु सुन्द और उपसुन्दके पुत्रके साथ कभी संग्राममें नहीं भेजूंगा ॥ २५ ॥ मैं जानताहूं कि, वह दोनों राक्षस आपके यज्ञमें विघ्न करतेहैं पर मैं उनके सामने रामको नहीं भेजसक्ता मारीच और सुबाहु बड़े बलवान् और अस्त्रविद्यामें निपुण हैं ॥ २६ ॥ आपकी इच्छा होनेसे बन्धु बान्धवों समेत मैं राक्षसोंसे युद्ध करसक्ताहूं अन्यथा मैं सबांधव सकुटुम्ब आपकी शरणहूं ॥ २७ ॥ राजा दशरथके ऐसे कातर वचन सुनके आशा भंग जानकर महर्षि विश्वामित्र ऐसे क्रोधसे प्रज्वलित होगये जैसे होमकी अग्नि सूखे काठमें प्राप्तहुई घी

छिडकनेसे अधिक भड़क उठतीहै इसप्रकार महर्षि अ समान प्रदीप्त होगये ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां विंशःसर्गः ॥ २० ॥

शः सर्गः २१.

अनन्तर महर्षि विश्वामित्र दशरथजीके ऐसे स्नेहसाने वचन श्रवण कर क्रोधयुक्त हो राजासे बोले ॥ १ ॥ आप मेरे निकट प्रथम वचन देकर अब प्रतिज्ञाभंग करतेहैं, यह रघुवंशियोंके लिये अयुक्त है और ऐसा करनेसे क्या आश्चर्य है कि कुल का नाश होजाय ॥ २ ॥ यदि प्रतिज्ञाभंग और वंशध्वंस होनेमेंही आप राजी हैं तो मैं अपने स्थानको जाताहूं आप बन्धु बान्धवों सहित सुखसे प्रतिज्ञा भंगकर समय व्यतीत कीजिये ॥ ३ ॥ उन बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके ऐसा क्रोध होनेसे सब पृथ्वी विचलित और देवलोक शंकित हुए ॥ ४ ॥ सब संसारको भयभीत जानकर उस समय श्रेष्ठ व्रतवाले धीर धारण करनेवाले वसिष्ठजीने राजासे कहा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! आप साक्षात् धर्मकी नाईं इक्ष्वाकुकुलमें जन्मे हैं आप श्रीमान् व धीमान् हैं; आपको धर्मत्याग करना उचित नहीं ॥ ६ ॥ त्रिलोकमें यह बात विख्यात है कि, राजा दशरथजी बड़े धर्मात्मा हैं इस कारण धर्मको त्याग करके अधर्मानुवर्त्ती होना आपका कर्तव्य नहीं है ॥ ७ ॥ यदि प्रतिज्ञा करके आप पालन नहीं करैंगे तो जानलीजिये आपके किये सब देवमंदिर बावड़ी कूप निर्माण कर्म व्यर्थ होजांयगे. पुण्यकर्म नष्ट होजाँयगे, अतएव रामको भेजदीजिये ॥ ८ ॥ अग्नि जैसे अमृतकी रक्षा करतेहैं; वैसेही रामचन्द्र अस्त्र जानते हों या न जानते हों विश्वामित्रजीसे रक्षित होनेपर राक्षस इनका कुछ नहीं कर सकैंगे ॥ ९ ॥ यह ऋषि वा रामचन्द्र साक्षात् धर्मस्वरूप हैं यह लोकमें सबसे अधिक बलवान् विद्वान् मननादिमें परायण तपस्याके आश्रयस्थान हैं ॥ १० ॥ त्रिलोकीमें अनेक जाननेवाले यह एकही हैं इनको चर अचरमें पृथ्वीपर कोई नहीं जानता न कभी जानेगा ॥ ११ ॥ देवता, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर व उरगगणतक रामको नहीं जानसके ॥ १२ ॥ यह विश्वामित्रजी जब राज्य करतेथे तब परम धर्मात्मा कृशाश्वके पुत्रोंने इन्हें सम्पूर्ण अस्त्र प्रदान किये ॥ १३ ॥ यह सब

अस्त्र कृशाश्वके पुत्र प्रजापतियोंकी कन्याके पुत्र हैं यह अनेक प्रकारके रूपवाले हैं व महापराक्रमी तेजस्वी सबको जीतनेमें समर्थ हैं ॥ १४ ॥ वे जया व सुप्रभा दक्षप्रजापतिजीके उत्पन्न हुईं जिन्होंने सैंकड़ों अस्त्र शस्त्र परम कान्तिमान् उत्पन्न किये ॥ १५ ॥ वर लाभ करके असुरोंके संहारार्थ जयाने पाँचसौ अस्त्र असुरोंकी सेना मारनेको उत्पन्न किये जिनका गुण अपरिमित और जिनका रूप अदृश्य है ॥ १६ ॥ और पाँचसौही अस्त्र सुप्रभाने प्रसव किये यह सब अस्त्र दुर्द्धर्ष और बलसंपन्न हुये वे संहार नामसे ख्यात हैं ॥ १७ ॥ यह कुशिकनंदन महर्षि उन सब अस्त्र शस्त्रोंको जानते हैं इनके अतिरिक्त यह धर्मात्मा और नये नये दिव्यास्त्र बनासक्तेहैं ॥ १८ ॥ अधिक तो क्या इसी कारणसे यह धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ राजर्षि भूत, भविष्यत, वर्त्तमानकी वार्त्ता सब जानतेहैं ॥ १९ ॥ यह वीर्यवान् महातेजा व महायशस्वी हैं अतएव इनके साथ रामके भेजनेमें कोई सन्देह मनमें न कीजिये ॥ २० ॥ यह विश्वामित्रजी आपही उन निशाचरोंका नाश करसक्तेहैं केवल रामचन्द्रके उपकारार्थही आपसे उनको मांगतेहैं ॥ २१ ॥ वसिष्ठजीके यह कहने पर नरदेव दशरथजी प्रसन्न होगये तब यह विख्यात यश राजा कुशिकनन्दनके सहित रामके भेजनेमें सन्देहरहित होगये ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० बा०भाषायां एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः २२.

वसिष्ठजीके यह कहनेपर राजा दशरथजीने प्रसन्न होकर लक्ष्मण समेत रामचन्द्रजीको बुलाया ॥ १ ॥ तब राजा दशरथ व रानी कौशल्याजी रामचन्द्रजीका मंगलाचरण करनेलगे वसिष्ठजीभी मंगलपाठ करनेमें नियुक्त हुये ॥ २ ॥ फिर दशरथजीने दोनों पुत्रोंका शिर सूंघकर पमर प्रीतिसे उन्हें विश्वामित्रजीके हाथ सौंप दिया ॥ ३ ॥ कमलनेत्र रामचन्द्रजीको विश्वामित्रजीके साथ देख धूलरहित समीर मन्द मन्द चलने लगा ॥ ४ ॥ रामके गमन समय पुष्पवृष्टि और दुन्दुभीध्वनि होनेलगी उन महात्माके जानेमें शंखका शब्द सम्पूर्ण अयोध्यामें छागया ॥ ५ ॥ आगे विश्वामित्र उनके पीछे महायशस्वी रामचन्द्र उनके पीछे काकपक्षधारी धनुर्धारी लक्ष्मणजी गमन करने लगे ॥ ६ ॥ दोनों भ्राता दो दो तूण

बांधे दशों दिशाओंको शोभित करते महात्मा विश्वामित्रके पीछे पीछे चले मानों तीन शिरके सर्पहों ॥ ७ ॥ दोनों अश्विनीकुमार ब्रह्माजीके साथ जाते हुए जिसप्रकार शोभित होतेहैं इसी प्रकार यह दोनों पराक्रमी लक्ष्मीसे दीप्यमान निन्दारहित विश्वामित्रजीके साथ शोभित हुये ॥ ८ ॥ वह पैना खड्ग, दिव्य धनुष व गोहके चमड़ेसे मढ़ा हुआ विचित्र अंगुलित्राण धारण किये विश्वामित्रजीके साथ गमन करने लगे ॥ ९ ॥ राम लक्ष्मण कुमारका शरीर अतिशय शोभित था वह निन्दारहित परस्पर अनिंदित शोभाको धारणकर गमन करने लगे ॥ १० ॥ वह उस समय ऐसे शोभित हुये मानों कार्त्तिक व विशाख शिवजीके साथ जाते हों अनंतर महर्षि विश्वामित्र अयोध्यासे दो कोश चल सरयूके दक्षिण किनारे उपस्थित हो ॥ ११ ॥ राम यह मधुर नाम उच्चारणपूर्वक विश्वामित्रजी बोले तुम बहुत शीघ्र इस नदीके जलमे आचमन करो समय मत बिताओ ॥ १२ ॥ मुझसे बला व अतिबला नामक मंत्र ग्रहण करो इसके ग्रहण करनेसे तुम्हें शान्ति होगी ज्वर या रूपकी विवर्णतादि नहीं होगी और किसी कार्यके करनेसे परिश्रम नहीं होगा ॥ १३ ॥ निद्राभिभूत या चित्तकी विकलता रहनेसेभी राक्षस तुम्हें नहीं जीत सकेंगे, तुम्हारी भुजाओंके समक्ष धरातलमें कोई अपना विक्रम नहीं दिखासकेंगे ॥ १४ ॥ इन बला अतिबला नामक मंत्रोंके ग्रहण करनेसे पृथ्वीमें ही क्या वरन त्रिलोकीमें तुम्हारे समान वीर्यवान् दृष्टि नहीं आवेगा ॥ १५ ॥ अधिक तो क्या कहूं सौभाग्यमें कुशलतामें ज्ञान में बुद्धिमें कोई तुम्हारे समान नहीं होसकेगा ॥ १६ ॥ मेरी बला और अतिबला नामक दोनों विद्याओंके लाभ करनेसे कोई तुम्हारे समान नहीं होगा यह दोनों विद्या सब ज्ञानोंकी माता हैं ॥ १७ ॥ हे नरोत्तम ! बला अतिबला पाठ करनेमें भूख प्यासभी न लगेगी हे तात ! इन बला और अतिबला विद्याको पढो ॥ १८ ॥ तेजसे युक्त यह दोनों विद्या पितामह ब्रह्माजीकी पुत्री हैं इन दोनों विद्याओंको विधिपूर्वक पढनेसे तुम्हारे यश फैलनेमें कुछ शंका नहीं रहेगी ॥ १९ ॥ हे काकुत्स्थ ! तुम इन विद्याओंको ग्रहण करनेके योग्यहो क्योंकि, तुम सब गुणोंकी खानिहो इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ तपस्याके प्रभावसे यह दोनों विद्या मैंने पाईहैं यह बहुत रूप धारण करसक्तीहैं । तदनन्तर रामचन्द्रजीने प्रसन्नवदन हो आचमन किया और पवित्रहो ॥ २१ ॥ महर्षिसे जो त्रिकालज्ञ हैं यह दोनों विद्या पढलीं विद्याको प्राप्त करके भीमविक्रम रामचन्द्रजी शोभाको प्राप्त हुये ॥ २२ ॥ जैसे शरत् कालके

सूर्य तेजवान् होतेहैं दशरथात्मज समस्त गुरुकार्य विश्वामित्रजीके ऊपर छोड मनमें सुखमान विश्वामित्र व लक्ष्मणजी सहित वह रात्रि सरयूपर व्यतीत करते हुये ॥ २३ ॥ यद्यपि अनुज सहित रामचन्द्रजी तृणशय्यापर सोतेथे जो उनके योग्य नहीं थी परन्तु मुनिजीके मनोरम कथा कहनेसे उन्हें कुछ क्लेश नहीं हुआ, सुतरां वह रात्रि सुखसे बीती ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० बा० भाषायां द्वाविंशःसर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः २३.

अनन्तर रजनी बीत प्रभात होजानेपर महामुनि विश्वामित्रजी कुशके विस्तरपर सोते हुये रामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तुमसे कौशल्या पुत्रवती हुई प्रातःसन्ध्याका समय उपस्थित है अतएव उठकर शौचक्रिया व आह्निक कार्य करो ॥ २ ॥ राम लक्ष्मण महर्षिके यह उदार वाक्य श्रवण कर शय्यापरित्यागपूर्वक स्नानान्तमें अर्घ्य आदि प्रदान कर गायत्री जप करनेलगे ॥ ३ ॥ महावीर राम लक्ष्मण आह्निकादि सम्पन्न करके महर्षि विश्वामित्रको अभिवादनपूर्वक हर्षसहित आगे चलनेका उद्योग करनेलगे ॥ ४ ॥ उन दोनों महावीरोंने जाते २ देखा कि, त्रिपथगामिनी गंगाजीके साथ सरयू मिल गईहै ॥ ५ ॥ इस शुभ संगमके स्थलमें एक आश्रम देखा जिसमें बहुत ऋषि हजारों वर्षसे तपस्या करतेथे॥ ६॥ उसको देख आनन्दमनसे रामचन्द्रजी महात्मा विश्वामित्रजीसे यह वचन बोले॥ ७॥ हे भगवन् ! यह पवित्र आश्रम किसका है ? और कौन यहां वास करताहै ? इसके जाननेको हम दोनों कौतूहलाक्रान्त हुए हैं ॥ ८ ॥ विश्वामित्रजी यह सुन कुछेक हँस रामचन्द्रजीसे बोले हे राम ! जिसका यह आश्रम था वह कहताहूं सुनो ॥ ९ ॥ जिसको सब कामदेव कहतेहैं, वह देवता यहां मूर्त्तिमान्थे एक समय यहां नियमपूर्वक महादेवजी तप करतेथे ॥ १० ॥ जब कि, उन्होंने अपना विवाह किया था व सब सुरगणोंके संग विवाह किये चले जातेथे उस समय मन्मथने चाहा कि, भूतनाथका भी मन मथित करैं तब महात्मा शंकरने हुं शब्द किया ॥ ११ ॥परन्तु वहां मीनकेतनका बल नहीं चला शिवजीने नयन खोल हुम् ऐसा शब्द करदिया व कोप करके उसकी ओर देखा उससेही कामदेवका अंग भस्म

होगया और उस दुर्मतिके सब शरीर बिखर गये ॥ १२ ॥ जब महादेवजीकी क्रोधदृष्टिसे कामदेवके अंग भस्म होगये तबसे वह अतनु होगया ॥ १३ ॥ हे राघव ! उस दिनसे कामदेवका नाम अनंग होगयाहै जिस स्थानमें भागते हुये उसके अंग गिरे थे वह देश अंगदेश करके गिनागयाहै ॥ १४ ॥ यह उसीका पवित्र आश्रम है इस आश्रममें रहनेवाले धर्मपरायण पापहीन मुनिगण आगेहीसे कामदेवके शिष्य हैं ॥ १५ ॥ हे शुभदर्शन राम ! अब हम इस पुण्य संगममें एक रात्रि व्यतीत कर कल पार उतरेंगे ॥ १६ ॥ अतएव हम पवित्र भावसे इस पुण्य आश्रममें प्रवेश करैं यहां वास करना मुझे श्रेष्ठ बोध होताहै, यहां रहकर सुखसे रात्रि व्यतीत करैंगे ॥ १७ ॥ यह कहकर सबने वहां स्नान, जप, व अग्निमें होम किया आश्रमके ऋषिगणने यद्यपि इन्हें नहीं देखाथा तौभी दिव्य ज्ञानके बलसे ॥ १८ ॥ इनकी कथा वार्त्ताका मर्म जानकर बड़े प्रसन्न हुए और निकट आकर प्रथम विश्वामित्रजीको अर्घ्य व पाद्यादि और अतिथिसत्कारकी सामग्री प्रदान की ॥ १९ ॥ फिर पीछे मुनियोंने राम व लक्ष्मणजीका उचित सत्कार किया वे सत्कारको प्राप्त होकर नाना कथा वार्त्ता सुनकर प्रसन्न हुये ॥ २० ॥ फिर विश्वामित्र आदि सब ऋषि इकट्ठे होकर संध्या करने लगे फिर वे अच्छे व्रतवाले मुनि इन्हें अपने आश्रममें लिवालाये ॥ २१ ॥ वह इस प्रकार उस कामाश्रममें विश्वामित्र व और मुनियों समेत बसे और ऋषियोंके सहित अनेक मनोहर कथा कहकहाकर मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा विश्वामित्रने शोभायमान रामचंद्र लक्ष्मणको प्रसन्न किया ॥ २२ ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बा०भाषायां त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः २४.

अनन्तर प्रभात होनेपर वे दोनों भाई आह्निकादिकर्म समाप्त करके विश्वामित्रजीके साथ नदीके तीरमें उपस्थित हुये ॥ १ ॥ इस अवसरमें आश्रमके रहनेवाले वे महात्मा व्रतधारण करनेवाले मुनि एक सुन्दर नौका लाकर विश्वामित्रजीसे बोले ॥ २ ॥ आप दोनों राजकुमारोंको संगले इस नौकामें बैठिये. अब देर न करके शीघ्र यात्रा कीजिये आपके मार्ग विघ्नरहित हैं ॥ ३ ॥ विश्वामित्रजी

उनके कहनेपर सम्मतिहो व मुनिलोगोंकी पूजा कर दोनों राजपुत्रों समेत सागर-गामिनी गंगाके पार होने लगे ॥ ४ ॥ जब नौका भागीरथीके बीचोंबीचमें पहुँची उस समय तरंगसमूहोंसे बढाहुआ तुमुल शब्द श्रवणगोचर होने लगा ॥ ५ ॥ महातेजवान् रामचंद्रजी गंगाके बीचमें उस शब्दके जाननेकी इच्छासे अनुज सहित ऋषिसे कहने लगे कि, इस शब्द होनेका क्या कारणहै ॥ ६ ॥ हे मुने ! जलराशिको भेद करता हुआ यह तुमुल शब्द कैसा होताहै ? ऐसे रामके कौतूहल मय वचन सुनकर विश्वामित्रजी ॥ ७ ॥ धर्मात्मा उस शब्दके होनेका कारण कहने लगे कि, पूर्वकालमें ब्रह्माजीने कैलासपर्वतपर मनसे एक दिव्य सरोवर बनाया ॥ ८ ॥ हे मनुष्योंमें सिंह रामचंद्रजी ! इसीसे तिसका नाम मानससरोवर हुआ उससे जो नदी निकली है वही अयोध्याके नीचे बहतीहै उसकाही नाम सरयू है ॥ ९ ॥ यह ब्रह्माजीके सरसे निकली है इससे अतीव पुण्यकी देनेवालीहै यह सरयूका जल यहां गंगाजीमें आकर गिरताहै देखो यह उसकाही तुमुल शब्द है ॥ १० ॥ यह देखो इन दोनों नदियोंका जल कैसा उछल रहाहै तुम चित्त लगाये इन दोनों नदियोंको प्रणाम करो. यह सुनकर उन दोनों धर्मात्माओंने प्रणाम किया ॥ ११ ॥ अनन्तर दक्षिण किनारे पहुँच नावपरसे उतर वे बड़े पराक्रमी तीनों जन मंदगतिसे जाने लगे. जाते जाते सामने एक निबिड अरण्य दृष्टिगोचर हुआ ॥ १२ ॥ अतएव साथ चलते २ रामचन्द्रजीने विश्वामित्रजीसे कहा यह वन कैसा दुर्गम है झिल्लीका झनकार इसमें होरहा है ॥ १३ ॥ भयानक हिंसक जन्तु व बाज दारुण शब्द कररहेहैं अनेक प्रकारके पक्षिगणोंके नादसे यह वन गूँज रहाहै ॥ १४ ॥ इधर उधर सिंह, व्याघ्र, वराह, हाथी भी इसमें दौडरहेहैं खैर, असगन्ध, कुम्भी, बेल, त्युदुआँ, पाडरी ॥ १५ ॥ व बेर आदि नानाप्रकारके पेड इसमें सघन लगेहैं हेमुने ! सो मैं आपसे जाना चाहताहूं कि, यह वन किसका है ? यह बात सुन महातेजस्वी विश्वामित्रजी बोले ॥ १६ ॥ हे वत्स ! जिसका यह निबिड वनहै उसका परिचय श्रवण कीजिये. हे नरोत्तम ! पूर्वमें यह बड़े दोनों जनपद ॥ १७ ॥ देवरचित सुखसंपत्तियुक्त मलद व का-रुष नामसे विख्यात थे. आगे जब इन्द्र वृत्रासुरको मार मलसे दूषित हो ॥ १८ ॥ क्षुधार्त व ब्रह्महत्यामें लिप्त हुयेथे तब इन्द्रका मलिन भाव देखकर तपोधन ऋषि

१ इटलीदेशीय पुस्तकमें सरयूका पार होना लिखाहै ।

और देवताओंने ॥ १९ ॥ गंगाजलके भरेकलशोंसे स्नान कराय उनका मल दूर करते हुये. देवता व ऋषि इस भूमिमें इन्द्रका मल व क्षुधा अर्थात् कारूष ॥ २० ॥ छूटा देखकर अतिहर्षित हुये. जब इन्द्रके शरीरका मैल छूटा तब इन्द्र विशुद्ध अवस्थाको प्राप्तहो पूर्ववत् होगये ॥ २१ ॥ तब प्रसन्नहो इस स्थानको यह धन धान्य पूर्ण जनपद विख्यात तीन लोकमें होगा यह वर दिया ॥ २२ ॥ व हमारे अंगोंके मल व कारुष धारण करनेसे इनका मलद व कारूष नाम होगा. देवतालोग इन्द्रका यह वाक्य श्रवण करके साधु २ करनेलगे ॥ २३ ॥ इन देशोंकी इन्द्रकी करीहुई ऐसी पूजा हुई. हे राजकुमार ! पूर्वकालमें यह दोनों जनपद मलद व कारूष धन धान्यसे ॥ २४ ॥ अतिशय समृद्धशाली थे. कुछ दिन बीतनेपर कामरूपि-णी एक यक्षपत्नीने इनपर अधिकार किया ॥ २५ ॥ उसका नाम ताडका वह हजार हाथियोंका बल रखतीहै वह सुंदकी भार्या है आपका कल्याण हो ॥ २६ ॥ मारीच राक्षस इसकाही पुत्रहै वह मारीच इन्द्र समान बलवान् है इस राक्षसके बड़े २ बाहु बड़ा भारी शिर व बड़ा मुँह और सब देह है ॥ २७ ॥ यह भैरव निशाचर नित्य प्रजापुंजोंको सताया करताहै इसनेही पहले कहेहुये दोनों जनपदोंका नाश किया है ॥ २८ ॥ दुष्टचारिणी ताडकानेही मलद व कारूष जनपदोंको उजाडाहै वही ताडका अब आधे योजनसे अधिक मार्ग रोके पड़ी रह-तीहै ॥ २९ ॥ हमें उसी ताडकावनमें होकर जाना पडेगा अतएव तुम अपने भुजबलके प्रभावसे इस दुष्टनीका प्राणसंहार करो ॥ ३० ॥ मेरी आज्ञासे तुम इस स्थानको निष्कंटक करदो. यहाँ ताडकाके भयसे कोई आनेका साहस नहीं करता ॥ ३१ ॥ विकटाकार यह राक्षसी इस वनका नाश किये डालती है जिससे.यह वन भयावना दृष्टि आताहै यह मैंने तुमसे सब कहा अबतक यह निशाचरी वनके उजाडनेसे निवृत्त नहीं होती ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० बालकांडे भाषायां चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः २५.

उन उपमारहित विश्वामित्रजीके यह वचन श्रवण कर पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रजी सुन्दर वाणी बोले ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर ! मैंने सुनाहै कि, यक्षजातिमें रणवीर्य साधारण होता है अतएव मैं आपसे यह पूंछना चाहताहूं कि, इस अबला निशाचरीमें हजार

हाथीका बल कैसे हुआ ॥ २ ॥ बडे पराक्रमी रामचन्द्रजीकी यह उक्ति सुनकर विश्वामित्रजी प्रसन्नहो लक्ष्मणसहित शत्रुओंके मारनेवाले रामचन्द्रसे बोले ॥ ३ ॥ कि, जिस कारणसे ताडका राक्षसीमें अमित बल हुआहै वह कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ ४ ॥ अबलाभी जिसप्रकार वरदानके प्रभावसे इतना बल धारण करतीहै. पूर्वकालमें सुकेतु नाम एक महावीर्य्यवान् यक्ष था उसके कोई सन्तान न थी वह अच्छे आचरणवाला था इसकारणसे घोर तप किया. हे राम ! तब यक्षकी ॥ ५ ॥ तपस्यासे प्रसन्नहो ब्रह्माजीने उसे ताड़का नाम्नी कन्या प्रदान की ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीने उस कन्याको हजार हाथीका बल दिया. पुत्र इतने बलवाला इसकारण नहीं दिया कि, इतना बल पाकर कदाचित् वह देशको सतावे ॥ ७ ॥ क्रमसे बाल्यकाल बिता कर कन्या यौवनावस्थाको प्राप्त हुई तब उसने उस लावण्यमयी ललनाके साथ जम्भके बेटे सुन्दका विवाह किया ॥ ८ ॥ कुछ समय बीत जाने पर इस यक्षिणीके गर्भसे दुर्धर्ष राक्षस मारीचका जन्म हुआ शापवश मारीचको राक्षस योनि मिली ॥ ९ ॥ किसी कारणवश महर्षि अगस्त्यजीके हाथसे सुन्द मारागया वैसेही ताडका अपने पुत्र मारीच सहित मुनिवरको मारनेके लिये दौडी॥ १० ॥ जब उस ताडकाने लाल नेत्र कर उस मुनिपर आक्रमण किया और गर्जती हुई खानेको दौडी भगवान् अगस्त्यजी उसको अपने ऊपर आती हुई देख॥ ११ ॥ तब मुनिने मारीचको तो यह शाप दिया कि, तू राक्षस होगा और ताडकाकोभी बड़े क्रोधसे शाप दिया कि ॥ १२ ॥ तूभी विकट मुख व विकृत भावसे नरशोणित पीनेको दौडी इस कारण तेराभी यह सुन्दर शरीर राक्षसीकेसा होजाय तू पुरुषभक्षिणी महाराक्षसी होजा ॥ १३ ॥ अब वही निशाचरी ऋषिके शापसे मारे क्रोधके उन्हींका यह श्रेष्ठ आश्रम उजाड़ डालती है ॥ १४ ॥ हे राघव ! वह निशाचरी घोर अनिष्ट कर रही है तुम उस विपुलविक्रमा ताडकाको मार डालो ॥ १५ ॥ हे रघुनंदन ! तुम्हारे सिवाय त्रिलोकमें कोई पुरुष शापसे मोहित हुई उस राक्षसीको नहीं मार सक्ता ॥ १६ ॥ हे नरवर ! स्त्रीवधके विषयमें तुम कोई चिन्ता मत करना. क्योंकि राजकुमारोंको चारों वर्णका हित करना चाहिये ॥ १७ ॥ नृशंस हो वा अनृशंस पापजनक हो या पुण्यजनक प्रजाके लिये सबही कार्य्य राजाको करने ॥ १८ ॥ क्योंकि राजकार्यमें नियुक्त मनुष्योंका यही सनातन धर्म है अतएव हे काकुत्स्थ ! तुम अधर्मचारिणी निशाचरीको मारही डालो इस राक्षसीमें धर्मका लेशभी

नहीं है ॥ १९ ॥ मैंने सुना है कि, पूर्वकालमें विरोचनसुता मन्थराने पृथ्वीका नाश करनेकी चेष्टा की थी. तब राजा इन्द्रने उसका संहार किया ॥ २० ॥ महर्षिशुक्राचार्यकी माताने दैत्योंका कार्य साधन करनेके लिये देवेन्द्रके विनाशकी वासना कीथी किन्तु स्वयं भगवान् नारायणने उसको मारडाला ॥ २१ ॥ हे राघव ! इसप्रकार देवगण व अनेक धार्मिक श्रेष्ठ राजाओंने अधर्मचारिणी स्त्रियोंका वध कियाहै, अतएव घिन छोडकर मेरे नियोगसे इस निशाचराङ्गनाका प्राणसंहार करो ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बा० भाषायां पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः २६.

महर्षि विश्वामित्रजीके वीरतासे भरे ऐसे वचन सुनकर दृढव्रत रामचन्द्रजी कृताञ्जलिपुट हो बोले ॥ १ ॥ पिताकी आज्ञा व वचन देनेके गौरवसे आप जो मुझे करने कहेंगे मैं निःशङ्कचित्तसे उसे करनेको तैयारहूं ॥ २ ॥ अयोध्यामें सभाके बीच वसिष्ठादि गुरुओंके मध्यमें जो पिता महात्माजीने मुझे आज्ञा दी है उसके अनुसार मैं आपके कार्यमें अवहेला नहीं करूंगा ॥ ३ ॥ सो मैं पिताके वचन सुन व वेद जाननेवाले आपकी आज्ञासे निश्चयही उस निशाचरीका प्राण लेनेके लिये उसके सन्मुख हूंगा ॥ ४ ॥ गो ब्राह्मणके हितार्थ व देशके उपकारार्थ मैंने महातेजस्वी आपके वचन शिरोधार किये ॥ ५ ॥ यह कहकर रामचन्द्रजीने दृढमुष्टिसे शरासन ग्रहण किया और धनुषकी टंकारसे दशों दिशा समाच्छन्न करने लगे ॥ ६ ॥ उस टंकारके विकटशब्दसे ताडकावनके सब वनवासी जीव चकित व शंकित हो उठे शब्द सुनतेही निशाचरीभी कुपित व मोहित होगई ॥ ७ ॥ तदनन्तर क्रोधमें भरके जहाँसे शब्द आयाथा उसे लक्ष्य कर उसी ओर दौडने लगी ॥ ८ ॥ तब रामचन्द्रजी विकटाकार विकृतमुख क्रोध करते हुये ताडका राक्षसीको दौडी आती देख जिसका बडा शरीर था और बूढी थी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ९ ॥ हे भइया लक्ष्मण ! इस यक्षिणीका भयंकर दारुण शरीर और रूप तो देखो वास्तविक इस मूर्तिको देख भीरुओंका तो हृदय काँपही जाय ॥ १० ॥ तुम देखो कि, दूरसेही इस कठिनतासे वशमें आनेवाली माया जाननेवालीके नाक कान काटकर लौटाये देताहूं ॥ ११ ॥ यह स्त्री है सुतरां इसके वध करनेकी मेरी इच्छा नहीं होती कारण कि, स्त्रीकी रक्षा करनी

चाहिये बस मैं यही चाहताहूं कि,इसका पराक्रम और गति रोध करदूं॥ १२॥ रामचंद्रजी यह बात कहही रहेथे कि, इतनेमें वह निशाचरी क्रोधसे मूर्छित हो दोनों हाथ फैलाय तर्जन गर्जन करते२ रामचन्द्रजीके सामने आही गई॥ १३॥ तब विश्वामित्रजीने हुङ्कार पूर्वक उसको फटकारा व रामलक्ष्मणको आशीर्वाद दिया कि, आपकी जय हो स्वस्ति हो ॥ १४ ॥ तब ताडकाने आकाशमें बहुत धूल वर्षाकर धूलके प्रभावसे एक मुहूर्त राम लक्ष्मणको मोहित करदिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर मायाबलसे शिला वर्षण कर रामचन्द्रजीको व्यस्त कर दिया तब रघुनाथजी क्रोधित हुये ॥ १६ ॥ रामचन्द्रजीने बाणोंकी वर्षासे उसकी शिलावृष्टि निवारण कर बाणोंसेही उसके दोनों हाथ काट डाले ॥ १७ ॥ कटगई भुजा जिसकी समीप गर्जना करनेवाली ताडकाके लक्ष्मणजीने क्रोधसे नाक और कान काटडाले॥ १८॥ कामरूपिणी राक्षसी बहुतसे रूप धारण कर अंतर्धान होगई व राक्षसीने माया करकेरामचन्द्रजीको मोहित करदिया ॥ १९ ॥ अनन्तर निरन्तर शिलावर्षणपूर्वक भयंकरभावसे इधर उधर घूमने लगी और शिला वर्षाकर अनेकप्रकार उन दोनोंपर चोट करने लगी ॥ २० ॥ यह देख विश्वामित्रजीने रामचन्द्रसे कहा कि, इस दुष्टा निशाचरीको स्त्री जानकर वध करनेमें घृणा मत करो ॥ २१ ॥ यज्ञविद्वेषिणी यह निशाचरी धीरे २ और माया फैलावेगी अत एव संध्या होनेसे पहिलेही तुम इसको मारडालो ॥ २२ ॥ क्योंकि संध्याकालमें राक्षस अजय होजातेहैं, यह श्रवण कर रामचन्द्रजीने पत्थर वर्षाती राक्षसीको ॥ २३ ॥ शब्दवेधीपन दिखाकर बाणोंकी वर्षासे उसकी गति रोक दी वह मायाके बलसे युक्त जब बाणोंके जालसे रुकगई ॥ २४ ॥ तब राक्षसी गुप्तभाव छोडकर वेगसे गर्जना करती हुई राम और लक्ष्मणके ऊपर दौडी उस समय वह इन्द्रके वज्रसमान बोध होने लगी ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजीने आते हुये देख एक बाण उसके हृदयमें मारा जिसके लगतेही वह गिरी और मरगई इन्द्रने आय उस भयानक राक्षसीको मरी देख ॥ २६ ॥ साधु २ किया व देवताभी आनन्द प्रकाश करने लगे तब सहस्रलोचनने परम प्रसन्न हो कहा ॥ २७ ॥ इन्द्रसहित देवता व मरुद्गण विश्वामित्रजीसे प्रसन्न हो बोले हे विश्वामित्रजी ! आपके कार्यसे हम उत्कण्ठा रहित हुये तुम्हारा मंगल हो ॥२८॥ इस कर्मसे रामचन्द्रसे हम बहुत सन्तुष्ट हुये आप इससमय रामचन्द्रजीपर परम स्नेह दिखाइये प्रजापति कृशाश्वके अस्त्ररूपी जो सत्यपराक्रमी पुत्र है वह ॥२९॥ तपस्वी

बलयुक्त रामचन्द्रजीकोही देदीजिये क्योंकि इसके देने योग्य यहीहैं व तुम्हारी सेवा शुश्रूषाके करनेवाले हैं ॥ ३० ॥ यह दोनों राजकुमार देवताओंका बड़ा कार्य साधन करेंगे यह कह देवतागण सन्तुष्ट हो विश्वामित्रजीका आदर सत्कार कर देवलोकको चलेगये ॥ ३१ ॥ इधर संध्या हो आई तब महर्षि विश्वामित्रजी ताडकाके मारे-जानेसे अति सन्तुष्ट हो ॥ ३२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीका शिर सूँघकर कहने लगे हे सौम्य ! हम आजकी रातको यहीं व्यतीत करेंगे ॥ ३३ ॥ व प्रभात होतेही हम अपने आ-श्रमकी ओर चलेंगे विश्वामित्रजीके यह वचन सुन रामचन्द्रजी प्रफुल्ल हुये ॥ ३४ ॥ वह रात्रि तीनोंजनोंने उस ताडकाके वनमेंही बिताई और उसी दिनसे वह वन उप-द्रवरहित होगया. अधिक क्या कहैं तबसे वहां चैत्ररथवनकी समान मनोहर शोभा होगई ॥ ३५ ॥ इसप्रकार रामचन्द्रजी उस यक्षकी कन्या ताडकाका संहारकर व देवताओंकी प्रशंसा ग्रहणपूर्वक मुनिके सहित उस रात्रिको वहीं रहे और रात्रि व्य-तीत कर प्रातही जागे ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बा० भाषायां षड्विंशःसर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७.

रजनी प्रभात होनेपर महायशस्वी महर्षि विश्वामित्रजी कुछ हँसतेहुये मधुर वा-क्यसे यह बोले ॥ १ ॥ हे राजपुत्र ! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआंहूँ तुम्हारा मंगल हो मैं तुम्हें सब अस्त्र दूंगा ॥ २ ॥ इन सब अस्त्रोंका प्रभाव ऐसा है कि– देवता, असुर, गन्धर्वतक तुम्हारे सामने लडनेको आवें तो तुम उनकोभी इन अस्त्रोंके प्रभावसे परास्त कर दोगे ॥ ३ ॥ जो हो मैं तुम्हें सब दिव्य अस्त्र व दिव्यदंडचक्रादि प्रदान करूंगा ॥ ४ ॥ हे वीर ! धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र तथा उग्र इन्द्रचक्र ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! वज्रअस्त्र, शिवशूल, ब्रह्मशिर, ऐषीकास्त्र ॥ ६ ॥ हे बडी बाहोंवाले ! मैं तुमको ब्रह्मास्त्र देताहूं हे काकुत्स्थ ! कौमोदकी और शिखरी नाम्नी दो प्रदीप्त गदा ॥ ७ ॥ हे नरशार्दूल ! प्रदीप्तिमान् धर्मपाश आपको देताहूं ॥ ८ ॥ वरुणपाश उत्तम अस्त्र आपको देताहूं, शुष्क व आर्द्रनामक दो अशनि अर्थात् वज्र ॥ ९ ॥ पिनाकास्त्र देताहूं नारायणास्त्र और शिखरनामवाला बडा श्रेष्ठ आग्नेयास्त्र देताहूं ॥ १० ॥ मथननाम वायवास्त्र हे राघव ! तुमको देताहूं हयशिर और क्रौञ्च अस्त्र देताहूं ॥ ११ ॥

हे राम ! दो शक्तियें आपको देताहूं. कंकाल, मूसल, कापाल व किंकिणी लीजिये ॥ १२ ॥ यह सब अस्त्र राक्षसोंके संहारार्थ प्रदान करूंगा; तदनन्तर वैद्याधरास्त्र नन्दन नामवाला ॥ १३ ॥ असिरत्न हे बडी बाहोंवाले राजपुत्र ! गान्धर्वास्त्र, मोहनास्त्र ॥ १४ ॥ हे राघव ! सौम्य, प्रस्वापन, प्रशमन अस्त्र आपको देताहूं. सौम्यवर्षण, शोषण अस्त्र तथा संतापन और विलापन अस्त्र ॥ १५ ॥ शत्रुओंको मद करानेवाला दुर्द्धर्ष, कामोत्पन्न करनेवाला मदनास्त्र और मानव नामवाला गंधर्वास्त्र ॥ १६ ॥ मोहन नामवाला पैशाचास्त्र, हे मनुष्योंमें सिंह राजपुत्र ! यह आप ग्रहण कीजिये ॥ १७॥ तामसास्त्र, सौमनास्त्र जो बडे बलयुक्त हैं हे नृपपुत्र ! सम्वर्त, दुर्द्धर्ष, मौसलास्त्र ॥ १८॥ हे महाभुज ! सत्यास्त्र इसीप्रकार मायास्त्र इसप्रकार शत्रुके तेजका खैंचनेवाला सौरास्त्र ॥ १९ ॥ सौमास्त्र और दारुण, त्वाष्ट्र और भग अर्थात् सूर्यका अस्त्रभी यह महाभयंकरहै इससे शीत दूर होताहै ॥ २० ॥ हे महाभुजावाले रामचन्द्रजी हे राजपुत्र ! इन कामरूपी परमउदार महाबली अस्त्रोंको मुझसे ग्रहण कीजिये ॥ २१ ॥ तदनन्तर यह बात कहकर मुनिजीने पूर्वमुख बैठ प्रसन्नमनसे रामचन्द्रजीको वह मंत्रमय सब अस्त्र देदिये ॥ २२ ॥ जो सब दुर्लभ अस्त्र देवताओंकोभी दुर्लभ थे वही सब अस्त्र मुनिजीने रामचन्द्रजीको देदिये ॥ २३ ॥ जब अस्त्र देनेके समय विश्वामित्रजी ध्यान जप करनेलगे वैसेही अस्त्रसमूह अपना २ रूप धारण कर रामचन्द्रजीके सन्मुख उपस्थित हुये ॥ २४ ॥ सब अस्त्रोंने प्रफुल्ल मनसे हाथ जोड रामचन्द्रजीसे कहा हे रामचन्द्र ! हम सब आपके आज्ञाकारी दास हैं ॥ २५॥ आपका कल्याणहो हमको क्या आज्ञा है जो आप कहैंगे सोकरेंगे उन महाबलियोंके यह कहने पर प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुये ॥ २६ ॥ रघुनाथजीने एक २ को अपने करकमलसे स्पर्शकर सबको ग्रहण किया व कहा कि, हे अस्त्रो ! जब मैं स्मरण करूं तब उपस्थित होजायाकरो तुम सब मेरे मानसी हो ॥ २७ ॥ तदनन्तर लोकमित्र महातेजस्वी रामचन्द्रजी विश्वामित्रजीको प्रणामकर आगे चलनेका उद्योग करने लगे ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मीकीये आदिकाव्ये बाल०भषायां सप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंश सर्गः २८.

तदनन्तर रामचन्द्रजी पवित्रभावसे अस्त्र ग्रहण करके जाते हुये प्रफुल्लमुखहो विश्वामित्रजीसे बोले ॥ १ ॥ हे भगवन् ! मैं अस्त्रग्रहण करके देवताओंसेभी दुर्द्धर्ष हो-

गयाहूं. परन्तु अस्त्रका संहार करना मैंने अबतक नहीं जाना कृपा करके बताइये॥ २॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर महातपस्वी धैर्यशाली सुव्रत विश्वामित्रजीने रामचन्द्रजीको मंत्र देकर कहा ॥ ३॥ तुम सत्यवान्, सत्यकीर्ति, धृष्ट, रभस, प्रतिहारतर, पराङ्मुख, अवाङ्मुख॥ ४ ॥लक्ष्य, अलक्ष्य विमोच, दृढनाभ, सुनाभ, दशाक्ष, शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर ॥ ५ ॥ पद्मनाभ, महानाभ, इन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, शकुन, विमल, नैराश्य, विमल ॥ ६ ॥ यौगन्धर, विनिद्र, दैत्यप्रमथन, शुचिबाहु, महाबाहु, निष्कलि, विरुचि, अर्चिमाली, धृतिमाली, वृत्तिमान्, रुचिर ॥ ७ ॥ हे राम ! पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, परवीर, रति, धन, धान्य ॥ ८ ॥ कामरूप, कामरुचि, मोह, आवरण, जृम्भक, सर्पनाथ, पन्थान, व वरुण ॥ ९ ॥ हे रामचन्द्र ! इन सब कृशाश्वपुत्रसम्भूत दीप्तिशील व कामरूपी अस्त्रोंको तुम ग्रहण करो. तुम्हारा मंगलहो, तुम्हीं इनको ग्रहण करने योग्य पात्र हो ॥ १० ॥ रघुवीरने प्रसन्न हो बहुत अच्छा कहकर उन सबको ग्रहण किया यह सब सुखप्रद अस्त्र दिव्य मूर्तिमान् ॥ ११ ॥ देखनेमें बहुतसारे अङ्गारतुल्य कुछ धुएँकी समान कोई २ चन्द्र सूर्यकी समान हाथ जोडे व माथा झुकायेथे ॥ १२ ॥ वह सब अस्त्र हाथ जोडकर रामचन्द्रजीसे मधुरवचन बोले, हे नरश्रेष्ठ ! हम आपके आगे उपस्थित हैं कहिये हमको क्या आज्ञा होती है ? क्या आपका कार्य करैं॥ १३॥ रामचन्द्रजीने कहा अब तो तुम जहाँ इच्छा हो तहाँ जाओ कार्य समय याद करनेसे आकर मेरी सहाय करना॥ १४॥ तब वह रामकी आज्ञा शिरोधार कर उनकी परिक्रमा कर उनका मत ले वहांसे अपने२ स्थानको चलेगये ॥ १५ ॥ इस ओर रामचन्द्र अस्त्रप्रयोग व संहारविषय जानकर गमन करते २ मार्गमें महर्षि विश्वामित्रजीसे मधुरवाणी बोले ॥ १६ ॥ हे मुने ! पर्वतके अतिनिकट मेघमालाकी समान वृक्षोंका समूह देखपडता है वह क्या है ? ॥ १७ ॥ यह स्थान बड़ा मनोहर दिखाईदेताहै उसके चारों ओर मृगगण फिर रहेहैं, व अतीव मनोरम वाणी बोलनेवाले नानाप्रकारके पक्षी शोर कर-रहेहैं ॥ १८॥ हम यद्यपि अभी भयावह व निबिड वन खूंद कर आयेहैं, परन्तु तोभी यह स्थान सुख शान्तिकर बोध होताहै यह क्या है इसके जाननेकी इच्छाहै॥ १९॥ हे भगवन् ! यह आश्रम किसका है आपसे पूछताहूं यह सब बताइये वे ब्राह्मणद्वेषी दुष्ट राक्षस कहाँ हैं ॥ २०॥ हे भगवन् महामुनिराज ! तुम्हारे यज्ञमें विघ्न करनेवाले वे दुरात्मा राक्षस कहां हैं जहाँ आपका यज्ञ होताहै वह स्थान कौनसाहै ? ॥ २१ ॥

मुझे जहाँ आपका यज्ञरक्षण व निशाचरोंका वध साधन करना होगा वह स्थान अ-ब कितनी दूर है यह सब मेरी जाननेकी इच्छा है ॥ २२ ॥

इ० श्रीमद्वा० वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडेभाषायां अष्टाविंशः सर्गः॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः २९.

अनंतर अमिततेजवान् रामचन्द्रजीसे यह पूछे जानेपर महातेजस्वी महर्षि विश्वामि-त्रजी कहने लगे ॥ १ ॥ हे राम ! हे महाबाहो ! इस स्थानपर सब देवताओंके वन्दन करने योग्य भगवान् विष्णुजीने बहुत वर्षों व युगोंतक तपस्या कीथी ॥ २ ॥ यह आश्रम महात्मा वामनका पूर्वाश्रम है; यह तप करनेके लायक स्थान है पहले यहाँ बड़े तपस्वी रहते थे ॥ ३ ॥ इसका नाम सिद्धाश्रमहै जब वहाँ विष्णुजी तप कर रहेथे, उसकाल विरोचनसुत बलिने ॥ ४ ॥ अपने बल पराक्रमसे इन्द्रादि देवताओंको मरुतोंसहित पराजित कर अपने राज्यको त्रिलोकविख्यात कियाथा ॥ ५ ॥ अनन्तर एक समय असुरोंके राजा बलिने एक बड़े यज्ञका अनुष्ठान कि-या तब देवतागण अग्निको आगेकर भगवान् विष्णुजीके पास इस आश्रममें आकर कहने लगे ॥ ६ ॥ हे विष्णुजी ! विरोचनपुत्र बलिने एक यज्ञका आरम्भ किया है इस कारण उस यज्ञके समाप्त होनेसे प्रथम आपको एक देवकार्य करना होगा ॥ ७ ॥ राजा बलिके यज्ञमें अनेक देशोंसे याचक उपस्थित होतेहैं यज्ञकर्त्ताभी जिसकी जो प्रार्थना होतीहै उसको वही देताहै ॥ ८ ॥ हे विष्णो ! आप इस समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये योगमायाका आश्रय ग्रहणपूर्वक वामनमूर्ति धारणकर हमारा कल्याण कीजिये ॥ ९ ॥ सो अवतार लेनेका उपर्युक्त स्थानभी बतातेहैं कि, आज कल अग्नितुल्य तेजस्वी कश्यप, देवी अदितिजीके सहित तेजसे देदीप्यमान ॥ १० ॥ देवीके सहित कश्यपजी सहस्रवर्षका व्रत समाप्त करके वरदाता मधुसूदनका स्तव करने लगेहैं ॥ ११ ॥ वह कह रहेहैं हे प्रभो ! आप तपोमय, तपोराशि, तपोमूर्ति व ज्ञानरूप हैं. हे पुरुषोत्तम ! मैंने तपके प्रभावसे आपको साक्षात् पायाहै ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! आपके शरीरमें सब संसार प्रत्यक्ष दीख रहाहै, आप अनादि आनन्दमय व ऐश्वर्य्यसम्पन्न हैं अत एव मैं आपके शरण हूं ॥ १३ ॥ तब भगवान् हरिजी प्रसन्न हो पापरहित कश्यपजीसे बोले कि, हे भगवन्! हे मुने ! तुम्हारा क्या अभिलाष है कहो. तुम वर देनेके योग्य पात्र हो तुम्हारा मंगल हो॥ १४ ॥

नारायणजीके यह वचन श्रवण करकै मरीचिनन्दन कश्यपजी कहने लगे कि, अदिति देवीमें पुत्ररूपसे प्रगट होनेकी आपसे मैं और सब देवगण यह प्रार्थना करतेहैं ॥ १५॥ आप प्रसन्न हो सबका अभिलाष पूर्ण कीजिये. हमारीभी यह प्रार्थना है कि, आप पुत्ररूपसे अदितिके गर्भसे अवतार लीजिये ॥ १६॥ हे दानवदलन! आप उपेन्द्ररूप हो इन्द्रके छोटे भाई हूजिये और महादुःखमें पडेहुये सुरगणोंकी सहाय कीजिये ॥ १७ ॥ आपके प्रसादसे यह स्थान सिद्धाश्रमनामसे कीर्तित होगा. हे देवेश! आपका कार्य सिद्ध होगया अब इस स्थानसे उठिये ॥ १८ ॥ अनन्तर महातेजस्वी विष्णुजी अदितिके गर्भसे वामन अवतार ले बलिके निकट उपस्थित हुये ॥ १९ ॥ सर्वलोकोंका हित करनेमें अनुरक्त अच्युत भगवान्ने राजा बलिसे तीन पग पृथ्वी भिक्षा माँग तीन पगमें तीनों लोक नापलिये ॥ २० ॥ उन्हीं महातेजस्वीने बलप्रभावसे बलिको बांधकर पुनः सुरनाथको त्रिलोकीका राज्य दियाथा ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें वामनजी इसी स्थानपर रहतेथे इस समय उनके प्रति भक्तिमान् हो मैं यहीं वास करताहूं ॥ २२ ॥ इसी आश्रममें यज्ञविरोधी निशाचर आया करतेहैं व यहीं रहकर तुम्हें उन दुष्टोंको संहार करना होगा ॥ २३ ॥ हे राम ! हम अभी सिद्धाश्रमको चलेंगे इस आश्रममें जैसा मेरा वैसेही तुम्हारा अधिकार है ॥ २४ ॥ ऋषि यह कहकर रामचन्द्र सौमित्र सहित उस आश्रममें प्रवेशपूर्वक शोभा देखने लगे. पुनर्वसु नक्षत्रमें शरद्के बादलोंमें नियुक्तहो चन्द्रमाकी जैसी शोभा होतीहै, वैसेही विश्वामित्रजी शोभा पाने लगे ॥ २५ ॥ सिद्धाश्रमवासी तपस्वियोंने देखतेही बहुत शीघ्रतासे उठ विश्वामित्रजीकी पूजा की ॥ २६ ॥ उन लोगोंने विश्वामित्रजीकी पूजा करके फिर उचित प्रकारसे राम लक्ष्मणका सन्मान किया ॥ २७ ॥ शत्रुओंके मारनेवाले रघुनाथ व लक्ष्मणजीने थोडी देर विश्राम कर हाथजोड विश्वामित्रजीसे कहा ॥ २८ ॥ आप आजही यज्ञमें दीक्षित हूजिये आपका मंगल होगा; यह सिद्धाश्रम सिद्ध और आपका वाक्य सत्य हो ॥ २९ ॥ रघुनन्दनजीके वचन सुन महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्रजी तभी उस यज्ञमें दीक्षित हुये और अंतःकरणको निग्रह कर यज्ञ करने लगे ॥ ३० ॥ दोनों राजकुमार वह रात्रि व्यतीत कर सबेरेही उठ पवित्र हो सन्ध्योपासन कर ॥ ३१ ॥ नियमपूर्वक जप समाप्त कर जहां महर्षि विश्वामित्रजी सुखसे बैठे यज्ञ कररहेथे वहां जाकर सुखसे मुनिजीको प्रणाम किया ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां एकोनत्रिंशः सर्गः ॥२९॥

त्रिंशः सर्गः ३०.

अनन्तर देशकालके जाननेवाले शत्रुओंके मारनेवाले दोनों राजकुमार समयोचित वचन मुनिजीसे बोले ॥ १ ॥ हे भगवन् ! यह हमारे सुननेकी इच्छा है कि, वे निशाचर किस समय आतेहैं ? जिस समय उन मारीच व सुबाहुकी गति रोध करनी होगी वह समय हमें बता दीजिये जिससे वह अतिक्रम न करसकैं ॥ २ ॥ काकुत्स्थ रामचन्द्रजीके यह कहने पर व युद्धके लिये दोनों भाइयोंको तैयार देख आश्रमके रहनेवाले सब मुनि उन कुमारोंकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३ ॥ आजसे लेकर छः दिन तुम्हें यज्ञकार्यकी रक्षा करनी होगी महर्षि विश्वामित्र अब न बोलेंगे क्योंकि वह भावसे यज्ञमें दीक्षितहैं ॥ ४ ॥ यशस्वी रामलक्ष्मणजी मुनियोंसे ऐसा सुनकर निद्रा परित्यागपूर्वक तपोवनकी रक्षा करने लगे ॥ ५ ॥ महावीर रामचंद्र व लक्ष्मणजी धनुष धारणपूर्वक मुनिवर विश्वामित्रजीकी सावधानीसे रक्षा करने लगे ॥ ६ ॥ अनन्तर छठादिन आनेपर रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि, अब तुम सावधान और सतर्क रहो ॥ ७ ॥ रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीको युद्धके निमित्त तैयार रहनेको कहतेही यज्ञवेदीमें अग्नि प्रज्वलित होगई तब उपाध्याय व पुरोहितादि घबडा उठे ॥ ८ ॥ और यज्ञकार्यके समिध कुश, काश, पुष्प और विश्वामित्रजीभी ऋत्विजोंके साथ प्रदीप्त हो उठे वेदी जलने लगी ॥ ९ ॥ मंत्र पढकर यज्ञ आरम्भ होरहाथा तभी आकाशसे महाभयंकर शब्द होने लगा ॥ १० ॥ वर्षाकालीन मेघ जिसप्रकार आकाशको ढककर तुमुल वृष्टिपात व वारंवार वज्रपात करतेहैं ऐसेही निशाचरगण अनेकप्रकारकी माया करके धावमान हुये ॥ ११ ॥ मारीच, सुबाहु और उनके अनुचर भयंकर आकारसे उपस्थित हो यज्ञस्थलमें रुधिरकी वर्षा करने लगे ॥ १२ ॥ वेदीको रुधिरसे भीगी देखकर रामचन्द्रजीने शीघ्रतासे यज्ञके चारों ओर घूमकर आकाशमें उनको देखा ॥ १३ ॥ कमललोचन रामचन्द्रजीने देखा कि, निशाचर आरहे हैं तब लक्ष्मणजीकी ओर देखकर यह वचन बोले ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो तो मांसाहारी दुराचारी राक्षस कैसे वेगसे दौडे आतेहैं, इनको अपने मानव अस्त्रोंसे ऐसा उडाते हैं जैसे पवन बादलोंको छिन्न भिन्न करदेताहै ॥ १५ ॥ वैसेही मैं इनको मानवास्त्रसे भगाये देताहूं इनको प्राणसे मारनेकी मेरी इच्छा नहींहै यह कहकर रामचन्द्रजीने धनुषपर बाण चढाया ॥ १६ ॥ वह बहुत श्रेष्ठ मानवास्त्र था

वह दीप्यमान हृदयके ऊपर क्रोधकर रामचन्द्रजीने निक्षेप किया ॥ १७ ॥ मारीच उस अस्त्रके लगनेसे घायल हो शतयोजन दूरवर्ती महासागरके बीचमें गिरा ॥ १८ ॥ तब उसे चेतना रहित घूमते हुए अस्त्रसे पीडित व युद्धसे फिरा हुआ गिरता देख रामचन्द्रजीने अनुजसे कहा ॥ १९ ॥ देखो लक्ष्मण ! मेरे इस मानवास्त्रने मारीचको मोहितकरदियाहै और इसको लिये जाता है परन्तु प्राणसे नहीं माराहै ॥ २० ॥ जो हो अब मैं बचेहुये यज्ञके विघ्न करनेहारे रुधिर पीनेवाले दुष्टाचारी पापात्मा राक्षसोंको जानसे मारडालूंगा ॥ २१ ॥ यह कह लक्ष्मणजीको अपनी लघुहस्तता दिखाते हुये रामचन्द्रजीने महान् आग्नेयास्त्र लिया ॥ २२ ॥ यह अस्त्र सुबाहुकी छातीमें जाकर लगा और लगतेही वह पृथ्वीपर गिरगया ऐसेही, और दूसरे राक्षसोंको वायवास्त्रसे मारडाला. महायशस्वी परमोदार रामचन्द्रजीने मुनियोंका कार्य किया ॥ २३ ॥ असुरोंको मारकर सुरनाथ जिसप्रकार सन्मानित हुयेथे वैसेही यज्ञके नाश करनेवाले राक्षसोंका विनाश करके रामचन्द्रजी ऋषियों करके पूजेगये ॥ २४ ॥ यज्ञ समाप्त होनेपर महर्षि विश्वामित्रजी वह प्रदेश उपद्रव रहित देखकर रामचन्द्रजीसे बोले ॥ २५ ॥ हे कमललोचन बडी भुजावाले ! मैं कृतार्थ होगया, हे वीरयशस्वी ! तुमने गुरुवाक्य सत्य किया यह आश्रम तुम्हारेप्रभावसे वास्तवमें सिद्धाश्रम होगया. इसप्रकार रामचन्द्रजीकी प्रशंसा कर व उनको साथले सन्ध्यावन्दनादि करनेके निमित्त चले गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१.

अनन्तर राम लक्ष्मणने इसप्रकार राक्षसोंका विनाश करके प्रमुदित मनसे वहीं रात्रि बिताई ॥ १ ॥ प्रभात होनेपर आह्निकादि कार्य्य समाप्तकर अन्यान्य महर्षियोंके समीप विश्वामित्रजीको बैठाहुआ देख दोनों कुमार उनके पास गये ॥ २ ॥ अग्निके समान दीप्तिमान् मुनि विश्वामित्रजीको रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीने प्रणाम किया और उन दोनोंने मीठे वचनसे कहा ॥ ३ ॥ हे मुनिशार्दूल ! आपके दोनों दास उपस्थितहैं कहिये अब हमें क्या करना होगा ? ॥ ४ ॥ दोनों भाइयोंके ऐसे वचन सुनकर ऋषिगण विश्वामित्रजीको आगेकर राम लक्ष्मणसे कहने लगे ॥ ५ ॥ हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! मिथिलाधिपति परमधर्मात्मा राजा जनक एक यज्ञ करेंगे हम लोग

त्रिंशः सर्गः ३०.

अनन्तर देशकालके जाननेवाले शत्रुओंके मारनेवाले दोनों राजकुमार समयोचित वचन मुनिजीसे बोले ॥ १ ॥ हे भगवन् ! यह हमारे सुननेकी इच्छा है कि, वे निशाचर किस समय आतेहैं ? जिस समय उन मारीच व सुबाहुकी गति रोध करनी होगी वह समय हमें बता दीजिये जिससे वह अतिक्रम न करसकें ॥ २ ॥ काकुत्स्थ रामचन्द्रजीके यह कहने पर व युद्धके लिये दोनों भाइयोंको तैयार देख आश्रमके रहनेवाले सब मुनि उन कुमारोंकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३ ॥ आजसे लेकर छः दिन तुम्हें यज्ञकार्यकी रक्षा करनी होगी महर्षि विश्वामित्र अब न बोलेंगे क्योंकि वह भावसे यज्ञमें दीक्षितहैं ॥ ४ ॥ यशस्वी रामलक्ष्मणजी मुनियोंसे ऐसा सुनकर निद्रा परित्यागपूर्वक तपोवनकी रक्षा करने लगे ॥ ५ ॥ महावीर रामचंद्र व लक्ष्मणजी धनुष धारणपूर्वक मुनिवर विश्वामित्रजीकी सावधानीसे रक्षा करने लगे ॥ ६ ॥ अनन्तर छठादिन आनेपर रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि, अब तुम सावधान और सतर्क रहो ॥ ७ ॥ रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीको युद्धके निमित्त तैयार रहनेको कहतेही यज्ञवेदीमें अग्नि प्रज्वलित होगई तब उपाध्याय व पुरोहितादि घबडा उठे ॥ ८ ॥ और यज्ञकार्यके समिध कुश, काश, पुष्प और विश्वामित्रजीभी ऋत्विजोंके साथ प्रदीप्त हो उठे वेदी जलने लगी ॥ ९ ॥ मंत्र पढकर यज्ञ आरम्भ होरहाथा तभी आकाशसे महाभयंकर शब्द होने लगा ॥ १० ॥ वर्षाकालीन मेघ जिसप्रकार आकाशको ढककर तुमुल वृष्टिपात व वारंवार वज्रपात करतेहैं ऐसेही निशाचरगण अनेकप्रकारकी माया करके धावमान हुये ॥ ११ ॥ मारीच, सुबाहु और उनके अनुचर भयंकर आकारसे उपस्थित हो यज्ञस्थलमें रुधिरकी वर्षा करने लगे ॥ १२ ॥ वेदीको रुधिरसे भीगी देखकर रामचन्द्रजीने शीघ्रतासे यज्ञके चारों ओर घूमकर आकाशमें उनको देखा ॥ १३ ॥ कमललोचन रामचन्द्रजीने देखा कि, निशाचर आरहे हैं तब लक्ष्मणजीकी ओर देखकर यह वचन बोले ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो तो मांसाहारी दुराचारी राक्षस कैसे वेगसे दौडे आतेहैं, इनको अपने मानव अस्त्रोंसे ऐसा उडाते हैं जैसे पवन बादलोंको छिन्न भिन्न करदेताहै ॥ १५ ॥ वैसेही मैं इनको मानवास्त्रसे भगाये देताहूं इनको प्राणसे मारनेकी मेरी इच्छा नहींहै यह कहकर रामचन्द्रजीने धनुषपर बाण चढाया ॥ १६ ॥ वह बहुत श्रेष्ठ मानवास्त्र था

वह दीप्यमान हृदयके ऊपर क्रोधकर रामचन्द्रजीने निक्षेप किया ॥ १७ ॥ मारीच उस अस्त्रके लगनेसे घायल हो शतयोजन दूरवर्ती महासागरके बीचमें गिरा ॥ १८ ॥ तब उसे चेतना रहित घूमते हुए अस्त्रसे पीडित व युद्धसे फिरा हुआ गिरता देख रामचन्द्रजीने अनुजसे कहा ॥ १९ ॥ देखो लक्ष्मण ! मेरे इस मानवास्त्रने मारीचको मोहितकरदियाहै और इसको लिये जाता है परन्तु प्राणसे नहीं माराहै ॥ २० ॥ जो हो अब मैं बचेहुये यज्ञके विघ्न करनेहारे रुधिर पीनेवाले दुष्टाचारी पापात्मा राक्षसोंको जानसे मारडालूंगा ॥ २१ ॥ यह कह लक्ष्मणजीको अपनी लघुहस्तता दिखाते हुये रामचन्द्रजीने महान् आग्नेयास्त्र लिया ॥ २२ ॥ यह अस्त्र सुबाहुकी छातीमें जाकर लगा और लगतेही वह पृथ्वीपर गिरगया ऐसेही, और दूसरे राक्षसोंको वायवास्त्रसे मारडाला. महायशस्वी परमोदार रामचन्द्रजीने मुनियोंका कार्य किया ॥ २३ ॥ असुरोंको मारकर सुरनाथ जिसप्रकार सन्मानित हुयेथे वैसेही यज्ञके नाश करनेवाले राक्षसोंका विनाश करके रामचन्द्रजी ऋषियों करके पूजेगये ॥ २४ ॥ यज्ञ समाप्त होनेपर महर्षि विश्वामित्रजी वह प्रदेश उपद्रव रहित देखकर रामचन्द्रजीसे बोले ॥ २५ ॥ हे कमललोचन बडी भुजावाले ! मैं कृतार्थ होगया, हे वीरयशस्वी ! तुमने गुरुवाक्य सत्य किया यह आश्रम तुम्हारेप्रभावसे वास्तवमें सिद्धाश्रम होगया. इसप्रकार रामचन्द्रजीकी प्रशंसा कर व उनको साथले सन्ध्यावन्दनादि करनेके निमित्त चले गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१.

अनन्तर राम लक्ष्मणने इसप्रकार राक्षसोंका विनाश करके प्रमुदित मनसे वहीं रात्रि बिताई ॥ १ ॥ प्रभात होनेपर आह्निकादि कार्य्य समाप्तकर अन्यान्य महर्षियोंके समीप विश्वामित्रजीको बैठाहुआ देख दोनों कुमार उनके पास गये ॥ २ ॥ अग्निके समान दीप्तिमान् मुनि विश्वामित्रजीको रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीने प्रणाम किया और उन दोनोंने मीठे वचनसे कहा ॥ ३ ॥ हे मुनिशार्दूल ! आपके दोनों दास उपस्थितहैं कहिये अब हमें क्या करना होगा ? ॥ ४ ॥ दोनों भाइयोंके ऐसे वचन सुनकर ऋषिगण विश्वामित्रजीको आगेकर राम लक्ष्मणसे कहने लगे ॥ ५ ॥ हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! मिथिलाधिपति परमधर्मात्मा राजा जनक एक यज्ञ करेंगे हम लोग

उसको देखने वहां जायँगे ॥ ६ ॥ हे पुरुषसिंह रामचन्द्रजी ! तुमभी हमारे साथ वहां चलकर राजा जनकके अद्भुत धनुषरत्नका दर्शन करो ॥ ७ ॥ देवताओंसे क्या पूर्वकालमें वह धनुष देवराजकी सभामें उन्हें मिलाथा उसमें अप्रमेय बलहै देखनेमें द्युतिमान् है वह उस यज्ञमें धराहै ॥ ८ ॥ आदमीकी तो बातही क्या है उसमें देवता, गन्धर्व, असुर व राक्षसतक मौरवी नहीं चढा सक्के ॥ ९ ॥ उसकी शक्तिका परिमाण जाननेके लिये अनेकानेक बलशाली राजा वहां उपस्थित हुयेथे किन्तु कोई उसपै रोदा नहीं चढा सक्का ॥ १० ॥ हे काकुत्स्थ ! पुरुषश्रेष्ठ वही धनुष महात्मा मिथिलाधिपतिके भवनमें है तुम वह श्रेष्ठ धनुष और वह महत यज्ञ देखना ॥ ११ ॥ जनक राजाने एक समय यज्ञ किया था तब शिवप्रभृति सब देवता प्रसन्न हुये तब यज्ञके फलकी भाँति शत्रुओंका नाश करनेके लिये राजाने उस धनुषको देवताओंसे माँग लियाथा ॥ १२ ॥ तबसे अब वह धनुष राजाके यहां स्थापितहै देवताकी समान पूजताहै और गन्ध, धूप व अगरद्वारा उसकी पूजा होतीहै ॥ १३ ॥ यह कहकर महर्षि विश्वामित्र ऋषिगणोंसे परिवेष्टित हो रामचन्द्र व लक्ष्मणजीको संगले जनकपुरको चले. चलनेके समय वनदेवताओंसे कहा ॥ १४ ॥ हे वनदेवगण ! मैं इस समय सिद्धकामहो सिद्धाश्रमसे राम लक्ष्मण और ऋषियोंके साथ उत्तर दिशामें गंगाके तीर जाताहूं, तुम्हारा कल्याणहो ॥ १५ ॥ यह कह मुनिश्रेष्ठ तपोधन विश्वामित्रजी उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान करते हुये ॥ १६ ॥ तब ब्रह्मवादी ऋषिगण सौ छकडोंमें अग्निहोत्रकी सामग्री ले विश्वामित्रजीके पीछे २ चले ॥ १७ ॥ सिद्धाश्रमके रहनेवाले महत्मा मृगपक्षी गणभी तपोधन विश्वामित्रके पीछे २ चले ॥ १८ ॥ जब मृग पक्षियोंको विश्वामित्र और ऋषियोंने आते देखा तब उन्हें लौटने कहा तब वह सब लौट गये और मुनिसमाजभी दूर निकल गया कि, इतनेमें सूर्य भगवान्‌भी अस्ताचलके निकट पहुँचे ॥ १९ ॥ महर्षिगणोंने बहुत मार्ग चलकर शोणनदीके किनारेपर वास किया और सन्ध्याकाल आया जान स्नानकर होम कार्य करने लगे ॥ २० ॥ तदनन्तर विश्वामित्रजीको आगे करके सब बैठगये तब बड़े पराक्रमी रामचन्द्रजी भी सब ऋषियोंको प्रणाम कर ॥ २१ ॥ बुद्धिमान् महर्षिके सन्मुख बैठे कुछ घडी बीतनेके पीछे तेजस्वी रामचन्द्रजीने महात्मा मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीसे ॥ २२ ॥ बड़े हर्षके साथ रामचन्द्रजीने कौतूहलाक्रान्तहो यह पूछा कि, हे मुनिवर ! इस समृद्धि वन शोभित

स्थानका नाम क्याहै ?॥ २३ ॥ मैं इस स्थानका वृत्तांत भलीभाँति जाननेको उत्सुक हुआहूं सो आप कहिये. महातपा विश्वामित्रजी रामचन्द्रजीसे यह पूछे जानेपर ऋषियोंके बीचमें बैठे उस स्थानका परिचय देनेलगे ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल०भाषायां एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२.

पूर्वकालमें महातपस्वी सज्जनप्रतिपालक ब्रह्माके पुत्र कुश नाम एक धार्मिक राजा थे ॥ १ ॥ उन महात्माने अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई वैदर्भी नामक रानीके गर्भसे अपने समान चार पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ इन पुत्रोंके नाम कुशाम्ब, कुशनाभ, असूर्तरज और वसु थे यह महातेजस्वी दीप्तिमान् महाउत्साहवाले क्षत्रधर्मावलम्बीथे ॥ ३ ॥ एक समय राजाने क्षत्रियधर्मके प्रचारार्थ सत्यवादी उत्साही व दीप्तिमान् पुत्रोंको बुलाकर कहा कि, हे पुत्रो ! प्रजापालन करो तुम्हें बड़ा धर्म होगा ॥ ४ ॥ तदनन्तर राजा कुशकी अनुमतिसे उन चारों श्रेष्ठ पुत्रोंने अपने २ नामसे एक एक नगर बसाया ॥ ५ ॥ महातेजस्वी कुशाम्बने कौशाम्बी नगरी और धर्मात्मा कुशनाभने महोदय नाम नगर बसाया ॥ ६ ॥ असूर्तरजने धर्मारण्य और वसुने गिरिव्रज नामक नगरकी प्रतिष्ठा की ॥ ७ ॥ इसी गिरिव्रजका वसुमतीभी नाम हुआ सो यह उन्हीं पुण्यात्मा नृपति वसुकी वसुमती नाम पुरीहै, इसके चारों ओर पांच पर्वतहैं जो कि, इसे प्रकाशित करतेहैं॥ ८ ॥ शोणानदीका दूसरा नाम मागधीहै यह पांच पहाड़ोंके बीचमें मालाके समान शोभा पारहीहै ॥ ९ ॥ यह नदी मगधसे निकल कर पूर्वकी ओरको बहीहै इसके किनारेवाले खेतोंमें बहुत नाज उपजताहै ॥ १० ॥ हेराघव ! धर्मात्मा राजर्षि कुशनाभसे घृताचीके गर्भमें अनुत्तम सौ कन्या उत्पन्न हुईं ॥ ११ ॥ क्रमसे वे कन्या रूप यौवनवाली और गुणवती होकर वर्षाकालीन बिजलीकी नाईं उद्यानमें विहार करने लगीं ॥ १२ ॥ हे राम ! वहाँ फुलवाडीमें सबकी सब गाने बजाने व नाचने लगीं व सब गहनोंसे सज धजकर परमानन्दित हुईं॥ १३ ॥ उनके सब अंग अतिरमणीयथे व उस समय उनके समान कोई स्त्री पृथ्वीतलपर सुन्दरी न थी इसकारण वह सब उस उद्यानमें ऐसी शोभाको प्राप्त हुईं जैसे मेघोंके बीचमें तारे शोभित होतेहैं ॥ १४ ॥ ऐसे समयमें उनको रूपयौवनसंयुक्त देख

सबमें टिकनेवाला वायु उनसे बोला ॥ १५ ॥ हे सुन्दर नारियो ! तुम मनुष्यभाव परित्याग करके दीर्घजीविनी हो तुम सबसे व्याह करनेकी मेरी इच्छाहै ॥ १६ ॥ विचार करके देखो कि, यौवन सदा नहीं रहता और विशेषकर मनुष्योंकी युवावस्था तो बहुत थोडे दिन रहतीहै इसकारण मेरे संसर्गमें अक्षय यौवन सुखको प्राप्तहोकर अमरपत्नीकी भाँति सुखसे रहो ॥ १७ ॥ पराक्रमी पवनकी ऐसी बात सुन वह सब सौ कन्या हँसकर कहने लगीं ॥ १८ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! आप सब जीवोंके भीतर टिके रहतेहैं और हमभी आपका प्रभाव भलीभाँति जानतीहैं अतएव विवाह की प्रार्थना करके हमे क्यों अपमानित किया ॥ १९ ॥ हेप्रभञ्जन देव ! हम महाराजा कुशनाभकी कन्याहैं यदि इच्छा करे तो आपका प्रभाव नष्ट कर सक्तीहैं परन्तु इससे ऐसा करनेमें प्रवृत्त नहीं होतीं कि, तपस्याका फल नष्ट होजायगा हमारे ॥ २० ॥ भाग्यमें ऐसा कुसमय कभी न आवे कि, हम सत्यवादी पिताको अपमानित करके स्वयंवराहोवें ॥ २१ ॥ पिता हमारे प्रभुहैं और वही हमारे परम देवताहैं वह जिसके हाथमें समर्पण करेंगे वही हमारे स्वामी होंगे ॥ २२ ॥ कन्याओंके ऐसे वचन सुन कर पवन देव कुपित हुये और कन्याओंके अंगप्रत्यंगमें प्रवेश करके उन सबको कुबरी करडाला ॥ २३ ॥ कन्यायें इसप्रकार वायुकेद्वारा कुबरी हो संभ्रमसे लाजयुक्त और रोती हुई अपने घर आईं ॥ २४ ॥ राजा कुशनाभने उन अत्यन्त प्यारी बेटियोंको कुबडी और दीन देखकर आश्चर्यसे कहा ॥ २५ ॥ हे बेटियो ! तुम्हारी अवस्था क्यों ऐसी हुई ? किस व्यक्तिने धर्मकी अवमानना की ? किसने तुम्हें कुबरी कर दिया तुम्हारा इसतरह दीनभावापन्न होनेका क्या हेतुहै ? जो तुम पूंछनेसे इच्छा करनेपरभी नहीं कहसकतीं ॥ २६ ॥ कुशनाभ इसप्रकार कह दीर्घ निःश्वास परित्यागपूर्वक कारण जाननेके लिये समाधिपरायण हुये ॥ २७ ॥

इति श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३.

कन्यागण बुद्धिमान् पिता कुशनाभजीकी यह उक्ति श्रवण करके उनके चरण वन्दन करके बोलीं ॥ १ ॥ पितः ! सर्वव्यापी वायुने कुपथावलम्बनपूर्वक हमको अवमानित करनेकी इच्छा कीथी धर्मकी ओर उन्होंने कुछ दृष्टि नहीं की ॥ २ ॥ हम सबने उसका खोटा अभिप्राय जानकर उससे कहाथा कि, हमारे पिता वर्तमानहैं

अतएव हम उनके अधीनहैं तुम अपना अभिप्राय पिताजीसे कहो जैसे उनकी इच्छा होगी वह वैसा करेंगे ॥ ३ ॥ परन्तु उस पापीने हमारी बात नहीं सुनी और हमको विकृताङ्ग करदिया ॥ ४ ॥ तेजस्वी व धर्मवान् राजा पुत्रियोंके ऐसे वचन श्रवण-कर उन श्रेष्ठ सौकन्याओंसे बोले ॥ ५ ॥ हेबेटियो! तुमने वायुके ऊपर एक मताव-लम्बी होकर क्षमावालोंको करने योग्य जो क्षमा दर्शाईहै इससे मेरे कुलगौरवकी रक्षाहुईहै ॥ ६ ॥ स्त्री और पुरुष दोनोंका क्षमाही भूषणहै क्षमा अति प्रशंसाका विषयहै विशेष करके इसका गौरव स्वर्गमें भीहै ॥ ७ ॥ हे पुत्रियो ! तुमने स्वेच्छा-चारिणी न होकर वायुके ऊपर जो क्षमा दिखाई वह अतीव प्रशंसाके योग्यहै वास्त-वमें क्षमाही दान क्षमाही सत्य और क्षमाही यज्ञ कहीगईहै ॥ ८ ॥ क्षमाही यश और क्षमाही धर्म और क्षमामेंही केवल जगत् प्रतिष्ठितहै. हेराम !इन्द्रके समान पराक्रमवाले राजाने यह कहकर कन्याओंको बिदा करदिया ॥ ९ ॥ फिर राजा देश काल और अच्छे पात्रसे कन्याओंका विवाह होजाय इस विषयकी सलाह मंत्रि-योंको बुला करने लगे ॥ १० ॥ उसी समय चूली नामक ऊर्ध्वरेता महाकांतिमान् ब्रह्मचारी ब्रह्मयोगसाधन करनेमें प्रवृत्तहुयेथे ॥ ११ ॥ उन ऋषिके वहां तपस्या करने पर उर्मिलाकी कन्या सोमदा नाम गंधर्वी उनकी उपासना करने लगी ॥१२॥ वह गंधर्वी उन ब्रह्मचारीकी नम्रतासे उपासना करने लगी. इसप्रकार जब उसने बडी सेवा की तो उस समय ऋषि उसके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ १३ ॥ हे रघुनंदन ! इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर ब्रह्मचारीजी बोले—कि हे सोमदे! मैं तुझसे प्रसन्नहूं अब कह कि, तेरा क्या प्रिय कार्य करूं ॥ १४ ॥ चतुर गन्धर्वकन्या वाक्य बोल-नेमें चतुर ऋषिको प्रसन्न जान प्रसन्नतासे मधुर वाणीसे बोली ॥ १५ ॥ आप महातपा ब्रह्मश्रीसम्पन्न व साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं आपकी कृपासे ब्रह्मयोगी एक पुत्र पानेकी मेरी अभिलाषाहै ॥ १६ ॥ आपका कल्याणहो मैंने अबतक किसीको स्वामी कहकर स्वीकार नहीं कियाहै अतएव जिससे मेरी प्रार्थना पूर्णहो ऐसा तपके प्रभावसे मुझे पुत्रदो ऐसी कृपा कीजिये मैं नैष्ठिकब्रह्मचारिणी रहूं केवल तपसे पुत्रकी प्राप्तिहो ॥ १७॥ ब्रह्मर्षिने प्रसन्न होकर उसको अतिश्रेष्ठ ब्रह्मदत्त नामक एक मानसी पुत्र दिया वह चूलीके पुत्र कहलाये ॥१८॥ अमरनाथने जिसप्रकार अमरावतीकी प्रतिष्ठा कीथी वैसेही ब्रह्मदत्तने काम्पिल नाम नगर बसाया और राजा ब्रह्मदत्त उसमें वास करनेलगे ॥ १९ ॥ हे रघुनन्दन ! परमधर्मात्मा राजा कुशनाभने यह विचाराकि,

अपनी सौओं कन्याओंका विवाह ब्रह्मदत्तके साथ करदूं ॥ २० ॥ अनन्तर महातेजस्वी राजाने ब्रह्मदत्तको बुलाकर प्रसन्न मनसे अपनी सौ कन्या उनके समर्पण करदीं ॥ २१ ॥ हे राम ! देवराज इन्द्रके समान ब्रह्मदत्त राजाने यथाविधि उन कन्याओं का पाणिग्रहण किया ॥ २२ ॥ ब्रह्मदत्तका हाथ लगतेही कन्याओंका कुबरापन छूटगया तब वह सब परम सुन्दर रूपवतीहो शोभा पाने लगीं ॥ २३ ॥ महीपाल कुशनाभ कन्याओंको वायुके हाथसे छुटा जान बहुत प्रसन्न और हर्षित हुये ॥ २४ ॥ राजाने विवाहकार्य समाप्त करके ब्रह्मदत्तको परिवार समेत काम्पिल नगरको भेजदिया जानेके समय उपाध्यायभी पहुँचाने गयेथे ॥ २५ ॥ तब सोमदा गंधर्वी पुत्रके योग्य पत्नियोंको देख परम सन्तुष्ट हुईं और सत्कार किया ॥ २६ ॥ और बहुओंका अंग स्पर्श करके वारंवार राजा कुशनाभकी प्रशंसा करने लगीं ॥ २७ ॥

इति श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदि० बालकांडे भाषायां त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४.

हे राघव ! ब्रह्मदत्तके विवाहका कार्य समाप्त होजानेपर अपुत्र कुशनाभने पुत्र पानेके लिये पुत्रेष्टि यज्ञका सामान किया ॥ १ ॥ जब वह यज्ञ विधिपूर्वक होने लगा तब ब्रह्माजीके पुत्र उदारस्वभाववाले कुशने अपने पुत्र राजा कुशनाभसे कहा ॥ २ ॥ तुम्हारे समान गाधिनामक एक धार्मिक पुत्र होगा वास्तवमें उससे इसलोकमें तुम्हारी कीर्ति स्थिर रहेगी ॥ ३ ॥ हे राम ! वे ब्रह्माके पुत्र कुश इसप्रकार कुशनाभसे कहकर आकाश मार्गसे सनातन ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ४ ॥ अनन्तर कुछ समय बीतनेपर नृपति कुशनाभके परमधार्मिक गाधिनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ वही परम धर्मात्मा मेरे पिताहैं हे रघुनन्दन ! मैं कुशवंशमें उत्पन्न हुआ इस कारण कौशिक नामसे परिचितहूं ॥ ६ ॥ सत्यवादी नाम मेरी एक सुन्दर व्रत धारण करनेवाली बडी बहन थी उसका महर्षि ऋचीकके साथ विवाह हुआ ॥ ७ ॥ मेरी वह कौशिकी बहन पतिकी अनुगामिनी होकर शरीर सहित स्वर्गको चलीगई अब उसने नदीरूप धारण कियाहै यहां नदीरूपसे बहतीहै ॥ ८ ॥ मेरी बहनने लोकका हित करनेके निमित्त नदीरूप धारण किया वह नदी अति रमणीय और उसका जल पवित्रहै उसका प्रवाह हिमगिरिसे उत्पन्न हुआहै ॥ ९ ॥ हे रघुनंदन !

मैं बहनके स्नेहसे हिमवान् पर्वतके समीप कौशिकी नदीके किनारे रहताथा ॥ १० ॥ नदियोंमें श्रेष्ठ कौशिकी अतिपुण्यवती व सती धर्ममें अनुरक्त महाभाग और पतिव्रताहै ॥ ११ ॥ मैं केवल यज्ञकी सिद्धिके अर्थ उसको छोड सिद्धाश्रममें आयाहूं अब तुम्हारे प्रभावसे यज्ञ करके सिद्ध हुआ ॥ १२ ॥ हे रामचन्द्र! मैंने तुमसे अपनी उत्पत्ति और अपने वंशका वृत्तांत कहा हे बडी भुजावाले। उस देशकी कथाभी कही जिसको तुमने पूंछाथा ॥ १३ ॥ हे काकुत्स्थ ! बातोंहीं बातोंमें आधीरात होनेको आई अब शयन करो नहीं तो मार्ग चलनेमें क्लेश होगा ॥ १४ ॥ हे रघुनन्दन! देखो इस समय वृक्ष नहीं हिलते डुलते मृग पक्षीगण चुपचाप सोतेहैं और निशाके घोर अंधकारसे आकाश छारहाहै ॥ १५ ॥ आधीरात बीतनेपर आई, गगनमंडल तारोंसे भर रहाहै मानों हजारों नेत्रोंसे व्याप्तहै और उनकी ज्योतिसे निशायें प्रभासितहैं ॥ १६ ॥ देखो इस ओरसे शीतल किरणोंवाले निशानाथ अपनी किरणजाल विस्तार करके लोकोंका चित्त प्रफुल्लित करते तिमिरका संहार करते हुये उदय होरहेहैं ॥ १७ ॥ रातके फिरनेवाले प्राणी मांस खानेवाले यक्ष राक्षस और अन्यान्य निशाचर जन्तु सब इधर उधर फिर रहेहैं ॥ १८ ॥ बडे तेजस्वी महामुनिजी यह कहकर चुपहोगये तब और ऋषियोंने साधु, साधु, कहकर उनका आदर किया ॥ १९ ॥ और पूजा करके कहा कि, यह कुशिकवंश अतिशय धर्मपरायण है जिन्होंने इस वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै वह सबही महात्मा और ब्रह्मतुल्य हुयेहैं ॥ २० ॥ विशेषतः हे विश्वामित्रजी ! आप इस वंशमें एक प्रकृत महायशवाले और ब्रह्मस्वरूपहैं आपकी बहन नदी श्रेष्ठ कौशिकीने भी पिताका कुल उजाला करनेमें कोई कसर नहीं की ॥ २१ ॥ श्रेष्ठ ऋषियोंके मुखसे ऐसी प्रशंसा सुनते सुनते अस्तगत अंशुमान्‌की समान विश्वामित्रजीके निद्राका संचारहुआ ॥ २२ ॥ तब लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी कुछ विस्मय प्रकाशपूर्वक महर्षिजीकी स्तुति व बडाई करते २ सोगये ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आ० बाल०भाषायां चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५.

अनन्तर महर्षि विश्वामित्रजी ऋषियोंके सहित शोणनदीके किनारे रात्रि व्यतीत करके प्रातःकाल होनेपर विश्वामित्रजी रामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ हेराम !

प्रभात होगयाहै प्रातःसंध्या करनेका समय आगया तुम्हारा मंगलहो अतएव वि-स्तर परसे उठो और चलनेके लिये तैयार होजाओ ॥ २ ॥ रामचन्द्रजी ऋषिके ऐसे वचन सुन पूर्वाह्निक कार्य समाप्त करके उन ऋषि विश्वामित्रजीके संग जाते २ यह बोले ॥ ३ ॥ यह शोणनद अगाध स्वच्छ सलिलसम्पन्न और वालुमयहै अब यह बताइये कि कौनसे मार्गसे पारहोकर चलनाहोगा॥ ४ ॥ तब विश्वामित्रजी-बोले कि, मुनिलोक जिस मार्गसे जातेहैं मैं वही मार्ग दिखाये देताहूं॥ ५॥ इसप्रकार सब मंडली चली और दुपहरके समय मुनिजनसेवित पवित्र गंगाजीको देखा ॥ ६ ॥ इन्होंने देखा कि जाह्नवीका जल अतिशय निर्मलहै और उसमें हंस व सारस किलोलें कर रहेहैं यह शोभा देखकर मुनि व राम लक्ष्मणजी परमानन्दित हुये ॥ ७ ॥ मुनि-लोगोंने गंगाके तीर अवस्थानपूर्वक यथाविधि स्नान और पितरों और देवतोंको तर्पण किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर अग्निहोत्रका अनुष्ठान करके अमृततुल्य खीर भोजन पूर्वक प्रसन्न मनसे गंगाजीके किनारे बैठे ॥ ९ ॥ विश्वामित्रजीको घेरकर सब-कोई न्यायानुसार यथायोग्य बैठगये रामचन्द्रजी मुदितचित्त हो विश्वामित्रजीसे पूछने लगे ॥ १० ॥ हे ब्रह्मन् ! त्रिपथगामिनी गंगाजीकी त्रिलोकको लाँघने और समुद्रमें गिरनेकी कथा मुझसे कहिये ॥ ११ ॥ महर्षि विश्वामित्रजी उनके कहने अनुसार उनसे गंगाजीकी उत्पत्ति और त्रिलोक लाँघनेकी कथा कहने लगे ॥ १२ ॥ हे राम ! सुवर्ण आदि धातुओंके स्थान हिमालयपर्वतके दो कन्या उत्पन्नहुई वह दोनों महा सुन्दरी भई ॥ १३ ॥ हे राम ! मैना इन दोनोंकी माता हुई यह सुन्दर कटि-वाली सुमेरुकी कन्या और हिमालयकी प्रियभार्या हैं ॥ १४ ॥ हे राघव ! मैनाकी दोनों कन्याओंमें गंगा बडी हुई और उसी मैनाकी उमा नामवाली छोटी कन्या हुई ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण देवताओंने अपने कार्य साधन करनेके निमित्त तीन मार्गमें जानेवाली गंगानदीको हिमालयसे माँगा ॥ १६ ॥ "देवता प्रथम गंगा-जीको माँगकर ब्रह्माजीके पास लेगये ब्रह्माजीने कहा कि, यह शिवजीका गर्भ धारण करनेमें समर्थ नहीं होगी तब गंगाने कहा धारण करसकूंगी इस बातपर ब्रह्माजी क्रुद्ध होकर बोले कि, तैंने हमारे वाक्यकी अवज्ञाकी इस कारण मैं शाप दे-ताहूं कि, तू जलरूप होजा तब यह ब्रह्माण्ड ऊर्द्धकटाहमें जलरूप लगी रहीं उसीमें अग्निने शिवका वीर्य त्यागन कियाथा जब वामनजीका चरणकटाह भेदन कर ऊपरको चला तब यह जल उनके चरणसे लगकर गिरा उससे गंगाका विष्णु-

पदीगी नाम हुआ गिरनेके समय वही जल ब्रह्माजीने अपने कमंलुडमें धारण किया उसी जलसे वामनजीके चरण धोये फिर भगीरथके प्रार्थना करने पर भूतलमें आई वामनपुराणमें यह कथा प्रसिद्ध है" हिमालयने भी लोकपावनी स्वच्छन्द चलनेवाली गंगाजीको त्रिलोकका हित करनेके लिये देवताओंको धर्मपूर्वक समर्पण कर दिया ॥ १७ ॥ त्रिलोकका मंगल चाहनेवाले देवता त्रिलोकके उपकारके अर्थ गंगाको ग्रहणकर कृतार्थ हो स्वर्गको चलगये ॥ १८ ॥ हे रघुनंदन ! जो हिमालयकी दूसरी कन्या उमा नामवाली थी उसने कठिन व्रत अवलंबन करके घोर तप कियाथा ॥ १९ ॥ हिमालयने त्रिलोकपूजित महातप करने वाली योगशालिनी दुहिताको योगीश्वर शांतमूर्ति शिवजीको दान करदिया ॥ २० ॥ हे राघव ! इसप्रकार लोकसे नमस्कार कीहुई हिमालयकी दोनों कन्याओंका चरित्र वर्णन किया हे राघव ! नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी और उमादेवीकी यह कथा है ॥ ॥ २१ ॥ हे रामचन्द्र ! जिसप्रकार यह त्रिपथगामिनी प्रथम आकाशको गई है चलनेवालोंमें श्रेष्ठ यह गंगाकी कथा तुमसे कही ॥ २२ ॥ जिसप्रकार पाप नाश करनेवाले जलोंकी बहानेवाली स्वर्गको गई वह कथा सुनाई ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ३६.

मुनि विश्वामित्रजीके ऐसा कहनेपर राम लक्ष्मणजी उनकी बडाई करके फिर उनसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपने धर्मयुक्त उत्तम कथा सुनाई अब यह प्रार्थनाहै कि, शैलराजकी बडी बेटी गंगाका वृत्तांत विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये, क्योंकि आप देवता मनुष्योंके चरित्र विस्तारपूर्वक जानतेहो ॥ २ ॥ आप सब जानते हैं अतएव आपसे पूछताहूं कि, त्रिलोककी पावन करनेवाली गंगा स्वर्ग मृत्यु पातालमें क्यों गई और यह उत्तम नदी त्रिपथगामिनी तीन मार्गमें जानेवाली क्यों कहलाई ॥ ३ ॥ हे धर्मके जाननेवाले! त्रिलोकीमें किस करके गंगाका त्रिपथगामिनी नाम हुआ ? जब रामचन्द्रजीने ऐसा पूछा तो तपोधन विश्वामित्रजी ॥ ४ ॥ ऋषियोंके मध्यमें बैठे हुये गंगाजीका सम्पूर्ण वृत्तांत कहनेलगे कि, पहिले समयमें महातप करनेवाले भगवान् नीलकंठ विवाह कार्य समाप्त करके ॥ ५ ॥ देवी पार्वतीजीके

साथ विहार करनेमें प्रवृत्त हुये उन बुद्धिमान् शितिकंठवाले देवदेव महादेवको इस-प्रकार विहार करते सौ वर्ष बीतगये ॥ ६ ॥ हे राम ! परन्तु इनके कोई पुत्र नहीं हुआ तब सब देवता इकट्ठे होकर ब्रह्माजीके निकट उपस्थित हुये ॥ ७ ॥ और सब यह चिन्ता करने लगे कि, यदि शिव पार्वतीके संयोगसे संतान उत्पन्न हुई तो उस तेजको कौन सहन कर सकैगा ? तदनन्तर सर्व देवता शिवजीके पास जा उनकी बडाई कर बोले ॥ ८ ॥ हे देवदेव महादेव ! आप लोकोंका हित करनेवाले हैं देवता आपको प्रणाम करतेहैं अत एव प्रसन्न हूजिये ॥ ९ ॥ हे सुरोत्तम ! यह त्रिलोक-मंडल आपका तेज धारण करनेमें समर्थ नहीं है अत एव आप योगावलम्बनपूर्वक देवी पार्वती समेत तप कीजिये ॥ १० ॥ आप त्रिलोकीके मंगलार्थ अपना तेज अपने ही शरीरमें धारण करे रहिये इन सब लोगोंकी रक्षा कीजिये जगत्का नाश करना उचित नहीं ॥ ११ ॥ देवताओंके ऐसे वचन सुनकर देवादिदेव महादेव 'तथास्तु' कहकर फिरभी इसप्रकार कहने लगे ॥ १२ ॥ महादेवजी बोले कि, हे अमरगण ! मैं उमासहित अपने तेजोमय शरीरमें यह तेज धारण करूंगा स्वर्ग और पृथ्वीको शांति प्राप्तहो ॥ १३ ॥ परन्तु एक बात है कि, यह जो अकस्मात् मेरा दिव्य तेज स्थानसे चलायमान होगयाहै तो उसको कौन धारण करेगा हे देवताओ ! यह बताओ ॥ १४ ॥ तब देवताओंने यह बात सुन वृषध्वज महादेवजीसे कहा कि, जो अब आपका तेज चलायमान होगयाहै तो पृथ्वी उसको धारण करेगी ॥ १५ ॥ अनन्तर यह वार्त्ता सुन शूलपाणिने तेजको छोडदिया देखते २ उसने शैल कानन सहित पृथ्वीको व्याप्त करदिया ॥ १६ ॥ तब देवताओंने हुताशनसे कहा कि, तुम हमारे कहनेसे वायुके सहित इस रौद्रतेजको धारण करो ॥ १७ ॥ अग्निके उस तेजको धारण करनेपर सूर्याग्नि तुल्य वह तेज श्वेतगिरि और दिव्य सरपतके वनमें व्याप्त होगया ॥ १८ ॥ उससेही महातेजवाले कार्तिकेयजीकी उत्पत्ति हुई, तब देवता और ऋषिगण उमामहेश्वर की ॥ १९ ॥ अत्यंत प्रसन्नमनसे पूजा करने लगे. हे राम ! तब पार्वतीजी देवताओंसे यह वचन बोलीं ॥ २० ॥ और क्रोधित हो लाल २ नेत्रकर यह शाप देती हुई बोली हे अमरगण ! मैं पुत्रकामनासे स्वामीके सहित संगमें प्रवृत्त थी सो तुमने उसमें बाधा दी ॥ २१ ॥ अतएव तुम्हें यह शाप देतीहूं कि, आजसे तुम अपनी स्त्रियोंमें संतानोत्पत्ति नहीं करसकोगे तुम्हारी रमणियें अपुत्रक रहैंगी ॥ २२ ॥ सम्पूर्ण देवताओंको यह शाप देकर फिर पृथ्वीको यह शाप दिया कि,हे पृथ्वी ! आज-

से तू अनेकरूपा और बहुतोंकी भार्या होगी ॥ २३ ॥ हे खोटीबुद्धिवाली ! तैंने मेरे पुत्र होनेमें बाधा दीहै अतएव तू मेरे क्रोधसे कलुषित अर्थात् ऊषरादिकभी होजायगी और पुत्रकी कीहुई प्रीतिकोभी न पावेगी ॥ २४ ॥ अनन्तर भगवान् भवानीपति देवताओंको अतिशय पीडित देखकर वरुणसे पालित पश्चिमदिशाकी ओरको चले गये ॥ २५ ॥ महेश्वर वहां जाकर हिमाचलके उत्तरभागमें हिमवत् प्रभव नामक शिखरपर पार्वतीसहित तप करने लगे ॥ २६ ॥ हे रामचन्द्र ! मैंने तुमको शैलसुताकी यह विस्तारपूर्वक कथा सुनाई अब लक्ष्मण सहित गंगाकी उत्पत्तिका वृत्तांत सुनो ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे० वा० आ०बाल० भाषायां षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७.

पशुपतिजीको तप करनेपर इन्द्रादि देवगण अग्निसहित सेनापति प्राप्त होनेके अभिलाषसे ब्रह्माजीके पास गये ॥ १ ॥ हे रामचन्द्र ! अनंतर संपूर्ण देवता अग्नि और इन्द्रको आगे करके पहुँचतेही भगवान् प्रजापतिके चरणोंमें प्रणाम करके यह कहने लगे ॥ २ ॥ हेदेव ! आपने हमें जिस सेनापतिको देने कहाथा अबतक उसका जन्म नहीं हुआ उसके पिता अब उमाके साथ तप कर रहेहैं ॥ ॥ ३ ॥ अतएव लोकहितार्थ जो कर्त्तव्य हो आप उसका विधान कीजिये क्योंकि, आप विधानके जाननेवाले हो, हमारी पहुँच आपहीतक है ॥ ४ ॥ देवताओंके ऐसे वचन सुनकर सब संसारके पितामह ब्रह्माजी देवतोंको धीरज धराते व समझाते मधुर वाक्यसे यह बोले ॥ ५ ॥ हे सुरगण ! शैलसुता पार्वतीजीने जो तुमसे कहाहै वह झूठ नहीं होसक्ता अतएव निश्चयही तुम्हारी स्त्रियें निःसन्तान होंगी उमाका वचन अमोघ और सत्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ यह जो आकाशगंगादृष्टि आती है इसके गर्भमें हुताशनके तेजसे देवशत्रुओंके मारनेवाले सेनापतिकी उत्पत्ति होगी ॥ ७ ॥ पर्वतकी बडी पुत्री गंगा उस पुत्रको अपनी छोटी बहन उमाका पुत्र समझ अपने पुत्रके समान पालन करेगी और उमाभी उस पुत्रको बहुत मानेगी ॥ ८ ॥ हे रघुनंदन ! ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर सब देवता कृतार्थ हुए और ब्रह्माजीको प्रणाम कर सब देवता उनकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ हे राम ! तदनन्तर सब देवतोंने

धातुओंसे शोभित कैलासपर जाकर अग्निको पुत्रके लिये प्रेरणा की ॥ १० ॥ देवताओंने कहा हे अग्ने ! तुम देवताओंका अभिलषित यह कार्य पूरा करो, और शैलजा गंगाजीमें पाशुपत तेज छोड़दो ॥ ११ ॥ अग्नि देवताओंसे प्रतिज्ञा करके गंगाजीके निकट उपस्थित हुये और उनसे कहनेलगे हे देवि ! देवताओंके कार्यार्थ यह गर्भ धारण करो ॥ १२॥ जाह्नवीने अग्निकी यह बात सुन सुन्दर दिव्य स्त्रीका रूप बनाया जिस रूपकी महिमाको देख वैश्वानर विस्मित होगये ॥ १३ ॥ तदनन्तर अग्निमें शिवजीका वह तेज गंगाजीमें छोडदिया हे राम ! उस तेजके प्रभावसे जाह्नवीके सब स्रोत पूर्ण होगये ॥ १४ ॥ तब सम्पूर्ण देवताओंके संमुख गंगाजीने अग्निसे कहा कि, हे देव ! मैं तुम्हारा दिव्य वृद्धिको प्राप्त तेज धारण करनेमें असमर्थहूं ॥ ॥ १५ ॥ तुम्हारा तेज जो शिवके तेजसे मिला वही मेरे न सहसकनेका कारण हुआ और इसीकारण मैं इस अग्निरूप तेजसे व्याकुल और हतचेतन हुईहूं यह बात सुनकर तब अग्निदेवता गंगाजीसे बोले ॥ १६ ॥ तुम हिमालयके निकट इस गर्भको छोडदो अग्निके यह वचन सुन गंगाजीने वह दीप्तिमान् तेज ॥ १७ ॥ छोडदिया उस तेजको सोतेमें छोड देनेसे जांबूनदके तप्त सोनेकी नाईं प्रभा निकलने लगी ॥ १८ ॥ इस तेजके प्रभावसे निकट और दूरके सब पदार्थ कंचन और चांदीके होगये उसकी तीक्ष्णता जहां २ पहुँची वहां २ तांबे व लोहेकी उत्पत्ति हुई ॥ १९ ॥ ऐसेही उस गर्भके मलसे रांग और शीशा हुआ वही सब पृथ्वी पर प्राप्त होजानेसे नानाप्रकारके धातुओं बढे ॥ २० ॥ गर्भके छोडतेही उसके तेजसे सब पर्वत वनप्रदेश सुवर्णमय होगया ॥ २१ ॥ हे राम ! जातवस्तुके रूपसे उत्पन्न होनेसे सुवर्णका एक नाम जातरूप हुआ. हे पुरुषसिंह ! इसप्रकार अग्निके समान कान्तिवाला सोना उस दिनसे विख्यात हुआ ॥ २२ ॥ जोही शिवजीके तेजसे एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई तब मरुत्, देवताओंने इन्द्रके सहित मिलकर उस पुत्रको दूध पिलानेके लिये कृत्तिकाओंको पठाया ॥ २३ ॥ वे सब कृत्तिकायें उस तुरतके जन्मे कुमारको यह नियम कर दूध पिलाने लगीं कि,यह हमारा सबका पुत्रहो॥ २४॥ तब देवताओंने कहा कि, कृत्तिकागण ! तुम्हारा यह पुत्र कार्तिकेय नामसे त्रिलोकमें विख्यात होगा इसमें कुछ संशय नहींहै ॥ २५ ॥ कृत्तिकाओंने देवताओंके इस प्रकारके वचन सुन उनके कहनेके अनुसार शिवपार्वतीसे प्राप्त पीछे गंगा से छोडेहुए उस अग्नि समान दीप्तिमान् कुमारको स्नान कराया ॥ २६ ॥

गंगाके गर्भसे निकलनेके कारण सम्पूर्ण देवताओंने इनका एक स्कन्दभी नाम रक्खा. हे राम ! यह कार्तिकेय बडी बाँहोंवाले अग्निके समान हुये ॥ २७ ॥ जब कृत्तिकाओंके स्तनोंमें दूध उतरा तब कुमार छः मुख धारण कर एक साथ छः कृत्तिकाओंका दूध पीने लगे ॥ २८ ॥ इन कार्तिकेयजीने सुकुमार कलेवर होनेसे भी अपने पराक्रमके प्रभावसे दैत्योंकी सेनाके गणोंको निर्मूल कियाथा ॥ २९ ॥ अनन्तर अमरगणोंने अग्निको आगे करके महाकान्तिवाले कुमारकोही देवसेनापतिपदमें वरण किया था ॥ ३० ॥ हे रामचन्द्र ! मैंने तुमको गंगाका विस्तार सहित वृत्तांत और कार्तिकेयके पवित्र जन्मकी कथा सुनाई यह कथा पुण्य और धन्यरूप है ॥ ३१ ॥ हे राम ! जो मनुष्य पृथ्वीमें कार्तिकेयकी भक्ति करेगा वह आयुष्मान् हो पुत्र पौत्रादि समेत स्कंदलोकको प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥

इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडेभाषायां सप्तत्रिंशः सर्गः॥ ३७॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ३८.

महर्षि विश्वामित्रजी यह मधुर कथा कहकर फिरभी मधुर वचन रामचन्द्रजीसे कहनेलगे ॥ १ ॥ पूर्वकाल अयोध्यानगरीमें एक महावीर सगरनामक धर्मवान् राजा थे वह प्रजाको भलीभाँति पालतेथे परन्तु उनके कोई पुत्र न था ॥ २॥ हे राम ! उनकी दो स्त्रियें थीं, बडी विदर्भराजकन्या केशिनी नामथी यह रानी जैसी धर्मात्मा वैसीही सत्यवादी थी ॥ ३ ॥ दूसरी स्त्रीका नाम सुमति था यह अरिष्टनेमिकी कन्या और सुपर्णकी बहिन थी यह सुमति राजा सगरकी दूसरी रानीथी॥ ४ ॥ भूमिनाथसगर दोनों स्त्रियोंके साथ हिमगिरिके नीचे एक पर्वतपर तपस्या करने लगे जहां भृगुमुनि तप करते थे ॥ ५ ॥ इसप्रकार मुनिकी आराधना करते २ सौ वर्ष पूर्ण होजानेपर सत्यवान् भृगुने उनके तपसे प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! पापरहित तुम्हारे महान् पुत्र उत्पन्न होगा हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम लोकोंमें अनुपमकीर्ति पाओगे ॥ ७ ॥ हे पुरुषपुङ्गव ! तुम्हारी एक स्त्रीके वंश चलानेवाला एक पुत्र और दूसरीके साठहजार सन्तान होगी ॥ ८ ॥ नरश्रेष्ठ भृगुजीके यह कहने पर दोनों स्त्रियें उन ऋषिवरको प्रसन्न कर प्रीतिपूर्णमनसे हाथ जोडके बोलीं ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपका कहना सत्य हो हम आपसे यह सुना-चाहती हैं कि, किसके गर्भसे एक व किसके गर्भसे साठहजार पुत्र उत्पन्न

... ॥ १० ॥ रानियोंके ऐसे वचन सुनकर धर्मपरायण भृगुजी परमश्रेष्ठ वाणी कहनेलगे कि, इन दोनोंमें जो जैसा पुत्र चाहो वह स्वच्छन्द होकर मांगलो ॥ ११ ॥ एक पुत्र वंशधर होगा और दूसरे साठहजार महारणसम्पन्न कीर्तिमान् परमोत्साही होंगे सो तुम इनमेंसे कौन २ सा चाहतीहो ॥ १२ ॥ हे रघुनंदन! मुनिजीके वचन सुन केशिनीने राजाके सन्मुख वंशधर पुत्रकी कामना की ॥ १३ ॥ और सुमतिने परमोत्साही कीर्तिमान् बलवान् साठहजार पुत्रोंकी प्रार्थना की ॥ १४ ॥ हे रघुनंदन! तब महाराज सगर मुनिवरके चरणोंमें प्रणाम और प्रदक्षिणा करके रानियोंके सहित अपने नगरको चलेगये ॥ १५ ॥ अनन्तर कुछ काल बीतनेपर बडी रानी केशिनीने एक पुत्र उत्पन्न किया जिसका असमंजस नाम हुआ ॥ १६ ॥ हे नर-श्रेष्ठ! सुमतिके गर्भसे एक तोंबी उत्पन्न हुई जिसको भेदकर साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुये ॥ १७ ॥ धात्री उन्हें घीके भरे हुये घडोंमें रक्षा करके बडा करने लगी, कुछ समय बीतने पर उन्होंने युवा अवस्था प्राप्त की ॥ १८ ॥ अनन्तर दीर्घ काल बीतनेपर सगरके साठहजार पुत्र रूपयौवनसम्पन्न हो उठे ॥ १९ ॥ वह सगरकी ज्येष्ठ रानीका पुत्र असमंजस नामक था वह खेलके समय बालकों को पकडकर सरयूमें लेजाकर ॥ २० ॥ पुरवासियोंके बालकोंको बहाय देता और उनको डूबते हुये देखकर हँसता इस भाँति असमंजस पापाचरणपरायण और सज्जनोंका द्रोह करनेलगा ॥ २१ ॥ पिता सगरने उसको पुरवासियोंका अनिष्ट-कारक जानके नगरसे निकाल दिया उस असमंजसका पुत्र अंशुमान् नाम बडा वीर्य-वान् था ॥ २२ ॥ यह जैसे सर्वलोकके प्रिय थे वैसेही प्रियभाषी थे अनन्तर बहुत काल बीतने पर ॥ २३ ॥ राजा सगरने यह विचार किया कि, हम अश्वमेध यज्ञ करें वह कृतसंकल्प हो उपाध्यायोंसे मिले ॥ २४ ॥ और यज्ञको वेदविधिसे कर-नेकी इच्छा की ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्ये बाल० भाषायां अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९.

रामचन्द्रजी प्रदीप्तअग्नितुल्य महर्षि विश्वामित्रजीसे यह कथा श्रवणकर परम-प्रीतिपूर्वक बोले ॥ १ ॥ किसप्रकार हमारे पूर्वपुरुष सगरराजने यज्ञ कियाथा?

हे भगवन् ! आपका मंगल हो वह वृत्तांत विस्तार सहित मैं आपसे सुना चाहताहूं ॥ ॥ २ ॥ तब रामचन्द्रजीका वाक्य श्रवणकर मुनि विश्वामित्रजी कौतूहलाक्रांत रामचन्द्रजीसे हँसकर बोले ॥ ३ ॥ हे राम ! महात्मा सगरका माहात्म्य विस्तार सहित सुनो शंकरजीके श्वशुर हिमवान् नाम विख्यात हैं॥ ४ ॥ व विन्ध्याचल नाम पर्वत आपसमें निहारतेहैं हे पुरुषोत्तम ! दोनों पर्वतोंके बीचमें महाराज सगरका यज्ञ हुवाथा ॥ ५ ॥ हे नरव्याघ्र ! वही देश यज्ञकर्ममें श्रेष्ठहै हे राम ! उस यज्ञके घोड़ेकी रक्षा करनेके लिये दृढताईसे धनुष धारण करनेवाले ॥ ६ ॥ अंशुमान् राजा सगरके आदेशसे नियुक्त हुये अनन्तर उस यजमानके पर्वके दिन इन्द्रजी ॥ ७ ॥ राक्षसी मूर्त्ति धारणकर यज्ञके घोड़ेको हरके लेगये हे राम ! उस महात्मा राजाके घोड़े हरे जानेपर ॥ ८ ॥ तब उपाध्यायोंने राजासे शीघ्रतापूर्वक यह निवेदन किया कि, पर्वके दिन घोड़ा हरागया ॥ ९ ॥ उस समय सबही एक वाक्यसे अश्व हरनेवालेको संहार करके जल्दी घोड़ेको लाओ यह कहने लगे क्योंकि यज्ञमें विघ्न होनेसे हमारा मंगल नहीं होगा ॥ १० ॥ इससे हे राजन् ! ऐसा कीजिये कि, विघ्नरहित यज्ञ होजाय तुरंगरक्षकों व ऋत्विजोंके सभामें ऐसे वचन सुन राजाने ॥ ११ ॥ अपने साठ हजार पुत्रोंसे यह वचन कहा कि, मैं यज्ञमें दीक्षित होरहाहूं सो इस यज्ञमें राक्षसोंकेद्वारा विघ्न होनेसे मेरी गति नहीं होगी ॥ १२ ॥ मैं मंत्रग्रहणपूर्वक पवित्र हव्यभाग देवताओंको देनेको बैठाहूं अतएव तुम लोग यज्ञीय अश्वका अन्वेषण करो तुम्हारा मंगलहो ॥ १३ ॥ तुम सब समुद्रयुक्त पृथ्वीमें खोज करो हे पुत्रो ! क्रम २ से एक २ योजन अच्छी तरह ढूँढो ॥ १४ ॥ जबतक घोड़ा न मिले या उसका हरनेवाला न पायाजावे तबतक पृथ्वीको खोदते रहना मेरी आज्ञासे खोजकरते रहना ॥ १५ ॥ मैं यज्ञमें दीक्षित हो पौत्र और ऋत्विकों पुरोहितोंके साथ अश्वके दर्शनकी प्रतीक्षा करता यहां रहूंगा तुम्हारा मंगलहो ॥ १६ ॥ हे राम ! पिताके वचन सुनके महा बलवान् वह साठ हजार पुत्र प्रफुल्ल मनसे घोड़ेकी खोजके अर्थ सब पृथ्वीपर घूमने लगे ॥ १७ ॥ वह पुरुषसिंह वज्रके समान देहवाले अपने हाथोंसे एक योजन लम्बी चौडी पृथ्वी खोदने लगे ॥ १८ ॥ हे रघुनंदन ! उस समय पृथ्वी अशनिसदृश शूल और तीक्ष्ण हलद्वारा भेदी जाकर आर्त्तनाद करने लगी ॥ १९ ॥ हे राघव ! क्रमसे मारेहुये हाथी, सर्प, निशाचर और जो किसीसे न जीतेजायँ ऐसे असुर व और भूचरोंके करुणास्वरसे दिङ्मंडल परिपूर्ण होगया ॥

॥ २० ॥ हे राम ! इस भाँति उन सगरके पुत्रोंने साठ हजार योजन पृथ्वी खोदडाली और खोदते २ पातालमें जाय पहुँचे ॥ २१ ॥ इसप्रकार अनेक पर्वतोंसे युक्त समस्त जंबूद्वीप उन राजकुमारोंने खोदडाला हे रक्षा करनेहारोंमें श्रेष्ठ ! इस प्रकारसे वे खोदते २ चारों ओरसे धावमान हुये ॥ २२ ॥ तदनन्तर देवता, गन्धर्व, असुर और पन्नग सब चकित होकर पितामह ब्रह्माजीके पास गये ॥ २३ ॥ और शोकग्रसित मनसे ब्रह्माजीको प्रसन्न करते अत्यन्त व्याकुल मनसे इसप्रकार ब्रह्माजीसे बोले ॥ २४ ॥ हे भगवन् ! दुराचारी सगरके पुत्र सब पृथ्वीको खोद डालते हैं, और नाना जलजन्तु व सिद्धोंतकका प्राण संहार करतेहैं ॥ २५ ॥ जिसे देखतेहैं उसेही अपने यज्ञका विद्वेषी समझतेहैं मारडालतेहैं कहतेहैं यही हमारे यज्ञमें बाधा करनेवाला है इसीने घोड़ा लियाहै ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०.

भगवान् कमलासन ब्रह्माजी देवताओंकी बात सुन और उसका विचार करके सगरसंतानसे डरे हुये व विमोहित हुये देवताओंसे बोले ॥ १ ॥ यह वसुन्धरा जिन भगवान् वासुदेवकी स्त्री है व जो माधव इसके अधिपति हैं वही भगवान् नारायण ॥ २ ॥ कपिलमूर्त्ति धारण करके दिन रात पृथ्वीको धारण करते हैं उन्हींकी क्रोधाग्निसे यह दुष्ट राजपुत्र भस्म हो जाँयगे ॥ ३ ॥ पृथ्वीका खोदनाही पूर्वकालसे निश्चय किया गयाहै अर्थात् यह ऐसेही होना था महात्माओंने जानाहै कि, अदूरदर्शी सगरसन्तानोंके मरनेका कारण होगा ॥ ४ ॥ पितामहजीका वचन सुन ८ वसु ११ रुद्र १२ आदित्य २ अश्विनीकुमार यह सब ३३ देवता शत्रुओंको मारनेवाले प्रफुल्ल मनसे अपने २ स्थानको चले गये ॥ ५ ॥ इधर पृथ्वी खोदनेके कालमें सगरसन्तानोंको जो वज्र गिरनेके समान कोलाहल उठाथा जब सब पृथ्वी खुदगई तब वह कोलाहल नहीं रहा ॥ ६ ॥ तब सगरके साठ हजार पुत्र मनमारे जीहारे सब पृथ्वीकी प्रदक्षिणा देकर अपने पिताके पास आये और

---

१ जहां जहां कुछ शंका होतीथी वहां वहां यह विशेष खोदतेथे सागरकी अधिकाई इनके भूमि खोदनेसे हुई है. और सम्पूर्ण स्थानोंमें खोदनेकी समान इन्होंने भूमिको ढूँढडालाथा।

उनसे सब वृत्तान्त कहा ॥ ७ ॥ कि, हम लोग समस्त पृथ्वीपर घूम आये देव दानव और पिशाचादिकोंको जानतकसे मारडाला प्राणियोंको अनेक दुःख दिये ॥ ८ ॥ परन्तु कहीं घोड़े और उसके हरनेवालेका पता न पाया आपका कल्याणहो अब हमें क्या आज्ञा होतीहै सो विचार करके कहिये ॥ ९ ॥ हे राम ! पुत्रके ऐसे वचन सुन नृपतिश्रेष्ठ सगर क्रोधित हो यह वाक्य बोले ॥ १० ॥ तुम लोग मेरा कहना मानकर फिर वसुधाको खोदडालो और अबकी तुम्हें अवश्यही घोड़ेका पता लगाना होगा और उसके हरनेवालेका पता लगाकर कृतार्थ होकर लौटना ॥ ॥ ११ ॥ महात्मा सगरराजकी आज्ञासे ६०००० सगर पुत्र पातालको चले ॥ १२ ॥ उन्होंने पृथ्वी खोदते २ पर्वतसमान विरूपाक्ष नामक एक दिग्गजको पृथ्वी धारण किये हुये देखा ॥ १३ ॥ हेराम ! यह विरूपाक्षनामक महाहाथी कानन पर्वतों सहित उस दिशाकी पृथ्वीको अपने ऊपर धारण कियेही रहताहै॥ १४ ॥ हेकाकुत्स्थ ! जिस समय कभी यह हाथी मारे बोझके थककर विश्रामार्थ शिर इधर उधर हिलाताहै तभी भूकम्प होताहै ॥ १५ ॥ हेराम ! सगरके पुत्र इस दिशाके पालनेवाले महागजकी प्रदक्षिणा कर और आदर करके रसातलको भेदनपूर्वक गमन करने लगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर पूर्व दिशा भेदकर फिर दक्षिण दिशा खोदने लगे इस दक्षिण दिशामेंभी उन्होंने एक वैसाही हाथी देखा ॥ १७ ॥ इस महात्मा हाथीका नाम महापद्म है आकारमें बड़े पर्वतकी तुल्य है यहभी अपने शिरपर पृथ्वीको धारण किये रहताहै इसको देखकर सगरपुत्र विस्मित होगये ॥ ॥ १८ ॥ वे महात्मा सगरपुत्र इस गजकीभी प्रदक्षिणा करके यह साठ हजार बलवान् पश्चिम दिशा खोदने लगे ॥ १९ ॥ उन महाबलियोंने पश्चिम दिशा मेंभी बड़े पर्वताकार सौमनस नाम महागजको देखा ॥ २० ॥ सगरपुत्र उसकी प्रदक्षिणा व कुशल प्रश्न जिज्ञासा कर पृथ्वी खोदते २ उत्तर दिशाको चले गये॥ २१ ॥ हे रघुवंशमें श्रेष्ठ ! महाभद्र नामक तुषारवत् श्वेतवर्ण श्रेष्ठ शरीर एक महाहस्तीको भूभार वहन करते देखा वे सब उससे मिले ॥ २२ ॥ और उसकी परिक्रमा देकर फिर ६०००० सगरसुत पृथ्वीको खोदने लगे ॥ २३ ॥ क्रमसे उन लोगोंने सब दिशाओंकी पुहुमी खोद फिर क्रोधसहित उत्तर पश्चिम दिशामें जाकर पृथ्वी खोदनी प्रारम्भ की ॥ २४ ॥ और यहां उन बली तीक्ष्ण वेगवालेंने सनातन वासुदेव कपिलदेवजीको विराजमान देखा ॥ २५ ॥ और उन भगवान्के स्थानसे थोडीही

दूर घोड़ेको चरता देख यह सब परमानन्दित हुये ॥ २६ ॥ और कपिलदेवजी कोही यज्ञका विघ्नकारी जान क्रोधसे आँखें लाल २ कर हल कुदार वृक्ष शिलादि धारण कर ॥ २७ ॥ खडाहो खडाहो कहते हुये क्रोधसे दौडे व कहने लगे कि, हमारे यज्ञका घोड़ा तैंनेही चुराया है ॥२८॥ हे दुर्मति ! अब तू जानले कि, सगर-पुत्र आगये हे रघुनंदन ! उनके ऐसे वचन सुनकर कपिल भगवान्जीने ॥ २९ ॥ क्रोधितहो हुंकार किया हे राम ! बस उन महात्मा महातपस्वी कपिलदेवजीके हुंकार-सेही अप्रमेय बलशाली सगरसन्तान जलकर राखकी ढेरी होगये ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्वा वा० आ० बालकांडे भाषायां चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१.

हे रघुनंदन ! राजा सगर अपने पुत्रोंको बहुत दिनसे गये हुये जान वीर्यवान् अपने तेजसे दीप्तिमान् पौत्र अंशुमान्से बोले ॥ १ ॥ हे वत्स ! तुम वीर और सब विद्या पढे लिखे व अपने पितृव्योंकी समान तेजशालीहो अतएव पितृव्यों सहित घोड़ेको ढूँढकर आओ ॥ २॥ पृथ्वीके भीतर जो सब महाबली जीव हैं उनको हरनेके लिये धनुर्बाण और असि ग्रहण करो ॥ ३ ॥ जो कोई वन्दना करनेके योग्यहो उनको प्रणाम और विघ्नकारियोंका नाश कर जल्दी लौटो अधिक क्या कहूं मेरे यज्ञ पूर्ण होनेके एक तुम्ही प्रधान सहायहो ॥ ४ ॥ इस भांति महात्मा सगरके कहनेपर अंशु-मान् धनुष और खड्ग धारणपूर्वक द्रुत गतिसे चले गये ॥ ५ ॥ हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! मार्गमें जाते २ पृथ्वीके भीतर अपने महात्मा पितृव्योंका खोदा हुआ एक मार्ग देखा वह उस मार्गके देखनेको उसमें प्रवेशित हुये ॥ ६ ॥ इसी मार्गमें जाते २ देखा कि, बीच २ में एक २ दिग्गज खडाहै और देव, दानव, राक्षस, पिशाच, उरगगण उसकी पूजा कर रहे हैं ॥ ७ ॥ अंशुमान्ने उसकी प्रदक्षिणा करके उनसे कुशल प्रश्न पूछ कर पितृव्यों सहित यज्ञीय अश्वके हरनेवालेका वृत्तांत पूछा ॥ ८ ॥ यह वार्ता सुनकर उस महाबुद्धिमान् दिग्गजने कहा कि, हे अंशुमान् ! तुम कार्य सिद्ध कर अश्व सहित शीघ्रही लौटोगे ॥ ९ ॥ दिग्गजका ऐसा वचन सुनकर यही बात न्यायपूर्वक क्रमसे अंशुमान्जीने और सब दिशाओंके दिग्गजोंसे पूंछी ॥ ॥ १० ॥ सब परम चतुर वाक्य जाननेवाले पंडित दिक्पालोंने यही उत्तर दिया कि, अश्व लेकर शीघ्र लौटोगे ॥ ११ ॥ तिनका वचन सुन अंशुमान्जी वेगसे चले

और वहां पहुँचे जहां उनके पितृव्यगण सगरपुत्र भस्म होगये थे ॥ १२ ॥ तब असमंजसके पुत्र अंशुमान् अपने पितृव्योंका मरणसम्वाद सुन बहुत दुःखी हुये और कुछ देरतक उनके अर्थ बड़े करुणा स्वरसे विलाप करके शोक करते रहे ॥ १३ ॥ फिर उस पुरुषसिंहने दुःख शोकाभिभूतहो दृष्टि संचारण करके देखा कि, इस स्थानके निकटही यज्ञीय अश्व विचरण कररहा है ॥ ॥ १४ ॥ तब वह पितृपुरुषोंको जल देनेके लिये कृतसंकल्प हुये किन्तु उस महातेजस्वीको कहीं जलाशय नहीं दीख पडा ॥१५॥ हे राम ! तब दृष्टि पसारकर उसने अपने पितृव्योंके मामा अग्नि समान प्रदीप्तमान् पक्षियोंके राजा गरुडजीको वहां बैठे देखा ॥ १६ ॥ महाबली विनतानंदनने असमंजसनंदनको दुःखी देखकर कहा, हे पुरुषश्रेष्ठ ! शोक मतकरो यह मृत्यु संसारकी संमतिसे हुईहै ॥ १७ ॥ महाबलशाली तुम्हारे पितृव्य महात्मा कपिलजीके शापसे भस्म हुयेहैं अतएव उनकी सद्गतिके अर्थ लौकिक जलमें तर्पण करना ठीक नहीं ॥ १८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! हिमाचलकी गंगा नामक एक बड़ी पुत्री है तुम उसकेही पवित्र जलसे पितृव्योंका तर्पण करो ॥ १९ ॥ त्रिलोकपावन गंगाजीही भस्मराशि हुए तुम्हारे पितृव्योंके कलेवरको बहावेंगी उन पवित्र करनेवाली गंगाजीके यह भस्म बहानेसे ॥ २० ॥ व गंगाके प्रभावसे ६०००० साठ हजार पुत्र स्वर्गको जायँगे हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम अब महाभाग यज्ञीय अश्व ग्रहणपूर्वक घरको लौट जाओ और ऐसा करो जिससे तुम्हारे पितामहका यज्ञ पूर्ण होजाय ॥ २१ ॥ गरुडजीसे ऐसा सुनकर वीर तपस्वी अंशुमान्जी शीघ्रतासे अश्व सहित अपने घर आ पहुँचे ॥ २२ ॥ हे रघुनंदन ! तदनन्तर यज्ञमें दीक्षितहुये सगरराजसे यह वृत्तांत और गरुडकी सब वार्त्ता कही ॥ ॥ २३ ॥ महाराज सगरने अंशुमान्से दारुण सम्वाद श्रवण करके यथाविधि यज्ञकार्य पूरा किया ॥ २४ ॥ अनन्तर यज्ञप्रिय लक्ष्मीवान् राजा सगर नगरमें प्रवेश करके किस प्रकार गंगाजी पृथ्वीपर आवेंगी इस विषयकी चिन्ता करने लगे परन्तु कोई निश्चय न करसके ॥ २५ ॥ अंतको राजा इस सम्बन्धमें बहुत दिनोंतक चिन्ता करके कोई उपाय न करसके और तीस हजार वर्ष राज्य करके स्वर्गको सिधारे ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बा० भाषायां एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२.

हेराम! कालधर्मानुसार महाराज सगरके स्वर्गवासी होनेपर प्रजाने धार्मिक अंशुमान्‌को राजसिंहासनपर प्रतिष्ठित किया॥ १ ॥ हे रघुनंदन! राजा अंशुमान्‌ने बहुत अच्छा राज्य किया इनके पुत्र महाप्रतापी दिलीप हुये ॥ २ ॥ अंशुमान् पुत्रको राजभार सौंप रमणीक हिमालय पहाडके शिखरपर दारुण तप करने लगे ॥ ३ ॥ और बत्तीस हजार वर्षतक घोर तप करके वे महायशस्वी तपस्वी स्वर्गको प्राप्त हुये॥ ४ ॥ महातेजस्वी महाराज दिलीपभी अपने पितामहोंका विनाशवृत्तान्त श्रवण करके दुःखसे पीडित रहे परन्तु गंगा लानेका कुछ निश्चय न करसके ॥ ५ ॥ किस प्रकार गंगाको लावें कैसे पितामहोंकी जलक्रिया कीजावे किस भांति उनका उद्धार हो यही चिन्ता रात दिवस महाराज दिलीप करते रहे ॥ ६ ॥ इस धार्मिक राजाके यही चिन्ता करते २ भगीरथ नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ यह परम धार्मिक प्रसिद्ध हुये ॥ ७ ॥ महातेजस्वी महाराज दिलीपने बहुत यज्ञोंके अनुष्ठान कियेथे व न्याय सहित ३३००० वर्षतक राज्य किया ॥ ८ ॥ इनको पितामहादिकोंके उद्धारका उपाय चिन्ता करते २ रोगने आ घेरा और उसी रोगमें मृत्युको प्राप्त हुये ॥ ९ ॥ वह नरश्रेष्ठ अपने सिंहासनपर भगीरथको बिठलाकर अपने कर्मफलसे इन्द्रलोकको चलेगये ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! उनके पीछे महाराज भगीरथ बड़े धार्मिक राजर्षि हुये इनके कोई पुत्र नहीं था चाहतेथे कि, सन्तान होजाय तब गंगाजीके लानेका उपाय किया जाय॥ ११ ॥ हे राम ! जब कोई सन्तान न हुई तो मंत्रियोंको राज्यभार समर्पण कर गोकर्ण नामक स्थानमें गंगाजीके आनेके लिये दीर्घकालतक तपस्या करते रहे॥ १२॥वह इन्द्रियोंको जीतकर कभी महीनेके अन्तमें अहार करते कभी पंचाग्नि तपते व कभी ऊर्द्ध्वबाहु रहते इसी भाँति घोर तप करते २ हजारों वर्ष बीते॥ १३ ॥जब उन महात्मा महाबाहु राजाको तप करते बहुत समय बीतगया तब प्रजापति ब्रह्माजी उनके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माजी सुरगणोंसमेत तपस्या करते हुये, महात्मा भगीरथके निकट उपस्थित होकर उनसे बोले ॥ १५ ॥ हे वत्स भगीरथ महाराज प्रजाके स्वामी ! मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हुआ अब तुम वर मांगो ॥ १६ ॥ तब वह बड़ी भुजावाले अधिक तेजस्वी राजा भगीरथजी हाथ जोड़कर खडेहो उन सब लोकके पितामह ब्रह्माजीसे बोले॥ ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुयेहैं यदि मेरे तपसे कुछ

फल होनेकी सम्भावना हो तो महाराज सगरके सब पुत्र मुझसे गंगाजीका जल पावें ॥ १८ ॥ क्योंकि जब उन महात्मा प्रपितामहाओंकी भस्म गंगाजलमें भीगेगी तभी वे स्वर्गको जायँगे और उपाय उनके तरनेका नहीं ॥ १९ ॥ और हे देव ! दूसरी प्रार्थना मेरी यह है कि, इक्ष्वाकुकुल लुप्त न हो सो मेरे पुत्र नहीं है अतएव पुत्र दीजिये ॥ २० ॥ जब राजाने ऐसा वचन कहा तो सम्पूर्ण संसारके पितामह ब्रह्माजी मनोहर अक्षरवाली अति शुभ मधुर वाणी बोले॥ २१ ॥ हे महारथी भगीरथ ! यह तुम्हारा बड़ा मनोरथ है सो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी तुम्हारा मंगलहो॥ २२॥ हिमालयकी ज्येष्ठ पुत्री गंगा पृथ्वीपर आवेंगी सो हे राजन् ! उनका वेग धारण करनेके अर्थ शिवजीकी प्रार्थना करो ॥ २३ ॥ हे राजन् ! गंगाजीका गिरना पृथ्वी नहीं सह सकेगी इसकारण शूलपाणिके अतिरिक्त गंगाजीका वेग धारण करनेको और कोई समर्थ नहीं है ॥ २४ ॥ सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी राजा भगीरथसे ऐसा कह और गंगाजीसे यह वचन कहकर कि, यथा समय राजाके ऊपर अनुग्रह करना तब सब देवता और जो मरुद्गणोंके सहित स्वर्गको चले गये ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३.

देवदेव प्रजापतिके देवलोक जानेपर ये भगीरथ पैरके एक अँगूठेसे खडे रहकर एक वर्ष तक शिवजीका तप करते रहे ॥ १ ॥ सम्वत्के बीत जानेपर सर्वलोकवन्दित उमाके पति पशुपति महादेवजी भगीरथसे बोले ॥ २ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! मैं तुमसे प्रसन्न हुआ हूँ मैं तुम्हारा प्रियकरके हिमालयकी पुत्री गंगाको अपने शिरपर धारण करूंगा ॥ ३ ॥ उस समय नगेन्द्रनन्दिनी गंगाजी अत्यन्त शोभायमान रूप धारण करके प्रबल वेगसे ॥ ४ ॥ हे राम ! आकाशसे कल्याणरूपी शिवजीके शिरपर गिरी आकाशसे गिरनेके समय वह परम दुर्धरा गंगादेवी चिन्तना करने लगीं कि ॥ ५ ॥ मैं प्रबल प्रवाहसे शिवसहित पातालमें बैठ जाऊंगी धूर्ज्जटि महादेवजी गंगाका यह अभिप्राय जानकर मनमें कुपित हुये ॥ ६ ॥ तिनका ऐसा घमंड जान महादेवजीने चाहा कि, ऐसा करें जिससे हमारी जटामें ही भूल रहैं तब गंगाजी उन पवित्र शिवजी महाराजके शरीरमें गिरीं ॥ ७ ॥ गंगाजीने बहुतेरा चाहा कि, निकल कर

भूतलको चली जायँ पर हिमालयकी समान अतिगंभीर जटाओंमें ऐसी घूमी कि, किसी यत्नसे बाहर न निकल सकीं ॥ ८ ॥ वे गंगाजी इस भांति जटामंडलमें मंडि-तहो इसप्रकार बहुत वर्षोंतक उसमें घूमती रहीं कहीं न निकल सकीं ॥ ९ ॥ भगी-रथने यह देखकर फिर शिवजीका तप आरंभ किया हे राम ! भगीरथने अत्यन्त तपस्या कर शिवजीको प्रसन्न किया ॥ १० ॥ उनकी तपस्यासे प्रसन्नहो गंगाधर ने गंगाजीको जटाजालसे निकाल कर बिन्दुसरोवरकी ओरको छोड दिया उसके छोडनेसे सात धाराओंकी उत्पत्ति हुई ॥ ११ ॥ ऱ्हादिनी पावनी और नलिनी यह तीन गंगाके सुन्दर जलकी धारा तो पूर्व दिशाको बहीं ॥ १२ ॥ सुचक्षु, सीता और सिन्धुनामक महानदी तीन सुन्दर धारा पश्चिमको गईं ॥ १३ ॥ अवशिष्ट धार सातवीं महाराज भगीरथके पीछे २ चली राजर्षि भगीरथभी दिव्यरथ पर चढकर आगे २ जानेलगे ॥ १४ ॥ वह महा तेजस्वी आगे २ और गंगा उनके पीछे २ चली गंगाजी प्रथम शिवजीके जटाजूटमें और वहांसे पृथ्वीपर उतरीं ॥ १५ ॥ उनके गमन करनेके समय महा कोलाहल उठा और उनकी सलिलराशिमें मत्स्य, कछुए, नाके आदिक जलजन्तुओंको अपनी धारामें बहाया ॥ १६ ॥ "किसी २ स्थानमें भीषण तरंगसे गति करने लगीं कहीं कहीं अंग भंगी दिखाती हुईं नृत्यकरती हुईसी गमन करनेलगीं किसी २ स्थानमें बड़े २ फेनपुंज उनके कर्णभूषणकी समान शोभा पाने लगे, किसी २ स्थलमें वेगके कारण उद्भ्रान्त हुए जलके आवर्त नाभिके समान दृष्ट होनेलगे किसी स्थलमें वेगगामी महास्रोत बडे वेगसे बहने लगे कहीं २ जलकी लहरोंसे कल कल ध्वनि सुनाई आनेलगी. इसप्रकारसे शैलनन्दिनी मन्दाकिनी हावभाव विलास दिखाती हुई भगीरथके पीछे पीछे चलने लगीं" उनके गिरनेसे पृथ्वी शोभित होनेलगी उस समय व्योममंडलसे व्योमविहारी देवर्षि गन्धर्व व सिद्धादि ॥ १७ ॥ आकाशसे गंगाके आनेका यह व्यापार देखने लगे वे देवगण नगराकार विमान हय और हाथी पर चढे हुये गंगाजीके दर्शन करनेको आये ॥ १८ ॥ जैसे २ गंगाजीकी धारा आगेको बढतीथी यह लोगभी आश्चर्यसे देखते हुये संग चले जातेथे मानो इस लोकमें गंगाजीका आना अद्भुत ही था ॥ १९ ॥ महातेजस्वी देवताओंके गंगाजीके देखनेके निमित्त आनेसे और उन देवताओंके गह-नों की चमकसे ॥ २० ॥ विना बादरका नभ ऐसा शोभायमान होताथा मानो सैकडों सूर्य निकलेहैं चंचल स्वभाव सर्प शिशुमार और मत्स्यादि जन्तुओंसे ॥ २१ ॥ चारों ओर आकाशसे बिजलीकीसी प्रभा उंछलतीथी तब उस समय पीले वर्णका फेन

हजारों टुकड़े २ हो इधर उधर फैलगया ॥ २२ ॥ तो ऐसा बोध हुआ मानो हंसश्रेणी समन्वित शरद्के मेघोंसे दिङ्मंडल छारहाहै इसी समय जाह्नवी का वेग कहीं द्रुत कहीं टेढा कहीं चौडे फाट का ॥ २३ ॥ कहीं नीचा कहीं ऊंचाहोताजाताथा स्थानविशेष वा सलिलके संयोगसे गंगाका जल तां लगा ॥ २४ ॥ किसी स्थानमें जलका प्रवाह ऊपर चढकर फिर नीचे गिरा वह शंकरके शिरसे गिरा और फिर पृथ्वी पर आया हुआ जल ॥ २५ ॥ सर्व पापका नाश करनेवाला वह गंगाका जल निर्मलभावसे शोभा पाने लगा तब ऋषि और गन्धर्व व पृथ्वीके रहनेवाले ॥ २६ ॥ सभी शिवजीके शिर परसे गिरेहुये पवित्र जलको स्पर्श कर व स्नानादि करते कराते जो शापसे आकाशसे भूतलमें आये थे ॥ २७ ॥ वह भी पवित्र नीरके छूतेही स्नानकर पापरहितहो शापसे छूटे उस पवित्र जलके स्पर्श आचमनसे पवित्रहो ॥ २८ ॥ फिर आकाशमें पहुँच अपने स्वर्गलोकको पहुँचे गंगाजीके दर्शन करनेसे सब आनन्दितहो ॥ २९ ॥ स्नानादि समापनपूर्वक भलीप्रकारसे निष्पाप होगये राजर्षि भगीरथजीभी ॥ ३० ॥ दिव्य रथपर चढकर आगे २ गमन करने लगे गंगाजी उनके पीछे २ जाने लगीं देवतालोग ऋषिगण समस्त दैत्य, दानव, राक्षस ॥ ३१ ॥ गन्धर्वश्रेष्ठ, यक्ष, किन्नर, नाग, सर्प व अप्सरायें हे राम ! यह सब भगीरथजीके पीछे चले जातेथे ॥ ३२ ॥ इस भांति जलचरतक प्रीतियुक्त हो गंगाजीका अनुसरण करते चले, जिस मार्गसे भगीरथ जाते उसी पंथसे यशस्विनी गंगाजी गमन करने लगीं ॥ ३३ ॥ तदनन्तर त्रिलोक पावनकरनेवाली गंगाजी जाते२ विचित्र कर्म करनेवाले जह्नु मुनिके यज्ञक्षेत्रमें वेग सहित उपस्थित हुईं ॥ ३४ ॥ इनके आनेसेही ऋषि का यज्ञस्थल बहगया गंगाको गर्व हुआ जान जह्नु अति क्रोधित हुये ॥ ३५ ॥ वह मुनि क्षणकालमें भागीरथीका सब अद्भुत जल पीगये इसको देख देवता गन्धर्व व ऋषिगण विस्मित होगये ॥ ३६ ॥ और ऋषि जह्नुकी पूजा स्तुतिकर बोले कि, हे महात्मा! आजसे सरिद्वारा गंगाजी आपकी कन्याहुईं ॥ ३७ ॥ तदनन्तर तेजस्वीमहात्मा जह्नने सन्तुष्ट होकर अपने कानोंके मार्गसे जलको निकालदिया तबसे गंगाजीका नाम जाह्नवी हुआ जह्नुसुता तबहींसे कहलातीहैं ॥ ३८ ॥ तदनन्तर गंगाजी फिर भगीरथकी अनुगामिनी हो गमन करने लगीं और तब यह श्रेष्ठ नदी समुद्रमें मिलीं ॥ ३९ ॥ फिर वहांसे राजा भगीरथका कार्य सिद्ध करनेको रसातलमें प्रवेश किया राजा भगीरथभी अतियत्नसे पूर्वपुरुषोंका उद्धार करनेके लिये उनको वहां लेगये ॥ ४० ॥ अपने पूर्वपुरुषोंको भस्म हुआ देख राजा

भगीरथ अचेत होगये हेराम ! तब श्रीगंगाजीका पवित्र सलिल उस भस्मराशि पर ॥ ४१ ॥ पडतेही वह सगरके साठ हजार पुत्र देवलोकको चलेगये ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्वा० वा० आ० बा० भाषायां त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४.

इस सर्गके अंतमें संक्षेप रीतिसे राजा सगरके पुत्रोंका तरना कहा गया सो अब विस्तार सहित कहतेहैं कि, महाराज भगीरथ समुद्रके किनारे पर जहां सगर-पुत्रोंकी भस्म पडीथी वहां पहुंचे और उनके पश्चात् २ गंगाजीभी पहुँचीं ॥ १ ॥ हेरामचन्द्र! जब गंगाजल सब भस्म राशिपर पडा तब लोकपितामह ब्रह्माजी भगी-रथसे आकर बोले ॥ २ ॥ हे राजर्षे ! तुमसे तुम्हारे पूर्वजोंका उद्धार होगया अब वह सब देवताओंकी समान स्वर्गलोकको चलेगये महात्मा सगरके साठ हजार पुत्र तरगये ॥ ३ ॥ हे राजा ! जबतक समुद्रमें जल रहेगा तब तक सगरसन्तानगण देवताओंकी समान स्वर्गलोकमें वास करेंगे ॥ ४ ॥ अबसे यह गंगा तुम्हारी ज्येष्ठ कन्या हुई तुम्हारा नाम संसारमें चिरकालतक प्रसिद्ध रहेगा और तुम्हारे नामसे गंगा भागीरथी नामसे ख्यात होगी ॥ ५ ॥ इनके दूसरे नाम त्रिपथगा दिव्या भागी-रथी होंगे जिससे स्वर्ग मृत्यु पाताल तीन लोकोंके मार्गमेंहो गंगाजी बहीं इसी कारण उनका त्रिपथगा नाम हुआ ॥ ६ ॥ हेराजन् ! अब तुम अपने पूर्वपुरुषोंका तर्पण यहीं करो और अपनेको प्रतिज्ञासे छुडाओ ॥ ७ ॥ तुम्हारे पूर्वज धर्म करनेवालोंमें श्रेष्ठ महाराज सगर इच्छा करनेमेंभी यह मनोरथ सिद्ध नहीं करसकेथे॥८॥हेवत्स! उन-के पश्चात् इसी प्रकार अमित तेजवान् अंशुमान्ने गंगा लानेकी प्रतिज्ञाकी थी किन्तु वह भी कृतकार्य नहीं हुये ॥९॥तदनन्तर राजर्षि महर्षितुल्य तेजस्वी मेरी समान तपस्वी क्ष-त्रियधर्मके प्रतिपालक॥१०॥हेबड़भागी पापरहित ! तुम्हारे तेजस्वीपिता राजादिलीपभी गंगाजीकी प्रार्थना करतेरहे पर सफलकार्य न हुये॥११॥हेपुरुषश्रेष्ठ ! तुमने वह प्रति-ज्ञा पूर्णकरके संसारमें निष्कलंकयश प्राप्तकिया है॥१२॥ हे शत्रुकेमारनेवाले! तुमने जो पृथ्वीपर गंगाजीको उतारा है इससे तुमको महान् धर्मकी प्राप्ति हुई है ॥१३॥ पवित्र या अपवित्रकालमें गंगास्नान करनेमें कोई हानि नहीं और नदियोंका जल सावन भादौं में दूषित होजाता है अतएव हेपुरुषश्रेष्ठ! हे सज्जनोंसे सेवित ! हे नरोत्तम !

तुम इसमें नहाकर पवित्रहो और दिव्य फल पाओ ॥ १४ ॥ तुम अपने पितृ-पुरुषाके लिये तर्पण करो हेराजन् ! तुम्हारा मंगलहो अब मैं अपने स्थानको जाता हूं ॥ १५ ॥ देवताओंके ईश्वर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह प्रजापति ब्रह्माजी यह कह कर जहांसे आयेथे उसी स्थानको चलेगये ॥ १६ ॥ महायशस्वी राजर्षि भगी-रथने राजा सगरके पुत्र अपने पूर्वपुरुषोंकी जलक्रिया यथाविधि न्यायसहित की ॥ १७॥ वह जलक्रिया सम्पन्न कर पवित्रहो राजा अपनी राजधानीमें आये और वह मनुष्यश्रेष्ठ परमानन्दसे राजकार्य करने लगे ॥ १८ ॥ हेराघव ! सब लोक नरनाथके दर्शन करके अति सन्तुष्ट हुये उस समय किसीके मनमें शोक व दुश्चिन्ताका आधिपत्य नहीं रहा सब धनवान् व विगतज्वर होगये ॥१९॥ हे राम-चन्द्र ! यह तुमसे गंगाजीका वृत्तांत विस्तारसहित कहा तुम्हारा मंगलहो देखो कथा कहते २ संध्या होने आई ॥ २० ॥ जो ब्राह्मण क्षत्रिय या अपरजातिको यशस्कर आयुष्कर पुत्रदायक व स्वर्गदायक यह वृत्तांत सुनावेंगे अथवा जो ब्राह्मण दूसरोंको सुनावेंगे ॥ २१ ॥ उनसे पितृ व देवगण प्रसन्न रहेंगे यह गंगाजीके आनेका व्याख्यान शुभ और आयुका देनेवाला है ॥ २२ ॥ हे राम ! जो मनुष्य इस वृत्तांतको श्रवण करताहै वह सब पापोंसे छूटकर दीर्घायुको लाभ करताहै मन वांछित फल प्राप्त होतेहैं और उसकी कीर्ति फैल जातीहै ❋ ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० बालकाण्डे भाषायां चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ४५.

विश्वामित्रजीसे यह कथा सुन राम लक्ष्मणसहित अत्यन्त विस्मितहो विश्वामित्र ऋषिजीसे बोले ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! पृथ्वीपर गंगाका आना और गंगाजलसे समुद्रका पूर्ण होना जो आपने कहा सो अत्यन्त अद्भुत घटनाहै ॥ २ ॥ हे परंतप ! आपकी इस सम्पूर्ण मधुर कथाकी चिन्ता करते २ हमको यह रात्रि एक पलकी समान जान पड़ी ॥ ३ ॥ हे विश्वामित्रजी ! रात्रिमें हमने और कुछ नहीं किया केवल उसी कथा

❋ कवित्त ॥ गंगाको चरित्र लख कहत यमराज यों ऐरे चित्रगुप्त मेरे हुक्ममें कानदे ॥ कहत पद्माकर सब नरकनको मूंदराख बंदकर दरवाजे तज यह स्थानदे ॥ देख यह देवनदी महिमा सब देवतान दूतनको बुलाय बिदाके वेग पानदे ॥ फारडार फरदैं न राख रोजनामचे खाते खतिजाँय तौ बहीको बह जानदे.

की चिन्तनामें लगे रहे मुझे और लक्ष्मणको सारी रात इसी कथाका ध्यान रहा॥ ४॥ अनन्तर प्रभातकाल होतेही सन्ध्यादिक प्रभृतिकार्य करके शत्रुओंके मारनेवाले रामचन्द्रजी तपोधन विश्वामित्रजीसे बोले ॥५॥ हे भगवन्! रात्रि बीत गई प्रभात होगया, अब चलिये नदियोंमें श्रेष्ठ पुण्य देनेवाली त्रिपथगामिनी गंगाजीको उतरें ॥ ६ ॥ पुण्य कर्मवाले ऋषियोंने हमारे लिये सुन्दर बिछौने युक्त नाव तैयार कर रक्खी है आपको यहां आये हुये जान वह लोग जल्दीसे यहां आयेहैं॥ ७ ॥ महात्मा रामचन्द्रजीने यह सुनकर महर्षि विश्वामित्रजी ऋषियों समेत गंगापार हुये ॥८॥ क्रमसे उन लोगोंने उत्तर तीर उपस्थितहो अभ्यागत ऋषियोंका आदर सन्मान कर वहां कुछ देर बैठ एक विशाला नाम पुरी देखी ॥९॥ तदनन्तर शीघ्रतासे स्वर्ग सदृश उस दिव्य विशाला पुरीके सामनेको रामचन्द्र लक्ष्मण सहित मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी गमन करने लगे ॥ १० ॥ तब उस समय महाप्राज्ञ रामचन्द्रजीने हाथ जोडकर विश्वामित्रजीसे इस विशाला नगरीके समाचार पूछे ॥ ११ ॥ हे महामुने! इस विशाला पुरीमें कौन राजवंशी राज्य करताहै, मैं इसके श्रवण करनेको कौतूहलाक्रान्त हुआहूं अतएव आपका मंगलहो यह सब वृत्तांत कहिये॥ १२॥ तब महर्षि विश्वामित्रजी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर इस पुरीका प्राचीन इतिहास कहने लगे हे रामचन्द्र! सुनिये ॥ १३॥ सुराधिप इन्द्रसे मैंने इस पुरीका वृत्तान्त जानाहै सो सम्पूर्ण यथातत्त्व कहताहूं श्रवण करो ॥ १४ ॥ हेराम! पहले सत्ययुगमें दितिके पुत्र महाबलवान् असुरगण और अदिति पुत्र महाभाग बली धार्मिक ॥ १५ ॥ महात्मा देवताओंकी यह वासना हुई कि, किस उपायसे हम लोग अजर अमर और नीरोग होसकते हैं ॥ १६ ॥ तदनन्तर विचार करके यह उपाय ठहराया गया कि, समुद्र मथकर अमृत पान करनेसे हमारी मनोकामना पूर्ण होगी ॥१७॥ वह महापराक्रमी लोग यह ठहराकर समुद्र मंथन करनेमें प्रवृत्त हुये तब मन्दराचल मथानी और वासुकीको रस्सी बनाकर मंथन कार्य आरंभ हुआ ॥ १८॥ इसप्रकार सहस्र वर्ष बीत जानेपर वासुकी जहर उछालने और दांतोंसे मन्दराचलकी शिलायें काटने लगे ॥ १९॥ उनके शिला काटनेसे उस सागरमेंसे ऐसा हलाहल महाविष अग्नि समान निकला कि, उसके तेजसे सुरासुर और नरों सहित विश्व संसार दग्ध होने लगा ॥ २० ॥ तब देवता महादेव शंकर शिवजीकी शरण जानेकी इच्छा कर पशुपति रुद्रके पास जाकर रक्षा करो! रक्षा करो! कहकर उनकी स्तुति करने

लगे ॥ २१ ॥ जब देवताओंने शिवजीकी ऐसी स्तुति की तब देवदेव महादेवजी वहां प्रगट हुये व इतनेहीमें शंख चक्रधारी भगवान् हरिभी वहां प्रगट हुये ॥ २२ ॥ तब मुसकाकर विष्णुजी शूल धारण करनेवाले शिवजीसे बोले कि, समुद्र मथने से देवताओंके द्वारा जो चीज प्रथम निकली ॥ २३ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! वह तुम्हें मिलनी चाहिये क्योंकि आप सब देवताओंमें अग्रणीहो अतएव यहां विराजकर आप प्रथम पूजनीय होनेके कारण यह प्रथम निकला हुआ विष ग्रहण कीजिये ॥ २४ ॥ इतना कह माधव तो वहांसे अन्तर्धान होगये महादेवजी देवगणोंको भयभीत देख व श्रीविष्णुजीके वचन सुन ॥ २५ ॥ नीलकंठ विष ग्रहण करनेमें सम्मत हुये और अमृत जानकर उसको पीगये फिर देवताओंके ईश्वर भगवान् शिवजी देवताओंको बिदा कर आप अपने स्थानको चले गये ॥ २६ ॥ हे राम ! तब सब देवता और असुर फिर समुद्र मथने लगे तब मन्दराचल जो मथानी बनाया गयाथा वह धीरे २ पातालको चलने लगा ॥ २७ ॥ तब अमरगण गन्धर्वों समेत मधुसूदनको यह कहकर स्तुति करने लगे हे प्रभो ! आपही सब जीवोंके स्वामी विशेष करके देवताओंके एकमात्र सहाय हो ॥ २८ ॥ अतएव मन्दराचलको उद्धार करके हमारी रक्षा करो कमलापतिने यह सुनकर कच्छपरूप धारण किया ॥ २९ ॥ वह पीठ पर मन्दराचलको धारण कर सागरशायी रहे व पर्वतका शिखर ग्रहण करके श्रीभग- वान् दूसरे रूपसे ॥ ३० ॥ देवताओंके मध्यमें स्थित हो पुरुषोत्तम समुद्र मथने लगे इस भांति हजार वर्ष बीत गये तो आयुर्वेदके आचार्य ॥ ३१ ॥ दंड और कमंडलु लिये धर्मात्मा धन्वन्तरिजी और सुन्दरी अप्सरायें समुद्रसे निकलीं ॥ ३२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! मथन करनेके समय जलके स्वरूप रससे जो इनकी उत्पत्ति हुई इस कारण अप्सरा कही गईं ॥ ३३ ॥ हे काकुत्स्थ ! वह सुन्दर अप्सरायें गिनतीमें साठ करोड हुईं परन्तु उनकी दासियोंकी संख्या नहीं हो सकती ॥ ३४ ॥ समुद्रकी निकलीं अप्सराओंको न दैत्योंने न देवताओंने ग्रहण किया इस कारण वह साधा- रण स्त्रियां हुईं देवता, असुर, मनुष्योंमें उनको जो चाहे ग्रहण करले ॥ ३५ ॥ हे रघुनंदन ! तदनन्तर वरुणकी कन्या सुराख्पिणी वारुणी निकली वह निकलतेहीं अपने अंगीकार करनेवालेको खोजने लगी ॥ ३६ ॥ हे राम ! दितिपुत्र असुरोंने उसे ग्रहण नहीं किया परन्तु देवताओंने आनन्ददायिनी जान उसको स्वीकार कर लिया ॥ ३७ ॥ इसी कारण सुरा जो मदिरा तिसके न ग्रहण करनेसे दैत्यगण

असुर व ग्रहण करनेसे देवता सुर कहाये वारुणीको ग्रहण कर देवतालोक बहुत आनन्दित हुये ॥ ३८ ॥ फिर समुद्रसे उच्चैःश्रवा श्रेष्ठ घोड़ा, कौस्तुभ मणि, हे नरश्रेष्ठ ! और पीछेसे अमृत निकला ॥ ३९ ॥ हे राम ! व तिसके अर्थही महा-भयंकर कुल क्षय हुये इसमें देव दानव बहुतेरे मारे गये क्योंकि अदितिके पुत्रोंने दिति के पुत्रोंके साथ बड़ा युद्ध किया ॥ ४० ॥ इस लढाईमें देवता राक्षस सब एक होगये इसमें त्रिलोकीका मोहनेवाला महा भयंकर युद्ध हुआ ॥ ४१ ॥ जब भयंकर युद्ध होने लगा तब भगवान् विष्णु मायासे मोहिनी रूप धारण कर अमृत हरण कर लेगये ॥ ४२ ॥ उस समय ओंकाररूप सनातन अविनाशी विष्णुजीके प्रतिकूल जो असुर खडा हुआ उसकोही विष्णुजीने वैष्णवी चक्रसे चूर्ण करडाला ॥ ४३ ॥ इस प्रकार अदितिके वीर पुत्र अगणित दैत्य इस देवासुर संग्राममें मारे गये ॥ ४४ ॥ अंतमें पुरन्दर दितिके पुत्र असुरोंका संहार करके अपना राज्य अधिकार करते हुये और प्रफुल्ल मनसे ऋषिसमूह और चारण सब लोकोंका शासन करने लगे ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां पंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६.

दैत्यजननी दिति पुत्रोंके मारे जानेसे दुःखी हो मरीचिपुत्र अपने पति कश्यपजीसे बोली ॥ १ ॥ हे भगवन् ! आपके पुत्र देवता मेरे पुत्रोंका नाश कर रहे हैं अतएव तपस्या करके इन्द्रविनाशकारी पुत्रके प्राप्ति होनेकी इच्छा कर-तीहूं ॥ २ ॥ आप मेरे गर्भसे एक इन्द्रका मारनेवाला पुत्र उत्पन्न कीजिये मैं इनके अर्थ तपभी करूंगी उसमें आप आज्ञा दीजिये ॥ ३ ॥ महामुनि मरीचिपुत्र कश्य-पजी उसका ऐसा वचन श्रवण कर व महातेजस्वी परमदुःखित दितिसे बोले ॥ ४ ॥ हे भद्रे! तुम्हारी वाञ्छा पूर्णहो, तुम्हारा मंगलहो तबतक तुमको पवित्रतासे तप करना होगा जबतक गर्भके चिह्न प्रकट न हों संग्राममें इन्द्रका मारनेवाला तुम्हारे पुत्र हो-गा ॥ ५ ॥ इस भांति हजार वर्ष बीत जानेपर व पवित्रतापूर्वक रहनेसे त्रिलोकीके संहार करनेमें समर्थ सन्तान तुम मुझसे प्राप्त कर सकोगी ॥ ६ ॥ कश्यपजी यह कह अपने हाथसे दितिके शरीरको स्पर्श कर स्वस्ति पढकर तप करनेको चलेगये ॥ ७ ॥ हे मनुष्यश्रेष्ठ ! महर्षिके चलेजानेपर उनकी स्त्री दिति प्रसन्न हो कुशप्लव

नामक स्थानमें जाकर घोर तप करने लगी ॥ ८ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! तब सुरराज इन्द्र आकर तपस्यानुरक्त दितिकी परमसावधानीसे सेवा करने लगे ॥ ९ ॥ अग्नि,कुश, काष्ठ, जल, फल, मूल जिस वस्तुकी दितिको आवश्यकता होती सहस्रलोचन वह सब इकट्ठा कर देते ॥ १० ॥ यहांतक कि; इन्द्र जब दिति तप करते २ थकती तो उसके अंग मीज देकर सब श्रम दूर करदेते ॥ ११ ॥ हे राम ! ऐसे ९९० वर्ष बीत जानेपर दितिने दानवारिसे प्रसन्न होकर कहा ॥ १२ ॥ हे बलवानोंमें श्रेष्ठ ! मेरी तपस्याके दश वर्ष और बीतजानेपर तुम भाईका मुँह देखोगे तुम्हारा मंगल होगा ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! मैंने तुमको जीतनेके लिये पुत्र पानेकी प्रार्थना की थी अब उससे तुम्हारी मित्रता कराढूंगी यह होनेसे विवाद दोनोंमें नहीं होगा व उसके साथ तुम सब सुख भोगोगे व तीनों लोकोंको विजय करोगे ॥ १४ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! जब हमने बडी याचा की थी तब तुम्हारे महात्मा पिताजीने हमको वरदान दियाथा कि, सहस्र वर्ष पीछे तुम्हारी वांछादायक पुत्र होगा ॥ १५ ॥ देवी दितिजीको इसप्रकार कहते २ दुपहरी होगई और दितिजी यह कह शिरहानेकी तरफ पैर फैलाकर सोगई ॥ १६ ॥ इन्द्र उसको अपवित्र,शिहरानेकी ओर पैर और पैरोंकी ओर शिर किये हुये देख मनमें बडे प्रसन्न हुये और हँसने लगे ॥ १७ ॥ इन्द्र उसी समय दितिके शरीरमें प्रवेश करगये, हे रामचन्द्र ! वहाँ जाकर सावधान इन्द्रने गर्भके सात टुकड़े करडाले ॥ १८ ॥ जब इन्द्रने असंख्य धारावाले वज्रसे गर्भको काटा तब हे रामजी ! वह गर्भका बालक रोने लगा और दिति जागी ॥ १९ ॥ तब देवराज "न रोओ न रोओ" कहकर बालकको समझाने लगे फिर महातेजस्वी इन्द्रने चुप न होनेसे उस गर्भको और छिन्न भिन्न करडाला ॥ २० ॥ "अब न मारो २ " दितिके ऐसा कहनेपर माताका गौरव रक्षा करनेके लिये वासव गर्भसे बाहर आये ॥ २१ ॥ और वज्र सहित हाथ जोडकर इन्द्र दितिसे बोले माता ! तुम अपवित्रतासे पैरोंकी ओर शिर किये उलटी सोरहीथी ॥ २२ ॥ मैंने इस अवसरमें अपने भावी शत्रुके सात टुकड़े करडाले हे देवि ! अब आप प्रसन्नमनसे मेरा यह अपराध क्षमा करदें ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आ० बाल० भाषायां षट्चत्वारिंश;सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७.

दिति गर्भके सात खंड जानकर अतिशय दुःखित हो दुर्द्धर्ष हजार नेत्रवाले देवराजसे विनयपूर्वक कहने लगी ॥ १ ॥ हे देवेश ! हे बलसूदन ! तुमने मेरी अपवित्रताके दोषसे गर्भको खण्ड २ किया इससे तुम्हारा कुछ दोष नहीं ॥ २ ॥ अब अपने गर्भके नाश होनेपरभी मैं तुम्हारा प्रियकार्य करना चाहती हूं कि, तुम्हारे किये यह उनचास खंड सातों पवनोंके स्थानपालक हों ॥ ३ ॥ महातेजस्वी दिव्य रूप धारण करनेवाले यह मेरे पुत्र मारुतनामसे ख्यातहों, वातस्कन्ध नामक सातों दिव्य लोकमें विचरण करतेरहैं ॥ ४ ॥ इन पुत्रोंमेंसे प्रथम ब्रह्मलोक, दूसरा इन्द्रलोक व तीसरे दिव्य वायु नामसे ख्यात होकर विचरण करते रहैं ॥ ५ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ! बाकी मेरे चार पुत्र एकत्र तुम्हारी आज्ञासे चारों दिशामें विचरण करते रहैंगे अब तुम्हारा मंगलहो ॥ ६ ॥ तुमने इनको " मारुद " यह कहाथा इसीकारण यह तुम्हारे कहे मारुत नामसे परिचित होंगे हजार नेत्रवाले पुरन्दर दितिके ऐसे वचन सुन ॥ ७ ॥ हाथ जोडकर बलसूदन इन्द्र बोले कि, आपने जो कहा सोई होगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ८ ॥ आपके पुत्र देवरूपीहो विचरैंगे, तपोवनमें यह सम्मतकर इन्द्र और दिति ॥ ९ ॥ कृतार्थ होकर स्वर्गको चलेगये हे राम ! हमने यह सुनाहै हे राम ! यह वही देश है इन्द्रने जहां पहले ॥ १० ॥ स्थितहो तपस्यासे सिद्ध हुई दितिकी सेवा की थी वह स्थान यहीहै हे नरसिंह ! राजा इक्ष्वाकुके परमधार्मिक पुत्र ॥ ११ ॥ अलम्बुषा नाम स्त्रीके गर्भसे विशाल नामक उत्पन्न हुआ उसनेही यहां विशाला नामक पुरी बसाई ॥ १२ ॥ हे राम ! उस विशालाका हेमचन्द्र नाम बडा बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ हेमचन्द्रके सुचन्द्र हुये॥ १३॥ हे राम ! सुचन्द्रके पुत्र धूम्राश्व हुये इनके कुलप्रदीप सृञ्जय हुये ॥ १४ ॥ सृञ्जयके महाप्रतापशाली श्रीमान् सहदेव हुये सहदेवके परमधार्मिक कुशाश्व हुये ॥ १५ ॥ कुशाश्वके पुत्र महातेजस्वी प्रतापी सोमदत्त हुये सोमदत्तके काकुत्स्थ हुये ॥ १६ ॥ इनके पुत्र महातेजवान् जो किसीसे जीते न जॉय ऐसे सुमति राजा आजकल इसपुरीमें राज्य कररहेहैं ॥ १७ ॥ इक्ष्वाकुके अनुग्रहसे इस विशाला पुरीके राजा सबही बली धार्मिक और दीर्घजीवी हुये हैं ॥ १८ ॥ आज हम यहां सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत करैंगे हे नरोंमें श्रेष्ठ ! कल प्रभात जाकर राजा जनककी पुरीको देखेंगे ॥ १९ ॥ नरश्रेष्ठ महायशस्वी सुमतिने विश्वामित्रके शुभागमनका

समाचार पाकर ऋषिजीको आगे आकर लिया ॥ २० ॥ फिर उपाध्याय व बान्धवों समेत भली भाँति आदरसे पूजा करके विश्वामित्रजीसे हाथ जोडकर राजा बोले ॥ २१ ॥ हे मुने ! आपके शुभागमनसे मैं अनुगृहीत धन्य २ हुआहूं आपके दर्शनसे मेरा जन्म सफल होगया आजदिन मुझसे अधिक दूसरेका भाग्य नहीं ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८.

परस्पर साक्षात् होनेपर कुशल समाचार जिज्ञासा कर महामति सुमतिने महामुनि विश्वामित्रजीसे कहा ॥ १ ॥ हे महाराज ! आपका मंगल हो मैं यह पूछताहूं कि, यह दो राजकुमार देवतुल्य पराक्रमी गज, व सिंह शार्दूल वृषभकी समान चाल चलनेवाले ॥ २ ॥ इनके नेत्र कमलके समान बडे, हाथमें धनुर्बाण और खड्ग धारण किये, अश्विनीकुमारकी समान रूपधारी यौवनावस्थाको पहुँचाही चाहते हैं ॥ ३ ॥ इनको देखकर मुझे यह ज्ञात होताहै कि, मानों देवलोकसे दो देवता अपनी इच्छासे पृथ्वीतलपर उतर आयेहैं यह यहां पैदल क्यों आये और यह किसके पुत्रहैं ? ॥ ४ ॥ दिवाकर और निशाकर जैसे आकाशको शोभित करतेहैं वैसेही यह इस स्थानकी शोभाको बढा रहेहैं सब प्रकार दोनों जन एकही आकार व स्वभाव प्रभावके दृष्टि आते हैं ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! यह इस दुर्गममार्गमें किसकारण आये और श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्र बांधे किस महाराजाधिराजके वंशधरहैं यह मैं तत्त्वसे जाननाचाहताहूं ॥ ६ ॥ राजाके यह वचन सुन महर्षि विश्वामित्रजीने राम लक्ष्मणजीका सब वृत्तांत कहा इस वृत्तांतको नृपति सुमति सुनकर बहुतही विस्मित हुये ॥ ७ ॥ दशरथात्मज महाबली राम लक्ष्मणको अतिथिभावसे आया हुआ जानकर राजा सुमतिने इनका समुचित सत्कार किया ॥ ८ ॥ राजा सुमतिसे पूजे जाकर विश्वामित्र व राम लक्ष्मणजी वह रात्रि वहां व्यतीत कर भोर हुये मिथिलापुरीकी ओर चले ॥ ९ ॥ वहां पहुँचकर मिथिलापुरीकी अनुपम शोभा देख महर्षिगण साधु साधु कहनेलगे और मिथिलापुरीकी बडाई करने लगे ॥ १० ॥ इतनेहीमें रामचन्द्रजीने वहां एक उपवनमें निर्जन पुराना तपस्याका स्थान देखकर महर्षि विश्वामित्रजीसे पूछा ॥ ११ ॥ हेमुने ! यह स्थान आश्रम जानपडता है परन्तु इस

स्थान पर कोई ऋषि मुनि दृष्टि नहीं आते; यह पहले किसका आश्रम था यह जाननेकी मेरी इच्छा हुईहै ॥ १२ ॥ वाक्य कहनेमें चतुर विश्वामित्रजी राघवका वाक्य श्रवण करके महातेजस्वी मुनि कहनेलगे ॥ १३ ॥ हेरामचन्द्र ! जिस महात्माके कोपसे आश्रमकी यह दशा हुईहै मैं वह सब कथा कहताहूं श्रवणकरो ॥ ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! इस स्थानमें देवपूजित महात्मा गौतमजीका आश्रम था उस समय इसके सौन्दर्यकी सीमा नहीं थी देवताभी इसकी बडाई करते थे ॥ १५॥ हे राजपुत्र ! महायशस्वी उन्होंने यहां अनेक वर्षोंतक अहल्या अपनी स्त्रीसहित तप किया था ॥१६॥ हे रामचन्द्र ! एकदिन सुयोग पाकर सुरराज इन्द्र गौतमऋषिका वेष धारणकर अहल्यासे यह बोले ॥ १७ ॥ रति चाहनेवाले ऋतुकालकी बाट नहीं जोहते, अत एव हे सुन्दरी ! मेरी मनोकामना पूर्ण करो मैं तुम्हारे साथ संगम किया चाहताहूं ॥ १८ ॥ हे राम ! दुर्बुद्धि अहल्या स्वामीवेषधारी इन्द्रको जानकरभी देवराजके साथ विहार करनेमें प्रवृत्त हुई अहल्याने इस कारण जानलिया कि इन्द्रहीहै ऋषिलोग कभीभी अनऋतुमें भार्याका समागम नहीं करते ॥ १९ ॥ अनन्तर हर्षसहित शचीपतिसे कहा हे सुरोत्तम मैं कृतार्थ होगई अब तुम जल्दी यहांसे चलेजाओ ॥ २० ॥ हे देवराज ! तुम अपनेको और मुझे गौतमके शापसे रक्षा करो,तब इन्द्र हँसकर अहल्यासे बोले ॥ २१ ॥ हे नितम्बिनि ! मैं परम प्रसन्न हुआहूं अब मैं देवलोकको चला यह कहकर पाकशासन महर्षि गौतमजीके आश्रमसे बाहर आये ॥ २२ ॥ यद्यपि इन्द्र गौतमजीके भयसे बहुत शीघ्रतापूर्वक जारहेथे परन्तु देखा कि महामुनि गौतमऋषि आश्रममें प्रवेश करतेहैं ॥२३॥ गौतमजी तेजप्रभावसे देवदानवोंको दुर्द्धर्ष मूर्तिमान् अग्निशिखातुल्य तीर्थके जलमें स्नान कियेहुये आश्रममें चलेआतेहैं ॥ २४ ॥ उन मुनिश्रेष्ठके हाथमें समिध और कुश थे उनको देखतेही देवराज इन्द्र पीले पडगये और घबडागये ॥ २५ ॥ सदाचारपरायण मुनि असदाचारी इन्द्रको निजवेष धारणकिये आश्रमसे निकलते देख क्रोधसहित बोले ॥२६॥ हे दुर्मते ! तैंने मेरा रूप धारण करके अकर्तव्य कार्य कर मेरी भार्याका सतीत्व भ्रष्ट किया अत एव मेरे शापसे तू नपुंसक होजायगा ॥२७॥ गौतमजीके क्रोधसहित इतना कहतेही इन्द्रके अंडकोश उसी समय पृथ्वीपर गिरपडे ॥ २८ ॥ गौतमजीने इसप्रकार इन्द्रको शापदे फिर अहल्यासे कहा रे दुराचारिणि ! तुझको इस आश्रममें हजारों वर्षतक रहना होगा ॥२९॥ रेदुः-

शीला! तुझे अदृश्यभावसे अर्थात् कोई प्राणी तुझे न देखसकैंगे ऐसे अनाहार रहना वायु भक्षण करना और पृथ्वीपर शयन करके यहां रहनाहोगा ॥ ३० ॥ जब महाराजकुमार दुर्द्धर्ष रामचन्द्रजी इस घोर वनमें आवेंगे तब उनके चरणस्पर्शसे तू पापमुक्त होगी ॥ ३१ ॥ उस समय तू लोभ मोह न करके उनका आतिथ्य करेगी और फिर तेरा ऐसाही रूप जैसा अब है होजायगा और फिर मेरे आश्रममें आवेगी ॥ ३२॥ महातपा महर्षि गौतमजी दुष्टचारिणी अहल्यासे यह कह इस आश्रमको परित्याग कर सिद्धोंकरके सेवित ॥ ३३॥ वह महातपस्वी रमणीय हिमालयपर्वतके शिखरपर जाकर तप करने लगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९.

तदनन्तर इन्द्र गौतमके शापसे चकित व नपुंसक हो अग्निप्रभृति देवता व सिद्ध चारण और गन्धर्वोंसे बोले ॥ १ ॥ मैं ने महर्षि गौतमजीको क्रोध उपजा और उनकी तपस्यामें विघ्न डालकर देवकार्य साधन कियाहै नहीं तो वह सब देवतोंके स्थान छीनलेते शाप देनेहीसे उनका तप क्षीण हुआहै ॥ २ ॥ उन महर्षिने क्रोधपरवशहो हमें नपुंसक कर दियाहै और अहल्याभी अपने किये कर्मका फल भोगरहीहै शाप देनेहीसे उनका बडा तप मैं ने हर लियाहै ॥ ३॥ हे देवगण! मैं ने तुम्हारा कार्य साधन कियाहै इसकारण तुम सब देवता ऋषि चारण जिससे हम अच्छे होजाँय ऐसा उपाय ठहराना तुम्हारा कर्तव्यहै ॥ ४ ॥ इन्द्रजीके वचन सुन अग्निप्रभृति देवतागण मरुद्गण सहित पितरोंके देवता कव्यवाहनादिकोंके निकट जाय उपस्थित हुये ॥ ५ ॥ तब अग्नि बोले कि, इन्द्र अंडकोशहीन हुयेहैं और तुम्हारे इस मेंढके अंडकोश हैं अत एव यह उखाडकर इन्द्रको देदीजिये ॥ ६ ॥ मेषके अंडकोशहीन होनेसे तुम्हारे सन्तोष साधन करनेमें किसी भाँतिकी कसर नहीं की जायगी अबसे जो तुम्हारी प्रसन्नताके हेतु ऐसा मेंढा दान करैं गे उनको अक्षय फलकी प्राप्ति होगी इस कारण तुम इसके वृषण देदो ॥ ७ ॥ अग्निके ऐसे वचन सुन कव्यवाहनादि पितृदेवोंने मेंढेके अंडकोश उखाड़ इन्द्रको देदिये ॥ ८ ॥ हे रामचन्द्र! उस समयसेही पितृदेवगणोंको अंडकोशहीन मेंढे भक्षणका नियम हुआ और अंडकोश इन्द्रके लगाये गये ॥ ९ ॥ हे राघव! [illegible] उस [illegible] इस-

भाँति इन्द्रने गौतमजीके तपके प्रभावके शापसे मेंढेके अंडकोश धारण किये ॥ १० ॥ हे राघव ! अब तुम पुण्यकीर्ति महातेजस्वी महर्षिके आश्रममें प्रवेश करके महाभागा देवरूपवाली अहल्याका उद्धार करो॥ ११ ॥रामचन्द्रजी विश्वामित्रजीकी आज्ञानुसार मुनिको आगे कर लक्ष्मणसहित गौतमजीके आश्रममें प्रवेश करते हुये ॥ १२ ॥ रामचन्द्रजीने वहाँ जाकर उस महाभागवालीको देखा कि तपस्याके तेजसे उसकी प्रभा अधिकतर फैल रहीहै मनुष्यकी तो बातही क्या देवदानवगणतक उसकी ओर दृष्टि नहीं करसक्ते ॥ १३ ॥ रामचन्द्रके आश्रममें प्रवेश करतेही यह पवित्र हुई और दीप्तिमान् आश्रम होगया यह अभिप्राय है उसको देखनेसे बोध हुआ कि, विधाताने अतियत्नसे यह मायामयी मोहिनी मूर्तिरचना कीहै उसकी दीप्ति धूम्रपूर्ण अग्निकी शिखाके समानथी ॥ १४ ॥ जैसे हिमसंयुक्त वा मेघमिश्रित चन्द्रमाका लावण्य होजाताहै जलमें तीव्र प्रदीप्त सूर्यप्रभा जिसप्रकार शोभा पातीहै वैसेही अहल्याकी आकृति होरहीथी ॥ १५ ॥ वह जबहीतक गौतमके शापसे त्रिलोकीको अदृष्टथी जबतक रामका दर्शन न हो ॥ १६ ॥ गौतमीने शापान्तमें जैसेही रामचन्द्रजीको सन्मुख देखा वैसेही पवित्रहो त्रिलोककी दर्शनीय होगई अर्थात् शिलारूप त्याग दिव्य अंगना हुई ॥ १७ ॥ तब राम लक्ष्मणजीने प्रहृष्टमनसे अहल्याके चरणोंकी वन्दनाकी गौतमीनेभी गौतमजीके वचन और पूर्ववृत्तान्त स्मरण पूर्वक ॥ १८ ॥ उनका सत्कार किया अर्घ्यपाद्याचमनीय आदिदे भलीभाँति पूजाकरने लगी और विधिकृत कर्मानुसार राम लक्ष्मणको पाकर बडी हर्षोत्फुल्ल हुई रामचन्द्रने शास्त्रानुसार उसकी पूजा ग्रहणकी ॥ १९ ॥ इसी अवसरमें आकाशसे पुष्पवृष्टि और दुन्दुभीनाद होनेलगा, गन्धर्व और अप्सराओंमें महा महोत्सव उपस्थित हुआ ॥ २० ॥ तब देवगण तपोबलसम्पन्न पतिपरायण निर्मल शरीरवाली अहल्याको साधु साधु कहकर पूजा करनेलगे ॥ २१ ॥ कहने लगे गौतमजीभी अपने योगबलसे श्रीरामचन्द्रजीको आये हुये जान अतिशीघ्र तप करना छोड अपने आश्रमपर आये और प्रथमके समान रूपवती अहल्याको पाय परम सुखीहुये व रामचन्द्रजीकी विधिविधानसे पूजाकर फिर तप करनेमें मन लगाते हुये ॥ २२ ॥ रामचन्द्रजी गौतमजीसे भलीप्रकार पूजा पाकर मिथिलापुरीकी ओरको चले ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां एकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशः सर्गः ५०.

अनन्तर रामचन्द्रजी लक्ष्मणसहित विश्वामित्रजीके साथ उत्तर पूर्वाभिमुख हो राजर्षि जनकजीकी यज्ञभूमिमें उपस्थित हुये ॥ १ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने मुनिसिंह विश्वामित्रजीसे कहा कि, राजा जनकजीके यज्ञकी सामग्री तो बहुत उत्तम है ॥ २ ॥ इस यज्ञके उपलक्ष्यमें वेदज्ञानसम्पन्न नानादेशीय असंख्य ब्राह्मणगण उपस्थित हुये हैं ॥ ३ ॥ यह सब ऋषियोंके वासस्थान दृष्टि आते हैं यह सब स्थान सैकड़ों छकडोंसे भरेहैं जिनपर ऋषियोंकी सामग्री लदीहै हे ब्रह्मन् ! हमारे रहनेलायक स्थानभी आप बतादीजिये जहां हम ठहरैं ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुन महामुनि विश्वामित्रजीने निर्जन सजलप्रदेश रहनेके लिये ठहराया ॥ ५ ॥ निन्दारहित राजा जनकजी विश्वामित्रजीका आना सुनकरके पुरोहित शतानन्द और ऋत्विजोंको संगले ॥ ६ ॥ और महात्मा ऋत्विक् पूजाकी सामग्री शीघ्रतासे लेकर वहां उपस्थित हुये और अर्घ्यले जल्दीसे उनको आगेले सविनय पूजा करते हुये ॥ ७ ॥ राजाने धर्मपूर्वक विश्वामित्रजीको अर्घ्य दिया महात्मा राजा जनककी पूजा ग्रहण कर ॥ ८ ॥ विश्वामित्रजीने उनकी और उनके यज्ञकी कुशलवार्त्ता पूछी तदनन्तर उपाध्यायों और पुरोहितगणोंसेभी कुशलप्रश्न किया कराया ॥ ९ ॥ और सबके संग मिले भेंटे फिर सब ऋषियोंसे सादर संभाषण किया तब राजा जनकजी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीसे हाथ जोडकर बोले ॥ १० ॥ आप अपने संगी ऋषियोंके संग इनआसनोंपर विराजिये जनकजीके ऐसा कहनेपर महामुनि विश्वामित्रजी बैठे ॥ ११ ॥ तब शतानंद, ऋत्विज लोग, राजमंत्री व राजा जनकजी यथायोग्य आसनोंपर उनके चारों ओर बैठगये ॥ १२ ॥ और राजा जनकजीने देखकर महर्षि विश्वामित्रजीसे कहा कि आज देवताओंकी कृपासे हमारा यज्ञ करना सफल हुआ ॥ १३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जब यहां आपसे साक्षात् हुआ तब मुझे यज्ञका फल मिलही गया और कहांतक कहूं मैं धन्य और कृतकृत्य होगया ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! जो आप ऋषियों समेत मेरे यज्ञमें पधारे यह मेरा बडा भाग्य है हे महर्षे ! पंडितगणोंने बारहदिन दीक्षाकालके नियत कियेहैं ॥ १५ ॥ हे कौशिक ! आप तभी यज्ञभागार्थी देवताओंको देखेंगे राजा मुनिसिंहसे यह वचन कहकर मुदितमनसे ॥ ॥ १६ ॥ हाथ जोड फिर विश्वामित्रजीसे बोले हे महाराज ! आपका कल्याण हो

यह तो बताओ यह दो कुमार देवतुल्य पराक्रमी ॥ १७ ॥ वृषभ व शार्दूल हाथी-की समान चाल चलनेवाले अश्विनीकुमारके समान रूपवान् जिनकी युवा अवस्था आयाही चाहती है ॥ १८ ॥ बोध होताहै कि यह इच्छापूर्वक देवलोकका त्यागन करके पृथ्वीपर उतर आयेहैं हे मुने ! यह किसकारण यहां आयेहैं किसके पुत्र हैं क्यों पैदल चलतेहैं ॥ १९ ॥ इन दोनों वीरोंके हाथोंमें दिव्य शरासनहै हे महामुने ! यह किसके पुत्रहैं ? चन्द्र, सूर्य जिसप्रकार गगनमंडलको सुशोभित करतेहैं वैसेही इन्होंने यह प्रदेश अलंकृत कियाहै ॥ २० ॥ इन दोनोंके आकार इङ्गित स्वभाव प्रभावमें कुछ भेद नहीं जाना जाता यह दोनों अलकैं रखाये महावीर कौन हैं ? मैं इनका नाम ग्राम सुना चाहताहूं ॥ २१ ॥ महात्मा उन राजा जनकके वचन सुन दीतात्मा विश्वामित्रजीने कहा यह राजा दशरथके पुत्रहैं ॥ २२ ॥ विश्वामित्रजीने इनका ऐसा परिचय प्रदान करके सिद्धाश्रममें अवस्थान राक्षस, मारीच; ताडकाका वध दुर्गमपंथमें आगमन विशालादर्शन ॥ २३ ॥ अहल्याउद्धार गौतमसम्मि-लन शिवका यज्ञ और महाधनुष देखनेके लिये आगमन ॥ २४ ॥ इत्यादि सब वृत्तान्त महात्मा राजा जनकजीसे कहकर महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्रजी चुपहुये ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदिकाव्ये बाल० भाषायां पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः ५१.

परम बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके इसप्रकार वचन सुन शरीरसे पुलकित हो महाते-जस्वी महातपस्वी शतानंदजी ॥ १ ॥ अपने तपोबलसे प्रभासित गौतममुनिके बडे बेटे शतानंदजी रामचन्द्रजीके दर्शन कर हृष्टचित्त और विस्मित हुये ॥ २ ॥ शतानंदजी राज-कुमार राम लक्ष्मणको सुखसे बैठाहुआ देख सुखसे बैठे हुये महर्षि विश्वामित्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे मुनिपुङ्गव! भला हमारी यशस्विनी माता बहुत दिनोंसे तपस्या करतीथी उसको अपने महाराज कुमार रामचन्द्रजीको दिखाया था ॥ ४ ॥ भला हमारी परम यश-स्विनी माताने देवतुल्याकृति सबसे पूजने योग्य रामचन्द्रजीकी वनफल पुष्पादि द्वारा पूजा कीथी ॥ ५ ॥ हे मुने ! आपने रामचन्द्रजीसे देवराज इन्द्रके व्यवहार-विषयक पुरातन कथा कही है ॥ ६ ॥ हे विश्वामित्रजी ! आपका मंगलहो हे मुनिश्रेष्ठ!

क्या मेरी माता शापसे छूटकर पिताजीसे मिलगई ? ॥ ७ ॥ महाराज विश्वामित्रजी क्या रामचन्द्रजी मेरे पितासे भलीभाँति पूजे तो गये हैं ? और यह महातेजस्वी पूजा ग्रहणकर यहां आये हैं? ॥८॥ मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि, श्रीरामचन्द्रजीने शान्तचित्त मेरे पिता महर्षि गौतमजीकी पूजा ग्रहणकर उनका कुछ सन्मान किया था वा नहीं ? ॥ ९ ॥ वाक्य बोलनेवाले तिनके ऐसे वचन सुनकर वाक्यविशारद महामुनि विश्वामित्रजी शतानंदजीसे बोले ॥ १० ॥ हे तपोधन ! जो कर्त्तव्य था उसमें किसी भाँतिकी कमी नहीं हुईहै जमदग्निसे जैसे रेणुका मिलितहो वैसेही गौतमजीसे तुम्हारी माता मिलीहै ॥ ११ ॥ बुद्धिमान् विश्वामित्रजीसे यह सुनकर गौतमपुत्र महातेजस्वी शतानंदजी रामचन्द्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! तुम अजित महर्षि विश्वामित्रजी तथा और ऋषियोंके साथ यहांतक निर्विघ्नतो आये ? तुम्हारा आना हमारे सौभाग्यका कारणहै ॥ १३ ॥ मैं महामुनि महातेजस्वी विश्वामित्रजीको विचित्रकर्मा और अमितप्रभावशाली जानता हूं यही-हमारे एकमात्र परमगति हैं ॥ १४॥ हे रामचन्द्रजी ! संसारमें तुमसे अधिक पृथ्वीपर धन्य और कौनहै?कारण कि, महर्षि विश्वामित्रजी तुम्हारे रक्षक हैं जिन्होंने बडी तपस्या की है ॥ १५ ॥ इस समय तुम मुझसे महात्मा कौशिकका तपोबल और अन्यान्य परिचय श्रवण करो ॥ १६ ॥ हे परन्तप ! यह महामति बहुत समय तक राजा कहकर परिचित रहचुके हैं यह धार्मिक विद्या जाननेवाले और प्रजाके हितकरनेमें प्रीतिमान थे ॥ १७ ॥ पूर्वकालमें कुशनामक प्रजापतिके एक पुत्र उत्पन्न हुआ उनके पुत्र बलवान् सुधार्मिक कुशनाभ हुये ॥ १८ ॥ कुशनाभके गाधि पुत्र हुये जो विख्यात थे और गाधिके महामुनि बड़े तेजस्वी विश्वामित्रजी हुये ॥ १९ ॥ यह महातेजस्वी विश्वामित्रजी बहुत दिनोंतक पृथ्वीका पालन करते रहे और यह कई हजार वर्षोंतक राजशासन करते रहे ॥ २० ॥ यह तेजस्वी विश्वामित्रजी एक समय चतुरङ्गिनी सेना सहित जो कई अक्षौहिणी थी पृथ्वीपर घूम रहेथे ॥ २१ ॥ यह यथाक्रमसे अनेक राज्य, नगर, नदी व पर्वत प्रभृतिमें फिर फिराकर आश्रमोंमें आये ॥ २२ ॥ क्रमसे वशिष्ठजीके आश्रमपर इन्होंने देखा कि, यह स्थान अनेक प्रकारकी वेल फूल और पौधोंसे सुशोभितहै अनेक खग मृग यहां विचरण कर रहेहैं और सिद्ध चारण करके आश्रम सेवितहै ॥ ॥ २३ ॥ देव, दानव, गन्धर्वोंसे यह स्थान शोभायमान और प्रशान्तचित्त हरि-

णोंसे भरा पुराहै स्थान २ में ब्राह्मणगण शोभा पारहे हैं ॥ २४ ॥ ब्रह्मर्षि गणोंसे संकीर्ण देवर्षियों करके सेवित जितने ब्राह्मण यहां बैठे हैं सब तपके मारे अग्निके समान देदीप्यमान हैं ॥ २५ ॥ यह स्थान ब्रह्ममय महात्मागणोंके जलपान, वायु-भोजन और पर्णाशनपर तपस्याके पक्षमें अनुकल हैं ॥ २६ ॥ फल मूल खाकर इन्द्रियोंके दोष जीतकर स्थान २ पर महात्मा वालखिल्य ऋषिगण तप कररहे हैं कहीं जप होम ऋषिगण कररहे हैं ॥ २७ ॥ वैखानसगण स्थान २ में शोभा पारहे हैं वसिष्ठजीका ऐसा आश्रम मानो दूसरा ब्रह्मलोकही है ॥ २८ ॥ ऐसा ब्रह्मलोकवत् आश्रम देखकर जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ महाराज विश्वामित्रजी परमप्रसन्नहुये ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२.

इस शोभाको देख परम प्रसन्नहो महाबलवान् वीर विश्वामित्रजी विनयपूर्वक जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीको प्रणाम करते हुये ॥ १ ॥ तब भगवान् मुनिवर वसिष्ठजीने उनसे स्वागत पूंछ पाँछ बैठनेके लिये आसन प्रदान किया ॥ २ ॥ बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके बैठनेपर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीने यथाविधि फल मूल प्रदान करके विश्वामित्रजीकी पहुनईकी ॥ ३ ॥ राजाओंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजीने वसिष्ठजीसे वह पूजा सत्कार ग्रहण करके अग्निहोत्र और शिष्योंकी कुशल पूँछी ॥ ४ ॥ और फिरभी महातेजस्वी विश्वामित्रजीने आश्रमके वृक्ष व वनस्पतियोंकी कुशल पूँछी वसिष्ठजीने भी राजासे सबकी कुशल कही ॥ ५ ॥ तब सुखसे बैठे हुये राजा विश्वामित्रजीसे जपकरने वालोंमें श्रेष्ठ महातपस्वी ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठजी बोले ॥ ६ ॥ हे राजन् ! हे धार्मिक ! तुम मंगलसे तो हो तुम राजाके कर्त्तव्यानुसार धर्म सहित प्रजाकी पालना तो करतेहो ॥ ७ ॥ हे शत्रुनाशन ! तुम्हारे नौकर चाकर नियत समयपर वेतन पाकर तुम्हारी शिक्षामें चलते हैं, अपने सब रिपुलोगोंको तो तुमने जीतलियाहै ॥ ॥ ८ ॥ हे परंतप ! तुम्हारा बल खजाना व मित्र भाई बन्धुओंपर तो कोई आपद नहीं है हे पापरहित ! तुम्हारे पुत्र पौत्रादि सन्तान सन्ततिमें कोई दुःखी तो नहीं? ॥ ९ ॥ महातेजवान् विश्वामित्रजीने सबकी कुशल वसिष्ठजीसे विनयपूर्वक सुनाई ॥ १० ॥ तदनन्तर उन दोनों धर्मात्माओंने बहुत कथा कह कहाकर कुछ घडियें बिताईं और दोनों परस्पर प्रीति व प्रसन्नता लाभ करते हुये ॥ ११ ॥

हे रघुनंदन ! इस अवसरमें भगवान् वसिष्ठजी हँसते हँसते विश्वामित्रजीसे यह वचन कहने लगे ॥ १२ ॥ हे महाबल ! अमितपराक्रमी ! मैं तुम्हारी और तुम्हारी सब सेनाकी पहुनई करना चाहता हूं तुम यह मेरा प्रस्ताव ग्रहण करो ॥ १३ ॥ इस मेरे किये हुये सत्कारको ग्रहणकरो हे राजन् ! तुम अतिथियोंमें श्रेष्ठ और सब भाँति पूजनीय हो अतएव मेरे इस अभिप्रायमें सम्मतिदो ॥ १४ ॥ तब महामुनि राजा विश्वामित्रजीने कहा कि, जब आपका अभिलाष पहुनईका हुआ तो जानिये कि मेरी पहुनई होगई ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! आपके आश्रममें फल मूल और और अर्घ्य इत्यादि पाकर विशेष करके आपके दर्शनमात्रसेही सन्तुष्ट हुआ हूं ॥१६॥ हे महाप्राज्ञ ! आप हमारे पूजनीय हैं मेरा जैसा आदर होना चाहिये वैसा आपने किया अब मैं आपको प्रणाम करके जाताहूं मुझपर कृपादृष्टि रखियेगा ॥ १७ ॥ विश्वामित्रजीके यह विनय करनेपरभी जप करनेवाले मुनिवर वसिष्ठजी बारंबार उनकी पहुनई ग्रहण करनेके लिये कहने लगे ॥ १८ ॥ तब विश्वामित्रजी वसिष्ठजीसे कहने लगे कि, हमें तुम्हारा कहना अंगीकार है जो आपको प्रियहो वही हम करेंगे ॥ १९ ॥ ज्योंहीं विश्वामित्रजीने यह वचन कहे तभी जपकरनेवाले वसिष्ठजीने परम प्रसन्न होकर विचित्र वर्णविभूषित पाप नाशकरनेवाली होमधेनुको यह कहकर बुलाया ॥ २० ॥ कि हे शबले ! तुम शीघ्र आकरके मेरे वचन सुनो कि, सेनासहित इन राजर्षि राजाकी पहुनई भली भाँति करो यह मेरी इच्छा है ॥ २१ ॥ अनेक प्रकार सुन्दर स्वादिष्ठ भोजनोंसे मेरे सन्तोषके निमित्त राजा का सत्कार करो जिसकी जैसी रुचिहो उसको तुम षड्रस भोजनद्वारा तृप्त करो क्योंकि तुम क्या नहीं देसक्ती हो ॥ २२ ॥ हे यथाकाम अन्नदेनेवाली ! वह दिव्य भोजनोंकी आज मेरे कहनेसे वर्षा करदे फिर रसोंमें भी खाने पीने चाटने सूँघने आदिके सब पदार्थ तैयार करो अब विलम्ब नहो इसके अतिरिक्त सब प्रकारके अन्नोंके ढेर लगादो जिसमें जो जिसे भावे सो वही लेले ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० बालकांडे भाषायां द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३.

हे शत्रुनाशन ! अनन्तर वसिष्ठजीके आदेशसे जिसको जैसी वासना हुई.शबलाने उसको वही पदार्थ पहुँचाया ॥ १ ॥ जैसे गन्नेके जितने विकार सब भाँतिके

मिष्टान्न, दिव्यमद महामूल्यवान पानीय और उत्कृष्ट निकृष्ट अनेक प्रकारके भक्ष्य भोज्य ॥ २ ॥ गरम भातके ढेर पर्वताकार, पायस, सूप, अनेक प्रकारकी दाल, दहीके ढेरके ढेर ॥ ३ ॥ नाना प्रकारके बडे स्वादयुक्त खांडके विकार इसके अतिरिक्त नानाप्रकारके पदार्थोंसे भोजनपात्र पूर्ण कर दिये ॥ ४ ॥ हे राम ! वसिष्ठजीके प्रभावसे विश्वामित्रजीकी सेना उपयुक्त भोजन पाकर परम हृष्ट पुष्ट और संतुष्ट हुई ॥ ५ ॥ राजर्षि नृपति विश्वामित्रजीभी रानी ब्राह्मण पुरोहित व मंत्रियों सहित ऋषिकी पहुनईसे प्रसन्न हुये ॥ ६ ॥ फिर अमात्य मंत्री नौकर चाकरों समेत तृप्त होकर परम प्रसन्न होकर ऋषि वसिष्ठजीसे बोले ॥ ७ ॥ हे मुने ! आपकी कृपासे जैसी पहुनई होनी संभवहै उसमें किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई हे वाक्यजाननेवालोंमें चतुर ! इस समय आप मेरा एक निवेदन श्रवण कीजिये ॥ ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! मैं आपको लाख गाय दान किये देता हूं उसके बदलेमें मुझे शबला दे दीजिये यह गाय एकरत्न है और रत्न भोगनेमें राजाहीका अधिकार होता है ॥ ९ ॥ अतएव मुझे शबला देदीजिये क्योंकि न्यायानुसार इसपर हमाराही अधिकारहै जब विश्वामित्रजीने भगवान् मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे ऐसा कहा तो ॥ १० ॥ विश्वामित्रजीसे महात्मा धार्म्मिक वसिष्ठजी बोले कि, लाख या करोड गायें देनेसेभी मैं शबलाको नहीं देसक्ता ॥ ११ ॥ हे राजन् ! न चांदीकी राशि देनेसे हमसे कोई यह गाय ले सके हे शत्रुतापन ! यही कारण है कि, यह हमारे त्यागनेयोग्य नहीं है ॥ १२ ॥ इस गायको अपनी कीर्तिके समान हम रक्षा करतेहैं विशेषतः इससे हमारे हव्य, कव्य, देव ऋषि पूजन और प्राणयात्रा होतीहै ॥ १३ ॥ व इससेही अग्निहोत्र होम और बलिकार्य कियेजाते हैं अधिक क्या कहैं स्वाहाकार वषट्कार अनेक प्रकारके यज्ञ और सब विद्या इसकेही आधीन हैं ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इसमें सन्देह नहींहै मेरा सब इसके अधीन है यह शबलाही हमारी सर्वस्वहै यही तुष्ट करनेवाली है इस पर मेरी जैसी प्रीतिहै ॥ १५ ॥ और किसी वस्तुपर इतनी नहीं है मैं इन सब कारणोंसे तुम्हारे कार्यके लिये इसको नहीं देसक्ता जब वसिष्ठजीने इस प्रकारके वचन कहे तब विश्वामित्रजी बोले ॥ १६ ॥ बडे आग्रहसे वाक्यके जाननेवाले यह वाक्य बोले मैं आपको स्वर्ण शृङ्खलसे बँधे हमेलोंसे मंडित सुवर्णके अंकुशोंसे भूषित ॥ १७ ॥ चौदह हजार हाथी देताहूं व सुवर्णमय रथ जिनमें सफेद चार २ घोडे जुते हुये ॥ १८ ॥ सुवर्णकी किंकणी बँधे आठसौ रथ आपको देंगे. काम्बोज, बाह्लीक,

अरब आदि देशोंमें उत्पन्न अच्छे कुलके ॥ १९ ॥ (११०००) ग्यारह हजार श्रेष्ठ घोडे देता हूं हे सुव्रत ! नानावर्णों करके युक्त व नई उमरवाली ॥ २० ॥ एक करोड गायें आपको देता हूं हे द्विजोत्तम ! आप मुझे शबला देदीजिये हे ब्राह्मण ! इसके अतिरिक्त रत्न या सुवर्ण जो चाहिये ॥ २१ ॥ सो मैं सब देनेको तैयार हूं परन्तु आप मुझे शबला देदें बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके ऐसा कहने पर भगवान् वसिष्ठजी बोले कि, ॥ २२ ॥ हे राजन् ! मैं शबला किसी प्रकार नहीं दूंगा कि, यह धेनुही हमारा धन है और यही हमारा सुन्दर रत्नहै ॥ २३ ॥ यही सर्वस्व बरन् यही हमारी जीवनहै मैं इसकीही सहायतासे दर्शमख और पौर्णमासयज्ञ दक्षिणाके सहित करताहूं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इसीसेही अन्यान्य देवक्रिया साधन करताहूं हे विश्वामित्र ! यही सब क्रियाकी मूल है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २५ ॥ और अधिक बकवादसे क्याहै मैं किसी भाँति अपनी इस शबलाको नहीं देसक्ता ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० बालकांडे भाषायां त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः ५४.

हे राम ! जब मुनि वसिष्ठजीने किसीप्रकार होमधेनु न दी तब नृपति विश्वामित्रजी उसको बलपूर्वक लेचले ॥ १ ॥ हे राम ! जिस समय महात्मा राजा उस गायको लेजाने लगे उस समय गायकी आंखोंसे आंसू गिरने लगे और वह दुःखी हो अपने मनमें सोचने लगी ॥ २ ॥ क्या महात्मा महर्षिजीने मुझे त्यागनहीं करदिया यह राजपुरुष मुझ दीनको ऐसा कष्ट देकर क्यों लिये जाते हैं ॥ ३ ॥ मैंने ज्ञानी धर्मात्मा उन महर्षिका क्या अपराध किया जो अपराध रहित और भक्त जानकर भी निरपराध मुझको उन्होंने त्याग दिया ॥ ४ ॥ वह धेनु इस भाँतिकी चिन्ता करके घने २ निःश्वास परित्याग पूर्वक उन सैकडों राज पुरुषोंके हाथसे अपनेको छुडाकर वायुवेगसे बडे प्रतापी वसिष्ठजीके निकट आई और उनके चरणोंमें गिर पडी ॥ ५ ॥ ६ ॥ उस समय उसके नेत्रोंमें आंसू भररहे थे वह मुनिके आगे खडी होकर हुंकार कर रोती वसिष्ठजीसे मेघकी समान शब्दमें यह बोली ॥ ७ ॥ हे ब्रह्माके पुत्र भगवान् वसिष्ठजी ! राजाके नौकर चाकर मुझे तुम्हारे निकटसे क्यों लिये जाते हैं ? आपने मुझे क्या परित्याग करदिया ॥ ८ ॥ जब शबलाने इस प्रकारके वचन कहे तब महर्षि वसिष्ठजी शोकसन्तप्त भगिनीकी

नाईं शोकाकुला शवलासे बोले ॥ ९ ॥ हे शवले ! मैंने तुझे परित्याग नहीं कर-दिया और तैंनेभी मेरा कोई अपकार नहीं किया महाबलसे मतवाले हो यह राजा तुझे बलपूर्वक लिये जाते हैं ॥ १० ॥ मुझमें इतना बल नहीं है विशेषता यह राजा बलवान् जातिमें क्षत्रिय और फिर पृथ्वीके अधिपति हैं ॥ ११ ॥ विचार करके देख इस राजाके पास हाथी, घोडे, रथ प्रभृतिसे पूर्ण एक अक्षौहिणी विपुल सेनाहै सुतरां यह सबभाँति हमसे बलवान् हैं ॥ १२ ॥ वसिष्ठजीसे ऐसा सुन वचनकी जानने वाली वह धेनु विनय वचनसे महाप्रभावयुक्त महर्षि वसिष्ठजीसे बोली ॥ १३ ॥ कि क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे अधिक बलवान् नहीं है हे ब्रह्मन् ! क्षत्रियोंके बलकी अपेक्षा ब्राह्मण दिव्यबलसे अधिक बलीहैं यह बात सदासे प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥ आपमें अप्रमेय शक्ति व दुर्द्धर्ष तेज है विश्वामित्र कभी आपकी बराबरी नहीं करसक्ते ॥ १५ ॥ जो हो आप मुझे विश्वामित्रका दर्प और तेज संहार करनेके लिये समुचित शक्तिकी सृष्टि-करनेमें नियोग कर दीजिये मैं उस दुरात्माका बल और दर्प चूर्ण करूंगी ॥ १६ ॥ कामधेनुके यह वचन सुन महा यशस्वी वसिष्ठजी यह बोले कि, बलसे सेना उत्पन्न करो जो शत्रुओंकी सेनाका संहार करे ॥ १७ ॥ मुनिकी आज्ञा पाकर सुरभी असंख्य सेना उत्पन्नकरने लगी उसकी हुङ्कारसे बहु संख्याक पह्लव म्लेच्छ उत्पन्न हुये ॥ १८ ॥ उत्पन्न होतेही वह लोग विश्वामित्रके सामनेही सेनाका संहार करने लगे तब विश्वामित्रजीके जपाकुसुमवत् लाल २ नेत्र होगये और महा-क्रोधित हुये ॥ १९ ॥ और बाणवर्षणकर ऊंचे नीचे शस्त्रोंसे सब म्लेच्छोंका नाशकिया फिर विश्वामित्रके शस्त्रसे उन सैकडों पह्लवोंको मराहुआ देखा ॥ २० ॥ शवलाने पुनर्वार महाघोर यवनमिश्रित शकजातीय सैन्यसृष्टि उत्पन्नकी उन सब शक और यवनोंसे आश्रमकी भूमि पूर्ण होगई ॥ २१ ॥ यह सब अधिक-बलवान् प्रभावशाली पीले सोनेकी समान रंगवाले हाथोंमें तीक्ष्ण पटा व तलवार धारण किये पीले कपडे पहने ॥ २२ ॥ प्रदीप्त अग्निकी नाईं प्रकाशित होकर राजाकी सब सेना दग्ध करनेलगे यह देखकर महातेजस्वी विश्वामित्रजीने अपने अस्त्र छोडे ॥ २३ ॥ जिससे यवन, कम्बोज व बर्बरगणोंका नाश होगया समस्त व्याकुल होगये ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां चतुःपंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५.

तब वसिष्ठजी विश्वामित्रके अस्त्र शस्त्रोंसे शकयवनादिकोंको आकुलित व विमोहित देख शबलासे बोले कि, तू योगबलसे फिर सेना उत्पन्नकर ॥ १ ॥ वसिष्ठजीके ऐसा कहतेही सुरभीकी हुङ्कारसे सूर्यसमान कम्बोज नामक सेना जन्मी व तिसके स्तनोंसे शस्त्रधारी बर्बर गणोंकी उत्पत्ति हुई ॥ २ ॥ उसकी योनिसे यवन गुदासे शक रोमोंसे म्लेच्छ, किरात, हारीत व किरात सैन्य उत्पन्न हुई ॥ ३ ॥ हे रघुनंदन! उन लोगोंने जन्म लेतेंही तत्क्षणात् विश्वामित्रके हाथी, घोडे, रथ व पैदलों सहित सब सेनाका संहार किया ॥ ४ ॥ इस समय विश्वामित्रजीके सौ पुत्र वसिष्ठजीके प्रभावसे सेना नाश होती हुई देखकर अस्त्र शस्त्र ग्रहण पूर्वक वसिष्ठजीके मारनेको दौडे ॥ ५ ॥ जब वे क्रोध करके जपकरनेवालेमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीके मारनेको दौडे तब वसिष्ठजीने हुंकार करदिया कि, वे तत्क्षणात् भस्म होगये ॥ ६ ॥ महात्मा वसिष्ठजीने उनके घोडे रथ और सब पदाति सैन्य मुहूर्त मात्रमें भस्म करदी और विश्वामित्रजीके पुत्रभी भस्म करदिये ॥ ७ ॥ अपनी सेनाका नाश देखकर महायशस्वी नृपति विश्वामित्रजी लज्जित हो कुछ देरतक चिन्ता करते रहे ॥ ८ ॥ उस समय विश्वामित्रजीकी अवस्था तरंगशून्य समुद्र, टूटे दांतवाले सर्पकी, व राहुग्रस्त दिवाकरकी नाईं, बोध होनेलगी अर्थात् कान्तिशून्य होगये ॥ ९ ॥ वह सेना सहित पुत्रोंका नाश देखकर पंखनुचे पक्षीकी नाईं दीन निरुत्साह मनसे अपमानित हुये ॥ १० ॥ अनन्तर क्षत्रियधर्मानुसार एक पुत्रको राज्यभार समर्पण करके कहा तुम क्षत्रियोंके धर्मानुसार अच्छी तरह प्रजापालन करना यह कहकर वनको चले गये ॥ ११ ॥ वह महातपा वहां जाकर हिमालयके निकट किन्नरादि सेवित स्थानमें अवस्थानपूर्वक महादेवजीके आराधनार्थ तपस्या करने लगे ॥ १२ ॥ कुछ दिन तप करनेपर वरदान देनेवाले देवदेव वृषध्वजने विश्वामित्रजीको दर्शन दिया ॥ १३ ॥ और कहा कि, हे राजन्! तुम्हारे तप करनेका क्या कारण है! तुम्हारा जो अभिलाष हो वह वर मुझसे मांगलो मैं तुमको वर दूंगा ॥ १४ ॥ महादेवजीके यह कहने पर महातपस्वी महर्षि विश्वामित्रजी उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनसे कहने लगे कि ॥ १५ ॥ हे पिनाकपाणे! यदि आप प्रसन्न हुये हैं तो साङ्गोपाङ्ग मंत्रसहित रहस्ययुक्त धनुर्वेद मुझे दीजिये ॥ १६ ॥ हे पापरहित! देव, मानव, महर्षि, यक्ष, राक्षस और गन्धर्वोंके जितने अस्त्र शस्त्र हैं सब मुझे बेपढे

आजावें ॥ १७ ॥ आपके अनुग्रहसे मेरा मनोरथ पूरा होजाय यही मेरी प्रार्थना है यह सुन महादेवजी ऐसाही होगा यह कहकर अन्तर्धान होगये ॥ १८ ॥ देवादि-देव महादेवजीसे अस्त्र शस्त्र पाकर महाबली विश्वामित्रजी अतिशय दर्पित होगये पूर्ण अभिमान हुआ ॥ १९ ॥ हे राम ! तब विश्वामित्रजी मारे वीर्यके ऐसे बढे जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाको देख समुद्र बढता है और यह विचारने लगे कि, अबकी बार ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठजीका निस्तार नहीं ॥ २० ॥ मन २ में यह ठीककर वह फिर वसिष्ठजीके आश्रममें गये और शरजाल विस्तार करने लगे इनके बाणोंसे तपोवन दग्धप्राय होगया ॥ २१ ॥ विश्वामित्रको अस्त्रोंका त्यागन करते देख आश्रमवासी ऋषिगण त्रासके मारे चारोंओर दिशाओंमें पलायन करने लगे ॥ २२ ॥ वसिष्ठ-जीके जो शिष्यगण थे और आश्रमके रहनेवाले मृग पक्षिगणतक भयभीत होकर इधर उधर दिशाओंमें भागने लगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार यह वसिष्ठजीका आश्रम शून्यप्राय होकर मुहूर्तभरमें वृक्षरहित ऊषर विना शब्दके वनप्रदेशकी नाईं शोभा पानेलगा ॥ २४ ॥ तब वसिष्ठजी बोले कोई मतडरो. सूर्यके उदय होनेसे जैसे अंध-कारका नाश होजाताहै, वैसेही मैं गाधिपुत्रका प्राणसंहार करूंगा ॥ २५ ॥ जप करने वालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी वसिष्ठजीने यह कहकर फिर रोषसहित विश्वामित्र-जीसे कहा ॥ २६ ॥ रे निर्बोध ! खोटे आचरण करनेवाले ! जब तैंने बहुत कालसे धन धान्यसे परिपूर्ण इस सुखकर आश्रमका सत्यानाश किया तो अब तू जीता नहीं बचेगा ॥ २७ ॥ वसिष्ठजी यह कहकर धूमरहित अग्निके समान क्रोधसे प्रदीप्त हो यमदंडकी सदृश घोरदंड उठाकर शीघ्रतासे विश्वामित्रके ऊपर चले ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि०बालकांडे भाषायां पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६.

वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर "खडेहो, खडेहो" ऐसा कहकर महाबली विश्वामित्र-जीने आग्नेयास्त्र उठाया ॥ १ ॥ तब भगवान् वसिष्ठजी दूसरे कालदंडके समान ब्रह्मदंडको उठाकर क्रोधसहित यह बोले ॥ २ ॥ रे क्षत्रकुलाङ्गार ! यह मैं खडाहूं तुझमें जितनी सामर्थ्य हो अपना बल दिखा. रे गाधिसुत ! मैं तेरे शस्त्रका और तेरा दर्प चूर्ण करूंगा ॥ ३ ॥ रे अधम ! कहां तेरा तुच्छ क्षत्रबल कहां महान् ब्रह्मबल ? इसीकारण ब्रह्मबलसे क्षत्रियबलकी तुलना नहीं होती, जो हो तू हमारा अतुल

दिव्य ब्रह्मबल अब देखेगा ॥ ४ ॥ यह कहकर जलसे जिस भाँति जलती हुई अग्निशांति होतीहै वैसेही ब्रह्मदंडके प्रभावसे उस घोर आग्नेयास्त्रको निवारण करदिया ॥ ५ ॥ तब कौशिकजीने कुपितहो वारुण, ऐन्द्र, पाशुपत, ऐषीक अस्त्र छोड़ा ॥ ६ ॥ मानव, मोहन, गान्धर्व, स्वापन, जृम्भण, सन्तापन, विलापन ॥ ७ ॥ शोषण, दारण जो किसीसे न जीता जाय वज्र, ब्रह्मपाश, कालपाश, वरुणपाश ॥ ८ ॥ शिवजीका अस्त्र पिनाकदंड तैसेही शुष्कपर्वतमें वज्रके समान, दंडास्त्र पैशाच क्रौञ्चास्त्र ॥ ९ ॥ धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वायव्य मथन, हयशिर अस्त्र ॥ १० ॥ और दो शक्ति मारी, कंकाल, मुसल विद्याधरमहास्त्र और दारुण कालास्त्र ॥ ११ ॥ कपाल कंकण और हे रघुनंदन! त्रिशूलप्रभृति घोर यह सब अस्त्र वसिष्ठजीके ऊपर प्रयोग किये ॥ १२ ॥ जपकरनेवाले वसिष्ठपर अस्त्र गिरते देखकर सबको महा विस्मय हुआ तब ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीने अपने दंडके प्रभावसे इन सब अस्त्रोंका संहार करदिया अर्थात् केवल ब्रह्मदंडनेही सम्पूर्ण अस्त्र ग्रास कर लिये ॥ १३ ॥ सब अस्त्रोंको व्यर्थ देखकर गाधिनंदनने ब्रह्मास्त्र छोडा तब उस अस्त्रको प्रयोग करते देख अग्निप्रभृति देवतागण ॥ १४ ॥ देवर्षि महासर्प और गन्धर्व इत्यादिक सब सशंकित होगये तीनों लोक ब्रह्मास्त्रके डरसे कांपने लगे ॥ १५ ॥ हे राघव ! तब वसिष्ठजीने ब्रह्मतेजोमय ब्रह्मदंडद्वारा दारुण महाघोर ब्रह्मास्त्रको व्यर्थ करदिया ॥ १६ ॥ जितनी देरमें ब्रह्मास्त्र निवारित हुआ और जब महात्मा वसिष्ठजीने ब्रह्मास्त्र ग्रास कर लिया उस समय वसिष्ठजीकी मूर्ति भयानक और त्रैलोक्य मोहनेवाली होगई ॥ १७ ॥ उन महात्मा वसिष्ठजीके रुवें २ से निर्धूम अग्निकी ज्वालाके समान चिनगारियां निकलने लगीं ॥ १८ ॥ वसिष्ठजीके हाथसे ब्रह्मदंड धूमरहित प्रलयाग्निकी नाईं प्रज्वलित हो उठा मानो दूसरा यमदंड होगया ॥ १९ ॥ तब ऋषिलोगोंने स्तुतिकर जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीसे कहा हे ब्रह्मन् ! अपने अमोघ ब्रह्म तेजको अपनी महिमासे अपनेमें धारण करो ॥ २० ॥ हे महात्मन् ! आपने महाबली विश्वामित्रको भली भाँति जीतलिया आपका बल अपरिमेय है अब आपकी कृपासे, सबलोग निश्चिन्त हों ॥ २१ ॥ ऋषियोंकी प्रार्थनासे महातपा वसिष्ठजीने क्रोधत्याग शांतभाव धारण करलिया विश्वामित्रजी हारकर दीर्घ श्वास त्यागकर बोले ॥ २२ ॥ क्षत्रिय बलको धिक्कार है ब्रह्म बलही प्रकृत बलहै एक मात्र ब्रह्मदंडके प्रभावसेही मेरे

सब अस्त्र शस्त्र विफल होगये यही इसका पूरा प्रमाणहै ॥ २३ ॥ बस अब इसमें यही निश्चयहै कि, मैं इन्द्रिय और मनको निर्मल करके ब्रह्मत्व पानेके अर्थ स्थिरहो घोर तप करूंगा "हे राम ! महातेजा महाराज विश्वामित्र इसप्रकार कहकर अस्त्र शस्त्रोंको त्याग ब्रह्मत्वलाभके निमित्त निश्चयकर घोर तपस्या करनेके निमित्त वन-गमनमें प्रवृत्त हुए" ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदि० बाल० भाषायां षट्पंचाशः सर्गः ॥५६॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ५७.

तदनन्तर महामुनि विश्वामित्रजी वसिष्ठसे वैर होनेके कारण मनमें अपनी हार समझ हृदयमें दग्ध होते हुये दीर्घ श्वास परित्यागपूर्वक ॥ १ ॥ हे राघव ! वह महातप करनेवाले विश्वामित्रजी रानीसमेत दक्षिण दिशामें जाकर घोर तप करने लगे ॥ ॥ २ ॥ वह चतुर मूल फलभोजन करके कठिन तप करनेलगे और इन्द्रियोंको जीत लिया " तपसाधन कालमें उन्होंने महर्षि वसिष्ठके प्रतिस्पर्धाकर यह संकल्प किया कि, हमको ब्रह्मर्षिपद मिलै जो प्राकृत जनोंको दुर्लभ है " उस समय वहां उनके सत्यधर्मके अनुष्ठान करनेवाले चार पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ वह हविष्यन्द, मधुष्यन्द, दृढनेत्र और महारथ इन चार नामोंमें प्रसिद्ध हुये " इस तपस्यासे प्रथम जितने समय इन्होंने राज्य किया था उस समयतक इनके आठ पुत्र थे. इसप्रकार हजार वर्ष तपस्या करते हुये बीत जानेपर लोकोंके पितामह प्रजापति ब्रह्माजी ॥४॥ तपोधन विश्वामित्रजीके निकट उपस्थितहो मधुर वाणीसे बोले कि, हे रा-जर्षे कुशिकपुत्र ! तुमने तपके प्रभावसे त्रिलोकीको जीत लिया ॥ ५ ॥ अब तपके प्रभावसे तुम राजर्षि ख्यात होगे यह कहकर महातेजस्वी ब्रह्माजी देवताओं-सहित चले गये ॥ ६ ॥ लोकोंके ईश्वर ब्रह्माजीके त्रिविष्टप अर्थात् ब्रह्मलोकमें चले जानेपर विश्वामित्रजीने लाजके मारे नीचेको मुख करलिया ॥ ७ ॥ और महादुःखी हो क्रोधकर कहने लगे कि मैंने ऐसी घोर तपस्याकी तौ भी राजर्षिही हुआ ॥ ८ ॥ देवता और ऋषिगण मुझे राजर्षि कहैंगे मैं जानताहूं कि; अभी मैं तपस्यासे सिद्धकाम नहीं हुआ यह मनमें स्थित कर फिर घोर तप करने लगे ॥ ९ ॥ हे राम ! जब वे धर्मात्मा आत्माके जाननेवाले फिर तप करने लगे और बहुत काल बीतगया उन्हीं दिनोंमें एक अति सत्यवादी जितेन्द्रिय ॥ १० ॥

महाराज इक्ष्वाकुके कुलके बढानेवाले त्रिशंकु नाम भूपाल हुये हे राम ! उनके मनमें यह आया कि, हम कोई ऐसा यज्ञ करें ॥ ११ ॥ जिससे शरीरसहित देवतोंके रहने योग्य स्वर्गको चले जाँय. यह विचार वसिष्ठजीको बुलाकर उनसे अपना मनोरथ कहा ॥ १२ ॥ महात्मा वसिष्ठजीने कहा ऐसा नहीं होसक्ता वसिष्ठजीसे यह उत्तर पाकर त्रिशंकु दक्षिणदिशाको चलेगये ॥ १३ ॥ राजा त्रिशंकु अपना कार्य साधनेको वहां पहुँचे जहां दीर्घतपा वसिष्ठजीके पुत्र तप करतेथे ॥ १४ ॥ महातेजस्वी त्रिशङ्कुने वहां पहुँचकर देखा कि, उन मनस्वी वसिष्ठजीके पुत्रोंकी प्रभा सौ सूर्य तुल्य है और वह घोर तपस्यामें मन लगाएहुएहैं ॥ १५ ॥ राजा आगे बढे उन महात्मा गुरुपुत्रोंको यथाक्रम प्रणाम करके लज्जित मुँह नीचे कर बैठगये ॥ १६ ॥ वह हाथ जोडकर उन सब महात्माओंसे कहा कि; आप शरण देनेवालोंमें समर्थहैं इसकारण मैं आपकी शरणमें आयाहूं ॥ १७ ॥ मैं ने यज्ञकी कामनासे गुरुदेव वसिष्ठजीको व्रती करनेको कहाथा सो उन महात्माने जवाब दे दिया, अतएव अब आप अनुग्रह करके यज्ञ कराइये ॥ १८ ॥ मैं आप सब गुरुपुत्रोंको प्रसन्नताके लिये प्रणाम करताहूं और शिर नवाकर तपमें स्थित आप ब्राह्मणोंसे कृपाभिलाषा करताहूं ॥ १९ ॥ आप लोग कृपाकरके मेरे यज्ञको सिद्ध कर दीजिये जिससे मैं शरीरसहित स्वर्गको चलाजाऊं आपको ऐसा करना चाहिये ॥ २० ॥ जब गुरुजीने मुझे जवाब दिया तो मेरी तो अब कोई गति नहीं इसकारण अब आपके सिवाय मैं किसकी शरण जाऊं ॥ २१ ॥ आपही विचारकर देखिये कि, गुरुही इक्ष्वाकुवंशके परमगति हैं, सो गुरुजीके अभावमें आपही हमारे परमदेवता हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः ५८.

हे राम ! तदनन्तर ऋषिपुत्रगण राजा त्रिशंकुका वचन श्रवण करके वे सौओं उनसे क्रोधपूर्वक बोले ॥ १ ॥ हे मन्दबुद्धे ! जब सत्यवादी पिताजीने जो तुम्हारे गुरु हैं तुमको जवाब दिया है तब तुम उनको अनादरित कर किस प्रकार दूसरी शाखाका आश्रय लेना चाहतेहो ॥ २ ॥ इक्ष्वाकुवंशियोंके गुरुही परमगति होतेहैं वह अपने सत्यवादी गुरुवाक्यका अनादर नहीं कर सकते ॥ ३ ॥ जिसको हमारे पिताजी भगवान् वसिष्ठ नहीं कर सक्के उस यज्ञको

हम लोग किसप्रकार साधन करैं गे ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! तुम निर्बोध हो तुम फिर अपनी पुरीको चले जाओ हे राजन् ! यह जानलो कि, हमारे पिताही तीनों लोकोंको यज्ञ करानेमें समर्थ हैं ॥ ५ ॥ हम पुत्र होकर किसप्रकार पिताका अनादर करैं ? उनके क्रोधपूर्ण वाक्य श्रवण करके ॥ ६ ॥ राजाने फिर उनसे इसप्रकारके वचन कहे आपके पिताने हमें जवाब दिया और आपनेभी वही किया ॥ ७ ॥ हे तापसगण ! आपका मंगल हो मैं जाताहूं अब और किसीके पास जाकर उनसे यज्ञ कराऊंगा ऋषिपुत्रोंने जब यह कठोर वचन सुना तो ॥ ८ ॥ महाक्रोधितहो शाप दिया कि, तू चांडाल अवस्थाको प्राप्त होजा यह शाप देकर वे महात्मा अपने २ आश्रममें प्रवेश करगये ॥ ९ ॥ अनन्तर रात्रि बीत जानेपर भोरही त्रिशंकु चांडाल होगये, उनका शरीर नील वर्ण, केश खर्व और वस्त्र सब नीलेही नीले होगये ॥ १० ॥ चिताकी भस्म व मुर्दोंकेसे छिन्न वस्त्र धारण किये जितने गहनेथे लोहमय होगये । राजाकी ऐसी अवस्था देखकर मंत्रियोंने उन्हें परित्याग करदिया ॥ ११ ॥ हे राम ! अनुगत पुरवासी राजाकी यह भयावनी मूर्त्ति देखकर उनको छोडकर चलेगये तब ज्ञानी राजा अकेले घूमने लगे ॥ ॥ १२ ॥ रात दिन मनहीमन जलते हुये तपोधन विश्वामित्रजीके पासको गये. विश्वामित्रजीने विफल मनोरथ इन्हें देखने लगे ॥ १३ ॥ हे राम ! चंडालरूपमें राजाको देख मुनिके मनमें दयाका संचार हुआ और महातेजा धार्मिक विश्वामित्रजी राजासे बोले ॥ १४ ॥ उस घोर रूपवाले राजासे विश्वामित्रजी यों कहने लगे तुम यहां कैसे आये मेरे आश्रममें आनेका कारण कहो ॥ १५ ॥ हे वीर अयोध्याके राजा ! ऐसा ज्ञात होताहै कि, तुम किसीके शापसे चांडाल होगये उनके ऐसे वचन सुन चंडालत्वको प्राप्त हुए राजा ॥ १६ ॥ वाक्यविशारद विश्वामित्रजीसे हाथ जोडकर बोले कि, गुरु वसिष्ठजी और उनके सौ पुत्रोंने हमारी यह दशा की है ॥ १७॥ हे प्रियदर्शन ! मैंने शरीर सहित स्वर्गमें जानेके अभिप्रायसे एक यज्ञ करनेका अभिलाष गुरुजी और उनके पुत्रोंसे कहा किन्तु प्रार्थना पूरी करना तो दूर रहा उन्होंने शापसे हमारी यह अवस्था की ॥ १८ ॥ मैंने एक सौ यज्ञ किये हैं किन्तु उनके फलसे वञ्चित होगया मैंने प्रथम कभी मिथ्या नहीं कहा न अब कहताहूं ॥ १९ ॥ महादुःख प्राप्त होनेपरभी मैंने सत्य धर्म नहीं छोडा क्षत्र धर्म मेरा साक्षीहै इसके अतिरिक्त धर्मानुसार प्रजापालन की है ॥ २० ॥ मैंने

महात्मा गुरुजनोंको सदाचारसे सन्तुष्ट कियाहै मेरी वासना धर्मानुसारही यज्ञ करने की थी ॥ २१ ॥ हे मुनीश्वर ! भाग्यसे गुरुदेवभी मुझसे रूठगये मैं जानताहूं कि, दैवही प्रधानहै पौरुष तो केवल सामान्य पदार्थ है ॥ २२ ॥ दैवही सबको वश कर रखताहै दैवही सबकी परमगति है मेरा भाग्य बिगडा हुआहै आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये आपका मंगलहो मैं जानताहूं कि, भाग्यसेही इस शुभकार्यमें बाधा पडीहै ॥ २३ ॥ आपके सिवाय मैं और किसकी शरण जाऊं मुझे अब और कोई शरण देनेवाला नहीं आपही अपनी सामर्थ्यसे दैवकी गतिको छेकनेमें समर्थ हैं ॥ २४ ॥

श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायामष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

कुशिकनंदन त्रिशङ्कुके ऐसे वचन श्रवणकर दयाकर साक्षात् चांडालरूपी राजासे मधुर वचन बोले ॥ १ ॥ हे वत्स ! इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न हुये हो तुम भले आये मैं जानताहूं कि, तुम धार्मिकहो इसीकारण आश्रय देताहूं, हेराजन् ! तुम कुछ मत डरो ॥ २ ॥ मैं तुम्हारे यज्ञकी सहाय करनेके लिये पुण्य कर्म करनेवाले ऋषियोंको न्यौता पठाऊंगा उनको लेकर तुम अपना अभीष्ट यज्ञ पूर्ण कर सकोगे ॥ ३ ॥ यद्यपि गुरुपुत्रोंके शापसे तुम्हारा शरीर विरूप होगया तथापि तुम इसी शरीरसे स्वर्गको चलेजावोगे ॥ ४ ॥ जब तुम शरण देनेवाले विश्वामित्रके शरण आये हो तो जान-लो कि, स्वर्गमें पहुँचहीगये स्वर्ग अपने हाथोंमें आया जानलो ॥ ५ ॥ यह कह-कर धार्मिक विद्वान् महातेजस्वी विश्वामित्रजीने अपने पुत्रोंको यज्ञका आयोजन करनेकी आज्ञा दी ॥ ६ ॥ फिर सब शिष्योंको बुलाकर कहा तुम लोग मेरी आज्ञासे पुत्रोंसहित वसिष्ठप्रभृति सब ऋषियोंको ले आओ ॥ ७ ॥ इसके अतिरिक्त शिष्य व सुहृदों सहित बहुत अध्ययन किये हुए पुरोहितोंको बुलालाना, यदि कोई मेरे कहनेका अनादर करे तो ॥ ८ ॥ मुझसे सब ठीक २ उनके अनाद-रके वचन कह देना, तब विश्वामित्रजीकी आज्ञासे सब शिष्यगण चारों ओरको चले गये ॥ ९ ॥ और अनेक देशोंसे ब्रह्मवादी मुनिगण आने लगे और विश्वामित्रके शिष्यगणभी अतितेजस्वी मुनिके पास लौट आये ॥ १० ॥ और सब ब्रह्मवादि-योंके वचन सुनाकर विश्वामित्रजीसे बोले कि, सब देशोंके ब्राह्मण आपका नाम सुन-कर यज्ञमें आनेको सम्मत हुये ॥ ११ ॥ केवल महोदय नामक एक ब्राह्मण और

वसिष्ठपुत्र यज्ञमें नहीं आना चाहते, उन्होंने क्रोधित नेत्र होकर हमसे जो कहाथा ॥ १२ ॥ जो उन्होंने वचन कहे हैं सो हे मुनिश्रेष्ठ ! सुनिये कि, जिस यज्ञका यजमान तो चांडाल, व यज्ञका करानेवाला क्षत्रिय ॥ १३ ॥ उस सभामें देवता ऋषिकिस प्रकार यज्ञभाग ग्रहण करेंगे और महात्मा ब्राह्मणगण कैसे चांडाल का छुआ उस यज्ञमें भोजन करेंगे ॥ १४ ॥ और देखेंगे कि, यज्ञकर्त्ता किसप्रकार विश्वामित्रकी सहायतासे स्वर्गको चला जायगा, यह वचन उन्होंने बडे २ लाल २ नेत्रकर निठुरतासे कहे हैं ॥ १५ ॥ हे मुनिवर ! महोदय और वसिष्ठके पुत्रोंने यह गर्वीले वचन कहे हैं उन अपने सब शिष्योंके वचन सुन मुनियोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजी ॥ १६ ॥ लाल २ नेत्रकर क्रोध सहित बोले कि, मैं कठोर तप कर रहाहूं कोई अन्याय कार्य किया नहीं इसपरभी जो मुझे बुरा कहैं ॥ १७ ॥ और मुझसे घृणा करैं तो वह दुरात्मा लोग भस्म होजायँगे और कालपाशसे बँधे हुये यमपुरको गमन करैंगे ॥ १८ ॥ फिर सातसौ जन्मतक कफन खसौटी कर काल व्यतीत करैंगे कुत्तेका मांस उनका भोजन होगा डोमें कहलावेंगे निर्धन होंगे ॥ १९ ॥ उनको विकृत और विरूप भावसे सब लोकोंमें विचरण करनाहोगा, उस महोदयनेभी जब दुर्बुद्धिवश होकर दोष रहित मुझे दूषण दिया है ॥ २० ॥ सो वह भी सब लोकमें दूषित होकर निषाद जाति होय. अधिक क्या कहूं उसको प्राणियों की हिंसा करनेमें नियुक्त होकर॥ २१ ॥ बहुत कालतक मेरे क्रोधसे महादुःख भोगना पड़ेगा यह कहकर महातपस्वी तेजस्वी महामुनि विश्वामित्र ऋषियोंके बीचमें बैठे चुपरहे ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

तब महातेजस्वी विश्वामित्रजी महोदय और वसिष्ठके पुत्रोंको तपके बलसे निहत जानकर ऋषियोंके सामने बोले ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुवंशीय यह विख्यात नृपति त्रिशंकु परम धार्मिक और अतिशय दाता हमारे शरणागत हुये हैं ॥ २ ॥ अपने शरीरसहित स्वर्गको जानेकी इनकी अभिलाषा है इसकारण जिससे इनका मनोभिलाष सिद्ध होजाय यह इसी शरीरसे स्वर्गको चले जाँय ॥ ३ ॥ ऐसा यज्ञ आप हमारे साथ कराइये विश्वामित्रजीके ऐसे वचन श्रवण कर सब महर्षि ॥ ४ ॥ सब धर्मज्ञ

ऋषि तत्काल धर्मसंयुक्त वचन आपसमें बोले कि, यह कौशिक मुनि महाकोपी हैं ॥ ५ ॥ जो यह कहैं सो करनेमें विलम्ब न करो क्योंकि यह अग्निके समान हैं इनका कहा न करनेसे यह शाप अवश्य देंगे ॥ ६ ॥ इस कारण ऐसे यज्ञमें प्रवृत्तहो जिससे विश्वामित्रके तेजसे त्रिशंकु शरीर सहित स्वर्गको चलाजाय ॥ ७ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण ऋषियोंके मध्यमें यज्ञारम्भ हुआ ऋषिगण आपसमें सम्मति कर यज्ञकार्यमें नियुक्त हुये और यज्ञकी क्रिया करने लगे ॥ ८ ॥ उस यज्ञके याजक तो महातेजवान् विश्वामित्रजी हुये व और २ विज्ञानी ऋषि लोग जो अच्छी रीतिसे वेदमंत्र जानतेथे ऋत्विज हुये ॥ ९ ॥ यज्ञके समस्त कार्य यथाविधि यथाकल्प निर्वाहित होने लगे कुछ काल बीतजाने पर महर्षि महातपस्वी विश्वामित्रजीने ॥ १० ॥ यज्ञभाग ग्रहण करनेके लिये सब देवताओंको आह्वान किया किन्तु कोई देवता भाग ग्रहण करनेको नहीं आया ॥ ११ ॥ तब तो राजर्षि तेजस्वी विश्वामित्र क्रोधित हो स्रुवा उठाय क्रोधकर त्रिशंकुसे इसप्रकार बोले॥ १२॥ हे राजन्! मेरा तप बल देखो जो मैं ने तपस्यासे प्राप्त कियाहै मैं अपने तपके प्रभावसे तुम्हें शरीरसहित स्वर्गको पहुँचाऊंगा ॥ १३ ॥ हे नरेश्वर ! यद्यपि शरीरसहित स्वर्गमें जाना सहज नहीं है किन्तु मेरी तपस्याके संचित फलके प्रभावसे तुम स्वर्ग जा सकोगे जो कुछ मेरे तप का फल है ॥ १४ ॥ उसके प्रभावसे तुम स्वर्गको जाओ. जब राजर्षिने ऐसा कहा तो सब ऋषियोंके सामने शरीरसहित राजा त्रिशंकु मुनियोंके देखते २ ॥ १५ ॥ स्वर्गको चले गये हे राम ! उनको स्वर्गमें गया हुआ देख सुरराज॥ १६॥देवताओं सहित राजासे यह वचन बोले.हे नृपते ! तुम स्वर्गमें रहने योग्य नहींहो इसकारण फिर मृत्युलोकको चले जाओ ॥ १७ ॥ हे मूर्ख ! गुरु वसिष्ठजीने तुम्हें शाप दियाहै अतएव तुम नीचेको मुँह करके गिरो इन्द्रके ऐसा कहतेही त्रिशंकु नीचे मुँह होकर गिरे ॥ १८ ॥ वो गिरती समय तपस्वी विश्वामित्रजीको लक्ष कर "त्राहि त्राहि" शब्द करने लगे तब विश्वामित्रजी त्रिशंकुके ऐसे दुःखके वचन सुनकर ॥ १९ ॥ ऋषियोंके बीचमें वह तेजस्वी दूसरे प्रजापतिकी नाईं महाक्रोधकर "वहीं रहो वहीं रहो" यह वचन बोले ॥ २० ॥ उस समय कौशिकजीने क्रोधसे मूर्च्छित होकर दक्षिण दिशामें नये सप्तर्षि बनाये इसी भाँति और नये नक्षत्र बनाते हुए ॥ २१ ॥ इसप्रकार ऋषियोंके बीचमें बैठेहुए वह महायशस्वी विश्वामित्रजी क्रोधसे दक्षिणदिशामें और भी छोटे २ नक्षत्र बनाने लगे ॥ २२ ॥

उन्होंने यह सृष्टि करके कहा या तो मैं दूसरा इन्द्रही बनाऊंगा या नहीं स्वर्ग लोक इन्द्रशून्य करूंगा यह कहकर क्रोधसे देवताओंकीभी सृष्टि करने लगे ॥ २३ ॥ तिस समय सुरासुर और ऋषिगण व्याकुलभावसे विश्वामित्रजीके निकट उपस्थित होकर विनयपूर्वक कहने लगे ॥ २४ ॥ कि, हे महाभागो! इन राजा त्रिशङ्कुको गुरुका शाप लगाहै हे तपोधन ! इस कारण सशरीर स्वर्गमें इनका जाना नहीं हो सकता ॥ २५ ॥ मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीने उन देवतोंके ऐसे वचन सुन विश्वामित्रजीने सब देवताओंसे यह वचन कहे ॥ २६ ॥ हे महात्माओ ! आपका कल्याण हो मैं राजा त्रिशंकुको सशरीर स्वर्गमें भेजनेकी प्रतिज्ञा कर चुकाहूं उस करीहुई प्रतिज्ञाको मैं व्यर्थ करना नहीं चाहता ॥ २७ ॥ इस समय या तो शरीरसहित त्रिशंकु स्वर्गको जाय नहीं जबतक पृथिव्यादि बने रहें तबतक इनके संग रहने के लिये हमारे बनाये नक्षत्रादि सब वर्तमान रहैं. हे देवताओ ! तुम ऐसी अनुज्ञा दीजिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ विश्वामित्रजीके यह वचन सुनकर सब देवगण उनसे कहने लगे आपने जो कहा सो मिथ्या नहीं होगा आपका मंगल हो यह सब आपके बनाये इसीप्रकार स्थित रहेंगे ॥ ३० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह सब नक्षत्र गगनमंडलमें ज्योतिषचक्रकी गतिके बाहर जाज्वल्यमान रहैं ॥ ३१ ॥ अमरकी नाईं राजा त्रिशंकु अधोमुख यहीं स्थिति करैंगे और नक्षत्रगण इन श्रेष्ठ राजाके अनुगामी होंगे ॥ ३२ ॥ राजा त्रिशंकु कृतार्थ, कीर्तिमान् और स्वर्गलोकगामी हों यह कहकर विश्वामित्रके प्रति देवताओंने आनन्द भाव प्रकाश किया ॥ ३३ ॥ देवताओंके वचन श्रवण करके ऋषियोंके मध्यमें महातेजवान् विश्वामित्रजी इस बातमें सम्मत हुये; हे नरोंमें श्रेष्ठ ! तदनन्तर यज्ञ पूरा होनेपर महात्मा देवता व ऋषिगण सब अपने २ स्थानको चलेगये ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० बाल० भाषायां षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

हे नरशार्दूल! सब ऋषियोंके चलेजानेपर महातेजस्वी विश्वामित्रजीने सब वनवासियोंसे कहा ॥ १ ॥ इस दक्षिणदिशामें रहनेसे तप करनेमें बहुत विघ्न हुयेहैं अतएव और किसी दिशामें जाकर तप करना मेरे लिये श्रेष्ठ होगा इसकारण मैं दूसरी दिशामें जाकर तप करूंगा ॥ २ ॥ सुविस्तीर्ण सुखदायक पश्चिमदिशामें जहां बड़ा

वनहै वहां पुष्करके निकट हम सुखसे तप कर सकेंगे ॥ ३ ॥ यह कहकर महातेजस्वी विश्वामित्रजी पुष्करको चलेगये और वहां जा फल मूल भोजन कर कठोर तपस्या करने लगे ॥ ४ ॥ इसी समय अयोध्याके राजा महाराज अंबरीष एक यज्ञका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५ ॥ इन्द्रने उनके यज्ञका पशु हरण करलिया. तब यज्ञका पशु हरजानेसे ब्राह्मणोंने राजासे कहा ॥ ६ ॥ जो यज्ञपशु आयाथा सो आपके रक्षा न करनेहीसे हरगया जो रक्षाके कार्यमें अशक्तहैं वह राजा सब दोषोंमें लिप्तहैं वह जल्दी नाशको प्राप्त होजातेहैं ॥ ७ ॥ जिससे यज्ञ समाप्त होनेके पहले कोई पशु लाइये अथवा कोई मनुष्यही मोंधन देकर लाइये जिससे इस पापका प्रायश्चित्त होजाय ॥ ८ ॥ पुरोहितों के ऐसे वचन श्रवण कर वह नरश्रेष्ठ राजा हजार गायोंके बदलेमें यज्ञीय पशु खोजने लगे ॥ ९ ॥ क्रमसे वह राजा अनेक देश अनेक जनपद नगर वन और अनेक तपस्वियोंके पुण्यरूप आश्रमोंमें फिरे ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! अन्तमें भृगुतुङ्ग नामक गिरिश्रृङ्गमें ऋचीक मुनिको समासीन देखा कि, पुत्र कलत्र सहित विराजमान हैं ॥ ११ ॥ बडे प्रतापी राजर्षि अंबरीष तपके प्रभावसे प्रदीप्त ब्रह्मर्षिको प्रणाम और प्रसन्न करके बोले ॥ १२ ॥ हे मुने ! आप सब तरहसे कुशल तो हैं ? मैं मूल्यस्वरूप दक्षिणामें सौ हजार गायें देनेको मौजूदहूं आप इसके पलटेमें अपने पुत्रको दे सकतेहैं ? ॥ १३ ॥ हे बडे भागवाले ! यदि आप मेरा कहना मानलें तो बडीही कृपाहो मैं यज्ञीय पशुको सब जगह खोजचुका परन्तु कहीं नहीं पाया ॥ १४ ॥ आप मूल्य लेकर अपना एक पुत्र मुझे दे दीजिये यह सुनकर बडे तेजस्वी महर्षि ऋचीक बोले ॥ १५ ॥ हे राजन् ! मैं अपने बडे बेटेको कभी नहीं बेच सकता यह ऋचीकजीके वचन सुन उनकी स्त्री तथा महात्मा पुत्रोंकी माता ॥ १६ ॥ मनुष्योंमें सिंह समान राजा अंबरीषजीसे कहने लगी हमारे स्वामी भार्गव ज्येष्ठ पुत्रको नहीं बेचा चाहते ॥ १७ ॥ परन्तु सबसे छोटा शुनक मुझे बहुत प्याराहै इसकारण हे राजन् ! मैं उसको कभी नहीं बेचूंगी ॥ १८ ॥ हे महात्मन् ! ज्येष्ठ पुत्रही बहुधा पिताको प्यारा होताहै और छोटा माताको प्यारा होताहै अतएव मैं छोटेको न दूंगी ॥ १९ ॥ हे राम ! मुनि और उनकी स्त्रीके ऐसा कहनेपर बिचले बेटे शुनःशेप स्वयं बोल उठे ॥ २० ॥ महाराज ! पिता और माता ज्येष्ठ और कनिष्ठको बेचनेमें निषेध करतेहैं अतएव मैं बिकनेके योग्यहूं मुझको ले चलो ॥ २१ ॥ अनन्तर ब्रह्मवादी बालकके वचन

श्रवण करके राजा अम्बरीषने करोड रत्न देकर और बहुतसा सुवर्ण देकर ॥ २२॥ हे रघुनंदन! और एक लाख गाय देकर राजा शुनःशेपको मोलले प्रसन्न मन होकर चले गये ॥ २३ ॥ महातेजस्वी यशस्वी राजा अम्बरीष प्रफुल्लितहो शुनःशेपको रथ पर सवारकर शीघ्रतासे गमन करने लगे ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्रा० वाल्मी० आ० बाल० भाषायामेकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

हे रामचन्द्र ! यशस्वी महाराज अम्बरीष शुनःशेपको लेकर मध्याह्नकालमें पुष्कर जा पहुँचे और वहां ठहरे ॥ १ ॥ वह वहां विश्राम कर रहेथे कि, इतनेमें महायशस्वी ऋषिकुमार शुनश्शेपने पुष्करमें तप करते हुए विश्वामित्रजीको देखा ॥ २ ॥ अपने मामाको वहां ऋषियों समेत तप करते देख शुनःशेप प्यास व श्रमसे कातरहो दीन मुखसे ॥ ३ ॥ हे राम ! विश्वामित्रकी गोदीमें गिर पडे और यह बोले कि, यहां हमारे माता, पिता, जाति, बंधु, कोई नहीं है ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आप धर्मानुसार मेरी रक्षा कीजिये हे नरोंमें श्रेष्ठ ! आपही सर्व साधारणके त्राण कर्ता हैं ॥ ५ ॥ मेरी यह प्रार्थनाहै कि, राजाका तो कार्य होजाय और तपस्या करके मैं दीर्घायु होकर स्वर्गलाभ करसकूं आप ऐसा उपाय कीजिये ॥ ६ ॥ मैं अनाथहूं आप प्रहृष्टमनसे मेरी रक्षा कीजिये. पिता जैसे पुत्रको पालन करता है वैसेही आप मुझे इस विपदसे उद्धार कीजिये ॥ ७ ॥ महातपा विश्वामित्रजी शुनःशेपके ऐसे वचन सुनकर उसको बहुत प्रकारसे धीरज बँधाकर अपने पुत्रोंसे बोले ॥ ८ ॥ परलोकमें मंगलार्थ पिता पुत्रकी जिसके निमित्त इच्छा करताहै जिसकारण उत्पन्न करताहै अब तुम्हारेलिये वह समय उपस्थित हुआ है ॥ ९ ॥ यह ऋषिकुमार बालक मेरी शरण आया है सो तुम लोग इसके प्राणरक्षा करके मेरा प्रियकार्य साधन करो ॥ १० ॥ तुम सबही कृतकार्य व धार्मिकहो इस समय तुम राजा अम्बरीषके यज्ञपशु होकर अग्निको तृप्त करो ॥ ११ ॥ ऐसा करनेसे बालककी प्राणरक्षा अम्बरीषका यज्ञसाधन सुरगणोंकी तृप्ति व मेरा वचन सत्य होगा ॥ १२ ॥ हे राम ! पिताके वाक्य श्रवणकर मधुच्छंदादि विश्वामित्रजीके पुत्रगण अभिमानसे पूर्णहो हँसीकर बोले ॥ १३ ॥ हे विभो ! अपने पुत्रोंको परित्याग करके दूसरेकी प्राण रक्षा करनेका आपको क्या प्रयोजन है ? जैसे जीवोंके ऊपर

दया करके कुत्तेका मांस खानाहो वैसेही यह अकार्य है ॥ १४ ॥ उनके ऐसे गर्वीले वचन श्रवण करके महर्षि विश्वामित्रजी लाल २ आँखें कर क्रोधसे बोले ॥ १५ ॥ रे पामरगण ! जब तुमने मेरे वचनोंको न मानकर अधर्म कार्य कियाहै और यह रोमहर्षण वाक्य प्रयोग किये हैं ॥ १६ ॥ तो तुम्हेंभी वसिष्ठके पुत्रोंकी नाईं कुत्तेका मांसभोजी होना पडेगा जाओ तुमभी मुष्टिक जाति होकर हजार वर्षतक पृथ्वीमें निवास करो ॥ १७ ॥ मुनिवर अपने पुत्रोंको शाप देकर सब दुःखोंकी दूर करनेवाली रक्षाको करके विषण्णमन शुनःशेपसे बोले ॥ १८ ॥ तुम पवित्र पाशसे जिस समय बँधो लालमाला धारण करो जब चन्दन लगाया जाय तब वैष्णव खंभमें बँधकर वाणीद्वारा अग्निकी आराधना करते रहना ॥ १९ ॥ हे मुनि-पुत्र ! मैं तुमको दो दिव्य मंत्र सिखाये देताहूं वह तुम अम्बरीषके यज्ञमें अग्निके आगे पढना बस सब काम सिद्ध होजायगा ॥ २० ॥ ऋषिकुमार शुनःशेप ऋषिसे सावधानतासे दोनों मंत्र ग्रहण करके राजसिंह अम्बरीषके निकट शीघ्र उपस्थितहो बोले ॥ २१ ॥ हे राजन् ! हे पुरुषसिंह ! हे महाबुद्धिमान् ! अब विलम्ब करनेका प्रयोजन नहीं है आप मुझको ले यज्ञसाधनार्थ प्रस्तुत हूजिये ॥ २२ ॥ राजा उस ऋषिपुत्र शुनःशेपके वचन सुन सन्तुष्टहो आलस्यरहित शीघ्र यज्ञस्थलमें उपस्थित हुये ॥ २३ ॥ तब राजाने सभासद्गणकी अनुमति पाकर शुनःशेपको लाल वस्त्र धारण करा और कुशरस्सीसे बाँध खंभमें बाँधदिया ॥ २४ ॥ उस समय मुनि-बालक बँधा हुवा अनन्योपाय होकर दिव्यवाणीसे जिनका सुंदर अर्थ था वेद-मंत्रोंसे इन्द्र व उपेन्द्रकी स्तुति करने लगा ॥ २५ ॥ इन्द्र व उपेन्द्र बालककी रहस्यस्तुतिसे प्रसन्नहो उसको दीर्घजीवी होनेका आशीर्वाद देते हुये ॥ २६ ॥ इस भाँति नरवर नरनाथका यज्ञ सम्पूर्ण हुआ हे राम ! उन्होंने शचीनाथके प्रसादसे यज्ञका बहुत फल पाया ॥ २७ ॥ हे राम ! महात्मा विश्वामित्रजीने फिर पुष्कर क्षेत्रमें १००० वर्ष तक महातप किया[१] ॥ २८ ॥

श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

१ इस कथाका यह भाव न समझना कि, पुरुषकी बलिका विधान है, किन्तु वेदमें ऐसा लिखाहोनेसे यह वाक्य पूर्ण होनाथा सो पशु न मिलनेसे शुनःशेपको लायागया और फिर स्तुतिसे ऋषिपुत्रका छुट-कारा हुआ यहां पिता माताकी पुत्रोंपर प्रीति दिखाई और विश्वामित्रकी उदारताभी दिखाई गई है।

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३.

हजारवर्ष पूर्ण होनेपर महात्मा विश्वामित्रजीने व्रत स्नान किया उस समय ब्रह्माजी तपस्याका फल देनेको सुरगण सहित ॥ १ ॥ उनके निकट उपस्थित हो महातेजस्वी ब्रह्माजी सुन्दर वचन कहने लगे हे मुने! तुम उत्पन्नकिये शुभकर्मके प्रभावसे ऋषि हुए ॥ २ ॥ यह कह देवताओंके ईश्वर ब्रह्माजी तो अन्तर्धान हो स्वर्गको गये और महातेजस्वी विश्वामित्रजी फिर घोर तप करने लगे ॥ ३ ॥ हे राम! कुछ काल बीतनेपर मेनका अप्सरा पुष्करक्षेत्रमें नहानेको आई ॥ ४ ॥ कुशिकके पुत्र महातेजस्वी विश्वामित्रजीने मेघ सहित सौ बिजलीकी नाईं उस परमसुन्दरी अप्सराको देखा ॥ ५ ॥ देखतेही कामके वशहो मुनिने मेनकासे कहा हे अप्सरे! तुम्हारा मंगलहो तुम हमारे आश्रममें रहो ॥ ६ ॥ तुम काममोहित मेरे ऊपर अनुग्रह करो ऋषिके ऐसे वचन सुन सुन्दर मुखवाली मेनका वहां रहने लगी॥ ७ ॥ इसके मिलनेसे विश्वामित्रजीके तपमें महाविघ्न उपस्थित हुआ अर्थात् अप्सराके साथ रहते २ दश वर्ष बीतगये तब विश्वामित्रजीके तपमें विघ्न हुआ ॥ ८ ॥ वह अप्सराभी विश्वामित्रजीके आश्रममें सुखसे रहने लगी कुछकाल बीतनेपर विश्वामित्रजी ॥ ९ ॥ हे रघुनंदन! अत्यन्त लाजको प्राप्तहो चिन्ता करने लगे और कुछेक क्रोधित हुए इनकी बुद्धिमें यह बात समाई कि ॥ १० ॥ देवताओंकेहीद्वारा मेरी सब तपस्यामें विघ्न हुआहै देखो दशवर्ष एकरातके समान बीतगये और मैं ने न जाना ॥ ११ ॥ कामके वशहो मोहित होनेसेही यह विघ्न उपस्थित हुआहै यह कह दीर्घ निःश्वास परित्यागपूर्वक पछताने लगे और फिर दुःखित हुए ॥ १२ ॥ तब मेनका मुनिजीकी यह अवस्था देख काँपतीहुई हाथ जोड उनके सामने खडीहुई विश्वामित्रजीने उसे मधुर वचनोंसे सन्तोष दिया और फिर मेनकाको बिदा करदिया ॥ १३ ॥ हे राम! फिर विश्वामित्रजी उत्तर पर्वतकी ओर चले और महायशस्वी वहां पहुँचकर काम दमन करनेके लिये ॥ १४ ॥ कौशिकी के तीर कठिन तपस्या करनेलगे. इस भाँति तप करते २ हजार वर्ष बीतगये ॥ १५ ॥ हे राम! उत्तर पर्वतमें विश्वामित्रजीके तप करनेसे देवगण भयभीतहुए और ऋषियोंके साथ सम्मतिकर ब्रह्माजीके पास जाकर बोले कि ॥ १६ ॥ विश्वामित्रजी महर्षि होनाचाहतेहैं अतएव उनकी प्रार्थना पूर्ण कीजिये सर्वलोकके पितामहजी देवताओंका यह वचन श्रवण कर ॥ १७ ॥ विश्वामित्रजीके निकट उपस्थित हो मधुर वचन बोले हे महर्षे! तुम्हारा मंगलहो मैं

तुम्हारे उग्र तपसे प्रसन्न हुआहूं ॥ १८ ॥ हे कौशिक ! मैंने तुमको महत्त्व महर्षि-त्व प्रदान किया तब ब्रह्माजीके यह वचन सुन तपोधन विश्वामित्रजी ॥ १९ ॥ हाथ जोडकर नम्रतासे ब्रह्माजीसे बोले कि, हमको तो अपने शुभकर्मोंसे ब्रह्मर्षि शब्दही अभीष्टहै ॥ २० ॥ सो आपने ब्रह्मर्षि नहीं कहा इसकारण मैंने जाना कि, मैं अभी-तक जितेन्द्रिय नहीं हुआहूं तब ब्रह्माजीने कहा कि, हां अभीतक तुम जितेन्द्रिय नहीं हुएहो ॥ २१ ॥ परन्तु हे मुनिशार्दूल ! चेष्टा करनेसे जितेन्द्रिय होसक्तेहो यह कह ब्रह्माजी अन्तर्धान होगये सब देवता भी जहांके तहां चलेगये उनके चले जाने-पर तब महामुनि विश्वामित्रजी ॥ २२ ॥ ऊपरको बांहें कर अवलम्बनशून्य और पंचतपा हो वायुभोजन कर तप करने लगे वह वर्षाऋतुमें खुले मैदानमें ॥ २३ ॥ वह तपोधन शीतकालमें दिन रात पानीमें खडे रहते इसप्रकारसे घोर तप करते २ हजार वर्ष बीतगये ॥ २४ ॥ महर्षिको महातप करते देखकर देवताओंको और विशेषकर इन्द्रको महासन्ताप हुआ ॥ २५ ॥ तब इन्द्रने अपने कार्य साधन कर-नेको सब देवताओंके और मरुतोंके साथ रंभाके पास जाकर कहा कि, तुम हमारे मंगलके निमित्त विश्वामित्रका अहित करो ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४.

हे रंभे ! देवताओंका यह बड़ा भारी कार्य है सो तुम विश्वामित्रजीको काम-कर तपसे विरत करो ॥ १ ॥ हे राम ! जब इन्द्रने अप्सरासे यह वचन कहे तब वह अप्सरा लज्जितहो हाथ जोडकर इन्द्रसे बोली ॥ २ ॥ हे सुरनाथ ! महा-मुनि विश्वामित्र बड़े क्रोधीहैं हे देव ! वह क्रोधितहो निश्चय मुझे शापदेंगे ॥ ३ ॥ हे देव ! आपका मंगलहो मुझे इस कार्यके करनेमें डर लगताहै हेराम ! जब वह यह वचन कहकर डरके मारे घबडागई ॥ ४ ॥ तब उस हाथ जोडे कांपती हुईसे सहस्रलोचन बोले डरो मत तेरा मंगलहो मेरी बात सुनकर मेरा कहना मान ॥ ५ ॥ मैंभी सुन्दर वृक्ष शोभित वसन्तकालमें कोकिल स्वरूपहो कामदेवके सहित तेरे निकटमें रहूंगा ॥ ६ ॥ तुम अपने मनोहर रूपके अनेक प्रका-रके भाव भंगीसे तपस्वी ऋषि विश्वामित्रके अंतःकरणमें विकार उत्पन्न करो ॥ ७ ॥ इन्द्रके ऐसे वचन सुन वह सुन्दर हँसीवाली सुन्दरी दिव्यरूप धारण करके अनेक

हाव भावसे मुनिवरके मनमें काम उत्पन्न करनेकी चेष्टा करने लगी ॥ ८ ॥ तब मुनींद्र कलकंठ मधुर कोकिलाका शब्द सुनने लगे सुनतेही प्रमुदित मनसे वररूपसी रम्भाको देखा ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त उसके मनोहर संगीत व मनोहर गुंजार श्रवण करके मुनिके मनमें सन्देह उपस्थित हुआ ॥ १० ॥ तब विश्वामित्रजीने सुरराजको इस विघ्नकी जड समझ क्रोधयुक्त हो रम्भाको यह शाप दिया ॥ ११ ॥ रे दुर्वृत्ते ! तू कामक्रोधदमनाभिलाषी ऋषिको मोहनेके लिये आई थी इस कारण तू दश हजार वर्षतक शिला होकर रहैगी ॥ १२ ॥ फिर कोई महा तेजवान् तपस्याके बलसे युक्त ब्राह्मण मेरे कोपसे शिलारूप तेरा उद्धार करेगा ॥ १३ ॥ यह कहकर महा-तेजस्वी महामुनि महर्षि विश्वामित्रजी अप्सराको यह शाप देकर हमसे क्रोध न रुकसका यह विचार कर फिर दुःखी हुए ॥ १४ ॥ विश्वामित्रजीके दारुण शापसे रम्भा शैलमयी होगई यह देखकर इन्द्र व उपेन्द्रात्मज अनंग इस स्थानसे प्रस्थान करगये ॥ १५ ॥ हे राम ! महातपा कौशिकजी काम क्रोधको तपका विघ्न जान और इन्द्रियोंको अपने वशमें न मानकर मनही मनमें अशान्ति भोग करने लगे ॥ १६ ॥ फिर तप सिद्ध करनेके लिये चिन्ता करते २ सोचा कि, अब किसीको शाप न देंगे न क्रोधभी करेंगे ॥ १७ ॥ न सहस्रों वर्षोंतक श्वासही लेंगे बरन जितेन्द्रिय हो अपने देहको सुखाडालेंगे ॥ १८ ॥ जबतक तपस्याके प्रभावसे हम ब्रह्मत्व न पावेंगे, तबतक श्वासको रोक बहुत कालतक निराहार कठोर तप करते रहेंगे ॥ १९ ॥ इस प्रकार हजार वर्षतक तपस्या करनेपरभी हमारे अंग क्षीण नहीं होंगे विश्वामित्रजी यह कहकर हजार वर्षतक तप करनेकी महादीक्षामें प्रवृत्तहो प्रतिज्ञानुयायी कार्य करने लगे ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीम० वाल्मी० आ० बाल० भाषायां चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५

हे राम ! अनन्तर महामुनि कौशिक उत्तर दिशा परित्याग करके पूर्व दिशामें गमन-पूर्वक अतिकठोर तपस्यामें मनको लगाते हुये ॥ १ ॥ हे राम ! वह हजार वर्ष पर्यन्त मौनव्रतावलम्बीहो असाध्य साधन करनेमें प्रवृत्त हुए व परमदुष्कर तप किया ॥ २ ॥ हजार वर्ष बीतनेपर काष्ठकी समान अवस्थान करने लगे. यद्यपि बहुतेरे विघ्न हुए पर मुनिराजके मनमें क्रोध न आया ॥ ३ ॥ हेराम ! उन्होंने निश्चय जानलिया कि,

अब हमारा क्रोध कुछ न करसकेगा हमारा यह सहस्रवर्षतकका नियम पूर्ण होगया ॥ ४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ राम ! व्रतके पूर्ण होनेपर विश्वामित्रजीने जैसेही भोजनार्थ अन्न बनाया कि, इतनेमें सुरनाथ विप्ररूप बनाकर आये व सब अन्न महर्षिसे मांगा॥५॥ महातपस्वी विश्वामित्रजीने प्रसन्न होकर ब्राह्मणको सब अन्न देदिया और आप भूँखे रहगये ॥ ६ ॥ ब्राह्मणसे कुछ प्रगट नहीं किया और पहिलेकी नांई मौनव्रतावलम्बी हुये. उसप्रकार मौनको धारणकर श्वास लेनाभी छोड दिया ॥ ७ ॥ ऐसे और हजार वर्ष बीत गये और विश्वामित्रने श्वास न लिया तब उनके ब्रह्मरन्ध्रपर अग्नि प्रदीप्त होउठी ॥ ८ ॥ उस अग्निके तेजसे विश्वसंसार सन्तापित और आकुलित होगया तब देवर्षि, गन्धर्व, पन्नग व राक्षस ॥ ९ ॥ इस तेजसे प्रभाहीन हो और मोहित दुःखित हो लोकपितामह ब्रह्माजीके निकट उपस्थित हो बोले ॥ १० ॥ हे देव ! हमलोगोंने अनेक प्रकारसे कुशिकनन्दनको क्रोध और लोभ दिलानेकी चेष्टा की परन्तु किसी भाँति कृतकार्य न होसके अब उनका तप बढ रहाहै ॥ ११ ॥ हमलोगोंने उनका किसीप्रकार का पापाचरण नहीं देखा अब यदि आप उनको वाञ्छित वर नहीं देंगे तो हमारा कहीं ठिकाना नहीं ॥ १२ ॥ उग्रतपा विश्वामित्रजी चराचर त्रैलोक्यका संहार करनेको उद्यत हुयेहैं दिङ्मण्डल उनके प्रभावसे आकुलित हो कुछभी प्रकाश नहीं करता ॥ १३ ॥ सब समुद्र थरथरा रहे हैं पर्वत फटे जातेहैं वसुधा कंपित और पवन शंकित होरही है ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! अब क्या उपाय करें कुछ समझ नहीं पडता अब जैसा देखतेहैं इससे तो सब लोकके नास्तिक होनेकी संभावना है त्रैलोक्य शंकित और निश्चेष्टसा होगया है ॥ १५ ॥ उन महर्षिके तेजसे अंशुमाली सूर्य प्रभाहीन होगये हैं अधिक क्या कहैं जो महामुनिजी करते हैं वह हमारी बुद्धिसे परे है महर्षि कालाग्निके समान जबतक सृष्टिका संहार न करैं ॥ १६ ॥ तबतक हे भगवन् ! आपको उन अग्निरूप ऋषिको प्रसन्न करना कर्तव्य है जिसप्रकारसे पहले कालाग्निसे लोक दग्ध हुये थे वही दशा होनेकी है ॥ १७ ॥ आपसे अधिक क्या कहैं कि, यदि महर्षि इन्द्रका राज्य माँगें तो उनको वहभी देदीजिये यह कह देवगण ब्रह्माजीको साथ ले ॥ १८ ॥ महात्मा विश्वामित्रजीके पास जाकर बोले ब्रह्मर्षे तुम्हारा मंगल हो मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हुआ हूं ॥ १९ ॥ हे कौशिक ! तुमने अपनी तपस्याके प्रभावसे ब्रह्मत्व पाया है हे ब्रह्मन् ! मैंने तुम्हैं दीर्घजीवन देवताओंके सहित प्रदान किया ॥ २० ॥ हे

सौम्य ! तुम्हारा मंगल हो तुम सुखपूर्वक जहां चाहो वहां चले जाओ तब महर्षि देवगणोंके सहित प्रजापतिका वाक्य श्रवण करके ॥ २१ ॥ उनसे प्रणाम करके बहुत प्रसन्न हो विश्वामित्रजी कहने लगे कि, जो हमको ब्राह्मणता मिली व बडी आयुष भी दीगई ॥ २२ ॥ तो ॐकार वषट्कार व सब वेद भी हमें अंगीकार करें और क्षत्रियोंकी विद्या जाननेवाले व ब्राह्मणोंकी विद्या जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ॥ २३ ॥ वसिष्ठजी और सब देवताभी हमको ब्रह्मर्षि कहदेवें ऐसी कृपा कीजिये, आप सब लोग जानलें कि, ऐसा न होनेसे मैं फिर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हूंगा यह करके आप सब चले जाइये ॥ २४ ॥ अनन्तर देवताओंके अनुरोधसे वसिष्ठजीने प्रसन्नहो विश्वामित्रजीसे सुहृदता स्थापन कर उनका ब्रह्मत्व स्वीकार किया ॥ २५ ॥ और विश्वामित्रजीसे कहा कि, अब तुम निःसन्देह ब्रह्मर्षि हुये सब कुछ तुम्हें प्राप्त है यह कहकर देवता अपने यथास्थानको चलेगये ॥ २६ ॥ तब धर्मात्मा महर्षि विश्वामित्रजीने ब्राह्मणत्व लाभकर यथाविधि जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीकी पूजा की ॥ २७ ॥ यह इसप्रकार पूर्णकाम हो तपस्यामें मनलगाये समस्त पृथ्वी पर्यटन करने लगे. हे रामचन्द्र ! इन महात्मा महर्षिने इसप्रकार ब्राह्मणत्व प्राप्त किया है ॥ २८ ॥ हे राम ! यह मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं और तपकी तो मानों मूर्ति हैं, तपरूप हैं. धर्ममें तत्पर हैं वीर्य पराक्रमादिभी इनके समान इन्हींमें हैं ॥ २९ ॥ महातेजस्वी श्रेष्ठ ब्राह्मण शतानंदजी यह कहकर चुप होगये तब शतानंदके वचन सुनकर राम लक्ष्मणजीके सामने ॥ ३० ॥ शतानंदजीसे विशेष परिचय पाकर मिथिलाधिपति हाथ जोडकर विश्वामित्रजीसे यह बोले कि, हे मुनिश्रेष्ठ ! आज मैं आपकी कृपासे धन्य व अनुग्रहीत हुआ ॥ ३१ ॥ आपने जब राम लक्ष्मण सहित मेरे यज्ञमें आगमन किया है तब तो हे मुनिराज ! मैं आपके दर्शन मात्रसेही पवित्र होगया ॥ ३२ ॥ क्या कहूं मैं आपके दर्शन करके अनेक गुणोंका आधार होगया. हे ब्रह्मन् ! आपकी उग्र तपस्याका विषय विस्तारसे श्रवण करके मैं यहांतक अचंभेमें आयाहूं ॥ ३३ ॥ कि, कुछ कह नहीं सकता राम लक्ष्मण व अन्यान्य सभास्थ व्यक्तिगण आपके गुणोंसे मुग्ध होगये हैं ॥ ३४ ॥ अधिक क्या कहूं कि, आपमें अपार तप अपार बल और अपार गुणहैं, हे विश्वामित्रजी ! जैसी आपमें तपस्या और बल है वैसेही सब गुणभी आपमें विद्यमान हैं ॥ ३५ ॥ हे विभो ! आपके आश्चर्यगुणोंकी कथा श्रवण करके मनका औत्सुक्य निवारित नहीं

होता इस समय रविमंडल लम्बित हुआहै अब दैव क्रियाका समय समुपस्थित होगया ॥ ३६ ॥ कल प्रभात फिर आप मुझसे मिलेंगे आप सुखसे रहैं हे जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ ! इस समय मुझे कर्त्तव्य कर्म करनेकी अनुमति दीजिये ॥ ३७ ॥ राजाके ऐसे वचन सुन मुनीन्द्र विश्वामित्रजीने राजाकी प्रशंसा की और प्रसन्नतासे उनको घर जानेकी विदा दी ॥ ३८ ॥ विश्वामित्रजीसे यह वचन कहकर मिथिला-नाथने उपाध्याय और स्वजनसंगोंके साथ मुनिजीकी प्रदक्षिणा की ॥ ३९ ॥ धर्मात्मा विश्वामित्रजीभी ऋषियोंसे पूजितहो राम लक्ष्मण सहित अपने रहनेके स्थानमें स्थिति करने लगे ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

अनन्तर विमल प्रभात काल होते ही राजा जनकने प्रातःक्रिया समाप्त कर राम लक्ष्मण सहित महात्मा विश्वामित्रजीको बुला भेजा ॥ १ ॥ धर्मात्मा राजाने यथा-विधि शास्त्रके अनुसार राम लक्ष्मणकी पूजा कर ब्रह्मर्षि विश्वामित्रजीसे कहा ॥ २ ॥ हे भगवन् ! पापरहित आपका मंगल हो कहिये हमें कौनसा कार्य करना होगा मैं आपका आज्ञाकारी हूं ॥ ३ ॥ जब धर्मात्मा जनकजीने ऐसे वचन कहे तब वाक्यके जाननेवाले विश्वामित्रजी वाणीसे बोले ॥ ४ ॥ यह दोनों कुमार क्षत्रियश्रेष्ठ राजा दशरथजीके पुत्रहैं जिनको जगत् जानता है यह उस धनुषको देखा चाहते हैं जो आपके यहां रक्खा है ॥ ५ ॥ सो आपका मंगल हो वह धनुष इनको दिखादीजिये केवल उसके दर्शनसेही इनका आशय निकल आवेगा यह कृतकार्य होकर चले जाँयगे ॥ ६ ॥ तब राजा जनकजी विश्वामित्रजीसे बोले जिसकारणसे यह धनुष मेरे पास है सो आप श्रवण कीजिये ॥ ७ ॥ हमारे पूर्व पुरुषोंमें महाराज देवरात निमिके ज्येष्ठपुत्र हुये तिनकोही भगवान् आदिदेव रुद्रदेवजीने यह धनुष धरोहर-की भाँति दियाथा ॥ ८ ॥ पूर्वकालमें रुद्रदेवने दक्षका यज्ञ विध्वंस करनेके लिये लीलाक्रमसे यही शरासन आकर्षण करके देवताओंसे कहाथा ॥ ९ ॥ जब तुमने यज्ञभागार्थी मुझे यज्ञका प्राप्य भाग नहीं दिया तब इसही शरासनसे तुम्हारे सुन्दर अलंकार युक्त शिर काटूंगा ॥ १० ॥ हे मुनिराज ! तब देवतालोक देवादिदे-

वके वचन सुन मलीन होगये और किसीप्रकार महादेवजीको प्रसन्न किया तब नील-कंठजीने क्रोधको रोका ॥ ११ ॥ पशुपतिजीने प्रसन्न होकर यह धनुष महात्मा देवताओंको देदिया यह वही धनुषरत्न उन देवादिदेव महात्मा शिवजीका है ॥ १२ ॥ देवताओंने दया करके धरोहरकी भाँति यह धनुष हमारे पूर्वपुरुषोंको दिया तबसे वह यहीं रहताहै हम यज्ञ करनेके लिये भूमि हलसे जुतातेथे ॥ १३ ॥ कि, हमारे हलके अग्रभागसे एक कन्या भूमिसे निकली जिससे कि, हलकी पद्धतिका सीता नाम है इसीसे कन्याका नामभी सीता धराया अब वह पृथ्वीसे निकली हुई कन्या दिन २ मेरे यहां बढने लगी ॥ १४ ॥ अयोनिसम्भवा वह कन्या मेरे यहां पलने और बडी होनेपर मैंने उस कन्याको वीर्यशुल्का कहकर यज्ञ कियाहै अर्थात् पराक्रमसे इस कन्याकी प्राप्ति होगी ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस कन्याके साथ विवाह कर-नेको बहुतसे राजा आये मैंने उन सब राजाओंको जो कन्याको मांगतेथे कहा ॥ १६ ॥ कि, यह कन्या वीर्यशुल्का है वैसे किसीको नहीं दीजायगी (जानकी-जीने एकवार यह धनुष उठालियाथा इस कारण मैंने प्रण किया कि, जो हरका धनुष तोडेगा उसकोही मैं यह कन्या देदूंगा) इस संवादको सुनकर देश २ के श्रेष्ठ२ राजाओंने आय ॥ १७ ॥ अपना २ पराक्रम दिखाना चाहा कि, इस कन्याके संग विवाह करैं परन्तु वह प्रण किसीसे पूरा न होसका जब उनको हरका धनुष दिखाया तो ॥ १८ ॥ हे महामुने ! टूटना तो दूर रहा कोई उसको ग्रहण कर उठाभी नहीं सका इसलिये हमने उन राजाओंमें थोडा वीर्य जान उनको लौटादिया ॥ १९ ॥ हे तपोधन ! हे मुनिश्रेष्ठ ! जब वे राजा मुझसे तिरस्कृत हुये तब राजा लोगोंने हमारे ऊपर बड़ा कोप किया ॥ २० ॥ उन श्रेष्ठ राजोंने अपने आपको तिरस्कृत हुआ जानकर सबने आकर मिथिलापुरीको घेरलिया और कहा कि, बलात्कारसे कन्याको लेजायँगे ॥ २१ ॥ और बडा क्रोध करके मेरी मिथिलापुरीको पीडित करने लगे और एक वर्षके पूर्ण होनेपर मेरा सर्वस्व क्षय होने लगा ॥ २२ ॥ जब दुर्गरक्षणकी सामग्री न रही तब मैं बहुत दुःखी हुआ तब सब देवताओंकी बलकी वृद्धिके लिये तपस्या की और उनको प्रसन्न किया ॥ २३ ॥ उनसे मुझे चतुरङ्गिणी सेना प्राप्त हुई व उस सेनासेही परास्त होकर सब राजा इधर उधर दिशा-ओंमें भागगये ॥ २४ ॥ इसप्रकार वह सब अवीर्य संदिग्धवीर्य पामर लोग मंत्री आदिकों सहित भागगये, हे मुनिशार्दूल ! तिससे यह परमदेदीप्यमान धनुष ॥ २५ ॥

हे मुने ! राम लक्ष्मणजीको दिखाये देतेहैं सो यदि यह इस शरासनमें ज्यारोपण करसकेंगे ॥ २६ ॥ तो अपनी अयोनिजा कन्या जानकीका विवाह दशरथके पुत्रके साथ करदूंगा ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदिकाव्ये बाल० भाषायां षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७.

महामुनि विश्वामित्रजी जनकजीके वचन श्रवणकर जनकजीसे बोले कि, रामचन्द्रजीको शिवका धनुष दिखाओ ॥ १ ॥ तब राजर्षि जनकजीने गंधमाला विशोभित उस धनुषके लानेकी मंत्रियोंको आज्ञादी ॥ २ ॥ जनकजीकी आज्ञा पातेही वह मंत्री लोग पुरीमें प्रवेश करके उस धनुषको लेकरके वे बड़े पराक्रमी चले ॥ ३ ॥ यह धनुष आठ पहियोंके छकड़ेपर पेटीमें रक्खा था उसको पांच हजार बलवान् वीर बड़ी कठिनाईसे खेंचे लातेथे ॥ ४ ॥ लोहमयी पेटी सहित उस धनुषको लाकर देवताओंकी समान जनकजीसे मंत्रियोंने कहा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इस धनुष श्रेष्ठकी पूजा सब राजा लोगोंने की थी हे मिथिलाके राजा ! यदि दिखानेके योग्य समझिये तो रामचन्द्रजीको दिखाइये ॥ ६ ॥ उन मंत्रियोंके यह वचन सुनकर जनकजीने राम लक्ष्मणजीको धनुष दिखानेके अर्थ हाथ जोडकर विश्वामित्रजीसे कहा ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह धनुष हमारे पूर्वपुरुषोंका संपूजितहै अबतक अनेक देशोंके राजा इस धनुषके देखनेको आये. परन्तु तोडना तो दूररहा कोई उठाभी न सके और इसकी पूजा करके चलेगये ॥ ८ ॥ अधिक तो क्या इसको सुर, असुर, राक्षस व गन्धर्व किन्नर महासर्प प्रभृति कोईभी ॥ ९ ॥ उत्तोलन, आकर्षण, ज्यारोपण, संचालन और इसपर तीर न चढासका, फिर मनुष्योंकी तो बातही क्याहै ॥ १० ॥ हे मुनींद्र ! वही धनुष लायागयाहै सो आप महाभाग इन राजपुत्रोंको दिखादीजिये ॥ ११ ॥ जनकजीसे ऐसा सुन विश्वामित्रजीने रामचन्द्रजीसे कहा कि, वत्स राम ! तुम इस धनुष को देखो ॥ १२ ॥ विश्वामित्रजीकी आज्ञानुसार रामचन्द्रजी धनुषके निकट गये और पेटी जिसमें वह रक्खाथा उसे उघाडकर धनुषको देखने लगे और कहा कि ॥ १३ ॥ मैंने हाथसे इस दिव्य और श्रेष्ठ धनुषको स्पर्श किया अब आप बतलाइये कि, इसको उठाना व आकर्षण करनाहोगा यदि आप कहैं तो मैं इसमें यत्न करूं ॥ १४ ॥ उस समय राजा जनक और

मुनींद्रने धनुष उठानेकी अनुमति दी बस रामचन्द्रजीने मुनिके वचनसे लीलापूर्वक बीचसे पकड उसे उठाही तो लिया ॥ १५ ॥ हजारों लाखों मनुष्योंने देखा देखते२ धर्मात्मा रामचन्द्रजीने लीलासेही धनुषको आकर्षण किया ॥ १६ ॥ और उसपर प्रत्यंचा चढा पूर्ण करते हुये, तथा महायशस्वी नरश्रेष्ठने खैंचकर बीचमेंसे तोडडाला ❀ ॥ १७ ॥ उस समय वज्रनादकी नाईं घोर शब्दहुआ, गिरि विदीर्ण होनेसे भूभाग जैसे कम्पित होतेहैं वैसेही सब पृथ्वी काँपने लगी ॥ १८ ॥ उस भीषण शब्दसे सब लोक मूर्च्छितहो गिरगये केवल राम लक्ष्मण जनक और विश्वामित्रजी स्थिर रहे ॥ १९ ॥ अनन्तर सब स्वस्थ हुये इतने दिनों जानकीके विवाहार्थ राजा जनकजीके मनमें जो दुःख था वह जातारहा वह हाथ जोडकर विश्वामित्रजीसे बोले ॥२०॥ हे भगवन्! दशरथपुत्र रामचन्द्र इतने शक्तिसम्पन्न हैं यह मैंने नहीं समझा था वास्तविक इनका पराक्रम तर्कनारहित और अचिन्तनीय व्यापारहै ॥ २१ ॥ अब यह प्रार्थना है कि, सीताके साथ रघुनाथका विवाह होजावे और रामको भर्ता पाकर मेरी कन्यासे मेरे कुलमें एक महत्कीर्ति प्रतिष्ठित हो॥२२॥हे कौशिक! मैंने सीताके विवाहार्थ जो प्रण कियाथा वह पूरा होगया अतएव अब मैं प्राणाधिका जानकीको रामके करमें समर्प्पण करूंगा ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन्! आपकी आज्ञा होतेही दूत मंत्रीगणोंको शीघ्रतापूर्वक रथपर चढा अयोध्यापुरीको भेजूंगा आपका मंगलहो आज्ञा देदीजिये ॥ २४ ॥ वह अनुनय विनयसे धनुष तोड़नेका वृत्तान्त व श्रीरामचंद्रजीका सीताप्राप्तिविषयक संवाद राजा दशरथजीसे कहैं और महाराज दशरथको मेरे नगरमें लावैं ॥२५॥ विश्वामित्रजीके प्रभावसे राम लक्ष्मणजी रक्षित होकर सुखसे अवस्थिति करते हैं यह समाचार दे प्रीतिपूर्वक अयोध्यानाथको यहां ले आवें और जल्दी जांय॥ २६॥कौशिकजीने जनक की प्रार्थनासे सम्मतहो उनके कहनेसे (पत्र लिख राजाको दिया तब राजा जनकजीने अपने दूतोंको बुला पत्र दे) शीघ्रतापूर्वक दशरथजीके आनयनार्थ दूतों को भेजदिया ॥ २७ ॥ कि, यह सब समाचार सुनाकर राजा दशरथको बुलालाओ ॥ २८ ॥

इति श्रीम० वा० आ० बाल०भाषायां सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥

❀ कवित्त ॥ सोर उद्घटत महि खूब लटपटत सब सिंधु संघटत जल वेल थल छूटिगो ॥ शेष फन फटत तलवासहारटत वाराह बल घटत जुग डाढ सो टूटिगो । दंत चट चटत महि शैलयुत छटत दिग्दन्तिगन हटत भल कुंभथल कूटिगो । दैत्य लटि लुटत अभिमान ते छुटत कोदण्डके टुटत ब्रह्माण्ड सो फूटिगो ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८.

जनककी आज्ञासे दूत चले जाते जाते, उनके वाहन सब थकगये अवशेषमें तीन रात्रि मार्गमें विताकर वह अयोध्यापुरीमें पहुँचे ॥ १ ॥ उन्होंने राजपुरीमें प्रवेश-पूर्वक देखा कि, वृद्ध नृपति दशरथ देवताकी समान शोभा पारहेहैं ॥ २ ॥ दूतगण देखतेही हाथ जोड निर्भय हो विनय व नम्रतासे मधुर वाक्य कहने लगे ॥ ३ ॥ अग्निहोत्र सहित मिथिलादेशके राजा जनकने वारंवार स्नेह और कोमल वाणीसे ॥४॥ आपकी कुशल अनामय पुरोहित उपाध्यायं सहित पूछीहै हे महाराज ! राजा जनकजीने आपसे कुशल पूछकर ॥ ५ ॥ विदेह जिनका नामहै वे मिथिलापुरीके राजाने विश्वामित्रजीने सम्मतिकर आपसे यह वचन कहेहैं ॥ ६ ॥ उन्होंने कहाहै कि, मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि, जो धनुष तोडेगा वही सीताको विवाहेगा इसकारण अनेक देशोंके नृपतिवर्ग आकर यहां अकृतकार्य हुए ॥७॥ हे राजन् ! तिस हमारी कन्याको विश्वामित्रजीके साथ आय आपके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीने जीता ॥ ८ ॥ हे महाबाहो ! और जो धनुषरत्न दिव्य हमारे यहां रक्खाथा उसको भी सबके देखते२ सभामें श्रीरामभद्रजीने मध्यसे तोड़ डाला ॥ ९ ॥ अब मैं इस समय महात्मा रामचन्द्रजीको सीता सम्प्रदान करके प्रतिज्ञासे उद्धार होनेकी इच्छा करताहूं अब प्रार्थना है कि, आप इस विषयमें अनुमति दें ॥१०॥ हे महाराज ! आपका मंगलहो अब आप पुरोहित व उपाध्यायोंको साथ लेकर राम लक्ष्मणके देखनेको चलिये ॥ ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! मुझे कन्याके ऋणसे उद्धार कीजिये मेरी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये विशेषतः आप मिथिलामें उपस्थितहो पुत्रोंको देखकर सुखी होंगे ॥ १२॥ विश्वामित्रजीकी आज्ञा व पुरोहित शतानंदके उपदेशसे राजर्षि जनकजीने आपसे यह मधुर वचनसे संदेशा कहला भेजाहै ॥ १३ ॥ दूतोंसे यह संवाद श्रवण कर राजा दशरथजी परम प्रसन्न हुये उन्होंने वसिष्ठ वामदेव और मंत्रियोंसे कहा कि, ॥ १४ ॥ प्राणाधिक कौसल्यानंदन राम लक्ष्मण भाईसहित विश्वामित्रजीके पास अतियत्नसे इस समय रक्षित होकर मिथिलापुरीमें वास करते हैं ॥ १५ ॥ महात्मा जनकजी रामचंद्रजीके बल वीर्यका परिचय पाकर उन्हें अपनी कन्या देनेको कृतसंकल्प हुयेहैं ॥ १६ ॥ यदि महात्मा राजा जनकसे यह संबंध करना आप अच्छा समझतेहों, तो देरका क्या कामहै जल्दी उस पुरीमें वहां पहुँचना उचितहै ॥ १७ ॥ तब ऋषिगण और सब मंत्री राजाकी बातपर सम्मत हुये, व राजाने

भी प्रफुल्लमनमें " कलही मिथिलाको चलैंगे " यह मंत्रियोंसे कहदिया ॥ १८ ॥ राजाके मंत्रीलोक निशाकालमें प्रमुदितमनसे परमआदरपूर्वक सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त राजभवनमें रहे ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदि० बालकांडे भाषायां अष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९.

तदनन्तर प्रभातकाल होतेही नृपति दशरथ उपाध्याय और बन्धुगणोंसे परिवेष्टितहो सुमंत्रको बुला कहनेलगे ॥ १ ॥ कि, आज अभीसे सम्पूर्ण खजानचीगण अनेक धनरत्न ग्रहणपूर्वक सुरक्षितहो आगे २ चलें ॥ २ ॥ मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण चतुरङ्गिणी सेना शीघ्र तैयारहो चलै, रथ, गाडी, छकडे, घोडे आदिभी जाँय व किसीप्रकार आज्ञामें अन्तर न होने पावे ॥ ३ ॥ वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, कात्यायन, मार्कण्डेय प्रभृति दीर्घजीवी ऋषिगण ॥ ४ ॥ सुन्दर २ सवारियोंमें चढकर हमारे आगे चलें. मेरा रथभी तैयारहो क्योंकि राजा जनकके दूत शीघ्रता करनेको कहतेहैं । इसकारण विलम्ब न करना चाहिये ॥ ५ ॥ राजाकी आज्ञासे चतुरंगिणी सेना साथहुई. पीछे २ गमन करने लगी. व ऋषिगणभी संग २ जाने लगे ॥ ६ ॥ दशरथजी चार दिन राहमें बिताकर जनककी राजधानीमें उपस्थित हुये. दशरथजीका आना सुनकरके श्रीमान् जनकजी अतिशय आनन्दित हुये और पूजाकी कल्पना करनेलगे ॥ ७ ॥ और आगे आकर राजाकी यथाविधि पूजा की अनन्तर वृद्ध राजा दशरथजीसे मिलकर प्रसन्नमन राजा जनकजी बहुतही प्रसन्न हुये ॥८॥ अनन्तर प्रीतियुक्तहो श्रेष्ठ वचनसे श्रेष्ठ राजा दशरथजीसे पूछा कि, हे राघव ! आप मंगलसे तो हैं ? आप अच्छे तो आये मेरे बडे भाग्यहैं जो यहां आपका आना हुआ ॥ ९ ॥ अब पुत्रका विवाहकार्य्य पूरा करके आप परमप्रसन्न हूजिये. विशेष श्लाघाकी बात तो यह है कि, महातेजवान् भगवान् वसिष्ठजीने मुझपर कृपा कीहै ॥ १० ॥ सुरगणसे युक्त सुरपति इन्द्रकी नाईं ब्राह्मणगणसे युक्त वसिष्ठजीके आगमनसे मेरे विघ्न विपत्ति दूर और कुल पवित्र होगया ॥ ११ ॥ जो हो महाबली रामचन्द्रजीके सहित उपस्थित संबंध होनेसे मेरा भाग्य अवश्यही उदयको प्राप्त हुआहै. हे नरेन्द्र.! अब मेरा यह कहनाहै कि, कल प्रभात विवाह होजाय॥ १२॥ हे नरश्रेष्ठ! इस यज्ञके अंतमें विवाह होना ऋषियोंको सम्मत है अयोध्याधिपति मिथिलापतिकी

यह बात श्रवणकरके ॥ १३ ॥ वाक्य जाननेवालोंमें श्रेष्ठ दशरथजी जनकजीसे इस प्रकार कहनेलगे कि, दान देना सबप्रकारसे दाताके अधीन है यह मैंने पहिले सुनर-क्खाहै ॥ १४ ॥ हे धर्मज्ञ ! आपने जो कहा मैं वैसाही करूंगा. तब सत्यवादी राजा दशरथजीके धर्मयुक्त यशस्कर वाक्य ॥ १५ ॥ सुनके विदेहनगरीके जन-क राजा अति विस्मित हुये फिर सब मुनिगण परस्परके समागमसे ॥ १६ ॥ परमप्रीति युक्तहो रात्रि बितातेहुये. राजा दशरथजी पुत्रस्नेहके वशहो राम लक्ष्मणका मुख दर्शन करके अतिशय सन्तुष्ट हुए ॥ १७ ॥ और जनकजीका आदरसुख अनुभव करके स्वच्छन्द निद्राअनुभव करनेलगे व महा-तेजा जनकजीभी शास्त्रविहित यज्ञकार्य सम्पन्न करके कन्याविवाहके उपयुक्त लौकिक-क्रिया संपादनपूर्वक कुछ देरके लिये सो रहे ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० बाल० भाषायां एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०.

तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर वाक्यपंडित जनकराज प्रातःक्रिया समाप्त करके महर्षियोंके साथ पुरोहित शतानंदसे बोले ॥ १ ॥ हमारे भ्राता धार्मिक महातेजस्वी बलवान् परमविख्यात कुशध्वज साङ्काश्यपुरीमें वसते हैं उनको यहां बुलाना चाहिये ॥ २ ॥ वह पुरी स्वर्गतुल्य है उसके बीच होकर इक्षुमती नदी बहरहीहै पुरीमें शत्रुओंके रोकनेके लिये बडी २ खाईंयुक्त भीति आदि बनीहैं. व पुरीकी ऐसी शोभाहै जैसे पुष्पकविमानकी ॥ ३ ॥ भ्राता कुशध्वज मेरे यज्ञके रक्षकहैं सो मेरी यह इच्छाहै कि, विवाहमें वहभी आवें वह महातेजस्वी परम प्रसन्नतासे इस यज्ञको मेरे साथ समाप्त करें ॥ ४ ॥ राजा शतानंदजीसे यह कह रहेथे कि, इतनेमें कई एक कार्यकुशल दूत वहां उपस्थित हुये । तब राजाने उनसे कहा ॥ ५ ॥ तुमलोग मेरी आज्ञासे शीघ्रगामी घोड़ोंपर चढकर कुशध्वजको इस प्रकार ले आओ जैसे देवदूत विष्णुजीको इन्द्रकी आज्ञासे आनयन् करतेहैं यह राजाके वचन सुन दूतलोग चले ॥ ६ ॥ कुशध्वजकी सांकाश्य राजधानीमें उप-स्थित हुये और राजासे जनकका संदेशा आनुपूर्विक वर्णन किया ॥ ७ ॥ शीघ्र चलनेवाले दूतोंके मुखसे महाराज जनकका सन्देशा सुनतेही महाराज कुशध्वज

भ्राताके भवनमें उपस्थित हुये ॥ ८ ॥ उन्होंने उपस्थितहो धर्मात्मा जनक और महर्षि शतानंदको देखा व उनको प्रणाम करके ॥ ९ ॥ राजाओंके योग्य सुन्दर आसनमें बैठगये जब वह बडे मनोहर कान्तिमान् दोनों भाई बैठगये ॥ १० ॥ अनन्तर दिव्यद्युति दोनों भाइयोंने मंत्रिप्रवर सुदामनको आज्ञा दी कि, हे मंत्रिपते ! तुम बडी कान्तिवाले महाराज दशरथके पास जाओ ॥ ११ ॥ और उनको बहुत शीघ्र पुत्र व मंत्रियों समेत यहां लिवालाओ मंत्री आज्ञा पातेही रघुवंशियोंके कुल बढानेवाले राजा दशरथके पटगृह (डेरे) में उपस्थित हुआ ॥ १२ ॥ और देखतेही शिर झुका उनको प्रणाम कर बोला कि, हे अयोध्याधिपते वीर महाराज दशरथजी ! मैथिलाधिपति ॥ १३ ॥ उपाध्याय व पुरोहितोंके सहित आपके दर्शनकी प्रतीक्षा करतेहैं मंत्रीके ऐसे वचन सुन महाराज दशरथजी सब ऋषियों समेत ॥ १४ ॥ जहा राजा जनकजी थे वहां उपाध्यायों और बन्धु बान्धवों सहित राजा दशरथजी गये ॥ १५ ॥ वाक्यविशारद दशरथजीने जनकजीसे कहा कि, भगवान् वसिष्ठजी इक्ष्वाकुकुलके देवताहैं यह तो आप जानतेहीहैं ॥ १६ ॥ मेरा सबकार्योंमें जो कुछ वक्तव्यहै, वह यह बतादेंगे यह इस समय विश्वामित्रजीकी सला हमे और ऋषियोंसमेत ॥ १७ ॥ यह धर्मात्मा सब धर्म और कृत्यको यथाक्रम बतावेंगे, राजाके यह कह चुप होजानेपर भगवान् वसिष्ठजीने ॥ १८ ॥ पुरोहित सहित विदेहनाथसे कहा कि, जो स्वयं अव्यक्त ब्रह्महैं उनसे अविनाशी ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई ॥ १९ ॥ उनके पुत्र मरीचि मरीचिके पुत्र कश्यप हुये कश्यपके पुत्र विवस्वत इन विवस्वतसेही मनुकी उत्पत्ति हुई ॥ २० ॥ इनकाही नाम प्रजापति हुआ मनुके पुत्र इक्ष्वाकु यह इक्ष्वाकुराजाही अयोध्याके आदि राजा हुये ॥ २१ ॥ इक्ष्वाकुके पुत्र श्रीमान् कुक्षि कुक्षिके पुत्र श्रीमान् विकुक्षि हुये ॥ २२ ॥ विकुक्षिके पुत्र प्रतापशाली बाण हुए बाणके पुत्र महातेजस्वी अनरण्य ॥ २३ ॥ अनरण्यके पुत्र पृथु उनके पुत्र त्रिशंकु व त्रिशंकुके पुत्र महायशवाले धुन्धुमार हुए ॥ २४ ॥ धुन्धुमारके पुत्र महातेजस्वी महारथी युवनाश्व. व युवनाश्वके महाप्रतापशाली पृथ्वीनाथ मान्धाता हुए ॥ २५ ॥ मान्धाताके पुत्र श्रीमान् सुसन्धि सुसन्धिके ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित् नामक दो पुत्र हुए ॥ २६ ॥ ध्रुवसंधिके पुत्र यशस्वी भरत भरतके पुत्र महातेजवान् असित जन्मे ॥ २७ ॥ इस राजाके विरुद्ध बड़े शूर हैहय तालजङ्घ और शशबिन्दु शूर प्रभृति उठेथे ॥ २८ ॥ नृपति असित

दुर्वृत्तगणोंसे संग्राममें पराजित व राज्यच्युतहो दो रानियोंसमेत हिमालय पहाडपर चलेगये ॥ २९ ॥ राजा असित इस कुलमें बडे अल्प पराक्रमी हुए वहां जाय कुछ दिनोंमें शरीर त्याग स्वर्गवासी हुए ऐसा सुनाहै कि, महाराज असितकी दोनों रानियें गर्भवती थीं ॥ ३० ॥ इन दोनों रानियोंमेंसे एकने सवत (सौत) का गर्भ संहार करनेके लिये दूसरीके भोजनमें विष मिलादिया उन्हीं दिनोंमें इस पर्वतपर महर्षि ॥ ३१ ॥ च्यवन तप करतेथे सो उन रानियोंमेंसे जिसे विष दिया गया वह कमलसे नेत्रवाली देव समान तेजस्वी भार्गव च्यवनजीके शरणागत हुई ॥ ३२ ॥ व पुत्र होनेकी इच्छासे मुनिके चरणकमलोंकी वन्दना करके हाथ जोड बैठगई इस महिषीका नाम कालिन्दीथा ॥ ३३ ॥ महर्षिने पुत्रकी इच्छा करनेवाली उस रानीसे प्रसन्न होकर यह कहा कि, हे महाभागे कमललोचनी ! तुम्हारे गर्भसे एक सुपुत्र महाबलशाली ॥ ३४ ॥ श्रीमान् तेजवान् वीर्यवान् पवित्र एक पुत्र गरल-सहित जन्मेगा हे कमललोचनी ! तुम किसीप्रकारका शोच मतकरो ॥ ३५ ॥ तब पतिव्रता राजकन्या रानी च्यवनजीके चरणोंमें प्रणाम कर बिदा हुई विधवा अवस्थामें उस देवी के गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ सव-तने गर्भके नाश करनेको जो गरल दियाथा सन्तान उत्पत्ति होनेके समय वहभी निकला; इसी कारण इस पुत्रका सगर नाम हुआ ॥ ३७ ॥ सगरके पुत्र असमञ्जस, असमञ्जसके पुत्र अंशुमान्, अंशुमान्के पुत्र दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुये ॥ ३८ ॥ भगीरथके पुत्र ककुत्स्थ, इनके रघु, रघुके पुत्र तेजस्वी पुरुषभक्षी प्रवृद्ध हुए ॥ ३९ ॥ यह शापसे राक्षसयोनिको प्राप्त हुए फिर यही कल्माषपाद नामसे ख्यात हुएथे (एक समय इनको वसिष्ठजीने शाप दिया कि, तुम राक्षस होजाओ तब राजाने भी वसिष्ठजीको शाप देनेको जल हाथमें लिया तब इनकी रानीने कहा यदि गुरु शाप दें तो तुमको शाप देना नहीं चाहिये यह सुन राजाने जल चरणोंपर डाल लिया उससे पैर काले होगये उसीसे कल्माषपाद नाम हुआ) इनके पुत्र शंखण, शंखणके पुत्र सुदर्शन, सुदर्शनके पुत्र अग्निवर्ण हुए॥ ४० ॥ अग्निवर्णके पुत्र शीघ्रग, शीघ्रगके पुत्र मरु, मरुके पुत्र प्रशुश्रुक, प्रशुश्रुकके अम्बरीष ॥ ४१ ॥ अम्बरीषके पुत्र नहुष, नहुषके पुत्र ययाति, ययातिके पुत्र नाभाग ॥ ४२ ॥ नाभागके पुत्र, अज अजके पुत्र दशरथ और यह राम लक्ष्मणजी इन्हीं दशरथजीके पुत्र हैं ॥ ४३ ॥ हे नृप ! प्रथमसेही वंशपरंपराद्वारा विशुद्ध परमधार्मिक और

सत्यवादी इक्ष्वाकुवंश राजाओंके कुलमें उत्पन्न हुये हैं ॥ ४४ ॥ रामलक्ष्मणके विवाहार्थ आपकी दोनों कन्यायें मांगी जातीहैं अधिक क्या कहूं अनुरूप पात्रोंको अनुरूप कन्या रत्न देदीजिये बस यही मेरा अनुरोधहै ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० बाल० भाषायां सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१.

वसिष्ठजीके यह कहनेपर महाराज जनकजी हाथ जोड़कर उनसे बोले हे महात्मन्! आपका मंगलहो, अब मेरे वंशका परिचय श्रवण कीजिये ॥ १ ॥ हे मुनीन्द्र महाबुद्धिमान्! कन्यादानके समय कुलपरिचयकीर्तन करना कर्त्तव्य है इसकारण मैं कहताहूं आप सुनैं ॥ २ ॥ हमारे वंशमें निमिनाम एक परमधर्मात्मा सत्यशील महाबली राजाने जन्म ग्रहण कियाथा वह अपने कर्मके प्रभावसे त्रिलोकमें विख्यातथे ॥ ३ ॥ उनके पुत्र मिथि, मिथिके पुत्र जनक यह पहिले जनक हैं इसी राजाके नामानुसार इस वंशके सबही जनकनामसे कहे जातेहैं जनकके पुत्र उदावसु ॥ ४ ॥ इनके पुत्र धर्मात्मा नन्दिवर्धन इनके पुत्र वीर्यवान् सुकेतु ॥ ५ ॥ सुकेतुके पुत्र महाबली देवरात राजर्षि देवरातके पुत्र बृहद्रथ हुये ॥ ६ ॥ बृहद्रथके पुत्र प्रतापशाली बलवान् महावीर, महावीरके पुत्र सत्यपराक्रमी सुधृति ॥ ७ ॥ सुधृतिके धर्मात्मा पुत्र धृष्टकेतु, राजर्षि धृष्टकेतुके हर्यश्व हुए. ऐसा लोकमें विख्यातहै ॥ ८ ॥ हर्यश्वके पुत्र मरु, मरुके पुत्र प्रतीन्धक इनके धर्मात्मा कीर्तिरथ पुत्र हुए ॥ ९ ॥ कीर्तिरथके पुत्र देवमीढ देवमीढके पुत्र विबुध विबुधके पुत्र महीध्रक ॥ १० ॥ महीध्रकके पुत्र महाबली कीर्तिरात हुये राजर्षि कीर्तिरातके पुत्र महारोम हुए ॥ ११ ॥ महारोमके धर्मात्मा पुत्र स्वर्णरोमन् इन के पुत्र ह्रस्वरोमन् हुये ॥ १२ ॥ महात्मा राजर्षि स्वर्णरोमन् धर्मशील ह्रस्वरोमनके दो बेटे हुये, ज्येष्ठ मैं और छोटे मेरे भाई परमवीर कुशध्वजहै ॥ १३ ॥ मेरे पिताने मुझे ज्येष्ठ जानकर राज्याभिषेक करके कनिष्ठ भाई कुशध्वजका भार मुझे सौंप आप वनको चलेगये ॥ १४ ॥ मैं पिताके स्वर्गलाभ होनेपर देवतोंकी समान सहोदर भाई कुशध्वजको स्नेहपूर्वक रखकर धर्मपूर्वक राज्य करता रहा ॥ १५ ॥ इस भाँति कुछ समय बीतनेपर साङ्काश्यके अधिपति महावीर सुधन्वाने आकर मिथिलापुरीको घेरलिया ॥ १६ ॥ उसने शिवका धनुष तोड़ने और कमलनेत्र जानकीके लाभ करनेकी प्रार्थना की यह संदेशा उसने दूतके हाथ भेजा ॥ १७ ॥

मैं उसके बल वीर्यको भलीभाँति जानताथा इसकारण हे महर्षे ! उसकी प्रार्थना पूर्ण करनेमें सम्मत नहीं हुआ उपरांत उभयपक्षमें तुमुल युद्ध होनेलगा अंतमें सुधन्वा मुझसे हार रणसे पीछे हटा ॥ १८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उसी दारुणयुद्धमें उसका संहार करके मैंने अपने छोटे भ्राता कुशध्वजको उसकी राजधानीमें प्रतिष्ठित किया ॥ १९ ॥ यही कुशध्वज मेरे लघु भ्राता हैं मैं इनसे बडाहूं मैं इस समय अपनी दो कन्याओंको दान करना चाहताहूं ॥ २० ॥ सीताको रामके हस्तमें ऊर्मिलाको लक्ष्मणके करमें समर्पण करनाही मेरा अभिप्राय है यह देवकन्याओंकी समान सीता मेरी कन्या वीर्यशुल्का है ॥ २१ ॥ और दूसरी ऊर्मिलाहै इसकाभी विवाह करूंगा मैं तीनवार सत्य करके कहताहूं कि, यह कार्य अन्यथा नहीं होगा हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं प्रसन्नतापूर्वक दोनों कन्याओंको विवाहदूंगा ॥ २२ ॥ हे महाराज दशरथजी ! आप दोनों पुत्रोंका गोदान* कार्य और पितृकृत्य अर्थात् नांदीमुख श्राद्ध कीजिये, फिर विवाहकार्य किया जायगा ॥ २३ ॥ आज मघा नक्षत्र है अतएव आजसे तीसरे दिन आनेवाले उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें विवाह करादीजिये ॥ २४ ॥ अब पुत्रोंके ऐसे शुभविवाहमें दानादि करना आपका कर्त्तव्यहै इसकारण राम लक्ष्मणके शुभके निमित्त दानकीजिये ॥ २५ ॥

इत्या० श्रीम० वा० आ० बाल० भाषायामेकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२.

जब जनकजी इसप्रकार कहचुके तब वसिष्ठजीके अभिप्रायानुसार महामुनि विश्वामित्रजीने जनकजीसे कहा ॥ १ ॥ हे महाराज ! इक्ष्वाकु और विदेहवंश अतिशय अचिन्त्य और अप्रमेयहैं इनकी बराबरी अन्यवंशसे नहीं सम्भव होसकती ॥ २ ॥ जैसे राम लक्ष्मण हैं वैसाही सीता व ऊर्मिलाके साथ इनका विवाह होना है इनका सम्बन्ध सर्वथा समानहै ॥ ३ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! मैं इस समय कुछ कहा चाहताहूं सो तुम श्रवण करो. तुम्हारे धर्मात्मा लघुभ्राता कुशध्वजहैं ॥ ४ ॥ इन महापराक्रमी धर्मात्मा राजाकी अलौकिकरूपसम्पन्न दो कन्या हैं सो हे राजन् ! उनकोभी हम

---

* गोदान विवाहके पूर्व किया जाता है, यह चूडाकरणकी नाई एक संस्कार विशेष है "गावः केशा दीयन्ते त्रुटयन्ते अनेनेति" इसी व्युत्पत्तिके अनुसार अबभी पश्चिम देशमें विवाहके पूर्व मस्तकमुण्डनसंस्कारका प्रचार देखा जाताहै और कहीं २ केवल क्षौर कार्यका व्यवहार है ॥

तुमसे मांगतेहैं ॥ ५ ॥ दशरथजीके पुत्र भरत और बुद्धिमान् शत्रुघ्नके सहित वह विवाही जाँय यही हमारी वासनाहै इन्हीं दोनों महात्माओंके निमित्त हम माँगते हैं ॥ ६ ॥ यह दशरथजीके चारों पुत्र रूप यौवनसम्पन्न लोकपालतुल्य और पराक्रममें देवतोंकी समान हैं ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम इस संबंधको स्थिर करके अपने वंश और इक्ष्वाकुके वंशको जो पुण्यकर्मवाला है घनिष्टता सूत्रमें बाँधो ॥ ८ ॥ महाराज जनकजी वसिष्ठजीके अभिप्रायानुसार विश्वामित्रके मुखसे यह वचन सुन हाथ जोड मुनिश्रेष्ठोंसे बोले ॥ ९ ॥ आप दोनों जन जब स्वयं इस समान और योग्य कुलके सम्बंधको चाहतेहैं तब अवश्यही मेरा कुल धन्य होगया ॥ १० ॥ और क्या कहूं आप जो आज्ञा देंगे वही कार्य होगा आपका मंगल हो. भरतशत्रुघ्नके साथ कुशध्वजकी दोनों पुत्रियोंका विवाह होजायगा ॥ ११ ॥ एकही दिन चारों राजकुमार जो महाबली हैं चारों कन्याओंका पाणिग्रहण करेंगे ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! परसोंके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रही विवाहके लिये शुभहै क्योंकि इसका प्रजापति भग देवताहै विद्वान् इस दिनको विवाहके लिये श्रेष्ठ कहते हैं ॥ १३ ॥ राजा जनक यह कहकर उठे और हाथ जोड महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्रजीसे कहा ॥ १४ ॥ आप दोनों जनोंकी कृपासे मुझे कन्यादानरूप धर्म प्राप्त हुआ राजा दशरथजीकी समान मैंभी आपका शिष्यहूं हे मुने ! इन मुख्य सिंहासनोंपर आप बैठिये जो आप कहैंगे वह होगा ॥ १५ ॥ जैसे दशरथजीकी राजधानीमें आप लोग राजत्व करतेहैं वैसेही मिथिलामें कीजिये. ऐसा करनेमें किसीप्रकारका सन्देह न करना चाहिये जो आप कहैंगे वह होगा ॥ १६ ॥ जब विदेहनाथ यह कह चुके तब राजा दशरथ प्रफुल्ल मनसे जनकजीसे बोले ॥ १७ ॥ हे मिथिलाधिपति ! आप दोनों भाई सर्व गुणकी खानहैं ऋषि और राजगण सदा आपसे सन्मानित किये जातेहैं ॥ १८ ॥ आप यहां सुखसे रहैं मैं अब शिविरमें जाताहूं क्योंकि मुझे विधिपूर्वक श्राद्धकार्य करनाहै ॥ १९ ॥ जनकजीसे यह कहकर यशस्वी नरनाथ दशरथजी वसिष्ठ और विश्वामित्रजीके साथ शीघ्रतासे लौटे ॥ २० ॥ और वासस्थानपर आकर राजाने यथाविधि श्राद्धकार्य सम्पन्नकर प्रभातकाल उठकर गोदान कार्य निर्वाह किया ॥ २१ ॥ पुत्रवत्सल राजाने पुत्रोंके मंगलार्थ ब्राह्मणोंको चार चार लक्ष सुरभी धर्मपूर्वक दान कीं ॥ २२ ॥ उन गायोंके सींग सोनेसे मढे और वह सबकी सब दुधारी वत्सों सहित थीं ऐसी (४०००००) चार लक्ष गाय कांसीकी दोहिनी सहित राजाने

दीं ॥२३॥ पुत्रोंको प्यार करनेवाले राजा दशरथने औरभी बहुतसे धनरत्न गोदानके उद्देशमें बाँट दिये ॥ २४ ॥ उस समय राजा दशरथके पुत्रोंका गोदानसंस्कार करदेनेपर चारोंपुत्र लोकपालोंकी समान शोभाको प्राप्त हुये राजाभी उनके बीचमें सौम्य प्रजापतिकी उपमा देने योग्य हुये ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामा० वा० आ० बाल०भाषायां द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३.

जिसदिन महाराज दशरथजीने अपने पुत्रोंका गोदानसंस्कार किया उसीदिन महावीर युधाजित्भी मिथिलामें उपस्थित हुये ॥ १ ॥ यह केकय राजाके पुत्र और भरतजीके मामा थे। इन्होंने दशरथजीको देख कुशल प्रश्न पूछकर कहा ॥२॥ केकयराजने स्नेहसहित आपका मंगलसमाचार पूछकरके कहाहै कि, आप जिसके मंगलाकांक्षीहैं उसका मंगल तो है ॥ ३ ॥ महाराज ! पिताके आदेशसे मैं अपने भानजोंके दर्शनार्थ अयोध्यामें उपस्थित हुआथा हमारे पिता भरतजीके देखनेकी बहुत इच्छा करतेहैं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! पहले मैं अयोध्यामें गया तो वहां सुना कि, आप पुत्रोंके विवाहार्थ उनको लेकर मिथिला गयेहैं ॥ ५ ॥ मैं यह सुनकर शीघ्रतासे यहां आयाहूं कि, चलकर आपका और भरतका दर्शन करूं उस समय राजा दशरथने उपस्थित प्रिय अतिथिका ॥ ६ ॥ भलीभाँति आदर सत्कार किया अनन्तर वह रात महात्मा पुत्र और महर्षियोंके सहित बिताते हुये ॥ ७ ॥ दशरथजी प्रभातकालही उठ शय्या परित्यागपूर्वक प्रातःकृत्यादि समाप्तकर महर्षियोंको संगले यज्ञस्थलमें गये ॥ ८ ॥ तब रामचन्द्रजी वैवाहिक मंगलाचार समाप्त होनेपर शुभ लग्न विजय मुहूर्तमें सब वस्त्राभूषणोंसे सजे चारों भाइयों समेत ऋषियोंके अनुगामीहो यज्ञभूमिमें पहुँचे ॥ ९ ॥ सब मंगलकार्य वसिष्ठ आदि मुनियोंकी आज्ञासे हुये. तब भगवान् वसिष्ठजीने विदेहनाथसे कहा ॥ १० ॥ हे नृपते महाराज दशरथजी ! पुत्रोंसे मंगलकार्य करवाकर द्वारपर दाताकी बाट देखरहेहैं ॥ ११ ॥ दाता और ग्रहीताके एकत्र होनेपर सकलकार्य सिद्ध होजातेहैं अतएव तुम वैवाहिक कार्य शेष करके उनको आनेकी अनुमति दो ॥ १२ ॥ परमउदार महात्मा वसिष्ठजीके वचन सुनकर विचारसहित तेजस्वी धर्मके जाननेवाले विदेहनाथ बोले ॥ १३ ॥ द्वारपर ऐसा कौन द्वारपाल है ? और महाराज दशरथजीही किसकी आज्ञाकी अपेक्षा करतेहैं ? इस राज्यपर मेरेही समान उनका अधिकार है । क्या आश्चर्य !

अपने घरमें प्रवेश करनेके लिये बाधा क्या ? कुछ कह नहीं सकता ॥ १४ ॥ हे मुने ! इस समय मेरी कन्यायें हाथमें मंगलसूत्र धारण किये वेदीके मूलमें बैठीहैं इस समय उनका रूप अग्निकी नांई प्रदीप्त हुआहै ॥ १५ ॥ मैं स्वयम् महाराज दशरथजीकी प्रतीक्षा करता हुआ वेदिमूलमें बैठाहूं अतएव जल्दी आनकर विघ्न रहित विवाह करें अब विलम्बका क्या प्रयोजनहै ? ॥ १६ ॥ राजा दशरथजी वसिष्ठजीके मुखसे जनकजीकी सौजन्यता सुनकर सब ऋषि और पुत्रोंसहित सभामें आये ॥ १७ ॥ तब विदेह राजाने वसिष्ठजीसे कहा कि,आप सब धर्मात्मा ऋषियों समेत कृत्य कराइये ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! संसारके प्यारे रामचन्द्रके विवाहके कार्य पूरे कराइये. जनकजीके यह कहनेपर भगवान् वसिष्ठजी ॥१९॥ उनके वाक्यपर सम्मतहो विश्वामित्र शतानंदको संगले यथाविधि मंडपकी यज्ञशालामें एक वेदी बनाते हुये ॥ २० ॥ गन्ध पुष्प द्वारा वेदी चारों ओरसे सजादीगई यवाङ्कुर युक्त सोनेके चित्रकुम्भ ॥ २१ ॥ जिनमें अंकुर धरे ऐसे सिकोरे धूप पात्र जिनमें धूप धरी शंखपात्र स्रुक् व अर्घ्यपात्र स्रुव प्रभृति उसके चारों ओर शोभा पाने लगे ॥ २२ ॥ बहुतसे पात्रोंमें खीलैं और अक्षत भराय २ धराये मंत्र पढ २ सब जगह कुश बिछाये ॥ २३ ॥ अनन्तर उस वेदीमें विधिपूर्वक मंत्रोंद्वारा अग्नि स्थापनकर मुनिश्रेष्ठ महातेजस्वी वसिष्ठजी मंत्र पढकर अग्निमें आहुति देने लगे ॥ २४ ॥ इसी समय अनेक गहनोंसे शोभित सीताजीको बुलाकर अग्निके समक्ष रामके सौंहीं बैठाया ॥ २५ ॥ फिर जनकजीने कौशल्याके आनंद बढानेवाले रामचंद्रसे कहा कि, हे रामचंद्र ! हमारी कन्या जानकी आजसे तुम्हारी सहधर्मिणी हुई ॥ २६ ॥ तुम्हारा मंगल हो तुम इसका पाणिग्रहण करो यह पतिव्रता महाभागवाली सीता छायाकी नांई तुम्हारी अनुगामिनी होगी ॥ २७ ॥ यह कहकर जनकजीने मंत्र पढा पवित्र जल उनपर छोड़ा और जानकीका हाथ ले रामचन्द्रजीके हाथपर धरदिया तब सब देवता और ऋषिगण 'साधु साधु' करने लगे ॥ २८ ॥ उस समय देवता दुन्दुभी बजाने लगे

---

१ स्त्री गाने लगीं—मनमें मंजु मनोरथ होरी ॥ सो हर गौर प्रसाद एकते कौशिक कृपा चौगुनी भोरी ॥ मणपरिताप चाप चिन्ता निशि सोच सकोच तिमिर नहिं थोरी ॥ रविकुल रवि अवलोक सभासर हित चित वारिज वन विकस्योरी ॥ कुँवर कुँवरि सब मंगल मूरत नृप दोउ धर्म धुरंधर धोरी ॥ राज समाज भूरि भागी जिन लोचन लाहु लह्यो इक ठोरी ॥ व्याह उछाह राम सीताको सुकृत सकेलि विरंचि रच्योरी ॥ तुलसिदास जानै सोइ यह सुख जा उर बसत मनोहर जोरी ॥१॥

और पुष्पवृष्टि होनेलगी. इसरीतिसे महाराज जनकजीने मंत्र पढे जलसे संस्कार कर अपनी कन्या श्रीरामचन्द्रजीको देदी ॥ २९ ॥ फिर जनकजीने प्रफुल्लमनसे लक्ष्मणको कहा कि, तुमभी आओ हमारी पुत्री ऊर्मिलाको स्वीकार करो ॥ ३० ॥ अब विलम्ब न करके तुम इस कन्याका पाणिग्रहण करो. इसप्रकार लक्ष्मणजीसे कहा, फिर भरतजीसे कहा ॥ ३१ ॥ हे रघुनंदन ! तुम माण्डवीका पाणिग्रहण करो फिर धर्मात्मा मिथिलापुरीके राजाने शत्रुघ्नजीसे कहा ॥ ३२ ॥ हे महाबाहोवाले ! तुम श्रुतकीर्तिको ग्रहण करो, तुम सबही प्रियदर्शन और सुन्दर व्रतपरायण हो ॥ ॥ ३३ ॥ हे ककुत्स्थके वंशसें उत्पन्न हुये कुमारो ! तुम लोगोंसे और क्या कहूं अब पाणिग्रहण करनेमें विलम्ब मत करो. विदेहनाथके ऐसे वचन सुन सबने अपनी२ स्त्रीका कर स्पर्श कर ग्रहण करलिया ॥ ३४ ॥ उन चारोंने वसिष्ठजीकी आज्ञासे व अपनी २ पत्नियोंके साथ अग्नि, वेदी, जनक और सब ऋषियोंकी परिक्रमा की ॥ ३५ ॥ इस भांति उन कुमारोंने भार्याओंसहित ऋषियोंकीभी परिक्रमा की जैसी विधि वेदमें लिखी है उसी विधानसे सबका विवाह हुआ ॥ ३६ ॥ उस समय अन्तरिक्षसे सुन्दर पुष्पवृष्टि होकर नृत्य गीत, व दुन्दुभी प्रभृति बाजे बजने लगे ॥ ३७ ॥ अप्सरागण नृत्यकरने लगीं और गन्धर्वलोग सुन्दर गान करनेमें लगे. अधिक क्या कहैं उन कुमारोंके विवाहमें सबही विस्मयरसमें आप्लुत हो उठे ॥ ॥ ३८ ॥ चारों ओरसे तूर्यध्वनि श्रवणगोचर होने लगी तब राम लक्ष्मण भरत व शत्रुघ्न चारों भाई अग्निकी प्रदक्षिणा करके अपनी स्त्रियोंसमेत विवाहित हुए ॥ ३९ ॥ अनंतर अपनी भार्याओंके साथ दशरथके पुत्र पिताके डेरेमें चलेगये राजा दशरथभी बान्धवसहित पुत्रोंको ऋषियोंके साथ देखते २ उनके पीछे २ जनवासेमें आये ॥ ४० ॥

इत्या० श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषाय। त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४.

रात्रि बीतकर प्रभात होनेपर महर्षि विश्वामित्रजी उत्तरपर्वतकी ओर जनकजी और दशरथजीसे बिदा होकर तपस्याकरने चलेगये ॥ १ ॥ अनन्तर विश्वामित्रके चलेजानेपर राजा दशरथजीभी जनकजीके निकट बिदा ग्रहण करके अयोध्या जानेकी तैयारी करने लगे ॥ २ ॥ उनके गमन समय राजा जनकने दहेजमें कन्याओंको लाख धेनु व औरभी बहुत पदार्थ दिये ॥ ३ ॥ उसके सिवाय

दिव्य कम्बल एक करोड, दुशाले, हस्ती, अश्व, रथ, पदाति एवं उत्कृष्ट अलंकार महारथ दशरथजीको दिये ॥ ४ ॥ इसके अतिरिक्त प्रत्येक कन्याओंको शत २ दास दासी व असंख्य सुवर्ण मुक्ता और प्रवाल मूँगे प्रदान किये ॥ ५ ॥ व जनकजीने प्रसन्न होकर और भी बहुत दहेज दिया. इस भाँति लौकिक क्रिया समाप्त कर राजा जनक दशरथजीके वार २ कहनेसे ॥ ६ ॥ अपने राजमंदिरको मिथिलाके राजा लौटे और अयोध्याके राजा दशरथजी भी अपने महात्मा पुत्रोंके साथ ॥ ७ ॥ सब ऋषियोंको आगे कर सब सेना सहित नगाडे शंखादि बजाय पुत्रों सहित अयोध्या पुरीकी ओर चले. जब कि, वह महाबली मनुष्योंमें श्रेष्ठ ऋषियोंके सहित जारहेथे ॥ ८ ॥ इसी समय चारों ओर आकाशसे पक्षीगण विकट शब्द करनेलगे, भूमितलपर मृगगण दक्षिण दिशाकी ओर जाने लगे ॥ ९ ॥ अकस्मात् बुरे शकुन देखकर दशरथजीने वसिष्ठजीसे कहा कि, पक्षियोंका उत्कट चीत्कार और मृगगणोंके दक्षिण ओर जानेका क्या कारणहै ? ॥ १० ॥ और क्यों मेरा हृदय कांपताहै ? क्यों अन्तःकरण अवसन्न होताहै ? राजा दशरथजीके कातर वचन सुनकर गुरुदेव ॥ ११ ॥ मधुर वाणीसे बोले कि, इसका फल सुनो आकाशमें पक्षियोंके चीत्कारसे घोर दैवी विपदकी संभावना होतीहै ॥ १२ ॥ किन्तु दक्षिणदिशामें मृगोंका जाना अशुभजनक नहीं है जो हो आप घबडाइये मत यह कहतेहीथे कि, इतनेमें प्रचंड पवन चली ॥ १३ ॥ पवनके प्रभावसे पृथ्वी काँपने लगी और वृक्ष सब टूटकर गिरने लगे सूर्य अंधकारसे छिपगये दिशाओंका कुछ ज्ञान नहीं रहा ॥ १४ ॥ चारों ओर धूल उडने लगी सेनासमूह चेतना रहित होगई । उस समय वसिष्ठ और अन्यान्य ऋषि और पुत्रोंसहित राजा दशरथ ॥ १५ ॥ स्थिर रहे और ज्ञान रहा शेष सबकी चेतना जाती रही उस अंधकारमें सेनाके ऊपर धूल उडने लगी ॥ १६ ॥ इतनेमें क्षत्रकुलान्तकारी जटाजूट धारण किये भीमदर्शन जमदग्निपुत्र भार्गव परशुरामजी वहां उपस्थित हुये ॥ १७ ॥ इनकी आकृति कैलास गिरिकी नाईं दुर्धर्ष कालाग्निके समान दुस्सह तेज जिन्हैं कोई अतिक्रम नहीं करसक्ता तेजोंसे जाज्व-

---

१ **कबित्त**–धरातैं उठावत अपार धूरि धुंधकार अंधकार कियो धारा धरनि धकायकै । तोरत तरुन ले झकोरनतैं शाखावृंद पूरि इन्द्र लोकहूको पत्रन उडायकै । अमित समानहीं सों बधिर करत कान खरसे सहर कीन्हें छापर ढहायकै ॥ कासवी कँपावत सो कुधर ढहावत सो हाय ऐसो पौन कैसो करिहै धौं आयकै ॥ १ ॥

मान् पामर जन जिन्हें निहार नहीं सक्के ॥ १८ ॥ कण्ठमें बिजलीके समान चमकता हुआ तीक्ष्ण कुठार धरा हुआ, हाथमें विचित्र शरासन और उग्र बाण जिसके देखनेसे परशुरामजी त्रिपुरके मारनेवाले शिवकी समान बोध होतेथे ॥ ॥ १९ ॥ ज्वलन्त अग्नितुल्य उनकी भीम मूर्ति दर्शन करके वसिष्ठादि जप होमपरायण ऋषिगण ॥ २० ॥ परस्पर मिलितहो सब मुनि कहने लगे कि, यह भार्गव क्या पितृवधसे क्रोधित हो क्षत्रिय कुलको निर्मूल करेंगे ॥ २१ ॥ पहले क्षत्रियोंके कुल संहार करके इनकी क्रोधाग्नि निर्वाण होगईथी, अब क्या फिर उस बीभत्सकार्यका अनुष्ठान होगा ॥ २२ ॥ यह कहकर सब ऋषि अर्घ्य ग्रहणपूर्वक भयंकर दर्शन परशुरामजीको सम्बोधनकर उनको हे राम ! हे राम ! ऐसे मधुर वचन कह २ कर पूजने लगे ॥ २३ ॥ प्रतापी जमदग्निपुत्र परशुरामजीभी ऋषियोंकी दी हुई पूजाको ग्रहण करके दशरथपुत्र रामचन्द्रसे कहने लगे ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० बाल० भाषायां चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ७५.

हे दशरथके पुत्र रामचन्द्र ! मैंने सुनाहै कि, तुम्हारा अद्भुत पराक्रम है और हे वीर ! धनुभंगकाभी सब वृत्तांत मैंने सुनाहै ॥ १ ॥ तुमने जो शिवका धनुष तोडाहै वह बडे आश्चर्यकी बातहै मैं शिवजीके धनुषको टूटाहुआ श्रवणकर और एक धनुषले तुम्हारे पास आयाहूं ॥ २ ॥ सो तुम मुझ परशुरामके इस भीषण शरासनको आकर्षण करके और इसपर बाण चढाकर अपना सामर्थ्य दिखाओ ॥ ॥ ३ ॥ इस धनुषके चढानेसे मैं तुम्हारा बल देखकर उपरान्त मैं तुम्हारे साथ घोर द्वन्द्व युद्ध करूंगा तब जानूंगा कि, तुम बलीहो ॥ ४ ॥ परशुरामके यह दारुण वचन श्रवणकर राजा दशरथ विषण्ण वदनहो दीनभावसे हाथ जोडकर कहने लगे ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! आपने ब्रह्मकुलमें जन्म ग्रहण किया है और आप तपस्वी विख्यात हैं. अब आपने क्षत्रियोंके ऊपर क्रोधभाव परित्याग करदिया है सो आपको मेरे बालक पुत्रोंपर प्रसन्नहोना उचितहै इनको अभय दो ॥ ६ ॥ वेद पढनेवाले भार्गवकुलमें आप जन्मेहैं आपने इन्द्रके निकट प्रतिज्ञा करके, अस्त्रका चलाना छोडाहै ॥ ७ ॥ आप धर्ममें मन लगाकर महात्मा कश्यपजीको पृथ्वी

पालनका भार समर्पण पूर्वक वनवासी होकर महेन्द्र गिरिके शिखरपर वास करतेहैं ॥ ८ ॥ मैं अब आपसे जिज्ञासा करताहूं कि, मेरा सर्वनाश करनेहीके लिये आप यहां आयेहैं ! मैं निश्चय करके कहताहूं कि, रामका कोई भी अहित होनेसे मेरा जीवन नहीं रहेगा ॥ ९ ॥ दशरथजीके यह वचन सुन उनके वचनोंका अनादर कर प्रतापी परशुरामजी रामचन्द्रजीसेही कहनेलगे ॥ १० ॥ विश्वकर्माने यह दो दिव्यधनुष बनायेथे यह दोनों लोकपूज्य और दृढहुये लोकोंमें विख्यातहैं ॥ ११ ॥ हे राम नरश्रेष्ठ ! जो धनुष तुमने तोडाहै सो त्रिपुरासुरके संहार करनेकेलिये देवताओंने महादेवजीको दियाथा ॥ १२ ॥ और दूसरा धनुष जो मेरे पासहै इसको देवताओंने विष्णुजीको दिया था यहभी सब को जीतनेमें समर्थ और शिवके धनुषकी समानहै ॥ १३ ॥ यह वैष्णव धनुष शत्रुओंका नाशक शिवधनुषके समान वरन उससे अधिकहै एक समय सब देवताओंने ब्रह्माजीसे पूछा कि ॥ १४ ॥ महादेवजीमें बल अधिकहै या विष्णुजीमें ब्रह्माजीने देवताओंका अभिप्राय जानकर ॥ १५ ॥ सत्यसंकल्प ब्रह्माजीने विष्णुजी व महादेवजीसे विरोध करादिया, उस विरोधके पडनेसे तुमुलयुद्ध जिसके देखनेसे रुयें खडे होजातेथे दोनोंमें उपस्थितहुआ ॥ १६ ॥ क्रमसे शिव और विष्णुजी एक दूसरेको जीतने की इच्छा करनेलगे उस समय बडे पराक्रम वाला उद्यत शिवजीका धनुष देखकर ॥ १७ ॥ विष्णुजीने एक भयानक हुंकारसे शिथिल करदिया और त्रिलोचन महादेवजीभी स्तम्भित होगये इसीसमय देवगण ऋषि और चारण गणोंने एकत्र होकर ॥ १८ ॥ वहां गमन किया जहां हरि हर युद्ध कर रहेथे और दोनोंको स्तुति करके शान्तकिया। इसप्रकार श्रीविष्णुजीके बल पराक्रमसे शिवका धनुष शिथिल देखकर ॥ १९ ॥ सब देवता व ऋषियोंने विष्णुजीको श्रेष्ठ माना (वास्तवमें प्रकृत युद्धमें विष्णुजीकी अधिकताहै त्रिपुरासुर वधमें शिवजीकी अधिकताहै इससे दोनों समान हैं) तब महायशस्वी शिवजीने क्रोधित होकर वह धनुष ॥ २० ॥ विदेह महाराज देवरात राजर्षिको दिया और बाणभी दिया और मेरे हाथमें जो धनुषहै यह वैष्णव धनुष है यहभी शत्रुओंके नगरका नाशकहै ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें भगवान् विष्णुजीने यह धनुष भृगुके कुलवाले महर्षि ऋचीकको प्रदान किया, महातेजस्वी ऋचीकजीने प्रसन्नहो अपने सहनशील पुत्र ॥ २२ ॥ हमारे पिता जमदग्निको यह देदिया, तपोबल समन्वित हमारे पिताजीके इस धनुषको त्यागनेपर ॥ २३ ॥ अधर्मबुद्धिके वशीभूतहो राजा सहस्रबाहु अर्जुनने उनको मारडाला. मैं ने पिताका यह असदृश मरणसवाद

श्रवण करके रोषाविष्टहो इक्कीसबार क्षत्रियकुलका संहार किया ॥ २४ ॥ हे राम ! मैंने सम्पूर्ण पृथ्वीका अधिकार करके यज्ञके अंतमें पवित्र दक्षिणारूप यह पृथ्वी महात्मा कश्यपजीको देदी ॥ २५ ॥ फिर मैं महेन्द्राचलपर तप कर रहाथा इतनेमें सुना कि, तुमने शिवका धनुष तोडाहै इसी कारण तुम्हें देखनेको शीघ्रतासे चला-आता हूं ॥ २६ ॥ हे रामचन्द्र ! तुम पिता पितामहके पाससे क्रमानुसार आये हुए इस श्रेष्ठ वैष्णव धनुषको इस समय क्षत्रिय धर्मके गौरवकी रक्षा करके ग्रहण कीजिये ॥ २७ ॥ हे राम ! इस शत्रुके नगरके नाश करनेवाले धनुषके ऊपर बाण चढाओ यदि तुम इस धनुषपर शर चढानेमे कृतकार्य हुये तो हम तुम्हारे साथ द्वन्द्व युद्ध करैंगे ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६.

परशुरामजीके वचन सुनकर दशरथ सुत रामचन्द्र पिताके और वसिष्ठजीके निकट होनेके गौरवसे उग्र वचन न कहकर मधुर वचनसे बोले॥ १ ॥हे राम ! आपने पिताका वैर लेनेको जो कार्य किया मैंने उसे सुन रक्खाहै वैरीसे बदला लेना वीरोंका कर्मही है सुतरां आपके कार्यको हम अंगीकार करते हैं ॥ २ ॥ किन्तु मैं क्षत्रिय संतान हूं मुझे सामर्थ्यरहित जानकर आपने जो निरादर किया सो इस समय मुझ सामर्थ्यरहितके पराक्रमका परिचय लीजिये मेरा पराक्रम देखिये ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजीको यह कहते २ क्रोध आगया और शीघ्रता पूर्वक परशुरामजीसे वह श्रेष्ठ आयुध शरासन और बाण ले लिया ❀ ॥ ४ ॥ तत्क्षणात् उसपै रोदा चढाय फिर बाण चढाया फिर क्रोधित हो रामचंद्र जमदग्निपुत्र परशुरामजीसे बोले ॥ ५ ॥ हे राम ! आप ब्रह्मकुलोत्पन्न हो विशेषतः विश्वामित्रजीके सम्पर्कसे हमारे पूज्यहो अत-एव इसी कारण इस प्राणनाशक शरसे आपके प्राण नही ले सकते ॥ ६ ॥ हां अब इसी कराल शरसे जो तुम्हारी नभ मंडल आदिकमें विचरण करनेकी शक्ति है

❀ कवित्त ॥ डोली धरा बार २ दिग्गज चिकार कीन्हो, हालिगो हजार शीश कैच्छ अकुलान्यो है ॥ दैत्य विकरार भय भयही अकार भये पारावार वारिवेल छोड छहरान्यो है ॥ जैजै शब्द देवदार सहित पुकार करैं प्रलय संसार हेत मन अनुमान्यो है ॥ देखो जमदग्निवार करते कुठार गिर्‌यो सरिस हजार रुद्र राजवार जान्यो है ॥ १ ॥

जिनकी बराबर तीनों लोकोंमें किसीकी नहीं उसे हरलेंगे ॥ ७ ॥ कारण कि, यह वैष्णव बाण शत्रुकी शक्ति संहार करनेमें समर्थ है, जब यह चढ चुका तो व्यर्थ नहीं हो सका, यह शत्रुके बल और घमंडका नाश करनेवालाहै ॥ ८ ॥ इसी अवसरमें दिव्यायुधधारी श्रीरामचंद्रजीके दर्शनार्थ ऋषि ब्रह्मादि देवगण एकत्रितहो वहा आये ॥ ९ ॥ क्रमसे गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, चारण, किन्नर और यक्ष, राक्षस नागगण इस आश्चर्य व्यापारके देखनेको उपस्थित हुए ॥ १० ॥ जब रामचंद्रके धनुष चढानेसे और क्रोधसे तीनोंलोक जडीभूत होगये तब सबके सामने परशुरामजीका तेज रामचंद्रजीने खैंचलिया ॥ ११ ॥ तब भार्गव निर्वीर्य और तेज नष्ट होजानेसे स्तम्भित होकर श्रीकमल लोचन रामचन्द्रजीकी ओर देख मधुर वचनसे बोले ॥ १२ ॥ जब मैंने महर्षि कश्यपजी को पृथ्वी दान दीथी तब उन्होंने कहाथा कि, अब हमारे अधिकार में तुम वास मत करना ॥ १३ ॥ मैं उन गुरुके वचनानुसार एक रात्रिभी पृथ्वीपर नहीं बसा, क्योंकि मैंने प्रतिज्ञा कर लीथी और पृथ्वी मैंने कश्यपजीको देदी और इसीसे पृथ्वीका एक नाम काश्यपी हुआ ॥१४॥ हे वीर ! अब मेरी यह प्रार्थना है कि, तुम हमारी सब जगह पहुँचने की शक्तिका नाश मतकरो मैं इसी गतिकी सहायसे महेन्द्राचल पर्वत पर शीघ्रचला जाऊंगा ॥१५॥ हे राम ! मैंने जो तपस्याके द्वारा दिव्य लोक जीते हैं तुम शीघ्रतासे उनका संहार इस वैष्णवास्त्रसे करो देर मतकरो ॥१६॥ हे वीराग्र-गण्य ! इस वैष्णव धनुषके धारण करनेसे प्रतीत होताहै कि आपही मधु दैत्यके मारने वाले अविनाशी विष्णु हैं. हे परंतप ! अब तुम्हारा मंगल हो॥१७॥ यह सब देवगण सम्मिलित होकर आपके ही दर्शन कर रहेहैं तुम्हारे कर्म उपमा रहित हैं और संग्राम में कोई तुम्हें जीत नहीं सक्ता ॥ १८ ॥ आप त्रिलोक नाथ हैं तुमसे जो मैं हाराहूं सो तुम्हारे हाथसे पराजित होना मेरे लिये लाजका विषय नहींहै ॥ १९ ॥ हे सुन्दर व्रतधारी राम ! अब आप इस दिव्य शरका संहार करैं और मैं भी शरके संहार होनेसे उत्तम महेन्द्राचलको चला जाऊंगा ॥ २० ॥ तब दाशरथि श्रीमान् रामचन्द्रजीने प्रतापी परशुरामजीके वचन श्रवण कर उत्तम शर निक्षेप किया ॥ ॥२१॥उससे परशुरामजीके तपस्या सञ्चित समस्त लोक विनष्ट हुये तब परशुरामजी शीघ्रता पूर्वक महेन्द्र पर्वतको गमन करने लगे ॥ २२ ॥ उस समय दिशा और विदिशा तथा दिग्मंडल निर्मल होगया विमानवासी देवता व ऋषिगण यह लीला

देखकर आयुधधारी रामचन्द्रजी को "साधु साधु" कहने लगे ॥ २३ ॥ महावीर जमदग्निपुत्र परशुरामजी भी दशरथ सुत रामचन्द्रजी की प्रदक्षिणा और पूजा करके अपने स्थानको चलेगये ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्ये बालकाण्डे भाषायां षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७.

परशुरामजीके चले जानेपर दशरथात्मज यशस्वी श्रीरामचंद्रजीने अमर्ष-भाव परित्याग करके वरुणको वह धनुष देदिया * ॥ १ ॥ और फिर वसिष्ठादि ऋषियोंको प्रणाम कर पिताको शंकित देखकर रघुनंदनने कहा ॥ २ ॥ हे पिताजी ! परशुरामजी चले गये अतएव चतुरङ्गिणी सेना आपके बलसे रक्षित हो अयोध्याकी ओरको चले ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजीसे ऐसा सुनकर राजा दशरथजीने प्रसन्न हो उनको हृदयसे लगाकर शिर सूँघा ॥ ४ ॥ परशुरामजीके वन गमनका वृत्तांत श्रवण करके नृपति दशरथ अतिशय सन्तुष्ट हुये व अपना और अपने पुत्रोंका नया जन्म माना ॥ ५ ॥ तदनन्तर सैन्यगणको शीघ्र चलने की आज्ञादी और सेना सहित जल्दीसे अयोध्याजीकी ओर चले एवं पुरीमें उपस्थितहो कर देखा कि, मनोहर राजधानी विचित्र पताकाओंसे सजाई जाकर शोभित होरहीहै और तूर्य ध्वनि होनेसे दिग्मंडल नादित हो रहाहै ॥ ६ ॥ राजमार्गमें छिडकाव हुआ है सब जगह फूल पड़े हैं पुरवासी राजाके आनेके मार्गमें मंगल द्रव्य लिये खडे हैं ॥ ७ ॥ चारों ओर महाभीड होरहीहै उस पुरीमें प्रवेश करते ही पुरवासी और विप्रगण मंगल पदार्थ लिये राजा को आगे जाकर ले आये ॥ ८ ॥ यशस्वी श्रीमान् राजा दशरथजी अपने सुन्दर पुत्रोंको संगले हिमगिरि तुल्य श्वेत कान्तिवाले अपने विचित्र राजमंदिरमें पधारे ॥ ९ ॥ राजा सम्पूर्ण सुखभोगसे तृप्तहो आत्मीय जनोंके साथ नानाप्रकारके आमोद प्रमोदसे कालबिताने लगे । राजमहिषी कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी ॥ १० ॥ व और राजनारियां जो थीं वे सब महाभाग्य वाली जानकी और परम यशस्विनी उर्मिलाको ॥ ११ ॥ वो कुशध्वजकी दोनों कन्या मांडवी और श्रुतकीर्त्ति वधुओंको पाकर परमप्रसन्न हुई व सब हवन और मंगलाचरण करकै रेशमीन वस्त्र धारिणी शोभायमान वधुओंको अन्तःपुरमें ले जाकर ॥ १२ ॥

* जर्मनकी छपी रामायणमें लिखा है पिताको धनुष दिखाया ।

सबने ग्राम पुरके देवताओंकी पूजा करी कराई और जो प्रणाम करनेके योग्यथे उनसे प्रणाम कराया, इस प्रकार सब राजकुमारियोंने किया ॥ १३ ॥ बहुयेंभी अनुरूप स्वामियोंको पाकर परम सुख भोग करने लगीं। रामचन्द्रजी भाइयों सहित स्त्रियोंको और अस्त्रोंको पाकर और धन जनसे पूर्ण हो ॥ १४ ॥ पिताकी सेवामें वे सब पुरुष श्रेष्ठ मनको लगाते हुये कुछ काल बीतने उपरान्त राजा दशरथजीने ॥ ॥ १५ ॥ कैकेयी पुत्र भरतजीसे कहा कि, हे पुत्र! यह केकय देशके राजाके पुत्र बहुत दिनोंसे टिके हैं ॥ १६ ॥ यह वीर युधाजित् तुम्हारे मामा तुम्हें बुलानेको आये हैं अतएव इनके साथ तुम अपने नानाके यहां जाओ कुमार भरत राजाके वचन सुनकर ॥ १७ ॥ शत्रुघ्नके सहित मामाके यहां जानेको प्रस्तुत हुये, वे महाबली प्रथम पिता जीकी आज्ञाले फिर परमकृपालु महापराक्रमी रामचन्द्रजीसे पूँछ ॥ १८ ॥ इत्यादि माताओंके चरणोंकी वन्दनाकर शत्रुघ्नके सहित चले युधाजितभी भरत शत्रुघ्नको पाकर हर्षित हुये ॥ १९ ॥ और चलते २ अपने नगरमें पहुँचे, उनके पिता अपने धेवतोंको देख सन्तुष्ट हुये. भरत, शत्रुघ्नके मामाके यहां चले जानेपर महाबली राम लक्ष्मणजी ॥ २० ॥ देवताकी समान पिताकी सेवा मन लगाकर करनेलगे रामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे सम्पूर्णनगरके कार्योंका तत्त्व विचार करने लगे ॥ २१ ॥ वह शास्त्रानुसार माता व अन्यान्य गुरुजनोंके प्रति यथाविधि कर्तव्य कर्म करने लगे और सावधानीसे सबके हितकर और प्रिय कार्य करने लगे ॥ ॥ २२ ॥ जिस समय जिस कार्यका प्रयोजन देखते वही करते कराते, समयपर गुरुजनोंके जो गुरुकार्य अर्थात् शुश्रूषादिक हैं उनको बराबर करते रहते इस भाँतिसे रामचन्द्रजीके शील स्वभावको देख राजा दशरथ प्रसन्न हुये और सब वेद-पाठी ब्राह्मण भी ॥ २३ ॥ बनिये लोग और सबही देशके विविध व्यापार करने वाले मनुष्य रामचन्द्रजीके गुण परस्पर कहकर अति सन्तुष्ट हुये। रामचन्द्रजी सब भाइयोंसे अधिक सत्यपराक्रमी और यशस्वीथे ॥ २४ ॥ जिसप्रकार सब प्राणि-योंमें स्वयंभू अधिक गुणवान्हैं इसीप्रकार रघुनाथजी हुये और जानकीवल्लभ जानकी जीके सहित नाना सुख भोग करके दीर्घकाल विहार करते रहे ॥ २५ ॥ राम चन्द्रजी जिस भाँति सीताजीके अनुकूल रहते और उनसे मनलगाये रहते वैसेही सीताजी पतिपरायणा हुई क्योंकि इनके ब्राह्मविवाह हुये थे इस कारण और भी अधिक प्रीति थी ॥ २६ ॥ उनमें परस्परके गुणरूपकी समानतासे आपसमें बड़ी

प्रीति हुई विशेषतः रामचन्द्रजी सीताके प्रति अधिकतर स्नेहवान् थे ॥ २७ ॥ रघुनाथजीने प्रियाके मनका भाव जानकर उनके मनपर अपना अधिकार किया इसी प्रकार सुरकन्याओंकी नाईं साक्षात् लक्ष्मीके समान रूप वाली सीताजीभी रामका अभिप्राय जानती थीं और उनमें अधिक प्रेम करतीथी ॥ २८ ॥ अधिक क्या कहैं देवतोंके पति विष्णु भगवान् कमलाको पाकर जैसे सन्तुष्ट हुये थे वैसेही रामचन्द्रजी अपनी इच्छाके अनुकूल रहनेवाली राजर्षि जनककी कन्या मनमोहिनी जनकनन्दिनीको लाभकर अतिशय संतुष्ट और शोभान्वित हुये ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां बालकांडे पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां रामक्रीडाख्यानं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

दोहा—रघुनंदनआनंदघन, प्रणतपालभगवान ।
नितज्वालाप्रसादपर, कृपाकरहुसुखदान ॥ १ ॥
शारदहर गणपतिऋषी, तव गुणगण विस्तार ।
कहि न सकत किमि कहहुँ मैं, दशरथ राजकुमार ॥ २ ॥

छन्द—यह राम सीय विवाह मंगल सुनहिं सादर गावहीं ।
सो चार फल श्रम रहित अविचल भक्ति प्रभुकी पावहीं ॥
करभोग विविध कुटुम्ब युत सुत दार धन मनभावहीं ।
संसारके सुखपाय अन्तिम राम धाम सिधावहीं ॥ ३ ॥

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय—बंबई.

॥ श्रीः ॥
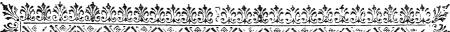
श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-भाषा ।

अयोध्याकाण्डम्-२.

मुरादाबादनिवासि पं० ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत-

पीयूषधारा भाषानुवाद ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम) यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया ।

संवत् १९६१, शके १८२६
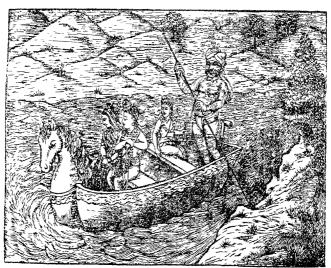
अयोध्याकाण्डम्-२.

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण–भाषा ।

अयोध्याकाण्डम् २.

प्रथमः सर्गः १.

श्रीगणेशायनमः ॥ जिस समय भरतजी मामाके घर चले उस समय शत्रुओंके मारने वाले पापरहित स्नेहपूर्वक भाई शत्रुघ्नजीकोभी संग ले गयेथे ॥ १ ॥ वे दोनों भाई मातुल युधाजित्के यत्नसे बहुत आदर सत्कारसे लालित पालित होतेथे इस प्रकार वे दोनों भाई अभिलषित पदार्थोंको भोग रहेथे अश्वपति उनके मामा उनको पुत्रकी समान पालन करतेथे ॥ २ ॥ वहां वे दोनों भाई अभिलषित पदार्थोंसे आदरकिये जाकर अपने वृद्ध पितादशरथजीको सदा स्मरण किया करतेथे ॥ ३ ॥ महातेजस्वी दशरथजीभी महेन्द्र और वरुण सदृश विदेशगत कुमार भरत व शत्रुघ्नको याद करते रहतेथे ॥ ४ ॥ अपने शरीरसे निकली अपनी बांहें जिस भांति प्यारी होतीहैं वैसेही श्रेष्ठ चारों पुत्र राजा दशरथजीके प्यारे दुलारे थे ॥ ५ ॥ वह सबसे अधिक रामचन्द्रजीको चाहते सब प्राणियोंमें जैसे ब्रह्माजी वैसेही गुणके प्रभावसे रामचन्द्रजी श्रेष्ठथे ॥६॥ इसके अतिरिक्त रामचंद्रजी स्वयं सनातन नारायण थे, केवल देवताओंके अनुरोधसे दुर्जय लंकानाथके विनाशार्थ मनुष्यलोकमें अवतीर्णहुए ॥ ७ ॥ अदिति जिसप्रकार इन्द्रको पाकर शोभित हुईथी वैसेही रामजननी कौसल्याजी रामचन्द्रको पाकर शोभित हुईथी ॥ ८ ॥ महावीर रामचन्द्रजी जिसप्रकार द्युतिमानथे तदनुरूप असूयाशून्यथे उनके गुणोंकी उपमा नहीं मिली; वह पिताकी समान गुणशाली हुये ॥ ९ ॥ वह सदा शान्त रहते, मृदु वाक्यसे संभाषण करते, कोई कटूक्ति करता तौ परुषवाक्य प्रयोग न करके चुपरहते ॥ १० ॥ कोई केवल एकही उपकार करता तौ वह उससेही संतुष्ट होजाते । और चाहे किसीने सैकडों अपकार कियेहों उनका मनमें कुछ ध्यान न रखते ॥ ११ ॥ वह अस्त्राभ्याससे अवकाशके समय, सुशील, वयोवृद्ध ज्ञानवान् सज्जनोंके साथ सम्मिलितहो शास्त्रकी चर्चा करते ॥ १२ ॥ वह बुद्धिमान् प्रियवादी व मधुरालापी थे. स्वयं वीर होकर वीरताके गर्वसे मत्त नथे ॥ १३ ॥ वह सत्यका समादर और

वृद्धोंकी मर्यादा करतेथे कदाचित्भी झूठका आदर नही करते वह जैसा प्रजाको प्रेमके बर्त्तावसे चाहते वैसाही प्रजागण उनके प्रति भक्तिवानथे ॥ १४ ॥ वह दुःखि-योंके ऊपर दया करते कभी क्रोध नही करते ब्राह्मणोंके प्रति भक्तिमान्थे उनकी पूजा करते व धर्मज्ञ दीनोंका दुःख दूर करतेथे उनका अंतःकरण नित्य शुचि और पवित्र हुआ और इन्द्रियोंको जीते हुयेथे ॥ १५ ॥ उनकी बुद्धि कुल धर्मके रक्षा करनेमेंभी व्यग्रथी इसलिये वह क्षत्रिय धर्मको अधिक प्यार करतेहुये और अत्यन्त प्रीतिसे कीर्तिको अधिक स्वर्ग फलका साधन मानतेथे ॥ १६ ॥ व असंगल व अकार्यमें रत नहीं थे धर्मविरुद्ध कथामें उनकी रुचि नही थी वादानुवादके स्थल में वह बृहस्पतिकी नाईं युक्ति प्रदर्शन करतेथे ॥ १७ ॥ वह बोलनेवालोंमें श्रेष्ठथे पुरुषके सार जाननेमें उनकी शक्ति अटलथी सुन्दर शरीरवाले बलवान् वह देशकालज्ञ थे उनका शरीर रोगरहित व तरुणथा वे अद्वितीय साधुथे ॥ १८ ॥ वह राजादशरथजीके पुत्र श्रेष्ठ गुणोंसे युक्तथे और इन्हीं गुणोंके कारण वह प्रजाओंके बाहर रहनेवाले प्राणोंकी समान प्यारे हुये ॥ १९ ॥ उन्होंने यथाविधि सांग वेद वे-दांग अध्ययन करके समावर्त्तन किया ॥ वह भरतजीके बडे भाई समस्त अस्त्र शस्त्रों में पारगामी पितासे भी अधिक पंडित हुये ॥ २० ॥ वह कल्याणके जन्मस्थान साधु सरल दीनतारहित थे व सत्यवादी धर्मार्थदर्शी वृद्ध ब्राह्मणगण उनके आचार्यथे ॥ २१ ॥ वह धर्मार्थ काम तत्त्वके मर्मको जानतेथे, स्मृतिमान् विलक्षण चतुरथे लौकिक आचार विचारके विधान जाननेमें भी चतुरथे ॥ २२ ॥ वह अतिगंभीरस्व-भाववाले फलकी प्राप्ति जबतक न हो तब तक उनका भेद कोईनहीं जानताथा उनका गूढ अभिप्रायथा वह सहायवान्थे उनका क्रोध और हर्ष निष्फल नहीं होताथा सत्पात्र में दान और न्यायसे द्रव्य उपार्जन करतेथे ॥ २३ ॥ वह गुरुलोगोंके प्रति अतिशय भक्तिमान् व दृढ प्रतिज्ञ, कभी असद्वस्तुके ग्रहण करनेमें उनकी वासना प्रकाशनहीं हुई, न कभी दुर्वाक्यकहते व आलस्यशून्य अप्रमत्त अपने व पराये दोषके जानने वाले ॥ २४ ॥ वह शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ और पुरुषोंके तारतम्य जानने में पंडितथे और लोकोंके प्यारेहुये न्यायानुसार निग्रह व अनुग्रह प्रदर्शन करनेमें तत्पर रहतेथे ॥ ॥ २५ ॥ वह परिवारवर्गके प्रतिपालन और दुष्टजनोंके शासन करनेमें चतुरथे, नि-ग्रहके स्थानको जाननेवालेथे, देशकालके अनुसार प्रजासे द्रव्य उपार्जन करनेके उपायको जानतेथे जिसप्रकार भौंरा फूलोंसे शहद इकट्ठा करताहै वैसेही महाराज

रामचन्द्रजी प्रजाके निकटसे धन ग्रहण करनेमें चतुरहुये और इसी प्रकार आयके अनुसार खर्च करतेथे॥ २६॥ वह शास्त्रादि व नाटक प्रभृतिके जाननेमें विलक्षण अनुरक्तथे; वह अर्थ धर्म संग्रह पूर्वक अविरोध कर्त्तव्य कर्म पालन करते और आलस्य रहितथे ॥ २७ ॥ विहारकालमें जितनी शिल्प वस्तुओंका क्रीडार्थ प्रयोजन होता. उनको भली भाँति जानते. हस्ती, अश्व प्रभृतिके शिखानेमें जैसे चतुरथे वैसेही उनपर सवारी करनेमें चतुर हुये ॥ २८ ॥ वह धनुर्विद्यामें पारदर्शी व अतिरथ प्रसिद्धथे, वे पराई सेनाके हन्ता एवं चक्रादि व्यूहके निर्माण करनेमें चतुरथे ॥ २९ ॥ देवगण और असुरभी कुपितहोकर उनको युद्धमें नही हरा सक्के वह निद्रा रहित क्रोधको जीतनेवाले गर्व व मात्सर्यसे हीन हुये ॥ ३० ॥ न तौ वे किसीकी अवज्ञाके पात्र न कालके वशीभूत हुये अधिक क्या कहें त्रिलोक उनकी पूजा करता इस प्रकारसे दशरथ पुत्र श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त प्रजाके प्यारे हुये ॥ ३१ ॥ वह सलाहमें तीनों लोकोंके सम्मत हुये. क्षमामें पृथ्वीके समान, बुद्धिमें बृहस्पतिजीके समान और वीरतामें शचीनाथ इन्द्रके समान हुये ॥ ३२ ॥ प्रदीप्त सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणोंके प्रभावसे प्रकाशित होताहै वैसेही प्रजाके इष्ट और पिताके प्यारे दुलारे रामचन्द्रजी गुण ग्रामसे मण्डितहो शोभा पाने लगे ॥ ३३ ॥ तब रामचंद्रजीको ऐसे दिव्य गुण व्रत युक्त व अतुल पराक्रम लोकोंके स्वामीकी समान देखकर वसुमति पृथ्वीने उनको पति बनानेकी मनोकामनाकी ॥ ३४ ॥ ऐसे समय परम तप करनेवाले राजा दशरथजी रामचन्द्रजीको बहुत सारे गुणोंसे युक्त अनुपम गुण निधान ज्ञान खान देखकर मनमें यह चिन्ता करने लगे कि ॥ ३५ ॥ मेरी यह वृद्धावस्था उपस्थित है बहुत काल राज्यकरते मुझे बीतगये अब रामचन्द्रजीको राज्य पदपर अभिषिक्त देखकर नजाने मुझे कितना आनन्द होगा ॥ ३६ ॥ मेरी यह आशा अन्तरमें आनन्द उपजा रहीहै नहीं कह सकता कि, मैं रामचन्द्रजीको कब यौवराज्यपर प्रतिष्ठित देखूंगा ॥ ३७ ॥ जिसप्रकार जल वर्षाने वाला मेघ लोकोंकी वृद्धि करनेसे और दया करनेसे लोकोंको प्रीतिकर होताहै वैसेही रामचन्द्रजी लोकहितैषी व सर्व भूतोंपर दया करनेवालेहैं प्रजाको मुझसेभी अधिक प्यारेहैं ॥ ३८ ॥ रामका बल यम व इन्द्रकी सदृश, बुद्धि बृहस्पतिकी तुल्य धीर पर्वतकी समान और वह मुझसेभी अधिक गुणवालेहैं ॥ ३९ ॥ कब मैं इस वृद्ध दशामें पुत्र रामको निखिल समाजका अधिपति देखकर यथायोग्य स्वर्गको प्राप्त

होऊंगा ॥ ४० ॥ राजा दशरथजी रामचन्द्रको इस प्रकारसे और राजाओंको दुष्प्राप्य अत्यन्त श्रेष्ठ असंख्य लोकमें उत्तम गुणोंसे विभूषित ॥ ४१ ॥ तथा औरभी अनेक प्रकारके श्रेष्ठ गुणोंसे अपने पुत्र रामचन्द्रको युक्त देखकर मंत्रियोंके सहित सलाह करके उनको युवराज करनेका मनमें विचार करते हुये ॥ ४२ ॥ व मंत्रियोंसे कहा कि मेरे शरीरमें बुढापेका आधिपत्यहोआया स्वर्गमें ग्रहण नक्षत्रादिकोंकी मूर्त्ति सब विकृत और आकाशमें महावातादिके उत्पात तथा भूमिकम्प प्रभृति दैव दुर्निमित्त दृष्टि होतेहैं यह भय देनेवालेहैं ॥ ४३ ॥ इस कारण इस अपने चित्तके शोक दूर करनेके निमित्त पूर्ण चन्द्रानन रामचन्द्रजीको यौवराज्याभिषेक करनेकी मेरी इच्छाहै मैं जानताहूं कि, यह बात रामचन्द्र व प्रजाके अनभिप्रेत नहीं होगी ॥ ४४ ॥ अनन्तर अवनीनाथ दशरथजी योग्य कालमें अपने व प्रजाके उद्देश्यसे रामचन्द्र व प्रजाके प्रति स्नेह प्रदर्शन करनेके अर्थ रामको यौवराज्यमें अभिषेक करनेको शीघ्रताके कारण उत्सुक हुये ॥ ४५ ॥ राजा दशरथजीने उस समय सब पृथ्वीके अनेक देश और नगरीके प्रधान लोगोंको बुलाया ॥ ४६ ॥ उन सबको आदर पूर्वक वास भवन और नाना प्रकारके अलंकारादि प्रदान किये, प्रजापति ब्रह्माजी जिस प्रकार प्रजा संवेष्टित होकर शोभित होतेहैं वैसेही उस समय उपस्थित व्यक्ति गणोंसे राजा दशरथजी शोभाको प्राप्त हुयेथे ॥ ४७ ॥ उस समय शीघ्रताके कारण केकय राज और मिथिलाधिपतिको यह समाचार नहीं दिया इस कारण कि, उनको यह शुभ समाचार पीछेसेही मिल जायगा ॥ ४८ ॥ परबल विजयी महाराज दशरथजी सिंहासनपर उपविष्टथे कि, इतनेमें विदेशीय नृपति गण उपस्थित हुये ॥ ४९ ॥ वह सब राजा कौसल राजके निकटसे अनेक प्रकारके बहुमूल्य आसन ग्रहण करके उनके सामने नम्रतासे बैठे ॥ ५० ॥ विनयी नृपतिगण और जनपद वासी प्रधान व्यक्ति गणोंके इस भांति संमानितहो सभामें बैठनेपर अमरनाथ इन्द्र जिस प्रकार देवताओंके बीचमें रहकर शोभित होतेहैं वैसेही राजा दशरथजी शोभा पाने लगे ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामाये० वा० आ० अयोध्याकांडे भाषायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

तिसके पश्चात भूमिनाथ दशरथजी सब नगरवासियोंको अपने सौंही बिठाकरे परमहित व हर्षवर्धनकारी अतिविख्यात वचन सबसे ऐक्यता कर बोले ॥ १ ॥ बोलनेके समय राजाकी वाणी परम ऊँचे स्वरके सहितथी मानों देव दुन्दुभी बजाय बडे गंभीर शब्दसे बादल गर्जा ऐसा जानपडा ॥ २ ॥ जिस प्रकार राजाओंको बोलना चाहिये वैसीही अतिसुन्दर उपमारहित वाणी रससे भरी सब नरनाथोंमे राजा दशरथजी बोले ॥ ३ ॥ आप लोगोंपर विदित है कि, हमारे पूर्व राजेन्द्र पुरुषोंने पुत्रवत इस विशाल राज्यको पालन किया है ॥ ४ ॥ मैं इस समय इक्ष्वाकु प्रभृति नरनाथोंके पालन किये हुये राज्यमें सब जगतमें सुखसंपत्ति बढानेके अर्थ प्रस्तावकरताहूं ॥ ५ ॥ मैंने भी प्रथम पुरुषोंकी नाईं उन्हींके मार्गमें चलकर आत्म सुखभोग विरत होकर यथाशक्ति आलस्यको त्यागनकरकै इस राज्यको पालन कियाहै ॥ ६ ॥ सब लोकोंकी मंगल कामनासे श्वेतराजछत्रके नीचे रहकर मैंने अपने शरीरको जीर्ण करदिया ॥ ७ ॥ इस समय मेरी उमर कई हजार अर्थात साठ हजार वर्षकी हुई अब मेरी इच्छा है कि, बुढापेसे जीर्ण हुये शरीरको विश्राम दूं ॥ ८ ॥ अजितेंद्रिय पुरुष जिस भारको नहीं उठा सकते मैं राजप्रभावानुसार वही गुरुतर धर्मभार वहनकरकै थक गयाहूं ॥ ९ ॥ सो अब मैं इन उपस्थित द्विजातियोंकी अनुमति ग्रहण करके पुत्रको प्रजा पालन भार सौंप विश्राम करनेकी वासना करताहूं ॥ १० ॥ शत्रुबलघाती मेरे पुत्र रामचन्द्रजी वीर्यमें पुरन्दरकी समान और सब श्रेष्ठ गुणोंकी खानि हैं ॥ ११ ॥ पुष्यके सहित चन्द्रमाका संयोग होनेसे जैसा होताहै वैसेही धार्मिक चूडामणि रघुवीरको प्रातःकाल यौवराज्यमें अभिषेक करूंगा ॥ १२ ॥ लक्ष्मणके बडे भाई लक्ष्मीवान् रामचंद्र सब भाँति राजपदके योग्यहैं । मुझे विश्वास है कि, यह देश क्या त्रिलोक मंडल इनको पाकर सनाथ होगा ॥ ॥ १३ ॥ मैं अभी इस श्रेष्ठ अपने पुत्र रामचन्द्रको राज्य दे युवराज बनाकर मनका क्लेश निवारण करूंगा ॥ १४ ॥ यदि मेरी यह बात तुम सबके अनुकूल हो तो इसमें अपनी सम्मति दो कि, यह कार्य करना चाहिये ॥ १५ ॥ और जो मेरा यह प्रस्ताव तुम्हें अच्छा न लगे तो इससे अधिक जो हितकर हो उसके विषयमें परामर्श दो; क्योंकि मध्यस्थ लोगोंकी चिन्ता पूर्वपक्ष और उत्तरपक्षकी विवेचनासे विलक्षण होती है ॥ १६ ॥ नीलमेघको आकाशमें निहारकर मोरगण जैसे आनन्दित

वैसेही सब राजाओंने प्रसन्न मनसे महाराज दशरथका सुन्दर वचनयुक्त प्रस्ताव ग्रहण किया ॥ १७ ॥ उस समय सभामें सामन्त राजाओंकी हर्ष ध्वनि उच्चारित हुई मानों सब लोगोंके आन्दोलन करनेसे पृथ्वी कम्पायमान होनेलगी ॥ १८ ॥ अनन्तर द्विजातिगण व सब सेनापति समस्त पुरवासी देशवासियोंके सहित धर्मज्ञ राजाके अभिप्रायको समझकर ॥ १९ ॥ वे सब श्रेष्ठ बुद्धिमान् मिलित होकर विचार करने लगे और उसको अच्छी प्रकारसे विचारकर बूढे राजा दशरथजीसे कहने लगे ॥ २० ॥ हे महाराज ! आपकी अवस्था अब बहुत हजार वर्षोंकी हुई आप वृद्ध होगयेहो अतएव अब आप रामचन्द्रजीको अभिषेक कर यौवराज्य दे दीजिये ॥ २१ ॥ हम सब महावीर महाबाहु रामचंद्रजीको बडे हाथी पै चढे और उनके शिरपर छत्र लगा हुआ देखनेके अभिलाषी हुये हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार उनके वचन सुन राजा दशरथजी उनके मनका भाव समझ अनजानकी नाई प्रश्न कर बोले ॥ २३ ॥ तुम लोग हमारे प्रस्तावसे जो रामको यौवराज्या भिषिक्त करनेमें सम्मत हुये हो सो मेरे मनमें सन्देह उपस्थित हुआहै, अतएव अपने अभिप्रायको साफ २ कहो ॥ २४ ॥ मैं जब धर्मानुसार राज्य पालन करही रहा हूं फिर किस कारणसे महाबली रामको राजा करनेमें तुम्हारी प्रवृत्ति हुई है ?॥ २५॥ तब नृपगण पुरवासी व और देशसे आये हुये सब मनुष्य कहने लगे कि हे महाराज ! आपके पुत्र रामजीमें अनेक प्रकारके सद्गुण दृष्टि आतेहैं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! हम सब आपसे उनहीं अमितगुणशाली देवताके समान बुद्धिमान शत्रुओंकोभी आनन्द देनेवाले और इच्छित पदार्थके देनेसे सबको प्रसन्न करने वाले रामचन्द्र जीके गुण कहतेहैं आप श्रवण कीजिये ॥ २७ ॥ सत्य पराक्रमी रामचन्द्रजी दिव्य गुणोंमें इन्द्रतुल्य, सत्य शरण, वह अपने गुण प्रभावसे पूर्वपुरुष इक्ष्वाकु प्रभृति राजा ओंसे बढगयेहैं ॥२८॥ रामचंद्र पुरुषोत्तम सत्यपरायण और सत्यस्वरूप हैं; साक्षात् धर्म व अर्थ उनमें ही आश्रित हैं ॥ २९ ॥ [illegible] हैं. क्योंकि चन्द्रमा अपने किरणोंसे सब अन्न फल फूलादिको [illegible] प्रजा[illegible] हित करते हैं. क्षमा गुणमें पृथ्वी तुल्य बुद्धिमें बृहस्पतिजीके समान वीर्यमें साक्षात् [illegible] इन्द्रकी समान हैं ॥ ३० ॥ वे जितेंद्रिय सुशील, सहन[illegible] धर्मज्ञ सत्यसागर क्षमावान् व कृतज्ञहैं ॥ ३१ ॥ वह कोमल स्वभाव [illegible] असूया शून्य, दर्शनीय सम्पूर्ण प्राणियोंसे प्यारे वचन बोलने वाले वह सत्य[illegible]हैं ॥ ३२॥

वह रामचन्द्रजी बडे ज्ञानवान् ब्राह्मणोंकी सेवा करते हैं इनही सद्गुण परम्परासे उनकी कीर्ति यश व तेज बढ रहाहै ॥ ३३ ॥ सुरासुर व मनुष्य लोकके सब अस्त्र उनके अधिकारमें हैं वह सब विद्याओंमें पारदर्शी षडङ्ग सहित वेद पढे हुये हैं ॥ ॥ ३४ ॥ संगीत विद्या नृत्यगीतादिमें अच्छी शिक्षा पाये हुये हैं; वह मतिमान् सकल कल्याणोंके स्थान हैं वह कभी दीन नहीं होते व साधुज्ञ और बडे बुद्धिमान् हैं ॥ ॥ ३५ ॥ धार्मिक, धर्म अर्थके जानने वाले, ब्राह्मण गण उनको उपदेश देनेवाले हैं, रामचन्द्रजी जब युद्धार्थ लक्ष्मणके साथ ग्राम अथवा न[illegible] यात्रा करतेहैं ॥ ३६ ॥ बिना जय लाभ किये लौटते नहीं, वह जब संग्रामसे [illegible] रथपर या हाथीपर लौटते हैं ॥ ३७ ॥ तब मार्गमें स्वजनोंकी नाईं पुरवा[illegible] [illegible]नित्य कुशल पूछतेहैं वह उनसे उनके पुत्र, परिवार भृत्य, शिष्य, अग्निहोत्र ॥ ३[illegible] ॥ [illegible] अन्तरङ्ग सम्बन्धीय समस्त संवाद क्रमसे पूछतेहैं वह यह बात हम लोगोंसे [illegible]बार पूछतेहैं कि तुम्हारे शिष्य धर्मपूर्वक तुम्हारी सेवा करतेहैं वा नहीं ॥ ३९ ॥ इस प्रकारसे पुरुषसिंह रामचन्द्रजी सबसे बोलतेहैं फिर जब किसी मनुष्यको कुछ दुःख पडताहै तो उसे देखकर आप दुःखी होतेहैं ॥ ४० ॥ व जब किसीके कुछ उत्सव होता तो आप पिताकी समान सन्तुष्ट होते सदा सत्यवादी बडे धनुष धारण करनेवाले, वृद्धसेवी जितेन्द्रिय ॥ ४१ ॥ वह धर्मके आश्रयसे [illegible] कार्य करतेहैं बात कहनेके समय वह मृदु मन्द हास्य करतेहैं कल्याणकी करने [illegible] बातोंको अच्छे प्रकार कहतेहैं विरोधकी कथामें उनकी रुचि नहीं है ॥ ४२ ॥ वह बृहस्पतिजीके समान युक्तिमय वाक्यके वक्ताहैं उनके दोनों सुन्दर भ्रूयुक्त ताम्रवत् [illegible] २ नेत्रहैं, देखनेमें साक्षात् विष्णुजीकीनाईं ॥ ४३ ॥ रामचन्द्रजी शौर्य वीर्य व पराक्रममें लोकोंके अतिशय प्रिय व प्रजापालकहैं आश्चर्यहै ! कि नाना प्रकारके भोग विलासादि उनको कभी किंचित् मग्न नहीं कर सके ॥ ४४ ॥ इस पृथ्वीकी तो कथा यह त्रिलोकीका राज्य पालन करसकेहैं इनका [illegible] व्यर्थ होनेवाली नहींहै ॥ ४५ ॥ यह नियमानुसार वध्यका व[illegible] और अ[illegible] [illegible] दोषयुक्त करतेहैं, निर्दोष मनुष्यके प्रति उनका विराग भाव न[illegible] होता बरन् उनको धन दानकरके सन्तुष्ट करनाही रामचन्द्रजीका धर्महै ॥ ४[illegible] [illegible]चन्द्रजी प्रदीप्त सूर्यकी नाईं प्रजा पुंजके प्रीतिपात्र होनेसे और उदार [illegible] होनेसे सर्वदा प्रकाशपातेहैं ॥ ४७ ॥ अधिक क्या कहैं, ऐसे गुणनिधि [illegible] [illegible]भी लोकपालकी समान रामचन्द्रजीको

पति पानेके लिये वसुमतीकी भी कामनाहै ॥ ४८ ॥ अपने भाग्यसेही महर्षि कश्यपजीको जैसे मरीचिने पायाथा वैसेही आपने पुत्र रामभद्रको पायाहै वह राज्य-पद पर आरूढहोवें यह तो हमारा बडाभाग्यहै ॥ ४९ ॥ बरन् सुरासुर, मानव, गंधर्व, व उरगगण रामके बल आरोग्य और दीर्घ जीवनकी कामना करतेहैं ॥ ५० ॥ इसीसे राजा ग्राम पुर सबकहीके रहनेवाले लोग रामचन्द्रजीकी प्रशंसा करतेहैं, व बाहर भीतरके सब देश पुर, राज्यनिवासी प्रशंसा करतेहैं ॥ ५१ ॥ यहांतक कि क्या स्त्री, क्या वृद्ध, क्या युवा सबही संध्या व प्रातःकालमें देवताओंके निकट यशस्वी रामचन्द्रजीकी मंगल कामना करतेहैं ॥ ५२ ॥ हे देव ! इस समय आप सबके अभिप्रायानुसार रामको राज्याभिषेकमें अनुमति दीजिये। इन्दीवर श्याम शत्रुओंके मारनेवाले रामचन्द्रको राज्यकी प्राप्तिहोना हम सबको प्रार्थनीयहै॥ ५३ ॥ हेराजन् ! हम तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्रको राज्यपर बैठेहुये देखनेकी इच्छा करतेहैं ॥ ५४ ॥ हे वरद ! अब यह प्रार्थनाहै कि आप विष्णुकी समान सब लोकोंके हितकारी उदार गुण संपन्न अपने पुत्र रामचन्द्रको प्रसन्नचित्तसे यौवराज्यमें शीघ्र अभिषिक्त कीजिये ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकाण्डे भाषायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३.

अनन्तर महाराज दशरथजी पुरवासी और देशोंके राजाओंके बद्धाञ्जलि और शिष्टाचारको देखकर उनसे प्रिय व हितकारी वाक्य बोले ॥ १ ॥ मैं तुमसे अतिशय प्रसन्न हुआहूं तुम लोगोंने जो मेरे ज्येष्ठपुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करनेकी इच्छाकी है इससे मुझे क्याही आनन्द और विचित्र प्रतापका परिचय मिला है सो कहनहीं सकता ॥ २ ॥ इस प्रकारसे राजाने उन ब्राह्मणोंकी पूजा व सत्कारकर और सबसे यह कह वसिष्ठ व वामदेव प्रभृति ब्राह्मणोंसे कहा ॥ ३ ॥ इस समय पुण्यमय मधु (चैत्र) मास उपस्थित है सब उपवन नानाविधि फूलोंके गहनोंसे शोभित हुये हैं अतएव इस समय आप उन प्रयोजनीय चीजोंको इकट्ठाकीजिये जो रामचन्द्रके यौवराज्यमें आवश्यकहोंगी ॥ ४ ॥ राजाके यह कहनेपर सभामें घोर शोर होने लगा। थोडी देरमें कुलाहल बंद होनेपर राजाने ॥ ५ ॥ मुनिशार्दूल वसिष्ठजीसे कहा कि, रामचन्द्रके अभिषेकार्थ जो कुछ प्रयोजन हो ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! आप

उसके इकट्ठा करनेकी आज्ञा दीजिये राजाके ऐसे वचन सुन मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ॥ ॥ ७ ॥ मंत्रियोंमें जो वहांपर हाथ जोडे खडे थे बोले कि, तुम लोग सुवर्णादि रत्न द्रव्य पूजाकी सामग्री सब औषधियेंभी ॥ ८ ॥ उजले फूलोंकी माला धानकी खीलैं पृथक् २ पात्रमें मधु, घृत, नवीनवस्त्र, रथ, सबशस्त्र ॥ ९ ॥ चतुरंगिणी सेना सुलक्षण हाथी, दो चामर, व्यजन, ध्वज, दण्ड, सफेद छत्र ॥ १० ॥ एक शत सुवर्णके घडे इनके सिवाय और धातुओंके हजारों कुम्भ, सोनेसे जिसके सींग मढेहों ऐसा एक बैल सम्पूर्ण व्याघ्रका चर्म ॥ ११ ॥ प्रभृति जिस वस्तुका प्रयोजन हो वह सब इकट्ठा करके प्रातःकाल ही राजाकी अग्निशालामें धरो ॥ १२ ॥ रनिवास और नगरके सब द्वार चन्दन, माला, सुगन्ध व धूपादिसे गंध युक्त किये जाँय ॥ ॥ १३ ॥ जिससे हजारों मनुष्य तृप्तहो जाँय प्रातःकाल इतना दही घी मिला हुआ ढेरों अन्न बहुत दक्षिणा ॥ १४ ॥ सत्कार पूर्वक ब्राह्मणोंको प्रातःकाल देकर संतुष्ट करना, घी दही खीलैं और बहुतसी दक्षिणा भी देना ॥ १५ ॥ कल प्रभात सूर्योदय होतेही स्वस्तिवाचन होगा तुम लोग उसके लिये अभी ब्राह्मणोंको न्योतकर उनके लिये आसन बनाओ ॥ १६ ॥ मार्गमें झंडियाँ बंध जाँय और वहा छिडकावहो जायँ सम्पूर्ण गानेवाली और वेश्यायें सज धज कर ॥ १७ ॥ राज भवनकी दूसरी कक्षामें स्थिति करें, जितने देवताओंके मन्दिर अयोध्यामें हैं सबमें सब तरहके खाने पीने योग्य पदार्थ दक्षिणा सहित ॥ १८ ॥ भेजे जायँ । पुष्प मालादिक व पूजनकी सामग्री वहां भेजी जाय और ब्राह्मण लोग बुलाय देवताओंके प्रसन्न होनेकें लिये भोजन कराये जाँय, वीरगण भूषण वसनसे सज धज बडी कृपाण व चर्म धारण कर ॥ १९ ॥ उत्सवके क्षेत्रमें विचरण करते रहें । इस भाँति वसिष्ठ वामदेव दोनों ब्राह्मण मंत्री व सेवकोंको आज्ञा दे ॥ २० ॥ जो कुछ कर्म बाकी थे यह करने लगे और उसका समाचार राजाको भी देदिया कि महाराज जो कुछ कहना सुनना धरनाथा वह सब कुछ करने कराने का आरम्भ कर दिया गया॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंके यह वचन सुनकर वसिष्ठ वामदेव दोनों परम प्रसन्न हुए राजा दशरथ परम प्रीति और प्रसन्नता युक्त वचन अपने द्युतिमान् मंत्री सुमंत्रसे बोले ॥ २२ ॥ कि तुम बहुतही शीघ्र गुण सम्पन्न रामचन्द्रको हमारे पास लाओ वैसेही सुमंत्र बहुत अच्छा कहकर राजाकी आज्ञासे ॥ २३ ॥ महारथी रामचन्द्रजीको रथमें बैठाकर महाराज दशरथजीके निकट लाये महाराज दशरथजीको उन्होंने वहां पर बैठे देखा ॥ २४ ॥ उस समय

पूर्व, उत्तर, पश्चिम दक्षिणके राजा लोग, आर्य व म्लेच्छ, अरण्य व पर्वतोंके वासी॥ ॥ २५ ॥ राजाकी उपासना कर रहेथे जैसे सब देवता लोग इन्द्रकी सेवा करतेहैं तिन सबोंके बीचमें राजर्षि दशरथजी जैसे देवोंके बीचमें इन्द्र शोभित होतेहैं विराजमानथे ॥ २६ ॥ कि इतनेमें दशरथजीने महल परसे अपने पुत्र रामचंद्रजीको आते हुये देखा, गन्धर्व राजाकी समान सुन्दर लोकमें जिनके पुरुषार्थ विख्यातहैं ॥ २७ ॥ लंबी बाँह वाले, बडे बलवान् मातंगकी समान चाल चलनेवाले, उनका चन्द्रमुख अतीव प्रियदर्शन ॥ २८ ॥ गरमीसे तपाये मनुष्यको मेघ जैसे आनंद देने वाला होताहै वैसेही रामचंद्रजी अपने असाधारण रूप व उदारताके गुणसे मनुष्यों की दृष्टि व चित्तके हरनेहारे हुये ॥ २९ ॥ नराधिप विना पलक मारे रामचन्द्रजी को देखकर तृप्त नहीं होतेथे। इतनेमें रामचन्द्रजीको सुमंत्रने श्रेष्ठ रथसे उतारा ॥ ॥ ३० ॥ रामचन्द्रजी पिताके पासको आये सुमंत्रभी इनके पीछे २ हाथ जोडे चले पितृ भक्त रामचन्द्रजी कैलास शिखर सदृश विचित्र धवरहरेपर ॥ ३१ ॥ शीघ्रतासे पिताके देखनेको चढने लगे वह क्रमशः अग्रसरहो हाथ जोडकर पिताके चरणोंमें नवे ॥ ३२ ॥ और अपना नामोच्चारण पूर्वक पिताके चरणोंमें प्रणामकर हाथ जोड खडेरहे पुत्रको प्रणत और हाथ जोडे देख राजाने ॥ ३३ ॥ उनका हाथ पकड उनको बारंबार हृदयसे लगाया महाराजने श्रीरामचन्द्रजीको मणिकांचन भूषित ॥ ३४ ॥ श्रेष्ठ परममनोहर आसनपर बैठनेकी आज्ञादी पिता के दिये हुये श्रेष्ठ आसनपर बैठ रामचन्द्रजी दिपने लगे ॥ ३५ ॥ सुमेरु पर्वत जैसे उज्वल सूर्यके उदय कालमें तेजके प्रभावसे प्रकाशमान होताहै, रामचन्द्रजीके बैठने से यह आसनभी वैसेही शोभित हुआ और वह सभाभी सुशोभित हुई ॥ ३६ ॥ चंद्रमाके उदय होने पर ग्रह नक्षत्र से पूर्ण शरद ऋतुमें आकाश जिसप्रकार शोभित होताहै वैसेही रामचंद्रके बैठनेसे राजसभा शोभित हुई और राजा उन्हें देख सन्तुष्टहुये ॥ ॥ ३७॥ मनुष्य दर्पणमें अपना अलंकार युक्त प्रतिबिम्ब देखकर जिस भाँति आनन्दित राजा दशरथजी पुत्रको देखकर अतिशय आनन्दित हुये और वह अच्छी प्रकार बैठे हुये अपने पुत्रसे संभाषण पूर्वक ॥ ३८ ॥ महर्षि कश्यपजी जैसे इन्द्रको आज्ञा देतेहैं वैसेही राजा रामचन्द्रजीसे बोले, हे वत्स ! तुम हमारी बडी रानीके अनुरूपही पुत्र हुयेहो ॥ ३९ ॥ तुममें सब श्रेष्ठ २ गण विद्यमान है तुम गुणोंमें भी सबसे बडे हो इसी कारण मुझे सबसे अधिक प्यारेहो, हे मेरे

बडे पुत्र ! वैसेही प्रजागण तुम्हारे ऊपर विशेष अनुरक्त रहें ॥ ४० ॥ अतएव पुष्य नक्षत्रमें तुम युवराज पदवीपर बैठो । मैं तुमसे कुछ अधिक नहीं कहा चाहता, क्योंकि तुम स्वभावसेही गुणवान् हो और प्रजा वर्गभी निर्णय कर चुके हैं ॥४१॥ ऐसा होनेसे भी हे पुत्र ! स्नेहकी प्रबलताके कारण मैं तुमको कुछ हितोपदेश देनेकी अभिलाषा रखता हूं; यद्यपि तुम विनयी हो तथापि विनयी होना और नित्यकाल इन्द्रियोंको जीतना तुम्हें कर्त्तव्यहै ॥ ४२ ॥ काम क्रोधसे जो समस्त उठे हुये दुर्व्यसन लोगोंको होजाया करते हैं तुम उनका परित्याग करो, परोक्ष वृत्ति अर्थात् दूतके द्वारा प्रजाका समाचार जानकर और अपरोक्ष विचार अर्थात् सभामें बैठ प्रत्यक्ष प्रजाके न्याय करनेके विचारमें स्थित हूजिये ॥ ४३ ॥ सर्व मंत्री इत्यादि व प्रजाके पालनमें तत्पर रहो. कोष्ठागार, अस्त्रगृह, धनागार व धान्यागारको पूर्ण रखनेमें यत्नवान् रहो ॥ ४४ ॥ जो सदा प्रकृति वर्गको अनुरागी रखकर राज्य पालन कर सक्ते हैं, उनके मित्रगण उनसे ऐसे सन्तुष्ट रहते हैं जिसप्रकार देवता लोग अमृत पाकर प्रसन्न होते हैं ॥ ४५ ॥ अतएव हे पुत्र ! तुम इसप्रकार आत्मसंयम करके कर्त्तव्य कर्म साधन करते रहो; रामचन्द्रके हितकारी मित्रोंने राजाकी यह आज्ञा श्रवण करके ॥ ४६ ॥ शीघ्रतापूर्वक यह समाचार जाकर राजमहिषी कौसल्याजीसे कहा, सुनतेही बहुतसा सुवर्ण रत्न गायें और अनेक वस्तु ॥ ४७ ॥ कौसल्याजीने उन सुसमाचार सुनानेवालोंको देनेकी आज्ञा दी । इतनेमें रामचन्द्रजी पिताके चरण वंदनकर रथमें चढकर गृहाभिमुख गमन करने लगे और भले जनसमूहोंसे सत्कारको प्राप्त हो अपने परम कान्तिमान घरमें आये ॥४८॥ पुरवासीगण राजाकी आज्ञा सुन उनको इष्ट वस्तु प्राप्ति स्वरूप मनमें समझ महाराजके सहित मंत्रणाकर अपने २ घर लौटे । और रामचन्द्रके अभिषेकमें कोई विघ्न नहो इस कारण प्रफुल्ल मनसे देवताओंको पूजने लगे ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्ये अयोध्याकांडे भाषायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

अनन्तर पुरवासियोंके चले जानेपर निश्चय करनेवाले राजा दशरथजी मंत्रियोंके आमंत्रण पूर्वक सलाह कर यह निश्चय कर कहने लगे ॥ १ ॥ आगामी कल पुष्य नक्षत्र होगा सो कलही यौवराज्य देदेनेका मेरा अभिप्रायहै कमललोचन

रामको युवराज कल हो जाय यह निश्चय है ॥ २ ॥ राजा यह कहकर अपने रनवास में चले गये और सुमंत्रको बुलाकर रामको मेरे पास फिर लाओ यह कहा ॥ ३ ॥ सुमंत्र राजाज्ञा शिरपर धारणपूर्वक रामको शीघ्रतासे लानेके लिये फिर उनके रनवासमें गये ॥ ४ ॥ प्रतीहारीने रामचन्द्रसे सुमंत्रका आगमन सुनाया प्रतीहारीसे सुमंत्रके आनेकी वार्ता सुन रामचन्द्रजी शंकित हुये ॥ ५ ॥ फिर रामचन्द्रजी जल्दी सुमंत्रको गृहमें बुलाकर किस कारण आपका आगमन हुआ ? वह सब कहो यह पूछते हुये ॥ ६ ॥ ॥ सुमंत्रने यह सुन राजकुमार रामचन्द्रजीसे कहा कि महाराजने फिर आपके देखनेकी इच्छा कीहै इस समय जो उचित हो वह कीजिये ॥ ७ ॥ तब सुमंत्रके वचनोंको सुन शीघ्रतापूर्वक रामचन्द्रजी पिताके चरण दर्शन करनेको पिताके भवनको गये ॥ ८ ॥ राजा दशरथजी रामचन्द्रजीको आये हुये सुनकर उनसे कोई बात कहनेके लिये उन्हें निजके भवनमें लेगये ॥ ९ ॥ श्रीमान् श्रीरामचन्द्रजीने पिताके भवनमें प्रवेशकर दूरसेही राजाको देख हाथजोड़ प्रणाम किया ॥ १० ॥ महाराज दशरथजीने रामचन्द्रको प्रणाम करते हुये देख उन्हें उठाकर हृदयसे लगालिया और फिर आसनदे उनसे यह वचन बोले ॥ ११ ॥ हे रामचन्द्र ! मैं वृद्ध होगया दीर्घजीवी होकर जहांतक सुख भोगना चाहिये वहांतक मैंने भोगा । मैंने अन्नदानपूर्वक, विपुल दक्षिणाके सहित अनेक यज्ञानुष्ठान किये ॥ १२ ॥ हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारी समान अनुपम पुत्र पाकर मेरा दान व वेदाध्यायनादि करना सार्थक हुआ ॥ १३ ॥ हे वीर ! जहांतक सुख पाना संभवहै वहांतक मैंने सम्पूर्ण सुख पाया । मैं देवर्षि, पितृ, ब्राह्मण, व आत्म ऋणसे छूट-गया ॥ १४ ॥ इससमय तुम्हें यौवराज्य देनेके सिवाय मेरा दूसरा कर्त्तव्यकर्म कुछ नहींहै । इससमय जो कुछ कहूं, तुम उसके पालन करनेमें सावधान हो जाओ ॥ १५ ॥ हे पुत्र ! अब प्रजागण तुम्हें राज सिंहासनपर बिठलानेकी कामना करतेहैं अतएव हे पुत्र ! मैं तुम्हें यौवराज्य पदपर अभिषिक्त करूंगा ॥ १६ ॥ मैंने आज रातको बड़े बुरे स्वप्न देखेहैं इसके अतिरिक्त दिनमें उल्कापात, और घोर शोरसे वज्रपात हुआ ॥ १७ ॥ ज्योतिषी लोग कहतेहैं कि सूर्य, मंगल, राहु, इन तीन ग्रहोंने विरुद्ध होकर मेरे जन्मनक्षत्र पर आक्रमण कियाहै ॥ १८ ॥ ऐसे दुर्निमित्त होनेसे यातो राजाकी मृत्यु होती या कोई बड़ी आपत्ति पडतीहै ॥ १९ ॥ हे राघव ! मनुष्यका मन स्वभावसेही चंचल होताहै अतएव जबतक मेरा चित्त मोहको न

प्राप्तहो अथवा मेरे ऊपर कोई विपद आनेसे पहले तुम यह राज्यभार ग्रहणकरो ॥ २० ॥ आज पुनर्वसु नक्षत्रहै प्रातःकाल पुष्य नक्षत्रहोगा ज्योतिषी लोग बतातेहैं कि राज्याभिषेकके लिये यह नक्षत्र सर्वोपरिहै ॥ २१ ॥ मैं तुमको राज्य देनेके लिये व्यग्रहोरहाहूं हे शत्रुओंको भय देनेवाले ! मेरी यही इच्छाहै कि कलही अभिषेक होजाय ॥ २२ ॥ इस कारण आज तुम वधू सहित नियमानुसार उपवासी रहकर पत्थरकी चौकीपर कुश बिछाय शयनकरना ॥ २३ ॥ आज सावधानीसे तुम्हारी रक्षाकरना तुम्हारे मित्रोंको कर्त्तव्यहै; क्योंकि बहुधा ऐसे कार्योंमें बहुत विघ्न होनेकी संभावना होतीहै ॥ २४ ॥ भरत इससमय अपने मामाके घरहैं; सुतरां जबतक वह न आवैं तबतक इससमय अभिषेक होजाय यही हमारी वासनाहै ॥ ॥ २५ ॥ वास्तवमें भरतजी तुम्हारे हिताकांक्षी और सज्जनहैं; उनको तुम्हारी आज्ञाकेआधीन और जितेन्द्रिय जानताहूं ॥ २६ ॥ किन्तु कारण उपस्थित होने पर मनुष्यका चित्त विकृत भावको प्राप्त होजाताहै, धार्मिक. व साधु मनुष्यभी समय के हेर फेरसे राग द्वेषादि द्वारा आकुलितचित्त होजातेहैं ॥ २७ ॥ अतएव हे वत्स! इस समय तुम अपने भवनमें जाओ । स्मरण रक्खो कि, कलही तुम्हें राज सिंहासन पर बैठना होगा ऐसी आज्ञा पाय प्रणामकर श्रीरामचन्द्रजी अपने मंदिरको गये ॥ ॥ २८ ॥ वहां पहुँचे व चाहा कि जानकीजीसेभी वही सब नियम जो जो आज कर्तव्यहैं कहें पर वहां सीताजी न मिलीं, तब माताके मन्दिरमें गये ॥ २९ ॥ वहां देखा कि राजमहिषी कौसल्याजी रेशमीकपडे पहिने और मौनावलंबीहो मेरीही राज श्रीकी प्रार्थना करतीहुई देवपूजा कर रहीहैं ॥ ३० ॥ रानी सुमित्रा व लक्ष्मणजी भी रामाभिषेक सुनकर प्रथमही वहां आयचुकेथे, व देवी सीताजीभी कौसल्याजीके धोरे सावधानीसे बैठीथीं ॥ ३१ ॥ जब राम वहां पहुँचे तो उस समय रामजननी नयनमूंद परमेश्वरका ध्यान कर रहीथीं. सुमित्रा, सीता व लक्ष्मण यह सब उनकी उपासनामें नियुक्तथे ॥ ३२ ॥ कल पुष्यनक्षत्रमें रामचन्द्रजी का अभिषेक श्रवण करकै कौसल्याजी प्राणायाम पूर्वक पुराण पुरुष विष्णुका ध्यान करतीथीं॥ ३३ ॥ तब रामचन्द्रजी निकट अग्रसरहो जननीको प्रणाम किया, और संवाद प्रदानकर माताके सन्तोष वर्द्धन पूर्वक बोले ॥ ३४ ॥ जननी ! पिताजी मुझे प्रजापालनकार्य में नियुक्त करतेहैं सो मुझे कलही पिताकी आज्ञासे राज्य भार ग्रहण करना होगा ॥ ३५ ॥ पिताने आज्ञा कीहै कि, आज रातको मैं सीता समेत उपवासी रहूं, यह

व्यवस्था उपाध्याओंने दीहै ॥ ३६ ॥ राज्याभिषेकमें इससमय मुझे और जानकीको जो कार्य करने चाहियें आप अभी उनका आयोजन कीजिये ॥ ३७॥ तब रामजननी रामके मुखसे चिरकामनाका सफल वृत्तांत सुन हर्ष जडित वाक्यसे रामचन्द्रसे कहनेलगीं ॥ ३८ ॥ हे वत्स ! तुम दीर्घ जीवीहो. तुम्हारे शत्रु निर्मूल होजाँय तुम राजश्री लाभकरके हमारे और सुमित्राके भाई बांधवोंका आनन्द बढाओ ॥ ३९॥ तुमने शुभ नक्षत्रमें मेरे गर्भसे जन्म ग्रहणकिया जिसकारण तुमने अपने गुणसे अपने पिताको प्रसन्न कियाहै ॥ ४० ॥ मैं इतने दिन जो पद्मलोचन हरिकी कृपाकी प्रार्थना करती रही और व्रतादिके क्लेश जो सहन कियेथे इस समय वह सफल हुए; कारण कि इक्ष्वाकुवंशीय राजश्री तुममें आ विराजी ॥ ४१ ॥ जननी कौसल्या-जीके यह कहनेपर हाथ जोड विनीत भावसे खडे हुए भ्राता लक्ष्मणको देख रामचन्द्रजी हँसकर बोले ॥ ४२ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम मेरे दूसरे अंतरात्माहो तुमभी मेरे साथ पृथ्वीका पालन करो तुमको राज्यभार ग्रहण करना होगा अब यह राज्य लक्ष्मी उपस्थितहै ॥ ४३ ॥ हे वत्स ! मेरा जीवन और राज्यभोग मेरे प्रयोजनाधीन नहीं वरन् वास्तवमें यह तुम्हारेही लिये है, अतएव तुम इसको इच्छानुसार भोग करते रहो ॥ ४४ ॥ रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे यह कहकर जननी कौसल्या और सुमित्राके चरणोंमें प्रणामपूर्वक उनके निकटसे विदाहो जानकी सहित अपने गृहमें आये ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकाण्डे भाषायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ५.

इस ओर राजा दशरथजी कल तुम राज्यपदपर प्रतिष्ठित किये जाओगे रामसे ऐसा कह पुरोहित वसिष्ठजीको बुलाकर उनसे बोले ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे तपोधन ! आप रामके मंगल और राज्य प्राप्तिके अर्थ सीता सहित उनसे उपवास करनेको कह आइये ॥ २ ॥ वेदवित् भगवान् वसिष्ठजी राजाके वाक्यपर सम्मतहो रथमें चढ़कर रामचन्द्रके मंदिरको गये ॥ ३ ॥ वह व्रतधारी मंत्रके जाननेवाले वसिष्ठजी महावीर मंत्र जाननेवालोंमें पंडित रामचन्द्रको व्रत करानेके निमित्त ब्राह्मणोंके चढने योग्य रथपर सवारहो रामके भवनको गये ॥ ४ ॥ वह रामके स्थानपर पहुँचे तो देखा कि बादलके टुकडेकी समान रामचन्द्रका स्थान पाण्डुवर्णहै

वसिष्ठजी तीन ड्योढियोंमें तो रथपर चढेही चले गये ॥५॥ रामचन्द्रजी वसिष्ठजी-का आगमन सुनतेही संभ्रान्तहो शीघ्र आसनसे उठे और उन आदर करनेके योग्य गुरुजीको आदर करनेके निमित्त घरसे बाहर आये ॥६॥ उचित रीतिसे उनका आदर सत्कार करनेके लिये जल्दीसे वसिष्ठजीके निकट जा पहुँचे और हाथ पकडकर स्वयं उनको रथसे उतारा ॥७॥ तब महर्षि वसिष्ठजी रामचन्द्रजीके सद्व्यवहारसे सन्तुष्ट होकर उनसे संभाषण पूर्वक उनका आनन्द बढाते हुये बोले ॥८॥ हे राघव! तुम्हारे पिता तुमसे प्रसन्नहो तुम्हें यौवराज्य देना चाहते हैं आज तुम सीताके सहित उपवासी रहना ॥ ९ ॥ राजा दशरथजी प्रसन्न हो कल तुम्हें यौवराज्याभिषिक्त करेंगे जैसे प्रसन्नहो राजा नहुषने ययातिको राज्य दियाथा ॥ १० ॥ यह कहकर विशुद्धव्रत महर्षिजीने सीताजीके सहित सीतापतिको मंत्रसहित उपवासका संकल्प कराया ॥ ११ ॥ तदनन्तर वसिष्ठजी यथाविधि पूजे जाकर नरदेव दशरथपुत्रके निकटसे बिदा ग्रहण करके उनके घरसे लौटे ॥ १२ ॥ इस ओर कमललोचन रामचन्द्रजी कुछदेरतक इष्ट मित्रोंके साथ अनेक कथा वार्त्ता कहते रहे और फिर उन्हीं लोगोंके कहनेसे अपने वास भवनमें प्रवेश करते हुये ॥ १३॥ उस समय रामके मन्दिरमें नर नारी गण आमोद प्रमोदसे उन्मत्त प्राय होकर प्रफुल्ल कमल विशिष्ट मत्त विहंगमशोभित सरोवरकी समान शोभायमान थे॥ १४॥महर्षि वसिष्ठने राज्यतुल्य राम भवनसे निर्गत होकर देखा कि, राजमार्गमें बडी भीड लगरहीहै॥ १५॥राजमार्गमें असंख्य लोक झुंड बांधकर चलरहे हैं ! इतनी भीड है कि, मार्गतक दृष्टि नहीं आता अनेक कुतूहल होरहेहैं ॥ १६ ॥ नियत मनुष्योंके संघर्ष व हर्षकी अधिकतासे राजमार्ग समुद्र कलरवकी नाईं तुमुल शब्दसे परिपूर्णहै॥ १७॥अयोध्याके सब मार्ग स्वच्छ और उनपर छिडकाव होरहाहै नगरीके सब फाटक विचित्र मालाओंसे सजे हुये हैं व घर २ पर झंडियां फर फरा रही हैं ॥ १८ ॥ नगरके बालक वृद्ध वनिता, उस उत्सवमें मग्न हुये रामचन्द्रका राज्याभिषेक देखनेको सूर्योदय होनेकी राह देख रहे हैं ॥ १९ ॥ अधिक क्या कहैं प्रजा पुत्रकी श्री वृद्धिके कारण प्रभूत हर्षके बढानेवाले इस उत्सवके देखनेकी सभी बाट देख रहे थे ॥ २० ॥ राज पुरोहित वसिष्ठजी यह भीड भडक्का देखते २ मानों यह जनता भेद करते हुये मन्द २ गमनसे राजभवनमें प्रवेश करते हुये ॥ ॥ २१ ॥ यह राजभवन हिमगिरि शिखरके तुल्य था बृहस्पतिजी जैसे इन्द्रके निकट विराजमान रहते हैं वैसेही वसिष्ठजी राजाके पास जाते शोभित होने लगे ॥

॥ २२ ॥ मुनिवरके उपस्थित होतेही राजा सिंहासनसे उठ बैठे, और अभिमत कार्य होगया यह जानकर कृतार्थ हो गये ॥ २३ ॥ उस समय जो उनकी समान दूसरे सभासद् लोग बैठे थे उन सब सभासदोंने अपने २ आसनसे उठ वसिष्ठजीका बहुत सन्मान किया ॥ २४ ॥ तदनन्तर जिस भाँति केशरी गुफामें चला जाता है वैसेही नरनाथ दशरथजी गुरुजीकी आज्ञानुसार सभासदोंको बिदा दे सभा मंडप परित्याग कर अंतःपुरमें चलेगये ॥ २५ ॥ तारानाथ जिस भाँति तारोंसे वेष्टित गगन मंडलको शोभित करते हैं वैसेही नृपाल दशरथजी स्त्रियोंसे पूर्ण अमरावती तुल्य अंतःपुरको अत्यन्तही शोभित करते हुये ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिका० अयोध्याकांडे भाषायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

पुरोहितजीके चले जानेपर रामचन्द्रजी स्नानकर विशालाक्षी जानकीजीके सहित एकान्त मनसे नारायणजीका ध्यान करने लगे ॥ १ ॥ उन्होंने देव भगवान्‌को नमस्कार कर घृतपात्र धारणपूर्वक दीप्तानलमें उनके प्रीत्यर्थ आहुति प्रदानकी ॥ ॥ २ ॥ अनन्तर होमसे बची हवि भक्षण कर श्रीनारायणजीसे अपना मंगल चाहते हुये ध्यान परायण हो कुशशय्यापर ॥ ३ ॥ सीता सहित मौन धारण कर और मनको सब ओरसे वशकर दशरथ पुत्र रामचन्द्रजी अपने घरमें जो विष्णु भगवान्‌का मंदिर बनाहुआथा उसीमें सो रहे ॥ ४ ॥ वह एक पहर रात रहे उठे और अपने नौकर चाकरोंको गृह सजानेकी आज्ञादी ॥ ॥ ५ ॥ इसी समय सूत, मागध, व बन्दिगणोंके मुखसे मधुर मंगलगीत श्रवण करकै श्रीरामचन्द्रजी प्रातः संध्या करने लगे सूर्याञ्जलि करकै फिर एकाग्र हो गायत्री जपते हुये ॥ ६ ॥ उन्होंने प्रणतहो मधुसूदन भगवानकी स्तुति कर रेशमीन वस्त्र पहरे, तब ब्राह्मण गण उनका स्वस्ति वाचन करने लगे ॥ ७ ॥ उन ब्राह्मणोंका पवित्र पुण्य कर शब्द तुरहीके सहित सम्मिलितहो अयोध्यामें प्रतिध्वनित होने लगा ॥ ८ ॥ सीतानाथ सीताजीके सहित उपवासीहैं यह संवाद पाकर सबही अयोध्यावासी संतुष्ट हुये ॥ ९ ॥ तदनन्तर पुरवासी गण रामाभिषेक श्रवण करकै प्रभात हुआ जान पुरीको सुशोभित करने लगे ॥ १० ॥ शुभ्रमेघवत् देव मन्दिर चौराहे चौक अटा अटारियें छहर दिवारीके ऊपरके ऊंचे स्थानोंपर ॥ ११ ॥

व नाना प्रकारके वस्तुओंसे भरे पूरे जितने उद्यमियोंके मकानथे, व जितने मन्दिर परिवार वाले महाजनोंकेथे ॥ १२ ॥ व सब सभाओंमें जितने ऊंचे २ वृक्षथे इन सब स्थानोंपर अति उन्नत २ ध्वजा पताका बांधी गई ॥ १३ ॥ नट, नर्त्तक, और गायकोंका मन व कानोंका सुख उपजानेवाला गाना चतुर्दिक श्रवण गोचर होने लगा ॥ १४ ॥ सबके मुखसे राम राज्याभिषेककी ही बात सुनाई आने लगी, व चौराहोंमें और घर २ इसी भांतिकी चरचाथी ॥ १५ ॥ घरके द्वार खेलते २ बालकभी यही कहतेथे. कि रामको राज्यहोगा. यहां तक कि. सब एकही भावमें उन्मत्तप्रायथे सबके मुखसे यही कथा सुनाई पडतीथी ॥ १६ ॥ पुरवासी गण रामाभिषेकके लिये हार व धूप सुगन्धिसे राजमार्गको विभूषित करनेलगे॥१७॥ यदि अभिषिक्त होकर रामचन्द्र रात्रि कालमें नगरमें भ्रमण करने लगें. इसीकारण वृक्षाकार दीप स्तंभ (झाड) सब तैयार हुये ॥ १८ ॥ इस भांति पुरवासीगण रामके राज्याभिषेककी कामनासे नगरको सजाने लगे ॥ १९ ॥ सबही लोग सभा व हाटबाटोंमें सम्मिलित होकर रामके राज्यकी कथा महाराज दशरथजीकी प्रशंसा कर कहने लगे ॥ २० ॥ अहो ! महाराज दशरथजी वास्तवमें महात्मा और इक्ष्वाकुकुलके प्रदीपहैं, यह अपनी वृद्ध अवस्था जान रामचन्द्रजीको राज्य-भार प्रदान करनेके अर्थ उद्यतहैं ॥ २१ ॥ हम सब अनुगृहीतहैं कि. रामचन्द्रजी हमारे रक्षाकर्त्ता राजा होंगे ईश्वर बहुत दिनोंतक लोगोंके आद्यन्त जाननेवाले रामचन्द्रजीको हमारा रक्षक रक्खैं ॥ २२ ॥ राजकुमार रामचन्द्रजी विद्वान् और शांत प्रकृतिहैं यह जैसे धार्मिक व भ्रातृवत्सलहैं वैसेही हमारे पक्षपातीहैं॥२३॥ धर्मात्मामहाराज दशरथजी दीर्घजीवीहों जिनके अनुग्रहसे हम रामचन्द्रजीको राजा होते देखेंगे ॥ २४ ॥ पुरवासी परस्पर ऐसा कहरहेथे चारों ओरसे नगरमें यही सुनाई आताथा कि, इतनेमें रामचन्द्रजीका अभिषेक होना सुन जनपदवासी आये ॥ २५ ॥ दूरसे अनेक देशोंके लोग रामचन्द्रका अभिषेक देखनेको उपस्थित होनेलगे देखते २ विदेशीय लोगोंसे राजधानी परिपूर्ण होगई ॥ २६ ॥ पूर्णमासी के दिन जिस प्रकार समुद्र गर्जताहै वैसेही अनेक देशोंके आये हुये मनुष्योंके कल रवसे वैसाही कुलाहल हुआ ॥ २७ ॥ तिस समय अमरपुरी सदृश वह राजपुरी राज्याभिषेक देखनेको आयेहुये मनुष्योंके समागमसे आच्छन्न हो जलजन्तुओंसे क्षोभित किये महासमुद्रकी नांई शोभित हुई ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिका० अयोध्याकांडे भाषायां षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

मन्थरा राजमहिषी कैकेयीकी चिरकालकी पालनकीहुई दासीथी । वह प्रातः काल अकस्मात्, चन्द्रतुल्य धवरहरे पर चढी ॥ १ ॥ उसने देखा कि अयोध्यापुरी की सब सडकोंपर छिडकाव होरहाहै, व ठौर २ कमलोंकी माला टँगरहीहैं इसप्रकार उसने महल परसे देखा॥ २॥ चारोंओर उन्नत ध्वजा पताका बँधरहीहैं कहीं ऊँची नीची भूमि नहीं सब पाट पूटके सुधारदी गई हैं । कहीं आने जानेमें बहुत भीड़ न हो इस कारण चौडे २ बड़े २ रस्ते बनाये गये हैं. चन्दन लगाये और स्नानकिये जनोंसे युक्त ॥ ३ ॥ माला व लड्डू हाथमें लियेहुये ब्राह्मण गण श्रीरामचन्द्रजीको उपहार देनेके लिये घूमरहे थे । देवमन्दिर सब स्वच्छ किये गये और सब कहीं बाजा बज रहाथा ॥ ४ ॥ सबही उत्सवमें मत्त होरहेथे वेदगानसे दिग्मण्डल समाच्छन्नथा, औरोंकी बात तौ क्या कहैं हस्ती, अश्व गौ वृष प्रभृति जन्तुगणभी आनन्दसे अधीर हो रहेथे ॥ ५ ॥ पुरवासी आनन्दमें मग्नहो घूमरहेथे, बडी ऊँची पताका बँधरहीं व अनेक प्रकारके पुष्पहार ठौर २ टँगेथे । ऐसी अयोध्यापुरीको निहार मन्थरा अतिविस्मित हुई॥ ६॥ व मारे हर्षके प्रफुल्लित नयन किये सफेद रेशमीन वस्त्र पहिरे एकधाईको निकट खड़ा देख मन्थराने उस्से पूछा ॥ ७ ॥ कि किस कारणसे सती रामजननी कौसल्याजी बड़े आनन्द में मग्नहो अकातर धनदान करतीहैं ? जिसकी ऐसी शोभा है ॥ ८ ॥ क्यों लोगोंके मनोंमें इतना हर्ष समायाहै ? राजा कौनसा ऐसा कार्य करैंगे सो तू मुझे बता ॥ ९ ॥ जब इसप्रकार मन्थराने उस धात्रीसे पूछा तौ उसने मारेहर्षके विदीर्ण हो विधिपूर्वक रामचन्द्रजीकी बड़ीभारी राजश्री बताई ॥ १० ॥ और कहा कि महाराज दशरथजी कल पुष्यनक्षत्रमें जितक्रोध शान्तस्वभाव रामचन्द्रजीको यौवराज्याभिषेक करैंगे ॥ ११ ॥ पापीयसी मन्थरा धाईके ऐसे वचन श्रवण करके इस बातको न सहती हुई झट पट कैलास शिखराकार धवरहरेसे उतरी ॥ १२॥ वह पापदर्शिनी मन्थरा क्रोधसे जलतीहुई शयन गृहमें जाकर सोती हुई कैकेयीसे बोली ॥ १३ ॥ हे मूढे ! अब शयन मतकर अब उठ तुम्हारा घोर अनिष्ट उपस्थितहै ॥ तुम क्या नहीं जानती हो कि, प्रबल दुःख भार तुमको पीड़ित कर रहा है ॥ १४॥ महाराज तुम्हें देख नहीं सकते, फिर क्यों तुम सौभाग्यमें चूर होरहीहो ? तुम्हारा सौभाग्य ग्रीष्मतापित नदी स्रोतकी नांई है ॥ १५ ॥ मन्थराके क्रोध भरे रुखाईसे सने ऐसे वचन सुन कैकेयी विषण्ण हुई ॥ १६ ॥ व कैकेयी मधुर वाणीसे मन्थ-

रासे बोली कि, हे मन्थरे ! क्या मेरी कुशल नहीं है ? प्रिय अनुचारि ! तेरे अति दुःखी और विषादित होनेका क्या कारण है ? ॥ १७ ॥ अच्छी चतुर वाक्य बोलने वाली मन्थरा कैकेयीके मधुर वचन सुन क्रोधमे परिपूर्ण होगई और बात बनाकर कहने लगी ॥ १८ ॥ वह बाहरी अधिक तर शोक भाव दिखा रामचन्द्रजीके प्रति विद्वेषभाव उपजानेके लिये क्रोधमें भरकर बोली ॥ १९ ॥ हे देवि ! तुम्हारा घोर अनिष्ट उपस्थित हुआ महाराज दशरथ रामचन्द्रजीको राज्यभार प्रदान करतेहैं ॥ २० ॥ मैं तुम्हारी हितकारिणीहूं इस कारण अकस्मात् इस समाचारको सुनकर महा दुःख शोक और भयसे घिरीहूं मेरे सब अंग मानों जलही रहे हैं सो तुम्हारे हित करनेको आईहूं ॥ २१ ॥ हे कैकेयी ! और तो क्याकहूं तुम्हारी विपदसे मेरी विपद होगी तुम्हारी वृद्धिमें मेरी वृद्धि व तुम्हारे सुख दुःखमेंही मेरा सुख दुःख है ॥ २२ ॥ मैं नहीं जानती कि, तुम राजनन्दिनी राजमहिषी होकर किस कारण उग्रत्व और राजधर्मका मर्म नहीं जान्ती हो ॥ २३ ॥ तुम्हारे स्वामी मुखसे धर्म वार्त्ता कहते परन्तु कार्यमें वह विलक्षण शठहैं उनके मुखमें मिष्टता परन्तु हृदय अतिदारुण है, तुम उनको सरल स्वभाव जान्तीहो इसी कारण तुम पर यह विपद आई ॥ २४ ॥ अब तुम्हारे स्वामी कुछेक मनोमुग्धकर वार्त्तायें कहकर तुमको प्रसन्नकर वास्तवमें कौशल्याकी मन वाञ्छा पूर्ण करेंगे ॥ २५ ॥ इस दुष्ट राजाने भरतको मामाके यहां भेज दिया अब वह निष्कंटक राज्य रामको देनेके लिये प्रस्तुत हैं ॥ २६ ॥ जिस प्रकार सर्पके खिलानेवाली स्त्री माताके समान उसके विषके भेदको न जानकर उसको पालती है हे बाले ! ऐसेही तुमने पतिके मिषसे सर्पवत् क्रूर राजाको अंगमें धारण कियाहै ॥ २७ ॥ शत्रु या सर्पकी उपेक्षा करनेसे जैसा फल देताहै वही दशा दशरथजीके हाथसे तुम्हारे पुत्रकी हुई ॥ २८ ॥ तुम उस पापात्मा नृपतिकी वृथा सान्त्वनासे मुग्ध होगई हो रामको राजा करके सपरिवार तुम्हारा वध साधन करनाही उनका आशयहै ॥ २९ ॥ मैं कहती हूं कि, अबभी समय है; अतएव जिससे आप बचो, पुत्रका कुछ उपाय हो और मेरीभी रक्षा होजाय, ऐसा कार्य करनेमें प्रवृत्तहो ॥ ३० ॥ सुन्दरी कैकेयी प्रिय परिचारिकाकी वार्त्ता सुन शरद कालिक चन्द्रमाकी नांई प्रफुल्लहो हँसते२ विस्तर परसे उठी ॥ ३१ ॥ उठतेही परम सन्तुष्ट हर्षित व विस्मितहो अपना एक बड़े मोलका गहना उतारकर मंथराको पुरस्कार दिया ॥ ३२ ॥ वह स्त्रियोंमें श्रेष्ठ कैकेयी अपना गहना उस

मंथराको प्रदानकर और प्रसन्नहो मंथरासे कहने लगी ॥ ३३ ॥ हे मंथरे ! आज तैंने मुझे क्या हर्षका समाचार सुनाया ! इस अवसर क्या द्रव्य इस हर्ष समाचार सुनानेके बदलेमेंदूं मैं तेरा क्या उपकार करूं कह ॥ ३४ ॥ मैं गर्भ जात पुत्र भरत और कौशल्या नंदन रामको अलग २ नही समझतीहूं. अतएव जब महाराज रामको राजा करतेहैं तो इससे मुझे सन्तोषहै ॥ ३५ ॥ और तो क्या कहूं इस अमृतकी समान राम राज्याभिषेक संवादकी अपेक्षा प्रीति प्रद वाक्य और कुछ नहीं है, जो हो, मन्थरे ! इस पारितोषिकके सिवाय यदि और कुछ चाहिये तो मांग, मैं अभी वह तुझको देदूंगी ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदिका० अयोध्याकांड भाषायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

तदनन्तर मन्थरा कुपित और दुःखितहो कैकेयीके दिये हुये गहनोंको फेंक उसकी निन्दा करती हुई बोली ॥ १ ॥ हे मूढे ! तुम किस कारणसे शोकके स्थानमें हर्ष प्रकाश करतीहो ! क्या यह नहीं जानती कि इसके पीछे तुम्हें किस शोक समुद्रमें डूबना होगा ? ॥ २ ॥ हे देवि ! मैं तुम्हारे दुःखसे मर्म्माहत होकर मनमें यह समझकर हँसतीहूं कि, जो शोकका कारणहै तुम उसमेंही हर्ष मनातीहो ॥ ३ ॥ काल स्वरूप शत्रु सौतकी सन्तानको श्रीमान् देखकर कौन बुद्धिमती स्त्री आनन्दित होतीहै ? सो तुमको यह कुबुद्धि आईहै इससे मैं बडी दुःखीहूं ॥ ४ ॥ राज्य सब भाइयोंकी साधारण संपत्ति होतीहै इसी कारण भरतसे रामको भय होनेकी सम्भावना है मैं इसी कारणसे डरीहूं कि भीत मनुष्यही भयका पहुँचाने वाला होजाताहै ॥ ५ ॥ महावीर लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके आज्ञाकारीहैं, सुतराम् उनके भय पानेकी कोई संभावना नहीं; जैसे लक्ष्मणहैं वैसेही शत्रुघ्न और भरत अनुगतहैं अतएव उनसेभी रामको कुछ भय नहीं होसकता ॥ ६ ॥ उत्पत्ति क्रमानुसार भरतहीको राज्य आश्रय संभवहै, ऐसी आशंका लक्ष्मण अथवा शत्रुघ्नसे नहीं है ॥ ७ ॥ मुझे रात दिन यही चिन्ता बलवती रहतीहै कि, रामचन्द्र सर्व शास्त्रवेत्ता व क्षत्रकर्ममें चतुरहैं, सुतराम् उनसे अवश्य तुम्हारे पुत्रका अनिष्ट होगा ॥ ८ ॥ मुझको तो वास्तवमें कौशल्याही भाग्यवती जान पड़ती है. यदि ऐसा न होता, तो उसके पुत्रको राज्यकी प्राप्ति ब्राह्मणोंके द्वारा कैसे होती ? कल

पुष्य नक्षत्रमें उनके पुत्रको यौवराज्य होगा ॥ ९ ॥ रामको राज्य मिलने और उनके शत्रुओंका नाश होनेपर तुमको कौशल्याकी दासी हो हाथ जोड़कर काम करना पड़ेगा ॥ १० ॥ तब अवश्यही हम सबकोभी तुम्हारी समान दासी होकर रहना पड़ेगा, और ऐसेही तुम्हारे पुत्रकोभी रामका भृत्य रहकर काल व्यतीत करना होगा ॥ ११ ॥ रामवनिता सीता सखियोंके सहित आनन्दित होगी तुम्हारी बहुयें भरतजीका खर्व भाव देख दुःखसे कातर होंगी ॥ १२ ॥ तब मंथराको रामके प्रति इस भाँति अतिशय अप्रीति भावापन्न देख कैकयी रामके गुणोंकी वर्णना करती हुई बोली ॥ १३ ॥ कि, रामचंद्र धार्मिक गुणवान्, सत्यवादी, और शुचिहैं विशेष करकै वह महाराजके ज्येष्ठ पुत्रहैं, अतएव उनको यौवराज्याभिषेक होना उचितही है ॥ १४ ॥ दीर्घायु रामचन्द्र भ्राता और नौकर चाकरोंको पुत्रवत् पालन करैंगे. हे कुबरी ! तू रामकी अभिषेक वार्त्ता श्रवण करनेमें क्यों दुःखी होतीहै ? ॥ १५ ॥ और भरतको निश्चयही सौ वर्षके उपरान्त रामके पीछे राज्य मिलेगा । तब वहभी अपने पितृ पितामहोंका राज्य पावेंगे जब चाहेंगे तब अलग होकर राज्य बांटलेंगे ॥ १६ ॥ हे मन्थरे ! तू ऐसे उत्सवके समय क्यों जल रही है? ऐसे कल्याणके समय तेरे संतापित होनेका क्या कारण है? ॥ १७ ॥ मैं जिस प्रकार भरतका हित चाहनेवाली हूं वैसेही व उससे अधिक रामकी हितार्थी हूं क्योंकि, विशेष करकै राम कौशल्यासे अधिक मेरा सन्मान करते हैं ॥ १८ ॥ यदि रामचन्द्रको राज्याभिषेक हुआ तो वह भरतकोही होगा, कारण कि, रामचन्द्र अपनेही समान सब भाइयोंको समझते हैं ॥ १९ ॥ मन्थरा कैकयीके यह वचन श्रवणकर महा दुःखी हो दीर्घ निःश्वास परित्याग पूर्वक यह बोली॥ २०॥ हे कैकेयी ! तुम शोक दुःख रूपी बडे समुद्रमें निमग्न हो अज्ञानतासे अनर्थके विषयमें दृष्टि पात नहीं करती हो; सुतराम् तुमको अपनी अवस्था नहीं समझ पड़ती ॥ ॥ २१ ॥ अब रामचन्द्र राजा होते हैं उनके पीछे उनका पुत्र राज्य पावेगा, अतएव ऐसेही भरतजी राजवंशभ्रष्ट हो जायंगे ॥ २२ ॥ हे भामिनी ! राजाके सब पुत्र राज्य नहीं पाते, वास्तविक ऐसे होनेसे महान् अनर्थ उपस्थित होताहै ॥ २३ ॥ हे सुन्दर अंगवाली ! इसी कारणसे यातो ज्येष्ठ पुत्रको या गुणवान् छोटे पुत्रको राज्य भार सौंप दिया जाताहै ऐसा सब राजा लोग करते हैं ॥ २४ ॥ मैं ऐसीही व्यवस्थाको जानकर कहती हूं कि, तुम्हारे पुत्र भरतको सब सुखभोग व राज वंशसे

वञ्चितहो अनाथकी नाईं काल व्यतीत करना होगा ॥ २५ ॥ मैं तुम्हारे हितार्थ यहांतक कहूं. परन्तु आश्चर्य है कि तुम जरा न समझसको मुझको अचरज तो इस बातका है कि, सौतनकी बढ़ती देख तुम मुझे पुरस्कार देती हो ॥ २६ ॥ निश्चयही रामचन्द्र निष्कण्टक राज्य लाभ कर तुम्हारे पुत्र भरतको मारडालें, अथवा देशसे निकाल देंगे ॥ २७ ॥ तुमने बालक भरतको मामाके यहां भेज दिया. जो वह यहां होते तो महाराजकी उनपर अवश्यही स्नेह दृष्टि पड़ती, विचार करके देखो कि, तृण गुल्मादिभी एक स्थानमें जन्म ग्रहण करके प्रेमसे परस्पर एक दूसरेको आकर्षण करतेहैं ॥ २८ ॥ आश्चर्य है ! कि. भरतके संग शत्रुघ्न मामाके घर गये हैं । लक्ष्मण जिस प्रकार रामचन्द्रजीके अनुगत हैं; वैसेही भरत शत्रुघ्नके साथ बर्त्ताव करते हैं ॥ २९ ॥ ऐसा सुनाजाताहै कि वनजीविगणने एक समय एक वृक्षके काटनेकी चेष्टा की. परन्तु वह वृक्ष कंटकाकीर्णथा इसकारण उनकी चेष्टा व्यर्थ हुई और डरसे छोड़ दिया ॥ ३० ॥ राम लक्ष्मण परस्पर परस्परके रक्षकहैं अश्विनी कुमारकी समान इनका भायप लोक विख्यातहै ॥ ३१ ॥ इस कारणसे राम द्वारा लक्ष्मणका अनिष्ट न होगा. परन्तु इससे कोई यह न समझे कि भरत पर कोई विपद न आवेगी ! अवश्य भरतका अनिष्ट होगा ॥ ३२ ॥ अतएव इस समय मामाके घरसे भरत आवे व राज्य पावे रामचन्द्र घरसे वनको चले जांय यह मैं अच्छा समझती हूं इसमें तुम्हाराभी हित होगा ॥ ३३ ॥ इसमें केवल तुम्हाराही कल्याण नहीं वरन सब जाति वर्गका हित होगा जो भरत धर्मानुसार अपने पैतृकराज्याधिकारी हों ॥ ३४ ॥ भरत केवल तुम्हारे ही सुखके लिये बालकहैं, परन्तु रामके स्वभावसेही शत्रुहैं, सुतराम् रामराज्यके अधीन रहकर वह निर्धन किस प्रकार जीवन धारण करेंगे ॥ ३५ ॥ वनमें सिंहके आक्रमणसे हाथियोंके यूथपतिकी रक्षाकी नाईं, इस रामरूपी विपदसे तुम भरत जीको बचाओ ॥ ३६ ॥ तुमने स्वामीके सुहागसे गर्वितहो कौशल्याकी बहुत ही अवज्ञा कीहै, भला फिर इस समय वह उन बातोंका बदला कैसे नलेंगी ? ॥ ॥ ३७ ॥ हे कैकेयी ! यदि रामचन्द्र शैलसागर पर्यन्त वसुन्धराके अधिपति हुए तो हेभामिनि ! यह निश्चय स्मरण रखना कि तुमको भरत सहित दास्यभावसे दिन बिताने पड़ेंगे ॥ ३८ ॥ जैसेही रामराजा हुए बस वैसेही भरतका नाश हुआ, अतएव इस कारण भरतको राज्य दिलाने और रामको वन भिजवानेकी चिन्तना करो ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिका० अयोध्याकांडे भषायां अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

मन्थराके इस भांति कहने पर कैकेयी क्रोधसे भस्महो दीर्घ निश्वास परित्याग पूर्वक मन्थरासे बोली ॥ १ ॥ मैं अभी रामको वनवासी कराकर भरतको राज्याभिषिक्त कराऊंगी रामको राज्य किसी प्रकार नहोगा ॥ २ ॥ तू मुझसे यह विचार करकै कह कि किस उपायसे भरतको राज्य मिलै और राम इस्से वंचित किये जाँय ॥ ३ ॥ पापदर्शिनी मन्थरा यह सुन रामके राज्याभिषेकमें बाधा देनेके लिये यह बोली ॥ ४ ॥ हे कैकेयि ! तुम मेरी सामर्थ्य देखो मैं वही उपाय करतीहूं जिससे तुम्हारे पुत्रका अभिषेकहो मैं वह उपाय तुमसे कहतीहूं सुनो ॥ ५ ॥ तुमने जो बात मुझसे बार २ कहीहै वह क्या भूलगई या मुझसे श्रवण करनेके लिये उसको छिपातीहो ॥ ६ ॥ हे विलासिनी ! यदि ऐसाहै तौ मुझसे उसको सुनकर उसके विषय में जो जो हितकारी हो उसके करने की चेष्टा करनी चाहिये ॥ ७ ॥ मन्थराके मुखसे यह उक्ति श्रवण करकै राजमहिषी कैकेयी विस्तीर्ण सेजसे कुछ एक उठकर बोली ॥ ८ ॥ हे मन्थरे कौनसा उपायहै जिससे राम राज्य न पाकर भरत पावें वह तू मुझसे कह ॥ ९ ॥ जब देवी कैकेयीने यह बात कही तब पाप बुद्धिवाली मन्थरा राम राज्याभिषेकमें विघ्न डालनेके लिये बोली ॥ १० ॥ एक समय देवासुर संग्रामके संघटित होनेपर राजा इन्द्रकी सहाय करनेको तुम्हारे स्वामी महाराज दशरथजी तुम्हारे साथ युद्ध क्षेत्रमें उपस्थित हुयेथे ॥ ११ ॥ हे देवि ! दक्षिण दिशाके दण्डकारण्य नामक स्थानमें वैजयन्त नामक एक नगर है तिमि-ध्वज उसका अधिपतिथा ॥ १२ ॥ यह असुर अतिशय मायावी और बलवान् हुआ इसका दूसरा नाम शम्बरासुरथा. इसकेही साथ देवतों सहित इन्द्रकी लड़ाई हुई ॥ १३ ॥ इस युद्धमें सैन्यगण क्षत विक्षत अर्थात् घायलशरीर हो जब रातमें सो जाते तब राक्षस गण शीघ्रतासे उपस्थितहो उनको मार कर भागजातेथे ॥ १४ ॥ उसी समय उन राक्षसोंके विरुद्ध महाराज दशरथजीने तुमुल संग्राम किया, और असुरोंने अस्त्र शस्त्रोंसे इन महाबाहुके अंग क्षत विक्षत कर डाले ॥ १५ ॥ हे देवि ! तुमने महाराजको शस्त्रोंसे घायल और विचेतन देखकर रणसे अलग लेजाकर उनकी रक्षाकीथी ॥ १६ ॥ हे सुन्दर दर्शन वाली तब राजाने तुम्हारे व्यवहारसे तुष्ट होकर तुम्हें दो वर देनेको कहा किन्तु "जब इच्छाहो मांगलूंगी" तुमने उनसे यह कहा था ॥ १७ ॥ राजाने भी तथास्तु कहकर तुम्हारे वाक्यमें सम्मति प्रदानकी

मुझे इस बातकी कुछ भी खबर नथी तुमनेही पहले मुझसे कहाथा ॥ १८ ॥ मैं तुमको प्यार जो करतीहूं इसी कारण यह बात नहीं भूली, तुम इस समय महाराजको बल पूर्वक रामके राज्याभिषेकसे निवृत्त करो ॥ १९ ॥ अब तुम महाराजसे दो वर चाहो एकतो यह कि भरत राज्य पावें और दूसरा वर यह प्रार्थना करो कि चौदह वर्षके लिये राम वनवासी हों ॥ २० ॥ यदि रामचन्द्रको चौदह वर्षका वनवास होगया तो भरत प्रजाओंको वश करके यह राज्य अटल रख सकैंगे॥ २१ ॥ हे अश्वपतिकी पुत्री ! तुम इस समय मलीन बसन पहर कर कोप भवनमें जा क्रोधसे भर पृथ्वीमें पडीरहो ॥ २२ ॥ महाराजके उपस्थित होनेपर उनसे संभाषण मत करना न उनकी ओर देखना केवल पृथ्वीमें पड़ २ रोती रहना ॥ २३ ॥ मैं खूब जानतीहूं कि तुम महाराजको प्राणोंसे भी प्यारीहो इसमें किंचितभी सन्देह नहींहै, मैं कह सकतीहूं कि वह तुम्हारे लिये अनलमें भी प्रवेश कर सकतेहैं॥ २४ ॥ वह तुमको नतो क्रोधही दिलासकैं नक्रुद्ध देखही सकैं वरन वह उस समय तुम्हारी ओर देखनेका भी साहस न करैंगे अधिक क्याकहूं वह तुम्हारी प्रीतिके निमित्त अपने प्राणतक देदेंगे ॥ २५ ॥ राजा तुम्हारी बातको उल्लंघन नहीं कर सकते. हे सुन्दरि ! मन्दस्वभाव वाली अब तुम अपने सौभाग्यका बल जांच देखो ॥ २६ ॥ महाराज तुमको मणि, मुक्ता, सुवर्ण व विविध भांतिके रत्नदेना चाहेंगे परन्तु तुम किसीपर मन मत डुलाना ॥ २७ ॥ हे महाभागे ! तुम उनको उन वरदानोंकी याद दिला देना जो उन्होंने तुम्हें देवासुर संग्रामके समय देने कहेथे, और अपना कार्य साधन करनेको भली प्रकार यत्न करना भूलना मत ॥ २८ ॥ जिस समय राजा तुमको उठा वर देनेको तैयारहों, तब तुम उनको सत्यमें बांधकर वर मांग लेना ॥ २९ ॥ एक वरसे रामचन्द्रको चौदह वर्षका वनवास दिलाना और दूसरे वरसे पुरुष श्रेष्ठ भरतजीका राज्याभिषेक मांगना ॥ ३० ॥ जब चौदह वर्ष तक राम वनमें रहैंगे तब भरतजीका राज्य निष्कंटक हो जायगा, और फिर लौट आनेपरभी रामको राज्य न मिलेगा क्योंकि, फिर तो राज्य जमजायगा और जबतक जियेंगे. भरतही राजा बने रहैंगे ॥ ३१ ॥ हे भामिनि ! रामचन्द्रका वनको जाना भरतका राज्य पाना इन दो वरोंके लेनेसे तुम्हारे पुत्र भरतकी सब प्रकार सिद्धि हो जायगी ॥ ३२ ॥ इस प्रकार वनको भेजे हुये रामके पक्षमें प्रजा अप्रिय हो उठेगी प्रजा फिर उन्हें न

चाहेंगी और भरतजीके विपक्ष पक्षके वशहोजानेसे वह भी स्थिरतासे राज्य लाभ करसकेंगे ॥ ३३ ॥ जिस समय रामचन्द्र वनवाससे लौटेंगे उस समय सब प्रजाके अन्तर बाहरमें भरतजीकी प्रभुत्वशक्ति जड़ समेत जमजायगी ॥ ३४ ॥ क्योंकि, जब मनुष्य बहुत दिनोंतक अपने इष्ट मित्रोंके संग रहता है, तो बनाय दृढताके साथ रहने लगता है कोई उसे हटाय नहीं सकता, इससे जैसेही राजा तुम्हारे निकट आवें ॥ ३५ ॥ वैसेही साहसका आश्रयले अपने वश राजाको कर रामराज्याभिषेककी वासनासे निवृत्त करना मैं कहती हूं कि, तुम्हारी इष्ट सिद्धिका यही समय है ॥ ३६ ॥ तब कैकयी मन्थराके वाक्यसे प्रतीत और सन्तुष्ट हुई व छोटे बच्चेवाली घोडीकी तरह पराधीन हुई खोटे मार्गका आश्रयकर कहने लगी ॥ ३७ ॥ वह परम सुन्दर सुन्दर दर्शनवाली कैकयी अत्यन्त विस्मयको प्राप्तहो बोली हे मंथरे ! मैं अबतक तो परिणाम दर्शिताका मर्म नहीं ग्रहण कर सकी अब समझी कि, तैंने बडी हितकारी बात कही है तू बडी श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥ मैं जानती हूं कि, संसार भरमें जितनी कुबड़ी हैं तू सबसे अधिक बुद्धिशालिनी है । तू सदा मेरा हित करनेवाली है ॥ ३९ ॥ अधिक क्या कहूं मैं अबतक महाराजकी खोटी इच्छा न समझसकी जो हो अब मैंने जानलिया कि, संसारमें पापीयसी, टेढी, अनेक कुबरी हैं किन्तु उन सबमें ॥ ४० ॥ तूही वायुसे चलायमान पद्मिनीकी नांई सबसे अधिक प्रिय दर्शन है तेरा वक्ष देश तैयार है कंधेकी बराबर ऊंचाहै ॥ ४१ ॥ व नीचे सुन्दर नाभिवाला उदर है, ऐसा बोधहोता है कि, मानों छातीकी ऊंचाई देख लजाकर पतलासा होगयाहै जाँघें बहुत मोटी चढ़ाव उतार बनी हैं, कुच बड़े मोटे व कठोरहैं॥ ४२॥तेरा वदन मंडल विमल चन्द्रमाकी नांई विराजताहै व तेरी जंघा बालोंसे रहितहैं कमरमें तगडी शोभितहै॥ ४३॥ जांघें बहुतही उत्तम भारी होनेसे मानो एकमें एक मिलीहीसीहैं दोनों चरण बडेहैं तेरी पीठ सुन्दर और चौडीहै तू रेशमीन वस्त्र पहरे हुयेहै॥ ४४॥ तू जब मेरे सन्मुखसे गमन करतीहै तब राजसिंहनीकी समान जान पडतीहै; तेरा हृदय शंबरासुरकी अनन्त मायाका विश्राम स्थलहै ॥ ४५ ॥ व औरभी हजारों माया तुझमेंहैं और तौ सब तेरा शरीर मनोहरहीहै केवल यह जो छाती बहुत ऊँची है व पीछे कूबर निकला है यही कुढंगसाहै सो मानों पहियाके नाहके समान है ॥ ४६ ॥ इस कुढंगे अंगसेभी बडे लाभ हैं, क्योंकि, जितनी राजनीति आदिककी बुद्धियाहैं व जितनी माया हैं. सबकी सब तुम्हारे इसी अंगमें वसतीहैं,

सो में ऐसी सोनेकी माला तुझको पहराऊंगी जो इस कूबर पर झूलाकरै ॥ ४७ ॥ हे सुन्दरी ! मैं कहती हूं कि, भरतको राज्य मिलने और रामके वन चले जानेपर में तेरे यह मांस पिंड चन्दनसे लिप्त और सोनेके गहनोंसे सजाऊंगी ॥ ४८ ॥ जब अच्छी तरहसे हमारा काम हो जाकर और मुझको विश्वास हो जायगा तौ तेरा मुख स्वर्णमय विचित्र तिलकसे सुशोभित करूंगी और कूबडमें चन्दनादिसे लेप करूंगी ॥ ४९ ॥ हे कुब्जे ! और तो अधिक क्या कहूं मैं तुझे मनोहर वस्त्र और दिव्य अलंकार पहराकर देवताकी समान सजा दूंगी ॥ ५० ॥ तब तुम्हारा वदनमंडल चन्द्रमाको भी लजावैगा वरन उसकी उपमाही नही मिलैगी व तुम अपनी सुन्दर चालसे वैरियोंकी निन्दा करोगी ॥ ५१ ॥ तब जिस प्रकार तुम हमारी सेवामें नियुक्त हो, वैसेही सब गहनोंसे सजी हुई अन्यान्य कुब्जागण तेरे पैरोंमें पडकर तेरी सेवा करैंगी ॥ ५२ ॥ मन्थरा इस भाँति सराही जाकर वेदि मध्य स्थित अग्निशिखाकी समान श्वेत शय्या शायिनी कैकेयीसे बोली ॥ ५३ ॥ हे कल्याणि ! जल निकल जानेपर फिर बाँध बाँधनेका क्या प्रयोजन है ? अतएव उठकर अपना कल्याण कार्य साधन करनेमें यत्नवती होना चाहिये और क्रोधागारमें जाकर अब महाराजको अपनी क्रोधशक्तिका परिचय दो ॥ ५४ ॥ अनन्तर मन्थराके उकसानेसे प्रोत्साहित हो विशालाक्षी सौभाग्यके मदसे गर्वित कैकेयी मन्थरा सहित क्रोधागारमें प्रवेश करती हुई ॥ ५५ ॥ उस समय जो रानीके अंगमें बडे २ मोलके सुन्दर गहने व मोतियोंकी मालायें थीं वह हजारोंके मोलकी उस सुन्दर स्त्रीने सब निकालकर दूर फेंकदीं ॥ ५६ ॥ तिस समय सोनेके रंग समान रंगवाली कैकेयी मन्थराके वचनोंसे वशीभूत हो बिना बिछाये भूमिमें लेटकर मन्थरासे कहने लगी ॥ ५७ ॥ हे प्रिय परिचारके ! याती इस कोप भवनमें प्राणही परित्याग करूंगी, या रामचन्द्रजीको वन भेजकर भरत राज्याभिषेक कराऊंगी॥५८॥ हमें सुवर्ण, रत्न, व भोगकी वस्तुओंसे कुछ प्रयोजन नही, यदि रामचन्द्रका अभिषेक हुआ तो हम निश्चही प्राणोंको परित्याग करेंगी ॥ ५९ ॥ अनन्तर कुबरी भरतके हित और रामके अहित करने वाले गूढ अर्थ क्रूरवचन बूढे महाराज दशरथकी राना भरतकी माता कैकेयीसे बोली ॥ ६० ॥ यदि रामको राज्य मिल गया तौ, पुत्रके सहित तुम्हें निश्चयही प करना होगा, अतएव हेकल्याणि ! जिससे भरत राजाहोजांय उसके विषयमें

बिशेष चेष्टा करना उचितहै ॥ ६१ ॥ राजमहिषी कैकेयी मन्थराके वचनबाणोंसे बारंबार विद्धहो हृदयपर हाथ धर आश्चर्यको प्राप्तहो क्रोधसे फिरबोली ॥ ६२ ॥ हे कुब्जे ! या तो तू इस क्रोधागारमें मेरे शरीर छोडनेका वृत्तान्त राजासे कहेगी और या देखगी कि, दीर्घ कालके लिये रामको वनवास. और भरतको राज्य प्राप्त होगा ॥ ६३ ॥ मैं निश्चयही कहतीहूं कि. यदि राम वनको न गये तो हमें शय्या, माला, चंदन. अंजन. पान. भोजन ही क्या. वरन जीवनमेभी कुछ प्रयोजन नहीहै ॥ ६४ ॥ कैकेयी यह कठोर वचन कहकर अंगसे गहने निकाल बिछौनेके विना भूमिशायिनीहो स्वर्गसे भ्रष्ट, किन्नरीके समान शोभा धारण करती हुई ॥६५॥ उसका मुख मण्डल क्रोधान्धकारसे युक्त और शरीर गहनेसे शून्य हुआ तारक विही-न आकाश जैसे तामसी रात्रिमे शोभित होताहै उस समय नरेन्द्रपत्नी रानीकीभी वही शोभा हुई ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकांडे भाषायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

अनन्तरपापिनी मन्थराके अत्यन्त समझाने बुझानेपर देवी कैकेयीने तीरसे विंधीहुई किन्नरीके समान पृथ्वीमें शयन किया ॥ १ ॥ वह भामिनी जो बडी चतुरथी मनहीमन जो करना उसको अभीष्ट था उसको धीरे २ फिर मन्थरासे सब कहने लगी ॥ २ ॥ फिर मन्थराके कहे हुये वचनोंको स्मरण करके उसके वचनोंसे मोहित हुई कैकेयी नागकन्याकी भांति श्वास लेने लगी ॥ ३ ॥ तब वह आत्माके सुखका मार्ग ढूंढती हुई एक मुहूर्त्त तक चिन्ता करती रही और कार्यकी सिद्धि जान अतिशय प्रसन्न हुई और इस ओर कुबरी सहेली रानी कैकेयीका यह यत्न उत्साह देख ॥ ४ ॥ जैसे कोई सिद्धिको प्राप्त होकर प्रसन्न हो वैसेही मन्थरा अतिशय प्रसन्न हुई और देवी रानी भी मनमें सब बातका भलीभाँति निश्चय कर महा क्रोधसे ॥ ५ ॥ भौंहैं कमानकी समान तान भूमिमें लेट रही व जितनी भांति २ की माला और अनेक प्रकारके वस्त्र आभूषणथे सबको निकालकर फेंकदिया ॥ ६ ॥ वह सब माला चित्र विचित्र मणि जटित सुवर्णके हार व दिव्य भूषण वसन इत्यादि कैकेयी के फेंके हुये भूमिमें आय गिरे ॥ ७ ॥ और वह सब गहने तारा गणोंसे भरे हुये आकाशकी समान पृथ्वीमें शोभा प्रकाशित करने लगे तब कैकेयी मैले कुचेले

कपडे पहन कोप भवनमें पडी रही ॥ ८ ॥ केवल एक चोटी बँधी हुई शोभाको निशानीथी और देखनेमें कैकेयी बलहीन किन्नरीके समानथी इस ओर राजा दशरथजी अभिषेककी सब तैयारी करके ॥ ९ ॥ सब सभासदोंकी सम्मतिसे रनवासमें आये और सोचा कि, रामचंद्रजीका अभिषेक होगा यह प्रसिद्ध हुआ है, परन्तु यह रानियोंको नहीं ज्ञातहै ॥ १० ॥ अतएव उनसेभी संवाद कहना चाहिये यही शोच विचार महा यशस्वी यह इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले यह प्यारी बात सुनाने योग्य अपनी कैकयीके सुन्दर भवनमें प्रवेश करते हुये ॥ ११ ॥ चन्द्रमा जिस प्रकार राहु युक्त उजले आकाशमें प्रवेश करताहै ऐसेही राजा कैकेयीके भवनमें पधारे उस समय कैकेयीका गृह तो, मोर क्रौंच हंसादि पक्षियोंकी बोलियोंसे शब्दायमानथा ॥ १२ ॥ किसी स्थानमें वेणु वीणाका शब्द था स्थान २ में कुबरी नाटी टेढीमेढी दासियें शोभा पारहींथी लता बेलोंके गृह बने हुयेथे,कहीं चम्पा व अशोक इत्यादि भांति २ के फूलोंके पेड सुशोभित थे ॥ १३ ॥ कहीं २ पेड फलोंके बोझसे लदे खडे कहीं २ बावडी बनीथी कहीं २ हाथी दांत सोने और चांदीकी वेदियें बनी थी ॥ १४ ॥ हाथी दांत सुवर्ण और चांदीके आसन बनेथे। और स्थान २ में भक्ष्य भोज्य द्रव्य अनेक प्रकारके रक्खे थे ॥ १५ ॥ व बडे २ मोलके गहने धरेथे मानों दूसरा इन्द्रहीका गृह था। राजा सर्व धन युक्त उसी देव समान अन्तःपुरमें प्रवेश करते हुये ॥ १६ ॥ किन्तु शयनागारमें प्रवेश करके राजाने प्राणवल्लभा कैकेयीको न देखा। उस समय राजा कामशरसे अति विंधे रतिकी इच्छा किये हुयेथे ॥ १७ ॥ ऐसी अवस्थामें प्राण प्यारीको न पाकर बहुत दुःखी हुये। विशेष चिन्ताभी हुई क्योंकि इससे पहले कैकेयी ऐसे समय सिवाय घरके कहीं न रहतीथी ॥ १८ ॥ राजानेभी कभी इस प्रकारके सूने रनवासमें प्रवेश नहीं कियाथा, जो हो महाराज दशरथजी सबसे कैकेयीको पूछने लगे॥ १९॥ राजा यह नहीं जानतेथे कि, कैकेयी भरतको राज्य दिलवाना चाहतीहै; अतएव उन्होंने प्रियतमाको न देखकर रानीके विषयमें एक प्रतीहारीसे पूछा तब उसने हाथ जोड कर कहा ॥ २० ॥ हे महाराज ! देवी क्रोधसे भरी हुई कोप भवनको गई हैं ॥ यह प्रतिहारीके वचन सुन्तेही राजा व्याकुल हो दुःख पाय ॥ २१ ॥ वहीं बैठ गये बहुत व्याकल हुये, इन्द्रियां शिथिल हो गईं वहांसे उठ बडी शीघ्रतासे कोप भवनमें पहुँचे वहां अनुचित वेश किये रानीको पृथ्वीपर ॥ २२ ॥ पडी देखके

राजाका प्राण उड गया। तब वृद्ध महाराज प्राणोंसेभी अधिक प्यारी तरुण सुकुमारी रानीको ॥ २३ ॥ पाप रहित राजाने मनमें पापसंकल्प धारण किये पृथ्वीपर टूटी हुई बेलकी नांई स्वर्गसे देवताके नांई कैकयीको देखा ॥ २४ ॥ अमरपुरसे गिरी हुई किन्नरी वा अप्सरा की नांई अथवा स्वर्गसे गिरी हुई परम मन मोहिनी मायाकी नांई जालमें बँधी हुई हरिणीकी नांई ॥ २५ ॥ विष लगे हुये तीर से व्याधेकी मारी हुई हथिनीकी नांई वनमें पडे हुये देख हाथीकी समान राजा यह दशा देख बडे दुःखित हुये ॥ २६ ॥ और स्नेह पूर्वक उसे उठाने लगे और न जाने यह आज क्या करेगी यह विचार घबडा गये तब कामी राजा अपने हाथसे कमलनयनी कैकेयीका शरीर सुहराने लगे और बोले ॥ २७ ॥ प्यारी ! तुम्हारे क्रोधका क्या कारणहै मुझे तो अबतक कुछभी ज्ञात नहीं। हे देवि ! किसने तुम्हारा अपमान व निरादर कियाहै सो मुझसे कहो तो सही ॥ २८ ॥ प्रिये ! तुम भूमिमें पडी रहकर क्यों मुझे कष्ट देतीहो, हे कल्याणि ! तुम्हारे भूमिमें पौढनेका कारण क्या है सो बताओ ॥ २९ ॥ हे प्राणवल्लभे ! तुम भूत प्रेत लगे हुये मनुष्योंकी नांई क्यों पृथ्वीमें पडी मेरे मनको मथन कर रहीहो अच्छा यदि खोटे ग्रहोंके पीडा देनेसे ऐसा होभी तब कुछ चिन्ता नहीं मेरे अधिकारमें अनेक सुयोग्य वैद्य चिकित्सा करने वालेहैं ॥ ३० ॥ तुम्हारा रोग जाननेपर हमारे वैद्य जो सदा हमारे यहां से बहुतसाधन धान्य पातेहैं वह अपनी सुचिकित्सासे तुम्हें रोगसे छुडावेंगे मैं तुमसे यह पूछताहूं कि क्या तुम किसीका प्रिय किया चाहतीहो तो उसका प्रिय किया जावै व किसीका विप्रिय कराओ तो वह भी हो ॥ ३१ ॥ अब शीघ्रकहो कौन प्रिय पात्र कौन अप्रिय तुम रोवो मत वृथा अपने शरीरको दुखदे मुँह मत सुखाओ ॥ ३२ ॥ और बतलाओ कि किस अवध्यको मारडालूं और किस मार डालने योग्य व्यक्तिको छोडदूं ? तुम किस दारिद्रीको धनवान् और किस धनवानको भिखारी करना चाहती हो ॥ ३३ ॥ हे प्रियतमे ! मैं और मेरे नोकर चाकर सब तुम्हारे वशहैं तुम्हारे इच्छाके विरुद्ध किसी कार्यके करनेको मेरा साहस नहीं होता ॥ ३४ ॥ यदि अपना जीव देकरभी तुम्हारा प्यारा काम करना पडे तो मै उस कामके लिये भी प्रस्तुतहूं इसमें संशय नहीं तुम मेरा प्रेम जानतीहो कि तुमसे कितना प्रेम करताहूं इस कारण अपना मनचहीता अभिलाष कहो मुझसे शंकित मतहो ॥ ३५ ॥ मैं अपने पुण्यको स्मरणकर शपथ करताहूं कि तुम्हारी वासना पूर्ण करूंगा, पृथ्वीमें जहांतक सूर्यकी किरणैं पहुंचतीहैं वहांतक मेरा अधिकारहै ॥ ३६ ॥ मेरे आधी

नमें, द्राविड, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र दक्षिणापथ, वंग, अंग, मगध, मत्स्य, काशी और धन धान्यसे भरी पुरी कोशलाहै ॥ ३७ ॥ इन स्थानोंमें धन, धान्य व पशु आदि जो कुछ पदार्थ हैं सब मेरे वशमें हैं; हे सुन्दरि ! इन सबमेंसे जो कुछ तुम चाहो मुझसे कहो ॥ ३८ ॥ तुम्हें कष्ट सहने की कुछ आवश्यकता नहीं अब उठो तुम्हें मेरी सौगंध है तुम अपने भयका कारण मुझसे कहो ॥ ३९ ॥ जैसे सूर्यके उदय होनेसे अंधकारका नाश होजाताहै वैसेही मैं तुम्हारे मनका क्षोभ निवारण करूंगा. महाराजके यह वचन सुनने पर कैकेयी सावधान हो राजासे अति दारुण अप्रिय वचन कहने को ॥ ४० ॥ और अपने स्वामीको अधिक दुःख देनेके निमित्त बोलने की इच्छा करती हुई ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अयोध्याकाण्डे भाषायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

अनन्तर कैकयी कामशरसे पीडित व कामकेवेगसे वशीभूत पृथ्वीकेपालनेवाले राजा से यह कठोर वचन बोली ॥ १ ॥ हे देव ! न मेरा किसीने अनादर न तिरस्कार कियाहै मेरा जो मनोभिलाषहै मैं उसको आपसे सिद्ध कराया चाहती हूं ॥२॥ सो जो आप उसको सिद्ध किया चाहते हैं तो पहिले वचन देदीजिये तब मैं अपने मनकी कामना कहूंगी ॥ ३ ॥ तब कामके वशीभूत नरनाथने पृथ्वीसे प्रियाका मस्तक उठा अपनी गोदमें रख लिया और वे महाराज हँसते २ कैकयीसे यह वचन बोले ॥ ४ ॥ हे अपने सौभाग्यसे मोही हुई ! इस जगतमें मनुजव्याघ्र रामचन्द्रजीके सिवाय तुमसे अधिक प्यारा मुझे कोई नहींहै इस बातको क्या तुम नहीं जान्तीहो ॥ ५ ॥ सो उन तुमसेभी प्यारे दुलारे शत्रुनाशक, रामचन्द्रजीकी सौगंध कर मैं कहताहूं कि, मैं तुम्हारा अभिलाष पूर्ण करूंगा, सो तुम अपनी मन कामना कहो ॥ ६ ॥ जिनको एक मुहूर्त न देखनेसे प्राण घबडा जाते हैं जिनके विना मैं एक मुहूर्त नहींजी सकता मैं उन रामचन्द्रजीकी सौगंध कर कहताहूं कि, तुम जो कहोगी सो निःसन्देह करूंगा ॥ ७ ॥ मैं अपनेसे और अपने तीनों पुत्रोंसे अधिक जिन रामचन्द्र को चाहताहूं मुझे उनकी सौगंधहै कि तुम जो कहोगी वही करूंगा ॥८॥ हे भद्रे ! मेरा हृदय तुम्हारे आधीनहै, अतएव तुम अपने मनकी कामना कहकर मुझे संकटसे बचाओ जो अच्छा लगै सो मांगो ॥ ९ ॥ अधिक मैं क्या कहूं ? मैं तुम पर

जितनी प्रीति करताहूं उसका मर्म समझकर अपने मनका अभिलाष मत छिपाओ मैं अपने पुण्यका नाम लेकर सौगंध करताहूं कि, तुम जो चाहोगी सो दूंगा॥ १०॥ तब रानी कैकेयी महाराज दशरथजीके यह वचन सुन अपना इष्ट कार्य सिद्ध समझ भरतके पक्षपात युक्त राजासे आनन्दमें भरकर यह दुर्वचन बोली ॥ ११ ॥ राजाके वचनसे बहुत हर्षितहो अपना अभिप्राय सिद्ध करनेको अति कठोर यम राजाके समान दारुण वचन बोली ॥ १२ ॥ हे महाराज! तुम रामकी सौगंध और अपने पुण्यकी सौगन्ध खाते हो ऐसी शपथको इन्द्रादि तेतीस ३३ देवता सुनें और इसके साक्षी रहें ॥ १३ ॥ चन्द्रमा, सूर्य, आकाश, रात, दिन, सब, ग्रह, गन्धर्व, राक्षस यह पृथ्वी ॥ १४ ॥ रात्रि में फिरनेवाले जितने भूत, प्रेत, पिशाच, व ग्रहोंमें टिकेहुये देवता व औरभी सब प्राणी राजाकी इस प्रतिज्ञाको सुनें ॥ १५ ॥ सत्यके समुद्र तेजवान और धार्मिक सत्यबोलने वाले पवित्र महाराज दशरथजी मुझको वर देतेहैं सब देवतागण उसको सुनें ॥ १६ ॥ राजमहिषी कैकेयी इस प्रकार प्रथम राजाको प्रशंसा आदिसे प्रसन्नकर वर देनेवाले काममोहित राजासे बोली ॥ १७ ॥ कि हे राजन्! स्मरण करके देखो जब देवासुरसंग्राममें शम्बरासुरने तुमको प्राणों से न मारकर मोहित कर दियाथा ॥ १८ ॥ हे स्वामी! उस समय तुमने हमारेही यत्न और सेवासे चेतना पाईथीं उस समय तुमने हमें दो वर दियेथे ॥ १९ ॥ हे देव! वह दोनों वर मैंने तुमसे उस समय न लेकर तुम्हारे ही पास धरोहर रख दियेथे अब उनका प्रयोजन हुआहै सो हेरघुनंदन! हमें दीजिये ॥ २० ॥ यदि धर्मानुसार प्रतिज्ञा करके वह वर इस समय नही दोगे तो तुम्हारे ही सामने इस अपमानसे प्राण त्याग दूंगी ॥ २१ ॥ हारिण जिस प्रकार मरनेके लिये जालमें बंधजाताहै वैसेही राजा रानी कैकेयीके सुन्दरताई के वशहो वचनोंके द्वारा मृत्यु फंदमें फँसे ॥ २२ ॥ इसके पीछे वरके देनेवाले व काममोहित राजासे कैकेयी बोली कि हे देव! तुमने मुझे जो दो वर देनेको कहाहै ॥ २३ ॥ सो दो हम उन दोनों वरोंको अभी मांगतीहैं आप सुनिये। रामको अभिषेक करनेके लिये जो सब सामान हुआ है ॥ २४ ॥ इस सब अभिषेक सामग्रीके द्वारा भरतजीका अभिषेक किया जाय और दूसरा वर जोतुमने मुझे प्रीतियुक्त होकर दियाहै ॥२५॥ देवासुरके संग्रामके समय जो वर दियाथा अब उसका समय आयाहै वह वर यह दो कि चौदह वर्ष वनमें रहकर ॥ २६ ॥ वहां जटा वल्कलधारी हो रामचन्द्र ताप

सका वेष धारण करैं "तापस भेष विशेष उदासी ॥ चौदह वर्ष राम वनवासी" और आजही हमारे प्यारे दुलारे पुत्र भरतजीको निष्कंटक राज्य मिल जाय ॥२७॥ बस यही मेरी परम कामनाहै तुमने पहले जो मुझे वर देनेको कहेथे मैं वही तुमसे मांगतीहूं अधिक और क्या कहूं बस आजही रामचन्द्र वनको चले जांय ॥२८॥ हे महाराज ! तुम सत्यकी रक्षा करनेमें यत्नवानहो अपने कुल शील और जन्म परिचयकी रक्षाकीजिये तपस्वी महात्मा सत्य वचनकीही इस लोक और परलोकमें प्रशंसा करतेहैं कि यही हितकारीहै ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० अयोध्याकाण्डे भाषायां एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

अनन्तर महाराज दशरथ कैकेयीका महा कठोर वचन सुनकर ३५.५ भरतक विलाप कर चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ मैंने क्या दिनमेंही स्वप्न देखा या मेरे चित्तमें मोह हुआ, अथवा भूतके वशहो यह घटना हुई है या मनका कोई प्रकार का विकारहै ॥ २ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते २ सुखको न प्राप्तहो वह मूर्च्छितहोगये. तदनन्तर जैसेही चेतमें आये वैसेही कैकेयीके कठोर वचन स्मरण आये और दुःखी हुये ॥ ३ ॥ शेरनीके देखे हुये मृगकी समान राजा व्यथित होकर भ्रमके कारणको न जानकर पृथ्वीपर पडे बडे २ श्वास लेने लगे ॥ ४ ॥ मंत्रके मंडलके बलसे बंधे हुये महा विषधर सर्पकी जो दशा होतीहै वैसेही "हाय धिक्" यह बात क्रोध करके राजाने कही ॥ ५ ॥ यह कहके शोकके मारे मूर्च्छित होगये और बहुत देरके पीछे फिर मूर्च्छा जागी और फिर दुःखित होगये ॥ ६ ॥ व क्रोधसे कैकेयीको भस्मही करते हुये बोले कि, रे नृशंसे ! दुष्ट चरित्रे कुलका नाश करने वाली पापिनि ! ॥ ७ ॥ रामचन्द्रने तेरा कौनसा बुरा किया अथवा मुझसेही क्या तेरा बुरा हुआहै विशेषतः रामचन्द्र माता की समान तेरी सेवा करतेहैं ॥ ८ ॥ अतएव फिर तू उनसे ऐसा व्यवहार क्यों करतीहै क्यों उनका अहित करनेको उद्यत हुईहै मैंने तुझे अपने प्राण खोनेहीको अपने घरमें रक्खाहै ॥९॥ तेज

फिर भला मैं किस अपराधसे ऐसे सुतको त्यागन करदूं कौशल्या, सुमित्रा व राज लक्ष्मीकोभी मैं छोड सकताहूं ॥ ११ ॥ किन्तु प्राणप्यारे नयनोंके तारे पिता भक्त रामको किसी भांति नहीं परित्याग कर सकता जबही रामचन्द्रजीका मुख कमल देखताहूं तभी मुझे बडी प्रीति उत्पन्न होतीहै ॥ १२ ॥ और जब उन्हें नहीं देख पाता तब मुझे कुछ ज्ञान नहीं रहता वरन सूर्य विना संसार व जल विना अन्न चाहें टिक जाय ॥ १३ ॥ परन्तु रामके विना मेरे शरीरमें प्राण नहीं रह सकते तिससे हे पापनिश्चये ! इस पापकी हठको छोडदे ✽ "कहीं स्वभाव न छल मन मांही जीवन मोर राम बिन नाहीं" ॥ १४॥ मैं तेरे चरणोंमें शिर धरताहूं तू मुझसे प्रसन्नहो रे पापीयसि ! तैंने मनमें यह क्या विचाराहै इस दुर्वासनाको त्यागदे अब क्यों इस दारुण पापकी चिन्तना कर रही है ॥ १५ ॥ अथवा तू यह जांचतीहै कि, राजा भरतको प्यार करतेहैं वा नहीं सो इसकी परीक्षा ले इसमें कुछ रामचन्द्रका स्नेह कम नहीं हो सकता चाहे भरतही राजाहो कुछ राजा न होनेसे रामचन्द्रसे हमारा प्रेम न्यून नहीं होसकता ॥ १६ ॥ अच्छा हम भरतको राजा बनाये देतेहैं और श्रीमान् ज्येष्ठ पुत्र राम धर्महीके बडे बने रहें कुछ राजकाजसे प्रयोजन नरक्खैं, तू उनको मेरी अपनी सेवाही करनेके अर्थ घरमें रहने दे ॥ १७ ॥ जिन रामचन्द्रजीके यौवराज्याभिषेकको सुन तुम दुःखसे दुःखीहो और हमको दुःखी करती हो सो जान पडता है कि, तुम वरके वश नहीं वरन कोई भूत प्रेत पिशाच तुझको लगा है ॥ १८ ॥ हे देवि! तेरी जो बुद्धिमें फेर आगयाहै कि, बडेके सामने छोटा राज्य करै इससे जान पडताहै कि, इक्ष्वाकु कुलमें दारुण दुर्निमित्त हुआ॥ १९॥ यदि तुझे भूत प्रेतादि कोई न लगा होता तो ऐसा कभी न कहती क्योंकि इससे प्रथम कभी तैंने अयोग्य व कुप्यारे वचन हमसे नहीं कहे इससे मुझे विश्वास नहीं आता कि, तुमको भूतादि नहीं लगा ॥ २० ॥ हे सुन्दरी ! कलतक तू बहुधा कहा करतीथी कि, भरतजीकी समान मुझे रामचन्द्र प्यारेहैं ॥ २१ ॥ हे देवि उन्हीं धर्मात्मा यशस्वी रामको चौदह वर्षके लिये वनमें भेजना तुझे कैसे अच्छा लगता है ॥ २२ ॥ धर्मात्मा व अत्यंत सुकुमार रामचन्द्रका दारुण वनवास तुम्हें कैसे रुचा ॥ २३ ॥ हे सुन्दर नेत्र

✽ रागनी गिरनारी सोरठ ताल तीन—(दशरथजीकैकेयीसे) प्रिया मन समझ मांग वरदान ॥ आस्ताई । मातहि राज भरतको दै हों यह निश्चय कर जान ॥ दूसर बर मत मांग छोड हठ नाही तजौं मैं मान ॥ नारद जीवन राम हमारे सत्य २ यह मान ॥

वाली ! फिर लोकाभिराम रामचन्द्रका वन गमन जो कि, सदैव तुम्हारी शुश्रूषा किया करतेहैं कैसे भाताहै ॥ २४ ॥ विशेष करके भरतकी अपेक्षा रामचन्द्र तुम्हारी अधिक सेवा किया करते हैं, रामसे अधिक तुम्हारे प्रति भरत भक्ति करतेहैं यह तो नही ज्ञात होता ॥ २५ ॥ मैं तुझसे पूछताहूं कि, रामके सिवाय कौन तुम्हारी अधिक तर सेवा गौरव प्रमाण व तुम्हारे वचनका पालन करता है॥ २६॥ मेरीबहुत स्त्री और सहस्रों नौकर चाकरहैं परन्तु किसीके मुखसे रामचन्द्रका अपयश वा निन्दा नहीं सुनी जाती ॥ २७ ॥ रामचन्द्र शुद्ध अंतःकरणसे और प्रिय व्यवहारसे सदा अपने देशवासियोंको सन्तुष्ट रख अपने वशमें रखतेहैं ॥ २८ ॥ हमारे प्राणपुत्र रामने सत्य गुणसे सब लोगोंको, दानके प्रभावसे द्विजातियोंको, सेवा शुश्रूषासे गुरुजनोंको और धनुष विद्यासे शत्रुओंको जीत लिया है ॥ २९ ॥ सत्य, दान, तपस्या, मित्रता, पवित्रता, विद्या और गुरुजनोंकी सेवा प्रभृति सद्गुण निश्चय २ रामचन्द्रमें हैं ॥ ३० ॥ हे देवि ! तुम क्यों सीधे स्वभाववाले महर्षियोंकी समान देवताकी समान तेजवाले रामचन्द्रजीको वनवासका क्लेश देना चाहती हो ॥ ३१ ॥ तू यह तो बता कि, प्यारी वार्ता कहना ही जिनका अभ्यास है, मैं तेरे कहनेसे किस प्रकार उन प्राणोंके प्यारेसे यह कठोर कुप्यारी वार्त्ता कहूंगा ॥ ३२ ॥ जो रामचन्द्र सहन शीलता तप, त्याग, सत्यवादिता, कृतज्ञता धार्मिकता, व अहिंसा प्रभृति, समस्त, सद्गुणोंसे विराजमान हैं विना उनके मेरी क्या गति होगी कह तो सही ॥ ३३ ॥ हे कैकेयी मेरी वृद्धावस्था उपस्थित है, तपस्वीकी समान शांतहूँ और अंत समय निकट है, मैं इस समय दीन भावसे तुझसे कहताहूँ की तू मेरे ऊपर कृपाकर ॥ ३४ ॥ समुद्रसे घिरीहुई पृथ्वीके मध्यमें जो कुछ है, सब तुझे देदूंगा तू मुझे मृत्युके मुखमें मत डालो अर्थात् मतमार ॥ ३५ ॥ हे कैकेयी ! मैं तेरे पैर पडताहूं और हाथजोडकर कहताहूं कि, तू रामचन्द्रको बचाले, देख कहीं ऐसा न हो कि, निर्दोष रामको वनमें भेजकर मुझे अधर्ममें लिप्त होना पडे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार दुःख करते व रोते महाराज दशरथजी मूर्च्छित होगये, उनका सब शरीर घूमने लगा॥ ३७॥ शोकसे व्याकुल होगये वह इस दुःखसमुद्रसे पारहोनेके लिये वारंवार जताने लगे, परन्तु महादुष्टा कैकेयी राजाकी ऐसी अवस्था देखकरभी अति निर्दयी वचन बोली॥ ३८ ॥ हे राजन्! तुम वर देकर यदि अब उनके लिये पछताते और कातर होतेहो तब हे वीर ! पृथ्वीपर तुम्हें कौन धार्मिक कहैगा ? ॥ ३९ ॥ जब अनेक राजर्षिगण तुम्हारे निकट उप-

स्थितहोकर इस वरदानका वृत्तांत जानना चाहेंगे तब हे धर्मज्ञ ! उनकी बातका क्या उत्तर दोगे ? ॥ ४० ॥ क्या यही कहोगे कि, जिसके प्रसादसे देवासुर संग्राम में मेरा प्राण बचा व जिसने बहुत सेवा टहल की उसही कैकेयीको वचन देकर वरदान न दिया ॥ ४१ ॥ हे नराधिप ! तुम वचन देकर अब पलटते हो तो तुमसे इस वंशका कलंक हटाया जायगा ॥ ४२ ॥ देखो महाराज ! महाराज ❀ शैब्यने सत्यसे बंधकर बाजको अपना मांसदे कबूतरकी रक्षा की राजा अलर्कने, अपने नेत्र निकालकर एक अंधे ब्राह्मणको देदिये जिस्से उनकी गति होगईथी ॥ ४३ ॥ विवेचना करके देखो कि, वचनबद्ध होनेके कारण समुद्रभी अपना जल किनारेकी भूमिमें नहीं लाता, अतएव तुम पहले दिये हुये वरोंको स्मरण करके झूँठके वश मतहूजिये ॥ ४४ ॥ हे दुर्मते! मैं सब समझ गई कि, तुमने धर्मका अनादर करके रामको राज्य सौंप कौशल्याके सहित विहार करनेकी इच्छा कीहै ॥ ४५ ॥ धर्मही हो, वा अधर्मही हो व सत्य मिथ्या जो कुछ भी हो जब तुमने मुझे देनेको कहा तब देनाही होगा, उसका उलट पलट किसी भांति नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥ यदि तुम रामको राज्य देहीदोगे, तो तुम्हारे सामनेही बहुतसा हालाहल पीकर मैं प्राण त्याग करूंगी ॥ ४७ ॥ कारण कि जो एक दिवसभी कौसल्याको मैंने अभिषेकके कारण प्रफुल्ल मनहो तुम्हारा हाथ पकडे देखा तो निश्चय मेरी मृत्यु आजायगी, फिर मैं मृत्युसे क्यों भय करूं ॥ ४८ ॥ हे राजा ! मैं तुम्हारे आगे भरतकी सौगन्ध खाकर कहतीहूं कि, रामको वन भिजवानेके सिवाय किसी प्रकार मैं सुखी न हूंगी ॥ ४९ ॥ कैकेयी यह बात कहकर चुप होगई उसने उस समय राजाके विलापकलापपर कुछ ध्यान नहीं किया ॥ ५० ॥ महाराज दशरथजीनेभी कैकेयीके वचन सुने कि अब

❀ राजा शिबि जब ९२ यज्ञ कर चुके और आगे फिर आरंभ किया तब इन्द्रको भय हुआ कि, अब यह आठ यज्ञकर मेरा पद लेलेंगे यह शोच अग्निको कपोत और आप बाज बन उसके मारनेको चला तब वह भागा हुआ राजाकी शरणमें गया राजाने उसका वचन सुन बाजको देख यज्ञशालामें अपनी गोदीमें छिपा लिया और बाजको निवारण किया बाज बोला महाराज ! आप यह क्या अनर्थ करते हैं कि, मेरा आहार छीन लिया मैं भूखसे शरीरको छोड आपको पापका भागी करूंगा तब राजाने कहा इसे तो नहीं देंगे इसके पलटेमें जो मांगो सो दें बहुत झगडेके उपरान्त यह बात ठहरी कि, राजा अपने शरीरका मांस कबूतरकी बराबर तोलदे तौ मैं कबूतरको छोड दूं, इस बातसे राजा प्रसन्न होय तुलामें एक ओर कबूतरको बैठाय दूसरी ओर अपने शरीरका मांस काटकै चढाने लगे जब सब शरीरका मांस काट काटकै चढाय दिया और वह बराबर न हुआ तो जभी राजा गलेपर खड्ग चलानेको हुआ तौ त्योंही विष्णुने अपना दर्शनदे कृतार्थ कर मुक्ति दी.

सत्यही इसे रामचन्द्रका वन गमन और भरतका राज्य प्यारा है ॥ ५१ ॥ इनमें दो घडीतक सब इन्द्रियोंमें व्याकुल हो मौन रहे (कुछ न बोले) अप्रिय कहने वाली प्यारी स्त्रीको एक टक देखते रहे ॥ ५२ ॥ वह प्राणप्रिया कैकेयीके मुखमें वज्रकी समान अप्रिय वचन सुनकर दुःख व शोकसे राजा अधीर होगये ॥ ५३ ॥ उस समय राजा दशरथजी कैकेयीके मनका भाव समझ और उसकी शपथको स्मरण कर. "हा रामचन्द्र !" यह कह और लंबे श्वास ले २ कर जड कटे हुये पेडकी नाईं पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ५४ ॥ उस समय राजा नष्टचित्त वाले मतवालेकी नाईं, विकार प्राप्त हुये रोगीकी नाईं, मंत्रसे बँधे निस्तेज विषधर सर्पकी नाईं जान पडने लगे ॥ ५५ ॥ फिर राजाने दीन व आतुर वचनसे कैकेयीसे कहा कि, तुझे अनर्थ कर इस विषयको किसने अर्थ कर बतायाहै ॥ ५६ ॥ भूतने पकडे हुये व्यक्तिकी समान मुझसे ऐसा कहते तुझे लाज नहीं आती। मैं अगाडी कभी तेरा ऐसा स्वभाव नहीं जानताथा कि तू ऐसी हठीली है ॥ ५७ ॥ यह मुझको अभी जान पडा कि, तेरा बालस्वभाव पहलेसे अब विपरीत होगया, तैंने किससे भय पाया जो तू अब ऐसा वर मांगतीहै ॥ ५८ ॥ कि भरत राजा बनकर राज्य भोगें, व रामचन्द्र वनको जांय। इसमें कुछ संशय नहीं, यह बात तेरे लिये अच्छी न होगी इस कामके करनेसे तू मुह मोड और यह हठ छोड, मैं जानताहूं कि तूने झुठाई की ॥ ५९ ॥ रेनृशंसे ! पाप संकल्प करने वाली ! क्षुद्र प्रकृतिवाली! कुकर्म करने वाली ! यदि प्रजाका, भरतका और मेरा प्रियकार्य करना चाहती है तौ तू इस दुष्ट वासनाको छोडदे ॥ ६० ॥ मैंने वा रामचन्द्रने ऐसा तेरा क्या अपराध कियाहै, जो तू ऐसा कहतीहै। यहभी जान रख कि रामको छोड भरत किस प्रकार राज्य पासक्तेहैं ॥ ६१ ॥ मैं रामसेभी अधिक भरतको धार्मिक जानताहूं सो वह रामचन्द्रको छोड आप राजा होंगे; ऐसा तो मुझे नहीं प्रतीत होता फिर वन जानेको कैसे कहूंगा ॥ ६२ ॥ "हे वत्स तुम वनको जाओ" यह वचन कहतेही जब राहुसे ग्रसेहुये चंद्रमाकी नाईं रामचन्द्रका मुख मलिन हो जायगा तब मैं उसे कैसे देख सकूंगा क्योंकि, मैंने अभी सब मित्र बंधु बांधवोंके सहित उनके अभिषेकका निश्चय कियाहै ॥ ६३ ॥ शत्रुओंके द्वारा हारी हुई सेनाके समान मैं किस प्रकार उनसे इसके विपरीत कहूंगा, अनेक देशोंके आये हुये राजा यह बात जानकर मुझे क्या कहैंगे ? ॥ ६४ ॥ वह निश्चयही कहैंगे कि, इक्ष्वाकुवं-

शत्रुर अतिशय बालक बुद्धिहैं इन्होंने इतने दिनतक किस प्रकार प्रजापालन किया, भला जब शास्त्रके जाननेवाले बडे वृद्ध व गुणी प्राचीन बातें सुने हुये ॥ ६५ ॥ आकर यह पूछैंगे कि राम कहां गये, तब मैं उनको क्या उत्तर दूंगा यही कि कैकेयीने मुझे बडा क्लेश दिया इससे मैंने रामको घरसे निकाल दिया ॥ ६६ ॥ यदि मैं यह सत्य वचनभी कहूंगा तौभी यह वचन असत्यही समझेजांयगे भला रामचन्द्रको वनवास देनेपर कौसल्या मुझसे क्या कहेगी ॥ ६७ ॥ और मैंही ऐसा अनिष्ट कार्य करके क्या कहते उसे समझाऊंगा देखो जब २ अपने २ समय पर कौसल्या, सेवा करनेमें दासीके समान, हँसी खेलमें सखीके समान ॥ ६८ ॥ धर्म करनेमें स्त्रीके समान, शुभ कामनामें बहनकी समान, अच्छा और मीठा भोजन करनेमें माताकी समान, मेरे प्रति विशेष अनुरक्तहै जो प्रियवादिनी और शुभ चाहने वाली है व उसके पुत्रभी मुझको सबसे अधिक प्रिय हैं ॥ ६९ ॥ हे देवि ! तेरेही कारण सदा सत्कार करने योग्य उस कौसल्याका उचित आदर सन्मान नहीं कर सक्ता ? पहले जो तुमसे यह सुकृत मैंने किया, अब उसका भली भांति फल मिला ॥ ७० ॥ रोगीके लिये वह अन्न व्यंजन जो उसको न खाना चाहिये वह खाय और फिर वह कुपथ्य उसको पीडा दायक हो वैसेही मुझे रामचन्द्रका वन जानाहै ॥ ७१ ॥ रामके वन जानेका वृत्तांत सुनकर देवी सुमित्राभी मेरा विश्वास नही करेगी । हाय ! कैसी चिन्ताकी बात है कि—जानकी रामका वन जाना और मेरी मृत्यु यह दो अशुभ संवाद शीघ्रही सुनेगी ॥ ७२ ॥ मेरे मरजानेपर जानकी मेरे प्राणोंको सोचती हुई व रामचन्द्रका वन गमन सुन अपना काल महा दुःखसे बितावेगी ॥ ७३ ॥ जैसे कि, हिमवान् पर्वतपर किन्नरसे बिछुडी हुई किन्नरी शोक करती हुई समय बितावै व मैंभी रामचन्द्रको महावन जाते हुये ॥ ७४ ॥ और मैथिलीको रोती हुई देख बहुत घडीका जीना नहीं चाहता ! तुम उस समय विधवा होकर पुत्रोंके सहित राज्य भोगना ॥ ७५ ॥ मनुष्य जिस प्रकार मदिराकी मोहिनी शक्तिसे मोहित होकर फिर उसको विषवत् समझतेहैं वैसे ही मैं अबतक तुझे सती समझकर तेरे साथ रहा परंतु अब समझमें आया कि, तू व्यवहार करनेमें घोर असतीहै ॥ ७६ ॥ तैंने अबतक वृथा झूठी बातें कह २कर मुझको समझाया जिस प्रकार गीत शब्दसे व्याध मृगका मनहरण कर उसको मार डालताहै वैसेही तैंने मुझे किया ॥७७॥ अधिक क्या कहूं अबसे श्रेष्ठ पुरुष मुझे बुरा और पुत्रका बेचनेवाला

कहते फिरेंगे ! मार्गमें शराब पीनेवाले ब्राह्मणको देख मनुष्य जिस प्रकार उसकी निन्दा करते हैं वही बनाव अब मेरे भाग्यमें बदा है ॥ ७८ ॥ हाय क्या कष्ट ! क्या दुःखहै ! कि वर देकर मैं तेरे ऐसे कठोर वचन सुनताहूं ! मैं समझा, कि पहले जन्मके किये अशुभ फलकी नांई मेरे भाग्यमें यह बड़ा दुःख उतराहै ॥ ७९ ॥ रे पापिनी ! मुझ पापीने अबतक तुझे पालन करके अज्ञानी जिस प्रकार अपने गलेमें रस्सी बांध रक्खे कि झटका लगतेही जिस्से मृत्यु होजाय ॥ ८० ॥ वैसेही मैंने तेरे साथ विहार करके अपना सब कुछ नाश किया कोई बालक जिस भांति एका-न्तमें काले सर्पको खेलनेके लिये उठाले, वैसेही मैंने मोहके वशहो तुझको मृत्युका रूप नहीं जाना ॥ ८१ ॥ अच्छाहै जो मुझ दुष्टात्माकी निंदा सब संसार करै तोभी अनुचित नहीं क्योंकि मैंने अपने जीतेजी, ऐसे गुणवान् पुत्रको पैतृक राज्यके अधिकारसे छुड़ाया ॥ ८२ ॥ अबसे मनुष्य राजा दशरथ अति मूर्ख और बड़े कामीहैं, जो स्त्रीके कहनेसे विना अपराध प्यारे पुत्रको वनवास देदिया ऐसा कहकर मेरी निन्दा किया करेंगे ॥ ८३ ॥ राम बालकपनहीसे वेदके पढने, ब्रह्मचर्य, व गुरुकी सेवा करनेसे दुर्बल शरीर हुयेहैं। अब उनको सुख भोग करनेके समय फिर वनवासका दुःख झेलना पड़ेगा ॥ ८४ ॥ मैं भली भांति जान्ताहूं कि जब "वनको जाओ" ऐसा रामचन्द्रजीसे कहा जायगा तो वह "बहुत अच्छा" के सिवाय दूसरी बात नहीं कहेंगे; क्योंकि उनका स्वभाव बातके उलट देनेका नहींहै ॥ ८५ ॥ यदि हमारे प्यारे पुत्र मेरे वचन न मानकर वनको न जांय तो मेरे मंगलकी बातहै परन्तु वह लडैतेलाल काहेको ऐसा करेंगे ॥ ८६ ॥ रामके वन चले जानेपर मैं सबके निकट निन्दित हूंगा सब मुझे धिक्कार देंगे तब क्षमाके अयोग्य मौत हमैं यमपुरको लेहीजायगी ॥ ८७ ॥ नरश्रेष्ठ रामचन्द्रके वन चले जाने और मेरा मरण हो जानेपर न जाने तू हमारे भाई बन्धुओंपर क्या विपद डालेगी ॥ ८८ ॥ यदि देवी कौशल्या राम और मुझे न पावैगी, यदि सुमित्रा लक्ष्मण शत्रुघ्नको न देखेगी क्योंकि लक्ष्मण अवश्य रामके साथ वनको जांयगे, और शत्रुघ्न भरतके अनुगामी ठहरे, तब यह दोनों पतिव्रता नारियें सहनेके अयोग्य शोक को न सहकर मर जांयगीं ॥ ८९ ॥ हे कैकेयी ! कौसल्या, सुमित्रा, मुझे राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके सहित दुःखमें ढकेलकर तू सुख भोगकर ॥ ९० ॥ जब मैं और रामचंद्र दोनों चले जांयगे उस समय इस अचल इक्ष्वाकु कुलको तू पालन

करना तब इसका गुण गौरव कहांतक बढ़कर रक्षितहो प्रकाशित रहेगा, इसको मैं कह नहीं सकता ॥ ९१ ॥ यदि रामका वनवास भरतको प्रिय हो तो मेरी मृत्युके पीछे वह मेरी प्रेत क्रिया शरीरका अग्निसंस्कार न करैं ॥ ९२ ॥ मेरा प्राण छूटने और पुरुष श्रेष्ठ रामके वन चले जाने उपरान्त तू विधवा होकर अपने पुत्र भरतके साथ राज्य पालन करना ॥ ९३ ॥ हे कैकेयी ! तुझको न जानकर जो मैं-ने अपने घरमें स्थान दिया मेरी खोटी प्रारब्धसे तू मेरे घर आई इसीकारण मेरी संसारमें अतुल अकीर्ति व सज्जनोंमें अनादर हुआ. मैं अधिक क्या कहूं मुझे घोर पातकी कहकर सब जग मेरी निन्दा करैगा ॥ ९४ ॥ हाय ! जो रामचंद्र, रथ, घोड़े हाथी, पर बार २ चढ़कर राजमार्गमें भ्रमण करतेथे, वह पैदल किस प्रकार महा वनमें घूमेंगे ॥ ९५ ॥ जिन रामचंद्रके भोजन समय कुण्डलधारी रसोइये " हम पहले अच्छा भोजन पान बनाते हैं हम बनाते हैं " यह कहकर शीघ्रता करतेथे ॥९६॥ वे रामचंद्र तीखे कडुये कषैले फल मूल भोजन करके किस प्रकार दिन बितावेंगे ॥ ९७ ॥ बडे २ मोलकी पोशाकोंमे जिनका शरीर सुशोभित होता जो सब प्रकारके सुख भोगतेथे वह इस समय किस प्रकार गेरुवा वस्त्र पहिरे वनमें भूमिपर सोवेंगे ! ॥ ९८ ॥ मैं तुझसे यह पूछताहूं कि रामके वन जाने और भरतके राज्य देनेका यहदारुण उपदेश किसने तुझको सिखाया ! ॥ ९९ ॥ मैं समझ गया कि स्त्री जाति अतिशय शठ और अपने स्वार्थकी चाहनेवाली होतीहै; नहीं २ मैं सब स्त्रियोंको ऐसा नहीं कहता केवल भरतकी जननेवाली तुझकोही ऐसा कहताहूं ॥ १०० ॥ रे अनर्थदायिके ! रे स्वार्थकी चाहनेवाली ! क्या विधाताने मेरे दुःख देनेहीके लिये तुझे उत्पन्न किया यह तो बता कि मैंने वा हितकारी रामने तेरा क्या बुरा कियाहै? ॥ १०१ ॥ मैं तुझसे क कि रामके वन चले जानेपर, पिता पुत्रोंको परित्याग करैंगे, पतिव्रता पतिको छोड़ देगी । इस प्रकार सब संसार रामको वनवासी देख तेरेपर कुपित होजायगा ॥ १०२ ॥ जब मैं देवसुत समान कमल लोचन गहने पहरे हुये रामचंद्रको अपने निकट आता हुआ सुन्ताहूं तब मेरे आनदकी सीमा नहीं रहती वरन ऐसा बोध होताहै कि वृद्ध होकरभी प्यारे पुत्रके युवाअवस्थाका संचार हुआ ॥ १०३ ॥ चाहे सूर्यके विना संसारमें सजीवता होजाय, चाहे वज्रधर इन्द्रके वर्षा न करनेसे संसार टिक जाय, परन्तु अवधसे रामचन्द्रको वनजाते हुये

देख कोई नहीं जियेगा यह मैं निश्चही कहताहूं ॥ १०४ ॥ रे राजपुत्रि ! तू मेरे प्राणोंका घात करने वाली मेरी भयंकर शत्रु है, तेज विषवाली सर्पिणीको गोदीमें बैठालनेसे जो दशा होती है, वैसेही तुझे नाशकारिणी अहित करनेवाली अमित्राको अपने घरमें स्थान देकर मैंने मोहसे अपनी मृत्युको आप बुलाया ॥ १०५ ॥ तू इस समय राम, लक्ष्मण, और मुझे जलांजलि देकर पुत्र भरतके सहित राज्य पालन कर, और बन्धु बान्धव पुर व देश सबको उजाड कर हमारे शत्रुओंको अच्छी तरह प्रफुल्लित कर ॥ १०६ ॥ हे कुत्सित कार्य करने वाली व्यसन देखकर प्रहार करने वाली जब तूने पति और स्त्रीका संबंध तोडने वाली ऐसी निठुर वार्ता कही, तब फिर क्यों नहीं मुखसे नीचे गिरके तेरे दातोंके सहस्रों टुकडे २ होजाते ॥ १०७ ॥ मेरे रामने तुझे कभी अप्रिय वचन नहीं कहा, और न वह अप्रिय बात कहनी जानते हैं क्योंकि विशेषतः वह सर्व गुणों करके युक्त प्रिय कहने वालेहैं फिर किस अपराध से उनहीं रामको वन-वासी करती है जिनमें नित्य गुण वास करतेहैं ॥ १०८ ॥ रे कैकयराजकुल कलंकिनी कैकेयी ! तू दुःखही भोगकर वा अग्निमें प्रवेश कर या हजार वार पृथ्वी में समाजा, अथवा किसी प्रकार अपने आप अपने को मार डाल, परन्तु मैं किसी प्रकार अपना अहित करने वाली इस तेरी कामना को पूर्ण नहीं करूंगा ॥ १०९ ॥ क्योंकि तू क्षुरे की धार के समान भयंकरहै असात्प्रिय वचन बोलने वालीहै, व तेरा स्वभाव दूषित है तू कुलघातिनीहै तैंने मेरे प्राण और हृदय को जलायाहै इसकारण तू भयंकर दर्शन वालीहै अतएव मैं तेरा मरनाही भला समझताहूं ॥ ११० जब मेरे जीवनहीमें सन्देह है तब सुखकी क्या आशा ? वास्तव में ममता रखने वाले मनुष्योंको विना पुत्रके सुखकी संभावना कहां? देवि ! मेरा बुरा मतकर मैं तेरे पैर पडताहूं तू प्रसन्न हो ॥ १११ ॥ दशरथजी ऐसे अनाथकीसमान विलाप करते २ स्त्रीसे हृन्मर्ममें ताडित होके कैकेयीके पाँवमें आतुर सरीखे मूर्छित होके पडे ॥ ११२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकाण्डे भाषायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशःसर्गः १३.

जब राजा कैकेयीके चरणों पर गिर पड़े जिस योग्य वह नथे तब ऐसे विदित होतेथे जैसे पुण्य नाश होनेके पीछे राजा ययाति स्वर्गसे गिरेथे ॥ १ ॥ पाप रूपा कैकेयीका जब प्रयोजन सिद्ध न हुआ तो निडरहो राजाको भय दिखाती हुई वही वरदान फिर मांगने लगी ॥ २ ॥ हेमहाराज ! तुम अपनेको सत्यवादी और दृढप्रतिज्ञ कहकर बडाई मारा करतेथे अतएव मुझको वर देना कह कर अब उसके देनेमें क्यों कातर होतेहो ? ॥३॥ जब कैकेयीने ऐसा कहा तो राजादशरथजी मुहूर्त भरतक व्याकुलहो फिर क्रोधमें भरकर बोले ॥ ४ ॥रे अनार्ये रे शत्रुरूपवाली ! मेरे मरजाने और रामके वन जानेपर तू सुखीहो और अपनी कामनाको पूरीकर ॥५॥ शरीर छूटनेके पीछे स्वर्गमें जानेपर जब देवता गण रामचन्द्रकी कुशलका समाचार पूछैंगे तो उनसे क्या कहूंगा ॥६॥ यदि यह कहूंगा कि " कैकेयीका प्रिय करनेके लिये रामचन्द्रको वन पठाया " तो इस सत्य बात पर कौन देवता विश्वास करेगा कोईभी नहीं ॥ ७ ॥ मैं बहुत समय तक अपुत्रक था बहुत कष्टसे इस बुढापेमें राम रूपीरत्न पायाहै अतएव तूही कह कि उन महातेजा रामचन्द्रको मैं किसभांति परित्याग करूं ? ॥ ८ ॥ वह साधु, सब विद्या पढे हुये क्रोधके जीतने वाले सबको क्षमा करने वाले अच्छे स्वभाव वालेहैं भला उन कमलदलनयन रामचन्द्रको किस प्रकार वनको पठाऊं ? ॥ ९ ॥ मैं किस प्रकार दीर्घबाहु महाबलशाली इन्दीवर श्याम मनोहर रामको वनवासी करूं ॥ १० ॥ जो सदा सुख भोग करते हैं और इतनाभी नहीं जानते कि दुःख क्या पदार्थ है, उन बुद्धिमान् रामचन्द्रकी वह दशा किस प्रकार देख सकूंगा ?॥ ११ ॥ यदि उन रामचन्द्रको जो दुःखके योग्य नहींहैं कष्ट न देकर मेरी मृत्यु होजाती तो भी मैं किसी प्रकार सुखी होजाता ॥ १२ ॥ रे निर्दयी ! पाप कारिणी कैकेयी ! सत्यके समुद्र मेरे प्यारे रामचन्द्रका यह बुरा क्यों चाहतीहै ॥ १३ ॥ ऐसा करनेसे संसारमें बडी भारी दुर्नामता होगी। जब महीपालको घबडाकर यह विलाप कलाप करते२ ॥१४॥ सूर्य नारायण अस्ता चलके शिखर पर हो रहे और रात आई वह रात्रि चन्द्रमा करके शोभित होने पर भी दुःखित राजाको ॥ १५ ॥ अत्यन्त विलाप करनेके कारण आनन्द देनेवाली रात न हुई उस समय वृद्ध राजा दशरथजी बारंबार गर्म२श्वास लेने लगे ॥१६॥ विलाप करते २ उनकी दृष्टि आकाशमें जा लगी । और कुछ देर पीछे बोले । हे

तारागणासे शोभायमान रात्रि ! " मैं तुम्हारा प्रभात होना नहीं चाहता " ॥ १७॥ हे भद्रे ! मैं हाथ जोडकर कहताहूं कि तुम मेरेऊपर प्रसन्नहो अथवा शीघ्रही बीत जाओ क्योंकि मैं दया रहित ॥ १८ ॥ कुटिल कैकेयीका मुख देखनेकी इच्छा नहीं करता जिसके कारणसे मुझे ऐसा कष्ट हुआ । ऐसा कहकर फिर राजाने कैकेयीके हाथ जोडे ॥ १९ ॥ राजधर्मके जानने वाले राजा फिर कैकेयीको प्रसन्न करनेकी इच्छा करने लगे और कहा कि साधुप्रकृति दुःखी दीन व आयुहीन म्हारेही वशहूं ॥ २० ॥ विशेषतः राजाहूं अतएव हे भद्रे ! अच्छे नितम्बवाली मेरे ऊपर कृपाकर और प्रसन्नहो मैंने दुःखसे क्रोधमें आकर तुमको बहुत कडुवे वचन कहेहैं अथवा यह रामके अभिषेक की वार्त्ता मैंने निर्जनमें नहीं कही है बल्कि सभामें भी सबके सामने कहीहै ॥ २१ ॥ हे सुन्दरी ! मैं बालक पनसे तुझको सरल हृदय वाली जान्ताहूं, तुम मुझपर प्रसन्न होवो; यदि यह नहो तो तुम्हीं प्रसन्नतासे रामचन्द्रजीको राजगद्दी देदो वह तुम्हारा दिया हुआ राज्य पावें ॥ २२ ॥ ऐसा करनेसे तुम्हारी अखंड कीर्त्ति सारे संसारमें छा जायगी और इस बातसे मैं रामचन्द्र, वशिष्ठादि गुरुजन और भरतजी परम प्रसन्न होंगे, इससे हे सुश्रोणि ! सुन्दर मुखवाली कृपा पूर्वक एक वार कह दीजिये ॥ २३ ॥ सरल स्वभाव राजा दशरथजी इस प्रकार दीनहो विलाप करते २ रुदन करने लगे, उनके दोनों नेत्र लाल हो आये, परन्तु बुरे स्वभाववाली कैकेयीने महाविलाप सुनकर राजाकी बातपर एक ध्यान न दिया वह काहेको ध्यान देती, उसके मनमें तो कुछ और ही बसीथी ॥ २४ ॥ तदनन्तर महाराज दशरथजीने जाना कि, रानी हमारे वचनके विरुद्ध ही वचन कहतीहै, और कुछभी प्रसन्न नहीं हुई तो फिर मूर्च्छितहो पृथ्वी पर गिरपड़े और दुःखके मारे क्षण २ में दीर्घ निःश्वास त्याग करने लगे । और राजा भली भांति समझ गये कि, रानी रामचंद्रको वनमेंही भेजा चाहतीहै ॥ २५ ॥ इस प्रकार राजाको रोते कलपते विलपते रात बीतकर सबेरा हुआ । प्रभातका समय जानकर वैतालिक गण मंगल व स्तुतिके गीत गाने लगे परन्तु राजाको वह सब गीत इत्यादि अच्छे न लगे इससे तुरंत उन मंगल गायकों को गीत गानेसे निवारित किया ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०अयोध्याकाण्डे भाषायां त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशःसर्गः १४.

पाप कर्म करनेवाली कैकयी पुत्रशोकमें भ्रमेहुये राजाको मूर्च्छित. पृथ्वीमें लेटता हुआ चेष्टा रहित देखकर यह बोली ॥ १ ॥ हे महाराज ! तुम मुझको वरदान देनेकी प्रतिज्ञाकर, मानो भयानक पापका कार्य करके इस समय दीन भावमें क्यों पड़े हो ? इसका क्या प्रयोजन है तुमको अपनी उसी सत्यप्रतिज्ञा पर टिकना चाहिये ॥ २ ॥ धार्मिक लोग सत्यहीको परम धर्म बतलातेहैं । सो मैं सत्यहीका आश्रय लेकरके वर देनेके लिये तुमको उत्साहित कर रहीहूं कुछ अन्यथा नहीं करती ॥ ३ ॥ विचार करके देखो कि, पहले समय में, राजा शैब्यने सत्य ही के कारण कबूतरके बदले बाजको अपने शरीरका मांस देदिया । जिसके कारण फिर राजा उत्तम गतिको प्राप्त हुये ॥ ४ ॥ फिर तेजस्वी राजा अलर्क ने वेदपाठी ब्राह्मणके माँगने पर अपने नेत्र निकाल प्रसन्न मनसे देदियेथे ॥ ५ ॥ और कहाँ२तक बताऊं देखो समुद्रने अपने गुरु अगस्त्यजीको वचन दिया है, उसी वचनका पालन करनेके अर्थ पौर्णमासीके दिन भी अपनी मर्यादासे अधिक वेला भूमिको अतिक्रम नहीं करता ॥ ६ ॥ सत्यही एक मात्र ब्रह्महै, सत्यमें ही धर्म प्रतिष्ठितहै, सत्यही कभी नाश न होनेवाला वेद है, और सत्यहीके प्रभावसे परम गतिकी प्राप्ति हो जातीहै ॥ ७ ॥ यदि तुह्मारी धर्ममें मति लगी हो, तौ सत्यकी मर्यादा रक्षा करो, और जो दो वर मुझे देने कहेहैं उनको प्रसन्नतासे मुझे देदो ॥ ॥ ८ ॥ तुम्हारे धर्मको बढानेके लिये मैं ऐसा कहतीहूं मैं फिर भी तीन बार कहती हूं कि, तुम रामचंद्रको वनमें भेजदो ॥ ९ ॥ जो आप मेरी इस प्रार्थनाको न मानें तो मैं तुम्हारेही आगे अपने प्राणपरित्याग करदूंगी इसमें संशय नहीं ॥ १० ॥ राजा कैकयीके ऐसे निःशंक वचन सुनकर ऐसे वचनमें बंध गये जिस प्रकार वामनजीके आगे राजा बलि बँधेथे और तीनपग भूमि देनीही पड़ीथी ॥ ११ ॥ उस समय राजाका हृदय महाव्याकुल होगया; और मुखमंडल पीला पड़गया, उस समय राजा दोपहियोंमें लगी हुईधुरीकी समान चलायमान चित्त हुये ॥ १२ ॥ देखतेही देखते उनके दोनों नेत्रोंमें व्याकुलता छागई अंधेरी आगई तब राजाने बड़े कष्टसे धीरज धर मनके वेगको रोक कैकेयीसे कहा ॥ १३ ॥ हेपापिनी ! मैंने जो अग्निदेवके सामने मंत्र पढकर तेरा पाणिग्रहण कियाथा, अब इस समय तुझे तेरे गर्भजात पुत्र भरत सहित मैंने त्याग किया ॥ १४ ॥ हेकैकयी ! इस

समय रात बीत कर प्रभात होनआयाहै अब सूर्यका उदय देखतेही गुरुजन आदि आकर रामका अभिषेक करानेके लिये मुझसे शीघ्रता करावेंगे ॥ १५ ॥ रामके राज्यके अभिषेक होनेके लिये जो सब सामग्री इकट्ठी की गईहै, सो यदि तू इस काममें बाधा डालेगी तौ सब उन्हीं वस्तुओंके द्वारा रामचन्द्र मेरा प्रेतकर्म करैंगे ॥ १६ ॥ हां एक बात मैं और भी कहे देताहूं कि, तुम या तुम्हारा पुत्र कोई मेरे प्रेतकर्म या जल पिंडादि दान न करै क्योंकि तुमने रामचन्द्रका अभिषेक न होने दिया ॥ १७ ॥ मैंने जो रामचन्द्रका कमलकी समान वदनमंडल प्रफुल्ल देखाहै अब किस भांति मैं उसे मलीन देख सकूंगा ॥ १८ ॥ इस प्रकार महात्मा राजा दशरथजी इस दुष्टस्वभाववाली रानी कैकेयी से ऐसा रो २ कर कहतेथे, कि चन्द्रमा और तारागणों करके शोभित रात्रि बीती और प्रभात होगया ॥ १९ ॥ तदनन्तर पापकर्म करने वाली कैकेयी जो कि बात चीत करनेमें बडी चतुरथी क्रोधमें भरकर राजासे परुष वचन बोली ॥ २० ॥ हे राजन् ! तुम इस समय विषकी समान और शूल आदिकों की समान यह मर्म की भेदन करने वाली बातें क्या कर रहेहो जो हो तुम शीघ्रतासे रामको अभी यहां बुलवा भेजो ॥ २१ ॥ मेरे बेटे भरतको राजगद्दीपर बैठाल, रामचन्द्रको वनको निकाल दो और मुझे सौतहीन करदो तब तुमभी सुख पावोगे क्यों वृथा अब रोते धोतेहो ॥ २२ ॥ राजा कैकेयीके यह वचन सुन बार २ चाबुक खायेहुये घोडेकी नाइँ प्रेरित हो मर्माहत होकर कैकयीसे बोले ॥ २३ ॥ कि मैं तौ अब धर्मके बंधनमें बंधही रहाहूं मेरी चेतना जाती रहीहै, इस समय मैं अपने बडे प्यारे पुत्र धर्मात्मा रामचन्द्रके देखने की इच्छा करताहूं इस समय जो तेरी इच्छा हो सो कर ॥ २४ ॥ इतनेमें प्रातःकालही होगया सूर्य देव प्रकाशित हुये समयपर शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त, आये जिस समय में कि, रामचन्द्रका अभिषेक होनेको था ॥ २५ ॥ इतनेमें सब गुणवान् वसिष्ठजी अपने बहुत चेलों समेत अभिषेक की सब सामग्री लिये लिवाये राजपुरीमें आये ॥ २६ ॥ वसिष्ठजीने देखा कि, राजपुरीके सब मार्गोंमें छिडकाव होरहाहै। सब कहीं देवालयों में घर २ पताकायें बंध रहीहैं बाजारोंमें सब पदार्थ भरेहैं सब दुकानें खुलीहैं सब मनुष्य रामजन्द्रजीके अभिषेकके उत्सवको जान आनंदमें मग्नहैं ॥ २७ ॥ नगरीके सब मनुष्य यह चाह रहेहैं कि, कब रामचन्द्रजीके अभिषेकका आनंद देखैं चारों ओर, चन्दन, अगर और धूप, दीप आदि सुगंधित वस्तुओंका धुवाँ आरहाहै ॥

॥ २८ ॥ गुरु वशिष्ठजी इन्द्रपुरीकी समान ऐसी पुरीको देखतेहुये ध्वजा पताका करके शोभायमान राजमन्दिरमें आये ॥ २९ ॥ यहांपर देखा कि, हजारों ब्राह्मण लोग आयेहुये अपना २ काम कर रहेथे इनके अतिरिक्त और पुरवासी और २ देशोंके मनुष्य घूम रहेथे यज्ञ जाननेवालेभी ब्राह्मण सब बैठेथे, सभासद कोई बैठे और कोई घूम रहेथे ॥ ३० ॥ तब महर्षि वसिष्ठजी और २ ऋषि गणोंके साथ उस भीडको भेद करते हुये महाराज दशरथजीके निकट जानेलगे ॥ ३१ ॥ उस समय उन्होंने मनुष्योंमें सिंह राजाके प्यारे शोभन मूर्ति मंत्री सुमंत्रजीको रनवाससे बाहर आते देखा ॥ ३२ ॥ तिन पंडित सुमंत्रजीसे महातेजस्वी श्रीवशिष्ठजी बोले कि हे सुमंत्र ! तुम राजाको शीघ्र यह समाचार दो कि वशिष्ठजी आयेहैं ! ॥ ३३ ॥ तुम राजासे यहभी कह देना कि, रामके अभिषेक करने के लिये सोनेके घडोंमें गंगाजलभी भरवाकर लायेहैं और गलरकी भद्रपीठ चौकी यज्ञमें राजकुमारके बैठनेके लिये हम लायेहैं ॥ ३४ ॥ सर्व प्रकारके बीज, सब प्रकारकी सुगंधियोंकी वस्तु और भांति २ के रत्न. शहत, दही, घी, खीलें और कुश. फूल,दूध ॥ ३५ ॥ सुन्दरी आठ कन्या, मतवाला सफेद हाथी, चार घोडे जुतेहुये ऐसा एक रथ, उत्तम खड्ग. सुन्दर धनुष ॥ ३६ ॥ नरवाहन पालकी चन्द्रमाकी समान उज्ज्वल छत्र सफेद दो चँवर, धतूरेके फूलके समान आकार वाला एक सोनेका पात्र जिसे भृङ्गार कहतेहैं (झारी प्रसिद्धहै) ॥ ३७ ॥ सोने से सींग आदि मढायाहुआ श्वेत बैल. चार डाढ़का एक महाबलवान् सिंह केशरी ॥ ३८ ॥ ऊंचा सुन्दर सिंहासन, व्याघ्रका चमडा यज्ञ करनेके लिये ईंधन अग्नि सब नाना प्रकारके बाजे सब वसन भूषण धारण कियेहुये वेश्यायें ॥ ३९ ॥ सब आचार्य औरभी ब्राह्मण हजारों गायें, तोता, मैना, कबूतर आदि पक्षी व बनैले पाले हुये जीव नगर और देशके निवासी बनिये आदि रुजगारू लोग अपनी २ समाजके साथ ॥ ४० ॥ इन्हें आदिले और बहुतसे प्रसन्न मन लोग नृपालोंके साथ प्रिय वचन कहतेहुये आयेहैं यह सब लोग महाराज रामचन्द्रजीका अभिषेक देखनेको आयेहैं ॥ ४१ ॥ हे सुमंत्र ! जिससे कि पुष्यनक्षत्रमें रामचन्द्रजीको राज्याभिषेक होजाय तुम इसके लिये प्रसन्न मनसे महाराज दशरथजीको जल्दी कराओ ॥ ४२ ॥ महाबलवान् सूत सुमंत्रजी गुरुजीके ऐसे वचन सुन नृपति शार्दूल राजा दशरथजीकी स्तुति करतेहुये राजमंदिरमें पैठे ॥ ४३ ॥ राजाकी

अनुमतिसे सुमंत्रको रनवासमें सब कालमें प्रवेश करनेकी आज्ञाथी, अतएव उनके रनवासमें जानेके समय किसी द्वारपालने न रोका टोका क्योंकि यह राजाके हित कारीथे ॥ ४४ ॥ सुमंत्रजी राजाके समीप पहुंचे व उनकी ऐसी अवस्था देख परम पवित्रीवाणी से स्तुति करने लगे जैसी स्तुति प्रभात समय राजाकी की जातीहै वैसेही सुमंत्रजीकरने लगे ॥ ४५ ॥ राजाके मंदिर में जैसे पहलेसुमंत्रजी उनकी स्तुति करतेथे इसी प्रकार सुमंत्र हाथ जोड राजाको प्रसन्न करने लगे ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! जैसे सूर्योदय होनेपर समुद्र नहानेवाले मनुष्योंको प्रफुल्लित करता है, अब वैसे ही प्रातःकाल उठकर आप हम लोगोंको परमानंदित कीजिये ॥ ४७ ॥ सुर सारथि मातलि जिस प्रकार सूर्य निकलनेके कालमें देवराज इन्द्रकी स्तुति करताहै और वह सब दानवोंको जीततेहैं वैसेही मैं इस समय आपको जगाताहूं सो आप उठो ॥ ४८ ॥ षडङ्ग वेद व मीमांसादि विद्या जिस प्रकार स्वयंभू ब्रह्माजीको जगातेहैं वैसेही मैं आपको जगाताहूं आप उठिये ॥ ४९ ॥ चन्द्रमा सूर्य जिस प्रकार उदय और अस्तद्वारा पृथ्वीके रहनेवाले प्राणियोंको जगाते हैं वैसेही मैं इस समय आपको जगताहूं आप सावधान हो॥ ५० ॥ हे महाराज ! मंगलाचार पूर्वक उठिये जिस प्रकार सुमेरु पर्वतसे सूर्य भगवान् का उदय होता है आपभी वैसेही रामराज्याभिषेकके महोत्सवमें उठिये ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रजीके अभिषेकके लिये जिस २वस्तुका प्रयोजन है वह सब इकट्ठी होगई है पुरवासी और नगरोंके रहनेवाले, तथा बनिये हाथ जोडेहुये द्वारे खडे हैं ॥ ५२ ॥ और लोगोंकी बात तो एक ओर रही स्वयं भगवान् वशिष्ठजी भी ब्राह्मणोंके साथ खडे आपकी राह देख रहेहैं, अतएव शीघ्रही उनको रामचन्द्रजीका अभिषेक करनेके लिये आज्ञा दीजिये ॥ ५३ ॥ क्योंकि जैसे बिना चरानेवालेके पशु, बिना सरदार की सेना, बिना चन्द्रमाके रात, और बैल बिना गायकी जो अवस्था होतीहै ॥ ५४ ॥ ऐसेही जिस राज्यमें राजा नहीं होता उस राज्यकी भी यही दशा होजातीहै, अर्थके जाननेवाले राजा ऐसे समझते हुये सुमंत्रके शांतियुक्त वचन सुन ॥ ५५ ॥ फिर शोक सागरमें डूबगये फिर कुछ एक सँभालकर रामचन्द्रके शोकमें ग्रसित हो सूतसे ॥ ५६ ॥ शोकके मारे लाल नेत्र किये श्रीमान् महाधार्मिक राजा बोले कि, सुमंत्र तुम्हारे स्तुति कियेहुए वाक्य मेरे लिये अति कष्टके देनेवाले हुये हैं ॥ ५७ ॥ सूत सुमंत्र राजाकी करुणामयी बाणी सुन और उनकी दीन दशा देख हाथ

जोडकर उस स्थानसे हट कुछ एक दूर जाकर खडेहुये ॥ ५८ ॥ तब अपने काम साधनेवाली रानी कैकेयी महाराजको शोकाकुल और बोलनेमें असमर्थ देखकर सुमंत्रको बुलाकर बोली ॥ ५९ ॥ हे सुमंत्र ! महाराज रामचन्द्रजीके अभिषेकके उत्सवमें ऐसे मग्न हुये कि, सारी रात नहीं सोये । इसमे मारे परिश्रमके थककर अब सो रहेहैं ॥ ६० ॥ सो इस समय तुम शीघ्र जाकर यशस्वी रामचंद्रजीको यहां बुला लाओ तुम्हारा मंगलहो तुम इस विषयमें कुछ विचारा विचार मतकरो ॥ ६१ ॥ तब सुमंत्रने रानीको उत्तर दिया कि बिना महाराजकी आज्ञा पाये मैं किस प्रकार जा सकताहूं ! तब मंत्रीके ऐसे वचन सुनकर महाराज दशरथजी बोले ॥६२॥ कि हे सुमंत्र ! मैं प्रिय पुत्र रामके देखनेकी इच्छा करताहूं अतएव तुम उनको जाकर अपने साथ बुलालाओ । तब सुमंत्र बहुत अच्छा कह बहुत हर्षित हुये ॥ ६३ ॥ आज्ञा पातेही सुमंत्रजी रामचन्द्रजीको लिवा लानेके लिये वहांसे चले और मार्गमें सोचा कि, क्या कारण है जो कैकेयीने मुझसे रामचन्द्रको जल्दी बुला लानेके लिये कहा ॥ ६४ ॥ कैकेयीकी घबराहट देखकर सुमंत्रने समझा कि रानी, कैकेयी रामका अभिषेक देखकर घबरागईहै और राजा थकगयेहैं यह विचार कर सुमंत्र फिर कुछ हर्षित हुये ॥ ६५ ॥ वह इस प्रकार अपने मनमें निश्चय कर समुद्रमें टिकेहुये कुंडकी समान सुन्दर रनवाससे रामचन्द्रको बुलानेके लिये चले ॥ ६६ ॥ शीघ्रतासे द्वार आकर देखा तो राजपौर पर पुर, देश, नगर वासी खडेहैं और अनेक देशोंके महाजनभी इकट्ठे हैं । और सब लोग राजद्वार पै ठौर २ बैठते जातेहैं ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्या काण्डे भाषायां चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५.

वेदपारग ब्राह्मण लोग रात्रि बीतनेपर राजपुरोहित वसिष्ठजीकेसाथ संध्या वंदनादि कर्म करने लगे ॥ १ ॥ व जो राजसेवक सेनापति व बाजारके निवासियोंमें मुखियाथे वे सब रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ प्रफुल्ल मनहो दूसरेसे बातें करने लगे ॥ २ ॥ जबतक विमल सूर्यका उदय हुआ, पुष्य नक्षत्र आया, कर्क लग्न उपस्थित हुआ, जिसमें कि, रामचन्द्रजीका जन्म हुआथा ॥ ३॥ तब उत्तम २ ब्राह्मणोंने रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ कंचनके घडे जलसे भरेहुये व बैठनेके लिये

बजाकर भद्रपीठ एकत्र किया ॥ ४ ॥ सब भांतिसे सजा सजाया रथ दिपते हुये व्याघ्रके चमडेसे लपटाहुआ आया और गंगा यमुनाके पवित्र (संगमसे) जल आया॥५॥इसके अतिरिक्त जो और पुण्यकी देनेवाली नदियें कुंड कुआँ ताल आदि पूर्वकी तरफवहनेवाले ऊपरको(उत्तरको)बहनेवाले वंकिमाकार बहनेवाले इत्यादिहैं जो जलसे पूर्ण हैं॥ ६ ॥ तिनसे जल लाये, और समुद्रसे जलको लाये शहत, दही, घी, लाजा, खीलें, फूल, कुश दूध ॥ ७॥ सब भूषण पहिरी आठ सुन्दरी कन्या, एक मतवाला हाथी दूध निकलनेवाले वृक्षोंके पत्तों समेत जल सहित सोने चांदीके घडे ॥ ८ ॥ कमलपत्र पुष्प संयुक्त सुन्दर जलसे भरे शोभायमान हो रहेहैं चंद्रमाकी किरणों की समान उज्ज्वल सोनेकी डंडी लगी रत्न जिनमें जडे हुये ॥ ९ ॥ ऐसे चमर रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ प्रस्तुतहैं व चन्द्रमंडलहीके समान सफेद छत्र अति दिपता हुआ अभिषेकके लिये तैयारहै ॥ १० ॥ एक सफेद बैल सजाहुआ कान्तिमान् अभिषेककी सामग्रीमें, मुख्य श्वेत अश्व मद जिसके निकल रहा है ऐसा हाथी, यह सब अभिषेकके लिये उपस्थितहैं ॥ ११ ॥ सब प्रकारके बाजे बजानेवाले भाटलोग वंशकी प्रशंसा करनेके निमित्त आये इसके सिवाय और सूत माग धादि लोगभी जो सब सामग्री इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंके अभिषेकके समय प्रयोज नीय होतीहैं ॥ १२ ॥ वह सब प्रकारकी सम्पूर्ण सामग्री राजकुमार रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ इकट्ठी करके लेकर सब आये हुये राजाकी आज्ञासे एकत्र हुयेथे॥ १३ ॥ जब राजाको न देखा तब यह सब ब्राह्मणगण आपसमें कहने लगे, हम लोगोंके आनेका समाचार कौन राजासे कहे, देखिये राजा अबलों नहीं आये और देखो इधर सूर्य भगवान्भी निकल आये ॥ १४ ॥ बुद्धिमान् रामचन्द्रजीके अभिषेकका सब सामान होरहाहै पर राजा दशरथजी अब तक नहीं आये न जाने कहां गये वह सब राजा लोग आपसमें इस प्रकार कह रहेथे ॥ १५ ॥ कि इतनेमें सुमं त्रजी वहां आन पहुंचे और सबसे कहा कि, मैं महाराजकी आज्ञासे रामचन्द्रजीको शीघ्र बुलानेके लिये जाताहूं ॥ १६ ॥ फिर बडे २ राजा महाराजोंसे सुमंत्रने कहा कि, आप लोग सुखपूर्वक बैठिये राजा व राजकुमार दोनों जन आकर आप लोगोंका सत्कार करेंगे । मैं तुम्हारी तरफसे राजाजीसे कुशल पूछूंगा ॥ १७ ॥ राजाजी जागतेहैं पर बाहर नहीं निकले इसका कारणभी आप लोगोंकी ओरसे कि, क्यों महाराज बाहर नहीं आये ऐसा कह बहुत प्राचीन कालकी बातोंके

जानने वाले सुमंत्रजीने फिर राजाके अंतःपुरके द्वारमें विना रोक टोक प्रवेश किया ॥ १८ ॥ और महाराज दशरथके वंशकी बडाई करनेको उनके निकट गये और प्रशंसासे सन्तुष्ट करने लगे॥ १९॥ उस समय महाराज दशरथजी कैकेयीके पासथे और वहां जानेकी सुमंत्रको कभी रोकटोक नथी उस मंदिरको गये और परदेकी आडमें धीरे खडे हुये॥ २० ॥ राजाको आशीर्वाद देकर प्रसन्न करने लगे और बोले कि, हे महाराज ! चंद्रमा, सूर्य, रुद्र, कुबेर, ॥ २१ ॥ वरुण, अग्नि और इन्द्रादि देव गण आपको विजय लक्ष्मी प्रदान करें, इस समय रात्रि बीतकर शुभ सवेरा हो आयाहै ॥ २२ ॥ हे चक्रवर्ती महाराज ! अब उठकर प्रातःक्रियादि समाप्त कीजिये, ब्राह्मण लोग सेनापति और बनिये सबही लोग द्वारपर आये हुयेहैं ॥ २३॥ यह सब लोग आपका दर्शन करना चाहतेहैं और इसहीके लिये यत्न कर रहेहैं अतएव आप जागिये ऐसे मंत्रके जाननेवाले सुमंत्रके स्तुति करने पर ॥ २४ ॥ राजा दशरथजीने जागकर सुमंत्रसे यह वचन कहे कि, हे सुमंत्र ! मैंने तुमको यहां पर रामके लानेकी आज्ञा दीथी ॥ २५ ॥ सो तुमने किस कारणसे मेरी आज्ञाका प्रतिपालन नहीं किया । मैं इस समय सोता नहींहूं तुम मेरी आज्ञासे जल्दी रामको यहां पर लावो ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे राजा दशरथजीने जब फिर सुमंत्रसे कहा । तब सुमंत्र राजाके वचन सुनकर और शिर नवा उस आज्ञाको शिरपर धारण कर ॥ २७ ॥ बडी बडाई करके रनवाससे चले और जानाकि, आज रामको राज्य मिलैगा । सुमंत्रजी विचित्र ध्वजा पताका लगे हुये राजमार्गमें उपस्थितहो ॥ २८ ॥ इधर उधर देखते हुये प्रसन्नतासे जाने लगे । मार्गमें हरएक मनुष्यके मुखसे रामचन्द्रजीके विषयकी वार्त्ता सुनी ॥ २९ ॥ जिसमें लोकके आनंददेनेवाली कौशल्यानंदनके राज्याभिषेककी बातें भरी हुई थीं कुछ दूर जाकरही उन्होंने कैलास पर्वतकीसमान ऊंचा व उज्वल ॥ ३० ॥ रामका मन्दिर देखा । जोकि इन्द्रके भवनकी समान सब सामग्रीसे भरा पुरा, बडे२ किवाड जिसमें लगे हुहे सुवर्णकी सैकडों मन मोहने वाली वेदियें जिसमें बनी हुई ॥ ३१॥ सुवर्णकीही सैकडों मूर्ति जिसमें धरी हुई प्रासादके बाहरी दरवाजोंपर प्रवाल और मणिमुक्ता जडे हुए देखनेमें शरदके मेघकी समान निर्मल और सुमेरु पर्वतकी कन्दराके तुल्य चमकदार ॥ ३२ ॥ सोनेके फलोंकी माला मोतीकी व मणियोंसे शोभित चन्दन व अगरके मिलाये हुये जलसे छिडका छिडकाया हुआ ॥ ३३ ॥

मलयका शिखर जिस प्रकार सुगन्धिवान होताहै यह स्थानभी वैसेही सुगन्धि विस्तार कर रहाथा, और स्थान २ में मोर वा सारस गण अनेक प्रकारकी किलोलें कर रहेथे ॥ ३४॥ जगह २ सोने, चांदी आदि धातुओंकी बनाई वृक व्याघ्रोंकी मूर्तियें विराजमानथीं । इनके बनानेकी कारीगरीको देख देखनेवालेके मनमें आश्चर्य और नेत्रोंकी गति नहीं पहुंचतीथी ॥ ३५॥ यह रामचन्द्रजीका भवन चंद्रमा सूर्यकी आभाके तुल्य व कुबेर मन्दिरके समान इन्द्रके गृहकी सदृश अनेक प्रकारके पक्षियों से शोभित ॥ ३६ ॥ सुमेरु पर्वतकी चोटीके आकारवाला रामका मंदिर सुमंत्रजीने देखा । वहां बहुत देशोंके व नगरोंके निवासी भेंट व उपहार लिये हाथ जोडे खडेथे ॥ ३७ ॥ सब लोक रामचन्द्रजीके यौवराज्याभिषेकके लिये भेंट लिये तैयार खडे थे वे सब यही चाह रहेथे कि, कब अभिषेक हो सब अच्छे वस्त्र धारण कियेथे ॥ ३८ ॥ यह मंदिर महा मेघकी समान ऊंचा था व अनेक प्रकारकी मणियोंसे सजा सजाया और बहुत दास कुबडी दासियोंसे भरा पुरा हुआ ॥ ३९ ॥ सो ऐसे मंदिरके देखनेको घोडे जुते हुये रथमें बैठे हुये सुमंत्रजी भीडसे भरे हुये राज मार्गको शोभित व सेनासमूह तथा पुरवासियोंके हृदयको पुलकित करते हुये उस मंदिरकी प्रथम ड्योढीपर पहुंचे ॥ ४० ॥ जहां अनेक प्रकारका धन स्थान २ पर रक्खाथा, इसे देख सुमंत्रजी बहुतही हर्षित हुये । शचीनाथ इन्द्रका भवन जिस प्रकारकाहै वैसेही रामचन्द्रजीका राजमंदिर मृग और मोरोंसे शोभितहै ॥ ४१॥ अनन्तर रथी सुमंत्रजी कैलास पर्वतकी तुल्य शोभा करके युक्त स्वर्गकी समान रमणीक कई एक फाटकोंको नांघ, व रामचन्द्रजीके आधीनके बहुत मनुष्योंसे साक्षात् करते हुये फिर उनसे साक्षात् कराकर सबसे पीछे रामचन्द्रजीके अन्तःपुरमें प्रवेश करते हुये ॥ ४२ ॥ वहां पहुंचकर सुना तो सब लोग रामचन्द्रजीके अभिषेकहीके मंगलार्थ वार्त्ता कर रहेथे, उस वार्त्ताको सुन सुमंत्र बहुत आनन्दित हुये वह सम्पूर्ण लोगोंकी वार्त्ता रामचन्द्रके मंगलके निमित्तथी ॥ ४३॥ रामचन्द्रजीका वासभवन बहुतही रमणीक इन्द्रधामकी समान शोभित और मृग पक्षियोंके कलरवसे सुमेरु पर्वतकी समान ऊंचा और अपनेही प्रकाशसे दिपता हुआ सुमंत्रजीने देखा ॥ ४४॥ वहां दरवाजेपर असंख्य अनेक देशोंके रहनेवाले नगरवासी अपनी २ सवारियों परसे उतर २ कर करोडों रुपयोंकी सामग्री भेंटमें लिये हाथ जोडे द्वारपर खडेहैं ॥ ४५॥ सुमंत्रजीने वहांसे आगे बढकर देखा कि, मेघके समान श्याम

वर्ण पर्वतकी समान आकार वाला बड़े शरीर वाला अंकुशका न सहने वाला शत्रुञ्जय नाम रामचन्द्रजीका हाथी शोभायमानहै ॥ ४६ ॥ और उससे आगे चलकर देखा तो बहुतसे महावत, अश्वपाल, व रथवान लोग अपने२ हाथी, घोडे, रथ आदि सुधारे, व सजाये हुये तैयार खडेहैं व रामचन्द्रके प्यारे अमात्यमुख्योंको देखा तब उन सबको वहांसे हटाताहुआ सब वस्तुओंसे पूरित अंतःपुरमें उन भृत्य लोगोंके साथ सुमंत्रजीने प्रवेश किया ॥ ४७ ॥ उस पर्वतके कंगूरोंके व मेघोंके समान ऊंचे सैकडों विमानोंकी समान शोभायमान सैकडों मन्दिर जहांहैं तहां विना रोक टोक सुमंत्रजी प्रवेश करते हुये जैसे कि, मकर रत्नोंसे पूरित समुद्रमें घुसे ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

तदनन्तर पुराणवेत्ता सारथी भीडसे भरे हुये जनानेके द्वारको नांघ सब प्रकारके कुलाहलसे शून्य रामचन्द्रजीके अन्तःपुरके फाटकपर पहुँचे ॥ १ ॥ उस फाटकपर कुंडलधारी विश्वासी द्वारपाल लोग प्रास धनुष बाण धारण किये पहरा दे रहेथे सबके सब युवा व कुंडलादि धारणकर रहे मनसे अपने स्वामीके कार्यमें अनुरक्त थे ॥ २ ॥ इनसे आगे चले तो देखा कि, वृद्ध लोग गेरुवा वस्त्र पहिर हाथों में बेंत लिये सब भूषण वसन पहरे हुये स्त्रियोंकी रक्षामें नियुक्तथे ॥ ३ ॥ उन सबोंने देखा कि, महाराजके मंत्री सुमंत्रजी प्रफुल्लित हुये चले आ रहेहैं,सो वे सब रामचन्द्रजीके प्रिय कार्य करनेवाले तो थेही, एक साथ अपने २ आसनोंसे उठ खडे हुये ॥ ४ ॥ तब उस समय सुमंत्रजीने उन लोगोंसे विनीत भावसे कहाकि "सुमंत्र द्वारे पै खडेहैं" तुम लोग यह संवाद राजकुमार रामचन्द्रजीसे शीघ्र निवेदन करो ॥ ५ ॥ यहश्रवणकर उन लोगोंने जो रामका प्रिय चाहतेथे बहुत शीघ्रताके साथ जाकर रामचन्द्रजीसे कहा कि, सुमंत्रजी आये हैं और द्वारपै खडेहैं ॥ ६ ॥ पिताके प्यारे रामचन्द्रजीने जाना कि, सुमंत्र पिताके पठाये हुये आये हैं । और उनके अन्तरंग मंत्रीहैं, इस कारण तत्काल ही दूतोंके द्वारा उनको घरमें बुलालिया ॥ ७ ॥ सुमंत्रजीने रामचन्द्रजीके गृहमें प्रवेश करके देखा कि, अनेक प्रकारके बिछौने बिछाये सोनेके पलँग पर कुबेरकी नाईं रामचन्द्रजी बैठे हैं ॥ ८ ॥ उनके शरीरमें वराहके रुधिरकी समान लाल,पवित्र सुगन्ध वाला,रक्त चंदन लग रहाथा ॥ ९ ॥ उनकी एक ओर बगलमें चमर लिये जानकी जी खडीथीं उससमय देखनेसे ऐसा बोध होताथा मानो चित्राकेसहित चन्द्रमा शोभितहै ॥ १० ॥ रामचन्द्रजी अपने तेजसे दुपहरके सूर्यके नाईं तपर

हुये देखतेही विनयकेज्ञाता सुमंत्रजीने वरदायक उनके चरणोंमें विनय पूर्वक प्रणाम किया ॥ ११ ॥ प्रणाम करके राजासे सत्कृत सुमंत्रजीने सुखसेजपै बैठे प्रसन्न राजकुमार रामचन्द्रजीसे हाथ जोडकर यह वार्ता कही ॥ १२ ॥ कि हे रामचन्द्रजी ! कौशल्याजी अब सुप्रजा हुई ! देवी कैकेयी और महाराज दशरथजीने आपको देखनेकी इच्छा की है अतएव विलम्ब न करके अभी मेरे साथ चलिये ॥ १३ ॥ सुमंत्रजीसे यह बात सुनकर मनुष्योंमें सिंह समान महा द्युतिमान् रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्नहुये सुमंत्रके वचन मानकर अपने निकटही बैठी हुई प्रिया जानकीसे कहा ॥ १४ ॥ हे देवि जानकि ! हमारी माता कैकेयी और पिताजी इकट्ठे होकर निश्चयही हमारे अभिषेकके विषयमें कोई सलाह करतेहैं ॥ १५ ॥ मेरी समझ में तो ऐसा आताहै कि मेरी हितकारिणी चतुर माता कैकेयी महाराजका अभिप्राय समझकर मेरा प्रिय कार्य करनेके लिये राजाको जल्दी करा रहीहै ॥ १६ ॥ वह कैकय देशके राजाकी पुत्री मेरी माता सदा मेरा मंगल चाहनेवालीहै, ऐसा ज्ञात होताहै कि मेराही प्रिय करनेको उसने महाराजसे कुछ मांगाहै ॥ १७ ॥ हमारे परम प्यारे पिता महाराजने व माता कैकेयीने जो मेरे पास हमारे अर्थ काम करने वाले सुमंत्रजीको पठाया । इससे मेरा बडाही भाग्य है ॥ १८ ॥ जिसप्रकारकी सभा अंतःपुरमें राजाके निकटथी, वैसेही मेरा प्रियकार्य करनेवाला दूत मेरे पास आया इससे अब निश्चयही पिताजी हमें यौवराज्यमें अभिषिक्त करैंगे ॥ १९ ॥ सुन्दरि तुम अपनी संगनियोंको साथलेकर यहां सुखसे रहो और मैं जितना शीघ्र होसकेगा महाराज पिताजीके दर्शन को अभी जाताहूं ॥ २० ॥ पति अनुगामिनी कमलके समान नेत्रवाली सीताजी यह वचन श्रवण करके अपने पतिका मंगल साधन करनेके लिये उनके साथ द्वारतक चली आई ॥ २१ ॥ फिरजानेके समय कहा कि प्रजापति ब्रह्माजीने जिसप्रकार सुरपति इन्द्रको सुरराज्यमें अभिषिक्त कियाथा वैसेही महाराज ब्राह्मणादिकों सहित यौवराज्यमें अभिषेक करकै पीछे राजसूय यज्ञ कर आपको अपना पूरे राज्यका अधिकारी करादें ॥ २२ ॥ यौवराज्य प्राप्त करनेके लिये व्रतधारण किये हुये और चर्म धारण किये हुये व दीक्षित मृगशृङ्ग हाथमें लिये हुये आपको देखकर मैं अपना अहोभाग्य समझूंगी कि मेरा बडा भाग्यहै कि मैं आपकी सेवा कर सकूंगी ॥ २३ ॥ अब इस समय यह प्रार्थनाहै कि, इन्द्र, तुम्हारे पूर्व, यम तुम्हारे दक्षिण. वरुण पश्चिम, और कुबेर उत्तर दिशामें रक्षा

करें ॥ २४ ॥ सीताजीके मंगलाचरण करने पर सीतापति रामचन्द्रजी सीताजीसे विदा लेकर सुमंत्रके साथ अपने वासभवनसे निकले ॥ २५ ॥ जिस प्रकार पर्वतोंकी कन्दरामें शयन करनेवाला सिंह इधर उधर देखता, गुहामेंसे निकलता है वीरकेसरी रामचन्द्रजीभी उसी प्रकार अपने भवनसे बाहर आये। वहां आकर देखा तौ द्वारपर हाथ जोडे लक्ष्मणजी खडेहैं ॥ २६ ॥ जब बीचके फाटक पर आये तौ देखाकि बहुतसे बन्धु बान्धव जन भेंटलिये दर्शनार्थ खडेहैं तब रामचन्द्रजीने सबका सन्मान किया और उनकी ओर निहारा ॥ २७ ॥ और फिर अग्निकी समान चमकते हुये दिव्य रथपर बैठे इस रथमें व्याघ्रके चमडेका ओहार पडा हुआथा ऐसे रथमें पुरुषव्याघ्र राजनंदन रामचंद्रजी बैठे ॥ २८ ॥ इस रथका शब्द बादलके गरजनेकी समानथा, और मणि व सोनेसे यह विभूषितथा व अपने तेजसे सूर्यके समान सबकी आंखें चकाचौंधियाताथा ॥ २९ ॥ जो अश्व उसमें नहे हुयेथे वे हथिनी के बच्चेसे कुछही कम ऊंचेथे। वह रथ देखनेमें इन्द्रके रथकी नाईं शीघ्र चलनेवाला था ॥ ३० ॥ जिस समय रामचंद्रजी अपने तेजसे दीप्तिमान उस रथमें बैठकर चले जैसे कि आकाशमें शब्दायमान बादल चलें। वैसे ही इस रथका शब्द होताथा ॥ ३१ ॥ जिस समय रामचन्द्रजी उस रथमें बैठकर बाहर आये उस समय वह मेघसे निकले हुये चंद्रमाकी समान शोभा धारण करते हुये, व उसी रथ पै विचित्र चमर हाथमें लिये हुये लक्ष्मणजी उनके अनुवर्ती हुए ॥ ३२ ॥ बडे भ्राताकी रक्षा करनेके लिये लक्ष्मण उनके पीछे उसी रथपर चढे चले जातेथे। इस समय तुमुल वेगसे रथकी गति और उसका घर्घर शब्द उठा और मनुष्योंका बडा शब्द हुआ ॥ ३३ ॥ उनके चलने पर सब ओरसे जन समूह चले जो अश्व रामचन्द्रजीके रथमें जुतेथे उनके अतिरिक्त और हजारों पर्वताकार हाथी घोडे ॥ ३४ ॥ रामचन्द्रजीके पीछे जाने लगे बहुत लोग उनके पीछे चले चन्दन लगे हुये अगरुसे शोभित अगणित वीरगण ॥ ३५ ॥ ढाल तलवारादि हथियार हाथमें लिये रामचन्द्रजीका यश बखानते उनके पीछे २ चले साथ २ खड्ग और धनुष बाण धारण किये हुये शूर वीरगण आगे बढे उस समय चारों ओर बाजोंका शब्द और बन्दिगणोंसे श्रवणानंद दायक स्तुति गाई जातीथी ॥ ३६ ॥ वीरगणोंके सिंह नाद करनेसे दशों दिशा कांपने लगीं रूप लावण्यवती ललनायें सोलहों शृंगारसे सज धज कर अपने घरके झरोखों व खिडकियों बैठ २ ॥ ३७ ॥ रामचन्द्रजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं, व

हजारों रूपवती कामिनियें कि जिनके सबही अंग सुन्दरथे. कोई कोठेकी छतपर चढी कोई अपने द्वारोंसे झाँकती हुई रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये अति मन मोहन वचनोंसे स्तुति करतीथीं ॥ ३८ ॥ वह सब ही स्त्रियें झरोंखों और छतोंपर बराबर यही कहतीथीं कि हे मातृनंदन आज महारानी कौशल्याजी रामचन्द्रजीका अभिषेक देखकर, निश्चय फूले अंगोंमें न समावेंगी ॥ ३९ ॥ हम जानतीहैं कि ललना रत्न सीताजी सर्व स्त्रियोंमें श्रेष्ठ हैं, पहले जन्ममें विना कुछ सुकृत किये ऐसा सौभाग्य नहीं मिल सकता आज वह तुमको पितासे राज्य प्राप्त देखकर सफल मनोरथ होंगी ॥ ४० ॥ हम सब भली प्रकार जानतीं हैं कि सीताजी रामचन्द्रजीके हृदयका धनहैं। सखी कहनेमें तो सीताजीने ठीक २ ही पहले जन्मके पुण्यका परिचय दियाहै निश्चयही जानकीने पहले जन्ममें बडा पुण्य कियाहै ॥ ४१ ॥ रोहिणी जिस प्रकार चंद्रमाकी अनुगामिनीहै, वैसेही श्रीसीताजी रामचन्द्रजीकी जीवनाधारहैं, धवरहरे व कोठोंपर चढकर श्रेष्ठ स्त्रियें यह कह रहींथीं सो यह सब रामचन्द्रजी प्रसन्न होते सुनते हुये राजमार्गमें चले जातेथे ॥ ४२ ॥ स्त्रियोंके अतिरिक्त स्थान २ में राज मार्गमें सवारी देखनेके लिये जो मनुष्य आयेथे उनकीभी वार्ता व प्यारी वाणी जो प्रसन्न होकर सब कह रहेथे अपने अधिकारके विषयमें सुनते २ प्रसन्न होते हुये रामचन्द्रजी चले जातेथे ॥ ४३ ॥ जाते २ महाराज रामचंद्रजी एक बहुत भारी भीड भरे स्थानमें पहुँचे वहां सबके मुखसे यही सुना कि यह राजकुमार राजभवनमें राज्याभिषेक पानेके लिये पिताके गृहको जातेहैं जब यह राजा होजांयगे तब हमारे सुखकी सीमा नहीं रहैगी ॥ ४४ ॥ यह निःसन्देह सब राज्यका भार पावेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं और इनका राज्य पाना हमारे लिये बहुत लाभदायक होगा. क्योंकि इन नरेश्वरके अधिकारमें कभी किसी प्रकारका अनिष्ट नहीं देखना पडेगा ॥ ४५ ॥ अति शब्द करने वाले हाथी घोडे और सूत मागध आदि लेकर रामचन्द्रजीके वंशका यश गाते चले जातेथे व रघुनाथजीके सब साज समाजके साथ कुवेरजीके समान शोभित होते चले जातेथे उस समय वीरकी शोभाको देख पुर नर नारी सब प्रमुदित होतेथे ॥ ४६ ॥ हाथी व दन्तेले हाथी, रथ घोडों व महावीरोंके साथ जाते २ भरे हुये मार्गमें रत्नोंके ढेर पर्वतके शिखरके समान शोभायमानहैं ऐसे बहुत पुण्य संचय कियेहुए मार्गको रामचंद्रजीने देखा॥ ४७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकां० भाषायां षोडशः सर्गः ॥ १६॥

सप्तदशः सर्गः १७.

श्रीरामचन्द्रजी रथ पर चढे हुये राजमार्गमें प्रवेश करते हुये तौ देखा कि सब लोग प्रसन्नहैं सब जगहमें कपूर और धूपके धूयेंसे सुगन्धि फैल रहीहै और स्थान २ में ध्वजा पताका बँध रहीहैं ॥ १ ॥ अनेक प्रकार मनुष्योंसे भरेहुए आकाशके छूनेवाले मन्दिर शोभायमान, जगह २ धनके ढेरोंसे भरपूर देखते हुये ॥ २ ॥ अगर धूप दीपादि सुगन्धियें करके सुगन्धित राजमार्गमें रामचन्द्रजी चले जातेथे, चन्दन, अगर व और २ भी सुगन्धित वस्तुयें राजमार्गके किनारों पर छिडकी हुईथीं ॥ ३ ॥ उत्तम २ सुगन्धित द्रव्योंके अतिरिक्त स्थान २ में दूकानों पर रेशमी वस्त्रोंके ढेरके ढेर मन मोहित कर रहेथे बिंधेहुए मोतियों व स्फटिकमणियोंके समूहके समूह ॥ ४ ॥ राजमार्गमें शोभायमान थे व इसके सिवाय राजमार्गमें फूलभी धरेथे, और मंगलाचारके लिये अनेक प्रकारकी मंगल वस्तुयें व भोजनकी वस्तु रक्खीथीं ॥ ५ ॥ सुरलोकमें सुरपतिकी नाईं रामचन्द्रजीने, दही चावल, खीर और खीलोंकी अंजलीके द्वारा और, धूप, अगर, चन्दनसे राजमार्ग समाकीर्ण देखा ॥ ६ ॥ अनेक प्रकार मालायें अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंसे अर्चित हुये मार्गमें असंख्य मनुष्य रामचन्द्रजीके दर्शन कर उन को आशीर्वाद देने लगे ! इस प्रकारकी अवस्थाको देखकर राजकुमारके बंधु बान्धवोंके आनन्दकी सीमा न रही ॥ ७ ॥ कृपादृष्टिसे सबके ऊपर अनुग्रह करते हुये रामचन्द्रजी चले व कोई वृद्ध लोग ऐसा कहकरभी आशीर्वाद देतेथे कि, हे राजकुमार ! जैसे तुम्हारे पितामह प्रपितामहादिकोंने आचरण कर हम लोगोंका पालन कियाहै॥८॥ ऐसेही आप राज्याभिषेक पाकर हम लोगोंका पालन कीजिये, तुम्हारे पूर्व पुरुषोंके अधिकारमें हम जिस प्रकार सुखीथे, वैसेही हम सब आपके अधिकारमें सुखीहों ! इन वृद्धोंकी वाणी सुन और लोग बोले कि इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जैसे हम लोग इनके पिता पितामहादिकोंके राज्यमें पालेगये उससे अधिक सुख रामचंद्रके राज्यमें पावेंगे ॥ ९ ॥ वह सब रामचन्द्रजीसे यहभी कहने लगे कि अधिक क्या कहें कि यदि आपको अभिषिक्त पिताजीके भवनसे आते राजमार्गमें देखें तौ हम लोग इस लोक और परलोकके सुखकीभी चाह नहीं रखते ॥ १० ॥ वास्तवमें अमित तेजवान रामचंद्रजीके अभिषेकसे अधिक और हमारी प्रिय वस्तु कुछभी नहींहैं ॥ ११ ॥ अनेक सुहृदोंके मुखसे ऐसी प्रशंसा

सुनते हुये रामचंद्रजी मार्गमें चले जातेथे क्योंकि अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना सज्जनोंको उचित नहीं, इसही कारण श्रीरामचंद्रजी न प्रसन्नही होते न अप्रसन्नही, किन्तु उदासीनकी भांति राजमार्गमें चले जातेथे ॥ १२ ॥ यद्यपि रामचंद्रजी उन सब लोगोंकी दृष्टिसे बहुत दूर निकल गये तथापि कोईभी मन और नेत्रोंकी दृष्टिको उनसे अलग नहीं कर सका ॥ १३ ॥ फलतः जिस किसीने रामचंद्रजीका दर्शन न किया अथवा रामचंद्रजीने जिसको न देखा वह सज्जनोंके निकट निन्दाका अधिकारी होताहै व उसका आत्माभी उसकी निन्दा करताहै ॥ १४ ॥ धर्मात्मा रामचंद्रजी चारों वर्णोंको सम दृष्टिसे देखतेथे इससे वर्ण ज्ञानकी कुछ आवश्यकता नहीं जिसका जन्म संसारमेंहै उसे अवश्यही श्रीरामचंद्रजीका भजन करना चाहिये इसीकारण चारों वर्णोंके लोग रामचंद्रमें बडा प्रेम करतेथे ॥ १५ ॥ फिर रामचंद्रजी चौराहे, अच्छे २ वृक्ष, देवालय व सभा आदिके स्थान व उन सबको दाहिनी ओर छोडते हुए राजभवनमें पहुँचनेके लिये गमन करने लगे ॥ १६ ॥ उन्होंने जाते २ देखा कि राज धवरहर मेघाकार शोभा पारहाहै, तब रामचंद्रजी सबसे भले प्रासादमें पहुँचे वह प्रासाद बहुत शृङ्गोंवाले कैलास पर्वतके शिखरकी समान शोभायमानथा ॥ १७ ॥ जहां कि आकाशको आक्रमण करते हुए देवताओंके विमानोंकी नाई सहस्रों सफेद वर्द्धमान (क्रीडा) गृह बने हुए जिनमें हीरा आदि रत्नोंकी झालरें लगी हुईहैं ॥ १८ ॥ मानों पृथ्वीमें दूसरा इन्द्र मन्दिरहै ऐसे भवनमें अपनी शोभासे दीप्तिमान महाराज कुमार श्रीरामचंद्रजी पहुँचे ॥ १९ ॥ रामचंद्रजीने प्रवेश करनेके समय जाते तीन फाटकोंको देखा यह तीनों फाटक धनुष बाण धारण किये हुए वीर पुरुषोंसे रक्षितथे रामचंद्रजी इन तीन फाटकोंमें तो रथपर बैठेही बैठे चले गये, जब चतुर्थ फाटक पर पहुँचे तो रथसे उतरकर पैदल चले और वह नरोत्तम दो फाटकतक पैदल गये ॥ २० ॥ इस प्रकार दशरथ कुमार सब फाटकोंको नांघकर सब आदमियोंको वहीं छोड शुद्ध अंतःपुरमें आये ॥ २१ ॥ जब राजकुमार रामचंद्रजी अंतःपुरमें पिताके पास चले गये तब सबही लोग परमानन्दित हुये समुद्र जिस प्रकार चंद्रमाके निकलनेकी प्रतीक्षा करताहै वैसेही सब लोग रामचंद्रके राज भवनसे आनेकी बाट देखने लगे ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०आ० अयोध्याकां० भाषायां सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

अनन्तर रामचंद्रजीने राजा दशरथजीको केकेयीके सहित दीन भावसे मुँह सुखाये हुये सुन्दर पलँगपै लेटे हुये देखा ॥ १ ॥ पहलेही रामचंद्रजीने पिताजीके चरणोंमें प्रणाम किया फिर जननी केकेयीके चरणोंमें बडी सावधानीसे प्रणाम किया ॥ २॥ "राम" यह कहकर महाराज दशरथजीकी वाणी गद्गद हो आई, व इसके अतिरिक्त रामचंद्रजीसे न कुछ कहाही न उनकी ओर देखही सके ॥ ३॥ सर्पको पैरसे छूकर जैसे भय होताहै ऐसे महाराज दशरथजीकी अपूर्व भयावह अवस्था देखकर रामचंद्रजीके अन्तरमें भयका संचार हुआ ॥ ४ ॥ राजाकी कोई इन्द्रियभी प्रसन्न नथी. मारे शोक संतापके सब शरीर दुर्बल होगयाथा । और विषादके मारे दीर्घ निःश्वास त्याग कर रहेथे ॥ ५॥ तरंगमालासङ्कुल समुद्र जिस प्रकार खलबला जाता व राहुग्रसे हुये सूर्यकी जो दशा होतीहै, झूंठ कहकर ऋषि लोगोंकी जो दशा होतीहै, वही दशा उस समय राजाकी थी ॥ ६ ॥ महाराज पिताजीकी इस शोचनीय अवस्थाका क्या कारणहै, यह विचारकर रामचंद्रजीके अंतःकरणमें ऐसी खलबली उठी जैसे पूर्णमासीके दिन समुद्र उछलताहै ॥ ७ ॥ चतुर व पिताके प्यारे रामचंद्रजी यह विचार करने लगे कि, आज मुझको देखकर क्यों महाराज पिताजी हर्षित नहीं हुये ॥ ८ ॥ और दिन जब कभी क्रोधितभी होते तो हमको देख प्रसन्न होजाते, किन्तु आज मुझे देखकर पिताजी क्यों क्लेश पारहेहैं ? ॥ ९ ॥ और क्यों शोकसे आर्त विषादित और दीनभावसे बैठेहैं यह शोच विचारकर रामचंद्रजी जननी केकेयीको प्रणामकर पूंछने लगे ॥ १० ॥ कि, मैंने अज्ञानताके वश होकर क्या पिताके चरणोंमें कोई अपराध किया जिसके कारण पिताजी हमसे रूठ गये हैं ? हे माताजी ! हमारा अपराध क्षमा करानेके लिये तुम पिताजीको प्रसन्न करो ॥ ११ ॥ पिताजी मुझसे सदा प्रसन्न रहतेथे, फिर आज क्या कारणहै जो दुःखित मनहो दीन भावसे बैठेहैं ? और मुझसे कुछ बोलेभी नहीं इसका क्या कारण है ? ॥ १२ ॥ या किसी शारीरिक वा मानसिक संताप अभितापने पिताजीको दुःखित कियाहै ? मैं जानताहूं कि, मनुष्य शरीर धारण करनेवालेको सदैव सुख पाना बहुत दुर्लभहै ॥ १३॥ प्रियदर्शन कुमार भरत व शत्रुघ्नका तो कोई अमंगल नहीं हुआ ? हमारी सब मातायें तो कुशल पूर्वक हैं ॥ १४ ॥ मैं पिताजीको असन्तोष उत्पन्न कराकर, व उनके वचनोंको न माननेसे उनके कोप करनेपर एक मुहूर्त्त भर भी जीवन धारण

नहीं किया चाहता ॥ १५ ॥ जिनकी कृपासे पृथ्वीमें जन्म ग्रहण किया, जो साक्षात् प्रत्यक्ष देवता स्वरूप हैं कौन पुरुष उनके प्रतिकूल आचरण करैगा ॥ १६ ॥ हे जननी ! आपने अभिमानिनी होकर कोई क्रोधयुक्त वचन तो पिताजीको नहीं कहा ? क्या इसीकारण पिताजीको यह चित्त विकार उपस्थित हुआ है ॥ १७ ॥ हे देवि ! ठीक २ जो बातहो सो मुझसे कह दीजिये। ऐसा अपूर्व चित्तविकार क्यों राजाको हुआ ॥ १८ ॥ महात्मा रामचन्द्रजीने जब कैकेयीसे ऐसा कहा, तब लाजरहित कैकेयी अपने हितके लिये कहने लगी ॥ १९ ॥ कि, हे रामचन्द्र ! राजा कुपित नहीं हैं, और न उनको किसी प्रकारका दुःखही हुआहै, हां परन्तु उनके मनमें एक बातहै जो वह तुम्हारे डरसे नहीं कह सक्ते हैं ॥ २० ॥ तुम उनके प्राणोंसेभी प्यारे प्रियपुत्र हो, इस कारण महाराज तुमसे कुप्यारी बात नहीं कह सकते हैं. जो हां महाराजसे मैंने जो कुछ सुनाहै वह पालन करना तुमको अवश्यही उचितहै ॥ २१ ॥ इन महाराजजीने पूर्वकालमें प्रसन्न होकर मुझे वर देने कहाथा सो अब वह वर देकर साधारण मनुष्यकी नांई अछता पछता रहेहैं ॥ २२ ॥ इन्होंने प्रथम मुझसे कहाथा कि, जो चाहो सो वर लो सो जिसप्रकार जलके बह जानेपर पुलका बाँध धरना वृथा है, वैसेही वर देनेको स्वीकार करके अब पछताना किसी अर्थका नहीं ॥ २३ ॥ हे राम ! इस बातको सभी महात्मा लोग जानते हैं कि, सत्यही धर्मका मूल है, अब इस समय जिससे तुम्हारे लिये मेरे ऊपर कोप कर राजा सत्यको न छोडैं, तुमको ऐसाही उपाय करना चाहिये ॥ २४ ॥ यह जो कहैंगे, शुभाशुभका विचार न करके यदि उसके पालन करनेको तैयार हो, तो मैं सब बात खोलकर कह सकती हूं ॥ २५ ॥ किम्वा यदि राजा तुमसे न कहैं तो मैं इनकी कही वार्त्ता जो कुछ तुमसे कहूं, वह तुम मानो तो मैं कहनेको तैयारहूं क्योंकि, राजा तुमसे न कहैंगे ॥ २६ ॥ जब इस प्रकार कैकेयीने रामचन्द्रजीसे कहा तो रघुवीर बहुत दुःखित हो राजाके निकट बैठी हुई कैकेयीसे बोले ॥ २७ ॥ अहो धिक्कार है हे देवि ! तुम मुझसे ऐसे वचन कहने योग्य नहीं हो मैं राजाके वचनसे और कामतो

---

* किसी पुस्तकमें यह पाठान्तर दृष्टि आताहै। " आयुर्यशोबलं वित्तमाकांक्षद्भिः प्रियाणिच। पितैवाराधनीयाग्रे दैवतं हि पिता महत् " ॥ अर्थात् जिसको आयु यश बल धन कल्याण पानेकी इच्छाहो उसे पिताकाही पूजन करना चाहिये क्योंकि पिताही परम देवता है।

एक ओर रहे. अग्निमें भी गिर सकताहूं ॥ २८ ॥ और अधिक क्या मैं परम गुरु हितकारी राजा पिताजीके वचनानुसार तेज विष पी सकता हूं या समुद्रमें भी कूद पड़नेसे मुझे अस्वीकारना नहीं है ॥२९॥ हे जननी! राजाकी क्या इच्छा है, वह मुझसे बताओ, प्रतिज्ञा करताहूं कि. मैं उनके अभिप्रायको पालन करूंगा. हे माता ! यह स्मरण रक्खो कि, राम कभी दो प्रकारकी बात नहीं कहना जानता ॥ ३० ॥ जब उन सत्यवादी रामने अति कोमल सरल वचन कहे तबभी उनसे अति निष्ठुर वचन कुटिल कैकेयी बोली ॥ ३१ ॥ हेराम ! पूर्वकालमें जब देव और असुरोंका संग्राम हुआथा, तब तुम्हारे पिताजी वहां इन्द्रकी सहायता करने गये और राक्षसोंके अस्त्र शस्त्रोंसे छिन्न भिन्न इनका शरीर होगया,और यह मूर्च्छित होगये.तब मेरेही रक्षा करनेपर वहां उनके प्राण बचे तब उस समय इन्होंने मुझे दो वर देने कहे ॥ ३२ ॥ इस समय मैंने उन्हीं दो वरोंको महाराजसे मांग लियाहै । एक वरसे भरतका राज्याभिषेक होना और दूसरे वरसे आपका वनको जाना ॥ ३३ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! यदि सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले अपने पिताजीके वचनोंको तुम सत्य करना चाहो और अपनेको भी सत्य कहने वाला समझो तो मेरा कहना श्रवण करो ॥ ३४ ॥ तुम्हारे पिताजीने जो कुछ कहाहै उसको पालन करके तुम चौदह वर्षके लिये वनको चले जाओ ॥३५॥ हे राम ! वह जो तुम्हारे अभिषेकके लिये जो सब सामग्री इकट्ठी की गई है इनसे भरतका अभिषेक किया जाय॥ ३६ ॥तुम जटा वल्कल धारण कर उपस्थित राज्यको त्याग आजसे चौदह वर्षतक वनमें रहो ॥३७॥ भरतजी कौशल देशमें रहकर हाथी घोडे रथोंसे पूर्ण अनेक प्रकारके रत्नोंसे भरी हुई पृथ्वीके राज्यका सुख भोगते रहैं ॥ ३८ ॥ राजा इसीकारणसे करुणाके वशहो और शोकसे मुख मलीन किये हैं, और इसीकारण तुमको नहीं देख सकतेहैं ॥ ३९ ॥ हे रघुनन्दन ! तुम अपने पिताका अभीष्ट जान चुकेहो अब यह राजाके वचन मानो हे राम ! बडे सत्यके साथसे उनकी रक्षाकरो ॥ ४० ॥ इस प्रकारका कैकेयीका कठिन वचन सुनकर रामचन्द्रजीको तो कुछभी शोक नहीं हुआ परंतु पुत्रको वन जानेसे क्लेश होंगे ऐसे पुत्रकष्टसे महाप्रतापी राजा दशरथजीको अत्यंत दुःख हुआ ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकाण्डे भाषायां अष्टादशःसर्गः ॥१८॥

एकोनविंशः सर्गः १९.

अनन्तर शत्रुओंके मारनेवाले श्रीरामचन्द्रजी कैकेयीके मुखसे, मरनेकी समान पीडादायक वचन सुनकर कुछभी व्यथित नहीं उससे बोले ॥ १ ॥ कि, बहुत अच्छा, मैं राजाके वचन मानकर अभी वनको जाऊंगा, और उनकी प्रतिज्ञा रक्षा करनेके लिये जटा व पेड़ोंकी छालके कपड़े पहरूंगा ॥ २ ॥ परन्तु यह जानने की मेरी इच्छा हुई है कि, पहलेकी समान शत्रुओंके मारने वाले दुर्धर्ष महाराज पिताजी हमसे क्यों नहीं बोलते ॥ ३ ॥ हे देवि ! आप रूठ न जाँय मैं तुमसे कहताहूं कि, मैं जटा वल्कल धारण कर वनको चला जाऊंगा, आप प्रसन्न हों ॥ ४ ॥ हितके चाहने वाले गुरुजी पिता महाराजाकी अनुमतिसे ऐसा कौन प्रिय-कार्यहै जिसको निःशंक चित्तसे मैं न कर सकूं ॥ ५ ॥ जोहो, सोहो परन्तु मेरे मनमें एक बातका बडा दुःखहै कि, प्यारे भ्राता भरतजीके अभिषेकका वृत्तान्त महाराज पिताजीने स्वयं मुझसे नहीं कहा ॥ ६ ॥ राजाका कहना तो एक ओर रहा, मैं तुम्हारे ही कहनेसे प्रसन्नता पूर्वक भ्राता भरतजीको राज्य, इष्ट, प्राण, बरन सीताजी तक को दे सक्ताहूं ॥ ७ ॥ फिर महाराज पिताजीकी तो बातही क्याहै उनके सत्य पालने, और तुम्हारा हित साधन करनेके लिये मैं किसी कार्यके कर-नेसे विमुख नहीं हूं ॥ ८ ॥ अच्छा मैया ! तुम इस समय महाराजको समझा बुझादो, मैं देखताहूं कि, हमारे पिताजी नीची गर्दन किये बैठे धीरे २ आँसू गिरा रहेहैं, और कुछ लज्जितसे ज्ञात होतेहैं ॥ ९ ॥ राजाकी आज्ञासे दूत लोग अभी शीघ्रगामी घोडोंपर सवार होकर हमारे प्यारे भर-तजीको मामाके घरसे लिवा लावैं ॥ १० ॥ मैं निःशंक मनसे पिताजीकी आज्ञा अपने शिर माथे चढा अभी चौदह वर्षके निमित्त वनको जाऊंगा कुछ विचार न करूंगा ॥ ११ ॥ तब रानी कैकेयी रामचंद्रजीके वचन सुन प्रसन्नहो उनका वन जाना ठीक जानकर उन रामचंद्रजीको पिताका सत्य पालनेके लिये शीघ्रता कराने लगी ॥ १२ ॥ और बोली कि, ऐसा ही होगा भरतको मामाके यहांसे बुलानेके लिये शीघ्रगामी घोडों पर सवारहो दूतगण जायँगे ॥ १३ ॥ परन्तु हे राम ! तुमने अब कह दिया कि; हम वनको जातेहैं सो तुम्हैं इस बातमें देरी न करनी चाहिये हे राम ! अब शीघ्र वनको जाओ ॥ १४ ॥ सत्य पालन करनेमें तुमको विलम्ब करते देख महाराज लाज पातेहैं और तुमसे कुछ

नहीं कह सकते । इसकारण तुम वनको जाकर इनके मनका दुःख दूरकरो ॥ १५ ॥ हे रामचन्द्र ! तुमसे अधिक क्याकहूं जबतक तुम अयोध्या पुरीको छोडकर वनको नहीं चलेजाते तबतक तुम्हारे पिताजी स्नान भोजन कुछभी नहीं करेंगे ॥ १६ ॥ यह वचन सुन महाराज दशरथजी "हाधिक्-क्या कष्टहै" यह कह और दीर्घ निःश्वास छोडते हुये सोनेके पलँगपर मूर्छित हो गिर पडे ॥ १७ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी घबडाकर राजाको उठा कैकेयीके कहनेसे चाबुक खाये हुये घोडेकी नांई वनके जानेको जल्दी करते हुये ॥ १८ ॥ रामचंद्रजी सौतली अनाडिन माताके ऐसे दारुण कठोर वचन सुनकर कुछभी व्यथित नहो उससे कहने लगे ॥ १९ ॥ हे देवि ! मै धनके लोभसे संसारमें नहीं रहना चाहता । मुझको तुम ऋषि मुनियोंकी समान, सुख दुःखका बराबर देखने वाला उज्ज्वल धार्मिक समझो॥ २० ॥यदि प्राणके दे डालनेसेभी पूजनीय पिताजीका कोई हित कार्य होजाय तो समझलो कि, वह कार्य हुआही रक्खा है ॥ २१ ॥ पिताकी सेवा करना और उनके वचनोंका पालन करना इस धर्मकी बराबर या इससे अधिक तो कोई धर्म संसारमें हैही नहीं ॥ २२ ॥ पूजनीय पिताजीकी आज्ञा अबतक मुझ पर प्रगट नहीं हुई तौभी मैं तुम्हारीही आज्ञासे अभी चौदहवर्ष वनमें बसनेको जाताहूं ॥ २३ ॥ हे देवि ! तुमने हमारी अधीश्वरी होकरभी इस तुच्छ कार्यके लिये पिताजीसे कहा इससे ज्ञात हुआ कि, तुम मेरा कोई गुण अभीतक नहीं जानतीहो ॥ २४ ॥ अब मेरे जानेमें कुछ देर नहीं क्योंकि जबतक माता कौशल्याजीसे नहीं पूछ लेते और सीताको नहीं समझाते तभीतक देरहै । सो उनके पाससे अभी बिदा होकर आजही वनको जाताहूं ॥ २५ ॥ इस समय भरत जिससे राज्यका पालन व पिताजीकी सेवा करें तुम इस विषयमें भली प्रकार उनको सिखा पढाती रहियो, क्योंकि यही पुत्रका प्रधान सनातन धर्महै ॥ ॥ २६ ॥ रामचंद्रजीके इस प्रकार मनोहर वचन श्रवण करके राजा दशरथजीका दुःख औरभी प्रबल होगया, कुछ कहतो न सके वह महा गंभीर स्वरसे शोकसे अधीर होकर रोने लगे ॥ २७ ॥ तब धुतिमान् रामचंद्रजीने अचेत अवस्थाको प्राप्त हुये पिताजीके व दुष्टस्वभाववाली कैकेयीके चरणोंमें प्रणाम किया और वहांसे निकले ॥ २८ ॥ और फिर राजा दशरथजी और कैकेयीकी प्रदक्षिणा कर अंतःपुरसे बाहर आकर अपने इष्ट मित्रोंको देखा

॥ २९ ॥ जानेके समय सुमित्राके आनन्द देनेवाले लक्ष्मणजीभी उनके साथ २ चले। उनकी आँखोंमें आँसू डब डबा रहेथे और क्रोधसे उनका शरीर काँप रहाथा ❀ ॥ ३० ॥ जानेके समय रामचंद्रजीने पात्रमें धरी हुई सब अभिषेककी सामग्रीको देखा व उसकी भी विदाके समयके अनुसार परिक्रमा की, व वन गमन करनेके हेतु चले पर उस पात्रको देखते हुये मन्द २ गमन करने लगे ॥ ३१ ॥ राज्याभिषेक होनेको था पर न हुआ इसके न होनेसे रामचंद्रजीकी कुछ कान्ति नहीं घटी और वह प्रसन्न चित्त रहे क्योंकि, उनमें स्वाभाविक कान्तिथी जिस प्रकार कृष्णपक्षमें चंद्रमा रोज क्षीण होताहै परन्तु उसकी कान्ति नहीं घटती ॥ ३२ ॥ यद्यपि रामचंद्रजी सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको छोड मुंह मोड़ वनको चले, परंतु जीवन्मुक्त पुरुषकी नाईं जिसको किसी बातकी कामनाही नहीं होती वैसेही रामचंद्रसेभी किसीने किसी प्रकारका चित्त विकार नही देखा ॥ ३३ ॥ वह शुभछत्र अलंकृत चँवर बन्धु बान्धव व पुरवासी और रथ आदिकोंको छोड ॥ ३४ ॥ (मनमेंही दुःख रोक लिया प्रगट न किया) अथवा मनमें बहुत प्रसन्न होते हुये (प्रसन्नता इस बातकी थी कि, वनमें जाय राक्षस आदिकोंको मारेंगे) ऊपरी मनसे न बहुत दुःखित सब इन्द्रियोंको वश किये वनकी इच्छाकिये यह अप्रिय संवाद सुनानेके लिये अपनी माता कौशल्याजीके मंदिरको चले ॥ ३५ ॥ यद्यपि रामचन्द्रजी अपने जानेमें सबसे विदाहो लियेथे तथापि उनश्रीमान् सत्य कहनेवाले श्रीरामचंद्रजीके आकारसे किसीने नहीं पहिचाना कि, यह वनको जातेहैं ॥ ३६ ॥ रामचन्द्रजीका स्वभाव ही सदा प्रसन्न चित्त रहनेका था इस कारण उन्होंने ऐसे दुःखोमें भी हर्षको न छोडा जिस प्रकार कि, शरद ऋतुका चन्द्रमा अपनी प्रभाको नहीं छोडता ॥ ३७ ॥ महा यशस्वी रामचन्द्र जो लोक इधर उधर खडेथे उन सबको मधुर वचनोंसे सन्मानित करते हुए अपनी माता कौशल्याजीके निकट पहुँचे ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रजी ही की समान गुणपाये हुये विपुल विक्रमशाली लक्ष्मणजी भी मनका दुःख मनमें छिपाये हुये अपने भैयाके पीछे २ चले ॥ ३९ ॥ उस समय कौशल्याजी रामचन्द्रजीके अभिषेकके उत्सवमें अनेक प्रकारके उत्सवोंकी तैयारियां कर रहीथीं रामचन्द्रजी वहां

❀ यद्यपि मूलमें यह वर्णन नहीं है कि, लक्ष्मणजीने उपस्थित रहकर रामचन्द्रजीके वन जानेकी सब वार्ता सुनीथी परन्तु टीकाकारका यह अभिप्रायहै कि, निकट रहकर सब वार्त्ता सुनीथी प्रमाणके लिये यह पद लिखा गया " समीपस्थित्यावगतवृत्तांतत्वात् "

पहुँच कर इस विपदमेंभी धारण किये रहे परन्तु उनको यह चिंता बहुत व्याकुल करानेलगी कि, कहीं माता मेरा वन जाना सुनकर प्राण त्याग न करदें ॥ ४० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकांडे एकोन १९. विंशतिः सर्गः ॥ १९॥

विंशतिः सर्गः २०.

पुरुषव्याघ्र रामचन्द्रजीको बिदा लेनेके लिये हाथ जोडे हुये अंतःपुरसे बाहर आते देखकर रनवासमें जो दशरथजीकी और स्त्रियें थीं उनमें अति आर्त नाद होने लगा॥ ॥ १ ॥ उस समय वह रोरोकर आपसमें कहने लगीं कि, जो रामचन्द्रजी पिताके न कहने परभी सब दास दासी मालकिनी व और लोगोंके अभिलाष सदा पूर्ण किया करतेथे, व जो हमारे एकही सहारेहैं; वही आज वनको जातेहैं ॥ २ ॥ जन्मसेही जिस प्रकार कौशल्याजीको माता समझते वैसाही हम सबको समझतेथे वही परम दुलारे रामचन्द्र आज वनको सिधारेहैं ॥ ३ ॥ कोई कडुवे वचन कहभीले और वह कुपित न हों और जिन्होंने बनाय सब प्रकारसे क्रोधको त्यागही करदियाहै, जो प्यारे २ मनोहर २ वचन कह २ कर सबको प्रसन्न करतेहैं, वही रामचन्द्र आज वन गमन करेंगे ॥ ४ ॥ हाय! महाराज कैसे अनसमझहैं कि, जिन्होंने अनायास अपनी प्रजाका अनभल किया; देखो जो सबके एक मात्र सहारेहैं उनकोही सहजमें परित्याग करदिया ॥ ५ ॥ इस प्रकार सब महारानियें बछडोंसे छुटी हुई गायोंकी समान रोरोकर अपने पति राजा दशरथजीकी निन्दा करने लगीं और ऊँचे स्वरसे रोने लगीं ॥ ६ ॥ तब रनवासमें इस प्रकार रोने धोने और आर्त्त नादका शब्द श्रवण करके दशरथजी पुत्रके शोकसे भ्रमित होकर व्यालकी नाईं सिकुड आसनसे गिरपडे ॥ ७ ॥ और इस ओर इन्द्रियोंके जीतनें वाले रामचन्द्रजी बँधे हुये हाथीकी समान घन २ ऊँचे २ श्वास लेते हुये भ्राता लक्ष्मणजीके साथ अपनी माता कौशल्याजीके भवनमें प्रवेश करते हुये ॥ ८ ॥ जाते २ प्रथम द्वार पर पहुँचे जिसके द्वार पर एक वृद्ध द्वारपाल बैठाथा व उसके सिवाय और भी कई एक रक्षक वहाँथे ॥ ९ ॥ वह सब लोग रामचन्द्र जीको देखतेही उठ खडे हुये और उनके धोरे चले आये आकर कहा कि, रामचन्द्रजीकी जय हो॥ १० ॥तदनन्तर रामचन्द्रजी पहले फाटकको नाँघ कर दूसरे फाटक पर जाकर देखते हुये कि, राजाके प्रिय बहुतसे वेदके जाननेवाले वृद्ध ब्राह्मण वहाँ बैठेहैं ॥ ११ ॥ रामचन्द्रजी उन ब्राह्मणोंको प्रणाम करते

हुये तीसरी ड्योढी पर पहुँचे वहाँ पर देखा कि, बहुतसी स्त्रियाँ बालक व वृद्ध द्वार की रक्षा कर रहेथे ॥ १२ ॥ उनमेंसे कुछेक स्त्रियोंने रामचन्द्रजीको आशीर्वाद देकर उनका बहुत सन्मान किया और प्रसन्न मनसे कुमारको आगे कर कौसल्या जीको उनके आनेका समाचार सुनाया ॥ १३ ॥ पुत्रका हित चाहनेवाली कौशल्याजी भी नियमसे रात बिताकर उस समय प्रातःकाल रामचन्द्रजीका मंगल मनानेके लिये विष्णु भगवान्की पूजा कर रहीथी ॥ १४ ॥ वह सब रेशमीन कपडे पहरे हुईथी और मंगलाचरण करके परमानन्दितव्रतमें नित्य लगी रहकर होम कर रहीथीं ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने माताके सुन्दर भवनमें प्रवेश करके देखा कि, कौशल्याजी अग्निमें आहुति दिवा रहीहैं ॥ १६ ॥ और यहभी देखा कि, देवताओंके कार्यके लिये दही, चावल, घी, लड्डू, खीर हवि आदि पदार्थ धरे हैं॥ १७॥ रामचन्द्रने देखा कि खीलें, सफेद माला, तिल, चावल, जौंकी खिचरी, खीर व ईंधन और जलसे भरे कलश धरे हैं ॥ १८ ॥ रामचन्द्रजीने श्रेष्ठ कौशल्या जी को सफेद वस्त्र पहरे हुये और बहुत दिनोंसे व्रत करनेके कारण कृश शरीर और देवताओंको जलसे तर्पण करते हुये देखा॥ १९॥ जननी कौशल्याजी अपनी चिर-कामनाके धन रघुनंदन रामचन्द्रजीको पास आते देखकर छोटे बच्चे वाली घोडीकी तरह बहुत प्रफुल्लित हुई और उनके सामने आईं ॥ २० ॥ जब रामचन्द्रजीने माताको प्रणाम किया तो कौशल्याजीने दोनों हाथ पकडकर उनको हृदयमें लगाया और शिर सूंघा ॥ २१ ॥ तब पुत्र वत्सलतासे महारानी कौशल्याजी अपने दुर्धर्ष पुत्र श्रीरामचन्द्रजीसे यह हितकारी प्रिय मनोहर वचन बोली ॥ २२ ॥ हे वत्स ! तुम धर्मवान् वृद्ध राजर्षियोंके समान, उमर, कीर्ति, और कुलके पाने लायक धर्म पावो ॥ २३ ॥ देखो महाराज ! तुम्हारे पिता कैसे सत्यप्रतिज्ञहैं कि, आज तुमको युवराजमें अभिषिक्त करनेके लिये उद्यत हुये हैं ॥ २४ ॥ फिर उन्होंने रामचन्द्रजीको बैठनेके लिये आसन दिया, और कहा कि, बैठकर कुछ भोजन करो, यह वचन सुन रामचन्द्र हाथ जोड बोले ॥ २५ ॥ रामचन्द्र तो वन जानेके हेतु बिदा होने आयेथे उनको समय कहांथा कि, बैठैं इस कारण विनीत स्वभावसे हाथ जोड माताके गौरवकी रक्षाके लिये यह बोले कि, हे देवि ! मैं वनको जाऊंगा आपके निकट बिदालेनेको इस समय यहां आयाहूं ॥ २६ ॥ हे माता ! आपको सीताको और लक्ष्मणको बडा भय आ पहुँचाहै, जिसको आप अबतक कुछ नहीं

जानती हैं. बड़ी विपद तुमको उपस्थित हुई है ॥ २७ ॥ जब मुझको अभी वन जाना है तब इस समय इस आसनके ग्रहण करनेमें क्या ? अब मेरे कुशके आसन पर बैठनेका समय आ पहुँचाहै ॥ २८ ॥ इस समय मुझको तपस्वीका भेष बनाकर कन्द, मूल फल भोजन करके समय बिता मुनिकी तरह सुन्दर भोजन त्याग चौदह वर्षतक वनमें रहना पड़ेगा ॥ २९ ॥ महाराज पिताजी भरतजीको राज्यगद्दी देंगे, व मुझको मुनि, व तपस्वीका भेष बनाय वनवास देते हैं ॥ ३० ॥ इसकारण कन्द, मूल. फल भोजन करते हुये हमको चौदह वर्ष तक वनमें रहना पड़ेगा * ॥ ॥ ३१ ॥ कुल्हाड़ीसे कटीहुई मालकी लाठी की जो दशा होती है वैसेही राम-चन्द्रजीकी यह वार्ता श्रवण करके कौसल्याजी स्वर्गसे गिरे हुये देवताकी समान एकाएकी पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३२ ॥ रामचन्द्रजीने अपनी माता कौसल्याजीको जो दुःखके योग्य नथीं, अचेतन और केलेके पेड़की समान धरतीमें पड़ी देखकर उनको उठाया ॥ ३३ ॥ जिसप्रकार बोझ खेंचनेवाली दीनघोड़ी छोड़नेपर थकावट मिटानेके कारण लोट पोट उठतीहै वैसेही कौसल्याजीके अंगोंमें रज लग गईथी उसको श्रीरामचन्द्रजीने अपने हाथोंसे पोंछा ॥ ३४ ॥ महारानीजीने कभी दुःख नहीं पायाथा उन्होंने एकाएक ऐसे दुःखका समाचार सुनकर व्यथितहो पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रजी से लक्ष्मणजीके सामने कहा ॥ ३५ ॥ कि हे पुत्र ! राघव ! यदि तुमको हम अपने गर्भमें धारण न करती और हम विना पुत्रकेही रहतीं तो यह दुःख तो हमें न होता, केवल लोग वंध्याही कहते ॥ ३६ ॥ हे वत्स ! वंध्या नारीको तो यही दुःख होताहै कि, पुत्र मुख नहीं देखा, इसके सिवाय दूसरा दुःख उसपर नहीं दृष्टि आता ॥ ३७ ॥ हे राम ! हमने सुभगा स्त्रियोंको देखाहै जो कि, पतिको परमप्रियहैं उन्हें जो विशेष सुखहै वहभी हमारे भाग्यमें नहीं है क्योंकि राजा कैकेयीके वशहैं फिर हम-ने यह शोचाथा कि, कदाचित् पुत्रके होनेसे यह सब शोक दूरहोंगे इससे प्राण धारण कियेथे, नहीं तो तुम्हारे होनेसे प्रथमही प्राण त्यागन करतीं ॥ ३८ ॥ × हाय !

---

* दोहा–वर्ष चारिदश विपिन वस, कर पितु वचन प्रमान ॥ आय पाँय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान.

× चौपाई–इहि विधि रुदन करत महतारी । कहि न जात सो करुणा भारी ॥ पुत्र सनेह विवश प्रभु माता ॥ विवरण भई निबल सब गाता ॥ कौनिहुँ भाँति धरत नहिं धीरा । व्यापी कठिन विरह की पीरा । लखि वय जियमें करत गलानी । पुत्र न वनकी कहो कहानी ॥ वचन हमार मान मत जाओ । वृद्ध समय मत मुझे रुवाओ ॥

महारानी होकरभी इस समय मुझको सौतोंके मर्मके भेदन करने वाले कठोर कडुये टेढे मेढे वचन सुनने पडे ॥ ३९ ॥ इस सवतकी डाहके समान स्त्रियोंको और कोई दुःख नहीं है जिसप्रकारका शोक दुःख मुझेहै इस प्रकारका दुःख किसीपर विश्वास है कि नहीं आया होगा ॥ ४० ॥ तुम्हारे रहतेभी जब मेरी यह शोचनीय दशा है यह निरादर है तो अवश्यही तुम्हारे वन चले जाने पर निश्चय मैं मर जाऊंगी ॥ ४१ ॥ प्राणनाथके प्रतिकूल होनेसे मैंने कितनीही लांछना सहींहैं, और तो क्या कहूं मैं कैकेयी की दासीकी समान व उससेभी तो हीनहूं ॥ ४२ ॥ देखो अब तुम्हारे यहां होने परभी कोई इष्ट मेरी सेवा करताहै वा मुझसे बोलता बतराता है, वह इष्ट मित्रभी जिस समय कैकेयीके पुत्रको देखताहै उसके और कैकेयीके डरसे हमसे नहीं बोलता ॥ ४३ ॥ विशेषतः कैकेयीका स्वभाव बडाही क्रोध भरा हुआ है मैं इस खोटी अवस्थामें पडके किस प्रकारसे उस बहुत कडुये वचन बोलने वाली कैकेयीका मुख देख सकूंगी ॥ ४४ ॥ हे राम ! देखो यज्ञोपवीतके समयमें भी तुमको सत्रह वर्ष बीते और जन्मसे लेकर पचीस वर्ष व्यतीत होचुकेहैं मैं यही विचारमेंथी कि. जब मेरे पुत्रको युवराज पदवी मिलेगी तब मेरे दुःखोंका अवसान होगा ॥ ४५ ॥ सो बेटा ! तुम वनको चले अब फिर वही कैकेयीके कठोर वचन सुनने पडेंगे अतएव इस समय तुम्हारा अभिषेक न होनेसे और वन जानेसे इन दोनों बडे दुःखोंके पडनेसे और दुर्लभ शरीर होनेसे अब उसके वचन मुझसे नहीं सहे जायँगे ॥ ४६ ॥ हे वत्स ! परिपूर्ण चंद्रमाके समान तुम्हारा मुखचंद्र न देखकर मैं दीन विचारी कठिन शोकमें पडी किस प्रकारसे जिऊंगी? ॥ ४७ ॥ मैंने अनेक उपवास, योगाभ्यास व और २ भी अनेक प्रकारके कष्टोंसे तुमको लालन पालन कर इतना बडा कियाहै सो अब वृथा हुआ जो तुम मुझ दुःखियाही माताको छोड वनको जाओहो ॥ ४८ ॥ निश्चयही मेरा हृदय बडा कठिन है यदि यह हृदय पत्थरकी समान कडा न होता तो निश्चयही तुम्हारा वियोग सुनकर टुकडे २ हो जाता। जैसे कि वर्षाके समय बडी नदीका फाट नवीन जलसे पूरित होने परभी नहीं फटता ॥ ४९ ॥ मुझको समझ पडाकि मृत्यु मुझे भूल गई और यमराजके यहांभी मेरे लिये स्थान नहीं रहा, यदि ऐसा न होता तो; सिंह जिस प्रकार रोतीहुई हरिणीको बलसे पकडलेजाताहै वैसेही यमराज क्या मुझको अभी न लेजाते? ॥ ५० ॥

* मूलमें सप्तदश सत्रह वर्षहै पर यह यज्ञोपवीतसे जानना।

मेरा हृदय निश्चयही लोहेका बना हुआहै यदि यह लोहेका न होता तो तुमने यह तुम्हारे वन जानेकी कठोर वार्ता श्रवण कर पृथ्वी पर गिरनेसे भी यह हृदय क्यों नहीं फटा ऐसे दुःख पाकरभी जब यह शरीर नही छुटा तब इससे ज्ञात होताहै कि. विना काल आये किसीका मरण नहीं होता ॥ ५१ ॥ हाय ! अब मेरी समझ में आया कि. पुत्रके मंगल हितार्थ जो जप, तप, दान, और संयमादिक मैंने किये वह भाग्यसे निष्फल होगये जैसे ऊपर पृथ्वीमें बीज डालनेसे निरर्थक हो जाता है ॥ ५२ ॥ यदि महा दुखियोंको विना समय आये मृत्यु आजाया करती तो मैं शोक दुःखसे घिरी विना बछडेवाली गायके समान तुम्हारे वियोगमें प्राण खोकर उसकाही आसरा लेती ॥ ५३ ॥ अथवा हे चंद्रमाके समान मुखवाले ! तुम्हारे विना मेरे इस जीवन धारण करनेहीसे क्याहै, दुर्बल गाय जिस प्रकार अपने बच्चेके साथ जातीहै, वैसेही मैं तुम्हारे साथ वनको चलूंगी ॥ ५४ ॥ रामजननी कौशल्याजी रामको सत्यके बंधन से बँधा हुआ देख अपनेको अभागी जान और रामचंद्रजीके पीछे सौतोंसे दुःख पानेका अनुभव कर शोकसे विकलहो बहुत विलाप कलाप करने लगीं जैसे पुण्यक्षय होनेसे किन्नरी पृथ्वीपर आकर रोतीहै ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि का० अयोध्याकांडे भाषायां विंशः सर्गः ॥ २०

एकविंशतितमः सर्गः २१.

अनन्तर दीन लक्ष्मणजी विलाप करती हुई रामचंद्रजीकी माता कौशल्याजीसे समयके अनुसार वचन बोले ॥ १ ॥ हे अम्मा ! रघुवीर रामचंद्रजी स्त्रीके वश हुये पिताके कहनेसे इस राज्याधिकारको छोड वनको जातेहैं यह मेरी इच्छाके विपरीतहै ॥ २ ॥ पिताजीकी बुद्धि विपरीत होगईहै, क्योंकि वह वृद्ध होगयेहैं और इसके सिवाय विषयी कामके वशहैं फिर भला वह स्त्रीके कहनेसे क्या नहीं कह सक्तेहैं ॥ ३ ॥ मैंने रामचंद्रजीका ऐसा कोई अपराध या इनमें कोई दोषभी नहीं देखा जिससे यह राज्य छुडाकर वनको भेजे जायँ ॥ ४ ॥ औरकी वार्त्ता तो दूर रहे, अपराधी शत्रुओंमें परोक्षभावसेभी कोई इनका दोष निकालनेको साहसी नहीं होता, मैंने तो अब तक अपने भाईका दोष निकालने वाला किसीको न पाया ॥ ५ ॥ विशेषतः जो देवताके समान सरल स्वभाव वाले सब शास्त्र और सब विद्या सीखे

सिवाय शत्रुओंके भी प्यारे ऐसे गुणनिधान पुत्रको अकारण धर्मका मुख देखने परभी कौन मनुष्य त्याग करैगा ॥ ६ ॥ महाराज अब बालकसे होगये हैं उनकी विचारशक्ति बिलकुल ही जाती रही । कुछ विचारनेका स्थानहै कि कौन पुत्र पहिले भूपालोंके चरित्रोंको याद करके इन हमारे राजाकी आज्ञा मानेगा ॥ ७ ॥ कौशल्याजीसे यह कह फिर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि. हेरघुनंदन ! इस वनवासकी वार्त्ताको प्रचार न होते २ अर्थात् जबतक कोई न जाने मेरी सहायतासे समस्त राज्यको आप अपने अधिकारमें कर लीजिये ॥ ८ ॥ मैं जब कालकी समान धनुष धारण करके आपके पार्श्वमें खडा हूंगा तब कौन मनुष्य आपके अभिषेकमें बाधा दे सकताहै? ॥ ९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! और यदि कोईभी इसके विरुद्ध कार्य करे तब पैने २ बाणोंको चलाकर मैं अयोध्या पुरीको जनशून्य करदूंगा इसमें कुछभी सन्देह न समझिये ॥ १० ॥ जो मनुष्य भरतकी ओर उठैगा व उनका हित करनेवाला होगा. मैं उन सबका संहारकरूंगा । व आपभी इस विषय में अपनी कोमल प्रकृति छोड दीजिये क्योंकि राज्य कार्यके विषय कोमल स्वभाववालेका सदाही निरादर होताहै ॥ ११ ॥ यदि पिताही कैकयी के उसकिरानेसे उसकी ओर उठकर हमारे विरुद्ध आचरण करैं तो अमित्रके कार्य करनेसे उनकोभी मारडाला जाय अथवा बंदीगृहमें भेजाजाय ॥ १२ ॥ यदि गुरु भी कार्य अकार्यको न जानकर अभिमानी हो खोटे रस्ते पर चले तो उसको भी दंडदेना अनुचित नहींहै ॥ १३ ॥ हे पुरुषोत्तम महाराज ! पिताजी प्रबल कौनसी युक्तिका आश्रय लेकर बडे होनेके कारण जो राज्य आपको मिलना चाहिये वह किस कारण से कैकयीको दे डालनेके लिये तैयार हुयेहैं ? ॥ १४ ॥ हे शत्रुओंके मारनेवाले ! मैं ठीकही ठीक कहताहूं कि. आपसे और मुझसे वैर करके कौनहै ? जो यह राज्य भरतको देसक्ताहै मैं तो इतनी सामर्थ्य किसीकी नही देखता ॥ १५ ॥ रामचन्द्रजीसे यह कह कर फिर कौशल्याजी से कहा कि हे देवि ! मैं निश्चयही मन से कहताहूं कि, मैं बड़े व प्यारे भ्राताके आधीनहूं. मैं अपने सत्य धनुष बाण दान इन इष्ट वस्तुओंका नाम लेकर इस विषय में सौगन्ध खाताहूं ॥ १६ ॥ यदि श्रीरामचंद्रजी जलतीहुई आगमें कूद पडें वा वनको चलेजाँय तो हे देवि ! जान रक्खो कि, लक्ष्मणने प्रथमही वह मार्ग ले रक्खाहै ॥ १७ ॥ जिसप्रकार अंधकारके नाश करनेवाले सूर्य नारायणका उदय होतेही अँधियारेका नाश होजाताहै, वैसेही मैं आपका दुःख दूर करूंगा । हे देवि ! आप और भाईसाहब मेरे प्रभावको भली भाँति

देख ॥ १८ ॥ जो वृद्धावस्था मे बालकके समानहै जो कैकयी के ऊपर आसक्त होरहेहैं कृपण चित्तहै. जिनका मरणकाल उपस्थितहै उन पिताको भी मैं अभी मार डालूंगा ॥ १९ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीके मुखसे यह वचन सुनकर शोकसे व्याकुल चित्त रुदन करती हुई कौशल्याजी रामचन्द्रजीसे बोलीं ॥ २० ॥ हे वत्स! तुम्हारे भैया लक्ष्मणने जो कहा वह तुमने सुना यदि ऐसा करना तुम्हें अच्छा लगे तो तुम भी शोच विचार इनकी बात मानो ॥ २१ ॥ तुम सौतकी अधर्म मूल वार्तासे शोकसे भ्रमित अपनी माता कौशल्याको अकारण छोडकर यहांसे मत जाओ ॥ २२ ॥ हे धर्मज्ञ ! यदि तुम्हें धर्मही की कामनाहै. धर्मकरना चाहतेहो तो राज्यको छोडकर यहीं रह जाओ: और मेरी सेवा शुश्रूषा करते रहो इससेही तुम्हें बहुत पुण्य होगा ॥ ॥ २३ ॥ हे पुत्र ! बडे तपस्वी महात्मा कश्यपजीने घरसे ही रह कर माताकी सेवा करनेके प्रभावसे प्रजापति पद प्राप्त कियाथा और स्वर्गगामी हुये ॥ २४ ॥ जिस प्रकार पिताजी तुम्हारे पूजनीयहैं वैसेही मेरा गौरव तुमको करना उचितहै: मैं तुम्हें वनमें जानेकी सलाह नहींदेती अतएव फिरभी कहतीहूं कि, वनको न जाना ॥ २५ ॥ तुम्हारे वियोगमें मेरे सुख भोगने अथवा जीवनही धारण करने से क्या प्रयोजनहै अधिक क्या कहूं ? मैं तुम्हारे साथ तृण खाकर जीनेकोभी अपने लिये अच्छा समझतीहूं ॥ २६ ॥ हे वत्स ! यदि तुम निश्चयही हमें इस शोकके सागरमें छोड वनको चले जाओगे तो उपवास करके मैं अपनेको मारडालूंगी ॥ २७ ॥ फिर तुम जान लेना कि, समुद्रको जिसप्रकार अपनी माताका कहना न माननेसे पिप्पलाद मुनिके कारण ब्रह्महत्याका पाप लग कर नरक जाना पडाथा वैसेही मेरा कहना न माननेसे तुम्हें नरकजाना पडेगा ॥ २८ ॥ तब धार्मिक रामचंद्र दीनभावसे रोती व विलापकरती हुई कौशल्याजीसे धर्मशास्त्रके अनुकूल वचन बोले ॥ २९ ॥ हे देवी ! पिताके वचनोंको न मानने की शक्ति मुझमें नहींहै मैं तुम्हारे चरण पकडकर कहताहूं कि, माता ! तुम प्रसन्नहोवो मुझको अवश्यही वन जाना पडेगा ॥ ३० ॥ फिर विचार करके देखो कि वनवासी सब शास्त्र पढे हुये महर्षि कण्डुजीने अधर्म कार्य जानकर भी गायको मारडाला । परन्तु पिता की आज्ञा देनेके कारण उनको गोहत्या नहीं लगी ॥ ३१ ॥ फिर देखो हमारेही वंशमें पूर्वकालके मध्य सगर पुत्र अपने पिताकी अनुमतिसे घोडेकी खोजके लिये पृथ्वी खोदकर पीछे सब विनाशको प्राप्त हुयेथे ॥ ३२ ॥ जमदग्नि ऋषिके पुत्र

धैर्यवान् परशुरामजीने पिताकी आज्ञा पाकर कुठारसे वनमें अपनी माता रेणुका का शिर काटडाला ॥ ३३ ॥ इन समस्त देवताओंकी समान महापुरुषोंने व औरभी अनेक पुरुषोंने पिताकी आज्ञा पालनकीहै, अतएव जिस बातके करनेसे पिताका हित होताहो मैं हर्ष सहित उसकार्य को करूंगा ॥ ३४ ॥ माता ! केवल मैंही पितृ आज्ञा पालन करताहूं सो बात नहीं है बरन् जिन २ महात्माओंके नाम मैंने तुम्हें बताये वह सब लोग अपने पिताके वचनोंका पालन किये हुयेहैं ॥ ३५॥ जो धर्म प्रथम नहीं किया गयाहै मैं उस धर्मके करने में प्रवृत्त नहीं होता हूं. वरन् जो धर्म अगले पुरुषों को अंगीकारथा और जो मार्ग उन्होंने लियाथा वही कार्य मैं करना चाहताहूं ॥ ३६ ॥ अत एव पिताजीके वचन मानना मेरा आवश्यकीय कार्यहै, मैं इसके प्रतिकूलाचरण नहीं किया चाहता। माताजी ! तुमभी ऐसे कार्यको अधर्मका कार्य मत समझो माता पिताके वचन मानने से आजतक किसीको अधर्म नहीं हुआहै ॥ ३७ ॥ मातासे इस प्रकार कहकर वाक्य जाननेवालोंमें श्रेष्ठ लक्ष्मणजीसे सब धनुष धारण करनेवालोंमें अग्रगण्य रामचंद्रजी कहने लगे ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम जो मुझसे बहुत बडा स्नेह करतेहो इसको मैं भली प्रकार जानताहूं तुम्हारा बल तुम्हारा वीर्य व दूसरोंके न सहने लायक तेजभी तुममें है और तुम सब कुछ करने को समर्थहो ॥ ३९ ॥ हे शुभलक्षण लक्ष्मण ! हमारी माता मेरे सत्य शम दमादि नियमोंके अभिप्रायको नहीं जानतीहैं, इस कारण मेरे वन जानेके अर्थ यह महाशोकसे कातर हुईहैं ॥ ४० ॥ देखो ! सब धर्मको ही श्रेष्ठ कहकर अंगी-कारकरतेहैं और धर्ममेंही सत्य टिकाहै मेरे पिताजीने मुझको जो आज्ञा दीहै वह वास्तव में धर्मकीही अनुमोदित की हुई है ॥ ४१ ॥ हे वीर!जो धर्मात्मा पुरुष पिता, माता, या ब्राह्मणसे कोई बात कहकर कि, जो तुम कहोगे सो हम करेंगे और फिर उसको न करे तो यह बात उचित नहीं इसमें अधर्म होताहै ॥ ४२ ॥ मैं इसी कारणसे पिताजीकी आज्ञाको उल्लंघन नहीं कर सकता, एकतो पिताजीके वचन और फिर माता कैकेयीकी आज्ञाहै, मुझको सबही प्रकारसे इस आज्ञाका पालन करना चाहिये ॥ ४३ ॥ मैं इसी कारण तुमको समझाताहूं कि, क्षत्रियोंके धर्ममें जो तुम्हारी बुद्धि है अर्थात् संग्राम करके मुझे राज्य दिलवाया चाहते हो, इस संकल्प व बुद्धिको अभी मनसे त्यागन कर दो जो धर्म अति कठोर हो उसको ग्रहण करना अच्छा नहीं कोमलधर्म हम लोगोंको अंगीकार करना उचित है

॥ ४४ ॥ लक्ष्मणाग्रज श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणजीसे सुहृद प्रेमके कारण यह कह कर फिर शिर झुकाये हाथ जोडेहुये कौशल्याजीसे बोले ॥ ४५ ॥ हे अम्मा! मुझे आज्ञा दो कि वनको जाऊं, तुम्हें मेरे प्राणोंकी सौगन्धहै जो इस मेरे मंगल कार्य्यमें तुम किसी प्रकारका शोक करो अब मेरे जानेके निमित्त स्वस्त्ययनादि करो ॥ ४६ मैं राजा ययाति की नाईं जिस प्रकार वह स्वर्गसे पृथ्वी पर गिरकर फिर स्वर्गको चले गयेथे वैसेही मैं पिताकी आज्ञा पालन कर चौदह वर्ष वनमें वस अयोध्यापुरीको लौटूंगा ॥ ४७ ॥ हे जननि ! तुम मेरे कारण शोक मतकरो, मनका शोच मनमें ही रक्खो, बाहर प्रगट करनेसे क्या होगा, मैं आपसे सत्यही सत्य कहताहूं कि पिताके वचनों को पूरा करकै अवश्य गृहको फिरूंगा ॥ ४८ ॥ आप, मैं, जानकी, सुमित्रा व लक्ष्मण इन पांच जनोंसे जो पिताजी कहैं वह इन पांचोंको अवश्यही करना चाहिये यही हमारा सनातन धर्महै ॥ ४९ ॥ हे जननि ! अपने मनका दुःख दूर करो, और मेरे अभिषेककी वार्त्ताको मनसे भुला दो, और जिस प्रकार मेरी बुद्धिहै कि. वनको जाऊँ वैसीही तुम्हारीभी बुद्धि होनी चाहिये कि यह वनको जाय तभी अच्छा होगा ॥ ५० ॥ रामचन्द्रजीके कातरता रहित कोमल धीरतायुक्त युक्तिसे भरे यह वचन कहने पर कौशल्याजी मूर्च्छित पडे हुये की समान मानो चैतन्यता पाकर रामचन्द्रजीकी ओर एकटक देखती रहीं और फिर कहने लगीं ॥ ५१ ॥ हे पुत्र ! हमने तुम्हैं यत्न और बडे भारी प्रेमसे लालन पालन कियाहै अतएव महाराज धर्मसे व सुहृदईसे जिस भांति तुम्हारे पूज्यहैं; वैसेही मैंहूँ अत एव तुमही कहो कि, इस समय किस प्रकार मुझ हतभागिनी माताको छोड मुहँ मोड वनको चले जाओगे मुझे दुःखी छोडकर वनको मत जाओ ॥ ५२ ॥ हे वत्स! तुम्हैं वनवासी कर देने पर मेरे जीनेहीसे क्या प्रयोजन है ? व लोकके और भाई बान्धवोंसे क्या ? पतिसे क्या ? मरजानेसे पितर लोकमें जाय स्वधा भोगनेसे क्या ? स्वर्ग लोकमें गमन कर वहांका आनन्द भोगनेसे क्या ? और मोक्षहीसे क्या है ? यदि सब नाता रिश्ता छोड तोड कर केवल एक मुहूर्त्त भरके लिये भी तुम्हारे निकट रह सकूं तो इसको मैं अपने लिये मंगल समझतीहूं ॥ ५३ ॥ इस समय जैसे अंधकारसे गढेमें गिरे हुये किसी हाथीको लोग लूका (डंडे में बँधी मसाल) से जलावें और वह महा दुःखी हो, वैसे ही माता का करुणापूर्वक विलाप सुन रामचन्द्रजी अधिक दुःखित हुये कि, माता अधर्म में प्रवृत्त करतीहै ॥ ५४ ॥ उन्होंने देखा कि, सामने माता मूर्च्छित

भी खडीहैं भ्राता लक्ष्मणभी कातर और संतापसे तपे हुयेहैं, तब धर्मात्मा रामचन्द्रजी धर्म सहित वचन जैसे कि, उस समय कहने उचितथे बोले ॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारी जो मुझमें अचल अटल भक्ति विद्यमानहै उसको मै भलीभांति जानताहूं ! व तुम्हारा पराक्रमभी ऐसा वैसा नहीं है वरन् दूसरोंके न करने योग्यहै फिर आश्चर्यहै कि, मैं तुमको वारंवार निवारण करताहूँ परन्तु तुम मेरे अभिप्रायके मर्मको न जानकर माताके सहित मुझको और भी दुःखित कर रहे हो ॥ ५६ ॥ इस जीव लोकमें पहले किये हुये कर्मका फल उत्पत्तिके कालमें, धर्म अर्थ और काम यह तीनोंही प्राप्त होतेहैं सुतराम् जिस कार्यमे पहले कहे हुये धर्म, अर्थ आदि प्राप्त होजांय वह हृदय विहारिणी अनुगामिनी पुत्रवती भार्याकी नाई एकान्त प्रार्थनीय है ॥ ५७ ॥ जिस कार्यमें धर्म, अर्थ, कामका सम्बन्ध नहीं है उसका अनुष्ठान करना भला नहीं होता जिस कार्यके करनेमे धर्म की प्राप्तिहो वही करना उचित और ठीकहै, जो आदमी बेपरवाहीकर धर्मको जलाञ्जली दे स्वार्थपर होजातेहैं उनकी सब जग निन्दा करतेहैं ! विचार करके देखने पर धर्म रहित कार्य किसी प्रकारसे प्रशंसनीय नहीं हो सकता ॥ ५८ ॥ देखो संसारमें गुरु राजा पिता व वृद्ध इनकी आज्ञा माननी चाहिये यह शास्त्रमें भी लिखाहै फिर एक तो महाराज गुरुहैं फिर राजाहैं फिर पिता तिसमें वृद्ध वह काम, क्रोध वा हर्षसे जिस प्रकार की आज्ञादें फिर धर्म ज्ञान करके कौन उसका अनुष्ठान नहीं करेगा ॥ ५९ ॥ बस इस कारण पिताजीने जो प्रतिज्ञा की है उसके विरुद्ध कार्य करने को मैं समर्थ नहींहूँ । महाराज हमारे पिताहैं हमारे ऊपर उनका सर्व भावसे अधिकार है, विशेषतः माताजीके पतिहैं, और वही हमारे एक मात्र गति व धर्महैं ॥ ६० ॥ क्योंकि ऐसे धर्मराज महाराजके जीतेही व अपने राज काज करतेही यह विधवा स्त्रीके समान हमारे साथ कैसे चलेंगी ॥ ६१ ॥ हे देवि! अतएव जिस प्रकार सत्य पालन करके महाराज ययातिजीने फिर स्वर्ग पायाथा, वैसेही मुझको वन जानेकी आज्ञा दीजिये; और आशीर्वाद कीजिये कि, चौदह वर्ष वनमें रह पिताके वचन पूरे कर गृहको लौटूँ ॥ ६२ ॥ मैं राज्य पानेकी कामनासे पिताजीके कहे हुये वन गमन रूप यशको नहीं छोड सकता। विचार करनेसे देखा जाताहै तो यह जीवन क्षणभंगुरहै अतएव इसजीवनमें अधर्मानुसार तुच्छ राज्यको भोग करनेकी मेरी कामना नहींहै ॥ ६३ ॥ मानवेंद्र रामचन्द्रजी विवाद रहित मनसे दण्डकारण्यमें प्रवेश करनेके

आशयसे छोटे भ्राता लक्ष्मणजीको इस प्रकार का उपदेश देकर अपनी माताको प्रसन्न करते हुये और उनकी प्रदक्षिणा करकै वहांसे जानेका विचार करने लगे ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकांडे भाषायां एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः २२.

अनन्तर लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीका वन जाना स्मरण करकै अतिशय व्याकुल हुये व रामचन्द्रजीकी यह अवस्था वह न सहसके और वह क्रोधयुक्त हाथी की समान दीर्घ निश्वास परित्याग कर क्रोधसे आंखै फैलाये ॥ १ ॥ उस समय रामचन्द्रजी प्रिय भ्राताको सामने करकै धीरजके गुणसे आपना चित्त संभालकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! कैकेयीके ऊपरका क्रोध छोड हमारे राज्य न मिलनेका शोक मिटाय केवल धीरजको धार इस अपमानको भुलाकर कि,जो पिताने हमें वनको भेजाहै और इससे ही उत्तम हर्ष समझ कर कि,पिताके वचनोंका पालन होगा॥ ३॥जो जो वस्तु मेरे अभिषेकके अर्थ एकत्रहैं उनकी ओर ध्यान न देकर मेरे वन जानेकी तैयारी तुम करो ॥ ४ ॥ मेरा अभिषेक होनेके लिये सब सामग्री इकट्ठी करनेको जिस प्रकार तुमने यत्न कियाथा अब वैसाही यत्न अभिषेक न होनेके लिये करो ॥ ५ ॥ मेरे अभिषेकका समाचार पाकर जिनका मन संतापित हुआहै, वह माता कैकेयी जिस प्रकारसे शंका रहित होजाय तुम अब वैसाही कार्य करनेमें प्रवृत्तहो ॥ ६ ॥ हेलक्ष्मण ! माता कैकेयीजीके हृदयमें जो शंकामय दुःख उत्पन्न हुआहै, मैं उसको अब एक मुहूर्त भरभी नहीं देखा चाहता ॥७॥ मैंने ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे पिता माताका कोई साधारणभी अपराध कियाहै नहीं मुझको तो यह स्मरण नहीं होता ॥८॥ हमारे पिताजी सत्यवादीहैं सत्यके समुद्रहैं सत्य पराक्रम करनेवालेहैं, वह परलोकके भयसे डरेहैं, सो अब उनका भय दूर होवे ॥ ९ ॥ जो मैं अपने अभिषेककी कामनाको त्याग नहीं करदूंगा तो पिताजी अपने वचनोंको उल्लंघन होते देखकर मनमें संताप पावेंगे और फिर इस दुःखसे मेरी मर्म पीड़ा औरभी बढ जायगी ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण ! इस कारण इस राज्याभिषेक विधानको त्यागन करके वनके जानेहीकी मेरी इच्छाहै ॥ ११ ॥ मेरे वनके चलेजाने पर कृतकार्य हो माता कैकेयी अपने पुत्र भरतजीको बुलाकर निष्कण्टक राज्य देदेवे ॥१२॥ मेरे जटाजूट धारण करने और वल्कल मृगचर्म पहर वनवासी

होनेपर कैकेयी आनन्द पूर्वक अपना समय बितावेगी वे अपने मनमें सुखीहों ॥ १३ ॥ जिसने कैकेयीको यह बुद्धि दीहै और जिसने फिर इसही बुद्धिके समान इस कार्यके साधन करनेमें उसको दृढ रक्खा अतएव मैं उसके मनमें दुःख नहीं पहुँचाना चाहता मैं अभी वनको चला जाऊँगा ॥ १४ ॥ हे भ्रातः सुविशाल राज्यके पाने न पानेके यह दोनों विषय दैवाधीनहैं, इसमें किसीका कुछ चारा नहीं चलता, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ यदि दैव इस विषयका कारण न होता तो जो कैकेयी सदासे हमें बहुत प्यार करती रही, वह इस समय मुझे वनवास दिवानेको ऐसी उतारू होजाती ? और इसका स्वभाव ही क्यों ऐसा होजाता ? ॥ १६ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम जानते हो कि मैं सब माताओंको बराबर समझतारहा कभी किसीको पृथक् भावसे नहीं समझा, और कैकेयीभी मुझे व अपने पुत्र भरतको एकही दृष्टिसे देखतीथी ॥ १७ ॥ और अलग २ नहीं समझतीथी अतएव यह सब भाग्यहीका दोषहै * व उसने जो मेरा अभिषेक न चाहकर मेरे वनवासके हेतु ऐसे कठोर दर्वचन मखसे कहे, इस विषयमें भाग्यके सिवाय और किसको दोष दियाजाय ॥ १८ ॥ मैं जानताहूं कि, देवी कैकेयी अतिशय श्रेष्ठ स्वभाव और गुणों करके युक्तहैं, वह जो साधारण स्त्रियोंकी समान अपने स्वामीके सामने इस प्रकारसे मर्मकी भेदन करनेवाली बात कहतीहै. इसका मूलकारण अपना दैवहीहै ॥ १९ ॥ जो चिन्तासे परेहो उसहीका नाम भाग्यहै, जीव गणोंके मालिक ब्रह्मादि देवगण पर्य्यन्त जिसको नहीं मेट सकतेहैं इसही कारणसे मेरा भाग्यही ऐसाहै कि राज्य छोड कर वनको जाना पडा यह भाग्यहीहै कि जिसने चल करके यह दिखलाया ॥ २० ॥ हे लक्ष्मण ! कर्म फल भोगनेके सिवाय जिसको जानने का कोई उपाय नहींहै उस भाग्यसे लडनेको कौन पुरुष साहस कर सकताहै? क्योंकि उसके रूपको न कोई देखही सकता न किसीके विचारमेंही आसकताहै ॥ २१ ॥ सुख, दुःख, भय, क्रोध, हानि, लाभ, बन्धन, मुक्ति, इन सबके बीचमें जो कुछहै सो भाग्यहीहै ॥ २२ ॥ औरों की बातें जाने दीजिये जो कि, कठोर व्रत करने वाले उग्रतप जिन्होंने कियेहों ऐसे तपस्वी लोगभी भाग्यके वशहो व्रत नियम इत्यादि छोड छाड कर काम क्रोधके वश में हो भ्रष्ट हो जातेहैं ॥ २३ ॥

---

* दोहा—वधिक वधो मृग बाणते, रुधिरो दियो बताय । निजहूं अनहित होतहै, तुलसी दुर्दिन पाय ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण ! सुन जाहि जब, होत विधाता वाम । धूरि मेरु सम जनक यम, ताहि व्यालसम दाम ॥ २ ॥

जिस कार्यके करनेको नतो कभी विचार किया जाय और वह अपने आप एका-एकी होजाय, और जिसका विचार करो वह नहो, बस यही दैवका कर्म समझना चाहिये ॥ २४ ॥ हेलक्ष्मण ! तत्त्वज्ञानकी सहायतासे भली प्रकार करके प्रबोधित होने पर मेरे अभिषेक मिलनेको था वह नहीं मिला और अब वनवासको जाना पड़ा इसमें तुमको संतप्त होना नहीं पड़ेगा ॥ २५ ॥ अब तुम मेरे उपदेशसे मनका सब दुःख परिताप छोड करके मेरीसी बुद्धि अपनीभी करलो, और जो मैं कहूं सो करो और मेरे अभिषेकके प्रयोजनीय कार्यसे सबका मन अलग हटादो ॥ २६ ॥ मेरा अभिषेक होनेके लिये अनेक तीर्थों के जलसे भरे जो कलश आयेथे अब इन कल-शोंसे मेरा तपस्वी स्नान होगा अर्थात् अब तपस्वी भेष करने पर इनसे स्नान करूंगा ॥ २७ ॥ अथवा अब अभिषेक की सामग्रीसे प्रयोजनही क्याहै? मैं अपने हाथसे कुएँसे जल लाकर उससे तपस्वी व्रतका स्नान पूराकरूंगा ॥ २८ ॥ भाईलक्ष्मण राज्याधिकार जो नहीं प्राप्त हुआ इसकारण तुम कुछ विषाद मत करना; क्योंकि वास्तवमें विचार करनेसे राज्य और अरण्य इन दोनोंमेंसे वनवासही फलदायकहै देखो वनमें जाकर वनवासी ऋषियोंका पालन कर सकेंगे । दूसरे पिताके वचनों का पालन होजायगा और प्रजापालनेके कर्तव्याकर्तव्यहैं उनके विचारसे छुट्टी पाना. फिर तपस्या करनेसे पवित्रचित्त रहना और वहां दीन अनाथोंकी रक्षा करना इस-कारणसे वनवासही श्रेष्ठहै ॥ २९ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम भाग्यका प्रभाव भली भांति जानतेहो; अतएव राज्यके न मिलनेसे और वनको चलनेसे पिताजीका वा माता कै-केयीका कुछ दोष मनमें समझना तुमको उचित नहींहै ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशःसर्गः २३.

रामचंद्रजीके इस प्रकार कहनेपर अनुज लक्ष्मणजी सहसा दुःख और हर्षके मध्यमें रहकर शिर झुकाये कुछ देरतक चिन्ता करते रहे हर्ष तो रामचंद्रजीकी धीरताको देख हुआ और वनवासका जाना विचार दुःखितहुये इससे सम भावमें रहे ॥ १ ॥ परन्तु कुछ विलम्ब पश्चात् भौहैं वंकिमाकारकर बिलमें बैठे हुये क्रोधित भुजंगकी नाई दीर्घ निःश्वास त्याग करने लगे ॥ २ ॥ उस समय लक्ष्मणका मुख

भौहैं टेढी होनेसे क्रोधित सिंहके मुखकी नाईं अति भयानक आकारवाला होगया ॥ ॥ ३ ॥ हाथी जिस प्रकार अपनी शुंड़ इधर उधर हिलाताहै इसी प्रकार लक्ष्मणजी हाथ कँपाय शिर इधर उधर हिलाय झुलाय ॥ ४ ॥ टेढी दृष्टिसे भाई रामचन्द्रजीको देख कहने लगे, आर्य आप जो बन जानेके लिये तैयार हुयेहैं यदि विचार करके देखिये तो यह बात संपूर्णतः भ्रमकी भरी हुईहै ॥ ५ ॥ मैं कह सकताहूं कि धर्ममें दोषका प्रसंग और लोकमर्यादाकी रक्षा करना इस करके विरा हुआ आपका जो मनहै उसमें विषम शीघ्रता आगईहै, यदि ऐसा न होता तौ आप सरीखे पुरुष कभी ऐसी वार्त्ता कह सकते ? कि भाग्यहीके भरोसे सब कुछहै ॥ ६ ॥ हे वीर पुरुष श्रेष्ठ ! आप इस निबल भाग्यको सरलतासे जीत सकतेहैं परन्तु इसको न करके आप इस तुच्छ भाग्यकी इतनी प्रशंसा क्यों करतेहैं ? ॥ ७ ॥ हेधर्मात्मन् ! महाराज अतिशय पापीहैं क्या इन दोनोंकी साड़तको आप अबतक नहीं समझे ? आप क्या जानते नहीं है कि, संसारमें अनेक लोग केवल अपने स्वार्थके लिये धर्मका झूंठ मूंठ दावा किया करतेहैं देखिये आपके वनवास देनेमें धर्मकी क्या बातहै ? ॥ ८ ॥ विचार करके देखिये कि, स्वार्थ परतामें पडकर महाराज पिताजी और कैकेयी शठता पूर्वक आपको वनवास देते हैं, यदि ऐसा न होता तौ सब अभिषेकका सामान तैयार कर कराकर फिर आपके अभिषेकमें ऐसा विघ्न उठाकर खडा नकर देते ॥ ९ ॥ यदि वर देनेकी वार्त्ता वास्तवमें ठीक होती तो अभिषेक होनेके पहलेही उसकी सूचना क्यों नहीं की गई ? जो हो बडेको छोड़ छोटेको राज्य देना यह तो बहुत बडी लोकमें निन्दा करने वाली वार्त्ताहै ॥ १० ॥ यदि कहो कि, राजाने भूलसे वरदान दिया तौभी हानि हीहै क्योंकि इस अनुचित कार्यसे लोकमें द्वेष फैल जायगा कि, बडेके होते छोटा कैसे राज्य पा सक्ताहै परन्तु हे वीरचूडामणे ! मैं तो इस घोर बीभत्सकार्यको किसी प्रकारसे नहीं कर सकूंगा यह कर्म लोक और शास्त्र दोनोंसे विरुद्धहै इस कारण उस विषयमें आप मुझे क्षमा करिये ॥ ११ ॥ आप जो पिताजीका सत्य पालन करनेके लिये मोहित होतेहैं और जिसके प्रभावसे आपकी बुद्धिमें यह हेर फेर हुआहै मैं उस धर्मके लिये मनसे द्वेष करताहूं ॥ १२ ॥ मैं भली प्रकार जानताहूं कि आप धर्मवान् हैं परन्तु अब आप किस कारणसे, स्त्रीके वश हुये राजाके अधर्मसे भरे हुये यह घिनोने वचन धर्म जान पालन करनेको तैयार हुयेहैं बस इस समय यही मुझे बडी भारी चिन्ताहै ॥ १३ ॥ आपके राज्याभिषेकमें जो बाधा हुईहै, बस केवल वर दे-

नाही उसका छल समझिये, आश्चर्यहै कि, आप इस बातको नहीं मानते आप इनके कप-टकोभी सरलतासे ग्रहण करतेहो इस प्रकारके धर्मकी संगति निन्दनीयहै आप इसका ध्यान नहीं करते मुझे यही बडा दुःखहै ॥ १४ ॥ आप जो धर्मका अनुसरण कर-के वन जानेको तैयार हुयेहैं यह वार्त्ता लोकमें बहुत निन्दाकी करानेवालीहै जिन-की इच्छाही दूषितहै, उन महाराज पिताजी और कैकेयीका वचन मानना तो दूर रहा उनकी बातको मनमेंभी स्थान नहीं देना चाहिये कहनेसे वो संबंधानुसार महा-राज व रानी कैकेयी पिता माताहैं, परन्तु व्यवहारसे वास्तविकमें यह हमारे दारुण वैरीहैं ॥ १५ ॥ यद्यपि आपके मतसे माताके वचन इस विषयमें दैवके किये हुयेहैं, तथापि मुझे तो यह वार्त्ता अच्छी नहीं लगती क्योंकि ऐसे दैवका कौन भरो-साहै ॥ १६ ॥ जिन पुरुषोंमें पुरुषार्थ नहीं है और बहुतही तेजहीनहैं, वह लोगही भाग्यको माना करतेहैं जो वीरहैं, और जगत् जिनको वीर जानताहै वह लोग दैव-पर भरोसा नहीं रखतेहैं १७ ॥ जो पुरुष अपने पुरुषार्थसे भाग्यको जीत सक्तेहैं यदि अचानक उनका कोई कार्य बिगड जाय तो वह लोग साहस नहीं हारते बरन प्रसन्न रहतेहैं॥ १८॥ भाई साहब! आज सब लोग भाग्य और पुरुषकार दोनोंके बल पौरुष-को देखैं, जोहो आज भाग्य और मनुष्यके बलाबलकी परीक्षा होगी ॥ १९ ॥ जिन लोगोंने भाग्यकी शक्तिसे आपका राज्याभिषेक हटाया हुआ देखाहै, आज वही लोग हमारे पौरुषके प्रभावसे उस भाग्यको हारा हुआ देखेंगे ॥ २० ॥ जैसे दौडते हुये बडे ऊंचे मतवाले हाथीको अंकुश वश कर लेताहै, वैसेही आज मैं अपने परा-क्रमसे भाग्यको अपने आधीन करूंगा ॥ २१ ॥ पिता दशरथजीकी बात तो जानेही दीजिये जो सब लोकपाल, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यमराज, अग्नि, सूर्यादि, बरन तीनों लोकके सब मनुष्यभी आपके अभिषेकमें विघ्न नहीं डाल सकेंगे ॥ २२ ॥ जिन लोगोंकी सलाहसे आपका वन जाना स्थिर हुआ है, आज मैं उन लोगोंकोही चौदह वर्ष के निमित्त वनमें भेजूंगा ॥ २३ ॥ महाराज, पिता और कैकेयी आपका बुरा करके भरतको जो यौवराज्यमें अभिषेक करनेके लिये आशा लगाये बैठे हैं आज यह उनकी आशा निर्मूल करूंगा ॥ २४ ॥ जो कोई हमारे विरुद्ध आचरण करनेको आगे बढैगा उसके लिये हमारा दुर्द्धर्ष पौरुष जितने दुःखका कारण होगा भाग्य बल उसे उतना सुख नहीं देसकेगा ॥ २५ ॥ हे आर्य! आप हजारों वर्ष तक राज्यका सुख भोग जब वनको जाँयगे उस

समय आपके पुत्रगण प्रजा पालन करके राज्य काज करते रहेंगे। उस समय भी भरतके पुत्र या वह स्वयं राज्य नहीं पासकेंगे॥ २६ ॥ क्योंकि पूर्वकालमें सब भूपालगण यही करते चले आये हैं कि, वृद्धावस्थामें प्रजाको पुत्रकी समान पालन करनेके लिये पुत्रोंको सौंप आप वनमें तप करनेके लिये रहेथे। यह नहीं कि, आपकी सी युवा अवस्थामें वनको जाँय ॥२७॥ हे आर्य! महाराज कामके वशहो चपलताके दोषसे हमारे विरुद्ध आचरण करते हैं परन्तु इससे आप अपने राज्याधिकारसे मन न हटाइये ॥२८॥ हे वीर! प्रतिज्ञा करताहूं कि, मैं आपके राज्यकी रक्षा करूंगा, यदि न करूं, तौ वीर लोकको न प्राप्त होऊं आप समझ लीजिये कि तीरभूमि जिस प्रकार सागरकी रक्षा करतीहै मैंभी आपके निकट वैसेही रहूंगा ॥२९॥ अब आपके राज्याभिषेकके लिये जो सब मंगलाचारकी वस्तुयें इकट्ठी की गई हैं, उनसे आप अपना अभिषेक कराइये यदि इस कार्यमें कोई राजा कुछभी बाधा उठावै तौ मैं अकेला सब पृथ्वीके राजाओंको जीत सकता हूँ। अकेले दशरथकी क्या गिनतीहै, ॥ ३० ॥ भाई! यह हमारी बांहें केवल शरीरकी शोभा बढानेको उत्पन्न नहीं हुईहैं, किन्तु पराक्रमके लियेहैं, केवल आभूषणकी भांति धनुष धारण नहीं करताहूं वरन् शत्रुओंका शरीर छेदन करनेके लिये, यह खड्ग केवल भारही नहीहै वरन् वैरीका मूँड काटनेके लियेहै, बाण स्तंभ रूप नहींहै किन्तु छोडनेकोहै ॥ ३१ ॥ यह चारों पदार्थ हमारे शत्रुओंको मथनही करनेके लिये हैं, जो हमारा शत्रु बनकर रहना चाहताहै उसको हम कुछभी नहीं समझते ॥ ३२ ॥ दूसरोंकी बात क्या कहूं यदि सुरपति इन्द्रभी हमारे साथ इस राज्यके विषयमें शत्रुता करनेके लिये तैयारहो तो मैं बिजलीकी समान तेज धार वाली तलवारकी सहायतासे उसकोभी टुकडे२करके फेंक दूंगा ॥ ३३ ॥ मेरा यह खड्ग निरंतर आघात करके हाथियोंकी सूंडे घोडोंके हाथ पाँव व पैदलोंके मस्तक काट २ कर रणभूमिको चलनेके योग्य न रक्खैगा अर्थात् रणभूमि भयंकर होजायगी ॥ ३४ ॥ आज हमारी तलवारके प्रहारसे शत्रुगण रुधिरसे रँगे हुये जलती हुई आग व बिजली सहित मेघकी नांई शोभित होकर रणभूमिमें गिरैंगे ॥ ३५ ॥ मैं प्रतिज्ञा करके कहताहूं कि, जब हम गोहके चमडेसे बना हुआ गुश्ताना टंकार देनेके लिये पहरकर और दिव्य शरासन धारण करके खडे हो जाँयगे, तब कौन वीर पुरुष हमको पराजित कर सकताहै? ॥ ३६ ॥ मैं बहुत सारे बाण चलाकर एक पुरुषको, व एक मात्र शराघातसे अनेक लोगोंको

विनाश करके हाथी, घोडे, और मनुष्योंके मर्मस्थान बराबर छेदन करता रहूँगा ॥ ३७ ॥ आज महाराजकी प्रभुता मिटाने और अपकी प्रभुता जमानेमें मेरा बाहु-बल और अस्त्र बल प्रगट हो जायगा ॥ ३८ ॥ आज चंदन लगी हुई मेरी बाहैं व अंगद पहरी हुई, सदा दानकी देने वाली सुहृदोंको पालनेवाली सुख करनेवाली ॥ ३९ ॥ रामका कार्य करैंगी तुम्हारे अभिषेकमें विघ्न करने वाले लोगोंको रोकने-वाली, और शोक देनेवालीहैं । हम ठीक २ कहतेहैं कि हमारी भुजा यह सब काम करैंगी ॥ ४० ॥ हे प्रभो ! आप आज्ञा दीजिये कि, कौन धन, प्राण और भाई बन्धुओंसे न्यारा किया जाय ? मैं आपका दासहूँ मुझे आज्ञा दीजिये जिस प्रकारसे यह पृथ्वी आपके अधिकारमें आजाय, मैं उस कार्यके अनुष्ठान करनेमें यत्न करूं ॥ ४१ ॥ रघुकुलके बढाने वाले रामचन्द्रजी लक्ष्मणके ऐसे वचन श्रवण करके उन के आँशू पोंछ बारंवार उनको समझाने बुझाने लगे और बोले हे वत्स ! मैंने भली भाँति पिताका सत्य पालन करनाही उचित समझाहै; अतएव मैं उस वचनसे किसी प्रकार नहीं हट सकता यही सत्य मार्गहै ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः २४.

अनन्तर रामजननी कौशल्याजी धर्मात्मा पुत्र रामचंद्रजीको पिताकी आज्ञा पालन करनेमें तैयार देख आंसुभरे. नेत्र किये गद्गद कंठसे बोली ॥ १ ॥ हे राम ! तुमने महाराज दशरथके औरससे मेरे गर्भमें जन्म ग्रहण कियाहै; बालक पनसे दुःख क्या पदार्थहै सो तुम जानते नहीं सब प्राणियोंके प्रिय करने हार, फिर भला तुम किस प्रकारसे बनमें जाय कन्द मूल फलोंका आहार कर मुनियोंकी वृत्तिको निबाहोगे ॥ २ ॥ जहां तुम्हारे नौकर चाकर दास दासी अनेक प्रकारके मीठे व्यंजन भोजन करते रहे वहां तुम किस प्रकार कंद, मूल फल भोजन करके दिन विताओगे ॥ ३ ॥ जब कोई इस बातको सुनेगा कि, राजाके प्यारे दुलारे परम प्रिय पुत्र रामचंद्रजी वनको जातेहैं । वो इस बातका कौन विश्वास करैगा और जब निश्चय करके विश्वास होही जायगा ! तो यह जानकर कि, राम वनको भेजे गये, कौन पुत्र पिताको मनही मन भयका कारण न समझैगा ! क्योंकि जब

तुम पिताको ऐसे प्यारे थे और उन्होंनेही तुम्हें वास दिया फिर पिताओंका क्या भ-रोसा ? ॥ ४ ॥ जब तुम सर्व लोकोंके प्यारे रामचन्द्र वनको जाओहो तब सुख दुःखका नियम बनानेवाला भाग्यही सबसे बडाहै यह मुझको ठीक निश्चय होगया, यदि ऐसा न होता तो राज्य मिलनेके समय तुम वनको न जाते ॥५॥ हे राम ! यह मेरेही मनसे उपजी हुई शोकानल जब तुमको न देखेगी तब जो ऊर्ध्व श्वासे आवेंगी उस वायुसे वर्द्धित हुआ विलाप कलाप करनेका दुःख ईंधनरूप होकर आंसु-ओंके रोनेकी आहुति पाय ॥ ६ ॥ चिन्तासे उत्पन्न भाफको धूम बनाकर जो कि, विना तुम्हारे दर्शन किये चिन्ता होगी सो मुझको भली भाँति अधिक कृश करकै ॥ ७ ॥ जैसे गरमीके दिनोंमें सूर्य भगवान् वृक्ष, लता, घास, फूल, पत्रादिकोंको जलातेहैं वैसेही तुम्हारे विना यह शोकानल मेरे हृदयको भेद करकै मुझको भस्म करदेगी ॥ ८ ॥ हे वत्स ! तुम जहां जाओगे, मैंभी वहीं २ तुम्हारे साथ चलूंगी क्योंकि कभी गाय अपने बच्चेका संग छोडतीहै ? ऐसेही मैंभी तुम्हारा साथ नहीं छो-डूँगी ॥ ९ ॥ जो कुछ शोकसे तपाई हुई माताने कहा उसको सुनकर पुरुषश्रेष्ठ रामचंद्रजी अपनी दुःखित मातासे बोले ॥१०॥ हे माता ! जननि कैकेयीने पिता-जीको धोखा देकर बहुतही दुःखित कियाहै और मैंभी इस समय पिताजीसे बिछुड-कर वनको जाताहूं और तिसपर यदि आपभी मेरे साथ वनको चलें तो महाराज कदा-पि जीते न बचें गे ॥ ११ ॥ संसारमें जितनी कुछ निठुरताहै वह सबसे अधिक नि-न्दित जो कार्यहै; वह स्त्रीका अपने स्वामीका त्याग करनाहै ! इस कारण हे मैया ! यह बात तुम मनसेभी न विचारो, ऐसी बातोंको मनमें स्थान देनेसेभी पापहै॥ १२॥ जगत्पति हमारे पिताजी जब तक जीवित रहैं आप तब तक उनकी सेवा करती रहैं समझलो कि, तुम्हारा यही सनातन धर्महै ॥ १३ ॥ श्रेष्ठ कर्म करनेवाले रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर शुभ दर्शन वाली कौशल्याजी प्रीति मनमे ऐसाहीहै यह रामचंद्रजीसे कहने लगीं ॥ १४ ॥ कि, हे वत्स! स्वामीकी सेवा शुश्रूषा करना स्त्रियोंका आवश्यकीय कर्महै, इसमें कोई सन्देहकी वार्त्ता नहीं है. उस समय दुः-खित माताको स्वामीके सेवामें विरक्त देखकर धर्म धारियोंमें श्रेष्ठ श्री रामचंद्रजी उनसे बड़ी धीरता व नरमाई साथ फिर बोले ॥ १५ ॥ हे जननि ! महाराज एक तो आपके पतिहैं और दूसरे मेरे परम गुरुहैं; तीसरे पिताहैं और चौथे सबके पालन पोषण करनेवालेहैं पाँचवें राजाहैं छठे सबमें श्रेष्ठहैं इसकारण उनकी आज्ञाका पालन

करना हम दोनोंको उचितहै ॥ १६ ॥ मैं प्रतिज्ञा करके कहताहूं कि, चौदह वर्ष-तक वनमें घूम घामकर प्रसन्न मनसे लौटकर आपके चरणोंकी सेवा करूंगा ॥ १७॥ अपने प्यारे पुत्रके ऐसे वचन सुनकर पुत्रवत्सला कौसल्याजी आँखोंमें आंसू-भर दुःखितहो रुदन करती हुई बोली ॥ १८ ॥ मैं यहां सौतोंके बीचमें किस प्रकार रह सकतीहूं तुम तो वनको जाओ और मैं यहां रहूं, हे पुत्र ! वनमें मारी २ फिरनेवाली हरिनीके समान मुझेभी अपने संग लेचलो ॥ १९ ॥ यदि तुमने निश्चयही वन जा की विचारीहै तौ मुझे यहां मत छोडो ! कौसल्याजी रामचंद्रजीसे इस भांति कह रोने लगा * तब रामचंद्रजी उनसे फिर बोले ॥ २० ॥ कि, जब तक स्त्री जीतीरहै तब तक पतिही उसका देवता और मालिकहै; अतएव महाराज पिताजी इस कारणसे मुझे व आपको अपनी इच्छानुसार दंड दे सकतेहैं जो कि, हम उनके प्रतिकूल आचरण करैं ॥ २१ ॥ महाराजके रहते हम सबको स्वतंत्र नहीं होना चाहिये क्योंकि हमारे प्रभु जीवितहैं तबतक उनके कहने अनुसार कार्य करना चाहिये जो कहो कि, तुम्हारे पीछे कैकेयी दुःख देगी सो कैकेयी तुम्हारा कुछ भी न कर सकैगी क्योंकि भरतजीको मैं भली भांति जानताहूं वह सज्जन धर्मात्मा और सर्व लोकोंके प्यारेहैं ॥ २२ ॥ वह सदा सबही प्रकारसे आपका मन प्रसन्न कर, नेके लिये यत्नवान् रहैंगे, और तुम्हारी आज्ञामें रहैंगे क्योंकि यह सदा धर्ममें रह-तेहैं जिससे कि, मेरे वनको चलेजाने पर पुत्रशोकसे व्याकुलहो राजा कष्ट न पावें ॥ २३ ॥ व किसी प्रकारका दुःख उन्हें न हो इस विषयमें हे अम्मा ! तुम बहुतही ध्यान रखियो क्योंकि मुझे यह विश्वासहै कि, मेरे वन जानेका शोक प्रबल होकर उनकी मृत्युका कारण हो सकताहै ॥ २४ ॥ क्योंकि राजा अब वृद्ध होगये हैं इससे उनका हित करनेके लिये सदाध्यान धरकर उनकी सेवा करना । क्योंकि जो परमोत्तम नारी व्रत उपवासमें रात दिन लगी रहै ॥ २५ ॥ और मन लगाकर पतिकी सेवा न करै वह भी नरकगामिनी होतीहै, और जो स्त्री तनमनसे अपने स्वा-मीकी सेवा करती और कोई पूजा पाठ व्रत इत्यादिक नहीं करतीहै वह भी पतिकी सेवाके बलसे स्वर्गको सीधी चली जातीहै ॥ २६ ॥ जो स्त्री देवताओंकी पूजा नहीं किया करती, और व्रत इत्यादिक जिसको नहीं रुचते, और बडोंको जो नहीं नवती

* चौ०—बहु विधि विलपि चरण लपटानी । परम अभागिनि आपहि जानी ॥ दारुण विरह महा उर व्यापा । कह्यो न जाय मान सन्तापा ॥ कौनहुँ भांति धरत नहिं धीरा । लोचन नलिन जात अतिनीरा ।

परन्तु दिन रात अपने स्वामीका हित करतीहैं वह उत्तमही गति पातीहैं ॥ २७ ॥ इसलिये जो स्त्री सदा अपना भला चाहतीहै वह निष्कपट होकर स्वामीकी सेवा करै । हे देवि ! वेद व स्मृति इत्यादि धर्मशास्त्रोंमें यह धर्म लिखा हुआहै इस समय यह प्रार्थना और है कि, जब अग्निहोत्रका समय आवै तब पतिकी सेवामें मन लगाये हुये ॥ २८ ॥ मेरा मंगल मनानेके लिये अक्षत पुष्पोंसे देवताओंकी पूजा करना, और व्रतनिष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करना इस प्रकार समय व्यतीत करते हुये मेरे आनेकी आकांक्षा किये ॥ २९ ॥ पवित्र भावसे पतिकी सेवामें रत रहकर नियमित भोजनकर समय बिताना मेरे वनसे लौट आनेपर तुम्हारी सब मनोकामना पूर्ण हो जायगी॥ ३०॥ यदि धर्म धारनेवालोंमें श्रेष्ठ हमारे पिता जीते रहे तो निश्चयही यह बातें होंगी राम-चन्द्रजीके ऐसा कहनेपर आंखोंमें आंसूभर गद्गद कंठसे ॥ ३१ ॥ पुत्रशोकसे कातर हुई कौसल्याजी रामचंद्रजीसे बोली, उनकी दोनों आंखोंमे आंसू बह रहेथे हे पुत्र ! जो तुम निश्चयही वनको जाओहो तो तुम्हें वन जानेसे रोकनेकी सामर्थ्य मुझमें कहांहै॥ ३२॥ मैंने जान लिया कि, अवश्य होनहार कालकी शक्तिको कौन बाधासे रोक सकताहै ? जो हो हे पुत्र ! तुम एकाग्र मनसे वनको जाओ तुम्हारा मंगलहो ॥ ३३ ॥ हे महाभाग ! जब तुम्हारा यह व्रत सिद्ध होजायगा अर्थात् पिताकी आज्ञा पालनकर चौदह वर्ष वनमें रहकर घरको लौटोगे तौ मैं सुखी होऊंगी ॥ ३४ ॥ हे पुत्र ! तुम्हें चौदह वर्षके पीछे पिताके ऋणसे छूटाहुआ देखकर मैं परम सुख पाऊंगी. हे पुत्र ! निश्चयही भाग्यकी गति समझ नहीं पडतीहै ॥ ३५ ॥ हे महाबाहो ! मेरे वचनोंकी रक्षा न कराकर जिस भाग्यने तुम्हें वनवासी किया, उस भाग्यकी समान बडा और कौन बन सकताहै; अच्छा अब तुम वनको जाओ और निर्विघ्न चौदह वर्षके पीछे फिर इस राजपुरी अयोध्याको लौटो॥ ३६ ॥हाय ! मेरे भाग्यमें ऐसे सुखके दिन कब आवेंगे वह तुम्हारे वनसे लौटनेका समय अभी आजाय जिस दिन जटा वल्कल धा-रण किये वनसे लौटकर तुम कोमल और मनोहर वाणीसे मुझे समझाओ बुझाओगे * ॥ ३७ ॥ इस प्रकार कह देवी कौशल्याजी रामका वन जाना निश्चय जानकर परम चित्तसे रामचन्द्रजीकी वह परम दर्शनीय राममूर्त्ति दर्शन करने लगीं और उनकेही मंगल मनानेके लिये मंगलाकांक्षिणी हो उनकी स्वस्तिवाचन करनेलगीं ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥

---

* चौ०–सुदिन सुघरी तात कब होई । जननी जियत वदन विधु जोई ॥ दोहा–बहुरि वच्छ कहि. लाल कहि, रघुपति रघुवर तात । कबहि बुलाय लगाय उर, हरषि निरखिहौं गात ।

पञ्चविंशः सर्गः २५.

तब बुद्धिमती कौसल्याजी शोकको मिटाय पवित्र जलमें आचमन करके रामके मंगलार्थ अनेक प्रकारके मंगल कार्य करने लगी और बोली ॥ १ ॥ हे रघुनाथ ! तुमको रोककर मैं यहां नहीं रख सकती क्योंकि तुम पिताके वचनोंपर दृढहो, अतएव तुम साधु सज्जनोंके मार्गको अवलंबन करके पिताका सत्य पालन करनेके लिये तैयार हो जाओ और शीघ्रही घरको लौटो ॥ २ ॥ तुम प्रसन्न मनसे नियम पूर्वक जिस धर्मके अनुष्ठान करनेको तैयार हुयेहो हे राघवशार्दूल ! वही धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा ॥ ३ ॥ हे पुत्र ! तुम देव मन्दिरोंमें जिन समस्त देवताओंको नित्य प्रणाम करते रहतेहो वह सब देवता महर्षियोंके सहित तुम्हारे वनमें रहनेके समय तुम्हारी रक्षा करें ॥ ४ ॥ बुद्धिमान् विश्वामित्रने तुम्हें जितने सब विचित्र अस्त्र शस्त्र दियेहैं, वहभी सब गुणनिधि तुम्हारी रक्षा करें ॥ ५ ॥ हे वत्स! तुम पिताकी सेवा करनेसे माताकी सेवा करनेसे और पिताकी आज्ञा पालन करनेसे और सत्य रक्षा पाकर चिरंजीवीहो ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंके होमके ईंधन, कुश, वेदी, व देवमन्दिरोंके स्वामी देवगण सब पर्वतोंके देवता बडे छोटे सब वृक्ष सब कुण्डोंके देव तुम्हारी रक्षा करें ॥ ७ ॥ हे नरोत्तम ! सब कीट, पतंग, सर्प, सिंह तुम्हारी रक्षा करें । साध्यगण, विश्वदेव, उनंचास पवन सब महर्षियोंके साथ तुम्हारा कल्याण करें॥ ८ ॥ धाता, विधाता, पूषा, अर्यमा, इन्द्रादि लोकपाल तुम्हारा मंगल करें ॥ ९ ॥ छः ऋतु बारहों महीने सब संवत् रात्रि दिन व सब मुहूर्त्त तुम्हारी स्वस्ति करें ॥ १० ॥ हे पुत्र ! सब अश्विन्यादिनक्षत्रोंके देवता सूर्यादि ग्रह सब देवता श्रुति स्मृतिमें कहा धर्म यह सब तुम्हारी रक्षा करें भगवान् स्कंद, सोम, बृहस्पतिजी ॥ ११ ॥ सात ऋषियोंसमेत नारदजी तुम्हारी रक्षा करें । इनके सिवाय सब दिशाओंके मालिक और सिद्ध ॥ १२ ॥ इन सबकी मैं स्तुति करतीहूं कि. यह प्रसन्नहोकर वनमें तुम्हारी रक्षाकरें, सब पर्वत, सब समुद्र और राजा वरुणभी ॥ १३ ॥ और स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, वायु, चराचर नक्षत्र मण्डल सब ग्रह व उनमें टिकेहुये देवता गण ॥ १४ ॥ दिन रात्रि व दोनों सन्ध्याकाल और कलाकाष्ठादि यह सब वनमें तुम्हारी नित्य रक्षा करते रहें और कल्याण देते रहें । छओं ऋतु बारहों मास और संवतभी ॥ १५ ॥ कालकाष्ठा और सब दिशायें तुम्हारा मंगल करें महावनमें विचरते हुए मुनिवेष धारण कियेहुये यह सब धीमान् तुम्हारी रक्षा करें ॥ १६ ॥

नथा देवतालोग दैत्य यह सदा तुम्हैं सुखके देनेवाले हों ! राक्षस व पिशाच जितने क्रूर कर्म भयंकर करनेवाले हैं ॥ १७ ॥ और मांसभक्षीहैं हे पुत्र ! वनमें विचरते हुये इन सबका भय तुमको न हो। बन्दर, बिच्छू, डांस, मच्छर यहभी तुम्हैं वनमें दुःख न दें ॥ १८ ॥ और सर्प, कीडे, मकोडे, आदिभी वनमें तुमको न सतावें मतवाले हाथी, सिंह, रीछ, व्याघ्र व और २ भेडिया आदि काटनेवाले जीव ॥ १९ ॥ जंगलीभसा आदि सींगवाले कठोर जन्तु तुमको कष्ट न देसकें और २ जातिके जो मनुष्यका मांस खानेवाले भयानक जीवहै ॥२०॥ उन सबकी में यहा आराधना करतीहूं कि, वे वनमें तुम्हैं न मारें। व जो २ शास्त्र तुमने पढेहैं सब तुमको कल्याणदाई व पराक्रम सिद्धहों ॥ २१ ॥ तुम बहुत सारे कंद मूल फल प्राप्त करके निर्विघ्न वनमें घूमते रहो व, तुम्हारी यह यात्रा सबके लिये कल्याणदायक होवे। पृथ्वीमें अन्तरिक्षादिमें जितने जीवहैं जो कि, यात्रामें दुष्टता करनेवालेहैं वह सब तुम्हारी यात्रामें मंगल करैं ॥ २२ ॥ सब देवता जो तुम्हारी यात्रामें हों वे सब कल्याण करैं हे रामचन्द्र ! तुम्हारे वन जानेपर शुक्र, चंद्रमा, सूर्य, कुबेर, व यम ॥२३॥ हे राम ! यह सब पूजित होकर वनमें तुम्हारी रक्षा करैंगे अग्नि, वायु, धुआं और ऋषियोंके मुखसे उच्चारण कियेहुये सब मंत्र ॥ २४ ॥ स्नान करनेके समय वनमें यह सब तुम्हारी रक्षा करैंगे, सर्व लोकोंके प्रभु सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी व और २ सब ऋषिगण ॥ २५ ॥ व और सब देवतागण वनमें तुम्हारी रक्षा करैं इस रीतिसे माला, गन्ध, अक्षत इत्यादि यशस्विनी कौसल्याजीने ॥२६॥ रामचन्द्रजीका मंगल करनेके लिये यथायोग्य स्तुति कर सब देवताओंकी पूजा की फिर अग्नि प्रज्वलित कर महात्मा ब्राह्मणोंके द्वारा ॥ २७ ॥ रामचन्द्रजीके मंगलके लिये आहुति दिलाने लगीं। घी, समिधा, सफेद फलोंकी माला, सरसों ॥ २८ ॥ आदि सामग्री कौसल्याजीने एकत्र कराई यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक हवन किया अंतमें उपाध्यायोंने शान्ति पुष्पादि पढी पढाई ॥ २९ ॥ फिर आहुतिके शेषमें जो साकल्य बची उससे लोकपालोंको बलि प्रदान करने लगे। तदनंतर शहद, दही, अक्षत और घृत ब्राह्मणोंके हाथोंपर धराय ॥ ३० ॥ रामचन्द्रजीके वन जानेके मंगलार्थ स्वस्तिवाचन किया गया। फिर तिस कारणसे उस यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणको यशस्विनी रामचन्द्रजीकी माताने ॥ ३१ ॥ मुँह मांगी दक्षिणा दी और फिर रामचंद्रजीसे कहने लगीं। जो

मंगल सर्व देवताओंके नमस्कार योग्य इंद्रको ॥ ३२ ॥ वृत्रासुरका नाश करनेके समय हुआ था, वैसेही अब तुम्हारा मंगल हो, जो मंगल गरुडजीका गरुडकी विनता माताने ॥ ३३ ॥ अमृतकी प्रार्थना करनेके समय किया था वही मंगल तुमको प्राप्तहो । अमृतका उद्धार करनेके लिये वज्रधारी देवराज इन्द्र जब दैत्योंके मारनेमें प्रवृत्त हुये ॥ ३४ ॥ और अदिति उनकी माताने जो उनका मंगल किया वही मंगल तुम्हारा हो, अमित पराक्रमवाले भगवानुजीने जो बलिके छलनेको वामन रूप बनाया और तीन वार चरण उठाया ॥ ३५ ॥ सो उनकी माता अदितिने जो मंगल उनका किया था वही मंगल तुमको प्राप्त होय । सब ऋषि, सब समुद्र, सब द्वीप, वेद, दशों दिशायें और सब लोक ॥ ३६ ॥ हे महाबाहो राम ! यह सब तुम्हारा मंगल करैं । यह वार्त्ता कहकर भामिनी रामजननीने पुत्रके मस्तकपर चावल चढाये ॥ ३७ ॥ उस बडे नेत्रवालीने व सब अंगोंमें सुगन्धि कारक वस्तु चंदन आदि लगाये जिससे रामचन्द्रजी बडे शोभित हुये । फिर 'मूलिका' नाम औषधि जिसकी सिद्धाई बहुत दिनोंसे ज्ञातथी (सिद्धाई उस औषधीमें यह थी कि, जो अंगके भीतरभी बाण आदि शस्त्र घुंस जाय तो उससे आपही आप निकल आवे) ॥ ३८ ॥ और विशल्यकरणी घाव दूर करनेवाली ओषधी रामचन्द्रजीके हाथमें रक्षा करनेके लिये बांधदी और फिर रामचन्द्रजीके मंगलार्थ रक्षा करनेवाले मंत्र जपने लगी । तदनन्तर वह दुःखकी वशवर्तिनी होकरभी ऊपरसे प्रसन्नकी नांई रामचन्द्रजीसे यह बोली ॥ ३९ ॥ पर बोलतेही मारे प्रेमके गद्गद वाणी हो आई । उन्होंने बोलनेके पहले रामचन्द्रजीको छातीसे लगा लिया व उनका मस्तक झुका और सूंघ करके ॥ ४० ॥ कहा कि, हे पुत्र ! अब तुम सुख पूर्वक जहां इच्छाहो वहाँ चले जाओ तुम रोगरहित शरीरसे पिताकी आज्ञाका पालनकर फिर अयोध्याको लौटकर आओ ॥ ४१ ॥ हे वत्स ! मैं जभी सुख पाऊंगी जब तुम वनसे लौटकर राजा होगे और मैं मन भरकर तुम्हें देखूंगी वनसे लौटेहुये तुम्हारा पूर्ण चन्द्रानन देखकर मैं सुखी हूंगी तब मेरे मनका उमाह पूरा होगा मेरी और जानकी की जब कामना पूर्ण करोगे ॥ ४२ ॥ हे राम ! शिवादि देवता व महर्षि लोग भूतगण देवता नाग सब जिनकी पूजा आजतक हमने कीहैं हे राघव ! वे सब दिशापति बन जाते हुए तुम्हारा हित बहुत दिनोंतक करते रहें ॥ ४३ ॥ कौसल्याजी यह कह पुत्रके मंगलार्थ स्वस्तिवाचनादि समाप्तकर आंखोंमें आंसू भर वार २ राम-

चन्द्रजीकी प्रदक्षिणा करने लगीं, और वार २ हृदयसे लगाकर उनके मुखकी ओर एकटक देखती रही ॥ ४४ ॥ देवी कौसल्या जब वारंवार इस प्रकार रामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणाकर चुकी तब रामचन्द्रजीभी वारंवार उनके चरणोंमें गिरे फिर महायशी रामचन्द्रजी अपनी देहकी प्रभासे दीप्तिमान् होकर उस स्थानको छोड सीताके भवनकी ओर गमन करने लगे ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा०वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां पंचविंशतितमःसर्गः ॥२५॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६.

रामचन्द्रजीके लिये स्वस्ति मंगल इत्यादिक होजाने पर वह धर्म में स्थिर धर्मात्मा माताके चरणों में प्रणाम कर विदाले वनको चले ॥ १ ॥ रामचन्द्रजी जानेके समय भीडसे भरेहुये राजमार्गको सुशोभित करतेहुये अपने गुणोंके प्रभावसे सबका हृदय मथन करते चले जाने लगे ॥ २ ॥ उस समय तक श्रीजानकीजीने श्रीरामचन्द्रजीके वन जानेकी वार्त्ता नहीं सुनीथी सुतरां वह इस आनन्दमें मग्न होरहीथीं कि आज प्राणप्यारे राजा होंगे ॥ ३ ॥ वह उस समय राजधर्मके योग्य अनुष्ठान करकै प्रसन्न मन और कृतज्ञ हृदयसे देवताओंकी पूजा करतीहुई रामचन्द्रजीके आनेकी वाट देख रहीथीं ॥ ४ ॥ ऐसे समय लोकाभिराम रामचन्द्रजी लाजसे कुछ शिर झुकाये हर्षसे भरेहुये जनोंसे भरेहुये शोभायुक्त अपने भवनमें प्रवेश करते हुये ॥ ५ ॥ जानकीजी अपने प्रीतम रामचन्द्रजीको हर्षके समय शोक और चिन्तासे व्याकुल इन्द्रिय देख कांपती हुई आसनसे उठ बैठी ॥ ६ ॥ यद्यपि रामचन्द्रजीने अपने मनका भाव जानकीजीसे छिपानेकी चेष्टा कीथी इस कारण कि, उनको बहुत क्लेश होगा, परन्तु उनके आकार और चेष्टासे सब कुछ प्रकाशित होगया, ॥ ७ ॥ तब रामचन्द्रजीका मुख मंगल प्रभाहीन और दुःखसे पसीने युक्त देखकर उनकी प्यारी सुकुमारी जनकदुलारी सीताजीने दुःखित होकर पूंछा कि हे प्राणनाथ ! इस अवस्थाका क्या कारण है ? ॥ ८ ॥ आज तो चन्द्रमाके सहित पुष्य नक्षत्रका योग है, और इस लग्नमें बृहस्पति जी विराजमानहैं। बुद्धिमान् ब्राह्मणोंके अभिप्रायसे आजका दिन राज्याभिषेकके लिये अच्छाहै; अतएव इस समय इस भावके होनेका क्या कारणहै ? ॥ ९ ॥ शत शलाकाओंसे बनाहुआ जलके फेनके समान सफेद छत्र तुम्हारे कमनीय मुखपर नहीं लगायागया इसका क्या कारण है ? ॥ १० ॥

और यह भी बतलाइये कि, चन्द्रमा और हंसकी समान दो उजले चँवर तुम्हारे मुख कमल पै क्यों नहीं ढुरते ? ॥ ११ ॥ हे नरश्रेष्ठ! फिर बंदी मागध, सूतआदि अनेक प्रकारके शास्त्र जाननेवाले बहुत बोलनेवाले हर्षित चित्तसे आपकी स्तुति क्यों नहीं पढते ? ॥ १२ ॥ फिर राजतिलक पाये हुये तुम्हारे शिरपै वेदज्ञ ब्राह्मणोंने शहद और दही क्यों नहीं छिडका इसका क्या कारणहै ? ॥ १३ ॥ फिर मंत्रीलोग औरपुरवासी, राज्यनिवासी व सभासद गण अनेक २ प्रकारके विचित्र वसन भूषण धारण करके किस कारणसे आपके पीछे २ नहीं चलते ॥ १४ ॥ तुम्हारे आगे बहुतही श्रेष्ठ सोनेके गहने पहने वेगगामी चार घोडे जुते हुये फूलोंसे सजा रथ किस कारणसे नहीं चलता यह क्या बातहै ॥ १५ ॥ हे वीर ! मुझसे इसका कारण भी समझाकर कहिये कि, तुम्हारे आगे काले मेघकी समान बडे बडे ऊंचे पर्वताकारवाला देखनेमें सुघड लक्षणवाला हाथी क्यों नहीं चलता ॥ १६ ॥ सेवक गण सोनेकी बनी अति मनोहर चौकी कंधोंपर लिये तुम्हारे आगे क्यों नहीं जाते इसका क्या कारण ? ॥ १७ ॥ जब कि अभिषेकके लिये सबही सामान तैयार होगया तब फिर तुम्हारे मुख मलीन होनेका क्या कारण है ? किसलिये पहिलेकी समान दामिनीकी लज्जितकरने वाली मुसकुरानेकी अपूर्व छबि आपके मुखपर दृष्टि नहीं आती ॥ १८ ॥ सीतापति रघुनाथजी जानकीका ऐसा विलाप सुन करके बोले. हे प्राणाधिके ! पूजनीय पिताजीने मुझे वन जानेकी आज्ञा दी है ॥ १९ ॥ हे बडे कुलमें उत्पन्न होनेवाली, धर्म जाननेवाली और धर्म करनेवाली जानकी ! जिस कारणसे मेरे भाग्यमें यह अपूर्व घटना अर्थात् वनवास हुआहै सो कहता हूं सुनो ॥ ॥ २० ॥ सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले हमारे पिता राजादशरथजीने पहले हमारी माता कैकेयीको दोवर देने अंगीकार कियेथे ॥ २१ ॥ आज महाराज पिताजी हमें राज्याभिषेक देतेथे । परन्तु भाग्यकी खुटाईसे कैकेयीने धर्मसे राजाको जीत पहले दो वरोंकी याद दिलादी और दोनों वर मांगे ॥ २२ ॥ महाराज वचन देकर सत्यके बंधनमें बंध चुके थे इस कारण वर देनेको " नहीं दूंगा " यह नहीं कह सके । अब उसी वरके प्रभावसे चौदह वर्षके लिये मुझको वनमें वसनेकी आ होचुकी है; और भरतजीको पिताजी अभिषेक करेंगे ॥ २३ ॥ अब मैं वन जानेकी सब तैयारी कर चुकाहूं, केवल तुम्हारे देखनेके लिये यहां मेरा आनाहुआ है, मैं तुमसे यह कहे जाता हूं कि, तुम भरतके सामने कदापि मेरी प्रशंसा करनेमें

प्रवृत्त मत होना ॥ २४ ॥ मैं भलीभांति जानता हूं कि, धनवान पुरुष दूसरेकी प्रशंसा सुनना अच्छा नहीं समझते अर्थात् उनको दूसरोंकी प्रशंसा अच्छी नहीं लगती। मैं इसी कारण तुमसे मनेकरता हूं कि, भरतके सामने मेरे गुणोंकी वार्ता मत जताना ॥ २५ ॥ मैं तुमसे फिरभी विशेष करके समझाताहूं कि, भरतके सामने मेरे गुण कहनेसे तुम उचित भावसे नहीं रह सकोगी । तुम साधारण रीतिसे जिस प्रकार और घरके लोग रहते हैं; रहना;—क्योंकि विशेष सन्मान उसीका होताहै जो रानी होतीहै ॥ २६ ॥ महाराज अब भरतजीको यौवराज्य देंगे, वही अब राजा हुये, इससे सब भांति उनको प्रसन्न रखना, क्योंकि राजाकी सेवा करनीही चाहिये ॥ २७ ॥ हे मनस्विनी ! मैं पिताकी आज्ञा पालन करनेकेलिये आजही वनको चला जाऊंगा, तुम इस कारण कछ चिन्ता न करकै मुझमे चित्त लगाये यहांपर स्थिर चित्तसे रहना ॥ २८ ॥ हे कल्याणि ! जब मैं मुनिवेष धारण करके मुनिसेवित वनको चला जाऊं, हे पापरहिते ! तब तुमभी यहाँ व्रत उपवासादि नियम करके दिन बिताया करना ॥ २९ ॥ आजसे प्रतिदिन बडे भोरही बिस्तरे परसे उठ देवपूजासे निवट निवटा कर हमारे परम पूजनीय पिता महाराज दशरथजीके चरणोंको प्रणाम करना ॥ ३० ॥ हमारी माता कौसल्याजी एक तो वृद्धहैं, विशेष करके मेरे वन जानेके दुःखसे वह और भी दुबली होगई हैं अतएव धर्मकी मर्यादा रक्षा करकै सदा उनकी सेवा करना तुम्हैं उचितहै ॥ ३१ ॥ कौसल्याके अतिरिक्त और भी हमारी माताओंने हमको बडे स्नेहसे अन्न पानादि द्वारा लालन पालन कियाहै अतएव उन सबकी वंदनाभी तुम नित्य किये करना क्योंकि हमें सब मातायें समान हैं ॥ ३२ ॥ हमारे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे कुमार भरत व शत्रुघ्नको तुम भ्राता व पुत्रवत् सदा समझती रहना ॥ ३३ ॥ हे वैदेही ! भरत इस देशके और इस वंशके राजा होगये, अतएव तुम कदापि उनके अमंगलकी कामना मत करना ॥ ३४ ॥ तुम जान रक्खो कि, सुजनता और यत्न सहित राजओंकी सेवा करनेसे वे लोग प्रसन्न होते हैं, और इसके विपरीत करनेसे क्रोधित हुआ करते हैं ॥ ३५ ॥ यह लोग अपने औरस पुत्रको भी जो अहित इनका करताहो तो उसी समय त्याग कर देते हैं; किन्तु जिससे कुछ सम्बन्ध नहो और वह समर्थ हो तो उसकी जरा २ बातमें आदर करनेमें कसर नहीं करते ॥ ॥ ३६ ॥ हे जानकि ! मैं तुमसे समझाकर कहताहूं कि तुम भपाल भरतकी

आज्ञामें रहकर सत्यव्रत धारण करे हुये यहांपर रहो ॥ ३७ ॥ हे प्रिये ! हम तो महावनको जाते हैं और तुम यहीं रहो फिरभी तुमसे कहे देते हैं कि हे भामिनी ! जो जो वार्त्ता तुमसे कहीं उनमेंसे किसीको व्यर्थ न करना यह मेरे वचन मानना ॥ ३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७.

प्रिय बोलनेवाली जनककुमारीसे जब रामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह कुछ एक स्नेहका क्रोध प्रकाशकर उलहना देती हुई रामचन्द्रजीसे कहने लगीं ॥ १ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! तुम यह क्या छोटे पुरुषोंकी समान दीन वार्त्ता कह रहेहो ? मैं क्या कहूं तुम्हारी वार्त्ता सुनकर मुझसे हँसी नहीं रोकी जाती ॥ २ ॥ तुमने जो वार्त्ता कही वह शस्त्र और अस्त्रोंके जानने वाले वीर राजकुमारोंके योग्य कदापि नहीं क्योंकि यह अयशकी फैलाने वाली वार्त्ता है; वरन् ऐसी वार्त्ताओंका श्रवण करनाभी उचित नहीं है ॥ ३ ॥ हे आर्य पुत्र ! पिता, माता, भ्राता, पुत्र और पुत्रकी बहू यह सबही अपने २ कर्मके फलका भोग करते हैं, व अपनेही भाग्यके भरोसे रहते हैं ॥४॥ किन्तु स्त्रियां अर्द्धाङ्गिनी होनेके कारण इन सबके विपरीत अपने स्वामीके भाग्यका फल भोगती हैं । इस कारण मैं भी आपके साथ वनको चलूंगी ॥ ५ ॥ पिता, माता, भाई, बंधु, सखियें व अपनी आत्मा भी स्त्रीकी गति नहीं हैं, वरन् स्त्रियोंका भरोसा और गति सब स्वामीहीहै ॥ ६ ॥ यदि आप आज वनको जांयहींगे तौ मैं भी पैरों पैरोंसे कुश कांटा मार्गका हटाती हुई आपके आगे २ चलूंगी ॥ ७ ॥ हे नाथ ! तुम्हारा कहा नहीं माना, इस कारण कुछ क्रोध मत करना क्योंकि जिस प्रकार भूडके देशोंमें जहा अधिक पानी नहीं मिलता, तब पथिक एकवार पीनेसे बचा हुआ पानी फिर पी लेताहै जिसके पान करनेसे धर्म शास्त्रके अनुसार अधर्म, और वैद्यकके मतसे रोग होताहै, इस कारण जब अन्न मिलेगाही नहीं तो कंद मूल फल भोजन करूंगी बस इस कारण मुझे साथमें वनको लेही चलो ❋ । मैंने तुम्हारे समीप कोई ऐसा दूषित कार्य

❋ रागनी श्याम कल्याण तालतीन (जानकीजी रामचन्द्रजीसे) जो नहिं प्राणनाथ संगलेहो ॥ आस्ताई ॥ तौ तजिहों मैं प्राण आपने फिर पाछे पछितैहो ॥ दुख बनके सब मोहिं सुक्ख सम चलत साथ सुख पैहों । सेवा करौं रहों नित आनंद नारद दरशन पैहों ॥

नहीं कियाहै, जिससे तुम मुझे यहां छोडकर वनको चले जाओ ॥ ८ ॥ स्त्रियोंको धवरहर आदि उत्तम स्थानोंमें विहार करनेसे विमानों पर चढकर आकाशमें विहरने आदि सुखोंसे अधिक सुख स्वामीके चरणोंकी छायाके आश्रयमें है यह धर्मशास्त्रमें लिखाहै ॥ ९ ॥ मैंने पिता माताके निकट जो उपदेश पायाहै कि, सम्पत्ति विपदमें दूसरी बात न कहकर स्वामीकी सेवा करना चाहिये। इसकारणसे जो विचार मैंने कियाहै उसमें आप बाधा न दीजिये ॥ १० ॥ हे हृदयवल्लभ ! मैं मनुष्योंसे शून्य अनेक प्रकारके मृगोंसे भरे हुये व्याघ्र सिंहादि करके सेवित निबिड वनमें तुम्हारे साथ चलूंगी ॥ ११ ॥ मैं त्रिलोकीके सुख संपत्तिकी कामना न करके केवल पतिव्रता धर्मकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करती हुई पिताके घरमें जिस प्रकार सुखसे थी वैसेही अब प्रसन्नता समेत तुम्हारे साथ वनको चलूंगी ॥ १२ ॥ जहां मधुर २ सुगन्धि विराजमानहैं और जहां अनेक प्रकारके जन्तुओंके रहनेका स्थानहै उसी वनमें तपस्वियोंका व्रत ग्रहण करके तुम्हारी सेवा करती रहूंगी यही मेरी वासना है ॥ १३ ॥ हे प्राणनाथ ! जब कि असंख्य पुरुषोंके पालन पोषण का भार आप ले सक्तेहैं, तब क्या वनके बीच एक मुझे पालन करनेमें आप समर्थ नहीं होंगे ? ॥ १४ ॥ हे नाथ ! मैं इसी कारणसे आज निश्चयही तुम्हारे संग वनको चलूंगी; हे महाभाग ! आप किसी प्रकारसेभी मेरे इस उत्साहको नहीं तोड सक्तेहैं ॥ १५ ॥ मैं तुम्हारे साथ फल, मूल भोजन कर नित्यही समय बिताऊंगी इसमें कोई संशय नहीहै ॥ मैं भोजन पानादिके लिये आपको कुछ दुःख न दूंगी जो मिलेगा सो भोजन करलूंगी ॥ १६ ॥ और क्या कहूं मैं तुम्हारे आगे २ चलूंगी, और तुम जब भोजन कर चुकोगे तब मैं भोजन करूंगी । तुम्हारे साथ रहकर पहाड, छोटे २ सरोवर, बडे २ ताल ॥ १७ ॥ सबही निडर मनसे हे बुद्धिमान्! मैं साथ देखूंगी । फिर हंस, कलहंसादि, पक्षी बैठे हुये तडागोंमें प्रफुल्लित कमलिनी भी जो खिली हुईहो उनको ॥ १८ ॥ सुख पूर्वक आप वीरके संग देखनेकी इच्छा करतीहूं । वहां जो जो नदी आदि पुण्य तीर्थ मिलेंगे उन सबमें आपके संग स्नान करनेकी मेरी बडीही इच्छाहै ॥ १९ ॥ हे कमललोचन ! तुम्हारे साथ ऐसे स्थानोंमें रमण करती हुई सैकडों व हजारों वर्षभी वनमें वास करना मेरे लिये अच्छाहै ॥ २० ॥ परन्तु तुम्हारे विना स्वर्गके सुख भोग करनेकीभी मेरी इच्छा नहींहै । हे नरव्याघ्र ! विना तुम्हारे जो स्वर्गमेंभी मेरा वास हो तोभी मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ २१ ॥

में बन्दर हाथीसे शोभायमान वनमें तुम्हारे चरणोंकी सेवा करके तुम्हारे साथ रहनेकी वासना करती हूं, महाराज ! अधिक क्या कहूं इस प्रकारसे आपके साथ रहने पर मुझे मेरे पिताजीके भवन समान सुख मिलैगा ॥ २२ ॥ हे नाथ ! मैं तुम्हारे आधीनमें मन रखकर तुम्हारेही पर अनुरक्त रहकर सतत विताती हूं यदि इस अवस्थामें तुम मुझे छोडकर चले जाओगे तो हे प्राणेश्वर ! मैं अपने प्राणोंको नहीं रक्खूंगी । आर्यपुत्र ! मेरे साथ लेचलनेमें तुम्हें कुछ बोझ नहीं मालूम होगा इस कारण मुझे लेचलो ॥ २३ ॥ नरोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजी धर्मवत्सला सीताजीके यह वचन श्रवण करके उनको वनमें संग ले जानेमें राजी नहीं हुए और वनवासके दुःख स्मरण करके जिससे कि श्रीजानकीजी वनको न जांय ऐसे वचन कहने लगे ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

: सर्गः २८.

धर्मवत्सल धर्मज्ञ रामचन्द्रजी धर्मपरायण जानकीजीको ऐसा कहते हुये देख वनवासके क्लेश विचार उनको साथ लेजानेमें अप्रसन्न हुए ॥ १ ॥ तदनन्तर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी रोती हुई जनकनन्दिनीको समझाने लगे कि, जिससे यह वनको न जांय और बोले ॥ २ ॥ हे सीते ! तुमने बडे कुलमें जन्म ग्रहण किया है, तुम अतिशय धर्मकी जाननेवाली और धर्म करनेवाली हो । मैं तुम्हें समझाता हूं कि तुम यहां रहकर मेरी बाट जोहती हुई धर्म करती रहो, मैं ऐसा करनेसे बहुत सुखी हूंगा ॥ ॥ ३ ॥ हे अबले ! मैं तुम्हें जो उपदेशदेता हूं तुम उसहीके अनुसार कार्य करती रहो, वनवासमें बहुत दोषहैं उनमेंसे कुछेक कहताहूं सुनो ॥ ४ ॥ अतएव तुम वनजानेकी वासनाको त्याग करदो वनके जानेमें बहुत दोषहैं, और वन दोषोंकी खानि है इसीसे इसका वन नाम है ॥ ५ ॥ मैं तुम्हारे हितहीके लिये यह वचन कहताहूं कि, वनके जानेसे दुःखही होतेहैं ! वनमें सुखका लेशमात्रभी नहीं पाया जाता ॥ ६ ॥ क्योंकि पर्वतोंसे स्थान २ पर बडी २ नदियां बहती हैं जिनका पार होना कठिनहै और गिरिगुहाके रहनेवाले सिंह व्याघ्रादिका भयंकर [illegible]जन वहां सुनाई आता है, जोकि बहुतही क्लेशका देनेवाला होताहै ॥ ७ ॥ व[illegible] दमन करनेके अयोग्य हिंसक जन्तु वहां निश्शंक होकर घूमा करते हैं, [illegible] आदमीको देखतेही खानेके लिये

प्रस्तुत होजाते हैं अतएव वनमें तो महाकष्टही कष्ट होते हैं ॥ ८ ॥ सब नदियोंमें मकर और घडियालादि भरे होतेहैं और उन नदियोंमें अँदनभी होती है महा बलवान हाथी भी जो उस अँदनमें फँस जाय तो चिंघाड मार २ कर मर जाय बडे २ मतवाले हाथी वनमें घूमते हैं अतएव यह स्थान घोर क्लेशदायक होतेहैं ॥ ९ ॥ अधिक करके तो वनके रस्ते बैल पत्ते और कांटोंसे ढके रहते हैं इन मार्गोंमें कभी कुक्कुट आदिकोंका शब्द हुआ करताहै । इन स्थानोंपर पीनेको पानी भी नहीं मिला करताहै इससे जान लो कि, वनमें बडा दुःख है ॥ १० ॥ फिर अपने आप पेड परसे गिरे सूखे पत्ते जो पडे होते हैं उनहीको बिछाकर उनपर शयन करना पडता है, और कहीं २ यह पत्ते भी नहीं मिलते तो वहा खुरेरी पृथ्वीपरही सोना पडताहै सारे दिवस चलनेसे रात्रिको थकावट आजानेसे ऊँचे नीचेका ध्यान नहीं रहता, बस जहां स्थान मिला वहीं सोरहे अतएव वन दुःखकाही देनेवालाहै॥ ११॥ और पेडसे स्वयंही गिर पडे हुये फल खानेको थोडे बहुत मिलतेहैं रात दिन नियमित हो उन्हींपर आधार रखके मनको सन्तोष देना पडताहै इससे हे सीते ! वन दुःखदाईहै ॥ १२ ॥ बरन सदा फलभी नहीं मिलते कभी २ कडाकाभी होजाया करताहै, इसके सिवाय जटायें रखानी पडैंगी, वृक्षोंकी छालोंके वस्त्र पहरने पडैंगे ॥ १३ ॥ देवता पितर और आये हुये पाहुनोंकी पूजा प्रतिदिन विधिपूर्वक करनी पडैगी ॥ १४ ॥ फिर जो लोग कि दिनसे नियमसे रहतेहैं, उन्हें चाहै गरमी, बरसात, जाडा कुछभी हो तीन वार स्नान करना पडताहै बस इन बातोंके होनेसे वन महादुःखदायकहै ॥ १५ ॥ फिरजो कि वानप्रस्थके अवलंबन करने वाले होतेहैं उनको अपने हाथसे फूल तोडकर श्रेष्ठ विधिसे वेदीकी पूजा करनी होती है यह नहीं कि किसी दासी दाससे तुडवा लिये । हे प्रिया! इससे वन दुःखदाई हैं ॥ १६ ॥ फिर जितना भोजन पान इत्यादि मिल जायगा उतनेहीसे निर्वाह करना होगा क्योंकि वनवासियोंको मनमाना भोजनभी नहीं मिलता इससे वन महादुःखदाई है ॥ १७ ॥ हवा दिन रात वहां आंधीसी चलती रहतीहै, और भूंखभी वहां नित्य बहुतही लगतीहै, और अधिक क्या कहूं भयके सबही कारण वहां वर्त्तमान रहतेहैं इससे वन दुःखका देनेवालाहै ॥ १८ ॥ हे भामिनी ! वहां अनेक प्रकारके रूपवाले कीड़ा वीछू आदि जन्तु गर्वसहित घूमा करतेहैं इससे वन अति दुःखदाई है ॥ १९ ॥ व वहांकी नदियोंमें सोतेके पानीकी समान टेढी चाल वाले साप

वनका रस्ता रोके पडे रहतेहैं बस इन कारणोंसे वनमें महाकष्ट हैं ॥ २० ॥ और अधिक क्या कहूं वहां पतङ्ग, बीछू, कीडे, मकोडे, डांस, मच्छर, सब सदा बहुतही व्याधि देनेवालेहैं अतएव वनसे अधिक कष्ट देनेवाला स्थान और कहांहै ? ॥ २१ ॥ वहांके वृक्ष बहुत करके कांटेही वाले होतेहैं, और वहां सबही जगह, कुश और काशसे ढकी रहतीहैं । जिन कुशोंके लगतेही हाथ पांव चिरजातेहैं इसकारण वन-दुःखदाईहै ॥ २२ ॥ इसके सिवाय शरीरको विविध भांतिके दुःखही वहां होते रहतेहैं अनेक भय होतेहैं बस इसी कारण कहताहूं कि, वनवास अतिही कष्टदायक होताहै वहां रहनेसे सुख नहीं ॥ २३ ॥ वनमें रहकर क्रोध लोभको एक वारगी त्याग करना पडता है और नित्य प्रति तपस्यामें मन लगाना होताहै, कहांपर कोई भयका कारण हो तोभी निर्भय समय व्यतीत करना पडताहै । इससे वनमें सदा दुःख-हीहै ॥ २४ ॥ मैं इनही सब कारणोंको देख भालकर तुम्हें वनको साथ नहीं लेजाया चाहता, वनवास करना तुमको मंगलदायक न होगा मैं बहुतही विचार करके तुम्हें समझाताहूं कि वनवास करना तुम्हें नही सजेगा और वह तुम्हें बडा क्लेश देनेवाला होगा ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजीको वन संबन्धी इस प्रकारकी क्लेशदायक वार्त्ता कहने-पर और वनके चलनेमें महात्मा रामकी सम्मति न देखकर सीताजीने उसपर कुछभी ध्यान न दिया और दुःखित मनसे कमललोचन रामचन्द्रजीसे कहने लगीं ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः २९.

रामचन्द्रजीके इस प्रकार वचन सुनकर अन्तःकरणसे रोतीहुई मृदु मन्द स्वरसे श्रीजानकीजी बोलीं ॥ १ ॥ हे आर्यपुत्र ! तुमने वनवासके जो समस्त दुःख सुनाये इन सबको तुम्हारे स्नेहके आधीन होनेसे मैं गुणकी समान समझतीहूं ॥ २ ॥ वनमें मृग, सिंह, हाथी, शार्दूल, शरभ चमरवाली गाय नीलगाय आदि जीवहैं और भी अनेक वनचारी जीव हैं ॥ ३ ॥ उन सबने आपका यह रूप कभी देखा नहीं है, वह इस रूपको देखतेही डरकर भाग जांयगे क्योंकि आपसे तो कालभी भय खाता है ॥ ४ ॥ मैं अपने गुरुजनोंकी आज्ञासे आपके पीछे २ चलूंगी, क्योंकि विवाहके समय हमारे पिताजीने यही कहके हमें आपको दियाहै कि, यह हमारी पुत्री जानकी तुम्हारे पश्चात् २ परछाईके समान चलेगी फिर मैं यहा कैसे रह सकतीहूं । हे

नाथ ! तुम यहभी जान रक्खो कि, तुम्हारे विरहमें प्राण धारण नहीं कर सकती हूं ॥ ५ ॥ हे नाथ ! तुम्हारे समीप बैठीहुई मेरा देवता और ईश्वर इन्द्रभी कुछ नहीं कर सकते फिर औरोंकी बात क्या चलाई ? ॥ ६ ॥ हे प्राणपति ! तुमने हमको उपदेशही ऐसे दिये हैं कि पतिके बिना पतिव्रता स्त्री जीवन धारण नहीं कर सकती फिर मैं आपके बिना किस प्रकार जी सकताहूं ॥ ७ ॥ हे महाप्राज्ञ ! जब मैं पिताके घर रहाकरतीथी तभी मैंने ज्योतिषियोंके मुखसे सुनाथा कि, मेरे भाग्यमें वनवास लिखा है फिर जो बात कर्ममें लिखी है उसके लिये क्या शोच ? ॥ ८ ॥ सामुद्रिकके लक्षणोंके जाननेवाले पुरुषोंने जो कहाथा अब उसका समय आ पहुँचाहै मैं बहुत दिनोंसे उत्साहित थी कब वनको जाना होगा सो बात अब पूरी हुई ॥ ९ ॥ मेरे भाग्यमें अब उन्हीं ब्राह्मणोंके आदेशका समय आया है अतएव मैं तुम्हारे साथ वनको चलूंगी आप इस विषयमें कुछ बाधा मत दीजिये * ॥ १० ॥ हे स्वामिन् ! मैं आपके साथ अवश्य चलूंगी अब वह समयभी आ पहुंचाहै, जोहो आप मुझे वनको संगले चलनेकी अनुमति देकर ब्राह्मणोंके वचनोंको सत्य कीजिये ॥ ११ ॥ वनवासमें बहुत सारे क्लेशहैं यह बात क्या मैं नहीं जानती हूं मैं जानती हूं कि, जो पुरुष इन्द्रियोंको जीते नहीं होते हैं उन्हेंही स्त्रियोंके साथ वनमें सदा क्लेश भोगना पडता है; न कि, आप सरीखे पुरुषोंको ॥ १२ ॥ जब मैं अपने पिताके घर रहा करती थी और छोटीसीथी तब मुझे याद है कि, एक साधुशीला तपस्विनीने आकर मेरी मातासे कहाथा कि, जानकी वनको जायगी ॥ ॥ १३ ॥ हे प्रभो ! मैंने वारंवार आपसे कहाथा कि, वनविहार करनेको चलिये सो अबतक अभिलाष पूरानही हुआ था, सो अब वह अवसर आया है. अतएव मेरी प्रार्थनाको मानकर मुझे संग ले चलिये ॥ १४ ॥ हे राघव ! आपका मंगलहो, मैं तुम्हारी आज्ञा देनेकी बाट जोहरहीहूं, वनमें हे महावीर ! तुम्हारी सेवा करनेसे मेरी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रहेगी ॥ १५ ॥ हे शुद्धात्मन् ! पतिही स्त्रियोंका सबसे बडा देवताहै यदि मैं प्रेमभावसे आपके साथ चलसकूं तो मेरा मन और शरीर पवित्र होजायगा ॥ १६ ॥ इस लोककी तो वार्त्ता अलगहै तुम्हारा पारलौकिक

* रागिनी कलिंगडा ताल तीन--(रामचन्द्रजी जानकीजीसे) वन मत चलो हमारे साथ ॥आस्ताई॥ वनके दुःख न जाँय सहये, तुमरे तो अति कोमल गात। वन फल खाने पडे संगमें ओढनको वृक्षके पान॥ मानो कहा रहो गृह प्यारी, नारदमुनि कहै नीकी बात ॥

समागमभी मेरे सुखका कारण होगा यह वार्त्ता मैंने यशस्वी पवित्र ब्राह्मणोंके मुखसे सुनीहै ॥ १७ ॥ हे महाबली! जिस स्त्रीको दान धर्मके अनुसार कुश जल हाथमेंले मातापिता जिस वरको देते हैं वह स्त्री परलोकमेंभी उसही वरकी होतीहै ॥ १८ ॥ अतएव जो स्त्री पतिव्रता और सुशील है उस आत्मवत् मुझ स्त्रीको आप क्यों नहीं वनमें संगले चलते?॥ १९॥मैं तुम्हारे सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखीहूं और तुम्हारे ऊपर अनुरागिणीहूं. पतिव्रताहूं तुम्हारी सेवकनीहूं सुखदुःखमें समान चित्तहूं अतएव यह प्रार्थना करतीहूं कि, मुझ पतिव्रता स्त्रीको संगले चलिये ॥ २० ॥ अधिक क्या कहूं यदि इतनेपरभी तुम इस दुःखिनी स्त्रीको संग न ले चलोगे तो निश्चयही मैं विष पान करके,या अग्निमें जलकर अथवा जलमें डूबकर प्राणत्यागन करदूंगी ॥ २१ ॥ इस प्रकार सीताजीने रामचन्द्रजीसे वारंवार वनको संग चलनेकी प्रार्थना की परन्तु रघुनाथजी किसीभांति उन्हें साथ ले चलनेको राजी नहीं हुये ॥ २२ ॥ तब श्रीजानकी श्रीरामचन्द्रजीको अपने वनको साथ लेजानेमें असम्मत देखकर अतिशय दुःखित और चिन्तित हुईं और महाविलाप करनेलगी उनकी आंखोंसे निकली हुई आसुओंकी धारा पृथ्वीको भिगोने लगी ❀ ॥ २३ ॥ रामचंद्रजी उनको चिन्ता किये और क्रोध किये देख, जिस प्रकार वह वनको न जाँय, इसभांति जानकी जीको बहुत समझाने बुझानेलगे ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां एकोनत्रिंशः सर्गः॥२९॥

त्रिंशः सर्गः ३०.

जब रामचन्द्रजीने अनेक प्रकारसे जानकीजीको समझाया बुझाया तो वनमें जानेहीके लिये फिर पतिसे बोली ॥१॥ बोलनेके पहले यह विचारा कि, चौडी छातीवाले हमारे राजकुमार निश्चयही मुझे छोडाचाहतेहैं, इस कारण स्नेहके कारण कुछ एक क्रोधभी किया और भयभी बहुत माना पीछे आक्षेपके वह वाक्य कि जिससे प्राणनाथ वनको संग ले चलें बोलीं॥२॥जानकीजीने कहा कि, यदि हमारे पिता मिथिलाधिपति जनकजी यह जानते कि आकार मात्रमें तुम नाम मात्रके पुरुष और व्यवहारमें स्त्री

❀ और बोलीं॥दोहा–राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान॥दीनबन्धु सुन्दर सुखद, शील सनेह निधान ॥ १ ॥ प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान॥तुम बिन रघुकुल कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान ॥ चौपाई ॥ असकहि सीय विकल भइ भारी । वचन वियोग न सकी संभारी ॥

हो तो कभी तुम्हारे साथ मेरा विवाह नहीं करते न ऐसे पुरुषको अपना जामाता बनाते ॥ ३ ॥ सब संसार जो कहा करताहै कि आपका तेज तपते सूर्यके तेजसेभी अधिक प्रबलहै, यह वार्त्ता इस समय कुछ मिथ्यासी ज्ञात होतीहै, क्योंकि ऐसा यदि न होता, तो आप अवश्यही मुझे वनको संग ले चलते ॥ ४ ॥ मैं तुमसे यह पूछ-तीहूं तुम्हारी उदासी या भयका क्या कारणहै ? और फिर किस कारण दूसरेकी शरण न रहने वाली पतिव्रता स्त्रीको परित्यागकर आप वन जानेको तैयारहैं॥५॥जैसे द्युमत्सेनके पुत्र सत्यवान्‌के संग उनकी पतिव्रता स्त्री सावित्री वनको गईथी वैसेही मुझको आप पतिव्रता समझिये और संग ले चलिये और इसी प्रकार मैं आपके संग चलूंगी ॥६॥हे राघव!मैंने कभी मनसेभी तुम्हारे सिवाय दूसरे पुरुषको नहीं देखा जैसे कि, कुल कलंकिनी स्त्री परपुरुषोंको देखा करतीहै हे राम!इसीकारण मैं तो आपके साथही चलूंगी ॥ ७ ॥ देखिये कुमार अवस्थामेंही मेरा विवाह आपके संग हुआ और मुझे तुम्हारे गृहमे रहते भी बहुत दिन होगयेहैं, परन्तु आप ऐसे सामर्थ्यवान हैं कि जो पुरुष अपनी भार्या दूसरे पुरुषोंके पास भेज जीविका करते हैं अब आपभी उन्हीं लोगोंकी समान मुझे दूसरोंके हाथमें सौंपा चाहते हो यह करना क्या आपको उचित है ? ॥ ८ ॥ हेप्रभो ! पापरहित तुम नित्य जिनका हित चाहते रहते हो, और जिनके कारण आपको राज्यभी नहीं मिलसका, तुमही उनके सेवक अथवा वशव-र्त्तीहो, परंतु हमको तो किसी प्रकारसे आप उनके वशमें नहीं कर सक्ते हैं ॥ ९ ॥ आश्चर्यहै कि मैं तो वारंवार तुम्हारे संग वन चलनेको कहरहीहूं परन्तु आप इस बात पर कुछ ध्यान न धरकर मुझे छोड़ वन जानेको तैयार हुये हैं ? अधिक तो मैं क्या कहूं तपस्या करना वनमें रहना, या स्वर्गमें रहना जो कुछहो सब तम्हारे साथही हो ॥ १० ॥ वनमें तुम्हारे पीछे २ चलनेसे हमको कुछभी क्लेश न मालूम पडैगा, बरन् आपके संग चलनेसे ऐसा ज्ञात होगा कि मानो विहारकी सेजही पर बैठीहूं ॥ ११ ॥ वनके मार्गमें कुश, काश, शर, मूंज इत्यादिक जोकटीले पेड हैं तुम्हारे साथ वनको जानेसे वह मुझे रुई और मृगछालाकी समान नरम विदितहों-गे ॥ १२ ॥ हे रमण ! महा पवन करके उड़ीहुई जो धूल मेरे शरीर पर आकर गिरेगी सो आपके संग रहनेसे वहभी मुझको अति उत्तम चंदनकी नाईं ज्ञात होगी ॥ १३ ॥ मैं जब आपके संग वनमें हरी घासके बिछौने पर सोऊंगी तब पलंगके ऊपर अनेक प्रकारके चित्र विचित्र नरम वस्त्रोंके ऊपर शयन करनेके सुखसे क्या

वह सुख किसीप्रकार कम होगा ? कभी नहीं! ॥ १४ ॥ तुम अपने हाथसे लाकर जो सब कंद, मूल, फल थोडे या बहुत मुझको दोगे मुझको तो वही सब कंद मूल फल अमृत का समान जान पडेंगे ॥ १५ ॥ महाराज मैं आपके संग रहकर अपने पिता माता तकको भी स्मरण न करूंगी और न कभी गृहकी याद करूंगी मैं वहां सदाही वसन्तादि छैः ऋतुओंके फूल फल सूंघ और भोजन करके सुखी हूंगी ॥ १६ ॥ मेरे कारण वनमें आपको कुछ क्लेश न होगा, न कुछ शोचही होगा; इससे आपको यह न विचारना पडेगा कि इनको वनमें ले तो आये परन्तु अब किस प्रकार पालन पोषण करें ॥ १७ ॥ यह आप भलीभांति समझलें कि यदि आपके संग रहना हो तो सब जगह स्वर्गहै और आपके विना सब जगह नरक है बस आप यही सोच विचार कर प्रीति समेत मुझे वनको साथ ले चलिये ॥ १८ ॥ बहुत क्या कहूं यदि किसी प्रकारसेभी आप मुझको अपने साथ न लेजांय, तो आज ही विष पान करके मर जाना तो स्वीकार है परन्तु विपक्ष भरतके पक्षमें रहना मुझको अच्छा नहीं लगता और न मैं यहां रहूंगी ॥ १९ ॥ हे प्राणजीवन! जो आप मुझे यहां छोडकर चले जांयगे तो परिशेषमें आपके बिना हमारा मरणही होगा इस कारणसे इसी समय आपके सामनेही प्राणत्याग करना अच्छा है ॥ २० ॥ प्रीतम ! चौदह वर्षकी बातको तो एक ओर धर दीजिये मैं तो आपके वियोगमें एक मुहूर्त भर तकभी प्राण नहीं रख सकतीहूं ॥ २१ ॥ जानकीजी इस प्रकार शोकसे संतापितहो वारंवार विलाप और परिताप करने लगीं और प्राणवल्लभ रामचन्द्रजीको दृढतर लपटाय बडे ऊंचे स्वरसे रुदन करने लगीं ॥ २२ ॥ वह रामचन्द्रजीके वन न ले जानेवाले वचनोंसे इस भांति तडफडाई जैसे जहरके बुझे हुये बाण लगनेसे हथिनी मर्महतहो तडफडाती है जिस प्रकार अरिणी काष्ठ (एक लकडी जिससे आग निकल आती है) मे आग निकलती है वैसेही जानकीजीके नयन युगलसे अश्रुधारा निकलने लगी ॥ २३ ॥ जिस प्रकार कि, कमलसे पानीकी बून्द चुवें, वैसेही जानकीजीके नेत्रोंसे स्फटिक मणिके समान सफेद रंगके समान संतापके आंसू गिरनेलगे ॥ २४ ॥ उस समय प्रबल शोककी आगसे सीताजीका पूर्णमासीके चन्द्रमाकी समान द्युतिवाला मुखमंडल जल सूखजानेपर मुरझाये हुये कमलकी समान होगया ॥ २५ ॥ तब रामचन्द्रजी जानकीको मूर्च्छित हुईसी व बहुतही शोकसे व्याकल देखकर हृदयसे लगाय, समझाते बुझाते हुये उनसे बोले

॥ २६ ॥ हे देवि ! तुमको कष्ट देकर प्राप्त हुये स्वर्गकीभी हम चाह नहीं करते और तुमने यह जो कहा कि, तुम डरके मोहसे संग नहीं ले चलते तो याद रक्खो कि स्वयंभू ब्रह्माजीकी समान हमको किसी जगहभी डरकी संभावना नहीं है ॥ ॥ २७ ॥ तुमने जो कहा कि, हजारोंको पालते हो तो क्या मुझे वनमें नहीं रक्षा कर सकोगे सो मैं सब भांति तुम्हारी रक्षा कर सकताहूं परन्तु अबतक तुम्हारे मनकी इच्छा नहीं जानी थी इस कारण तुम्हें साथ ले चलनेको सम्मति नहीं दीथी ॥ २८ ॥ हे मैथिलि ! जब कि मेरे साथ जायाही चाहती हो वा वन जानेकोही निश्चित हुई हो तो जिस प्रकार आत्मतत्त्वके जाननेवाले पुरुष कभी दयाको नहीं छोडते वैसेही मैं तुमको किसी प्रकार नहीं त्यागकर सकता न ले चलनेसे मेरा यह प्रयोजन नहीं था कि, मैं तुमको त्यागदूं॥ २९ ॥ प्राचीन कालसे सदाचारमें रत रहनेवाले अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर वानप्रस्थ धर्ममें तत्परहो वनको चले गये थे मैं भी अब वैसाही करूंगा अर्थात् तुम्हें वनको ले चलूंगा जिसप्रकार सूर्य भगवान्‌की स्त्री सुवर्चला उनके पीछे२चलतीहै वैसेही तुम मेरे साथ चलो ॥ ३० ॥ हे जनकनंदिनी ! मैं कुछ अपने आप वनको नहीं जाता किन्तु पिताजी जो सत्यके वचनसे बंध गये हैं मैं इसही कारण वनको जाता हूं ॥ ३१ ॥ हे सुन्दरि ! पिता माताके वशमें रहनाही पुत्रका प्रधान धर्म है उनकी आज्ञा उल्लं- घनकर जीवन धारण करना अच्छा नहीं समझता ॥ ३२॥ जो यह कहो कि, दैवके ऊपर भरोसा रख यहीं रहो और पिताका वचन न मानो इससे कुछभी न होगा सो नहीं हो सकता क्योंकि दैव अदृश्य पदार्थ है साधन करनेसे यद्यपि दैवके विषयमें संतोष होजाता है तथापि माता पिता प्रत्यक्ष देवता हैं अतएव उनको उल्लंघन करके दैवके ऊपर बैठे रहनेकी मेरी इच्छा नहीं है ॥ ३३॥ जिन माता पिता गुरुकी पूजा कर- नेसे धर्म, अर्थ, कामकी प्राप्ति होजातीहै, और इन तीनोंकी सेवा करनेसे मानो त्रिलो- कीकी पूजा सिद्ध हो जातीहै, फिर भला संसारमें माता पिता गुरुकी आज्ञा व पूजा करनेके समान औरभी कोई धर्महै ? अर्थात् नहीं है इसी कारण मैं वनको जाताहूं ॥३४॥ विचारकर देखनेसे जाना जाताहै कि, पिताकी सेवा करनेसे जो फल परलो- कमें प्राप्त होताहै, वह फल सत्य बोलने, दानमान करने, बहुत दक्षिणा सहित यज्ञ करनेमें नहीं मिल सकता ॥ ३५ ॥ जो कोई पिता, माता, गुरुकी आज्ञानुसार चलताहै उसको स्वर्ग प्राप्ति, धन, धान्य, विद्या, पुत्र और सुख यह सब वस्तु कुछ

दुर्लभ नहीं है ॥ ३६ ॥ जो महात्मा लोग पिता माता गुरुकी भक्ति करतेहैं उन सब महात्माओंको गन्धर्व लोक, देवलोक ब्रह्मलोक तथा गोलोकतक प्राप्त हो जाताहै ॥ ३७ ॥ सत्य धर्ममें स्थिर होकर पिताजीने मुझे जो आज्ञा दीहै, मैं प्राण पनसे उसको पालन करूंगा क्योंकि यही मेरा मुख्य धर्महै ॥ ३८ ॥ हे जानकि! पहिले तो तुम्हें अपने साथ वनको ले जानेकी मेरी इच्छा नहींथी,परन्तु अब तुम्हारी दृढता देखकर जानेमें बाधा न दे वनके ले चलनेको सम्मत हुआहूं ॥ ३९ ॥ इससे अब मेरी यह आज्ञाहै कि, मेरे साथ वनको चलो हे सुन्दरी ! और जैसा मेरा धर्महै उसके अनुष्ठान करनेमें तुमभी तत्पर हो जाओ ॥ ४० ॥ हे जनकनन्दिनि ! तुमने जो वनमें मेरे साथ रहना विचाराहै यह बात बहुतही अच्छीहै, और हमारे वंशमें जो बात होती आईहै उसके अनुसारहीहै ॥ ४१ ॥ अब मैं तुमसे कहताहूं कि, तुम अब वन चलनेकी तैयारी करो और दानादि देनेका अनुष्ठानं करो. हे प्रियतमे ! तुम्हारा संग छोडकर स्वर्गमें बसनाभी मुझे नहीं भाताहै ॥४२॥ अब इस समय तुम मागनेवाले ब्राह्मणोंको रत्न आदि और भूखे भिखारियोंको उनके योग्य शीघ्र भोजनदो देर मत करो ॥ ४३ ॥ तुम्हारे बहुमोलके भूषण और अनेक प्रकारके श्रेष्ठ वस्त्र और जो कुछ हमारे तुम्हारे खेलनेकी चीजेंहैं वह सब इस समय याचकोंको दे डालो ॥ ४४ ॥ मेरे और अपने शयन करनेके पदार्थ बिछाने ओढने आदिक और विमान सवारियें इत्यादिक सब विप्रोंको देदो और उनसे बचे कुचे नौकर चाकरोंको बाँटदो ॥ ४५ ॥ उस समय श्रीजानकीजी यह जानकर कि, प्राणपति मुझे वन ले चलने में सम्मतहैं बहुत हर्षितहो सब भूषण वसन इत्यादि दान करने लगीं ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०अयोध्याकांडे भाषायां त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१.

जिस समय सीताजीके साथ रामचंद्रजीकी यह वार्त्ता हो रहीथी तो उस समय लक्ष्मणजी पहलेही वहां पहुँच गयेथे और दोनोंकी यह सब वार्त्ता इन्होंने सुनी और श्रवण करतेही इनकी आंखोंमें टप टप आंसू गिरनेलगे तब लक्ष्मणजीने बहुतही कष्टसे शोकके वेगको रोका ॥ १ ॥ वह उस समय भ्राताके चरणोंमें प्रणामकर और बडी दृढतासे चरण पकड़ यशस्विनी जनकदुलारी और महा-

व्रत बडे भाई रामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ २ ॥ * यदि मृग और हाथियोंके विचरण करनेवाले वनमें आपने जाना निश्चय करही लिया है तो मैं भी धनुष धारण करके आपके साथ २ चलूंगा ॥ ३ ॥ जहां पतंग और मृगयूथ मधुर स्वरसे अनेक प्रकारके शब्द करते हैं आप उसी रमणीक वनमें मेरे साथ विच-रण कीजिये ॥ ४ ॥ मैं आपको छोड करके न देवलोककी चाहना रखताहूं न धन सम्पत्तिकी, न अमरत्व अच्छा लगता है, वरन् आपके विना मैं लोकोंका ऐश्वर्य व किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता ॥ ५ ॥ तब रामचन्द्रजीने लक्ष्मणके यह वचन कहनेपर और उन्हें वन जानेको तैयार देख बहुत तरहसे समझाया और वन चलनेको मने किया तब फिर लक्ष्मणजी बोले ॥ ६ ॥ भाई ! तुमने प्रथम इन्हें चलनेकी आज्ञा देदी थी अब क्यों उसका निवारण करतेहो ॥ ७ ॥ जिस कारण कि, मुझे वन जानेसे रोकतेहो हे पापरहित वह मैं जानना चाहताहू । मुझे बडा सन्देह है कि, तुम अब मुझे क्यों रोकतेहो ॥ ८ ॥ तब वन जानेको तैयार, धीरभावापन्न हाथ जोडे खडेहुये लक्ष्मणजीको महातेजस्वी रामचन्द्रजीने रोका और समझाने बुझाने लगे ॥ ९ ॥ कि हे वत्स ! तुम धार्मिकहो, धीरजधरनेवाले हो, अच्छे मार्गपर चलनेवालेहो, और मुझे अपने प्राणोंकी समान प्यारे हो, मेरे वंशमें हो और मेरे सखाहो ॥ १० ॥ हे सौमित्रे ! तुम भी यदि आज हमारे साथ वनको चलोगे तब फिर यशस्विनी जननी कौसल्या व सुमित्राजीके प्रतिपालन करनेका भार कौन अपने शिर लेगा ॥ ११ ॥ जैसे कि, पृथ्वीसे भाफ निकलती है, उससे मेघ बनते हैं, फिर उसी पृथ्वीपर वह वर्षा करते हैं, वैसेही महा तेजवान् नरनाथ कामके दास वशहो कैकेयीके ऊपर आसक्त हुए हैं इस कारण जो कैकेयी कहेगी पिताजी वही करैंगे फिर हमारी माताओंकी कामना कैसे पूर्णहोगी ? अर्थात् इनकी कौन सुध लेगा ॥ १२ ॥ केकयराजनन्दिनी कैकेयी यह राज्य जब पालेगी तब महा दुःखित कौशल्यादि सपत्नियोंके साथ बुराईके अति-रिक्त भलाई न करैगी । और हमारी माताओंको महाक्लेश मिलेगा ॥ १३ ॥ जब भरत राज्य पालेंगे तब वह निश्चयही अपनी माता कैकयीके वश हो जननी कौशल्या व सुमित्राको सम्पूर्ण रूपसे भूल जांयगे । भला फिर इन बिचारियोंकी कौन खबर लेगा ? ॥ १४ ॥ हे भइया ! तुमसे इसी कारणसे कहता हूं कि, तुम

* चौपाई–अति दुःखित हो लषण अधीरा । गहे चरण दोऊ रघवीरा ॥

स्वयं या राजाके अनुग्रहसे. जिस प्रकारसे भी हो यहां रहकर माताओंका भरण पोषण करो, हे भाई ! यह मेरा वचन तुमको पूरा करना उचित है ॥ १५ ॥ हे धर्मज्ञ ! इस प्रकारका कार्य करनेसे मेरे प्रति तुम्हारी परम भक्ति प्रकाशित होगी जान रक्खो कि, माता पिता गुरुजनोंकी सेवा करनेसे विशेष धर्म लाभ होता, है ॥ १६ ॥ हे वत्स ! तुम हमारे कहनेसे हमारी माताओंके लालन पालन करनेका भार ग्रहणकरो, यदि हम भी उनका कुछ ध्यान न कर उनको छोड वनको चले जांयगे तब फिर उनके दुःखकी सीमा नहीं रहैगी ॥ १७ ॥ वाक्यविशारद रामचंद्रजीने जब इसप्रकार मधुर वचन लक्ष्मणजीसे कहे तब चतुर लक्ष्मणजी विनीत भावसे रामचंद्रजीसे बोले ॥ १८ ॥ आर्य ! भरतजी आपके प्रतापसे प्रकम्पितहो सदाही माता कौशल्या और सुमित्राका प्रतिपालन करेंगे यह निश्चयहै इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहींहै ॥ १९ ॥ हेवीर ! यदि भरतजी यह राज्य पाकर खोटे रस्तेपर चलें यदि भरत खोटी मति करकै गर्वके वशीभूतहो कौशल्या व सुमित्रा माताकी रक्षा व सेवा न करैं ॥ २० ॥ तो मैं उस नीचाशय क्रूरका प्राण अवश्यही संहार करूंगा पिताजीकी तो क्या बात चाहै त्रिलोकी एकत्र होकर उनकी ओर खडीहोजाय तब भी मैं उन सबको मारडालनेमें किसी प्रकारकी कसर नहीं रक्खूंगा ॥ २१ ॥ जिन्होंने अनुगत नेगाचारियोंको असंख्य ग्राम दानकरके देदिये वही हमारी माता कौशल्याजी हम ऐसे हजारों मनुष्योंको विना परिश्रम पालन पोषण कर सकेंगी ॥ २२ ॥ ऐसी अवस्थामें आर्या कौशल्याजी अपने लिये और माता सुमित्राजीके पालन पोषण करनेके लिये असमर्थ होंगी यह नितान्तही अलीक वार्त्ताहै वह अवश्यही अपना और सुमित्राजीका पालन पोषण करनेमें समर्थहैं ॥ २३ ॥ अतएव यह प्रार्थनाहै कि, आप हमें अपने साथ वनको लेचलनेकी आज्ञा दीजिये, महाराज ! मेरे चलनेसे किसी प्रकारका अधर्म नहीं होगा बरन इससे मैं तो कृतार्थ होजाऊंगा और आपका हित होगा, हित यही होगा कि, आपको वनसे तोडकर पुष्प, कंद, मूल, फल लादिया करूंगा ॥ २४ ॥ वनके हिंसक जन्तुओंसे रक्षा करनेके लिये प्रत्यंचा चढाया हुआ धनुष हाथमें लिये, व फल पुष्पादि लेनेके वास्ते एक पिटारी और कुदाल लिये आपके आगे २ मार्ग दिखाता हुआ चलूंगा ॥ २५ ॥ मैं आपकेलिये प्रतिदिन तपस्वियोंके भोजन करनेके योग्य वनसे कंद, मूल, फल ले आया करूंगा ॥ २६ ॥ आप देवी जानकीजीके सहित पर्व-

नोंके कँगूरों पर वा कन्दराओंमें विहार करते रहैं आप जानें कि, मैं जागते सोते सब समयही सब प्रकार आपकी रक्षा करूंगा और सब कार्य आपके साधन करूंगा ॥ २७ ॥ रामचंद्रजी लक्ष्मणजीके इस प्रकार विनययुक्त वचन सुन अति प्रसन्नहो उनसे बोले कि हे भइया ! तुम माता सुमित्रा और सब सुहृद जनोंसे पूछ पांछ हमारे संग वनको चलो ॥ २८ ॥ महात्मा वरुणजीने राजर्षि जनकजीके यज्ञमें प्रसन्न होकर भयानक आकारवाले दो धनुष राजा जनकजीको दियेथे ॥ २९ ॥ व दो अभेद कवच, दो दिव्य तरकस, जिनमेंसे चाहै जितने बाण निकाल कर छोडे जाओ और वह कभी निवडेंही नहीं; और सूर्यकी प्रभाकी समान चमकते हुये सुवर्ण को लजानेवाले दो खड्ग ॥ ३० ॥ यह सर्व अस्त्र शस्त्रादि महाराजजनकजीने हमें दहेजमें दियेथे, व हमने आदरपूर्वक उनको ग्रहणकर गुरुजीके घर उन सबको रख दियाथा हे लक्ष्मण ! इस समय तुम उन सब अस्त्र शस्त्रोंको गुरुजीके घरसे लाकर जल्दी यहां चले आओ ॥ ३१ ॥ धनुषधारी लक्ष्मणजीने रामचंद्रजीकी आज्ञा शिरमाथे चढा वनजानेमें स्थिर मति होकर और जल्दीसे अपने सब सुहृदोंसे बिदालेली ❀ फिर गुरुजीके यहां जाकर प्रथम कहे सब दिव्यास्त्र लेकर रामचंद्रजीके निकट चले आये ॥ ३२ ॥ और राजसिंह रामचंद्रजीको दिव्यमाला शोभित चन्दन अक्षत आदि चढे हुये यह सब अद्भुत आयुध लक्ष्मणजीने दिखलाये ॥ ३३ ॥ रामचंद्रजीने उन सब अस्त्र शस्त्रोंको देख दाखकर लक्ष्मणजीसे प्रसन्न होकर कहाकि हे लक्ष्मण ! तुम भले समय पर आये ॥ ३४ ॥ हे परंतप ! मेरा जो कुछ धन रत्न आदिहै वह इस समय मैं तुम्हारे सहित ब्राह्मण और तपस्वियोंको दान करूंगा ॥ ३५ ॥ मेरे आश्रममें गुरुभक्तिपरायण अनेक ब्राह्मण रहतेहैं. उनको और सब नोकरों चाकरोंको धनदेना कर्तव्यहै ॥ ३६ ॥ तुम इस समय द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठपुत्र आर्य सुयज्ञको यहांपर ले आओ हम सब उनकी पूजा व द्विजाति गणोंका यथाविधि आदर सन्मान पूजा अर्चनाकर वनको चले जांयगे ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकाण्डे भाषायां एकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१ ॥

❀ उस समय सुमित्रा बोलीं॥चौ०--तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिताराम सब भांति सनेही ॥ जेहि न राम बन लहहिं कलेशू। सुत सोइ करहु इहै उपदेशू ॥ पुत्रवती युवती जग सोई। रघुवरभक्त जासु सुत होई ॥ जोपै सीय राम वन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥ जाहु सुखेन वनहिं बलिजाऊं। करि अनाथ जन परिजनगाऊं ॥ दोहा--भूरिभाग्य भाजन भयउ, मोहि समेत बलिजाउं ॥ जो तुम्हरे वन छांडि छल, कीन राम पद ठाऊं ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२.

तदनन्तर भ्राता रामचंद्रजीकी हित करनेवाली आज्ञासे लक्ष्मणजी शीघ्रतासे गुरुपुत्र सुयज्ञके आश्रममें गये ॥ १ ॥ वहां पहुँचकर देखा कि ऋषिश्रेष्ठ अग्निहोत्रके गृहमें बैठे पूजा कर रहेहैं तब लक्ष्मणजीने उन्हें प्रणामकर कहा कि हे सखे! भ्राता रामचन्द्र सब राज्याभिषेकको त्यागकर वनको जातेहैं सो उन्होंने आपको बुलायाहै आप शीघ्र चलिये देखिये तो सही वह कैसा दुष्कर्म कर रहेहैं ॥ २ ॥ अनन्तर ऋषिश्रेष्ठ सुयज्ञजी यथाविधि संध्यावन्दनादि समाप्त करके लक्ष्मणजीके साथ लक्ष्मीयुक्त रमणीय राम मन्दिरमें पहुँचे ॥ ३ ॥ सब वेद वेदान्तके जाननेवाले, जलती हुई अग्निके समान दिपते हुये सुयज्ञजीको आयेहुये देख जानकीजीके सहित जानकीनाथ हाथ जोड खडे होगये ॥ ४ ॥ और जो भूषण मणिजटित सुवर्णके बाजू, कुंडल, जंजीर मोतियोंकी माला, कंठा, कंकण आदि जो कुछ आप पहरे हुयेथे सब सुयज्ञजीको पहरा दिये ॥ ५ ॥ इनके सिवाय और भी बहुत रत्नादिक रामचंद्रजीने दिये, तब जानकीजीने रामचन्द्रजीसे कहा कि, आपने तो अपने भूषण सुयज्ञजीको देदिये, मैंभी इनकी स्त्रीको जो कि, मेरी सखीहै अपने भूषण दिया चाहतीहूं यह सुन रामचन्द्रजी सुयज्ञजीसे बोले हे सौम्य! तुम अपनी सहधर्मिणीके लिये यह हार यह माला लेते जाओ मेरे साथ वनको जानेवाली यह, तुम्हारी स्त्रीको देना चाहती हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ इनके अतिरिक्त यह चन्द्रहार, यह विचित्र बाजू, और बहुत अच्छे केयूर मेखला यह सब अपनी सखी तुम्हारी स्त्रीको देकर मेरे साथ वनको जाना चाहतीहै सो तुम इन सबको लेते जाओ ॥ ८ ॥ सोनेका पलँगभी जिसके पायोंमें व पटियोंमें बडे २ मोलके हीरे पन्ने आदि जडे हैं वह जिसके ऊपर बडी मोलकी तैयारीका बिछोना विछाहै यहभी जनककन्या आपको देतीहै. क्योंकि वैसे भूषण पहिरे आप दोनों इसी प्रकारकी सेजपर सुशोभित होंगे ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! हमें हमारे मामाने जो शत्रुञ्जय नामक हाथी दियाहै. वह तुमको मैं हजार निष्क दक्षिणा देकर दान करताहूं तुम उसको ग्रहण-करो ॥ १० ॥ इसप्रकार जब सुयज्ञजीसे कहागया तब उन ऋषिकुमारने सब धन रत्न ग्रहण करकै प्रसन्न अंतःकरणसे रामचन्द्र सीता व लक्ष्मण तीनों जनोंको आशीर्वाददिया. ॥ ११ ॥ अनन्तर प्रजापति ब्रह्माजीने जिसप्रकार इन्द्रसे कहाथा वैसेही श्रीरामचन्द्रजीने प्यारे बोलनेवाले आलस्यरहित प्यारे लक्ष्मणजीसे कहा॥ १२ ॥

हे लक्ष्मण भइया ! अब तुम जाकर महर्षि अगस्त्य और विश्वामित्रजीको बुलाकर लेआओ वृष्टि होनेसे जिस प्रकार अन्नकी उत्पत्ति होती है वैसेही तुम धन रत्नादि देकर इनको सुखीकरो ॥ १३ ॥ हे महाबाहो ! तुम इनको हजार गायें और सोना, चांदी, मणि, मुक्ता और बहुत धन रत्नादि देकर प्रसन्न करो ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण ज्ञानी कौशल्याजीको नित्य अशीर्वाद दिया करता है और यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाओंका आचार्य है व सब वेद वेदांतका जाननेवालाहै और नित्य कौशल्याजीको यज्ञ करताहै ॥ १५॥ हे लक्ष्मण ! तिस ब्राह्मणोंको रेशमी वस्त्र सवारियें और दासदासियों और धनको देकर प्रसन्न करो जिससे वह संतुष्ट होजाय॥ १६॥ आर्य चित्ररथ जो कि, हमारे मंत्री व सारथिहैं और अब बूढे होगये हैं अब उनको बडे २ मोलके कपडे गहने धन और रत्न देकर तृप्त करो ॥ १७॥ वह हमारे निकट संबंधी कठ, कलाप, शाखाओंके पढनेवाले जो सब ब्रह्मचारी हैं तुम उन सबको दश हजार गायें और अनेक प्रकारके यज्ञ संबंधी पशु देदो ॥१८॥ उन सबको दान देनेका एक मुख्य आशय यहीहै कि, वह सदा वेद पढा करतेहैं, इस कारण और कार्योंके ऊपर वह कुछ ध्यान नहीं देते यद्यपि उनका भिक्षा करनेमें स्वभाव आलकसी है किन्तु अच्छे स्वादवाले भाजेन करनेको उनकी बडी इच्छा रहतीहै उनका तप करना सर्व सम्मतहै ॥ १९ ॥ तुम उन सब महात्माओंको रत्न भारसे लदे हुये अस्सी हजार ऊंट बडे २ गाडीमें चलनेवाले एक हजार दोसौ बैल देदो ॥ २० ॥ सब, प्रकारके अन्न चना, मूंग आदिके व्यंजन बनानेको घी, दधि आदिके लिये बहुत अच्छी बहुतसी गायें देदो, व माता कौशल्याजीके पास जो नित्य मेखला पहरे ब्रह्मवादी ब्रह्मचारियोंके समूह रहतेहैं ॥२१॥ हे लक्ष्मण ! तुम उनमेंसे प्रत्येकको सहस्र निष्क, सहस्र २ गाय देदो. और अधिक क्या कहूं जितना दान देनेसे माता कौशल्याजी आनन्दितहों उतना २ धन उन सब ब्राह्मणोंको देदो ॥ ॥ २२ ॥ रामचन्द्रजीके यह कहनेपर पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीने स्वयं वह समस्तधन रत्नादि धनाधिपकी समान ब्राह्मणोंको देदिये जैसा कि उनको देना चाहिये ॥२३॥ जैसे कुबेर किसीको धन लुटावे जब इस प्रकारसे लक्ष्मणजी सबको धन देचुके फिर सब बहुत सा धन और भी नोकरों चाकरोंको जो कि, आंसू भरे खडेथे ॥२४॥ उनको दे उनसे बोले कि, लक्ष्मणके व हमारे मंदिरमें जबतक कि, हम वनसे लौटकर न आवें तब तक ॥२५॥ तुम रहना इन भवनोंको खाली न पडे रहने देना, जितने तुम अब

रहते हो तितनेही रहना जब तक कि, हम वनसे लौटकर घर न आवें. रामचन्द्रजीसे यह वार्त्ता श्रवण कर सब नौकर चाकर दुःखसे रुदन करने लगे ॥ २६ ॥ राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार आदेशदेकर खजाञ्चीको सेवक सहित बुला उसे धन लानेके लिये आज्ञादी आज्ञा पातेही खजाञ्चीको सेवक दौड गये और थोडीही देरमें वहां धनकी राशि लग गई ॥ २७ ॥ वह सब देखने योग्य धनके ढेरके ढेर देखकर श्री पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजी उस धनको लक्ष्मणजीके सहित ॥ २८ ॥ ब्राह्मणोंको, बालकोंको, वृद्धोंको, व अति दीन मनुष्योंको सब देने लगे, उन्हीं दिनोंमें उस देशमें गर्गगोत्री ब्राह्मण जिसका शरीर बिलकुल पीला पड गया था. और त्रिजट उसका नाम था ॥ २९ ॥ वह फावडा, कुदाल व हलसे खोद खादकर अपने दिन व्यतीत करताथा तब भी कभी २ उपवास होजाया करताथा। उसकी स्त्री पूर्ण युवतीःथी, परन्तु दरिद्रताके दुःखसे बहुतही दुबली हो गई थी। उसने जब सुना कि, रामचन्द्रजी बहुत धन बाँट रहे हैं तब बालकोंको संग लेकर ॥ ३० ॥ उसकी स्त्री देवता स्वरूप अपने स्वामीसे बोली कि, स्त्रियोंके स्वामीही देवता होते हैं इस कारण तुमभी मेरा वचन मानो कि तुम फावडा और कुहाडी तो फेंकदो और जो मैं कहूं उसको ध्यान लगाकर सुनो ॥ ३१ ॥ कि, यदि इस समय तुम रामचन्द्र राजकुमारके पास जाओगे, तो अवश्यही थोडा बहुत धन तुम्हारे हाथ लगेगा, वह ब्राह्मण अपनी स्त्रीसे ऐसा सुनकर एक बहुत फटे दुपट्टेसे अपने शरीरको ढक ॥ ३२ ॥ राम मन्दिरकी ओर चला उसका तेज अंगिरा और भृगु ऋषिकी समानथा, वह त्रिजट रामचन्द्रजीके पासको गमन करने लगा ॥ ३३ ॥ पांच ड्योढियोंके पार होगया परन्तु किसीने उस जाते हुयेको नहीं रोका अनन्तर ब्राह्मणश्रेष्ठ त्रिजट रामचन्द्रजीके समीप पहुँचा और बोला ॥ ३४ ॥ कि, हे राजकुमार महाबली ! मैं बहुतही दरिद्रहूं और बाल बच्चे मेरे कई एकहैं ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्न होकर मुझको खेतीवाडी करके जीविका करनी पडती है, अतएव यही प्रार्थना है कि, मेरे ऊपर कृपा करिये ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रजी उस ब्राह्मणकी ऐसी वार्त्ता सुन हँसकर बोले कि, हे विप्रवर ! हमारे पास असंख्य गायें हैं सो अभी तो उनमेंसे एक हजारभी नहीं बाँटीं गई हैं ॥ ॥ ३६ ॥ इस समय तुम जहाँतक यह अपना डंडा फेंक सकोगे वहाँ तकके घरमें जितनीं गायें होंगी मैं वह सबही तुमको देदूंगा, यह सुनकर त्रिजट ब्राह्म-

णने तुरंत अपना फटा चादरा कमरमें बाँध ॥ ३७ ॥ और डंडा हाथमें ले और उसको अपने पूरे बलके साथ घुमाकर फेंका उसके हाथसे फेंका हुआ डंडा देखते२ सरयू नदीके दूसरी पार गिरा ॥ ३८ ॥ जहां बहुतसी हजारों गायों व बैलोंका गोठ इकट्ठाथा यह देखकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने उसे हृदयसे लगाया और सरयूके किनारेकी ॥ ३९ ॥ जितनेमें सब सजी सजाई गायेंथीं उन सबको त्रिजटके पास उसके आश्रममें भेजदीं और उस ब्राह्मणको छातीसे लिपटायलिया और उस गार्गको समझाते हुये बोले ॥४०॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम कुछ हमपर क्रोध न करना मैंने डंडा फेंकनेको जो कहाथा वहतो केवल हँसीथी ॥ ४१ ॥ तुममें दूरतक डंडा फेंकनेकी शक्ति है या नहीं इसकीही परीक्षा करनेको मैंने तुमसे यह कार्य करायाथा अब यह पूछताहूं कि इतनीं गायें तो तुम्हारे स्थानमें पहुँच गईं, अब इन गायोंके सिवाय जो कुछ और चाहिये सो मुझसे कहो ॥ ४२ ॥ मैं सत्य सत्यही कहताहूं कि तुम इस बातमें कुछभी शोच संकोच न करो मैं जितने धन सम्पत्तिका अधिकारीहूं यदि वह तुम सरीखे ब्राह्मणोंको दे दियाजाय, तबतो मेरे यशकी सीमा न रहैगी, धन दान करनेसे ही सफल होताहै न कि गाड देने से ॥ ४३ ॥ तब द्विज श्रेष्ठ त्रिजट अपनी स्त्री और बालकोंसमेत प्रमुदित मनसे औरभी असंख्य धेनु ग्रहण करकै, बल, यश, प्रीति और सुखकी वृद्धिके हेतु रामचंद्रजीको बहुतही आशीर्वाद देताहुआ चला गया ॥ ४४ ॥ त्रिजटके चले जानेपर प्रबल पौरुषवान् रामचंद्रजी अपने धर्म व बलसे इकट्ठा किया हुआ धन रत्नादिक ब्राह्मण व सुहृदोंको नौकर चाकरोंको और मंगताओंको आदर सहित दान करने लगे ॥ ४५ ॥ उन श्रीरामचंद्रजीके दान देनेको कहांतक वर्णन किया जाय कि, जितने, ब्राह्मण जितने सुहृद, जितने नौकर चाकर थे और जितने फकीर फुकरेथे सबही मन माना धन और आदर पाकर परम प्रसन्न होगये, वहांपर ऐसा कोई नहींथा जिसका भली भांति दान सन्मानसे आदर न किया गयाहो ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३.

अनन्तर रामचंद्रजी व लक्ष्मणजी समस्तधन समस्तब्राह्मणादिकोंको दानकर सीताजीको संगले पिताजीके दर्शन करनेको चले ॥ १ ॥ देवी सीताजीने अपने हाथसे जो सब अस्त्र, माला चन्दनादिद्वारा सजायेथे उनको उठाकर दासियोंको दिये उन सबको दो परिचारिका हाथमें लेकर रामचंद्रजीके पीछे २ चलीं ॥ २ ॥ उस समय सब मनुष्य मार्गमें जाते हुये रामचंद्रजीको धवरहर व अटारियें और विमानों पर बैठ २ दीन नेत्र और निरुत्साह मनसे देखने लगे ॥ ३ ॥ भीडके मारे राजमार्गमें चलना फिरना बहुतही कठिन हुआ इसीकारणसे दीन जन धवरहर आदिक ऊंचे स्थानोंपर चढकर रामचंद्रजीको देखतेथे ॥ ४ ॥ उस समय रामचंद्रजीको छोटे भाई लक्ष्मण और प्राणसम प्रिया जानकीके सहित पैदल जाते देखकर सब मनुष्य शोकसे व्याकुल होकर कहने लगे ॥ ५ ॥ जिन रामचंद्रजीके कहीं जानेके समय चतुरङ्गिणी सेना साथ जातीथी, वही सीताजीके सहित पैदल इकले चले जा रहेहैं और पीछे २ उनके लक्ष्मणजी जातेहैं ॥ ६ ॥ जो रामचंद्रजी सब ऐश्वर्यके सुखोंको जाननेवाले और विलासके आकर स्थान और सब अर्थोंकी कामना पूर्ण करनेवालेहैं वही आज धर्मकी प्रतिष्ठासे बँधकर पिताके वचनोंको नहीं तोड सकते ॥ ७ ॥ जिन सीताजीको आकाशमें रहनेवाले प्राणिजनभी नहीं देखतेथे हाय ! आज उनके राजमार्गमें जानेवाले अनाथ सबकी समान देखतेहैं ॥ ८ ॥ जो जानकीजी सदा अंगराग और लाल चन्दनादि सुगन्धित वस्तुयें अपने शरीरमें लगातीथीं, अब उनकोही ग्रीष्मकी गरमी वर्षाकी जलधारा और दुसह शीतका कोप पीला करदेगा ॥ ९ ॥ हमारी समझमें ऐसा आताहै कि महाराज दशरथजीको तौ निश्चयही भूत पिशाच लगाहै, यदि ऐसा न होता तो प्राणोंसे प्यारे बुढौतीमें पाये हुये प्रिय पुत्रको वनवास क्यों देते ॥ १० ॥ भइया ! आश्चर्य्य है कि जिन रामचंद्रजीके आचरणोंकी सब एक वाणीसे प्रशंसा करतेहैं उनकी बात तो एक ओर रही कोई निर्गुण पुत्रकेभी साथ ऐसा निठुर व्यवहार नहीं करता ॥ ११ ॥ अहिंसा करना दयाकरना भली भांति शास्त्रोंका पढना सुशीलता इन्द्रियोंको अपने वशमें रखना, शान्तचित्त रहना, यह छओं गुण पुरुषश्रेष्ठ रामचंद्रजी में विद्यमानहैं ॥ १२ ॥ हम यह भली भांति जान्तेहैं कि, ऐसे श्रीरामचंद्रजीके वन जानेसे जिस प्रकार प्रबल गरमीके तापसे तालाब का पानी सूखजानेपर उसमें

जलजीव नहीं रह सकते वैसेही बिना रामचन्द्रजीके प्रजा बहुत दुःखी होगी; ॥ १३ ॥ जगत्पति रामचन्द्रजीके वनवाससे सबहीको दुःख होगा । जिस प्रकार जड कट जानेसे फल फूल पत्ते सूख जातेहैं सोही अवस्था सारी प्रजाकी रामचन्द्रके बिना होगी ॥ १४ ॥ धार्मिक चूडामणि महा कान्तिमान् महात्मा रामचन्द्रजी ही तो सब मनुष्योंके मूलहैं व और दूसरे सब मनुष्य फूल फल पत्ते व शाखाहैं ॥ १५ ॥ अतएव लक्ष्मणजी जिस प्रकार साथ जातेहैं, हम भी सब जहां रामचन्द्रजी जाँयगे वहीं पर गमन करैंगे क्यों पेडकी जड बिना फूल फल पत्ते किस प्रकार रह सक्के हैं ? ॥ १६ ॥ हम सबको रमणीय फुलवाडी, खेत और घरका कुछ प्रयोजन नहींहै, हम इन सबको छोड छाडकर धार्मिक रामचन्द्रजीके दुःखमें दुःखी सुखमें सुखी रहकर उनके ही साथ चले जायँगे ॥ १७ ॥ अब जितना हमारा जो सब धन आदि पृथ्वीमें गडा रक्खाहै, वह उखड जावे, स्थान गायें धन धान्यादि सर्वशः छीन लिये जायँ ॥ १८ ॥ गृहके सब देवता भी घरको छोड जावें, घरमें सबही जगह धूल छाईहो और कूडा कर्कट पडाहो, चूहे इधर उधर कलावाजियें खाते हों और सब जगह भट्टक बिल हो जाय ॥ १९ ॥ जल का नाम नहीं रहैगा व धुआं हीन बिना बुहारे वटोरे बलि वैश्वदेव यज्ञहीन मंत्र होमजपादि शून्य ॥ २० ॥ अकाल पडनेके समान टूटे फूटे घर और हमारे टूटे फूटे बर्त्तन भाजन और अनेक प्रकारके उत्पात प्रगट होंगे हम सब लोग जब इस पुरीको छोडकर चले जायँगे तब कैकेयी ऐसी पुरीका राज्य करैगी ॥ २१ ॥ हमारी भगवानसे यही प्रार्थनाहै कि, हे नारायण ! जिस वनमें रामचन्द्रजी जाँय वहां तो नगर वस जाय और हमारी यह छोडी हुई अयोध्या पुरी वन होजाय ॥ २२ ॥ सर्पगण हमारे डरसे डरकर अपने २ बिल, मृग पक्षीगण पहाडोंकी चोटी, और हाथी व शेर वन भूमिको छोडदें॥ २३ ॥हम सब जिस स्थानको छोडे जातेहैं वह सब मृग पक्षी गण आदिक यहां आकर अधिकार करैं तृण मांस फलादि हीन वन होजाय देशमें ठौर२ सर्प पक्षी व मृगगण विचरण करैं ॥ २४ ॥ हम इस समय मनकी प्रसन्नता पूर्वक घर वारको छोड रामचन्द्रजीके संग वनवास करैंगे कैकेयी पुत्र और अपने बन्धु बान्धवों सहित इस पुरी का पालन करती रहै ॥ २५ ॥ यद्यपि रामचन्द्रजीने यह और भी अनेक प्रकारकी बातें नगरवासियोंके मुखसे सुनी तथापि उनका मन चलायमान नहीं हुआ और न उन्होंने कुछ शोकही किया ॥ २६ धर्मात्मा महा

राज रामचन्द्रजी क्रम २ से मतवाले हाथीकी समान विक्रम वाली चालसे कैलास पहाड की समान पिताजीके भवनकी ओर जाने लगे ॥ २७ ॥ भवनके द्वारपर विनीत पुरुष पहरेदारी कर रहेथे। रामचन्द्रजी उनके पास होते हुए आगे बढे तब थोडीही दूरपर दीन दशाको प्राप्त हुये सुमंत्रजीको देखा॥ २८ ॥ रामचन्द्रजी विधिपूर्वक पिताजीकी आज्ञा पालन करनेके लिये वनके जानेको तैयार हो प्रसन्न मनसे हँसते हुयेसे पिताके चरणारविन्द दर्शन करने की आशासे द्वारपर उपस्थित हुए वहांपर देखा तो सबही नौकर चाकर व दूसरे आदमी बहुतही दुःखितथे ॥ ॥ २९ ॥ धर्म वत्सल रामचन्द्रजी पिताके सत्य पालनेको स्थिर निश्चय होकर उनके चरणों में विदा लेने की आशासे द्वारपर उपस्थित हुये और सुमंत्र को पासही देखकर उनसे बोले कि हमारे आनेका समाचार पिताजीसे कह दो यह बोले ॥ ॥ ३० ॥ उनसे कहा दो कि धर्मवत्सल धीर धारण करनेवाले रामचन्द्रजी पिताजीकी आज्ञा मानने में तत्परहो वन जानेको तैयारहैं, ऐसी हमारे पितासे कह दो यह बात रामचन्द्रने सुमंत्रसे कही ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे०श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकांडे०भाषायां०त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशःसर्गः ३४.

अनन्तर कमलपत्रकी समान नेत्रवाले श्याम अंग जिनपर कोई उपमाही न लगे ऐसे श्रीरामचन्द्रजीने सुमंत्रको बुलाकर कहाकि तुम जाकर हमारे आनेका समाचार पिताजीसे कहो ॥ १ ॥ सुमंत्रजी रामचंद्रजीके यह वचन सुन शोकसे व्याकुलहो शीघ्रतासे राजाके पास गये और देखा कि महाराज दशरथजी शोकसे व्याकुल हो ऊधी सांसे लेरहेहैं ॥ २ ॥ उस समय महाराज दशरथजीकी दशा राहुग्रस्त सूर्यकी नांई राखसे ढकी अग्निकी नांई व जलहीन तडागकी नांईथी ॥ ३ ॥ महापंडित सुमंत्रजीने रामचंद्रजीका समाचार जनाते हुये रामचंद्रजीके दुःखसे विलाप करते हुये महाव्याकुल महाराज दशरथजीसे हाथ जोडकर कहा ॥ ४ ॥ प्रथम सुमंत्रने (जय जीव) ऐसा महाराज दशरथजीसे कहा; फिर मारे भयके बहुत उदास हो धीरे २ मधुर वाणीसे बोले ॥ ५ ॥ हे महाराज पुरुषसिंह! आपके पुत्र श्रीरामचंद्रजी ब्राह्मणों और नौकर चाकरोंको धन देदिवाकर आपके दर्शनकी आशा लगाये द्वारपर खडेहैं ॥ ६ ॥ सत्य पराक्रम रामचंद्रजीने सुहृद् व औरभी सब

बन्धु बान्धवोंसे विदा लेलीहै. अब इस समय आपके चरणारविन्दमें विदा ग्रहण करनेके कारण उनका यहां आना हुआहै सो तुम्हें देखना चाहतेहैं ॥ ७ ॥ सूर्य भगवान् जिस प्रकार अपनीं किरणोंसे सुशोभित रहतेहैं वैसेही श्रीरामचंद्रजी विविध भांतिके राजगुणोंसे शोभित होकर शोभा पारहेहैं वह अब शीघ्रही महावनको जाना चाहतेहैं यदि आज्ञा होतो यहां आकर वह आपके दर्शन करैं ॥ ८ ॥ तब समुद्रकी समान गंभीरतावाले आकाशकी समान निर्मल सदा सत्य कहनेवाले राजा दशरथजी सुमंत्रसे बोले ॥ ९ ॥ हे सुमंत्र ! हमारी जितनी और सब रानियेंहैं तुम सबसे पहले उन सब को यहां बुला लाओ । अब हम सब रानियोंके साथ मिलकर प्राणप्यारे दुलारे पुत्र रामचंद्रका मुखचंद्र देखेंगे ॥ १० ॥ राजाकी आज्ञा पातेही सुमंत्रजी रनवासमें प्रवेश करते हुये और सब रानियोंसे (हे श्रेष्ठो ! राजाजी आप सबको बुलातेहैं इससे जल्दीही वहां चलिये) यह बोले ॥ ११ ॥ सुमंत्रजीके मुखसे यह वचन सुनकर वह सब महारानियें स्वामीकी आज्ञासे महाराजके निकट जानेको तैयार हुईं ॥ १२ ॥ वह सब पतिव्रत धारण करनेवाली दुःखसे जिनकी आंखें लाल होगईहैं ३५० तीनसौ पचास रानियें महारानी कौसल्याजीको आगेकर वहां गईं जहां कोप भवन में कैकेयीके साथ राजा पडेथे ॥ १३ ॥ उन सब रानियोंको आये हुये देख महाराज दशरथजीने सुमंत्रजीसे यह कहाकि " हमारे पुत्र रामको यहां ले आओ " ॥ १४ ॥ आज्ञा पातेही सुमंत्रजी, सीता, लक्ष्मण सहित रामचंद्रजीको लेकर राजाके समीप आ पहुँचे ॥ १५ ॥ हाथ जोडे हुये श्रीरामचंद्रजीको आते हुये देख अपनी सब दुःखित स्त्रियोंके साथ राजा आसन परसे उठ खडे हुये ॥ १६ ॥ व अपने पुत्र रामचंद्रजीको देख उनको हृदयसे लगानेके लिये बडी शीघ्रतासे महाराज दशरथजी दौडे परन्तु मारे दुःखसे विह्वल तो होई रहेथे व सामर्थ्यहीन हो रहेथे, इस कारण मूर्च्छा आगई बीचहीमें गिर पडे॥ १७॥ तब उस समय महारथी लक्ष्मणजीने और धार्मिक रामचंद्रजीने शोकसे व्याकुलहो मूर्च्छा प्राप्त हुये राजाको पृथ्वीपरसे उठाया उस समय पृथ्वीनाथको अपनी कुछ सुध नहींथी ॥ १८ ॥ उस समय गहनोंकी झनकारके सहित हजारों स्त्रियें जो कि रनवासमेंथीं उनका हाहाकार शब्द महाराजकी पुरीमें फैल गया । व सबही कोई "हा- राम ". यह बोले, बोलकर रोने लगे॥ १९ ॥ तब लक्ष्मण और सीताजीने आंखों में आंसू भरके मूर्च्छा प्राप्त महाराज दशरथजीको हाथ पकड व उठाकर पलँग में

लेजाकर बैठाया ॥ २० ॥ थोडी देरके बाद राजाकी मूर्च्छा जागी तब श्रीराम-चंद्रजी हाथ जोडकर शोकके समुद्रमें पडे और रुदन करते हुये महाराज दशरथ-जीसे बोले ॥ २१ ॥ हे महाराज ! मैं वनके जानेको सर्वथा तैयार होगयाहूं. सो आप हमारे व सबहीके मालिकहैं इसकारण हम आपसे आज्ञा विदा होनेकी चाहतेहैं सो आप कृपादृष्टि उठाकर हमारी ओर एक वार देख तो लीजिये ॥ २२ ॥ यद्यपि मैंने अनेक प्रकारसे वनके दुःख कहकर सुनाये व औरभी बहुतसे कारण दिखाये और लक्ष्मण सीताको वनमें अपने साथ नही ले जाना चाहा परन्तु उन सब बातोंकोभी यह दोनों जने सुनकर मेरे संग वन जायाही चाहतेहैं ॥ २३ ॥ प्रजापति ब्रह्माजीने जिस भांति सनकादिक अपने पुत्रोंको तप करनेकी आज्ञा दीथी वैसेही उनकी समान हम तीन जनोंको आप वन जानेकी आज्ञादीजिये । और वृथा शोकके अधीन न होकर इसका त्याग कीजिये ॥ २४ ॥ तब राजा दशरथजी व्यग्रता रहित अपने पुत्रको आज्ञा परखते देख उनकेऊपर दृष्टि डालकर बोले ॥ २५ ॥ हे प्राण-प्यारे रामचंद्र ! मैंने तो मोहित होकर कैकेयीको वर दियाहै अब मैं तुम्हें क्योंकर वन जानेको कहूं अतएव अब तुम मुझको तो पकडकर बन्दी करो और तुम अयो-ध्याके राजसिंहासनपर बैठ यहांके राजा बनो ॥ २६ ॥ राजाके वचन ऐसे सुनकर धर्मधुरन्धर रामचन्द्रजी हाथ जोडकर बडी चतुरतासे राजासे बोले ॥ २७ ॥ हे महाराज ! आप अबसे औरभी हजारों वर्षकी उमर पाकर पृथ्वीका पालन करते रहैं। राजभोग करनेकी मुझको कुछभी अभिलाषा नहींहै, क्योंकि मैं आपको थोडाभी मिथ्यावादी नहीं बनाया चाहता क्योंकि मृषा कहनेसे नरक होताहै। बस इसीकारणसे मैं वनमें रहूंगा ॥ २८ ॥ हे पिता ! मैं चौदह वर्ष वनवासमें रह और आपकी प्रति-ज्ञाको पूर्णकर वहांसे लौट फिर आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम करूंगा ॥ २९ ॥ इतनेमेंही कैकेयी रामचंद्रजीकी बातको समर्थन करती हुई ओटमें बैठी राजासे संके-तकर कह रहीथी कि इनको वन भेजो । यह देख सत्य की फाँसीमें बँधे रुदन करते परवश राजा दशरथ रामचन्द्रजीसे दीन वचनबोले ॥ ३० ॥ हे तात ! परलोक और इस लोककी मंगल कामना करते हुये तुम निरापद वनको जाओ तुम्हारे जानेका मार्ग भय करकै रहितहो तुम नियत किये समयके पीछे कुशल पूर्वक यहांपर आओ ॥ ३१ ॥ वत्स तुम्हारी बुद्धि सत्यात्मा व धर्मात्माहै तुमको दूसरे मार्गमें चलानेकी मेरी क्या किसीकीभी सामर्थ्य नहीं है ॥ ३२ ॥ अब मेरे कहनेसे आज

की रात और रहजाओ तुमको एक दिनभी और देखनेसे मेरे सुखकी सीमा नहीं रहेगी भला आज तो और तुम्हारे साथ पान भोजन करलें ॥ ३३ ॥ तुम आज रात और अपनी माता व हमको देखते हुये यहां अवश्यही रहो और कल बडेही भोर वनको चले जाना हम न रोकेंगे ॥ ३४ ॥ हे वत्स ! तुम बहुतही दुष्कर धर्मका कार्य साधन करनेको तैयार हुये हो और तो मैं क्या कहूं परलोकमें मेरा हित करनेके वास्ते अपने सब प्यारे और राज्यको त्यागकर तुम वनको जातेहो भला दूसरेसे यह कार्य कहीं हो सकताहै ? ॥ ३५ ॥ हे प्रिय पुत्र ! तुम्हारा वन जाना मुझको किसी तरह प्रिय नहीं है मैं शपथ खाकर कहताहूं जिसप्रकार राखसे ढकी अग्निमें कोई हाथ रख समझकर डालदे और उसका हाथ जल जाय वैसेही मैं इस टेढे हृदयवाली कैकेयीके वश पडगया और इसने अपना कार्य बना लिया ॥ ३६ ॥ मैं तो कुलकलङ्किनी कैकेयीके माया जालमें पडा और हे वत्स ! तुम इसका फल भोगनेको चले यहभी अच्छी भगवान्की लीलाहै कि कर्म कोई करै और इसको भोगे कोई सो तुम इस दुष्टाके जालमें क्यों पडते हो अर्थात् जो मैंने धोखेसे कहा उसीको माने लेते हो * ॥ ३७ ॥ हेराम ! हमारे पुत्रोंमें तुम सबसे बडे और सबसे श्रेष्ठहो, तुम जो अपने पिताके वचन प्रतिपालन करनेको तैयार होगे और पिताका वचन किंचितभी झूठा न होने दोगे तो इसमें आश्चर्य ही क्याहै ? ॥ ३८ ॥ अनन्तर अनुज सहित रामचंद्रजी महाराजदशरथजीके ऐसे आर्त्त वचन सुनकर दीन भावसे पिताजीसे बोले रामचंद्रजीने यह शोचा कि, कैकेयीसे तो हम कह चुकेहैं कि, अभी वनको जातेहैं, और पिताजी एक रात और हमें रोका चाहते हैं, और ऐसा करनेसे हमारे सत्य बोलनेमें अन्तर पडताहै, और प्रतिज्ञाको तोडताहूं तो पिताका मनोरथ सिद्ध न हुआ यह सोच समझ शोकको प्राप्तहो बोले ॥ ३९ ॥ पिताजी ! आज वन जानेमें जो गुण हमको मिल सकेंगे वह कल जानेमें कौन देस-कैगा, इस कारण सबसे अधिक जल्दी अयोध्या पुरीके त्याग करनेकी प्रार्थना मैं आपसे करताहूं ॥ ४० ॥ अब इस समय आप मेरी छोडी हुई धन धान्यसे भरी मनुष्योंसे पूर्ण विविध राज्योंसे घिरी पृथ्वीका भार कुमार भरतको दे दीजिये ॥ ४१ ॥ हे पिता! मैंने जो इस समय वन जानेमें स्थिर बुद्धिकीहै वह मेरी मति किसी प्रकारसे

* दोहा—और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग । अति विचित्र भगवन्त गति, को जग जाने योग ॥

चलायमान नहीं हो सकती । हे वरद ! आपने महारानी कैकेयीजीको दो वर दियेहैं उनका पालन करके सत्यवादी नामसे संसारमें विख्यात हूजिये ॥ ४२ ॥ पिता ! अब इसमें आगा पीछा न विचारिये सब राज्य व खजाना भरतको देही दीजिये जो वचन आप कैकेयीसे हारगयेहैं मैं उनका पालन करता हुआ ॥ ४३ ॥ चौदह वर्षतक वनचारियों के समेत वनमें वास करूंगा । आप भरतजीके हाथमें पृथ्वीका भार सोंपते हुए किसी प्रकारका संशय नकीजिये क्योंकि वह सब भांति राज्यके योग्यहैं ॥ ४४ ॥ हे नरश्रेष्ठ! मैं अपने वा अपने इष्ट मित्रोंके सुखके लिये कभी राजसुखभोग करनेकी इच्छा नहीं करताहूं मैं सत्य २ कहताहूं कि आपकी आज्ञा पालन करनेमें जो सुख मुझे होना संभवहै वह सुख मुझको किसी पदार्थमें दृष्टि नहीं आता ॥ ४५ ॥ आप रुदन न कीजिये दुःखको दूर बहाइये, क्योंकि देखिये कि, सरित्पति जो समुद्रहै वह कभी चलाय मान नहीं होता॥ ४६ ॥ हे पिताजी ! अधिक मैं क्याकहूं. नतो मुझको राज्य चाहिये, न सुख भोग करनेकी इच्छाहै न मैं पृथ्वीका अभिलाषीहूं; न स्वर्गवास करनेसे मैं प्रसन्नहूं वरन मैं तो जीवन धारण करनेकीभी कामना नहीं करता ॥ ४७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपसे मैं अपने सत्य और पुण्यकी सौगन्ध करके कहताहूं कि आपकी प्रतिज्ञा सत्य होजावे यही मेरी इच्छाहै ॥ ४८ ॥ आपके वचनोंका मैं उल्लंघन नहीं करना चाहता और न मुझमें इतनी सामर्थ्य है कि आपके वचनोंको मैं झूंठा करूं बस इसही कारणसे रात भरकी क्या चलाई मैं एक घडी भरभी यहां इस पुरीमें वास नहीं कर सकता अब मेरी यही आपके चरणोंमें प्रार्थनाहै कि मेरे लिये आप अधीर न होइये ॥ ४९ ॥ देवि कैकेयीजीने हमसे कहाकि रामचंद्र ! तुम वनको जाओ सो हमने भी कहाकि अच्छा हम वनको जातेहैं अतएव वह जो बात कैकेयीसे कह चुकेहैं उसका पालन करना भी कर्त्तव्यहीहै. हम अपने सत्य को भी नहीं छोड सकतेहैं ॥ ५० ॥ हे देव ! आप किसी प्रकारसे घबडाइये मत, मैं वहां जहांपर कि, शान्त मृगगण सदा विचरण करतेहैं जहां अनेक प्रकार पक्षियोंके बोल सुनाई आतेहैं मैं ऐसेही वनमें वास करता रहूंगा ॥ ५१ ॥ हे तात ! पिता देवतागणोंका भी देवता होताहै यह वार्ता शास्त्रमें लिखीहै पिता जो देवताके तुल्यहैं इसी कारण मैं आपके वचनोंको देवता मानूंगा ॥ ५२ ॥ जब चौदह वर्ष व्यतीत हो जांयगे तबमैं फिर यहांको आही जाऊंगा फिर इस कारण करके संताप करनेका प्रयोजन क्याहै ? ॥ ५३ ॥ हे पुरुषसिंह ! वह

आप भली प्रकार जानतेहीहैं कि मेरेही कारण सब लोग शोकमें व्याकुलहो रुदन कर रहेहैं अतएव शोकमें अधीर न होकर इन लोगोंको समझाना बुझाना आपको अवश्यही कर्त्तव्यहै ॥ ५४ ॥ मैं इस समय पुर देश नगर सहित इस पृथ्वीको परित्याग करताहूं आप भरतको यह देदीजिये मैं आपकी आज्ञासे बहुत कालतक सुखभोग करनेके अर्थ वनको जाता हूं ॥ ५५ ॥ भरतजी बेखटके अपने मामाके यहांसे आकर, पर्वत वनसे शोभायमान ग्राम व नगरसे भरीपुरी सीमा युक्त इस पृथ्वीका पालन करते रहैं आप जो दो वर कैकेयीको दे चुकेहैं वह किसी प्रकारसे निष्फल नहों मेरी यही इच्छाहै ॥ ५६ ॥ हे महिपाल ! बहुत अच्छी २ भोग व सुखकर वस्तुओंकी मुझे रुचि नहीं है, प्रीतिकी उपजानेवाली किसी वस्तुकी मुझको इच्छा नहीं है मुझको तो केवल सज्जनोंकी सराही हुई आपकी आज्ञाका पालन करनाही प्रार्थनीय और शिर माथेपरहै। मैं वारंवार कहताहूं कि आप मेरे लिये कुछ दुःख न करैं ॥५७॥ अधिक कहना तो व्यर्थहै पर इतनाहीं कहे देताहूं कि आपके मिथ्यावादी हो जानेपर मुझको नतो इस बडे राज्यसे प्रयोजन न अतुलनीय सुखसंपत्तिसे प्रयोजन, वरन आपकी प्रतिज्ञा टूटनेपर मैं प्राणाधिका जानकीसेभी प्रयोजन नहीं रखता ! मेरीतो केवल यही प्रार्थनाहै कि, आपके वचन सत्य होजायँ॥ ५८ ॥ मैं भांति २ के विचित्र वृक्षोंसे शोभायमान वनमें प्रवेश करके, पहाड, नदी और सरोवरोंको देख, और वहां कंद, मूल, फल आदि भोजन करके सुखी रहूंगा। आप यहां विना संदेहके रहिये मेरी कुछ चिन्ता न कीजिये ॥ ५९ ॥ रामजीके इस भांति कहने उपरान्त राजा दशरथजी मनके दुःख और प्रबल शोकसे सताये जाकर व घबडाकर रामचंद्रजीको हृदय से लगा मूर्च्छितहो पृथ्वीपर गिरगये उस समय उनका शरीर चेष्टारहित होगया ॥ ६० ॥ उस समय कैकेयीके सिवाय और दूसरी सब महारानियें बड़े शब्दसे रोने लगीं सब टहलनी दास दासियें "हा कैकेयी ! यह तैंनेक्या करा ?" यह कहकर हाहाकार करने लगीं। सुमंत्रजीभी सबकी यह दशादेख रोते हुये मूर्च्छित होगये ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अयोध्या० भाषायां चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ३५.

तिसके पीछे कुछ विलम्ब पश्चात् सुमंत्रकी मूर्च्छा छूटी तौ वह क्रोधसे अधीरहो वारंवार लम्बी २ श्वासें लेने लगे ! वह अपने दाँतोंको किच किचा रहेथे वह शिर पीट रहेथे और क्रोधके मारे दोनों हाथ मल रहेथे ॥ १ ॥ उनकी दोनों आंखें लाल हो आईं मुखमंडल पीला पड़गया, वह बहुतही बुरे दुःख शोकसे संतापित हुये ॥ २ ॥ सुमंत्रजी मनमें महाराज दशरथजीके मनकी वार्त्ता जानकर व सबसे अपना सब स्नेह त्यागन कर वचन बाणसे मानों कैकेयीके हृदयको कँपाते हुये॥ ३॥ बाण-समान तीक्ष्ण वचनोंसे कैकेयीके सब सुकुमार स्थानोंको छेदन करते सुमंत्रजी कैकेयीसे बोले॥ ४ ॥ हे दुष्ट कैकेयी!जब कि तूने चराचरसहिमंडलके मालिक अपने स्वामी महाराज दशरथजीहीको छोड दिया॥५॥ तब फिर संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसको तुम न करसको तुमसे जो नहो वह थोडाहै ! हम जानते हैं कि तुम अपने स्वामीकी मारनेवाली और अपने कुलकी नाश करनेवालीहो ॥ ६ ॥ इन्द्रकेसमान किसीसे न जीते जाँय ऐसे अजेय पर्वतोंकी समान अचल गंभीरता में समुद्रकी तुल्य तुमने अपने कर्मके दोषसे ऐसे प्रतापी राजाकोभी चलायमान करदिया ॥ ७ ॥ देखो मैं तुम्हें फिरभी समझाताहूं कि तुम पृथ्वीनाथ राजा दशरथजीका अपमान मतकरो, अरी दुष्टे ! समझ रखकि करोड़ पुत्रोंके स्नेहसे अधिक स्नेह स्त्रियोंको पतिकी इच्छाके अनुसार चलनाहै, सो पुत्रको राज्य दिलानेके लिये स्वामीका निरादर करतीहै ॥ ॥ ८ ॥ देख राजाके पीछे राज्याधिकार का मालिक अवस्थानुसार बड़ा बेटा ही होताहै, यह रीत इक्ष्वाकुकुलमें सदासे होती आईहै, परन्तु तूतो महाराजके रहते ही वह प्रथा लोप करके भरतको राज्य दिलाया चाहतीहै ॥ ९ ॥ अच्छी बातहै राजा भरतजी हों वही पृथ्वीका पालन करैं परन्तु हम सब लोग तो वहीं जाँयगे जहां राम-चन्द्रजी होंगे ॥ १० ॥ तुम जो बडेको छुडाकर छोटे को राज्य दिलवाया चाह-तीहो ऐसा निन्दनीयकर्म करनेसे तुम्हारा राज्य कैसे किसी ब्राह्मणके वसने योग्य होगा ॥ ११ ॥ मैं ठीकही ठीक कहताहूं कि जिस मार्गसैं रामचन्द्र वनको जायँगे वहीमार्ग सब साधु ब्राह्मण व हम सब लोगोंका अवलम्बनीय होगा॥ १२॥ मैं तुमसे यह पूछताहूं कि जब आत्मीय बन्धु बान्धव गण व सब ब्राह्मणही तुमको छोडकर चले जाँयगे तब तुम राज्य लेकर कौनसा सुख भोग करोगी॥ १३॥तुम जो मर्यादा करके रहित इस महानिन्दित कार्यके करनेपर उतारू हुईहो सो मुझको बडा आश्चर्य है

किं तुम्हारे इस व्यवहारसे पृथ्वी क्यों नहीं फटकर टुकडे २ होजाती॥ १४॥जबकि तुम रामचंद्रजीको वनमें भेजनेके लिये तैयार हुईहो फिर वसिष्ठादि ब्रह्मर्षि गण अग्नि समान भयंकर धिक्कारसे क्यों नहीं तुमको भस्मकर डालते?॥ १५॥जोहो महाराजजी जो तुम्हारे मतके अनुकूल होगयेहैं हम नहीं जानते कि इसका क्या कठोर परिणाम होगा आश्चर्यहै ! कुहाडीसे आमके पेटको काटकर, कौन आदमी नीमकी सेवा करताहै ? नीमके पेडको दूध दहीसे सींचिये पर क्या वह मीठा होगा ॥ १६ ॥ ठीकहै; जैसा तुम्हारी माताका स्वभावहै वैसाही तुम्हाराहै क्योंकि आदमी जो यह कहा करतेहैं कि "नीबके पेडसे शहद नहीं टपकता" यह बात कहीं मिथ्या थोडेही होसकतीहै ॥ १७ ॥ तुम्हारी माता जिस प्रकार पापकार्य में रतथी सो उसके विषयमें जो कुछ हमने सुनाहै, वह मैं कहताहूं तुम सुनो;—पूर्वकालमें महातपस्वी किसी महर्षिजीने तुम्हारे पिताको एक वर दान दियाथा ॥ १८ ॥ उसही वरके प्रभावसे तुम्हारे पिता सब जीवोंकी प्रगट अप्रगट सबही प्रकारकी वाणियोंका अर्थ ग्रहण कर लेतेथे । व इसही वरके प्रभावसे वह सब पशु पक्षियोंकी बोली समझतेथे ॥ १९ ॥ एक समय तेजस्वी तुम्हारे पिता लेट रहेथे कि इतनेमें दिव्य कान्तिवाला एक जृम्भ पक्षी बोला राजा इस बोलीका मर्म समझकर बहुत हँसे॥ २०॥तुम्हारी माता तुम्हारे पिताको हँसता हुआ देखकर बहुतही क्रोधित हुई और उस हँसनेका कारण पूछने लगी हे राजन् ! तुम्हारे हँसनेका क्या कारणहै बताओ यदि हे नृपाल ! तुम मुझको अपने हँसनेका कारण न बताओगे तो मैं अभी अपने आप अपनेको मार डालूंगी ॥ २१ ॥ तब राजाने कहाकि देवी ! यदि मैं हँसनेका कारण तुमको बताऊंगा तो अभी मेरी मृत्यु हो जायगी इसमें कुछ संशय नहीं है ! क्योंकि ऋषिने वर देतीसमय कह दियाथा कि जो किसीको उस बोलीका अर्थ समझाओगे तो तुम मर जाओगे ॥ २२ ॥ तुम्हारी माताने फिर तुम्हारे पितासे कहाकि तुम जीते रहो अथवा मरजाओ परन्तु हमें अपने हँसनेका कारण बताओ जो तुम मरभी जाओगे तो आगेको हमें देखकर ठट्ठा तो न करोगे ॥ २३ ॥ प्यारी नारीने जब हठ की तब राजा उन्हीं महर्षिके पास गये जिन्होंने कि उनको वर दियाथा और उनसे अपनी रानीका सब वृत्तांत कहा ॥ २४ ॥ तब वर देनेवाले ऋषिने कहा कि रानी इस वास्ते मरती है तो मर जाने दीजिये, परन्तु आप इस बोलीका मर्म उसको न समझाइये यदि इसका वृत्तांत कह दोगे तो निश्चयही मर जाओगे क्योंकि मेरा वचन मृषा नहीं होता इससे उस

रानीको आप कुछ दंड दीजिये अथवा निकाल दीजिये ॥ २५ ॥ उन ऋषिके ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न मनसे तुम्हारे पिताजीने तुम्हारी माताको छोड दिया, और आप कुबेरकी समान विहार करने लगे ॥ २६ ॥ रे कैकेयी ! इस तरह तुमभी अपनी माताकी समान महाराजको निन्दनीय मार्गपर चलातीहो, हे पापरूपे ! मोहसे ग्रसे हुये महाराजको तूने बुरे मार्गपर चलायाहै ॥ २७ ॥ " पुरुष अपने पिताका स्वभाव और स्त्रियें अपनी माताका स्वभाव पाती हैं " यह जो कहावत संसारमें प्रसिद्धहै सो क्या मिथ्या थोडेही हो सकतीहै ॥ २८ ॥ मैं तुम्हें निवारण करताहूं कि तुम अपनी माताकी समान स्वभावाली मत बनो, और जो हमारे महाराज दशरथजी कहैं उसमें कोई बाधा मत दो अधिक क्या कहूं तुम महाराजकी इच्छानुसार कार्य करके हमारी सबकी रक्षा करो ॥ २९ ॥ मैं फिरभी तुमसे कहताहूं कि पापकर्ममें पडके तुम सर्व लोकोंके पालन करनेवाले इन्द्रकी समान महाराजको पापके रस्तेमें मत चलाओ ऐसा करना तुमको उचित नहींहै ॥ ३० ॥ हे देवि ! राजीवलोचन श्रीमान् महाराज दशरथजी जो वर एक खेलहीकेसमान तुम को दे बैठेहैं; बहुत अच्छाहो कि यदि उन वरोंके अनुसार कार्य नहो देखो अबभी मान जाओ अभी कुछ नहीं बिगडाहै ॥ ३१ ॥ और विशेष करके रामचंद्रजी सब पुत्रोंसे बडेहैं सत्यप्रतिज्ञहैं सब कार्यमें चतुरहैं अपने धर्मकी रक्षा करनेवाले, और सब जीवोंका प्रतिपालनकरनेवालेहैं; अच्छा होगा यदि ऐसे बलवान् रामचंद्रकोही राज्यपदपै प्रतिष्ठित करदो ॥ ॥ ३२ ॥ हे देवि ! यदि रामचंद्रजी अपने राजापिता, अपनी राज्य छोडकर वनको चले गये तो जानलो कि सारे संसारमें तुम्हारा बडाही घोर अपयश फैल जायगा ॥ ३३ ॥ अतएव इस समय तुम सब मनका क्षोभ दूर करके कह दो कि रामचन्द्र राज्यभार लैले भलीभांति समझलो कि रामसे अधिक और कोई तुम्हारा प्रियकार्य नहीं कर सकैगा ॥ ३४ ॥ रामचन्द्रजी राज्यपदपर प्रतिष्ठित होनेपर महावीर महाराज दशरथजी पहले पुरुषोंकी प्रथानुसार चौथे पन आजानेसे वनको चले जायँगे ॥ ३५ ॥ सुमंत्रजीने हाथ जोडकर इस सभाके बीच इस प्रकारसे तीखे और शान्तियुक्त वचनोंसे कैकेयीको समझाया बुझाया, परन्तु कैकेयीने इन बातोंपर कुछ ध्यान न दिया ॥ ३६ ॥ न तो शान्त वचन सुनकर वह कुछ चलायमान हुई न तीक्ष्ण वचन सुनके उसको कुछ दुःख हुआ, अधिक तो क्या उस समय उसके मुखका रंगभी तो कुछ फीका नहीं पडा ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे० श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकाण्डे भाषायां पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ३६.

जब राजा दशरथजीने देखा कि कैकेयी किसी प्रकारसे नहीं मानती तो अपनी प्रतिज्ञाके प्रभावसे दुःखित होकर वार २ ऊंधे २ श्वासले सुमंत्रसे बोले ॥ १ ॥ हे सूत ! तुम रामचंद्रजीके साथ चलनेके लिये रत्नोंसे पूर्ण चतुरंगिनी सेनाको शीघ्र सजाओ ॥ २ ॥ जो कि सब वेश्या पराया चित्त मोहनेवाली और बात बतानेमें बडी चतुर होतींहैं वहभी इस सेनाके साथ जांय बडे २ धनवान वनियेंभी बहुत सारी रसद लेकर फौजके साथ जांय ॥ ३ ॥ जो रामचन्द्रजीके आश्रय करके पलतेहैं और जो कि सब पहलवान लोग वीर्य परीक्षाके लिये रामचन्द्रजीके समीप कुस्ती लडा करतेहैं उनको बहुत सारा धन देकर रामचन्द्रजीके साथ करदो ॥ ४ ॥ सबसे श्रेष्ठ आयुध और छकडे सब रामचन्द्रजीके साथ भेजे जांय। और अधिक क्याकहूं जो व्याधे कि वनका मार्ग जाने हुयेहैं, वह और जो नगरवासी रामके साथ जाना चाहैं उन सबको रामचंद्रजीके साथ कर दीजिये ॥ ५ ॥ रामचंद्र वनमें रहकर मृगादिकोंका वध करके वनका शहद पीकर और अनेक नदियोंका दर्शनकर सुखीहो अयोध्यापुरीके वासको भूल जायँगे ॥ ६ ॥ वह हमारा धन धान्यादि जो कुछ कि खजानेमें है उस सबको सेवक लेकर रामचंद्रजीके साथ निर्जन वनको जाँय ॥ ७ ॥ प्राणप्यारे दुलारे रामचन्द्र वनमें जाकर जहां कहीं तीर्थस्थान आवें वहां ऋषि आदि महात्मा ओंके साथ मिलकर बहुत सारी दक्षिणा देकर यज्ञ करैं करावें और परम सुखसे वहां वास करते रहैं ॥ ८ ॥ अयोध्यापुरीमें जो कुछ कि सुख भोग करने की सामग्रीहै वह सभी रामचन्द्रके साथ भेज दीजाय. और पीछेसे आकर महाबाहु भरतजी अयोध्याका राज्य भार ग्रहण करैं, सोभी तबतक जबतक कि रामचंद्र वनसे न लौटें ॥ ९ ॥ महाराज दशरथजीके ऐसा कहनेपर कैकेयी बहुत भयभीत हुई, उसका मुँह डरके मारे सूख गया और बोल भी बन्द होगया ॥ १० ॥ वह व्याकुल और दुःखित होगई मुख सूख गया फिर राजाके सामने होकर इस प्रकारके वचन कहने लगी ॥ ११ ॥ जो इस पुरीसे सब धन और सम्पत्तिही रामचन्द्रके साथ चली जायगी तब फिर भरत इस सूने राज्यको लेकर क्या करैंगे ? जब कि मदिराका सारांश प्रथमही पीलिया जायगा तौ फिर रह क्या जाताहै ॥ १२ ॥ जब कि लाज रहित कैकेयीने ऐसे निठुर कठोर वचन कहे तब राजा दशरथजीके नेत्र क्रोधसे लाल २ होगये, और कैकेयीसे बोले ॥ १३ ॥ हे दुष्टे ! रामचन्द्रको

वन भेजने और भरतके राज्य दिलाने को जो तैंने कहा वह वर तो हमने वहन किया, सो वही कर, फिर अब मुझको और दुःख क्यों देताहै तैंने रामचन्द्रके लिये वनवास मांगाथा तब इस बातका तौ कुछ उल्लेख नहीं कियाथा कि उनके साथ कुछ धन इत्यादि न जाने पावें ॥ १४ ॥ राजा दशरथजीके इस प्रकार क्रोधयुक्त वचन सुनकर कैकेयी को और भी दूना क्रोध हो आया उसी समय राजासे गर्व सहित वचन बोली ॥ १५ ॥ महाराज! तुम्हारे वंशमें राजा सगरने अपने बडे बेटे असमंजसको राज्य न देकर नगरसे निकाल दियाथा इस समय तुमभी वैसेही रामको राज्यसे निकालकर वनको भेज दो ॥ १६ ॥ जब कैकेयीने ऐसा कहा तब महाराज दशरथजी उसको धिक्कार देने लगे, व वहां जितने नर नारी बैठेथे वह उस समय यह सब देख सुनकर बहुत ही लज्जित होगये ॥ १७ ॥ उसी समय सिद्धार्थ नामक एक वृद्ध वहां बैठाथा वह अति सत्यवादी था, जोकि राजा दशरथजीका प्रिय और मंत्रीथा वह कैकेयीसे बोला ॥ १८ ॥ हे देवि! असमंजस बहुतही दुष्टस्वभाववाला, और लोकोंका द्रोह करनेवालाथा वह खोटी मतिवाला खेलही खेलमें प्रजाके बालकोंको पकडकर सरयूमें डुबा देता और उनको देखकर प्रसन्न होता ॥ १९ ॥ उस समय असमंजस का यह कुकर्म देखकर प्रजा बहुत ही असंतुष्ट हुई और राजा सगरसे आकर कहा कि आप हमें या अपने पुत्र असमंजसको राज्य में रखने की इच्छा करते हैं ॥ २० ॥ तब राजाने कहा कि, हे प्रजागण! तुम्हारे इस प्रकार भयभीत होनेका क्या कारण है! राजाके ऐसे वचन सुनकर प्रजा बोली ॥ २१ ॥ कि हे महाराज! आपका पुत्र असमंजस हमारे बालकोंके साथ मार्गमें खेल करताहै और फिर उनको पकड़ २ सरयूके पानीमें फेंक देताहै जब वह डूबने लगते है तौ आप देखकर बड़ाही प्रसन्न होताहै॥२२॥तब प्रजाका हित चाहनेवाले राजा सगरजीने प्रजाके ऊपर घोर अत्याचार हुआ जानकर उन प्रजागणोंके हितके लिये घोर अहितकारी अपने बेटेको परित्याग कर दिया ॥ २३ ॥ राजाकी आज्ञासे वह पापी अपनी स्त्रीके साथ, वस्त्र पहरा कर, सवारी पर बैठाकर जन्म भरके लिये देशसे निकाला गया ॥ २४ ॥ इस प्रकारसे वह पापबुद्धि अपने कर्मके दोष और फलसे कंद रखनेकी पिटारी और कुदाल लेकर बडी कठिनाईसे पेट भरता हुआ देशसे निकल कर चारों ओर पहाड किले कंदरा आदि देख २ कर फिरने लगा ॥ २५ ॥ हे देवि! धर्मात्मा महाराज सगरजीने इस कारणसे दुष्ट असमंजसको त्याग कर दियाथा, परंतु रामचन्द्रने तौ

इस प्रकारका कोई अपराध नहीं किया कि, जिससे उनको वनमें भेज दिया जाय ॥ २६ ॥ हम लोगोंमें से कभी किसीने रामचंद्रजीमें कोई दोष नहीं देखा, चंद्रमामें तो कलंक देखाभी जाताहै पर रामचन्द्रमें तो पाप कुछभी नहीं पाया जाता ॥२७॥ अथवा हे देवि ! मैं तुमसे ही पूछताहूं तुमही बताओ कि, राममें इस प्रकार का कोई दोषहै जिससे कि, वह वनको भेजदिये जांय देखाहो तो बताओ ॥ २८ ॥ नहीं तो सज्जन सुमार्गी दुष्टता रहित पुरुषको अकारण परित्याग करनेसे धर्मकी विरुद्धता होनेके कारण जो इन्द्रके समान तेजभीहो, तो वह तेजभी भस्म हो जाताहै ॥ २९ ॥ हे देवि! मैं इसी कारण तुमसे कहताहूं कि, तुम रामचन्द्रजीकी श्री मत नष्टकरो अर्थात् उनसे राज्य छुडा भरतको मत दिलाओ यदि तुम कुछ विना सोचे बिचारे रामचंद्रजीको वनमें भेजही दोगी तो संसारमें तुम्हारी निन्दा सीमासे बाहार होगी ॥ ३० ॥ मंत्री सिद्धार्थके ऐसे उदार वचन सुनकर महाराज दशरथजी धीमीवाणीसे शोक युक्त वचन कहकर कैकेयीसे बोले॥ ३१॥ रे पापिनि ! मैं समझ गया कि, वृद्ध सिद्धार्थके अनुकूल वचन तेरे मनको न भाये,अपना निजका और मेरा हित क्याहै तू इसको कुछ भी नहीं जानती, साधु मार्गमें चलनेकी तेरी इच्छा नहीं है, तू इस प्रकारके निन्दनीय नीच कार्यको ही भला समझीहै ॥ ३२ ॥ जोहो सोहो, मैं तो राज्य, धन, सम्पत्ति और सुख भोगको छोडकर रामचन्द्रके साथ वनको जाऊंगा तू अपने पुत्र भरतके साथ सदाके लिये इस राज्यको पूजती रहिये ॥ ३३ ॥

इति श्रीम०वा०आ०अ०पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां षट्त्रिंशः सर्गः ३६

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७.

महामंत्री सिद्धार्थके ऐसे वचन सुन व राजाको व्याकुल देखकर विनय व नम्रताके वचनोंसे रामचन्द्रजीने पितासे कहा॥ १॥हे राजन् ! जब कि, मैं भोग सुखको छोड छाड वनमें वास करने जाताहूं तब मेरे साथ धन सम्पत्ति और शूर सामंत सेना आदिके जानेका क्या प्रयोजनहै? ॥ २ ॥ जो मनुष्य कि, श्रेष्ठ ब्राह्मणको हाथी दे डाले और अंबारीके कसने की रस्सी देते मोह करै अर्थात् न दे तो वह बात उसका उचित नहीं है ॥ ३ ॥ हे जगत्पति ! मैं माता कैकेयीकी प्रसन्नताके अर्थ सब भरतहीको देताहूं मुझे सेना धन संपत्ति इत्यादि कुछभी नहीं चाहिये, अब हमारे लिये मुनियोंके पहरने योग्य वस्त्र और वल्कलादि जो चाहिये सो मँगाइये ॥ ४ ॥ हमको

चौदह वर्षतक वनमें रहना पडेगा इससे ऐसे वस्त्र आवें कि, बीचमें फट फटा न जायँ कन्द मूल फल खोदनेके लिये एक खनित्री और एक पिटारी भी चाहिये सो जल्दीसे मँगादीजाय जिससे कि, हम जल्दी वनको चलेजायँ ॥ ५ ॥ तब रामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर कैकेयीने स्वयं जाकर उनको चीर वसन इत्यादिक लादिये और वहां वह सबके बीच और सबके सामने यह बोली कि इन वस्त्रोंको पहर वनको जाओ ॥ ६ ॥ पुरुषोत्तम रामचंद्रजीने कैकेयीके दियेहुये वल्कल आदिकोंको पहर लिया और आप जो सूक्ष्म वस्त्र पहर रहेथे उनको उतार डाला ॥ ७ ॥ जब रामचन्द्रजीने वल्कल आदिके वस्त्र पहिरे तब अनुज लक्ष्मणजीने भी पिताके सामनेही सुन्दर वस्त्र त्याग कर मुनिवेष धारण किया ॥ ८ ॥ रेशमीन वस्त्र पहननेवाली जानकीजी भी उन वस्त्रोंको जो उनके लिये कैकेयी लाईथी ले और देखकर ऐसी भय भीत हुई, जैसे कि, जालको देख मृगी कांप उठती है ॥ ९ ॥ कैकेयीके दियेहुये कुशके बने वस्त्र शुभ लक्षणयुक्त जानकी ले अति उदास और लाजयुक्त हुई ॥ १० ॥ आंखोंमेंसे आंसू भरकर धर्मकी जाननेवाली, व धर्मकी देखने वाली, जनकनंदिनी जो गन्धर्वराजके समान अपने प्रिय पति रामचन्द्रजी से बोली ॥ ११ ॥ कि हे जीवनसर्वस्व ! वनवासी तपस्वी लोग किस प्रकारसे वस्त्र धारण किया करते हैं ! इतना कहकर मोहित होगई क्योंकि जानकीजी क्या जानतीथी किसप्रकार वनके वस्त्र पहरे जातेहैं ॥ १२ ॥ यद्यपि दो चीर उन्होंने लिये सो एक गलेमें डालकर दूसरा हाथमें लेकर खडी रहगई क्योंकि वह उसका पहरना नहीं जानती थीं कि, कहां पहरा जाय, इस कारण लाजसे शिर झुका खडी रह गई ॥ १३ ॥ धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीने जब श्रीजानकीजीकी यह दशा देखी तौ जल्दीसे उनके निकट जाकर जो रेशमीन सारी सीताजी पहररहीथीं उसकेही ऊपर चीरका वस्त्र पहरादिया ॥ १४ ॥ रामचंद्रजीको अपने हाथसे सीताजीके शरीरमें चीर वस्त्र पहराते देखकर रनवासकी स्त्रियें बहुतही रोदन करने लगीं जो कि, किसी प्रकार नहीं थमताथा ॥ १५ ॥ वह परम तेजस्वी रामचंद्रजीसे कातर भावसे बोलीं कि, हे वत्स ! तुम इन चिन्ताशील श्रेष्ठ जानकीजीको वनमें अपने साथ मत लेजाना ॥ १६ ॥ तुम पिताका सत्य पालनेके लिये वनजानेको तैयार हुयेहो सो यदि जानाही चाहतेहो, तो तुमही जाओ। और हमारी यह विनतीहै कि जबतक तुम वनसे लौटकर यहां आओ तब तक हम सब सीताहीका मुखचंद्र दर्शन करके

सुखी होसकेंगी ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! रामचंद्र ! तुम लक्ष्मणजीको साथ लेकर वन चले जाओ, परन्तु कल्याणी सीताजीको तपस्विनीकी नांई बनाकर वनवासिनी मतकरो ॥ १८ ॥ हे कमललोचन ! तुम्हें हम धार्मिक और सत्यप्रतिज्ञा करनेवाला जानतीहैं न हम ऐसी आशा कर सकती हैं कि तुम हमारे कहनेसे वनको न जाओगे परन्तु एक प्रार्थना तुमसे करतीहैं कि, सीता यहीं रहैं ॥ १९ ॥ अनन्तर रनवासकी स्त्रियोंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर भी जानकीजीकी इस विषयमें सम्मति न जानकर रामचंद्रजीने तुल्य शीलवाली सीताजीके चीर बन्धन नहीं खोले बांधही दिये ॥ ॥ २० ॥ तब कुलगुरु वशिष्ठजी सीताजीकी यह शोचनीय अवस्था देख, नेत्रों में जल भरकर उनको चीर धारण करनेमें निवारण करतेहुये कैकेयीसे बोले ॥ २१ ॥ रे कुलमें कलंक लगानेवाली खोटी मत वाली कैकेयी ! तू महाराज दशरथजीको धोका देकर तेरी जहां तक कामनाथी, उससे कहीं अधिक कार्य कराचुकी ॥ २२ ॥ रे खोटी शीलवाली ! देवी जानकीको किसी तरह वनमें नहीं भेजा जायगा, यह गृहही पर रहकर रामचंद्रजीके राजसिंहासन पर अपना अधिकार करैंगी ॥ २३ ॥ सब शास्त्र पुराणोंमें लिखाहै कि स्त्री पतिका आधाअंग होतीहै तो वह भी पतिहीका रूप हुई बस सीताजी भी रामचंद्रजीकी अर्द्धाङ्गिनी होनेसे उनकी मूर्त्ति हुई अतएव यह अवश्य राज्यका पालन करैंगी ॥ २४ ॥ यदि जनकलली महाबली रामचन्द्रजीके साथ वनको चली तो जान लेना कि, नगरके सब दूसरे लोगोंसहित हम सब वहां चले जायँगे जहाँ रामचन्द्रजी चले जायँगे ॥ २५ ॥ केवल हमही नहीं जायँगे बरन् रनवासके रक्षक और सब नोकर चाकर अपनी अपनी स्त्री पुत्रोंको व परिवारको सबहीके साथ इस राज्यको परित्यागकर रामके साथ चले जायँगे और दास दासी अपनी २ सामग्रीके साथ नगरभी चला जायगा ॥ २६ ॥ मैं निश्चयही कहताहूं कि रामचन्द्रजीके वनमें चले जानेपर भरत शत्रुघ्न चीर वस्त्र धारण करके अपने बडे भाईके साथ वनको चले जायँगे ॥ २७ ॥ तब यह पुरी सूनी हो जायगी केवल पेड ही पेड रह जायँगे तब तू पेडोंपर राज्य किया करना, यहां तो संपूर्णतः वनही वन हो जायँगे उस समय प्रजागणोंकी अहितकारिणी होकर इस जनशून्य पुरीका इकली पालन करती रहना ॥ २८ ॥ दुष्टे ! तू भली प्रकार जानले कि, जहां श्रीरामचन्द्रका राज्य नहींहै वह किसी प्रकारसे राज्य कहा ही नहीं जा सकता, और जहांपर कि, रामचंद्रजी रहैं वह वनभी हो तोभी राज्य कहा जा सकताहै ॥ २९ ॥ मैं तुझसे

अधिक क्या कहूं जब कि, महाराज दशरथजी अप्रसन्नतासे यह पृथ्वी भरतको देतेहैं सो जो भरत महाराज दशरथजीके पुत्र होंगे तब तो इस राज्यको किसी प्रकारसे ग्रहण करैंहींगे नहीं और मैं यहभी कह देताहूं कि, तेरे ऐसा कुकर्म करनेपर वह तेरे साथभी पुत्रवत् व्यवहार नही करैंगे ॥ ३० ॥ मैं भलीभाँति जानताहूं कि भरतजी पिताके वंशकी प्रथाको भलीभाँति जानतेहैं कि इस कुलमें बडेहीको राज्य मिलता आयाहै । यदि तू इस पृथ्वीसे आकाशको चली जाय तबभी भरत अपने वंशके विरुद्ध कोई आचरण नहीं करैंगे ॥ ३१ ॥ विचार करके देखनेसे जाना जाताहै कि तूने पुत्रके हितकी कामना करके उनको जो राज्यदिलाया सो तुमने यह पुत्रका हित नहीं किया वरन् अहितही किया । मैं जानताहूं कि, संसारमें ऐसा कोई मनुष्य नहींहै जो रामके प्रति अनुरागी नहो और उनके पीछे वनको न चला जाय ॥ ॥ ३२ ॥ हे कैकेयी ! तू वही देखेगी कि पशु, पक्षी, सर्प मृग व औरभी सब जीव जन्तु रामके साथ वनको चले जायँगे, औरोंके जानेकी वार्त्ता तो छोड दो वृक्षभी चलनेके समय रामचन्द्रजीहीकी ओर झुकेंगे मानों चलनेको तैयारहैं ॥ ३३ ॥ हे देवि ! तुम इस समय चीर वसन छुड़ाकर अपनी पुत्र वधू जानकीको अच्छे वस्त्रा-भूषण पहरनेको दो देखो सीताजीके शरीरमें चीर वसन अच्छे नहीं लगते अतएव तुम उनको यह वल्कल वसन मत दो यह कहकर वशिष्ठजी उन वस्त्रोंको निवारण करने लगे ॥ ३४ ॥ हे कैकेयी राजपुत्री ! जब कि तुमने केवल रामचन्द्रजीहीको वन भेजनेका वर मांगाहै तब सीताजी वसन भूषणसे विभूषितहो वनमें अपने स्वामीकी सेवा करने जायँ तो तुम्हारी हानि क्याहै ॥ ३५॥ मैं कहताहूं जब कि, तुमने सीताको वनमें भेजनेका वरही नहीं मांगा तब वह अच्छी सवारीपर चढकर दास दासियों सहित अनेक प्रकारके भूषण वसन विभूषित हो रामचन्द्रके साथ वनको जायँ-गी ॥ ३६ ॥ यद्यपि अमित प्रभाववाले अग्निसमान विप्रवर वशिष्ठजीने जानकी-जीके चीर धारण करनेके संबंधमें इस प्रकार कहा परन्तु तापसी भावसे रामचंद्रके साथ जानेकी इच्छा किये जानकीजीने किसी प्रकार चीर धारण करनेकी वासना परित्याग नहीं की ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आदि०अयोध्याकांडे भाषायां सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ३८.

सनाथा सीताजी चीर वस्त्र धारण करके जब अनाथकी नाईं वन जानेको तैयार ईं, उस समय जितने स्त्री पुरुष वहांथे चिल्लाये और महाराज दशरथजीको धिक्कार देने लगे ॥ १ ॥ उनका ऐसा हाहाकार सुनकर महाराज दशरथजी बहुतही दुःखित हुये, तब उन्होंने समझ लिया कि अब धर्म व यश न रहैगा, न अब हम जीही सकैंगे उस समय उनकी नासिकासे क्षण २ में गहरे श्वास आने लगे, फिर राजा कैकेयीसे बोले ॥ २ ॥ बाला अवस्थाको प्राप्त दूसरे सुकुमारी इस कारण सदा सुखही भोगनेके योग्य है। इस कारणसे इनका वन जाना किसी भाँति उचित नहींहै यह वार्त्ता हमारे गुरुजीनेभी ठीक ठीक कहीहै ॥ ३ ॥ आश्चर्य तो इस बातका है कि, श्रेष्ठ राजाकी पुत्री सीताजीने कभी किसीका बुरा नहीं चाहा, सो इनकोभी वनवास करने वाली तपस्विनीकी समान चीर पहरने पडे। अहो! किसप्रकारसे इन चीरोंका पहरना होताहै यह न जानकर राज पुत्री मोहितसी होगईथी ॥ ४ ॥ इस समय पुत्रवधू सीता कुशके चीर वसन त्याग करे और मन इच्छापूर्वक अनेक प्रकारके गहने धन रत्नादि ले अपने पतिके साथ जायँ मैं स्मरण करके कहताहूं मैंने यह प्रतिज्ञा या वर किसीको नहीं दिया कि रामचन्द्रजीकी समान इनकोभी वनमें जाना होगा ॥ ५ ॥ हा मैंने मृतक प्राय होकर रामके वनवास जानेका वर कैकेयीको दिया तो है। परन्तु वांसका फूल जिस प्रकार निकलतेही वांसको सुखा देता है वैसेही तेरी अज्ञानताके हेतु करके यह प्रवृत्ति मेरे नाश करनेका कारण होगी ॥ ६ ॥ माना कि रामचन्द्रने तेरा कुछ अनभलकरही दिया किन्तु हे पापीयसि! बता तो सही श्रेष्ठ जानकीजीने तेरा क्या बिगाड कियाहै जो तू इनको यह चीर कुशके वसन पहरातीहै ॥७॥ मृगीके समान खिले नेत्र वाली कोमल शील स्वभाव वाली व बुद्धिवान जनक कुमारीने तेरा कब कौन अपकार कियाहै ॥८॥ तुमने जो रामचंद्रका वनवास मांगकर जो अपना भला चाहाहै वही तुम्हारे लिये बहुतहै इसके पश्चात् इन और सब महा पातकोंका अनुष्ठान करनेसे तुझको क्या फल मिलेंगे। एक रामही को वन भेजनेसे तुझको हजारों वर्ष तक नरक भोगना पडेगा ॥ ९ ॥ हे देवि! मेरा तो यही विश्वासथा कि तुम रामचंद्रजीके अभिषेकार्थ मेरे पास आईहो सो तुमने इसके बदले रामके वन भेजनेका वर मांगा, सो मुझको धोखेमें पड तुम्हारी

बात माननी पडी॥ १०॥सो अब देखताहूं कि तेरी दुराशा और भी बढ गईहै। क्या आश्चर्यहै कि तू निरपराधा जनकदुलारी जानकीतकको कुशके चीर वस्त्र पहरा कर भेजनेकी इच्छा करतीहै।जो कुछ हो निश्चय तुझे इस अपराधके कारण नरक में जानापडेगा ॥ ११॥ सीताजीके संबंधमें इस प्रकार वार्त्ता कहनेपर रामचंद्रजी शिर झुकाये मौन साधे हुये अपने पिता दशरथजीसे बोले ❀॥ १२॥ हे धार्मिक पिताजी हमारी माता यशस्विनी कौसल्याजी बहुतही बूढी गम्भीर स्वभाववाली कुछ आपकी निन्दा नहीं करती ॥ १३ ॥ इसकारण अब हमारा वनजाना श्रवण करके और चले जाने में शोक सागरमें डूबती हुई कि जिन्होंने इससे पूर्व ऐसा दुःख नहीं देखाथा उनका आप अधिक स्नेह सहित सन्मान किया करना ॥ १४ ॥ हे इन्द्रकी समान महाराज ! तुम्हारे समीप रहनेवाली कौसल्या हमारी माता आंखोंकी ओटमें हमको नहीं रखना चाहती, अब आपसे यही प्रार्थनाहै कि मेरे वन चलेजाने पर मेरे वियोगसे कहीं माता प्राण न त्यागदे इस कारण इनको सन्मानसे रखना ॥ १५ ॥

श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां अष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

नवत्रिंशः सर्गः ३९.

महाराज दशरथजी रामचंद्रजीके मुखसे इस प्रकारकी वार्त्ता श्रवण करके और उनको साक्षात् मुनिवेष धारण किये देख अपनी सब स्त्रियोंके सहित मूर्च्छित होगये ॥ १ ॥ उस समय उनके दुःखका वेग यहां तक बढ गयाथा कि रामकी ओर राजा दृष्टि उठाकर कुछ देखही नहींसके और जो बडी कठिनाई से देखा तो कुछ बोल नहीं सके ॥ २ ॥ तब महाबाहु दुःखित मनसे रामचंद्रजीहीकी चिन्ता करते २ एक मुहूर्त्त तक अचेत पडे रहे, तदनन्तर चैतन्यहो रामको स्मरणकर अनेक प्रकारके विलाप कलाप करने लगे ॥ ३ ॥ राजा दशरथजी कहने लगेकि मुझे ऐसा जान पडताहै कि पहले जन्ममें जाने मैंने कितनी गायोंसे उनके बछडे छुडाये होंगे, और जाने कितने जीवोंकी हत्या की होंगी जिससे कि अब मेरी यह दुर्दशा होरहीहै॥ ४॥ मैं जानताहूं कि विना समय आये जीवकी मृत्यु नहीं होती यदि ऐसा होता तो कैकेयीका दिया हुआ दुःख मेरी मृत्युका कारण होजाता ॥ ५ ॥ और मृत्यु होनेसे मैं

❀ किसी ग्रंथमें यह अधिक पाठ देखा जाताहै "इतीव राजा विलपन्महात्मा शोकस्य नान्तं स ददर्श किञ्चित् । भृशातुरत्वाच्च पपात भूमौ तेनैव पुत्रव्यसनेन मग्नः" ।

अग्निकी समान दिपते हुये रेशमीन महीन वस्त्र छोडे तपस्वियोंके वसन पहरे आगे खडे अपने पुत्रको न देखता ॥ ६ ॥ इस समय मुझे भली भांति सूझपडी कि अपना मतलब साधन करनेवाली इकलखोरी कैकेयीसेही सर्व साधारणोंको यह कष्ट पाना पडा ॥ ७ ॥ जब राजा यह वार्त्ता कह चुके तो उनके दोनों नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा निकलने लगी उन्होंने रामचंद्रजीसे कुछ कहनेको जैसेही " राम " यह शब्द कहा, वैसेही उनका गला रुक गया और वह कुछ नहीं कहसके ॥ ८ ॥ तदनन्तर एक मुहूर्त कालतक मनमें शोकका वेग धारण कर रुदन करते हुये दीन वचनसे सुमंत्रसे कहनेलगे ॥ ९ ॥ हे सुमंत्र ! हे महाभाग सवारीके जुतनेयोग्य अच्छे घोडे जोतकर यहां एक रथ लेआओ और उसमें बैठालकर रामचंद्रजीको इस देशके बाहर पहुँचाओ ॥ १० ॥ देखो शास्त्रोंमें गुणवानोंके गुणका यही फल लिखाहै कि पुत्र माता पिताकी आज्ञा मानें सो आज देखलो कि अपने माता पिताकी आज्ञा मान गुणवान्साधुस्वभाव रामचंद्रजी वनको जाते हैं ॥ ११ ॥ राजाकी ऐसी आज्ञा सुन सुमंत्रजी शीघ्र चलकर सुन्दर घोडे जोत सब तरहसे सजा धजाकर एक रथ ले आये ॥ १२ ॥ और हाथ जोड परमोदार राजकुमार श्रीरामचंद्रजीसे कहा कि अच्छे घोडोंसे युक्त (जुता हुआ) सुवर्णसे भूषित रथ आपके लिये तैयारहै ॥ १३ ॥ इसके पीछे महाराज दशरथजीने धनाध्यक्ष अर्थात् खजाश्चीको बुलाया, जो कि सब धनागार और तोषखानेकी वस्तुओंको जानताथा कि कौन वस्तु कहां धरीहै जब वह आया तब महाराज दशरथजीने उससे कहा ॥ ॥ १४ ॥ बडे २ मूल्यवान कपडे और सबसे अच्छे गहने जोकि चौदह वर्षतक वनमें रहती हुई जानकीके लिये पूरे पडें शीघ्र जाकर ले आओ ॥ १५ ॥ राजाकी आज्ञा पातेही खजाञ्ची कोषागारमें गया और राजाने जिन २ पदार्थोंको कहाथा उन सबको लेकर शीघ्रतासे आनकर सीताजीको देदिया ॥ १६ ॥ अयोनिजा जानकीजी उन सब श्रेष्ठ और चित्र विचित्र आभूषणोंको धारण करकै बहुतही शोभा पाने लगीं ॥ १७ ॥ प्रातःकालमें उदय होते हुए सूर्यकी किरणोंकी शोभासे जिस प्रकार गगनमंडल रंग जाकर शोभायमान होताहै वैसेही जानकीके गहनोंकी चमकके साथ उनकी कमनीय कान्तिने उस गृहको शोभित किया ॥ १८ ॥ जबकि रामचंद्रजी और सीताजी खडींथीं तब उस समय देवी कौसल्याजीनें अपनी अच्छे आचरण करनेवाली पुत्रवधू जानकीजीको छातीसे चिपटा लिया और उनका शिर

सूंघकर कहा ॥ १९ ॥ जो स्त्री परिवारमेंभी चाहे सबको प्यारीहो और विपदके समय वह स्वामी सेवासे मन हटाले तो वह स्त्री त्रिलोकीमें असती कहकर विख्यात होतीहै ॥ २० ॥ वास्तवमें असतीस्त्रियोंका स्वभावही इस प्रकारका होताहै कि वह जबतक उनका स्वामी सुखसे रहे और उसके पास धन दौलत रहै तब तक तो वह सुखसे प्रसन्नता सहित रहतीहैं । परन्तु जब कोई विपत्ति आनकर पडी कि उन्होंने अपने स्वामीके दोष कहने आरंभकिये दोष कहते फिरना तो एक साधारण बातहै वह स्त्रियें तो विपत्ति कालमें अपने स्वामीका त्यागतक करदेती हैं ॥ २१ ॥ अधिक क्या कहूं असत्य कहनेका तो उनका स्वभाव होजाताहै और वह दुर्गम स्थानोंमेंभी चली जाया करतीहैं, व सब प्रकारके विकार उनमें भरे रहतेहैं, और उनके मन पाप प्रवृत्तिके वश होजातेहैं और वह सैंकडों भाँतिके रूप लातीहैं, और तनक देरमें प्रेम छोड देती हैं और वह सदा स्वामीसे अनखाईसी रहती हैं ॥ २२ ॥ वह अपने कुलकी ओरको नहीं देखतीं, न वह किसीका भलामानें, धर्म और दान ज्ञानको भूल जातीहैं, यदि उनका दोष उनको दिखाभी दिया जाय, तो उसको मानती नहीं हैं उनके चंचल चित्त हो जातेहैं, वे पूर्वोक्त धर्मादिकोंको ग्रहण नहीं करतीं असत्यमें मन लगाये रहती हैं ॥ २३ ॥ परन्तु जिनका चरित्र पवित्रहै जो दिनरात सत्यही बोला करती हैं, गुरुजीका उपदेश मानने में जो चित्त लगातीं हैं जो कुलकी मर्यादा रक्षा करनेके लिये यत्नवान् रहती हैं, वही सब पतिव्रता स्त्रियें अपने पतिको पुण्य साधन करनेका मार्ग जनातीहैं और पतिहीके कहनेमें रहतीहैं स्त्रियोंकी पतिही एक परम गतिहै ॥ २४ ॥ सो हे बहू ! मैं तुमसे कहतीहूं कि इस समय मेरे पुत्र रामचन्द्र वनको जातेहैं अतएव ऐसे समय चाहें तो यह धनी हों और चाहें निर्ध-नीहों परन्तु तुम देवताकी समान अपने स्वामीका कभी अनादर मत करना ॥२५॥ तब जानकीजी धर्म अर्थ युक्त कौसल्याजीके बचन सुनकर आगे बढकर खडी हो आंसूभर हाथ जोडकर उनसे बोली ॥ ३६ ॥ आर्ये ! आपने मुझे जो आज्ञाकीहै मैं अवश्यही उसको मानूंगी स्वामीकेलिये स्त्रियोंको जो कुछ करना उचितहै वह मैं सब जानतीहूं और मैंने माता पिता आदि गुरु जनोंके मुखसे यह उपदेश सुनेभी हैं ॥ ॥ २७ ॥ आपसे अधिक क्या कहूं आप मुझे "उन झूंठी दुष्ट स्त्रियोंके समान मत समझिये, मैं कहतीहूं कि जिस प्रकार चंद्रमाकी किरणें चन्द्रमाको छोडकर कहीं नहीं जातीं वैसेही मैं किसी प्रकार पतिव्रत धर्मसे बाहर नहीं होसकती ॥ २८ ॥ जिस प्रकार तारके विना वीणा नहीं बज सकती और विना पहियेके रथ नहीं चल

सकता, वैसेही शत पुत्रोंकी मा होकरभी स्वामिहीन स्त्रीको सुख होनेवाला नहीं ॥ ॥ २९ ॥ यह बात ठीकहै कि माता पिता और पुत्र अपने वित्तहीके अनुसार वस्तु या सुख दे सकतेहैं; परन्तु स्वामीसे जो जो सुख व पदार्थ स्त्रीको प्राप्त होतेहैं वह तो अनगिन्तहैं, अतएव ऐसे स्वामीको कौन स्त्री न पूजेगी अर्थात् उसका आदर सत्कार न करैगी ॥ ३० ॥ हे आर्यें ! स्वामीकी सेवा करनाही स्त्रियोंका परम धर्म है, मैं सदाही इनकी आज्ञामें रहूंगी न कभी इनका अनादर करूंगी मैं भली प्रकार जानतीहूं कि पतिही हमारे देवताहैं इस कारण मुझे आप और स्त्रियोंकी समान न समझिये ॥ ३१ ॥ सीताजीके मुखसे इस भांतिकी मनोहर वार्त्ता श्रवणकर मारे हर्ष व विषादके कौसल्याजी रोने लगीं ॥ ३२ ॥ तब उस समय धर्मात्मा रामचन्द्रजी सब माताओंके बीचमें बैठी हुई सबके पूजने योग्य अपनी माता कौसल्याजीको देखकर उनसे हाथ जोड बोले ॥ ३३ ॥ हे जननि ! तुम मेरे चले जानेपर शोकार्त्त होकर पिताजीसे कुछ न कहना, थोडेही दिनके बीचमें मेरे वनमें रहनेका समय पूरा हो जायगा ॥ ३४ ॥ तुम मेरा चौदह वर्षका वनवास, पलक मारतेहुये चौदह घडीकी समान देखोगी। मैं जानकी और लक्ष्मणके सहित राजधानीमें आगया ऐसा आप सोतेहुये जागते की समान देखेंगी ॥ ३५॥ अपनी मातासे इस प्रकार कहकर और जो ३५० स्त्रियें महाराज दशरथजीके थीं, सो वेभी सब माताहीथीं उनकी ओर देखा, और उन सबनेभी राजकुमार रामचन्द्रजीकी ओर भलीभांति निहारा ॥ ॥ ३६ ॥ वहभी सब माता कौसल्याजीहीकी समान दुःख पारहीथीं इस कारण हाथ जोड धर्म युक्त उनसे रामजन्द्रजी बोले ॥ ३७ ॥ किं हेमाताओ ! एक साथ रहनेके कारण या भ्रम अथवा अज्ञानतासे मैंनें कभी कोई कठोर व्यवहार वा कठोर वचन आपको कहाहो तो आप सब उस अपराधको क्षमाकर दीजिये ॥ ३८॥ रामचंद्रजीके मुखसे ऐसे धर्मयुक्त वचन सुनकर सब महारानियें शोकसे व्याकुल होगईं ॥ ३९॥ क्रौञ्च पक्षीकी स्त्रियोंके विलापसे जिस प्रकारका शब्द होताहै रामचंद्रके वचन सुनकर राजाकी सब राजियोंका हाहाकारकरकें विलाप करनाभी वैसेही कठिन भावसे उच्चारित होने लगा ॥ ४० ॥ बडा आश्चर्यहै ! कि एक समय जो गृह दशरथजीके मृदङ्ग और ढोल इत्यादि मेघकी समान बाजोंके बजनेसे शब्दायमान रहतेथे, इस समय वही सब घर रानियोंके करुणा सहित आर्त्तनाद और परितापके दुःखसे छागये ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो०भाषायां एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०.

अनन्तर रामचंद्रजीने सीता और लक्ष्मणजीके सहित दीन भावसे हाथ जोड पिता दशरथजीके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ १ ॥ फिर पिताजीसे विदा लेकर सहधर्मिणी सीता सहित धर्मात्मा रामचंद्रजीने शोकसे व्याकुलहो माता कौसल्याजीके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ २ ॥ रामचंद्रजीके प्रणाम कर चुकनेपर पहले लक्ष्मणजीने कौसल्याजीके चरणोंमें प्रणाम किया । फिर अपनी माता सुमित्राजीके चरणोंमें जाय गिरे ॥ ३ ॥ और तिसके पीछे और माताओंके चरणोंकी वंदना करतेहुये लक्ष्मणजीको देख सुमित्राजी रोने लगीं, और महाबाहु लक्ष्मणजीका शिर सूंघ इनका हित करनेके लिये बोलीं ॥ ४ ॥ हे वत्स यद्यपि तुम सब सुहृद् जनोंके बहुतही प्यारेहो, तथापि तुम्हारे बडे भ्राता रामचंद्र वनको जातेहैं, तब तुमको सावधानीसे उनकी सेवा करना प्रमाद न करना और उनके साथ वन जाना तुमको उचितहै ॥ ५ ॥ हे अनघ ! रामचंद्रके ऊपर दुःसमयहो, वा सुसमयहो, चाहै वह ऐश्वर्य सहित या विना ऐश्वर्य के हों पर जान रक्खोकि रामही तुम्हारे एक मात्र गतिहैं तुम्हें अधिक क्या समझाऊं बडे भाईके वशमें रहनाही छोटे भाईको उचितहै और यही सनातन धर्म है ॥ ६ ॥ विशेष करके ऐसा कार्य करना तौ इस वंशकी पुरानी रीतिहै अधिक कहनेका क्या प्रयोजनहै. दान, यज्ञानुष्ठान और रणभूमिमें प्राणत्याग कर देना इत्यादि यह सब कार्य इस वंशमें परम्परासे चले आतेहैं, और यही इस वंशको करने उचितहैं ॥ ७ ॥ सुमित्रा लक्ष्मणजीको इस भांतिसे उपदेश देकर उनको रामचंद्रजीका अतिशय प्रिय जान वारंवार कहने लगीं कि हे पुत्र विलंब नकरके जलदी रामके साथ वनको जाओ ॥ ८ ॥ हे तात ! तुम इस समय रामचंद्रजीको तो अपने पिता दशरथ जानों और जानकीको माता सुमित्रा करकै समझो, और जिस वनमें बसो उसे अयोध्यापुरी मानों । और स्वच्छन्दतासे वन जाओ ॥९॥ तब विनयके जाननेवाले सुमंत्रजी जिस प्रकार मातलि इन्द्रसे कहैं वैसेही हाथ जोड विनय वचन कहतेहुये श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १० ॥ हे महायशस्वी राजकुमार ! रथ तैयारहै आप उसमें बैठ जाइये, आप जिस स्थान पर कहैंगे मैं उसी जगह पर आपको ले जाऊंगा ॥ ११ ॥ देवी कैकेयीजी आपको चौदह वर्षके लिये वनवासी कर चुकीहैं और राजाकोभी यही अभीष्टहै अतएव आजसे उन चौदह वर्षोंका आरंभ किया

जाताहै ॥ १२॥ उस समय सुन्दर मुख वाली जनकनंदिनी जानकीजी प्रफुल्ल मनसे अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे भूषित होकर सबसे पहले सूर्यकी समान उस रथपै चढी ॥ १३ ॥ जानकीजीके श्वशुर महाराज दशरथने चौदह वर्षके निमित्त जो उनको गहने और वस्त्रादि दियेथे वह सब रथपर रक्खे गये ॥ १४ ॥ इसी प्रकार रामचंद्र व लक्ष्मण दोनों भाइयोंको सब भांतिके कवच अस्त्र, शस्त्र और कुदाल पिटारी जो कुछ दशरथजीने दिये वह दोनों भाइयोंने सब ले लिये ॥ १५ ॥ तदनंतर रामचन्द्र व लक्ष्मणजी, अस्त्र, कवच, बख्तर और चमडेसे मढी पिटारी आदि रथमें रख आपभी उस सोनेके बने हुये रथपर शीघ्रतासे चढे ॥ १६ ॥ जब रामचन्द्र व लक्ष्मण और सीताजी यही तीनों जन रथपर सवार होगये तब वायुके समान वेगवान् घोडे सुमंत्रजीने हांके ॥ १७ ॥ जब कि महावन की ओर बहुत वर्षोंके निमित्त रथ चलता हुआ । उस समय नगरके वासी, सेनाके मनुष्य और जितने भर अयोध्यामें रहनेवाले मनुष्यथे सभी मूर्च्छित होगये ॥ १८ ॥ चारों ओरही हाहाकार होरहाथा हाथी सब क्रोधमें भरकर इधर उधर अनिवाहित कूदने फांदने लगे घोडे हींसने लगे सब जगहही भयानक कोलाहल होने लगा ॥ १९ ॥ तब नगरके बालक, वृद्ध, वनिता सबही अतिशय कातर हुये, जैसे कि गर्मीके तापसे तपा हुआ मनुष्य जल देखकर उसकी ओर बढताहै वैसेही उस समय अयोध्याके सब स्त्री, पुरुष रामचन्द्रजीके पीछे२ दौडे ॥ २० ॥ कोई २ रथके आगे व कोई२ पीछे बगलमें लिपट गये और आंसूभरे मुखसे सब एक स्वरसे सुमंत्रजीसे कहने लगे ॥ २१ ॥ कि हे सुमंत्रजी तुम घोडोंकी राश थामकर उनको धीरे२ चलाओ हमारी इच्छा रामचंद्रजीका मुखचंद्रदेखनेकीहै, क्योंकि फिर बहुत दिनोंतक इस मुखका दर्शन न होगा ॥ २२ ॥ हम सब लोगोंके विनारिस्ते रामचन्द्रजीकी माताका हिया निश्चय लोहेका बना हुआहै, यदि यह न होता तो ऐसे सुकुमाररामचन्द्रजीके वन जानेके समय वह हिया जिया क्यों नहीं फटा ! ॥ २३ ॥ अहो धर्मपरायण सीता देवी परछाईं की समान रामचन्द्रजीके संग वनको चलकर कृतकार्य हुई हैं । सूर्यकीप्रभा जिसप्रकार सुमेरु पर्वतको नहीं छोडती वैसेही इन्होंने किसी प्रकार रामचंद्रजीका साथ नहीं छोडा ॥ २४ ॥ अहो ! लक्ष्मणका भी जन्म सार्थकहै जिन्होंने देवतुल्य सत्यवादी अपने भ्राताको न छोड करके उनकी सेवा का भार ग्रहण किया है और उनहीके संग वनको जातेहैं ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण ! तुमसे अधिक क्या कहैं तुमने जो रामच

द्रजीके साथ वन जाने में स्थिर मति कीहै सो यह तुम्हारी बुद्धि प्रशंसा करनेके योग्य है; तुमने जिस मार्गका अवलम्बन कियाहै, वास्तवमें उससे तुम्हारी उन्नति और स्वर्गकी प्राप्ति होगी ॥ २६ ॥ सबही यह वार्त्ता कहते २ रोने लगे, और सबही अनुरागके मारे रामचंद्रजीके पीछे २ दौडे यात्राके समय बहुतेरा अमंगलके डरसे आंसुओंको रोका पर आंसुओंको रोक न सके ॥ २७ ॥ इस ओर महाराज दशरथजीभी सब स्त्रियोंके सहित रुदन करते हुये दीनभावसे पैदलही रामचंद्रजीके देखनेको दौडे, सबही शोकसे व्याकुल और घबडाये हुयेसे हो रहेथे सबहीके मनमें रामचन्द्रजीके दर्शनकी लालसा लग रहीथी ॥२८॥ हाथीको संकलोंसे बँधा हुआ देखकर हथिनी जिस प्रकार व्याकुल हुआ करतीहै वैसेही आगे केवल स्त्रियोंका अति जोरसे रोना सुनाई आने लगा ॥ २९ ॥ उस समय रामचन्द्रके पिता राजा दश-रथजी ऐसे जान पडतेथे मानों शोककी मूर्त्तिहैं राजा श्रीमान् थे परन्तु उस समय शोभित न हुये, राहु करके ग्रसे हुये चंद्रमाकी समान उस समय उन पर उदासीनता छा रहीथी ॥३०॥ अचिन्त्यात्मा साक्षात् ईश्वर श्रीमान् दशरथपुत्र श्रीरामचंद्रजी शीघ्रतासे रथ चलानेके लिये सुमंत्रको शीघ्रता कराने लगे ॥ ३१ ॥ अब सुमंत्रजी बडे संकट में पडे; एक तरफतो " जल्दी रथ चलाओ " ऐसी रामकी आज्ञा, दूसरी ओर " रथको धीरे २ चलाओ " यह सब मनुष्यों की विनती, अतएव एकही सम-यमें दोनों कार्योंका पूरा करना सुमंत्रके लिये कठिन हुआ ॥ ३२॥ रामचन्द्रजीके वन जानेके समय रथके पहियोंसे उडी हुई धूलने जो पृथ्वीको ढक लियाथा; अब इस समय पुरवासी लोगोंके अश्रुधारासे भीग कर वह धूल कीच होगई ॥ ३३ ॥ जिस समय रामचन्द्रजी वनको चले उस समय अयोध्यापुरी रोनेके शब्दसे और आंसु-ओंके शब्दसे परिपूर्ण होगई सबही हाहा कारका घोर शोर करते हुये अचेत हो गये। इस प्रकार उस समय सबही पर बहुत कष्ट पडा ॥३४॥ पुरनारियोंके नेत्रोंसे बराबर आँसुओंकी धारा वह रहीथी ! जैसे कि मछलियोंके खलबला देनेसे जल उछलकर कमलके पत्तोंपरहो अलग गिरनेके समय वहताहै इसी भांति सब स्त्रियें फूट २ कर रो रहीथीं ॥ ३५ ॥ वृद्ध महाराज दशरथजीके सब मनुष्योंकी बराबर शोचनीय अव-स्था, और रामचंद्रजीके लिये अपनीही समान सबको व्याकुल देख जड कटे हुये पेडकी समान दुःखितहो पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ३६ ॥ इसके पश्चात् रामचंद्रजीके रथके पीछे जो सब मनुष्यथे वह सब महाराज दशरथजी की दुःखपूर्ण यह दशा देख

हाहाकार कर उठे ॥ ३७ ॥ राजाको सब रनवास की स्त्रियों सहित दुःखित और व्याकुल देखकर, कोई कोई " हा राम ! " और कोई २ " हा कौसल्या " ऐसा कह कर शोक प्रकाश करने लगे ॥ ३८ ॥ अनन्तर दशरथपुत्र श्रीरामचन्द्रजीने पीछेको दृष्टि फेरकर देखा कि पिता और माता मेरे पीछे २ पैदलही चले आतेहैं और वह शोकसे व्याकुल और विषादसे ग्रसितहो रहेहैं ॥ ३९ ॥ जंजीरसे बंधा हुआ घोडीका बच्चा जिस प्रकार अपनी माताको देखने नहीं पाता वैसेही रामचन्द्रजी सत्यके बंधनसे बंध रहेथे उसकारण क्या करें माता पिताकी यह अवस्था देखकरभी फिर उधरसे दृष्टि फेरली ॥ ४० ॥ सवारियों में चलने फिरने का अभ्यास जिनकोहो-रहाहै जोकि सुखके सिवाय दुःख क्या पदार्थ है इसके मर्मकोभीनहीं जानते उनकोपैदल चले आते देखकर रामचन्द्रजीने सुमंत्रसे कहाकि रथ जलदी चलाओ॥ ४१ ॥ वे माता पिताका दुःख देखनेमें समर्थ न हुये अंकुश लगानेसे मतवाले हाथीकी दशा जिस प्रकार होतीहै वैसेही पिता माताकी यह दशा देखकर रामचंद्रजीकी दशा हुई ॥ ४२ ॥ जिसका छोटा बच्चा गोष्ठमें बँधाहो ऐसी गाय दिनभर जंगलमें रहकर संध्याको जिस प्रकार गोठकी ओर दौडती है, वैसेही कौसल्याजी स्नेहके मारे रथको आगे बढा जाता हुआ देख रामकी ओरको दौडीं ॥ ४३ ॥ उनकी दोनों आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगी । वह " हा राम " "हा सीते" "हा लक्ष्मण" यह कह-कर शोकके मारे व्याकुल हो रथके पीछे २ दौडने लगीं ॥ ४४ ॥ * रामचन्द्र-जीने एक वार फिरकर देखा कि माता कौसल्याजी राम, लक्ष्मण, सीताजीको पुकार रोदन करतीं हुईं गिरतीं पडतीं भ्रमतीं हुईं चलीं आतीं हैं ॥ ४५ ॥ उस समय महा-राज दशरथजी तो सुमंत्रसे कहने लगे कि रथको रोको और रामचन्द्रजीने सुमंत्रसे कहाकि रथको बहुतही शीघ्र चलाओ, उस समय सुमंत्रजी ऐसे कर्त्तव्यहीन होगये, जैसे कि युद्धके लिये तैयार खडी दो सेनाओंके बीचमें कोई पुरुष जाकर किंकर्त्त-व्यविमूढ होजाताहै ॥ ४६ ॥ इस समय रामचंद्रजीने कहा कि हे सुमंत्र ! यदि राजा तुम्हैं घुडककर या धमकाकर कहैं कि तुमने रथ क्यों नहीं थमाया, तब तुम

---

* (प्रजा दुःख वर्णन) रागनी गौड मल्हार अथवा श्याम कल्याण ताल तीन ॥ जब हरि गमन कियो कानन को ॥ आस्ताई ॥ पुर नरनारि सकल व्याकुलहैं चले जात प्रभुके दरशनको ॥ विकल होय सब कहत परस्पर राखिलेओ कोइ राम लखनको ॥ तुमबिन नाथ जियें हम कैसे ! दरशन दो निज आरत जनको ॥ १ ॥

कह देना कि रथके जानेका शब्द इस प्रकार हो रहाथा कि मैंने आपकी आज्ञाको नहीं सुना। परन्तु हमारी बात न मानकर जो रथ शीघ्र न चलाओगे तो रथका न चलाना पापका मूल होगा और यहां फिर बडा रोनाधोना होगा, और मुझे बडा कष्ट भोगना पडैगा ॥४७॥ सुमंत्रजीने रामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुनकर रथके साथ जो आदमी आयेथे उनको विदा किया और जिस प्रकार रथ चल रहाथा उससे भी बडे वेगसे हांका ॥ ४८ ॥ उस समय राजाके कुटुम्बके व और दूसरे सब मनुष्य रामचन्द्रजीकी मनही मनमें प्रदक्षिणा करके लौटे तो सही, पर उन सबके मन रामकी ओर ही दौडते रहे ॥ ४९ ॥ उस समय महाराज दशरथजीके मंत्री व सेवक महाराजको समझाने लगे कि हे प्रभो! जिसके फिर आनेको आशा होतीहै उसको दूरतक पहुँचाने नहीं जाया करतेहैं ॥ ५० ॥ महाराज दशरथजी मंत्री आदि सेवकोंके मुखसे यह व्यवस्था सुनकर सब स्त्रियोंके सहित रामचन्द्रके साथ न जाकर लौटे। वह कुछ देरतक विषादित मनसे एकटक रामचन्द्रके मुखकी ओर देखते रहे उस समय महाराज दशरथजीके सब शरीरमें पसीना आगयाथा ॥५१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१.

हाय जोडकर विदा होते हुये पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके चले जानेपर रनवासमें रहनेवाली स्त्रियोंका अंतःपुरमें घेर हाहाकार उठा ॥ १ ॥ वह सब यही एकसाथ कहने लगींकि जो अनाथोंके, दुर्बलोंके तपस्वियोंके, और शोचनीय मनुष्योंके एक मात्र सहारे और आसरेहैं वही रामचंद्रजी इस समय कहां जातेहैं ॥ २ ॥ मिथ्या दोष देने परभी जो क्रोधित नहीं होते, जिन्होंने क्रोधको तो एकबारही त्याग दियाहै, जो कि क्रोध किये हुये मनुष्यको प्रसन्न करनेवाले हैं वह जो सुख दुःखको समान समझतेहैं वह रामचन्द्रजी इस समय कहां जातेहैं ॥ ३ ॥ जो महात्मा तेजवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी गर्भ धारिणी माता कौसल्याजीके बराबर हमें समझतेहैं वह अब कहां जातेहैं ॥ ४ ॥ जो सब संसारके रक्षा करनेवालेहैं, वह कैकेयीके सताये हुये महाराजके कहनेसे इस समय कहां ॥ ५ ॥ हाय निश्चयही राजा ज्ञानशून्य हुयेहैं यदि ऐसा न होता तो सब

जीवोंके आश्रयस्थानस्वरूप धर्मवान् सत्यसन्ध रामचन्द्रजीको वनमें क्यों पठाते॥६॥ यह कह राजा दशरथजीकी सब रानियें विन बच्चेकी गायोंके समान व्याकुल हुईं और शोकके मारे ऊँचे स्वरसे रुदन करने लगीं ॥ ७ ॥ रनवासमें पडे हुये वह हाहाकार सुन करके राजा बहुतही दुःखित हुये, उनके हृदयमें पुत्रशोकका प्रवाह प्रवाहित होने लगा ॥८॥ उस समय रामचंद्रजीके विरहमें व्याकुल होकर ब्राह्मणोंने अग्निमें आहुति न दी, विनाही ऋतुमें वादर आगया जिस्से कि सूर्य छिपगये, हाथियोंने अपनी २ झूलैं गिरादी गायोंने बछिया बछडोंको दूध न पिलाया ॥९॥ जीवलोक-की वार्त्ता तो एक ओर रही वह तो कहें क्या त्रिशंकु, मंगल, बध और बृहस्पति व सब शनैश्चरादिक क्रूर ग्रह रात्रिको वक्री हो चंद्रमाके निकट आय थर थर कांपने लगे ॥ १० ॥ सब नक्षत्र तेजहीन हो गये सब ग्रहोंकी प्रभा जाती रही व विशाखा आदि नक्षत्र भी धूमके सहित प्रकाशित होने लगे ॥ ११॥ प्रलयके कालके समान प्रचंड पवन चलने लगी, जिस्से समुद्रमें भी बडी २ तरंगे उठने लगीं ऐसा विदित हो ताथा कि मानों पृथ्वी डूबाही चाहती है अयोध्यापुरी तो थर थर कांपने लगी, मानो उलटना चाहती है यह सब वार्त्ता रामचन्द्रजीके वन जानेके समय हुई ॥ १२ ॥ सब दिशा व्याकुल हो गईं तिनमें अँधियारा फैल गया, ग्रह या नक्षत्र किसीका प्रकाश आकाशमें न रहा ॥ १३ ॥ सब नगरवासी नर नारी बालक वृद्धोंका मन अक-स्मात् हीन होगया, आहार या विहार करनेमें किसीका मन चलायमान नहीं हुआ ॥१४॥ सबही शोकसे संतापित होकर गहरे २ श्वास लेने लगे राजा दशरथजीके ऊपर कोप करनेके सिवाय उन लोगोंकी और चेष्टा नहीं थी ॥ १५॥ जो लोग-कि राजमार्गमें खडेथे वह भी उच्च शब्दसे रोने लगे उस समय किसीने भी सुखका मुख नहीं देखा अब एक२ की अवस्थाको क्या कहैं सारा संसारही उस समय महा व्याकुलथा ॥ १६ ॥ उस समय वायु अनुकूल भावसे शीतल मंद सुगन्ध नहीं चल ताथा न चंद्रमाकी सौम्यमूर्त्ति दृष्टि आतीथी न सूर्य नारायणकी किरणोंमें कुछ तेज रह गयाथा सब जगत् व्याकुल होगया ॥ १७ ॥ अधिक क्या कहैं उस समय पुत्रोंने पिता माताका ध्यान छोडदियाथा भाई भाईको भूल गयाथा स्त्रियोंने स्वामी-की चिंता दूर कर दीथी और सबकोई सबको छोड छाँडकर एक रामचन्द्रजीहीके ध्यानमें मग्न हो गये ॥ १८ ॥ जो कि रामचन्द्रके मित्र और सगे थे वह दुःख और शोकके भारसे दबगये, और उनका ज्ञान जातारहा और विहारादिक की तो क्या

चलाई उन्होंनें नींद तकका त्याग कर दिया ॥ १९॥ उस समय वह अयोध्या पुरी रामचन्द्रजीके विरहमें इस प्रकार कांपी जैसे कि वज्र धारण करने वाले इन्द्रके वज्रसे पहाडों सहित यह पृथ्वी कांप गईथी नर नारियोंकी दशातो जाने दीजिये भय शोकसे समाकुल वह पुरी हाथी घोडे और वीरोंके हाहाकार व आर्त नादसे पूर्ण होगई ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां एक चत्वारिंशः सर्गः॥४१॥

द्वाचत्वारिंशः सर्गः ४२.

रामचन्द्रजी जब वनको रथ पर बैठ कर चले गये जबतक रथके पहियोंसे उडती हुई धूल दिखाई दी तबतक महाराज दशरथजी उसी ओरको देखते रहे ॥ १ ॥ जबतक महात्मा राजा दशरथजी धर्मात्मा अपने पुत्रको देखतेही रहे तबतक मानो उनका शरीर पृथ्वी पर बढताही जाताथा क्योंकि उठ २ कर बार २ उनको देखतेही जाते थे ॥ २ ॥ किन्तु जब रामचन्द्रजीके पहियों की धल न देखी और प्यारे पुत्र दृष्टिमार्गके अतीत होगये तब महाराज दशरथजी विषादित और अधीरहो पृथ्वीमें अचेत होकर गिर पडे ॥ ३॥ अनन्तर देवि कौसल्याजी उन्हें उठाकर और उनका दहिना हाथ पकडकर साथ चलने लगीं और कैकेयी महाराज दशरथजीका बांया हाथ पकड उनके साथ २ हो ली ॥ ४ ॥ नीतिशास्त्रके जानने वाले नियम युक्त धर्मपरायण महाराज दशरथजी दुष्ट कैकेयी को बांया हाथ पकडे हुये देखकर व्यथित हो कातर वचनसे बोले ॥ ५ ॥ रे पापीयसि ! तू मेरे अंगोंको मत छुवे, मैं तुझको अपनी स्त्री अपनी सखीके भावसे नहीं देखा चाहता तू मेरी कोई नहीं है ॥ ६ ॥ अधिक क्या कहूं जो कि सब तेरे दास दासी हैं वह आज से मेरे नहीं और मैं भी उनका नहीं मैं जानताहूं कि तू सदा अपना स्वार्थ साधन करने वाली है और धर्मसे भी वर्जित है बस इस कारण मैंने तेरा त्याग करदिया ॥ ७ ॥ मैंने अग्निकी प्रदक्षिणा करके जो तेरा पाणिग्रहण कियाथा सो इस लोकमें वा परलोकमें मैं उसके फलकी आशा नहीं करताहूं इसकारण तुझे छोड दिया क्योंकि जब मैं जीनाही नहीं चाहता तब स्त्रीका क्या प्रयोजन? ॥ ८ ॥ यदि यह अक्षय राज्य प्राप्त करके भरतजीको संतोष होजाय अथवा रामचंद्रजीको वन भेजनेमें उनकी भी सलाह होतो मेरे मरनेके पीछे मेरे लिये क्रिया पिंडादिक भरतजी न करैं, और न उनके दिये पिंडादिक मुझे पहुंचें ॥ ९ ॥ अनन्तर शोकसे व्याकुल हुई देवी कौसल्याजीने

धूलमें लोटते हुये महाराज दशरथजीको उठाया और घरकी तरफको लौटीं ॥ १० ॥ अपनी इच्छानुसार ब्रह्महत्या करनेसे वा जलते हुये अँगारे पर हाथ धरनेसे जिस प्रकार जल कर पछिताना होताहै वैसे ही रामचंद्रजीकी चिन्ता करते हुये महाराज दशरथजीकी अवस्था होगई ॥ ११ ॥ लौटनेके समय राजा बारंबार घूम २ करके रामचंद्रजीकी ओर दृष्टि करते जातेथे जितने देखा उतनेही घबडाये उस समय राजाका रूप राहुसे ग्रसेहुए सूर्यकी नाई अच्छा नहीं लगताथा ॥ १२॥ राजाने यह विचार किया कि अब प्राणोंकी समान प्यारे बेटा नगरके बाहर पहुँच गये होंगे यह समझ कर बडाही बिलाप कलाप किया और मनही मन कहने लगे कि ॥ १३ ॥ हाय! जो घोडे हमारे रामको सवारी में बैठाकर लेगयेहैं उनके तो चरण चिह्न राहमें देखतेहैं परन्तु हमारे प्यारे दुलारे महात्मा रामचंद्रका मुख अब हमको नहीं दीखता ॥ ॥ १४ ॥ जो सुपुत्र श्रीरामचंद्र चन्दनादि सुगन्धित वस्तु अंगोंमें लगाय सुख समेत उत्तम तकिया शिरके नीचे धर श्रेष्ठ शय्यापर शयन करतेथे और सुन्दर स्त्रियें कोई उन पर पंखा हिलातीं कोई चँवर करतीथीं ॥ १५ ॥ आज वही क्या! प्राणप्यारे पुत्र कहीं पेडकी छायाका आश्रय ग्रहण करके काठ या पत्थरकी तकिया शिरके नीचे लगाकर रहैंगे ॥ १६॥ जिस प्रकार पहाडकी तंग जगहसे हाथी उठताहै वैसेही रामचंद्रजी इस समय दास दासियोंके न होनेसे दुःखित धूल वदनमें लगी हुई पृथ्वी से ऊधी श्वासें लेते हुये उठैंगे ॥ १७ ॥ वनचारी पुरुष गण इस समय दीर्घ बाहु लोकनाथ रामचन्द्रजीको अनाथकी नाईं पेडकी छायाको त्याग करके जाते हुये देखेंगे ॥ १८ ॥ महाराज जनकजीकी प्रियकन्या जानकी जिन्होंने सदा सुखही पायाहै आज कांटा पत्थर आदि उनके पैरमें लगेंगे और तोभीं थककर उनको चलनाही पडैगा ॥ १९ ॥ मैं भली प्रकार समझा हुआहूं कि जानकी वनवासके क्लेशको कुछभी नहीं जानतीहैं सो हत्यारे जीवोंके गर्जनेका घोर शोर जिसके सुननेसे रुयें खडे होजातेहैं सुनकर उनके मनमें अवश्य भय उत्पन्न होगा ॥ २० ॥ अच्छा कैकेयी! अब तेरी कामना पूर्ण हुई तू विधवा होकर यहां का राज्य पालन करती रह परन्तु मैं रामचंद्रजीके विरहमें एक क्षणभी जीवन धारण नहीं कर सकता ॥ ॥ २१ ॥ इस प्रकार राजा दशरथ सब लोगोंके साथ २ विलाप करते जैसे कि कोई मृत्यु पर उतारू हो स्नान किये मरनेको तैयार हो दुःखसे भरी अयोध्या पुरीमें प्रवेश करते हुये ॥ २२॥ पुरीमें प्रवेश करके देखा कि

वहांके सब घरोमें शूनशान दुकानें सब बंद होगईहैं वहां के लोग सब थके मांदे दुर्बल दुःखितहैं राजमार्गमें कोई कोई मनुष्य चले जातेथे बहुत नहीं हाट बाट चौकमें कोई आदमी नहीं घूमतेथे ॥ २३ ॥ राजा दशरथ अयोध्या नगरीकी यह शोचनीय अवस्था देख और रामकी चिन्ता करते २ कातरहो सूर्य जिस प्रकार बादलमें प्रवेश करताहै इसी भांति अपने राज भवनमें प्रवेश करतेहुये ॥ २४ ॥ जैसे विहंगमराज गरुडजी किसी कुंडके सर्पोंका संहार कर डालैं और वह कुंड शब्दहीन होजाय, इसही प्रकार रामचंद्र, लक्ष्मण और सीताके विरहसे उस गृहकी अवस्था होगई ॥ २५ ॥ अनन्तर महीपाल दशरथजीने गद्गद वाणीसे अतिक्षीण गलेसे मधुर स्वरसे धीरे २ द्वार का मार्ग दिखलाने वाले प्रतीहारियोंसे कहा ॥ २६ ॥ जहां रामचंद्रकी माता कौशल्याजी रहतीहैं तुम लोग हमें उसी मन्दिरको ले चलो क्योंकि और स्थान पर रह कर मेरे हृदयको शान्ति नहीं होगी ॥ २७ ॥ राजाकी ऐसी आज्ञा सुन द्वारपाल लोग महाराज दशरथको श्रीकौशल्याजीके मन्दिरमें नम्रतासे ले आये ॥ २८ ॥ यद्यपि महाराज दशरथजी कौशल्या जीके मंदिरमें प्रवेश करके सेज पर लेट तो रहे परन्तु किसी प्रकार उनका मन स्थिर न होसका ॥ २९ ॥ राजा दशरथजी को दो पुत्र और पुत्र वधू विहीन होनेसे वह भवन चंद्रमाहीन आकाशके समान बोध होने लगा ॥ ३० ॥ उस समय महाराज दशरथजी अपने घरको इस प्रकार श्रीहीन देखकर दोनों हाथ ऊपरको उठा यह कहकर रोने लगे कि हा वत्स रामचंद्र ! तुम क्या हम दोनोंको छोड करही चले गये ॥ ३१ ॥ भाई रामचंद्रके यहां आनेतक जो लोग जियेंगे वह यहां ही रहैं वह रामचंद्र जीको देख लपटाय २ मिलभेंट कर सुखी होंगे, हमें क्या हमतो जियेंगेही नहीं ॥ ३२ ॥ अनन्तर आपको काल रात्रिकी समान रात्रि होआई, जब आधीरात बीती तब कौशल्याजीसे राजाने कहा ॥ ३३ ॥ हे राजमहिषि ! मैं तुम्हें नहीं देख सकताहूं अत एव तुम मेरा अंग छुवो मेरी दृष्टि रामके संग वनको चली गई, वह अभीतक वहांसे नहीं लौटीहै ॥ ३४ ॥ तब देवी कौशल्याजीने महाराज दशरथजीके निकट बैठ उनको शयन करादिया और उनको रामचंद्रजीकी चिन्तामें व्याकुल देखकर बहुत ही दुःखित हुई, और ऊंचे २ श्वाससे आपभी विलाप करके रोनें लगीं ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०अयोध्या०भाषायां द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३.

अनन्तर पुत्रके शोकसे दीन हुई देवी कौशल्याजी विस्तरे पर लेटे हुये शोकसे व्याकुल महाराज दशरथजीसे यह बोलीं ॥ १ ॥ कि हे राघव शार्दूल महाराज ! कुटिलस्वभाव कैकेयी रामचंद्रजीके प्रति विष त्यागन करके केंचलीको छोडे हुये सर्पिणी की समान जहां चाहे वहां फिरेगी यह वही बात हुई कि कोई सांपिनीको पाले और वह अपने स्वामीहीको काटे ॥२॥ यह पापिनी कैकेयी रामको वन पठाय अपना मनोरथ सिद्ध कर चुकीहै घरमें किसीके सांप रहताहै और उस घरमें रहने वालोंको जो सदा डर रहताहै वैसेही यह कैकेयी हम सबको महादुःख देगी और डर दिखावैगी॥ ३ ॥ यदि रामचंद्रजी घरपर रहते और नगरमें रहकर भिक्षाभी मांगकर गुजारा करते अथवा कैकेयीके दास होकरभी रहते तोभी मेरे लिये उनके इस वनवास जानेसे तो अच्छाथा ॥ ४ ॥ यज्ञ करने वाले अग्निहोत्री लोग जिस प्रकार पर्वके दिन राक्षसोंका यज्ञभाग निकालकर फेंकदेतेहैं वैसेही अपनी इच्छानुसार कैकेयीने रामचंद्र जीको यहांसे निकलवाया ॥ ५ ॥ गजकी समान चाल चलनेवाले धनुर्बाण धारण किये प्रलंबबाहु वीर रामचंद्रजी अब भैया लक्ष्मण और भाभी जानकीके सहित वनमें पहुँच गये होंगे ॥ ६ ॥ हाय ! वह वनके क्लेशोंको कुछभी नहीं जानतेहैं उन मेरे पुत्र को कैकेयीकी सलाहमें आकर तुमने वनको पठाया । प्राणनाथ ! कहो तो सही इस समय उनकी क्या दशा होगी ॥ ७ ॥ * उनके संगमें धन रत्नादि कुछभी नहींहैं, और विशेष करकै उनकी इस समय युवा अवस्थाहै, तुमने ठीक भोग और सुख करनेके समय उनको वनमें भेजा, मैं कह नहीं सकती कि वह किस प्रकार इस समय कंद मूल फलादि खाते पीते समयको बितावैंगे ॥ ८ ॥ मेरे भाग्यमें क्या ऐसा भी कोई दिन होगा कि वत्स रामचंद्रजीको लक्ष्मण और जानकी सहित यहांपर आये हुये देख शोक ताप छोड आनन्दित हूंगी ॥ ९ ॥ अहो ! वह कौनसा दिन होगा कि अयोध्यावासी दयावान वीर रामचन्द्रजीके आने की वार्त्ता श्रवण करके ध्वजा पाताकासे इस नगरीको सजावेंगे ॥ १० ॥ कब नर शार्दूल रामचंद्र व लक्ष्मणजीका आगमन संवाद श्रवण कर पूर्णमासीके समुद्रकी समान अयोध्या उमडा चलैगी ? ॥ ११ ॥ वृषभ जिस भांति संध्या समय ग्राममें प्रवेश करनेके समय गायको आगे लेकर चलताहै वैसाही सीतानाथ सीताको आगे-

---

* चौपाई--राम लषणकी सुरत सँभारे । कौशल्या पावत दुख भारे ॥

कर कब रथमें बैठ अयोध्या पुरीमें प्रवेश करेंगे ? ॥ १२ ॥ किस दिन शत्रुओंके नाश करने वाले राम लक्ष्मणको देखके अयोध्याके मार्गोंमें टिके हुये प्राणी धानकी खीलैं अक्षतादि उनके शिरपर वर्षावेंगे ॥ १३ ॥ किस दिन देख पाऊंगी कि हमारे दो पुत्ररत्न कानोंमें कुंडल पहरे कांधेमें धनुष और हाथमें खङ्ग धारण किये शिखर सहित पर्वतकी समान अयोध्यामें आ रहेहैं ॥ १४ ॥ कब मेरे दोनों बारे ब्राह्मण और ब्राह्मणोंकी कन्याओंको फल, मूल प्रदान करके प्रसन्नतासहित उनकी प्रदक्षिणा करेंगे ? ॥ १५ ॥ जल धारा जिस प्रकार सबहीको सन्तुष्ट करतीहै वैसेही कब बुद्धि व अवस्थासे परिपूर्ण देवताओंकी समान रामचंद्र सीताको संग लेकर सबको सन्तुष्ट करते हुये उपस्थित होंगे ॥ १६ ॥ मुझे निश्चय बोध होताहै कि कुकर्म करने वाली कैकेयीने दूध पीनेके लिये उत्सुक हुये बच्चोंकी माके स्तन काटडाले ॥ १७ ॥ हे महाराज ! सिंह जिस प्रकार गायके बच्चेको उठा ले जाताहै वैसेही तुमने मुझ पुत्र वत्सलाको बे बच्चेकी कर दिया मुझको ऐसा बोध होताहै कि माताका स्तन काटने वाले पातकके वशहो कैकेयीने बल पूर्वक यह कार्य कियाहै कैकेयी रूपी सिंहनीने मेरे पुत्र वनको भेज दिये ॥ १८ ॥ हे महाराज ! रामचंद्र मेरे इकलोते पुत्रहैं ? परन्तु मेरे उस एकही पुत्रमें सब शास्त्रोंका ज्ञान और बहुत गुण एकत्र हुयेहैं अतएव ऐसे पुत्रके अनायास वन जानेसे मैं किस प्रकार प्राण धारण करूंगी ॥ १९ ॥ अधिक क्याकहूं यदि अपने प्रिय पुत्र राम और महाबलवान लक्ष्मणको न देखने पाऊंगी तो मेरा जीवन धारण करना किस कामका है ॥ २० ॥ अधिक कहनेसे क्याहै जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतुमें प्रचंड मार्तण्ड पृथ्वीको दग्ध कर देताहै वैसेही पुत्रके विरह की शोकानल मुझे तपा रहीहै ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा आ० अयोध्याकांडे भाषायां त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४.

धर्मशीला सुमित्राजी सब रानियोंमें श्रेष्ठ कौशल्याजीको इस प्रकार विलाप करते देखकर धर्मके समर्थन किये हुये वचनोंसे धर्म युक्त वचन बोलीं ॥ १ ॥ हे देवी ! तुम्हारे पुत्र राम पुराण पुरुष पुरुषोत्तम हैं और वह स्वभावसेही सबगुण युक्तहैं अतएव उनके लिये दीन भावसे रोना और यह विलाप क्यों करती हो ? ॥ २ ॥ हे आर्ये ! तुम्हारे पुत्र महाबली सत्यके पालने वाले हैं पिताजीका वचन पालन करने

हीके लिये वह महा बलवान रामचंद्रजी राज्य परित्याग करके वनवासी हुयेहैं ॥ ३ ॥ परलोकमें जिसके करनेसे फल मिलताहै, सज्जनोंके किये हुये उस धर्ममें जब कि रामचंद्रजीका स्वाभाविक अनुरागहै तब उनके लिये शोक करना किसी भांति उचित नहीं है ॥४॥ फिर लक्ष्मणके लियेभी शोच न कीजिये क्योंकि उत्तम धर्ममें लगेहैं जो बडे भइया पुरुषोत्तम श्रीराम चंद्रजीकी सेवा करनेके लिये उनके संग वनको चले गये इस्से लक्ष्मणजीको सब भांति लाभहीहै क्योंकि लक्ष्मणजी सब प्राणियों पर दया रखतेहैं और रामचंद्रजी भली भांति उनके शील स्वभावको जानतेहैं इस्से दोनों भ्राताओंमें प्रीति बढती रहैगी ॥ ५ ॥ नित्य २ सुख भोग करने वाली जानकी जीको यद्यपि वनमें दुःख मिलेगा परन्तु जब कि, वह रामचं-जीके संग वनको गईहैं तब उनको भी दुःख पानेकी कुछ संभावना नहीं है ॥ ६ ॥ सर्व लोकोंका पालन करनेवाले रामचंद्रजी तीन लोकमें जो अपनी अनुपम कीर्ति स्वरूप पताका उडारहेहैं कि पिताकी आज्ञासे राज्य छोड वनको चलेगये, क्या इस्से सत्यमें निष्ठा रखने इन्द्रियोंके जीतने वाले रामचंद्रजीका गौरव भली भांति प्रचारित नहीं होगा ॥ ७ ॥ अधिक कहनेमें क्याहै तेज तापको फैलाने वाले सूर्य भगवान् भी रामचंद्रजीकी पवित्रता और माहात्म्य जानकर उनके ऊपर अपनी तीक्ष्ण किरणोंकी सामर्थ्य जनानेमें साहसी नहीं होंगे यह मुझे पूरा विश्वासहै॥८॥सर्व कालोंमें सुखकी उपजाने वाली पवन वनमें छूट कर न अति गर्म न अति ठंढी हो रामचंद्रजीकी सेवा करती रहैगी ॥ ९ ॥ रजनीपति चंद्रमा पाप रहित रामचंद्रजीको लेटा हुआ देख रात्रि काल में पिताकी समान सुख देनेवाली किरणें वर्षाकर उनके अंगोंमें लिपट आनन्दित करैगा ॥ १० ॥ फिर जिन श्री रामचंद्रजीको ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जीने तिमिध्वजके पुत्र सुबाहु निशाचरके मरनेके पीछे अनेक दिव्यास्त्र दिये॥ ११॥ वही वीर कुल चूडामणि रघुराज रामचंद्रजी अपनी भुजाओंके बलसे रक्षित होकर निर्भयहो घरकीही समान वनमें रहैंगे. ॥ १२ ॥ जिनके शराघातसे शत्रुलोग रण स्थलमें सो जातेहैं उनकी आज्ञामें पृथ्वी क्यों न रहेगी? सब पृथ्वीको शासन करना तो उनके लिये एक सामान्य वार्ता है ॥१३ ॥ हे देवि ! मैंने रामचंद्रमें जिस प्रकार शरीरकी सुन्दरताई देखीहै, वैसेही उनमें शूरता और कल्याण भावभी देखाहै और इससे ऐसा बोध होताहै कि वह जल्दी वनसे लौटकर राज्यभार ग्रहण करैंगे ॥१४॥ फिर रामचंद्रजी सूर्यकेभी सूर्य अग्निके भी अग्नि, प्रभुकेभी प्रभु शोभाकीभी शोभा,

कीर्तिकेभी कीर्ति, और क्षमाकीभी क्षमाहैं ॥ १५ ॥ वह देवताकेभी देवता और सब प्राणियोंके प्राण रखने वालेहैं । हे देवि ! वह नगरमें या वनमें जहां कहींभी रहैं उनमें कोई किसी प्रकारका दोष नहीं देख सकता॥१६॥फिर मुझको यह भी विश्वासहै कि पुरुषश्रेष्ठ रामचंद्रजी, पृथ्वी, जानकी और विजय लक्ष्मीके साथ बहुत शीघ्र राज पद पर आरूढ होंगे ॥ १७ ॥ अयोध्यामें जितने आदमीहैं सब रामचंद्रजीको वनजाते हुये देखकर रुदन करतेथे और अबतक सब पर शोक छारहाहै ॥ १८ ॥ जो किसीके नजीते जाने योग्य होकरभी चीर वसन धारण करके वनको गये और साक्षात् लक्ष्मीका रूप जानकीजी उनके संग गईहैं फिर उनके लिये शोच क्या करना उनको क्या दुर्लभहै ॥ १९ ॥ धनुष धारण किये हुये लक्ष्मणजी खड्ग तीर व औरभी अनेक भांतिके हथियार लिये उनके साथ गयेहैं फिर उनको किस बातकी कमी होगी; जो चाहियेगा सो लक्ष्मण लादेंगे ॥२०॥ हे देवि ! मैं सत्यही सत्य कह रहीहूं कि तुम यहां फिर रामचंद्रजीको वनवाससे लौटा हुआ देखोगी, मैं समझाऊंहूं कि तुम शोक और मोहको एक वार ही छोडदो ॥२१॥ हे अनिन्दिते ! तुम उदित हुये कलाधरकी नाई अपने पुत्र रामचंद्रजीको शीघ्रही अपने चरणोंमें प्रणाम करता हुआ देखोगी ! अब घबडाओ मत ॥ २२ ॥ तुम निश्चयही राज लक्ष्मीको प्राप्त अभिषेक पाये हुये अयोध्यामें आये रामचंद्रको देख आनन्दाश्रु बहाओगी ॥२३॥ हे देवि ! तुम शोक मत करो किसी भांति भी रामका अमंगल नहीं हो सकता,तुम सीता और अनुज लक्ष्मण सहित रामचंद्रजीको जल्दीही देखोगी ॥ २४ ॥ कहांतो तुम्हें सब घबडाये हुये अयोध्या वासियोंको समझाना चाहिये परन्तु आश्चर्यहै कि तुम स्वयंही व्याकुल होगई, जो हो, अब अकारण शोक प्रकाश करना तुमको उचित नहीं है ॥२५॥ हे देवि ! जब कि रामसे सत्य मार्गमें चलने वाले तुम्हारे पुत्रहैं तब फिर तुम्हें शोक किस बातका. यदि विचार करके देखा जाय तो संसारमें रामचंद्रकी समान कोई साधु पुरुष दृष्टि नहीं आता ॥ २६ ॥ जब कि तुम देखोगी रामचन्द्रजी वनसे लौटकर सब सुहृदोंके साथ तुम्हें प्रणाम कर रहेहैं, तब मेघ मालाकी समान तुम्हारे नेत्रोंसे अवश्यही आनन्दके आंसुओंकी वर्षा होगी ॥ २७ ॥ अधिक क्या कहूं तुम्हारे पुत्र श्रीरामचन्द्रजी जल्दीसे अयोध्यापुरीमें लौट कोमल और मोटे हाथोंसे तुम्हारे चरणोंको दाबेंगे ॥ २८ ॥ सब सुहृदोंके संग प्रणाम कर सामने बैठे हुये पुत्रके ऊपर आनन्द आंसुओंका प्रवाह बरसाओगी जिस प्रकार बादर पर्वतोंके

ऊपर जलधारा वर्षातेहैं ॥ २९ ॥ आनन्द करनेवाली सुमित्राजी जो कि वचन बोलनेमें चतुर और निन्दा रहितथीं इस प्रकारके संतोषित वचनोंसे कौशल्याजीको समझा बुझा चुप होरहीं ॥ ३० ॥ उससमय लक्ष्मणजीकी माता सुमित्राजीके यह संतोष देनेवाले वचन सुनकर दशरथकी पत्नी राममाता कौशल्याजी शोक और दुःखमे शरदकालीन विन पानीके वादरकी समान हीन होगई ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ४५.

पुरवासी गण रामचन्द्रजीसे बहुतही स्नेह करते थे इसी कारण वह सत्य पराक्रम महात्मा रामचन्द्रजीके पीछे २ चले गयेथे ॥ १ ॥ यद्यपि राजा दशरथजी तौ धर्मानुसार किसी भांति लौटे भी परन्तु पुरवासी लोगोंने किसी प्रकार रामचन्द्रजीके रथका पीछा नहीं छोडा ॥ २ ॥ यशस्वी भगवान् गुणवान् रामचन्द्रजी पूर्णमासीके चन्द्रमाकी समान सबही अयोध्यावासियोंके प्यारे थे ॥ ३ ॥ यद्यपि मंत्री आदिक अमात्योंने रामचन्द्रजीको लौट चलनेके लिये वारंवार कहाथा, परन्तु रामचन्द्रजी उनकी बातपर ध्यान न देकर पिताका सत्य पालनेके लिये वनको चलेही गये ॥ ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजीने वन जानेके समय सबको ऐसी प्रिय दृष्टिसे देखदिया मानों नेत्रोंद्वारा पानही किये लेते थे, और फिर अपने पुत्रकी समान प्यारी दृष्टिसे देखकर प्रजासे कहा ॥ ५ ॥ कि, हे प्रजागण ! तुमसब जिसप्रकार हमसे प्रसन्न रहकर जिस भांति आदर सत्कार करते हो सो हमारा कहना मानकर भरतजीके प्रति हमसे अधिक प्रीति और सन्मान प्रगट करना ॥ ६ ॥ कैकेयी नन्दन भरतजी बहुतही सुशीलहैं वह अवश्यही तुम्हारा हित करनेवाले और जो तुम्हारा प्याराहो ऐसा कार्य करैंगे ॥ ७ ॥ भरतजी अवस्थामें तो बालककी समान हैं, पर ज्ञान बलमें वृद्धोंकी तुल्य हैं; जैसा उनमें बल, वीर्य बढा हुआ है वैसेही वह गुणवान भी हैं अधिक कहनेसे क्या है वह भरतजी तुम्हारे सबके पालन करता और राजा होनेके योग्य हैं अतएव उनके राज्यपर बैठनेसे तुम्हारी सब शंकायें छूट जायँगी ॥ ८ ॥ वह युवराज सबही प्रकारसे राज्यपदके योग्यहैं राजामें जो गुण कि, होने चाहियें भरतजीमें मुझसे भी अधिक वह सब गुण वर्तमानहैं; अतएव उनकी आज्ञामें रहना सब भांतिसे तुमको उचितहै ॥ ९ ॥ मेरे वनजानेपर महाराज पिताजीको किसी प्रका-

रका कष्ट न पहुंचे सो मेरे हितके लिये वैसेही कार्य तुम सब करना ॥ १० ॥ जैसे २ रामचन्द्रजी उनको धर्मका उपदेश देतेथे वैसे २ ही प्रजागण चाहते थे कि, रामचन्द्रजी राजा हों तो अच्छा है ॥ ११ ॥ उस समय लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचन्द्रजीने रुदन करते हुये दीन पुरवासियोंको मानो अपनेमें खेंच लिया ॥ १२ ॥ उस समय कई एक ज्ञान वृद्ध, तपो वृद्ध और उमर में भी वृद्ध ब्राह्मण लोग बुढापेके आजानेसे जिनका शिर कांप रहा था वह रामचन्द्रजीके पीछे २ हुये और दूरसे यह वचन बोले ॥ १३ ॥ वह जल्दीमे चलकरभी बुढापेके कारण बहुत दूर न जा सके और कहने लगे हे वेग-गामी दिव्य जातिके घोडो ! तुम अब आगे मत बढो, देखो हमारे कहनेसे लौट आओ। तुम्हें अवश्यही अपने प्रभु रामचंन्द्रजीका हित करना चाहिये ॥ १४ ॥ जितने जीव मात्र हैं सुनतेहैं पर घोडे सबसे अधिक सुनतेहैं; अतएव तुम हमारी प्रार्थनाको सुनो और आगे रथ लेकर मत बढो ॥ १५ ॥ हम जानतेहैं कि तुम्हारे प्रभु रामचन्द्रजीका हृदय अत्यन्त सरल और निर्मलहै; विशेष करके यह दृढ व्रत और वीरोंको धर्मका आश्रय किये हुयेहैं, अतएव तुम इनको वनमें न लेजाकर पुरके भीतर लेआओ देखो कैसेही तुम इनको पुरके बाहर न लेजाना ॥ १६ ॥ बूढे पुरुषोंकी रोय २ यह वार्त्ता श्रवणकर रामचन्द्रजीको बडा दुःख हुआ और वह रथमे उतरकर पैदल चलने लगे ॥ १७ ॥ वह ब्राह्मणोंसे मिलनेके लिये मन्द २ चालसे सीता और लक्ष्मणजी समेत वनकी ओरको चले। सहज २ चलने का कारण यहथा कि ब्राह्मण लोगभी मेरे पास चले आवैं ॥ १८ ॥ वह ब्राह्मणों को पैदल आते देखकर दयाके वश हुये, और रथको थमादिया उस परसे आप उतर पडे वह चाहते तो रथपर बैठ शीघ्रतासे आगे बढ जाते परन्तु उनका नाम तो दीन बन्धु है फिर वह कैसे आगे बढते इसहीकारण ब्राह्मणोंको विमुख न करसके॥ १९॥ तब ब्राह्मण लोगोंने प्रार्थना पूर्ण होनेमें सन्देह जाना क्योंकि अबभी रामचन्द्रजी धीरे २ चलेही जातेथे, फिर सब ब्राह्मण दुःखितहो रामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ ॥ २० ॥ हे राज कुमार ! तुम ब्राह्मणोंके ऊपर सदा कृपा किया करतेहो, इसही कारण हम सब ब्राह्मण तुम्हारे साथही चले आतेहैं, हमारे यज्ञकी सामग्रीभी तुम्हारे पीछेही पीछे आरहीहै और ब्राह्मणोंके ही कंधोंपर रक्खी हुई अरणि आदि अग्निहोत्र कार्भी समान आताहै ॥ २१ ॥ शरदऋतुमें उठे हुये बादरोंकी समान वाजपेय यज्ञ

* चौपाई—सोइ सब भांति मोर हितकारी। जाते रहैं भुवाल सुखारी ॥

करनेसे जो छत्र प्राप्त हुयेहैं और हमारे ऊपर लगे हुयेहैं वह सब आपके पीछे २ आतेहैं ॥ २२ ॥ आपके पास कोई छत्र नहींहै सो धूपके तापसे आपको कष्ट होगा सो हम इन वाजपेय यज्ञसे प्राप्त हुये छत्रोंद्वारा आपकी छाया करेंगे ॥ २३ ॥ हमारी जो बुद्धि सदा वेद मंत्रानुसारही चलतीहै हे वत्स ! वही बुद्धि अब तुम्हारे लिये वनको भेजतेहैं इसे साथ ले जाइये ॥ २४ ॥ जो वेद हमारा परम धनहै, जो सदा हृदयमेंही रहताहै, यदि,हम आपके साथ वनको जायँ तो वही वेद मंत्र हमारी स्त्रियोंके सती धर्मकी रक्षा करेगा और वह सरलतासे गृहस्थींका कर्म किये जायँगी ॥ २५ ॥ अधिक क्या कहैं जब कि हम तुम्हारे साथ वन जानेको तैयार होहैं, तब फिर वन जानेमें संदेहही क्याहै और किसीसे सम्मति लेनेकीभी आवश्यकता नहीं यदि तुम हमारी बात अनुगामी करके धर्मके प्रति न देख हमें छोडही जाओगे तब फिर तुम किस प्रकार धर्मके मार्ग पर आरूढ रह सकोगे ॥ २६ ॥ हे राम ! अब कुछ अधिक कहना नहीं चाहते हम हंसकी समान सफेद बाल शिरपर धारण किये शिरनवा तुमसे प्रार्थना करतेहैं कि तुम वनको न जाओ॥ २७॥ औरभी देखो कि जो सब ब्राह्मण तुम्हारे साथ २ आरहेहैं इनमेंसे बहुतेरोंने यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ कि-याहै, हे वत्स यदि तुम वनके जानेसे न लौटोगे तो इन याज्ञिक ब्राह्मणोंका यज्ञ किस प्रकार पूरा होगा ॥ २८ ॥ औरभी विचार करके देखो कि संसारमें सब प्रकारके जीव तुम्हारी बहुतही भक्ति करतेहैं और वह जीवभी तुम्हें वन जानेसे निवारण कर रहेहैं, सो तुम इस वनमें न जाकर अपने भक्तोंको स्नेहकी दृष्टिसे देखो ॥ २९ ॥ तुम दृष्टि फेरकर देखो तो बहुत ऊँचे पेडोंकी जड पृथ्वीमें दबी हुईहै इस कारण यह नहीं चल सकते, अतएव तुम्हारे साथ जानेमें असमर्थहो वायु वेगसे जो इनकी डा-लियां हिलतीहैं सो तुम्हें वन जानेको निवारण कररहीहैं ॥ ३० ॥ देखो ! देखो! यह पशु पक्षी अपने २ भोजन आदिक चिन्ताको छोड छाँडकर केवल आपके दर्श-नकी कामना किये एकत्र हुये वृक्षोंपर बैठेहैं फिर हम चैतन्योंकी क्या चलाई ॥ ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण गण ऊंचे स्वरसे रुदनकर इस भांति विलाप करते चले आतेथे, कि इतनेमें रामचंद्रजीने देखा कि तमसानदी आगई मानो ब्राह्मणों पै कृपा करके वहभी रामचंद्रजीको वन जानेसे रोका चाहतीहै ॥ ३२ ॥ तब सुमंत्रजीने थके हुये घोडोंको रथसे छोड दिया, और वह घोडे पृथ्वीपर लोटने लगे लोटनेके पीछे घोडोंने पानी पिया और तमसाके निकट तृणादि चरने लगे ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० आदि०वा०अयोध्याकांडे भाषायां पंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६.

इसके पीछे रामचंद्रजी मनोहर तमसा नदीके किनारेपर बैठकर सीताजीकी ओर देखते हुये लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १ ॥ भइया! आज वनवासकी यह पहलीही रात्रिहै सो तुम अयोध्या पुरीकी याद करके कुछ घबडानामत और जो कुछ कन्द मूल फल मिलैं उनको खाकर संतोष करना ॥ २ ॥ वत्स ! तुम देखो तो कि मृग और पक्षी गण अपने २ घोंसलों और माढोंमें आकर इस सूने वनमें कल २ कररहे हैं इस्से ऐसा ज्ञान होताहै कि मानों हमारी यह दशा देख यह सब रोरहेहैं ॥ ३ ॥ आज हमारे पिताजीकी राजधानी अयोध्या नगरी नर नारियों सहित यहां चले आये हुये हम सबको निःसन्देह सोचती होगी ॥ ४ ॥ पिताके, तुम्हारे, हमारे, भरत, और शत्रुघ्नके इन कई जनोंके व्यवहारसे प्रजा बहुतही वश होरहीहै और बहुत गुण होनेके कारण प्रजा इन सबसे प्रीतिभी रखतीहै ॥ ५ ॥ मुझे पिताजी और माताके लिये बहुतही चिन्ताहै, मुझे तो ऐसा जान पडताहै कि वह मेरे लिये दिन रात रोरो कर अन्धे हो जायँगे ॥ ६ ॥ यद्यपि मुझे यह विश्वासहै कि धर्मात्मा भरतजी पिता माताको धर्म अर्थ काम सहित वचनोंसे समझाते बुझाते रहैंगे, परन्तु तोभी मनव्याकुल होताहै॥७॥ हे महाभुजावाले ! भरतजीके शील स्वभावोंका स्मरण मुझे बार२ आताहै और इस कारणसे मैं पिता माताका भी कुछ शोच नहीं करता ॥ ८ ॥ भइया लक्ष्मण पुरुष सिंह तुम तो हमारे संग चले आये यह बहुतही अच्छा किया नहीं तो सीताकी रक्षा करनेके लिये हमें कोई और सहायक ढूंढना पडता ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! यद्यपि वनमें अनेक प्रकारके कंद मूल फलोंकी कमी नहींहै. परन्तु आज जलही पीकर रात्रि बितादें यह मेरी इच्छाहै ॥ १० ॥ लक्ष्मणजीको उपदेश देकर फिर सुमंत्रजीसे बोले कि हे सुमंत्र ! तुम भली भांति घोडोंकी सेवा करना जिसमें किसी प्रकारकी कसर न हो ॥ ११ ॥ अनन्तर सूर्य भगवानके अस्ताचल पहाडकी चोटीपर विराजतेही सुमंत्रजी घोडोंको बहुतसा दाना और घास आदि दे रामचंद्रजीके पास आये ॥ १२ ॥ फिर सुमंत्रजीने सायंकालकी सन्ध्या वन्दनादि समाप्तकर और रात्रिको आई हुई देख लक्ष्मण व रामचंद्रजी दोनों भाइयोंके शयन करनेके लिये स्थान बनाय सोरहे ॥ १३ ॥ तमसाके किनारे पेडके पत्तोंकी बनी-हुई शय्या देखकर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण व जानकीजीके साथ उस पर बैठे ॥ १४ ॥ रामचंद्रजीको व श्रीजानकी जीको श्रमसे थका थकाया देखकर लक्ष्मण जी सुमं-

त्रके सहित कथा वार्तामें रामचंद्रजीके गुण बखान करने लगे ॥ १५ ॥ तमसाके किनारे लक्ष्मण व सुमंत्रके वार्ता करते और जागते २ ही रात बीत गई और प्रातः काल हो आया ॥ १६॥ तमसाके किनारे बहुत गायें चर रहीथीं उसीके कुछ थोडे दूर पर रामचंद्रने सब समाज सहित वह रात्रि बिताई ॥ १७॥ तदनन्तर बहुतही तडके श्रीरामचंद्रजीने उठकर देखा कि सब अयोध्या वासी घोरनींदमें अचेत पडेहैं, तब रामचंद्रजीने शुभ लक्षण युक्त लक्ष्मणजीसे कहा ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो तौ प्रजा लोग अपने घर वारका कुछ ध्यान न करके मुझ में चित्त लगाये हुये हैं और पेडोंके नीचे विना कुछ बिछाये थककर सो गये हैं और अब तक नहीं जागे॥ १९॥ हमें वनको न जाने देकर घर लौटा ले चलने हीकी इनकी वासना है, यदि इनका यह मनोरथ सिद्ध न हुआ तौ यह सब प्राण त्याग करनेमेंभी विलम्ब न करेंगे ॥ २०॥ सो जबतक यह सब सोते रहें तबतक हम सब रथपर चढकर यहांसे चले चलैं फिर कुछ भय नहीं, क्योंकि तमसासे आगे कुछ दूरतक मार्गभी नहीं तब यह लोग आवेंगे कैसे ? ॥ २१ ॥ यह पुरवासी गण मुझसे इतना अनुराग करतेहैं कि जब यह जाग जायँ तब इनको छोडकर जाना कोई सहज बात नहीं है । और जब कि यह लोग जानेंगे कि रामचन्द्र हमें धोखा देकर छोडना चाहतेहैं तब तौ यह कभी हमारासाथ न छोडैंगे और न कभी सोवेंगे ॥२२॥ विचार करके देखनेसे प्रजाओंको अपने ऊपर जो दुःख पडाहो उस दुःखसे उनको बचानाही राज कुमारोंको उचितहै, इस्से हमें अपने दुःखसे दुःखी हुये प्रजाका किसी प्रकार वनमें ले जाना उचित नहीं है॥ २३॥ तब लक्ष्मणजी साक्षात् धर्म तुल्य रामचंद्रजीसे बोले कि हे प्राज्ञ ! आपकी जो इच्छा है उसके पालन करनेमें मुझे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है, अतएव आप रथ पर सवार हूजिये ॥ २४॥ फिर रामचन्द्रजीने सुमंत्रसे कहाकि हे सूत ? तुम शीघ्र रथ तयार करो मैं यहांसे अभी वनको जाऊंगा ॥ २५ ॥ आज्ञा पातेही बहुत शीघ्र सुमंत्रजीने उत्तम घोडे जोत रथको तैयार किया, और रामचन्द्रजीके पास हाथ जोडकर निवेदन किया॥ २६॥ हे महाबाहो ! रथियोंमे श्रेष्ठ आपके लिये आपका श्रेष्ठ रथ तैयार कर दिया गया अब आप बहुत शीघ्र सीता और लक्ष्मणजीके साथ इस पर सवार हो जाइये ॥२७॥ इतना सुन्तेही रामचन्द्रजी सब सामग्री सहित उस रथ पर चढे और भवँर पडती हुई तेज धार वाली तमसा नदीके पार होगये ॥ २८ ॥ जब महाबाहु रामचन्द्रजी तमसाके पार गये तब कुछ दूरतो कटीला टेढा मेढा भयंकर

रस्तामिला फिर पीछे २ मे बहुत सुन्दर मार्ग उनको मिलगया ॥ २९ ॥ तब रामचन्द्रजीने पुरवासियोंके मोह लेनेके लिये सारथीसे कहा कि, हे सुमंत्र ! तुम अकेले हमारा रथ उत्तर दिशाकी ओर चलाओ हम उतरते हैं ॥ ३० ॥ तुम मुहूर्त भर तक अति वेगसे रथ चलाओ और फिर लौटो तुम इस प्रकारसे लीकके चिह्न मिटाकर रथ हांको जिससे कोई हमारे जानेका कुछभी वृत्तांत न जाने कि, हम किधरको गये हैं तुम सावधानीसे यह कार्य करो ॥ ३१ ॥ सुमंत्रजीने रामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर उनके कथनानुसार पहले उत्तर दिशामें रथ ले जाकर फिर लौटाया और वह समाचार रामचंद्रजीको जनाया ॥ ३२ ॥ जब सुमंत्रजी रथको लौटा कर लाये तब रघुकुलके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण जानकी सहित उसपर सवार हुये, फिर जिस मार्गसे तपोवनको जाना होता है उसी ओरको सुमंत्रजीने घोडे चलाये ॥ ३३ ॥ इस प्रकार महारथी रामचंन्द्रजी रथपर चढके सारथी सहित वनको जाते हुए । जानेके समय मंगलार्थ केवल एक बारही जरा दूर रथ उत्तर दिशाको चलायाथा ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७.

इधर रात्रि बीत कर जब सवेरा होगया तब सब पुरवासी रामचंद्रजीके विना शोकके मारे ऐसे बिल बिलाये कि. चेष्टा रहित होकर मूर्च्छित होगये ॥ १ ॥ उन पुरवासियोंके दोनों नेत्रोंसे अखंड आंसुओंकी धार गिरने लगीं । यद्यपि वह सब उस समय दुःखित मनसे मार्गकी ओरको देख रहेथे परन्तु हाय फिर उनको रामचन्द्रजीके रथकी धूल दिखलाई नहीं दी ॥ २ ॥ उन सबके मुख मंडल शोककी कारिषसे ढकगये उस समय वह सब रामचन्द्रजीका नाम ले २ कर अति करुणा सहित वाणी बोलने लगे ॥ ३ ॥ वह सब बोले कि, इस भारी नींदको धिक्कार है हम सब इसकीही मायासे ज्ञान रहित होकर सोगये जिससे कि, महाबाहु चौडी छातीवाले रामचन्द्रजी अब हमें दृष्टि नहीं आते, किसीने सच कहा है (सोवेसो खोवे जागेसो पावे) ॥ ४ ॥ फिर हम सब जो सोयही गयेथे तो भी महाबाहु रामचन्द्रजी अपने सब भक्तोंको शोक सागरमें डुबाकर तपस्वी भेष किये किस प्रकार वनको चले गये हा ! कैसी विपद आई ॥ ५ ॥ जो अपने और

प्रिय पुत्रकी समान सदा लालन पालन किया करते थे वह रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजी किस प्रकार हमको छोड वनवासी हुये ॥ ६ ॥ अच्छा जो हुआ सो हुआ, यातौ आज यहांपर हम सब मर जायँगे, अथवा हिमालय पर्वतपर जो महा प्रस्थान नामक स्थान है वहाँ जाकर बर्फमें गल जायँगे । बात तो यह है कि, रामचन्द्रजीके विना हमैं जीकर करनाही क्याहै ? ॥ ७ ॥ जो वहाँ न गये तौ यहाँ जो सूखी लकडियें इधर उधर बहुत पडी हैं इन्हें बटोर चिता बना अग्नि दे उसमें गिरकर मरेंगे ॥ ८ ॥ जब हम अयोध्या पुरीमें जायँगे और वहांके वह वासी जब रामचन्द्रजीका समाचार पूछेंगे तब क्या उनसे हम यह कहेंगे कि, हम निन्दा रहित प्रियकहनेवाले रामचन्द्रजीको वनमें पहुँचा आये हैं ॥ ९ ॥ जब विना रामचन्द्रजीके हम लोगोंको अयोध्यावासी देखैंगे तब निश्चयही बालक, जवान, बूढे, स्त्रियें सबही दुःखित होंगे ॥ १० ॥ हमैं तौ एक यही महा दुःख है कि, अयोध्यासे हम सब चले तौ रामचन्द्रजीके साथही थे सो अब उनको गवाकर किस प्रकार अयोध्यामें प्रवेश करैं ॥ ११ ॥ वह सब पुरवासी हाथ उठाकर दुःखितहो विना बछडेकी गायके समान ऐसे वह और भी बहुत भांतिका विलाप कलाप करने लगे॥ १२॥ फिर रथके पहियोंकी लीक देखकर कुछ दूरतक चले भी गये परन्तु जाते २ आगेको लीकका कुछ चिह्न न देख पडा फिर सब औरभी अधिक दुःखित हुये ॥ ३१ ॥ फिर उसी लीकपर हो आये और उपाय रहित होकर वहीं लौटे और सब यह कहने लगे कि " यह क्या बात है ? हम इस समय क्या करैं ? हमारा भाग्यही बुरा है " ॥ १४ ॥ फिर इधर उधर बहुत चलने फिरनेसे बहुत थक गये और उत्साह रहित होकर अछताते पछताते व दुःख करते सबने अयोध्याका मार्ग लिया ॥ १५ ॥ उन्होंने राजधानी अयोध्यापुरीमें आकर देखा कि, वहां सबही कोई रामचन्द्रजीके विरहसे दीनहो शोकसे व्याकुल हुये आंसू बहा रहे हैं ॥ १६ ॥ जैसे विना चन्द्रमाके आकाश विना जलके सागर शोभाहीन होता है ऐसेही जब गरुड किसी सरोवरसे कोई सर्प पकडले उस समय उस तालावकी जो दशा होजाती है वैसेही रामचन्द्रके विना अयोध्यानगरी शोभाहीन हो रहीथी ॥ १७ ॥ रामचंद्रजीके विरहमें अयोध्याजी निरानन्द और श्री रहित होगई ॥ १८ ॥ उस समय दुःखके मारे सबही बावरेसे हो रहेथे उस समय प्रत्यक्ष बातमें भी किसीको अपने परायेका ज्ञान न था। यद्यपि पुरवासी रामचन्द्रजीके

व्याकुल अति कष्टसे धनसे भरे पुर घरोंको लोट थे तथापि उन सबको उस समय यह ज्ञान नहीं था कि, कौन घर अपना और कौन पराया है किसीने न जाना कि, कौन किसके घरमें चलागया ॥ १९. ॥

श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८.

यद्यपि पुरवासियोंने बहुतही कष्टसे नगरमें प्रवेश तो किया परन्तु उनका मुख मंडल पीला पड रहाथा और वह शोकसे पीडित भी बहुत हो रहे थे सबही मरनेकी इच्छा किये थे और रो रहे थे ॥ १ ॥ रामचन्द्रजीको जो वन पठाय कर आये तो इस शोकके कारण ऐसे होगये मानों इनके प्राण निकलाही चाहते हैं सुख और शान्तिका तो उनके हृदयमें उस समय नामभी नहीं था ॥ २ ॥ सब पुरवासी लौटकर अपने अपने गृहमें गये और पुत्र कलत्र बन्धु बान्धवों सहित मिलकर रुदन करने लगे ॥ ३ ॥ उनके सब साधन और हर्ष लोप गये, बनियोंने अयोध्या पुरीमें अपनी २ दुकानें नहीं खोलीं व्यापारकी सामग्रियोंको सबने छोड दिया सब गृहस्थोंने रसोइयां न चढाईं सब भूखे प्यासे बैठ रहे ॥ ४ ॥ खोई हुई चीजके मिलने अथवा बहुत सारा धन पाकरभी किसीको आनंद नहीं होता. अधिक क्या कहैं जिनके पहलोठीके पुत्र हुये उन माताओं को भी तो आनंद नहीं हुआ ॥ ५ ॥ पुरकी नारियें अपने २ स्वामियोंको आया हुआ देखकर रोते रोते उनको कडुवे वचन कहकर उनको दुःखित करने लगीं, जैसे महावत अंकुशसे हाथीको पीडित करता है ॥ ६ ॥ वह स्त्रियें बोलीं कि, जिन्होंने रामचन्द्रजीका मुख चन्द्र नहीं निहार पाया उन्हें घर, स्त्री, धन, पुत्र, और सुखसे प्रयोजन क्या है ॥ ७ ॥ वास्तव में लक्ष्मण और जानकी जी सत्पुरुष और सती कहलानेके योग्य हैं, क्योंकि वह रामचन्द्रजीकी सेवा शुश्रूषा करनेके लिये उनके साथ वनको गये हैं ॥ ८ ॥ रामचन्द्र जी जिस मार्गसे होकर जायँगे वहांकी नदी और सरोवर सब ही धन्य होंगे क्योंकि रामचन्द्र जी उनमें स्नान व आचमन करेंगे ॥ ९ ॥ बडे वन अपने छोटे २ रमणीक वनोंसे व, नदियां अपने सोतोंसे व पर्वत अपने कँगूरोंसे रामचन्द्रजी को सुख देंगे ॥ १० ॥ कानन (वन) या पर्वत जहां पर श्रीरामचन्द्रजी जायँगे, वह सब उनको अपना प्यारा पाहुना जान आदर सन्मान

करने में कसर नहीं करेंगे ॥ ११ ॥ रामचन्द्रजी जहां जायँगे वहीं देखेंगे कि, पेडों पर चित्र विचित्र फूल लग रहे हैं मंजरियां शोभायमान हैं और उनके ऊपर भँवर गुंजार कर रहे हैं ॥ १२ ॥ जब रामचन्द्रजी किसी पर्वत पर जाते होंगे तब वहां चाहे उस ऋतुमें उत्तम फल फूलनेका समय न हो वह पर्वत अकालमें भी अपने ऊपर लगे हुये पेडोंके द्वारा उनकी पहुनई करेंगे ॥ १३ ॥ और सब पहाड विविध भांतिके झरनोंको दिखाते हुये और स्वच्छ जल देकर रामचन्द्र जीको सुखी करेंगे ॥ १४ ॥ वृक्ष सब पर्वतोंके आगे खडे हुये रामको आराम देंगे अधिक क्या कहैं. जहां रामचन्द्रजी रहेंगे वहां डर अथवा हारकी कुछ संभावना नहीं ॥ १५ ॥ दशरथात्मज शर वह महाबाहु रामचन्द्रजी अभी बहुत दूर नहीं गये होंगे बस इस समय हम रामचन्द्र जीके साथ वनको जायँगी ॥ १६ ॥ अधिक क्या कहैं हम उन्हीं महात्मा रामचन्द्र जीकी पग छायामें सुखसे बैठनेका अभिलाष करती हैं. वह सबके स्वामी और परमगतिके देने वाले हैं ॥ १७ ॥ हम सब महारानी सुखदानी जानकी जीके चरणों की सेवा करेंगी, और तुम सब महात्मा रामचन्द्र जीकी सेवामें लगे रहना । पुरकी स्त्रियें दुःखित मनमें अपने २ स्वामियोंसे इस प्रकारके वचन कहती हुई ॥ १८ ॥ वह और भी कहने लगीं कि, वनमें रघुनायकजी सब भांतिसे तुम्हारा योगक्षेम करेंगे और श्री सीताजी हमारा योगक्षेम अर्थात् भरणपोषण करने में यत्न करती रहेंगी ॥ १९ ॥ विचार करके देखो कि, जहां सुख नहीं केवल दुःखही दुःख है जहां मन नहीं लगता और जहां बिल्कुल उदासी है ऐसे घरमें रहने का क्या प्रयोजन है ? ॥ २० ॥ कैकेयी के राज्यमें अधर्महीहै और यह राज्य बिना मालिकके समान है तब धन और पुत्रादिककी बात तो दूर रहै हमारे जीवन धारण करनेसे भी क्या प्रयोजन है ॥ २१ ॥ धन, संपत्ति व राज्यके लालचसे जिस स्त्रीने सहजही पुत्र रूपी रत्नका त्याग किया वह कुल कलंकिनी कैकेयी और किसको छोडेगी वरन् यह सबको त्याग करैगी और हम क्या यह सब कुलका संहार करादेगी ॥ २२ ॥ हम अपने २ पुत्रोंकी शपथ करके कहती हैं कि, जबतक कैकेयी जीती रहैगी हम प्राण रहते इसके राज्यमें न रहैंगी चाहै यह हमारा पालनभी करै तौभी हमसे यहां न रहा जायगा ॥ ॥ २३ ॥ जिस लाज न करनेवाली कैकेयीने महीपाल महाराज दशरथजीके प्यारे पुत्रको वन पठाया उस दुष्ट आचरण करनेवाली अधर्मिनी कैकेयीके राज्यमें

रह कर कौन सुख भोग की आशा करैगा ॥ २४ ॥ अबसे इस राज्यमें बहुतही उपद्रव हुआ करैंगे, व इस राज्यका स्वामीभी कोई न होगा योग, यज्ञ लोप हो जायँगे, हम समझगईं कि, इस कैकेयी ही से सबका नाश होगा ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजी जब कि, वनको चले गयेहैं तब महाराज नहीं जी सकते और जब कि, महाराज दशरथजीही न रहे तब उनके पीछे यह राज्य अवश्यही लोप हो जायगा ॥ २६ ॥ अब हमारे सब सुकृत जाते रहे हम सब स्त्री पुरुषोंके साथ शिला ओंपर विष पीसकर उसको पीकर मर जायँगी अथवा रामचन्द्रजी जहां गये हैं वहां अथवा जहां कि, कैकेयी का कोई नाम भी न लेता होगा ऐसे दूर देशमें चली जायँ-गी ॥ २७ ॥ हमें भली भांति विदितहै कि, रामचन्द्रजी विना दोषके वनको भेजे गये, अतएव इस समय हम सब भरत जीके हाथ सौंपी गईं जैसे कि कमाईके हाथमें गायको सौंप दिया जाय ॥ २८ ॥ अहो ! क्या कहें पूर्ण चन्द्रमाकी समान रामचन्द्रजी वह श्याम वर्ण शत्रुओंका नाश करनेवाले कमल दलके समान जिनके नेत्र बाहैं जिनकी घुटनों तक लटकती हुई दोनों हँसलिये जिनकी गंभीर बनी, लक्ष्मणके बडे भाई ॥ २९ ॥ सबसे प्रथम मधुर बोलने वाले, सत्यवादी, महाबल-वान् सरल स्वभाव सब लोकको चन्द्रमाके समान प्रियदर्शन ॥ ३० ॥ वही पुरुष-शार्दूल मतवाले हाथीकी समान विक्रम करनेवाले महारथी महावनमें फिरते हुये वहांके स्थानोंको सुशोभित करैंगे ॥ ३१ ॥ मृत्युके समय मृत्युके भयसे जीव जिस प्रकार व्याकुल होताहै वैसेही नगरकी नारियें दुःखित और संतापित मनसे रामचन्द्रजीके लिये विलाप करने लगीं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार जब कि, नारियें रो रहीथीं तब उनका रोना करुणामय था कि, सूर्य भगवान् उसको सहन न करके छिप गये और रात्रि हो आई ॥ ३३ ॥ इस समय फिर नगरमें होमकी अग्नि जलती हुई नहीं दिखाई दी शास्त्रोंकी चर्चा और पढना एक साथ बन्द होगया मानों अंधकार चारों दिशा-ओंको निकल गया ऐसी नगरी होगई ॥ ३४ ॥ बनियोंने सब वनिज व्यापार करना छोड दिया सबही निराश और आश्रयहीन होगये जिस भांति तारोंसे हीन आकाश शोभा नहीं पाताहै वही गति उस समय अयोध्या पुरीकी हुई ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रजी अयोध्या जीकी नारियोंके उनके गर्भजात पुत्रोंसे भी अधिक प्यारे थे जैसे कोई अपने भाई व बेटेके निकल जानेसे व्याकुल हो रोया करताहै वैसेही नगरीकी नारियें इस प्रकार दीन हो रोने लगीं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार एक२करके नाच,

गीत, और उत्सव सबही रामचंद्रजीके विना अयोध्या पुरीमें बंद होगये किसीके मनमें हर्षनाका नामभी नहीं रहा देश भरमें व्यवहारी वस्तुओंका खरीदना बेचना सब बंद होगया इस प्रकार अयोध्या पुरी जल रहित समुद्रकी समान उजाडसी * ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा आदि०अयोध्याकांडे भाषायां अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥४८॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९.

अब इधर पुरुषसिंह रामचंद्रजी पिताजीके वचनोंका स्मरण करते हुये उस रात्रिके बीतते २ बहुतही दूर निकल गये ॥ १ ॥ मार्गमें बनाय भोर होगया तब रामचं-द्रजीने उतर कर संध्योपासन किया, और सन्ध्या वन्दनादि करके फिर रथ हांका-गया ॥ २ ॥ गावोंके सिवानों पर खेतीके लिये जुते हुये खेत शोभा पारहे हैं इस प्रकार बहुत सारे ग्राम और फूले फले हुये वन सब देखते दिखाते हुये रामचंद्रजी चलेजाने लगे ॥३॥ इस समय रामचंद्रजीका रथ बडे वेगसे जाताथा परन्तु अनेक प्रकारकी शोभा नयन गोचर होनेसे आरोहण कारियोंको रथका वेग जान नहीं पडा उन्होंने जाते २ ग्रामवासी मनुष्योंके मुखसे इस प्रकार बात सुनी कि, कामके वश हुये राजा दशरथको धिक्कारहै ॥ ४ ॥ हाय ! पापिनी कैकेयीका स्वभाव कैसा तीखाहै और उसका व्यवहार कितना क्रूरहै ! कि, उसने सहजही इस प्रकारके तीक्ष्ण निन्द-नीय कार्यको कर डाला ॥ ५ ॥ हाय ! कैकेयीने धर्मकी मर्यादाको नांघकर महा-राज दशरथजीके ऐसे, गुणवान दयानिधान, धर्मवान इन्द्रियोंके जीतनेवाले पुत्रको वन पठाया ॥ ६ ॥ ऐसा ज्ञान होताहै कि, महाराज दशरथजी पुत्रोंसे कुछ स्नेह नहीं करते, जो ऐसा नहीं होता तो ऐसे प्रजाके प्रसन्न करनेवाले पापरहित प्यारे पुत्र रामचंद्रजीको वनमें क्यों भेजते ? ॥ ७ ॥ कौशलेश्वर श्रीरामचंद्रजी ग्रामवासी मनुष्योंकी ऐसी बातें श्रवण करते हुये कोशलदेशकी सबसे पीछेकी हद्द पर पहुँचे ॥ ८ ॥ फिर चलते २ निर्मल जलसे भरी हुई वेदश्रुति नामक नदीके पार उतर गये वहांसे दक्षिण दिशाकी ओरको चले ॥ ९ ॥ जाते २ शीतल व निर्मल जल वाहिनी सागर गामिनी गोमती नदीको बहते हुये देखा इस नदीकी खादरमें बहुत गायें चर रहीथीं ॥ १० ॥ शीघ्रगामी घोडे जिसमें जुते हुये ऐसे रथपर बैठे हुये

* दोहा--राम दरशहित नेम व्रत, लगे करन नर नारि।भोगे सुख बहु भांतिके, दीन्हे सबन निसारि॥ १॥

गोमती नदीके पार हो हंस व मोरके शोरसे शब्दायमान स्यन्दिका नदी उतर गये ॥ ११ ॥ प्राचीन समयमें महाराज मनुजीने जो देश इक्ष्वाकु राजाकी राजधानी बनानेके लिये दियाथा श्रीरामचंद्रजी सीताजीको वह दिखानेलगे कि, देखो इसमें अनेक प्रकारके धनधान्ययुक्त देश हैं ॥ १२ ॥ इसके पीछे पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी सुमंत्रजीसे मत्त हंसकी वाणीके स्वरकी समान बार २ कहने लगे ॥ १३ ॥ कि, मैं देशको लौटकर और पिता मातासे मिलकर कब फिर सरयूके किनारेवाले फूले फले हुए वनोंमें शिकार खेलूंगा ॥ १४ ॥ यद्यपि शिकार खेलना मुझे बहुत अच्छा नहीं लगता परन्तु राजा लोग जो इसे अच्छा कहते हैं इस कारण मैं भी इसको बुरा नहीं समझ सकता और सरयूके तट खेलना चाहता हूं ॥ १५ ॥ इस लोकमें रीति चली आई है कि, बहुधा राजर्षि लोग अपनी प्रसन्नताके लिये वनमें शिकार खेला करते हैं इसीसे सब पराक्रमी नृपति खेलते चले आये हैं ॥ १६ ॥ महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी जो जो आशय देखते उसी प्रयोजनका मधुरालाप सुमंत्रजीसे करते हुए मार्गमें चले जाने लगे ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां एकोनपंचाशः सर्गः ॥४९॥

पंचाशः सर्गः ५०.

अनन्तर बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने बडी लम्बी चौडी मनोहर अयोध्याजीकी ओर दृष्टि फेर हाथ जोडकर कहा ॥ १ ॥ हे राजधानी ! तुम रघुवंशियों करके सदासे पालीगई हो मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि, तुम और तुम्हारे भीतर जितने देवता वसते हैं वह सबही मेरे ऊपर कृपा करें ॥ २ ॥ मैं वनमें १४ वर्ष वस और पिताजीके सत्य वचनोंका पालन कर उनसे उऋणहोकर पिता माताके सहित एकत्र हो फिर तुम्हारे दर्शन करूंगा ॥ ३ ॥ इतना अयोध्यापुरीसे कह फिर अरुणनयन श्रीरामचन्द्रजी आंखें डब डबाय दाहीं भुजा उठाकर सब देशनिवासियोंसे बोले ॥ ४ ॥ हे देशके निवासियो ! तुम सबने हमारे प्रति जो दया और सन्मान करना चाहिये उसके करनेमें कसर नहीं की, अतएव इस समय और अधिक श्रम पानेकी आवश्यकता नहीं, इस कारण तुम सब लौटजाओ और हमभी अपना कार्य साधन करनेके लिये जाते हैं ॥ ५ ॥ रामचन्द्रजीने जब देशनिवासियोंसे ऐसा कहा तब यह उनको प्रणाम और प्रदक्षिणा करके घरको जाने लगे और बीच २ में उनको

देखनेके लिये खडे हो जातेथे और रुदन करके घोर विलाप करते जातेथे ॥ ६ ॥ जनपदवासी रामचन्द्रजीको देखकर तृप्त नहीं हुए थे इसलिये खडेही होरहे और रामचंद्रजी इतनेमें आगे बढगये और इनको दिखाई नहीं दिये जिस प्रकार सूर्यनारायण छिप जानेसे नहीं देख पडतेहैं ॥ ७ ॥ रामचंद्रजीने रथपर जाते देखा कि, वहां अनेक प्रकारके स्थान धन धान्यसे परिपूर्ण हैं और बहुत सारे लोगोंकी वहां वस्तीहै स्थानोंपर गाववालोंके पूजनीय पेड देव मंदिर वृक्ष और यज्ञस्तंभ सबही शोभा विस्तार कररहेहैं ॥ ८ ॥ वहांके सबही बाग आंबके पेडोंसे परिपूर्ण बडे २ तालाब निर्मल जलसे शोभित हो रहे थे सब मनुष्य प्रसन्न और हट्टे कट्टे और स्थान २ पर गौओंके झुण्डके झुंड अपूर्व शोभा विस्तार कर रहे ॥ ९ ॥ यह सब स्थान राजाओंकरके रक्षित वहां सबही जगह वेद ध्वनि होरही. पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी रथपर चढे यह सब देखते भालते कोशल देशकी सीमाके पार हुए ॥ १० ॥ फिर बीच २ में दूसरे राजाओंके राज्य देखे वह सब राजा दशरथजीको कर देतेथे इन सब स्थानोंमें बडे २ मार्ग और यह सब बडेही शोभा युक्तथे, रामचन्द्रजीने इनको भी देखा ॥ ११ ॥ यहींपर श्रीरामचन्द्रजीने त्रिपथगामिनी गंगाजीको देखा कि, उनका जल शिवारसे रहित शीतल और पवित्र ऋषि गण उनके किनारे बैठे सेवा कर रहेहैं ॥ १२ ॥ इसके थोडेही दूर बहुत सारे शोभापूर्ण बहुविध आश्रम देखे जिनके कुण्डोंमें स्वर्गसे आय २ अप्सरायें प्रसन्नतासे स्नान करतीथीं ॥ १३ ॥ देवता दानव और किन्नर गणोंने गंगाजीका आश्रय ग्रहण कियाहै व नाग और गन्धर्वों की स्त्रियों करके सदा गंगाजी सेवित हो रहींथीं ॥ १४ ॥ जिनके निकटही देवता गणोंके क्रीडा करनेके स्थान और क्रीडापर्वत दोनों किनारों पर थे देवताओंकी फुलवाडियें दोनों ओर विराजमानथीं देवता ओंके निमित्त आकाशमें जिन गंगाजीकी धार चली गईथी अनेक प्रकारके कमल उसमें फूल रहेथे ॥ १५ ॥ गंगाजीमें किसी स्थानपर जो चट्टानसे पानी टकराताथा वही मानों उनका भीषण ठट्ठाथा कहीं फेना जलके ऊपर विराज रहाथा वही मानों उनका हँसनाथा कहींतो वेणीकी समान अतिवेग प्रवाह बहता कहीं नाना प्रकारसे कुंडोंमें भँवर पड रहेथे ॥ १६ ॥ कोई तो स्थान स्थिर और गहराथा और वहीं जलका बडाही वेगथा किसी स्थानमें धारके बननेका शब्द कानोंको आनन्द देनेवालाथा और कहीं वही शोर घोर भयंकर सुनाई देता ॥ १७ ॥ कहीं देवतागण जलविहार कर रहेथे कोई २ स्थान

निर्मल खिले हुये कमलोंसे शोभायमानथे किसी जगह रेतेके बडे २ ढेर लग रहेथे व कहीं करारोंके बराबर जल बहता व कहीं वालुका चमकतीथी ॥ १८ ॥ हंस, सारस बोल रहेथे, चकवी चकवा किनारेपर बैठे मन्द २ बोलतेथे जिसके तटपै सदा मतवालेही पक्षी कूकते ॥ १९ ॥ कहीं २ किनारोंपर पेडोंकी कतारकी कतार लगीथी व कहीं खिले हुये कमल शोभायमानथे कहीं कमलके वनके वन लग रहेथे ॥ २० ॥ कहीं २ तो कमल खिल रहेथे व कहीं उनकी कमलिनियें ही शोभित होरहींथीं अनेक प्रकारके पुष्पोंके परागसे गंगाजीका जल सुगन्धित होरहाथा कहीं न बहुत जोरसे न धीरेसे सम भावसेही बहतीथीं ॥ २१ ॥ इस पापकी नाश करनेवाली नदीका जल बहुतही निर्मल था कही मलिनताका नाम भी नथा । निर्मल मणिके समान चमकता था दिग्गज (दिशाओंके हाथी) वनके हाथी और ग्रामोंके पाले हुये हाथी, इस जलमें क्रीडा कर रहेथे ॥ २२ ॥ सुरराज इन्द्रका ऐरावत हाथी और देवताओंकेभी हाथी यहांपर आकर गर्जन करते व तटके काननोंमें औरभी अनेक प्रकारके जीव बोला करते इन सब बातोंसे गंगाजीकी ऐसी शोभा होरहीथी जैसे सब गहने कपडे पहरनेसे सती स्त्रीकी शोभा होतीहै ॥ २३ ॥ गंगाजीके किनारे अनेक प्रकारके पेड बेलैं और पल्लव आदिकोंसे फल पुष्पोंसे छा रहेथे इस कारण बहुत ढके और गहरेथे सब पापका नाश करनेवाली गंगाजी श्रीवामनरूपी विष्णुजीके चरणसे निकलीथीं ॥ २४ ॥ जिनमें अनेक प्रकारके जलकपि, नाके, मगर, मच्छ, सर्पादि जीव रहतेहैं जो कि, श्रीमहादेवजीकी जटासे निकल तेजसे समुद्रमें संमिलित हुई हैं ॥ २५ ॥ इसीसे समुद्रकी स्त्री हुई व अनेक प्रकारके सारस, क्रौंच आदि जीव जहां बोलतेथे ऐसी श्रीगंगाजीके निकट रामचन्द्रजी पहुँचे जहांसे थोडीही दूर शृंगवेर पुर था ॥ २६ ॥ तब कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी तरंगोंपर तरंगे जिनमें उठरहीं ऐसी श्रीगंगाजीके किनारे "आज हम यहीं रहैंगे" यह बात सुमंत्रजीसे कहते हुए ॥ २७ ॥ रामचंद्रजी सुमंत्रसे यहभी बोले कि, थोडीही दूरपर पत्ते और फूलोंसे शोभायमान जो इंगुदीका वृक्ष है इसमें बहुत फूल फल रहेहैं आज इसीकी छायामें निवास करनेकी मेरी इच्छाहै ॥ २८ ॥ मैं देखताहूं कि, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, पन्नग और पक्षिगण इस नदीके जलको पवित्र जानकर सदा इन गंगाजीकी सेवा करतेहैं ॥ २९ ॥ रामचन्द्रजीकी यह वार्त्ता श्रवणकर सुमंत्र व लक्ष्मणजीने कहा कि, बहुत अच्छा और रथभी इसी समय इंगुदी

वृक्षके निकट लायागया और रामचंद्र सीता लक्ष्मण सहित रथपरसे उतरे ॥ ३० ॥ क्रमसे इक्ष्वाकुनंदन भ्राता लक्ष्मण और जानकीजी रथसे उतरकर उस इंगुदी पेडके नीचेको चले ॥ ३१ ॥ सुमंत्रजी रथसे नीचे उतरकर उत्तम घोडोंको रथसे छोड॰कर पेडकी छायामें खडे हुए रामचंद्रजीके निकट हाथ जोडकर खडे हुए ॥ ३२ ॥ उस समय उस देशमें रामचंद्रजीका प्राणतुल्य प्रिय सखा निषाद जातिका बलवान् जोकि "स्थपति" कहकर विख्यातथा ऐसा गुह नामक एक राजा वसताथा ॥ ३३ ॥ जब उसने सुना कि, पुरुषसिंह रामचंद्रजी मेरे राज्यमें आयेहैं तब वृद्ध मंत्री और जातिके लोगोंको साथ लेकर रामचंद्रजीके पास आया ॥ ३४ ॥ निषादोंके राजाको दूरसे आतेहुये देखकर स्नेहके मारे रामचंद्रजी लक्ष्मणको संग लेकर कुछ दूर आगे बढके उससे मिले ॥ ३५ ॥ रामचंद्रजीकी ऐसी अवस्था देख दुःखितहो गुह भेंट करनेसे अपनेको कृतार्थ मान विनीत भावसे रामचंद्रजीसे बोला कि, हे महाराज रामचंद्रजी ! अयोध्याजीकी समान यह राज्यभी आपहीकोहै. आज्ञा दीजिये कि, आपका कौनसा प्रिय कार्य करना होगा ॥ ३६ ॥ हे महाबाहो ! ऐसे प्रिय पाहुने किसके यहां आतेहैं यह कहकर गुहने अलग २ गुणवाले अनेक प्रकारके अन्न व्यञ्जन ॥ ३७ ॥ और अर्घादिक देनेकी सब सामग्री शीघ्र वहां मंगवाकर रामचंद्रजीसे कहा हे महाबाहो। आपका आना मंगलकारी हो यह सब पृथ्वी आपहीकी है ॥ ३८ ॥ हम सब आपके नौकर चाकरहैं आप हमारे राजा हैं अब आप इस राज्यको लेकर पालन कीजिये आपके लिये यह सब खानेपीनेके पदार्थ उपस्थित हैं ॥ ३९ ॥ शयन करनेकेलिये अच्छे २ पलंग व बिस्तर और आपके रथमें जुते हुए घोडोंके खानेको घास दाना इत्यादि लाया गयाहै जब गुहने इसप्रकार कहा तब रामचन्द्रजी बोले ॥ ४० ॥ जोकि आपने पैदल आकर इतना स्नेह मुझसे किया तब सब भांतिसे मेरा आदर सन्मान होगया और मैं तुमसे बहुतही प्रसन्नहूं ॥ ४१ ॥ फिर रामचंद्रजी साधुओंकी भेटनेवाली भुजाओंसे गुहको लपटायकर बोले कि, हे गुह ! हमारा भाग्य प्रसन्न दीखताहै, जिस्से कि, तुम्हें बन्धु बान्धवोंके सहित अरोग देखतेहैं ॥ ४२ ॥ तुम्हारे राज्यमें, वनोंमें, मित्रोंमें और सबही नगरमें कुशलताहै ? तुम प्रीतिके सहित मेरे लिये यह जो कुछ पदार्थ लायेहो ॥ ४३ ॥ इन सबको मैं स्वीकार करताहूं परन्तु इनको ग्रहण करके अपने कार्यमें नहीं ला सकता । क्योंकि हम इस समय फूल फल खानेवाले और कुश चीर मृगचर्म धारण कियेहैं ॥ ४४ ॥ इससे हमेंभी वनमें रहनेवाले

और तपस्वियोंकी समान समझो हाँ घोडोंके खानेको जो चीज वस्तु लायेहो वही देजाओ और किसी वस्तुसे हमारा प्रयोजन नहीं ॥ ४५ ॥ आपकी दीहुई इतनीही वस्तुओंसे भली भांति हमारी पूजा हो जायगी क्योंकि यह घोडे हमारे पिता महाराज दशरथजीको अत्यन्तही प्रियहैं ॥ ४६ ॥ इनको जब अच्छी तरहसे भोजन मिला तब जानो हमाराही भली भांति आदर सत्कार होगया तब गुहने अपने नौकरोंसे कहा कि, घोडोंको तुम लोग जल्दीसे घास दाना और पीनेकी वस्तुदो ॥ ४७ ॥ यह गुहके वचन सुन वे नौकर चाकर सब सामग्री, जल्दीसे लाये तब रामचंद्रजी वस्त्र उतार सायंकालकी संध्योपासन करनेलगे ॥४८॥ जो गंगाजीका जल कि, लक्ष्मणजी अपने हाथसे भरकर लायेथे केवल वही पीकर रामचंद्रजी पृथ्वी पर लेट रहे और लक्ष्मणजीने उनके चरण पखारे ॥ ४९ ॥ फिर लक्ष्मणजीने जानकीजीके चरण पखारे और तब श्रीरामचंद्रजी जानकीजीके साथ उस वृक्षके तले सोये तब लक्ष्मणजी कुछ दूर एक वृक्षके तले जा बैठे और गुह व सुमन्त्र और अप्रमत्त धनुर्बाण धारण करनेवाले लक्ष्मणजी आपसमें वार्त्ता करते हुए रात्रिभर जागे ॥ ५० ॥ जिन यशस्वी दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी जिन्होंने कभी दुःख नहीं देखाथा और सदा सुखही पातेथे उन उपमारहितके सोनेपर लक्ष्मण सुमंत्र गुह रात्रि भर जागकर राजा दशरथ व अयोध्याकी वार्त्ता करते रहे और वह रात शीघ्र बीत गई ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशः सर्गः ५१.

लक्ष्मणजीको भाईकी रक्षा करते विना कुछ खाये पिये सारी रात जागते देखकर गुहको बडाही शोक हुआ और वह बहुत ही दुःखी होकर लक्ष्मणजीसे बोला ॥ १ ॥ हे राजकुमार ! तुम्हारे निमित्त यह सुखमयी सेज बनाई गईहै, सो हे तात ! तुम सुख पूर्वक इसपर शयन करकै अपना श्रम दूरकरो ॥ २ ॥ हम साधारण लोगहैं और क्लेशके सहनेवालेहैं परन्तु तुम सुखही भोगनेके लायकहो इस्से सो रहो । और रामचंद्रकी रक्षा करनेके लिये हम सब रात्रि भर जागते ही रहैंगे ॥ ३ ॥ इसपृथ्वीके ऊपर रामचंद्रजीसे अधिक हमारा और कोई भी प्यारा नहीं है मैं अपने सत्यकी सौगन्ध करके यह सत्य बात कहताहूं ॥ ४ ॥ इन रामचंद्रजीके

प्रसादसे मैं बहुत सारा यश धर्म और बहुत धन और बहुत कामकी प्रार्थना करताहूं ॥५॥ सीता सहित शयन किये प्रिय सखा श्रीरामचन्द्रजीको मैं जातिवाले लोगोंके साथ धनुष बाण धारण करके रक्षा करता रहूंगा ॥ ६ ॥ मैं इस वनमें सदा घूमता रहताहूं ॥ ऐसी इस वनमें कोई जगह नहीं या कोई बात ऐसी नहीं जो मैं न जानता हूं बडी भारी चतुरंगिनी सेनाके वेगको भी मैं सह सकताहूं अतएव इस समय रामचन्द्रजीकी रखवारी करनेके लिये मैं सब भाँतिसे समर्थ हूं ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजीने गुहकी यह वार्त्ता श्रवण करके उससे कहा कि, हे निष्पाप ! तुम धर्मज्ञ हो जब तुमने रामकी रखवारीका भार लिया तब हमको कुछभी भय नहीं ॥ ८ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके सहित भूमिपर शयन किये हैं फिर भला मैं किस प्रकारसे सोऊं अथवा भोजन व अन्य सुख भोग करनेमें पडूं ॥ ९ ॥ जो रामचन्द्रजी संग्राम भूमिमें समस्त देव दैत्यादिकोंका बल वीर्य सहनेमें समर्थ हैं वही इस समय श्री जानकीजीके साथ सुखसे तुनकोंकी सेजपर सोय रहे हैं ॥ १० ॥ राजा दशरथजीने विविध पराक्रमसे मंत्र और तपके प्रभावसे जिनको पुत्ररूपमें पाया है आर जो कि, वह उन सब तपस्या आदि गुणोंसे युक्तहैं सो देखो तो यही उन दशरथजीके पुत्र हैं ॥ ११ ॥ इनके यहांको चले आनेसे राजा दशरथजी बहुत कालतक नहीं जी सकैंगे, निश्चय यह पृथ्वी शीघ्रही विधवा होगी ॥ १२ ॥ जब रामचन्द्रजी यहांको चले थे तब सब स्त्रियां हा राम! हा राम! ऐसा कहकर बहुत रोदनकर निस्तेजहो पृथ्वीमें गिरी थीं इससे निश्चय अब रामचन्द्रजीके मंदिरमें भयानक होनेके कारण शब्द भी नहीं होताहोगा ॥ १३ ॥ राजा दशरथजी देवी कौशल्याजी वह हमारी माता यह तीनों अबतक इस रात्रिमें जीवित हैं अथवा नहीं यह मुझको सन्देह होता है ॥ १४ ॥ शत्रुघ्नका मुख देखती हुई चाहे हमारी माता तो जीतीभी रहैं पर यह बडा दुःखहै कि, वीरजननी कौशल्याजी विना रामचन्द्रजीके अवश्यही प्राण त्याग करैंगी ॥ १५ ॥ रामचन्द्रजीके ऊपर अनुराग किये हुये जनोंसे भरी हुई सुखमयी लोकप्रिया जो अयोध्यापुरीहै हाय ! सो आज राजा दशरथजीके कामवश होनेसे नाश होजायगी ॥ १६ ॥ महात्मा ज्येष्ठ पुत्रके न देखनेसे राजा दशरथजी व और सब रानियेंही किसप्रकार शरीरको धारणकिये रहैंगी ॥ १७ ॥ राजा दशरथजीकी मृत्यु होनेपर देवी कौशल्याजी अवश्य शरीर छोड देंगी और फिर हमारी माताजीभी न जी सकैंगी ॥ १८ ॥ हाय ! मनोरथ

से छूटे हुए राजा दशरथजी रामको राज्य देनेकी सब तैयारी कर चुके थे फिर जो राजगद्दी रामको न देने पाये इस कारण हमारे स्नेहके मारे अवश्यही मृत्युके मुखमें गिरे ॥ १९ ॥ पिताजीका जब अंत समय उपस्थित होगा तो नहीं जानते उनके मरनेके पीछे कौन उनकी क्रिया करैगा और जो कोईभी उनका प्रेत कर्म करैगा यथार्थमें वह भाग्यवान् है ॥ २० ॥ जिस अयोध्या नगरीमें रमणीक चौराहे बडे २ मार्ग यथा स्थानमें शोभा विस्तार करते हैं, जहां सैकडों मंदिर और धवरहरे विराजमानहैं जहांपर कि, सोलहों शृंगार किये वेश्यायें अनोखा उजला रूप बनाये शोभित हो रही हैं ॥ २१ ॥ जहां कि, बहुत रथ, हाथी, घोडे मौजूदहैं जो नगरी कि, सदा तुरईहीके शब्दसे शब्दायमान रहती है; जो नगरी सर्व कल्याणसे भरपूर है जहांके निवासी सदा हट्टे कट्टे रहते हैं ॥ २२ ॥ जहांपर कि, आराम देने वाली फूलोंकी वाटिका हैं जहां र सदाही अनेक प्रकारकी जातीय सभा हुआ करती हैं उस सर्व कल्याण सम्पन्न पिताकी राजधानीमें वनसे आकर सुख सहित कब प्रवेश करैंगे ॥ २३ ॥ हा ! यदि सुव्रत महात्मा हमारे पिता दशरथजी जीवित रहैं और हम भी वनवाससे कुशल पूर्वक घर लौट आवें तब भली भांति उनके दर्शन करैंगे ॥ २४ ॥ बडी ही बातहो जो हम अपने सत्य प्रतिज्ञ भाई रामचन्द्रजीके साथ वनसे लौटकर कुशलपूर्वक अयोध्याको आवैं और पिताजीके साथही अयोध्यामें प्रवेश करैं ॥ २५ ॥ महात्मा राजकुमार लक्ष्मणजी दुःखपूरित हृदयसे इस प्रकार विलापकलाप बैठे हुए कर रहे थे इतनेमें रात्रि बीत गई ॥ २६ ॥ प्रजाके हित करनेमें राजकुमार लक्ष्मणजी सब ठीकही ठीक वचन कह रहे थे तब गुहने यह बातें सुनी और स्नेह भाई-चारेके मारे बहुत दुःखित हुआ और बुखारसे घबडाये हाथीके समान आंसू छोडने लगा ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकां० भाषायां एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशः सर्गः ५२.

जब रात्रि बीतगई और बनाय प्रातःकाल होगया तब बडी छातीवाले महा यशस्वी श्रीरामचन्द्रजी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १ ॥ हे भ्रातः ! भगवती रात्रि बीतगई अब सूर्य भगवान् उदय होनाही चाहते हैं कालीकोकिल

इस समय कूक रही है ॥ २ ॥ वनमेंसे मोरका शोरभी सुनाई आता है । हे सौम्य आओ हम जल्दीसे इस तेज बहने वाली सागरगामिनी भागीरथी गंगाजीको उतर चलें ॥ ३ ॥ सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर गुह और सुमंत्रजीसे यह समाचार जनाकर रामचन्द्रजीके सामने खडे रहे ॥ ४ ॥ निषाद-पति गुहने भी रामचन्द्रजीके अभिप्रायको जानकर और उसे ग्रहणकर उसी समय अपने मंत्रियोंको बुलाकर कहा ॥ ५ ॥ कि, श्रीरामचन्द्रजीके चढनेके योग्य अच्छे केवटके साथ अति सुन्दर चित्र विचित्र रँगी रँगाई खूब दृढ जिसमें कहीं कोई छिद्र न हो ऐसी नाव जिस घाटपर उतार है वहाँ शीघ्र पहुँचादो ॥ ६ ॥ गुहकी ऐसी आज्ञा श्रवण करके गुहके मंत्रियोंने एक रुचिर नाव मँगवाकर गुहसे निवेदन किया कि महाराज नौका आगई ॥ ७ ॥ इसके पीछे गुहने हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि दे हेव ! आपके वास्ते घाटपर नाव तैयार है अब कौनसा कार्य करना होगा सो आज्ञा कीजिये ॥८॥ हे देवकुमारके समान ! हे सुव्रत ! सागर-गामिनी उतरनेके लिये नौका तैयारहै; हे पुरुषव्याघ्र ! जल्दी इसपर सवार हो जाइये॥९॥महा तेजवान् श्रीरामचन्द्रजी गुहसे बोले हमारा कार्य पूरा होगया । अब शीघ्र हमारी सामग्री जोहै इसको नौकापर चढाइये ॥ १० ॥ गुहसे यह बात कह-कर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीने कवच धारण किया और यथा स्थानमें खड्ग धनुष और तरकस ग्रहण करके सीताजीके साथ उस मार्गपर चले जिसपर भागीरथी गंगाजीके उतरनेका मार्गथा और जहां नाव लगती थी ॥ ११ ॥ इस समय सुमं-त्रजी विनीत भावसे शिर झुकाय रामके समीप आये और हाथजोडकर कहा कि, मुझे इस समय क्या आज्ञा होतीहै ॥ १२ ॥ रामचन्द्रजीने सुमंत्रजीका उत्तम दाहिने हाथसे स्पर्श किया और कहा कि, हे सुमंत्र ! जल्दी राजाके पास लौट जाओ और वहां सावधानहो वास करते रहो ॥ १३ ॥ तुम लौट जाओगे तो मेरा ठीक काम हो जायगा । हम रथ छोड करकै पैदलही महावनको चले जांयगे ॥ १४ ॥ जब सुंमत्र सारथिको इस प्रकार लौट जानेकी आज्ञा हुई तब वह बहुत दुःखित हुआ और इक्ष्वाकुनंदन पुरुषसिंह श्रीरामद्रचन्द्रजीसे बोला ॥ ॥ १५ ॥ हे देव ! जिस भाग्यके प्रभावसे आप भ्राता और भार्यासहित साधारण मनुष्यके समान वनवासी हुए सो इस लोकमें कोई पुरुषभी उस भाग्यको उल्लंघन नहीं कर सकता ॥ १६ ॥ ब्रह्मचर्यके करने वा वेदके पढनेसे कोई फल मिलताहै ?

यह तो मेरा मनमानता नही यदि इनसे कुछ फल होता तो आप किस प्रकार इस दशामें पड वनको आते क्योंकि आपने तो ब्रह्मचर्य और वेद इत्यादि सबही पढाहै और कियाहै। जो कहो कि, मृदुता और सरलतासे फल है सो यह भी नहीं क्योंकि इन सब गुणोंके रहते आपसरीखे जनोंपर खोटा भाग्य आही गया ॥ १७ ॥ हे वीर रघुनन्दन ! आप भ्राता लक्ष्मण और वैदेहीजीके साथ वनमें वास करके परम गति लाभ करैंगे और त्रिलोकीको जीत लेंगे क्योंकि तीनों लोकमें ऐसी आज्ञा पालन करने वाला कोई नहीं दीखता ॥ १८ ॥ परन्तु हम आपकी संगतसे छूटकर मरनेके तुल्य होगये अब हमें उस पापका आचरण करनेवाली कैकेयीके वशमें रह-कर दुःख भोगना पडैगा ॥ १९ ॥ आत्माके समान रघुनाथजीके सुहृद सुमंत्रजी रामचन्द्रजीको दूर देश जाते हुए देखकर इस प्रकारके वचन कहकर हृदयमें बहुतही दुःखित हो रोने लगे ॥ २० ॥ कुछ देर तक रोनेके पीछे सुमंत्रजी चुपाय रहे और पानीसे मुँह धोया तब मधुर वचनोंसे बार २ श्री रामचन्द्रजी उनसे कहने लगे ॥ २१ ॥ सुमंत्रजी ! तुम्हारी समान इक्ष्वाकुवंशियोंमें दूसरा सुहृद और नहीं दृष्टि आता अतएव हमारे पिता महाराज दशरथजी जिससे कि, मेरे वास्ते कुछ शोच न करैं वही काम तुमको करना चाहिये ॥ २२ ॥ वह वृद्ध राजा एक तो राजकार्यके भारसेही घबडाये हैं, और दूसरे हमारे चले आनेसे उनका चित्त शोकसे हरा गया अथवा व्याकुल हुआ है, बस यही कारण है कि, मैं तुमसे लौटनेको कहताहूं ॥ ॥ २३ ॥ वह महीपति कैकेयीका प्रिय कार्य करनेके लिये जो कुछ भी आज्ञा करैं उसे विना विचार किये अति शीघ्र आप किया करना जिस्से कि, इस शोकावस्थामें उनको कोई और क्लेश न पहुँचै ॥ २४ ॥ राजा लोग इस निमित्त ही राज्य का शासन किया करते हैं कि, कोई कार्यहो उनके मनके विरुद्ध न होने पावै ॥ २५ ॥ अतएव हे सुमंत्रजी ! उन महाराज दशरथजीका अप्रिय कार्य जिससे न हो और जिससे कि, वह शोकसे घबडा नहीं जांय बस तुम ऐसाही कार्य करनेमें सदा यत्न करते रहना ॥ २६ ॥ हमारे पिताने इस दुःखको छोड और कोई दुःख नहीं देखा, वह बूडे तो होही चुके हैं अति श्रेष्ठ व जितेन्द्रिय इससे हमारे हेतु उनसे प्रणामकर हमारा यह वचन कह देना कि, ॥ २७ ॥ हम या लक्ष्मणजी इस बातका कुछ भी शोच नहीं करते कि, अयोध्या पुरीसे निकल-कर हमें वनवास करना पडा इस कारण हमारे दुःखकी आप कोई चिन्ता न करना

॥ २८ ॥ चौदह वर्षके बीतने पर हमको लक्ष्मणजी व जानकीजीको शीघ्रही आप फिर अयोध्यामें आया हुआ देखैंगे ॥ २९ ॥ हे सुमंत्रजी ! हमारी ओरसे इस प्रकार राजा दशरथजीसे व देवी कौसल्याजीसे भी यही कहना औरभी सब माताओंके साथ कैकेयीसेभी वारंवार यही कह देना ॥ ३० ॥ हमारी माता कौसल्याजीसे हमारा और आर्य लक्ष्मणजीका प्रणाम कहकर कह देना कि, यह सब वनमें रोग रहित हैं ॥ ३१ ॥ और महाराज दशरथजीसे तुम यह कह देना कि जल्दी भरतजीको बुलालें और उनके आतेही राजगद्दी उन्हें देदें ॥ ३२॥ भरतजीको गोदमें बिठाकर और यौवराज्यमें अभिषिक्त करके वह महाराज दशरथजी मेरे विरहसे उत्पन्न हुए संतापसे छूट जांयगे ॥ ३३॥ हमारी ओरसे तुम भरतजीसे भी इस प्रकार कहदेना कि, राजाके प्रति जैसा व्यवहार करें वैसेही ऐसा सब माताओंके साथ व्यवहार करें ॥ ३४ ॥ जैसे कि, कैकेयी तुम्हारी माता हैं तैसेही सुमित्रामें कुछ अंतर नहीं। वैसे ही हमारी माता कौसल्याजी इन तीनों माताओंमें वह कुछ अंतर न समझैं ॥ ३५ ॥ तुम पिताजीका प्रियकार्य करनेके अभिप्रायसे सदा राज्यको देखते भालते रहियो और दोनों लोकोंमें सुख देना अर्थात् इस प्रकारसे प्रजापालन करना जिसमें इस लोकमें यश और परलोकमें सुख मिले ॥ ३६ ॥ जब सुमंत्रजीको इस प्रकार रामचंद्रजीने उपदेश दिया और भरत इत्यादिको संदेशा कहा तब सुमंत्रजी इन सब वचनोंको श्रवण करते हुए स्नेहके वचन रामचंद्रजीसे बोले ॥ ३७ ॥ मैं रीतिको छोडकर स्नेहके मारे विकल चित्तहो आपसे जो कुछ अनुचित कहताहूं सो उसको आप क्षमा कर दीजिये क्योंकि आप भक्तिमानहैं ॥ ३८ ॥ हे तात ! आपको परित्याग करके आपके वियोगमें पुत्रशोकसे आतुर हुई माताकी समान उन अयोध्या पुरीमें मैं किस प्रकार गमन करूं ? ॥ ३९ ॥ अयोध्यावासी जिन सब लोगोंने मेरा रथ रामके सहित देखाहै सो इस समय रामके विना देखे कैसे जियेंगे और क्यों न वह पुरी विदीर्ण हो जायगी ॥ ४० ॥ महारथी वीरके संग्राम में मारे जाने पर सारथिको खाली रथ लाते हुए देख सेना जिस प्रकारसे शोक करती है वैसेही रामचन्द्रजीका रथ सूना देखकर सब प्रजा दीन और दुःखित होजायगी ॥ ४१ ॥ इस समय आप यद्यपि अयोध्या पुरीसे दूर चले आये हैं तौभी प्रजाओंके मनके आगेही आप बसते हैं । प्रजागण आहार निद्रा छोड छाँडकर दिनभर आपकी चिन्ता करते हैं इसी कारण दुबले हुए जाते हैं

फिर आपका रथ सूना देखकर कैसे धीर धरेंगे ॥ ४२ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जिस समय कि, आप वनको चले थे तो आपने अपने नेत्रोंसेही देखा था कि, प्रजा कैसी आपके शोकसे खिन्नचित्त होगईथी ॥ ४३ ॥ जब कि, आप वनको चले थे और उस समय जो अयोध्यावासियोंने आर्त्त नाद किया था मुझे खाली रथ समेत लौटा हुआ देखकर वह लोग उससे सौ गुणा हाहाकार मचावेंगे ॥ ४४ ॥ मैं अयो-ध्याजीमें जाकर क्या कौशल्याजीसे यह कहूंगा कि, हम तुम्हारे पुत्रको उनके मामाके घर पहुंचा आये अब आप उनके लिये कुछ शोक न करें ॥ ४५ ॥ इस प्रकारके मिथ्या वचन भी तो उनसे नहीं कहसकता, अथवा आपके पुत्रको वनमें छोड आये यह कुप्यारा वचन भी मैं उनसे किस प्रकार कहूं ॥ ४६ ॥ मेरे आधीनमें रहकर इन सब उत्तम घोडोंने आपको या आपके सम्बन्धियोंको सदा अपने ऊपर चढायाहै, सो अब इस समय आपसे अलग हुआ रथ यह किस प्रकारसे लेजायँगे ॥ ४७ ॥ हे अनघ! मैं आपके विना अयोध्या नगरीमें किसी भांति नहीं जा सकता, अतएव मुझे अपने साथ वनमें ही जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ४८ ॥ मेरे इस प्रकार प्रार्थना करनेपर यदि आप वनको मुझे छोडकर चलेही जायँगे तो आपके त्यागतेही मैं रथके सहित अग्निमें प्रवेश करूंगा ॥ ४९ ॥ हे राघव ! यदि आप अपने साथ मुझे भी वनको ले चलेंगे तो वनके मध्य तपमें विघ्न करने वाली जो कुछ बाधायें आपको उपस्थित होंगी मैं रथकेही द्वारा उन सबको रोकलूँगा ॥५०॥ आपके ही निमित्त हमने यहां रथ हांकनेसे सुख उठाया अब यह प्रार्थना करताहूं कि, आपहीके द्वारा वनवासका सुखभी प्राप्तहो जावे ॥५१॥ हे रघुनन्दन ! आप प्रसन्न हूजिये और मुझको भी अपने वनका साथी कर लीजिये । आप प्रीतिपूर्वक रहैं और मैं आपका साथी हूं अतएव मुझे संग लीजिये ॥ ५२ ॥ हे वीर ! यह घोडे यदि वनवासमें आपकी कुछ भी सेवा कर सकैंगे तो इनको भी पर-मगति मिल जायगी ॥ ५३ ॥ मैं यदि वनमें रह कर शिरके बल भी आपकी सेवा करसकूं तब इसके लिये तो मैं देवलोक व अयोध्याकी वासनाभी त्याग करसकताहूं ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार बुरे कर्म करनेवाले अधर्मी जन इन्द्रकी राजधानी अमरा-वतीमें प्रवेश नहीं कर सकते, वैसेही पुण्यवान् आपके विना मैं अयोध्यामें प्रवेश नहीं करसकता ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! हमारा मनोरथ यही है कि, चौदह वर्ष वनवासका समय बिताकर इसी रथपर चढाकर हम आपको अयोध्यापुरीमें लावें ॥ ५६ ॥

आपके साथ वनमें रहनेसे यह चौदह वर्ष एक क्षणकी समान बीत जांयगे; पर जो अयोध्यामें रहूं तो आपके विना यही चौदह वर्ष सैंकडों वर्षोंके समान बीतेंगे॥५७॥ हे भक्तवत्सल ! आप हमारे स्वामीके पुत्रहैं और मैं आपके पथका पथिक होनेकी इच्छा करताहूं (अर्थात् साथ चला चाहताहूं) मैं आपका भक्त और चाकरहूं अतएव मुझको छोडकर जाना किसी प्रकारसे भी आपको उचित नहीं है ॥५८॥ सुमंत्रजी दीनतासे भरे हुये वचनोंसे वारंवार ऐसी प्रार्थना करने लगे तब सेवकोंके ऊपर कृपा करनेवाले श्रीरामचंद्रजी सुमंत्रसे बोले॥५९॥हे स्वामिवत्सल ! हमारे पर जो तुम्हारी परमभक्तिहै यह मैं भली भांति जानताहूं तथापि जिस कारणसे मैं अब तुम्हें अयोध्याजीमें भेजताहूं वह श्रवण करो॥६०॥हमारी छोटी माता कैकेयी तुमको नगरीमें आया हुआ देखकर जानलेगी कि, सत्यही सत्य रामचंद्र वनको चलेगये जो ऐसे न होगा तो उसे विश्वास न होगा ॥६१॥ वह मेरे वन चले जानेसे प्रसन्न होकर फिर धार्मिक महाराज दशरथजीको मिथ्यावादी जानकर शंका न करैगी ॥ ६२ ॥ मेरी यही परम इच्छाहै और यही प्रार्थना संकल्पहै कि, जिस्से हमारी छोटी माता भरतसे रक्षित धन संपत्तियुक्त राज्यके सुखका भोग करैं ॥ ६३ ॥ हे सुमंत्रजी ! तुम हमारा व महाराज दशरथजीका प्रिय करनेके लिये अयोध्या पुरीको चले जाओ जो जो संदेशा जिस २ से कहनेको तुमसे कह दियाहै विना घटाये बढाये ज्यों का त्यों सबसे कह देना ॥ ६४ ॥ रामचंद्रजी इस प्रकारके वचनोंसे वारंवार सुमंत्रजीको समझाय दीन भावसे टिके गुहसे यह हेतुयुक्त वचन बोले ॥ ६५ ॥ हे गुह ! अब इस सजन वनमें हमें वास करना उचित नहीं है क्योंकि यहां सब अपनेही लोग रहतेहैं; परन्तु निर्जन आश्रममें वास करना और उसकेही अनुसार विधिका प्रतिपालन करना हमें उचितहै ॥ ६६ ॥ मैं पिता, सीता, और लक्ष्मणका हित करनेके लिये तपस्वी जनोंका भूषण नियम ग्रहण कर और उनको प्रतिपालन कर ॥ ६७ ॥ जटा बनाय निर्जन वनको चला जाऊंगा सो जटा बनानेकेवास्ते बडका दूध मंगा दीजिये। रामचंद्रजीके यह वचन सुन गुहने बहुत शीघ्र बडका दूध मँगा दिया ॥६८॥ रामचंद्रजीने उस बडके दूधसे अपनी व लक्ष्मणजीकी जटा बनाई दीर्घ बाहु पुरुषसिंह ऐसे श्रीरामचंद्रजी जटा रखाय तपस्वी हुए॥६९॥उस समय चीर वसन धारी जटा मंडल विभूषित रामचंद्र लक्ष्मण दोनों भाई दो ऋषियोंकी समान शोभा पाने लगे॥७०॥ अनन्तर रामचंद्रजी लक्ष्मणके सहित वैश्वानर व्रत अर्थात् वानप्रस्थ अवलंबन

करते हुये और उस धर्मके अनुसार सब नियम धारण करनेमें निश्चय कर सहाय रूप गुहसे बोले ॥ ७१ ॥ हे गुह ! तुम सेना, खजाना, किला, और देशकी रक्षा करनेमें सदा सावधान होशियार रहना क्योंकि राज्यकी रक्षा करना बडा कठिन कामहै ॥ ७२ ॥ इक्ष्वाकुनंदन श्रीरामचंद्रजी गुहको यह जताकर अचलायमान चित्तसे शीघ्रताके साथ जानकी व लक्ष्मणके सहित चले ॥ ७३ ॥ और गंगाजीके किनारे पर पहुँचकर और वहां एक नाव देखकर श्रीरामचंद्रजी उत्तर गामिनी गंगाजीको शीघ्र पार उतरनेकी इच्छासे बोले ॥ ७४ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! तुम धीरे २ चिन्ताशील सीता देवीको युक्ति पूर्वक इस नाव पर चढाय फिर तुमभी चढलो ॥ ७५ ॥ लक्ष्मणजीने रामचंद्रजीकी अनुकूल आज्ञा ग्रहण करके प्रथम सीताजीको नावपर चढाया और पीछेसे आपभी चढते हुये ॥ ७६ ॥ फिर महातेजवान् लक्ष्मणजीके बडे भाई श्रीरामचंद्रजी भी नावपर चढे गुहने तीनों जनोंको नावपर चढा हुआ देखकर अपने नौकर चाकरोंको नावके चलानेकी आज्ञादी ॥ ७७ ॥ महातेजवान् श्रीरामचंद्रजी नावपर सवार होकर अपना हित करनेके लिये कि, जिस्से कुशल सहित पार होजांय जैसा ब्राह्मणों व क्षत्रियोंको जो करना चाहिये वह जप करने लगे ॥ ७८ ॥ सीता और महारथी लक्ष्मणजीने यथाविधि आचमन करके प्रीति पूर्वक भागीरथी गंगाजीको प्रणाम किया ॥ ७९ ॥ रामचंद्रजीने सुमंत्रसे और सेना सहित गुहसे लौटनेको कहकर नाव पर बैठे खेवटोंसे कहा कि, शीघ्र नाव चलाओ॥ ॥ ८० ॥ तदनन्तर वह डांड पतवार वल्लीयुक्त नौका खेवटोंसे सावधानीसे खेई जाकर शीघ्रही गंगा जलके ऊपर जाने लगी ॥ ८१ ॥ अनिन्दिता वैदेहीजी धारके बीचोंबीचमें पहुँच हाथ जोडकर गंगाजीसे विनय करने लगीं ॥ ८२ ॥ हे गंगे ! बुद्धिमान् राजाधिराज दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी आपकी रक्षासे रक्षित हो अपने पिताजीकी आज्ञा पालन करनेमें समर्थहों ॥ ८३ ॥ और चौदह वर्ष तक वनमें रहकर भ्राता लक्ष्मण और हमारे सहित जो कुशल पूर्वक लौटेंगे ॥८४॥ तो हे सुभगे ! शुभकाम बढाने वाली गंगे ! हम तीनों जनें आनंद मंगल सहित तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ ८५ ॥ हे त्रिपथगे ! देवि ! आप ब्रह्म लोकमेंभी व्याप रहीहैं और लोकोंमें भी समुद्रकी स्त्रीरूपसे दृष्टि आतीहो अतएव सब प्रकार पूजा करनेके योग्यहो ॥८६॥ अतएव हे शोभने ! मैं तुम्हैं वारंवार नमस्कार करतीहूं और तुम्हारी प्रशंसा कररतीहूं जो पुरुषसिंह रामचंद्रजी कुशलपूर्वक लौटकर राज्य पावैं तो ॥ ८७ ॥ आपकी

प्रसन्नताके माहात्म्यसे ब्राह्मणोंको सहस्रों गौ अनेकप्रकारके वस्त्र और बहुत सारे उत्तम २ अन्न दूंगी ॥८८॥ हे देवि! मैं फिर अयोध्याजीको लौटकर हजार घडे सुन्दर सुरा उत्तम २ पदार्थोंसे जोकि, देवताओंके यहां भी नहीं उन पदार्थों व भात व मांस आदिक अन्नोंसे तुम्हारी पूजा करूंगी आप हम सबपर प्रसन्न हूजिये ॥ ८९ ॥ हे देवि! जो सब देवताओंके स्थान तुम्हारे तटपरहैं वा जो देवता आपके तटपर वास करतेहैं और आपके किनारे जितने तीर्थ और देवमंदिरहैं मैं उन सबहीकी पूजा करूंगी ॥ ९० ॥ हे अनघे! इससे आप ऐसी अशीश दीजिये कि, जिससे हमारे और लक्ष्मणके सहित निष्पाप महाबाहु रामचंद्रजी अयोध्यापुरीमें प्रवेश करें॥९१॥ पतिकी प्यारी अनिन्दिता जानकीजी गंगाजीसे इस भांति कह रहींथीं कि, इतनेमें नाव गंगाजीके दक्षिण किनारे पहुँची ॥ ९२ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले नरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी गंगाजीके तीरको प्राप्त होकर नावसे उतर भाई लक्ष्मण और सीताके साथ दक्षिण दिशाको चले ॥ ९३ ॥ अनन्तर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी सुमित्राजीके आनन्द बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले कि, सजन वनमें अथवा विजन वनमें तुम सबही कहीं सीताजीकी रक्षा सावधानीसे करना ॥ ९४ ॥ विशेषतः इस मनुष्यहीन वनमें हम सरीखे पुरुषोंकी स्त्रीकी रक्षा करना अवश्य कर्त्तव्यहै, अतएव तुम आगे २ चलो और सीता तुम्हारे पीछे २ चली चलैं ॥ ९५ ॥ मैं सीताकी और तुम्हारी रक्षा करता हुआ सबसे पीछे २ चलूंगा क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! हमको आपसमें एक दूसरेकी रक्षा करनेका समय उपस्थित हुआहै ॥ ९६ ॥ मैं जन्मसे लेकर अबतक किसी दुःखमें नहीं पडाथा, सो मैं तो किसी प्रकार यह दुःख सहन करही लूंगा परन्तु आज वैदेहीजी वनवासके दुःखको जानेंगी कि, वनमें ऐसे २ क्लेश होतेहैं ॥ ९७ ॥ आज जन व मनुष्यों करके रहित व खेत और फुलवाडियों आदि करके हीन, बडे २ गढे पडे हुये ऐसे ऊँचे नीचे विषम वनमें यह जानकीजी चलैं फिरैंगी ॥ ९८ ॥ लक्ष्मणजी रामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके आगे २ चले, बीचमें सीताजी और पीछे २ रामचन्द्रजी गमन करने लगे ॥ ९९ ॥ जब रामजी गंगाजीके पार होगये तबभी सुमंत्रजी एक टक दृष्टिसे उनको देखही रहेथे, परन्तु रामचन्द्रजी दूर निकल गये और दृष्टि वहांतक न पहुँचसकी तब सुमंत्रजी निरुपाय और मनमें दुःखित होकर रोने लगे ॥ १०० ॥ वह लोकपालोंके समान प्रभावशाली महात्मा वरद श्रीरामचंद्रजी महानदी भगवती गंगाजीके पार होकर धन

धान्ययुक्त प्रमुदित वनके वत्स्यप्रदेशमें गये ॥ १०१ ॥ तहां रामचंद्र व लक्ष्मण दोनों भाई ऋष्य, पृषत, वराह और रुरु यह चार महामृग मारके ले आये और भूँखे हुये तब संध्याको वास करनेके लिये एक वृक्षके नीचे गमन करते हुए ॥ १०२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकां० भाषायां द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ५३.

गुणाभिराम रामचंद्रजी उस वृक्षके नीचे जाकर और सायंकालके संध्या वन्दनादि समाप्त करके लक्ष्मणजीसे इस प्रकार बोले ॥ १ ॥ भ्रातः ! अपने देशसे बाहर हुए और सुमंत्रका साथ छूटे आज हमें यह पहलीही रात बितानी पडतीहै सो तुम घरके सुख याद करके उसकी उत्कंठा मत करना ॥ २ ॥ आजसे लेकर प्रति रात्रि हमें निद्राको त्याग करके सब रात्रि जागना पडा करैगा और हम दोनोंको सदा सावधानीसे रहकर सीताजीकी रक्षा क्षेम करनेमें यत्नवान् होना चाहिये ॥ ३ ॥ हे सौमित्रे ! आओ हम इस समय किसी प्रकारसे यह रात्रि व्यतीत करैं पृथ्वीपर अपने आपसे इकट्ठे किये हुए तृणोंका बिछौना बिछाकर उसपर लेट रहैं ॥ ४ ॥ बडे २ मोलके विस्तरों बिछौनोंके लेटने योग्य श्रीरामजी भूमिकी सेज पर लेट करके लक्ष्मणजीसे यह वार्त्ता कहने लगे ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण ! निश्चयही आज महाराज दशरथजी बडे दुःखसे अचेतहो सोगये होंगे, और कैकेयी अपना मनोरथ पाकर बहुतही आनंद पारही होगी ॥ ६ ॥ मुझको एक बड़ा भारी डर व सन्देह होताहै कि, वह देवी कैकेयी भरतको आया देखकर राज्यके लालचसे कहीं महाराज दशरथजीके प्राणका तो नाश न करदे ॥ ७ ॥ एक तौ राजा दशरथजी बूढे होगयेहैं, फिर कामके फंदेमें पडेहैं, अजितेन्द्रिय हैं और फिर मेरे यहां चले आनेके दुःखसे व्याकुल होंगे, अतएव अब वह कैकेयीके वशमें पडकर क्या करते होंगे ॥ ८ ॥ महाराज दशरथजीको यह काममें वशी इच्छा और बुद्धिमें भ्रम देखकर मेरे विचारमें आताहै कि, इस संसारमें धर्म और अर्थसे अधिक कामही प्रबलहै ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! कोई मूर्ख आदमीभी स्त्रीके वश होकर हमारी समान आज्ञाकारी पुत्रको परित्याग कर सकताहै, जिस प्रकार हमें महाराज दशरथजीने त्यागाहै ॥ १० ॥ कैकेयीसुत भरतकोही स्त्रीके सहित सुखी कहना चाहिये, क्योंकि वह अकेले महाराजाधिराजकी समान इस समय सब प्रमुदित कौशल राज्य

भोगेंगे ॥ ११ ॥ मेरे वनको चले आनेसे और राजा बूढे तो होही गयेहैं सो उनके परलोक चले जानेके बाद वह भरतही अकेले सब राज्यका सुख प्राप्त करैंगे॥१२॥ अर्थ और धर्मको छोड करके जो केवल कामकेही वश होजाताहै वह इसी प्रकार गिर जाताहै जैसे कि, राजा दशरथजी गिरे ॥ १३ ॥ हे सौम्य ! हमारे मनमें यह बात आतीहै कि, दशरथजीका नाश करनेके लिये मुझको वनमें पठानेके वास्ते और भरतको राज्य दिलानेके अर्थही कैकेयी यहां आई ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण ! मुझे यहभी सन्देह होताहै कि, इस समय कैकेयी सौभाग्यके मदसे मोहित होकर हमसे वैर करनेके कारण माता सुमित्रा और कौशल्यादेवीको क्लेश देनेमें कसर न करती होगी ॥ १५ ॥ हमारे लिये सुमित्रा व देवी कौशल्या माता दुःख पाती रहैंगी, अतएव हे लक्ष्मण ! तुम सबेरा होतेही अयोध्याको चले जाओ ॥ १६ ॥ मैं अकेलाही जानकीके सहित वनको चला जाऊंगा और तुम अनाथा कौशल्या-जीके गति समान हो जाओगे ॥ १७ ॥ हे धर्मज्ञ ! इस कैकेयीका बडाही ओछा कर्महै वह वैरसे अन्यायका कर्मभी करसकतीहै उसे माता कौशल्या और सुमित्रा देवीको विष देते हुएभी कुछ नहीं लगता ॥ १८ ॥ हे सौमित्रे ! निश्चयही हमारी माता कौशल्याजीने पहिले जन्ममें अनेक माताओंसे उनके पुत्र अलग किये होंगे नहीं तो ऐसी चिन्तामेंभी न आनेवाली विपत्ति उनपर क्यों पडती ? ॥ १९ ॥ हा ! माता कौशल्या देवीने हमें बहुत दुःख सह बहुत समयमें पालन पोषणकर इतना बडा किया और जब फल खानेका समय आया तो हम उनको छोडकर यहां चले आये इस्से हमें धिक्कारहै ॥ २० ॥ हे सौमित्रे ! मैने जिस प्रकार अपनी माताको अगाध शोक समुद्रमें डुबायाहै सो कोईभी भाग्यशाली ललना मेरे समान दुःखदा-यक पुत्रको उत्पन्न न करै ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण ! हमसे अधिक हमारी माताकी स्नेह सहित पाली हुई वह सारिकाही अच्छीहै, क्योंकि वह समय २ तोतासे बोल-तीहै कि "हे शुक ! कौशल्याजीके वैरीके पैरमें काट खाओ" इत्यादिक वाक्य परु-षसे कहकर हमारी माताका मन प्रसन्न किया करतीहै ॥ २२ ॥ हे अरिन्दम ! मैं उन्हीं छोटे भाग्यवाली अपनी माताके शोकके समयही जब उनका कुछ उपकार न कर सका तब मेरे होनेसे उनको फल क्या हुआ इस्से तो विनाही पुत्र अच्छीथी कि, वियोगका दुःख न सहना पडता ॥ २३ ॥ हाय अम्मा ! भाग्यवाली हमारी माताजी कहीं कौसल्या देवी मेरे विना दुःखी हो शोक समुद्रमें निमग्न और परम

दुःखियारी होकर इस समय शयन करती होंगी ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण ! मैं क्रोधित होकर इकलाही अयोध्या, क्या सब पृथ्वीहीको शरद्वारा अपने वशमें कर सकताहूं, परन्तु मेरा वीरत्व प्रकाश करना अब निष्फलहै ॥ २५ ॥ क्योंकि हे अनघ ! मैंने अधर्म्म और परलोकका भय करकै कुछ नहीं किया और इसीकारणसे आजही मैं इस राजगद्दीपर नहीं बैठ सकता ॥ २६ ॥ जन करके हीन वनमें रात्रिके समय इस प्रकार व और भी अनेक भांतिके विलापकलाप करकै रामचन्द्रजी दीन भावसे रोदन करकै मौन होगये ॥ २७ ॥ शिखाहीन अनल और वेगरहित समुद्रकी नाईं रामचन्द्रजीको विलापमें रत देखकर लक्ष्मणजी उनको समझाने लगे ॥ २८ ॥ हे श्रेष्ठ ! अस्त्रधारण करनेवाले आप अयोध्या नगरीसे चले आयेहैं, अतएव चंद्र हीन रात्रिकी समान आज निश्चयही अयोध्यापुरी प्रभाहीन होगई ॥ २९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप जो हमें और सीता देवीको विषादित करते हुये इस प्रकारका शोक कर रहेहैं यह आपको उचित नहीं है ॥ ३० ॥ हे राघव ! अब सीताजी और न मैं आपसे अलहदा होकर जलसे निकली हुई मछलियोंकी समान जरा देर भी नहीं जी सकतेहैं ॥ ३१ ॥ मैं आपके विना क्या पिता क्या शत्रुघ्न क्या सुमित्रा किसीको भी देखनेकी इच्छा नहीं करता बरन् इनकाही क्या मैं आपके विरहमें स्वर्गमें भी रहना भला नहीं समझता ॥ ३२ ॥ अनन्तर धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी निकटही वटवृक्षके तले शय्याको रचित देखकर तिसपर शयन करते हुये ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीकी वह गुणभरी वार्त्ता श्रवण करके इसको सुखप्रद समझते हुये वनवासके धर्मको अंगीकार करकै और फिर जब तक वनमें वसे तबतक ऐसे व्याकुल कभी नहीं हुये और लक्ष्मणके साथ रहे ॥ ॥ ३४ ॥ उस जनहीन वनमें रघुवंशके बढानेवाले महाबली रामचन्द्र व लक्ष्मणजी पहाडोंपर घूमनेवाले दो शेरोंकी नाईं विचरण करने लगे और उनके निकट भी कोई भय सम्भ्रम नहीं आया ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे
भाषायां त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

।: सर्ग: ५४.

राम लक्ष्मण और सीताजी उस वट वृक्षके तले वह शुभ रात्रि बिता कर विमल सूर्यदेवके उदय होने पर उस स्थानसे प्रस्थान करते हुये ॥ १ ॥ वह सीता राम लक्ष्मणजी घने २ बडे वनमें होकर उस ओरको लक्ष्य करके चले कि जहां भागीरथी गंगा और यमुनाका संगम हुआ है ॥ २ ॥ वे दोनों यशस्वी मार्गमें अनदेखे हुये अनेक प्रकारके विना देखे देश व मनोहर २ भूमिभाग देखते हुये चले जाते थे ॥ ३ ॥ इस प्रकार सुखपूर्वक विविध भाँतिके फूले फले पेडोंके समूह देखते हुये दिन थोडा रह जानेपर रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे बोले ॥ ४ ॥ हे सौमित्रे! प्रयाग तीर्थकी ओरको देखो भगवान् अग्निका चिह्न स्वरूप सुन्दर और सुगन्धित धुआं उठ रहाहै बोध होता है कि, भरद्वाजजीका आश्रम यहीं है देखिये अग्निसे जो धूम निकलता है वह मानों अग्निकी पताका है ॥ ५ ॥ और हम निश्चयही गंगा यमुनाके संगमकी जगह आ पहुँचे हैं ! यह देखो दोनों नदियोंका जल परस्पर मिलनेसे शब्द हो रहा है ॥ ६ ॥ वनवासी लोगोंने नाना प्रकारके काठ इकट्ठे कर रक्खे हैं सो उन लोगोंके काटे हुये अनेक प्रकारके वृक्षभी दिखाई देते हैं ॥ ७ ॥ अनन्तर सूर्य नारायण पश्चिम दिशाकी ओर पहुँचे, व धनुषधारी राम लक्ष्मणजी भी गंगा यमुनाके संगम स्थलमें पहुँचकर भरद्वाजके आश्रममें आये ॥८॥ रामचन्द्र आश्रममें पहुँच कर दुष्ट मृग और पक्षियोंको त्रास देते हुये मुहूर्त भरमेंही भरद्वाजजीके निकट पहुँचे ॥ ९ ॥ अनन्तर सीताजीके साथ दोनों भाई सहसा निकट न जाकर उनके दर्शनकी वांछासे दूरही खडे रहे ॥ १० ॥ जब अनुमति मिली तब महाभाग रामचन्द्रजीने पर्णशालामें प्रवेश करके देखा कि, महानुभाव भरद्वाज जी अपने शिष्योंके संग बैठे हुये हैं और भली प्रकारसे व्रत करनेमें यत्नवान् हैं और एकाग्र चित्तसे तपोबल करकै जिनको त्रिकालका ज्ञान है ॥ ११ ॥ महाभाग ऋषिको अग्नि होत्रमें आहुति देते हुये देख रामचंद्रजीने लक्ष्मण और सीता सहित हाथ जोडकर उसी समय उन ऋषिके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १२ ॥ और यह कहकर लक्ष्मणजीके बडे भ्राताने अपना पता बताया कि हे भगवन् ! हम राजा दशरथजीके पुत्र हैं और नाम हमारा राम लक्ष्मण है ॥ १३ ॥ और यह कल्याणी जानकीजी हमारी स्त्री और राजा जनकजीकी पुत्री हैं । और यह अनन्दिता मेरा अनुगमन कर निर्जन तपोवनमें मेरे साथ २ आई हैं ॥ १४ ॥ पिताजीने हम

वनको भेजा है इसी कारण हमारे प्रिय अनुज यह भ्राता लक्ष्मणजीभी व्रत धारण किये हुये हमारे साथ वनमें आये हैं ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! हम इस समय सब पिताहीजीकी आज्ञासे वनको आये हैं और कंद, मूल, फल खाकर धर्मका आचरण करते रहैंगे ॥ १६ ॥ महात्मा भरद्वाजजीने धीमान् राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुनकर उनके लिये गौ, अर्घ्य, एवं चरण पखारनेके लिये जल मँगा दिया ॥ १७ ॥ और भरद्वाजजीने रामचन्द्रजीके लिये अनेक प्रकारके रसीले वनके कंद मूल फल व अन्न खानेको दिये और फिर भोजन देनेके पीछे उत्तम स्थान रहनेको बता दिया ॥ १८ ॥ उन परम तपस्वी महर्षि भरद्वाजजीने मृग पक्षी और मुनि-योंसे घिरे हुये सबके सामने रामचंद्रजीका आदर किया और स्वागत पूछी॥ १९॥ जब रामचंद्रजी उनकी दी हुई पूजाको ग्रहण करकै बैठगये तब महर्षि भरद्वाजजी धर्मयुक्त वचन उनसे कहने लगे ॥ २० ॥ हे काकुत्स्थनंदन ! तुमको बहुतही दिनोंमें इस आश्रमपर आते हुये देखा और मैंने तुम्हारे वनमें आनेकाभी कारण सुन लियाहै ❀ ॥ २१ ॥ अच्छा जो हुआ सो हुआ गंगा यमुनाके संगममें स्थित यह स्थान बहुतही निर्जन और पवित्र और परमरमणीकहै पुण्य स्वरूपहै तुम यहां सुखपूर्वक वासकरो ॥ २२ ॥ जब भरद्वाजजीने इस प्रकार कहा तब सब लोकोंके हित करनेमें रत रघुनंदन रामचंद्रजी यह पवित्र वचन बोले ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! इस आश्रमसे हमारी नगरी अयोध्या और देश बहुत निकट हैं सो अयोध्यावासी व इन देशोंके रहने वाले हमारे रूपको सुन इस आश्रममें आय २ ॥ २४ ॥ बडी भीड लगावैंगे व जानकीजीको देखनेवाली स्त्रियांभी बहुत आवेंगी इसकारण हम यहां रहना अच्छा नहीं समझते नहींतो सब भांतिका यहां सुख व आरामथा ॥ २५ ॥ अतएव भगवन् ! जहां रहनेसे सुख पानेके योग्य जनकनन्दिनी वैदेहीजी सदा मनके सुख सहित रहैं सो आप एक ऐसा एकान्त स्थानमें उत्तम आश्रम बतला दीजिये ॥ २६ ॥ महामुनि भरद्वाज जी रामचंद्र जीके यह शुभ वचन श्रवण करकै उनसे यह अर्थ प्रतिपादक वचन बोले ॥ २७॥ हेतात ! हमारे इस आश्रमसे दशकोशकी दूरी पर एक पहाडहै यह पहाड देखनेमें अति सुन्दर और परम पुण्यजनकहै और महर्षिगणों करके सेवितहै ॥२८॥ गोपुच्छ वानर और छोटी पूँछवाले वानर और रीछ यह सब उस पर्वत पर घूमा करतेहैं और उस पर्वतका नाम चित्रकूटहै, और वह

❀ बहुत दिनोंमें आये इस वचनके कहनेसे बोध होताहै कि पहले रामावतारमें भी आयेथे ।

गन्धमादन पहाडकी समान आकारवालाहै ॥ २९ ॥ उसके शृंगोंको देखतेही लोगोंके मन पापसे दूर और सत्य मार्गकी ओरको दौडतेहैं उस मनुष्यका मन कभी मोहमें नहीं लगता ॥ ३० ॥ वहां मृत मनुष्यके कपालतुल्य शुष्क मस्तकवाले असंख्य ऋषिगण तपोबलसे सैकडों वर्ष तक विहार करकै अंतमें स्वर्गको गयेहैं ॥ ३१ ॥ वह स्थान बहुतही निर्जनहै मेरी सम्मतिमें तो तुम वहां सुख सहित वास कर सकोगे अथवा हे रामचंद्रजी! तुम्हारे वनमें रहनेका समय जबतक पूराहो तब तक तुम हमारेही साथ इस आश्रममें रहो ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे महर्षि भरद्वाजजी सबही अभिलाष पूर्ण करकै और हर्ष उपजाकर प्रिय पाहुने रामचंद्रजीकी भ्राता और भार्या सहित विशेष रूपसे पूजा करते हुए ॥ ३३ ॥ रामचंद्रजीका प्रयागक्षेत्रमें महर्षि भरद्वाजजीके सहित समागम होने और विविध चित्रविचित्र कथा वार्त्ता आरंभ होने पर क्रमसे पुण्यमयी रात्रि हो आई ॥ ३४ ॥ सुख पानेके योग्य श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण और सीतासहित रस्ता चलनेके श्रमसे कातरहो रमणीय भरद्वाजजीके आश्रममें सुख पूर्वक उस रात्रिमें वास करते हुये ॥ ३५ ॥ जब रात्रि बीतकर प्रातःकाल हो आया तब श्रीरामचंद्रजी तेजसे प्रकाशमान भरद्वाज मुनिके निकट जाकर यह निवेदन करते हुए ॥ ३६ ॥ हे परम सत्यशील भगवन्‌ ! आज हमने आपके आश्रममें वसके रात बिताई अब जिस स्थानको आपने हमारे बसने योग्य बतायाहै वहां जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ३७ ॥ जब रात्रि बीत गई और प्रातःकाल हो आया तब भरद्वाजजीने रामचंद्रजीसे कहा कि, अब आप मधु, मूल, फल युक्त चित्रकूट पर चले जाइये ॥ ३८ ॥ हे महाबलवान्‌ श्रीरामचंद्रजी ! हमारी सम्मतिमें चित्रकूटही तुम्हारे बसनेके योग्य स्थान है वहां अनेक २ प्रकारके वृक्ष लगे हुये हैं और बहुत सारे किन्नर समूह व उरग गण वास करते हैं ॥ ३९ ॥ वहां मोरोंका शोर हुआ करता है और बडे २ हाथी भी वहां घूमा करते हैं । सो तुम संसारमें विख्यात उसी चित्रकूट पर्वत पर गमन करो ॥ ४० ॥ यह पर्वत परम पवित्र रमणीय और अनेक प्रकारके फल फूलोंसे शोभित है वहां हाथियोंके यूथ और मृगोंके झुण्डके झुण्ड वनमें घूमा करते हैं ॥ ४१ ॥ और नदी, दरी, झरने सोते, दरारे, पर्वतसानु सबही वहां शोभित होरहे हैं सो उन सबको वनमें विचरते हुये देखोहोगे ॥ ४२ ॥ हे रघुनंदन ! वहां सीताजीके सहित विचरण करनेके समय तुम्हारे मनमें आनंद होगा क्योंकि यह सब वनचारी जन्तु प्रमोद उपजाया करते

हैं ॥ ४३ ॥ वहां हर्षित टटीरी और कोकिलायें सब आनन्दितहो शब्द करती हैं जिसके सुन्तेही परम प्रसन्नता होती है एवं मृग और हाथी सबही सदा मतवाले होकर घूमा करते हैं जिनके देखनेसे मन मोह जाता है इस प्रकारके परम सुख और शुभ संपन्न चित्रकूटपर गमन करके और वहीं आश्रम बना सुखसे उसमें वास करना ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकाण्डे भाषायां चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशः सर्गः ५५.

शत्रुओंके दमन करनेवाले राम और लक्ष्मण वहां रजनी प्रभात करके मह-चरण वंदन पूर्वक चित्रकूटकी ओरको चले ॥ १ ॥ महर्षि भरद्वाजजीने रामचन्द्रजीको जानेके लिये तैयार देखकर पिता जिस प्रकार अपने औरस पुत्रोंका स्वस्त्ययन किया करते हैं ऐसेही श्रीरामचन्द्रजीके मंगलार्थ स्वस्त्ययन किया ॥ ॥ २ ॥ स्वस्त्ययन करनेके पीछे परम तेजस्वी महर्षि भरद्वाज सत्य पराक्रम राम-चन्द्रजीसे कहने लगे ॥ ३ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! प्रथम तो जहां गंगा यमुनाका संगम हुआहै तहांसे पश्चिम मुखहो यमुनाके किनारे २ जाइये ॥ ४ ॥ प्रतिकूल वाहिनी इस कालिंदी यमुनाके किनारे २ जाकर देखो कि सदा आने जानेसे उनके उत-रनेकी जगह अत्यन्तही क्षीण होगई है ॥ ५ ॥ घन्नई आदि बनवाय आप उस नदी यमुनाके पार होना, अनन्तर उसके पार एक बडका बडा पेड है जिसके हरे २ पत्ते हैं ॥६॥ और अनेक २ प्रकारके पेड उस बरगदके चारों ओर लगे हैं और उस पेडमें श्यामताभी पाई जाती है सिद्धगण उसकी सेवा किया करते हैं वहां जाकर जानकी हाथ जोडकर उस वृक्षसे आशीर्वाद पानेकी प्रार्थना करें ॥७॥ जो इच्छा हो तो कुछ दिन वहीं वास करना नहीं तो आगेको चले जाना वहांसे एक कोश दूर चलनेपर नीलवर्ण कानन दृष्टि आवैगा॥८॥पलाश,बासी,और बेरियोंके पेडसे यह वन भराहुआ है और वहां यमुनाके किनारे और भी अनेक प्रकारके वन वृक्ष उत्पन्न होतेहैं बस यही चित्रकूट जानेका मार्गहै, मैं अनेक बार इस मार्गसे होकर गयाहूं ॥ ९ ॥ वह मार्ग अति कोमलहै दावानल उस वनमें कभी नहीं लगती, और इस पंथमें जानेके समय मनमें प्रसन्नता उत्पन्न होतीहै महर्षि भरद्वाजजी इस प्रकार मार्गका पता पताकर लौटे ॥ १० ॥ लौटनेके समय रामचन्द्रजीसे पूछ लिया कि, अब तो आप चले

जायँगे तब उन्होंने कहा "हां" और मुनिके चरणोंकी वंदना करके उन्हें लौटारा। मुनिके लौटानेपर रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ ११ ॥ हे भाई ! यथार्थमें हम लोगोंने पुण्य कियाहै जिस्से कि, महर्षिजी हमारे ऊपर इतनी दया करतेहैं मनस्वी पुरुषश्रेष्ठ रामचंद्र और लक्ष्मणजी दोनों जने इस भांति विचार करके ॥ १२ ॥ सीताजीको आगे किये हुये यमुनाजीके तीर गये, और अति वेगवती व अति जल-वाली नदीको देखते हुये ॥ १३ ॥ पर घाटपर वहां नाव नथी इस कारण इस बात की बड़ी चिन्ता करने लगे कि, किस प्रकार जल्दीसे इस नदीके पार होजायँ। चिन्ता करते २ भरद्वाजजीकी बताई बात याद आई और सूखे बांस आदि इकट्ठे कर एक घन्नई बनाई ॥ १४ ॥ वनकी सूखी लकडियां उसमें लगाई गई, गांड-रकी जडको कूट २ कर उसमें भरा कि, छेद सब उसके बंद होगये तिसके उपरान्त बेत व नल जामनकी नरम डालियें काट ॥ १५ ॥ महावीर लक्ष्मणजीने जानकी जीके बैठनेके लिये उस तृण नौकापर एक सुखमय आसन बना दिया आसन बन जानेके उपरान्त चिन्ता करनेके अयोग्य रूपवाली लक्ष्मीकी समान रामने प्राणसम प्यारी जानकीजीको ॥ १६ ॥ जो कि कुछ लजासी रहीथीं उठाकर उस घन्नई पर चढाया व उनके निकटही सब उनके वस्त्र भूषणादिक धरदिये ॥ १७ ॥ व कु-दाल पिटारी बांस बल्ली आदिभी वहां धरदिये, प्रथम जानकीजीको बैठाया फिर आप दोनों भाई चढे और नावको चलाया ॥ १८ ॥ फिर रामचंद्र व लक्ष्मणजी दोनों जने यत्न सहित वह नाव ग्रहण करके प्रसन्न मनसे यमुनाके पार होने लगे जब नाव बीच धारमें पहुँची तो जानकीजीने यमुनाजीको प्रणाम किया ॥ १९ ॥ और हाथ जोडकर कहा कि हे देवी ! जो कुशल सहित हमारे पति अपने पिताकी व अपनी प्रतिज्ञा पूरीकर लौटेंगे; और हमारा पतिव्रत धर्मभी अच्छी तरह निभ जायगा, तो मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये सहस्रों गोदान करूंगी और सैकडों *सुराके पूर्ण कलश देकर तुम्हारी पूजा करूंगी ॥ २० ॥ तब अवश्यही मैं तुम्हारी पूजा करूंगी जब आनंद पूर्वक इक्ष्वाकुआदि राजाओंकी पालित अयोध्यापुरीमें श्रीरामचन्द्रजी आप राजा होंगे, इस प्रकार वरकी याचना करती हुई जनकनंदिनीजीने हाथ जोडकर यमुनाजीकी प्रार्थना की ॥ २१ ॥ इस भांति प्रणाम, करती हुई सीताजी व दोनों भाई उस बनाई हुई नावके द्वारा

* यह सुरा देव रूप है अर्थात् महौषधियोंके रससे बनाई जातीहै ॥

शीघ्रगामिनी और तरंगें जिसमें उठ रहीं ऐसी सूर्यपुत्री यमुनाजीके दक्षिण किनारे पर पहुँचे ॥ २२ ॥ कालिन्दीके इस किनारेपर अनेक प्रकारके वृक्ष लगरहेथे रामचंद्र सीता और लक्ष्मणजीने यमुनाके पार होकर उस नावको वहीं छोड दिया ॥ २३ ॥ फिर यमुनाजीके लगे हुए किनारेके वनसे चलकर तीनोंजन सुशीतल हरे भरे पत्तों करके शोभायमान श्याम नाम वट वृक्षके समीप उपस्थित हुए, जानकीजीने वहां पहुँच कर उस बरगदके वृक्षको प्रणाम किया ॥ २४ ॥ और कहा कि, हे वटवृक्ष ! हम तुमको नमस्कार करतीहैं तुम्हारे प्रसाद से हमारे स्वामी अपने व्रतको पूर्ण करें, और हम फिर अयोध्याको लौटकर कौशल्याजी और यश स्विनी सुमित्राजीके दर्शन करसकें ॥ २५ ॥ इसप्रकार मनस्विनी सीताजी हाथ जोडकर उस श्याम वट वृक्षकी प्रदक्षिणा करती हुई । अनन्तर रामचंद्रजीने अपनी परम अनुकूलवर्तिनी निंदा रहित प्राण प्यारी सीताजीको श्याम वट वृक्षके निकट प्रार्थना करते देखकर ॥ २६ ॥ लक्ष्मणजीसे कहा कि, हे भ्राता भरतानुज ! तुम सीताजीको लेकर आगे २ गमनकरो ॥ २७ ॥ हे नरोत्तम ! मैं आयुध धारण किये हुये तुम्हारे (दोनोंके) पीछे २ चलूंगा, इन जनकनन्दिनी सीताजीके चित्तमें जिस २ द्रव्यको देखकर आनन्द उपस्थित हो, और जो २ फल पुष्प यह प्रार्थना करें ॥ २८ ॥ और जिस चीजसे इनका मन बहले सो तुम इनको वही २ चीज फूल फल लादेना, यह कह यमुनाके दक्षिण किनारे २ आगेको चले कि, इतनेमें जिस किसी वृक्ष व पुष्पसे लदी हुई लतादिकको सीताजी देखतीथीं ॥ २९ ॥ उसीका अद्भुत रूपजान रामचंद्रजीसे पूछतीथीं कि, यह कौन पेड वा वल्लरीहै क्यों न पूछे जब कि, वहां तरह २ के रमणीय फले फूले तरु दिखाई देतेथे ॥ ३० ॥ जो कुछ सीताजी मांगतीथी लक्ष्मणजीभी उनके कहनेके अनुसार कुसुमस्तबकशोभित विविध भांतिके रमणीक वृक्ष शाखा लादेने लगे । उस समय जनकनन्दिनी सीताजीभी विचित्रबालुका करके शोभित, और हंस सारसोंके समूहके शब्दसे शब्दायमान विचित्र जलसे युक्त ॥ ३१ ॥ यमुनाजीके दर्शनसे जानकी प्रसन्न हुई, इसके पश्चात् राम और लक्ष्मण दोनों भाई एक कोश गमन करनेके पीछे, यमुनातीरके वनोंमें बहुत सारे यज्ञीय मृग वध करते हुए घूमने लगे ॥ ३२ ॥ उन्होंने हस्ती और शाखामृगादिकोंसे सेवित मोरके शोरसे शब्दायमान उस मनोहर वनमें इच्छानुसार विहार करके संध्याके समय एक रमणीय दरारोंके गढों करके रहित स्थान पर जाकर वास किया ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० आ० अयोध्याकां० भाषायां पंचपंचाशःसर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशः सर्गः ५६.

इस प्रकारसे जब रात्रि बीती और वनोंमें सवेरा हो आया सो लक्ष्मणजी रात्रि भरके जो जागेथे इस कारण अभी तक सो रहेथे सो उनको सोते हुए देखकर धीरे २ रामचंद्रजीने जगाया और कहा ॥ १ ॥ हे सौमित्रे ! अनेक जातियोंके वनैले जीव कैसे मीठे २ स्वरसे चहकरहे हैं इनको सुनो राह चलनेका यही समय बहुत अच्छाहै अतएव हे आततायियोंके दर्पको चर्ण करने वाले ! अब उठकर चलो ॥ २ ॥ जब रामचन्द्रजीने यथा कालमें लक्ष्मणजीको जगादिया तब वह निद्रा और आलस्यको त्याग करकै भली प्रकार विश्राम पा उठ खडे हुये ॥ ३ ॥ फिर सब जनोंने उठकर पवित्र यमुनाजीके जलमें हाथ धोया, और सन्ध्या वन्दनादि किया और ऋषिगणों करके शोभित चित्रकूटका मार्ग लिया ॥ ४ ॥ रामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके सहित जाते २ कमल दलके समान आंखवाली सीताजीसे कहने लगे ॥ ५ ॥ हे प्रियतमे ! यह देखो वसन्त समय आजानेसे सब भांतिसे समस्त फूल खिल रहेहैं, उनसे ऐसा मालूम पडताहै कि, मानो पलाशके पेडों में आग लग गई सब पेडोंके फूलोंसे ऐसी शोभा हो रहीहै मानो सब माला पहर रहेहैं ॥ ६ ॥ यह देखो वीर वृक्ष और बेलके पेडोंके समूह फल और फूलोंके बोझ से नम रहेहैं, इस निर्जन वनमें दूरतक मनुष्योंका पता नहींहै; अतएव हम निश्चय ही इन फल फूलोंको खाकर जीवन धारण करनेमें समर्थ होंगे ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण! यह देखो प्रति वृक्षमें ही मधुकर सञ्चित द्रोण ❀ परिमाण (डिंगारे) लटके हुयेहैं और इधर देखो सहस्रों मधुमक्खियां इनमें लिपट रही हैं ॥ ८ ॥ और यह देखो कोकिलपक्षी रमणीय वन भूमिमें बोल रहाहै, उसको देखकर मोरभी उसके पीछे शोर करताहै, चारों ओर फलोंके पेडोंसे घिरजानेपर यह वनभूमि बहुत घनी होगई है ॥ ९ ॥ मतवाले हाथियोंके झुंडके झुंड घूम रहेहैं अनेक प्रकारके पुष्पोंसे युक्त वा वृक्षोंसे शोभायमान चित्रकूट दिखाई देताहै ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण ! हम सब अतिशय मनोहर और बहुत वृक्षोंसे ढके हुए व बहुतही पवित्र ऐसे चित्रकूटके वनकी बराबर एकसीभूमिमें आनंद विहार कर सकैंगे ॥ ११ ॥ अनन्तर ऐसा कहते हुये और पैदलही चलते हुये राम और लक्ष्मण सीताजीके सहित मनोहर व रमणीक चित्रकूट पर पहुँचही गये ॥ १२ ॥ यह पर्वत बहुत सुन्दरथा बहुत प्रका-

* द्रोण शब्दका अर्थ ३२ सेर सहत जिस चक्रमेंहो॥

रके पशु पक्षी यहां घूम घाम रहेथे और बहुत सारे कंद, मूल फल वहां बारहों महीने मिलतेथे और पानीभी इस पर्वतका बहुतही स्वाद युक्त व मीठाथा ॥ १३ ॥ रामचंद्रजीने वहां पहुँच कर लक्ष्मणजीसे कहा कि, हे प्रियदर्शन भ्रातः! यह पर्वत अति मनोहर है इस जगह अनेक प्रकारके वृक्ष और लतायें शोभायमानहैं और यहां अनेक भांतिके कंद, मूल, फलभी मिलतेहैं। मुझको भली भांतिसे प्रतीत होताहै कि, यहां सहज सेही हमारा निर्वाह हो सकताहै ॥ १४ ॥ विशेष करके इस पर्वतपर महात्मा मुनिलोग वास करतेहैं अतएव यही हमारे वास करनेके योग्यहै; हे भइया! हम यहीं आश्रम बनाकर रहेंगे॥ १५॥ अनन्तर सीता रामचंद्रजीव लक्ष्मणजी वाल्मीकिजीके आश्रममें प्रवेशकरके हाथजोड़ उनको प्रणाम करतेहुये ॥ १६॥ धर्मात्मा महर्षि वाल्मीकिजीने बहुत प्रमुदित होकर सीता सहित दोनों भाइयोंका सत्कार किया फिर रामचंद्रजीका आगत स्वागत कर बैठनेको कहा और फिर कहने लगे कि मैं तुम्हारे आनेका कारण जानता हूं अतएव तुम ऋषियोंके सहित यहीं वास करनेमें प्रवृत्तहो ॥ १७॥ महाबाहु रामचंद्रजी यथारीतिसे वाल्मीकिजीके निकट अपना परिचय देकर लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ १८॥ हे सौम्य! तुम बडे बोझके उठानेमें समर्थ मजबूत अच्छे २ काठ लाकर रहनेके लिये आश्रम बनाओ इस स्थानमें वास करनेको हमारा बहुतही जी चाहता है ॥ १९॥ अरिन्दम (शत्रुओंके मारनेवाले) लक्ष्मणजी रामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर बहुत सारे वृक्षोंसे बहुत डालियें काट लाये और वहां एक कुटी पर्णशाला बनादी ॥ २० ॥ यह कुटी काठकी बनी और किवाडों करके युक्त और सुदर्शन देखकर रामचंद्रजी एक चित्तसे सेवा करनेमें चित्त दिये लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २१ ॥ हे सौमित्रे! हम ऐणेय हरिणका मांस लाकर पर्णशालाधिष्ठात्री देवताकी पूजा करेंगे ॥ २२ ॥ क्योंकि जो लोग बहुत दिन जीना चाहतेहैं उनको चाहिये कि किसी गृहकी पूजा किये बिना उसमें न रहें हेप्रियदर्शन! इस समय तुम जल्दीसे मृगवध करके यहां ले आओ ॥ २३ ॥ स्मरण करके देखो कि, शास्त्रमें जो नियम लिखेहैं उनको यथारीतिसे पालन करना उचित है। महाबलवान लक्ष्मणजी भ्राताकी आज्ञासे ॥ २४ ॥ मृग ले आये तब रामचंद्रजीने फिर उनसे कहा कि तुम इस मृगके मांसको रांधो कि मैं वास्तु पूजा करूंगा॥ २५॥ हे सौम्य! ध्रुव योग वर्तमानहै और यह मुहूर्तभी बहुत शुभ काम देनेवालाहै अतएव इस कार्यमें जल्दी करो तब प्रतापशाली लक्ष्मणजीने यज्ञीय काले मृगको वध

करके ॥ २६ ॥ उसे जलती हुई आगमें छोड दिया जब वह खूब पक गया और रुधिरका बहना उसमेंसे बंद हुआ ॥ २७ ॥ तब लक्ष्मणजी ने पुरुष श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीसे कहा कि, मैंने इस सर्व काम साधन करनेवाले काले मृगको अंग प्रत्यंगोंके सहित पकायाहै ॥ २८ ॥ देवताओंकी समान ! आप यज्ञकरनेके कार्यको भलीभांति जानते हैं सो इस समय देवताओंकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ कीजिये तब वह अमित तेजधारी गुणवान जप करनेमें चतुर रामचंद्रजी नहाकर ॥ २९ ॥ संयतचित्तहो संक्षेपसे यज्ञको समाप्त करनेके कारण सब मंत्रोंको पढते हुये; फिर पवित्रताईसे देवताओंकी पूजा करके पर्णशालामें प्रवेश करते हुये ॥ ३० ॥ उस समय उन अपरिमिततेजसंपन्न रामचन्द्रजीके मनमें हर्ष उत्पन्न हुआ अनन्तर उन्होने वैश्वदेवके लिये, विष्णुजीके लिये और रुद्रजीके अर्थ बलिप्रदान किया ॥ ३१ ॥ फिर वास्तुशान्तिके लिये यथा योग्य मांगलिक अनुष्ठान करनेमें लगे। और फिर यथाविधि नदीमें स्नान कर और न्यायानुसार जप करके ॥ ३२ ॥ पाप शान्तिके लिये विश्व देवाओंकी भली भांति पूजाकी। पूजा समाप्त होनेपर आश्रमके अनुरूप बलि देनेके अर्थ देवताओंके लिये वेदियां बनाईं, देवतायतन और गणेशजीकी वेदी और विष्णुजीकी वेदीकी प्रतिष्ठा करते हुये फिर राजीव लोचन रामचंद्रजी उचित फल और मांसद्वारा भूत गणोंकी तृप्ति साधन करके पर्णशालामें प्रवेश करनेका संकल्प करते हुये ॥ ३३ ॥ देवता लोग जिस प्रकार सुधर्मा सभामें प्रवेश करते हैं वैसेही सीता रामचंद्रजी व लक्ष्मण सब मिलकर उस वृक्षके पत्तोंसे छाई हुई उचित स्थान में प्रतिष्ठा की हुई मनोहर कुटीमें वास करनेके लिये प्रवेश करते हुये ॥ ३४ ॥ परम रमणीयचित्रकूट और अनेक प्रकारके पक्षियोंका जहां आश्रय और सुन्दर २ घाट युक्त माल्यवती नदीके तीरमें वास करके रामचंद्रजी परम प्रमुदित होते हुये वरन उनको अयोध्याके बिछुडने का जो दुःखथा वह भी भूलगये ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकां० भाषायां षट्पंचाशः सर्गः ॥५६॥

सप्तपंचाशः सर्गः ५७.

अब इधरका वृत्तांत सुनिये कि, जब रामचंद्रजी श्रृंगवेर पुरसे गंगाके दक्षिणतीर पर आये तो गुह बहुतही दुःखित होकर सुमंत्रजीके साथ बातें करते हुये अपने घर

चलेगये ॥ १॥ वह अपने पुरमें टिका हुआ रामचंद्रजीका प्रयागको भरद्वाजजीके आश्रममें जाना वहां अतिथि सत्कार लाभ करना और चित्रकूट पर्वत पर जाना इत्यादिक सबही बातोंकी खोज लेने लगा ॥ २ ॥ सुमंत्रजी तीन दिन निषादके यहां रहकर फिर गुहसे बिदाले रथमें उत्तम घोडे जोतकर अकेले वनमें महा खेद करते हुये अयोध्याको चले ॥ ३ ॥ यह सुमंत्रजी बहुतही थोडे समय में सुगन्धि पूर्ण कानन नदी सरोवर और ग्राम व नगर समूह देखते २ शीघ्रतापूर्वक दृढ चित्त किये हुये जाने लगे ॥ ४ ॥ इतनी जल्दी चले कि, दूसरे दिन संध्याके समय अयोध्यामें प्रवेश करके देखा कि, अयोध्यापुरी निरानन्द हो रहीहै॥५॥ किसी ओर कोई चुंकारीतक नहीं भरता ऐसा जान पडाकि सब नगरी सूनीहै और निरानन्द इसमें व्याप गयाहै, यह देख सुमंत्रजी बहुतही शोकमें व्याकुल हुये. और बहुत दुःखकरते हुये चिन्ता करने लगे ॥६॥ क्या अयोध्या नगरी, गज, अश्व, राजा प्रजा सबहीके सहित रामचंद्रजीकी शोकाग्निमें भस्म होगई ॥ ७ ॥ सुमंत्रजी इस प्रकार चिन्ता करते २ तेज चलनेवाले घोडोंके रथ पर बैठ हुए शीघ्रतापूर्वक नगरके फाटक पर पहुँच कर नगरमें प्रवेश करते हुये ॥८॥ जैसेही कि, सुमंत्रजी अयोध्यामें घुसे वैसेही सैकडों हजारों प्रजाके लोग " रामचंद्र कहांहैं ? " यह कहते २ उनकी ओर दौडे ॥९॥ सुमंत्रजीने सबहीको यह उत्तर दिया कि, मैं शृंगवेरपुरमें भागीरथी गंगाजीके किनारे महात्मा धार्मिक रामचन्द्रजीको प्रणाम करके उस जगह छोड और उनकी आज्ञाले लौटाहूं ॥ १० ॥ जब सबने जाना कि, रामचंद्रजी गंगाजीके पार चले गये तब सबही आंसू भरकर मुखसे " हाय ! धिक्कारहै " यह कहकर दीर्घ श्वास लेते हुये " हा राम ! " यह कहकर रोने लगे ॥ ११ ॥ महामति सुमंत्रजीने जाते २ उन वृंद २ लोगोंके सबके ही मुखसे यह सुना कि हम सबको जब रामचंद्रजीही नहीं देख पडते तब निश्चयही हम सब विनाशको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ हाय ! हम दान यज्ञ व विवाह आदिक बडे२कार्योंको करनें में महात्माओंके समाजके मध्य में बैठे हुए श्रीरामचंद्रजीको अब न देखेंगे ॥ १३ ॥ हाय ! प्रजाओंको किस प्रकार पालन करना चाहिये किस प्रकारसे उनका प्रिय कार्य होगा किस प्रकारके कार्य करनेसे प्रजा सुखमें रहेगी निरन्तर यही चिन्ता करके वह महात्मा श्रीरामचन्द्रजी सबको इस प्रकार पालन करते जिस प्रकार कि,पिता पुत्रको पालता पोषताहै ॥ १४ ॥ सुमंत्रजी बीच बजारमें जाते २ रामचंद्रजीके शोकसे संतापित झरोखों में बैठी हुई

पुरनारियोंके विलाप करने की अनेक प्रकारकी ध्वनि श्रवण करने लगे ॥ १५ ॥ राजमार्गमें इस प्रकारका विलाप सुनते सुनाते सुमंत्रजीने अपना मुख ढक लिया और जहांपर राजा दशरथजीथे उसी घरमें शीघ्रता सहित गये ॥ १६ ॥ वह जल्दी रथसे उतरकर राजगृहमें प्रवेश करकै जनोंकी भीडसे परिपूर्ण सात फाटकोंके पार होगये ॥ १७ ॥ कोठे विमानों व धवरहरों व सतखंडों पर चढी स्त्रियां सुमंत्रजीको रामबिना आये हुये देखकर हाहाकार करने लगीं क्योंकि वह सब पहलेही रामके न देखनेसे दुर्बल हो रहींथीं ॥ १८ ॥ स्त्रियें विमल बडे २ नेत्रोंसे आंसुओंकी धार छोडतीं विचारतींथीं कि, क्या करैं, अब क्या होगा यह विचार शिरझुकाये हुए परस्पर एक दूसरीको देखने लगी उन सबके देखनेसे यह प्रतीत होताथा कि, इन सबपर बडा भारी दुःख पडाहै ॥ १९ ॥ व महाराज दशरथजीकी स्त्रियोंका रोनाभी प्रत्येक धवरहरेसे धीरे २ सुन पडताथा क्योंकि उन लोगोंको मारे दुःखके ऊंचे शब्दसे रोनेकी शक्ति ही नहीं रही थी ॥ २० ॥ वह सब रोय २ कर यह कह रहीं थीं कि, सुमंत्रजी यहां से गये तो रामचन्द्रजीके साथथे पर अब रामचन्द्रजीके विना आये हैं सो अब यह रोतीहुई देवी कौशल्याको क्या जवाब देंगे ॥ २१ ॥ हम कहतेहैं कि, जैसा कुछ दुःखके साथ जीवको जीनेका स्वभावहै वैसा सुखके साथ जीने का नहीं देखो प्रियतम पुत्र रामचन्द्र जीके वनको चले जानेपर भी कौशल्याजी जीवन धारण कर रहींहैं, सो इसी दुःखकी आशासे कि, पुत्र फिर भी वनसे लौटेंगे इससे तो तभी प्राण दे देतीं जो इतना कष्ट अब न सहना पडता ॥ २२ ॥ राजा दशरथजीकी स्त्रियोंके ऐसे सत्यरूप वचन सुन्ते सुमंत्रजी शोकाग्निके द्वारा जलते हुए राजमंदिर में प्रवेश करते हुये ॥ २३ ॥ वहां देखा तो आठवें फाटकके भीतर जो चन्द्रमाकी समान झलक रहाथा उसमें राजा दशरथजी पुत्र शोकमें डूबे हुए दुःखित और महाव्याकुल हुए दीन भावसे पीले पडे हुए शय्या पर पडे हैं॥ २४॥ यह देख और राजाके सामने जाकर सुमंत्रजीने प्रणाम किया फिर रामचन्द्रजीने जो कहाथा वह सब विना कुछ घटाये बढाये निवेदन कर दिया॥ २५॥ राजाने चुप होकर सबही संदेशा सुना और सुनकर शोकसे व्याकुल होकर उन का हृदय गल गया और उस समय वह रामचन्द्र जीके शोकसे पीडितहो मूर्च्छितहो पृथ्वीपर गिरपडे॥ २६॥ पृथिवीपति राजाको मूर्च्छित और पृथ्वीपर पडा देख रनवासकी समस्त रानियें बाहें उठाकर रोदन करने लगी॥ २७॥ तब कौशल्याजीने सुमित्राजीकोसंग लेकर दोनोंमें एक२ हाथ

पकडकर पृथ्वीपर गिरे हुए राजाको उठाया और कहनेलगीं॥ २८॥ कि,हेमहाभाग!यह सुमंत्रजी दुष्करकर्म करनेवाले रामके दूत बनके वनमें बसते हुये उनके पाससे आपके निकट आयेहैं सो आप किसकारण इनसे नहीं बोलतेहो॥ २९॥पुत्रको वनवास देकर अब क्यों लज्जित होते हो उठिये आपका मंगलहोवे अब आपकी प्रतिज्ञा तो पूरी होगई अब शोक छोडिये मंत्रीसे बात तो कीजिये क्योंकि जो शोक करोगे तो आपको कौन समझावे और सहायता करैगा॥ ३०॥हे देव! जिसका भय करके सुमंत्रजीसे रामके समाचार पूछते हिचकतेहो वह कैकेयी इस समय यहां नहीं है, अतएव निश्शंकहो सुमंत्रसे रामका वृत्तांत पूछिये ॥ ३१ ॥ शोकसे व्याकुल होती हुई कौशल्याजी गद्गद वचन महाराज दशरथजीसे कहती हुई पृथ्वीपर मूर्च्छित हो गिर पडी ॥ ३२ ॥ कौशल्याजी भी विलाप करते २ पृथ्वी पर गिर पडीं और राजा दशरथ अपने पतिको मूर्च्छित देखकर और सब रानियें चारों ओरसे रोदन करने लगीं ॥ ३३ ॥ उन सबके उस रोनेके शब्दसे वहांके वृद्ध युवा पुरुष और सब दूसरी स्त्रियेंभी रुदन करने लगीं । उस समय उस रनवासमें व पुरमें फिर रोनेका शब्द फैल गया ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशः सर्गः ५८.

अनन्तर राजाकी मूर्च्छा जागी मोह गया और याद आई तब रामचंद्रजीका वृत्तांत जाननेके लिये उन्होंने सारथीको बुलाया ॥ १ ॥ सुमंत्रजी हाथ जोडे हुये दुःख शोकसे घिरे दुःखित रामचंद्रको शोचते हुये महाराज दशरथजीके पास आये ॥ २ ॥ वहां आकर देखा कि, महाराज दशरथजी बहुत संतापित होकर नये पकडे हुये हाथी की समान लंबे २ श्वास ले रहेहैं, और उनका मनभी व्याकुल हाथीकी नाई चिन्तामें डूब रहाहै ऐसे राजा दशरथजी वृद्ध होनेके कारण और भी व्याकुल थे ॥ ३ ॥ सुमंत्रकी देहमें धूललगी हुई मुख पर आंसू बहते हुये और जिनका आकार बहुतही व्याकुल जान पड़ता था सो उनसे राजा दशरथजी अति कातर वचन बोले ॥ ४ ॥ हे सुमंत्र ! वह बहुतही सुख भोगनेके लायक धर्मात्मा रामचंद्रजी इस समय पेडकी छायामें कहां बैठे होंगे ? और भोजन क्या करैंगे ॥ ५॥ हे सूत ! रामचंद्रने कभी दुःखका मुख नहीं देखाहै परन्तु इस समय

बडे दुःखमें पडेहैं वहां वनमें लेटनेके योग्य शय्या नहींहैं, अतएव राजाके पुत्र होकर किस प्रकारसे अनाथकी समान वह पृथ्वीपर लेटेंगे ॥ ६ ॥ जिनके कहीं जानेपर पैदल, रथ, और हाथी साथ २ चला करतेथे वह हमारे राम किस प्रकारसे जनशून्य वनमें रहेंगे॥ ७॥ जिस वनमें अजगर और सिंह व्याघ्रादि हत्यारे जीव और काले २ सांप सदा घूमा करते और रहतेहैं वहां अति सुकुमार राम और लक्ष्मण सीताके साथ किस प्रकार वास करेंगे ॥ ८ ॥ हे सुमंत्र ! वह राजपुत्र होकर तपस्विनी सुकुमारी जानकीके सहित किस प्रकार रथ छोडकर वनको पैदल चले गये ॥ ९ ॥ हे सूत ! तुमही सफल मनोरथ हो क्योंकि तुमने उन मेरे वारे राम लक्ष्मणको मन्दराचल पर्वतपर चढते हुये अश्विनी कुमारोंकी समान वनमें प्रवेश करते हुए देखा ॥ ॥ १० ॥ हे सुमंत्र ! वनमें जाकर रामचंद्रजीने क्या कहा ? और लक्ष्मण क्या बोले और जानकीने क्या कहा सो मुझसे कहे ❀ ॥ ११ ॥ हे सूत तुम रामचंद्रजीका उपवेशन और भोजन शयनका बखान मुझसे वर्णन करो जिसके सुननेसे मैं साधु समागमके द्वारा ययातिकी + नांई कुछेक जीवन धारण कर सकूंगा ॥ ॥ १२ ॥ जब इस प्रकार राजाने आज्ञादी तब सुमंत्रजी गद २ कंठसे और लडखडाती वाणीसे निवेदन करने लगे ॥ १३ ॥ हे महाराज ! धर्मके पालन करनेवाले रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीने शिर नवाकर आपको प्रणाम किया है और यह कहाहै ॥ ॥ १४ ॥ कि हे सूत ! तुम मेरी ओरसे मेरा नाम लेकर प्रथमही वंदन करनेके योग्य सब कुछ जाननेवाले पिताजीके चरणोंमें शिर झुकाकर प्रणाम करना॥ १५॥ हे सुमंत्रजी ! तुम हमारी ओरसे सब अंतःपुर वासियोंसे कुशल पूछना फिर विशेष करके उनसे हमारे आरोग्यका समाचार कहना और फिर जिस्से जैसा उचितहो प्रणामादि कहना ॥ १६ ॥ माता कौशल्याजीसे हमारी कुशल और प्रणाम कहना और फिर धर्मके विषयमें पूछकर फिर कहना ॥ १७ ॥ हे देवि ! आप धर्मानुष्ठान पूर्वक यथा समयमें अग्निहोत्रादि कर कराय देवताओंकी समान राजा दशरथजीके चरणोंकी सेवा किये करना ॥१८॥ और मान अभिमानको छोड करके सब पत्नि-

---

❀ १ पुनि २ पूछत मंत्रिहि राऊ ॥ प्रीतम सुवन संदेश सुनाऊ ॥ + २ राजा ययाति स्वर्गमें पहुँचकर अपना पुण्य कहने लगे समाप्त करनेपर इन्द्रने कहा जिह्वामें अग्नि देवता वास करते हैं तुम्हारा पुण्य अपने मुंहसे कहनेसे नष्ट होगया अब नीचे गिरो ययाति बोले यदि हमें गिराते हो तो जहां साधुसमागम होय वहां गिराओ इन्द्रने तथास्तु कह साधुसमागममें गिराया सन्तोंने राजाकी यह दशा देख अपना पुण्यदे फिर स्वर्गमें पहुँचा दिया ॥

योंके साथभी अच्छा नीका व्यवहार किया करना । राजा कैकेयीके कहनेमें हैं अत एव आपभी कैकेयीको मानें ॥ १९ ॥ और राजधर्मका स्मरण करकै यद्यपि भरत जी आपके लडकेहैं तौभी उनके प्रति राजाकी समान व्यवहार करना क्योंकि बडा न होनेमेंभी जो राजा होताहै वह सबही तरहसे पूजनीयहै ॥ २० ॥ हे सुमंत्र ! तुम भरतजीको हमारी तरफसे कुशल जनाकर फिर उनसे कहना कि, तुम सब जननियोंके प्रति यथा धर्मानुसार व्यवहार करना ॥ २१ ॥ और तुम महाबाहु इक्ष्वाकु कुलनंदन भरतजीसे यहभी कहना कि, तुम इस समय युवराज हुयेहो अतएव सब भांति महाराजकी सेवा और सहायता करना ॥ २२ ॥ और राजा राज्य करते २ बूढे होगयेहैं अतएव उनको राज्यभ्रष्ट न करना वरन जो कुछ वह कहैं वह करके उनकी आज्ञानुसार चलना ॥२३॥ उन्होंने फिर आंखोंमें आंसू भरकर मुझसे भरतजीको यह कहनेको कहा कि, तुम "अपनीही माताकी समान उन पुत्रवत्सला माता कौशल्याजीको समझना" ॥ २४ ॥ महाबाहु महा यशस्वी, पद्मपलाशलोचन रामचंद्रजी मुझसे यह वार्त्ता कहते २ अखंड धार नेत्र जल वर्षाने लगे ॥ २५ ॥ तब लक्ष्मणजीने बहुतही कोपित होकर और लंबा श्वास भरकर कहा कि "राजपुत्र होकर हम किस अपराधसे वनको भेजे गये ॥ ॥ २६ ॥ राजाने कैकेयीके ओछे वचन मान प्रतिज्ञाकर कार्य अकार्यका कुछ विचार नहीं किया । किसीका क्या बिगड़ा दुःखमें तो सब भांति हमही पडे ॥ ॥ २७ ॥ यदि कैकेयीके लोभकेही कारणहो, या वरदान मांगनेहीके सबबसेहो किसीभी प्रकारसे क्यों न हुआहो रामचंद्रजीको वनमें भेजनेसे बहुतही अन्याय हुआहै ॥ २८ ॥ यदि ईश्वरके करानेसे उन्होंने ऐसा किया तौभी श्रीरामचंद्रजीके परित्यागमें ईश्वरकृतिकाभी हेतु विदित नहीं होता क्योंकि इन रामचंद्रजीमें ऐसा कोई दोष नहीं जो इन्हैं वनको भेजा जाय ॥ २९ ॥ अतएव केवल बुद्धिकी अल्पताके हेतु कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको न विचार करके जो रामचंद्रजीको वनमें भेजही दियाहै तौ इस वनमें भेजनेसे लोक परलोक दोनोंमें राजाकी निन्दा होगी ॥ ३० ॥ हम कुछ पिता माता आदिके वियेग सहकर अयोध्या जानेके लिये ऐसा नहीं कहते क्योंकि अबतो रामचंद्रजीही हमारे स्वामी, भ्राता, बन्धु और पिताहैं ॥ ३१ ॥ सबलोगोंके प्यारे व सबहीके हित करनेमें रत जब ऐसे श्रीराम चंद्रजीही को राजाने वनमें भेज दिया तब इस कर्मसे कैसे सब लोग प्रसन्न होंगे ॥

॥ ३२ ॥ सर्व प्रजाको आराम देनेवाले बडे धर्मवाले श्री रामचन्द्रजीको वनवासदे सब लोकसे विरुद्ध कर्मकर राजा दशरथजी किस प्रकारसे आपही राजाहोंगे ॥ ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! जिस प्रकार किसीका मन भूतके चढनेसे बबडा जाताहै और वह प्राणी सब चौकडी भूल जाताहै, तपस्विनी जानकीजीभी इसी भांति बैठी रहकर केवल ऊँचे श्वास लेने लगीं ॥ ३४ ॥ राजपुत्री जानकीने इससे पहले कभी कोई ऐसी विपत्ति नहीं देखीथी । इस समय वह ऐसी भारी विपत्ति पड़ी देख-कर केवल रोदन करने लगीं और मुझसे कुछ न बोलीं ॥ ३५ ॥ अनन्तर मुझे अयोध्याको लौटते देख बहुत सूखे हुये मुखसे स्वामी रामचन्द्रजीकी ओर देखकर एकाएक करोने लगीं ॥३६॥ हे राजन् ! रामचन्द्रजीभी वैसेही रोते हुये और हाथ जोडे हुये लक्ष्मणजी जिनको हाथोंसे थाम रहेथे, जबतक मेरे साथ बातें करते रहे निरपराधा जनकदुलारीभी तब तक वैसेही रोती हुई आपके रथकी ओर मेरी ओर देखती रहीं ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० अयो० भाषायां अष्टपंचाशः सर्गः ॥५८॥

एकोनषष्ठितमः सर्गः ५९.

हे महाराज ! मैं वहांसे लौटा तो सही परन्तु रामचन्द्रजीको वन जाते देखकर रथके घोडे मार्गमें आकर आंसू बहाने लगे और किसी तरह उन्होंने उस समय रथको लेचलना नहीं चाहा ॥ १ ॥ अब बहुत कहांतक कहैं ? मैं राम लक्ष्मण दोनोंके निकटसे हाथ जोडकर बिदा लेकर और उनके वियोगका दुःख किसी रीतिसे हृदयमें धारणकर रथपर चढ इधरको चला ॥ २ ॥ कदाचित् रामचंद्रजी फिर बुलाकर मुझे अपने साथले चलें इस आशासे मैं गुहके सहित कई दिनतक उसके घरमें रहा ॥३॥ बस वहांसे मैंभी सीधा इधरको चला आताहूं । आते आते मार्गमें देखा कि, आपके राज्यमें सब वृक्षभी रामचंद्रजीपर यह विपत्ति पडी देख फूल अंकुर और कलियोंके सहित सूखे और बिल्कुल मुरझायेहुयेसे होगयेहैं उनमें अब पहलीसी शोभा और सुकुमारता नहींहै ॥ ४ ॥ नदी ताल और छोटी तलैयोंका जलभी सूखनेपर आगया और वन बागके सब पेडोंके पत्ते बनाय सूखही जाने पर होगयेहैं ॥ ५ ॥ सब प्राणियोंकी चलने फिरनेकी शक्ति जाती रही, वह अब खाने पीनेकी सामग्रीको खोजनेके लिये किसी ओरको गमन नहीं करते, सर्पादिक

हत्यारे जीवभी नहीं चलते फिरते इसप्रकार प्राणिमात्रही रामचंद्रजीके शोकमें चुपचाप बैठेहैं सब वन एक वाणीसे निस्तब्ध और शब्दरहित होगयाहै ॥ ६ ॥ सब नदियोंका जल मैला होगया और उनके बीचमें सडे गले कमल फूलोंके पत्ते बहा करतेहैं, और उनमेंके सब कमल संतप्त हो रहेहैं सब सरोवर सुखाय गये, और उन सबके कमलभी सूखगये अब तालावोंमें जलचर पक्षी जल मुर्गादि इत्यादिक और मछलियां नहीं दृष्टि आतीं ॥ ७॥ क्या तो जलके पैदा होनेवाले फूल, कमल, बबूला, कह्लार आदि और क्या पृथ्वीपर होने वाली फूल निवारी, गुलाब, चम्पा, चमेली आदिके फूलोंकी मालामें अब पहलेकी भाँति सुगन्धी नहीं रही और ऐसेही सब प्रकारके फल होगयेहैं ॥ ८ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अयोध्यामें जितनी फुलावरियाँथीं सबही शून्य और पक्षियों करके हीन होगईं और सबही बाग बगीचे चित्तको प्रसन्न करनेवाले नहीं दीख पडते ॥ ९ ॥ जब मैं अयोध्यामें आया तो किसीने मुझसे बात चीत नहीं की सबही रामचंद्रजीको न देखकर वारंवार ऊर्ध्वश्वास लेने लगे ॥ ॥ १० ॥ हे देव ! राजमार्गमें जो सब लोग गमनागमन कर रहेथे वह सब रामचं-द्रजीको राजमार्गमें न देखकर शोकमें भरकर रोने लगे ॥ ११ ॥ रामचंद्रजीके दर्श-नकी लालसा लगाये और उनके विरहमें जो हाहाकार कर रहीं वह सब स्त्रियां धवरहरे अटारियें और सतखंडोंके ऊपर बैठी हुई रामचंद्रजीके विना रथ आता देख कर हाहाकार करने लगीं ॥ १२ ॥ और वह सब बहुतही व्याकुल होकर परस्पर एक दूसरीको देखने लगीं उस समय उनके विशाल विमल नेत्रोंसे बहुत आंसू निक-लने लगे बस उनका यह विलापकलाप देखकर स्पष्ट प्रगट होताथा कि, स्त्रियां बहुत ही कातर हो रहींहैं ॥ १३ ॥ इसप्रकार प्रत्येक जनके व्याकुल होनेसे कौन शत्रुहै कौन मित्रहै और कौन उदासीनहै व्याकुलतासे कुछभी कहीं समझमें नहीं आसकता ॥ १४ ॥ अधिक कहांतक कहैं अयोध्या पुरीके मनुष्यमात्रही हर्षशून्यहैं, आनन्दसे रहित और बहुतही मलिन होरहेहैं वह सबही आर्त्त नाद करके जल्दी २ लंबे २ श्वास लेतेहैं और हाथी घोडेभी सब अतिशय कातर होरहेहैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार रामचंद्रजीको वनवास देनेसे सबही कोई आतुर हो रहेहैं यह सब देख सुनकर ऐसा बोध होताहै मानो कौसल्याजीकी नाईं अयोध्याजीको भी पुत्रका वियोग हुआहै ॥ १६ ॥ राजादश-रथजी सुमंत्रके ऐसे दीन वचन सुन गद्गद वाणीसे दीनोंकी नाईं उनसे बोले ॥ १७ ॥ कि हमने पापजन्म और पापका मनोरथ करनेवाली कैकेयीके कहने और उस करा-

नेसे सलाहदेनेमें चतुर वृद्ध मंत्रियोंके साथ कर्त्तव्य अकर्त्तव्य विचार न करके रामको वन भेजदिया ॥ १८ ॥ एक साधारण स्त्रीके मोहमें पडकर न भाईकी संमति ली न मंत्रियोंसे परामर्श किया न वेदके जाननेवालोंसे व्यवस्थाली, न किसीसे कुछ कहा सुना बस सहसा इस दुष्कर कर्मको करडाला ॥ १९॥ हे सूत! निश्चयही बोधहोताहै एकमात्र होनीके वश होकरही इक्ष्वाकुवंशको उजाडनेके लिये यहदारुण कष्ट उपस्थित हुआहै ॥ २० ॥ हे सुमंत्र ! जो कुछ हुआ सो हुआ, पर जो हमने कभी तुम्हारा कुछ उपकार कियाहो सो तुम हमें शीघ्रही रामके पास लेचलो क्योंकि हमारे प्राण अब देहसे चला चाहते हैं ॥२१॥ रामचंद्रजीके विना हम एक मुहूर्त्तभरकोभी नहीं जीसकेंगे हमारे प्राण रक्षा करनेका अबभी कुछ प्रयोजन हो तो रामचंद्रजीको यहां लौटालाओ ॥ २२ ॥ अथवा यदि महाबाहु रामचंद्रजी दूर निकलगये हों और उनके लौटालानेकी आशा नहो तो हमें शीघ्र रथपर चढाकर रामके दर्शन कराओ ॥ २३ ॥ आह ! लक्ष्मणके अग्रज महाधनुर्द्धर नयनानन्ददायक कुन्दपुष्पसम दांतवाले वह हमारे प्यारे रामचंद्रजी कहां हैं ? यदि देहमें प्राण रहें तो सीतासहित प्यारे पुत्रको फिर देखूंगा ॥ २४ ॥ इससे अधिक और दुःखका विषय क्या होगा कि, मैं इक्ष्वाकुकुलनंदन रामचंद्रजीको इस मरणअवस्थामें नहीं देख सकता ॥२५॥ हाराम ! हालक्ष्मण ! हा निरपराधाजानकी ! मैं जो अनाथकी समान अति कष्टसे इस समय प्राण त्याग करताहूं सो इसकी तुम्हें कुछभी खबर नहीं है ॥ २६ ॥ अनन्तर राजा दशरथ दुःखसे चेतनारहित और अपार शोकसागरमें डूबकर कौशल्याजीसे बोले हे देवि ! ॥ २७ ॥ जिन रामचंद्रजीका शोक तो महा स्रोतहै और सीताका जो विरहहै वही उसकी अत सीमाहै दीर्घ श्वास जोहैं यही तरंगें उठते हुए भँवरहैं, नेत्रोंका जो जलहै वही वेगहै ॥२८॥ हाथ विक्षेप जो है वही मत्स्यहैं रोना जोहै वही गर्जनाहै शिरके बाल सेवालहैं कैकेयी वडवानलहै ॥ २९ ॥ और मेरी आँखोंका जल गंभीरताकी उत्पत्ति करने वालाहै, और पीर उपजानेवाले मंथराके वचन महाग्राहकी समानहैं, और जिस करके रामचंद्रजी वनको भेजे गयेहैं उस निठुर कैकेयीके वर दोनों किनारेहैं ॥ ३० ॥ सो हे कौसल्या ! इस प्रकारके महा अथाह शोकसागरमें हम रामचंद्रजीके विना डूबतेहैं, इस जन्ममें तौ हम इस शोक पारावारको उतर नहीं सकते, इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥३१॥ मैं जो आज प्राण प्यारे रामको लक्ष्मणके सहित देखना चाहताहूं; और तौभी वह देखनेको नहीं

मिलते। भला यह हमारे महापातकोंका फल नहीं है तो क्याहै ? इसप्रकार विलाप करते २ परम यशस्वी महाराज दशरथजी तत्कालही मूर्च्छित हो शय्यापर गिर पडे ॥ ३२ ॥ रामचंद्रजीके लिये अतिमात्र करुणा स्वरसे विलाप करते २ मूर्च्छित होगये महारानी कौसल्याजी उनका यह विलाप सुनकर स्वामीके वियोग दुःखकी शंकासे कि, कहीं राजा प्राणोंको न त्याग करदें इसकारण दूनाभय पाती हुई ॥ ३३॥
इत्यार्ष० श्रीमद्रा० वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

उस समय कौसल्या भूत लगे मनुष्यकी नाईं वारंवार थरथराय व स्वप्नमें जागे हुयेकी समान धरतीमें गिरती पडती हुई सुमंत्रजीसे बोली ॥ १ ॥ जहांपर रामचंद्रहैं जिस स्थानपर लक्ष्मणहैं और जहां सीताहैं सुमंत्र ! तुम हमें वहीं ले चलो, हम आज उनके विना क्षणमात्रभी नहीं जी सकैंगी ॥ २ ॥ तुम जल्दी रथ लौटाओ और हमें वनको लेचलो अथवा दूर चले जानेसे वह हमें न मिल सकैं तो हम यमराजके यहां चली जाँयगी ॥ ३ ॥ तब सुमंत्रजी हाथ जोडकर गद्गद वाणीसे देवी कौसल्याजीको समझाते बुझाते हुये बोले ॥ ४ ॥ हे देवि ! अब आप शोक मोह और दुःखसे उत्पन्न हुये सम्भ्रमका त्याग कर दीजिये, क्योंकि रामचन्द्रजी बडे सुखसे वनमें वसैंगे ॥ ५ ॥ और लक्ष्मणजी अतिधार्मिक और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवालेहैं, वह रामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा करके अपना परलोक बना रहेहैं ॥ ६ ॥ व श्रीरामचन्द्रजीमें चित्त लगाये सीताजीभी उनके साथ विजन वनमें घरकी समान निःशंक और आनंदसहित वास करैंगी ॥ ७ ॥ हमने उनमें सूक्ष्मतर कुछभी दीनता नहीं देखी, अतएव मुझको सहजही प्रतीत होताहै कि, सीताजी वनमें रहनेके योग्यही हैं ॥ ८ ॥ जिस प्रकार सीताजी अयोध्याजीके बाग बगीचोंमें जाय विहार करतीथीं, सो तिसी भांति सब निर्जन वनोंमेंभी वह वैसेही आनंद सहित विहार करतीहैं ॥ ९ ॥ वह पूर्णिमाके चंद्रमाकी समान मुखवाली सीताजी बालककी समान दुःखको कुछ न समझ निश्चिंतमनसे रामरूपी बागमें परमसुखसे विचरतीहैं ॥१०॥ जिन सीताजीका मन रामचन्द्रजीमें लगाहै तिनका जीवन रघुनाथकेही अधीनहै इस कारण विना रामचन्द्रजीके यह अयोध्या सीताजीको महावनके समान जान पडती है ॥११॥ वहां वह जिस गांव,

नगर, या जिन सब नदियोंकी गतिको देखती हैं या अनेक प्रकारके वृक्ष या जो कुछभी देखतीहैं उसका वृत्तान्त जानना चाहतीहैं ॥ १२ ॥ और रामचन्द्रजी या लक्ष्मणसे उन सबके विषयमें पूछकर उसको जान लेतीहैं और ऐसी प्रसन्न रहतीहैं मानों अयोध्याजीसे एक कोशके अन्तर फुलवाडीमें विहार कररहीहैं ॥ १३ ॥ हम सीताजीके इसी सुखको याद करतेहैं जो कि, वह रामचन्द्रजीके साथ आनंदमें रहती हैं सो उन्होंने दुःखके वेग वशहो हठात् कोई बात कैकेयीके सम्बंधमें कहीथी या नहीं ऐसा तो मुझको स्मरण नहीं आता ॥ १४ ॥ जो बातें प्रमादके वश हो जानेसे कौसल्याजीको सूझीथीं, उन बातोंको सुमंत्रजीने इसभांतिके वचन कहकर संहार करदिया और कौसल्याजीसे अति मधुर आनन्ददायक वचन बोले ॥ १५ ॥ मार्ग चलनेके परिश्रमसे, वायुके प्रचंड वेगसे संभ्रम वा गरमीके तापसे किसीसेभी जानकीजीकी वह चन्द्रकिरण शोभामयी विमल प्रभा मलिन नहीं हुई॥ १६ ॥ अथवा उन चतुर जानकीजीका वह शतपत्र कमलके समान और पूर्ण चंद्रमाकी दीप्तिके समान दिपता हुआ वदनमंडलभी मलिन नहीं हुआ ॥ १७ ॥ उनके दोनों चरण स्वभावसेही महावरकी समान लाल वर्णहैं; अतएव महावरविहीन होके भी अबतक इन चरणोंकी पद्मकेशर सहित सुकुमार प्रभाकी कुछ हानि नहीं हुईहै ॥ १८ ॥ उन्होंने रामचंद्रजीके प्रति अनुरागके वशहो अबतक गहनोंको त्याग नहीं कियाहै, वह चरणमें पहरी हुई पायजेबकी झनकारसे हंस आदिके शब्दोंको लजाती हुई प्रसन्नतापूर्वक चली जातीहै ॥ १९ ॥ वह रामचंद्रजीकी भुजाओंके बलसे रक्षित होकर वनके बीच शेर अथवा व्याघ्र देख किसी तरहकी कुछ शंका नहीं करतीं ॥ ॥ २० ॥ अतएव आप रामचन्द्र, लक्ष्मण व सीताके लिये अपने लिये और दशरथ जीके लिये कुछ भी शोक न कीजिये जो रामचंद्रजी करैं वह करनेही दीजिये क्यों कि रामचन्द्रजीको उस अद्भुत चारित्रका चिरकालही संसारमें प्रचार रहैगा ॥२१॥ वह इस समय वनवासी और वनके कंद, मूल, फल खानेवाले तपस्वी होगये हैं व इसीकारणसे एक वारही शोक छोडकर अधिक प्रफुल्ल चित्तसे अपने पिताजीकी परमपवित्र आज्ञा पालन करते हुए वनमें वसते हैं ॥ २२ ॥ उस समय कौसल्या जी पुत्रशोकसे बहुतही घबडाकर व्याकुल होगईथीं यद्यपि सुमंत्रजीने इस भांतिकी युक्ति पूर्ण बातोंसे उनको बहुत समझाया परन्तु वह शान्त न होकर "हा प्रियपुत्र ! हा रघुनंदन" कहकर वारंवार रुदन करने लगीं ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि०अयो० भाषायां षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

जब गुणाभिराम धर्ममें रमण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी वनको चले गये तौ कौशल्याजी बहुतही व्याकुल हृदयहो रोय २ अपने पति राजा दशरथजीसे बोलीं ॥ १ ॥ राजा दशरथ दयालु, बडे दानी, प्रियवादी जानकारहैं ऐसा तीनों लोकमें आपका बडा यश फैल रहाहै ॥ २॥ और विशेष करकै आप नरश्रेष्ठ हैं फिर भला आपने किस प्रकारसे और किन प्राणोंसे पुत्रवधू जानकीको अपने दोनों पुत्रोंके साथ वनको भेज दिया ? हाय ! जो राम लक्ष्मण बडे सुखसे लालन पालन किये गये, जिन्होंने कभी लेशमात्र दुःख नहीं जाना, सो न जानें अब किस प्रकार वह वनवासके दुःखको सहैंगे ॥ ३ ॥ सीताकी यह सोलह वर्षकी तरुण अवस्था, और विशेष करकै जिनको सदा सुखही भोग करना उचितहै सो वह कोमल अंग वाली जनक लडैती प्यारी जानकीभी न जाने किस तरहसे रहैंगी ? ॥ ४ ॥ अहो ! विशालनेत्रवाली जानकीने सदाही सुन्दर शोभनयुक्त स्वादिष्ठ व्यञ्जन भक्षण कियेहैं । वह अब किस प्रकारसे वनके खट्टे तीखे फल वह समा इत्यादिक अन्न भोजन करेंगी ॥ ५ ॥ हा ! जिन कल्याणीमें सदाही मनोहर गीत व बाजे आदिक श्रवण कियेहैं । इस समय वह किस भांतिसे मांस खाने वाले सिंह इत्यादिक पशुओंका दारुण व कठोर शब्द श्रवण करेंगी ॥ ६ ॥ और इस समय वह महा बल राम इन्द्रकी ध्वजाके तुल्य सबको उत्सव देने कराने वाली भूषणरहित परिघ समान भुजाका तकिया बनाकरही शयन करते होंगे ॥ ७ ॥ न जाने फिर हम कितने दिनोंमें रामचन्द्रजीकी वह कमलदलकी समान बडी आंखें वारिजकी समान मनोहर वर्ण और पद्मसदृश सुगन्धि विश्वास युक्त नरम घूँघरवाले बाल जिसपर पडे हुये ऐसा सुकुमार वदन देख पावेंगी ? ॥ ८ ॥ हमारा हृदय निश्चयही वज्रके समानहै इसमें कोई संदेह नहीं क्योंकि रामको न देखकर अबतकभी इसके हजार टूक नहीं होजाते ॥ ९ ॥ हे महाराज ! आपने वृद्धोंके सहित परामर्श न करकै एकाएक कैसा शोचनीय कर्म किया कि, हमारे वारे राम लक्ष्मण सब प्रकारसे सुखके भागी होकर कैकेयीकी ताडनासे अनाथोंकी समान वनमें दौडते फिरतेहैं ॥ ॥ १० ॥ यदि १४ वर्ष बीतनेके पीछे पंद्रहमें रामचन्द्र लौटभी आवैं और उस समय भरत उनकी राजगद्दी और खजाना देदे ऐसा तो बोध नहीं होता ॥ ११ ॥ क्योंकि श्राद्धके समय कोई २ पहले पहले अधिक फल मिलनेके लिये जामाता व

समधीही आदिको बुलाकर खिलातेहैं और तिसके पीछे जब उनका मनोरथ पूर्ण होजाताहै तो पीछेसे ब्राह्मणोंको भोजन करनेके लिये बुलातेहैं ॥ १२ ॥ परन्तु ऐसे स्थानपर गुणवान् विद्वान् देवताओंकी समान ब्राह्मण भोजन नहीं करते चाहै उनको अमृत क्यों न खानेको मिलताहो क्योंकि उनका मानभंग होजाताहै॥ १३॥ जिसप्रकार से कि, बैल अपने सींगोंका कटवाना नहीं सहसकते वैसेही ज्ञानी श्रेष्ठ ब्राह्मणगण भोजनसे बचा हुआ अन्न भोजन नहीं करते ॥ १४ ॥ बस इस रीतिसे छोटे भाई भरतके भोगे हुए राज्यको श्रेष्ठ भाई सब बातोंमें श्रेष्ठ रामचंद्र कैसे अंगीकार करैंगे वे अपना राज्य लियेही रहैंगे ॥ १५ ॥ व्याघ्र कभी पराया माराहुआ मांस या और पदार्थ कभी नहीं खाता इसी प्रकार पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी भरतके भोगे हुये राज्यको कभी ग्रहण करनेकी अभिलाषा नहीं करैंगे ॥ १६ ॥ क्योंकि यज्ञसे बची हुई खीर, घी, कुश, खंभ व स्रुव इत्यादि फिर दूसरे यज्ञके योग्य नहीं रहते कारण कि, वह जूंठे होजातेहैं ॥ १७ ॥ सार निकाले हुये अमृतकी समान अथवा सोम निकाले हुये यज्ञकी समान यह भरतका भोगा हुआ राज्य रामचंद्रजी किसी प्रकारसे ग्रहण करनेमें सम्मत नहीं होंगे ॥ १८ ॥ बलवान् सिंह जिस प्रकार अपनी पूंछ घुमानेको नहीं सह सकता वैसेही रामचंद्रजी ऐसे असत्कारको नहीं सह सकेंगे क्योंकि रामचंद्रजीको राज्य तो पाने दिया नहीं और वह भरतजीका दिया लेलैं यह कैसे हो सकताहै ॥ १९ ॥ रामचंद्र बहुतही धर्मपरायण हैं व और सब लोकोंकोभी धर्मकी तरफ फेरतेहैं यद्यपि सुर असुरोंसहित सब लोक उनसे संग्राममें भय करतेहैं तथापि वह बलपूर्वक राज्य ग्रहण करके कभी अधर्मसंचय नहीं कर सकते ॥ २० ॥ वे महावीर्यवान् और महाबाहुहैं प्रलयकालमें भगवान् जिस प्रकार सब संसारको भस्म करतेहैं और सागरको सुखाय देतेहैं वैसेही यह अपने सुवर्णके बाणोंसे सहजही यह कर्म कर सकते हैं ॥ २१ ॥ हाय ! मत्स्य जिस प्रकार अपनी संतानहीको खाय जाता है, वैसेही कमललोचन हमारे वीर राम सिंहके समान बलशाली और सब लोकोंमें श्रेष्ठ होकर भी अपने पिता करकै नष्ट हुये ॥ २२ ॥ सनातन ऋषिगणोंने वेदोंमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंके आचरण करनेके लिये जो उपदेश कियाहै सो आपका उसमें विश्वास नहीं है, इसीसे तो अपने परम धार्मिक पुत्रको भी वनमें भेज दिया ॥ २३ ॥ हे महाराज ! विचार करके देखो कि, स्त्रीकी एक गति स्वामी, दूसरी गति पुत्र, तीसरी

गति जात बिरादरीके लोग, और चौथी उसको कोई गति नहींहै ॥ २४ ॥ परन्तु हाय ! यह दुःख किससे कहूं आप हमारे प्रथम गति हैं तो सही पर हमारे नहींहैं; और दूसरी गति जो हमारे पुत्र रामचंद्रथे उनको वनमें भेज दिया; तीसरी गति सब परिवारवाले भी रामचंद्रके विना मरे पडेहैं. मैं विधवा नहींहूं जो रामचंद्रजीके साथ वनको चली जाती बस हमारे धर्मका कोई रक्षक नहीं आपने हमें न इधरका रक्खा न उधरका सब ओरसे नष्ट किया और कहीं का न रक्खा ॥ ॥ २५ ॥ और हमहीको नहीं आपने इसी प्रकार अनेक राज्य सहित नगरको, सब मंत्रियों सहित प्रजाको और पुत्रके साथ मुझको व समुदाय नगरनिवासियों को नष्ट किया केवल आपकी भार्या कैकेयी और पुत्र भरत अब परम हर्षित होंगे॥ ॥ २६ ॥ कौशल्याजीके इस प्रकार मर्मभेदी वचन सुनकर राजा दशरथजी अतीवही दुःखित हुए और हा राम ! कहकर चेतनारहित हो रामचंद्रजीको स्मरण करते मूर्च्छित होगये । और फिर चैतन्य होकर शोकसागरमें डूबगये और पहले किये उस बुरे कर्मकी स्मृति आती रही ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्ये अयो० भाषायां एकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

शोकके वेगसे क्रोधित हुई रामजननी कौशल्याजीके ऐसे दारुण वचन श्रवण करके राजा दशरथजी दुःखित होकर चिन्ता करने लगे ॥१॥ चिन्ता करते २ उनको मोह उपस्थित हो आया और उनकी सब इन्द्रियां विकल हो आईं और फिर बहुत देरमें उन शत्रुतापनको होश आया ॥ २ ॥ चैतन्यता प्राप्त करकै दीर्घ और बडे श्वास लेते हुये कौशल्याजीको पास बैठे देखकर फिर चिन्ता करने लगे ॥ ३ ॥ चिन्ता करते २ उनको यह बात याद आई जो कि, पहले उन्होंने अज्ञानके वश होकर शब्दवेधी बाणसे ऋषिकुमारको मार डालाथा ॥ ४ ॥ एकतो उस शोकसे और एक रामचंद्रजीके शोकसे उनका चित्त संतापित होकर व्याकुल होने लगा ॥ ५॥ वह दोनों शोकोंसे भस्म होनेसे दुःखित होके देवी कौशल्याजीको प्रसन्न करनेके लिये हाथ जोड शिर झुकाये कांपकर यह कहने लगे ॥६ ॥ हे प्रिये ! हम हाथ जोडकर तुमको प्रसन्न करतेहैं क्योंकि तुम सदा शत्रओंके ऊपर भी दया करती और प्रसन्न रहती हो निन्दारहित हो ॥ ७ ॥ गुणवान् हो व गुणहीनहो,

कुशील हो या सुशीलहो परमधर्मवान् स्त्रियोंके लिये स्वामी ही प्रत्यक्ष देवताहै ॥ ८ ॥ तुमभी सदा धर्ममेंही तत्पर रहतीहो और जानतीहो कि, कौन विषय अच्छा और कौन बुराहै? अतएव दुःखमें पडके हमारे इस दारुण पुत्रशोकके ऊपर ऐसे कुप्यारे वचन तुमको नहीं कहने चाहिये ॥ ९ ॥ दीनभावापन्न महाराज दशरथजीकी ऐसी बातको सुनकर कौशल्याजीके नेत्रोंसे आंसुओंकी धार इस भांति बहने लगी जैसे वर्षाकालमें कोठे आदिके नाले बहा करतेहैं ॥ १० ॥ कौशल्याजीने रोय २ कर नम्रतापूर्वक महाराज दशरथजीके जोडे हुये हाथ अपने मस्तकपर रख लिये और शीघ्रतापूर्वक डरे हुये वचनोंसे परम आदरपूर्वक महाराज दशरथजीसे बोलीं ॥ ११ ॥ हे देव ! मैं पृथ्वीपर गिरकर आपके चरणोंको छूतीहूं आप प्रसन्न हूजिये जब आपने हमसे क्षमा प्रार्थना की सो मैं तो इससेही मरगई, क्योंकि आपको हमसे क्षमा प्रार्थना करनी ठीक नहीं ॥ १२ ॥ स्वामी ! इस लोक और परलोक दोनोंमें पति आदर करनेकी सामग्रीहै सो स्वामीको जब इस प्रकार स्त्री सतावे तो वह स्त्री कभी कुलीन नहींहै ॥ १३ ॥ हे धर्मवित् ! मैं धर्मको जानतीहूं और यहभी जानतीहूं कि, आप सत्यवादीहैं। मुझे निदारुण पुत्रशोकहै । व्याकुल विह्वल होनेसे मेरे मुखसे ऐसी अनुचित वार्त्ता निकल गई ॥ १४ ॥ देखो शोकसे धीरजका नाश होजाताहै और शोकही ज्ञानको नाश करदेताहै और अधिक क्या कहूं शोकसेही सर्व नाश होजाताहै बरन शोकके समान कोई आतताई शत्रु नहीं है ॥ १५ ॥ चाहे शत्रुके हाथका प्रकारभी सह लिया जाय परन्तु शोकतो थोडेसे थोडाभी नहीं सहाजाता बस और पुत्रशोककी व्यथा कहांतक कहूं ॥ १६ ॥ गिनतीमें आज पांच रातें रामचन्द्रजीको वन गये बीतीहैं, परन्तु हमें तो यही पांच रात्रि पांच वर्षकी समान बीतीहैं रामके शोकके मारे हर्ष तो हमसे एक साथही बिदा होगया ॥ १७ ॥ यह कई एक रात्रि रामकी चिन्ता ही करते बीतीहैं जिस प्रकार नदीके वेगद्वारा समुद्रका जल बढ जाता है वैसेही रामचन्द्रजीकी चिन्तासे हमारे हृदयमें शोक बढ रहा है ॥ १८ ॥ कौशल्याजी इस प्रकार शुभ कथा कहने लगीं क्रमसे सूर्य नारायणकी किरणोंका क्षय हुआ और रजनी उपस्थितहुई ॥ १९ ॥ राजा दशरथ कौशल्याजीके वचन सुनकर कुछेक हर्षित हुए और फिर शोकमें निमग्न हो नींदके वश होगये ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषयां द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३.

एक मुहूर्त्तके पीछे राजा जागे तब मारे शोकके व्याकुलचित्त हुए और बार २ चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ जिस प्रकार राहु असुरकी अँधियारी ग्रहणके समय सूर्य नारायणको ढक लेतीहै वैसेही रामचंद्र व लक्ष्मणजीके वनवास देनेका जो उपद्रवथा वह इन्द्रकी समान राजा दशरथजीको उस समय सतानेलगा ॥ २ ॥ सीता सहित रामचंद्रजीके वन चले जानेपर राजा दशरथजीको अपने पहले किये दुष्कर्मकी सुधि आई और वह महारानी कौशल्याजीसे उस वृत्तांतको कहनेके अभिलाषी हुए ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजीके वनमें चले जानेपर छठवीं रात्रिको आधी रात्रिके समय उन महाराज दशरथजीको अपना पहला दुष्कर्म सहसा याद आया ॥ ४ ॥ व पुत्रशोकसे बनाय पीडितहो वह राजा अपने खोटे कर्मको यादकर पुत्रशोकसे दुःखित कौशल्याजीसे बोले ॥ ५ ॥ अयि कल्याणि ! अच्छा या बुरा जो कुछभी कर्म कियाजाताहै सो उसके करनेवालेको उन सब कर्मोंका फल भोगना पडताहै ॥ ॥ ६ ॥ हे भद्रे ! उनमेंसे जो पुरुष कर्म करनेके पहले उस कर्मकी छुटाई प्रतिष्ठा या अच्छे बुरेका विचार नहीं करताहै उसेही बालक कहते हैं ॥ ७ ॥ जो पुरुष पलाश वृक्षके लाल २ सुन्दर २ फल देख फलका लोभीहो आमके पेडको काटकर पलाशकी जडमें जल दे तो फलके समय निश्चयही उसको पछताना पडताहै क्योंकि पलाशमें किसी प्रकारके फल नहीं आते ॥ ८ ॥ इससे जो पुरुष कर्मको करने लगता और उसके फलको नहीं शोचलेता उसकोभी फलके समय आम काटकर पलाश सींचनेवालेकी समान शोक करना पडताहै ॥ ९ ॥ सो रामचंद्रजीके त्याग करनेसे हमनेभी आम्रवनको काटकर पलाशके पेडको जलसे सींचा अतएव इस समय फलभोग करनेके समय शोकका भोग कररहेहैं॥ १० ॥जो हो हेदेवी ! पहलेही कुमार अवस्थामें हमने शब्दवेधी कहलाकर विख्यात होनेके अभिलाषसे धनुष धारण कर जोपाप कियाथा हे देवि ! सो उसी पापसे अब यह दुःख पडा॥ ११ ॥हम आपही इस दुःखके हेतुहैं बालक जिस प्रकार अज्ञानतासे विष भक्षण कर जाय वैसेही हमभी अजानमें यह पापकर विनाशको प्राप्तहुए॥ १२ ॥साधारण मनुष्य जिसप्रकार पलाशके सुमनपरही मोहित हो जातेहैं और उसके फलकी ओर ध्यान नहीं देते, वैसेही हमने यह न जाना कि, शब्दवेधी होनेसे ऐसा फल होताहै और इसमें अनुरक्त हुआ ॥ १३ ॥ हेदेवि ! जब कि, तुम्हारा विवाह नहीं हुआथा और हम इस युवराज पदवीको प्राप्तथे

ऐसे समय वर्षाका समय आया जिसने कि, हमारे कामवेगको बढाया ॥ १४ ॥ सूर्य देव अपनी तेज किरणोंसे संसारमें पृथ्वीका समस्त रस खैंच और संसारको तपाकर प्रेतगणसेवित भयंकर दक्षिण दिशाको चलेगये ॥ १५ ॥ गरमीकी ऋतुका प्रभाव एकवारही दूर होगया स्निग्ध बादल चारों ओरसे देख पडतेथे उनको देखकर मेढक, चातक और मोर सब हर्षित हुए ॥ १६ ॥ जब वर्षा होने लगी तब सब पक्षी पंख भीग जानेके कारण इधर उधर उडै पर फट फटाने लगे, मानों बडे कष्टमें पडेहैं इसलिये वर्षा की पवनसे कांपते हुए वृक्षों पर जाय २ चढ बैठे ॥ १७ ॥ वर्षे हुए और बराबर वर्षते हुए वर्षाके जलसे ढक जानेपर सब पर्वत महासागरकी समान शोभा विस्तार करने लगे, और चातक आनंदसे मतवाले होकर उनपर घूमने लगे ॥ १८ ॥ और पाण्डुरंगके निर्मल सोते गेरु आदि विविध धातुओंसे मिलकर धूसर पीले और लाल तथा भस्मसे मिलकर सर्पकी समान टेढी गतिसे पर्वतसे झरने लगे ॥ १९ ॥ इसप्रकार अति सुखकर वर्षाकालमें हम धनुष बाण ले रथपर सवारहो शिकार खेलने और विचरण करनेके समय सरयूके तीरपर पहुँचे ॥ २० ॥ जाते २ वहां पहुँचे जहां वनके जीव जल पीने आते थे हमारा यह प्रयोजन न था कि, रातमें वहां कोई मृग, महिष, मातंग व और कोई शिकारी जीव आवैगा तो उसे न मारें क्योंकि तब तक हम इन जीवोंके मारनेके विषयमें इन्द्रियजित नथे ॥ २१ ॥ अनन्तर उस घोर वर्षाकी अंधियारीके मध्य कोई जलमें घडा डुबाने लगा तो उसके भरनेका शब्द होने लगा तब हमें ऐसा विदित हुआ कि, मानों कोई हाथी शब्द कररहाहै ॥ २२ ॥ इस प्रकार अनुमान करके उस शब्दको निशाना बना हाथीके मारनेकेलिये तरकससे हमने विषधर सांपकी समान जहरीला और दिपताहुआ तीर निकाला और तत्क्षणही निशानेकी ओर उसको छोडा ॥ २३ ॥ मैंने जैसेही वह सांपके पांतकी समान विषवाला पैना बाण छोडा वैसेही किसी वनवासीका बोल हमें प्रगट सुनपडा ॥ ॥ २४ ॥ व यहभी सुन पडा कि वह "हा! हा!" कह बाणकी व्यथासे व्याकुल हो जलमें गिरा और वह मनुष्य तो थाही इस कारण साफ बोल सुनाई आया ॥ ॥ २५ ॥ कि हाय! मैं तपस्वी हूं रात्रिमें जल ले जानेके लिये इस निर्जन नदीपर आयाहूं अतएव मेरे ऊपर किस कारणसे शस्त्राघात हुआ? इस निर्जन रात्रि में नदीके किनारे जल लेनेके लिये आयाथा ॥ २६ ॥ किसने मेरे यह बाण मारा? हमने किसीकी कौनसी हानि की? बनके कंद, मूल, फल खाखर हम जीवन धारण

करतेहैं और वनमें हमारा वासहै हम तौ केवल ऋषिहैं दंडभी नहीं धारण करते फिर क्यों हमारे ऊपर यह प्रहार हुआ॥ २७॥ वल्कल मृगचर्म धारण किये हुये जटा रखाये हमारी समान तपस्वीका वध शस्त्रसे कैसे किया गया ॥ २८ ॥ हमें मारकर किसीका क्या काम चलैगा अथवा हमने किसीका कुछ अनभल भी तो नहीं कियाहै यह कार्य निष्फलहै और अनर्थ कर्मका करानेवालाहै॥ २९॥ गुरुकी शय्यापर बैठनेवालेको जिस प्रकार कोई साधु नहीं समझतो ऐसेही उसकोभी कोई साधु नहीं कहैगा जिसने कि, हमारा वध कियाहै हमें कुछ अपने प्राणोंके भयसे इतना शोक नहीं है ॥ ३०॥ शोक और मरनेका भय तौ केवल पिता माताके लिये करताहूं, उन वृद्धोंका अबतक तौ हमने पालन पोषण किया ॥ ३१ ॥ बाण लगनेसे हमारे मर जाने उपरान्त हमारे बूढे माता पिता किस प्रकार अपना निर्वाह करैंगे ? हमारे माता पिता तो वृद्धहैं और हम एक बाणसे मारेगये ॥ ३२ ॥ हाय ! हम और हमारे वह वृद्ध माता पिता सब एकही साथ मरे, हाय ! किस बालकबुद्धिने हम सब को मारडाला हे देवि ! हमें सदाही धर्मकी आकांक्षा रही अतएव वह करुणा भरी वाणी सुनकर ॥ ३३ ॥ मैं बहुतही दुःखित हुआ बरन दयाके मारे शरीरमें कंप होनेसे धनुष बाण दोनों हमारे हाथसे गिरपडे रात्रिके समय विलाप करते हुए उस ऋषिके करुणायुक्त वचन सुन ॥ ३४ ॥ हम शोकसे ढक कर्त्तव्याकर्त्तव्यज्ञान रहित होगये फिर मैं दीनभावापन्न और अत्यन्त दुःखित मनसे उठकर उस स्थानको चला ॥ ३५॥ और वहां जाकर देखा तो सरयूके तीरपर बाणसे विधाहुआ जटा रखाये जल भरा घडा हाथसे पकडे एक तपस्वी पडाहै ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण शरीरमें रुधिरकी सनी धूरि लगीहै, बाणकी व्यथासे व्यथित हो पृथ्वीपर पडाहै उसने हमको डरे व घबडाये हुए देखा ॥ ३७ ॥ मानो अपने तेजसे हमको जलता हुआ-साही यह क्रूरवचन बोला कि, हे राजन् ! हम वनवासीहैं सो हमने तुम्हारा क्या अपकार किया ॥ ३८ ॥ हम अपने माता पिताके पीनेको जल लेने आयेथे सो आपने हमें मारडाला और एकही बाणसे हमारे मर्मस्थानको घायल किया ॥ ॥ ३९ ॥ व हमारे दो अंधे पिता माताकोभी मारडाला ! वह दोनों दुर्बल और अंधे प्यासे होकर निश्चयही हमारी बाट देखते होंगे ॥ ४० ॥ वह हमारे आनेकी राह जोहते हुए बहुतही कष्टसे प्यासको रोके हुये होंगे ऐसा बोध होताहै कि, हमारे ज्ञान और तपका कुछ फलही नहीं ॥ ४१ ॥ पिताजी नही जानते कि, हम

ऐसी दशाको प्राप्तहो पृथ्वीपर पडेहैं और उन्हें यह समाचार मिलभी जाय तोभी वह क्या कर सकतेहैं क्योंकि उनमें कुछ पराक्रम नहीं और अंधे होनेसे चल फिर तौ सकतेही नहीं ॥ ४२ ॥ एक वृक्षको काटनेसे जिस प्रकार दूसरे पेड उसकी रक्षा करनेमें असमर्थ होतेहैं, ऐसेही वे हैं । हे राघव ! आप शीघ्र हमारे पिताके समीप जाकर यह सब वृत्तान्त कहदीजिये ॥ ४३ ॥ जबतक हमारे पिताजी वायुसे बढी अग्नि करके वन जलानेकी समान आपको भस्म न करडालें उससे पहलेही आप शीघ्रतासे जाकर पिताजीसे यह वृत्तान्त कह दीजिये. हे राजन् ! हमारे पिताजीके आश्रमपर जानेका यह छोटासा पगडंडीका मार्ग है ॥ ४४ ॥ वहां जाकर आप पिताजीको प्रसन्न करें जिससे कि, वह क्रोधित होकर आपको शाप न दें. हेराजन् ! हमारे मर्मस्थानसे यह पैना बाण निकालकर हमें शल्यरहित कीजिये ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! नदीका वेग जिस प्रकार ऊंचे रेतेके करारेको काट डालताहै वैसेही यह आपका तेज बाण हमारे मर्ममें चोट देरहाहै इससे हमारी छातीसे यह बाण निकाल लो तो मरण होजाय ॥ ४६ ॥ हे देवि ! उस समय मेरे हृदयमें यह चिन्ता उदय हुई कि, मर्ममें बाण लगे हुये ऋषिकुमारको बहुतही व्यथा हो रहीहै परन्तु जो बाण निकालताहूं तो यह तापसकुमार अभी मरजायगा और ब्रह्महत्या होगी बाणके निकालनेमें मैं दुःखित और शोकसे व्याकुल और कातर हो इस प्रकारसे चिन्ता कर रहाथा कि ॥ ४७ ॥ तब उस मुनिने हमारी चिन्ता दशाको देखलिया, और दुःखी हुये मुझसे बडे कष्टसे वह बडी कृपासहित सब कुछ जाननेवाला ऋषि बोला॥ ॥ ४८ ॥ यद्यपि उसको बोलनेकी शक्ति नथी क्योंकि सब शरीर कांप रहाथा और इधर उधर धरतीमें लोटताथा मरनेपर उतारूथा तौभी हमारे ऊपर दयाकर धैर्य्यावलम्बनपूर्वक स्थिरचित्तहो बोला ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! हमें वधकर आप ब्रह्महत्याके डरसे बाण नहीं निकालतेहैं सो ब्रह्महत्याका डर दूर कर दीजिये क्योंकि हम ब्राह्मण नहींहैं आपके मनकी व्यथा दूरहो ॥ ५० ॥ हम वैश्यसे शूद्रीके गर्भमें उत्पन्न हैं, बाणसे घायल हुए बहुत कष्टसहित जब ऋषिकुमारने ऐसा कहा वह उस समय बाणके लगनेसे बहुत व्याकुल होरहाथा ॥ ५१ ॥ और मारे कष्टके पृथ्वीपर गिरकर तडफडाने लगा और थर २ कांप रहाथा तब हमने उसकी छाती-से बाण निकाल लिया ॥५२॥ बाणके निकालतेही उस तपस्वीने महाभीत होकर मेरी ओर देख प्राण छोड दिया ॥ ५३ ॥ मर्मस्थानमें घाव लगनेसे उसको बहु-

तही क्लेश हुआ और वह जलमें गिर पडा इसकारण उसका सब शरीर भीग रहाथा इसी अवस्थामें वह वारंवार ऊंचे श्वास लेता और विलाप करता हुआ सरयू नदीके तीर प्राण त्यागकर अनंत निद्रामें सोगया। हे महाराणी ! उसको मरा हुआ देख मैं बहुतही दुःखित शोकाकुल और मर्माहत हुआ ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आदि०अयो० भाषायां त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४.

तापसकुमारके अयोग्य वध वृत्तान्तकी सुधि करते हुए धर्मात्मा महाराज दशरथजी विलाप करते २ कौशल्याजीसे यह बोले ॥ १ ॥ हे देवि ! मैं अज्ञानसे यह महा पाप कर व्याकुलेन्द्रिय हो अकेला बैठ चिन्ता करने लगा कि, अब किस प्रकारसे मंगलहो ? ॥ २ ॥ बहुत समझ सोच उस घडेमें निर्मल सरयूका जल भर कर उस मार्गसे उसके पिताके आश्रमकी ओर चला, जो कि, उसने बतायाथा॥ ३॥ वहां जाकर उसके वृद्ध पिता माताको देखा उनकी अवस्था अति शोचनीय और शरीर भी बहुतही दुर्बल हो रहाथा उनको देखकर ऐसा बोध हुआ मानो दो पक्षियोंके पर कट गयेहैं ॥ ४॥ इस कारण वह उठकर चल फिर नहीं सकते। यद्यपि उनकी यह आशा कि, "पुत्र जल लाता होगा" इस जन्मके लिये उखाड डाली थी तथापि वह यही आशा किये बैठेथे कि, पुत्र कब जल लेकर आताहै। अब वह बिल्कल अनाथ हो गयेथे क्योंकि सिवाय पुत्रके दूसरा उनका पालन पोषण करने वाला कोई नथा ॥ ५ ॥ हम शोकाकुल चित्तसे और डरके मारे प्रायः चेतना रहित होगयेथे, सो उस आश्रममें जाकर हमारा शोक औरभी बढा ॥ ६ ॥ हमारे पैरोंकी पगाहट पाकर ऋषि अपना पुत्र समझ हमसे बोले "वत्स" तुम्हें विलम्ब किस कारण हुआ ? अच्छा अब जलदीसे पानी ले आओ ॥ ७ ॥ तात ! जिस कारणसे कि, तुम अबतक जलमें खेल करते रहे, इस कारण तुम्हारी माता बहुत घबडाकर तुम्हें स्मरण करतीहै अब शीघ्र कुटीमें प्रवेश करो ॥ ८ ॥ हे यशस्वी ! हमने वा तुम्हारी माताने यदि तुम्हारा कुछ अप्रिय कियाहो तो हे तपस्वी तुम उस को अपने मनमें मत धरना ॥ ९ ॥ हम अगति और नेत्रोंसे हीन हैं, सो तुमही हमारे गति और नेत्रहो हमारे प्राण तुममेंही लगे हुये हैं, अतएव तुम आज क्यों नहीं बोलते ॥ १० ॥ ऋषि यह बातें बुढापेके मारे बहुत धीरे २ बोलतेथे जिससे

कि, वाणी निर्मल नथी इस कारण स्पष्ट शब्द सुनाई नहीं आताथा इस कारण बहुत डरते हुये हम मुनिसे बोले ॥ ११ ॥ बोलनेके समय मनसा वाचा और कर्म करके बहुत सावधानी व धीरेसे उनके पुत्रका कष्टमय वृत्तान्त कहने लगे ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! मैं क्षत्रिय हूं हमारा नाम दशरथहै हम आपके पुत्र नहींहैं आप लोग बडे सज्जनहैं पर यह नहीं जानते कि, अपने कर्मसे क्यों यह दुःख पाया ॥ १३ ॥ हम पनघटकी भूमिमें जल पीनेको आये हुये किसी हाथी वा और कोई शिकारी जीव मारनेके अभिलाषसे धनुष धारण कर सरयूतीरपर आयेथे ॥ १४ ॥ वहां हमने जलमें घडेके भरनेका जो शब्द सुना तौ जाना कि, हाथी पानी पीरहाहै यह उसीका शब्दहै इस कारण उसके समक्षही बाण चलाया ॥ १५ ॥ तिसके पीछे सरयूके तीर जाकर देखा कि, एक ऋषि मरण तुल्य होकर भूमिपर पडा हुआहै हमारे बाणसे एकवारही उसका हृदय विदीर्ण होगयाथा ॥ १६ ॥ वह बहुतही विलाप कर रहाथा फिर हम उसके समीप गये परन्तु बाणको उसके हृदयसे न निकला, तब उसने कहा कि, हृदयसे बाण निकाल दो तब हमने उसके कहनेसे हृदयमेंसे विधे हुए बाणको निकाला ॥ १७ ॥ शरके निकालते ही वह उसी समय स्वर्गको चलेगये। और मरनेके समय आप वृद्ध व अंधोंके लिये उन्होंने बहुतही शोक किया और विलाप किया ॥ १८ ॥ हमने अजान करकै ही सहसा आपके पुत्रको धोखेसे मारडालाहै, और वह अब स्वर्ग चले गयेहैं, अब जो कर्त्तव्य हो सो कीजिये और मेरे पर प्रसन्न हूजिये ॥ १९ ॥ मेरे किये हुये पापका दारुण वृत्तान्त मेरेही मुखसे सुन वह मुनिराज यद्यपि सब तरहका शाप दे सकतेथे पर कुछ न दे सके ॥ २० ॥ परन्तु नेत्रोंमें आंसूभर और शोकसे मूर्च्छित होकर ठंढी २ श्वासे लेते हुये वह महातेजस्वी मुझ हाथ जोडे खडे हुएसे बोले ॥ २१ ॥ हे राजन् ! तुमने जो यह दुष्कर कर्म किया सो यदि इसको तुम आपही अपने मुँहसे न कहते तो तुम्हारे मस्तकके अभी सैकडों हजारों टुकडे होजाते ॥ २२ ॥ हे राजन् ! क्षत्रधर्मावलम्बी महेन्द्रभी यदि सम्यक् वानप्रस्थ धर्मानुष्ठायी पुरुषको जान बूझकर वध करै तौ उसको अपने स्थानसे भ्रष्ट होना पडै ॥ २३ ॥ हमारे पुत्रकी समान ब्रह्मवादी तपस्वी ऋषिके ऊपर जो कोई जान बूझकर शर त्याग करै तौ उस तीर चलानेवालेके मस्तकके सात टुकडे होजाँय ॥ २४ ॥ तुमने अनजानमें ही यह निन्दित कर्म कियाहै इसी कारणसे अबतक बचेहो नहीं तो तुम्हारी क्या चलाई

सब रघुवंशही आजही निर्मूल होजाता ॥२५॥ हे राजन् ! जो हुआ सो हुआ अब तुम हमें वहां ले चलो हम एकवार अपने लालकी सूरतको देखा चाहतेहैं क्योंकि फिर उसके साथ इस जन्ममें तो हमारा साक्षात् नहीं होगा॥ २६॥हाय ! बच्चा कालके वश और मूर्च्छित होकर भूमिमें पडा होगा, उसका सब शरीर लोहू लुहान होगा मृगचर्म जो ओढेथा वह अलग पडा होगा, व प्राण उसके धर्मराजके निकट पहुँच गये होंगे ॥२७॥ हम पुत्रके शोकसे आतुर हुये उन दोनों बूढे बुढियाको उस स्थानमें लेगये और वह अंधे जो थे इस कारण पुत्रको नहीं देखसके तब हमने उनको पुत्रका अंग छुआ दिया ॥ २८ ॥ वह दोनों पुत्रके निकट पहुँच और उसको छूकर दोनों ही उसके मृतक शरीरके ऊपर गिरपडे । अनन्तर वृद्ध ऋषि अपने पुत्रको पुकार २ कर यह बोले ॥२९॥ लाल ! आज तुमनें हमें प्रणाम क्यों नहीं किया ? और किस कारणसे भूमिपर पडेहो, और कुछ बोलेभी नहीं क्या तुम हमसे रिसाय गये ॥ ३० ॥ यदि हमनेही तुम्हारा कुछ अप्रिय कियाहै, तौ तुम्हारी माताने तो कोई अप्रिय व्यवहार नहीं किया. अतएव तुम आंखें खोलकर देखो बच्चे तुम क्यों नहीं उठकर हमसे लपट जाते ? बोलो अरे एक बार तो मधुरवाणी बोलो ॥ ३१ ॥ आधीरात बीत जातीथी, तिसके पीछे तुम उठकर मधुर स्वरसे शास्त्र व पुराणका पाठ करतेथे जिसको सुनकर हम बहुतही प्रसन्न होते अब हम किसके मुखसे शास्त्रोंकी वार्त्ता सुनकर प्रमुदित हुआ करेंगे॥ ३२॥हे पुत्र ! हमारे शोक और भयसे कातर हो जाने पर अब प्रातःकाल कौन स्नान संध्योपासन और होमकर हमारे निकट बैठ हमको प्रमुदित करेगा ॥३३॥ बेटा ! अंधे होनेसे हमतो किसी कार्यकोभी नहीं कर सकते हममें तो यह सामर्थ्यभी नहीं कि, जल और कंद मूल फलादि संग्रह करकै अपना पेट भर सकैं । तुमही हमारे स्नान भोजन पानादिका प्रबंध कर देतेथे सो अब हमें छोडकर चले गये अब और कौन कंद मूल फल वनसे ले आकर प्रिय पाहुनेकी समान हमको भोजन करावेगा ॥ ३४ ॥ पुत्र ! तुम्हारी यह माताभी वृद्ध, अंधी, और बहुतही निराश्रयहै सो तुमही इसके एक सहारे और बुढापेकी लकडीथे, अब तुम्हारे विना किस प्रकारसे इसका भरण पोषण करूंगा ॥ ३५ ॥ हे आल बाल प्रबाल लाल ! तुम ठहरो धर्मराजके पास मतजाओ अथवा यदि अवश्यही जाना हो तो अभी रुको कल हमारे और माताके साथ इकट्ठे चलना ॥ ३६ ॥ तुम्हें छोडकर अनाथ असहाय और शोकसे कृपण हम किसी भांतिभी इस वनमें नहीं रह

सकैंगे और शीघ्रही हम यमपुरको चले जायँगे ॥ ३७ ॥ वहां यमराजके दर्शनकर उनसे कहैंगे कि, जिस दोषके करनेसे हामारा पुत्र हमसे अलग होगयाहै वह आपको क्षमा करना होगा और यहभी करना पडैगा कि, यही पुत्र अपने माता पिता हमारा पालन पोषण करै ॥ ३८ ॥ हम अनाथहैं अतएव वह महा यशस्वी धर्मात्मा लोकपाल यमराज अवश्यही हमको भयरहित यह अक्षय दक्षिणा देदेंगे ॥ ३९ ॥ बस हमारी यही प्रार्थनाहै वत्स तुम पापरहित हो, पर पूर्वजन्ममें कोई तो पाप कियाही होगा कि, जिस्से मारे गये, अतएव शस्त्रसे मरे हुये वीरगण जिस लोकमें गमन करतेहैं, सो तुम हमारे सत्यबलसे उसी लोकमें चले जाओ ॥ ४० ॥ अथवा जो लोक कि, संग्रामसे न भागकर सन्मुख समरमें प्राण त्यागन करतेहैं और जो गति उनको मिलतीहै तुम्हें वही परमगति प्राप्त होवे ॥ ४१ ॥ अथवा सगर, शैब्य, दिलीप, जनमेजय, नहुष, धुन्धुमार इन सब राजऋषियोंकी जो गति हुई है वत्स इसीगतिको तुम पाओ ॥ ४२ ॥ अथवा सब प्राणियोंकी वेदवाद वा तपस्या करनेसे जो गति होतीहै. भूमिदान व नित्य होम करनेसे जो गति होतीहै या जिस पुरुषका प्रेम अपनी एक मात्र धर्मपत्नीहीमें लगा रहताहै और उसको जो गति होतीहै, वत्स तुम्हारीभी वही गतिहो ॥ ४३ ॥ या हजार गोदान करनेमे जो गति होतीहै अथवा परलोकार्थ अच्छे कर्म कर देह त्याग करनेसे जो गति होतीहै, बेटा ! वही गति तुम्हारी हो ॥ ४४ ॥ हमारे इस अति पवित्र तपस्वी वंशमें जन्म लेकर कभी किसीको अशुभ गति नहीं प्राप्त हुई इससे मारे गयेभी तुम हमारे बान्धव उत्तम गतिकोही प्राप्त करो ॥ ४५ ॥ इस प्रकार वह ऋषि वारंवार करुणा स्वरसे विलाप करते हुये अपनी स्त्रीके सहित पुत्रके अर्थ जल देनेमें उतारू हुये ॥ ४६ ॥ जब उन दोनोंने जलदानादि किया तौ वह धर्मविद् ऋषिकुमार अपने कर्म बलसे दिव्य रूप धारणकर इन्द्रके सहित बहुत शीघ्र स्वर्गको चलागया ॥ ४७ ॥ स्वर्ग जानेके समय इन्द्रके सहित पिता माता दोनोंको एक मुहूर्त भरतक समझाया बुझाया फिर पितासे यह बोला ॥ ४८ ॥ हमने जो आपकी सेवा कीथी सो हमको उसही पुण्यके बलसे यह उत्तमोत्तम स्थान मिला व आप लोगभी बहुत शीघ्र हमारे निकट आवैंगे ॥ ४९ ॥ यह कहकर इन्द्रियोंका जीतनेवाला ऋषिकुमार अति देदीप्यमान विमानपर सवारहो उसीसमय स्वर्गको चलागया ॥ ५० ॥ इस ओर परम तेजस्वी अंधे मुनि भार्याके सहित अति शीघ्र पुत्रके लिये तर्पण करके हाथ

जोड निकटही खडे हुये हमसे बोले ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! हमें भी मारडालो अब मरने में हमें भी कुछ कष्ट नहीं है हमारे यही इकलौता पुत्रथा सो तुमने उसको एकही बाणसे मार कर हमें अपुत्र कर दिया ॥ ५२ ॥ तुमने यद्यपि अज्ञानसे हमारे बालक पुत्रको मारडाला है तथापि हम तुमको अति दुस्सह दारुण शाप देते हैं ॥ ५३ ॥ हम जिस पुत्रकी मृत्यु होनेसे इस समय महा दुःख भोग कर रहे हैं महाराज ! तुम्हें भी ऐसे ही पुत्रके शोकसे कष्ट पाकर मरना पडेगा ॥ ५४ ॥ तुम क्षत्रिय हो और विशेष कर अनजान पनसेही ऋषिको मारडाला है इसही कारणसे हे नराधिप ! तुमको ब्रह्महत्या नहीं लगी ॥ ५५ ॥ किन्तु दाता पुरुषके दानका फल जिस प्रकार अवश्य ही होता है वैसेही तुमको भी अति शीघ्र हमारी समान इस प्रकार की प्राणनाश करने वाली घोर दशामें पडना होगा ॥ ५६ ॥ इस प्रकार हमें शाप देकर करुणा पूर्वक अनेक भांतिसे विलाप कलाप कर वहींसे काठ इकट्ठा कर चिता बनाय मृतकको रख आग लगाय दोनों प्राणी चिता पर बैठ और भस्म होकर स्वर्गको चले गये ॥ ५७ ॥ हे देवि ! मैंने जो उस समय अज्ञानतासे प्रमुक्त शब्दवेधी होकर जो ऐसा पाप कियाथा सो आजही चिन्ता करते २ अचानक उसकी सुधि आयगई ॥ ५८ ॥ हे देवि ! अपथ्य अन्न भोजन करने से जिस प्रकार रोग पैदा हो जाते हैं वैसेही हमारी उस पाप कर्मके करने से यह दशा हुई उसका फल आ पहुँचा ॥ ५९ ॥ हे भद्रे ! उदार स्वभाव अन्ध मुनिने जो कुछ कहाथा इतने दिन पीछे हमको उनहीके वचन प्राप्त हुए हैं। यह इतिहास कहकर राजा दशरथजी रोने लगे। और मरणके भयसे भीत होकर कौसल्याजीसे बोले ॥ ६० ॥ हे कौशल्ये ! पुत्र शोकके कारण जो हमारे प्राण निकलने पर हो रहे हैं इससे तुम हमको दृष्टि नहीं आती हो, अतएव तुम हमको स्पर्श करो ॥ ६१ ॥ न दृष्टि आनेका कारण यह है कि जो लोग यमधामको जाते हैं वह मरण समय किसीको देख नहीं सकते हा ! यदि रामचन्द्र हमको स्वयं छुवें व कुछ सहारादें ॥ ६२ ॥ अथवा वह यौवराज्य और खजाना अंगीकार करैं तो बोध होता है कि कदाचित् हम जी जायँ। हे कल्याणि ! हमने वत्स रामचन्द्रके साथ जो व्यवहार और वर्त्ताव किया है वह किसी प्रकारसेभी शोभनीय नहीं हैं ॥ ६३ ॥ परन्तु इन्होंने जो वर्त्ताव हमारे साथ किया है वह उनके योग्यही हुआहै पुत्र दुराचारी भी हो तो कोई भी विचारवान् मनुष्य क्या उसको त्याग कर सकता है ?

॥६४॥ अथवा वनवास देनेसे ऐसा कोई पुत्र है जो पितासे कुछ न कहै ? हा ! हम ऐसे दया रहित पिता, व परम सुशील पितामें भक्ति करनेवाले रामचन्द्रको छोड और कोई न पुत्रही होगा न हमसा पिताही है? हे देवि ! अब हमें तुम कुछ भी नहीं देख पडती और हमारी स्मरण शक्ति भी लोप होना चाहती है किसी बातकी सुधि नहीं आती ॥ ६५ ॥ यह देखो ! यमराजके दूत हमको लेचलने के लिये जलदी करते हैं, इससे अधिक और दुःख की क्या बात होगी ? कि मरण के समय॥६६॥ मैं भी सत्य पराक्रम व धर्मात्मा रामचन्द्रको नहीं देख सकता अब जिसके समान दूसरा पुत्र कर्म न करसके ऐसे पुत्रके न देखने का शोक ॥ ६७ ॥ हमारे प्राणोंको शोषे लेता है जिस प्रकार सूर्यकी किरणें अल्प वारिको शोषण कर लेती हैं, वे लोग मनुष्य नहीं बरन् देवता हैं जो रमणीक कुंडल धारण किये ॥ ६८ ॥ हे प्रभु ! पंद्रहवें वर्ष श्रीरामचंद्रजीकी पद्मवत् दृष्टि सुन्दर भौंह युक्त व सुन्दर दांत सुन्दर नासिका सहित मुखारविन्द देखैंगे ॥ ६९ ॥ शरदृतुके चंद्रमा और खिले हुये कमल फूल इन दोनोंहीसे रामचंद्रके मुखकी तुलना होसकती है । जो लोग वह प्रकाशित और सुकुमार वदनमंडलको फिर देखैंगे वही धन्यहैं ॥ ७० ॥ वनवाससे निवृत्त फिर अयोध्यामें आये हुये श्रीरामचंद्रजीकी कमल सुगंधित मुख जो देखैंगे वही लोग धन्यहैं ॥ ७१ ॥ अथवा अपने मार्गको प्राप्त हुए शुक्रकी नाईं वनवाससे अयोध्यामें आया हुआ रामचंद्रजीको जो लोग देखैंगे वह यथार्थमें ही सुखीहैं, हे कौशल्ये! अब दुःखकी बहुतायतसे मूर्च्छा आकर हमारे चित्तको बहुत घबडाये देती है॥७२॥ शब्द, स्पर्श और रस यह सब इन्द्रियोंके कार्यभी अब मेरी समझमें नहीं आते; चिन्तनाके नाश होजानेसे हमारी इन्द्रियां भी सब नष्ट होगईं ॥ ७३ ॥ तेलके जल जानेसे जिस प्रकार दीपककी ज्योति एक वारही बुझ जातीहै; हे कौशल्ये! यह हमारेही हृदयसे उठा शोक हम दीन और अनाथको ॥ ७४ ॥ इस प्रकार गिराये देताहै जिस प्रकार नदीका वेग किनारोंको ढाताहै रामचंद्रजीको वनमें भेजकर मैं एकवारही अनाथ होगया अतएव मैं निश्चयही विनष्टहोगया। हा राम! हा महाबाहो ! हा शोकके निवारण करनेवाले ॥ ७५ ॥ हा पितृवत्सल ! तुमही हमारे नाथ हो और तुमही हमारे पुत्रहो ! तुम कहां गये ? हा कौशल्ये ! हा सुमित्रे ! तुम अब हमें दिखाई नहीं देती हो ॥ ७६ ॥ हा दयाहीने ! हा कुलनाशिनि ! हा परम शत्रु कैकेयी ! तैंने क्या किया? इस प्रकार राजा दशरथजी कौशल्या सुमित्राके निकट बहुतही विलाप और

शोक कर अपने प्राणोंको त्याग करने लगे ❀ ॥ ७७ ॥ प्रिय पुत्र ! रामचंद्रजीके वनमें भेजनेकी अवधिको सोचते हुये वह बहुतही व्याकुल और आतुर होगयेथे इस समय बहुतही दुःखसे व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करते २ आधी रातके समय सुन्दर दर्शन वाले राजादशरथजीने प्राण त्यागे ॥ ७८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ६५.

तदनन्तर वह रात्रि बीती और प्रभात होनेपर बन्दीगण महाराजके राजद्वार पर आन पहुँचे ॥ १ ॥ व्याकरणादि शास्त्रोंमें बहुत चतुर सूत कुलका कीर्त्तन करनेमें निपुण मागध और तान लय स्वरके जानने वाले अच्छे २ गवैये अपनी २ रीतके अनुसार राजगुण कीर्त्तन करने लगे ॥ २ ॥ वे लोग बडे ऊंचे स्वरसे राजाको आशीर्वाद देने लगे व उनकी स्तुति करने लगे । उस स्तुतिके शब्दसे सब धवरहरे प्रतिध्वनित होने लगे ॥ ३ ॥ अनन्तर इन सब स्तुति पढने वालों में जो ताली बजाकर वंदना करतेथे वह राजा दशरथजीके अचरजके काम्योंको बखान २ तालियां बजाने लगे ॥ ४ ॥ उन तालियोंके शब्दसे जागकर राजभवनमें जो राजाके यहां पाले पक्षीथे वह चाहे पींजरों में रहतेथे या पेडों की डालियोंपर सब चहचहाने लगे ॥५॥ इस प्रकार इन सब पक्षियोंके सुन्दर व मनोहर शब्दसे और सब वीणाओंकी मन लुभाने वाली आवाजसे गवैयोंके अशीर्वाद युक्त गीत नादसे राज गृह गुंजार उठा ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सदाचार सम्पन्न सेवा करनेमें निपुण सब परिचारक गण पूर्वकाल में जिस प्रकार आया करतेथे वैसेही अब आये उनमें स्त्रियां और नपुंसक लोगही अधिकथे ॥ ७ ॥ इस समय स्नानकी विधियोंको भली भांति जाननेवाले लोग राजा दशरथजीके स्नान करनेके लिये कंचनके कलसोंमें जल भरकर उसमें चन्दन मिला अच्छी तरह विधि पूर्वक अपने

❀ दशरथजीका विलाप ॥ रागनी बरुवा ताल ३ धीमा ॥ हा रघुनंदन ! प्राण पियारे ॥ आस्ताई ॥ तुम बिन प्राण रहत क्यों वनमें क्यों अस दुःख सहत हैं भारे ? ॥ १ ॥ हा लक्ष्मण ! हा राम ! जानकी ! कहां गये जीवन प्राण हमारे ? ॥ कित पाऊं तुमको मेरे छौना भयो अँधेरो भानु उजारे ॥ कानन जान अवस्था मेरी हा विधना कस कीन्ह विचारे ॥ कोमल गात उमर है वारी वनके दुःख न जाँय सहारे । इतनी कह व्याकुल भये दशरथ ध्यान नहीं कछु तन मनकारे ॥ जैसे मणि विन फणि अकुलावत तैसी रात भई नारद प्यारे ॥ १ ॥

समयपर लाये ॥ ८ ॥ बहु संख्यक कुमारी स्त्रियोंने पवित्र होकर मंगलके लिये भोजन करने चखने देखने आदिकी शुभ वस्तु और पीनेके लिये अनेक प्रकारके जल व दर्पण वस्त्र और आभरणादि और भी अनेक प्रकारकी वस्तु इकठी की ॥ ॥९॥ मंगलके लिये आये हुये यह सब द्रव्य सब प्रकारके सुलक्षणोंसे युक्त थे व सब बहुतही श्रेष्ठ और सुगुण लक्ष्मी सहित थे ॥ १० ॥ फिर सबही राजाके दर्शनार्थ उत्कंठित होकर जबतक सूर्य न निकले तबतक यही करते रहे कि अब आया चाहतेहैं परन्तु सूर्य निकलने परभी जब राजा न आये तब सबके मनमें शंका हुई और बोले कि भाई आज क्या बातहै जो राजा अबतक नहीं उठे ॥ ११ ॥ कौसल्याजीके अतिरिक्त और जो सब स्त्रियां महाराजकी सेजसे कुछही दूरपरथीं वे इकठी होकर स्वामीको जगाने लगीं ॥ १२ ॥ उन्होंने रीति सहित और विनीत भावसे अपने पतिकी सेजको भली भाँति टटोल कर देखा कि देहमें प्राण रहनेसे जिस प्रकार स्पंदनादिक होताहै सो वहां कुछभी नहीं ॥ १३ ॥ वह सब सोते हुए मनुष्यका स्वभाव जानतीथीं सुतरां उन्होंने अपने पतिकी हाथ की नाडी और हृदयकी धडकनको न पाकर राजा दशरथजीके जीवित होनेमें शंका की ॥ १४ ॥ वह सब स्त्रियां राजाके जीवित होनेमें संदेह देख नदीके सोतेमें जमे हुये वेतोंकी समान कांपने लगीं ॥ १५ ॥ जो कुछ शंका उनके मनमें आईथी कि कहीं राजा मरतौ नहीं गये ? अब वही उनको निश्चय हो गया और कौसल्या सुमित्रा तौ पहलेही पुत्र शोकसे हार बैठीथी ॥ १६ ॥ सो इसकारण वह ऐसी सोईं कि उन्होंने राजाका मरना जानाही नहीं क्योंकि वे तो आपही शोकके मारे निस्तेज और पीली पड गईथीं मानो उनके भी प्राण नथे ॥ १७ ॥ जैसे बादरके अंधेरेसे छिपे नक्षत्र नहीं शोभित होते वैसेही राजाके समीप कौसल्या व सुमित्रा नहीं शोभित होती थीं ॥ १८ ॥ व और राजस्त्रियां भी मारे शोकके रुदन करती हुई शोभित नहीं होतीथीं । उन सब स्त्रियोंने उसी स्थानपर सोती हुई कौसल्या व सुमित्राजीको देख राजाकोभी मराही देख ॥ १९ ॥ समझ लिया कि इन तीनोंने शरीर छोड दिया, बस शोकके मारे अंतःपुरकी स्त्रियें अति दीन हो ऊंचे स्वरसे रोने लगीं ॥ ॥ २० ॥ जिसप्रकार वनमें अपने समूहसे बिछुडने पर हथनियां चिल्लाने लगती हैं वैसेही इन सबका बडे जोरसे रोना सुन एकाएकी चैतन्यता प्राप्त कर ॥ २१ ॥ कौसल्या व सुमित्राजी जाग उठीं और झटपट राजाको देख उनके छाती आदि

अंगं टटोल टटाल कर ॥ २२ ॥ हा स्वामिन् ! यह कह बडे शब्दसे चिल्लाय उसी समय पृथ्वीपर गिर पडीं और सारे शरीरमें धूल लगी, वह कोसलेन्द्रदुहिता पृथ्वीपर तडफडाय २ लोटने लगीं ॥ २३ ॥ वह आकाशसे गिरेहुये नक्षत्रकी नाईं बहुतही प्रभा रहित होगईं और राजाके मरनेमें कौसल्याजी भी भूमिपर गिर पडीं ॥ २४ ॥ तो और सब राजाकी स्त्रियोंने कौसल्याजीको ऐसा देखा कि मानो कोई नाग वधू मरी पडीहै । अनन्तर राजा दशरथजीकी कैकेयी से, आदि लेकर सब स्त्रियां ॥ २५ ॥ शोकके संतापित और चेतना रहितहो रोते २ गिर पडीं तब सब रानियों के रोनेका बडा भारी कुलाहल हुआ ॥ २६ ॥ उस समय पहिलेसे आई हुई उन रानियोंके रोनेका तुमुल शब्द पीछेसे आई हुई कैकेयी इत्यादिकके रोनेके शब्दके साथ मिलजानेसे और भी बढ गया और सम्पूर्णराजभवनमें फैलगया व तिसके भयसे भीत हो सब देखनेवाले लोगोंसे आकुल होगया ॥ २७ ॥ उस कालमें राज भवन बहुतही त्रासित और व्यग्र होगया और इस रोनेका समाचार जानने के लिये बहुतही उत्कंठित लोगोंके आवागमनसे उस स्थानमें चलनेको जगह न रही । सब जगह महा हाहाकार होरहाथा जितने बन्धु बान्धवथे सब सन्ताप पारहेथे और कहीं आनन्दका लेशमात्र नहींथा बहुत शीघ्र मृतक राजा दशरथजी के गृहने इस प्रकार व्याकुलता और दुर्दशाकी मूर्त्ति धारणकी ॥ २८ ॥ महीपालों में श्रेष्ठ यशवान महाराज दशरथजीको मृतक जानकर सब रानियां महा दुःखित हो अत्यन्त करुणाके स्वरसे रोय २ कर दशरथजीके शरीरको चारों ओरसे घेर बांह उठा २ कर अनाथों की समान रोदन करने लगीं ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

राजा दशरथजीको शिखाहीन अग्निकी नाईं, जलहीन समुद्रकी नाईं, प्रभाहीन सूर्यकी नाईं, स्वर्गवासी देख ॥ १ ॥ कौसल्याजी शोकसे कर्षित हो नेत्रोंमें आंसू भरकर और राजाका मस्तक अपनी गोदीमें ले कैकेयीसे कहने लगीं ॥ २ ॥ हेनृशंसे ! दुष्टचारिणी कैकेयी ! तेरे मनोरथ इस समय पूरे हुये अब अकंटक राज्य भोगो राजाको छोड अकेले सब सुख करो ॥ ३ ॥ रामचंद्रजी हमें छोडकर वन को चले गये प्राणनाथने भी स्वर्गको गमनकिया, अब दुर्गम मार्गमें साथ छूटगये

पथिककी नाईं हम जीनेकी अभिलाषा नहीं करतीहैं ॥ ४ ॥ तुम्हारी समान धर्म त्यागिनी स्त्रीके सिवाय और कौन स्त्री अपने परम दैव स्वामीको छोडकर जीनेकी इच्छा करैंगी ! ॥ ५ ॥ हा ! लोभी मनुष्य दोषोंको नहीं समझता केवल शरीरके सुखको देखताहै और किसकारण विना दोषोंके विचारे हुये अभक्ष्य पदार्थोंको खा लेताहै और उनकी हानियोंको नहीं जानता ऐसे तुझ कैकेयीने कुबरी मंथराके कहनेसे लोभवशहो रघुकुलको जडसे नष्ट करदिया ॥ ६ ॥ महाराजने अनुचित कार्यमें लगकर सीताजीकेसहित रामचंद्रको वनमें भेजदिया राजा जनकजी भी यह वार्त्ता सुनकर हमारी ही समान परिताप करैंगे ॥ ७ ॥ हम जो आज अनाथ और विधवा होगईं हाय ! इस बातको वह कमलदललोचन धर्मात्मा रामचंद्र अब तक नहीं जानते । हा ! रामचंद्रजी जीवित रहते भी हमारे लेखे तो अदृश्य होगये॥ ॥ ८ ॥ और चारु तपस्या करनेवाली जो कि कभी दुःखके योग्य नहींहै जिनको सदा सुखही मिलना चाहिये वह जनकराजपुत्री सीता देवी वनमें अनेक भांतिके दुःख पाकर घबडातीहोंगी ॥ ९ ॥ भयंकर शब्द करनेवाले पक्षियोंकी चिल्लाहट से भीत होकर सीताको अवश्यही डर लगता होगा और रामचंद्रजीके कंठमें लिपट जाती होंगी ॥ १० ॥ वह वृद्ध और पुत्र जिनके हैही नहीं ऐसे विदेह राजा जनकजी सीताकी सुधि करते हुए निश्चयही शोकसे घबडा कर प्राण त्याग करैंगे ॥ ११ ॥ अच्छा जो हुआ सो हुआ अब मैंभी आजही पति व्रतधर्मकी रक्षा करनेके लिये शरीर त्याग करूंगी आज प्राणनाथके शरीर को अग्निमें लपटाय अग्निमें प्रवेश करूंगी ॥ १२ ॥ कौसल्याजी राजादशरथजीकी लोथसे लिपट कर दुःखित हो इस प्रकारसे विलाप और परिताप कररहींथीं यह देख-कर सब दासी आदिक उनको वहांसे दूर लेगईं ॥ १३ ॥ और वसिष्ठ प्रभृति मंत्रि-योंकी आज्ञानुसार तेल भरी हुई नावमें उन मृतक राजाका शरीर रक्खागया तब पीछे और राजकार्य किये करायेगये ॥ १४ ॥ सब कुछ जाननेवाले मंत्रियोंने पुत्र विना राजा दशरथजीके शरीरका संस्कार नहीं करना चाहा क्योंकि वहां उस समय कोई पुत्र न था राम लक्ष्मण वन और भरत शत्रुघ्न ननिओरे गयेथे इस कारण शरीर तेलकी नावमें रक्खागया कि शरीर बिगडे नहीं और कोई पुत्र आवे तब क्रियाहो ॥ १५॥ जब मंत्री लोगोंने तेल भरी नावमें राजाके शरीरको रखदिया यह देखकर सब रानियां यह कह विलाप करने लगीं कि हाय ! राजा मृतक होही गये ॥१६॥

नेत्रोंसे जल बरसाती हुई शोकके मारे संतप्त व दीन हुई राज रानियें बाहें उठा रोय २ ऐसा विलाप करने लगीं ॥ १७ ॥ महाराज एकतो हम सदा मीठा बोलने वाले सत्यसिन्धु रामचंद्रसे हीन होकर जी रहीहैं, तिसपर आप क्यों हमें छोडकर स्वर्ग सिधारे ॥१८॥ हाय ! हम विधवा होकर उन रामचंद्रके विरहमें किस प्रकार दुष्ट-स्वभाववाली कैकेयीके समीपरहैंगी ? ॥१९॥ वह श्रीमान् आत्मवान् राम जो कि सब-हीके नाथथे और हमारे तुम्हारे रक्षा करनेवालेथे वह भी राज्य लक्ष्मी छोडकर वनको चले गये ॥२०॥ अतएव उनके और आपके विरहमें दुःखियारी कैकेयीसे तिरस्कार की जाती हुई हम लोग यहां कैसे रहैंगी ! ॥२१॥ जिन कैकेयीने आपको, रामको महाबली लक्ष्मण और सीताको त्याग करनेमें देर न लगाई फिर वह और किसको नहीं छोड सकतीहै ॥ २२ ॥ महाराज दशरथजीकी वह सब श्रेष्ठ स्त्रियां शोकसे पीडितहो आसुंओंकी धारा छोडती हुई, और आनन्द रहित होकर ठंढे २ श्वास लेने लगीं ॥ २३ ॥ चंद्र बिन यामिनी और कंत बिन कामिनी जिस प्रकार प्रभाहीन होजातीहैं, वैसेही उस समय महात्माराजा दशरथजीके विन अयोध्या नगरी शोभित नहीं होतीथी ॥ २४ ॥ क्योंकि वहांके गृह और चौराहे आदि विना झाडने बुहा-रनेसे, और मनुष्योंके आंसु आये हुये जहां तहां खडे होनेसे सब स्त्रियोंके हाहाकार करनेसे वह नगरी पूर्वकी समान शोभित नहीं होतीथी ॥ २५ ॥ मारे पुत्रशोकके राजा दशरथजीके स्वर्ग चले जानेपर उनकी सब स्त्रियें पृथ्वीमें गिर २ कर रोने लगीं कि, इतनेमें सूर्य भगवान् छिप गये और अंधकारको साथ लिये हुये रात हो आई ॥२६ ॥ इक्ष्वाकुकुलके सब बन्धु बान्धव और सुहृदोंने मिलकर विचार पूर्वक विना किसी पुत्रके आये पुत्रके विरहसे प्राण त्यागे हुये अचिन्त्यदर्शन राजा दशरथजीके शरीर दाहक्रिया करनी उचित न समझी और उनके शरीरको उसी तेलभरी नावमें रहने दिया ॥ २७ ॥ उस समय महाराज दशरथजीके मरजा-नेसे अयोध्याके मार्ग और चौराहोंपर आंखोंमें आंसू भरे और गद्गदकंठ मनुष्योंकी भीड लगनेसे वह नगरी सूर्यहीन गगन और नक्षत्रहीन रात्रिके समान प्रभाहीन हो गई ॥ २८ ॥ दशरथजीकी मृत्यु होनेसे अयोध्याके वासी क्या स्त्री क्या पुरुष सब इकट्ठे हो २ कर भरतमाता कैकेयीको कोसने लगे और सब ऐसे कातर होग-ये कि, किसीप्रकारसे कुछभी सुख न पासके ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७.

किसीके मनमें कुछ किसी प्रकारका आनन्द नहीं सबही आंसुओंकी धार छोडते हुये बराबर रो रहेथे। इस प्रकार यह रात शोक और दुःखके मारे पहाडकी समान बडी होगई ॥ १ ॥ अनन्तर बडे कष्टसे सवेरा हुआ बनाय प्रभात होही गया तब सूर्यके निकलतेही सब राजकार्यके निर्वाह करनेवाले ब्राह्मण लोग राज सभामें आये ॥ २ ॥ उस समय मार्कंडेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, गौतम और महा यशस्वी जाबालिजी ॥ ३ ॥ यह सब ब्राह्मण राजाकी अंतिम क्रिया करनेके लिये सेवकों सहित राजसभामें इकट्ठे हुए और मंत्रियोंके साथ मिलकर श्रेष्ठ राजपुरोहित वसिष्ठजीके सामने राजकार्यके संबंधमें जिसका जो जो मत था वैसेही सब अलग २ आशय प्रगट करने लगे ॥ ४ ॥ राजा दशरथजी पुत्र शोकसे स्वर्गवासी होगये इस कारण यह रात्रि हम सबको सैकडों वर्षोंकी समान जान पडीहै, और बहुतही कठिनाईसे इसको बितायाहै ॥ ५ ॥ महाराज स्वर्गमें चलेगये रामचंद्रजी वनको सिधारे महातेजस्वी लक्ष्मणजीने रामचंद्रजीका साथ लिया ॥ ६ ॥ इस ओर शत्रुओंके मारनेवाले भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई केकय राज्यके राजगृह नामक नगरमें अपने नानाके घर रहतेहैं ॥ ७ ॥ इससे इक्ष्वाकु वंशियोंमेंसे किसीको आजही राजा बनाना चाहिये क्योंकि, नहीं तो विना राजाके यह हम लोगोंका राज्य शीघ्र नाशको प्राप्त हो जायगा ॥ ८ ॥ क्योंकि अराजक देशमें, जहां कि, राजा नहीं होता वहां बिजलीकी चमक सहित अति शब्दसे गर्जने वाले मेघ दिव्य जलधार पृथ्वीपर नहीं व्रर्षाते ॥ ९ ॥ अराजक देशमें किसान बीजकी मूठी वोनेके लिये नहीं खोलते अराजक राज्यमें पुत्र पिताका कहना नहीं मानता और स्त्रियां स्वामीके वश नहीं रहतीं ॥ १० ॥ अराजक राज्यमें धन नहीं रहता क्योंकि लुटेरे आदिक लूटतेहैं अराजक राज्यमें स्त्रियाभी बिगड जातीहैं क्योंकि निडर होनेके कारण व्यभिचार करने लगतीहैं अराजक राज्यमें यहांतक होताहै कि सत्य व्यवहार तो एक बारही लोप हो जाताहै ॥ ११ ॥ अराजक राज्यमें सब मनुष्य हर्षित होकर न्यायादि विचार करनेके लिये सभायें नहीं करते अथवा रमणीक फुलवाडियां और पुण्य देनेवाले गृह शिवाले ठाकुरद्वारे इत्यादि नहीं बनाने लगाते ॥ १२ ॥ अराजक देशमें उत्तम क्षत्रिय वैश्य उत्तम उत्तम यज्ञ नहीं करते न जितेन्द्रिय ब्राह्मण गण उनका यज्ञ

करातेहीहैं ॥ १३ ॥ अराजक राज्यमें सब धनवान ब्राह्मण बडे बडे यज्ञ नहीं करते कि, जिनमें यज्ञ करानेवालोंको बडी दक्षिणा देनी पडतीहै ॥ १४ ॥ अराजक राज्यमें जिनके करनेसे राज्यकी उन्नति होतीहै, ऐसे सभा उत्सवादि नहीं हुआ करते और नाटक करनेवाले, नचैये कत्थक आदि प्रसन्न चित्तसे वहां नहीं रहते ॥ १५ ॥ अराजक राज्यमें लेन देनके करनेवालोंका प्रयोजन व्यर्थ होजाताहै और जो मनुष्य कि, कथा पुराणादि सुननेमें बहुतही अनुराग करतेहैं फिर वहभी कथा कहनेमें लगे हुये पौराणिकोंकी कथा नहीं सुनते सुनाते, क्योंकि अराजकता होनेसे उन लोगोंका चित्तही स्थिर नहीं रहता ॥ १६ ॥ अराजक राज्यमें सुवर्णके गहने पहरनेसे शोभायमान कुमारी कन्यायें संध्याके समय झुंडके झुंड मिलकर फुलवारियोंमें खेलनेको नहीं जातीं कि, न मालूम उनपर कौन क्या उत्पातहो ॥ ॥ १७ ॥ अराजक राज्यमें धनवानोंके धनकी भली भांति रक्षा नहीं होती क्योंकि पहरेदार तो रहतेही नहीं और लोग खेती करके व पशुओंको पाल पोषकर जीविका निर्वाह करतेहैं वहभी किवाडें खोलकर ठंढी हवामें नहीं सोने पाते ॥ १८ ॥ अराजक राज्यमें कामी पुरुषगण तेज चलनेवाली सवारियोंपर चढकर स्त्रियोंके सहित वनविहार करने को नहीं जाते ॥ १९ ॥ अराजक राज्यमें साठ वर्षकी उमर वाले और बडे दांतवाले घंटा बांधे हाथी राजमार्गोंमें नहीं घूमा करते ॥ २० ॥ अराजक राज्यमें बाणविद्या सीखनेवालोंका ताल ठोकना नहीं सुनाई देता यद्यपि उनको बार २ तीर चलाकर सीखना चाहिये ॥ २१ ॥ अराजक राज्यमें दूर देशोंको जानेवाले सौदागरलोग बजारोंमें बिकनेवाली वस्तुओंको ले बेखटके मार्ग नहीं चलसकते क्योंकि अराजक राज्यमें ठग लुटेरे बहुत हो जातेहैं ॥ ॥ २२ ॥ जिनके मन ब्रह्मके ध्यान करनेमें लगे हुएहैं ऐसे अति जितेन्द्रिय ऋषि लोगभी अराजक राज्यमें संध्याके समय इधर उधर तपमें विघ्न होनेके डरसे नहीं रहते ॥ २३ ॥ अराजक राज्यमें अप्राप्त द्रव्योंकी प्राप्ति और प्राप्त द्रव्योंकी रक्षा नहीं होती और विना मालिकके फौज फर्रा युद्धमें शत्रुओंको नहीं जीत सकती ॥ २४ ॥ अराजक राज्यमें अच्छे २ घोडे और सजे धजे रथों पर चढकर कोई मनुष्य चिन्ता रहित एकाकी कहीं को चले जानेका हियाव नहीं करता ॥ २५ ॥ अराजक राज्यमें शास्त्र विशारद पंडित लोग वनमें या बागमें बैठकर शास्त्रकी चिन्ता परस्पर नहीं कह सुन सकते न वह निर्भय हो

वहां रहने पाते ॥ २६ ॥ अराजक राज्यमें व्रत करनेवाले लोग देवताओंकी पूजा करनेके लिये मालामोदक दक्षिणा नहीं इकट्ठी करसकते ॥२७॥ अराजक राज्यमें राजकुमारगण चन्दन और अगरसे अर्चित होकर वसंतऋतुके वृक्षोंकी समान विराजमान नहीं होते ॥ २८ ॥ नदियां जलहीन होनेसे विना घास फूंसके वन होनेसे और गौओंके झुंड गोपालहीन होनेसे जो शोचनीय दशा होजातीहै वैसेही राज्यमें अराजक होनेसे सब भाँतिसे वह राज्य नष्ट होजाताहै ॥ २९ ॥ जिस प्रकार रथका चिह्न ध्वजा और अग्निका चिह्न धुंवा होताहै वैसेही प्रजाओंके ध्वजा रूप चिह्न राजाथे सो यह अब इस लोकको छोडकर देवता होगयेहैं॥ ३०॥ राज्यमें अराजकता होनेसे कोई किसीको अपना सगा नहीं समझता, सब मनुष्य मछलियोंके समान सर्वदाही परस्पर एक दूसरेका विनाश किया करतेहैं ॥ ३१ ॥ जो सब नास्तिक वर्णाश्रमकी मर्यादोंके बिगाडनेके कारण पहले राज दंडसे दण्ड पा चुकतेहैं वहभी अराजकताको पाय दंडका भय छोड अपनी २ मर्यादा विस्तार करनेमें लग जाते हैं ॥ ३२ ॥ दृष्टि जिस प्रकार शरीरका हित साधन करने और अहित निवारण करने में सदा ही तत्पर रहती हैं राजाभी वैसेही अपने राज्यमें सत्य व धर्मको उपजाकर प्रजाओंका मंगल साधन करतेहैं॥ ३३॥ फलतःराजाही सत्य राजाही धर्म राजाही कुलवालोंका कुल राजाही पिता और माता और राजाही सब लोगोंका हित साधन करता है॥ ३४॥ इन्द्र, यम, कुबेर, और वरुण, राजाका गौरव इन सबसे भी अधिक है क्योंकि लोकपालोंमें केवल एक गुण होता है और राजामें सब लोकपालोंके गुण वर्त्ततेहैं॥ ३५॥ अच्छे और बुरेका विचार करने वाला राजा न होता तो जैसे सूर्यके अभावसे अंधकारमें कुछ भी नहीं दीख पडता वैसेही कर्त्तव्याकर्त्तव्यका कुछ विचार नहीं रहता ॥ ३६ ॥ जबतक महाराज दशरथ जी जीतेथे तब भी हम लोगों ने कभी आपके वचनोंको उल्लंघन नहीं किया और अब भी आपही हम सबके गति हैं समुद्र जिस प्रकार तीर भूमिको नही नांघ सकता वैसेही हम लोग अपने वचनोंको उल्लंघन नहीं कर सकते ॥ ३७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! राजा दशरथजीके न रहनेसे हम सबही अकर्मण्य होगये हैं और राज्यभी वनकी समान होगया है इसको भली भांति सोचविचार कर इस समय आप इक्ष्वाकुवंशी भरतको वा और किसीको राज्य गद्दीपर बैठालिये ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८.

महामुनि वसिष्ठजी इन सब मित्र, मंत्री, और श्रेष्ठ ब्राह्मणों की यह वार्त्ता श्रवण कर उनको उत्तर देने लगे ॥ १ ॥ कि राजा दशरथजी भरतको राज्य दे गये हैं ! और वह अपने मामाके यहां भ्राता शत्रुघ्नके साथ परमखसुपूर्वक बसते हैं ॥२॥ अत एव जल्दीसे समाचार लेजाने वाले दूत, उन दोनों वीर भ्राताओंके लिवा लाने के लिये शीघ्रगामी घोडोंपर चढकर जांय इस विषयमें और हम क्या शोच विचार कर सकते हैं ॥ ३ ॥ तब सबनेही वसिष्ठजीसे कहा कि दूत गण अभी जाने चा-हियें तब उन सबके वचन सुन वसिष्ठजीने कहा ॥ ४ ॥ कि हे सिद्धार्थ ! हे विजय ! हे जयन्त ! हे अशोक ! हे नन्दन ! मैं तुम सबसे कहताहूं कि तुम लोग सब मेरे पास आकर जो कुछ तुम लोगोंको करवाना होगा वह सुनो ॥ ५ ॥ तुम सब शीघ्रगामी घोडोंपर सवार होकर शीघ्रतासे राजगृहमें गमन करके हमारी वार्त्तानुसार शोकको त्याग करके भरतजीसे यह कहना ॥ ६ ॥ कुलपुरोहित वसिष्ठ और शुभानुध्यायीमंत्रियोंने आपकी कुशल क्षेम पूछ कर कहा है कि आप यहां से बहुतही जल्दी अयोध्या पुरीको तुरंत चलिये, क्योंकि एक विशेष प्रयोजन आपके चलने का हुआ है ॥ ७ ॥ परन्तु खबरदार रघुकुलकी यह अमंगल वार्त्ता कि "रामचन्द्र वनको गये और राजा दशरथ परलोक वासी हुए" उनसे किसी प्रकार मत कहना ॥८॥ तुम लोग इस समय केकय राज और भरतजीके लिये अच्छे २ आभूषण और रेशमीन भले २ वस्त्र ग्रहण कर जलदी वहांको चले जाओ अब देर करनेका काम नहीं है ॥ ९ ॥ यह कहकर उन्होंने दूतोंको मार्गका खर्च दे दिया उसे ले सब दूत अपने २ घर गये फिर वहांसे बडे शीघ्रगामी घोडों पर चढ-कर केकय देशको चले ॥ १० ॥ वह सब दूत यात्राके लिये जो सब चीज लेनी लिवानी थीं सो सब लेकर वसिष्ठजीकी आज्ञानुसार शीघ्रता पूर्वक यात्रा करते हुए ॥ ११ ॥ और अपरताल नामक देशकी पश्चिम सीमा में टिके हुए प्रलंब देश के उत्तर में चलकर उसके मध्य भागमें बहतीहुई मालिनी नदीकी शोभा देखते हुए जाने लगे ॥ १२ ॥ फिर हस्तिनापुरमें पहुँचकर गंगाजीके पार हो पांचाल राज्य को देखते कुरुजांगल देशके बीचके मार्ग से होकर पश्चिम दिशाको गमन करने लगे ॥ १३ ॥ मार्गमें प्रफुल्ल सरोवर और निर्मल जल पूर्ण नदी सब उन दूतोंने देखीं भालीं परन्तु उन्होंने कार्य आवश्यकीय होनेसे कहीं विलंब न किया और

शीघ्रता सहित चलने लगे ॥ १४ ॥ अनन्तर वह लोग अनेक प्रकारके जलचर पक्षियोंसे सेवित, सुविपुल और निर्मल जलसे भरीहुई परम रमणीय शरदण्डा नदी के तीर पहुँचे॥ १५॥इस शरदण्डा नदीके किनारे पर सत्योपचायन नामक एक वृक्षथा इसके निकट वह सब दूत गये। इस वृक्षमें एक यह गुणथा कि इससे जो कुछ प्रार्थना की जाती वह सिद्ध होतीथी इसी कारणसे इसका नाम सत्योपयाचन हुआ। इससे वह सबहीके नमस्कार करने योग्यथा, उन सब दूतोंने इस वृक्षकी प्रदाक्षिणा करके कुलिङ्गा नामक नगरीमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ वहांसे अभिकाल और अभिकाल से तेजोभिभवन नगरमें पहुँचे तिसके पीछे इक्ष्वाकु गणोकी दर पीढियोंसे अधिकारमें आई हुई परमपवित्र इक्षुमती नदीके पार हुये ॥ १७ ॥ पार होनेके समय इक्षुमतीके किनारे जो सब वेद पारग ब्राह्मण केवल अंजली मात्र जलको पीकर जीतेथे उनके दर्शन करके बाह्लीक देशमें पहुँचे उसके बीचोंबीचमें सुदाम नामक पर्वत मिला॥ १८ ॥ जिसपे विष्णुजीके चरणों का चिह्न बना है। तिसके पीछे विपाशा नदी मिली फिर शाल्मली नदी और बहुतसी नदी वापी, ताल व छोटी तलैया मिलीं ॥ १९ ॥ उससे आगे भाँति २ के सिंह, व्याघ्र, मृग, हाथी इत्यादिक देखते अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन करते बराबर चलेही गये ॥ २० ॥ बहुत दूरका मार्ग चलनेसे उनके घोडे सब बहुतही थक गये इससे गिरव्रज नामक पुरमें कुछ देर ठहर गये वहांसे थोडीही देरमें अति शीघ्र चले ॥ २१ ॥ इस प्रकार वह सब दूत अपने प्रभुका प्रिय कार्य करनेके लिये और रघुवंश का निर्वाह करनेके लिये किसी प्रकार की ढील न करकै रातहीके समय केकय नगरमें पहुँचे ॥ २२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां अष्टषष्टितमः सर्गः॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९.

जिस रात्रिको वह सब दूतगण उस पुरीमें पहुँचे उसी रातको भरतजीने एक बडा बुरा स्वप्न देखा ॥ १ ॥ राजाधिराजजीके पुत्र भरतजीने रात्रिके पिछले पहर में बुरा स्वप्न देख बहुत परिताप किया और उनका शरीर गिरने पडने लगा ॥ २॥ भरतजीके मन और शरीरमें किसी प्रकार का खेद उपजाहै यह समझ उनके संग उठने बैठने वाले प्रिय वादी मित्र इस खेदको मिटानेके लिये अनेक प्रकारकी रोचक कथा कहने लगे ॥ ३ ॥ उनमेंसे कोई २ खेद मिटानेके लिये बीणा बजाने लगे, और

किसीने नाच कराना आरंभ कर दिया, व कोई ऐसे २ नाटक आदि पढने लगे जिनमें हास्य रस प्रधान था ॥ ४ ॥ भरतजीको अपना परमप्रीतिभाजन यह सब उनके मित्र जानतेथे और इन सबने अपनी २ युक्तियोंसे ऐसा उपायभी किया जिससे भरतजीको बोधहो । जोहो दश जने मिल मिलाकर जैसे हँसी दिल्लगी किया करतेहैं वैसेही यह लोग हास परिहास द्वारा रघुनंदन महात्मा भरतजीको किसी प्रकार आनन्दित नहीं करसके ॥ ५ ॥ यह देखकर एक भरतजीका बहुतही प्यारा सखा मित्र मंडली मंडित भरतजीसे बोला कि, हे सखे ! मित्र लोग अनेक प्रकारसे तुम्हारे चित्तको प्रमुदित करनेकी इच्छा करतेहैं परन्तु किस कारण तुम उन सब बातोंमें मन नहीं देते ? ॥ ६ ॥ सखाने जब यह बात कही तब भरतजी उसको उत्तर देते हुए बोले कि, हे भ्रातः ! जिस कारणसे मैं ऐसा व्याकुल हुआहूं सो ध्यान धरकर सुनो ॥ ७ ॥ मैंने रात्रिके पिछले पहरमें यह स्वप्न देखाहै कि, पिता दशरथजीके बाल बिखरे हुयेहैं और वह मलीन वस्त्र धारण कियेहैं सो ऐसे पिताजीको हमने पर्वत परके शिखरसे मैले गोबरके कुंडमें गिरते हुये देखाहै ॥ ८ ॥ फिर तिसके पीछे देखा कि वह उस गोबरके भरे कुंडमें तैरते २ वारंवार हँसकर मानो अंजलीसे तेल पीरहेहैं ॥ ९ ॥ फिर वह बार २ तिलका मिला हुआ भात भोजन कर सब अंगमें तेल लगा तेलमेंही डुबकी लगातेहैं ॥ १० ॥ फिर स्वप्नमेंही यह देखा कि समुद्र सूखगया चंद्रमा पृथ्वीपर गिर पडेहैं सब भूमि अंधकारसे ढककर मानों अंतर्ध्यान होगई है ॥ ११ ॥ राजाकी सवारीमें जो हाथी रहा करताहै उसके दांत मानो खंड २ हो टूटगयेहैं, आग जलते २ एकाएकी बुझगईहै ॥ १२ ॥ पृथ्वी फटगईहै सब पेड सूख गयेहैं और यह भी देखा कि सब पर्वत भिन्न २ होगयेहैं और उनमेंसे धुआं निकलने लगाहै ॥ १३ ॥ व लोहेकी चौकी पर बैठे नीलके रंगे वस्त्र पहरे हमारे पिताजीको काले पीले दोनों प्रकारके वस्त्र धारण किये स्त्रियां मार रहीहैं ॥ १४ ॥ और यह भी कि धर्मात्मा हमारे पिता राजा दशरथजी शीघ्रता सहित लाल फूलोंका हार पहरे व लालही चन्दन लगाये गधे जुते हुये रथपर सवार होकर दक्षिण दिशाको चले जातेहैं ॥ १५ ॥ और यह भी देखा कि, कोई विकट वदन वाली राक्षसी लाल वस्त्र पहरे और अट्टहास्य करती हुई राजाको बलपूर्वक पकडे हुये लिये जातीहै ॥ १६ ॥ हमने इस भयानक रात्रिमें इस प्रकारका भयानक स्वप्न देखाहै इससे निश्चय बोध होताहै कि

हमारी वा पिताजीकी या रामचंद्र व लक्ष्मणकी मृत्यु होगी ॥ १७ ॥ क्योंकि जो आदमी स्वप्नमें गधे जुते हुये रथपर सवार होकर दक्षिणको जाताहै तो बहुत शीघ्र चितामें उसका धुंवा निकलता हुआ दृष्टि आताहै ॥ १८ ॥ बस इसी कारणसे हम आज बहुत व्याकुल होगये हैं और तुम्हारी बातोंसे मनको प्रसन्न नहीं करसकते हैं क्या कहैं हमारा कंठ इस समय सूख गयाहै और मन बहुत चंचल हो रहाहै॥ १९॥ भयके यह सब कारण यद्यपि इस समय नहीं दीखतेहैं परन्तु मनमें जो भय जम गयाहै वह किसी प्रकारसे दूर नहीं होता व इससेही हमारे शरीर की कान्तिभी जाती रही है ॥ २० ॥ और अकस्मात् अनेक प्रकारसे आत्माकी निन्दा करनेको मेरी इच्छा होतीहै परन्तु निन्दा का कारण कुछभी दृष्टिमें नहीं आता॥ २१॥ पाहिले कभी इस प्रकारके बुरे स्वप्न का मनमेंभी तो ध्यान नहीं आयाथा बस अब जबसे इस बुरे स्वप्नको देखाहै तबसेही चिन्ता मनमें उत्पन्न हुईहै कि देखिये अब पिताजी देखनेको मिलैं अथवा नहीं, इसी कारणसे मन बहुत घबडा गयाहै और किसी भाँतिसे इसकी घबडाहट दूर नहीं होती सखे इससे पहले राजाके दर्शन होनेमें किसी प्रकारकी चिन्ताही नहींथी ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा०वा०आदि०अयोध्याकांडे०भाषायां एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९॥

सप्ततितमः सर्गः ७०.

मनस्वी भरतजी अपने इष्ट मित्रोंके साथ इस स्वप्नका वृत्तान्त कहही रहेथेकि इतनेमें थके थकाये घोडोंपर चढे हुये सब दूत लांघनेके अयोग्य खाई जिसके चारों ओर खुदी हुई ऐसे रमणीय राजगृहमें प्रवेश करते हुये ॥ १ ॥ प्रथम राजासे फिर राज पुत्र युधाजितसे वे दूत मिले राजा और राजपुत्र युधाजितने भली भांति उन दूतोंका आदर सत्कार किया अनन्तर दूतगण कैकय पतिके चरण वन्दन करकै भरतजीसे कहने लगे ॥ २ ॥ कुल पुरोहित वसिष्ठजीने और सब मंत्रियोंने सबही लोगोंने आपकी कुशल क्षेम पूछीहै और यह कहाहै कि, आप जल्दी अयोध्याको आइये क्योंकि यहां एक विशेष कार्य उपस्थित हुआहै ॥ ३ ॥ हे विशाललोचन ! उन्होंने यह सब मूल्यवान् वसन भूषण हमारे संग भेजेहैं सो इन्हैं आप लेकर अपने मामाको देदीजिये ॥ ४ ॥ हे नृपनन्दन ! इन सब हमारे लाये वसन भूषणोमेंसे बीस करोड वस्त्र और आभरण आपके नानाको हैं और दश करोड आपके मामाको हैं सो आप

यह लेकर उनको दे दीजिये (यहां कोटि शब्द बहुवाचकहै) ॥ ५ ॥ तब मामा आदिकके प्रति बहुत अनुराग हूये राजपुत्र भरतजीने वह समस्त वसन भूषण ग्रहण किये और नाना मामाको वह सब द्रव्य देदिये और दूतोंको भली भांति खाने पीने आदिकी सामग्री दे दिलाय भरतजी उनसे बोले ॥ ६ ॥ कि हमारे पिता महाराज दशरथजी तौ कुशलहैं ? महात्मा रामचंद्र व लक्ष्मण आरोग्य तौ हैं ? ॥ ७ ॥ भला जो धर्मका मर्म भली भांति जानतीहैं और धर्म वादिनी व सदाही धर्ममें रत रहनेवाली वह धीमान् रामचन्द्रजीकी गर्भधारिणी आर्या माता कौसल्याजी तो निरोगहैं ॥८॥ राजा दशरथजीकी मझलीरानी धर्मकी जाननेवाली वीर लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी माता सुमित्राजी आरोग्य तौ हैं ॥ ९ ॥ और सदाही जो अपना कार्य सिद्ध होनेकी अभिलाषा करतीहैं और जो यह समझे हुयेहैं कि हमारी समान कोई ज्ञानवान् नहींहै वह अत्यन्त कोपन स्वभाववाली हमारी माता कैकेयी जी तौ आरोग्य रहकर सुख पातीहैं, तुम्हारे चलते वक्त उन्होंने हमारे लिये कुछ कह दि-याहै ? ॥ १० ॥ महात्मा भरतजीने जब इस प्रकार कहा तब दूतोंने सविनय और संक्षेप वचनोंसे उन्हें उत्तर दिया ॥ ११ ॥ कि नरश्रेष्ठ ! आप जिन २ की कुशल पूछतेहैं वह सब लोग कुशल सहितहैं इस समय पद्मालया लक्ष्मीजी आपके वरण करनेको उद्यत हुईहैं अतएव यात्रा करनेके लिये आप रथ तैयार कराइये ॥ ॥ १२ ॥ जब दूतोंने इस प्रकार कहा तब भरतजी फिर उनसे बोले कि हम यह कहकर नानासे बिदाले आवें कि दूत लोग हमें ले चलनेके लिये अति शीघ्रता क-रातेहैं ॥ १३ ॥ नृपनन्दन भरतजी दूतोंसे यह कहकर और दूतोंहीके कहनेके अनुसार नानासे जाकर यह बोले ॥ १४ ॥ हे राजन् ! दूतगण हमें लेजानेके लिये शीघ्रता करारहेहैं अतएव हम अब पिताजीके पास जायँगे और फिर जब कभी आप हमें याद करैंगे तब उसी समय चले आवेंगे ॥ १५ ॥ भरतजीके ऐसा कहनेपर वह केकय राजा भरतजीके नाना भरतजीका शिर सूँघकर उनसे यह शुभ वचन बोले ॥ १६ ॥ हे भरत ! कैकेयी तुमसे पुत्रको पाकर सुपुत्रवती हुई है मैं अनुमति देताहूं हे शत्रुदमन ! वहां जाकर माता पितासे यहां की कुशल क्षेम कहना ॥ १७ ॥ पुरोहित वसिष्ठजी व अन्य उत्तम २ ब्राह्मणोंसे व महा धनुर्द्धारी राम लक्ष्मण दोनों भाईयोंसे व और सबही छोटे बडोंसे कुशल कहना ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर भरतजीका केकय राजने बहुत सत्कार किया और बडे उत्तम हाथी बडे

कीमती शाल दुशाले और बढिया २ मृगचर्म व बहुत धन दिया ॥ १९ ॥ व सब चीजोंके सिवाय बडे २ आकार वाले कुत्ते दिये। यह सब कुत्ते रनवासहीमें यत्नपूर्वक पाल पोषकर बडे किये गयेथे बडे २ तीखे दांतही उनके अस्त्र शस्त्रथे और उनका बल वीर्य व्याघ्रकी समान था ॥२०॥ अनन्तर राजा कैकेयीके पुत्र भरत-जीका बहुतही सन्मान आदर करकै उनको दो हजार स्वर्णके निष्क भूषण व सोलहसौ (१६००) घोडे दिये ॥ २१ ॥ और उनके साथ जानेके लिये कई एक अपने मन माने, विश्वासी और गुणवान मंत्री आदिक करदिये जो अति वेगसे भरतजीके संग २ चले जाँय ॥ २२ ॥ अनन्तर भरतजीके मामाने भरतको इन्द्रशिर नामक देशमें उत्पन्न हुये ऐरावत वंशीय देखनेमें परम सुदृश्य उत्तम डील डौल वाले ऐसे बहुत सारे हा-थी और भली प्रकारसे बोझा ले चलनेवाले समर्थ तेज चलनेवाले खिच्चरभी दिये ॥ २३ ॥ परंतु बहुत शीघ्र जो जानेको थे इस लिये भरतजी नाना मामाकी दी हुई इन सब वस्तुओंको लेकर कुछ प्रसन्न न हुये क्योंकि इन सब चीज वस्तुके ले चलनेमें बडी कठिनाईथी ॥ २४ ॥ दूतोंकी शीघ्रता करानेसे और रात्रिमें भयं-कर स्वप्न देखनेसे भरतजीके मनमें उस समय बडी भारी चिन्ताथी ॥ २५ ॥ भरतजी जल्दी अपने भवनसे बाहर आकर हाथी घोडे और मनुष्यों करकै परिपूर्ण राजमार्गमें आकर उपस्थित हुए ॥ २६ ॥ और उस राजमार्गसे होकर परमश्रेष्ठ रनवासको देखते हुए तब श्रीमान् भरतजीने इस रनवासमें प्रवेश किया जानेके समय उनको किसीने नहीं रोका टोका ॥ २७ ॥ भरतजीने रनवासमें प्रवेश करकै नाना नानी मामा युधाजित व मामीसे बिदा लेकर शत्रुघ्नके सहित रथपर चढ अयोध्याको प्रस्थान किया ॥ २८ ॥ तब नौकर चाकर लोग मंडलाकार चक्र विशिष्ट सैकडों रथ अश्व ऊंट बैल खिच्चर इन सबोंको जोत जातकर भरतजीके पीछे २ चल दिये ॥२९॥ सिद्ध लोग जिस प्रकार इन्द्र लोकसे चलतेहैं अजातशत्रु महात्मा भरतजी भी वैसेही अपने नानाके अपने आत्माकी सदृश विश्वासीमंत्री व सेना समुद्रसे रक्षित होकर शत्रुघ्नजीको साथले राजगृहसे प्रस्थान करते हुये॥ ३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां सप्ततितमःसर्गः ॥७०॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१.

इसके पीछे महावीर भरतजीके राजगृह नगरसे पूर्वको मुखकर जाते २ सुदामानाम नदी मिली उसे देखकर उतरे ॥ १ ॥ अनन्तर ह्लादिनी वा दूरपारा नदी मिली जिनका पश्चिम ओरके पर्वतपर सोताहै तिसके पीछे शतलज नदी मिली भरतजी उसकेभी पार हुये ॥ २ ॥ फिर ऐलधान गांवके नीचे बहनेवाली अतिवेगवती नदी मिली. वह नदी ऐसी मिली उसमें जो वस्तु डालो सो पत्थरकी होजाती उसको उतर अपर्वत नामक देशमें पहुँचे और शिला व अकुर्वती नदीके पार होकर अग्नि कोणमें शल्यकर्षण नामक देशमें आये ॥ ३ ॥ वहांसे पवित्र होकर वह शिलावहानदीके दर्शन करके बडे २ पहाडों पर होते हुये चैत्ररथ वनकी ओरको चलते हुये ॥ ४ ॥ अनन्तर सरस्वती और गंगाजीका जहां संगम हुआहै वहां आये तिसके आगे वीर मत्स्य देशोंके उत्तरहो भारुण्डनाम वनमें प्रवेश करते हुये ॥ ५ ॥ अनन्तर अतिशय वेगवती ह्लादिनी और पर्वतोंसे गिरी हुई कुलिंगा नदीके पार होकर यमुनाजीके निकट आये और वहां सेनाको विश्रामादि कराया ॥ ६ ॥ घोडे बहुतही थकगयेथे इस प्रकार वह नदीमें खूब लोट २ जुडाय २ कर नहाये । जलभी मनुष्य व घोडे तथा हाथियोंने खूबहा पिया और तीर्थका जल लेकर चले ॥ ७ ॥ जिस प्रकार पवन आकाशमें चलताहै वैसेही भरतजी सुन्दर रथपर चढ मनुष्योंके गमनागमनसे शून्य उस महारण्यके पार हुये ॥ ८ ॥ फिर गंगाजी मिलीं उनका उतरना बडाही कठिन था इस लिये विख्यात अंशुधान नाम नगरसे प्राग्वट नामक पुरीके निकट गये ॥ ९ ॥ उसी प्राग्वटपुरके मुहानेपर गंगाजीको उतर सैनासहित कुटिकोष्टिका नदीके तीर आये और उसको उत्तर धर्मवर्द्धन ग्राममें पहुँचे॥ १० ॥ फिर तोरण नाम ग्रामके दक्षिणहो जंबूप्रस्थ नाम गाँवमें पहुँचे फिर परम मनोहर वरूथ नाम ग्राममें दशरथनंदन उपस्थित हुए ॥ ११ ॥ वहांके रमणीय वनमें एक रात्रि वास करके पूर्वकी ओर चले और प्रियकर नामक वृक्ष जहां बहुतथे ऐसी उज्जिहाना नाम नगरीके उपवनमें पहुँचे ॥ १२ ॥ वहां पहुँचकर भरतजीने शीघ्रतासे आगे जाताहूं तुम लोग धीरे २ सुसताते हुये चले आओ । सेनाको इस भाँति की आज्ञा देकर शीघ्रगामी घोडे जिसमें जुतरहेथे ऐसे रथपर सवार होकर आप बहुत शीघ्र चले ॥ १३ ॥ और सर्वतीर्थ नामक ग्राममें रात्रिभर वास करके फिर पहाडी घोडोंकी सहायतासे इस ग्रामकी

उत्तर दिशामें बहती हुई नदियोंको व औरभी सब नदियोंको पार होकर ॥ १४ ॥ कुछ दूरपर हस्तिप्रस्थ नामक गाँवमें पहुंचे, वहां कुटिका नदीके पार होकर नरव्याघ्र भरतजी लौहित्य गांवमें कपीवर्ता नदा उतरे ॥ १५ ॥ फिर एक साल नगरके निकट स्थाणुमती नदी मिली, आगे बढ विनत ग्रामके धोरे गोमती उत्तीर्ण हुए फिर बलि नगरके निकट शालवन पडा ॥ १६ ॥ वहांसे आगे चले अब जो कुछ हाथी घोडे संग रहगयेथे वहभी बहुतही थक गये परन्तु उस वनको नांघ रात व्यतीत होते व सर्यके निकलते॥ १७॥ राजा मनुजीकी वसाई अयोध्यापुरी भरतजीने देखी अपने नानाके यहांसे चल सात रात्रि मार्गमें बिता भरतजीको अयोध्यापुरी मिली ॥ १८ ॥ तब दूरसेही अयोध्यापुरीको देख सारथीसे बोले कि, हे सारथे ! यह यशस्विनी अयोध्यापुरी जिसमें अतिपुण्यदायक फुलवाडियां विराजमान हैं मुझे अच्छी नहीं लगती॥ १९॥ उसकी मृत्तिका जानों उत्सवहीन होनेके कारण पीली २ लगतीहै व कोई उत्सव नहीं विदित होता इसमें पूर्वकालमें बडे २ वेदपाठी ब्राह्मण सब गुण संपन्न यज्ञ किया करतेथे ॥ २० ॥ व राजर्षि लोग नाना प्रकारसे इसका पालन किया करतेथे और जहां तहां धन धान्ययुक्त लोग आया जाया करतेथे प्रथम अयोध्याजीमें चारों ओरसे महातुमुल शब्द ॥ २१ ॥ आते जाते हुए नर नारियोंका सुनाई आताथा परन्तु आज वह सुनाई नहीं देता पहिले कामी पुरुषगण जो सायं-कालके समय उपवनोंमें प्रवेश कर समस्त रात्रि क्रीडा करनेमें बिता ॥ २२ ॥ प्रातःकाल इधर उधर कर धावमानहोकर उद्यानकी शोभा बढातेथे वह अब यहांपर विचरण नहीं करते यह उद्यान मानों कामी पुरुषों करके छोड देनेसे हमको देख बिसूर २ रोय रहेहैं ॥२३॥ इससे हमको यह पुरी वनकी समान विदित होती है। हे सारथे ! सबही पुरी मानों हमको महावनके समान जान पडतीहै पहिले जिस प्रकार बडे २ लोग हाथी, घोडे व और अनेक प्रकारकी सवारियोंमें चढकर कुछ बाहरसे भीतरको आतेथे क्यों आज कोई आता जाता नहीं देख पडता ॥ २४ ॥ जनोंकी प्रीतिके संयोगसे इसके वन बागादि अति हर्षित मत्त व गुणवान् मालूम होतेथे सो अब वैसे नहीं देखते ॥ २५ ॥ यह देखो किस कारण यह समस्त फलवाडियें जो कामीजनोंके आनन्द कुलाहलसे गूँ-जती हुई आनंदित रहतीथीं। परन्तु अब यह सब निरानन्द सी ज्ञात होतीहैं, इन फुलवारियोंके वृक्षोंके पत्ते ठौर २ मार्गमें गिरतेहैं मानों वृक्ष रोय रहेहैं ॥ २६ ॥

देखो सूर्य उदय होगयेहैं और हमभी अयोध्याके निकटही पहुँच गयेहैं तथापि अब-तकभी मृग पक्षियोंका मत्तहो अनुरागमें भरकर कलरव करनेका शोर सुनाई नहीं आता ॥ २७ ॥ पहिलेकी नाईं कुछेक चन्दन व अगरसे मिली हुई धूपकी सुगन्धि से सुवासित होकर शोभित वायु नहीं चलती ॥ २८ ॥ प्रथम भेरी, मृदंग, वा वीणा आदि वाजोंसे सदाही प्रफुल्ल रीतिसे शब्द उठा करता परन्तु आज किस कारणसे वह शब्द नहीं होता ॥ २९ ॥ अशुभ और अनिष्ट सूचक सब अपशकुन परग २ पर हमको दृष्टि आतेहैं इसकारणसे हमारा मन बहुतही व्याकुल होकर कांप रहाहै ॥ ३० ॥ हे सूत! विकल होनेका कोई कारण न होनेपरभी बराबर हृदय कांप रहाहै इससे स्पष्ट विदितहोता है कि हमारे बंधु बांधव कुशलसे नहींहैं ॥ ३१ ॥ अनन्तर वह शांतचित्त भरतजी उदास और चलायमान इन्द्रिय व त्रासित होकर शीघ्रही इक्ष्वाकादि पालित अयोध्यापुरीमें पैठे ॥ ३२ ॥ उस समय भरतजीके चढनेके वाहनभी संपूर्ण.थक गयेथे वे वैजयन्त नामक द्वारसेही पुरीमें प्रवेश करते हुए सब द्वारपाल भरतजीको देख उठ खडे हुए और विजय प्रश्न करके उनके संग २ चलने लगे ॥ ३३ ॥ भरतजीका मन बहुतही व्याकुल हो रहाथा तथा-पि उन्होंने द्वारपालोंका यथायोग्य सत्कार किया और फिर उनसे लौट जानेको कहा और केकय पतिका सारथी जो बहुतही थक गयाथा उसेभी कहा कि, तुमभी यहां विश्रामकरो और यह बोले ॥ ३४ ॥ हे अनघ पापरहित ! किस वा-स्ते विना कारण बताये शीघ्रतासे हमको यहां बुलायागया, इस कारण हमारे मनमें अनेक प्रकारकी अशुभ आशंकायें होतीहैं और इसी कारण मैं अतिशय अधीर और व्याकुल होरहाहूं ॥ ३५ ॥ हे सारथे ! राजाओंकी मृत्युसे जो अमंगलके लक्षण दृष्टि आतेहैं, जो कि प्रथम हमने सुन रक्खेहैं आज वही सब कुलक्षण हम प्रत्यक्ष देख रहेहैं ॥ ३६ ॥ यह देखो गृहस्थोंके सब घर विना झाडे बुहारेहैं इससे कर्कश जान पडतेहैं, किसीके किवाँड ठीक नहीं सब अस्त व्यस्तहैं सब पदार्थोंकी शोभा जाती रहीहै ॥ ३७ ॥ किसी प्रकारकी पूजाका सम्पर्क न होनेसे धूपकी सुगन्ध कहींसे नहीं आती यहांके परिवार वाले सब भूंखेही दृष्टि आतेहैं और नगर वासी बनाय शोभाहीन होगयेहैं ॥ ३८ ॥ किसी गृहके भवनपर माला आदि नहीं टंग रहीहैं सब घरोंके आंगन विना झारे बुहारे पडेहैं सबही घर लक्ष्मीहीन होजाने से शोभा विहीन होगयेहैं ॥ ३९ ॥ ठाकुरद्वारे और शिवालय शून्य होकर अब

पहिलेकी नाईं शोभा नहीं पाते न कोई अब मूर्त्तियोंकी पूजा करता, मानों मूर्त्तियें वृद्ध होगईहैं न अब यज्ञभूमिमें यज्ञ होते दीखतेहैं ॥ ४० ॥ जहां फूल और हार बिका करतेथे वहां अब कछभी हार इत्यादिक नहीं बिकते । न बनियेंही इस समय पहिलेकी समान प्रफुल्ल चित्त दृष्टि आतेहैं ॥ ४१ ॥ चिन्तासे इन सब वैश्योंका चित्त घबराया हुआसा जान पडताहै और लेन देन व खरीद बिक्री उठ जानेसे सब-ने अपनी २ दूकाने बंद करदीहैं मृग और सब पक्षी व्याकुल हो इकले देवालय जो हरि मन्दिर शिवालय योगी इत्यादिकके जो मठहैं उनमें चुप चाप घूम रहेहैं ॥ ॥ ४२ ॥ बस नगरके सब जनही मलीन चिन्ता युक्त दुबले पतले नेत्रोंमें आंसू भरे एक दूसरेको प्रीत जनानेको उत्कंठित हुये और महा व्याकुलसे देख पडतेहैं ॥ ॥ ४३ ॥ भरतजी शोकके भारसे ढकेहुए हृदयसे सारथिसे ऐसा कह इस प्रकारके अनिष्ट अयोध्यापुरीमें देखते राजमंदिरकी ओर गमन करने लगे ॥ ४४ ॥ भरत-जीने देखा कि अयोध्याके चौराहे घर सब शूने पडेहैं और किवाडों व द्वारोंपर धूल ही धूल दिखाई देतीहै । इन्द्रपुरी सदृश अयोध्याकी यह अवस्था देखकर भरतजी बहुतही दुःखित होगये ॥ ४५ ॥ पहले जो कभी अयोध्यामें नहीं हुआथा, नयन और मनकी अप्रिय करनेवाली घटनाओंको देखकर भरतजीकी चित्तवृत्ति नितान्त उदास होगई और वह बनाय अप्रसन्न होगये जिस्से कि अयोध्याकी यह अवस्था न दीखे पडे इस कारण भरतजीने शिर झुकाकर पिताके घरमें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अयो० भाषायां एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२.

भरतजी पिताके घरमें पिताजीको न देखकर माताके दर्शनकी लालसा किये अपनी माताके मन्दिरको गये ॥ १ ॥ बहुत दिनोंसे विदेश गये अपने घरमें अब आये हुये अपने पुत्रको देख कैकेयी हर्षमें मग्नहो सोनेकी चौकीसे उसी समय उठ खडी हुई ॥ २ ॥ धर्मात्मा भरतजीने अपनी माताके घरमें प्रवेश करतेही देखा कि घरकी शोभा नष्ट होगई है अनन्तर उन्होंने जननीके पवित्र पद युगल ग्रहण किये॥ ॥ ३ ॥ उस समय कैकेयीने यशस्वी भरतजीका मस्तक सूंघ लिया और छातीसे लपटाय लिया और गोदीमें बिठाकर पूंछा ॥ ४ ॥ हे वत्स ! आज तुमको अपने नानाके यहांसे चलकै रात्रि बीती रथपर चढ शीघ्र आनेसे मार्गमें तुम्हैं कोई कष्ट

तो नहीं पडा ? ॥ ५ ॥ तुम्हारे नाना और मामा युधाजित तो बहुत अच्छी तरह-सेहैं ? वत्स ! तुम जबसे परदेश गये तबसे रहे तो अच्छे यह सब हमसे कहो ॥ ॥ ६ ॥ कैकेयीके ऐसा प्रिय कहनेपर राजकुमार राजीवलोचन भरतजी मातासे सब वृत्तान्त कहने लगे ॥ ७ ॥ मातः ! मामाका घर छोडे हुए आज हमको सात रातें बीतीं तुम्हारे पिता और भ्राता मेरे मामा दोनोंजनेही अच्छेहैं ॥ ८ ॥ शत्रुओंके दमन करनेवाले राजा केकयने जो हमको सब धन रत्नादि दियेथे सो हम उन सबको मार्गमेंही छोडकर आगे चले आयेहैं क्योंकि मार्गमें वाहन बहुतही थक गयेथे ॥ ९ ॥ राजाजीका सन्देश लेकर जो दूत गयेथे उनके जल्दी करनेहीपर इतनी शीघ्र यहां आयेहैं सो इस समय हम जो कुछ पूछें उसका उत्तर दीजिये ॥ १० ॥ आपका यह स्वर्ण भूषित शयन करनेके लायक पलँग क्यों सूना पडाहै ? और इक्ष्वाकु वंशीय कोई पुरुषभी हमको आनन्दित नहीं विदित होता ॥ ११ ॥ और आपके इस घरमें राजा प्रायः सदाही रहा करतेहैं सो आज वहभी यहां नहीं देख पडते, हम उनकोही देखनेके लिये प्रथम यहां आयेहैं॥ १२॥ जो हो इस समय पिताजी कहांहैं मुझको यह बताओ क्योंकि मैं उनके चरण युगल ग्रहण करूंगा वह क्या हमारी माताओंमें सबसे बडी माता कौशल्याजीके घरमेंहैं ? ॥ १३ ॥ अनन्तर जोकि सब वृत्तान्त जानतीथी वह राज्यके लोभसे मोहित हुई कैकेयी न जाने हुए वृत्तान्तको पूछनेमें तैयार भरतजीसे प्रिय वार्त्ताकी समान वह घोर कुप्यारा वचन कहने लगी ॥ १४ ॥ हे वत्स ! संसारमें जो सबही लोगोंकी गति होतीहै सो तुम्हारे पिता, राजा, महात्मा, तेजस्वी, यज्ञशील और साधु पुरुषों-को आश्रय देने वाले महाराज दशरथजीकीभी वही गति हुई अर्थात् साकेत लोक-को चले गये ॥ १५ ॥ धर्मयुक्त वंश संभूत सीधे स्वभाव भरतजी यह वार्त्ता सुन-तेही पिताजीके शोकके प्रभावसे बहुतही घबडाकर मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ॥ १६ ॥ गिरनेके समय महाबाहु महाबलवान भरतजी दोनों बाहे पृथ्वीपर पट-ककर "हाय हम मारेगये " ऐसा कहकर व्याकुल और करुणामय वचन कहते हुये ॥१७॥ अनन्तर महातेजवान भरतजी पिताके मरणके शोक और दुःखसे पीडित हो अज्ञान होगये उनकी सब इन्द्रियां शिथिल हो आईं और वह विलाप करने लगे ॥ १८ ॥ पिताजीकी यह सेज पहले बादल चले जानेसे शरत्कालकी रात्रिमें चन्द्र मंडल मंडित गगन की नाईं हमको सुन्दर लगती॥ १९॥आज उन बुद्धिमान् पिताजीके

बिना चन्द्रहीन आकाश और जल हीन सागर की नाईं यह सेज शोभित नहीं होती॥ २०॥ तपशीलों में श्रेष्ठ भरत जी अपना परम सुकुमार मुख वस्त्र ढंककर कंठ में बाष्प भरलाये और नेत्रोंसे आंसू छोडते हुए नितान्त व्याकुल चित्तसे विलाप करने लगे ॥ २१ ॥ कुहाडीके काटनेसे शालके पेडका गुद्दा जिस प्रकार गिर जाताहै देवताके समान भरतजीभी पिताके शोकसे पीडित होकर भूमिमें गिरगये ॥ ॥ २२ ॥ यह देखकर कैकेयी उन चंद्र सूर्य और मातंगकी समान तेजस्वी शोकाकुल पुत्रको पृथ्वीसे उठाय जांघपर बैठाय उनकी धूल पोंछ पाँछकर बोली॥ २३॥ हे सदाशय महायशवाले राजन् ! उठो २ भूमिमें क्यों पडेहो ! तुम्हारी समान पण्डित व पंडितोंकी सभाके भूषण लोग कभी शोक नहीं करते ॥ २४॥ हे बुद्धिसम्पन्न ! सूर्यकी प्रभाके समान दान, यज्ञ, शील श्रुति और तपस्याके विषय की तुम्हारी बुद्धिको सब वार्त्ता सूझतीहैं जैसे सूर्यकी प्रभा बाहर भीतर सब कहीं प्रवेश करती है ॥ २५ ॥ अनन्तर बहुत शोकसे गिरे हुये भरतजी बहुत देरतक रोदन करकै धरती पर लोटते रहे और फिर अपनी मातासे यह बोले ॥ २६ ॥ माता ! हमारे पिता राजा दशरथजी रामचन्द्रजीको राज्य देवेंगे या कोई यज्ञकरैंगे यह समझ कर हमने हर्ष सहित नानाके यहांसे यात्राकीथी ॥ २७॥ परन्तु इस समय उसके विरुद्ध बात देखकर हमारा हृदय टुकडे २ हुआ जाताहै ! जो सदाही प्रिय और हितका अनुष्ठान करनेवाले हमारे पिताजीथे उनको हम नहीं देखते ॥ २८ ॥ हमारे पीछे कौनसा रोग लगनेके कारण उन्होंने प्राण त्याग किये । रामचन्द्र व लक्ष्मणजी इत्यादिक जिन्होंने पिताजीका संस्कार कियाहै वही लोग धन्यहैं ॥ २९ ॥ निश्चयही कीर्तिमान् राजा दशरथजी यह नहीं जानते कि, हम नानाके यहांसे आगये। यदि वह जानते होते तो शीघ्र अपना मस्तक झुका हमारा शिर सूंघते ॥ ३० ॥ हाय ! अब छूतेही सुख देनेवाला पिताजीका वह हाथ कहांहै ! जब हमारे सब अंगोंमें धूल लग जातीथी तब वह सदाही उस हाथसे हमको झाड पोंछ देतेथे ॥ ॥ ३१ ॥ यह तो हुआ, अब जो हमारे भ्राता, पिता और बन्धु व हम जिनके आज्ञाकारी दासहैं वे रामचंद्रजी इस समय कहांहैं शीघ्र हमारा आना उनसे जाय कहो ॥ ३२ ॥ क्योंकि हम इस कुलके धर्म जानतेहैं कि बडा भ्राता पिताहीके समान होताहै इससे उनकेही चरणोंको ग्रहण करैं क्योंकि इस समय वही हमारे रक्षकहैं ॥ ३३॥ आर्ये ! धर्मज्ञ, धर्मशील, महाभाग, सत्यविक्रम, दृढव्रत राजा व हमारे

पिता दशरथजी मृत्युके समय हमारे लियेभी कुछ कह गयेहैं वह हमारे सुनने की इच्छा है सो तुम बताओ ॥ ३४॥ व हमारे पिताजी प्रजाओंके एकही परम शिक्षक गुरुथे सत्यविक्रम सत्यसंकल्पथे व जो चलनेके समयमें हमें कुछ आज्ञा देगये हों तो उसको हम सुना चाहतेहैं जब इसप्रकार पूछा तब कैकेयी बोली ॥ ३५ ॥ हा सीता ! हा राम ! हा लक्ष्मण ! ऐसा कहकर विलाप करते हुए गति पाने वालोंमें श्रेष्ठ महात्मा दशरथजी परलोकमें चले गयेहैं ॥ ३६ ॥ महागज जिस प्रकार पाशसे बँध जाता है वैसेही तुम्हारे पिताजीने काल धर्मके वश होकर मृत्युके समय हमसे यह कहाथा ॥ ३७ ॥ जो लोग सीता और लक्ष्मणके समेत महा-बाहु रामचंद्रजीको अयोध्यामें फिर आया हुआ देखैंगे उनकेही सब कार्य सिद्ध हुये और वही धन्यहैं ॥ ३८ ॥ जब कैकेयीने यह एक दूसरी अप्रिय वार्त्ता कही तब भरतजी बहुतही उदास हुये और कुछ देरतक चुप रहकर मातासे बोले॥ ३९॥ हे माता ! कौसल्याजीके आनन्दको बढानेवाले धर्मात्मा रामचंद्रजी भ्राता और भार्यांके सहित इस समय कहां वसतेहैं? ॥ ४०॥ जब भरतजीने इस प्रकार पूछा, तब उनकी माता कैकेयीने यथा रीति सब वृत्तान्त उनको सुनानेका विचार किया, उसने समझा कि, उस दारुण अप्रिय घटनासे भरतका मन अवश्यही प्रसन्न होगा ॥ ॥ ४१ ॥ पुत्र ! राजपुत्र रामचन्द्रजी चीरवल्कल धारण करके लक्ष्मण और जानकीके सहित दंडक नामक महावनको चले गयेहैं ॥ ४२ ॥ यह वार्त्ता सुनकर भरतजी जो कि वह अपने वंशका माहात्म्य जानतेथे इसकारण रामचंद्रजीके चारित्रके विषयमें शंकितहो उससे त्रासित हुए अपनी मातासे पूछते हुये ॥ ४३ ॥ रामचंद्रजीने किसी ब्राह्मणका कभी धन हरणभी तौ नहीं किया, अथवा किसी कारण किसी निष्पाप धनी या दरिद्रको नहीं मार डाला जिस कारण उन्हैं वन भेजा, क्योंकि हमारे कुलमें धर्म त्यागकरने वालोंका त्याग करना रीतिहै, ॥ ४४ ॥ अथवा उन राजपुत्रने कभी पराई स्त्रीपर आसक्त होकर उससे कभी रति भी तौ नहीं की तब किस कारणसे भ्राता रामचंद्रजी दंडकारण्यको भेजे गये॥ ४५॥ भरतजीके ऐसे वचन सुनकर चंचल स्वभाववाली कैकेयीने स्वभावसे जैसा कुछ कियाथा उसको ब्यौरेवार वर्णन करने लगी ॥ ४६ ॥ महात्मा भरतजीके पूछने पर चाहियेथा कि, कुछ संकोचके साथ कहती पर वह अपनी बुद्धिके सामने पंडि-ताओंकीभी बुद्धिको कुछ नहीं समझतीथी, बडी प्रसन्नता व धृष्टता सहित कहने लगी

॥ ४७ ॥ वत्स ! रामचंद्रने किसी ब्राह्मणका कुछभी हरण नहीं किया या अकारणही किसी निष्पाप धनी व दरिद्रको भी किसी प्रकारसे नहीं मार डाला ॥ ४८ ॥ परस्त्री गमन करना तौ दूर रहे वह कभी पराई स्त्रीको आंख उठाकर देखतेभी नहीं तिसपरभी हे पुत्र ! राम राजा होतेहैं यह बात सुनकर ॥ ४९ ॥ मैंने तुम्हारे पिताजीसे तुम्हारे निमित्त राज्यको मांगा और रामचंद्रजीको वन भिजवानेकी प्रार्थनाकी, महाराजने भी सत्यके वश पडनेके कारण मेरी प्रार्थना स्वीकारकी ॥५०॥ और इसी कारण उन्होंने रामचंद्रजीको सीता और लक्ष्मण सहित वनमें भेज दिया महायशस्वी महीपति राजा दशरथजी उन प्रिय पुत्र रामचंद्रजीके न देखनेसे ॥ ॥ ५१ ॥ पुत्रके शोकसे पीडित महादुःखितहो पंचत्वको प्राप्त हुए (अर्थात् स्वर्गवासी हुए) हे धर्मज्ञ ! अब तुम इस राज्यको ग्रहणकरो, क्योंकि पिताजी तुम्हारे तुमको यह राज्य देही गयेहैं ॥ ५२ ॥ तुम्हारेही वास्ते हमने यह कार्य कियाहै अतएव हे पुत्र ! धैर्य धारण करो, और शोक संतापका त्यागन करदो ॥५३॥ इसी हेतुसे यह राज्य और राजधानी अयोध्यापुरी ज्योंकी त्यों निरुपद्रव द्रव्यसहित तुम्हारे आधीन होगईहै ॥ ५४ ॥ अतएव तुम इस समय वसिष्ठ इत्यादि विधिके जाननेवाले ब्राह्मणोंके साथ मिलकर शीघ्रही यथाविधानसे महापराक्रमी अपने पिताकी प्रेतक्रिया समाप्त करकै राजगद्दीपर बैठजाओ और किसी प्रकारकी उदासीनता मनमें मतकरो * ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि० अयो० भाषायां द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३.

पिताजीका मरण और दोनों भाइयोंका वनगमन सुनकर भरतजी दुःखसे अति संतप्त होकर यह वचन बोले ॥ १ ॥ हे मातः ! पिता और पिताकी समान भ्रातासे विहीन होकर हम मारे गये अतएव इस प्रकार शोचनीय अवस्थामें राज्य लेकर हम क्या करेंगे ? ॥ २ ॥ तुमने राजा दशरथजीको मारकर और रामचंद्रजीको तपस्वी बना मानों मेरे जले हुए घावपर नोन घिस कर लगा दुःखके ऊपर दुःखदिया ॥ ३ ॥ तू कालरात्रिके समान कि, जिसमें सब प्राणी

* दोहा–भरतहि बिसऱ्यो पितु मरण, सुनत राम वनगौन ॥ हेतु आपना समझ जिय, थकित रहे धरि मौन ॥

मरजातेहैं, हमारे कुलका नाश करनेहीके लिये रघुवंशमें आई हाय हमारे पिताजीने जलता हुआ अंगारा भेटकरभी उसको न जाना ॥ ४ ॥ रे पापदर्शिनी! तूने अनायासही राजाको मार डाला । रे कुलनाशिनी ! तूने मोहके वशहो एक वारही इस कुलको सुखहीन करदिया ॥ ५ ॥ हमारे पिता, सत्य प्रतिज्ञा करने वाले परम यशस्वी राजा दशरथजीने तुझको घरमें लाकर तीव्र दुःखसे बहुतही संतप्तहो प्राण त्याग कियेहैं ॥ ६ ॥ तूने क्यों उन धर्मवत्सल हमारे पिता महाराज दशरथजीको मारडाला ? और क्यों श्रीरामचन्द्रजीको वनमें निकलवाया और वह तेरे कहनेसे किसप्रकार वनको चलेगये ॥ ७ ॥ पुत्रशोकसे तापित हुई कौसल्या व सुमित्रादेवी तुझ दुष्टा हमारी माताको पाय जीवितही रहैं तो बडा दुष्कर काम उसने किया समझो, क्योंकि ऐसे दुःखमें जीना बहुत कठिनहै ॥ ८ ॥ आर्य रामचंद्रजी अतिशय धार्मिकहैं और वह यहभी जानतेहैं कि, गुरुजनोंके साथ कैसा व्यवहार करना उचितहै वह सदा तेरेसाथ अपनी गर्भधारिणी माताके समान व्यवहार करते रहे॥९॥हमारी बडी माता आगा पीछा देख कर चलने वाली कौसल्याजीभी सदा तेरे मन मानी बात करती और सगी बहनकी समान तुझसे व्यवहार करती हैं ॥ १० ॥ हे पापीयसि ! तू तिन कौसल्याजीके उन महात्मा पुत्रको किस प्रकारसे चीर वल्कल धारण करा और वनमें भिजवाकर अब उनके लिये शोक नहीं करती ॥ ११ ॥ हाय ! उन विशुद्धात्मा अपापदर्शी परम यशस्वी शूर महात्मा रामचन्द्रजीको मुनिका भेषबना चीर वल्कल धारण करा वनमें भेजनेसे तेरा कौनसा काम निकला ॥१२॥ रामचन्द्रजीके प्रति मेरी जैसी निष्कपट भक्तिहै उसको तैंने राज्यके लोभमें अंधी होनेसे नहीं जाना इसी कारण तैंने साधारण राज्यके लोभसे यह बडा भारी अन्याय किया ॥ १३ ॥ परन्तु पुरुषसिंह रामचन्द्र व लक्ष्मणजीके न देखनेसे किस शक्ति व सामर्थ्यके प्रभावसे हम इस राज्यकी रक्षा कर सकैं ॥ १४ ॥ जिस प्रकार सुमेरु पर्वत अपने समीपस्थ वनके आश्रयसे शोभित होता है वैसेही महात्मा धर्मवान् महाराज दशरथजीनेभी अपनी व राज्यकी रक्षा करनेके लिये उन महाबलशाली महातेजस्वी रामचन्द्रजीको आश्रय कियाथा॥ १५॥ अतएव हम किस प्रकार और किसके बलसे इस बडे भारी राज्यका भार अकेले उठा सकैंगे जिस प्रकार बडे भारी बैलके खैंचनेके लायक भारको छोटासा बछडा नहीं उठा सकता ॥१६॥ अथवा योगबल बुद्धिबल या और किसी उपायसे यदि मैं इस राज्यके

भारको सँभालभी सकूं किन्तु पुत्रका हितकरनेवाली तेरी यह कामना कभी हम पूर्ण नहीं करैंगे कि, मेरा बेटा राज्य करै और मैं सब सौतोंपर बैठी हुई हुकुम चलाऊं ॥ १७॥ हे पापनिश्चये ! यदि आर्य रामचन्द्रजी सदाही तेरे प्रति माताकी समान श्रद्धा न करते तब तौ इसी मुहूर्त हम तुझको त्यागन कर देते ॥ १८ ॥ रे पापदर्शिनि ! रे सदाचारभ्रष्टे ! हमारे पूर्व पुरुषोंकी रीतिमें कलंक लगाने वाली यह बुद्धि तुझमें कैसी उत्पन्न हुई जिससे कि, सुजन समाजमें तेरी निन्दा हुई ॥ १९॥ क्योंकि इस कुलमें पीढीन् पीढियोंसे यह रीति चली आई है कि, ज्येष्ठ ही राजा होता व उससे छोटे भाई उसके अधीन रहते हैं ॥ २०॥ रे नृशंसे ! हम समझे कि, तू राजधर्मको कछ नहीं जानती अथवा राजधर्मका अनुष्ठान करनेसे जो अक्षय फल मिलताहै उसकोभी तू नहीं जानती ॥ २१ ॥ राजकुमारोंमें जो सबसे बडाहो वही अवश्य करकै राज्यका अधिकारी होता है, सभी राज्योंमें विशेष करकै इक्ष्वाकुओंका तो यह नियम सदाहीसे चला आता है ॥ २२ ॥ आज तुझमे उस धर्म प्रतिपालक अच्छे चरित्रसे शोभायमान हुये इक्ष्वाकुवंशसे वह सदाचारका गर्व एक वारही विवृत्त होगया क्योंकि रामचन्द्र ज्येष्ठको राज्य न मिला ॥ २३ ॥ ❀ हे महाभाग्यशालिनि ! तैंने राजकुलमें जन्म ग्रहण किया है; तथापि किस प्रकारसे तुझमें इस निन्दनीय बुद्धिसे यह मोह उपस्थित हुआ जिस्से तेरी सब संसारमें निन्दा हुई व होती रहैगी तेरे कुलमेंभी तौ बडेहीको राज्य होता है ॥ २४ ॥ जो कुछभी हो हे पापनिश्चये ! तैंने हमारे प्राणोंका संहार करनेवाला दारुण काम किया अतएव हम किसी प्रकारसे भी तेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं करैंगे ॥ २५ ॥ पहले तौ तेरा अप्रिय करनेके लिये हम अभी स्वजनोंके प्यारे पापरहित बडे भइया रामचन्द्रजीको वनसे लिवाये लातेहैं फिर देखैंगे कि, तू क्या करतीहै ॥ २६ ॥ श्रीरामचन्द्रजीको वनसे लौटाय और दासकी नाईं सुस्थिर चित्त होकर हम उनकी सेवा करैंगे ॥ २७ ॥ महात्मा भरतजी इस प्रकार दुःखदायक वचन कह कैकेयीका मर्म पीडन करते हुए इस प्रकारसे कह शोकसे कातर हो मंदराचल पर्वतकी कंद-रामें बैठे हुए सिंहकी समान बडे स्वरसे रोदन करने लगे ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

---

* (भरतजी कैकेयीसे) रागनी गिरनारी सोरठ ताल तीन ॥ हे माता ! तैं कुमति कमाई ॥ आस्ताई ॥ तुम जानत हो पुत्र आपके वे त्रिभुवन स्वामी सुख दाई ॥ में कहा करिहों राज पाट यह उन विनु कछु नहिं मोहिं सुहाई ॥ जो मैं करिहौं राज्य अवधपुर तौ नारद सब जगत

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४.

भरतजी इस प्रकार यथोचित माताकी निन्दा करकै फिर अतिशय क्रोध करकै उससे बोले ॥ १ ॥ रेनृशंसे दुराचारिणी कैकेयी ! तू राज्य भ्रष्ट हो और जब कि तैंने कुलस्त्रीका धर्म त्यागही करदिया है तब तुझको चाहिये कि, मृत स्वामीके लिये रोदन कर ॥ २ ॥ भला राजाने तेरा क्या बिगाडाथा और रामचन्द्रजी अतिधार्मिक हैं सो उन्होंनेही तेरा कौनसा अपकार कियाथा कि, जिस्से तूने एकही कालमें राजाको मार डाला और रामचन्द्रको वनवास दिया ॥ ३ ॥ हे कैकेयी ! इस प्रकार वंशका नाश करनेसे तुझको गर्भपात करानेकी हत्या लगी है, अतएव नरकको जा तुझको हमारे पिताजीका लोक प्राप्त न होवे ॥ ४ ॥ तैंने सब लोकोंके प्यारे रामचन्द्र जीको वनमें भेजकर स्वामिहत्यारूप यह घोर पाप किया जिस्से कि, हमकोभी महा भय उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ तेरेही कारण पिताजी परलोकवासी हुए तेरेही कारण रामचंद्रजी वनको गये और सब संसारमें ही तेरे कियेसे मेरा अयश फैला । अब लोग यही कहैंगे कि, वह केकेयी इनहीकी माता है जिसने राज्यके लोभसे निज स्वामीको मार रामचन्द्रजीको वनमें भेजा ॥ ६ ॥ रे नृशंसचरिते ! राज्यकी चाहनेवाली ! तू माताका रूप धारण किये है परन्तु हे हमारी वैरिणी, हे बुरे आचरणकी करने वाली ! पतिघातिनी ! अब तू मुझसे एक बात भी न कर ॥ ७ ॥ हे कुलदूषिणि ! तेरेही कारण कौशल्या, सुमित्रा व हमारी और सब दूसरी माताएं सब ही घोर दुःखमें पतित हुईं ॥ ८ ॥ हमने जान लिया कि, तू धर्मात्मा धर्मराज अश्वपति केकय राजाकी कन्या नहीं हैं परन्तु हमारे पिताका कुल नाश करने वाली तू केकयराजके गृहमें राक्षसी पैदा हुई है ॥ ९ ॥ देख सत्यही जिनका एक मात्र आश्रय और जो सदाही धर्मकी रक्षा करते हैं वह रामचंद्रभी तेरे कारण वनको गये और पिताजीने भी स्वर्ग में गमन किया ॥ १० ॥ तेरेही पापसे हम पिताहीन, भ्राताहीन और साधु समाजमें सबके कुप्यारे हुए और यह तेरा किया हुआ पाप मेरे ऊपर पडा ❀ ॥ ११ ॥ रे पापाशये । जब कि तूने धर्मका आचरण करने वाली कौसल्याजीको पति और पुत्र करकै हीन करदिया. तब तो किसी प्रकारसे तेरी अच्छी गति नहीं होगी वरन् तुझको घोर नरकमें जाना पडेगा ॥ १२ ॥ हे क्रूरे ! तू क्या इसको नहीं जान सकी कि रामचंद्रजी बन्धु बान्धवोंके आश्रयहैं

❀ चौपाई ॥ आंसुन भर भर लेहिं उसासा । पापिनि सबहि भाँति कुलनाशा ॥

जिन्होंने सब शत्रु और इन्द्रियोंको जीत रक्खाहै जो ज्येष्ठ होनेके कारण हमारे पिताकी समान हैं जिन्होंने कौसल्याजीके गर्भसे जन्म लिया है ॥ १३ ॥ यों तो सब बन्धु बान्धव न्यारे होतेहैं परन्तु सबसे अधिक पुत्र माताको प्यारा होताहै कारण कि, वह माताके अंग प्रत्यंग और हृदयहीसे जन्म ग्रहण करताहै ॥ १४ ॥ किसी समय देवताओंकी पूज्य धर्मात्मा कामधेनुने अपने दो पुत्र बैलोंको हलमें जुते हुए धूपके मारे व्याकुल हुए अचेतन अवस्थामें देखा ॥ १५ ॥ जिनको कि पूरा दो पहर होगयाथा और थकभी गयेथे परन्तु कृषकने तबतक उन्हें नहीं छोडाथा कामधेनुको यह देखकर बडा शोक हुआ और आंसू डाल २ कर रोदन करने लगी ॥ १६ ॥ इसी समय महानुभाव देवराज इन्द्र कामधेनु जहांथी उससे नीचेके मार्ग पर जा रहेथे जानेके समय उनके शरीर पर वह आंसू गिरे जिनमें कामधेनुकी सी गंध आती थी ॥ १७ ॥ आंसू अपने ऊपर पडा देख देवराज इन्द्रने ऊपरको नजर उठाई तब देखा कि सुरभी आकाशमें खडी रहकर दुःखसे भरे व्याकुल हृदय से रोय रहीहै ॥ १८ ॥ वज्रपाणि देवराज इन्द्र यशस्विनी कामधेनुको इस प्रकार शोकसे संतप्त देखकर उदासहो हाथजोडकर बोले ॥ १९ ॥ हे सर्वलोकोंका हित करनेवाली ! किसलिये रुदन करती हो ? कहो; हम लोगों पर तो किसी ओरसे कोई विपद नहीं आई ॥ २० ॥ बुद्धिमान् देवराज इन्द्रजीने जब इसप्रकार कहा तब वाक्य विशारद कामधेनुने धीरज धरकर उन्हें उत्तर दिया ॥ २१ ॥ हे देवराज ! आज कल राक्षसादिक का तो कोई खटका नहीं उनका पापतो कट गया हमतौ दुःखमें पडे हुए अपने पुत्रोंको शोचतीहैं ॥ ॥ २२ ॥ देखो यह दोनों बैल अति दुर्बल हो रहेहैं तिसपर भी सूर्यकी किरणोंसे संतप्तहोरहेहैं दो पहर होगया परन्तु उस दुष्ट किसानने इनको अभीतक नहीं छोडा और वह इनको मारभी रहाहै ॥ २३ ॥ वह हमारी देहसे उत्पन्न हुएहैं इसीकारण उनको दुःखित और हलमें जुतनेके भारसे पीडित देखकर हम मारे शोकसे जल रही हैं। देखो संसारमें पुत्रके समान और कोई प्यारा नहींहै ॥२४॥ इस प्रकारसे जब कि कामधेनुके हजारों लाखों पुत्र पृथ्वीपरहैं और वह उन दो पुत्रोंके लिये रोरहीहै तब यह देखकर इन्द्रजीने जाना कि पुत्रके समान और कोई चीज माँको प्यारी नहींहै ॥ २५ ॥ उनके शरीर पर काम धेनुके जो आंसू गिरेथे उनमसे अति उत्तम सुगन्धि निकलती हुई देखकर इन्द्रने जानलिया कि, कामधेनु संसार में सबसे श्रेष्ठहै

॥ २६ ॥ यद्यपि सुरभीके असंख्य पुत्रहैं तथापि लोकके धारणकी कामनासे व सरल स्वभाव पुत्रवत्सलतासे ॥ २७ ॥ इतना शोच किया फिर असंख्य पुत्र होने परभी सुरभीको अपने पुत्रोंको दुःखित देख इतना शोक हुआ तब इकलोते पुत्रकी माता कौशल्याजी रामचंद्रजीके विना किस प्रकार जीवन धारण करैंगी ॥ ॥ २८ ॥ इस समय तुमने जिस प्रकार एक पुत्रा साध्वी कौशल्याजीसे उनका पुत्र छुटांदिया वैसेही तुझको इसलोक व परलोकमें सदाही दुःख भोग करना पडेगा ॥ ॥ २९ ॥ हमभी सब भाँतिसे पिता व भ्राताके ऋणसे उऋण होकर अपना कलंक यश बढावेंगे इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ ३० ॥ वह कलंक इसभाँतिसे मिटैगा कि हम कौशलाधीश महाबलवान् महाबाहु महाराज रामचंद्रजीको काननसे यहाँ लौटा लाकर स्वयं मुनिगणों करकै सेवित वनको चले जाँयगे ॥ ३१ ॥ हे खोटे आशयवाली रे पापीयसि ! तैंनें जो पाप कियाहै सो हम उसको किसी प्रकारसेभी सहन नहीं करसकते क्योंकि यह पुरवासी रामचंद्रजीके वियोगसे रोय२ हमको देखेंगे तब हमसे वह राज्य कैसे किया जायगा ? ॥ ३२ ॥ अतएव इस समय यातो तू अग्निमें प्रवेशकरजा वा वनको चलीजा या गलेमें फाँसी लगाकर प्राण त्यागदे क्योंकि और तेरी गति कुछ नहींहै ॥ ३३ ॥ हम सत्य पराक्रम श्रीरामचंद्रजीका लौटाकर और उनको राजा बनाकर सनाथ हो जायँगे हमारे मनका कल्मषभी जभी मिटैगा जब कि, अयोध्यामें रामचंद्रजीका फेरा होगा ॥ ३४ ॥ भरतजी इस प्रकार विलाप करते२ तोमर और अंकुशके मारनेसे तेज हुए हाथीकी नाईं गुस्सेमे भरकर सर्पकी समान श्वास छोडते २ पृथ्वीमें गिरे ॥ ३५ ॥ सब कपडे जिनके शिथिल होरहे गहने जिनके अंगोंसे निकल पडे लाल नेत्र किये ऐसे भरतजी उत्सवके अंतमें इन्द्रकी ध्वजाके समान पृथ्वीपर मूर्च्छितहो गिरपडे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकाण्डे भाषायां चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ७५.

अनन्तर वीर्यवान भरतजी बहुत देरमें मूर्च्छासे जागकर आशा भंग होनेसे बहुत व्याकुलहो आंसुओंसे पूर्ण अपनी माताकी और देखने लगे ॥ १ ॥ भरतजीने मंत्रियोंके बीचमें बैठ अपनी माताको यथोचित घुडका और धमकाकर कहने लगे हमारी कभी राज्य लेनेकी अभिलाषा नहींहै न राज्यका ग्रहण करनेके लिये हमने

कभी माताको परामर्श दिया ॥ २ ॥ न हमको कुछ इसकी खबरथी कि राजाजी ने रामचन्द्रजीको राज्य देनेका संकल्प कियाहै, क्योंकि हम और, शत्रुघ्न तौ यहां परसे दूर देशमें पडेथे ॥ ३ ॥ महात्मा रामचंद्रजी भ्राता व भार्या सहित देशसे निकाले जाकर वनको भेजगये यहभी हमें मालूम नहीं कि वह क्यों भेजे गये॥ ४॥ महात्मा भरतजी ऐसा कह ऊंचेस्वरसे विलाप करने लगे तब देवी कौशल्याजीने बोलको पहँचानकर सुमित्रासे कहा ॥ ५ ॥ क्रूर कार्य करनेवाली कैकेयीके पुत्र भरत आयेहैं बहुत दिनोंसे उनको देखा जो नहीं है इससे हम उन बुद्धिमान्‌को देखा चाहतीहैं ॥ ६ ॥ रामचंद्रजीके शोकसे अति दुर्बलगात पीला हुआ वदन प्राय चेतना रहित हुई कौशल्याजी सुमित्राजीसे यह कहकर काँपती हुई जहां भरतजी थे वहांको चली ॥ ७ ॥ और इसीसमय राजनंदन भरत और शत्रुघ्नजीने भी कौशल्याजीके घरकी ओर प्रस्थान कियाथा ॥ ८ ॥ अनन्तर बीचहीमें भरत शत्रुघ्न कौशल्याजीको देख आकर अति दुःखित हुए व दोनों भाई इनको लपट गये व कौशल्यीजीभी इनको देखतेही मूर्च्छितहो गिरपडी ॥ ९॥ आर्या कौशल्याजी उस समय नितान्त दुःखितहो शोकसे भर रोदन करते हुए भरतजीको लिपटाकर खेद सहित कहने लगीं ❀ ॥ १० ॥ हे वत्स ! तुमने जैसे राज्यकी कामनाकीथी वैसाही क्रूर कर्म करनेवाली तुम्हारी माताने दारुण कर्म करके निष्कंटक राज्य तुम्हें दिलादिया ॥ ११ ॥ हमें राज्यका कुछ दुःख नहीं, पछतावा और दुःखतो केवल इतनाही है कि रामको चीर वल्कल धारण करा वनभेजकर क्रूर बुद्धिवाली कैकेयी को कौनसा विशेष फल मिला सो हम नहीं कहसकतीं ॥ १२ ॥ जो हुआ सो हुआ अब हिरण्यनाभ सुवर्णकी समान नाभिवाले परमयशस्वी वत्स राम हमारे जहांपर हैं इस समय हमकोभी शीघ्र वहीं पर भेजदेना कैकेयीको उचित है॥ १३॥ अथवा जिस वनमें श्रीरामचंद्रजीहैं हम निश्चयही सुमित्राको संगले अग्निहोत्र सन्मुख कर वहां सुखसे चली जाँयगी ॥ १४॥अथवा पुरुषव्याघ्र वत्स राम जहां तप करते और दुःख भोगतेहैं सो आज तुमको स्वयंही हमें वहां लेजाना पडेगा॥ १५॥ कैकयीने तुमको यह धन धान्य सम्पन्न हाथी, घोडे और रथ पूर्ण बडा भारी राज्य दिलवायाहै सो तुम इकले भोगो ॥ १६ ॥ जब कौशल्याजीने इस प्रकार कठोर वचनोंसे भरतजीकी बहुतही ताडना की तब भरतजी ऐसे व्यथित हुए कि जैसे बहुत दिनके अति कठोर

❀दो०–पितु आज्ञा भूषण वसन, तात तजे रघुवीर। हृदय न हर्ष विषाद कछु, पहरे वल्कल चीर॥

पुराने घावमें सुई छेदनेसे भारी पीडा होतीहै। निरपराध भरतजीको उन वचनोंसे ऐसी कठिन पीडा हुई ॥१७॥ और तिसकालमें चेतना लोप होनेसे मूर्च्छित होगये फिर चैतन्य हुए और फिर भ्रान्तचित्तहो वारंवार विलाप करकै कौशल्याजीके चरणयुगल पर गिर पडे ॥ १८ ॥ फिर जब चैतन्यहुए तब महाशोकग्रस्त रोदन करती हुई कौशल्याजीसे हाथ जोडकर कहने लगे ॥१९॥ हे आर्ये! हम कुछभी नहीं जानते और न हमारा कुछ दोषहीहै और रामचंद्रजीके प्रति हमारा कैसा विपुल स्नेहहै वहभी आप जानती हैं तब फिर निरपराधी मुझको आप क्यों ताडना करतीहैं ॥ २० ॥ वह साधुओंमें श्रेष्ठ सत्यप्रतिज्ञ आर्य रामचंद्रजी जिसकी सलाहसे वनको गयेहों उसको किसी समयभी सत्य शास्त्रानुगामिनी बुद्धि न होवे ॥ २१ ॥ अथवा आर्य रामचंद्रजी जिसकी सलाहसे वनको गयेहों वह पापात्मा नीच जातिके मनुष्योंका सेवकहो वह सूर्यकी ओर मुखकर मल मूत्रादिक करै और सोतीहुई गायको लात मारे ॥२२॥ आर्य रामचंद्रजी जिसकी सलाहसे वनको गयेहों तो उसको वह पाप हो जोकि बडा काम करालेनेपरभी नौकरकी तनख्वाह न देनेपर मालिकको होताहै ॥ २३ ॥ आर्य रामचंद्रजी जिसकी सलाहसे वनको गयेहों तौ उसको वह पापहो जो कि पुत्रकी नाईं प्रजापालनेमें तैयार राजासे कोई विद्रोही होने पर होताहै ॥ २४ ॥ कर का छठवां अंश हरण करके प्रजाकी रक्षासे विमुख राजाको जो अधर्म होताहै वही अधर्म उसको हो कि जिसकी सलाहसे श्रेष्ठ रामचंद्रजी वनको गये हों ॥२५॥ यज्ञ, पूजा, पाठ आदिकमें तपस्वी व ब्राह्मण आदिकोंको दक्षिणा देनेका करार कर फिर नहीं देनेसे जो पाप होताहै वही पाप उसको हो कि, जिसके मतसे रामचंद्रजी वनको गये हैं ॥ २६ ॥ व जिसकी सलाहसे रामचंद्रजी वनको गये हों उसको वह पाप हो जो हाथी, घोडा सहित शस्त्रास्त्र युक्त समरसे भागनेसे होताहै ॥ २७ ॥ आर्य रामचंद्रजी जिसकी अनुमतिसे वनको गयेहों वह दुष्टात्मा सूक्ष्म अर्थों समेत पढाहुआ गुरुसे उपदेश पायाहुआ शास्त्र भूल जावे ॥ २८ ॥ जिसके परामर्शसे श्रीराम वनको गये हों वह उन विशालबाहु और ऊंचे कन्धे वाले व चंद्रमा और सूर्यकी समान तेजस्वी रामचंद्रजीका राज्याभिषेक न देखने पावें ॥ २९ ॥ आर्य रामचंद्रजी जिसकी अनुमतिसे वनको गये हों उसको वह पापहो जो कि यज्ञमें देवताओंके विना भोग लगाये हुएही खीर तिल दूध मिला-हुआ अन्न या विना यज्ञ किये हुए बकरेका मांस खाने और गुरुका अपमान करनेसे

होताहै ॥ ३० ॥ अथवा जिसके मतसे श्रीरामचन्द्र वनको गये हों उसको वह पाप हो जो गौके शरीरमें लात मारने गुरुकी निन्दा करने और मित्रगणोंमें वैर करनेसे होताहै ॥ ३१ ॥ श्रीरामचन्द्रजी जिसकी सहायसे वनको गयेहों उस दुरात्माको वह पाप हो जो किसीको विश्वास दिलादे कि मैं तेरी बात किसीसे न कहूंगा और तब दूसरा आदमी उससे अपना गुप्त भेद कहदे और फिर वह उसे प्रकाश करदे तौ ऐसा करनेवालेको जो पापहोताहै वही पाप रामचन्द्रजीके वन भिजवानेमें जिस की सलाह होवे उसे हो ॥ ३२ ॥ व जिसके मतसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको वह पाप हो जो कि उपकार न करनेवाले व भला न मानने वाले व सज्जनों से त्यागे जानेवाले निर्लज्ज संसार भरके जीवोंसे वैर करनेवालोंको होताहै ॥ ३३ ॥ अथवा जिसके मतसे श्रीरामचंद्रजी वनको गयेहों उसको वह पापहो जो उन लोगों को होताहै कि घरमें नौकर चाकर स्त्री पुत्र समेत बैठे अकेले व मीठी या श्रेष्ठचीज वस्तु खाते और नौकर चाकर या स्त्री पुत्रादिक किसीको नहीं देतेहैं ॥ ३४ ॥ जिसकी सलाहसे रामचंद्रजी वनको गयेहों उसको पतिव्रता स्त्री प्राप्त न होसके और वह निःसन्तानही मरजाय और धर्मशास्त्रके अनुसार उसकी क्रियाभी न होस के ॥ ३५ ॥ जिसके मतसे श्रीरामचंद्र वनको गयेहैं वह अपनी स्त्रियोंमें पुत्रके मुँह देखनेके सुखको न पाकर दुःख पाता रहै व उसकी उमर थोडी होजाय ॥ ३६ ॥ जिसकी सलाहसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको वह पाप हो जो कि राजा, स्त्री, बालक और वृद्धोंके वध करने और निरपराध नौकर चाकरोंके त्याग करनेसे होताहै ॥ ३७ ॥ अथवा जिसके मतानुसार आर्य रामचन्द्रजी वनको गयेहों उस को वह पापहो जो कि सदा मांस, मधु, लाख, लोहा और विष इत्यादि निषिद्ध व-स्तुओंको बेच २ उससे घरवाले वा कुटम्बियोंका पालन पोषण करनेवाले लोगोंको होताहै ॥ ३८ ॥ अथवा आर्य रामचंद्रजी जिसके मतानुसार वनमें गयेहों उसको वह पाप हो जो कि शत्रुकी ओर बढ़ीहुई और भयंकर सेना देख संग्राममें भागजाने वालोंको होताहै ॥ ३९ ॥ जिसके मतसे रघुनंदनजी वनको गयेहों वह फटे पुराने मैले कुचैले कपडे पहरे वालोंकी समान मुर्देकी खोपडी हाथमें लिये द्वार २ पर भिक्षा करता हुआ पृथ्वीमें घूमता फिरे ॥ ४० ॥ व जिसके मतसे श्रीरामचंद्रज वनको गयेहों वह सदा मद्य पीनेमें स्त्रियोंके साथ मैथुन करनेमें और जआ खेलनेमें बहुतही आसक्त रहै और काम व क्रोधसे सदा उसका निरादर होतारहै ॥ ४१ ॥

जिसके मतसे आर्य रामचंद्रजी वनको गयेहों वह सदा अधर्महीकी सेवा किया करै और कुपात्रोंहीको दान दिया करै व कभी उसका मन धर्मकी ओर न जावे ॥४२॥ व जिसकीस लाहसे श्रीरामचन्द्रजी वनको भेजे गये हों उसका बहुत यत्नसे इकट्ठा किया हुआ हजारों रुपयोंका धन चोर चुराकर ले जावें ॥ ४३ ॥ जिसकी सलाहसे रामचंद्रजी वनको गयेहों उसको वह पाप लगै जो प्रातःकाल व सायंकालकी सन्ध्यामें शयन करने वालोंको लगताहै॥ ४४॥ जिसकी सलाहसे बडे भ्राता रामचन्द्रजी वनमें भेजे गयेहों घरमें अग्नि देनेसे जो पाप होताहै गुरुकी स्त्रीसे मैथन करनेसे जो पाप होताहै और मित्रोंका बुरा करनेसे जो पाप होताहै वही पाप उनको होवे॥ ४५॥ जिसकी अनुमतिसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको देवता, पितर तथा पिता, व माताकी सेवा करनेको नहीं मिले ॥ ४६ ॥ अथवा श्रीरामचन्द्रजी जिसके मतानुसार वनको भेजे गयेहों वह साधुओंके लोकसे साधुओंकी कीर्त्तिसे और साधुओंके कर्मसे इसी मुहूर्त्तही भ्रष्ट होजावे ॥४७॥ अथवा दीर्घबाहु और चौडी छाती वाले आर्य रामचन्द्रजी जिसकी सम्मतिसे वनको गयेहों वह अपनी माताकी सेवासे विमुख होकर अनर्थक कार्यमें लगारहे ॥ ४८ ॥ जिसके मतसे श्रीरामचंद्रजी वनको गयेहों वह बहुत सेवकोंके होनेपरभी दरिद्र होवे। और ज्वर रोगसे सदा पीडित रहै व सदाही क्लेश भोग कियाकरै ॥ ४९ ॥ व जिसके मतानुसार श्रीरामचंद्रजी वनको गयेहों वह ऊपरको दृष्टि किये हुए दीनभावापन्न अपना मनोरथ जताने वाले याचकोंकी आशा पूर्ण न कर सके ॥५०॥ जिसकी सलाहसे श्रीरामभद्र वनको गयेहों तो वह कर्कश स्वभाव क्रूर, अपवित्र, और एक मात्र अधर्मकेही वशहो अनेक प्रकारके कपट करता करता जहां तहां फिरता फिरता फिरे और सदा उसको राजाके भवनसे डरना पडा करै ॥ ५१ ॥ जिसके अभिमतसे रामचंद्रजी वनको गयेहों वह दुष्ट ऋतु समयमें स्नान कीहुई अपनी पतिव्रता स्त्रीकी ऋतुरक्षा न कर सके (ऋतुमती स्त्रीकेपास न जानेसे पाप होताहै) ॥ ५२ ॥ अथवा जिसकी सलाहसे आर्य रामचंद्रजी वनको गयेहों उसको वह पाप लगे जो उस ब्राह्मणको लगताहै कि जिसके पुत्र भूखोंके मारे मर जायँ और वह उनका पालन पोषण न कर सके ॥ ५३ ॥ जिसके परामर्शसे रामचंद्रजी वनको गयेहों उसकी सब इन्द्रियें पापसे कलुषित होजावें और वह पापात्मा ब्राह्मणके लिये होती हुई पूजाको मिटादे, और बहुतही छोटा जिस गायका बछडाहो उसको दुहै॥

॥ ५४ ॥ जिसकी सलाहसे आर्य रामचंद्रजी वनको गयेहों उसको अपनी विवाहिता धर्मपत्नीस्त्रीको छोड पराई स्त्रीसे मैथुन करना पडे और वह अपना धर्म छोडनेमें अनुरागीहो मोहसे ढकजावे ॥ ५५ ॥ अथवा जिसने रामचंद्रजीके वन भेजनेमें संकेत किया हो तो पानीके दूषित करनेसे विष देनेसे जो पाप होतेहैं उसको एकाकी इन सब पापोंमें लिप्त होना पडे ॥ ५६ ॥ अथवा जिसकी सलाहसे आर्य रामचंद्रजी वनको गयेहों उसको वह पाप लगे जो कि जल पास होने परभी बहानाकर जल न दे प्यासे आदमीको टाल देनेसे होताहै ॥ ५७ ॥ अथवा धर्मके अलग २ शाखाओंका आश्रय करके उनके संबन्धमें विवाद करनेसे जो पाप होताहै, और उस विवादके देखनेसे जो पाप होताहै वह पाप उसको लगे कि जिसके परामर्शसे आर्य रामचंद्रजी वनको गयेहैं ॥ ५८ ॥ राजपुत्र भरतजी पति पुत्र विहीन कौशल्याजीको इस प्रकार समझाते २ सौगंधे खाते परम दुःखीहो पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ५९ ॥ वह अति कठोर शपथ करते २ शोकसे सन्तप्त व ज्ञानशून्य होगये तब कौशल्याजीने उनसे कहा ॥ ६० ॥ हे पुत्र! तुम जो अनेक प्रकारकी सौगंधे खाकर हमारे प्राणोंपर आघात देते हो इससे हमें अत्यन्तही दुःख होताहै॥ ६१ ॥ जोहो परम सौभाग्यकी बातहै कि, तुम्हारा मन अनेक प्रकारके शुभ लक्षणोंसे शोभायमानहै और धर्मसे विचलित नहीं हुआहै अथवा तुम्हारी प्रतिज्ञा यदि सत्यहै तो तुम निश्चयही सद्गतिके अधिकारी होगे॥ ६२ ॥ यह कहकर देवी कौशल्याजी महाबाहु भ्रातृ वत्सल भरतजीको गोदमें लेकर छातीसे लगाय अत्यन्त दुःखमें भरकर रोने लगीं ॥ ॥ ६३ ॥ उस समय दुःखसे ग्रसित हुये विलाप करते २ भरतजीका मनभी शोककी अधिकाईसे और शोकसे उत्पन्न हुए मोहके कारण व्याकुल होगया ॥ ६४ ॥ कौशल्याजीसे प्यार किये हुए वारंवार विलाप करते २ चेतना रहितहो पृथ्वीमें गिरते पडते बार २ ऊंधी श्वास लेते व शोक करते हुए भरतने वह रात्रि बिताई ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६.

जब कैकेयीनंदन भरतजी इस प्रकार शोकसे संतप्त हुए तब वचन बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्टजी उनसे उत्तम वचन बोले ॥ १ ॥ हे परम यशस्वी राजकुमार! तुम्हारा मंगलहो वृथा शोक करनेसे क्याहै ? अब समय उपस्थितहै अतएव विधि-

विधानसे राजाकी अन्त्येष्टि क्रिया करो ॥ २ ॥ पृथ्वीमें पडे हुए भरतजीने वसिष्ठजीके यह वचन सुन उठकर उनको साष्टांग प्रणाम किया और सब प्रेत कर्मोंके निर्वाह करनेमें प्रवृत्तहुए ॥ ३ ॥ भरतजीने तेल भरी नौकासे राजाका शरीर निकलवाया और उसको भूमिपर स्थापित कराया बहुत तेलमें रहनेमे राजाका वह शरी कुछेक पीला पडगयाथा तौभी यही जान पडताथा कि मानो राजा सोरहेहैं ॥ ४ ॥ अनन्तर भरतजीने उस मृतक शरीरको विविध रत्न लगे हुए उत्तम बिछौनेपर शयन कराकर शोकभाराच्छन्न हृदयसे यह कहकर विलाप करने लगे ॥ ५ ॥ राजन् ! मैं विदेशमें था इसलिये नहीं आसका आपने इसही बीचमें क्या मनमें समझ धर्मज्ञ रामचंद्र बलवान् लक्ष्मणजीको वनमें पठादिया ॥ ६ ॥ हे महाराज ! अमानुष कर्म कर्त्ता पुरुषसिंह रामविहीन हम दुःखितजनोंको छोड कहां जाते हो ॥ ७ ॥ अथवा हे तात ! आर्य रामचंद्रजी वनमें गयेहैं और आप स्वर्गको सिधार गये अतएव कौन पुरुष धीरज धरकर आपकी राजधानी अयोध्यामें योग क्षेम प्रजाओंका हित विधान करैगा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! आपके विना यह पृथ्वी विधवा होगई इसकी अब वह शोभा नहीं रही आपकी यह राजधानी चन्द्रहीन यामिनीकी समान हमें ज्ञातहोर-हीहै ॥ ९ ॥ जब भरतजीने दीन मनसे इसप्रकार विलाप कलाप करना आरंभ किया तब महर्षि वसिष्ठजी फिर उनसे बोले ॥ १० ॥ हे महाबाहो ! इस समय धीर्य धारण करके विना विचारे राजाके जितने प्रेत कर्म कर्त्तव्यहैं उन सबको जैसा हम बताते जायँ वैसे करते जाओ ॥ ११ ॥ महात्मा भरतजीने जो आज्ञा कह वसिष्ठजीके वचनोंको मान ऋत्विक् (जो यज्ञ करातेहैं) पुरोहित (जो सब भांतिसे हित साधन करतेहैं) और आचार्य (जो वेद पढातेहैं) इन सबोंको इस प्रेतकर्म करानेके लिये बहुत शीघ्रता कराई ॥ १२ ॥ उन राजाके अग्निगृहमें जो जो अग्नियें स्थापितथीं उन सबको बाहर निकाल कर ऋत्विग् और याजक (उपदेशदेनेवाले) यथाविधि उसमें होम करने लगे ॥ १३ ॥ अनन्तर परिचारक लोग चेतनाहीन राजाके शरीरको पालकीमें चढाकर नितान्त मग्न हृदय और गद्गद कंठहो उस पाल कीको उठाते हुए ॥ १४ ॥ मार्गमें विविध भाँतिके उत्तम २ रेशमीन वस्त्र सोना चांदीकी बखेर करते २ हजारों मनुष्य राजाकी पालकीके आगे २ चले ॥ १५ ॥ मार्गमें इस भांति करते कराते सरयूके किनारे पर पहुँचे वहां चन्दन, अगर, गुग्गुल, साँखू, पद्म, काष्ठ देवदारुआदि लाय उत्तम चिता बनाई ॥ १६ ॥ इस चितामें

औरभी अनेक प्रकारके सुगन्धित पदार्थ डाले गये । अनन्तर ऋत्विग् लोगोंने चिताके निकट गमन करके राजाका शरीर चितामें पहुडा दिया ॥ १७ ॥ इस समय राजकीय ऋत्विग्गण राजाकी परलोक शुद्धिके लिये अनलमें आहुति देकर उस समयके योग्य जय करने लगे और सामगायी ब्राह्मण लोगोंने शास्त्रानुसार साम गान करना आरंभ किया ॥ १८ ॥ राजाकी सब रानियें यथायोग्य रथ पालकी आदिक सवारियोंपर चढ वृद्ध लोगोंके साथ नगरसे बाहर निकलीं और जहां राजाकी चिता जल रहीथी वहां पहुँची ॥ १९ ॥ फिर ऋत्विकोंने और कौशल्याजीसे आदि लेकर औरभी सब महारानियोंने अतीव शोकसे संतप्त होकर उन अग्निको प्राप्त हुए राजाकी प्रदक्षिणा की ॥ २० ॥ तत्काल करुणामय स्वरसे रोदन करती शोकमे व्याकुलहो चिल्लाती हुई उन हजार २ स्त्रियोंका चिल्लाना सुन पडा ऐसा बोध हुआ मानो क्रौञ्चीगण शब्द करतीहैं ॥ २१ ॥ तिसके पीछे सब रानियें और शोकसे व्याकुल होकर रोय २ विलाप करती हुई सवारियोंसे उतर सरयूके निकट आईं ॥ २२ ॥ और पुरोहित व भरतजीके सहित सब लोग राजाके लिये तर्पण कर आंसू बहाते हुए नगरमें आये और सबने पृथ्वीपर शयन करके ब्रह्मचर्य धारण कर दश दिन अतिकष्टसे बिताये ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

: ७७.

इसप्रकार दशदिन तक सब नियम करते रहे जब ग्यारहवां दिन आया तब एकदशाह किया अब पवित्र हुए जब बारहवां दिन आया तो सपिंडादि श्राद्ध करते हुए ॥ १ ॥ लौकिक मंगलार्थ ब्राह्मणोंको बहुतसा धन, रत्न, सोना, चांदी, गायें, छाग आदि दान किये ॥ २ ॥ और बहुत सारे दास; दासियें, सवारियें, ऊंट, हाथी, घोडे आदिक तंबू कनात, शामियाने सब सामग्रीसे भरे हुए भरतजीने राजाके निमित्त ब्राह्मणोंको दिये ॥ ३ ॥ इसके पीछे तेरहवें दिन प्रातःकालके समय महाबाहु भरतजी शोकसे मूर्च्छित हो विलाप करने लगे ॥ ४ ॥ फिर वह पिताजीकी अस्थि बीननेके लिये वहां गये ❀ जहां सरयूके किनारे दशरथजीका दाह किया गया था वहां गद्गद कंठहो दुःखसे व्याकुल हुए भरतजी पिताको पुकार कर कहने

❀ कतक कहते हैं चिताकी भस्म बटोर कर स्थल शुद्धिकी, ऐसाही क्षत्रिय धर्म है ॥

लगे ॥ ५ ॥ हे तात ! आपने जिनको हमारा भार अर्पण कियाथा वह रामचंद्रजी इस समय वनवासीहैं अतएव इस बीच आप हमें शून्यमें छोडकर चले गयेहैं ॥ ६॥ राजन् ! जिन हतभागिनी कौशल्याजीके इकलौते सहारे रामचंद्रजी वनको चले गये हैं, तात ! उन माता कौशल्याजीको इकली छोड अनाथ कर कहां चले गये ॥ ॥ ७ ॥ अनन्तर भरतजी वहीं पर बैठगये जहां उनके पिताका शरीर जलाया था वहां श्वेतरंग की छाई पडीथी उसको देख भरतजी बहुतही शोकाकुल हुए और विलाप करने लगे ॥ ८ ॥ और दीन भावसे रोय २ व्याकुल हृदयहो मंत्रसे बँधी इन्द्रध्वजाकी नाई पृथ्वीपर गिर पडे । उस समय जो आदमी कि भरतजीके साथथे उन्होंने तत्क्षण उनको उठाया ॥९॥ शून्यहीन होजानेके समय राजर्षि ययाति जब पृथ्वीपर पतित हुएथे और उस समय ऋषिगण जिस प्रकार उनके निकट आयेथे वैसेही भरतजीके जितने नौकर चाकर मंत्री दीवान आदिथे वह सब शोकके मारे शुचिव्रत भरतजीके निकट आये ॥ १० ॥ भरतजीको शोकमें भरा और घबडाया हुआ देखकर पिता दशरथजी की याद करके शत्रुघ्नजीभी मूर्च्छितहो गिरपडे ॥ ॥ ११ ॥ वह पिताके एक एक करके सबही गुण यादकर नितान्त दुःखित और उन्मत्तकी समान संज्ञा रहितहो इस प्रकारसे विलाप करने लगे ॥ १२ ॥ हा मन्थराकी उक्तिसे उत्पन्न शोकसागर कैकेयी जिसमें ग्राह उस वरदान रूप अपार शोक सागरमें हम सब डूबगये ॥ १३ ॥ पिता ! आपने निरन्तर जिनको पालन कियाहै और जिनका बालक स्वभावभी भलीभांति अभी नहीं छूटाहै वह भरतजी इस समय रोरहेहैं सो आप इनको छोड कहां चलेगये ॥ १४ ॥ भोजन करने पीछे, वस्त्र भूषणादि धारण करने सबही विषयमें आप हम लोगोंको प्रेरण किया करतेथे अब कौन कहैगा कि पुत्र ! देर होतीहै भोजन करो, जल पियो, अच्छे वस्त्राभूषण धारण करो॥ ॥ १५ ॥ हाय, आप ऐसे धर्मज्ञ व महात्मा राजा विना यह पृथ्वी अब दारुणके कालमें फट न गई ॥ १६ ॥ हाय ! पिताजी तो स्वर्गको सिधारे और रामचन्द्रजी वनको चले गये अब हम किसप्रकारसे प्राण धारण करैं नहीं कहीं जीनेसे क्या होगा अब अग्निमें प्रवेश करैंगे ॥ १७ ॥ अथवा भाई करकै हीन और पिताहीन होकर हम इक्ष्वाकुआदि राजाओंकी पालित शूनी अयोध्यापुरीमें प्रवेश नहीं करैंगे वरन् सीधे तपोवनहीको चले जायँगे ॥ १८ ॥ उन दोनों भाइयोंका इस प्रकार विलाप सुनकर व उनके ऊपर बडा कष्ट देख सब नौकर चाकर बहुतही दुःखित

हुये ॥ १९ ॥ इस समय भरत शत्रुघ्न दोनों भाई व्याकुल और थकित होकर सींग कटे हुये बैलोंके समान पृथ्वी पर गिरकर लोटने व छटपटाने लगे ॥ २० ॥ यह देखकर उनके पिताके पुरोहित सत्वगुणावलंबी सर्वज्ञ महामुनि वसिष्ठजीने भरतजीको अपने हाथोंसे उठाया और कहा॥ २१ ॥ हे विभो ! आज तेरहवां दिनहै तुम्हारे पिताजीकी दाह क्रिया पूरी होगई अतएव भस्मसहित अस्थिसंचयन करनेमें अब किस कारणसे विलंब करतेहो ॥ २२ ॥ संसारमें तीन द्वन्द्वहैं, भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु, जन्म, मरण, सुख, दुःख और लाभालाभ इन कई एक बातोंको सबही प्राणी भोग करतेहैं, इन बातोंसे कोई नहीं छूटा न यह बातें किसीको थोडी या अधिक व्यापें सबको बराबर व्यापती हैं, प्रगट, हुआ, बढा, क्षीणहुआ, परिणामको प्राप्तहुआ नष्ट हुआ यह द्वंद 'कतक' कहतेहैं अतएव इस जीवके साधारण धर्ममें तुमको नहीं फँसना चाहिये इस समय तुम शोक और मोहका त्यागन करदो ॥ २३ ॥ वसिष्ठजीने तौ इस प्रकार भरतजीको समझाया, और तत्त्वोंके जानने वाले सुमंत्रजीने शत्रुघ्नजीको उठाय और भलीभाँति प्रसन्न करकै उनको संसार की अनित्यताकी बहुत बातें समझाई और सुनाई ॥ २४ ॥ जिस समय परम यशस्वी पुरुषश्रेष्ठ दोनों भाई पृथ्वीसे उठकर वर्षा और घामसे मलीन भाव धारण किये दो इन्द्रध्वज जिस प्रकार शोभित होतेहैं वैसेही प्रकाशित होने लगे ॥ २५ ॥ वे दोनों जन लालनेत्र किये व नेत्रोंके आंसू पोंछते हुए बोले तब मंत्री लोगोंने उनको अस्थि संचयनश्राद्ध व और जो क्रिया कर्म करने बाकीथे उनके विषयमें शीघ्रता कराई ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८.

सब क्रिया कर्म कर चुके हुये भरतजीको शोक संतप्तहो रामचंद्रजीके समीप जानेको उद्यत देख लक्ष्मण अनुज शत्रुघ्नजी उनसे बोले ॥ १ ॥ कि सब प्राणियोंकेही जो दुःख और संकटमें एक मात्र सहारे और अवलंबन वा आत्माहैं उनहीं रामचंद्रकी विपत्ति कालमें हम सबभी आश्रय लेते। हाय ! वही महा पराक्रमी रामचंद्रजी स्त्री सहित वनको भेजे गये ॥ २ ॥ यदि समझ लिया जाय कि रामचंद्रजीने संकोच करकै राजासे इस विषयमें कुछ न कहा परन्तु लक्ष्मणजी तौ बल-

वान् और वीर्यवान् जगतमें विख्यातहैं, फिर उन्होंने क्यों नहीं इस कर्मसे पिताको रोककर रामचंद्रजीको वनवाससे छुडाया ॥ ३ ॥ रामचंद्रजीको वन देनेसे पहिले जब कि लक्ष्मणजीने देखा कि पिताने स्त्रीके वश होकर नीतिसे निंदित मार्गमें पैर धराहै, तब उसी समय उनको उचितथा कि आपही न्याय अन्यायका विचार करके राजाको इस कर्मके करनेसे रोक देते ॥ ४ ॥ लक्ष्मण जीके छोटे भाई शत्रुघ्नजी इस प्रकारसे कह रहे थे कि इतनेमेंही कुबरी सब वस्त्र आभूषणोंसे सज धजकर पूर्वके द्वार पर देख परी ॥ ५ ॥ उस समय वह सर्वांगमें उत्तम चंदन लगाये और राजा रानियोंके योग्य कपड़े पहरे और यथास्थानमें वैसेही विविध प्रकारके गहने पहर रहीथी ॥ ६ ॥ उस समय जडाऊ कमरपट्टी बांधने व पाजेबके पहरने इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके उत्तम गहनोंके पहरनेसे कुब्जा रस्सियों से बँधी हुई वानरीके समान बोध होने लगी ॥ ७ ॥ द्वारपालने उस महापाप करने वालीको देखतेही उसी समय बहुत जकड़कर पकडा और शत्रुघ्नजीके निकट ले जाकर निवेदन किया ॥ ८ ॥ कि हे महाराज ! जिससे रामचंद्रजी वनको गये और आपके पिताजी भी परलोक वासी हुये यह वही पाप परायण दयाहीना कुब-डीहै सो आपको जैसा जचै इस समय वैसाही इसके साथ व्यवहार कीजिये ॥ ॥ ९ ॥ धर्मात्मा शत्रुघ्नजी यह वार्त्ता श्रवण कर अत्यन्तही दुःखित हो कर्त्तव्य कर्म निश्चय करकै रनवासके रहने वाले सब लोगोंसे कहने लगे ॥ १० ॥ इस कुबडीने जिस प्रकार कि हमारे पिता और भाइयोंको दारुण दुःख उपजाया वैसेही उस घोर पाप करनेका इस समय यह भली भाँति फल भोगे ॥ ११॥ यह कह कर शत्रुघ्नजीने जबरदस्ती कुब्जाको सखियोंमेंसे खैंचलिया और पृथ्वीपर देमारा तब वह ऐसे शब्दसे चिंघाडी कि सब गृह उसके शब्दसे भर गया ॥ १२ ॥ मंथराकी यह दशा देख उसकी सखियें अत्यन्त सन्तप्त हुईं और यह जानकर कि इस समय शत्रुघ्नजी महा क्रोधितहैं सब इधर उधर दौड खडी हुईं कि कहीं हमपर भी विपत्ति न आवै ॥ १३ ॥ और वह सब उसकी सखियें सलाह करने लगीं कि शत्रुघ्नजीने इस समय जो कार्य आरंभ किया है उससे तो यह ज्ञात होता है कि यह हम सबको ही मार डालेंगे ॥ १४ ॥ अतएव इस समय हमें उन दया शीला परम दान देनें वाली धर्मज्ञा यशस्विनी देवी कौशल्याजीका आश्रय लेना उचित है वह निश्चयही हमको आश्रय देंगी ॥ १५ ॥ उन सब कुबरीकी सखियों ने तौ इस भांति विचार

किया और इधर शत्रुओंके दमन करने वाले शत्रुघ्नजीने क्रोधमें परिपूर्ण होकर फिर कुब्जाको पृथ्वीमें दे पटका और उसकी चोटीको पकड घसीटने लगे ॥ ॥ १६ ॥ जब कई एक झटके इधर उधरको दिये तब कुबडीके विचित्र गहने जो कि वह शरीर में पहररहीथी सबके सब टूटकर उसके शरीर से निकल पडे और कुब्जा चिल्लाने लगी ॥ १७ ॥ उस समय वह परम सुन्दर राज भवन इन टूटे फूटे गहनों के इधर उधर पडे रहनेसे इस प्रकार शोभित होने लगा जैसे कि शरदृतुका आकाशमंडल ताराओंकरके शोभित होताहै ॥ १८ ॥ अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ बलवान् शत्रुघ्नजीने बडेही क्रोधसे झकझोरकर कुब्जाको पकडा यह देखकर कैकेयी उसके छुडाने दौडी तब शत्रुघ्नजीने उससेभी बडे कडुवे असत्य वचन कहे ॥ १९ ॥ कैकेयी उन सब कष्टदायक कठोर वचनोंको सुन और झकझोरे जानेमें नितान्त कातर व शत्रुघ्नजीके भयसे बहुतही भीत होकर अपने पुत्र भरतजीकी शरण गई ॥ २० ॥ तब भरतजीने शत्रुघ्नजीको महा क्रोधित देखकर उनसे कहा कि हे प्यारे भैय्या ! स्त्री मात्रही सब प्राणियोंसे अवध्य होती हैं। अतएव मंथराके अपराधको क्षमा कर दीजिये ॥ २१ ॥ रामचन्द्रजी अति धर्मनिष्ठ हैं यदि वह माताका मार डालने वाला समझकर हमारी निन्दा न करते व हम पर क्रोधित न होते तो हम इस दुराचारिणी पापिनी कैकेयीको भी अभी मार डालते ॥ २२ ॥ कैकेयी की बात तो एक ओर रही जिस समय वह महात्मा यह जानेंगे कि इन्होंने कुब्जाको मार डालाहै तब प्रीति कैसी वह हमारे तुम्हारे साथ बातभी न करेंगे ॥ २३ ॥ भरत-जीके यह वचन सुनकर लक्ष्मणजीके छोटे भाई उस दोषयुक्त कार्यके करनेसे निवृत्त हुए और बनाय मूर्च्छित हुई मंथराको छोड दिया ॥ २४ ॥ तब मंथरा कैकेयीके चरणोंमें गिरकर ऊधे २ श्वासले बडे दुःखसे भरे करुणाके स्वरसे विलाप करनेलगी ॥ २५ ॥ शत्रुघ्नजीके घसीटनेसे उसकी चेतना जाती रही है और बहुत व्याकुल हो पींजरेमें बँधी क्रौंचीकी नाई इधर उधर देख रही है यह देख भरतमाता कैकेयीने उसको धीरे धीरे बहुत समझाया ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९.

अनन्तर चौदहवें दिन प्रभातके समय राजकार्यके निबाह करनेवाले मंत्री आदि लोग इकट्ठे हो भरतजीसे कहने लगे ॥ १ ॥ जो हमारे गुरुके भी गुरु थे वह राजा दशरथजी ज्येष्ठ रामचन्द्रजी और महाबलवान् लक्ष्मणजीको वन भेज स्वर्गको सिधार गये ॥ २ ॥ इस समय यह राज्य विना राजाका पडा है अतएव आप इस को ग्रहण कीजिये क्योंकि आप राजाके परमयशस्वी पुत्रहैं और विशेषतः अपने पिता की आज्ञानुसार राज्यपद ग्रहण करनेसे बडे भाईके विद्यमान रहते राज्य कर नेमें किसीप्रकारका दोष आपको नहीं लगैगा ॥ ३ ॥ हे रघुवंशीय राजनंदन ! कुछ हमही नहीं वरन् सब बन्धु बांधव और पुरवासी गण सबही अभिषेककी साम-ग्री लिये हुए आपकी बाट देख रहे हैं ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ भरतजी ! आप अपने पिता व पितामहादिकोंका राज्य ग्रहण करकै अपना अभिषेक कराइये और हम सब का पालन कीजिये ॥ ५ ॥ उन सबके यह वचन सुन व जितने पात्र अभिषेकवाली वस्तुओंसे भरेथे सबकी कृतनिश्चय भरतजीने प्रदक्षिणा की फिर दृढ व्रतधारी भरत-जी सब लोगोंसे कहने लगे ॥ ६ ॥ हमारे कुलकी रीतिके अनुसार बडेहीको राज-त्व सदासेही चलाआया है अतएव आप लोग चतुर होकर फिर हमसे राज्य करने को न कहना ॥ ७ ॥ आप लोग सब सूक्ष्मानुसूक्ष्म का विचार कर सकते हैं सो देखिये कि रामचन्द्रजी हमारे बडे भ्राता हैं वही राजा होंगे और हम वनमें जाकर चौदह वर्षतक रहेंगे ॥ ८ ॥ इस समय चतुरंग बलवाली सेना तैयार करकै ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचंद्रजीको हम वनसे लौटार लावैंगे ॥ ९ ॥ यह सब अभिषेककी सामग्री हम रामचन्द्रजीके अभिषेकके लिये साथ लेजाकर वनको चलैंगे ॥ १० ॥ और वहां उन पुरुषसिंह रामचन्द्रजी का अभिषेक करकै इस प्रकार हम उनको यहां ले आवेंगे कि जिसप्रकार यज्ञशालामें अग्निको लाते हैं ॥ ११ ॥ हम इस माताका नाम धारण करनेवाली अपनी माता कैकेयी का अभिलाष कभी सफल नहीं करैंगे, यह चाहती है कि हम राजा बनै पर इसके विपरीत हम दुर्गमवनमें वास करैंगे; और रामचन्द्रजी राजा होंगे ॥ १२ ॥ अब प्रथम मार्ग सुधारनेवाले बेलदार खुदैये आदिक जायँ और वह बनाकर सब ऊंचे नीचे स्थानोंको बरावर करदें वह बहुत चतुर लोग मार्गकी रक्षाके लिये भी जायँ, जिससे कहीं किसीको किसीसे किसी प्रकारका भय न हो ॥ १३ ॥ नृपनंदन भरतजीने जब रामचन्द्रजीके नि-

मित्त इस प्रकार कहा तब सब लोग यह मनोहर अति उत्तम वचन बोले ॥ १४ ॥ आपने राज्य ज्येष्ठपुत्र श्री रामचन्द्रजीको पृथ्वी देनेका जो अभिलाष करके हम सबसे यह अभिप्रायकहा । इस कारण पद्मासना लक्ष्मी देवी आपको आश्रय करें ॥ १५ ॥ राजकुमार भरतजी के कहे हुए वह अति उत्तम वचन श्रवणगोचर करके सब किसीके नेत्रोंसे आनंदके आंसू गिरने लगे ॥ १६ ॥ अनन्तर उन सब लोगोंने यह वार्त्ता श्रवण कर मंत्रीगण नौकर चाकरोंके सहित प्रफुल्लित हो और एकबारही शोक रहित होकर कहा हे नरवर ! आपके वचनानुसार आपके सामने मार्ग रखानेवाले खनैये व बेलदार आदिकोंको मार्ग बनानेके लिये विशेष प्रकारसे प्रथमही आज्ञादी जाचुकी है ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां एकोनाशीतितमः सर्गः॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०.

अनन्तर भरतजीकी आज्ञा व सुमंत्रजीके कहनेसे आगे २ सुन्दर मार्ग बनाने व निवास स्थानोंमें मन्दिरादि बना देनेकेलिये पृथ्वीके तत्त्वोंको जाननेवाले भूमिप्रदेशज्ञ (इनूजीनियर) लोग चले जोकि पृथ्वीको देखतेही जानलेते कि यह जगह जल सहितहै व निर्जलहै । व सूत कर्मको जाननेमें चतुर लोगभी चले जो मन्दिरादि बनानेमें सूधकी सीध ठीक लगातेथे । सबहीं अपने २ कामोंमें दक्षथे जहां जिसका कार्य पडै बडी बहादुरीके साथ उसके करनेको तैयार होजाते । खनैये भी चले जो कुआं, बावली, नहर आदि खोदनेंमें चतुरथे व ऐसे कारीगर लोगभी चले जो कि खोल, नदी आदि पार उतरनेके लिये नाव या घन्नई तुरंत बना सकतेथे ॥१॥ बहुतसे मजदूर लोग चले जो रोज मजदूरीही पाकर सब काम करसकैं वह स्थपति (मिस्तरी) लोग चले जो थवई कर्मके करनेमें प्रधान होतेहैं, यंत्रनिर्माणदक्ष लोग चले जो कि नावादिक वस्तुओंके बनानेमें होशियारथे । बढई लोगोंके झुंडके झुंड चले मार्गीलोग चले जो वनके मार्गको अच्छी तरह रखा सकेथे, तथा वृक्ष छेदक लोग चले जो कि मार्गमें फैले हुए वृक्षोंके काढनेमें चतुरथे ॥ २ ॥ रसोइयें चले जो कि जरा देरमें बहुत मनुष्योंके भोजन बना सकतेथे, सुधाकार लोग जो धवरहरादिकोंकी भीतोंमें मिट्टी व पत्थरादि लगानेमें निपुण थे व वंशचर्मकृत् जो लोग बांस का बक्कल काटने छीलनेमें तैयारथे व जो लोग उस मार्गमें कभी न कभी गयेथे

और विदेशकी सब बातोंको जानतेथे वह सब लोग आगे २ चले ॥ ३ ॥ वह विपुल झुंडके झुंड हर्षसहित उन रामचन्द्रजीके लिये शीघ्रतासे चले तब इस प्रकार की शोभा हुई कि जिस भांति पूर्णमासीके दिन समुद्रका जल उछलताहै ॥ ४ ॥ वह मार्गके बनानेमें चतुरलोग अपने दलमें मिलकर फावडे, कुलाहडी इत्यादि बहुतसी उपयोगिनी सामग्री संगले आगे २ चले ॥ ५ ॥ वहां जाकर उन्होंने बहुत सारे वृक्ष लता, वल्ली, झाली, ठूंठ, पत्थर, व टीले आदिक थे उन सबको काट, कूट, पीट, पाट, खोद खादकर बराबर करदिया ॥ ६ ॥ जहां कहीं वृक्ष नही लगेथे वहांपर वृक्ष लगादिये और जहां कहीं घने वृक्षोंकी बहुत सारी डालियां बढ आईथीं उनको कुहाडी, फरसे, दरांत आदिसे छांट छूंट समान किया ॥ ७ ॥ कुछेक बलवान् लोगोंने अतिशय पुष्ट ठूंठोंको जो बाहुके वेग और मनुष्यादिकोंके हिलाने व उखाडनेमें नहीं हिलते व उखडतेथे उखाड २ फेंक दिया व जितने दुर्गम स्थान थे सबको खोद पीटकर बराबर कर दिया ॥ ८ ॥ व और जो लोगथे वह मार्गके निकट और बीच वाले कुओंकी-फावडेसे मिट्टी, धूल, कूडा करकटसे पाट देते, और जहां कहीं गढे आदिकथे उन कोभी बराबर करदेतेथे ॥ ९ ॥ जहां कहीं छोटी २ नदियां व नाले मिलते मिलाते उनमें पुल बांधदेते जहां कहीं कंकरी गोखरू खपटे आदिक पडेथे उनको बटोरकर फेंक देते जहां कहीं जलके आनेमें कोई रुकावटथी उस बंधनको भंग कर देतेथे ॥ ॥ १० ॥ थोडे कालमेंही जितनी नदियोंकी बहुत धारेंथीं और अनेक प्रकारकी उन सब धाराओंको एक बडी धारा करके उसपर पुल बांध दिया और अधिक जलसे पूर्णकर उनको समुद्रहीके आकारसा बनादिया ॥ ११ ॥ और जहां कि जल नहींथा वहांपर बहुतसी बावलियें तलैये आदि खुदवाकर बहुतसे सुन्दर २ पक्के घाट आदि बनादिये ॥ १२ ॥ इस भांति सेनाके जानेके मार्गमें कहीं विश्राम लेनेके लिये बराबर भूमि सँवारकर बनाई गई कहीं फूले फले वृक्ष लगाये गये कहीं २ पशु, पक्षीगण मतवाले होकर कल २ करने लगे, कहीं ध्वजा पताका लगाई गईं ॥ ॥ १३ ॥ सब स्थानोंपर अयोध्यासे प्रयाग पर्यन्त सब सडकोंपर चन्दनादि मिश्रित सुगन्धित वस्तुओंके जलसे छिडकाव कराया गया, व सबही स्थान फूलोंसे सजाये गये उस मार्गने इन्द्रपुरीके मार्गकी तुल्य शोभा पाई ॥ १४ ॥ उन लोगोंको जो जो भरतजीने आज्ञा दीथी वैसेही उन सब लोगोंने सुन्दर रमणीय प्रदेशोंमें अनेक प्रकारके स्वादयुक्त जलवाले जलाशय व मीठे फलवाले वृक्ष लगा दिये ॥ १५ ॥

सेनाके रहने व उतरने आदिका जैसा कुल स्थान भरतजी चाहतेथे वैसाही उन अधिकारियोंने अनेक प्रकारके भूषणोंसे सजादिया ॥ १६ ॥ जो कि नक्षत्र और सब मुहूर्त्तोंका शुभाशुभ फल जानतेथे उन ज्योतिषी लोगोंने शुभ मुहूर्त और शुभ नक्षत्रमें सैनाके निवासकी सामग्री स्थापितकीं जिसमें महात्मा भरतजीका मंगलहो ॥ ॥ १७ ॥ सेनानिवासके स्थानके निकट बडी भारी परिखा खोदी गई और वहां बडे २ तेजस्वी रक्षक लोगभी रक्खे गयेथे । इन्द्रनीलमणि निर्मित प्रतिमायें वहां विराजमान कीगईं और जगह २ उनसे उतरने चढनेकी सीढियां लगादी गईं ॥ ॥ १८ ॥ जगह २ बडे २ धुस बनादिये गये जिनपर अनेक भाँतिके धवरहरे बनाये जो बहुत सुन्दर बने हुएथे और जिनपर बहुतसी झंडियां लगाई गईथीं, बडी २ सडकें सबके किनारोंपर बनाईगईं ॥ १९ ॥ और उनके बडे ऊंचे सत-खंडे घरोंके अनुभागमें कपोतपालिका विराजमान हो रहीथीं यह सब मंदिर बडे ऊंचे बनेथे, देखनेसे ऐसा बोध होताथा कि, मानो आकाशमें विमान व मंच अनेक प्रकारके आसन शोभित हो रहेहैं यह सब निवेश स्थान इन्द्रपुरीकी समान शोभा धारण करते हुये ॥ २० ॥ इस प्रकार बृहत् २ मछलियों करके युक्त व निर्मल सुशीतल सलिल शालिनी गंगाजी तक विविध वृक्ष व कानन सहित ॥ २१ ॥ मार्ग शिल्पियोंको करके क्रमसे बनाहुआ वह रमणीय राजमार्ग रात्रि कालमें चन्द्रमा और नक्षत्र मंडल मंडित निर्मल आकाशकी समान विराजमान होने लगा ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० भाषायां अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१.

अधिकारी लोग तो उधर मार्ग इत्यादिक बनानेको भेजेगये इधर वह आनंदमयी रात्रि बीती तब प्रातःकालमें विशेषकरके सूत और मागधलोग अनेक प्रकारसे मंगल स्तोत्रोंसे भरतजीकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ पहरभर रात्रि रहे जागनेके लिये जो नगाडे बजाये जाते थे वह सब सुवर्णके दंडोंसे बजाये जाने लगे उससमय उन सबमें भैरव राग निकलताथा इनके अतिरिक्त शत २ शंख ऊंचे २ स्वरोंसे बजाये गये और भी अनेक २ भेरी आदिक बाजे बजतेथे ॥ २ ॥ उन महान् बाजोंके शब्दोंने आकाश मंडल तक फैलकर शोकसे संतापित भरतजीको शोकसे व्याकुल कर दिया ॥ ३ ॥ तब भरतजी उस शब्दको सुनकर जागे, और यह कहकर जागे कि

अरे ! हम राजा नहींहै क्यों हमारी स्तुति करतेहो वह बाजा बंद करादिया फिर शत्रुघ्नजीसे बोले ॥ ४ ॥ हे शत्रुघ्न ! कैकेयीके करनेसे सब लोकका कितना बडा उपकार हुआहै हमारे ऊपर यह सब दुःख छोडकर राजा दशरथजी तो स्वर्गको चले गये ॥ ५ ॥ उन महात्मा धर्मराजकी यह धर्म मूलक राजश्री इस समय मांझी हीन नौकाकी समान समुद्रमें इधर उधर घूमतीहै ॥ ६ ॥ पिताकी यह दशा हुई, तिसपर जो कि हमारे बडे भारी रक्षकथे, उन श्रीरामचन्द्रजी को हमारी माताने धर्म त्यागकर वनमें भिजवा दिया ॥ ७ ॥ तब भरतजी चेतना रहितहो इस प्रकार विलाप करतेथे तब यह देखकर सब स्त्रियां करुणा स्वरसे रोदन करने लगीं ॥ ८॥ इस प्रकारसे विलाप हो रहाथा कि इतनेमें राजधर्मके जानने वाले महायशस्वी वसिष्ठजी इक्ष्वाकु नाथकी सभामें आये ॥ ९ ॥ यह सब सभा सुवर्णमय रमणीय थी जिधर देखो उधर मणि व सोनाही देख पडताथा । जैसे सुधर्मा सभामें इन्द्रजी अपने गणोंके साथ आतेहैं वैसेही अपनेही समाजके साथ वसिष्ठजीने इस सभामें प्रवेश किया ॥ १० ॥ वहां सुवर्णका एक गोल स्थान बनाथा उसपर बैठ गये व सर्व वेदज्ञ मुनिराज दूतोंको आज्ञा देने लगे ॥ ११ ॥ कि तुम लोग बहुत शीघ्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय, मंत्री, सेना, और सेनापतियोंको यहां बुलालाओ क्योंकि एक कार्य ऐसा आ पडाहै कि उसको शीघ्र करना पडैगा ॥ १२ ॥ तुम सब यशस्वी भरत शत्रुघ्न व और दूसरे राजकुमारोंको और सुमंत्र युधाजितसे आदि लेकर और भी सब जितने हितकारी जनहैं उन सबकोही यहां बुलालाओ ॥ १३ ॥ वसिष्ठजी तो इतना कहही रहेथे इतनेमें रथ घोडे और हाथीपर चढे हुए पुरुषोंके आने से तुमुल कुलाहल उठा वरन् सब लोग आपसे आप आगये ॥ १४ ॥ अनन्तर देवता जिस प्रकार इन्द्रको देख आनंदित होतेहैं वैसेही मंत्री आदि लोग भरतको आता देख इस प्रकार आनंदित हुए कि पहले राजा दशरथजीको देख आनन्दित होतेथे ॥ १५ ॥ तब उस समय भरतजीसे शोभित वह सभा बडे २ मच्छ व नाकों करकै युक्त, मणि, शंख, सिकतासमन्वित, स्थिर समुद्रकी समान राजा दशरथजीके समयमें जिसप्रकार शोभित होती थी इस समयभी वैसेही जान पडने लगी ॥ १६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अयो० एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२.

बुद्धिसंपन्न भरतजीने देखा कि पूज्यजनोंकरकै सम्पूर्ण होने और वसिष्ठादि महात्माओंके शोभित होनेसे सभा पूर्ण चंद्रशोभिता पूर्णमासी की रात्रिकी समान शोभा पा रहीहै ॥ १ ॥ सभामें आये हुए श्रेष्ठजन सब अपने २ आसन पर यथा रीति बैठगये. तब उनके अंगराग और वस्त्रोंकी शोभासे शोभित होकर वह श्रेष्ठसभा प्रभा विस्तार करने लगी ॥ २ ॥ शरदृतुमें पूर्ण चंद्र समन्विता रात्रि जिस भांति शोभा पातीहै, वैसेही विद्वानजनोंके समागमसे वह सभा परम रमणीय हो रहीथी ॥ ३ ॥ अनन्तर धर्मके जाननेवाले पुरोहित वसिष्ठजी राजाके सब मंत्रि आदिक बान्धवोंको देख भरतजीसे मधुर वचन बोले ॥ ४ ॥ हे भरत! राजा दशरथ सदा धर्म मार्गमें टिके, धन धान्यवती विपुल ऋद्धि सद्धि युक्त यह पृथ्वी तुम को देकर स्वर्गको चले गयेहैं ॥ ५ ॥ सत्यव्रत धारण करने वाले रामचंद्रजीने भी साधुओंके आचरण किये हुए धर्मको स्मरण कर पिताकी आज्ञाको नहीं त्यागा जिसप्रकार चंद्रमा चांदनीको नहीं छोड सकता ॥ ६ ॥ इस समय तुम इन मंत्री आदिकोंका आनंद वर्द्धन करकै पिता और भ्राताका दिया हुआ यह अकंटक राज्य भोगो और शीघ्र अपना अभिषेक करालो ॥ ७ ॥ उत्तर, दक्षिण, पश्चिम और पश्चिमान्तके प्रदेशवासी व द्वीपके रहनेवाले जितने राजाहैं समुद्रके तटके और सिंहासन शून्य राजा लोग तुम्हैं कोटि २ रत्न उपहार देंगे ॥ ८ ॥ धर्मके जानने वाले भरतजीने यह गुरुजीका वचन श्रवण कर शोकमें डूब धर्म की इच्छासे मनही मनमें रामचंद्रजीको स्मरण किया ॥ ९ ॥ कलहंस स्वर वाले वह युवा भरतजी सभाके बीच गद्गद कंठहो विलाप करनेलगे और कुछेक निन्दा सी करते हुये गुरु वसिष्ठजीसे बोले ॥ १० ॥ कि ब्रह्मचर्य धारण किये धर्ममें निष्ठा लगाये सब विद्या ओंमें कुशल उन बुद्धिमान रामचंद्रजीका राज्य मेरी समान कौन जन हरण कर सकता है ॥ ११ ॥ महाराज दशरथजीसे जन्म ग्रहण करकै हम किस प्रकारसे राज्यके हरने वाले होजावें ? राज्यभी रामचंद्रजीका और हमभी रामचंद्रजीके हे महर्षे! आपको ऐसे स्थलमें धर्मानुसार वार्त्ता कहनी उचित है ॥ १२ ॥ साक्षात् दिलीप और नहुषकी समान धर्मात्मा ज्येष्ठ और श्रेष्ठ रामचंद्रही दशरथजीकी समान इस राजपरिवारके अधिकारीहैं ॥ १३ ॥ असाधुसेवित स्वर्गविरोधी यह महापाप यदि मुझ करकै अनुष्ठित किया जावै, तब सब लोक हमें इक्ष्वाकु कुलका

नाश करनेवाला कहैंगे ॥ १४ ॥ हमारी माताने जो महा पाप किया अर्थात् श्रीरामचंद्रजी को वनमें भिजवाया सो हमें किसी प्रकार नहीं रुचता अतएव इस समय हम यहींसे हाथ जोडकर कठिन वनमें टिके हुए भ्राता रामचंद्रजीको नमस्कार करतेहैं ॥ १५ ॥ हम रामचंद्रजीहीके पीछे चलेंगे वही पुरुषोत्तम इस राज्यमें राजा होनेके योग्यहैं वही त्रिभुवनके राजा होने योग्यहैं ॥ १६ ॥ सबही सभासद् लोग भरतजी का यह धर्मयुक्त वचन श्रवण करके राममें अपना चित्त लगा आनंदके आंसू नेत्रोंसे गिराने लगे ॥ १७ ॥ फिर भरतजीने कहा कि, हम यदि उन आर्य रामचंद्रजीको वनसे न लौटासकें तब लक्ष्मणजीकी भांति हमभी वनवासही करैंगे ॥ १८ ॥ हम अच्छे गुणवाले साधुस्वभाव श्रेष्ठ आर्य पुरुषोंके सामने रामचंद्रजीको वनसे लौटा लानेके लिये जितने कुछ उपायहैं सबही अवलंबन करैंगे कोई कसर रक्खैंगे नहीं ॥ १९ ॥ हमने प्रथमही क्या तनूख्वाह वाले क्या वेतन्ख्वाहवाले (जो मजदूरी रोज लेतेहैं) मार्ग बनानेमें चतुर कारीगरोंको पंथ तैयार करनेके लिये भेज दियाहै सो उन्होंने रस्तासुधार रक्खाहोगा अब हमभी वहीं जानेकी इच्छा करतेहैं ॥ २० ॥ भ्रातृवत्सल धर्मात्मा भरतजी इसभांति कहकर समीप बैठे हुए सलाह देनेमें चतुर सुमंत्रजीसे बोले ॥ २१ ॥ सुमंत्र ! हमारी आज्ञासे तुम यहांसे उठकर शीघ्र गमनकरो हमारे गमनकी वार्त्ता जनाकर सब सेनाको जल्दी तैयार करो कहो कि रामचंद्रजीके पास शीघ्र जानाहै ॥ २२ ॥ जब महात्मा भरतजीने सुमंत्रजीसे इस प्रकार कहा तब आनंदित हो सुमंत्रजीने सब सैनाको यह आज्ञादी ॥ २३ ॥ रामचंद्रजीको वनसे लौटा लानेके लिये सब सेना कोभी तैयार होनेकी आज्ञा देदी गईहै यह सुनकर सब नौकर चाकर आदिक और सेनाध्यक्ष लोग परम आनंदित हुए ॥ २४ ॥ अनन्तर घर २ में वीर नारियें हर्षित होकर अपने २ वीर पतियोंको रामचंद्रजीको लौटाकर लानेके लिये वनके जानेको शीघ्रता कराने लगीं ॥ २५ ॥ अब सब सेनाध्यक्ष घोडों पर सवार होहो कर बैलों और घोडों को रथसे जोडकर सब सेनाको जानेकी आज्ञा देने लगे ॥ २६ ॥ अनन्तर सब सेना चलनेके लिये तैयार होगई है यह देखकर भरतजीने कुलगुरु वसिष्ठजीके निकट बैठे धोरेही बैठे हुए सुमंत्रजीको आज्ञादी कि हमारा रथ भी शीघ्र तैयार कर लाओ ॥ २७ ॥ सुमंत्रजी जो आज्ञा कह और उनके आदेशको स्वीकार कर श्रेष्ठ घोडोंसे जुता हुआ रथ लेकर उनके समीप आये ॥ २८ ॥ वह

दृढ, सत्यविक्रम, सत्यधैर्य प्रतापशाली भरतजी महावनमें गये हुए यशस्वी गुरु रामचंद्रजीका वनसे लौटा लानेका मन किये हुये युक्तिपूर्वक वचन सुमंत्रजीसे बोले ॥ ॥२९॥ हे सुमंत्रजी ! तुम शीघ्र उठकर सेनाको तैयार रहनेके लिये सेनाध्यक्षोंको सुहृदोंको व औरभी मुखिया २ लोगोंको आज्ञादो कि, हम जगत्‌के हितके लिये प्रसन्न कर वनसे लौटाकर रामचन्द्रको ले आवैंगे ॥ ३० ॥ भरतजीके वचन सुन परिपूर्ण काम सूत सुमंत्रजीने मुखिया २ लोग सेनाध्यक्ष व सुहृद् लोगोंको यह सब वार्त्ता समझाकर कहदी ॥ ३१ ॥ अनन्तर घर २ में ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र लोग उद्योगी होकर ऊंट, रथ, हाथी, खिच्चड और अच्छी नसलसे पैदा हुये सब घोडोंको सजाते हुये ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०आ०अयो० भाषायां द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ८३.

तिसके पीछे भोर होतेही उठकर भरतजी सुन्दर रथपर सवार होकर रामचन्द्रजीके दर्शनकी कामना किये शीघ्रही चले ॥ १ ॥ सब मंत्री और पुरोहित लोग घोडे जुते हुए सूर्य नारायणके रथकी समान प्रभायुक्त रथमें सवार होकर आगे २ जाने लगे ॥ २ ॥ सब प्रकार यथाविधिसे सजे सजाये नौ हजार [९०००] हाथी अनुगमन करनेवाले इक्ष्वाकुकुलनंदन भरतजीके आगे २ चले ॥ ३ ॥ इनके सिवाय साठ हजार [६००००] रथ विविध अस्त्र धारण करने वाले धनुष धारी लोग यशस्वी राजपुत्र भरतजीके आगे चले ॥ ४ ॥ और घोडोंपर चढे हुए एक लाख (१०००००) सवार उन रामचन्द्रजीके पास जानेवाले यशस्वी जितेन्द्रिय सत्यप्रतिज्ञ राजकुमार रघनंदन भरतजीके साथ २ चले ॥ ५ ॥ कैकेयी, सुमित्रा और यशस्विनी देवी कौशल्याजी रामचन्द्रजीको लौटा लानेके लिये सन्तुष्ट हो परम दीप्तिमान् रथोंपर चढकर चलीं ॥ ६ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके देखनेको जब यह सुजन समाज चली तब प्रसन्नमनहो उनही महात्मा रामचन्द्रजीकी चित्र विचित्र कथा कहते व चर्चाकरते सुनते सुनाते चले जातेथे दूसरी किसी प्रकारकी वार्त्तासे उनको काम नहीं था ॥ ७ ॥ वह लोग यही कहतेथे कि कितने दिनोंमें हम जगत्‌के शोकनिवारक चित्तको अपने वशमें किये हुए महाबली जलधरकी समान श्यामवर्णवाले महाबाहु, दृढव्रत रामचन्द्रजीको देखैंगे ॥ ८ ॥ जैसे सूर्य भगवान् उदय

होतेही त्रिभुवनके अन्धकारको नाश कर देते हैं वैसेही रामचन्द्रजी महाराज दर्शन देतेही हमारे सब शोकको हर लेंगे ॥ ९ ॥ उसकाल नगरके रहनेवाले सब मनुष्य आनन्दसहित यह शुभ कथा कहते परस्पर मिलते भेंटते चलने लगे ॥ १० ॥ अयोध्या नगरीमें जिन प्रसिद्ध बनियोंको भरतजीने आज्ञा दी व जिनको आज्ञा नहीं दी वह बनिये और सबही प्रजागण जो कि राज्यमें रहते थे सब प्रफुल्ल चित्तमे रामचन्द्रजीके दर्शनार्थ चले ॥ ११ ॥ और भी मणियोंमें छेंद करनेवाले और उनको खैरात पर उतारनेवाले लोग कुम्हार लोग जो सूधासूध लगाना जानते तथा सब शस्त्र बनानेवाले लोग चले ॥ १२ ॥ मयूरके वेधक मोरकी पूंछका छत्र बनाने वाले व लीलामे मोरको पकडनेवाले क्रकच करपत्रकी आजीविकासे जीनेवाले वेधक मोती मणिमें सूराख करनेवाले रोचक कांचकी सीसी बनानेवाले दन्तकार हाथीदांतका काम करनेवाले सुधाकार सुधालेप करनेवाले गंधजीवी इतर फुलेल बेंचनेवाले यह सब चतुर चले ॥ १३ ॥ सुनार, और कम्बल बनानेवाले यह सब और अधिकारी लोग भी मुदित मनसे चले स्नापक जो लोग स्नान कराते हैं गरम जलसे न्हवानेवाले अंग मलनेवाले वैद्य धूपजीवी, मद्यकार ॥ ॥ १४ ॥ धोबी, तुन्नवायक जुलाहे-दरजी, ग्राम और मिलकके रहनेवाले मुखिया २ लोग नट व कैवर्तक सब अपनी २ स्त्रियोंके सहित चले ॥ १५ ॥ सहस्र २ सदाचारपरायण वेदवादी ब्राह्मणगण बैल जुते हुए रथोंपर बैठकर भरत-जीके साथ २ चले ॥ १६ ॥ सबही सुन्दर वेश, सुन्दर वस्त्र, अरुण रंगके शुद्ध चंदनादि अनुलेपन लगाये, सुन्दर २ सवारियों पर सवार हुए धीरे २ भरतजीके साथ २ चले ॥ १७ ॥ इसप्रकार से जब कैकेयीनन्दन भ्रातृवत्सल भरतजी जब रामचन्द्रजीको लोटाने चले तो अतिप्रहृष्ट चतुरंगिणी सेना परम हर्षित और आनंदमें भरकर उनके पीछे २ चली ॥ १८ ॥ और जाते २ सब रथ, यान, हाथी, घोडों पर चढ बहुत बहुत दूर चले कि, शृंगवेर नगरमें गंगाजीके किनारे पहुंचे ॥ १९ ॥ जहां रामचन्द्र जी का सखा शृंगवेरपति वीर गुह अपनी बिरादरीके साथ बसता हुआ सदा अति सावधानीसे उस देशकी रक्षा किया करताथा ॥ २० ॥ भरतजी के संग चलनेवाली चतुरंग सेना चक्रवाक भूषित भागीरथी गंगाजीके किनारे पहुँ-चकर वहीं टिकरही ॥ २१ ॥ वचन बोलनेमें चतुर भरतजी अपनी सेनाको टिकी देख व सुखद गंगाजीका जल निहार सब मंत्रियोंसे बोले ॥ २२ ॥ कि

मेरी इच्छा में यह आता है कि आज विश्राम करके कल समुद्रमें जानेवाली गंगाजीके पार होना चाहिये; अतएव सब सेनाको इच्छानुसार सब जगह टिकादो ॥ ॥ २३ ॥ क्योंकि स्वर्गवासीमहाराज दशरथजीको परलोकके लिये हम जलदान गंगाजीमें कल पार होने के समय करैंगे ॥ २४ ॥ जब भरतजीने इस प्रकार कहा तब मंत्री लोगोंने जो आज्ञा कहकर एकान्त चित्तसे अलग २ सब समाजके लोगोंको उनकी इच्छानुसार जहां तहां टिकादिया ॥ २५ ॥ महाभाग भरतजी महानदी गंगाजीके किनारे यथा विधानसे अनेक परिच्छेदसे शोभित अपनी सेनाको टिकाकर यह चिन्ता करने लगेकि—किस भांतिसे रामचन्द्रजीको लौटाकर लावैं केवल इसी विषय को सोचते हुए वहां वास करते हुए ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ८४.

इधर भरतजीकी चतुरंगिनी सेना गंगाजीके किनारे चारों ओर पडी हुई देखकर गुह अपनी बिरादरीवाले लोगोंसे बोला ॥ १ ॥ गंगाजीके किनारे जो यह समुद्रकी समान पडी हुई सेना दीखती है सो हम इसके अंतको मनसे भी शोचते हैं परन्तु नहीं पाते ॥ २ ॥ जो यह महाकाय भरतजी खोटी बुद्धि धारण कर रथ पर चढ यहां आये तो निश्चयही रामचन्द्रजीसे वैर भाव रखते होंगे जब कि, रथपर बडी ऊंची कोविदारकी ध्वजा सोहती है ॥ ३ ॥ तब ऐसा समझ पडता है कि, यातो भरतजी हमें वरुणकी फांसीसे बांधही लेंगे । या एक बारही मार डालेंगे, और हम सबको इस प्रकार कर करा कर पिताके राज्यसे निकलेहुए रामचन्द्रजीका वध करैंगे॥ ४ ॥ फलतः कैकेयीके पुत्र भरत यह परम दुर्लभ राजश्री भलीभांति अपने अधिकारमें रहनेहीके मानससे रामचन्द्रजीको मार डालनेकी इच्छा किये जाते हैं ॥ ५ ॥ परन्तु वह दशरथकुमार रामचन्द्रजी हमारे स्वामी सखा सब कुछ हैं अतएव तुम सब लोग उनके प्रयोजनके लिये कवच व हथियार बांधकर गंगाकी कछाडमें तैयार रहो ॥ ६ ॥ हमारे आधीनके दास लोग सबही गंगाजीके घाटोंको रखाते रहो और फल मूल मांस भक्षण करते रहकर बलवान हो क्षण मात्रकोभी कोई यहांसे न हटै ॥ ७ ॥ पांचसौ वहने योग्य नावें यहां लगाई जांय और उन एक २ नावपर सौ सौ कैवर्त्त और सौ सौ लडाके वरुत्रादि पहन पान कर तैयार इस जगह

पर बैठ रहैं ॥ ८ ॥ भरतजी यदि रामचन्द्रजीसे वैर न रख कर उनसे प्रसन्न होंगे तबही उनकी यह सेना आज कुशलपूर्वक गंगा पार जायगी नहीं तो नहीं ॥ ९ ॥ अपने नौकर चाकरोंको यह आज्ञा दे निषादपति गुह मछलियां, मांस, और शहद यह भेंट लेकर भरतजीके पासको चला ॥ १० ॥ प्रतापशाली समयके जानने-वाले सुमंत्र जी निषादको आता हुआ देख कर बहुतही विनीतभावसे भरतजीसे बोले ॥ ११ ॥ अपनी बिरादरी वाले सहस्रों मनुष्योंके संग साधूत्तम यह वृद्ध गुह आपके भ्राता रामचन्द्रजीका सखाहै और विशेषतः यह वनका सबही वृत्तान्त जानता है ॥ १२ ॥ तिसीसे हे काकुत्स्थनन्दन ! यह निषादाधिपति गुह आपको देखताही चला आता है और निश्चय यह भी जानता होगा कि, रामचन्द्र, व लक्ष्मणजी कहां हैं ॥ १३ ॥ सुमंत्रजीके यह शुभ वचन श्रवण करकै भरतजीने कहा कि, किसी प्रकार शीघ्रही निषादपति हमको देखे, उसको विना रोके टोके हमारे पास आने दो ॥ १४ ॥ तदनन्तर गुह भरतजीकी आज्ञा पाकर परम सन्तुष्ट और अपनी जाति बिरादरीवाले लोगोंके साथ भरतजीके समीप जाकर उनको शिर नवाय हाथ जोडकर बोला ॥ १५ ॥ आपने यहां आगमन करनेके पहले अपने दासोंको कोई आज्ञा नहीं पठाई इससे हम लोगोंको अपने अनुग्रहसे आपने वंचित किया जो हो इस समय सब राज्य आपके निवेदन है आप मुझे अपना दास समझ कर मेरे घर वस मुझे पवित्र कीजिये ॥ १६ ॥ इस समय निषादगणोंद्वारा अपने हाथसे लाई यह कंद मूल फल सूखा गीला मांस इसके सिवाय वनकी नानाप्रकारकी छोटी बडी चीज वस्तुओंके ग्रहण करनेकी आज्ञा होजाय ॥ १७ ॥ मेरे मनमें एक यही बडी भारी अभिलाष है कि, सब सेना मेरे घरमें आजरात भोजन करकै टिकै और आपभी आज मुझ करकै भलीभांति विविध काम वस्तुओंद्वारा पूजे जाकर कल यात्रा कीजिये ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० भाषायां चतुरशीतितमः सर्गः ॥८४॥

पंचाशीतितमः सर्गः ८५.

जब निषादराजा गुहने इसप्रकार कहा तौ परम प्राज्ञ भरतजी हेतुयुक्त और अर्थसंगत वचनोंसे उत्तर देतेहुये ॥ १ ॥ हे गुह मित्र ! इस समय हमारी सेनाकी विशेष पहुनई करनेको जो तुमने अभिलाष कीहै और हमारे गुरु रामचन्द्रजीकी

सेवाभी कर चुकेहो सो बस इन दोनों बातोंसेही हमारा भलीभाँति सत्कार होगया॥ ॥ २ ॥ परम तेजस्वी श्रीमान् भरतजी इसप्रकार श्रेष्ठ वचनोंके द्वारा गुहसे संभाषणकर मार्गजाननेको फिर उससे बोले ॥ ३ ॥ गंगाजीके जलसे व्याप्त हुआ यह देश सहजसे प्रवेश करने वा उतरनेके योग्य नहीं है, अतएव किस रास्तेसे कितने दिनोंमें यहांसे भरद्वाजजीके आश्रममें हम पहुँचैंगे ॥ ४ ॥ धीमान् राजकुमार भरत जीके यह वचन सुनकर सब दुर्गम स्थानोंके कर्मका जाननेवाला गुह हाथ जोडकर भरतजीसे बोला ॥ ५ ॥ हे महाबलवान्! राजकुमार ! देशमें वहां क्याहै इसके विषयमें भलीभांति जान रखनेवाले दास लोग भलीभांति विवादरहित होकर साथ चलेंगे और मैंभी आपके संग चलूंगा ॥ ६ ॥ मैं इस समय यह जानना चाहताहूं कि, आप पुण्य कर्म करनेवाले रामचंद्रजीके साथ कुछ खोटे अभिप्रायसे तो नहीं जाते ? आपकी यह बडी भारी सेना देखकर मेरे मनमें अत्यन्त शंका होती है॥ ॥ ७ ॥ गुहके इसप्रकार कहनेपर आकाशकी समान निर्मल स्वभाव भरतजी निषादसे मधुर वचन बोले ॥ ८ ॥ रामचंद्रजी हमारे बडे भाई और पिताके समान हैं अतएव तुमको हमारे प्रति किसी प्रकारका सन्देह न करना चाहिये भगवान् हमसे कभी रघुनंदन रामचंद्रजीका अनहित न करावे ॥ ९ ॥ हे गुह ! हम सत्य कहतेहैं कि, हम वनवासी काकुत्स्थनंदन रामचंद्रजीको वनसे लौटानेके लिये ही जातेहैं सो हमारे ऊपर और किसी भांतिकी शंका तुम मतकरो ॥ १० ॥ भरतजी से यह वार्त्ता सुनकर गुहका वदन प्रफुल्ल होगया वह हर्षितहो फिर भरतजीसे बोला ॥ ११ ॥ कि, हे महाराज! आपही धन्यहैं मुझे पृथ्वीमें आपकी समान कोई दूसरा दृष्टि नहीं आता क्योंकि आप अयत्नसे प्राप्त हुये राज्यको त्याग करनेके लिये तैयार हुएहैं ॥ १२ ॥ और आपने जो वनवासी रामचन्द्रजीको फिर लौटा लानेकी इच्छा कीहै उससे निश्चयही आपकी अकीर्ति क्षय होकर सब लोकोंमें यश फैल जायगा ॥ १३ ॥ गुह और भरतजीमें इस प्रकार की वार्त्ता होते २ सूर्यकी प्रभा नष्ट होगई और रात्रि हो आई ॥ १४ ॥ तब सेनाको जिस २ वस्तुकी आवश्यकताथी सब गुहने मँगादिया और सब सेना सन्तुष्ट हो ठौर २ पर सोई व भरतजीभी शत्रुघ्नजीके साथ एक आसन पर विराजे ॥ १५॥ उस समय दुःखके न सहने योग्य धर्म विरत महात्मा भरतजीको चिन्ता करते २ ऐसा शोक उत्पन्न हुआ कि, वह वर्णन नहीं हो सकता॥ १६॥ खोडलवाला अग्नि जिस प्रकार दावानल से सताये हुये

वृक्षको दग्ध करताहै वैसेही भरतजी उस शोकानलसे भीतरेही भीतर जलने लगे ॥ ॥ १७॥ सूर्यकी किरणोंसे गरम होने पर हिमालयसे जिस प्रकार बर्फ गल कर गिरताहै वैसेही भरतजीके सब अंगोंसे उत्पन्न हुआ पसीना निकलने लगा॥ १८॥ उस समय भरतजी बडे भारी दुःखके पर्वतसे दबसे गये जिस शोक पर्वतमें रामचं-द्रजीका उत्कंठापूर्वक ध्यान वही मानों छिद्र रहित शिला है, वारंवार लम्बे २ श्वास लेना वही गेरू आदि धातुहैं, दीनता जो है वही वृक्षोंके समूहहैं बडा भारी शोकका फैलाव वही मानों कँगूराहे ॥ १९ ॥ भारी मोह वही अनन्त जीव शोकसे संताप वही औषधि और वासहै इस भांतिके शोकरूपी पहाडसे भरतजी दब गये ॥ २० ॥ इस प्रकार बडी भारी आपदामें भरतजी फँसे उनकी चेतना जाने लगी और मन अत्यन्त व्याकुल हो गया दीर्घ श्वास लेने लगे, और भीतरे अन्तरमें उनके दाह होने लगा, वह झुंडसे बिछुडे हुये बैलकी भांति किसी प्रकारसे भी शांति नहीं पासके ॥ २१ ॥ इस गुहसे समय मिले महानुभाव भरतजी परिवार सहित एकाग्र चित्तसे बडे भाई रामचन्द्रजीकी चिन्ता करते हुए बहुत दुःखित हुए तब निषादराज गुहने उनको बहुत समझाया बुझाया ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि०अयोध्याकांडे भाषायां पंचाशीतितमः सर्गः ॥८५॥

षडशीतितमः सर्गः ८६.

अनन्तर गहन वनवासी गुह अमितगुणशाली भरतजीसे रामचन्द्रजीके प्रति महात्मा लक्ष्मणजीका जो सद्भाव था वह कहने लगा ॥ १ ॥ कि, रामचन्द्रजीने जब शयन किया तब गुणवान् लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीकी रक्षाके लिये धनुष पर रोदेको चढाय वीरासन मारकर बैठे तब मैंने उनसे कहा ॥ २ ॥ तात रघुनंदन ! आपके लिये यह सुखकी देनेवाली सेज तैयार की गई है आप सुखसहित इस पर सो जाइये, और रामचन्द्रजीके लिये कुछ शंका न कीजिये, और शोक व चिन्ता का त्याग कर दीजिये ॥ ३ ॥ साधारण मनुष्यही इस दुःखोंके भोगने योग्य हैं, परन्तु आप सब प्रकारसे सुख पानेके लायक हैं अतएव हे धर्मात्मन् ! आप सो-इये हमही लोग रामचन्द्रजीकी रक्षाके लिये जागते रहेंगे॥ ४॥ अथवा आपके आगे मैं सत्यही सत्य कहताहूं कि, रामचन्द्रजीसे अधिक प्रियतम हमारा पृथ्वीपर और कोई नहीं है इसमें कुछ शंका न कीजिये और बेखटके सो जाइये ॥ ५ ॥ राम-

चन्द्रजीके प्रसादसे मैं इस लोकमें विपुल यश व धर्म, अर्थ, और कामके प्राप्त होने की आशा करताहूं ॥ ६ ॥ अतएव मैं जाति बिरादरीवालोंके साथ धनुष बाण धारण करके सीताजीके सहित निद्रित प्रिय सखा रामचन्द्रजीकी रक्षा करूंगा ॥ ॥ ७ ॥ मैं सदा इस वनमें घूमा करताहूं, बस यहां कोई बात ऐसी नहीं है जो मुझको मालूम नहो. और इसके अतिरिक्त चतुरंगिनी सेनाका वेगभी हम सहन कर सकतेहैं ॥ ८ ॥ जब इस प्रकारसे मैंने कहा तब धर्ममें निष्ठा किये हुये महात्मा लक्ष्मणजी हम सबको विनीत भावसे यह सिखाने लगे ॥ ९ ॥ दशरथनंदन रामचन्द्रजी तो देवी सीताजीके साहित पृथ्वीपर सो रहेहैं तब भला फिर हम किस प्रकारसे इस सेज पर सोवें प्राणोंके सुख देनेवाले सब सुखोंको कैसे भोग सकैं ॥ ॥ १० ॥ समस्त देव, दानव युद्धम जिनका पराक्रम नहीं सह सकते, हे गुह ! देखो वही रामचन्द्रजी आज सीताजीके साथ तृणोंकी साथरि पर सोयेहैं ॥ ११ ॥ यह रामचन्द्रजीही राजा दशरथजीके समान सब लक्षणयुक्त एक मात्र पुत्रहैं जिनको कि, महाराजने अनेक भांतिके परिश्रम और बडी तपस्या करकै पायाहै अतएव इन रामचन्द्रजीके वनवासी होनेसे राजा दशरथ और अधिक दिन नहीं जियेंगे, पृथ्वी शीघ्रही विधवा होगी ॥ १२ ॥ १३ ॥ आज राजाकी स्त्रियें सारे दिन ऊंचे स्वरसे रोय २ अब थमकर चुप बैठी होंगी निश्चयही सब राजभवन आज एक बारही निःशब्द होगा ॥ १४ ॥ फलतः कौशल्या, राजा व हमारी माता सुमित्रा इन तीनोंकी इस रात्रिमें बच जानेकी किसी प्रकार आशा नहीं कीजाती यह अवश्यही मृतक होगये होंगे ॥ १५ ॥ अथवा यदि जीतेभी रहें तो केवल इसी रात्रि तक अधिक नहीं, वा हमारी माता देवी सुमित्रा शत्रुघ्नका मुख देखकर जीसकती हैं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि, वीरजननी देवी कौसल्याजी इस प्रकार दुःख की अवस्थामें प्राण त्याग कर देंगी ॥ १६ ॥ पिताजी रामचंद्रजीको राज्य देनेका मनोरथ करके फिर एकबारही उस मनोरथको पूरा नहीं करने पाये अतएव श्रीरामचंद्रजीको राज्याभिषेक न देसकनेसे निश्चयही मर जांयगे ॥ १७ ॥ इस भांति समय उपस्थित होनेपर जब कि, पिताजी परलोकमें गमन करैंगे उस समय जो उनके समस्त प्रेत कार्य करैंगे वही लोग भाग्यवान पुरुषहैं ॥ १८ ॥ अहो ! पिताजीकी राजधानीमें अयोध्या रमणीय चौराहों करके युक्त, बडे २ मार्गोंमें विभक्त धवरहर व अटारियों और सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित ॥ १९ ॥ हाथी, घोडे और रथों-

से परिपूर्ण विविध भांतिके तुरही भेरी इत्यादि बाजोंसे शब्दायमान सब कल्याणोंसे परिपूर्ण सदाही हृष्ट पुष्ट जनोंसे व्याप्त ॥ २० ॥ और फूल वाटिका उपवन जहां विद्यमान, सभायें व उत्सवोंसे शोभित ऐसी पुरीमें जो लोग विचरण करेंगे वही धन्यहैं और यथार्थमें सुखीहैं ॥ २१ ॥ हे गह! चौदह वर्षके अन्तमें इस व्रतको पालनकर क्या हमभी सत्यप्रतिज्ञ रामचंद्रजीके सहित कुशलपूर्वक अयोध्यापुरीमें सुखसे प्रवेश करेंगे ॥ २२ ॥ राजकुमार महात्मा लक्ष्मणजी धनुष बाण हाथमें लिये खडे रहे और इसप्रकारसे विलाप करते व खडेही खडे सबेरा होगया ॥ २३ ॥ प्रातःकाल निर्मल सूर्य नारायणका उदय हुआ इनही भागीरथीजीके किनारे दोनों भाइयोंने जटा बनाई फिर हमने नावपर चढाय सुख सहित उनको गंगाके पार उतार दिया ॥ २४ ॥ उस समय हस्तियूथ सदृश महाबलवान् तेजस्वी शत्रुओंके दमन करने वाले राम लक्ष्मणजी कुछ देर दान करके जटा व चीर बल्कल धार श्रेष्ठ तरकस और धनुष ग्रहण करके सीताजीके सहित मेरी ओरको देखते हुए चलेगये॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां षडशीतितमः सर्गः ॥८६॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७.

भरतजी गुहके यह महाअप्रिय वचन कि, लक्ष्मणजीने इसप्रकार विलाप कियाथा, सुनकर वहांपर रामचंद्र रघुनंदनजीका ध्यान करने लगे ॥ १ ॥ जिन भरतजीके भुज युगल अतिविशाल कंधे केहरीके समान ऊंचे दोनों नेत्र कमलदलके समान बडे २ जो बहुतही धैर्यवान सुकुमार युवा अवस्थाको प्राप्त व अतिप्रिय दर्शनथे ॥ २ ॥ यह वार्त्ता सुनतेही उनका मन बहुतही व्याकल होगया; फिर एक मुहूर्त्तके पीछे वह कुछ धीरज धरते हुए, तदनन्तर फिर व्याकुल होकर मूर्च्छित होगये जिस प्रकार हाथीके हृदयमें अंकुश विंध जावे और वह व्याकुल होकर गिर पडताहै ॥ ३ ॥ भरतजीको मूर्च्छित देखकर निषादराजका वदन मलीन होगया और वह इस प्रकारसे व्यथित हुए कि, जैसे भूमिकंप होनेसे वृक्ष कांपताहै ॥४॥ निकटही बैठे हुए शत्रुघ्नजीभी उस अवस्थाको प्राप्त हुए भरतजीसे मिलकर बडे २ जोरसे शोकाच्छन्न और चेतनारहित होकर रुदन करने लगे ॥ ५ ॥ यह देखकर भरतजीकी सब मातायें वहां चलीं आईं वह उपवाससे और पतिके वियोगसे बहुतही दुर्बल होरहीं और बहुतही दीनथीं ॥ ६ ॥ सब वहां आईं जहां भरतजी

पृथ्वीपर पडेथे और उनको चारों ओरसे घेर रोने लगीं कौसल्याजीने बनाय निकट आकर अधिक व्याकुल चित्तहो भरतजीको उठाय हृदयसे लगा लिया ॥ ७ ॥ अनन्तर वह पुत्रवत्सला तपस्विनी कौशल्याजी अपनेही पुत्रकी समान भरतजीको हृदयसे लगाती हुई और शोक करती हुई रोय २ उनसे पूछने लगीं ॥८॥ बेटा ! कोई रोग तो तुम्हारे शरीरको दुःख नहीं देता? हाय! इस राजकुलका अब कोई नहीं रहा ! इस समय तुमही इसके एक जीवनमें सहारेहो ॥ ९ ॥ भैया रामचंद्र भ्राताके सहित इस समय वनको गयेहैं राजा स्वर्गको सिधारे अब हम केवल तुम्हाराही मुख देखकर जी रहींहैं सो तुम्हारे सिवाय कोई इस समय दूसरा ऐसा नहींहै जो हमारी सबकी रक्षा करे ॥ १० ॥ बेटा लक्ष्मणजीकी तो कोई अप्रिय वार्त्ता नहीं सुनी ? अथवा हमारे जो एक पुत्रके अतिरिक्त दूसरा नहींहै और वहभी स्त्रीसहित वनको गये उनकी तो कोई अमंगल वार्त्ता नहीं सुनी ॥ ११ ॥ परम यशस्वीन भरतजी एक मुहूर्त्तमें चेतना पाकर रोय २ कौशल्याजीको समझाने बुझाने लगे और निषादसे बोले ॥ १२ ॥ हे गुह ! हमारे भैया रामचंद्रजीने कहां रात्रि बिताईथी और क्या भोजन करके किस आसनपर सोयेथे ! सीता और लक्ष्मण कहांथे ? यह सब हमसे कहो ॥ १३ ॥ निषादराज गुहने रामचंद्रजी सरीखे प्रिय व उपकारी अतिथिके प्रति कैसा व्यवहार कियाथा उसको निषाद गुह हर्ष सहित वर्णन करनेलगा और बोला ॥ १४ ॥ कि, रामचंद्रजीके भोजन करनेके लिये अनेक प्रकारके अन्न, खाने योग्य खट्टे, तीखे, मीठे सब प्रकारके फल मैं लायाथा ॥ १५ ॥ सत्य पराक्रम रामचंद्रजीने मुझपर अनुग्रह करनेके लिये सब चीज वचन मात्रसे ग्रहण करली पर इस धर्मके अनुसार कि, क्षत्रिय किसी की, दी हुई चीज नहीं लेते वह सब चीज वस्तु मुझकोही फेरदी ॥ १६ ॥ और मुझसे यह कहा–सखे ! हम क्षत्रियहैं यह हमारा धर्महै कि, सदा सबको सब कुछ देते रहें न कि, लें। यह कहकर उन महात्माने हम सबके ऊपर अनुग्रह किया ॥ १७ ॥ अनन्तर महात्मा लक्ष्मणजीने जल लादिया, सीताजीके सहित उसकोही पीकर श्रीरामचंद्रजी उपवास करके रहगये; उस दिन कुछ भोजन न किया ॥ १८ ॥ फिर उससे बचा कुचा जल लक्ष्मणजीने पीलिया और उसकोही पीकर फिर तीनों जनोंने चित्त स्थिर करके मौनहो इसी स्थानपर संध्यावंदनकिया (तीसरा सुमंत्रथा) ॥ १९ ॥ जब संध्या वंदन होचुका तब लक्ष्मणजी अपनेहाथसे कुश काटकर लेआये और बहुत शीघ्र रामचंद्रजीके शयन

करनेके लिये एक सुन्दर आसन बना दिया॥ २०॥ जब रामचंद्रजीने सीताके सहित इस आसनपर शयन किया तब लक्ष्मण उन दोनोंके चरण पखारकर वहांसे कुछ दूर चले आये ॥ २१॥ यही इंगुदीका पेडहै यह वही तृण पडेहैं रामचंद्र और सीताजी दोना जनोंने उस रात्रिको यहीं पर शयन करके रात्रि बिताईथी ॥ २२ ॥ उस रात्रिको शत्रुओंके दमन करनेवाले लक्ष्मणजी नियमानुसार पीठपर तीरोंसे भरा हुआ तरकस लगाये हथेली उँगलियोंमें गुस्ताना व अंगुलित्राण पहरे और हाथमें गुण युक्त बडा धनुष धारण किये, रामचंद्रजीके चारों ओर देखते हुए घूमते रहे ॥२३॥ मैंभी श्रेष्ठ धनुष धारण करके आलस्यहीन धनुषकी धारण करनेवाली अपनी बिरादरीके संग उन इन्द्रतुल्य रामचंद्रजीकी रक्षा करता हुआ लक्ष्मणजीके निकट था ॥२४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां सप्ताशीतितमः सर्गः ॥८७॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८.

भरतजी मंत्रियोंके संग एक चित्तसे यह सब वचन सुनकर इंगुदी पेडके तले गये, और रामचंद्रजीके शयन करनेकी शय्याको देखा ॥१॥ और सब माताओंसे बोले महात्मा रामचंद्रजीने रात्रिको इसीभूमिमें शयनकियाथा यह कुश उन्हींके बिछौनेके हैं देखो शरीरसे विमर्दित हुएहैं ॥ २ ॥ जो कि, महाराजाधिराजके वंशमें परम भाग्यवान् दशरथजीके पुत्र होकर इस पृथ्वीपर उन्होंने शयन किया सो यह बहुतही अनुचित हुआ ॥ ३ ॥ हाय ! पुरुषश्रेष्ठ रामचंद्रजीने सदाही राजाओंके योग्य अति कोमल मृगादि चर्मोंके बिछौनोंपर शयन कियाहै इस समय वह किस प्रकार भूमिपर सोते होंगे ॥ ४ ॥ व जो श्रीरामचंद्र धवरहरोंके ऊपर विमानोंपर कूटागारोंमें जहांपर कि, सुवर्ण चांदी और पृथ्वीके विकारसे बने हुए पलँग उत्तम बिछौनों करके युक्त बिछे रहते उन पर वह सोते ॥५॥ जो फूल चुनकर लगानेसे चित्र विचित्र होजाते चंदनादि सुगन्धित वस्तु उनपर धरी हुई जो कि, सफेद उजले बादलकी समान सब सोनेका सामान होताथा उस स्थानपर तोता मैना आदि शुभ पक्षी बोलते ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारकी सुगन्धों और गीत ध्वनिसे परिपूर्ण जिनकी सब दीवारोंपर सोना मढा और मेरु पर्वतके समान ऊंचे अति उत्तम धवरहरोंपर जिन्होंने सदा रात्रिको शयन कियाहै ॥ ७ ॥ इस समय ऐसे रामचन्द्रजी किस प्रकार भूमिपर शयन करते होंगे ? जो इन धवरहरोंपर शयन करकै भोरही गाने

बजानें, व उत्तम २ भूषणोंके शब्दसे और मृदंग इत्यादि बाजोंके शब्दसे जगाये जाते तौ उनके शब्दको सुनके नींदको छोड देतेथे ॥ ८ ॥ और यथा समयमें बहुतसे बंदी, मागध, सूत, आय २ उनकी अनुरूप कथाओंको गाय गाय स्तुतियोंसे रामचंन्द्रजीको आनन्दित करतेथे॥ ९ ॥ इस समय उन्होंने सब वस्तुओंसे अलग होकर किसप्रकार भूमिमें शयन किया, यह बात तो श्रद्धा रहित और असत्यभी प्रतीत होतीहै इस विषयमें हमारा मन मोहितहै, ऐसा जान पडताहै कि, मानों हम स्वप्न देख रहेहैं॥ १० ॥ अब समझ पडा कि, कालसे अधिक बलवान न कोई देवताहै न भाग्यहै, नहीं तो श्रीरामचन्द्रजी महाराज दशरथजीके पुत्र होकरभी क्यों पृथ्वीपर शयन करते ? ॥ ११ ॥ और जो विदेहराजा जनकजीकी कन्या और साक्षात् राजा दशरथजीकी प्रणयपात्री पुत्रवधू, हाय उन प्रियदर्शन सीताजीकोभी कालके प्रभावसे पृथ्वीमें शयन करना पडा ॥ १२ ॥ भ्राता रामचन्द्रजीकी यह सेजहै, देखो जैसे २ उन्होंने करवटै लीहैं वैसेही कडी भूमिमें बिछनेसे तृण उनके शरीरसे दबनेके कारण कचलगयेहैं ॥ १३ ॥ ऐसा विदित होताहै कि, कल्याणी सीताजीभी सब गहने पहरे पहरायेही उस सेजपर सोगईहैं, क्योंकि यहां सबही जगह उनके गहनोंसे टटकर सुवर्णके बिंदु गिरेहै ॥ १४ ॥ ऐसा ज्ञात होताहै कि, जहांपर जानकीजीने अपनी सारी धरदीथी क्योंकि रेशमके तार कुशोंमें लगे हुये शोभा पाय रहेहैं ॥ १५ ॥ हमभी जानतेहैं कि, स्वामी रामचन्द्रजीकी सेज सब प्रकार सीताजीको सुखद हुईहै, कारण कि, जिसके प्राप्त होनेसे सुकुमारीभी सीताजीको बालकपनमें तपस्या करनेसे विदेशके दुःख नहीं जान पडते ॥ १६ ॥ हाय ! हम जीतेही जी मारे गये हाय ! हम कैसे निर्लज्जहैं हमारेही कारण रघुनंदन रामचन्द्रजी अपनी भार्या सहित अनाथकी भांति इस प्रकारकी सेजपर सोये ॥ १७ ॥ हाय ! जिन्होंने सार्वभौमचक्रवर्ती दिलीप रघु, अज, दशरथ आदिके कुलमें जन्म लिया सब लोकोंके सुखदाई सबके प्रिय करनेवाले उत्तम और प्यारे वे रामचन्द्र राज्यको छोड ॥ १८ ॥ जिनका शरीर कमलवत् श्यामवर्ण लोचन युगल रक्त वर्ण, देखनेमें जो अति मनोहर जिन्होंने सदाही सुख भोगाहै, जो कभी दुःख पानेके योग्य नहीहैं इससमय भूमिमें शयन करतेहैं॥ १९ ॥ इससे अधिक हमारे दुर्भाग्य और दुःखका विषय क्या होगा ? अनेक प्रकारके शुभ लक्षणयुक्त महाबाहु श्रीलक्ष्मणजीही धन्यहैं जिन्होंने विपत्तिके समयमें भ्राता रामचन्द्रजीका साथ दिया क्योंकि विपत्तमें कोई किसीका नहीं होता ॥ २० ॥ और

जानकीजीभी स्वामीके साथ वनको जाकर निश्चयही सफलमनोरथा हुईहैं; हमही केवल उन महात्मा करके हीन होकर संशयकी दशामें पतित हुए ॥ २१ ॥ इस समय राजा दशरथजीके स्वर्ग सिधारने और रामचन्द्रजीके वन चले जानेसे समस्त पृथ्वी हमको मांझी विन नावकी समान जान पडतीहै ॥ २२ ॥ रामचन्द्रजी महाराज वनको चले गयेहैं तथापि यह पृथ्वी उनकेही भुजबलसे रक्षित होनेके कारण कोई मनमेंभी उसके लेनेकी इच्छा नहीं कर सकता फिर भला हम असमर्थ इसको किसप्रकार पालन कर सकतेहैं न हम इसको ग्रहण करना चाहैं ॥ २३ ॥ यद्यपि इस समय अयोध्याके कोटकी कोई रक्षा नहीं करता, हाथी, घोडे सब जहां तहां फिरतेहैं कोई बांधनेवाला नहीं पुरके फाटकभी खुले पडेहैं ॥ २४ ॥ जो कुछ सेना अयोध्यापुरीमें है वोहं हर्ष रहित है उसे रक्षा करनेकी कुछ सुधि नहीं इसीसे न्यूनसी विदित होतीहै और लोग सब दुःखीहैं इसीकारण बाहरसे कोई रक्षा नहीं करता तथापि रामचन्द्रके प्रतापसे शत्रु लोग ऐसा डरतेहैं जैसे कोई विषैले भोजनसे डरताहो ॥ २५ ॥ अब आजसे हमभी फल मूलही खायँगे व जटा चीरादि धारणकर तृण बिछाय भूमिमें सोवेंगे ॥ २६ ॥ रामचन्द्रजीको लौटाय वनमें बसेंगे क्योंकि जो समय वनवास करनेको बाकीहै उसे हम पूरा करैंगे जिससे चौदह वर्ष वनमें वास करनेकी प्रतिज्ञा जो वडे भाईने कीहै वह मिथ्या नहो ॥ २७ ॥ हमारे वनवासी होनेपर शत्रुघ्नजी हमारे संग रहैंगे, और श्रीआर्य रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित अयोध्याका पालन करैंगे ॥ २८ ॥ ब्राह्मण लोग इन काकुत्स्थनंदन रामचंद्रजीको अयोध्याके राज्यपर अभिषिक्त करैंगे; देवताओंसे हमारी यहां प्रार्थनाहै कि, वह हमारे इस मनोरथको सफल करें ॥ २९ ॥ चरणोंपर शिर धर मनाने समझाने और अनेक भांतिसे प्रसन्न करनेपरभी यदि महाराज रामचंद्रजी पिताकी आज्ञाको नहीं त्यागकर अयोध्यामें न लौटैंगे तव हम उनके संग वनकोही चले जाँयगे जब हम आरत वचन कहैंगे तव हमें रामचन्द्रजी कदापि त्याग नहीं कर सकेंगे ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अ० भाषायां अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ८९.

रघुकुलोत्पन्न महात्मा भरतजी उसी स्थानपर वह रात्रि बिताकर प्रातःकालही उठ शत्रुघ्नजीसे यह बोले ॥ १ ॥ शत्रुघ्न ! उठो, प्रभात होगया अब क्यों शयन कर

रहे हो ? तुम्हारा कल्याणहो तुम शीघ्रतासे निषाद राजगुहको यहां बुलालाओ जिससे कि, वह शीघ्र सैनाको पार उतार देंगे ॥ २ ॥ जब भरतजीने इसप्रकार आज्ञा की तब शत्रुघ्नजी बोले हम सोये नहीहैं निरन्तर आर्य रामचन्द्रजीकी चिन्तना करते हुए आपहीकी समान जागते पडे रहेहैं ॥ ३ ॥ नरसिंह भरत और शत्रुघ्नजी इस प्रकार परस्पर वार्त्तालाप कररहेथे । कि, इतनेमें निषादराज गुह वहां आया और हाथ जोडकर बोला ॥ ४ ॥ हे काकुत्स्थ ! आपने रात्रिमें श्रीगंगाजीके किनारे सुखसे तो वास किया ? और सेनासहित आप लोगोंको कोई क्लेशतो नहीं हुआ ॥ ॥ ५ ॥ यह गुहके स्नेह वशके उच्चारण किये हुए वचन सुनकर रामके वश हुये भरतजीभी वैसेही स्नेह साने वचन बोले ॥ ६ ॥ हे बुद्धिमान् ! रात्रि सुखसे बीतं गई और तुमने हमारा भली भांतिसे आदर सत्कार किया अब अपने दास केवटोंको आज्ञादो कि, बहुत सारी नावोंपर चढाकर शीघ्र हमारी सेनाको गंगापार उतारदे ॥ ॥ ७ ॥ भरतजीके ऐसे वचन सुनकर गुहने बडी शीघ्रतासे नगरमें प्रवेश किया और वहां जाकर अपनी बिरादरीके लोगोंसे कहा ॥ ८ ॥ अरे भाइयो ! उठो जागो सदा तुम्हारा मंगलहो; बहुतसी नावें किनारेपर ले आओ आज भरतजीकी सेनाको गंगाजीके पार उतारना होगा ॥ ९ ॥ जब उन लोगोंने भरतजीकी ऐसी आज्ञा पाई तो राजाकी आज्ञाको मानकर जल्दी उठे और चारों ओरसे ५०० नावें खैंच उतारू घाटपर लगादी ॥ १० ॥ और राजाओंके बैठने योग्य स्वस्तिक नामकभी नौका कई एक लाईं गईं। यह सब नावें सुवर्णके रंगे चित्र विचित्र समूह द्वारा अतिशय शोभायमानथीं; सैकडों टुंडे जिनपर लगे हुए और मल्लाहभी जिनपर अनेको बैठेथे जिनपर मजबूत वर्द्धमान लगे हुएथे झंडियां बँधरहीं थीं उनमें बडे २ घंटे लगेथे ॥ ११ ॥ अनन्तर निषादराज गुह स्वयं एक स्वस्तिकनाम निराली राजनौका ले आया यह नाव सब भांतिसे रक्षितथी उसपर पीले दुशाले इत्यादिक ऊनी वस्त्र मढे हुएथे इसके ऊपर निरन्तर मंगलके बाजोंका शब्द होता रहताथा ॥ ॥ १२ ॥ महाबलवान् भरतजी, शत्रुघ्नजी, कौशल्याजी, सुमित्राजी, व और दूसरी जो राजा दशरथजीकी रानियेंथीं सब उस नावपर चढीं ॥ १३ ॥ गुरु पुरोहित और ब्राह्मण गणतो पहलेही चढ चुकेथे। अनन्तर नौकर चाकरों सहित राजपरिवार छकडे फिर बाजारकी सामग्री जो थी व यह सब चीजें चढाई गईं ॥ १४ ॥ चलनेके समय वस्तु देखने भालनेके लिये मसालचियोंका शब्द व गंगाजीमें स्नान

करनेवालोंका कुलाहल ऐसा हुआ कि, अन्तरिक्षतक जा पहुँचा ॥ १५ ॥ नावोंमें ऐसे वर्द्धमान लगाये गयेथे कि, यद्यपि एक एकपै सौ सौ खेनेवाले बैठेथे पर चढे हुए लोगोंको वे आप उडाये हुए लिये जातीथी ऐसी जल्दी जातीथी कि, खेनेकी आवश्यकता नहींथी ॥ १६ ॥ कोई २ नाव तो स्त्रियोंहीसे भरीथी कोई कोई घोडोंसे किसी २ पै रथ पालकी तामजामादि सवारियोंके लेचलनेवाले घोडे, बैल आदि चढेथे और धन लदाथा ॥ १७ ॥ धीरे २ वह सब नावें दूसरी पार पहुँचगई और आरोहियोंको उतारनेमें लगीं और उतार कर लौटीं गुहबन्धु मल्लाह लोग वह सब नौका लेकर जलके बीच विविध भांतिके खेल करने लगे ॥ १८ ॥ इस समय हाथीवालोंने अपने २ हाथी जलमें उतरनेको पैठाये ध्वज भूषित सब हाथी पंख युक्त पर्वतकी समान शोभा विस्तार करकैं गंगाजीको पैरने लगे ॥ १९ ॥ कोई २ लोगतो नावपर चढ कर पार उतरे कोई २ बांस खैर आदिसे बनी कठनावों पर चढ पार गये कोई २ मटके घडे बांध बन्नइयोंपर उतरे और कोई २ अपने हाथों-सेही पैर गये ॥ २० ॥ मल्लाहों करकै गंगाजीके पार उतारी जाकर वह शोभायमान चतुरंगिणी सेना सूर्य उदय होनेके तीसरे मुहूर्त मैत्रेमें परम मनोहर प्रयागके वनको कूंच करती हुई ॥ २१ ॥ वहां पहुँच कर महात्मा भरतजीने सब सेनाको यथायोग्य आदरपूर्वक वहां टिकाया जिसको जहां सुभीता हुआ वह वहीं टिकरहा फिर भरतजी ऋषिवर भरद्वाजजीकी दर्शन कामनासे मंत्री पुरोहित और सभासदोंके संग उनके आश्रमकी ओर चले ॥ २२ ॥ फिर सब महानुभाव देवपुरोहित ब्रह्मपरायण और द्विजश्रेष्ठ भरद्वाजजीके आश्रमके निकट पहुँचकर रमणीय पर्ण कुटियें व सघन वृक्षोंसे शोभायमान बडे वनको देखतेहुए ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० बा० आदि० अयो० भाषायां एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ९०.

आश्रमके जीव जन्तुओंको किसी प्रकारका दुःख न पहुँचै इस कारण पुरुषोत्तम भरतजीने कोश भर पीछे सब सेनाको टिकाया, और आप मंत्रियोंके सहित भरद्वाजजीके दर्शन करनेको चले ॥ १ ॥ वह महात्मा भरतजी सब अस्त्र शस्त्र व

१ रौद्र सार्प मैत्र यौत्र वासवार्यक वैश्य ब्राह्म प्राज रौद्र अग्नि ऐन्द्र वरुण दन सायक यह पन्द्रह योगहैं ॥

बडे २ किमती वस्त्र जो पहररहेथे उनको उतार केवल रेशमीन वस्त्र पहरे पुरोहित वसिष्ठजीको आगे कर चले ॥ २ ॥ अनन्तर उन्होंने दूरसे भरद्वाजजीको देखा तब मंत्रियोंको भी वहीं छोड दिया और आप अकेले महामुनि वसिष्ठजीके पीछे २ जाने लगे ॥ ३ ॥ महातपस्वी मुनि भरद्वाजजीने वसिष्ठजीको देखतेही शिष्योंको अर्घ्य लानेकी आज्ञादी और आप आसनसे उठ खडे हुए ॥ ४ ॥ और आगे बढकर वसिष्ठजीसे मिले फिर भरतजीने भी उनको दंडवत् प्रणाम किया वसिष्ठजीके संग आये हुए भरतजीको महर्षि भरद्वाजजीने जानलिया कि, यह तेजवान् महाराज दशरथजीके पुत्रहैं ॥ ५ ॥ धर्मात्मा भरद्वाजजीने ही दोनोंको यथायोग्य, पाद्य, अर्घ्य, और विविध भांतिके फल देकर फिर उनसे कुशल मंगल पूछते हुए ॥ ६ ॥ अयोध्या, सेना, खजाना, मित्र, बांधव मंत्रिगण और पशु, पक्षी इन सबकी कुशल पूछी परन्तु राजा दशरथजीका मरना भरद्वाजजीने सुन लियाथा इसकारण उनके विषयमें कुछ नहीं पूछा ॥ ७ ॥ वसिष्ठजी भरद्वाजजीके तपकी शरीरकी, अग्नि, शिष्य, वृक्ष, मृग और कुटीके वासी पशु पक्षियोंकी कुशल पूछी ॥ ८ ॥ परम यशस्वी भरद्वाजजीनें भरतजीसे और वसिष्ठजीसे कहा कि, मैं सब भांति आनंद मंगलसे हूं, और फिर रामचंद्रजीके स्नेहके वशहो भरतजीसे कहने लगे ॥ ९ ॥ हमने तो यह सुनाथा कि तुम राजा हुए हो, अतएव यहां इस समय आनेकी तुमको कौन आवश्यकता हुई, सो हमसे सब कहो क्योंकि इस विषयका हमारे मनमें विश्वास नहीं होता ॥ १० ॥ देवी कौशल्याजीने शत्रुओंके दमन करनेवाले और सब जगत्के आनन्द बढानेवाले जिन रामचंद्रजीको प्रसव किया जो भ्राता और भार्या सहित वनको गयेहैं ॥ ११ ॥ जो महायशस्वी स्त्रीके वशमें पडे पिताकी यह आज्ञा कि, " चौदह वर्षके लिये वनको जाओ " उसके पालन करनेको वनमें गये और वहां वास करते हैं ॥ १२ ॥ उन निष्पाप रामचंद्रजीका राज्य अकंटक भोग करनक लिये, और लक्ष्मणजीके सहित उनका अनभल करनेके लिये तो इस समय तुम्हारा अभिलाष नहीं हुआहै ? ॥ १३ ॥ भरद्वाजजीके यह कहनेपर भरतजीने दुःखके वशहो आंसू भरे हुए नेत्र और गद्गद वाणीसे उत्तर दिया॥ १४॥ हे भगवन् ! आप सर्वज्ञ होकरभी यदि हमें इस प्रकारसे पाखंडी समझें तो हमारा जीवन और जन्म सबही वृथाहै हे महाराज ! हमसे यह उपस्थित विपद नहीं हुई और न इसको हमने कभी मनमें विचारा ॥ १५ ॥ अतएव हमें ऐसे दुःखदायी

वचन मत कहिये हमारे राज्याभिषेक और रामचंद्रजीके वनवासके विषयमें माता कैकेयीने जो कुछ राजासे कहाहै उसमें किसी प्रकारसे मेरी सम्मति नही और न उसमें हम किसी भांति संतुष्टहैं और न हम ऐसे वचनोंको अंगीकार करतेहैं॥ १६॥ इसी कारण हम उन पुरुषव्याघ्र रामचंद्रजीके प्रसन्न करने और उनके युगलचरण वंदन करनेको यहां आयेहैं और उनको अयोध्यामें लौटानेके लिये उनके निकट जातेहैं ॥ १७॥हे भगवन्! यही हमारा एक मात्र आशय जानकर आप प्रसन्न होवें और बतावें पृथ्वी नाथ रामचन्द्रजी इस समय कहां है ॥ १८॥ तिसके पीछे वसिष्ठादि ऋत्विक् लोगोंने भी प्रार्थनाकी तब भगवान् भरद्वाजजी प्रसन्न होकर भरतजीसे बोले॥ १९॥ हेपुरुषसिंह! सुप्रसिद्ध रघुकुलमें तुम्हारा जन्म हुआहै, तब गुरु सेवा शत्रुओंका दमन करना, व साधुओंके अनुगत होना यह तीन बातें तुममें होनी संभवहैं॥ २०॥तुम्हारा जो ऐसा मनोगत भावहै इसको मैं भलीभांति जानताहूं, तथापि बहुत पुरुषोंके सामने प्रगट होकर वह भाव औरभी दृढ होजावे, और उसके द्वारा तुम्हारी कीर्त्ति भी भलीभांति फैल जावे इस कारणसेही हमने तुमसे ऐसा पूछा ॥ २१ ॥ सीता और लक्ष्मण सहित धर्मके जाननेवाले श्रीरामचंद्रजीको हम जानतेहैं । वह तुम्हारे भाई इस समय महापर्वत चित्रकूटपर वास करतेहैं ॥ २२ ॥ हे इष्टप्रद धीमान्! कल वहां पर जाना, आज मंत्रियोंके सहित इसही हमारे आश्रमपर बसो तुमको हमारा यह कार्य अवश्य करना होगा अर्थात् यहां बसना होगा ॥ २३ ॥ तब उदारदर्शन प्रसिद्ध यशवाले राजकुमार भरतजीने "जो आज्ञा" यह कह कर उन का वचन विश्वाससे ग्रहण किया, और महर्षि भरद्वाजजीके यहां आश्रममें रात्रिको बसनेका विचार किया ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ९१.

कैकेयीकुमार भरतजीको जब इस प्रकार वहां रात्रिमें वास करने की मति हुई तब महर्षि भरद्वाजजीने अतिथि सत्कार करनेके लिये उनको न्योता दिया॥ १ ॥ तब भरतजीने उनसे कहा—हे भगवन्! वनमें जो अर्घ्य पाद्य होता है, आपने उससे ही हमारी उचित पहुनई करदी, अब इससे अधिक परिश्रम करनेकी क्या आवश्यकता है ॥ २ ॥ तब भरद्वाजजीने हँसते २ भरतजीसे कहा कि हम चाहतेहैं कि

तुमको प्रीतिसे कुछ थोडा भी दिया जावे तौ उससेही सन्तुष्ट हो जाते हो ॥ ३ ॥ तुम्हारी सब सेनाको भोजन कराने की मेरी इच्छा हुईहै हे नरेश्वर ! हम जिस प्रकारसे सन्तुष्ट होवैं तुमको वही कार्य करना चाहिये ॥ ४ ॥ हे पुरुषप्रवर ! तुम किस कारणसे सेनाको दूर टिकाकर अकेले हमारे आश्रम में आये सैनासहित यहां पर न आनेका कारण क्या है सो कहो ? ॥ ५ ॥ भरतजी हाथ जोडकर महर्षि भरद्वाजजीसे बोले कि, हे भगवन् ! आपके आश्रमको पीडा होगी इस कारण और आपके भयके मारे हम सेनासहित यहां नहीं आये ॥ ६ ॥ क्योंकि राजा या राजकुमारोंको सदा यही कर्त्तव्य है कि यत्न पूर्वक तपस्वियों के आश्रममें किसी प्रकार का उपद्रव न होने दें ॥ ७ ॥ भगवन् ! आपके आश्रममें अवश्य ही उपद्रव होता क्योंकि प्रधान २ घोडे, मनुष्य, मतवाले हाथी सब एक वार बहुतसे स्थानको घेर कर हमारे संग २ चलते हैं ॥ ८ ॥ वह आश्रमके वृक्षोंको तालावोंको भूमि और पर्णशाला इत्यादिको नष्ट न करदें, इस ही कारण उनको दूर रखकर हम आपके पास अकेले आयेहैं ॥९॥ तब महर्षि भरद्वाजजीने कहा कि सैनाको यहीं लेआओ भरतजीने यह आज्ञा पाकर सब सेनाको वहीं बुलाया॥ १० ॥ तब महर्षि भरद्वाजजीने अग्निशालामें जा यथाविधानसे जलपान द्वारा आचमन करकै पहुनई करनेके लिये यह कह कर विश्वकर्माको बुलाया ११ ॥ भरतजी की पहुनई करनेको हमारी इच्छा हुई है, इसी कारण हम सृष्टि शक्ति सम्पन्न त्वष्टा नाम विश्वकर्माको बुलाते हैं क्योंकि सेनासहित जो हमने भरतजीका निमंत्रण किया है सो वह उसके निर्वाह की सामग्री प्राप्त करैं ॥१२॥ हम अतिथि सत्कार की कामना करकै इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, इन चार लोकपालों को भी बुलाते हैं। वह आनकर यहां पहुनई उपयुक्त गृह आदि सब सामग्री ठीक करकै समुदाय सिद्धि विधान करैं ॥ १३ ॥ पृथ्वी और आकाशमें गंगाजीसे आदि लेकर जो सब टेढी बांकी और पूर्वको बहनेवाली नदियें हैं वह सबही इस समय यहां आवें ॥ १४ ॥ कोई २ मैरेय (मद्य विशेष) कोई २ सुन्दर बनी बनाई मदिरा, और कोई २ ऊखके रसकी समान मीठा और शीतल जल चुआवैं ॥ १५ ॥ देव, गन्धर्व, विश्वावसु, हाहा, हूहू, दिव्य अप्सरा और गन्धर्वपत्नी गण इन सब को भी हम बुलाते हैं ॥ १६ ॥ इनके सिवाय घृताची विश्वाची, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, नागदत्ता, हेमा, पर्वतवासिनी, सोमा, अद्रिकृतस्थलीका अप्सराओंका आवाहन करते हैं ॥ १७ ॥ फिर जो इन्द्रजीके निकट

रहकर उनकी सेवा करती हैं और जो ब्रह्माजीके पास रहकर शुश्रूषा सेवा किया करती हैं उन सब अच्छे २ वस्त्र आभूषण धारण करनेवाली कामिनियोंको तुम्बरू-नाम गन्धर्वके साथ हम आह्वान करते हैं ॥ १८ ॥ उत्तर कुरुमें जो कुबेरजीका चैत्ररथ नामक दिव्य वन है जिसके सब वृक्ष वस्त्राभूषणरूप पत्र और दिव्य स्त्रीरूप फल समूहसे भूषित हैं वह कुबेरजीका वन भी आज इस आश्रममें चला आवे ॥ ॥ १९ ॥ इनके सिवाय विविध भाँतिके भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्यादि व अनेक प्रकारके अन्न यहां आय भगवान् चन्द्रमाजी उत्पन्न करें ॥ २० ॥ व पेडोंसे चुए विचित्र सुमन, व सुरा आदि पीनेकी वस्तु विविध प्रकारका मांस ॥ २१ ॥ इस प्रकार समाधिद्वारा अद्वितीय तपस्याके प्रभावसे सुव्रत महर्षि भरद्वाजजीने उपयुक्त स्वर और ठीक २ वर्णोच्चारण करके सबका आह्वान किया ॥ २२ ॥ महर्षिजीने हाथ जोडकर पूर्वको मुखकर जब इस प्रकार मनही मनमें ध्यान किया तब ध्यानके करतेही एक २ करके सब देवताओंने आरंभ किया ॥ २३ ॥ तिस समय परमानंद देनेवाला सुखद समीर मलयाचल व दर्दुराचल नामक दो चन्दन पर्वतोंको स्पर्श करके गरमीका नाश करता हुआ यथा विधिसे मन्द २ चलने लगा ॥ २४ ॥ अनन्तर सब दिव्य मेघोंने विचित्र फूलोंकी वर्षा करनी आरंभ करदी सब दिशाओंसे देवताओंके नगाडोंके बजनेका शब्द सुनाई आने लगा ॥ २५ ॥ मनोहर हवाकी लहरें आने लगीं । अप्सरायें नाचने और देव गंधर्व गण संगीत करने लगे । वीणा यंत्र मधुर स्वरसे अपनी झंकार करके बज उठे ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे नाच गीतादि लय करके युक्त अने-क भांतिकी मनोहर ध्वनिसे स्वर्ग पृथ्वी और प्राणियोंके कर्णरंध्र पूर्ण होगये ॥ २७॥ मनुष्योंके श्रवणोंका सुख उपजानेवाला वैसा दिव्य शब्द जब होने लगा तब भरत जीकी सेनामें विश्वकर्माकी चतुराईका विधान कौशलको देखा ॥ २८ ॥ उन्हों-ने देखा कि वहां पृथ्वी चारों ओर पांचयोजन तक बराबर एकसी और नील वैडूर्य्य मणिकी समान प्रभायुक्त हरी २ घाससे ढक गई ॥ २९ ॥ उस पृथ्वीपर फल लगे हुए बेल, कैथ, कटहर, बिजौरा नींबू, व आमके वृक्ष फल युक्त शोभा पारहेहैं ॥ ३० ॥ उत्तरकुरु देशसे दिव्य उपभोग्य चैत्ररथवन और किनारों पर जिसके अनेक प्रकारके वृक्ष लगे हुए ऐसी मन हरण करने वाली एक सौम्यानाम नदी आई ॥ ३१ ॥ असंख्य सुन्दर श्वेतवर्णगृह, हस्तिशाला और अश्वशाला

वहां आई। बहुतसे चौमहले अतिसुन्दर महल आये जिनमें अनेक प्रकारकी अट रियें व धवरहर आदि बनेथे, शुभ तोरण युक्त ॥ ३२ ॥ श्वेत मेघ सन्निभ सुन्दर बंदनवार लगे हुए उजले फूलोंकी मालासे सुगन्धित दिव्य सुवासित पदाथ मिश्रित जलसे छिडके छिडकाय सैकडों राजमंदिर आये॥ ३३॥ जिनमें चौकोने अति विशाल सोने उठने बैठने आदिके स्थान बने, अनेक प्रकारकी जहां सवारियें धरीं देवता जिनको भोजन करैं ऐसे सब तरहके भोजन व उत्तम वस्त्र धरे ॥ ३४ ॥ सब भांति भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य अन्नयुक्त, धोये निर्मल भोजन करने बनाने आदिके पात्र, सब तरहके बिछौने बिछाये धनधान्य युक्त सब शयन करनेके योग्य स्थानों पर सुन्दर बिछौने और विस्तरे बिछे ॥ ३५ ॥ कैकेयीनंदन महाबाहु भरतजी महर्षिजीकी आज्ञासे ऐसे एक रत्न परिपूर्ण गृहमें प्रवेश करते हुये ॥ ३६ ॥ सब मंत्री लोगभी पुरोहित वशिष्ठजीके साथ भरतजीके अनुगामी हुए और उस गृहका गठन आदि देखकर परम प्रीति लाभ करते हुए ॥ ३७ ॥ वहां पर जो राजाओंके योग्य एक सिंहासनथा जिसके धोरे दास सब वस्त्राभूषण पहरे छत्र चमर हाथमें लिये खडेथे सो भरतजीने मंत्रियोंके सहित उस सिंहासनकी प्रदक्षिणा का ॥ ३८ ॥ वह राजासन रामचंद्रजीके योग्य और वह मानो उस पर बैठेहीहैं यह विचार कर भरतजीने प्रणाम कर उसकी पूजाकी और फिर वालोंका पंखा लेकर मंत्रीके बैठने योग्य आसनपर आप विराजमान हुए ॥ ३९ ॥ तब मंत्रिगण पुरोहित वशिष्ठजी यथायोग्य आसनपर बैठते हुए प्रथम सेनापति और उनके पीछे शिबिररक्षक आदि बैठे ॥ ४० ॥ जब सब बैठ बैठाय गये तब मुहूर्त्तभरके बीचहीमें पायसरूप कर्दमशालिनी अर्थात् दूध खांडकी नदियें महर्षि भरद्वाजजीकी आज्ञासे भरतजीके निकट प्राप्त हुई ॥ ४१ ॥ इन नदियोंके दोनों किनारे पीली मिट्टीसे लिपे हुएथे और श्वेतमृत्तिका (चूना) से पुते हुए दिव्य रमणीय गृहभी शोभा पारहेथे यह सब गृह भरद्वाजजीके प्रसादसे उत्प हुएथे ॥ ४२ ॥ अनन्तर उसी समय ब्रह्माजीकी पठाईहुई भांति २ के वस्त्राभूषणोंसे सजी धजी बीस हजार २०००० स्त्रियां आईं ॥ ४३ ॥ इनके सिवाय स्वयं कुबेरजीकी भेजी हुई बीस हजार २००००) स्त्रियां वहां आई, जोकि सब मणियें, मोती, मूंगे, और सुवर्ण पहरे शोभित हो रहीं थीं ॥ ४४ ॥ जिनके दर्शनमात्रसेही आदमी उन्मत्त और वशीभूतसा देखा जाता बीस हजार (२००००) अप्सरायें नन्दनवनसे वहां आकर उपस्थित हुईं ॥

॥ ४५ ॥ तिसके पीछे सूर्य नारायणके समान दीप्तिमान नारद तुम्बरु और गोप यह सब गन्धर्व राजा भरतजीके सन्मुख आकर गान करने लगे ॥ ४६ ॥ तब अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुंडरीका और वामना यह सब अप्सरायें महर्षि भरद्वाजजी की आज्ञासे भरतजीके समीप नाचने गाने लगीं ॥ ४७ ॥ चैत्ररथ वनमें जो फूल मिलते, नन्दन काननमें जो सुमन पाये जाते वह समस्त महर्षि भरद्वाजजीके तेजसे उस समय प्रयागमें दिखाई देतेथे ॥ ४८ ॥ भरद्वाजीके तेजसे सब बेलके वृक्षोंने पखावजियोंके रूप धारणकर मृदंग बजाया, शमीके वृक्ष ताल बजाते बहेडा और पीपलके पेड नर्त्तकोंका भेष धारण करके वहां विराजमान हुए ॥ ४९ ॥ अनन्तर ताल, तमाल, तिलक और देवदारुके वृक्ष सब कोई कुब्ज और कोई वामनका रूप धारण करकै वहां आये ॥ ५० ॥ सिरस, आँवला, जामन इन सबके सिवाय जो वनैली लता आदिक थीं वह सब स्त्रियोंका भेष लेकर वहां भरद्वाजजीके आश्रममें उपस्थित इन सब वृक्ष लता आदिकोंका आना भरद्वाजजीके तेज प्रभावसे हुआ नहीं तौ जडोंमें ऐसी शक्ति कहां ॥ ५१ ॥ सुराके पीनेवालोंने सुरा पान की भूखे मनुष्योंने खीर और परम पवित्र मांस भोजन किया अथवा जिसकी जो इच्छा हुई उसने वही भोजन किया वहां सब वस्तु तैयार धरीथीं ॥ ५२ ॥ जैसेही किसी ने स्नान करना चाहा कि वैसेही एक २ पुरुषको सात २ आठ २ स्त्रियां नदीके तीरपर लेजा उबटन करा स्नान कराने लगीं ॥५३॥ बडे २ नेत्रवाली सब वाराङ्गनायें न्हाये हुए पुरुषोंके गीले अंग वस्त्रसे भली भांति शुष्ककर और मींज मांज चरण दाबतीहुई उनको शरबत आदि पिलानेमें प्रवृत्त हुई ॥५४॥ साईस, महावत रथवान, आदि श्रेष्ठ हाथी, घोडे, ऊंट और वृषभादिकोंको यथा विधानमे उनके भोजनीय रातब उनको खिलानेलगे ॥५५॥ उनमें इक्ष्वाकुवंशीय प्रधान २ योद्धाओंके जो वाहनथे उनको महाबलवान उनके मालिकोंने ऊंख, लावा, जलेबी आदि खानेके लिये भेजा वहीं साईस आदिकोंने उनको भोजन कराया ॥ ५६ ॥ सब साईस व चरकटे आदिकोंने ऐसी मादक वस्तुयें खाई कि, साईसोंने अपने घोडों को न जाना, और चरकटोंने अपने हाथियोंको न पहँचाना वह समस्त सेना मादक वस्तुओंके सेवन करनेसे मत्त व मधु पीनेसे प्रमत्त और मुदित होकर वहां भली भांति शोभित होती हुई ॥५७॥ इस प्रकार सब कोई सब तरहसे इच्छानुसार भोग लाभकर तृप्तहो लालचंदनादि सुगन्ध लगाये और अप्सराओंसे

रमणकर सब लोग मतवालोंकीसी बातें कहने लगे ॥ ५८ ॥ भाई ! अब न तौ हम अयोध्याहीको जायँगे न रामचन्द्रजीके साथ दण्डकारण्यमेंही जायँगे भरतजी भी कुशल रहैं जिनके प्रतापसे हमें यह सुख लाभ हुआ और रामचन्द्रजीभी सुख पूर्वक वनमें विहरें ॥ ५९ ॥ हाथियोंके चढनेवाले, घुडसवार, हाथियोंके रक्षक घोडोंके रक्षक और पैदल योद्धा लोग सबही यह सत्कार पा और मादक वस्तु खा पीकर स्वतंत्र हो इस प्रकारसे कहने लगे ॥ ६० ॥ भरतजीके अनुयायी हजारों मनुष्य अतिशय आह्लादितहो यह कहकर कि " यहीं स्वर्ग है " जोरसे शोर करने लगे ॥ ६१ ॥ सेनाके मनुष्य माला पहरे कोई नांचने लगे, कोई २ हँस २ गाना गाने लगे, कोई २ हँस २ कर इधर उधर दौडनेलगे ॥ ६२ ॥ अमृतकी समान अन्न भोजन करके यद्यपि वह लोग परम तृप्त होगये थे तथापि दिव्य २ पदार्थोंको देखकर फिर उनको भोजन करनेकी इच्छा हुई ॥ ६३ ॥ सेनामें जितने दास दासी और स्त्रियें थीं उन सबनेही नये २ वस्त्र पहनकर बहुत प्रसन्नता पाई क्योंकि उनको ऐसे वस्त्राभूषण नहीं मिलते थे ॥ ६४ ॥ और हाथी, घोडे, ऊंट, गाय, बैल, खिच्चड, गधे, मृग और पशु, पक्षी सब मन मानी वस्तु खाय २ बहुत अघाय गये, फिर उन्होंने किसी पदार्थकीभी इच्छा नकी न किसीमें मुँह डाला ॥ ६५ ॥ अधिक क्या कहिये वहां पर भूँखा जिसको भोजन न मिलाहो, मैला कुचैला जिसके बाल धूलसे अटरहेहों अथवा कोई मैली पोशाख, पहर रहाहो ऐसा कोई आदमी वहांपर दृष्टि नहीं आता था ॥ ६६ ॥ सेनामें जे कुत्ते आदि पलाऊ जीव थे उनके भोजनार्थ आम आदि फलोंके काढेसे पचाये खस्सी शूकरादिकोंका मांस, मूंग, उर्द आदिकी दाल हींग आदि सुगन्धित द्रव्योंसे वघारी हुई व और भी अनेक प्रकारके श्रेष्ठ व्यंजन विद्यमानथे ॥६७॥ लोहेके सैंकडो पात्रोंमें फूलोंकी पताका किनारे २ गडी हुई उनके बीचमें सुन्दर उज्ज्वल भात भरा देख लोग विस्मित होते थे ॥ ६८ ॥ उस पांच योजन भूमिके घेरके चारों ओर जितने कुयेंथे सबमें खीरहीकी कीचड भरीथी जिसका जी चाहै निकाल कर खाय, गौएें सब कामधेनु की समान थीं कि, जो मांगो सोदें और जितने वृक्ष थ वह सब बराबर शहद दूध दही आदिकी धारा वहा रहे थे॥६९॥इसके सिवाय जो कि बडे २ तालाब थे वह सब मैरेय नाम मद्यसे भर रहे थे, और भली प्रकारके गरम किये कुण्डोंमें भला रँधा हुआ और बहुतही साफ किया हुआ, मृग, मोर, मुरगा आदिका मांस भरा हुआ था

॥ ७० ॥ अन्न धरनेके लिये सुवर्णके छोटे २ हजारों बरतन थे भात आदि बनानेके अर्थ भी सुवर्णहीके लाख पात्र थे, व भोजन करनेके निमित्तभी सोनेके दश किरोड बरतनथे ॥ ७१ ॥ लुटिया अमखोरा आदि पानी पीनेके बरतन अग्नि आदिसे तपे तपाये हुए पवित्र करम्भी दही धरनेके पात्र जिनमें दही भरा रहता बहुत पात्र मट्ठा धरनेके ऐसे थे कि, जिनमें मथनेके पीछे पहर भरतक मट्ठा धरा रहताथा बहुत पात्र केशर आदि पीली वस्तु डाले हुये पीला मट्ठा धरनेके थे बहुत जीरा आदि सुगन्धित वस्तु मिले हुए मट्ठेके थे ॥ ॥ ७२ ॥ वहांके सब कुंड कोई २ शिखरणियोंसे भरे थे कोई २ दहीसे कोई २ दूधसे कोई २ शक्करहीसे पूर्ण हो रहेथे ॥ ७३ ॥ सब लोगोंने नदियोंके नहानेके घाटपर जाकर देखा कि, आंवलादि चराया हुआ काढा लावा आदिका काढा वर्तनोंमें भरा किनारोंपर धराहै ॥ ७४ ॥ सुन्दर २ दुधारे वृक्षोंकी दतौनोंके ढेरके ढेर धरे और उज्वल लाल २ चन्दन कटोरोंमें घिसा घिसाया धरा ॥ ७५ ॥ इसही घाटपर हजारों स्वच्छ दर्पण पवित्र सफेद वस्त्रोंके ढेरके ढेर जूती व खडाउओंकी हजारों जोडियां धरीं ॥ ७६ ॥ अंजन भरी हुई डिबियां कंघियें कूच जो कि, खससे बने डाढी मूछ आदि झाडनेको थे छत्र धनुष कवच विचित्र सेज और आसन ॥ ७७ ॥ गधे, ऊंट, हाथी, घोडे आदिकोंके पनिके पदार्थ भरे हुए कुंड जिसमें स्नान करने और आनेजानेके लिये सुन्दर घाट बांधे कमल फूले ॥ ७८ ॥ कुण्डोंमें मल रहित आकाशकी समान साफ जल भरा उतर जानेमें सुलभ नील वैदूर्य्य मणिके समान ॥ ७९ ॥ हरी २ घासकी सानी पशुओंकेलिये बनीधरी घासके ढेरके ढेर धरे यह देखकर कि, महर्षि भरद्वाजजीने इस प्रकार भरतजीकी पहुनई की वह स्वप्न सदृश यह व्यापार देखकर सबही आश्चर्यको प्राप्त हुये ॥ ८० ॥ नंदनवनमें देवता लोग जिसप्रकार विहार करतेहैं वैसेही रमणीय भरद्वाजजीके आश्रममें इस प्रकार खेल और आह्लाद करते २ उस सब सेनाने वह रात्रि बिताई ॥ ८१ ॥ अप्सरायें जो कि, जिस जगहसे आईथीं गन्धर्वगण वरवर्णिनी स्त्रियें जो सब रात्रिको उस आश्रममें रहीं प्रातःकाल होतेही सब स्त्रियां और अप्सरा गन्धर्वगण इत्यादि भरद्वाजकी आज्ञाले जहांसे आयेथे वहींको चले गये ॥ ८२ ॥ परन्तु भरतजीके अनुयायी सबही मनुष्य वैसेही दर्पित और मदमत्त और वैसेही दिव्य अगुरुसे चर्चित होकररहे भाँति २ की श्रेष्ठ और दिव्यमालायें उनके उपभोग करनेके लिये वैसेही इधर उधर गिरने और मनुष्योंसे मली जाने लगीं ॥ ८३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अयो० एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ९२.

अनन्तर भरद्वाजजीके पहुनई करनेपर परिवार सहित भरतजीने वह रात्रि वहांपर बिताई और रामचन्द्रजीको प्राप्त होनेकी कामनासे महर्षि भरद्वाजजीके समीप आये ॥ १ ॥ पुरुषव्याघ्र भरतजीको हाथ जोड़े हुए निकट आया हुआ देख महर्षि भरद्वाज जब अग्निहोत्र समाप्त कर चुके तब भरतजीसे बोले ॥ २ ॥ अनघ ! हमारे इस आश्रममें यह रात्रि तुमने सुखसे तो बिताई ? और तुम्हारे साथके सब आदमी पहुनई पाकर भली भांति सन्तुष्ट तो हुये ॥ ३ ॥ यह कह उत्तम तेजस्वी महर्षि भरद्वाजजी आश्रमसे बाहर आये तब भरतजीने हाथ जोड उनको प्रणाम कर कहा ॥ ४ ॥ भगवन् ! हमने सब सेना और वाहनादिकोंके संग यह रात्रि सुखसे बिताई और महातपोबल सम्पन्न आपने भी सब सेना सहित हमें विशेष रीतिसे सन्तुष्ट कियाहै ॥ ५ ॥ अतएव सब नौकर चाकरोंके सहित हम सब लोगोंने सुखसे रात्रि बिताई सुखसे बास किया सुखसे खाना पीना किया और हम सबको मार्गमें चलनेसे जो कुछ संताप और थकावट हुईथी वह सब दूर होगई ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! ऋषिश्रेष्ठ ! इस समय आपसे आज्ञा लेकर हम अपने भ्राताके निकट जाया चाहतेहैं आप हमारे ऊपर कृपादृष्टिकी वृष्टि करें ॥ ७ ॥ हे धर्मज्ञ ! यह बताइये कि, महात्मा धार्मिक रामचन्द्रजीका आश्रम यहांसे कितनी दूरहै उसका मार्ग कौनसाहै और कितना अंतर यहांसेहै ॥ ८ ॥ जब भरतजीने बडे भाई रामचन्द्रजीके दर्शनकी लालसासे इस प्रकार पूछा तब परम तेजस्वी और परम तपस्वी भरद्वाजजी उत्तर देते हुये ॥ ९ ॥ हे भरत ! यहांसे ढाई योजनके अन्तरपर जनशून्य अरण्यके मध्यमें चित्रकूट नाम एक रमणीय पर्वतहै जहां कि, अनेक झरने झररहेहैं और वन अलगही अपनी शोभाका विस्तार कर रहे हैं ॥ १० ॥ उस पर्वतके उत्तर बगलमें मंदाकिनी नदी बहरही है इस नदीके दोनों किनारों पर फूले हुए पेड लग रहेहैं और रमणीय पुष्पित वनभी वहांहीहै ॥ ११ ॥ हे तात ! बस उसीसे मिला हुआ चित्रकूट पर्वतहै और तुम रामचन्द्रजीकी पर्णकुटी देखोगे वह निश्चय वहीं वास करतेहैं ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! वाहिनीपते ! यमुनाके दाहिने किनारेपर कुछ दूर चलकर उस मार्गकी शोभा देखोगे मार्गोंके मध्य बाईं तरफ जो रास्ता दक्षिणकी ओर गयाहै बस इसी मार्गपर गज वाजि युक्त सेनाको चलाना ॥ १३ ॥ तो रामचंद्रजीके दर्शन तुमको होजांयगे; भरत व भरद्वाजजीकी वार्त्ता

सुन सवारियोंमें चढी हुई महाराज दशरथजीकी रानियोंने यह सुनकर कि, अब आगे चलना होगा ॥ १४ ॥ यद्यपि महाराज दशरथजीकी स्त्रियां पैदल जरा देर-भी कभी काहेको चली होंगी तथापि यात्रा सुन पैदलही आकर महर्षि भरद्वाजजीके चरणयुगल ग्रहण किये उस समय कांपती हुई दीन और दुर्बल सुमित्राजीके संग ॥ १५ ॥ आकर कौशल्याजीने परिक्रमा कर महर्षि भरद्वाजजीके चरणयुगल ग्रहण किये । यद्यपि सब लोगोंकी पालक कौशल्याजी हैं तथापि रामचन्द्रजीके अभिषेक होनेका उनका मनोरथ पूरा नहीं हुआ ॥ १६ ॥ उसी समय कैकेयीभी तिन महामुनिकी प्रदक्षिणा करकै कुछ लज्जित हो मुनि भरद्वाजजीके चरणोंमें गिरी ॥ १७ ॥ और प्रणाम करकै जाय दुःखित चित्तसे लाजसे भरतजीके बनाय समीपही खडी हुई तब महामुनि भरद्वाजजीने भरतजीसे कहा ॥ १८ ॥ हे रघुनंदन ! हम तुम्हारी माताओंका विशेष हाल जानना चाहतेहैं,जब धार्मिक भरद्वाजजीने भरत-जीसे ऐसा कहा ॥ १९ ॥ तब वचन कहनेमें चतुर भरतजी हाथ जोडकर बोले कि, हे भगवन् ! जो यह बहुत दीनमुख शोक व उपासोंके कारण दुर्बल होगईहैं ॥ २० ॥ पिताजीकी सबसे बडी महारानीहैं जो देवीके समान रूप धारण कियेहैं सिंह विक्रान्त गामी पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजीको इन्हीं ॥ २१ ॥ कौशल्याजीने प्रसव कियाहै जैसे इन्द्रको अदितिजीने उत्पन्न कियाहै ! व जो इन्हींकी बांई भुजासे लपटी उदास खडी हैं ॥ २२ ॥ यह महाराज दशरथजीकी मध्यमा रानी देवी सुमित्राजी हैं जो दुःखसे व्याकुल होरहीहैं । सब पुष्पोंके गिर जानेसे कर्णिकार वृक्षकी शाखा वनमें जिस प्रकार शोभाहीन हो जाती है वैसेही यह भी दुःखित हो रही है ॥ २३ ॥ देवताओंकी समान रूपवान् वीर्यवान् सत्य विक्रम सुकुमार लक्ष्मण, व शत्रुघ्न इन्हीं देवी सुमित्राजीके कुमारहैं ॥ २४ ॥ और जिसके कारण पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी और लक्ष्मण मृत्युसम विपदको प्राप्त हुये हैं, और राजा दशरथजी पुत्रहीन हो स्वर्गको सिधारे हैं ॥ २५ ॥ क्रोधयुक्त स्वभाववाली बुद्धिहीन सदा गर्वित रहने वाली रूपका घमंड रखनेवाली, ऐश्वर्यकी चाहना रखनेवाली अनाडिन होकर भी अपनेको आर्यवत् समझनेवाली यह कैकेयी हैं ॥ २६ ॥ सो इस पापाशय और निठुरको हमारी माता जानिये, हम जो इस समय विषम संकटमें पडे हैं सो यही इस संकटकी जडहैं ॥ २७ ॥ यह कहते २ नरशार्दूल भरतजीकी वाणी गद्गद हो आई वह क्रोधमें भरे भुजंगकी समान लंबे २

श्वास लेने लगे तब उनके नेत्र लाल हो आये ॥ २८ ॥ महामति महर्षिभरद्वाजजी भरतजीको इस प्रकारसे कहते देखकर स्नेहसहित अर्थयुक्त वचन उनसे बोले ॥ ॥ २९ ॥ हे भरत ! तुम कैकेयीको दोषका भागी मत समझो, क्योंकि यह रामचन्द्रजीका वनवास परिणाममें महा सुखका हेतु होगा ॥ ३० ॥ रामचन्द्रजीके इस वनवास होनेसे देव दानव और महात्मा ऋषिगणोंका वरन सबका हितही होगा ॥ ३१ ॥ यह कहकर महर्षि भरद्वाजजीने आशीर्वाद दिया, भरतजी उनकी कृपाको पाकर कृतार्थ हो उनकी सलाह ले प्रदक्षिणा कर सब सेनाको यात्राके लिये तैयार होनेकी आज्ञा देते हुये ॥ ३२ ॥ उस समय वह सैनिक जन अनेक प्रकारके सुवर्णभूषित दिव्य रथोंमें उत्तम घोडे जोतकर प्रस्थान करनेके लिये उसमें आरोहण करते हुए ॥ ३३ ॥ सोनेकी कीलबंधन रज्जु और पताका विशिष्ट हाथी और हथनियें गरमीके अंतमें शब्दायमान मेघमंडलीकी समान दशों दिशाओंको निनादित करती हुई चलीं ॥ ३४ ॥ छोटे बडे अनेक प्रकारके बडे मूल्यवाले यान और सवारियें चलीं और पैदल लोग पैदल चलने लगे ॥ ३५ ॥ अनन्तर कौसल्याजीसे आदि लेकर सब राजाकी स्त्रियें प्रमुदित हो रामचन्द्रजीके दर्शनकी कामनासे श्रेष्ठ २ यान व सवारियोंपर चढ २ कर चलीं ॥ ३६ ॥ श्रीमान् भरतजी सपरिवार तरुण चन्द्र और सूर्यकी समान देदीप्यमान शोभायुक्त पालकीपर सवार होकर चलने लगे ॥ ३७ ॥ वह हाथी घोडे करकै युक्त बडी सेना वहांसे दक्षिण दिशाको चली जैसे उसी दिशामें मेघ उठनेसे शोभा होतीहै ऐसेही यह सेना शोभायमान होने लगी ॥ ३८ ॥ यह बडी भारी सेना चलनेके समय भागीरथी गंगाजीके पश्चिम किनारे पर्वत और नदीनाले युक्त मृग पक्षियोंसे सेवित शोभायमान वनको नांघकर चली ॥ ३९ ॥ सेनामें जो हाथी और घोडेथे वह बहुतही प्रफुल्लित होगये व वनके मृग और पक्षीसमूह इस सेनाको देख अधिक भयभीत हुए उस काल भरतजीकी विपुल वाहिनी महावनमें प्रवेशकरकै परमशोभा विस्तार करती हुई ४०

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां द्विनवतितमःसर्गः ॥९२॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३.

जब उस महासेनाने इस भांति प्रस्थान किया तब वनवासी यूथपति मतवाले सब हाथी उस सेनासे पीडा पाकर अपने २ झुंडोंको संग ले चारों ओरको दौडे ॥

॥ १ ॥ नदियोंके तीरपर पर्वतोंके शिखर पर और वनोंमें रीछ बुन्दकियोंवाले मृग यह सब जीव सब दिशाओंमें व्याकुल भावसे दौडते हुए दृष्टि आये ॥ २ ॥ दशरथकुमार महात्मा भरतजी गर्जन करके धावमान होती हुई असंख्य चतुरंगिणी सेनाके साथ प्रसन्नमनहो चलने लगे ॥ ३ ॥ जिस प्रकार वर्षाकालमें मेघ आकाश मंडलको ढक लेतेहैं वैसेही महात्मा भरतजीकी सागरकी समान लहरें लेती हुई बडी भारी सेनासे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ ४ ॥ उस काल महाबलवान हाथी और घोडोंके झुंडसे भलीभांति ढकीहुई पृथ्वी बहुत दूरतक व्याप्त होनेसे देख नहीं पडती थी ॥ ५ ॥ बहुत चले आकर सब वाहन बहुतही थकगये तब श्रीमान् भरतजीने मंत्रिश्रेष्ठ वशिष्ठजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! जैसा कि हम देखतेहैं और जैसा सुनाहै और जिस प्रकारकि स्वयं भरद्वाजजीने इस देशके चिह्न बतायेथे, उससे स्पष्ट विदित पडताहै कि हम अपने मनमाने स्थान पर पहुंच गये ॥ ७ ॥ महाराज ! देखो यह वही चित्रकूट पर्वतहै, यह वही मन्दाकिनी नदीहै और दूसरे नीले बादरोंकी समान यह वही वनभी दिखाई देताहै ॥ ८ ॥ देखिये इस समय हमारे पर्वताकार हाथी चित्रकूटके रमणीय सब स्थानोंको पीडित कररहेहैं ॥ ९ ॥ यह देखिये जिस प्रकार वर्षाऋतुमें सजल श्याम जलधरमंडल पानी वर्षातेहैं वैसेही वृक्ष सब इस समय हाथियोंकी सूंडोंके आघातसे हिलकर पर्वतके कंगूरोंपर फूलोंकी वर्षा कर रहेहै ॥ १० ॥ हे शत्रुघ्न ! किन्नरोंके रहनेके स्थानको देखो हमारी सेनाके घोडे जो चारों ओर फैल गयेहैं उससे यह स्थान बडे मकरों करके पूर्ण समुद्रकी समान शोभा पा रहाहै ॥ ११ ॥ शरत्कालमें वायुवेगसे चलते हुए मेघोंके झुंड जिस प्रकार आकाश मंडलमें शोभा पातेहैं वैसेही समस्त शीघ्रगामी सेनासे चलाये जाकर मृगगण शोभायमान होरहेहै ॥ १२ ॥ नीले जलधरसदृश, प्रकाशमान नीली ढालें जैसे दक्षिणके लोग शिरपर धरे रहतेहैं वैसेही यह हमारी सेनाके लोग शिरों पै कैसे महकदार काले फूलोंके गुच्छे धरेहैं ॥ १३ ॥ यह स्वभावसेही निर्जन शब्द रहित देखे जानेपरभी इस समय हमारे आगमनसे मनुष्योंसे भरी पुरी अयोध्या पुरीके समान प्रतीत होताहै ॥ १४ ॥ घोडोंकी खुर तालोंसे उडी हुई धूलके समूहसे आकाश ढक गयाहै मानों पवन हमारा हितही साधन करनेके लिये उस धूल को शीघ्र आकाशमें उडा लेजाती है ॥१५॥ हे शत्रुघ्न ! देखो प्रधान२सारथियोंके बैठनेसे यह घोडे जते हुए सब रथ वनमें अति शीघ्रतासे चले जातेहैं ॥ १६ ॥

यह देखो प्रियदर्शन मोर डरके मारे कैसे चले जाते हैं, व ऐसेही और पक्षीभी अनेक स्थानोंसे उडे हुए जा रहे हैं ॥ १७ ॥ यह स्थान बहुतही मनोहर और परम सुन्दर लगता है तपस्वी लोग यहां रहा करते हैं इस कारणसे यह मार्ग स्वर्गकी समान है ॥ १८ ॥ यह देखो वनके नीचे चितेरे मृग अपनी २ हिरनियोंके साथ मिलकर ऐसे मनोहर दिखाई देते हैं मानों फूलोंसे सजा दिये हैं ॥ ॥ १९ ॥ हे सेनाके लोगो ! तुम लोग इस समय विधि विधानसे जाकर जिस्से कि पुरुषोत्तम रामचंद्र व लक्ष्मणजी मिल जायँ ठौर २ पर खोजकरो, और सब वनको जरा २ करके देखो ॥ २० ॥ शस्त्रधारण किये शूरवीर पुरुषोंने जब भरतजीकी यह आज्ञा सुनी तो उसी समय वनमें प्रवेश करकै उन्होंने एक जगह धूँआं उठता हुआ देखा ॥ २१ ॥ धुयेंको उठता हुआ देखकर वह लोग लौटे और भरतजीसे आनकर निवेदन किया कि, जहां मनुष्यका समागम नहीं वहां अग्नि किस प्रकार हो सकती । इस कारणसे स्पष्ट बोध होताहै कि, निश्चयही यहां राम लक्ष्मण हैं ॥ २२ ॥ अथवा वह शत्रुओंके दमनकरनेवाले पुरुषसिंह रामचंद्र महाबलवान् लक्ष्मणजी नहों तब रामचंद्रजीके तुल्य कोई दूसरे तपस्वी लोग यहां होंगे इसमें तो कोई भी सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥ शत्रुओंके बलको मथन करनेवाले भरतजी सेनाके लोगोंके यह न्यायानुसार वचन सुनकर उनसे बोले ॥ २४ ॥ तुम सब लोग स्थिर और सावधान होकर यहीं टिके रहो यहांसे आगे न जाना मंत्री सुमंत्र और धृति मंत्रीके साथ हमही अकेले आगेको जायंगे अशोक मंत्रीका नाम धृतिभी था ॥ २५ ॥ सेनाके लोग इस वार्त्ताको सुनकर इधर उधर टिक रहे तब भरतजीने वहांपर दृष्टि डाली जहां कि, धुंआ उठता दिखाई देता था ॥ २६ ॥ उस काल भरतजीकी आज्ञानुसार सेना यथाविधि टिक रही और सामनेही धुयेंको उठता हुआ देखकर उन्होंने समझ लिया कि, परम प्रीतिभाजन रामचंद्रजीसे अब मिलनेमें देर नहीं है यह विचार कर वह लोग परम प्रफुल्लित हुए ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्णवतितमः सर्गः ९४.

गिरिवर चित्रकूटके प्रियकारी श्रीरामचंद्रजी बहुत समयसे उस पर्वत पर वास करते रहे जानकीजीका प्रिय करने व अपने चित्तको लुभानेके कारण ॥ १ ॥ जैसे

शचीनाथ इन्द्रजी इन्द्राणीको नंदनवनकी शोभा दिखाते हैं वैसेही जानकीनाथ भार्या जानकीजीको चित्र विचित्र चित्रकूटकी शोभा दिखाने लगे ॥ २ ॥ रामचंद्रजी बोले कि, हे भद्रे ! इस रमणीय चित्रकूटकी शोभाको देखकर क्या राज्य नाश, क्या भाई बन्धुओंसे विछुडना इन सब किसी बातोंसे या और किसी कारणसे अब मेरा मन कुछभी दुःखित नहीं है ॥ ३ ॥ हे कल्याणि ! देखो अनेक प्रकार विहंगोंके समूह इस पर्वतके वनमें वास करते हैं, और विविध धातुओंके द्वारा रंगीले शिखर मानों आकाशको भेद करके इस पर्वतकी शोभाको बढा रहे हैं ॥ ४ ॥ इस पर्वतके कोई २ शृंग तो चांदीके समान चमकीलेहैं कोई शिखर रुधिर समान लालहैं कोई २ शिखर पीले और मँजीठकी लताके समान लाल रंगके और कोई २ इन्द्रनीलमणिकी प्रभाके समान हैं ॥ ५ ॥ इस पर्वतराजके समान पुष्पराग स्फटिक और केतकी कुसुमके समान रंगके और कोई २ नक्षत्रोंके और पारेके रंगकी समान विराजते हैं ॥ ६ ॥ पुष्टताको छोडे शान्त स्वभाव अनेक भांतिके मृग, केहरी, शेर, चीते आदि और रीछोंके समूह व और अनेक प्रकारके विहंगमों करके होनेसे इन गिरिराज चित्रकूटने अति मनोहर शोभा धारण कीहै ॥ ७ ॥ अधिकाईसे आम जामन असना लौंग चिरोंजी, कटहर, अंकुहर, तिमिश, बेल, तेंदुआ वांश॥८॥ काश्मरी, नींब, वरुण, महुआ, तिलक, बेर, आंवला, कदंब, बेत, विजोरा, नींब ॥ ९ ॥ इनसे आदि लेकर और अनेक प्रकारके फल और छायायुक्त मनोहर वृक्षाके समूह करके व्याप्त होनेसे यह चित्रकूट पर्वत शोभा विस्तार कर रहाहै ॥ १० ॥ हे भद्रे ! यह देखो रमणीय पर्वतके कंगूरों पर मनस्वी किन्नरके जोडे सब कामहर्षण देशोंमें विहार कर रहे हैं यहां इनकी सब इच्छा पूर्ण होती हैं इसीकारण यह प्रसन्न हैं ॥ ११ ॥ किन्नरोंके श्रेष्ठ खड्ग और विद्याधरोंकी स्त्रियोंके विचित्र वस्त्र सब मनोहर क्रीडा करनेके स्थानोंमें वृक्षोंकी टहनियों पर लटक रहे हैं, सो तुम देखो ! ॥ १२ ॥ स्थान २ पर झरनोंके झरनेसे और सोते जो पृथ्वीको भेद कर निकले हैं उनके वहनेसे यह गिरिवर मद चूते हुए हाथी की समान शोभा पा रहा है ॥ १३ ॥ यह देखो ! समीर गुफाओंके मुखसे निकल अनेक प्रकारके फूलोंकी विविध भांति की सुगंधि लाकर नासिकाको तृप्त कर रहीं हैं सो इस पवनके लगनेसे किसको हर्ष नहीं होता ? ॥ १४ ॥ अयि अनिन्दिते ! हम तुम्हारे और लक्ष्मणके सहित

यदि बहुत वर्षोंतक भी यहां वास करैं तो भी शोक हमारे मनको बाधा नहीं करैगा ॥ १५ ॥ हे भामिनी ! बहुविध पुष्प फल सम्पन्न, अनेक जातिके पक्षियों करकै परिपूर्ण और विचित्र शिखरयुक्त यह रमणीय चित्रकूट हमको बहुत प्रसन्न कराता है ॥ १६ ॥ इस वनवासके द्वारा हमको दो फल प्राप्त हुए प्रथम तो सत्य धर्म पालन करकै पिताजीके प्रणको चुकाया, दूसरे भरतजी परम प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ हे जानकि ! हमारे साथ इस चित्रकूट पर्वतपर मन वचन और देहानुकूल विविध परम प्रीति कर नये २ पदार्थ देख तुम्हारे चित्तको भी आनंद देता है ॥ १८ ॥ हे राज्ञि राजर्षियों राजाओंके लिये इस प्रकारसे नियम सहित वनवास करनेको अमृतकी समान कहाहै, हमारे पुरुष मनु आदिकोंने भी वनवासको परलोकका मंगल करनेवाला कहाहै ॥ १९ ॥ यह देखो ! चारोंओर पर्वतनाथ चित्रकूटकी सैकडों विशाल चित्र विचित्र शिलायें सफेद, पीली, नीली, लाल लाल, विविध भांतिके रंगोंसे शोभा पारही हैं ॥२०॥ रात्रिमें इस पर्वतराज परहजारों ओषधि व लतायें सब अपनी २ प्रभासे दीप्त हो प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान बहुतही शोभा विस्तार करतीहैं ॥२१॥ हे भामिनि ! यह देखो इस पर्वतके कोई २ स्थान तो गृहकी समान हैं, कोई फुलवाडियोंके समान हैं और कोई स्थान बहुत मनुष्योंके रहने योग्य हैं क्योंकि वह एक चटानहीसे शोभित होकर परम शोभा विस्तार करते हैं ॥ २२ ॥ स्वयं चित्रकूट भी मानों पृथ्वीको भेद करकै ऊपरको उठकर विराजमान हुआ है ! यह देखो यह चित्रकूटकेही सब शृंग सब ओर शोभायमान दृष्टि आते हैं ॥ २३ ॥ यह देखो यह कमलनयनी ! कमल व पुत्रजीवक व भोजपत्रादि वृक्षोंके पत्तोंके गुच्छे देखो तो कामीलोग इन कमलोंके दलोंके बिछौना बिछाते हैं ॥ २४ ॥ हे जानकि ! यह देखो कामीजनोंके पहरनेसे मलीगई और त्यागी हुई कमलके फूलोंकी माला सब इधर उधर पडी हैं और वहां अनेक प्रकारके फल फूल भी इधर उधर पडे हैं ॥ २५ ॥ विविध भांतिके मूल फल और स्वच्छ जलसम्पन्न यह चित्रकट पर्वत कुबेरजीकी अलकापुरी और इन्द्रजीकी अमरावती व उत्तरकुरु देशका अनादर करता शोभा पारहा है ॥२६॥ आर्यप्रिय सीते ! यदि हम इस चौदह वर्षके वनवास मैं तुम्हारे और लक्ष्मणजीके श्रेष्ठ नियमानुसार साधुओंकी पदवीका आश्रय करकै इस चित्रकूटपर विहार करने पावें तो कुल और धर्म दोनोंहीकी परम उन्नति करकै सुखी होसकेंगे ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्र०वाल्मी० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां चतुर्णवातितमः सर्गः॥९४॥

पंचनवतितमः सर्गः ९५.

अनन्तर कोशलपति रामचन्द्रजी पर्वतकी शोभा दिखानेमें निवृत्तहो पर्वतसे निकल शुभ जलवाली रमणीय मन्दाकिनी नदी दिखाने लगे ॥ १ ॥ श्रीकमलनयन करुणाअयन श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर चन्द्रमाकी समान मुखवाली स्त्रियोंमें श्रेष्ठ जनककुमारीसे कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्रिये ! हंस और सारस पक्षियों करके सेवित फूलवाली विचित्र किनारेयुक्त रमणीय मन्दाकिनी नदीको देखो ॥ ३ ॥ किनारों पर भांति २ के फूल, फलके पेड उत्पन्न होनेसे यह मन्दाकिनी कुबेरकी पुरीके समान विराजमान है ॥ ४ ॥ इस नदीके सबही घाट अति मनोहर हैं यह मुझको बहुत ही प्रीति उपजा रहे हैं, अभी मृगयूथ इन घाटों पर जल पीकर गये हैं इससे वहांका जल गदला हो रहा है ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! यह देखो जटा और मृग चर्म धारण किये ऋषि लोग वृक्षों की छाल व पत्ते पहरे यथा समयमें इस मंदाकिनी के जलमें स्नान करते हैं ॥ ६ ॥ हे विशालाक्षि ! इस ओर यह सब दृढ व्रत धारण किये मुनि लोग नियमके वशहो ऊपरको बांह उठाये सूर्य भगवानकी उपासनामें लग रहे हैं ॥७॥ मृदु मन्द समीरके हिल्लोलसे चित्रकूटके शिखरोंपरके पेड कांपकर इस नदीके इधर उधर फूलोंके ढेर छोड रहे हैं इससे ऐसा जान पडता है मानों यह त्रित्रकूट पर्वत नृत्य करकै पुष्पांजलि दे रहा है ॥ ८ ॥ देखो कहीं २ इस मन्दाकिनीका जल मणिकी समान उज्ज्वल है, कहीं कहीं रेती शोभा देरही हैं और कहीं २ सिद्ध लोग बैठे तप करते हैं ॥ ९ ॥ हे पतली कटिवाली ! यह फूलोंके ढेरके ढेर कुछ तो जलमें पडे हैं और हवासे चालित होकर बहे जाते हैं और कुछ जलके ऊपरही तैरते हैं सो तुम देखो ॥ ॥१०॥ हे कल्याणि ! इस ओरको देखो ! चारुभाषी चक्रवाक पक्षी सब मीठी २ वाणीसे बोलते हैं, और कछाडमें बैठे हैं ॥ ११ ॥ हे शोभने ! अयोध्यामें रहनेसे हमको इस चित्रकूटके तुम्हारे और मंदाकिनीके देखनेसे कहीं चढ बढ कर सुख होता है ॥ १२ ॥ तपस्या और शम दम करनेसे निष्पाप सिद्ध पुरुष लोग नित्य जिसके जलमें स्नान करते हैं सो इस समय तुम हमारे सहित ऐसी मन्दाकिनी नदीमें स्नानकरो ॥ १३ ॥ हे भामिनी ! लाल कमल और सफेद पद्मोंको जलमें डुबाती हुई इस मन्दाकिनी नदीमें तुम सखीकी समान निर्भय स्नान करो ॥ १४ ॥ हे सीते ! तुम यहांके व्यालोंको पुरजनोंकी समान गिरि चित्रकूटको अयोध्याकी

समान और इस मन्दाकिनी नदीको सरयूकी समान मनमें समझो ॥ १५ ॥ हे वैदेही ! लक्ष्मणजी परम धर्मात्मा हैं और हमारी आज्ञाके पालनेवाले हैं और तुमभी हमारी अनुकूल भार्या होकर सदाही हमें प्रसन्न करती रहती हो ॥ १६ ॥ इस प्रकार तुम्हारे सह वासमें रह रात्रि काल स्नान व मधुपान और कंद मूल फल भोजन करकै अब हमको अयोध्या वा राज्यकी कुछभी इच्छा नहीं है ॥ १७ ॥ गजयूथ करकै मथित, सिंह, मातंग, और वानरगणों करकै जिसका जल पिया गया ऐसी पुष्पित वन वाली, फूलोंके समूहसे शोभायमान कुसुमनिकर विभूषिता इस रमणीय मन्दाकिनी नदीमें स्नान करकै ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो सुखी और थकावट रहित न हो जाय ॥ १८ ॥ रघुवंशके बढाने वाले श्रीरामचंद्रजी मन्दाकिनीके माहत्म्यमें ऐसे २ अनेक वचन कहते नयनाञ्जनकी समान रमणीय चित्रकटपर प्रिया जानकीजीके साथ विचरण करने लगे ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अयो० भाषायां पंचनवतितमः सर्गः ॥९५॥

प्रक्षिप्तः सर्गः ॥ १ ॥

सुन्दर कमलवाली मन्दाकिनी और चित्रकूट पर्वतको देखते २ रामचंद्रजी चित्रकूटके उत्तरके तटपर गये ॥ १ ॥ वहां उसकी शिला और धातुओंसे युक्त सुन्दर कंदरा देखी जहांके सुन्दर वृक्ष फूलोंके बोझसे लद रहे थे और नीचेको झुक रहे थे ॥ २ ॥ वह संपूर्ण प्राणियोंकी दृष्टि हरनेहारा वन मतवाले पक्षियोंके समूहसे गुप्त और प्रगट था यह देखकर ॥ ३ ॥ और वनको देखकर आश्चर्यको प्राप्त हो रामचंद्र जानकीजीसे बोले प्रिये इस पर्वतकी कंदराको देख क्या तुम्हारा मन प्रसन्न होताहै नेत्र सुखी होते हैं ॥ ४ ॥ यदि तुम थक गई हो तौ कुछ देर यहां विश्राम करो तुम्हारे निमित्त यहां यह सुन्दर चिकनी शिला विद्यमान है ॥ ५ ॥ जिसके दोनों तरफ वृक्षोंके होनेसे उनके फूलोंकी केशर पडी हुईहै रामचंद्रजीके यह कहने पर स्वभावसे चतुर जानकीजी ॥ ६ ॥ बहुतही नम्रतासे यह मनोहर वचन बोलीं हे रघुनंदन ! आपके वचन मुझे अवश्य मानने योग्यहैं ॥ ७ ॥ मैं बहुत आज फिरी चलीहूं इससे थक गईहूं जो तुम्हारा बैठनेका मनोरथहै तौ बैठिये यह कहकर सुन्दर मुखवाली जानकी उस शिलाके निकट गईं ॥ ८ ॥ वह सुन्दर अंगवाली स्वामीके संग विहार करनेकी इच्छासे बैठी उन

बुद्धिमती जानकीजीको देखकर रामचंद्रजी बोले ॥ ९ ॥ प्यारी ! यह सब पदार्थ फूल खिले हुए हितकारी वृक्षोंको देखो हे देवि ! पर्वतमें यह शोभायमान सुन्दर फूलोंसे युक्त ॥ १० ॥ हाथीके दांत लगनेमे जिनकी छाल छिल गईहैं उनमेंसे गोंद निकलताहै ऐसे वृक्षोंको देखो जिसमें अनेक प्रकारके पक्षी (कोकिलादि) ऊंचे स्वरसे चारों ओर बोल रहेहैं ॥ ११ ॥ यह पुत्रको प्यार करनेवाला शकुनि पक्षी पुत्र २ रट रहाहै, जैसे पहले मेरी माता कौशल्या बहुत मनोहर और करुणा भरी वाणीसे मुझको पुकारा करतीथी ॥ १२ ॥ यह भृंगराज नामवाला पक्षी शाल वृक्षकी शाखापर बैठा हुआ कोकिल सहित मानों संगीत कर रहाहै ॥ १३ ॥ यह देखो मानो यह पक्षी कोकिलाओंके बालकोंका शब्द मुझे विदित होताहै, सुख-से पूर्ण मिला हुआ यह बोलताहै ॥ १४ ॥ यह जो खिली हुई फूलोंके बोझसे डालियें झुक रहीहैं सो ऐसा विदित होताहै कि, जैसे तुम श्रमितहो मेरा आश्रय करती हो ऐसेही यह चाहतीहैं ॥ १५ ॥ यह कहनेपर प्यारी बोलनेवाली जानकी निन्दा रहित जिनका शरीर परम सुन्दर अपने स्वामीकी गोदीमें लेट रहीं॥१६॥ वह देवकन्याओंकी समान जानकीजी जब गोदीमें लेट रहीं तब काममें अर्पण किये हुए रामके मनको बहुत प्रसन्न करतीं हुईं ॥ १७ ॥ उस समय रामचंद्रजीने सुन्दर मनसिलको लेकर अपने हाथसे जानकीजीके माथेमें सुन्दर तिलक किया॥ ॥ १८ ॥ बालक सूर्यकी समान रंगवाले पर्वतकी धातुके तेजसे जानकीका मुख शुक्लपक्षकी समान प्रकाशित होने लगा ॥ १९ ॥ तब रघुनाथजीने फूलोंका पराग ले अपने हाथसे मलकर बडे प्रसन्नहो जानकीजीके बालोंमें लगाया ॥ २० ॥ इस प्रकारसे रामचंद्रजी उस शिलामें अनेक प्रकारसे रमणकर जानकीजीके साथ वहांसे दूसरे स्थानको चले गये ॥ २१ ॥ तहां जानकीजी जाते २ वानरयूथपको देख घबडाकर रामचंद्रजीसे चिपट गईं उस वनमें मृगादिक बहुतथे ॥ २२ ॥ बडी भुजावाले रघुनाथजी जानकीजीको घबडाया हुआ देख उन्हें हृदयसे लगा समझा ने लगे और उस वानरयूथपको घुडक दिया ॥ २३ ॥ वह जो मनसिलका तिलक लगा दियाथा वह जानकीजीके लिपटजानेसे बडे पराक्रमी रामचंद्रजीकी छातीमें लग गया ॥ २४ ॥ जब वह बडा वानर चलागया तब जानकीजी हँसने लगीं फिर अपने माथेसे छुटा हुआ मनसिलका तिलक रामचन्द्रजीकी छातीमें लगा देखा॥ २५॥ फिर थोडीही दूर अशोक वृक्षोंके वनको अग्निकी कान्तिके समान देखा और यह

थी देखा कि उनके गुच्छे वानर तोड रहे और किलकारी मार रहेहैं ॥ २६ ॥ जानकीजी अशोक वृक्षके गुच्छे लेनेकी इच्छासे रामचंद्रजीसे बोलीं, हे रघुनंदन ! मैं उस वनमें जानेकी इच्छा करतीहूं ॥ २७ ॥ उन देवकन्याओंकी समान रूपवाली जानकीके प्रिय करनेको रामचंद्र उधरको चले और वह शोकरहित जानकीजीके साथ उस अशोकवृक्षके वनमें पहुंचे ॥ २८ ॥ तब रामचंद्रजी जानकी सहित उस अशोक वनमें विरचने लगे जिस प्रकार हिमालयके वनमें शिवजी पार्वती सहित विचरतेहैं ॥ २९ ॥ वे दोनों परस्पर एक दूसरेको अशोक वृक्षके नये पत्ते गुच्छे फूल पहराकर सजाने लगे, उन दोना कामियोंको जो श्याम और गोरे वर्णथे शोभित करते हुए ॥ ३० ॥ उन दोनोंने वनमाला बनाकर गलेमें पहरली, वे दोनों स्त्री और पुरुष परस्पर एक दूसरेको अत्यन्त शोभित करते हुए ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सीताके प्रिय महाराज रामचंद्रजी प्रियाको अनेक स्थान दिखाते हुए अपने सुन्दर शोभायमान आश्रममें आये ॥ ३२ ॥ इनके पीछे बडे भाईसे प्रेम करनेवाले भाई लक्ष्मणजीभी चले, उस समय पुण्यरूप लक्ष्मणजी विविध धर्म दिखलाते हुए चले आये ॥ ३३ ॥ उस समय बाणसे मारे हुए दश पवित्र काले मृग अच्छी प्रकारसे सुखाये हुये अग्निमें पक्क किये हुए लक्ष्मणजीने तैयार कर रक्खेथे और अनेक वस्तु तैयार करलीथी ॥ ३४ ॥ भाईका यह कार्य देखकर रामचंद्र बहुत प्रसन्न हुए और जानकीजीसे बोले कि, अब बलिकर्म करना उचितहै ॥ ३५ ॥ सुन्दर महाराणी जानकीजी प्रथम प्राणियोंके निमित्त बलिप्रदान करके पीछे दोनों भ्राताओंको वह शहत और मांस देती हुई ॥ ३६ ॥ जब वह दोनों भाई महावीर भोजन कर कुल्ला आदि करकै पवित्र हुए पीछे जानकीजीने आपभी कुछ थोडासा भोजन किया ॥ ३७ ॥ बाकी जो निकृष्ट मांस बचरहा वह सुखानेको रख दिया और रामके कहनेसे जानकी कौओंसे उसकी रक्षा करनेलगीं ॥ ३८ ॥ तब रामचंद्रजी देखने लगे कि जानकीको कौवे दिक करने लगे कि यथेच्छ फिरनेवाला एक कौआ उस मांसके भोजन करनेको आया ॥ ३९ ॥ उस कौवेने जानकीको बहुत दिक किया और वह मोहको प्राप्त होगई और स्वामीके प्रणयसे दर्पित हुई जानकी उस काकके ऊपर बडी क्रोधित हुई ॥ ४० ॥ इधर उधर उस काकको जाकर निवारण करने लगी, और वहभी उन क्रोधस्वभाववालीको पंख चोंच नखूनोंके मारनेसे क्रोध दिलाता हुआ ॥ ४१ ॥ उससे जानकीके होठ फडकने

लगे, भृकुटी टेढी होगई मुख लाल होगया यह देखकर रामचंद्रजीने उस कौवेको फटकारा ॥ ४२ ॥ वह धृष्ट कौआ रघुनाथजीका निरादर करके जानकीके ऊपर आघात करने लगा यह देखकर रघुनाथजीको बडा क्रोध हुआ ॥ ४३ ॥ तत्काल रामचंद्रने एक सींक उठाकर (बलवान् तो थेही) ऐषीक अस्त्रसे उसे संयोजित करके कौएको निशाना बनाकर पुरुषसिंहने उसके ऊपर बाण छोडा ॥ ४४ ॥ उस बाणके डरसे भागता हुआ वह कौआ त्रिलोकीमें घूमता फिरा, वह हारके भीतर फिरनेवाला पक्षी देवताओंसे वरदान पाये हुयेथा ॥ ४५ ॥ जहां २ वह कौआ जाताथा तहां २ उस बाणको देखताथा अग्निकी समान इषीका अस्त्र उसके पीछे फिरताथा जब कहीं नहीं ठिकाना लगा तब फिर रामचंद्रके पास आया ॥ ४६ ॥ वह महात्मा रामचंद्रके चरणोंमें आकर अपना शिर रखदेता हुआ और जानकीके देखते २ मनुष्य वाणीसे यह बोला ॥ ४७ ॥ हे रामचंद्र ! मेरे ऊपर प्रसन्नहोकर मुझे प्राण दान दीजिये, मुझे इस अस्त्रके प्रभावसे त्रिलोकीमें कहीं शरण नहीं मिली ॥ ४८ ॥ उस कौवेको रामचंद्र पैरोंमें पडा हुआ देखकर महा बुद्धिमान उसके ऊपर दया करके कहने लगे क्योंकि वह सब वार्त्ताको जानतेथे ॥ ४९ ॥ सीताके हित करनेवाले मैंने क्रोधको प्राप्त होकर तेरे मारनेके निमित्त इस अस्त्रका प्रयोग कियाहै ॥ ५० ॥ अब तू जो जीनेकी इच्छासे मेरी शरण आयाहै और मेरे चरणोंमें अपना शिर रक्खाहै तो इस कारण तेरे शरण आजानेसे अब मैं इस बाणसे तेरी रक्षा करूंगा ॥ ५१ ॥ और मेरा बाणभी अमोघहै खाली नहीं जाता इस कारण तेरे किसी एक अंगका अवश्य नाश होगा बतला कि तेरा कौनसा अंग नष्ट किया जाय ॥ ५२ ॥ बस हे काक ! इतनाही मैं तेरा प्रिय कर सकताहूं इस अस्त्रकी भेटमें प्राण खोनेके बदले कोई एक अंग देना अच्छा है ॥ ५३ ॥ जब रामचंद्रजीने ऐसा कहा तब वह चतुर पक्षी विचारकर दो आंखों मेंसे एक आंखका देना स्वीकार करता हुआ कहाभीहै "जो धन जाता जानिये, आधा दीजे बांट" ॥ ५४ ॥ यह विचार कर कौआ बोला हे राम मैं एक आंख देना अच्छा जानताहूं हे नरोंमें श्रेष्ठ! मैं आपकी कृपासे एक आंखसेही जीवन धारण करता रहूंगा ॥ ५५ ॥ तब वह रामका छोडा हुआ अस्त्र उसकी आंखपर गिरा कौवेकी एक आंख फूट जानेसे जानकीजी बडी विस्मित हुई ॥ ५६ ॥ कौआ रामचंद्रको प्रणाम कर शिर झुका अपने स्थानको चलागया लक्ष्मणके सहित रामचंद्रजी शेष कार्य संपादन करने लगे ॥ ५७ ॥ यह सर्ग क्षेपकहै ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां प्रक्षिप्तः सर्गः ॥ १ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ९६.

उस समय श्रीरामचंद्रजी जनककुमारी सीताजीको पहाडी नदी मन्दाकिनीके दर्शन कराकर चटानपर बैठ गये वह मंत्रोंसे पवित्र मांस सीताजीको दिखाय कहने लगे ॥ १ ॥ हे जानकी ! यह मांस अति पवित्रहै और स्वादयुक्तहै और अग्निमें भी भलीभांति पकाया गयाहै धर्मात्मा रामचंद्रजी सीताजीसे यह कहतेहुये चित्रकूट पर्वतकी चटानपर बैठे हैं ॥२॥ कि इतनेहीमें उनके समीप आती हुई भरतजीकी सेनाके चलनेसे उडी हुई धूल दिखाई दी और सेनाका कलाहलभी आकाशको व्यापकर श्रवणगोचर हुआ ॥ ३ ॥ इस अवसरमें वह महाशब्द सुनकर यूथ-पति मतवाले हाथी डरकर और व्याकुल चित्त होकर अपने २ झुंडको ले २ कर चारों ओरको भाग–खडे हुये ॥ ४ ॥ राम रघुनंदनजीने उस सेनाके उठे हुये महा हाहाकार शब्दको सुना और दौडते घबडाते हुए यूथपति हाथियोंको इधर उधर भागते हुएभी देखा ॥ ५ ॥ सब जीवोंको भागते देख, और यह महाकुलाहल सुनकर श्रीरामचन्द्रजी तेजसे प्रकाशमान सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीसे कहने लगे॥६॥ हे लक्ष्मण ! सुमित्रा देवी तुमसे पुत्रको पाकर सुपुत्रवती हुई हैं । इस समय देखो तो भयंकर बादलके गर्जनेकी समान गंभीर तुमुलशब्द कहांसे सुनाई देता है ॥ ७ ॥ यह देखो सघन वनके बसनेवाले मृग भैंसे, हाथियोंके समूह, सिंहगणोंके सहित महाभीत होकर सहसा दशों दिशाओंको भागे जाते हैं ॥ ८ ॥ हे सुमित्रे ! यातो कोई राजा या राजकुमार वनमें शिकार खेलनेको आया है, या और किसी वनैले जीवसे ऐसा उत्पात हो रहा है जो कुछ हो इसका वृत्तांत तुम्हें जानना उचित है ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! इस चित्रकूट पर्वतपर तो पशु पक्षीभी सरलतासे नहीं घूम घाम सकते हैं; फिर किसने आकर यहां ऐसा उत्पात मचाया अतएव तुम सब वृत्तांत ज्योंका त्यों जानकर शीघ्र यहां आवो ॥ १० ॥ लक्ष्मणजीने बहुत शीघ्र-तासे एक फूले हुये शालके पेडपर चढ चारों ओर देख फिर पूर्व दिशाकी ओर दृष्टि डाली ॥ ११ ॥ जब उधर कुछ न देखा फिर उन्होंने उत्तर दिशाकी ओर निहारा तब उस उपद्रवका कारण देखा कि, हाथी, घोडे, रथों करकै युक्त सजी सजाई पैदलों करकै सहित एक बडी भारी सेना चली आती है ॥ १२ ॥ लक्ष्म-णजी रामचन्द्रजीसे हाथी घोडों करकै पूर्ण रथकी पताकाओंसे भूषित उस सेनाका वृत्तांत निवेदन करकै कहने लगे ॥ १३ ॥ कि, आप जल्दी अग्निको बुझाकर

धनुष बाण कवच बख्तर आदि धारण कीजिये और जबतक आप इस सेनाका नाश करैं तबतक जानकीजीभी किसी गुहामें बैठी रहैं ॥ १४ ॥ पुरुषसिंह श्रीरामचंद्रजीने प्रति उत्तर दिया कि–हे वत्स सौमित्र ! यह तो तुम भलीभांति देखलो कि, यह सेना है किसकी इसके चिह्न देखकर विचार करो ॥ १५ ॥ रामचन्द्रजी के ऐसे वचन सुन लक्ष्मणजी क्रोधसे अग्निकी समानहो, उस सेनाको मानों जलाने के लिये यह बोले ॥ १६ ॥ स्पष्ट दृष्टि आता है कि, कैकेयीकुमार भरत राज्य पाकर अब उसको अकंटक भोग करनेके लिये हम दोनों जनोंको मार डालनेके अर्थ यहां आते हैं ॥ १७ ॥ देखिये यह जो बहुत बडा शोभायमान वृक्ष ठीक २ दीख पडताहै उसकेही समीप रथके ऊपर यह उजले २ स्कंध धारण किये कोविदारकी ध्वजा विराजमान हो रही है ॥ १८ ॥ यह देखिये ! घुडसवार लोग भी बडे २ धावा मारनेवाले शीघ्रगामी घोडोंपर सवार होकर इसी ओरको चले आते हैं; और हाथियोंके सवारभी परम हर्षसे अपना २ चिह्न धारण किये हाथियोंपर सवार हुए विराजमान होरहेहैं ॥ १९ ॥ इससे भलीभांति विदित होताहै कि यह भरतजीकी ही सेनाहै । हे वीर ! हम दोनों जन इस धनुष बाणको ग्रहण करकै इस पर्वतपरही बैठे रहैं अथवा दोनों जन कवच धारण करकै हथियार लगाये तैयार इसी स्थानपर बैठे रहैं ॥ २० ॥ कोविदार ध्वजा धारण करनेवाले भरतजी निश्चयही युद्धमें हमारे वशमें होजाँयगे, यह बड़ेही हर्षकी बातहै । जिनके कारण हम लोगोंपर यह महाकष्ट आनकर पडा है आज देखेंगे कि, वह भरत कैसेहैं ॥ २१ ॥ हे रघुनंदन ! आप हम व सीताजी जिनके लिये महा कठोर खोटी दशामें पड़ेहैं और विशेष करकै आप जिनके लिये निरन्तर राज्यसे च्युत हुयेहैं ॥ २२ ॥ हे वीर ! इस समय वही परमशत्रु भरत यहांपर आयेहैं सो उनको मारही डालिये क्योंकि यह वध करनेकेही लायकहैं, हमको तो भरतके वध करनेमें कोई दोष नहीं दृष्टि आता ॥ २३ ॥ जो आदमी पहले अपकार करे उसके मार डालनेसे कोई अधर्म नहीं होता, हे रघुनंदन ! भरतने हमारा प्रथमही अपकार कियाहै अतएव उनको छोड देनेसेही अधर्म होगा ॥ २४ ॥ भरतजीके मारेजानेपर आप विघ्नरहित होकर सब पृथ्वीका राज्यभोग कीजिये ! राज्य पानेकी इच्छा किये कैकेयी आज अपने पुत्रको लड़ाईमें मराहुआ देखैगी ॥ २५ ॥ हमारे हाथसे हाथीके तोडे हुये वृक्षकी समान भरतको मरा हुआ देख कैकेयी बहुतही दुःखित होगी हम कैकेयीकोभी बंधु बान्ध–

वों और उस दुष्ट कुबरीके सहित मारडालेंगे ॥ २६ ॥ आज यह पृथ्वी महापापसे छूट जायगी हे मानके देनेवाले ! आज यह बहुत दिनोंका क्रोध व असत्कार॥ २७॥ शत्रुओंकी सेनापर छोडतेहैं जैसे कोई सूखे तिनकोंके ढेर पर अग्नि छोडे आजही चित्रकूटका वन अपने तीखे बाणोंसे ॥ २८ ॥ शत्रुओंके शरीरको काट २ उनके निकले हुए रक्तसे सींचैंगे। बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदय हुए हाथी घोडोंको ॥२९॥ हमारे मारे हुए इस वनमें कुत्ते घसीटैंगे, इस महावनमें बाणोंसे व धनुषसे हम॥ ३०॥ सेना सहित भरतको मारकर निःसन्देह उऋण होजाँयगे ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अयो० भाषायां षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ९७.

श्रीरामचन्द्रजी सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीको भरतजीके प्रति ऐसे लडनेको उद्यत और बहुतही क्रोधित देखकर भलीभांति समझाते बुझाते कहने लगे ॥ १ ॥ महाबल महोत्साह भरतजी जब कि, आपही आयेहैं तब धनुष तलवार और ढालसे क्या प्रयोजनहै ? ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! हम यह प्रतिज्ञा करकै पिताजीके सत्यका पालन करैंगे, अब भरतको वधकर इस दुर्नामता युक्त राज्यको लेकर क्या करैंगे ॥ ३ ॥ भाई बन्धु या मित्रलोगोंके नाश होनेसे जो वस्तु प्राप्त होवे,हम उसको विष मिले हुए भोजनकी समान कभी ग्रहण करनेकी अभिलाषा नहीं करते॥ ४॥हेलक्ष्मण ! हम तुमसे प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि, केवल तुम सब भ्राताओंकेही लिये धर्म,अर्थ,काम अथवा पृथ्वीके ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं॥५॥हम सत्यही सत्य और हथियारोंको छूकरकै कहते हैं कि, सब भ्राताओंका भलीभांति पालन और सुख साधन करनेके लिये हम राज्यकी अभिलाषा करते हैं ॥ ६ ॥ हे सौम्य ! सागरों करकै युक्त यद्यपि यह पृथ्वीभी हमको दुर्लभ नहीं है परन्तु अधर्मसे इन्द्रका पद ग्रहण करनेको भी हमारी अभिलाषा नहीं है ॥७॥ हे मान देनेवाले तुम्हारे बिना, भरतके बिना, और शत्रुघ्नके बिना हमको यदि कुछ सुख होता हो तो ऐसा सुख अग्निमें जल जाओ ॥८॥हे पुरुषोत्तम ! हे वीर ! हमको ऐसा जान पडता है कि, प्राणोंकी समान प्यारे भाइयोंके ऊपर स्नेह रखनेवाले भरत इस कुलमें बडेहीको राज्य मिलता है इस कुलधर्मको स्मरण कर अयोध्यामें आये होंगे ॥ ९ ॥ और हे पुरुषोत्तम ! जब उन्होंने यह सुना होगा कि, जटा वल्कल धारण कराय हमको वनवास हुआ व

संगमें जानकीजी व तुमको भी आया हुआ सुना ॥ १० ॥ तब मारे स्नेहके आ-क्रांतहृदय हो और शोकसे व्याकुल चित्त होकर हमको देखनेके लिये आये हैं और किसी कारणसे उनका आना नहीं हुआ है ॥ ११ ॥ वह श्रीमान् भरतजी जननी कैकेयीपर क्रोध प्रकाश कर अप्रिय वचन कह पिताजीको प्रसन्न कर हमको राज्य देनेके लिये आये हैं कुछ लडने भिडनेको नहीं ॥ १२॥ ऐसी विपत्तिके समय जब कि, यह हमको देखनेके निमित्त आते हैं तब वह कभी मनमें भी हमारे प्रति अहिताचरण करेंगे ऐसा समझ नहीं पडता॥ १३॥भरतजीने पहले कब तुम्हारा क्या अनिष्ट किया ? जो उसके लिये तुम उनसे डरकर इस प्रकार भयकी वार्त्ता कहते हो ॥ १४ ॥ भरतजीको किसी भांतिकी निठुर व अप्रिय वार्त्ता कहनी तुमको उचित नहीं है भरतजीको खोटे वचन कहनेसे मानो वह हमको ही कहे गये॥ १५॥ हे लक्ष्मण ! जहां कैसीही भारी विपत्ति क्यों न आन पडे पिता किसी प्रकारसेभी पुत्रका अथवा भ्राता प्राणकी समान भ्राताका, कभी वध नहीं कर सकता ॥ १६॥ यदि तुम राज्यही लेनेके लिये इस प्रकारकी वार्त्ता कह रहे हो तो भरतजीसे मिलतेही हम कहैंगे कि भइया ! राज्य लक्ष्मणको देदो ॥ १७ ॥ हे लक्ष्मण ! हम सत्यही कहते हैं जब कि, भरतजीसे हम कहेंगे कि लक्ष्मणको राज्य देदो तब भर-तजी निश्चयही इस बातको मान कहैंगे कि अच्छा हम राज्य दिये देतेहैं ॥ १८ ॥ धर्मशील भ्राता रामचंद्रजीके इस प्रकार कहनेपर उनके हितैषी लक्ष्मणजी लाजसे संकुचित होकर ऐसे होगये मानों अपने शरीरके अंगोमें पैठे जातेहैं ॥ १९ ॥ अनन्तर लक्ष्मणजीने लज्जित होकर उत्तर दिया कि महाराज ! हम भरतजीको ऐसा समझैंगे मानो स्वयं पिता दशरथजीही आपके देखनेको आयेहैं ॥ ॥ २० ॥ लक्ष्मणजीको लज्जित हुआ देखकर रघुनंदन महाबाहु रामचंद्रजीने कहा कि हमभी तुम्हारी बातको मानतेहैं, और हमभी ऐसेही समझतेहैं कि हमारे देखनेको आरहेहैं ॥ २१ ॥ अथवा हमकोभी यही बात समझ पडतीहै, कि वह हमको सुखके योग्य समझकर वनवासके दुःखोंको स्मरण करते हुए निश्चयही हमें अयोध्याजीको लौटानेके लिये आयेहैं और हमको लौटाकर ले जायँगे ॥ २२ ॥ अथवा वह रघुराज श्रीमान् हमारे पिताजी अत्यन्तही सुखके पानेके योग्य इन जनककुमारी जानकीजीको वनसे लौटाकर ले जायँगे ॥ २३ ॥ यह देखो श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए वायु वेगकी समान शीघ्र चलनेवाले अत्यन्त बलशाली उनके दोनों मनोहर

घोडे अब भलीभांति दिखाई पडतेहैं ॥ २४ ॥ यह देखो बुद्धिमान् पिताजीका वह बडे डील डौलवाला वृद्ध शत्रुंजय नामक हाथी भी सेनाके आगे २ चला आताहै ॥ २५ ॥ परन्तु हे महाभाग । पिताजीका पांडुवर्ण लोक विख्यात दिव्य छत्र देख न पडनेसे हमारे मनमें सन्देह होताहै ॥ २६ ॥ अतएव हे लक्ष्मण ! तुम वृक्षसे नीचे उतरकर जो हम कहैं सो करो । जब धर्मात्मा रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा ॥ २७ ॥ तब युद्धमें जीतनेवाले लक्ष्मणजी शालके पेडकी शाखासे नींचे उतरकर हाथ जोडकर श्रीरामचंद्रजीके पास आय खडे हुए ॥ २८ ॥ इस ओर रामचंद्रजीके आश्रमको किसी प्रकारकी पीडा न पहुँचे इस कारण भरतजीकी आज्ञासे सब सेना चित्रकूटक पर्वतके चारों ओर बडी दूरके घेरेमें टिक रही॥२९॥ वह हाथी घोडों करके युक्त भरतजीकी सेना पर्वतके किनारे छः छःकोशतक पडी ॥ ३० ॥ जब इस प्रकार नीतिके ज्ञाता भरतजीने रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीकी प्रसन्नताके लिये धर्मको आगेकर स्वर्गको त्याग इस प्रकार चित्रकूटमें सेनाको टिकाया तब वह सेना अत्यन्तही शोभित होने लगी ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयो०भाषायां सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमः सर्गः ९८.

वह प्राणियोंमें श्रेष्ठ परम शक्तिमान् गुरुकी शुश्रूषा करनेवाले भरतजी सेनाको इस भांतिसे टिकाकर पिताके वचनोंका पालन करनेवाले श्रीरघुनंदन रामचन्द्रजीके पास पैदलही जानेकी इच्छा करते हुए ॥ १ ॥ इसी कारण भलीभांति सिखाई पढाई सब सेनाके इच्छानुसार टिकजानेपर भरतजीने भ्राता शत्रुघ्नसे कहा ॥ २ ॥ हे सौम्य ! तुम शीघ्रही बहुतसे मनुष्य और इन सब निषादोंके साथ मिलकर इस वनमें चारों ओर रामचन्द्रजीको ढूंढो ॥ ३॥ स्वयं निषादराजा गुहभी अपनी जाति वाले सहस्रों मनुष्योंको संग ले शर धनुष और खड्ग लेकर राम लक्ष्मणजीको इस वनमें ढूंढै ॥ ४ ॥ हमभी अपने समुदाय मंत्री नगरवासी गुरु वसिष्ठजी व ब्राह्मणोंके साथ पैदल चलकर समस्त वनमें ढूंढते हुए विचरण करैंगे ॥ ५ ॥ जबतक रामचंद्रजीको महाबलवान् लक्ष्मणजीको अथवा महाभागा सीताजीको न देखलेंगे तब तक हमको शांति नहीं प्राप्त होगी ॥ ६ ॥ जबतक बडे भाई रामचंद्रजीके पद्मदल सम विशाल नेत्र और चंद्रतुल्य सुकुमार वदनमंडल न देखलेंगे तबतक हमको

शान्ति नहीं प्राप्त होगी ॥ ७ ॥ सदाही जो रामचन्द्रजीका निर्मल और चन्द्रमा सदृश परम तेजवान और कमल नेत्रसे युक्त मुखमंडल देखते हैं वह लक्ष्मणही कृतार्थ हैं ॥ ८ ॥ जबतक श्रीरामचन्द्रजी महाराजके राजचिन्होंसे अंकित चरण युगल अपने मस्तकपर नहीं लगावेंगे तबतक मेरा मन स्थिर नहीं होगा ॥ ९ ॥ राज्यके योग्य श्रीरामचंद्रजी पिता पितामहादिकोंके सिंहासनपर विराजमान होकर जबतक अभिषेकके जलसे भीजेंगे नहीं तबतक हमें शान्ति प्राप्त नहीं होगी॥ १०॥ वह महाभाग्यवान जनक कुमारी वैदेहीजीभी धन्य हैं क्योंकि वह सागरपर्य्यंत पृथ्वीके पति रामचन्द्रजीके साथ वनको गई हैं॥ ११॥ हिमालय पर्वतकी समान यह चित्रकूट पर्वतभी धन्यहै । क्योंकि जिस पर्वतपर राघवेंद्र श्रीरामचन्द्रजी कुबेरकी नाईं वसते हैं ॥ १२ ॥ सर्पादिक दुष्ट जन्तुओं करके पूर्ण यह दुर्गम वनभी कृत-कृत्य होगया है क्योंकि इस महावनमें शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ महाराज रामचन्द्रजी वास करत हैं ॥ १३ ॥ महातेजस्वी महाबाहु पुरुषोत्तम भरतजी यह कहकर पैदलही महावनमें प्रवेश करते हुए ॥ १४ ॥ बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ महात्मा भरतजी पर्वतके कँगूरोंपर जमे हुए फूले फले वृक्ष समूहोंके बीचमें होकर गवन करने लगे ॥ ॥ १५ ॥ चलते २ चित्रकूट पर्वतके एक शाल वृक्षपर आरोहण करकै रामचं-द्रजीके आश्रममें लगी हुई ध्वजाको देखा । व आगका धुँआभी देख पडा ॥ १६॥ इन चिह्नोंको देखकर और यह जानकर कि, रामचन्द्रजी यहीं हैं भरतजी समु-दाय बन्धु बांधवोंके सहित बहुतही हर्षित हुए जैसे कोई जलमें डूबता हुआ पार पहुँच जानेसे प्रफुल्लित होताहै ॥ १७ ॥ इस भांति गिरिराज चित्रकूटपर तप-स्वियोंसे सेवित रामचन्द्रजीके आश्रमको जानकर, उन महात्मा भरतजीने फिर ढूंढनेके अर्थ गुहके सहित शीघ्र वहांको प्रस्थान किया और जो सेना इधर उधर थी उसको भी वहीं टिका दिया ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि० अयो० भाषायां अष्टनवतितमः सर्गः ॥९८॥

नवनवतितमः सर्गः ९९.

जब सब सेना टिक टिकाय गई तब भरतजी उत्सुकहो शत्रुघ्नजीको रामाश्रमके चिह्नादि दिखाते २ भ्राता रामचन्द्रजीके दर्शनकी वासनासे गमन करने लगे॥ १॥ ऋषि वसिष्ठजीसे "आप हमारी माताओंको ले आइये" यह कहकर गुरुवत्सल भर-

तजी अति शीघ्रतासे आगे चले॥ २॥ सुमंत्र और शत्रुघ्नजी भी उनके पीछे जाने लगे रामचन्द्रजीके दर्शनका जिस प्रकारसे भरतजीको आनंदथा वैसेही निषाद गुह और शत्रुघ्नजीको रामचन्द्रजीके दर्शनकी चटापटी लग रहीथी ॥ ३ ॥ श्रीमान् भरतजीने जाते २ तपस्वियोंके आश्रमके बीचों बीचमें भ्राता रामचन्द्रजीकी पर्णकुटी देखी ॥ ४ ॥ भरतजीने देखा कि, पर्णशालाके सामनेही होमके लिये टूटे हुये काष्ठ और पूजाके लिये फूल बीन कर रक्खे हुये हैं ॥ ५ ॥ भरतजीने औरभी देखा कि पीछे मार्ग न पहँचाना जाकर मनसे उतर जाय इस कारण आश्रमवासी राम लक्ष्मणजीने किसी २ स्थानमें वृक्षोंपर फटे हुये चीर बाँधेथे ॥ ६ ॥ भरतजीने यहभी देखा कि उस पर्णकुटीमें शीतनिवारण करनेके लिये मृग और महिषका सूखा गोबर तापनेके अर्थ ढेरों रक्खाहै ॥ ७ ॥ महाबाहु धृतिवान् भरतजी गमन करते २ हर्षसहित शत्रुघ्नजी और सुमंत्रादिक मंत्रियोंसे बोले ॥ ८ ॥ महर्षि भरद्वाजजीने जिसको बतायाथा सो जान पडताहै कि हम उसी स्थानपर पहुँच गये। नदी मन्दाकिनीभी यहांसे कुछ दूर नहीं मालूम होती ॥ ९ ॥ यह देखो! वृक्षोंकी ऊपरकी डालियोंमें जो कपडे बंधेहैं. सो लक्ष्मणनेही बांधे होंगे क्योंकि समयविशेष अर्थात् अंधकारके समय जल आदि लाना पडे तो मार्ग न भूल जाँय इस कारण लक्ष्मणजीने यह कपडे बांध दियेहैं ॥ १० ॥ वेगवान् बडे दांतवाले हाथी सब परस्पर गर्जगर्जाकर पर्वतीले इस मार्गपर सदाही आते जाते रहतेहैं ॥ ११ ॥ तपस्वीलोग वनमें जिसको आधीन करनेकी इच्छा करतेहैं यह उसी अग्निका बडा कृष्णवर्णका धुंआ देख पडताहै ॥ १२ ॥ अतएव इसी स्थानपर हम साक्षात् महर्षिकी समान गुरुजनोंका वचन पूरा करनेवाले पुरुषश्रेष्ठ आर्य रामचन्द्रजीके दर्शन परम प्रसन्नतासे करेंगे ॥ १३ ॥ अनन्तर रघुनंदन भरतजी एक मुहूर्ततक चलकर मन्दाकिनी नदीसे समीपस्थ चित्रकूट पर्वतपर जा उपस्थित हुये और साथके मंत्री परिजनोंसे बोले ॥ १४ ॥ जो कि संसारभरमें सब पुरुषोंसे श्रेष्ठहैं वह लोगोंके प्रति श्रीरामचन्द्रजी निर्जनस्थानको प्राप्त हो वीरासन मारे बैठेहैं अतएव हमारे जीवन और जन्मको धिक्कारहै ॥ १५ ॥ जोकि सब लोगोंके नाथहैं वही महाद्युतिमान् श्रीरामचन्द्रजी हमारेही कारण दारुण दुरवस्थामें पडे और सब भांतिके सुख भोगसे छटकर वन २ में वास करतेहैं॥ १६ ॥ हमारी सब लोगोंमें निन्दा हुईहै अतएव इससमय उसीही कलंकको धोनेके लिये, और रामचंद्रजीके प्रसन्न करनेको उनक सीताजीके और लक्ष्मणके चरणों

पर गिरेंगे ॥ १७॥ दशरथकुमार भरतजी वनके बीच इसप्रकार अछताते पछताते विलाप करते २ परम पुण्यवती, मनको अधिक लुभानेवाली पर्णशालाके दर्शन करते हुए ॥ १८॥ शाल, ताल और अश्वकर्ण आदि वृक्षोंके पत्तोंसे यह पर्णशाला छाई हुईथी, देखनेसे वह ऐसी बोध होतीथी, मानों कोमल विशाल यज्ञवेदि फूलोंके समूह व कुशोंसे आच्छादित रहतीहै ॥ १९ ॥ सुवर्णके पंख लगे हुये इन्द्रके धनुषकी समान भार साधन और शत्रुओंके निवारण करनेवाले महासार बाणोंके समीप रहनेसे यह पर्णशाला शोभायमान होरहीथी ॥ २० ॥ इनके सिवाय वहां तरकसमें सूर्यके प्रभाकी समान जो समस्त भयंकर तीर थे उनसे दीप्तिमान् भुजंगोंसे घिरी नागोंकी भोगवती पुरीके समान शोभा पारहीथी ॥ २१ ॥ सुनहरी कब्जा और सुनहरी म्यानवाली तलवारोंसे शोभायमान व सुवर्णके बिन्दु लगे हुये ऐसी ढालोंसे शोभित ॥ २२ ॥ मृगयूथ जैसे किसी प्रकार सिंहके रहनेकी गुहामें नहीं जा सकते वैसेही कांचन भूषित चित्र विचित्र गोधांगुलि जो इधर उधर रक्खींथी इस कारण शत्रुलोगभी उस पर्णशालाको पराजय नहीं कर सकते ॥ २३ ॥ तिसके पीछे भरतजीने उन महाराज रामचन्द्रजीके वासस्थानमें प्रदीप्त अग्नियुक्त ईशान कोणकी ओर अति विशाल वेदी देखी॥ २४॥ भरतजी एक मुहूर्त्त भरतक तौ पर्णशालाको देखते रहे, फिर उसी पर्णशालामें बैठे जटाजूट धारण किये बडे भाई रामचन्द्रजीको देखा ॥ २५ ॥ भरतजीने सन्मुख जाकर देखा कि, चीर वल्कल पहरे मृगचर्म धारण किये अग्निकी समान निर्भय रामचंद्रजी बैठे हैं ॥ २६ ॥ उनकी भुजायें घटनोंतक आवें इतनी बडी, कंधे सिंहके कंधोंकी समान ऊंचे, नेत्रयुगल कमलदलकी समान, वह सागर पर्यंत पृथ्वीके मालिक और धर्मचारी ॥ २७ ॥ कुशके आसन जिसपर बिछरहे ऐसे चौतरेपर सीता और लक्ष्मणजीके साथ साक्षात् सनातन ब्रह्मकी समान बैठेथे ॥ २८ ॥ उनको देखकर कैकेयीकुमार धर्मात्मा भरतजी दुःख और मोहसे व्याकुल होकर रामचंद्रजीकी ओरको दौडे ॥ २९ ॥ देखतेही व्याकुल होगये किसी प्रकारसेभी धीरजको धारण नहीं कर सके अनन्तर गद्गद कंठ होकर प्रगट विलाप करने लगे और कुछ न बोलसके फिर धीरज धर बडी कठिनाईसे बोले ॥ ३० ॥ सभाके बीचमें जिन हमारे बड़े भाताकी उपासना करना मंत्री आदि सबही पुरुषोंका एक मात्र कर्त्तव्यहै, सो वनमें मृगयूथ इन हमारे बडे भाईकी उपासना कर रहेहैं ॥ ३१ ॥ नगरके योग्य हजारों मूल्यवान वसनोंसे सज

धजकर जिन महात्माकी शोभा बढतीथी वही आज हमारे बडे भाई धर्माचरण करनेके आशयसे मृगचर्मपर बैठेहैं ॥ ३२ ॥ जो सदाही विविध भांतिके चित्र विचित्र पुष्पोंकी माला धारण करतेथे आज वही रघुकुल प्रदीप्तकारी रामचंद्रजी न जाने किस प्रकारसे जटाओंके भारको सहन कररहेहैं ॥ ३३ ॥ ऋत्विकों (यज्ञ करनेवाले) के द्वारा यज्ञ करा करके जिनको धर्मका संचय करना उचित था वह अपने आपही शरीरको कष्ट देकर धर्मको संचय कररहेहैं ॥ ३४ ॥ महामूल्य चंदन जिनके अंगमें लगाया जाता था उन्हीं श्रेष्ठ रामचंद्रजीका शरीर इस समय मलीन होगया, हैं हमारे सो बडे भाई इसे कैसे सह सकतेहैं ? ॥ ३५ ॥ सुखके भोग करने लायक श्रीरामचंद्रजी हमारेही कारण यह दारुण दुःख पारहे हैं अतएव हमारे इस सर्वलोकमें निन्दित मूर्ख व निर्लज्ज जीवनको धिक्कारहै ॥ ३६ ॥ इस प्रकार महा व्याकुल हो विलाप करते २ और रोते २ भरतजी दुःखकी अधिकाईके वश रामचन्द्रजीके चरणयुगलको प्राप्त न होकर बीचही पृथ्वीमें गिरपडे उनका मुखकमल पसीनेके जलसे परिपूर्ण होगया ॥ ३७ ॥ उस काल दुःखसे बहुतही संतापित और दीन होनेके कारण महा बलवान् राजकुमार भरतजी केवल एकबार " आर्य " यही शब्द कहकर फिर और कुछ नहीं कह सके ॥ ३८ ॥ इतने आंसू आये और इतनी बाफ मुँहमें भर आई कि, गला रुक जानेके कारण तपस्वी रामचंद्रजीको देख " आर्य " यही शब्द कहकर वाक्शक्तिशून्यही होगये ॥ ३९ ॥ उसी समय शत्रुघ्नजीने रोदन करते २ रामचंद्रजीके चरणयुगलका वंदन किया, तब रामचन्द्रजी उन दोनोंको छातीसे लगाय चिपटाय आंसुवोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४० ॥ सूर्य और चंद्रमा जिस प्रकार शुक्र और बृहस्पतिके साथ आकाशमंडलमें मिलित होते हैं राम और लक्ष्मणजी भी वैसेही गुह और सुमंत्रसे मिले ॥ ४१ ॥ उस काल हाथियोंपर सवारी करनेके योग्य श्रीराम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न राजकुमारोंको उस महावनमें पैदल आये हुये देखकर वनवासी लोग आनंद रहित होकर नेत्रोंसे आंसू वरसाने लगे ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः १००.

जटाजूट रखाये चीर धारण किये श्रीरामचंद्रजीने भरतजीको हाथ जोड पृथ्वीपर गिरते हुये देखा मानों प्रलयकालमें कठिनाईसे देखने योग्य सूर्यनारायण तेजहीन

होकर पृथ्वीमें गिर पडे हैं ॥ १ ॥ और तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी भरतजीका पीला वदन और दुवला शरीर देख किसी प्रकारसे उनको भरत जानकर दोनों हाथोंसे पकडकर उठाने लगे ॥ २ ॥ अनन्तर भरतजीके मस्तकको सूँघकर उनको छातीसे लगाय और गोदीमें लेकर आदरपूर्वक पूछने लगे ॥ ३ ॥ हे भइया ! हमारे पिताजी कहां हैं ? जो तुम वनको आये हो पिताजीके रहते हुये तुम्हारा वनमें आना उचित नहीं हुआ ॥४॥ जो हुआ सो हुआ अनेक दिनोंके पीछे तुम नानाके घरसे आये हो सो देखकर हम सुखी हुए । प्यारे भइया ! तुम किस कारण इस भयंकर आकारवाले वनमें आये हो ॥५॥ हे भइया ! तुम वनमें जो आये हो; सो पिताजी तो अच्छी तरहसे राज्य करते हैं ! उन्होंने शोकसे विरकर सहसा परलोकको तौ गमन नहीं किया ? ॥ ६ ॥ हे प्रियदर्शन ! तुम बालकहो सो तुम्हारे हाथसे चिरस्थाई राज्यपद तो नष्ट नहीं हुआ ! हे सत्यपराक्रम ! तुम पिताजीकी सेवाको भलीभांति करते हो ? ॥ ७ ॥ राजसूय और अश्वमेध इत्यादि यज्ञोंके करनेवाले धर्ममें मति किये हुए सत्यप्रतिज्ञ हमारे पिता राजा दशरथजी तौ कुशलसे हैं ॥ ८ ॥ हे भ्रात ! जोकि विद्वानहैं सदाही वेदप्रणीत धर्मके करनेवाले हैं परम तेजवान् व इक्ष्वाकु वंशियोंके पुरोहितहैं उन ब्रह्मनिष्ठ वसिष्ठजीका तौ तुम यथायोग्य सत्कार करतेहो ॥९॥ हे तात ! आर्या कौशल्याजी व पुत्रवती सुमित्राजी तो अच्छीहैं ? और परम श्रेष्ठ देवी कैकेयीजी तो आनन्दसेहैं ? ॥ १० ॥ हे तात ! विनय संपन्न सब शास्त्रोंके जाननेवाले; निन्दारहित उत्तम कुलमें उत्पन्न, सब भले कर्मोंमें निपुण वशिष्ठजीके पुत्र पुरोहितका सत्कार करते हो ? ॥ ११ ॥ तुम्हारे अग्निहोत्रके कार्यमें नियुक्त सब होमकी विधिओंको जाननेवाला सरल चित्त पुरोहित अपने समयपर हवन किये हुए व जिसम हवन करनेको बाकी रहताहै उसको जगाते रहते हैं ॥ १२ ॥ हे प्यारे देवताओंको, नौकर, चाकरोंको, पिताहीकी समान गुरु जनोंको, वृद्धोंको, वैद्योंको, और ब्राह्मणोंको सब भांतिसे तुम मानते तो हो ? ॥ १३ ॥ हे तात ! श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्र सम्पन्न राजनीति विशारद न्याय शास्त्रमें अति कुशल सुधन्वा नामक धनुर्वेदाचार्यका तो कुछ अपमान नहीं किया ॥ १४ ॥ हे भइया ! अपने समान् विश्वासी शूर वीर सब शास्त्र पढे, इशारेसे मनकी बातको जान लेनेवाले, जितेन्द्रिय ऐसे जिनमें गुणहा उन पुरुषोंको तुमने अपना मंत्री तो कियाहै ? ॥ १५ ॥ हे रघुनंदन ! नीतिशास्त्रोंके जाननेवाले श्रेष्ठ मंत्रियोंसे यत्नपूर्वक एकान्त भेदकी सलाह

लेनाही राजाओंकी विजयका मूलहै ! सो तुम ऐसा करतेहो ? ॥ १६ ॥ भला कभी सन्ध्याकालमें सोय तौ नहीं जाते ? व अकालमें तौ नही जाग पडते ? समय पर जागतेहो ? एक पहर रात्रि रहे जागकर अपना प्रयोजन सिद्ध होनेके उपायको विचारतेहो? ॥ १७ ॥ तुम एकहीके साथ अथवा बहुतोंके साथ बैठकर तौ सलाह नहीं करते तुम्हारा स्थिर किया हुआ मंत्र सब राज्यमें प्रचारित तौ नहीं होजाता? ॥ १८ ॥ हे रघुनंदन ! भला किसी कार्यको निश्चय करके थोडेहीमें सधजाय और महाफलका देनेवालाहो ऐसे कामको आरंभ करनेमें कुछ देर तौ नहीं करते? ॥ १९ ॥ तुम्हारे कार्य सर्व प्रकारसे भली भांति होजानेपर अथवा पूरे होनेही पर तौ सब छोटे २ राजा जानतेहैं उन कर्मोंके होनेसे प्रथम तो वह उनको नहीं जान सकतेहैं ? ॥ २० ॥ शत्रुलोग तो कोई उपाय वर्त्तक करके तुम्हारी अप्रकाशित सलाहको तो जान लेनेमें समर्थ नहीं होते ? किन्तु तुम या तुम्हारे मंत्री लोग तौ सदा युक्तिपूर्वक तुम्हारे दुष्मनोंकी सलाहको जान लेतेहैं ? ॥ २१ ॥ जब अर्थ समझनेकी कठिनता आ पडतीहै तब पंडितलोगही कल्याण साधन करतेहैं अतएव तुम सहस्र मूर्खोंको छोडकर एक जन पंडितकी कामना करते हो या नहीं ॥२२॥ राजा यदि हजार अथवा दश हजार मूर्खोंका प्रतिपालन करे तथापि उनके द्वारा कुछ भी सहायता नहीं प्राप्त होसकती ॥ २३ ॥ बुद्धिमान् शूर, चतुर और होशियार ऐसा केवल एक मंत्रीसेभी राजा व राजपुत्रोंको विपुल सम्पत्ति प्राप्त होतीहै ॥२४॥ हे भाई ! तुम उत्तम कार्यमें उत्तम, मध्यम कार्यमें मध्यम और अधमकार्यमें अधम नौकर चाकरोंको नियुक्त करतेहो अथवा नही ? ॥ २५ ॥ भ्रातः ! जोकि सब मंत्री आदि रिशवत नहीं ग्रहण करते, जिनकी बाहरी और भीतरी इन्द्रियें शुद्धहैं जोकि बाप दादाके समयसे मंत्रीपदपर चले आतेहैं सो ऐसे मंत्रियोंको तौ तुम श्रेष्ठ कामोंमें नियोजित करते हो वा नहीं ॥२६॥ हे कैकेयी-नंदन ! राज्यके मध्यमें प्रजागण तौ कठोर दंडसे नितान्त दंडित नहीं होते मंत्री लोग तौ तुम्हारा अपमान नहीं करते ॥ २७ ॥ कुलकी स्त्रियां जिस प्रकार अतिकामी पुरुषको जो बलपूर्वक परस्त्री गमन करताहै, उसे पतित व भ्रष्ट समझ-तीहैं अथवा पतित पुरुष जिस प्रकार लोगोंका वर्जित होकर रहताहै, इस प्रकार यज्ञके करनेवाले ऋषि लोग तौ तुम्हारी अवज्ञा नहीं करते ? ॥ २८ ॥ उपाय सोचनेमें बहुत चतुर कि जब चाहें तब राजाके विरुद्ध कोई जाल किया और जब

चाहें तब उसे भेंट दिया, विद्या विशारद जोकि कोई ऐसी विद्या जानताहो कि जिससे राजाका कुछ अनिष्ट होसके, जोकि राजाको मारकर आप स्वतंत्रतासे राज्यका भोग करना चाहताहो, शूर बलवानभी हो ऐसे मंत्रीको जो राजा लोग नष्ट नहीं करतेहैं वे उस मंत्रीके वा वैद्यके हाथसे स्वयं नष्ट होतेहैं तुम्हारे तो ऐसा नहीं है अर्थात् ऐसा मंत्री वैद्य भृत्य नही रखना चाहिये ॥ २९ ॥ भला तुमने धीर धारण करने वाला, बुद्धिमान्, पवित्र, शूर, ढीठ, अच्छे कुलमें उत्पन्न हुआ, स्वामीके कार्यमें तत्पर और चतुर पुरुषको सेनापति कियाहै वा नहीं ? ॥ ३० ॥ दो तीन वार जिन लोगोंके बल विक्रमका परिचय और परीक्षा होगई है वैसे बलवान युद्धविशारद, विक्रमविशेष रखनेवाले पुरुषोंका तुम आदर सत्कार करतेहो वा नहीं ? ॥ ३१ ॥ व सेना आदिके सैनिक तथा और नौकर चाकरोंको प्रतिदिन भोजन और मासिक नौकरीका रुपया तो महीने भरमें देदेतेहो ? बिलंब तो नहीं करते ? ॥ ३२ ॥ क्योंकि नौकर चाकर लोगोंको जब यथासमय भोजन और तनख्वाह नहीं मिलती तब वह अपने मालिकपर क्रोध करतेहैं और उससे उनका चित्त फिर जाताहै ! इस प्रकार नौकर चाकरोंकी प्रभुपर विरक्ति होनेसे महा अनर्थ होजाताहै ॥ ३३ ॥ भला तुम्हारे वंशवाले प्रधान २ सरदार लोग तो तुम्हारे ऊपर अनुरक्त हैं ? और तुम्हारे लिये एकचित्त होकर वह प्राणतक दे डालनेको तयार हो सकते हैं ॥ ३४ ॥ हे भ्रातः ! अपनेही देशका रहनेवाला ज्योंका त्यों सन्देशा कहनेवाला यह नहीं कि कुछ अपनी ओरसे घटा बढा दिया अपने मनसेभी यथार्थ प्रश्नोत्तर करनेवाला विद्वान् अनुकूल और पंडित ऐसे पुरुषको तुमने अपने दूतके काममें नियोजित कियाहै वा नहीं ? ॥ ३५ ॥ भला जो नीतिशास्त्रमें राजाओंके लिये १ मंत्री २ पुरोहित ३ युवराज ४ सेनापति ५ द्वारपाल रनवासका रक्षा करनेवाला (खोजा) ६ कारागाराध्यक्ष अर्थात् जेलखानेका दरोगा ७ खजानची ८ राजाकी आज्ञाके अनुसार औरोंको आज्ञा देनेवाला ९ वकील १० धर्माध्यक्ष ११ व्यवहारोंका निर्णय करनेवाला १२ फौजकी तनख्वाह बांटनेवाला १३ ठेकेदार १४ नगराध्यक्ष (कोतवाल) १५ डाकोंपे रहनेवाला और उसका रक्षक १६ दुष्टोंको दंड देनेका अधिकारी फरांस १७ जल पर्वत कोट इनकी रक्षा करनेवाला १८ ये अठारहहैं मंत्रीके समान इन लोगोंको रखना चाहिए सो तुम रखतेहो वा नहीं सोभी औरोंके राज्यके ये १८ जो हैं इनमें मंत्री पुरोहित युवराज इन तीन

जनोंके सिवाय सेनापत्यादि १५ अपने समीप व प्रत्येक विषयके लिये कमसे कम तीन दूत रखतेहो ? व हरकारोंकी कभी परीक्षाभी लेते रहतेहो कि यह लोग कहां-पर कौन २ कार्य कर रहेहैं ॥ ३६ ॥ हे शत्रुओंके मारनेवाले ! जिन अपने शत्रुओंको तुमने अपना या राज्यका बुरा करनेके कारण अपने राज्यसे नि-काल दिया है और वही वैरीलोग फिर राज्यमें वसने आवें सो विनाअच्छी तरह परीक्षा लिये उनको दुर्बल समझ कि, यह हमारा क्या करेंगे लाओ वसने दे, उनको अपने राज्यमें वसने तो नहीं देते ? क्योंकि ऐसे लोग अपने पिछले वैरको कभी नहीं भूलते ॥ ३७ ॥ भ्राता ! जो ब्राह्मणलोग केवल तर्कशास्त्रही पढे हैं और वाममार्गी हैं और बौद्धमतके अनुयायी हैं, वे लोग अपनेको वृथाही पंडित अनुमानकर अभिमान करते हैं केवल लोगोंका अनर्थ करनाही उनकी चतुराई है सो तुम ऐसे लोगोंकी सेवा तो नहीं करते ॥ ३८ ॥ क्योंकि यह लोग बडे दुर्बुद्धि पंडित होते हैं यद्यपि सब मनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्र व वेद सब विद्यमान हैं पर दुष्ट कुछ नहीं देखते बरन अपने मन माना तर्ककर इन धर्मशास्त्रोंके विपरीत ना-स्तिकोंके धर्म बतादेते हैं जो सदा निरर्थक हैं ॥ ३९ ॥ हे तात ! भला हमारे पूर्व पुरुष इक्ष्वाकु, दिलीप, रघुश्रेष्ठ दशरथादिकी भोगी हुई दृढ द्वार लगी जिसमें हाथी घोडोंके समूहके समूह आते जाते हैं ॥ ४० ॥ जोकि हजार २ अपने २ कर्मोंमें लगे हुये उत्साही जितेन्द्रिय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनसे सदा परिपूरित हैं ॥ ४१ ॥ भांति भांतिके आकार वाले महल दुमहले चौमहले जिसमें जहां अनेक विद्याओंके जाननेवाले मनुष्य व्याप्त हैं उस ऋद्धि सिद्धि युक्त सार्थक नाम धारण करनेवाली अयोध्या पुरीकी उत्तम प्रकारसे रक्षा करते हो ? ॥ ४२ ॥ हे भरत ! जहां हजारों देवमंदिर शोभा पा रहे हैं और सब मनुष्य सुख स्वच्छंदतासे रहते हैं बहुत सारे देवस्थान पौशाला तलावोंसे जिसकी शोभाकी सीमा नहीं है ॥ ४३ ॥ जहांके सब स्त्री पुरुष महा हर्षित रहते हैं समाजोंके उत्सव होने हुवानेसे सुशोभित, जिसके प्रान्त अच्छे बलिष्ठ पशुओंसे शोभित जहां हत्याका नाम और गंधतक नहीं ॥ ४४ ॥ बहुतसी नदी तलावोंसे संयुक्त हिंसाकारि जन्तुओंसे हीन जहां किसी प्रकारका कोई डर नहीं जहां किसीका भय नहीं और रत्नोंकी खानें शोभा पारही हैं ॥ ४५ ॥ जिस जगह कोई पापात्मा मनुष्य हैही नहीं. जो स्थान कि, हमारे पहले पुरुषाओंसे रक्षित था, हे भरतजी ! वह धन धान्य युक्त देश तो कुशलपूर्वक बसताहै ? ॥ ४६ ॥

भइया ! जो लोग खेती करके और पशुओंका पालन करके अपना गुजारा करते हैं इनसे विशेष प्रसन्न तौ रहते हो ? यह सब मनुष्य वाणिज्यके कार्यमें नियुक्त रहकर धन धान्य यक्त होतेहैं॥४७॥तुम उन लोगोंकी चोरी डांके आदिसे रक्षा करके भली भांति उन लोगोंका भरण पोषण करते हो ? क्योंकि अपने अधिकारके सबही लोगोंकी रक्षा करना राजाको परम कर्त्तव्य है ॥ ४८ ॥ भला अपनी स्त्रियोंको तो समझाते रहकर उनकी रक्षा भली भांति करते हो उनका विश्वास करके कोई अपना गुप्त वृत्तांत तो उनसे नहीं कहदेते ? क्योंकि स्त्रियोंके पेटमें कोई बात पचती नहीं ॥ ४९ ॥ जिन सब वनोंमें हाथी होतेहैं वह सब नागवन भली प्रकारसे रखाये तौ जातेहैं ? भला तुम गाय बैल इत्यादिकोंको तौ भली भांति पालन पोषण करतेहो हाथी हथिनी और घोडोंके पालनेसे तुम्हारी कभी तृप्ति तौ नहीं होती कि, बहुत होगये अब पाल कर क्या करेंगे॥५०॥हे राजकुमार!प्रतिदिन दो पहरसे पहलेही उठकर अच्छे २ वस्त्राभूषण धारण कर प्रजाओंको सभामें और राजमार्गमें विचरकर दर्शनतो देतेहो ॥ ५१ ॥ कर्मचारीलोग निःशंक भावसे तौ तुम्हारे निकट नहीं चले आते, या मारे डरके अति दूर तौ नहीं रहते ? क्योंकि राजाओंका मध्यभावसे सेवन करना चाहिये ॥ ५२ ॥ तुम्हारे सब दुर्ग तो धन धान्य हथियार जल अनेक प्रकारकी कलों व धनुर्द्धारी आदिकोंसे पूर्णहैं वा नहीं ! ॥ ५३ ॥ हे भरत! तुम्हारी आमदनी बहुत और खर्च बहुतही कमहै ? हे राजकुमार ! तुम्हारा खजाना नाच तमाशे गानेवाले और नट आदिक अपात्रोंमें खर्च करनेसे तौ खाली नहीं होताहै ॥ ५४ ॥ तुम देवताओंके लिये, पितरोंके लिये, ब्राह्मणोंके लिये और अतिथिसेवामें और योद्धालोग व मित्रलोगोंके भरण पोषण करनेमें तौ धन खर्च करतेहो अथवा नहीं ॥ ५५ ॥ अच्छे चरित्रवाले साधुलोग जो झूंठे अपवादोंसे दूषितहो विचारके लिये न्यायालयमें आवें और धर्मशास्त्रके जाननेवाले वकील करके किसी प्रकार यदि उनका दोष प्रमाणित नहीं हो तब धनके लोभसे तुम उन निर्दोषियोंको दंड तो नहीं देते ॥ ५६ ॥ अथवा हे पुरुषोत्तम ! चोरके पकडे जाने पर साक्षीके द्वारा उसकी चोरी प्रमाणित होने या चोरी करनेके सब लक्षण प्रगट पाने परभी विना दंड लिये धनके लोभसे तो तुम उसको नहीं छोड देते ॥ ५७ ॥ हे रघुनंदन ! धनी और गरीबमें परस्पर झगडा होनेपर तुम्हारे बहुत शास्त्रोंके जाननेवाले मंत्री लोग बहुत कहे सुने जानेपरभी निर्लोभहो उस झगडेका विचार करते

हैं अथवा नहीं ॥ ५८ ॥ हे भरत ! जब मिथ्या अपराधसे युक्त निरपराधीको दंड दिया जाताहै तब उसके नेत्रोंसे जो आँसुओंकी बूंदे गिरतीहैं उनसे दंड देनेवाले राजा व राजसेवकके पुत्र पशु धनादिकको वह आंसू नाश कर देतेहैं ॥ ५९ ॥ हे भरत ! बालक बूढे और बडे २ वैद्योंको तुम दानमान वचन इन तीनों उपायोंसे भली भांति वशमें तो करलेते हो ॥ ६० ॥ गुरु, बूढे, तपस्वी, अतिथि, व चौराहे के बीचमें लगे हुए वृक्ष और विद्या सदाचार सिद्ध काम ब्राह्मणगण इन सबको तुम नित्य नमस्कार करतेहो वा नहीं ? ॥ ६१ ॥ अर्थद्वारा धर्म अथवा धर्मके द्वारा अर्थको या काम व लोभसे इन दोनोंको तो नहीं रोक देतेहो कि न होने पातेहों ? ॥ ६२ ॥ हे जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ ! कालको जाननेवाले । हे वरद ! धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंको तौ यथाकालमें विभाग करकै तुम सेवा करते हो ? ॥ ६३ ॥ हे महाप्राज्ञ । धर्मशास्त्रके अर्थोंको जाननेमें विशारद ब्राह्मण लोग नगरवासी और देशवासी पुरुषोंके साथ मिलकर तुम्हारा सब प्रकारसे कल्याण चाहतेहैं वा नहीं ? ॥ ६४ ॥ भला नास्तिकपना, झुँठाई क्रोध, अहंकार, सुस्ती, ज्ञानवानोंका न देखना, आलकस, देखने सुनने सूंघने खाने आदिके वशीभूत होना ॥ ६५ ॥ अकेलेही राजकार्यके लिये विचार करना या ऐसे लोगोंसे सलाह लेना जो उसबातको नहीं जानते किसी बातका निश्चय करकै कि, उसको अमुक दिन करैंगे और उस दिन उसमें हाथ न लगाना, सलाहकी स्थिर हुई बात सबसे कहदेना ॥ ६६ ॥ प्रत्येक कामके प्रारंभ करनेमें मंगलशब्दोंका उच्चारण न करना, नीच व छोटे लोगोंको भी देखकर उठ खडे होना यह जो राजाओंके चौदह दोष होते हैं उनको तुमने अलग किया है अथवा नहीं॥ ६७ ॥ हे भरत! दशवर्ग, पांच वर्ग, चार वर्ग, सात वर्ग, आठ वर्ग,तीन वर्ग, व तीनों विद्या॥ ६८ ॥ इन्द्रियोंका जीतना, षट् वर्ग, देवता व मनुष्योंसे दुःख राज्यकृत २० वर्ग ५ प्रकृति १२ मंगल ॥ ६९ ॥ यात्राविधान, दंडविधान, मिलाप करना बिगाड करना इनमें जो करनेवाले हैं जो नहीं करनेवाले हैं उनको विचार सहित करते हो वा नहीं ? इनमें दशवर्ग यह हैं शिकार खेलना,जुआ खेलना, दिनको सोना, बत बढाव करना, स्त्रियोंका अति सेवन, नशा खाना, गाना सुनना बाजोंका सुनना, नाचका देखना और वृथा फिरना । पांच वर्ग यहहैं नदी तालावादिकोंके जलके बीचमें किला बनाना, पहाडों पर किला बनाना, वृक्षोंके बीचमें ऊसरमें किला बनना, हथियारोंके बीचमें किला बनाना यही पांच प्रकारके दुर्ग हैं

चार वर्ग यहहैं-साम (समझाना) दान देकर दुश्मनको काबूमें लाना, दुश्मनोंमें फूट करादेना, दंड देना; सातवर्ग यहहैं-स्वामी, मंत्री, देश; किला बनाना, खजाना रखना, सेना रखना, मित्र रखना, यह सातों राज्यके अंगहैं। आठ वर्ग यहहैं-चुगली, साहस, द्रोह, पराये गुणोंको न सह सकना, निन्दा करना, किसीके करे हुए अर्थको बुरा बताना, कठोर वचन कहना, दंड देना, यह आठों क्रोधसे उत्पन्न होतेहैं, कोई २ लोग इनको अष्ट वर्ग कहतेहैं। तीन वर्ग यहहैं-धर्म करना अपने लिये धन इकट्ठा करना, काम और तीन विद्या यहहैं-तीनों वेदोंका पढना; खेती वाणिज्यादि राजनीति, छैः वर्ग यहहैं मिलाप करना, वैर करना, आक्रमण करना, अपने किलेमें बैठा रहना, शत्रओंसे दूर रहना; व दूर रखना, भागकर कहीं जाय रहना। दैवयोगसे राज्यमें यह दुःख होतेहैं-आग लगाना, अति जल वर्षाना, महामारी हैजे आदिककी बीमारियोंका होना, अकाल पडना, मरना, मनुष्योंसे यह दुःख होतेहैं; राज्यके नौकर चाकरोंसे, चोरोंसे, दुश्मनोंसे, राजाके भाई बन्धुओंसे राजाके लालची होनेसे। व राज्यकृत्य यहहैं-किसीको नौकर न रखना, लालची न रहना, जो माननेके योग्यहो उसका अपमान न करना आप सदा कोप किये, हुए न रहैं वृथा किसीको कुपित न करैं, बहुत डरा न करैं, न किसीको डरपावैं। वीस वर्ग यहहैं-बालक, वृद्ध, सदा रोगी रहताहो, जातिसे बाहर निकाला हुआहो, डरपोकहो औरोंको डरपाताहो, लोभीहो, लोभीका संबंधीहो, प्रजा जिससे विरक्त होतीहो, इंद्रियोंके सुखमें अतिशय आसक्तहो, बहुत आदमीके साथ सलाह करनेवालाहो, देव ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला हो, भाग्यहीनहो, जो भाग्यहीके भरोसे हाथपै हाथ धरे बैठा रहताहो, अकालका सतायाहुआहो, बडा पहलवानहो, अपने देशका रहनेवालाहो, जिसके बहुत शत्र नहीं, यथा समयपर कार्यको न करै, और सत्य कर्म करनेमें जिसकी रुचि नहीं, सन्धिके अयोग्य यह वीस वर्गहैं। पांच प्रकृति यहहैं, मंत्री, देशवासी, किला, खजाना, दंड देना। राजमंडल यहहैं, शत्रु, मित्र, शत्रुका मित्र, शत्रुका मित्र शत्रुके मित्रका मित्र, परममित्र जो विजय की इच्छा करकै किसीपै चढा जाताहो उसके आगे २ चले, पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार आक्रन्दासार, यह पीछे २ चले व जो ऐसे नहों मध्यभाव रखतेहों वे दानों संग २ चले पांच प्रकारका यात्रा विधानहै; विगृह्ययान, सन्ध्यायान, सम्भूययान, प्रसंगतोयान, उपेक्ष्ययान, जहां बडी बहादुरीके सहित सेनापतियोंको संग लेकर यात्रा की-

जाय वह विगृह्ययानहै, जहां जिस शत्रुपर चढाईहो उससे मिलाप कर और शत्रुके ऊपर चढाई कीजाय वह सन्ध्यायानहै, जहां वीरोंको संगले खुला खुलीके साथ यात्रा की जाय वह सम्भूययानहै, जहां तैयारी और दुश्मनपर की जाय व बीचमें औरके ऊपर जाय पहुँचे वह प्रसंगतोयानहै, जहां शत्रुको प्रबल जान उसको छोड उसके मित्रपर चढाई कीजाय वह उपेक्ष्ययानहै व दंडविधान सेनाकी रचनाको कहते हैं ॥ ७० ॥ हे मतिमान् ! नीतिशास्त्रमें जिसप्रकार सलाह करनेको नियम लिखाहै तुम उसके अनुसार तीन या चार मंत्रियोंको लेकर उनमेंसे प्रत्येकके साथ अलग २ सलाह करतेहो ? वा सबको एक संगही बैठाकर सलाह करतेहो? ॥ ७१ ॥ तुम्हारे पढे हुए वेद सब कर्त्तव्य कार्यके अनुष्ठानद्वारा, सब क्रियायें इच्छानुसार फल प्रसवद्वारा स्त्रियें सब धर्मका आचरण करकै संतानद्वारा, और शिक्षा वा शास्त्र चर्य्या भली प्रकार विधान द्वारा यह सब सफल तौ हुएहैं ॥ ७२ ॥ हे रघुवीर ! यह सब हमारे कहे हुए विषयोंमें तुम्हारी बुद्धि आयु बढानेवाली यशको बढानेवाली और धर्म, अर्थ, काम इन तीन विषयोंके भली प्रकार अनुगतहै ? ॥ ७३ ॥ हमारे पिता और प्रपितामहोंने जो वृत्ति अवलंबन कीथी तुमने उस परम पवित्र और श्रेष्ठ मार्गपर चलानेवाली वृत्तिका अवलंबन कियाहै ? ॥ ७४ ॥ हे भरत ! तुम स्वादवान् भोजनके पदार्थ औरोंको न देकर इकले तो नहीं खाजाते? जो मित्रलोग व कुटुंबी वहांपर होतेहैं उनकोभी देतेहो ॥ ७५ ॥ देखो जो विद्वान् धर्मवान् राजा क्षत्रिय दंड धारण करकै धर्मानुसार प्रजाका पालन करताहै वह सब पृथ्वीको यथाविधिसे भोग करताहै वह अंतकालमें शरीरको छोडकर स्वर्गको चला जाताहै ॥ ७६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अयो० भाषायां शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः १०१.

इस प्रकार रामचंद्रजी गुरुवत्सल भरतजीसे कुशल प्रश्नके मिससे उपदेश कर फिर भ्राता लक्ष्मणके सहित भरतजीसे पूछनेलगे ॥ १ ॥ हे भइया ! किसकारण तुम जटा वल्कल धारण करकै यहां आये ? सो स्पष्ट करकै कहो हमें सुननेकी इच्छा हुईहै ॥ २ ॥ तुम राज्यको त्याग करकै जिस कारण छालके कपडे पहर और जटाधारी होकर यहां आयेहो सो सब इस समय तुमको प्रकाशित करना

चाहिये ॥ ३ ॥ काकुत्स्थ कुलमें उत्पन्न महात्मा रामचंद्रजीने जब इस प्रकार कहा. तब कैकेयीपुत्र भरतजी अतिकष्टसे शोकके वेगको रोक हाथ जोडकर बोले ॥ ४ ॥ हे आर्य ! महाबाहु पिता दशरथजी हमारी माता कैकेयीके कहनेसे ज्येष्ठ पुत्रको छोड छोटेको राज्यदे पुत्रशोकसे पीडित यशहीन हो होकर हम सबको परित्याग करके स्वर्गको चले गयेहैं ॥ ५ ॥ हे शत्रुओंके तपाने वाले ! हमारी माता कैकेयी-नेभी उस महापापमें लगकर अपने वंशको नष्ट कियाहै ॥६॥ इस समय यह हमारी माता राज्यप्राप्तिकी आशासे हाथधो विधवा और शोकसे व्याकुल होकर महाघोर नरकमें पडैगी ॥ ७ ॥ मैं अबभी आपका वही दासहूँ अतएव आप हमपर प्रसन्न होवें। और आजही आप इन्द्रके समान राज्यपर अभिषिक्त होवें ॥ ८ ॥ यह सब प्रजा और यह विधवा मातायें आपको प्रसन्न करनेके लिये.यहां आई हैं अत-एव आप प्रसन्न होवें ॥ ९ ॥ हे मानद ! आप बडे होनेसे राज्यके अधिकारी हैं और आपहीको राजगद्दीपर बैठना उचित है अतएव धर्मानुसार राज्य ग्रहण करकै बन्धु बान्धव इष्ट मित्रोंकी कामना पूर्ण करो ॥ १० ॥ शरदृतुकी रात जिस प्रकार विमल चन्द्रमाके द्वारा पतियुक्त होती है वैसेही समुद्र करकै सहित यह पृथ्वी आपको पतित्वमें वरण करकै सधवा होवे ॥ ११ ॥ हम आपके भ्राता, शिष्य और दास हैं सो अब मंत्रियों के सहित शिर झुकाकर प्रार्थना करतेहैं कि आप प्रसन्न होवें ॥ १२ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह परम्परासे चले हुए बाप दादा परदादाओं करकै मान पाये हुए मंत्रीलोग वेर २ कामना कररहे हैं कि आप अयोध्याकी राज गद्दीपर बैठे बस इनकी प्रार्थनापर ध्यान देना उचितहीहै ॥ १३ ॥ यह कहकै महाबाहु कैकेयीकुमार भरतजी नेत्रोंमें आंसू भरकर फिर रामचन्द्रजीके चरणोंपर अपना मस्तक धर देते हुए ॥ १४ ॥ और वारंवार मतवाले हाथीकी समान दीर्घ श्वास लेते हुए देखकर रामचन्द्रजी उनको उठा छातीसे लगाकर कहने लगे ॥ ॥ १५ ॥ हे अरिसूदन ! हमारी समान अच्छेकुलमें उत्पन्न हुआ सत्वसम्पन्न तेज-वान् और व्रताचारी मनुष्य किसप्रकारसे पिताकी आज्ञाको उल्लंघन करकै पापमें पडैगा ॥ १६ ॥ हे भरत ! हम तो तुम्हारा कुछ जरासा भी दोष नहीं देखते बाल कपनकी चंचलताके वश होकर तुमको अपनी माताकी भी निन्दा करनी नहीं चाहिये ॥ १७ ॥ हे पापरहित ! हे महाप्राज्ञ ! पिता इत्यादि गुरुजन अपने अनु-गत स्त्री और पुत्रोंके साथ सदा इच्छानुसार व्यवहार करसकते हैं ॥ १८ ॥

हे सौम्य ! संसारमें साधु लोग स्त्री पुत्र और चेलों को जिसप्रकार आज्ञाकारी कह कर मानते हैं, बस वैसेही पिताजीके निकट हम भी हैं, इस बातको तुम्हैं जान लेना उचितहै ॥ १९ ॥ हे प्रियदर्शन ! महाराज दशरथजी हमें चीर बसन और मृग चर्म धारण कराके वनमें या राज्यमें जहां इच्छा हो उसी स्थानमें वास करा सकते हैं ॥ २० ॥ हे धर्मज्ञ ! हे धार्मिकश्रेष्ठ ! सर्व लोकोंको सत्कार किये हुए पिताका जिस प्रकार गौरव करना उचित है; माताकीभी वैसेही प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ॥ २१ ॥ हे भरत ! इन धर्मशाली पिता और माता करकै "वनको जाओ" यह आज्ञा पाकर हम किस प्रकार उसको उल्लंघन कर दूसरी माति करैं ? ॥ २२ ॥ तुम अयोध्याजीमें सर्व लोकोंकी सम्मतिसे राजसिंहासनपर बैठोगे और हमें चीर वल्कल धारण करके वनमें वास करना होगा ॥ २३ ॥ महाराज दशरथजीने सर्व लोकोंके समक्ष यह विभागकी व्यवस्था करके स्वर्गमें प्रस्थान किया है ॥ २४ ॥ इस समय वही लोकोंके गुरु धर्मात्मा राजाही तुम्हारे प्रमाण हैं जिस प्रकार वह विभाग करके गये हैं वैसेही राज्यभोग करना तुमको उचित है ॥ २५ ॥ हे सौम्य ! हम भी चौदह वर्ष दण्डकवनमें रहकर उन महात्मा पिताजीका दिया हुआ हिस्सा भोग करेंगे देखो, दशरथजी हमारे पिता साक्षात् इन्द्रकी समान और सब लोगोंके पूजनीय हैं। उन महात्माने हमसे जो कहा है वही हमारे लिये हितकारी है। इसके सिवाय सब लोगोंका अक्षय राज्यभी हमें अच्छा नहीं लगता ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां एकाधिकशततमः सर्गः ॥१०१॥

द्व्युत्तरशततमः सर्गः १०२.

रामचन्द्रजीके वचन सुन भरतजी बोले कि, हम धर्महीन हैं अतएव राजधर्मके सीखनेसे हमें प्रयोजन क्या है ॥ १ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! हम सूर्यवंशियोंमें यह धर्म बहुत दिनोंका चला आता है कि, राजाके बडे बेटेके होते छोटा पुत्र कभी राज्यका अधिकारी नहीं होसकता ॥२॥ इससे हे रघुवीर ! आप हमारे साथ धन धान्ययुक्त अयोध्यापुरीको गमन करकै अपने वंशका कल्याण करनेके लिये राजमहीपर बैठिये ॥ ३ ॥ देखो सबही कोई राजा हमारे पिताजीको मनुष्यही कहतेथे परन्तु हम जानते हैं कि वह देवताथे क्योंकि उनके धर्मानुमोदित चरित्र मनुष्योंमें कभी संभव नहीं हो सकते ॥ ४ ॥ जब कि हम केकयराज्यमें अपने मामाके यहां

रहे और आप दण्डकवनमें चले आये, तब साधुसम्मत यज्ञ करनेवाले बुद्धिमान् राजा दशरथजी स्वर्गको चले गये ॥ ५ ॥ आप सीता, लक्ष्मण सहित जैसेही कि अयोध्याजीसे चले आये वैसेही राजा दशरथजी दुःख और शोकसे घिरकर स्वर्ग-को चले गये ॥ ६ ॥ हे पुरुषसिंह ! आप इस समय उठकर पिताजीको जला-ञ्जलि दीजिये हम और शत्रुघ्नजी पहलेही तर्पण कर चुके हैं ॥ ७ ॥ हे रघुनंदन ! पंडित लोग कहते हैं कि प्यारे पुत्रका ही दिया हुआ पिण्ड और जल आदि पित-रोंके लोकमें पितरोंके निमित्त सदा रहता है, सो आपही पिताजीके प्यारे और बडे पुत्र हैं ॥ ८ ॥ विशेष करके आपकेही बिछुडनेसे आपकेही लिये शोक करते और आपकोही याद करते २ पिताजी परलोकको चले गये हैं ! अंत समय आपके देखनेकी उनको बहुतही इच्छा हुई थी, और आपके प्रति उनका चित्त इस प्रकार लगाहुआ था कि अपने चित्त को वह किसी प्रकार आपमें से नहीं हटासके ॥ ९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

त्र्युत्तरशततमः सर्गः १०३.

रामचन्द्रजीने भरतजीके मुखसे पिताके मरनेकी जब करुणा भरी बात सुनी तो उनको मूर्च्छा आगई ॥ १ ॥ दैत्योंके शत्रु इन्द्र जिस प्रकार दानवोंके शत्रुओं पर संग्राममें वज्र छोडते हैं इसी प्रकार वाणीरूपी वज्रकी समान भरतजीके वचन सुन ॥ २ ॥ रामचन्द्रजी दोनों बाहें शिथिल कर वनके बीच फरसे द्वारा काटे हुए खिले फूलों करकै युक्त वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ३ ॥ जगत्पति रामच-न्द्रजी जब इस प्रकार पृथ्वीमें गिर पडे तब ऐसा बोध हुआ कि मानो कोई मतवाला हाथी नदीका करारा तोडते २ थककर नींद लेनेके लिये लेट गया ॥ ४ ॥ तब रामचन्द्रजीको मूर्च्छित हुआ देख सब भाई जानकीजीके सहित शोकसे व्याकुल हो कर रोते २ उन महाधनुषधारी रामचन्द्रजीके सब शरीर पर जल छिडकने लगे ॥ ॥ ५ ॥ रामचंद्रजी फिर चैतन्यता प्राप्त करकै आंसुओंके जलको वर्षाते हुए अनेक प्रकारके विलाप कलाप करते हुए ॥ ६ ॥ वह धर्मात्मा रामचन्द्रजी यह सुनकर कि पिताजी स्वर्गको चले गयेहैं धर्म संगत वचन भरतजीसे बोले ॥ ७ ॥ पिता-जी जब स्वर्गको चले गये तो अब हम अयोध्यापुरीमें जाकर क्या करैंगे, उन नृपा-

लश्रेष्ठ विहीन अयोध्या पुरीकी कौन पालन करैगा ? ॥ ८ ॥ हमारा जाना अब वृथाहै। जिन्होंने हमारेही शोकसे प्राणत्याग किये हम उनका कुछभी सत्कार न करसके हमारे और उन महात्माके कार्यमें बहुत प्रभेदहै ॥ ९ ॥ हे निष्पाप भरत ! तुम्हारे ही मनोरथ सिद्ध हुए कि तुमने शत्रुघ्नके सहित पिताजीके सब प्रेत कार्य किये ॥ १० ॥ हम अभी क्या वरन वनवाससेभी लौट कर उन प्रधान पुरुषहीन बहुनायक नरेन्द्रवर्जित अयोध्यापुरीमें नहीं जाना चाहतेहैं ॥ ११ ॥ हे परन्तप ! हमारे पिताजी परलोकको चले गयेहैं, अतएव जब हम वनवास समाप्त करके अयोध्याजीमें जाँयगे तो हमें कौन हिताहितके उपदेश देगा ॥ १२ ॥ पहले पिताजी हमको अपनी आज्ञा पालन करनेमें तैयार देखकर समझाते बुझाते हुए जो वचन बोला करतेथे वह समस्त श्रवणसुखदाई मनोहर वचन अब किससे सुनेंगे ॥ १३ ॥ शोकसे तपाये हुए श्रीरामचन्द्रजी भरतजीसे यह कहकर सीताके सामने हो उन पूर्णचन्द्रवदनवालीसे बोले ॥ १४ ॥ हे सीसे ! तुम्हारे ससुर परलोकको चले गये लक्ष्मण ! तुम पिताहीन होगये—भरतजी राजाकी यह शोककी उपजानेवाली मरणवार्ता दुःखित होकर कहतेहैं ॥ १५ ॥ काकुत्स्थनंदन श्रीरामचन्द्रजीने जब ऐसा कहा तब यशवान् सब राजकुमार रोने लगे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे उन सब भाइयोंने शोकसे व्याकुल रामचन्द्रजीको समझा बुझाकर कहा कि इस समय आप जगत्पति महाराजको तिलांजलि दीजिये ॥ १७ ॥ तब सीताजीने सुना कि, ससुर मृतक होगयेहैं तो उनके दोनों नेत्रोंसे आंसुओंकी झडी लगगई और वह किसी प्रकार उस समय प्रीतम रामचन्द्रजीको नहीं देखसकीं ॥ १८ ॥ तब रामचन्द्रजी उन रोती हुई जानकीजीको समझा बुझाकर शोकसे दुःखितहो लक्ष्मणजीसे करुणाके भरे वचन बोले ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम इस समय इंगुदीके बीजोंको पीसकर यहां लेआओ और एक टुकडा नये कपडेकाभी लेआओ हम महात्मा पिताजी की जलक्रिया करनेके निमित्त चलैंगे ॥ २० ॥ सीता आगे २ चलें तुम इनके पीछे २ चलो और हम सबके पीछे २ चलेगें क्योंकि इस दारुण मृतक जल क्रियावाले समयमें चलनेकी यही परिपाटी है ॥ २१ ॥ उस समय इक्ष्वाकुगणोंके प्राचीन प्रधान ज्ञानवान महामति कोमल और चतुर राममें दृढभक्ति करनेवाले ॥ ॥ २२ ॥ सुमंत्रजीने भरत लक्ष्मण व शत्रुघ्न तीनों राजपुत्रोंको बहुत समझाय बुझाय रामचन्द्रजीका हाथ पकड कल्याणरूप जलयुक्त मन्दाकिनी नदीके घाटपर धीरे २

उतारा ॥ २३ ॥ जो घाट मन्दाकिनी नदीके तीरपर उतरनेका था वह अति सुन्दर था विशेषत: उसके चारों ओर फूले हुए वनथे इस कारण मन्दाकिनी नदी मनोहर मर्त्ति धारण किये हुएथी सीताजीके साथ परम यशवान सब राजकमारही शोकके मारे विकलहो अति कष्टसे गिरते पडते वहां पहुँचे ॥ २४ ॥ तिसके पीछे वह कीचड व अँदन रहित चौडे लंबे समतल घाटपर उतर करके "एतद्भवतु" कहकर पिता दशरथजी के लिये जल देनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥ महापाल रामचंद्रजी उस समय जलसे भरी अंजली लेकर दक्षिणको मुखकरके खडेहो रोते २ कहने लगे ॥ २६ ॥ हे राजशार्दूल ! आप पितृलोकको चले गयेहैं अतएव इस समय आपके लिये मेरे हाथका दिया हुआ निर्मल जल अक्षय होकर पितृलोकमें तुम्हें प्राप्त होवे ॥ २७ ॥ अनन्तर तेजवान रामचन्द्रजीने भ्राताओंके सहित मन्दाकिनीके किनारेसे थोडीही दूरपर जाकर पिता दशरथजीके लिये पिंडदान किया ॥ २८ ॥ रामचंद्रजी कुशोंके सहित बेर मिलाकर तिलके खोल सहित इंगुदीके पिंड अर्पण करकै अत्यन्तही दुःखितहो रोदन करते २ बोले ॥ २९ ॥ हे महाराज ! जो आज कल हम खातेहैं वही इस समय आप भोजन कीजिये आदमी जो कुछ कि आप खाताहै उसके पितृदेवताभी वही आहार करतेहैं ऐसा शास्त्रमें लिखाहै ॥ ३० ॥ फिर नरश्रेष्ठ रामचन्द्रजी जिस मार्गसे नदीके किनारे पर उतरकर आयेथे उसी मार्गसे मन्दाकिनीके बाहर जाय रमणीय कंगूरा सहित चित्रकूट पर्वतपर आरोहण करते हुए ॥ ३१ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी अपनी पर्णकुटीके द्वारपर आये और एक हाथसे लक्ष्मण व एक हाथसे भरतका हाथ पकड लिया ॥ ३२ ॥ गर्जते हुए शेरकी समान पर्वत पर सीताजीके साथ रोते हुए सब भाइयोंके रोनेके शब्दसे दशोंदिशा भर गई॥ ३३॥इस प्रकार महाबलवान् भाई लोग जब पिता दशरथजीको जलदे दिलाकर रोते रहे,तब भरतजीकी सैनाके लोगोंने वह रोनेका कठोर शब्द सुना तब वह सब डरगये और आपसमें कहने लगे ॥ ३४ ॥ कि निश्चयही भरत श्रीरामचंद्रजीसे मिल गयेहैं और अब सब स्वर्गवासी पिताजीके मरनेसे शोककरके रोरहेहैं बस यह उनकेही रोनेका ऐसा कठोर शब्द हो रहाहै॥ ३५॥ तिसके पीछे सैनाके लोग अपनी २ सवारियोंको छोड छाँडकर जहांसे शब्द होताथा उसी ओरको ताककर एक मनसे शीघ्रतासे उस तरफ को सबके सब पैदलही धाये परन्तु सुकमार जिनसे पैदल

चला नहीं जाताथा वह लोग कोई हाथी कोई घोडे कोई शोभायमान रथपरही चढ कर दौडे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ रामचंद्रजी यद्यपि थोडेही दिन हुयेथे कि अयोध्यासे चले आयेथे परन्तु सबही लोग यह विचार कि मानों रामचंद्रजी बहुतही दिनोंसे परदेशमें वास करतेहैं उनको देखनेके लिये एकाएकी झटपट आश्रममें पहुँचे ॥ ॥ ३८ ॥ चारों भाइयोंका समागम देखनेके लिये घोडे आदिकोंके खुर व रथादिके पहियोंकी पुष्टियोंसे पृथ्वी खोदते हुए अनेक प्रकारकी सवारियोंपर चढ २ सब लोग गये॥ ३९॥ पृथ्वीपर भलीभाँति उन रथके पहियोंके चलनेका व और सब सवारियों का ऐसा शब्द हुआ मानों बादरोंके आजानेसे आकाशमें कडी कडक होरहीहै ॥ ४० ॥ परिवारवाले बडे २ हाथी जितने कि उस वनमें थे उस शब्दको सुन और घबडाकर अपने २ बच्चे व हथनियोंके साथ मदकी गंधसे आकाशको सुगन्धित करते हुए भागकर दूसरे वनमें चले गये ॥ ४१ ॥ सुअर, हरिण, सिंह, भैंसा, नीलगाय, व्याघ्र, गोकर्ण, (मृगविशेष) चमर गाय और चीते आदि सब मृग बहुतही डरगये ॥ ४२ ॥ चकई चकवा, हंस, जलमुरगाबियां, कोकिला व क्रौंचादि पक्षी चेतनारहित हो गिरते पडते दशों दिशाओंको भाग खडे हुए ॥ ४३ ॥ उस कालमें उस शब्द करके डरे हुए पक्षियोंसे आकाश मंडल और मनुष्यों करके पृथ्वीकी अतिशय शोभा उत्पन्न हुई ॥ ४४ ॥ अनन्तर सब लोगोंने वहां शीघ्र जाकर देखा कि यशवान् और निष्पाप पुरुषसिंह रामचंद्रजी एक चौतरे पर बैठेहैं ॥ ४५ ॥ यह देखकर वह सब लोग कैकेयी और अहितकी करनेवाली मंथराकी निन्दा करते २ रामचंद्रजीके सामने जाकर रोने लगे ॥ ४६ ॥ धर्मज्ञ श्रीरामचंद्रजी उन सबको बहुतही दुःखित और रोते हुए देखकर किसीको माताकी समान किसीको पिताकी समान बोले ॥ ४७ ॥ मिलनेके योग्य मनुष्योंसे जब रामचंद्रजी मिले तब और लोगोंने भी रामचंद्रजीको प्रणाम किया उस काल नृपकुमार श्रीरामचंद्र अपनी बराबरकी उमरवाले और अपने बंधु बांधवोंसे यथा योग्य व्यवहार करतेहुए ॥ ४८ ॥ तिसके पीछे आये हुये सब लोगोंने जब रोना आरंभ किया, तब मृदंगके शब्दकी समान महाघोर शब्द उठकर आकाश, पृथ्वी, पर्वतोंकी गुहाओंमें टकराकर सुनाई आने लगा ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०आदि० अयो० भाषायां त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरुत्तर शततमः सर्गः १०४.

इसओर वसिष्ठजी रामचंद्रजीके दर्शनकी अभिलाषा करकै दशरथजीकी रानियोंको आगेकर जहां श्रीरामचंद्र थे वहांपर चले ॥ १ ॥ मन्दाकिनी नदीकी ओर को मंद २ गमन करते २ कौशल्यादिक सब रानियोंने राम लक्ष्मणके स्नान करने का नदीका घाट देखा ॥ २ ॥ उसको देखकर देवी कौसल्याजी मुख सुखाय रोकर बहुतही व्याकुलहो सुमित्रा व और दूसरी रानियोंसे कहने लगीं ॥ ३ ॥ जोकि राज्यसे वनको भेजे गयेहैं और जिनके सब कर्म आमानुषीयहैं उन हमारे वारे प्राणों से प्यारे अनाथ राम लक्ष्मण और सीताके नहानेका यह घाटहै, वह यहां अति कष्टसे स्नानादि करते होंगे ॥ ४ ॥ हे सुमित्राजी! तुम्हारे पुत्र लक्ष्मण आलस्यको छोडकर हमारे पुत्रके लिये अपने हाथसे भरकर इस जगहसे जल ले जातेहैं ॥ ॥ ५ ॥ किन्तु इस प्रकार जलादि भर लानेके कार्य नीच हैं पर इससे तुम्हारे पुत्र की कुछ निन्दा नहीं होगी कारण कि यदि वडे भाई रामचंद्रजीके लिये यह काम न होता तो निश्चय निन्दाकी वातथी ॥ ६ ॥ जोहो अब रामके अयोध्याजीमें लौटालानेपर सदा सुख पाने लायक दुःखके अयोग्य लक्ष्मणजीको यह सब नीच मनुष्योंके करने लायक कष्टकारी कार्य नहीं करने पडैगे ॥७॥ इस प्रकार कहते २ बडे नेत्रवाली देवी कौशल्याजीने देखा कि, रामचंद्रजीने पिताके लिये जो इंगुदीके बीजोंको पीसकर जो पिंड दियाहै वह वहां भूमिपर उन कुशोंपर रक्खाथा जिन की फुनगी दक्षिण और जड उत्तरको थी ॥ ८ ॥ इस प्रकार जब कौशल्याजीने देखा कि रामने शोकसे ग्रस्त होकर पिताके लिये भमिमें यह पिंड रक्खाहै तब वह सब और रानियोंको पुकार कर वोली ।' ९ ॥ हे सब स्त्रियों! जो इक्ष्वाकुओंके नाथहैं उन राजा दशरथजीके लिये श्रीरामचंद्रजीने यथा विधानसे यह पिंड दियेहैं॥ ॥ १० ॥ देखो, साक्षात् देवताओंकी समान अनेक प्रकारके भोजन करनेवाले महात्मा दशरथजीके लिये इंगुदीके पिंड किसी प्रकारके उचित नहीं ज्ञात होते ॥ ॥ ११ ॥ क्योंकि चारों समुद्र तक सब वसुधाको इन्द्रके समान भोगकर अव वह राजा किस प्रकार इंगुदीके पिंड भोजन करेंगे ॥ १२ ॥ हाय! इस लोकमें इससे अधिक हमारे लिये और दुःख क्या होगा कि बुद्धिमान रामचंद्रजीने पिताजीके लिये इंगुदीके फलके पीठका पिंड दिया ॥ १३ ॥ रामचंद्रजीके दिये हुए यह इंगुदीके पिंड देखकर क्यों नहीं हमारा हृदय दुःखसे हजार टुकडे होजाता ॥ १४ ॥

लोकमें जो जिस प्रकारका भोजन करता है उसके पितृलोगभी निश्चय वही आहार करतेहैं यह जो संसारमें कहावत चली आतीहै सो आज सत्य ज्ञातहोतीहै ॥ १५॥ कौसल्याजी जब इस प्रकार व्याकुल होगई तब राजा दशरथजीकी और दूसरी रानियें उनको समझाने बुझाने लगीं और रामचंद्रजीके आश्रममें पहुँचकर उन सबने देखा कि रामचंद्रजी स्वर्गसे गिरे हुए देवताकी समान वहां बैठे हैं ॥ १६ ॥ वह सब प्रकारके सुख भोगके पदार्थ छोड बैठेहुएहैं ऐसा रामचंद्रजीको सब मातायें देख मारे शोकके पीडित और बहुतही व्याकल हो रोने लगीं ॥ १७ ॥ सत्यप्रतिज्ञाकरनेवाले पुरुषोंमें सिंह रामचंद्रजीने उनको देखतेही उठकर सब माताओंके चरण कमल ग्रहण किये ॥ १८ ॥ बडे २ नेत्रवाली सब रानियें कोमल परम सुन्दर सुख देनेवाले हाथोंसे रामचंद्रजीके पीठकी धूल भली प्रकारसे झाडने व पोंछने लगीं ॥ १९ ॥ तब लक्ष्मणजीभी सब माताओंकी यह व्यवस्था देख अति दुःखित हुये और रामचंद्रजीके पीछे धीरे २ उनमें मन लगाकर उन सब माताओंको प्रणाम करते हुए ॥ २० ॥ सब रानियोंने जैसा रामचंद्रजीके साथ व्यवहार किया वैसा ही व्यवहार शुभ लक्षणवाले दशरथजीके पुत्र लक्ष्मणजीके साथ किया क्योंकि यह भी तो महाराज दशरथजीहीके पुत्रथे फिर स्नेह कम क्यों हो ? ॥ २१ ॥ सीताजीभी मनमें बहुतही दुःखितहो रोने लगीं और सब सासुओंके पैरोंमें पड आगे खडी होगई ॥ २२ ॥ दुःखिनी कौशल्याजी जिस प्रकार माता बेटीको लिपटाले ऐसे ही वनवाससे जिनका शरीर दुर्बल होगयाहै जो अति दीनहैं, ऐसी जनकदुलारी सीताजीको छातीसे लगाकर कहने लगीं ॥ २३ ॥ जो कि राजा जनकजीकी लाड लडैती प्यारी बेटी महाराजाधिराज चक्रवर्ती दशरथजीकी पुत्र वधू व रामचंद्रजीकी स्त्रीहो फिर तुमने किस प्रकार इस जनरहित वनमें दुःख पाये ॥ २४ ॥ अहो जानकी ! धूपके तापसे मुर्झाये हुए कमलकी समान व मलेमीजे हुये लाल कमलकी नाई धूरि लगे हुये सुवर्णकी नाई और बादरोंसे ढके हुये चंद्रमाकी नाई ॥२५॥ तुम्हारा मुख मलीन देखकर आग जिस प्रकार काठको जला देतीहै वैसेही यह शोककी आग हमारे मनको जराये डालतीहै॥ २६॥ माता कौशल्याजी दुःखसे पीडितहो इस प्रकार कहरहीं थीं कि भरतजीके बडे भ्राता रामचंद्रजीने वसिष्ठजीके निकट आकर उनके चरणारविन्द छुए ॥ २७ ॥ इन्द्र जिस प्रकार सुरगुरु बृहस्पतिजीके चरण छूतेहैं रामचन्द्रजीभी वैसेही अग्निकी समान तेजवान पुरोहित वशिष्ठदेवजीके

चरणोंकी वंदना करकै उनके साथही आसनपर बैठे ॥ २८ ॥ तब धर्मात्मा भरतजी अपने मंत्रियोंके साथ प्रधान २ पुरवासियोंके साथ वीरगण व और दूसरे धर्मवान लोगोंके साथ पछिकी ओर रामचंद्रजीके समीपहो बैठे ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे महावीर भरतजी देवराज इन्द्र जिस प्रकार ब्रह्माजीके निकट बैठतेहैं वैसेही लक्ष्मीसे प्रकाशमान रामचंद्रजीके समीप बैठकर पवित्र मनसे मुनिका भेष किये हुये रामचन्द्रजीकी ओर हाथ जोडे देखते रहे ॥ ३० ॥ उन भरतजीको इस प्रकार बैठे हुये देखकर वह अब रामचन्द्रजीसे प्रणाम और आदर मान करकै कौनसी युक्ति सहित बात कहैंगे, सो श्रवण करनेके लिये जितने वशिष्ठादि श्रेष्ठ जनथे सबको यही सुननेका कौतूहल था ॥ ३१ ॥ उस कालमें सत्य वचन बोलनेवाले श्रीरामचन्द्रजी महानुभाव लक्ष्मणजी और धार्मिक भरतजी यह सब सुहृद् गणोंके साथ शोभित होकर सभासदोंके साथ बैठे हुये तीन यज्ञकी अग्नियोंकी समान शोभा धारण करते हुये ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि अयो० भाषायां चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

पंचोत्तरशततमः सर्गः १०५.

अनन्तर वह पुरुषसिंह बंधु बांधवोंसे शोक करते २ व रामचद्रजीके लौटानेका उपाय सोचते हुये वह रात्रि बितादेते हुये ॥ १ ॥ जब प्रभात होगया तब बंधु भ्राता व बंधु बांधवोंके साथ मन्दाकिनी नदी पर जप होम समाप्त करकै रामचन्द्रजीके समीप उपस्थित हुये ॥ २ ॥ और सबही चुप चापहो रामचन्द्रजीके निकट बैठरहे किसीनि कोई बात नहीं की तिसके पीछे भरतजी सुहृदोंके बीचमें बैठे हुये रामचंद्रजीसे कहने लगे ॥ ३ ॥ राजा दशरथजीने पहले हमारी माता कैकेयीको राज्य देकर संतोष कराया फिर माताने यह राज्य हमें दे डाला सो अब हम यह राज्य आपको देतेहैं अतएव इसको आप निष्कंटक होकर भोगो ॥ ॥ ४ ॥ आपके सिवाय इस बडी राज्यकी रक्षा करनेको कोई भी समर्थ नहीं है वर्षाके समय जलके वेगसे जब पुल टूट जाताहै तब जलका वेग किसीका रोका नहीं रुकसकताहै ॥५॥ हे महीपाल ! गधा जिस ! प्रकार घोडेकी व और पक्षी गरुडकी चालको नहीं पाय सक्के वैसेही आपके राज्यके पालन करनेकी सामर्थ्यको हम नहीं पहुँच सक्के ॥ ६ ॥ जो मनुष्य सदाहीं औरोंकी सेवा करकै जीता

है उसका जीना जैसा दुःखके साथहै और बहुत सारे नोकर चाकर जिसको आश्रय करकै जीविका निर्वाह करतेहैं उसका जीवन वैसाही सुखके साथ बीतताहै अतएव यह राज्यका पालन करना आपहीको शोभा देताहै ॥ ७ ॥ जैसे किसीने कोई पेड लगाया जब बढा तब उसकी बडी २ डालियां हुई तब आदमी उस पर नहीं चढ सकता । ऐसेही मैं राज्य नहीं करसकता ॥ ८ ॥ और जब उस पेड पर फूल भी आये और फल न लगे तो जिसके लिये लगाया गयाथा उसकी प्रीतिको वह अनुभव नहीं कर सकता ॥ ९ ॥ बस इस कहनेको आप अपने राज्य पावनेके लिये समझ जाइये क्योंकि आपही सबसे श्रेष्ठहैं और राज्यके पालनेकी सामर्थ्य रखतेहैं । हम आपके भृत्यहैं जब हमारा आप पालन पोषण नहीं करते तब किस कामकी आपकी बुद्धि हुई ॥ १० ॥ अतएव हे महाराज ! अनेक जातियोंके बडे२ प्रजाके लोग शत्रुओंके नाश करनेवाले आपको प्रतापवान सूर्यकी समान तपते हुए राज्यगद्दी पर बैठे हुए देखें ॥ ११ ॥ हे काकुत्स्थ ! मतवाले हाथी गर्वसहित गर्जते हुए आपके साथ २ चलें और वनवासमें सब स्त्रियें एक चित्तहो मंगलकी ध्वनि करें ॥ १२ ॥ जब भरतजीने रामचंद्रजीको प्रसन्न करनेके लिये ऐसा कहा तब पुरवासी बडे २ प्रतिष्ठित व छोटे दरजेके लोग सबहीने यह कहा कि वाह २ भरतजी बहुत ठीक कहते हैं ॥ १३ ॥ तब तेजवान धीरजके धारण करनेवाले श्रीरामचंद्रजी भरतजीको दुःखित चित्तसे विलाप करते देखकर बहुत भांतिसे समझाते बुझाते हुए बोले ॥ १४ ॥ कि हे भरत ! यह जीव स्वभावसेही पराधीनहैं, अपनी इच्छानुसार कार्य करनेकी इसको कोई शक्ति नहींहै सबका ग्रास करनेवाला काल इसको लोक परलोक दोनोंमें अपने वश करकै चलाताहै ॥ १५ ॥ अतएव कैकेयी वा राजा कोईभी हमारे वनवासके कारण नहींहैं यह सब बात कालकेही वश होनेसे हुईहै, जहां संयोगहै वहांही वियोग, जहां जीवनहै वहांही मरण, जहां संग्रहहै वहां ही क्षय, और जहां उन्नति (वढोतरी) है वहीं पतना धर्टीहै ॥ १६ ॥ जब कि फल पक जाताहै तब जैसाकि गिरनेके सिवाय उनकी और गति नहीं होती; वैसेही जन्म लेनेसे निश्चयही मरण होताहै किसी प्रकार यह टल नहीं सकता पके फल गिरनेके सिवाय, जन्म लेनेवालेको मरनेके सिवाय और भय नहीं ॥१७॥ बडे २ मजबूत खंब जिस घरमें लगेहों वह भी पुराना होने पर गिरही जाताहै ऐसेही मनुष्यमात्रही बुढापा आजानेसे मरही जातेहैं ॥ १८ ॥ जो रात

चीजातीहै वह फिर किसी प्राकर लौटकर नहीं आती देखो यमुनाजीका पूर्णजल समुद्रमें मिल जाताहै परन्तु फिर लौटकर नहीं आता ॥ १९ ॥ गरमीके मोसममें सूर्य नारायणकी किरण जिस प्रकार जलको सुखा डालतीहै, वैसेही दिन व रात नियम सहित वीतते हुए चले जाकर हरेक प्राणीकी उमरको घटातेहैं ॥२०॥इस विषयमें किसी प्रकारका विलंब नहीं होता आदमी बैठाही रहै,या चलता फिरता रहै, उसकी उमर घटतीही जातीहै अतएव तुम अपनेही लिये शोककरो पराये कारण शोक क्यों करतेहो ? ॥ २१ ॥ मौत साथमें चलतीहै, साथमें बैठतीहै और साथही बहुत दूरभी चलकर लौट आतीहै, बस मौतके हाथसे छुटकारा पानेकी किसीको सामर्थ्य नहींहै ॥ २२ ॥ जब सब अंगोंकी खाल सुकुड गई बाल सफेद होयगे बुढापा आजानेसे देह अत्यन्त जर्जर होगई तब फिर पुरुष क्या कर सकताहै ॥ २३ ॥ सूर्यके उदय होनेसे मनुष्योंके आनंदकी सीमा नहीं रहती जब कि सूर्य छिपेहैं तबभी आनन्दित होतेहैं परन्तु सूर्य भगवान्‌के प्रतिदिन उदय अस्त होनेसे अपनी उमर जो घटती चली जातीहै इस बातको जीव नहीं जानता ॥ २४ ॥ जैसे २ वसन्तादि नये २ ऋतु मनुष्य देखतेहैं तो उनको देख कर प्रसन्न होतेहैं परन्तु इन ऋतुओंके अदल बदलसे उमर घटती जातीहै इसको वह कुछभी नहीं जानते ॥ २५ ॥ जैसे समुद्रमें दोकाठ एकही संग डाल दियेजांय तब कुछ देरतकतो वह दोनोंही साथ बहैंगे फिर कालान्तरमें कोई कहीं, कोई कहीं चला जायगा, फिर दोनोंका मिलना कठिनहै ॥ २६ ॥ वैसेही, स्त्री, पुत्र, जाति,भाई,बंधु,पशु,पक्षी,धन कुछ कालके लिये परस्पर मिल जातेहैं और फिर अलग २ होजातेहैं इस प्रकार इन दृश्यमान पदार्थ समूहोंका अलग होना निश्चयहीहै ॥ २७ ॥ फलतः जब मृत्यु संसारका स्वभावहीहै कोई प्राणीभी इसको उल्लंघन नहीं कर सकता फिर परलोकमें गये हुए पिताजीके लिये शोक प्रकाश कर उनके प्रेतत्वके निवारण करनेकी किसको सामर्थ्यहै? ॥ २८ ॥ जैसे कुछ पथिकोंका झुंड मार्गमें चला जाताहो और कोई राहमें बैठा हुआ मनुष्य उनसे कहै कि, तुम्हारे पीछे २ हमभी आतेहैं॥२९॥ऐसेही बाप दादे परदादोंके लिये हुये मार्ग पर एकदिन सबको अवश्यही गमन करना पडैगा इस भांति जब कि मरनाही पडेगा तब फिर मरेहुए के लिये शोच करना कभी उचित नहीं है॥३०॥जैसे नदी आदिका जल प्रवाहकी ओर बहताहीचला आता है फिर लौटकर नहीं आता ऐसेही आयुभी केवल जातीहै आती नहीं,

सो यह सब देख भाल कर आत्माको सुख साधनके लिये धर्म कार्यमें लगाना उचि-तहै क्योंकि सुखभोग करनेहीके कारण मनुष्योंका जन्म हुआहै ॥ ३१ ॥ हे भ्रातः ! हमारे पिताजीभी परमधार्मिक और साधुलोगोंके पूजनीयथे वह यथाविधि दक्षिणा के साथ अनेक पवित्र यज्ञ करके स्वर्गको सिधारेहैं वहांभी उनका सत्कार होगा फिर उनके लिये शोक करना ठीक नहीं ॥ ३२ ॥ पिताजी पुराने मनुष्योंके चोलेको छोडकर ब्रह्मलोकमें विहार करनेवाली देवताओंकी देहको प्राप्त हुए होंगे ॥ ३३ ॥ अतएव उन पिताजीके लिये शोक करना हम तुम सरीखे बुद्धिवान् शास्त्रोंके जानने वाले ज्ञानवान् पुरुषोंको उचित नहीं ॥ ३४ ॥ तुम धीर्यवान् बुद्धिमान्हो तुमको इस प्रकारका शोक करना विलाप करना रोना धोना अवश्य त्याग करदेना चाहिये ॥ ॥ ३५ ॥ अब तुम सावधान हो शोक मत करो और अयोध्यापुरीमें जाकर वास करो ! हे वाग्मिश्रेष्ठ ! सत्य वचन कहनेवाले पिताजी तुमको अयोध्या पुरीमें रहने की आज्ञा दे गये हैं ॥ ३६ ॥ वह पुण्य कर्मके करनेवाले परम पूज-नीय पिताजी हमको जैसी आज्ञा देगयेहैं हमभी बनमें टिके हुए उनका पालन करैं गे ॥ ३७ ॥ हे शत्रुओंको दमन करनेवाले! उनकी आज्ञाको उल्लंघन करना हमारे लिये किसी प्रकारसे ठीक न होगा तुमकोभी सदा उनका मान्य करना चाहिये ॥ क्योंकि हमारे तुम्हारे दोनोंके पिता व बन्धु वही ठहरे ॥ ३८ ॥ हे भरतजी ! हम वनवास करके धर्मचारियोंकरके सम्मत उन पिताजीके वचनोंका कर्मद्वारा पालन करैंगे॥ ३९॥ हे नरश्रेष्ठ! जिनको परलोकके जीतनेकी अभिलाषा है उन धर्मवान् और सरल पुरुषोंको अपनेसे गुरु पिता आदिकोंके कहनेके अनुसार कार्य करना चाहिये ॥ ४० ॥ हे नरोत्तम ! हमारे पिताजीके पवित्र चरित्र विचार करके अपने स्वभावके गुणोंसे परलोकमें अपना हित करनेकी चिन्तामें लगो॥ ४१ ॥ महात्मा श्री-रामचन्द्रजी पिताजीकी आज्ञाके प्रतिपालन करनेकेलिये अपने लघु भ्राता भरतजीसे इसप्रकारसे अर्थयुक्त वचन कहकर मुहूर्तभरतक चुपाव रहे ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी०आदि०अयो० भाषायां पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

षष्ठोत्तरशततमः सर्गः १०६.

प्रजावत्सल श्रीरामचन्द्रजी मन्दाकिनी नदीके तीर पर जब इस प्रकारके सार्थ-क वचन कहकर मौन होरहे ॥ १ ॥ तब धर्मात्मा भरतजी सब एकत्र हुए लोगों-

की समाजको विस्मय उपजाते हुए धार्मिक वचन कहने लगे,हे शत्रुओंके नाश करनेवाले ! जैसे कि आप हैं ऐसा पृथ्वी पर दूसरा और कौन है ?॥ २॥ आप दुःखके के पडनेसे कुछ दुःखित नहीं होते सुख होनेसे कुछ हर्षित नहीं होते, सब वृद्ध लोग आपको बहुत मानतेहैं तथापि धर्मके विषयमें कोई सन्देह होनेपर आप उन लोगों-से पूछा करते हैं ॥ ३ ॥ मृतकसे जैसे स्त्री पुत्र और देह इत्यादिका सम्बन्ध नहीं रहता इसी प्रकार जीवित मनुष्यसेभी कुछ नहीं है, अतएव मृतक और जीवित इन दोनोंमें भेद नहीं तिसपर अविद्यमान पदार्थोंसे जिसको परितापादि उत्पन्न नहीं होते और विद्यमान वस्तुमें भी जिसका यही ज्ञान है फिर वह किस कारणसे परिताप करैगा ॥ ४ ॥ हे नरनाथ ! जो मनुष्य आपकी समान इस लोक व परलोकके वृत्तान्त जाने हुए हैं वह ऐसी विषम अवस्थामें पडकर भी शोक नहीं करते॥ ५ ॥ हे रघुनाथ ! आप देवताओंकी समान पराक्रमी, महात्मा, सत्यसंकल्प, सब कुछ जाननेवाले सर्वदर्शी और बुद्धिमान् हैं ॥ ६ ॥ और प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलयको विशेषरूपसे आप जानते हैं जबकि आप इस समस्त गुणोंसे युक्त हैं तब आपको बहुत असह्य दुःखभी नहीं घवडा सकता परन्तु हमारी समान मनुष्य जो इन दुःखोंके पडनेसे अधमरे होजांयगे इसमें विचित्रता ही क्या है ? ॥ ७ ॥ जो हो जबकि हम परदेशमें अपने मामाके यहां थे तब ओछे स्वभाववाली हमारी माता जो पाप कि हमारे लिये किया है, वह किसी प्रकारसे हमारी इच्छाके अनुकूल न था न उसमें हमारी किसी प्रकारसे सलाहथी अतएव हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये॥८॥हम धर्मके बन्धनमें बन्ध रहेहैं इसकारण इस समय इस पाप करनेवाली दण्ड देनेके योग्य माताको हमने कठोर दण्ड देकर नहीं मारडाला क्योंकि धर्मशास्त्रमें स्त्री अवध्य लिखी है ॥ ९ ॥ श्रेष्ठवंशमें उत्पन्न हुये सदा शुभ कर्म करनेवाले राजा दशरथजीसे उत्पन्न होकर और धर्म अधर्मको जानकर भी हम किस प्रकारसे ऐसा निन्दित कार्य करनेमें प्रवृत्त हों ॥ १० ॥ सब यज्ञकी क्रियाओंके करनेवाले गुरु वृद्धावस्थाको प्राप्त महीपाल पिताजी भी परलोकको चले गये हैं। इसकारण सभाके बीच उनकी भी निन्दा हम नहीं करसकते ॥ ११ ॥ किन्तु हे धर्मके जाननेवाले ! कौन धर्मात्मा पुरुष साधारण स्त्रीका प्रिय करनेकी कामनासे ऐसा धर्मसे विरुद्ध परम निन्दनीय कार्य करनेमें प्रवृत्त होगा ? ॥ १२ ॥ 'नाशकाले विपरीतबुद्धिः' अर्थात् मरनेके समय सबकी बुद्धि नाशको प्राप्त हो

जाती है यह जो कहावत लोकमें प्रसिद्ध है । सो राजा दशरथजीने बुद्धिविपरीत कार्य करके उस कहावतको प्रत्यक्ष कर दिखाया ॥ १३ ॥ जो हुआ सो हुआ पिताजीने कैकेयीके कोप करनेके भयसे, चित्तके विक्षेपसे; अविचारसे, या उसमें कुछ अपनाही प्रयोजन समझ यह निन्दनीय कार्य कर डाला ॥ १४ ॥ पिताका पतन निवारण करै इसी कारण पुत्रको अपत्य कहते हैं; और जो कि पुत्र पिताके सब दोषोंको निवारण करै वह अपत्यनाम धारण करनेके लायक नहीं होता ॥ ॥ १५ ॥ इस समय वास्तवमें आप अपत्यका कार्य कीजिये क्योंकि पिताजीने जो कार्य किया है उसको प्रकाशित न कीजिये महाराज दशरथजीने धर्मको उल्लंघन न करके जो कर्म किया है पण्डित लोग उसकी निन्दा करते हैं सो आप राजगद्दीपर बैठ उस निन्दाको छिपाले॥ १६॥अतएव हमने जो कुछ कहा उसके अनुसार आप हमारा,कैकेयीका,पिताजीका सुहृद और बन्धु बान्धव नगरवासी व देशवासी मनुष्यों-का बरन सबकाही उद्धार कीजिये॥ १७॥कहां क्षत्रिय धर्म! और कहां जनशून्यव-न ! कहां प्रजापालन! और कहां जटा धारण! अतएव पिताजीके आदेश किये हुए ऐसे विरुद्ध कार्यमें आपको प्रवृत्त होना उचित नहीं है ॥॥ १८॥हे महाप्राज्ञ ! जि-स्से कि प्रजापालन करनेमें समर्थ हुआ जाय वह अभिषेच नहीं क्षत्रियका मुख्यधर्म है ॥ १९ ॥ इस प्रकारसे प्रत्यक्ष सुखका देनेवाला प्रजा पालनेका व्रत छोड करके कौन क्षत्रिय लक्षण रहित,अति उचित भाववाले संशययुक्त बहुत कालमें सिद्ध होने वाले वानप्रस्थ धर्ममें पडनेके लिये तैयार होगा ॥ २०॥ यदि शरीरको कष्ट देनेवाले धर्मकोही करनेकी आपकी बडी इच्छाहै तो धर्मानुसार ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके पालन करनेका कष्ट आप भोगिये ॥ २१॥ हे धर्मज्ञ ! धर्मात्मा लोग चारों आश्रमके मध्यमें गृहस्थ आश्रमकोही अच्छा कहतेहैं फिर आप किस कारणसे गृहस्थ आश्रम-के त्याग करनेको तैयार हुएहैं? ॥ २२ ॥ क्या विद्यामें,क्या जन्ममें, क्या स्थानमें, सबही भांति हम आपसे छोटेहैं फिर आपके रहते हुए हम किस प्रकारसे पृथ्वीका पालन कर सकतेहैं ॥ २३ ॥ हम बुद्धिहीन, गुणहीन, स्थानहीन अनुज और बा-लकहैं आपके विना इकले किसी स्थानमें रहनेकाभी हमको साहस नहींहै, फिर राज्य पालन करनेकी बात तो एक ओर रही ॥ २४ ॥ अतएव हे धर्मज्ञ ! आपही धर्मानुसार बंधु बान्धवोंके सहित स्वस्थचित्तसे इस शत्रुरहित उत्तम निष्कंटक पिता-जीके राज्यको पालन कीजिये ॥ २५॥ हे मंत्रके जाननेवाले ! सब प्रजा आदिकोंके

सहित और वसिष्ठजीके साथ मंत्रोंके जाननेवाले ऋत्विक् लोग एकत्र होकर व सब मंत्री आदिक यहीं आपका अभिषेक करदें ॥ २६ ॥ देवराज इन्द्रजीने जिस प्रकार बल विक्रमसे अपने शत्रुओंको जीत मरुतगणोंके साथ स्वर्गमें प्रवेश कियाथा वैसेही आपभी अभिषिक्तहो बल पूर्वक अरातिवंशध्वंस करके प्रजा पालनेके लिये हमारे सहित अयोध्यामें गमन करें ॥ २७ ॥ और वहां रहकर देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण इन तीनो ऋणोंको उतार शत्रुओंको जलाते हुए और सर्व कामनाओंको पूर्ण करते हुये बंधु बांधवोंकी तृप्ति करके हमको सेवक बनाय आज्ञा किया कीजिये ॥ २८ ॥ हे आर्य ! आपके अभिषेकसे बन्धु बान्धव और सुहृद लोग सन्तुष्ट होवें; और शत्रुलोग भयभीत होकर दशों दिशाओंको भाग जांय ॥ २९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपके वनवास दिलानेका कलंक जो हमारी माताको लगाहै उसको धो डालिये, और पूजनीय पिताजीकीभी पापसे रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥ हम शिर झुकाकर प्रार्थना करतेहैं कि महादेवजी जिस प्रकार सबही प्राणियोंपर दया करतेहैं वैसेही आपभी हमारे और सब बन्धु बान्धवोंके ऊपर दया कीजिये ॥ ३१ ॥ यदि हमारी यह प्रार्थना अस्वीकार कर यहांसे आप दूसरे वनको चले जांयगे तो हमभी आपके साथ २ चलेंगे ॥ ३२ ॥ यद्यपि भरतजीने ऐसे दीनभावसे चरणोंपर शिर धर रामचंद्रजीको बहुत मनाया समझाया तथापि सत्यवान महीपाल श्रीरामचंद्रजी पिताजीकी आज्ञा पालन करनेके लिये दृढ संकल्प हुए और अयोध्याको लौट जाना किसी भाँति उन्होंने स्वीकार नहीं किया ॥ ३३ ॥ श्रीरामचंद्रजीका इस प्रकारसे स्थिरपन देखकर सबही कोई जो अयोध्यासे आयेथे हर्ष विषादमें एकसाथ मग्न होगये यह विचार कर तो उन्हें शोक हुआ कि रामचंद्रजी अयोध्याको नहीं जांयगे और हर्ष उनकी स्थिरप्रतिज्ञाको देखकर हुआ ॥ ३४ ॥ प्रधान २ पुरवासी लोग, वेदवादी ब्राह्मण लोग मूर्च्छित हुये व आंसू डालती हुई माता लोग भरतजीकी प्रशंसा करने लगीं और सब उनके साथ मिलकर अयोध्याजीको लेचलनेके लिये श्रीरामचंद्रजीसे प्रणतभावहो प्रार्थना करने लगे ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अयोध्याकांडे षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

सप्तमोत्तरशततमः सर्गः १०७.

जब भरतजी फिर कुछ बोले तब उनके बडे भाई परम माननीय श्रीरामचंद्रजी जातिवाले लोगोंके सामने उत्तर देते हुये॥ १ ॥ कि तुम नृपसत्तम दशरथजीसे कैकेयीके गर्भमें उत्पन्न हुयेहो फिर तुम्हारी सब बातें ठीकही ठीक होंगी इसमें संदेह क्याहै ? ॥ २ ॥ किन्तु भय्या ! पहले हमारे पिता दशरथजी जब तुम्हारी माता कैकेयीका विवाह करने गयेथे तब तुम्हारे नानाको उन्होंने यह वचन दियाथा कि आपकी इस कन्यासे जो पुत्र होगा हम उसकोही राज्य देंगे॥ ३॥फिर जब कि देवता और असुरोंके संग्राममें असुरोंसे लडते २ राजा दशरथजी मूर्च्छित होगयेथे और कैकेयीनें बहुतही सहायता करके उन्हें चैतन्य कियाथा तब राजा दशरथजीने परम प्रसन्न होकर दो वर दिये ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! इसही कारण यशस्विनी सुन्दर बोलनेवाली तुम्हारी माताने राजाको विशेष रूपसे प्रतिज्ञासे बांधकर यह दोनों वर मांगेथे ॥ ५ ॥ हे नरवर ! राजानेभी उस करके प्रार्थना किये जानेपर तुम्हारा राज्य और हमारा वनवास यह दो वर उसको दिये ॥ ६ ॥ हे पुरुषवर ! उसी वरदानके निमित्त हमभी पिताजीकी आज्ञासे दंडकवनमें चौदह वर्ष वास करनेके लिये नियुक्त हुयेहैं ॥ ७ ॥ अब पिताजीकी आज्ञासे उनके सत्यकी रक्षा करनेके लिये सीता और लक्ष्मणजीके सहित विवाद रहित हो इस निर्जन वनमें आकर बसे हैं ॥ ८ ॥ हे राजेन्द्र ! अब तुमभी शीघ्रही अयोध्यामें जाय अपना अभिषेक कराय हमारी समान पिताजीके सत्यका पालन करो यह तुमको अवश्यही कर्त्तव्यहै ॥ ९ ॥ हे धर्मज्ञ ! हमारे लिये तुमको पिताजीका ऋण छुटाना उनका उद्धार करना व कैकेयीका राज्यपर बैठकर संतोष करना होगा ॥ १० ॥ हे भ्रातः ! ऐसा सुना जाताहै कि पहले समयमें यशवान गयराजा गया देशमें यज्ञ करते हुए, उन्होने पित्रोंको प्रसन्न करनेके लिये यह गाथा गाई थी ॥ ११ ॥ जिसके हेतुसे कि, पुत्र पिताको पुन्नाम नरकसे उद्धार और इष्ट व पुत्रकार्य द्वारा पिताको स्वर्गलोकमें भेजकर सब भाँतिसे उनकी रक्षा करता रहताहै इसी हेतुसे उनको पुत्र कहतेहैं ॥ १२ ॥ सब मनुष्य इसीकारणसे विद्या और गण संपन्न पुत्रोंकी कामना करतेहैं और उनको उत्पन्न करतेहैं कि उनमेंसे कोई तो पुत्र गयाको जाकर श्राद्ध करेहीगा ॥ १३ ॥ हेरघुनंदन ! सब राजा लोग इसी बात पर विश्वास करके पुत्र उत्पन्न करतेहैं अतएव हेनरश्रेष्ठ ! तुमभी तो चार भाई हो सो पिताजीका नरकसे

उद्धार करो ॥ १४ ॥ हे वीर ! अब तुम सब द्विजाति और नौकर चाकर व प्रजा लोगोंके संग शत्रुघ्नजीके साथ अयोध्यामें जायकर राज्य करो ॥ १५ ॥ हे वीर ! हमभी और कुछ देर न करके सीता लक्ष्मण इन दोनोंजनोंके साथ जलदीही दंडकारण्यको जांयगे ॥ १६ ॥ हे भरत ! तुम तो जाकर मनुष्योंके राजा होवो और हमभी वनचारी पशुओंके महाराज होवें अब तुम प्रफुल्ल चित्तसे नगरी श्रेष्ठ अयोध्याको गमन करो और हमभी इस ओर हर्षयुक्त होकर दंडकारण्यमें प्रवेश करैं ॥ १७ ॥ हे भरत ! सूर्यकी किरणोंका लजानेवाला राजकीय श्वेत छत्र तुम्हारे मस्तक पर शीतल छाया करै और इस ओर हमभी सुख सहित उन सब सघन वनोंके पेडोंकी छायामें उनके पत्तोंका आश्रय करैंगे ॥ १८ ॥ हे भरत ! बडे बुद्धिमान् शत्रुघ्न तुम्हारी सहायता करते रहैंगे और सर्व लोकोंमें विख्यात यह लक्ष्मणभी हमारी सहायता करैंगे तुम कुछ विषाद मतकरो ❀॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामा०वाल्मीकीये आदि०अयोध्याकांडे सप्तोत्तरशततमः सर्गः॥ १०७॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः १०८.

धर्मज्ञ रामचंद्रजी इस प्रकार भरतजीको समझा बुझारहेथे कि, इतनेमें ब्राह्मणश्रेष्ठ जाबालिजी धर्म विरुद्ध वचन उनसे बोले॥ १ ॥हेरामचंद्रजी ! तुम श्रेष्ठ बुद्धिवाले और तपस्वीहो फिर साधारण लोगोंकी समान तुम्हारी पिताजीके वचन पालनेके विषयकी बुद्धि निरर्थक न होवे ॥ २ ॥ जगत्में कौन किसीका भाई बन्धुहै ? और किसीसे किसका क्या अच्छा बुरा हो सकताहै ? प्राणी इकलाही जन्म लेताहै और फिर इकलाही विनाशको प्राप्त होजाताहै ॥ ३ ॥ तिससे हेरामचंद्रजी ! यह हमारी माताहैं यह हमारे पिताहैं ऐसा संबंध मानकर जो पुरुष इसमें आसक्त होताहै उसको मतवाला समझना चाहिये विचार करकै देखनेसे कोई भी किसीका नहींहै ॥ ४ ॥ जिसप्रकार कोई मनुष्य दूसरे गांवमें जानेके समय किसी बीच वाले गांवकी चौपाल के बाहर टिक रहे और दूसरे दिन उसको छोडकर वहांसे चला जाताहै ॥ ५ ॥ मनुष्यका पिता माता गृह और धनादि संपत्तिके साथ भी ऐसाही थोडी देरका टिकाऊ संबन्ध है सज्जन मनुष्य इसी कारणसे इसमें आसक्त नहीं होतेहैं ॥ ६ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! पिताके राज्यको एक बारही त्यागकर बहुत सारे विघ्नवाले और भयंकर

❀ दोहा-यहि प्रकार समझायकर, भरतहि श्रीरघुनाथ। सजल दृष्टि अति प्रेमसे, धरयो शीशपर हाथ ॥

दुःखदाई वनके मार्गका आश्रय लेना तुम्हें किसी प्रकारसे भी उचित नहींहै ॥७॥ आप सब धन धान्य युक्त अयोध्यापुरीमें जाकर अपना अभिषेक कराइये अयोध्या नगरी एकवेणी धारण किये विरहिनीकी समान जिसका पति परदेश गयाहो, आपके आनेकी राह देख रहीहै॥८॥हे नृपकुमार! इस समय आप स्वर्गमें इन्द्रकी समान बडे २ मोलकी राजाओंके लायक भोगकरनेवाले वस्तुओंका भोग करते हुए परम सुखसे विहारिये ॥ ९ ॥ न दशरथजी आपके कोई हैं न आप दशरथजीके कोई हैं तिस कारण राजा कोई औरहैं, व आप कोई औरहैं, अतएव जो हम कहतेहैं सो करो ॥ १० ॥ जीवके जन्मके विषयमें पिता तौ एक वीर्यका कारण मात्रहै, क्योंकि ऋतुमती माताके गर्भमें इकट्ठा होकर मिला हुआ वीर्य और रक्तही जीवके जन्म होनेका कारणहै ॥ ११ ॥ राजा वहीं पर गयेहैं जहां पर कि उनको निश्चय ही जानाथा प्रवृत्तिही प्राणियोंकी इसप्रकारसेहै फिर तौ आप वृथा पुरुषार्थके भोगसे अपनेको छुडातेहैं ॥ १२ ॥ प्रत्यक्ष सिद्ध पुरुषार्थ प्राप्त होतेभी जो लोग उसको त्याग कर धर्मके बटोरनेमें लगे रहतेहैं उनके ही लिये हमको शोक होताहै औरके लिये नहीं क्योंकि इस प्रकारसे धर्म इकट्ठा करनेवाले लोग इस लोकमें कष्ट पातेहैं और परलोकमें भी विनाशको प्राप्त होतेहैं ॥ १३ ॥ लोग जो अष्टकादि श्राद्धको पित्रोंका परम मंगल करनेवाला विचारकर उसका अनुष्ठान करतेहैं सो उससे केवल ढेरके ढेर अन्नका नाश होजाताहै और कुछ नहीं होता जरा विचार करकै देखोकि मरे हुएको किसी प्रकारसे वह भोजन पहुंच सकताहै ? कभी नहीं ॥ १४ ॥ और यदि किसी आदमीके भोजन कराने पर वह भोजन किसी दूसरेके शरीरमें पहुंच जाताहो तब तौ विदेशके जानेवाले लोगोंको मार्गके लिये सीधा भोजन देना अनुचित है, बस उसके अर्थ किसी ब्राह्मणके भोजन करानेसे ही उस भोजन किये अन्न द्वारा उसकी तृप्ति हो जायगी ! इस कारण लोग जो अपने पित्रोंकी तृप्तिके लिये श्राद्धमें ब्राह्मण भोजन करातेहैं सो वृथाहै उस्से तौ केवल परिश्रमही होताहै ॥ ॥ १५ ॥ फलतः और उपायोंसे जीविकाके निर्वाह होनेमें क्लेश देखकर कुछेक बुद्धिवान् लोगोंने मनुष्योंको चतुराईसे वशकराने दानकरानेके लिये अपने उपाय स्वरूप जो वेदादिक ग्रंथ हैं उनका प्रचार किया और उनमें, यज्ञ करो, देवपूजन करो, गुरुदीक्षालो, और संन्यास धर्म ग्रहण करो, यह उपदेश लिखदियेहैं पामर लोगोंको धोखा देना और सरलतासे उनका धन ग्रहण करना यही

वेदादिकोंका मुख्य प्रयोजनहै ॥ १६ ॥ आप बुद्धिमान हो अतएव विचार करकै देखो कि इस लोकके सिवाय परलोकमें सुखका प्रयोजन कुछभी नहींहै जो प्रत्यक्ष यह राज्य सुखहै सो आपको इसेही भोग करना चाहिये नकि अप्रत्यक्ष पिताजीके वचन पालन करनेमे धर्म मिलेगा, ऐसे कार्यमें मत लगो ॥ १७ ॥ भरतजी तौ आपको प्रसन्न करतेहैं सो इस समय आप साधु और पंडित लोगोंकी बुद्धिको अनुसरण करकै राज्यको ग्रहण करो ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

नवोत्तरशततमः सर्गः १०९.

सत्यपराक्रम श्रीरामचंद्रजी जाबालिजीकी यह वार्त्ता सुनकर उस वार्त्ताके विरुद्ध अपनी सुन्दर अचल बुद्धिसे विचारे हुए वेदके प्रमाणित वचन बोले ॥ १ ॥ आपने जो हमारा हित करनेकी कामनासे जो कुछ कहा वह वास्तवमें अनुचित होनेपर भी वा उसका परिणाम दुःखका मूल होनेपरभी ऐसी बनावटसे कहा गयाहै कि सबसे पहले वह सब वचन करनेके योग्यहीहैं ॥ २ ॥ जो कुछ हो जो पुरुष अच्छे मार्गको त्याग करकै खोटे मार्गमें गमन करै पापका आचरण करै और साधु-व पंडितों करकै जो समस्त शास्त्रहैं उनको त्याग करकै वेद विरुद्ध नास्तिक आदि लोगोंके शास्त्रोंमें अपनी रुचि दिखावे सो ऐसे पुरुषका कभी सज्जनोंके समाजमें आदर नहीं किया जाता ॥ ३ ॥ कुलीन, वीर, वा डरपोक पवित्र व अपवित्र जो कोई पुरुषहो वह वेदका कहा हुआ मार्ग लेतही सब सिद्ध होजाताहै और जो कोई वेद विरुद्ध कार्य करता वह कैसाही कुलीन, वीर, पवित्रहो परन्तु निन्दित होजाताहै ॥ ॥ ४ ॥ और कहांतक कहैं वैदिक सदाचार अवलंबन करनेपर अश्रेष्ठ, श्रेष्ठ, अपवित्र, पवित्र लक्षणरहित, लक्षणयुक्त और खोटे शीलवाले शील युक्त होजातेहैं ॥५॥ हम यदि ऐसा वेष धारण करकै उक्त लोकसंकरकारी अधर्मके मार्गमें विचरण करैं तौ हमको भी उसके लिये अशुभकी प्राप्ति होगी ॥ ६ ॥ और कार्य अकार्यके जाननेमें चतुर चेतनवान सब पुरुष हमको लोक दूषण और खोटा व्रत धारण करनेवाला विचार कर किसी भाँतिभी हमारा मान्य नहीं करेंगे ॥ ७ ॥ बस जब कि हम आपके उपदेश देनेके अनुसार कार्य करें तब हमारे सत्यपालन करनेके विषयकी जो प्रतिज्ञा है वह टूट जायगी तब हम किस प्रकारसे स्वर्ग प्राप्त करनेमें समर्थ

॥ ८ ॥ जब हम आपके उपदेशके अनुसार कार्य करके स्वेच्छाचारी होजायँ तो हमारी देखा देखी यह सब लोग अपना मन माना कार्य करनेलगैं। क्योंकि जिस प्रकारसे कि राजाका व्यवहार होताहै बस वैसाही प्रजाभी वर्त्तने लगतीहै ॥ ९ ॥ सत्य वचन और सर्वभूतोंपर दयाकरनी यही सनातन राजधर्महै अत एव राज्य सत्यसेही प्रतिष्ठितहै अधिक क्या कहैं सब लोकभी इकले सत्यसेही टिकतेहैं ॥ १० ॥ ऋषि लोग और देवता लोग केवल इकले सत्यहीका आदर करतेहैं संसारमें केवल सत्य वचन बोलनेवालाही अक्षय लोकमें चला जाताहै ॥ ११ ॥ जिस प्रकारकी लोग सांपसे डरतेहैं ऐसेही झूंठ बोलने वालोंसे लोग डरतेहैं सत्यपरायण धर्महीं संसारमें सबका मूल है ऐसा कहा गया है ॥ १२ ॥ लोकमें सत्यही ईश्वरहै सत्यमेंही धर्म टिका हुआ है, सत्यसेही सबका आरंभ है और सत्यसे अधिक परम पद और दूसरा नहीं है ॥ १३ ॥ दान, यज्ञ, होम और तपस्या इत्यादिक कर्म जोकि वेदमें हैं वे वेदभी सत्यमेंही टिकेहैं अतएव सबकोही केवल सत्यपालन करनेको तैयार होना चाहिये ॥ १४ ॥ कोई लोग तो ऐसे हैं कि, एकही कुलका पालन पोषण करते हैं कोई लोकभरको पालते पोषते हैं, कोई नरकमें डबते तैरते हैं कोई स्वर्गमें पूजित होते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकारके धर्म और अधर्मको जानकर भी हम किस प्रकारसे सत्य प्रतिज्ञा और सदाचारमें लगे हुए पिताजीकी आज्ञा पालन करनेमें विमुख होजायँ जब कि, हमनें भी कहा है कि, सत्यका पालन करेंगे ॥ १६ ॥ अतएव लोभ मोह अज्ञान क्रोध हम किसीके भी वश पडकर पिताजीके सत्यका जो पुलहै उसको किसी प्रकारसे नहीं तोडेंगे कह चुके सो कहचुके, अब सोच विचारही क्या ? ॥ १७ ॥ फिर हमने यह भी सुना है कि, सत्य कहनेवाले चंचल स्वभाव जिसका चित्त स्थिर न हो ऐसे पुरुषका दिया हुआ अन्न पानी रुपया पैसा देवता अथवा पितर कोई ग्रहण नहीं करते ॥ १८ ॥ जीवनकी स्थिति बढानेके लिये ही जिसकी सृष्टि हुई है सो ऐसे इस सत्यपालन करनेको हम सब धर्मोंसे बडा समझते हैं प्राचीन समयके साधु लोगोंके भी सत्य पालन करनेके कारण इस प्रकारके जटाभार अपने ऊपर लादे हैं इसही कारण पुराना वृत्त समझकर हम भी इससे आनन्दित होते हैं * ॥ १९ ॥ नीच निर्लज्ज लोभी

* (सत्यव्रत नाम एक राजा था उसने अपने नामका एक गंज रचा और यह आज्ञादी कि, जो व्यापारी यहां आवैगा उसकी वस्तु जो विकनेसे रहैगी वह सायंकालको खरीद ली जायगी ऐसाही

और पापी लोग जो धर्मकी समान दिखाई देनेवाले अधर्म कार्योंकी सेवाकर इस धर्मका अनुष्ठान करते हैं सो हम इस धर्मको त्याग करते हैं परन्तु ठीक क्षत्रिय धर्मको हम कभी त्याग नहीं करैंगे ॥ २० ॥ इस प्रकारसे धर्म करेंगे, पहले मनमें संकल्प करले व करै नहीं शरीरसे जो पापके कर्म करे फिर उसको छिपानेके लिये मिथ्या बोले । यह मानसिक, कायिक और वाचिक तीन प्रकारके पाप हैं ॥ २१ ॥ भूमि, कीर्त्ति, यश और लक्ष्मी यह सब सत्य कहने वाले पुरुषकी ही प्रार्थना करते हैं और सज्जन लोग केवल सत्यकेही अनुसार कार्य करते हैं अतएव हम सच्चे अंतःकरणसे सत्यकाही आसरा लेवैंगे ॥ २२ ॥ आपने जो विशेष बनाय २ कर युक्तियुक्त बातोंने हमको राज्य पालनकी आज्ञा करके उसकी श्रेष्ठता जो दिखाई सो यह वार्त्ता कभी न्याय सम्मत नहीं हो सकती ॥ २३ ॥ हम जटा धारण और चीर वसन पहन कर वनमें वास करैंगे जबकि साक्षात गुरू पिताजीसे यह प्रतिज्ञा कर आयेहैं तब फिर अब किस भांति पिता-

होता रहा एक लोहेकी मूर्ति शनैश्चर देवकी प्रतिष्ठित एक दिन लाया और उसनें उस मूर्तिका मोल (१०००००) एक लक्ष मुद्रा बताया और उसका फल यह कहा कि, जो मनुष्य इसको लेकर घरमें रक्खै उसका धर्म लक्ष्मी यश कर्म नाश होजाय और उसके घरमें अधर्म दरिद्र अयश अभाग्यका वास होय यह फल सुनकर किसीनें मोल नहीं ली तब सांझ समय वह लुहार उस मूर्तिको लेकर राजाके यहां आया और कहा कि महाराज आप सत्यव्रत हैं मेरी मूर्त्ति आपने नहींली तब राजानें मूर्तिका फल सुनकर भी (१०००००) एक लक्ष मुद्रा देकर खरीदली और अपने घर रक्खी जब प्रहर रात्रि गई तब राजा सोने गया अर्द्धरात्रिके समय एक सुन्दर स्त्रीका रूप धरे राज्यलक्ष्मी राजाके समीप आई राजाने पूछा कि, तुम कौन हो तब लक्ष्मीनें कहा कि, हम आपकी राज्यलक्ष्मी हैं अब शनैश्चर देव आये हमारा क्या काम है अब हमारी भगिनी दरिद्राका निवास होगा फिर धर्म आये राजानें पूछा कि, आप कौन हो उन्होंनें कहा कि, हम तुम्हारे धर्म हैं अब शनैश्चर आये हम जाते हैं यह सुनकर राजानें कहा कि, जाइये धर्म बिदा हुए तदुपरि यश आये और राजासे यही कहकर चले गये फिर कर्म आये वहभी राजासे शनैश्चरकी स्थिति कहकर बिदा हुये राजानें किसीको नहीं रोका फिर सत्यदेवजी महाराज जब आये और राजासे कहकर चलने लगे तब राजानें उठकर उनका हाथ पकडा और कहा कि, आप कहां जाते हो मैंने तो आपहीके रखनेके लिये शनैश्चरको लिया क्योंकि शनैश्चरके न लेनेसे मेरा सत्य जाताथा अब आप विराजिये और सब लक्ष्मी आदि गये उनको जाने दीजिये सत्यसे कुछ उत्तर न बना रहना पडा सत्य देवकी स्थिति हुई फिर जहां सत्य है तहां सब हैं लक्ष्मी, धर्म, कर्म, यश यह सब लौट आये इनके आनेसे दरिद्र अधर्म अभाग्य अयश नष्ट हुये राजाका सत्य प्रतिज्ञा होनेसे शनैश्चर देवनें कुछभी फल न किया इस कारण सब मनुष्यों को चाहिये कि, सर्वदा सत्यका आचरण करै ॥)

जीके वचनोंको छोडकर भरतजी की बात मान वन कोन चले जायँ ॥२४॥ और जब कि हमनें पिताजीके निकट यह दृढ प्रतिज्ञा की थी तब देवी कैकेयी उस समय मन में बडी ही प्रफुल्लित हुई थीं सो उनके मनको इस समय कष्ट देना हमको किसी प्रकारसे ठीक नहीं लगता ॥ २५ ॥ तिससे हम वनहीं में रहकर पवित्र चित्तसे नियत समयपर कंद मूल फल पुष्पादि भोजन करते देवता व पितरोंका तर्पण करते रहैंगे ॥ २६ ॥ पांचों इन्द्रियोंको सन्तुष्ट रख कपटता रहित गुरु वचनमें श्रद्धा करते कार्य अकार्यमें चतुरहो सज्जनोंकी मर्यादाका पालन करेंगे ॥ २७ ॥ क्योंकि इस भारत वर्ष कर्म भूमिमें जन्म लेकर शुभ कर्मोंकाही करना उचितहै क्योंकि कर्मोंके फलके भागी अग्नि वायु और चंद्रमाहैं अर्थात् कर्मानुसारही इन सब लोकोंकी प्राप्ति होतीहै ॥ २८ ॥ देवराज इन्द्रजी १०० सौ यज्ञ करके स्वर्ग लोकके राजा हुए और महर्षि लोगभी तप करकै स्वर्गको गये ॥ २९ ॥ उग्र तेज-वान् नृपनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे जाबालिके नास्तिकतासे भरे वचन सुनकर उनको न सहसके और उनके वचनोंकी निंदा करते हुए फिर उनसे बोले ॥३०॥ साधु लोक सत्य धर्म जब सब प्राणियोंके ऊपर दया करना प्यारे वचन और देवता ब्राह्मण व अतिथिसत्कार इनहीके बातोंको स्वर्गप्राप्तिका कारण बताते हैं ॥ ३१ ॥ हमारे इस वचनके अनुसार सावधान ब्राह्मण लोग अनुकूल तर्कको ग्रहण करके धर्मकोही मुख्य समझ सब धर्मोंका आचरण करते हुये ब्रह्मलोकादिकी आकांक्षा करतेहैं और वहां चलेभी जातेहैं ॥ ३२ ॥ आप धर्मके मार्गसे एकवारही भ्रष्ट हुयेहैं आप बडे भारी नास्तिकहैं, आपकी बुद्धिभी वेदके विरुद्ध मार्गमें लगी हुईहै अतएव पिताजीनें जो आपको यज्ञके कार्यमें वरन किया व बलाया सो उनके इस कार्यकी हम निन्दा करतेहैं ॥ ३३ ॥ चोरको जिस प्रकार दंड दिया जाताहै बुद्धके मतवाले नास्तिकोंकोभी वैसाही दंड देना ठीकहै, अतएव प्रजा लोगोंकी बुद्धि शुद्ध करनेंके लिये राजाको अवश्यही नास्तिकको दंड देना चाहिये ॥ ३४ ॥ अधर्माचारी नास्तिकके साथ ब्राह्मण व ज्ञानवान् पुरुषको बातभी न करनी चाहिये, आपसे जो लोककि बहुत श्रेष्ठथे सो प्राचीन समयमें ऐसे बहुत सारे ब्राह्मणोंने बहुत सारे शुभ कार्य्योंको किया, क्या इस लोक क्या परलोकमें कहींभी उनको किसी प्रकारके फलकी कामना नहींथी॥ ३५॥ वह लोग जोकि अहिंसा और सत्य तपस्या करना दान करना और पराया उपकार करना इत्यादि यज्ञोंको करना कराना इन्हीं सब बातोंके लिये

वेदोंके प्रमाण झलक रहेहैं जो कि एक मात्र धर्ममेंही तत्परहैं, तेजस्वीहैं, हिंसा नहीं करते और सदा शुद्ध भाव धारण करनेवालेहैं, जो लोग विशेष करके दान देनेमें प्रधानहैं, साधुओंका संग करनेवालेहैं सो ऐसे वसिष्ठादि प्रधान२ ऋषि लोगही संसारमें सबके पूजनीय होतेहैं, आपकी समान नास्तिकमतको धारण करनेवाले मुनि कदापि पूजे जानेके योग्य नहींहैं ॥ ३६ ॥ महा सत्यवान् दीनता रहित रामचंद्रजीने क्रोधमें भरकर जाबालिजीसे जब ऐसे वचन कहने आरंभ किये तब फिर जाबालिजी विनय युक्तहो सत्यसम्मत आस्तिक वचन बोले ॥ ३७ ॥ हम स्वयं नास्तिक नहींहैं न हम नास्तिककीसी वार्त्ता कहतेहैं और यह तो कभी होही नहीं सकता कि परलोक नहींहै, समय देखकर हम आस्तिक और नास्तिक हो जातेहैं ॥ ३८ ॥ जिस समय हमने नास्तिककेसे वचन कहेथे वह समय अब चलागया । हे श्रीरामचंद्रजी ! आपको वनवाससे लौटानेके कारणही और तुम्हारी प्रीतिके वश होनेसेही हमने ऐसा कहाथा ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां नवोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

दशोत्तरशततमः सर्गः ११०.

श्रीरामचंद्रजी इस समय क्रोधित होगयेहैं यह जानकर वसिष्ठजी उनसे बोले कि प्राणी जो सदा वार २ इस लोक और परलोकमें आगमन करतेहैं जाबालिजी भी इसको भली भांति जानतेहैं यह नास्तिक नहीं है ॥ १ ॥ यह केवल आपको वनवाससे लौटानेहीकी कामना करके इस प्रकारके वचन बोलेथे हे लोकनाथ! सब लोकोंकी उन्नतिका वृत्तान्त तुम हमसे श्रवण करो ॥ २ ॥ सृष्टिसे पहले इस सब जगत्में जलही जलथा उसी जलके मध्य पृथ्वी बनाई गई कोई काल पाकर विराट् रूपी ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ हुये ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीसे वाराहजीका अवतार होकर भगवान् विष्णुजी जलके बीचसे पृथ्वीको उद्धार करके लाये और सृष्टि उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले अपने पुत्रोंके साथ ब्रह्माजीने सब सृष्टि रची ॥ ॥ ४ ॥ यह आकाशसे उत्पन्न हुयेहैं यह सदा रहतेहैं अव्ययहैं; इन ब्रह्माजीसे भगवान् मरीचिका जन्म हुआ मरीचिसे कश्यप उत्पन्न हुये ॥ ५ ॥ कश्यपजीसे विवस्वान् सूर्य विवस्वान्से स्वयं वैवस्वत मनुने जन्म ग्रहण किया यह वैवस्वत मनुही प्रजापतियोंमें पहले हुये और इनकेही बडे बेटे इक्ष्वाकु हुये ॥ ६ ॥ मनुजीने इक्ष्वाकुहीके

प्रथम धन धान्ययुक्त यह सब पृथ्वी दान की इन इक्ष्वाकुहीको अयोध्याका प्रथम राजा जानो॥ ७॥ इक्ष्वाकुके पुत्र श्रीमान् कुक्षिनामसे विख्यात हुये, हे वीर ! कुक्षिसे विकुक्षिकी उत्पत्ति हुई ॥ ८ ॥ विकुक्षिके पुत्र महातेजवान् प्रतापशाली बाण हुये बाणके पुत्र महाबाहु और महातप करनेवाले अनरण्यजी उत्पन्न हुये ॥ ९ ॥ साधुओंमें श्रेष्ठ महाराज अनरण्यके राजकालमें कभी सूखा या अकाल नहीं पडा उनके राज्यमें कोई चोरभी नहीं था ॥ १० ॥ हे महाराज ! अनरण्यजीसे महाराज पृथुजीनें जन्म ग्रहण किया, राजा पृथुके पुत्र परम तेजवान् त्रिशंकुजी उत्पन्न हुये ॥ ११ ॥ यह त्रिशंकुजी ऐसे सत्यवादीथे कि, शरीर सहित स्वर्गमें चले गयेथे त्रिशंकुजीके पुत्र परम यशवान धुन्धुमार हुये * ॥ १२ ॥ धुन्धमारजीसे महातेजवान् युवनाश्वजीका जन्म हुआ श्रीमान् मान्धाता युवनाश्वके पुत्र रूपसे उत्पन्न हुये ॥ १३॥ मान्धाताजीके परम तेजवान् सुसन्धिजन्में सुसन्धिके दो पुत्र हुये ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित् ॥ १४ ॥ उनमें ध्रुवसन्धिके पुत्र रिपुसूदन और यशमान् भरतजी हुए महाबाहु भरतसे असितका जन्म हुआ ॥ १५॥ हैहय तालजंघ और शशविन्दु व शूर इन चारोंने राजा असितके विरुद्ध शिर उठाया और वैरभाव किया ॥ १६ ॥ युद्धके समय राजा असितने इन सबके विरुद्ध सेनाका किला बनाकर इनको घेरा, परन्तु फिर उनका हराना कठिन समझ-कर वनका आश्रम और मुनियोंकी वृत्ति धारण करके परम मनोहर पर्वतराजा हिमा-लय पर तपस्या करनेके लिये वसते हुए॥ १७॥ इस प्रकार प्रसिद्धहैं कि, उनकी दो स्त्रियोंके उस समय गर्भ था उनमेंसे एक महा भाग्यवान् कमल फलकेसे नेत्रवाली रानीने पुत्र रत्नकी कामनासे, देवताकी समान तेजस्वी भृगुनंदन च्यवनकी उपासनाकी और दूसरी रानीनें सौतका गर्भ नष्ट करनेके लिये उसको गरल दियाथा॥ १८॥ १९॥ भृगुनंदन च्यवनजी उस समय हिमालयपर वास करतेथे । कालिन्दीनामक प्रथम रानीने उन ऋषिकी शरणमें जाकर विधिसहित उनकी वंदनाकी ॥ २० ॥ महर्षि च्यवननें जाना कि इसे पुत्र पानेकी इच्छाहै, तब प्रसन्न होकर उस पुत्रकी कामना करनेवाली रानीसे कहा कि, हे देवि! तुम्हारे बड़ा महात्मा लोकविख्यात पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २१ ॥ यह धर्मात्मा भयानकस्वभाव वंशकाबढानेवाला होगा और यह

---

* सूर्य कुलमें राजर्षि हरिश्चंद्रका नाम नहीं आया, इस्से ऐसा ज्ञात होताहै कि, धुन्धुमारहीका दूसरा नाम हरिश्चंद हो युवनाश्वहीसा नाम रोहिताश्वहो यह हरिश्चंद्रका पुत्र मान्धाता ।

शत्रुओंका संहार करैगा रानी कालिन्दी यह वरदान सुनकर बडा हर्ष मानकर उनकी प्रदक्षिणा करने लगी ॥ २२ ॥ उनकी आज्ञा ले घरको आई और वहां कमल-दल समान नेत्र व ब्रह्माजीके समान पुत्र उत्पन्न किया ॥ २३ ॥ इस पुत्रके जन्म होनेसे पहिले दूसरी रानीने सवतिया डाहसे जो अपनी सौतका गर्भ नष्ट करनेको विष दियाथा उसीगर अर्थात् विषके साथ पुत्रका जन्म होनेसे उसका सगर नाम हुआ ॥ २४ ॥ इन राजा सगरजीने प्राचीन समयमें यज्ञमें दीक्षित होकर खोदनेके वेगसे सब प्रजाके लोगोंको उकसाकर पुत्रोंकी सहायतासे समुद्र खुदवाया ॥ २५ ॥ ऐसा सुनाहै कि, इन सगरजीके एक असमंजस पुत्रथे यह परम भागवत होनेके कारण यह इच्छा रखते कि,यदि हम घरसे निकासदिये जांय तो अच्छाहै वहां पर एकान्तमें बैठ भगवानका भजन करें इसकारण अयोध्यावासियोंके लडके सरयूमें डुबा देतेथे सो ऐसे पाप करनेसे सगरजीने इनको घरसे निकाल दिया ॥ २६ ॥ असमंजसके पुत्र महावीर्यवान् अंशुमान् हुये, अंशुमान्के पुत्र दिलीपजी हुये दिलीपके भगीरथ जन्मे ॥ २७ ॥ भगीरथजीके पुत्र ककुत्स्थ ककुत्स्थके पुत्र रघु इनही ककुत्स्थजी और रघुजीसे काकुत्स्थ और राघव नामक वंश परम्परायें चलीं ॥ २८ ॥ रघुजीसे तेजवान् प्रवृद्ध, पुरुषादक, कल्माषपाद, और सौदास नामक पृथ्वीपर विख्यात चारों पुत्रोंका जन्म हुआ ॥ २९ ॥ कल्माषपादके पुत्र शंखण हुये यह लोकप्रसिद्ध वीर्यको पाकर दैवात् सेना सहित हमारे शापसे नाशको प्राप्त होगये॥ ३० ॥इन शंखणके पुत्र सुदर्शन नाम थे । परम वीर्यवान् श्रीमान् सुदर्शनजीसे अग्निवर्ण उत्पन्न हुऐ अग्निवर्णके पुत्र शीघ्रग हुए॥ ३१ ॥ शीघ्रगके पुत्र मरु मरुके पुत्र प्रशुश्रुव, प्रशश्रवके पुत्र महामति अम्बरीषजीहुए ॥ ३२ ॥ अम्बरीषके पुत्र सत्यविक्रमवान् नहुषहुएनहुषके पुत्र परम धार्मिक नाभाग हुये॥ ३३ ॥ नाभागके दो पुत्र अज और सुव्रत हुये उनमें अजके पुत्र धर्मात्मा राजा दशरथजी हुये॥ ३४ ॥ तुम उन्हीं महाराज दशरथजीके ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र नामसे विख्यातहो अतएव तुमहीं अपने पिता दशरथका राज्य ग्रहण करके संसारका पालन करो ॥ ३५ ॥ इक्ष्वाकुके वंशमें बडाही पुत्र राजा होता चला आया है, ज्येष्ठके वर्तमान रहते छोटेको राज्यका अभिषेक नहीं होता ॥ ३६ ॥ तुम रघुकुलवंशोंका यह सबसनातन कुल धर्म विनाश करनेके योग्य नहीं हो तिससे अपने पिताकी समान यशवान होकर बहुत रत्नादि संयुक्त और बहुत राज्य युक्त इस समस्त पृथ्वीका पालन् कीजिये ३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आदि०अयो०भाषायां दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

एकादशोत्तरशततमः सर्गः १११.

राजपुरोहित वसिष्ठजी उस समय रामचंद्रजीसे ऐसा कह फिर धर्म सम्मत दूसरी वार्त्ता कहने लगे ॥ १ ॥ हे काकुत्स्थ ! हे राम ! पुरुषके जन्म होनेपर उसके तीन गुरु होते हैं; पिता, माता, और आचार्य ॥ २ ॥ हे पुरुषसिंह ! पिता माता तो शरीर मात्रसे पुरुषको जन्म देते हैं, परन्तु आचार्य उसको सब बातैं सिखाकर पंडित बनाता है व उस पर आज्ञा करता है इस कारण एक आचार्यही गुरु कहाता है ॥ ३ ॥ हे शत्रुओंको तपानेवाले ! हम तुम्हारे पिता और तुम्हारे दोनोंहीके श्रेष्ठ गुरु व आचार्य हैं अतएव हमारे वचन प्रतिपालन करनेसे तुम सद्गतिसे भ्रष्ट नहीं होंगे ॥ ४ ॥ हे तात ! देखिये यह सब तुम्हारीही प्रजाहैं, जातिवाले हैं, और तुम्हारे आधीनके छोटे २ राजा हैं इनके प्रति धर्माचरण करनेसे तुम कदापि सद्गतिसे भ्रष्ट नहीं होगे ॥ ५ ॥ तुम्हारी माता अतिशय धर्मवान् और वृद्धहैं सो इन माताके वचनोंका उल्लंघन करना तुमको उचित नहीं है इनकी आज्ञा पालन करनेसे भी तुमको सद्गतिसे भ्रष्ट नही होना पडैगा ॥ ६ ॥ हे धर्मज्ञ ! सत्यपराक्रम करनेवाले ! रघुनंदन ! तुम्हें राज्यपर अभिषेक करनेके लिये भरतजी प्रार्थना कर रहेहैं सो इनकी बात माननेसेभी तुम सद्गतिसे भ्रष्ट नहीं होगे ॥ ७ ॥ गुरु वशिष्ठजी जब स्वयं मधुर वाणीसे इस प्रकार कहकर आसन पर बैठ गये तब पुरुषश्रेष्ठ रामचंद्रजीने उत्तर दिया ॥ ८ ॥ कि माता पिता पुत्रकी जो सेवा करतेहैं उसके बदलेमें पुत्र जो कुछ किया चाहै तो नहीं कर सकता ॥ ९ ॥ क्योंकि वे अपनी सामर्थ्यसे अधिक जैसे भी हो पुत्रका उत्तम २ भोजन वस्त्रादि देते प्रथम बहुत छोटेपनमें सुवाते, करवटले वाते, तेल, उबटना लगा, मधुर २ वचन कह २ कर प्यार दुलार करते उसके बढने व जीनेका बहुतेरा उपाय करते ॥ १० ॥ महाराज दशरथजी हमारे पिता, पालन पोषण करनेवाले व राजाहैं, तिसके उन्होंने जो कुछ कि, हमें आज्ञाकीहै वह हमसे कदापि मिथ्या नहीं होगी ॥ ११ जब श्रीरामचंद्रजीने इस प्रकारसे कहा तो चौडी छातीवाले भरतजी चित्तमें बहुतही दुःखी होकर निकट बैठे हुए सारथी सुमंत्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ हे सारथे ! इस चबूतरेपर तुम शीघ्रही कुशोंको बिछादो, आर्य रामचंद्रजी जबतक हमारे ऊपर प्रसन्न नहीं होवेंगे तबतक हम इन कुशोंपर धन्ना देकर बैठे रहैंगे ॥ १३ ॥ यह हमारे वचनोंको अंगीकार कर जब तक कि, अयोध्याको न लौट चलैंगे तब तक खर्च रखानेवाले लोगों करके धन हीन महा-

जन ब्राह्मण जिस प्रकार अपने धनको लौटानेकी कामनासे ऋषियोंके द्वार पर हत्या देकर बैठ जाताहै वैसेही हमभी विना भोजन किये नयन मूंद इनके सामने पर्णकुटीके द्वार पर इन कुशोंपर पडे रहेंगे ॥ १४ ॥ परन्तु सुमंत्रजी कुशोंके बिछानेमें रामचंद्रजीकी आज्ञा चाहकर विलम्ब करनेलगे यह देखकर भरतजी मनमें दुःखीहो आप कुश बिछाय भूमिपर बैठे ॥ १५॥ भरतजीको इस प्रकार कुशोंपर बैठे हुए देखकर राजर्षियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजी भरतजीसे बोले कि, हे भइया भरत! हमने कौन अन्याय कियाहै जो तुम हमारे ऊपर धन्ना * देतेहो॥ १६॥ धनको खोये हुए ब्राह्मणही धन पानेके लिये लोगोंको रोकनेके कारण एक करवटसे कर्जदारके द्वारपर धन्ना दे सकते हैं किन्तु तिलकधारी क्षत्रिय लोगोंके लिये यह धन्ना देनेकी विधि किसी प्रकारसे नहीं है ॥ १७ ॥ अतएव हे पुरुषसिंह ! इस दारुण व्रतको त्याग करके उठो और बहुत शीघ्र इस वनकी भूमिसे श्रेष्ठ पुरी अयोध्याको गमन करो ॥ १८ ॥ भरतजी उसी रीति धन्ना दिये पडे रहकर चारों ओर बैठे हुए पुरवासी और देशवासी सब लोगोंकी ओर दृष्टि फेर कर कहने लगे तुम सब लोग किस कारणसे आर्य रामचंद्रजीको घर लौट चलनेके लिये नहीं कहते॥ १९॥ तब पुरवासी और देशवासी सबही एक स्वरसे भरतजीसे बोले कि, आपने काकुत्स्थनंदन महात्मा रामचंद्रजीसे जो कुछ कहा सो ठीकहै जो आप कह रहेहैं यह हम जानतेहैं कि, सत्य है॥ २०॥ परन्तु यह महाभाग रामचंद्रजी पिताके वचनोंको पालनेमें दृढ संकल्प किये हुएहैं यहभी सब भांतिसे उचितहीहै अतएव हम लोग किसीको अटल प्रतिज्ञासे नहीं हटा सकते न हममें इतनी सामर्थ्यहै ॥ २१ ॥ उन सब लोगोंके वचनोंको सुनकर रामचंद्रजी भरतजीसे बोले कि, देखो धर्मके जाननेवाले इष्ट मित्र लोग क्या कह रहे ह सो श्रवण करो ॥ २२ ॥ हे रघुनंदन ! यह लोग तुम्हारे और हमारे दोनोंके ही विषयमें जो बात कहैंगे वह सुन उस पर भली भाँति विचार करके देखो हे महाबाहो ! तुम क्षत्रियके अयोग्य धन्ना देनेके कर्मको मत करो और इस पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये हमें और जलको छुओ क्योंकि हम तुम्हारे बडेहैं ॥ २३ ॥ इसके पीछे भरतजी उठकर और जलको छू कहने लगे कि हे सभामें विराजनेवाले सभासद और मंत्री सबही कोई हमारी बात सुनो ॥ २४ ॥ कि, हमने कभी पिताजीसे यह राज्य नहीं मांगाथा न इसके लिये हमने माता कैकेयीसे कहाथा न परम

---

* विना भोजन किये मुख ढक एकही करवटसे कुशोंपर या पृथ्वीपर घरके द्वारे पडे रहना।

धर्मके जाननेवाले आर्य श्रीरामचंद्रजीको वन भिजवानेमें हमारी सलाहथी ॥२५॥ तौभी यदि वनमेंही वासकरके पिताजीके वचनोंका अवश्यही पालन होना चाहिये तब इनके बदलेमें हमही चौदह वर्ष वनमें वास करैंगे ॥ २६ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी भरतजीके इन सत्य वचनोंसे विस्मित होकर इकट्ठे हुए पुरवासियोंकी ओर देखकर बोले ॥ २७ ॥ कि, पितादशरथजीने अपने जीतेजी जो वस्तु बेंच डाली वा मोलली या किसीके यहां धरोहर धरदी अथवा अपने यहां किसीकी धरोहर रक्खी सो हम व भरत दोनोंको चाहिए कि, उसके विपरीत न करकै उनकी आज्ञाको ज्योंका त्यों माने जब कि, हममेंही वनवास करने की सामर्थ्य है ॥२८॥ तब हम साधुओंसे निन्दा किया हुआ यह दुष्कर्म न करैंगे कि, अपने बदले भरतजीको वन भेजैं कैकेयीने जो कहा है अच्छाही कहाहै और पिताजीने भी जो किया है सो अच्छाही किया है ॥२९॥ यह हम भली भांति जानते हैं कि, भरतजी क्षमाशील और गुरुजनोंका सत्कार करने वाले हैं अतएव राज्यका पालनादि करना यह सब कल्याणके कार्य यह सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले महात्मा भरतजीको ही शोभा पातेहैं ॥ ३० ॥ हम भी इन धर्मशील भाई के साथ वनसे लौटकर पृथ्वीका पालन करैंगे ॥ ३१ ॥ भइया ! कैकेयीने राजासे जो वर मांगाथा कि, राम चौदह वर्षको वनमें जाय और भरतको राज्यहो सो इसकारण हमने राजाको झुंठाईसे छुडाया और कैकेयीके उन वचनोंका पालन किया ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०अ०भाषायां एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

द्वादशोतरशततमः सर्गः ११२.

नारद इत्यादि महर्षि लोग अतुल तेजवान् दोनों भाइयोंका यह रोमहर्षण समागम देख विस्मयको प्राप्त हो वहां आये ॥ १ ॥ मुनि लोग और महर्षि लोग छिपे रहकर उन महाभागवाले रामचन्द्रजी और भरतजी की प्रशंसा करने लगे ॥ २ ॥ जोकि यह धर्मज्ञ और धर्ममें बली श्रीरामचंद्रजी और भरतजी जिनके पुत्र हैं वह धन्यहैं इन दोनोंकी कथा वार्त्ता सुनकर हम सब लोगही परम प्रसन्न हुए ॥३॥ तिसके पीछे ऋषि लोगोंने बहुत शीघ्र रावणके वध करने की अभिलाष में एक मत होकर नृपश्रेष्ठ भरतजीसे कहा॥४॥ हे अटल प्रतिज्ञा करनेवाले शुभ चारित्र युक्त महायशवान् भरतजी!तुमने भले वंशमें जन्मलियाहै सो यदि पिताजीको सुखी करनेकी इच्छा हो तो

जो श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं उसकेही अनुसार तुमको कार्य करना चाहिये ॥ ५ ॥ हम सबका एक यही बडा अभिलाष है कि, महाराज श्रीरामचन्द्रजी पिताजीके ऋणसे उऋण होजावें कैकेयीका कर्ज निवटा देनेसे राजा दशरथजीको स्वर्ग प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ गन्धर्वलोग महर्षिलोग और राजर्षिलोग तौ यह वचन कहकर हर्षितचित्तहो अपने स्थानको चले गये ॥ ७ ॥ शुभदर्शन श्रीरामचन्द्रजी इन वचनोंको सुन प्रफुल्लित हो परमशोभायुक्त प्रसन्न वदनसे उन सब ऋषियोंकी भली भाँति प्रशंसा करने लगे ॥ ८ ॥ यह सुनके भरतजी थरथराय उठे व अति गद्गद् वाणीसे हाथ जोड श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ९ ॥ हे आर्य ! बडेकोही राज्यका अधिकारी होना कर्त्तव्य है; ऐसा कुलधर्म भली भाँति विचार करकै आपको माता कौसल्याजीकी प्रार्थना पूर्ण करनी होगी ॥ १० ॥ इकले इस बडे राज्यकी रक्षा करने अथवा विशेष अनुरागी पुरवासी और देशवासी लोगोंका मन रंजन करनेमें हम उत्साह नहीं होते ॥ ११ ॥ जाति विरादरीवाले लोग, शूरवीर लोग, इष्ट मित्र लोग सबही जलधारा वर्षानेवाले मेघकी आशा करते उत्सुख किसानकी समान एक मात्र आपहीके राज्य करनेकी वाट जोह रहे हैं ॥ १२ ॥ तिससे हे महाबुद्धिमान् ! आप इस राज्यको ग्रहण करकै आपही किसीसे इसको पालन कराइये। हे काकुत्स्थ ! आप जिसके प्रति राज्यके पालनेका भार अर्पण करैंगे वही पुरुष प्रजा पालन करनेमें समर्थ होगा ॥ १३ ॥ यह कह कर भरतजी अपने भइयाके चरणोंमें गिर पडे और उनको मधुर वचनोंसे पुकारकर अति विनीत भावसे वारंवार प्रार्थना करने लगे ॥ १४ ॥ यह देखकर श्रीरामचन्द्रजी मतवाले हंसकी समान मनोहर कंठ वाले कमलदलसम नेत्रवाले श्याम वर्ण भरतजीको अपनी गोदमें लेकर कहने लगे ॥ १५ ॥ हे तात ! हमें वनवाससे रोकने और राज्यपर बैठालनेकें लिये जो बुद्धि तुममें हुई है सो यह बुद्धि स्वभावसेही और शिक्षाके बलसेही उपजी है इस बुद्धिके बलसेही राज्य पालन करनेमें भी तुम्हारी भली योग्यता होगी और सामर्थ्य देखता हूँ अतएव राज्य करनेके लिये अधिक उत्साही होओ ॥ १६ ॥ और मंत्री बुद्धिमान् और इष्ट मित्रोंके साथ सलाह करकै सब बडे २ कार्य कराय लेना ॥ १७ ॥ चन्द्रमासे यदि शोभा विचलित हो जाय हिमालय परभी यदि बरफ न रहे और समुद्रभी यदि वेला भूमिको नांघ जाय तथापि हम किसी प्रकार पिताकी प्रतिज्ञा पालनेको नहीं छोड सकते ॥ १८ ॥ तिससे हे तात ! ऐसा मत

समझो कि, तुम्हारी मातानें इच्छा वा लोभके वश होकर ऐसा किया है और यह सोचकर उससे घृणा करो और सदा उसे माताकेही समान व्यवहार करना ॥ ॥ १९ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो तेजसें सूर्य समान व द्वीजके चन्द्रमाकी समान दर्शनीय कौशल्याकमारसे भरतजी बोले ॥ २० ॥ हे आर्य ! तब इन सोनेकी बनी हुई खडाऊंको चरणसे छूकर यह हमें दे दीजिये इन दोनों खडाऊंमेंही इतनी शक्ति हो जायगी कि यही सब लोकका योगक्षेम करसकैंगी ॥ २१ ॥ तब पुरुषसिंह महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने दोनों खडाऊं पहर फिर उनको उतार कर महात्मा भरतजीको देदीं ॥ २२ ॥ तब भरतजीने भक्ति सहित उन दोनों खडाउओंको प्रणाम करके श्रीरामचंद्रजीसे कहा कि आजसे लेकर १४ वर्षतक जटा चीर धारण किये ॥ २३ ॥ कंद, मूल, फल, खाकर तुम्हारे आगमनकी आकांक्षा किये हे रघुनंदन ! नगरके बाहेर वास करैंगे ॥ २४ ॥ और सब राजकार्य आपकी खडाउओंको अर्पण करैंगे हे रघुनंदन ! जिस दिन चौदहहवां वर्ष पूर्ण होगा ॥ २५ ॥ और उस दिनभी यदि आपको अयोध्यामें आये हुए न देखैंगे तो हम अग्निमें प्रवेश कर जांयगे तब रामचंद्रजीने कहा कि हां ऐसाही होगा हम उसी दिन आ जांयगे यह कह भरतको भेंट ॥ २६ ॥ फिर शत्रुघ्नजीको छातीसे लगाय श्रीरामचंद्रजी बोले कि हे शत्रुघ्न ! तुम सदा कैकेयीकी रक्षा करते रहना, कदापि उसके प्रति रोष प्रकाश मत करना ॥ २७ ॥ इस विषयमें हम तुम को सीताकी और अपनी शपथ दिलाये देतेहैं यह कह नेत्रोंमें जल भरकर दोनों भाइयोंको बिदा किया ॥ २८ ॥ तब धर्मवान् भरतजी वह परम उज्वल और सजी धजी खडाउँऐं ग्रहण करके रामचंद्रजीकी परिक्रमा करते हुए। और जिस हाथीपर कि सदा राजा दशरथजी चढतेथे उसकेही ऊपर भरतजीने उन खडाउओंको धर दिया ॥ २९ ॥ तिसके पीछे हिमालयकी समान अपने धर्ममें अचल टिके हुये रघुवंशके बढानेवाले श्रीरामचंद्रजी यथा योग्य गुरु मंत्री प्रजाके लोग व अनुज भरत और शत्रुघ्न आदिको भली भाँति आदर सहित बिदा करते हुए ॥ ३० ॥ वाफसे कंठ रुकजाने और शोकके मारे बहुतही व्याकुल होजानेसे माताओंमेंसे कोईभी रामचंद्रजीसे बोल न सकी श्रीरामचंद्रजी सबहीको प्रणाम करके रोते बिलखते हुए अपनी कुटीमें प्रवेश करते हुए ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ० अ० भाषायां०द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११२॥

त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ११३.

तिसके पीछे शत्रुञ्जय हाथी परसे खडाऊं उतारकर भरतजी अपने मस्तकपर धारण कर प्रफुल्लचित्तसे शत्रुघ्नजीके साथ रथमें बैठे ॥ १ ॥ वशिष्ठजी वामदेवजी दृढ व्रतधारी जाबालिजी व औरभी सलाह देने वालोंमें चतुर विशेष सन्मान पानेके लायक सब मंत्री लोगभी आगे २ चले॥ २॥ सब लोगही महा गिरि चित्रकूटकी परिक्रमा करते हुये पूर्वकी ओर रमणीय मन्दाकिनी नदीके सामने गमन करने लगे ॥ ३॥ भरतजी विविध भांतिके मनोहर धातु देखते २ चित्रकूटके उत्तरीय मैदानमें होकर सेना सहित चले ॥ ४ ॥ उस कालमें चित्रकूट पर्वतकी कुछ थोडीही दूरपर जहां कि महर्षि भरद्वाजजी मुनियोंके सहित वास करतेथे वह आश्रम भरतजीने अपने ऊंचे रथपरसे देखा ॥ ५ ॥ तब कुलके प्रसन्न करनेवाले बुद्धिमान् भरद्वाजजीके आश्रममें आगये तब भरतजीने नीचे उतर कर महर्षिजीके चरणोंकी वंदनाकी ॥ ६ ॥ अनन्तर भरद्वाजजीने प्रसन्न होकर भरतजीसे कहा कि हे तात ! रामचंद्रजीसे मिलकर तुम कृतार्थ होगये अब यह तो बाताओ कि रामचंद्रजी आये तो सही ॥ ७ ॥ जब बुद्धिमान् महर्षि भरद्वाजजीने ऐसा कहा तब धर्मवत्सल भरतजीने उत्तर दिया ॥ ८ ॥ कि हमनें और स्वयं गुरुदेव वशिष्ठजीने जब वारंवार प्रार्थनाकी तब दृढ विक्रमवान् रामचंद्रजीने प्रसन्न होकर वशिष्ठजीसे कहा ॥९॥ पिताजीने जो हमको वनवास चौदह वर्षका दियाहै सो हम धर्ममें टिके रहकर उसही आज्ञाका पालन करैंगे ॥ १० ॥ वचन बोलने वालोंमें चतुर पंडित वशिष्ठजी यह बात सुनकर उन वाक्य विशारद रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीसे अच्छे वचन बोलते हुए ॥ ११ ॥ कि हे महापंडित ! तब इस समय आप प्रसन्न चित्तसे प्रतिनिधिकी समान सुवर्णसे सजी अपनी यह खडाऊंही देकर अयोध्याभरका क्षेम कीजिये ॥ १२ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वशिष्ठजी महाराजके यह वचन सुनकर पूर्व मुखहो हमको यह राज्यके पालनेकी सामर्थ्य रखनेवाली सुवर्ण लगी खडाउवें देते हुए ॥ १३ ॥ हम उनही महात्मा श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे उनके लिवालानेसे निवृत्त होकर शुभ खडाउवें ग्रहण करके अयोध्याहीको लौटतेहैं ॥ १४ ॥ महात्मा भरतजीके यह शुभ वचन सुनकर महर्षि भरद्वाजजीभी उनसे श्रेष्ठ वचन बोले ॥ १५ ॥ शीलव्रत जाननेवालोंमें श्रेष्ठ पुरुषव्याघ्र ! तुममें यह आश्चर्यकी बात नहीं जैसी सुजनता तुममें है क्योंकि जहां गढा होताहै वहां जल टिकताहीहै ॥ १६॥ और क्या कहैं जब कि तुम जिनके ऐसे

धर्मात्मा और धर्मवत्सल पुत्रहो तव तो तुम्हारे पिता वह महाबाहु दशरथजी सब प्रकारही पितृऋणसे छूटगये॥ १७॥ जब महापंडित भरद्वाजजीने ऐसा कहा तब भरतजी हाथ जोडकर उनके दोनों चरणोंको पकडकर उनसे विदा मांगते हुए॥ १८॥ अनन्तर श्रीमान् भरतजीने भरद्वाजजीकी वार २ परिक्रमा कर सब मंत्रियोंके सहित अयोध्याकी यात्रा की ॥ १९॥ भरतजीके साथ जो सेनाथी वहभी भरतजीको गमन करते देखकर चली उनमेंके लोग कोई २ रथ, हाथी, घोडोंपर चढ २ कर उनके साथ २ चले ॥ २० ॥ तिसके पीछे सब सेना तरङ्गें उछलती हुई यमुना नदीके पार होकर फिर पवित्र जलवाली भागीरथी गंगाजीके दर्शन करती हुई ॥ २१ ॥ भरतजी सेना सहित और बन्धु बान्धवों सहित रमणीय जलसे पूर्ण गंगाजीके पार होकर अति रमणीय शृङ्गवेर पुरमें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ शृङ्गवेर पुरसे चलकर फिर अयोध्यापुरीको देखा जोकि पिता भ्रातासे हीनथी ॥ २३ ॥ ऐसी दुःखित नगरी देख भरतजीने दुःखसे संतापित होकर सारथी सुमंत्रजीसे -हा कि हे सारथे ! देखो शोभाहीना अलंकारविहीना, निरानन्दा दीना और शब्द हीना होनेसे अयोध्या अब पहलेकी समान प्रकाशमान नहीं होती ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०आ०अयो०भाषायां त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ॥११३॥

चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ११४.

इस प्रकार महायशवान् भरतजी गंभीर ध्वनि निकलते रथपर बैठेहुए शीघ्रही अयोध्यापुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ १ ॥ वहां देखा कि चारों ओर बिल्लियां व उल्लुओंसें अयोध्या पूर्ण थी और सब घरोंके किवाँड बंदथे रात्रि जिस प्रकारकी घोर अंधेरेसे ढक जाती और उसमें जरा प्रकाश नहीं मालम पडता क्योंकि वह अनिवार कलोंचसे भरी होतीहै वैसेही अयोध्यापुरीकी सब शोभा छितराय गई कहीं कुछ रोशनी नहींथी ॥ २ ॥ अथवा शशधर चंद्रमा उदित हुए राहु ग्रहसे ग्रसे जाकर जिस प्रकार दुःखित होतेहैं और उस समय उनकी प्यारी स्त्री प्रज्वलित प्रकाशवाली दिव्य कान्ति यक्त रोहिणी जिस भांति निःसहाय होकर टिकी रहतीहै वैसेही अयोध्याकी दशा होरहीथी ॥ ३ ॥ अथवा गरमियोंके समयमें जब पहाडी नदियोंका पानी धूपके तापसे गरम और मैला होजाता और वहांके जलविहंगभी गरमीके ताप से उडकर दूसरी जग चले जाते और मछलियां मरजातीं और जन्तुभी वहां नहीं

रहते उस समय पहाडी नदीकी जो शोचनीय अवस्था होतीहै वैसेही अयोध्याकी दशा हो रहीथी ॥ ४ ॥ अथवा यज्ञीय घृतके स्पर्शसे प्रज्वलित अग्निकी शिखा जिस प्रकार पहले तो धुवेंसे रहित होकर सोनेकी समान उजली ज्योतिका प्रकाश करकै उठे और फिर जलके छिडकनेसे वह सहसा बुझ जातीहै और अच्छी नहीं लगती वैसेही रामचंद्रजीके विरहमें अयोध्या होरही थी ॥ ५ ॥ सब कवचोंके छिन्न भिन्न होनेसे और महा युद्धमें बीरोंके मारे जानेसे और हाथी घोडे रथ और इस ध्वजाओंके छिन्न भिन्न होनेसे विपदकी घिरी सेना जिस प्रकारसे होजातीहै वैसेही अयोध्या होगईथी ॥ ६ ॥ अथवा प्रबल वायुके वेगसे समुद्रकी लहरें जैसे झाग सहित गर्जकर उठतीहैं और पीछे मंद पवन चलनेके कारण शब्द रहित होजा तीहैं यह दशा अयोध्या पुरीकी होरहीथी ॥ ७ ॥ अथवा यज्ञके होचुकनेपर यज्ञ के करानेवालोंने जिसको त्याग करदियाहै, ऐसे यज्ञके श्रुवादि पात्रोंके न रहनेसे जिसमें पहलेकी समान वेदोंके पाठके शब्दभी न होतेहों ऐसी पडी हुई यज्ञशालाकी समान अयोध्या पुरीकी दशा होरहीथी ॥ ८ ॥ अथवा बैलके छोड देनेसे तरुण गाय जैसे उसके विरहकी उत्कंठासे बहुतही व्याकुल होकर नई २ घासको न खाय और दीन होकर कठिनाई से गोठमें टिकीहै यही दशा अयोध्या पुरीकी हो रही थी ॥ ९ ॥ अथवा गजमुक्ता जैसे पद्मराग और स्फटकादि अतिदेदीप्यमान श्रेष्ठ जातिकी मणियोंसे अलग रहनेसे शोभा नहीं पाती सो यही दशा अयोध्याजीकी होरही थी॥ १० ॥पुण्यके क्षीण होजानेसे अपने स्थान करकै चलायमान होनेसे और आकाशसे गिरनेसे तारा जिस प्रकार झलकहीन होजाताहै वैसेही अयोध्या प्रभाहीन होरहीथी ॥ ११ ॥अथवा वसंतके अंतमें मधुपान करनेसे मतवाले भ्रमरों करकै युक्त खिलेहुये फूलवाली बनकी लता जिस प्रकार भयंकर दावानलकी आगसे झुलसजाय ऐसीही अयोध्यापुरीकी दशा थी॥ १२ ॥राजमार्गोंपर कहीं भी छिडकाव नहीं होरहा था बाजारकी दुकानें सब बन्द हो रहीं थीं जैसे बादरसे घिरी हुई नक्षत्र चन्द्र युक्त रात्रि शोभित नहीं होती वैसेही अयोध्यापुरी थी ॥ १३ ॥ अयोध्यापुरी उस समय ऐसी जान पडती थी मानो मदपीनेवालोंके विरहसे मद करकै हीन टूटे फूटे पात्रोंसे भरा बिना झाडा बुहारा खुले हुये स्थानमें मद्यालय पडा है ॥ १४ ॥ अथवा क्या चबूतरे क्या पानी पीनेके वरतन, क्या खंभ सबही चीज वस्तु जिसकी टूट गई हैं जलका लेश नहीं है ऐसी दशा धारण किये मानो कोई पौशाला पृथ्वी

पर गिर पडी है यही अयोध्यानगरीकी दशा थी ॥ १५ ॥ अथवा विपुल (बडी) धनुषकी प्रत्यंचा मानों बलवान वीर लोगोंके बाण लगनेसे टूट धनुषसे गिर पृथ्वी-पर पडी है ऐसीही अयोध्यापुरी जान पडती थी ॥ १६ ॥ अथवा युद्ध करनेमें मत-वाले सवार करकै बलपूर्वक चलाया हुआ घोडा मानो दुश्मनकी सेनासे मारा जाकर पृथ्वीपरपडाहो यही अयोध्याकी दशा हो रहीथी ॥ १७ ॥ श्रीमान् दशरथनंदन भरतजी रथमें बैठे हुए उन रथ चलानेवालेंमें चतुर सुमंत्रजीसे बोले ॥ १८ ॥ कि, पहले जो अयोध्यामें दशों दिशाओंमें छा जानेवाला गंभीर गीत और बाजोंका शब्द होता था आज वह नहीं सुनाई आता ॥ १९ ॥ वारुणी मालायें चंदन और अगर इन सबकी गंध अब पहलेकी समान चारों ओर फैली हुई नहीं जान पडती ॥ २० ॥ इसके सिवाय रथादि सवारियोंका शब्द घोडोंका हिनहिनाना, मतवाले हाथियोंका चिंघाडनाभी नहीं सुनाई आता॥२१॥श्रीरामचंद्रजीके वन चले जानेपर अयोध्यानगरीके युवा पुरुषोंने संतापित होकर अगर, चन्दन और बडे २ मोलके हार शरीर पर धारण करने लगाने छोड दिये ॥ २२ ॥ सब प्रजा लोग पहलेकी समान चित्र विचित्र मालायें धारणकर बाहर समीरण सेवन करने नहीं जाते सब नगरही रामचन्द्रजीके शोकसे ऐसा व्याकुल होरहा है कि, नगरीमें उत्स-वका नामतक सुनाई नहीं देता ॥ २३ ॥ बस जब कि हमारे बडे भाई श्रीराम-चन्द्रजी वनको चले गये तो उनके संगही संग नगरीकी सब शोभा और द्युति चली गई * ॥ २४ ॥ इस समय वेगवान वृष्टिकी धाराओंसे युक्त शरत्कालकी रात्रिके समान अयोध्यामें कुछभी शोभा या सुन्दरताई नहीं है कितने दिनोंमें हमारे भइया आर्य रामचन्द्रजी बडे उत्सवकी समान फिर अब यहां आवेंगे ? ॥ ॥ २५ ॥ कितने दिनोंमें फिर-वह ग्रीष्म कालीन बादलकी समान अयोध्यामें आयकर सब जनोंको हर्ष उत्पन्न करावेंगे, इस समय प्रथमकी समान अयोध्याजीमें लोग सुन्दर वेषसे सज. धजकर सवारियोंपर चढे ॥ २६ ॥ बडे २ राजमार्गोंमें शोभा विस्तार नहीं करते सारथिसे इस प्रकार कहते २ भरत

---

* दोहा—अहह राम बिन यह पुरी, भई कान्तिसे हीन ॥ जित तित विल्लाते फिरैं, नगर नारि नर दीन ॥ कब आवहिंगे श्याम घन, भ्राता मम श्रीराम ॥ कब हुइ है शोभामई, पुरी महासुख धाम २ ॥ भजन॥ पुरी यह शोभाहीन लखात ॥ द्वारबन्द सूने सब फाटक कोउ न आवत जात ॥ कमल बिना सरवर नहिं राजत भये वृक्ष बिनपात ॥ हाय त्यागकर गये हमारे बडे भ्रात और तात ॥ मिश्र उन्हीका सुमि-रण करकर दुबले भये सब गात ॥ १ ॥

जी दुःखित होकर ॥ २७ ॥ अयोध्यामें प्रवेश करते हुए और सबसे पहले सिंह-हीन गुफाकी समान राजा दशरथजी जिसमें नहीं ऐसे पिताजीके भवनको गये ॥ ॥ २८ ॥ पूर्वकालके विषय देवासुर संग्राममें सूर्य नारायण जब राहु करके ग्रसे गयेथे उस समयमें उन्होंने जिस प्रकार तेजहीन होकर देवताओंको शोक उपजाया था वैसेही दशरथजीका रनवास उनके विरहसे शोभाहीन और सब भांति बिना झाडा बुहारा देखकर भरतजी महा दुःखित हुए और रोने लगे ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आ०अ०भाषायां चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥११४॥

पंचदशाधिक शततमः सर्गः ११५.

तिसके पीछे दृढव्रतधारी भरतजी सब माताओंको अयोध्याजीमें यथा स्थानमें टिकाय मारे शोकके तपे हुए वसिष्ठादि गुरुजनोंसे बोले ॥ १ ॥ कि, अब हम नंदिग्राममें जाकर रहैंगे सो इसके विषयमें हम आप सब लोगोंसे सलाह पूछतेहैं वही रहते २ पिता और भ्राताके विरहका दुःख सहैंगे ॥२॥ पिताजी तो स्वर्गको सिधारे हैं और पिताकी समान बडे भाईभी वनको चले गये सो वह महायशवान रामचंद्र-जीही अयोध्याके राजाहैं; सो हम राज्य करनेके लिये महाराज रामचन्द्रजीहीकी बाट देखें ॥ ३ ॥ महात्मा भरतजीके यह कल्याणदायक शुभ वचन श्रवण करके मंत्री लोग और पुरोहित वसिष्ठ इत्यादिक सबही बोले ॥ ४ ॥ कि, हे भरतजी ! तुमने भ्राताके स्नेह वश होकर जो वचन कहेहैं वह बहुतही अच्छेहैं क्यों नहो यह वचन तुम्हारे ही कहने योग्यहैं ॥ ५ ॥ तुम सदाही भाई बन्धुओंमें अनुरागीहो और भ्राताओंकी मित्रतामें टिकेहो और सदा श्रेष्ठ पदवी तुमने धारण कर रक्खीहै फिर भला कौन पुरुष तुम्हारी बातको न मानेगा ॥ ६ ॥ भरतजी गुरु व मंत्री लोगोंके अपनी अभिलाषाके अनुसार प्यारे वचन सुनकर सुमंत्रको यह आज्ञा देते हुए कि "हमारा रथ सजाओ" ॥ ७ ॥ फिर जब कि, रथ तैयार होगया तब प्रसन्न वदनसे सब माताओंसे यथाविधि भलीभांति भाषणकर बिदाले शत्रुघ्नजीके सहित रथपर बैठे ॥ ८ ॥ भरत और शत्रुघ्नजी तेज चलनेवाले रथपर सवार होकर मंत्री और पुरोहित लोगोंके साथ जाने लगे ॥ ९ ॥ वसिष्ठादि द्विजाति लोग पूर्व दिशा की ओरको चले जहांसे कि नंदिग्रामको मार्ग गयाथा उसी रास्तेपर आगे २ चले ॥१०॥ जब भरतजी वहांसे चले तब उनकी सेनाभी विना बुलायेही उनके पीछे २

जाने लगी और पुरवासी लोगभी सेनाके साथ २ चले ॥ ११ ॥ इस ओर भाईयोंके अनुरागी धर्मात्मा भरतजी रामकी खडाउवें शिरपर धारणकर रथपर सवार हो बहुत शीघ्र नंदिग्राममें पहुँचे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे वह शीघ्रही नंदिग्राममें प्रवेशकर शीघ्रही रथसे उतर गुरु लोगोंसे बोले ॥ १३ ॥ कि, भइया श्रीरामचन्द्र जीने यह श्रेष्ठ राज्य हमें धरोहरकी समान सौंपाहै सो उनकी यह स्वर्ण लगी हुई दोनों पादुका इस राज्यकी रक्षा करैंगी ॥ १४ ॥ अनन्तर भरतजी रामचंद्रजीकी दी हुई वह खडाऊं अपने शिरसे लगाय दुःखसे बहुतही तपकर सब गुरु मंत्री आदि जनोंसे बोले ॥ १५ ॥ तुम सब लोग आर्य रामचंद्रजीकी चरण स्वरूप इन खडाउवोंपर शीघ्रतासे छत्र लगाओ क्योंकि इन पादुकाओंके द्वारा राज्यमें मानो धर्म व्यवहार टिकाहै क्योंकि यह हमारे परमगुरुकी पादुकाहैं ॥ १६ ॥ भाई रामचन्द्रजीने सौहार्दके वश होकर हमको यह राज्यरूप परम कठिन थाती अर्पणकीहै सो वह जितने दिनतक कि, अयोध्यामें लौटकर नहीं आतेहैं तबतक हम विधि विधानसे इस राज्यका पालन करैंगे॥१७॥फिर जब कि, वह अयोध्याजीमें आजायँगे तब हम अपने हाथसे उनके चरणोंमें यह पादुका पहरा देंगे और फिर पादुका पहरे हुये उनके दर्शन करैंगे ॥ १८ ॥ तिसके पीछे उनके साथ मिलकर उनका राज्य उनको दे देंगे अपने ऊपरसे सब बोझ अलगकर गुरुजनोंकी जैसी सेवा करनी चाहिये वैसी सेवा श्रीरामचंद्रजीकी करैंगे ॥ १९ ॥ उसकाल थाती रूप यह दोनों खडाऊं राज्य और अयोध्याजीके सहित उनको लौटा देकर हम सब पापसे छूट जांयगे ॥ २० ॥ यह कहकर वीरवर प्रभु भरतजी उस समय चीर वसन और जटा धारण करके मुनियोंका वेष धारण कर सब सेना सहित नंदिग्राममें रहने लगे॥ २१ ॥ वह अपने हाथसे छत्र और चँवर पादुकाओंपर धारण कर राज्यके पालनेका सब वृत्तान्त रामचन्द्रही समझकर खडाउवोंसे कहकर उसको करते कि, अमुक कार्य किया जाताहै ॥ २२ ॥ इस प्रकार श्रीमान् भरतजीकी पादुकाओंका अभिषेक कराय आप उनके आधीनमें सदा राज कार्य करनेमें लगे रहे ॥ २३ ॥ उस समय राज्यके पालन करनेमें जो कुछ करना होता, और जो कुछ बडे २ मोलकी नजरें भेटें आतीं वह सब प्रथम पादुकाओंके निवेदन करदीं जातीं और फिर यथाविधिसे उनका व्यवहार किया जाता ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०आदि०अयो०भाषायां पंचदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

षोडशाधिकशततमः सर्गः ११६.

जब कि, भरतजी अयोध्याजीमें लौट आकर नंदिग्राममें वास करने लगे तब इस ओर श्रीरामचंद्रजीने देखा कि, वहांके तपस्वी लोग कुछ डरसे गये हैं, और वहांसे दूसरे आश्रमोंमें जानेका विचार कियेहैं * ॥ १ ॥ प्रथम जो सब तपस्वी लोग चित्रकूटके उन आश्रमोंमें रामचंद्रजीको आश्रय करकै सदा आनंदसे रहतेथे इस समय वह सब रामचन्द्रजीको देख कुछ कहनेको मन करते थे ॥ २ ॥ वह भोयें टेढीकर रामचन्द्रजीको देखकर शंकायुक्तहो परस्पर धीरे २ कुछ कहते थे यह राम स्त्री सहित यहां रहते हैं इस कारण राक्षसादिक इनके लेनेकी शंकासे यहां आकर हमें दुःख देते हैं इससे और कहीं चलैं ॥ ३ ॥ तब रामचन्द्रजीने जाना कि, यह लोग हमसे कुछ डरसे गये हैं तब हाथ जोडकर उन सबोंके मालिक × वाल्मीकिजी से कहा ॥ ४ ॥ कि, हे भगवन् ! हमने पहला आचरण किया राज्यो चित व्यवहारमें क्या कुछ बुराई देखी कि, जिस कारण करकै आप लोगोंके मनोंमें यह विकार पैदा हुआ है ? ॥ ५ ॥ अथवा ऋषिलोगोंने हमारे छोटे भाइ महानुभाव लक्ष्मणजीको प्रमादके वश होजानेसे कुछ अन्यायका आचरण करते देखा है ! ॥ ६ ॥ या हमारी सेवा और टहलमें मन लगाये हुये सुकुमारी जनकदुलारी सीताजीने तो भ्रममें पडकर आपके विरुद्ध कोई आचरण नहीं किया ॥ ७ ॥ बडे तपवाले और वृद्ध उस आश्रमके मालिक ऋषिराज वाल्मीकीजी मानो जराके प्रभावसे कांपते हुए सब भूतोंपर दया करनेवाले रामचन्द्रजीसे बोले ॥ ८ ॥ हे तात ! पवित्र स्वभाववाली सदा कल्याणहीमें जिनकी प्रीति है वह जानकीजी किसीके साथ और विशेष करकै ऋषियोंकेही साथ, क्या कभी किसी प्रकारके युक्ति विरुद्ध व्यवहार कर सकती हैं ! कभी नहीं ॥ ९ ॥ तब भी आपकेही अर्थ ऋषि लोगोंके ऊपर राक्षस लोगोंने अत्याचार करना आरंभ किया है वह सब ऋषि लोग इसी भयसे भीत होकर परस्पर इस प्रकारसे बाते करते हैं परन्तु आपसे कुछ कह नहीं सकते ॥ १० ॥ रावणका छोटा भाई खर नाम राक्षस रहता है वह जनस्थानके

---

* चैत्रशुक्ला दशमी पुष्यनक्षत्रमें रामको वनवास हुआ पूनोंके दिन अर्द्धरात्रिमें राजा दशरथका मरण हुआ फिर एक पखवारेमें भरतका आगमन अयोध्यामें हुआ एक पखवारा दशरथजीकी क्रियामें व्यतीत हुआ इस प्रकार वैशाख बीतकर ज्येष्ठके प्रारंभमें भरतजी चित्रकूटको गये फिर वर्षा आजानेसे कार्तिकशुक्ला पूर्णिमातक रामचंद चित्रकूटपर रहे तब मुनियोंको उत्कंठा हुई कुछ भरतकेही चले आनेपर नही॥

× यह वाल्मीकि ऋषि और है ग्रंथकर्ता नहीं है ॥

रहनेवाले सब तपस्वियोंको दुःख देता है ॥ ११ ॥ वह दुष्ट बडाही ढीठ है, उस निर्लज्ज नरकामांस खानेवालेने काशी पुरीभी जीतीहै सो अब यह आपका रहना यहां नहीं सहन करकै हम लोगोंकोभी आपका अनुयायी जानकर कष्ट देता है ॥ ॥ १२ ॥ हे तात ! जबसे कि, तुमने इस आश्रममें आनकर वास कियाहै तबसे यह राक्षस लोग ब्राह्मण और तपस्वी लोगोंको और भी दुःख देते हैं ॥ १३ ॥ वह लोग बीभत्स, क्रूर, भयानक, बिकट अनेक प्रकारकी मूर्त्तियें धारण करकै तपस्वी लोगोंको डरपाते हैं ॥ १४ ॥ कभी वह लोग अनेक प्रकारके पाप मूल और अपवित्र पदार्थ लोगोंके आश्रमोंमें डालकर ऋषियोंका बडा अनभल करते हैं वह अधिकतर सीधे साधे स्वभाववाले ऋषियोंको देख पाते हैं बस वैसेही उनको सताते हैं ॥ १५ ॥ और वह राक्षस लोग छिप २ कर सब स्थानोंमें ही फिरते हैं और जहां किसी सोते या अचेत ऋषिको पाते हैं सब तत्क्षणही उसको मार डालते हैं और अपनी प्रसन्नता प्रगट करते हैं ॥ १६ ॥ और होमके समय स्रुक् इत्यादिक यज्ञके पात्र इधर उधर फेंककर आगको जलसे बुझाकर कलशोंको तोड डालते हैं ॥ १७ ॥ अब इसही कारणसे यह सब ऋषि लोग इन सब दुरात्माओं करकै उपद्रव होते हुए आश्रमोंके त्याग करनेकी इच्छा किये हमसे किसी और स्थान पर चलनेके लिये कह रहे हैं॥१८॥ हे रामचन्द्रजी पापात्मा राक्षसलोग जिसमें कि, तपस्वियोंका प्राण न मारने पावें इस कारणसें अब हम इस आश्रमको त्याग करदेतेहैं ॥ १९ ॥ इस आश्रमके निकटही महर्षि अश्वका जो कंद मूल फल युक्त विचित्र तपोवनहै हम सब मुनियोंके साथ वहींको चले जांयगे क्योंकि वहां मुनिके डरसे राक्षसलोग नहीं जाते ॥ २० ॥ हे तात ! जो विचारमें आवे तो आपभी हमारे साथ चले चलें क्योंकि यह खर राक्षस तुम्हारे साथ भी अयोग्यही कर्मकरेगा ॥ २१ ॥ हे रघुनंदन ! यद्यपि आप सदा सावधान रहतेहैं और राक्षसोंका नाश करनेमें भी आप भली भांति सामर्थ्य रखतेहैं परन्तु स्त्रीके सहित इस आश्रममें शंकित चित्तसे रहना बहुतही क्लेशदायी होगा ॥ २२ ॥ उस आश्रमके स्वामी वाल्मीकिजी दूसरे आश्रमको जानाही चाहतेहैं यह देखकर राजकुमार रामचंद्रजी किसी प्रकारसे भी ऐसी कोई बात उनसे न कह सके जिससे कि, वह वहांसे न जाते ॥ २३ ॥ अनन्तर आश्रमके स्वामी, खिन्नचित्त हुए रामचंद्रजीकी प्रशंसा कर बहुत समझा बुझा उस आश्रमको छोड सब संगियोंको साथ ले चले ॥ २४ ॥ इस प्रकार जब कि, वह लोभ वहांसे गमन करनेको तैयार

हुए तब रामचंद्रजी भी कछु दूर तक उनके साथ चले गये और फिर आश्रमस्वामीकी आज्ञासे वह उनको प्रणाम कर अपनी कुटीको आये जब रामचंद्रजी लौटे तब सबही ऋषियोंने प्रीति सहित भली भांति करने योग्य कार्य्योंका उपदेश देकर उनको बिदादी ॥ २५ ॥ वह प्रभु श्रीरामचंद्रजी उस तपस्वी विहीन आश्रमको क्षण भरके लिये भी तौ अकेला नहीं छोडतेथे परन्तु उस स्थानसे निकटवाले तपस्वी अनुगतहो सदा रामचंद्रजीके पास आया जाया करतेथे ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिशततमः सर्गः ११७.

जब सब तपस्वी लोग वहांसे चले गये तो श्रीरामचंद्रजी विविध कारणोंसे चिन्ता युक्त होकर वहां रहनेके अभिलाषी नहींथे अर्थात् वह भी वहां रहना नहीं चाहतेथे ॥ १ ॥ वह विचारतेथे कि, यहां माताओंसे नगरवासियोंसे और भइया भरतसे वरन सबसेही हमारा मिलापहुआथा सो उनकी सदाही याद आती रहकर हमें शोकाकुल करतीहै ॥ २ ॥ विशेषताः इस स्थानमें जो महात्मा भरतजीकी सेना टिकीथी उसके हाथी घोडोंने जो लीद और मूत्र त्याग कियाथा सो इस कारण यह आश्रम भूमि अपवित्र होगई और दुर्गंधि आतीहै ॥ ३ ॥ तिससे हम इस आश्रमको त्याग दूसरे स्थानको चलें इस प्रकार सोच विचारकर राम सीता और लक्ष्मणजीके साथ वहांसे चलदिये ॥ ४ ॥ तिसके पीछे वह महायशवान रामचंद्रजी अत्रिजीके आश्रममें पहुंचे और उनकी वंदना करते हुए भगवान् अत्रिजीने भी उनको पुत्रकी समान ग्रहण किया ॥ ५ ॥ अपने हाथसे अर्घ्य पाद्यादि और भली भांति आदर किया फिर महाभाग लक्ष्मण और सीताजीकीभी भली भांति कुशल क्षेम जिज्ञासाकी ॥ ६ ॥ सर्व भूतोंका हित करनेमें रत धर्मके जाननेवाले अत्रिजीने वहां वर्तमान अपनी वृद्धास्त्री तापसी अनसूयाजीको बुलाया व बडे आदरसे बैठाकर समझाया ॥ ७ ॥ कि, महा भाग्यवान परमतपस्विनी धर्मचारिणी अनुसूयाजी ! जानकीजीका आदर सन्मान करो यह वचन ऋषिश्रेष्ठने कहा ॥ ८ ॥ तिसके पीछे उन रामचंद्रजीके निकट धर्मचारिणी अनसूयाजीका वृत्तान्त अत्रिजी कहने लगे कि, एक समय दश वर्ष पानी न वरसनेसे यह संसार जला जाता था ॥ ९ ॥ तब इन दृढ नियममें निष्ठा करनेवाली अनसूयाजीने अपनी कठोर तपस्याके बलसे फिर कंद मूल फल उत्पन्न किये व मुनियोंके स्नान पान करनेके लिये गंगाजीकोभी अपने

पास बुला लिया ॥ १० ॥ हे तात ! इन्होंने व्रत व अनुष्ठान सहित दश हजार वर्षतक जो घोर कठिन तपस्या कीहै उसके प्रभावसे सब ऋषि लोगोंकी तपस्याके विघ्न एकवारही लोप होगयेहैं ॥ ११ ॥ हे पापरहित ! फिर इन अनसूयाजीने देवता लोगोंका कार्य साधन करनेके लिये बहुतही शीघ्रतायुक्त हो दशरात्रिकी एकरात्रि की थी इनही सब कारणसे यह अनसूयाजी तुम्हारी माताके समानहैं और पूजनीय हैं ❀ ॥ १२ ॥ तिससे वैदेहीजी इस समय क्रोध रहित मनवाली सब भूतोंके नमस्कार करनेके योग्य इन वृद्ध तपस्विनीजीके पास चली जांय ॥ १३ ॥ भगवान् अत्रिजीने जब इस प्रकार कहा तब रामचंद्रजी जो आज्ञा कह धर्म जानने वाली सीताजीकी ओर देखकर बोले ॥ १४ ॥ हे राजपुत्री ! महर्षिजीने जो कहा वह तुमने विशेषतः सब सुना सो इस समय अपने कल्याणके लिये शीघ्र इन तपस्विनी अनुसूयाजीके पास जाकर इनकी सेवा करो ॥ १५ ॥ इन्होंने बहुतही तप कियाहै और यह सबही लोकोंमें आदर पानेके योग्यहैं यह अपने कर्मके प्रभावसे सब संसारमें अनसूयानामसे विख्यात हुईहैं सो तुम शीघ्रही इनकी शरणमें जाओ ॥ ॥ १६ ॥ यशवान् जनकनन्दिनीजीने स्वामी रामचंद्रजीके यह वचन सुनकर उन धर्मकी जाननेवाली अत्रिकी स्त्री अनसूयाकी प्रदक्षिणाकी ॥ १७ ॥ जरा अवस्थाके आजानेसे उनका सब शरीर शिथिल था सब अंगोंकी खाल सुकडगईथी केश श्वेत होगयेथे और हवाके वेगसे कांपते हुए केलेकी समान उनका देह सदाही कांपताथा ॥ १८ ॥ सीताजीने उनमहाभाग पतिव्रता अनुसूयाजीको प्रणाम किया और अपना नाम प्रकाश करके परिचयभी देतीहुई ॥ १९ ॥ तिन दयावती पतिव्रता महाभाग अनसूयाजीको प्रणामकरके जानकीजी उनके पैरों में पडीं और हाथ जोड प्रफुल्ल चित्तसे कशल प्रश्न करने लगीं ॥ २० ॥ वृद्धा ऋषिकी स्त्री महाभागा धर्मचारिणी जनकनंदिनीजीको द[illegible] समझाकर बोलीं कि, तुम जो सदाही धर्मका पालन करती हो यह बडेही सौभाग्यकी बात है ॥ २१ ॥ हे मानिनि ! जाति जन सन्मान धन संपत्ति इनको छोड छाड कर जो तुम वनवासका व्रत धारण किये हुए रामचन्द्रजीके साथ वनको आईहो यह भी बडेही भाग्यकी बात है ॥ २२ ॥ स्वामी नगरमें या वनमें जहां

---

१ एक समय अनसूयाकी सखीजीको माण्डव्य ऋषिने शापदिया कि दश रातोंके मध्यमें किसी न किसी प्रभातको तू विधवा होजायगी तब अपनी सखी विधवा न हो जाय इस कारण अनसूयाजीने कहा कि अब सबेराही न होगा जो हमारी सखी विधवा हो इस कारण दशदिनतक रात्रिही बनी रही जब देवताओंने इनकी बडी स्तुति की तो दशदिन बाद दिन निकला व इनकी सखी भी सुहागन रही क्योंकि मुनिका शाप दशही रातोंके बीचमें किसीप्रभातमें उसके पतिके मरनेको था ॥

कहीं भी रहै, अच्छा बुरा जैसा कुछ भी हो सो जो स्त्रियें पतिकोही अपना परम प्रियतम जानती हैं उन सब स्त्रियोंके लिये महोदय लोकोंकी सृष्टि हुई है ॥ २३ ॥ अथवा स्वामी खोटे शीलवालाहो स्वेच्छाचारी (जो मनमें आवै सो करनेवाला) धनहीन हो जैसा भी हो परन्तु आर्यस्वभावा स्त्रियोंका वही परम देवताहै ॥ २४ ॥ हे जानकी ! स्वामीसे अधिक स्त्रियोंका बन्धु कोई नहीं है यह बात हमने विचार ली है क्योंकि पति इस लोक और परलोकमें दोनोंही अक्षय तपस्याके समान सुख देनेवाला है ॥ २५ ॥ जिनका हृदय कामके वश है ऐसी सत्यभ्रष्ट स्त्रियें जो कि, भरण पोषणहीके लिये केवल स्वामीको स्वामी समझती हैं सो वह दुष्ट स्त्रियें ऐसा करनेके गुण दोषोंको नहीं जानतीं ॥ २६ ॥ हे जानकी ! ऐसी स्त्रियां जिनका वर्णन किया गया निश्चयही कुकर्मके वश होकर अपना अयश फैलाती हैं और उनका धर्म भ्रष्ट होजाता है ॥ २७ ॥ किन्तु जो स्त्रियां कि, तुम्हारी समान पति-व्रतके गुणोंसे भूषितहैं और वह यह भी जानती हैं कि, लोकमें क्या अच्छा और क्या बुरा है वैसी स्त्रियां वास्तवमें पुण्यवानोंकी समान स्वर्गमें घूमा करती हैं॥२८॥ तिससे तुम पतिव्रता स्त्रियोंके नियमानुसार चल कर अच्छे मार्गका आश्रय ले सदा स्वामीकी सहधर्मकारिणी हो ऐसा करनेसे यश और अपार धर्म दोनोंही तुमको प्राप्त होंगे ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० भाषायां सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥११७॥

अष्टदशाधिकशततमः सर्गः ११८.

निन्दारहित अनसूयाने जब इस प्रकार कहा तब जनकनन्दिनी जानकीजीने उनके वचनोंकी बडी बडाई कर उनको पूजा और धीरे २ कहने लगीं ॥ १ ॥ आपने जो उपदेश किया कि, पतिही स्त्रीयोंका गुरु है सो आपके ऐसा कहनेसे कुछ आश्चर्य नहीं है, और हमभी इस बातको जानती हैं ॥ २ ॥ स्वामी दरिद्रहो और चाहै उसका चाल चलन कैसाही बुराहो परन्तु उसके प्रति दुविधाको छोडकर दया सहित व्यवहार करना हमारी समान स्त्रियोंको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ३ ॥ फिर जब कि, स्वामी जितेन्द्रियहो अपनेसे अधिक प्रेम करताहो अतिशय धर्मनिष्ठ, माता पिताकी समान प्रिय करनेवाला उत्तम गुणधारी सुन्दर हो तो उसके प्रति स्त्री उचित व्यवहार करैगी इसमें विचित्रताही क्या है ॥ ४ ॥ हमारे महाबलवान् स्वामी रामचन्द्रजी अपनी माता आर्या कौशल्याजीके साथ जिस प्रकारका व्यवहार करते हैं सो उसी भांतिका भाव राजाकी और स्त्रियोंमें रखते हैं॥५॥ इतनाही नहीं वरन्

जिस स्त्रीको राजा दशरथजीने एक वार मात्रभी अपनी प्रियाकी समान देखा है, राजाके प्यारे वीरवर धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी उस स्त्रीसे भी तो माताकी समान व्यवहार करतेहैं॥ ६ ॥हम जब कि इस भयावने विजन वनको चलींथीं तब सास कौशल्याजीने आपके समान हमें जो उपदेश प्रदान कियाथा वह हमारे हृदयमें अटलभावसे विराज रहाहै ॥ ७ ॥ जब हमारा विवाह हुआथा तब उस समय अग्निके सामने हमारी माताने जो उपदेश कियेथे वहभी हमारे हृदयमें धरेहैं ॥ ८ ॥ हे धर्मचारिणी ! पतिसेवाके सिवाय स्त्रीको और सेवा नहीं करनी चाहिये इत्यादि जो उपदेश हमारे बंधु बान्धवोंने कियेहैं हम उनको जराभी नहीं भूलीं ॥ ९ ॥ देवी सावित्रीजी पतिकी सेवा करकै स्वर्गमें वास करतीहैं; आपभी सावित्रीहीकी समान पतिकी सेवा करकै सब सिद्धियोंको प्राप्त हुईहो और स्वर्गको जाओगी ॥ १० ॥ सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ और स्वर्गकी देवी रोहिणीकोभी एक मुहूर्त्तभरभी चंद्रमासे अलग नहीं पाया जाता ॥ ११ ॥ इसही प्रकारसे औरभी अरुन्धती आदि श्रेष्ठ स्त्रियें स्वामीके प्रति अचल भक्ति युक्तहो सबही पतिसेवा स्वरूप अपने २ पुण्य कर्मोंके प्रभावसे स्वर्गमें वास करती हैं ॥ १२ ॥ जब श्रीसीताजीने इस प्रकार कहा तब अनसूया जी यह सुनकर अतिशय हर्षको प्राप्त हुई और श्रीसीताजीका शिर सूंघ हर्षसे भरकर बोलीं॥ १३ ॥हमने अनेक प्रकारसे नियम पूर्वक अनुष्ठानोंके द्वारा जो तपस्या इकही की हैं सो हे शुचिस्मिते जनकनंदिनि ! उस तपोबलसे हम तुमको इस समय वरदान देना चाहती हैं तुम वर मांगो ॥ १४॥ हे मैथिलि ! तुम्हारे वचन जैसे युक्ति संगतहैं वैसेही महापवित्रभी हैं इसकारण हम अतिशय सन्तुष्ट हुई हैं अतएव कहो तुम्हारा क्या प्रियकार्य करें॥ १५॥ धर्मकी जाननेवाली तपके बलसे युक्त अनसूयाजीके यह वचन सुनकर जानकीजी उनके वैभवके विषयमें विस्मित हो मृदुमंद हँसकर उनसे बोलीं कि, आपकी कृपासेही हमारी सब कामना पूर्ण होगईं ॥ १६ ॥ धर्मकी जाननेवाली अनसूयाजी सीताजीके यह वचन सुन औरभी प्रसन्न होकर कहने लगीं कि, हे जानकि ! तुमको देखकर जो हमें बहुतही हर्ष उत्पन्न हुआ है तिससे हम अवश्यही उसके उचित दान करकै वह हर्ष सफल करैंगी ॥ १७ ॥ तिससे हे जनकनंदिनि ! यह दिव्यमाला श्रेष्ठ वस्त्राभूषण केशर मिला और कपूर मिला चन्दन और बडे मोलका उबटन ॥ १८॥ हम तुम्हें देती हैं इन सब वस्तुओंके व्यवहार करनेसे तुम्हारे शरीरकी शोभा होगी इसमें कुछ सन्देह नहीं इन सब वस्तुओंका व्यवहार नित्य प्रति करनेसे भी यह कभी मैली नहा होंगी ॥ १९॥ हे जानकि !

यह दिव्य केशर आदि मिलाया अंगराग है इसको लगानेसे लक्ष्मीजी जिसप्रकार विष्णुजीका शोभाको बढाती हैं वैसेही तुम अपने स्वामीकी शोभाको बढावोगी ॥ २० ॥ तब श्रीसीताजीने अनसूयाजीके बहुत श्रेष्ठ परम प्रीतिसे दिये वह वस्त्राभूषण अंगराग व माला इत्यादि ग्रहणकी ॥ २१ ॥ इसप्रकार जनकदुलारी जानकीजी प्रीतिसे दी हुईं वस्तुयें लेकर हाथ जोड धीर भावसे तपस्विनी अनसूयाजीकी उपासना करने लगीं ॥ २२ ॥ जानकीजीको देखकर दृढव्रत धारण करनेवाली अनसूयाजी किसी प्रकारकी प्रियवार्त्ता सुननेकी इच्छासे जानकीजीसे पूछने लगीं ॥ २३ ॥ कि हे जानकि ! हमने सुनाहै कि इन परम यशवान रामचंद्रजीने स्वयंवरमें तुमको पायाहै ॥ २४ ॥ हे जानकि ! सो इस समय हम तुम्हारे स्वयंवरका वृत्तान्त विस्तारसे सुननेकी इच्छा करतीहैं तिससे जो कुछ कि हुआथा वह समस्तही हमको तुम सुनाओ ॥ २५ ॥ जनककुमारी सीताजी यह वचन श्रवण कर धर्मचारिणी तापसी अनसूयाजीसे बोलीं कि हम कहतीहैं आप सुनें यह कह कर स्वयंवरका वृत्तान्त कहने लगीं ॥ २६ ॥ कि जनकनामक मिथिलापुरीमें जो धार्मिक महावीर राजाहैं वह क्षत्रिय धर्मके विशेष अनुरागी होकर धर्मानुसार पृथ्वी का पालन करतेहैं ॥ २७ ॥ उन्होंने यज्ञके लिये जब हल हाथमें लिया और क्षेत्र जोतने लगे तब हम पृथ्वीको भेदकर उसी हलके आगेसे उनकी पुत्री रूप होकर निकल आईं ॥ २८ ॥ हमारे सब शरीरमें धूल लग रहीथी उस समय वह महाराज पृथ्वीमें बीज बोतेथे सो हमको देख बडे विस्मित हुए ॥ २९ ॥ और स्नेहके मारे हमें अपनी गोदमें बैठालिया उनके कोई संतान नहीं थी इसीकारण वह हमें अपनी बेटी समझ हमसे बडाही स्नेह करने लगे ॥ ३० ॥ उसी समय आकाशमें मनुष्यके बोलकी समान यह देववाणी हुई,–"हे राजन् ! यह कन्या तुम्हारे क्षेत्रमें उत्पन्न हुईहै अतएव यह तुम्हारी कन्या हुई !" ॥ ३१ ॥ धर्मात्मा पिता राजा जनकजी यह देव वाणी सुनकर परमानन्दको प्राप्त हुए वह हमको पाकर ऐसे हर्षित हुए मानो बडी ऋद्धि सिद्धि संपत्ति उन्हें मिली ॥ ३२ ॥ अनन्तर उन्होंने हमको अभीष्ट द्रव्यकी समान पुत्रकी इच्छा करती हुई अपनी पटरानीको हमें सौंप दिया वहभी हमको माताकी समान प्रेम और स्नेहसे लालन पालन करने लगीं ॥ ॥ ३३ ॥ पिताजी हमको विवाहकी उमर पर पहुँची देख कर धन नाश होनेसे निर्धनकी नाईं व्याकुल चित्त हो चिंता करने लगे ॥ ३४ ॥ क्योंकि कन्याका पिता चाहै साक्षात् इन्द्रकी समान भी हो तौ भी वरके पक्ष वाले बराबर दरजेके

या नीचेके लोगोंसे असन्मान प्राप्त होताही है ॥ ३५ ॥ उस निरादरके होने में कुछ विलंब नहीं देखकर राजा जनकजी चिन्ताके समुद्रमें एक बारही डूब गये जहाजहीन वणिककी समान किसी भांति भी उस चिन्ता समुद्र के पार न जा सके ॥ ३६ ॥ हमको अयोनिसे उत्पन्न हुई देखकर वह अनेक चिन्ता करकै भी कहीं हमारी समान योग्यपात्र न पासके इसकारण वह सदाही चिन्ता करते रहे ॥ ३७॥ तिसके पीछे उनके मनमें यह बात आई कि धर्मानुसार कन्याका स्वयंवर करना चाहिए उसीमें जो पुरुष योग्य होगा उसीको देंगे ॥ ३८ ॥ प्राचीन समय महात्मा वरुणसे जनकजीके पूर्व पुरुष देवरातको देवताओंकी प्रार्थनासे दक्षके यज्ञमें शिवके प्रसादसे धनुष और अक्षय बाणोंसे पूर्ण दो तरकस मिलेथे ॥ ३९ ॥ यह धनुष इतना भारीथा कि यत्न करनेपरभी देवता दैत्य मनुष्यादि उसको चलायमान नहीं कर सकतेथे और राजा लोग स्वप्नमें भी जिसको नहीं लचा सकतेथे ॥ ४० ॥ हमारे पिता सत्यवादी राजा जनकजीने पुरुषानुक्रमसे वह धनुष पाय प्रथम उन्होंने राजाओंका न्यौता देकर एकत्रित किया और फिर उन सबके सामने बोले ॥ ४१ ॥ कि आप लोगोंमेंसे जो इस धनुषको उठाकर इसमें प्रत्यंचा चढा देगा तो इसमें कुछ सन्देह नहींहै कि हमारी कन्या उसकी भार्या होगी ॥ ४२ ॥ राजा लोग इस पहाडकी समान बोझवाले धनुष रत्नको देखकर उसके उठाने में उद्यत हुए परन्तु सफल मनोरथ न होसके और धनुषको प्रणाम करके चले गये ॥ ४३ ॥ तिसके पीछे बहुत दिनोंके बाद यह महाद्युतिमान श्रीरामचंद्रजी विश्वामित्रजीके साथ पिताजीका यज्ञ देखनेको वहां आये ॥ ४४ ॥ पिताजनकजीने भ्राता लक्ष्मणके सहित आये सत्य पराक्रमवान् रामचन्द्रजी और धर्मात्मा विश्वामित्रजीकी बडी पूजा की ॥ ४५ ॥ फिर वहां विश्वामित्रजीसे पिता जनकजीने कहा कि यह राम और लक्ष्मण राजा दशरथजीके पुत्र हैं और यह आपका धनुष देखा चाहते हैं ॥ ॥ ४६ ॥ जब महर्षि विश्वामित्रजीने इस प्रकार कहा तब जनकजीने देवताओंका दिया हुआ वह धनुष सैकडों वीरोंसे उठवा मँगाकर रामचन्द्रजीको दिखादिया ॥ ॥ ४७ ॥ महाबलवान् वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीने पलक मारतेमें उस धनुषको झुकाय उस पर प्रत्यंचा चढा दी और फिर उसको टंकोर दिया ॥ ४८ ॥ बडे जोरके साथ चढानेसे वह महाधनष टूट कर दो टुकडे होगया उसके टूटनेसे बिजली गिरने की समान महाभयानक शब्द हुआ ॥ ४९ ॥ तब उसी समय सत्य प्रतिज्ञा करने वाले पिताजी श्रेष्ठ जल मँगाय और उसको ग्रहण कर हम रामचंद्रजीके हाथमें सौं

पनेको तैयार हुए ॥ ५० ॥ परन्तु रामचन्द्रजीने बिना पिताजीकी आज्ञाको पाये कि अयोध्याधिपति महाराज दशरथजीकी जब आज्ञा होगी तबही हम इनको ग्रहण करेंगे यह कह उस समय इन्होंने हमें ग्रहण न किया ॥५१ ॥ तिसके पीछे हमारे पिताजीने हमारे श्वशुर वृद्ध महाराज दशरथजीको अयोध्यासे बुलाकर उनकी आज्ञाले इन सब लोकोंमें विख्यात रामचंद्रजीके करकमलमें हमें सौंप दिया ॥ ५२॥ और हमारी छोटी बहन साध्वी शुभदर्शनवाली ऊर्मिलाको लक्ष्मणजीकी भार्या बनानेके लिये दिया ॥ ५३ ॥ जबसे हमारे पिताजीने स्वयंवरमें रामचंद्रजीके करमें हमें समर्पण कियाहै तबसे हम धर्मानुसार पराक्रमवालोंमें श्रेष्ठ पतिकी सेवा करनेमें अनुरागिणी हैं ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०अयो०भाषायां अष्टादशाधिकशततमः सर्गः॥११८॥

अथैकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ११९.

धर्म जाननेवाली अनसूयाजी यह बडी कथा श्रवण करके जानकीजीका शिर सूंघकर दोनों बाहोंसे पकड उनको छातीसे लगाकर बोलीं ॥ १ ॥ जिस प्रकारसे स्वयंवर हुआथा वह तुमने समस्तही साफ २ पद यक्त विचित्र और मनोहर वाणीसे विचित्र और मनोहर वाणीसे कहा और हमने सुना ॥२॥ हे मधुरभाषिणि ! परन्तु अब सूर्य भगवान् अस्ताचलको जाया चाहते हैं तुम्हारी इस कथामें हमारा जी लगताहै परन्तु अब रात्रि होने चाहतीहै॥३॥ पक्षीगण जो भोजनकी खोजमें दश दिशाओंको उड २ कर गये थे अब संध्या होती देखकर बसेरा लेनेके लिये अपने२ घोंसलों में आते हैं यह उनका शब्द होरहा है ॥ ४ ॥ मुनि लोग स्नान करके गीले शरीर जलका कलशा हाथमें लिये आपसमें मिलकरअपने २ आश्रमोंको लौटे हैं उनके चीर वल्कल भीगेहुये हैं ॥ ५ ॥ ऋषि लोगोंने जो विधि विधानसे अग्निहोत्रमें होम कियाहै तिससे कबूतर के कंठमें जो रोवें होते हैं उनकी समान लाल वर्णका धुवां वायुके वेगसे आकाशमे उठाहुआ दिखाई देता है ॥ ६ ॥ अब अँधेरा होताचला आता है क्योंकि जिन पेडोंमें थोडेभी पत्ते हैं वह भी अंधकारसे घने जान पडते हैं स्पष्ट नहीं दिखाई देते दिशा नहीं प्रकाशित होतीं ॥ ७ ॥ देखो चारों ओर निशाचर घूमते हैं और यह सब आश्रमों के मृग पवित्र वेदियोंके ऊपर शयन कर रहे हैं ॥ ८ ॥ हे सीते ! रात्रि तारागणोंसे सजधज कर आई है चन्द्रमाभी चटकीली चांदनीका विस्तार करते आकाश में उदित होरहेहैं ॥ ९ ॥ अच्छा अब

आज्ञा है कि तुम इस समय जाकर रामचन्द्रजीकी सेवा करो मधुर कथा वार्ता से हम बहुतही सन्तुष्ट हुई हैं ॥ १० ॥ हे मैथिलि ! इस समय तुम हमारे सामने वस्त्राभूषण पहर कर हमारी प्रीतिको और भी बढाओ वत्स जानकि ! दिव्य गहनोंके पहरनेसे तुम्हारी विचित्र शोभा होगी ॥ ११ ॥ तब सुरकन्याकी समान दिव्य लावण्यवाली जानकी जी भलीभांति वह सब वस्त्राभूषण पहर शिर झुका अनसूया-जीके चरणोंका वन्दन करके रामचन्द्रजीके निकट आई ॥ १२ ॥ वचन बोलने-वालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी सीताको वस्त्राभूषण धारण किये हुए देखकर तपस्वि-नीअनसूयाजीकी इतनी प्रीति देख परम प्रफुल्लित हुए ॥ १३ ॥ अनन्तर प्रीति सहित अनसूयाजीने जो वस्त्राभूषण और मालायें इत्यादि दीथीं उन सबके प्राप्त होनेका वृत्तान्त जानकीजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा ॥ १४ ॥ इस प्रकार अनसू-याजीकी प्रीतिका दान चराचर मनुष्यलोकमें दुर्लभ है इसकारणसे श्रीरामचन्द्रजी व महारथी लक्ष्मणजी दोनों महाहर्षित हुए ॥ १५ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी तपस्वियोंसे पूजे जाकर और चारु चन्द्रवदनी सीताजीको देखकर प्रीति सहित उस रात्रिमें वहां सोये ॥ १६ ॥ जब रात बीती प्रभात हो आया तब राम लक्ष्मण दोनों जने न्हाय धोय संध्यासे अनल में आहुति दे उस आश्रमके वासी ऋषिके पास जाकर बिदा मांगने लगे ॥ १७ ॥ तब धर्मचारी वनवासी तपस्वी लोगोंने श्रीराम-चन्द्रजीसे कहा कि महाराज ! राक्षस लोगोंने इस वनमें महा उपद्रव आरंभ कियाहै ॥ १८ ॥ हे रघुनन्दन ! अनेक प्रकारके रूपधारी मनुष्यका मांस खानेवाले राक्षसगण और रुधिर पीनेवाले व्याघ्र सिंह सर्प हत्यारे जीव जन्तु इस गहन वनमें वास करते हैं ॥ १९ ॥ वह सब अपवित्र व असावधान ब्रह्मचारी तपस्वी लोगोंको भक्षण कर जाते हैं तिससे हे महाराज ! तुम उनका निवारण करो ॥ २० ॥ महर्षि लोगोंका वनमेंसे फल लानेका यही मार्ग है सो आपभी इसी मार्ग से होकर दुर्गमवनमें गमन कर सकेंगे ॥ २१ ॥ जब तपस्वी लोगों ने हाथ जोड मंगल आशीर्वाद देकर इस प्रकार कहा तो शत्रुओंके तपाने वाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताजीके साथ मेघ मंडल में सूर्यकी समान वनके बीच प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे पण्डितज्वाला-प्रसादकृतभाषानुवादे एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

इति अयोध्याकाण्ड समाप्त २.

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय-बंबई.

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-भाषा ।
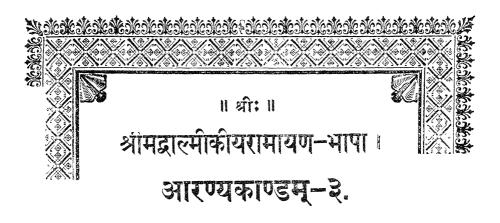
आरण्यकाण्डम्-३.

मुरादाबादनिवासि पं० ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत-

पीयूषधारा भाषानुवाद ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया ।

संवत् १९६१, शके १८२६.

आरण्यकाण्डम्-३.

श्रीगणेशाय नमः ।
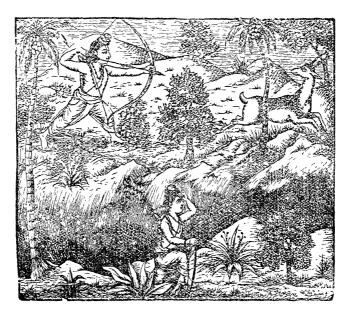
श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण–भाषा ।

आरण्यकाण्डम् ३.

प्रथमः सर्गः १.

दोहा—कटि निषंग कांधे धनुष, माथे तिलक विशाल ॥
शत्रुशाल सुरपालकर, दशरथलाल ॥ १ ॥

आत्मवान महादुर्द्धर्ष श्रीरामचंद्रजीने दंडक नामक महावनमें प्रवेश करकै तपस्वी लोगोंके आश्रम मंडल देखे ॥ १ ॥ जिन आश्रमोंमें जगह २ कुश चीर पडेहैं, जहां ब्रह्मविद्याकी लक्ष्मीका तेज अच्छी तरह विराजमान होरहाहै, जैसे सूर्यनारायण आकाशमें रहतेहैं और उनको मारे प्रकाशके कोई नहीं निहार सक्ता, तैसेही बहुत तपस्वियोंके आश्रम ब्रह्मविद्याके प्रभाव करकै तेजवान होनेसे बड़ी कठिनतासे देखने योग्यहैं ॥ २ ॥ वह आश्रम सब जीवोंके आसरा लेनेके थलेहैं, उनके आंगन सदाही झाड बुहारकर स्वच्छ किये जाते और चारों ओर अनेक प्रकारके पशु पक्षियोंसे जो सदापूर्ण रहते ॥ ३ ॥ अप्सराओंके झुण्डके झुण्ड सदा यहां आकर इनके समीप नाच गाकर इनकी पूजा करते, जहां बडे विस्तारकी यज्ञशाला बनीहै, जिनमें अग्निकुंड स्रुव मृगचर्म और कुशादि धरेहैं ॥ ४ ॥ होम करनेका ईंधन जलके भरे हुए कलश व कंद मूल फल भोजन करनेके लिये रक्खेहैं, और बडी २ जातके बनैल स्वादयुक्त फल पवित्र २ वृक्षोंके समूहोंमें लग रहेहैं ॥ ५ ॥ इन सब आश्रमोंमें नित्यही बलि और होम होताहै, प्रतिदिन पुण्यमय वेदध्वनि उठतीहै अनेक प्रकारके फूलभी इधर उधर खिल रहेहैं, और विचित्र कमल जिनमें खिले हुए ऐसी तलैयेंभी विराजमान होरही हैं ॥ ६ ॥ इन सब आश्रमोंमें कंद मूल फल खानेवाले चीर मृग चर्म वल्कलादि धारण करनेवाले सूर्य और अग्निके समान प्रकाशमान नियत समयपर बोलने, देखने, सुननेवाले, जितेन्द्रिय, प्राचीन चतुर वृद्ध मुनियोंके समूह वास करतेहैं ॥ ७ ॥ नियताहारी पवित्र परमर्षियोंके समूहसे शोभित, और सदा वेद पढनेका शब्द प्रतिध्वनित होनेसे सब आश्रम ब्रह्मलोकके समान शोभाय-

मानहैं ॥ ८ ॥ महातेजवान् श्रीमान् रामचंद्रजी महाभाग ब्रह्मको पहँचाने हुए ब्राह्मण गणोंसे शोभित उन तपस्वियोंके आश्रममंडलको देखकर ॥ ९ ॥ अपने महा धनुषकी प्रत्यंचा उतारकर उनकी ओरको चले, दिव्यज्ञानसंपन्न महर्षियोंने रामचन्द्रजीको देखा व जाना ॥ १० ॥ इसकारण प्रसन्नहो सबही श्रीरामचन्द्र व महा यशस्विनी श्रीजानकीजीके सन्मुख वे मुनिलोग चले फिर चन्द्रमाके समान धर्मका आचरण करने वाले श्रीरामचन्द्रजीको उदय देख ॥ ११ ॥ व लक्ष्मण जानकीजी को भी निहार सब दृढव्रत मुनियोंने मंगलके आशीर्वाद दिये, और उनका भलीभांति आदर सन्मान किया ॥ १२ ॥ वह सब वनवासी ऋषिलोग विस्मिताकार होकर रामचन्द्रजीके रूपकी सुंदरता, लावण्यता, सुकुमारता, और सुवेषता देखकर विचार करनेलगे कि, ऐसे सुकुमार वनमें क्यों कर आये ॥ ॥ १३ ॥ वह सब मुनिलोग अचरजमें आकर रामचन्द्र लक्ष्मण और जानकीजीको विना पलक मारे इकटक देखने लगे ॥ १४ ॥ सर्व जीवोंके ऊपर दयाकरनेवाले बडे भाग्यशाली ऋषि लोगोंने अपूर्व अतिथि रामचन्द्रजीको पर्णकुटीमें लाय टिकाया ॥ १५ ॥ पहुँचतेही प्रथम भली भांति कुशल प्रश्नकर सत्कार कर अग्निकी समान तेजवाले धर्मात्मा ऋषि लोगोंने सुन्दर पवित्र जल लाय चरण इत्यादि धोनेको दिया ॥ १६ ॥ अनन्तर उन समस्त धर्मके जाननेवाले ऋषि लोगोंने परम हर्ष युक्तहो मंगल आशीर्वाद प्रयोग करके सुन्दर कंद फलादि खानेको दिया और आश्रम रहनेको दिया ॥ १७ ॥ फिर सब धर्मके जाननेवाले ऋषि लोग हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि, आप हम लोगोंके धर्मपाल शरण्य हैं व परम यशस्वी हैं ॥ १८ ॥ आप परम पूजनीय व मान्यभी हैं । क्योंकि, दंडधारी राजा गुरुके समान होता है राजा इन्द्रका चौथा भाग होता है इस कारण सबही प्रकार आप पूजा करनेके योग्य हैं, क्योंकि, जब आपही प्रजाकी रक्षा करते हैं तो उनके अर्थ, धर्म,काम, मोक्ष चारों पदार्थ सिद्ध हो जाते हैं॥ १९ ॥ सब लोगोंके नमस्कार करनेसे राजा श्रेष्ठ है और वह श्रेष्ठ रमणीय भोगोंको भी भोग करता है । हे राघव ! हम लोग आपके राज्यमें वास करते हैं अतएव आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये ॥ २० ॥ हे राजन् ! नगरमें रहो या वनमेंही रहो आपही हम लोगोंके राजाहैं सो आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये यदि आप कहैं कि, तुम लोगभी तपोबलसे अपनी रक्षा. कर सकते हो सो नहीं क्योंकि, हम लोगोंने क्रोधका त्यागकर इन्द्रियोंको

जीत एकबारही दंड देना छोड दिया है॥ २१ ॥ तपस्याके सिवाय हम लोगोंका और कुछ धन नहीं है, अतएव गर्भके बालककी समान आपको हमारी रक्षा करनी उचितहै, यह कहकर उन सब ऋषि मुनियोंने विविध प्रकारके पुष्प और वनफल द्वारा लक्ष्मण व सीता सहित रामचन्द्रजीकी पूजा की ॥ २२ ॥ इसी प्रकारसे औरभी सिद्ध, तापस मुनिलोगोंने अग्निकी समान तेजस्वी उन प्रभु ईश्वर रामचन्द्रजीकी यथाविधानसे पूजा की ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार अच्छी पहुनई पाकर जब प्रभात हुआ तब उन आश्रमवासी सब मुनियोंसे पूछ पाछकर वनमें विचरण करने लगे ॥ १ ॥ इस वनमें अनेक भांतिके जीव जन्तु विद्यमान थे रीछ और शार्दूलभी घूम रहे थे। इस वनके पेड व बेलें सब सूख गईं थीं और सब ताल तलैयें सूखकर भयावनी हो गईं थीं ॥ २ ॥ इस वनमें पक्षियोंका चह चहाना नहीं आता था न भौरोंकी गुंजार होरहीथी केवल झिल्लीकी झनकार सुनाई आती थी । इस प्रकार रामचन्द्रजीने इस वनकी दशा देखी ॥ ३ ॥ तिसके पीछे काकुत्स्थ रामचन्द्रजी सीताजीके साथ उस घोर पशुओं करके सेवित वनमें पहाडके शिखरकी समान मनुष्यके खानेवाले बडे शब्द करनेवाले एक राक्षसको देखते हुये ॥ ४ ॥ इस राक्षसकी आंखें बहुतही गंभीर थीं, वदन अति विशाल था, थोंद महा विकटथी, उसके शरीरका गठन अति भयंकर था वह राक्षस ऐसा भयावना था कि, जिसे देखतेही मनुष्य डर जाय, कहीं टेढा, कहीं सीधा, कहीं ऊंचा, खाली बराबर अंग कोई न था, उसकी सूरत बडी डरावनी थी ॥ ५ ॥ वह राक्षस रुधिरसे भीगा व्याघ्रका चमडा ओढे था जिस समय वह उवासी लेताथा तो प्रलयकालकी समान सब भूतोंको त्रास उपजानेवाला विदित होताथा ॥ ६ ॥ वह तीन शेर, बारह व्याघ्र, दो भेडिये, दश चीतल मृग, व दांत सहित चरबी लगा एक हाथीका मस्तक ॥ ७ ॥ जो लोहेके शूलमें विधा हुआथा लियेथा और बडाही चिल्ला रहाथा फिर वह रामचन्द्र लक्ष्मण और मैथिली सीताजीको देख ॥ ८ ॥ महा क्रोधके वश होकर संहारके कालमें कृतान्तकीसमान उनके ऊपरको

दौडा व महा भयावनी गर्जना करकै पृथ्वीको कँपाता हुआ ॥ ९ ॥ विदेहराजाकी दुहिता सीताजीको गोदमें लेकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि, तुम दोनों जन जटा चीर धारण किये वनमें स्त्री सहित आयेहो इससे अपनेको माराहुआही समझो ॥ १० ॥ शरचाप, तलवार हाथमें लेकर इस वनमें आयेहो. फिर यह तौ मुझसे कहो कि तुम्हारे साथ यह स्त्री क्योंकर है ? ॥ ११ ॥ तुम लोग अधर्मका आचरण करनेवाले पाप स्वभावी हो, और तुमसे मुनियोंके चरित्रको कलंक लगाहै सो तुम लोग कौनहो ? हम राक्षसहैं हमारा नाम विराधहै हम दुर्गम वनमें रहतेहैं ॥ १२ ॥ हम प्रतिदिन ऋषियोंका मांस खातेहुये हथियार बांधकर इस दुर्गम वनमें फिरा करतेहैं इस वरारोहास्त्रीको हम अपनी भार्या बनावेंगे ॥ १३ ॥ तुम दोनों महापापी हो इससे युद्धकर हम तुम्हारा दोनोंका रुधिर पियेंगे जब दुष्टात्मा विराधने ऐसे दुर्वचन कहे ॥१४॥ ऐसे गर्वीले वचन सुनकर जनककुमारी सीताजी बहुतही घबराई जिस प्रकार प्रचंड पवनके वेगसे केला कांप जाय इसी प्रकार उनका शरीर भयसे कांपनेलगा ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी शुभ सीताजीको विराध राक्षसकी गोदमें गई देखकर उदास हो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १६ ॥ हे सौम्य ! राजा जनकजीकी कन्या शुभाचरण करनेवाली हमारी स्त्री सीताजीका विराधकी गोदीमें स्थित होना देखो ॥१७॥ यह यशस्विनी राजपुत्री अत्यंत सुखसे पालन पोषण की गई, सो अब यह राक्षसके वश पडीं सो वरदान मांगनेसे जो कैकेयीकी इच्छाथी वह आज सफल हुई ॥ १८ ॥ जो कैकेयी अपने पुत्रको राज्यदिलाकरभी संतोषसे न रही उसने बडी दूरका आगम देखा कि, यदि यहां रहैंगे तो हमारे पुत्रका राज्य अटल नहीं रहैगा इससे वनवास दिलवाया ॥ १९ ॥ समस्त प्राणियोंका प्यारा जानकर हमको वनमें भिजवाया अब उन विचली माता कैकेयीदेवीका मनोरथ सफल हुआ ॥ २० ॥ हे लक्ष्मण ! इससे अधिक और दुःख क्या होगा कि राज्य हरा गया पिताजीका मरण हुआ जानकीजीको राक्षसने छुआ भला इससे बढकर कोई दुःखहै ? ॥ २१ ॥ जब रामचंद्रजीने ऐसा कहा तब शोकसे घिरे आंसू भरे हुये, मंत्रसे बँधे सर्पकी समान ऊंचे श्वासले गर्जकर महा क्रोधयुक्तहो लक्ष्मणजी बोले ॥ २२ ॥ हे काकुत्स्थ ! आप इन्द्रकी समान सब प्राणियोंके स्वामी होकर विशेषतः मुझ सरीखे सेवकके विद्यमान रहते इसप्रकारका विलाप क्यों करतेहैं? ॥ २३ ॥ हम क्रोधित होकर इस विराध राक्षसके बाण मारतेहैं, बस बाणके लगतेही यह प्राण

छोडदेगा और पृथ्वी इसका रुधिर पियेगी ॥ २४ ॥ राज्यकी कामना करते हुये भरतजीपर जो क्रोध हमको उत्पन्न हुवाथा सो वज्र धारण करनेवाले इन्द्रने जिस प्रकार पर्वतोंपर वज्र छोडाथा उसी भांति मैंभी यह क्रोध विराधपर छोडताहूं ॥ ॥ २५ ॥ हमारी भुजाओंके बलोंके वेगसे वेगयुक्त होकर हमारे छोडे तीर इसके हृदयमें जाकर गडेंगे, इसका जीवन नाशको प्राप्त हो जायगा, और यह घूम २ कर पृथ्वीपर गिर जायगा ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि० आरण्यकांण्डे भाषायां द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३.

फिर वह विराध राक्षस अपने वचनकी ध्वनिसे समस्त वनको पूर्ण करता हुआ यह बोला–जो मैं पूछताहूं सो बताओ, कि तुम कौनहो और कहांको जाओगे ॥ १ ॥ उस अंगारेके समान जलते वदनवाले राक्षसने जब इस प्रकार पूछा, तब महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी इक्ष्वाकुकुलमें अपना जन्म बताकर कहने लगे ॥ ॥ २ ॥ कि हम क्षत्रियहैं और जो धर्म क्षत्रियोंके हैं वहभी हम सब करतेहैं इस समय हम वनमें आयेहैं इस बातको तू जान, हम लोगभी तुझको जाननेकी इच्छा करतेहैं कि तू कौनहै ? और किस कारण इस दंडकारण्यमें विचरण करताहै ॥ ३ ॥ तिसके पीछे विराध राक्षस उन सत्यपराक्रम करनेवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोला कि, राम ! मैं अपना वृत्तान्त कहताहूं श्रवण करो ॥ ४ ॥ मैं जव नामक राक्षसका पुत्रहूं मेरी माताका नाम शतह्रदाहै इस पृथ्वीके बीच सब राक्षस हमको विराध नामसे पुकारा करतेहैं ॥ ५ ॥ मैंने तपस्या करकै ब्रह्माजीके प्रसादसे किसी शस्त्रद्वारा हम न मारे जांय न हमारे अंगही कट टूटसकें न हम मारे जांय ऐसा वरदान पायाहै ॥ ६ ॥ अतएव तुम लोग युद्धकी वासना छोड शीघ्रतासे इस स्त्रीको यहीं पर त्याग कर जिस स्थानसे आये हो वहींको चले जाओ क्योंकि मैं तुम्हारा जीव नहीं लेना चाहता ॥ ७ ॥ तब रामचंद्रजी क्रोधसे लाल २ नेत्र कर उस पाप निरत विकटाकार राक्षसको यह उत्तर देते हुए–रे अधम ! तुझको धिक्कारहै तेरा आशय और इच्छा बहुत बुरीहै तू निश्चयही मृत्युको खोजताहै सो अभी उसको प्राप्त होगा खडाहो, जबतक तू जीता रहेगा तबतक तेरा निस्तार हमसे नहीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजीने अति शीघ्र धनुषपर

बाण चढाकर बहुत सारे तेजबाण उस राक्षसको लक्ष्य करकै छोडे ॥ १० ॥ उन्हों ने धनुषपर रोदा चढाय सुवर्णके पंखे लगे अतिवेगवान् गरुड और पवनकी समान शीघ्रगामी सात तीर चलाये ॥ ११ ॥ वह सातों बाण मोरकी पूंछके समान चित्र विचित्र विराधकी देहको भेदकर रुधिरमें लिपट अग्निकी समान चमकते हुए पृथ्वी पर गिरे ॥ १२ ॥ तब वह राक्षस बाणसे बिंधकर विदेहराजकुमारी सीता-जीको पृथ्वीपर बैठालकर शूल उठा क्रोधमें भर रामचंद्र व लक्ष्मणजीकी ओरको दौडा ॥ १३ ॥ वह बहुतही चिल्लाता हुआ इन्द्रध्वजके समान धारणकर मुख फैलाये यमराजकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥ १४ ॥ उस राक्षसको आता देख दोनों भाई उस यमराजकी समान विराधराक्षसपर दीप्ति-मान बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ तब उस अति भयानक राक्षसने हँसकर खडे हो जँभाई ली, जब कि, उसने जँभाई ली तब उसके शरीरसे वह सब शीघ्र-गामी बाण निकलकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे वह विराध राक्षस बहुतही दुःखको प्राप्तहोकरभी ब्रह्माजीके वरदान देनेसे मरा नहीं और जीता रहा व शूल उठाकर श्रीराम लक्ष्मणके सामनेको दौडा ॥ १७ ॥ उस कालमें वह वज्रसमान शूलका अग्रभाग आकाशको छूता अग्निकी समान रूप धारण करता हुआ। तब शस्त्र धारण करने वालोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजीने दो बाणोंसे उस शूलको काट डाला ॥ १८ ॥ जिस प्रकार वज्रसे कटकर मेरु पर्वतकी बडी शिला पृथ्वीपर गिरै वैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसे टुकडे २ होकर विराध राक्षसका शूल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १९ ॥ जब उसका शूल कट गया तब राम और लक्ष्मण अति शीघ्र काटनेको तैयार काले नागकी समान दो खड्ग ले उसके सामने को दौडे और उसके समीप जा बल वीर्यसे खड्ग उसके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ ॥ २० ॥ तब वह राक्षस उन दोनों नर श्रेष्ठों करके अधमरासा होकर अपने दोनों हाथोंसे दोनोंको पकड यह सोचने लगा कि, इनको कहीं दूर ले जाकर पटक२ कर मारडालूं ॥ २१ ॥ तबतकभी उस राक्षसका शरीर नहीं कांपा तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी उस राक्षसके मनकी बातको जानकर लक्ष्मणजीसे बोले कि, भला होगा यह राक्षस अपने कंधोंपर चढाकर इस मार्गमें चले ॥ २२ ॥ हे सुमित्रा-नन्दन ! यह राक्षस जहां हमको ले जानेकी इच्छा करता है वहां ले जावै । क्योंकि, यह जिस रास्तेपर हमें लिये जाता है वही हमारे जानेका मार्ग है ॥ २३ ॥

उस अतिबलवान् विराधराक्षसने अपने बलद्वारा राम और लक्ष्मणको दो बालकोंकी समान अपने दोनों कंधोंपर उठा लिया ॥ २४ ॥ फिर उन दोनों जनोंको कंधेपर बैठाल कर भयानक वनकी ओर चिल्लाता हुआ वह निशाचर दौडने लगा ॥ २५ ॥ फिर वह राक्षस अनेक २ भांतिके वृक्ष लगे, विविध प्रकारके पक्षियोंके समूहसे मनोहर शृगालों करके युक्त चीते व्याघ्रों सर्पोंसे भरे और महा मेघकी समान निबिड वनमें प्रवेश करता हुआ ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

जब विराध रघुनंदन रामचन्द्र और लक्ष्मणजीको हरण करके ले चला यह देखकर सीताजी अपनी बडी २ बाहें उठाकर बडे जोरसे रोय २ विलाप करने लगीं ॥ १ ॥ और बोलीं कि हा ! यह भयंकर आकारवाला राक्षस साधु स्वभाववाले, सत्यमें रत, पवित्र, दशरथकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजीको हरे लिये जाता है ॥ २ ॥ कोई चीता व व्याघ्र भेडिया इकली पाकर हमको खा जायगा तिससे हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ ! हम तुमको नमस्कार करती हैं कि, तुम इन दोनोंको छोडदो हमें खालो ॥ ३ ॥ बल वीर्यवाले रामचन्द्र और लक्ष्मणजीने जानकीजीके ऐसे दीनवचन सुनकर उस दुरात्मा विराधके मार डालनेमें बडी शीघ्रता की ॥ ४ ॥ सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीने उस भयानक राक्षसका बांया हाथ और श्रीरामचंद्रजीने शीघ्रतासे उसका दहना हाथ तोड डाला ॥ ५ ॥ जब दोनोंहाथ टूट गये तब मेघ वर्ण विराध भग्नचित्तहो मूर्छाको प्राप्त होकर उसी समय पृथ्वीमें गिर पडा तब ऐसा बोध हुआ मानो कोई पर्वत वज्रकी चोटसे फटकर पृथ्वीपर गिरा ॥ ६ ॥ जब वह गिर गया तब श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीने लात मुक्की घूसोंसे उसको खूब मारा और वारंवार पृथ्वीपर उठा २ कर पटकने लगे और फिर बहुतही घसीटा ॥ ७ ॥ वह विराध पहलेभी रामचंद्रजीके बहुत बाणोंसे विधा और खड्गके प्रहारसे शरीर छिन्न भिन्नभी हुआथा और इस समय बार २ पृथ्वीपर पटकाभी गया परन्तु तौभी नहीं मरा क्योंकि ब्रह्माजीका वरदान था ॥ ८ ॥ दीनको शरणदेनेवाले श्रीरामचंद्रजी पर्वतकी समान विराध राक्षसको सबही प्रकारसे अवध्य देख लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ९ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! इस राक्षसने ऐसी तपस्या कीहै कि

शस्त्रकी सहायतासे बींधकर इसको कोईभी नहीं जीत सकता, अतएव इसको जीता हुआही पृथ्वीमें गढाकर दाब देतेहैं ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण ! तुम इस समय हाथीकी समान प्रचंड स्वभाववाले इस राक्षसके लिये वनमें एक अति बडा गढा खोदो ॥ ११ ॥ वीर्यवान् लक्ष्मणजीको इस प्रकार गढा खोदनेकी आज्ञा देकर श्रीरामचंद्रजी अपने चरणसे इस राक्षसका गला दाबकर खडे रहे ॥ १२ ॥ इस समय निशाचर विराध पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके विनय सहित यह बोला ॥ १३ ॥ हे पुरुषसिंह ! मैं आपके इन्द्रतुल्य पराक्रमसेही अधमरा हो गयाहूं, हे नरश्रेष्ठ ! मैंने अबतक अज्ञानसे आपको नहीं पहँचाना ॥ १४ ॥ हे तात ! इस समय जाना कि, आप श्रीरामचंद्रजीहैं सती कौसल्याजी आपको पाकर श्रेष्ठ पुत्रवती हुईहैं और इन महाभाग्यवती जानकी और परम कीर्तिमान् लक्ष्मणजीकोभी मैंने भली भांति पहचान लिया ॥ १५ ॥ मैं पहले तुम्बुरु नाम गन्धर्वथा; विश्रवाके पुत्र कुबेरजीने हमको शाप दिया बस उसी शापके वश हम इस पापी निशाचर योनिको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ जब उन्होंने हमको शाप दिया तब मैंने बहुत विनय करके प्रसन्न किया तब महायशवाले वैश्रवणजीने हमसे कहा कि, जब दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी युद्धमें तुम्हारा वध करैंगे ॥ १७ ॥ तब फिर तुम गन्धर्वका शरीर पाकर स्वर्गमें आओगे, और शाप उन्होंने इसकारण दियाथा कि मैं समय पर उनकी सेवामें नहीं उपस्थित हुआथा तब उन्होंने अतिशय क्रोधारूढ होकर यह शाप दिया कि राक्षस होजा, ॥ १८ ॥ और उनकी सेवामें न पहुँचनेका यह कारणथा कि मैं रंभा अप्सरापर मोहित हो रहाथा तब राजा वैश्रवणने मुझको यह शापदिया, सो अब मैं तुम्हारे प्रसादसे इस घोर शापसे छूट गया ॥ १९ ॥ हे परंतप ! अब मैं अपने स्थानको जाताहूं आपका भला हो कि हमको इस शापसे छटाया अब ऐसा कीजिये कि, यहांसे कुछ दूर शरभंगका आश्रम है ॥ २० ॥ यहांसे छैःकोशकी दूरीपर महाप्रतापी शरभंग नाम महात्मा रहतेहैं उन महर्षिका तेज सूर्यके समानहै आप उनके पास शीघ्रही जाइये वह आपका कल्याण शीघ्रही करैंगे ॥ २१ ॥ हे रामचंद्रजी ! अब हमें गढेमें डालकर कुशलपूर्वक चले जाइये, गढेमें दबनाही मरनेके पीछे राक्षसोंका सनातन धर्म है ॥ २२ ॥ जो कि राक्षस मरनेके पीछे गडहा खोदकर दाब दिये जातेहैं उनको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होतीहै, बाणसे पीडित

महाबलवान विराध रामचंद्रजीसे यह कह ॥ २३ ॥ देहको त्यागकर स्वर्गको प्राप्त होनेको हुआ, श्रीरामचंद्रजीने राक्षसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजीको आज्ञादी॥ ॥ २४ ॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस वनके बीच प्रचंड हाथीकी समान भीम कर्म करने वाले राक्षसके दाबनेको एक बहुत बडा गढहा खोदो ॥ २५ ॥ लक्ष्मणजी को गढहा खोदनेकी आज्ञा देकर वीर्यवान् रामचंद्रजी स्वयंभी अपने पैरसे विराध का गला दबाकर खडे रहे ॥ २६ ॥ फिर लक्ष्मणजीने खन्ता लेकर महात्मा विराधके निकटही एक बडा गढहा खोदा ॥ २७ ॥ फिर रामचंद्रजीने गधेकेसे कान जिसमें लगे हुएहैं ऐसे विराधके मस्तक परसे अपना चरण हटालिया और उसको उठाकर उस गढेमें डाल दिया उस समय विराध अति घोर शब्दसे चिल्लाने लगा ॥ ॥ २८ ॥ युद्धमें दृढचित्त और सत्य विक्रम करनेवाले श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी दोनोंने हर्ष सहित विकटाकार उस बडे राक्षसका संग्राममें पराजय करा, और अपनी भुजाओंके बलसे उठाकर उस रोते हुएको गढहेमें डालकर पाट दिया ॥ २९ ॥ सब कुछ जाननेमें चतुर वह दो नरश्रेष्ठ तीखे बाण व खड्गसे असुर विराधका संहार न होते देखकर बुद्धिके प्रभावसे गढहेमें उसके मरनेका उपाय जानकर और उसमें ही उसको डालकर वध करते हुए ॥ ३० ॥ श्रीरामचंद्रजीने जिस प्रकार अपने प्रयोजनानुसार विराधको मृत्युके मुखमें डालनेका अभिलाष किया, काननचारी विराधनेभी वैसेही अपने प्राण त्यागनेकी कामनासे स्वयं रामचंद्रजीसे कहा था ॥ कि तुम शस्त्रसे हमको नहीं मार सकोगे ॥ ३१ ॥ रामचंद्रजीने विराधके ऐसे वचन सुन उसको गढहेमें दाबनेका विचार किया, तिसके पीछे उस गढेमें डालनेके समय विपराध ऐसा घोर चिल्लाया कि उस शब्दसे सब वन और वह गढा एक साथही भर गया ॥ ३२॥ इस प्रकार महावनमें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी उस विराध राक्षसको पृथ्वीमें पाट पूटकर दोनोंही एक प्रकार हर्षसे भर खिलगये और भयहीन होकर उस समय वह दोनों जन आकाशमें उदय हुए सूर्य चंद्रमाकी समान दीप्तिमान होने लगे ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां चतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.

तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीने भीमबलवाले राक्षसको मारकर सीताजीको प्रेमसहित लपटाय बहुत समझाया बुझाया ॥ १ ॥ और तेजसे दीप्तिमान अपने छोटे भाई लक्ष्मणजीसे बोले कि, यह वन स्वभावसेही दुर्गम और कष्टका देनेवाला है। इससे पहले कभी इस भांतिका वन हम लोगोंने नहीं देखा ॥ २ ॥ तिससे शीघ्रही तपोधन शरभंगजीके आश्रमको चले चलो यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी शरभंगजीके आश्रमकी ओरको चले ॥ ३ ॥ वहां पहुँचकर तपोबलसे जिनकी आत्मा शुद्ध हुई है, देवताओंकासा प्रभाव जिनमें है ऐसे महर्षि शरभंगजीके निकट एक बडे अचरजकी बात रामचन्द्रजीने देखी ॥ ४ ॥ कि, सूर्यकी अग्निकी प्रभाके समान देवराज इन्द्र अपने शरीरकी प्रभासे प्रकाशित देवताओंके साथ श्रेष्ठ रथपर चढे हैं ॥ ५ ॥ उनका रथ पृथ्वीमें न खडा होकर आकाश मार्गमेंही टिका है उनके सब गहनोंमेंसे चमक निकल रही और पहरनेके वस्त्र बहुतही उजले थे ॥ ६ ॥ वैसेही वस्त्राभूषणोंसे सजे हुए औरभी अनेक महात्मा उनकी पूजा कर रहे हैं रामचन्द्रजीने दूरसे देखा कि, इन्द्रका सूर्यकी समान प्रभावाला हरित वर्ण व श्याम वर्णके घोडे जिसमें जुतरहे ऐसा रथ अन्तरिक्षमें खडाहै ॥ ७ ॥ जिसकी दीप्ति दुपहरियाके सूर्यकी समान पाण्डु वर्णके बादलकी समानहै उज्ज्वल चंद्रमंडलकी समान गोल ऐसे रथको श्रीरामचन्द्रजीने देखा ॥ ८ ॥ उसमेंका छत्र बहुतही उज्ज्वल है उस पर चित्र विचित्र मालायें लटक रही हैं फिर चामर व्यजन देखे जिनमें सुवर्णकी दंडी लग रहीथी जो बडे मोलके और बडे श्रेष्ठ थे ॥ ९ ॥ दो उत्तम स्त्रियें छत्र और चमरको धारण किये इन्द्रजीके मस्तक पर घुमाती थीं बहुत सारे गंधर्व, देवता, सिद्ध, और परमर्षिगण एक साथ मिलकर ॥ १० ॥ श्रेष्ठ वचनोंसे उन देवराज इन्द्रकी स्तुति कर रहे थे उस कालमें इन्द्रजी महर्षि शरभंगजीके साथ वार्त्तालाप करनेमें लगे हुये थे ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजी उन्हें देख उनके रथको बता भाई लक्ष्मणको अचरजके सहित वह दिखाकर कहने लगे ॥ १२ ॥ हे भइया ! देखो परम दीप्तिमान, श्रीयुक्त, सूर्यकी समान देदीप्यमान यह विचित्र रथ अन्तरिक्षमें टिकाहुआ शोभा पा रहाहै ॥ १३ ॥ हमने पहले शत यज्ञ करनेवाले इन्द्रजीके घोडोंकी जो वार्त्ता सुनी थी, सो यह अन्तरिक्षमें टिकेहुये, निश्चय वही घोडे होंगे ॥ १४ ॥ हे पुरुषसिंह ! इस रथके चारों ओर

जो सैकडों खड्ग हाथमें लिये, कुंडल पहरे युवा पुरुष खडे हैं ॥ १५ ॥ जिन सबकी ही छाती बडी चौडी है, बाहें परिघकी समान विशाल हैं, पहरनेके कपडे जिनके लाल हैं, जो लोग कि, व्याघ्रकी समान दुर्द्धर्ष हैं, अर्थात् उनके पास कोई नहीं जा सकता ॥ १६ ॥ जिन सबोंकेही गलेमें जलती हुई अग्निकी समान हार शोभा पा रहेहैं और पच्चीस २ वर्षकीहीसी उमर जान पडती है ॥ १७ ॥ यह सब पुरुष श्रेष्ठ जिस प्रकार कि, प्रिय दर्शन जान पडते हैं, वैसेही सब देवतागण ऐसे रूप व उमर-वाले जान पडा करतेहैं व इनका शरीर सदा ऐसाही रहता है कि, मानों पच्चीस वर्ष-हीकी अवस्थाहै ॥ १८ ॥ तिससे हे लक्ष्मण ! वैदेहीजीके सहित यहांपर एक मुहूर्त्त भरतक तुम टिके रहो तबतक कि हम स्पष्ट २ यह नजान आवें कि रथवाले द्युति-मान् यह तेजस्वी पुरुष कौनहैं ? ॥ १९ ॥ लक्ष्मणजीसे यह कह कि तुम यहीं टिके रहो रामचंद्रजी शरभंगजीके आश्रमको गमन करने लगे ॥ २० ॥ श्रीरा-मचंद्रजीको आते हुए देखकर शचीनाथ इन्द्रजी शरभंगजीसे बिदाले अनुचर देव-ताओंसे बोले ॥ २१ ॥ यह रामचंद्रजी इस ओरको चले आतेहैं, सो जब तक कि यह हमसे कुछ बोलसकें तिससे पहलेही तुम हमको और जगह ले चलो जिससे यह हमको देख न सकें ॥ २२ ॥ इनको अभी और लोगोंके न करने योग्य बडा कठिन विशेष भारी कार्य करना पडेगा । जबकि यह राक्षसको जीत-कर कृतकार्य होंगे तब इनके दर्शन करेंगे जो अभी दर्शन करें तो न जाने रावण यह वृत्तान्त जानकर क्या कुछ उपद्रव कर उठावे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वज्रधारी इन्द्रजी महर्षि शरभंगजीसे आज्ञा ले और उनका विशेष सन्मान करके घोडे जुते हुए रथपर बैठकर स्वर्ग चलेगये ॥ २४ ॥ जब सहस्राक्ष इन्द्रजी चलेगये तब रामचंद्रजी भ्राता और भार्या सीताजीके. सहित अग्निहोत्रमें बैठे हुए शरभंगजीके समीप आये ॥ २५ ॥ राम लक्ष्मण और सीताजी सबनेही उनके दोनों चरण पकडे तब शरभंगजीने उनको टिकनेके लिये स्थान बतादिया और भोजनादिके लिये निमंत्रणभी करदिया और बैठनेको कहा तब श्रीरामचंद्रजी सीताजी लक्ष्मणजी वहां पर बैठे ॥ २६ ॥ तिसके पीछे रघुनंदन रामचंद्र-जीने शरभंगजीसे इन्द्रके वहां आनेका कारण पूछा तब शरभंगजीने इन्द्रके आनेका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २७ ॥ और बोले हे राघव ! यह वर-दाता इन्द्रजी हमको ब्रह्मलोकमें लेजानेकी इच्छासे यहां आयेथे हमने उग्र तप

करके उस लोकको जीत लियाहै कि, जिसका जीतना विना परमात्माके भजन किये बहुत दुर्लभहै ॥ २८ ॥ परन्तु हे पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजी ! आप निकटही आगयेहैं यह जानकर आप सरीखे प्रिय पाहुनेके साथ बिना मिले ब्रह्मलोकको नहीं गया ॥ २९ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! आपही परम धर्मनिष्ठ और महात्माहैं सो हमारे मनमें यहहै कि, आपसे मिलकर फिर स्वर्ग, या ब्रह्मलोक कहींको चले जाँयगे ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ ! हमने स्वर्ग और ब्रह्मलोक इत्यादि जितने भर शुभ और अक्षय लोकहैं सबहीको जय कर लियाहै सो अपनी तपस्यासे जीते हुए वह सब लोकही हम आपके अर्पण करते हैं आप उनको ग्रहण कीजिये ॥ ३१ ॥ महर्षि शरभंगजीने जब इस प्रकार कहा तब सब शास्त्रोंके जाननेवाले पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रजी उनसे बोले ॥ ३२ ॥ हे महामुने ! यदि आप कहैं तो जो लोक आपने जीतेहैं हम उन सबको यहीं बुलादें परन्तु इस वनमें आपकी आज्ञा लेकर हम वसना चाहतेहैं सो बताइये कि, कौनसे स्थानमें वासकरें ॥ ३३ ॥ इन्द्रकी समान बलवान् रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीने जब इस प्रकार कहा तब फिर महापंडित शरभंगजी बोले ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस वनमें सुतीक्ष्ण नामक परम तेजस्वी धार्मिक और जितेन्द्रिय एक महर्षि वास करतेहैं वह तुम्हारा भला करेंगे और रहनेको स्थानभी बतावेंगे ॥ ३५ ॥ और यह जो पुष्पों करके शोभित मन्दाकिनी नदी पूर्वकी ओरको बह रही है सो इसके किनारे २ ही चले जाइये बस महर्षि सुतीक्ष्णका आश्रम आजायगा ॥ ३६ ॥ हे पुरुषशार्दूल ! वहां जानेका यह मार्ग दृष्टि आता है हे तात ! सर्प जिस प्रकार पुरानी केचलीको छोडकर चला जाता है वैसेही हमभी इस समय यह पुराना देह छोडेंगे आप एक मुहूर्ततक हमारे ऊपर दृष्टि करके इस स्थानपर खडे रहिये ॥ ३७ ॥ यह कहकर परम तेजस्वी शरभंगजी यथाविधि अग्निमें ईंधन लगाय मंत्र पढ घृतसे आहुतिदे उसमें प्रवेश करते हुए ॥ ३८ ॥ भगवान् अग्निजीने क्षणमात्रमेंही उन महात्मा शरभंगजीके समस्त रुवें, केश, हड्डी, मांस रुधिर और पुरानी खाल इत्यादि जलाडाली ॥ ३९ ॥ तब शरभंगजी साक्षात् अग्निकी समान मूर्त्तिमान् कुमारका रूप धारण कर अग्निके ढेरसे निकल कर शोभा पाने लगे और उनका पहला रूप जाता रहा ॥ ॥ ४० ॥ तिसके पीछे वह अग्निहोत्र करनेवाले महात्मा ऋषिगणोंके और देवताओंके सब लोकोंको नांघककर ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ४१ ॥ वहां जाकर पुण्य

कर्म करनेवाले ब्राह्मणश्रेष्ठ शरभंगजी अनुचर वेष्टित पितामह ब्रह्माजीके दर्शन करते हुये ब्रह्माजीने भी उन द्विजश्रेष्ठके दर्शन कर उनको अपने धोरे बिठाय कुशल प्रश्न-कर सब वृत्तांत पूछा ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

शरभंगजी जब ब्रह्मलोकको चले गये, तब दंडकवनवासी मुनिगण इकट्ठे होकर तेजसे देदीप्यमान रामचन्द्रजीकी शरणमें आये ॥ १ ॥ उनमें वैखानस जो कि प्रजापतिके नखोंसे उत्पन्न हुए थे, बालखिल्य जो रेतसे उत्पन्न हुए हैं कुछ सम्प्रक्षाल थे जो परत्माके चरणोंके धोनेसे हुये थे कुछ मरीचिप थे जो सूर्य या चंद्रमाकी किरणकोही पीकर रहते कुछ अश्मकुट्ट थे, जो पत्थरसे कूट २ कर कच्चाही अन्न भक्षण करते, कुछ पत्राहार तापस थे जो केवल पत्तेही भोजन करते ॥ २ ॥ कुछ दन्तोलूखली थे जिनके दांतही ओखलीकी समान थे अर्थात् कच्चा अन्न दांतोंसेही चबा जाते थे, कछ उन्मज्जक थे जो सदा कंठतक जलमें डूबे रहते, बहुत सारे गात्र-शय्य थे जो विना बिछाये पृथ्वी परही सोते, बहुत अशय्य थे जो सोतेही नहीं कुछ बिछातेही नहीं, वैसेही पृथ्वीपर पडे रहते थे, बहुत अनवकाशक थे, जिनको वेदाध्ययन और पूजा पाठ करनेसे छुट्टीही नहीं मिलतीथी ॥ ३ ॥ बहुतसे मुनि जला-हारी थे जो जलही पीकर रहते कुछ वायुभोजी जो केवल हवाही खाकर जीते, जो आकाश निलय थे जो बिना ऊपर कुछ छायेछुये खुले मैदानमें पडे रहते कुछ स्थण्डिलशायी जो पृथ्वीपर पडे रहते ॥ ४ ॥ कुछ ऊर्ध्वबाहु जो कि सदा ऊपरहीको हाथ उठाये रहते, कुछ दान्तथे जिनकी इन्द्रिय सदा अपने २ समय परही अपनी २ वासनाको चाहतीं, कुछ ऋषि ऐसे थे जो सदा गीले वस्त्र पहरे रहते ऐसे अर्द्धपट बासर, बहुत जपी जो सदा जप किया करते कुछ तपोनिष्ठ थे जो सदा तपही किया करकै भगवान्‌का ध्यान किया करते । कुछ पंचतपानुष्ठाई थे जो गरमियोंमें पंचाग्नितापा करते थे ॥ ५ ॥ यह जितने भर ऋषि लोग थे सबपर ब्राह्मी श्री विराजमान थी, सबके चित्त दृढ योगाभ्यासमें लग रहे थे, यह सब तपस्वीगण शरभंगजीके आश्रममें आकर रामचन्द्रजीके शरणापन्न हुए ॥ ६ ॥ इस प्रकार धर्मात्मा ऋषिलोग सब वहां आकर धार्मिक श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे कशल

प्रश्न पूछकर बोले ॥ ७ ॥ हे परमधर्मज्ञ ! तुम रथी गणोंमें श्रेष्ठहो, इक्ष्वाकुकुलके मध्यमें प्रधानहो, इन्द्रजी जिस प्रकार संसारकी रक्षा करतेहैं वैसेही तुमभी सब लोगोंकी रक्षा करतेहो ॥ ८ ॥ आप यश और विक्रमद्वारा तीनों लोकोंहीमें विख्यात होगयेहैं पितृव्रतत्व सत्य वचन और सर्वांगसे पूर्णधर्म तुममें टिकेहैं॥९॥हे महात्मन् ! आप धर्मके जाननेवाले और धर्मप्रियहैं, अतएव हे नाथ ! हम प्रार्थनावान् होकर आप से जो कुछ कहें सो उसके लिये क्षमा करैं ॥ १० ॥ हे नाथ जो राजा प्रजासे पैदावारीका छठवाँ हिस्सा लेतेहैं और फिरभी प्रजाको पुत्रकी समान पालन नहीं करते हैं उन नरपतियोंको महा अधर्म होताहै ॥ ११ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जो सदा यत्न करकै और सावधान होकर अपने अधिकारमें वास करती हुई प्रजाको अपने प्राणोंकी समान, या प्राणोंसेभी अधिक प्रिय अपने पुत्रोंकी समान सदा रक्षा करतेहैं ॥ १२ ॥ वह महीपाल इस लोकमें बहु वर्षव्यापिनी स्थाई कीर्त्ति प्राप्त करके अन्त समय ब्रह्मलोकमें जाकर विशेष आदर मान पातेहैं ॥ १३ ॥ ऋषि मुनि लोग कंद मूल फल खाकर जो परम धर्म बटोरतेहैं, सो धर्मानुसार प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाको उस धर्मका चौथा भाग प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥ सो वही यह महान् वानप्रस्थ ऋषिगण जिनमें कि, ब्राह्मणही अधिकहैं आपसा रखवाला पाकरभी नितान्त अनाथकी नांईं राक्षसों करके मारे जातेहैं ॥ १५ ॥ विशुद्ध चित्तवाले मुनिगणोंके शरीर; समस्त वनमें अनेक प्रकारके भयानक राक्षसोंसे मारे जाकर जहां तहां पडेहैं सो आप आकर देखो ॥ १६ ॥ हम यह बात कुछ मिथ्या नहीं कहते आप स्वयं ही आकर देख लीजिये कि पंपा और नदियों तथा मंदाकिनीके तीरपर बसनेवाले और चित्रकूट निवासी बहुत सारे मुनिलोग राक्षसोंसे महा दुःख पारहे हैं उन मुनिलोगोंका नाश हुआ जाताहै ॥ १७ ॥ भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसगण तपस्वी लोगोंका नाश करतेहैं सो यह दुःख हम लोगोंपर नहीं सहा जाता ॥ १८ ॥ तिससे हे शरण्य ! हम आश्रय लेनेके लिये आपके निकट आयेहैं हे श्रीरामचंद्रजी ! आप हम लोगोंकी रक्षा कीजिये । क्योंकि निशाचर गण हम लोगोंका नाश किये देतेहैं ॥ १९ ॥ हे राजकुमार ! इस पृथ्वीपर आपके सिवाय हमारी कोई गति नहीहै हे रघुकुलचूडामणि ! राक्षसोंके हाथसे हम सबकी आप रक्षा करें ॥ २० ॥ धर्मात्मा काकुत्स्थनंदन श्रीरामचन्द्रजी उन तपस्वी ऋषि लोगोंकी ऐसी विपद उन के मुखसे सुनकर सबसे बोले * ॥ २१ ॥ कि हमसे इस प्रकार कहनेकी आपको

* चौपाई–आरत वचन सुनत रघुनायक । बोले वचन धरे धनुशायक ॥

कुछ आवश्यकता नहींहै, हम तो आप लोगोंकी आज्ञाके पालन करनेवालेहैं सो केवल आप अपनेही कार्य करनेको हमें चाहे जिस वनको भेज दीजिये ॥ २२॥ जबकि हम इस वनमें आयेहैं तब आप लोगोंको जो डर राक्षसोंसे है उसहीको मिटानेके अर्थ व पिताजीकी आज्ञा पालनेके लिये इन दोनों.कार्योंके अतिरिक्त और कार्य करनेको हम नहीं आये ॥ २३ ॥ हम जो इस वनमें आयेहैं सो आप लोगोंके कार्यको साधन करनेहीके लिये आयेहैं क्योंकि जो पिताजीहीकी आज्ञा पालन करनी होती तो किसी और ही ओरको चले जाते, अब हमारा वनवास सफल हो जायगा क्योंकि आपका कार्यभी सधैगा ॥ २४ ॥ हमने वनमें तपस्वी लोगोंके शत्रु राक्षसोंके संहार करनेका संकल्प कियाहै ! तपोबलसे युक्त ऋषिलोग हमारे और हमारे भ्राताके बाहुबलको देख ॥ २५ ॥ धर्मधुरन्धर वीर रामचन्द्रजी तपस्वी लोगोंको ऐसा वरदानदे उन लोगोंकी पूजा प्राप्तकर और उन्हें साथले लक्ष्मणके सहित सुतीक्ष्णऋषिके आश्रमकी ओर चले * ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण, सीता और ब्राह्मणोंके साथ सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये ॥ १ ॥ शरभंगजीके आश्रमसे बहुत दूर चलकर मार्गमें बहुत सारी जलवाली विविध नदियोंको उतरकर सुमेरुकी समान ऊँचे एक निर्मल पर्वतको देखते हुए ॥ २ ॥ तिसके पीछे इक्ष्वाकुके वंशबढानेवाले प्रधान दो रघुवीर सीताजीके सहित अनेक प्रकारके वृक्ष जिसमें विराज रहे ऐसे वनमें प्रवेश करते हुए ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीने उस घोर वनमें प्रवेश करकै अनेक प्रकारके फल फूल वाले वृक्षोंके झुण्डसे घिरा हुआ जिसपर चीर और मालायें टँगरहींथीं ऐसा एक आश्रम देखा ॥ ४ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीने वहां तप करनेमें चित्त लगाये मलिन कमलके फूलोंकी माला धारण किये अथवा पाप दूर करनेके निमित्त कमलासनसे बैठे हुये सुतीक्ष्णको देखकर उनसे यथाविधि संभाषण करकै बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! हमारा नाम रामचन्द्रहै आपके दर्शन करनेके लिये यहां आयेहैं, अत एव हे धर्मज्ञ ! हे अक्षततपःप्रभावसम्पन्न महर्षे ! आप हमसे बोलिये ॥ ६ ॥ तब

* दोहा—निशिचर हीन करो महि,भुज उठाय भण कीन ॥ सकल मुनिनके आश्रमन,जायजाय सुखदीन ॥

वह अति धीर सुतीक्ष्णजी ऋषि धार्मिक श्रेष्ठ रामचंद्रजीकी ओर देखते हुये दोनों बाहोंसे पकड उनको हृदयसे लगाकर बोले ॥ ७ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! तुम भले आये ? हे रघुश्रेष्ठ ! हे धार्मिकवर ! आपके पदार्पण करनेसे आज यह आश्रम सफल हुआ ॥ ८ ॥ हे परमयशवाले श्रीरामचन्द्रजी ! हे वीर ! हम आपकेही दर्शनकी अभिलाषा किये इतने दिनतक पृथ्वीमें रहे और देवलोकको नहीं गये ॥९॥ हमने इन्द्रसे यह भी सुना है कि आप राज्य छोडकर चित्रकूटमें आएहैं। हे काकुत्स्थ ! यहां देवराज इन्द्रके आनेका यह प्रयोजन था कि ॥ १० ॥ हमने ऐसे पुण्य कर्म किये हैं कि जिनसे सब लोक जीतलिये सो देवोंके देव इन्द्रजी यही कहने आयेथे कि आप इस लोकको छोडकर उन लोकोंमें बास कीजिये ॥ ॥ ११ ॥ सो हमें आपके दर्शनकी अभिलाषा थी इससे वहां नहीं गये अब हम प्रसन्न होकर आपको वरदान देतेहैं कि आप हमारे प्रसादसे भ्राता लक्ष्मण और भार्या सीताजीके सहित जो कि, हमने तपस्यासे पाये हैं उन सब देवर्षियों करकै सेवित लोकोंमें आनन्दसे वस कर काल व्यतीत कीजिये ॥ १२ ॥ पुरन्दर इन्द्रजी जिस प्रकार ब्रह्माजीसे बोलते हैं वैसेही आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजी, कठोर तपके तेजसे प्रदीप्तमान सत्यवादी महर्षि सुतीक्ष्णजीसे बोले ॥ १३ ॥ हे महामुने ! जब हम चाहेंगे तब आपही उन लोगोंको ग्रहण कर लेंगे इस समय हम यह प्रार्थना करते हैं कि, इस समय इस वनमें हमारे रहनेको आप स्थान बतादीजिये ॥ १४ ॥ गौतमवंशीय महात्मा शरभंगजीके मुखसे हमने यह बात सुनी है कि, आप सबही कुछ वृत्तान्त जानते हैं; और सब प्राणियोंका हित साधन करनेमें रत हैं ॥ १५ ॥ जगत्प्रसिद्ध महर्षि सुतीक्ष्णजीसे जब रामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह अतिशय आनन्दित होकर मधुर वचन बोले ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी ! यही आश्रम बहुतही श्रेष्ठ है, इसमें अनेकानेक ऋषि लोग वसते हैं और कन्द मूल फल भी इस आश्रममें सब समय बहुत सारे मिला करते हैं, अतएव तुम इस स्थानमेंही बसकर विहार करो ॥ १७ ॥ इस आश्रममें अनेक बडे २ शरीर वाले मृग गण आकर निडर हो इधर उधर सबको अपने रूपसे लुभाते हुए घूमा करते हैं, उनसे कोई नहीं बोलता, और फिर वे भी लौट जाते हैं ॥ १८ ॥ अतएव आप जानलें कि, कुछ थोडा बहुत डर है भी वह केवल पशुगणोंका ही भय है इसके सिवाय इस स्थानमें और कोई भय नहीं है महर्षिके ऐसे वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी ॥ १९ ॥

धनुष और शरग्रहण करकै उनसे बोले कि, हे महाभाव ! उन आये हुए मृगके झुण्डोंको ॥ २० ॥ अपने पैने धारवाले बाणोंसे हम संहार कर डालेंगे परन्तु ऐसा करनेसे आपको कष्ट होगा सो इससे हमें बडा कष्ट होगा ॥ २१ ॥ यह वचन सुन ऋषिराज कुछ न बोले तब रामचन्द्रजीने जाना कि, मुनि मृगोंका वध नहीं चाहते तब उनसे बोले कि, इस मृगबाधिक आश्रमपर बहुत दिनोंतक रहनेकी हमारी इच्छा नहीं है यह कहकर रामचन्द्रजी सन्ध्या करनेको गये ॥ ॥२२ ॥ सायंकालकी सन्ध्या करकै श्रीरामचन्द्रजी वहीं सुतीक्ष्णजीके आश्रमपर लक्ष्मण और जानकीजीके सहित बसे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे सन्ध्या होनेके पश्चात् जब रात्रि हो आई तब महात्मा सुतीक्ष्णजीने आपही तपस्वियोंके भोजन करने योग्य अन्न उन दो पुरुषश्रेष्ठोंको प्रदान किया और बहुत भांतिसे आदर भी करते हुए ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मी०आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां सप्तमः सर्गः ॥७॥

अष्टमः सर्गः ८.

श्रीरामजन्द्रजी सुतीक्ष्ण करकै इस प्रकार पूजे जाकर लक्ष्मणजीके सहित वह रात्रि इसी आश्रमपर व्यतीत करकै प्रभात होतेही जागे॥ १ ॥और सीताजीके सहित यथाकालमें उठकर श्रीरामचन्द्रजीने उस जलसे स्नान करा व हाथ पैर धो जोकि कमलोंकी सुवाससे युक्तथा॥ २॥ फिर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण और वैदेहीजी देवताओंके कालोचित विधानानुसार अग्नि आदि देवताओंकी पूजा उस तपस्वीसेवित वनमें करते हुए ॥ ३ ॥ और उदय होते हुए सूर्य भगवान्‌के दर्शन कर निष्पाप वे कुमार सुतीक्ष्णके निकट आकर विनीत मनोहर वचनसे बोले ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! आपके निकट पहुनई पाकर हम इस रात्रिमें यहां बहुत सुखसे बसे अब हम दण्डकारण्यमें जाँयगे इस कारण आपकी अनुमति चाहते हैं क्योंकि यह ऋषि लोग हमको चल नेके अर्थ शीघ्रता करा रहे हैं ॥ ५ ॥ दण्डकारण्यवासी पवित्र स्वभाववाले ऋषि लोगोंके समस्त आश्रम मण्डल दर्शन करनेके लिये हमारी इच्छा हुई है सो हम उनको शीघ्र देखैंगे॥ ६ ॥अब इच्छाहै कि आप आज्ञा दे दें तो हम इन सब बिना धुँवेवाली अग्निके समान प्रभायुक्त सत्यनिष्ठ तप करकै जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है ऐसे मुनिश्रेष्ठोंके साथ चले जांय॥ ७॥ अन्याय करकै प्राप्त हुई लक्ष्मीको पाकर

जिस प्रकार पुरुषान पुरुषोंके संबंध छोड मनुष्य असह हो उठता है, सो सूर्यका ताप वैसा असह न होते २ ॥८॥ हम यहांसे चलनेकी वासना करते हैं श्रीरामचन्द्रजीने यह कहकर लक्ष्मण और सीताजीके साथ सुतीक्ष्णजीके चरणोंकी वन्दनाकी ॥९॥ मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्णजीने चरण वन्दन करते हुए उन दोनों राम और अक्ष्मणजीको उठाकर गाढ आलिङ्गन किया और उनसे स्नेह साने वचन बोले ॥ १० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! लक्ष्मणजी और छायाके समान साथ चलनेवाली इन सीताजीके संग आप निर्विघ्न मार्गमें चले जांय ॥ ११ ॥ हे वीर ! योगमें जिनके चित्त लगे हुएहैं ऐसे दण्डकारण्यवासी इन सब ऋषियोंके रमणीय आश्रम देख आइये॥ १२॥ अनेक प्रकारके बहुत कंद मूल फल सहित फूले हुए वनोंमें जिनमें भले २ श्रेष्ठ मृगगण रहते हैं और पक्षियोंके झुण्डके झुण्ड भरेहैं ॥ १३ ॥ जहां स्वच्छ जल-वाली ताल तलैयोंमें कमल फूल रहेहैं और उन्हीं तालावों पर हंस और कारंडवादि पक्षी विराजरहेहैं ॥ १४ ॥ और इनके अतिरिक्त देखनेमें अति मनोहर पर्वतोंके झरने और जहां मोर शोर कर रहे हैं ऐसे वन भी आप देखेंगे ॥ १५ ॥ वत्स सौमित्रे ! गमन करो श्रीरामचन्द्रजी आपभी जांय, परन्तु इन सब आश्रमोंके दर्शन करके फिर भी इस स्थानमें आप लौटकर आवैं ॥ १६ ॥ जब सुतीक्ष्णजी यह बोले तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि ऐसाही होगा यह कहकर लक्ष्मणजीके साथ सुती-क्ष्णजीकी परिक्रमा कर जानेके लिये तैयार हुये ॥ १७॥ अनन्तर बडे २ नेत्रवाली सीताजीने दोनों भाइयों को श्रेष्ठ तरकस धनुष और दो निर्मल खड्ग दिये जो कि रामचन्द्रजीने व लक्ष्मणजीने खोलकर धर दियेथे ॥ १८ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी दोनों शुभ तरकस बांध और दो शब्द सहित धनुष कांधेमें डाल यात्रा करनेके लिये आश्रमसे बाहर हुए ॥ १९ ॥ रूपवान् दोनों रघुवीरोंने महर्षि सुती-क्ष्णजीकी आज्ञा पाकर धनुष बाण और असि धारण करके सीताजीके सहित शीघ्र यात्राकी ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० आरण्यकाण्डे भाषायां अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

रघुनंदन रामचन्द्रजी जब सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा लेकर यात्रा करते हुए तब सीताजी स्नेह साने मनोहर वचन श्रीरामचंद्रजीसे बोलीं ॥ १ ॥ यद्यपि आप

अतिशय महात्मा हैं परन्तु परम सूक्ष्म रूपसे विचार कर देखनेसे आप अधर्मको संचय करते हैं, इस समय कामजव्यसनसे निवृत्त होतेही यह अधर्म नहीं होगा ॥ ॥ २ ॥ कामज व्यसन तीन प्रकारके हैं मिथ्यावाक्य अर्थात् झूंठ बोलना व इससे भी परम भारी और दो पाप हैं ॥ ३ ॥ परस्त्री गमन (पराई स्त्रीसे भोग करना) और बिना वैरकेही वृथा प्राणीको मार डालना यह पाप बडे भारी हैं हे रघुनंदन ! आपने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा न कभी आप आगेको कहेंगे ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! और आप धर्मका नाश करनेवाला परस्त्रीगमन नहीं करते सो हे नरनाथ ! ना तो यह बात आपमें कभी हुई न होगी ॥ ५ ॥ आपने किसी कारण वश होकर मनके बीचमें भी पराई स्त्रीकी अभिलाषा नहीं की । हे राजकुमार ! आप सदाही अपनी स्त्रीमें अनुरागी रहते हैं ॥ ६ ॥ आप धर्मात्मा और सच्ची प्रतिज्ञा करने वाले हैं पिताजीकी आज्ञा आप पालन कर रहे हैं धर्म और सत्य सब आपमेंही टिके हुये हैं ॥ ७ ॥ हे महाबाहो ! जो लोग जितेन्द्रिय हैं वह लोगही इन सब बातोंका पालन कर सकते हैं । हे शुभदर्शन ! सब प्राणी आपकी जितेन्द्रियताको जानते हैं ॥ ८ ॥ परन्तु विना अपराध प्राणियोंकी हिंसा करनेका जो यह भयानक तीसरा व्यसन है इस समय वही व्यसन आपमें उपस्थित हुआ है ॥ ९ ॥ हेवीर ! आपने प्रतिज्ञा की है कि, दंडकारण्यवासी ऋषि लोगोंकी रक्षा करनेके लिये युद्धमें हम राक्षसोंके प्राण संहार करैंगे॥ १० ॥ इसी कारण आपने धनुष बाण ग्रहण करके लक्ष्मण सहित दण्डक नामसे जो वन विख्यात है उसमेंको यात्रा कीहै॥ ११ ॥ अतएव आपको यात्रा करते हुए देखकर और आपका अंगीकार पालन रूपव्रत जानकर आपके पारलौकिक और ऐहिक सुखके विषयमें हमारे मनको बडी चिन्ता हो रही है ॥ १२ ॥ हे वीर ! दंडकारण्यका जाना हमें अच्छा नहीं लगता सो इसका कारण भी कहती हैं आप श्रवण करें ॥ १३ ॥ हे महाराज ! आप धनुष बाण ग्रहण करकै भाईके सहित वनको जायँगे वहाँ पर जो आप किसी राक्षसको देख पावेंगे तो कहीं न कहीं अवश्यही बाण त्याग करैंगे ॥ १४ ॥ निकट रक्खा हुआ काठ जैसे अग्निके तेजको बढाता है वैसे ही यह धनुष जिसके पास रहता है वहभी किसी न किसी पर चलायाही चाहता है क्योंकि क्षत्रियोंके पास रहकर धनुष उनके बलको बढाताहै ॥ १५ ॥ हे महाबाहो ! पहले कोई मृग पक्षियों करकै युक्त पुण्यमय वनके बीच एक सत्यमें टिके हुए पवित्र आचरण करनेवाले तपस्वी

रहतेथे ॥ १६ ॥ शचीपति इन्द्रजी इन ऋषिको तपस्यामें विघ्न करनेके लिये योद्धाका वेष बनाय खड्ग हाथमें लेकर उनके आश्रममें आये ॥ १७ ॥ और उस आश्रममें उस तपोनिष्ठ पवित्र मुनिके पास धरोहरकी भांति यह खड्ग रखकर चले गये ॥ १८ ॥ मुनिजी इस अस्त्रको पाकर इसकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न करने लगे और विश्वासघातक न बनना पडे इस कारण इस अस्त्रको संगही लेकर वनमें घूमने लगे ॥ १९ ॥ वह धरोहर वस्तुकी रक्षाकरनेमें इतना यत्न करते कि जब कहींसे कंद मूल फल लेनेके लिये जाते तौभी विना इस खड्गके गमन नहीं करतेथे ॥ २० ॥ सदा खड्ग संग लिये फिरनेसे सहज २ में मुनिका विश्वास तप करनेसे हट गया और उनका स्वभाव कठोर होगया ॥ २१ ॥ तिसके पीछे वह उसी शस्त्रसे प्राणियोंको मारने लगे और मतवालेसे होगये और अधर्मसे घिर शस्त्र साथ रखनेसे अंत समय नरक को गये ॥ २२ ॥ शस्त्रको पास रखनेसे पहले ऐसा हुआथा इसही कारणसे पंडित लोग शस्त्र संयोगको अग्नि संयोगकी समान विकारका हेतु कहा करतेहैं ॥ २३ ॥ हे प्राणनाथ ! हम आपसे बहुत स्नेह करतीहैं इस कारण आपको स्मरण दिवातीहै कुछ हम आपको शिक्षा नहीं करती ! हे वीर ! आप धनुष धारण करकै ऐसा कार्य मत कीजिये ॥ २४ ॥ निरपराध दंडकवासी राक्षसोंको मारनेका विचार मत कीजिये. हे वीर ! विना अपराध किसी को भी वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २५ ॥ वनमें विचरते हुए क्षत्रियोंका धनुष धारण करना निरपराध जीवोंको मारनेके लिये नहीं बरन दुःखी लोगोंकी रक्षाही करनेके लियेहै ॥ २६ ॥ वनवासीको क्या शस्त्रधारण करना उचितहै ? तपस्वियोंमें क्या क्षत्रियोंका स्वभाव शोभा पाताहै ? कहां शस्त्र? कहां वन? कहां क्षत्रियधर्म ? कहां तप ? यह सब कर्म एक दूसरेसे विरुद्धहैं इससे वनका ही धर्म यहां पर वर्तना चाहिये ॥ २७ ॥ बराबर शस्त्रका व्यवहार करनेसे बुद्धि कादर और मलीन होजातीहै जब आप अयोध्याजीको लौट चलें तब फिर क्षत्रियोंके धर्मका आचरण कर लेना ॥ २८ ॥ आप राज्य परित्याग करके जो यहां पर ऋषियोंके धर्मका आचरण करेंगे तो हमारे सास और श्वशुर दशरथजीकी प्रीतिभी आपमें अधिक होगी। क्योंकि उन्होंनेभी यही आज्ञा दीहै कि मुनिवेष धारण कर वनमें वसो॥ २९॥ धर्मसे ही अर्थका लाभ होताहै धर्मसे ही सुख उत्पन्न होताहै. बरन् धर्मसे ही सब कुछ प्राप्त होजाताहै इस कारण धर्मही संसारमें एक मात्र सार वस्तुहै अतएव आपभी

धर्मका ही आचरण कीजिये ॥ ३० ॥ चतुर मनुष्य बहुत यत्नसे शरीरको कष्ट दे दुर्बल करके धर्मका लाभ करतेहैं, क्योंकि शारीरक सुखजनक उपायसे धर्म प्राप्त नहीं होता ॥ ३१ ॥ हे प्रियदर्शन ! तुम सदा शुद्ध चित्त होकर, तपोवनमें करने योग्य जो धर्मानुष्ठानहैं उनके करनेमें मन लगाओ त्रिभुवनके सूक्ष्मानुसूक्ष्म सब विषयही आपको विदितहैं तब फिर कौन धर्म विषयमें आपको समझा सकताहै ? ॥ ३२ ॥ हमने केवल स्त्रियोंके स्वभावसे जो चंचलता होतीहै उसकेही वश होकर ऐसा कहा इस समय अनुज लक्ष्मणके साथ विचार करकै जो उचित समझा जाय, विलंब न लगाकर उसको कीजिये ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

पतिकी भक्ति करनेवाली मैथिली जानकीजीके ऐसे वचन कहनेपर परम धर्मनिष्ठ रामचंद्रजी उनको सुनकर अपनेको भली भाँति समादृत जान उत्तर देतेहुए ॥ ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञ देवि जानकी ! तुमने स्नेह वचनसे क्षत्रिय कुलका धर्म बताकर जो कुछ कहा वह सबही हितकारी और बहुत अच्छाहै ॥ २ ॥ किन्तु देवी ! कोई दुःखित होकर वचन न सुनावे इसही कारण क्षत्रिय लोग धनुष धारण करतेहैं सो यह वार्त्ता कहकर तुमने स्वयंही अपने प्रश्नका उत्तर देलियाहै फिर भला हम और क्या उत्तरदे ॥ ३ ॥ दंडकारण्यके रहने वाले महातपस्वी ऋषि लोग दुःखित होकर स्वयंही यहां आकर हमको सबका शरण देनेवाला समझ हमारी शरण आये ॥ ४ ॥ अयि भीरु ! वह लोग नित्य फल मूल भक्षण करकै वनमें वास करतेहैं, परन्तु क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंके उपद्रव करनेसे वह मुनिगण सुख नहीं पा सकते ॥ ॥ ५ ॥ इसके सिवाय राक्षस नर मांस भोजी तो होतेहीहैं सो वैसे नरमांसोपजीवी भयंकर स्वभाववाले राक्षसोंसे अनेक मुनि लोग भक्षण किये गयेहैं ॥ ६ ॥ उनसे बचे कुचे दंडकारण्यवासी मुनि लोगोंने हमारे निकट आ हमसे यह सब दुःखका वृत्तान्त कहा तब हम उनके ऐसे वचन सुन ॥ ७ ॥ उनकी प्रतिष्ठा करते हुए उनसे बोले कि आप हम पर प्रसन्न हूजिये हमको बहुतही लज्जा आतीहै कि आपके ऐसे दुःखित वचन सुनैं ॥ ८ ॥ क्योंकि आप लोग स्वभावसेही हम लोगोंके पूज्य हैं किन्तु इस समय आप हमारी शरणमें आये अनन्तर हमने उसके सामनेही कहा

कि हमें क्या करना होगा सो आज्ञा कीजिये ॥ ९ ॥ तब सबहीने एकत्रहो मिल-
कर कहा राम ! दंडकारण्यमें बहु संख्याक कामरूप निशाचरोंने एकत्र होकर
अतिशय कष्ट देना आरंभ कियाहै ॥ १० ॥ आप उनके हाथोंसे हमारा उद्धार
कीजिये। हे अनघ ! होम करनेके काल और पौर्णमासी अमावास्याके दिन जब
हम यज्ञ करने लगतेहैं ॥ ११ ॥ तब वह मांसके खानेवाले राक्षस लोग आय २
कर हठ सहित यज्ञ विध्वंस करते और हमको सताते हैं अतएव इन
राक्षसोंसे व्याकुल महा तपस्वी लोगोंको ॥ १२ ॥ आप बचाइये
उन लोगोंको हम पराजित नहीं कर सकते तपमें रत ऋषिगण इस प्रकार
राक्षसोंके दुःख फंदमें फँसकर छुटकारा पानेकी वासनासे आपकी शरण लेतेहैं ।
आपही हम लोगोंके परम गतिहैं यद्यपि हम तपस्याके प्रभावसे स्वयंभी राक्षसोंका
संहार कर सकतेहैं ॥ १३ ॥ तथापि बहुत कालकी बटोरी हुई तपस्याके क्षय
करनेको हमारा अभिलाष नहीं होता। हे रघुनंदन ! तपस्या जैसे कि बहुत कष्टोंसे
इकट्ठी होती है वैसेही इकट्ठा करनेके समय इसमें अनेक विघ्नभी होतेह ॥ १४ ॥
इसी कारणसे राक्षस लोग खाभी लेते हैं पर हम उनको शाप देकर नहीं मारते,
क्योंकि तपका फल शाप देनेसे नहीं रहता तिससे दण्डकारण्यवासी राक्षसोंसे
सताये हुए हम लोगोंकी ॥ १५ ॥ भ्राता लक्ष्मणके सहित आप रक्षा करें. क्योंकि
आपही हमारे रक्षा कर्ता हैं जब हमने मुनियोंके ऐसे वचन सुने तब उनसे कहा
कि, आप लोगोंका पालन हम सब प्रकारसे करेंगे ॥ १६ ॥ हे जानकी ! हमने
दंडकारण्यवासी तपस्विगणोंकी यह वार्ता सुनकर उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञाकी
है, सो प्राण रहते इस प्रतिज्ञाके पालन करनेमें किसी भांति विमुख नहीं होंगे ॥
॥ १७ ॥ एक तो ऋषिगणोंके सामने प्रतिज्ञा फिर उसमें सत्यही हमाराभी परम
अभीष्ट है । फिर भला हम इसके विपरीत कैसे कर सकते हैं ? हे सीते ! तुम्हें,
लक्ष्मणको और अपने प्राणको भी हम त्याग कर सकते हैं ॥ १८ ॥ परन्तु प्रतिज्ञा
करके विशेषतः ब्राह्मणोंके विषयमें सो हम कभी त्याग नहीं कर सकते तिससे
ऋषि लोगोंका पालन करना हमारा परम कार्य है ॥ १९ ॥ ऋषि लोगोंके
न कहने परभी जब कि, सबही भांतिसे उन लोगोंकी रक्षा करना हमारा
आवश्यकीय कार्य है, फिर भला प्रतिज्ञा करके किस प्रकार उस कार्यसे विमुखहों
जो हो हे सीते ! तुमने हमारे प्रति स्नेह और सौहार्दसे जो वचन कहे सोभी हमने

जाने ॥ २० ॥ इससे हम बहुत सन्तुष्ट हैं, क्योंकि कोई भी कुप्यारे मनुष्यसे हित कारी वचन नहीं कहता । हे शोभने ! तुमने हमसे अपने वंशके योग्य उचित वचनही कहे हैं तुम हमारी धर्मचारिणी हो, हम तुमको प्राणसेभी अधिक प्यारा समझते हैं ॥ २१ ॥ धनुष धारण किये हुए महानुभाव श्रीरामचंद्रजी जनकदुलारी सुकुमारी सीताजीसे इसप्रकारके वचन कहकर लक्ष्मणजीके सहित परम रमणीय तपोवनोंमें गमन करते हुए ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

श्रीरामचन्द्रजी आगे, सुशोभित सीताजी बीचमें और लक्ष्मणजी धनुष धारण करकै पीछे २ जाने लगे ॥ १ ॥ उन दोनों भाइयोंने जानकीजीके सहित जानेके समय विविध भांतिके पर्वत, वन, नदी, तालाव आदि देखे ॥ २ ॥ सारस और चकवा, चकवी नदियोंके किनारे घूम रहे और कमल फूल फूले हुए जल मुरगावी आदिकों करके युक्त सरोवर देखे ॥ ३ ॥ चीता, बाघ आदिकोंके झुण्डके झुण्ड, सुविशाल शींग जिनके ऐसे मदसे उन्मद भैंसे वराह और वृक्षोंके वैरी हाथी ॥ ४ ॥ देखते दिखाते चले तिसके पीछे जब दिवाकर अस्ताचल सन्मुखीन हुए तब रामचंद्र लक्ष्मण व सीताजीने बहुत दूर चलकर एक योजनमें विस्तार जिसका ऐसा एक तालाब देखा॥ ५॥ उस तालाबमें हाथियोंके झुण्डके झुण्ड नहा रहे, बहुत सारे लाल और श्वेत कमलफूल खिल रहे जल पक्षी सारस और हंस कल्लोलें कर रहेथे ॥ ६ ॥ और उसका जल अतिनिर्मल था श्रीरामचंद्र लक्ष्मण व जानकीजीने उस रमणीय सरोवरपर गीत और बाजेका शब्द सुना, परन्तु कोई गाने बजानेवाला दिखाई न दिया ॥ ७ ॥ महारथी श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी दोनों कौतूहलके वश होकर धर्मभृत् नामक ऋषिसे पूछते हुए ॥ ८ ॥ हे महर्षे ! यह बडे आश्चर्यका शब्द सुनकर हम सबकोही बडा कौतूहल हुआहै ? अतएव इस घटनाका सविशेष समस्त वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा ऋषि तत्क्षण इस सरोवरके प्रभावका वर्णन करने लगे ॥ १० ॥ ऋषि बोले हे रामचंद्रजी ! इस तडागका नाम पंचाप्सरहै इसमें सदा जल रहताहै कभी सूखता नहीं । महर्षि माण्डकर्णिने तपोबलसे इसको बनायाहै ॥ ११ ॥ वह महामुनि माण्डकर्णि दशहजार वर्ष

केवल पवन भोजन करते यहां रह कठोर तप करते रहे ॥ १२ ॥ इस तपस्यासे इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि सूर्यादि देवता सब बहुतही व्यथित होकर परस्पर इकठे होकर कहने लगे ॥ १३ ॥ यह ऋषि हममें से किसीका पद पानेके लिये तप कर-तेहैं। इस प्रकार निश्चय करकै देवताओंके अंतःकरण महाउद्विग्न होगये ॥ १४॥ तब उन सब देवताओंने मिलकर उनके तपमें विघ्न करनेकी अभिलाषसे, बिज-लीकी समान प्रभावाली पांच मुख्य अप्सराओंको भेजा ॥ १५ ॥ अप्सराओंनेभी देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने और पराये विषयके जाननेवाले महर्षि माण्डकर्णिजीको मदनके मदसे मतवाला कर दिया ॥ १६ ॥ ऋषिजीने उन पांचों अप्सराओंको अपनी स्त्रीकी भांति ग्रहण करकै उनके लिये इस सरोवरमें न दीखने वाला सुन्दर घर बनाया ॥ १७ ॥ पांचों अप्सरायें यथा सुखसे इस गृहमें वास करकै तपके प्रभावसे युवा अवस्थाको प्राप्त हुए उन ऋषिका मन मुदित करनेको उनके संग विहार करने लगीं ॥ १८ ॥ मुनिजीके सहित विहार करती हुई उन अप्सरा गणोंकेही बाजे बजाने और गानेका यह शब्दहै, व उन्हीके गहनोंका यह मनोहर शब्द सुनाई देताहै ॥ १९ ॥ महायशस्वी श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण जीके सहित विशुद्ध चित्त महर्षिजीको इस कथाको सुन बडा अचरज पाते हुए ॥ ॥ २० ॥ और कैसे अचरजकी बातहै यह कहते २ चारों ओर कुश चीर जिनमें पडे, ब्राह्मी शोभा समन्वित आश्रममंडलका श्रीरामचंद्रजी देखते हुए ॥ २१ ॥ वह बहुत शीघ्र भ्राता लक्ष्मण और भार्या जानकीजीके सहित वन शोभासम्पन्न आश्रमों में प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ जब वहां ऋषियोंने कंद मूल फलोंसे उनकी पूजाकी तब रामचंद्रजी वहां सुखसे बसे, फिर बारी २ से रामचंद्रजी सबही ऋषियोंके आ-श्रमोंपर गये और पूजा पाते हुए ॥ २३ ॥ वह महास्त्रवित् श्रीरामचंद्रजी पहले जिनके आश्रममें बसेथे, उस समय फिर उनके आश्रममें जाते हुए। वह किसी आ-श्रममें पूरे दश महीने, कहीं पूरे वर्ष भर ॥ २४ ॥ कहीं चार महीने कहीं पांच महीने कहीं छः महीने कहीं एक वर्षसेभी अधिक, कहीं पखवाडोंसे अधिक कहीं तीन महीने और कहीं २ साढे तीन २ महीने ॥ २५ ॥ कहीं तीन मास, कहीं आठ महीनेतक रहे कहीं इससे न्यूनाधिक रहे ऐसे तिन मुनियोंके आश्रमों पर श्रीरामचंद्रजी बसे ॥ २६ ॥ सबही जगह वह सुख सहित रहे; उन आश्रमोंमें बसते हुए ऋषिलोगोंकी अनुकूलतासे सीता सहित दश वर्ष श्रीरामचन्द्र

जीनेबितादिये ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे धर्मके जाननेवाले श्रीरामचंद्रजी सीताके साथ सब पुण्य आश्रमोंमें घूम घाम कर फिर महर्षि सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये जहां मुनिगणोंने उनकी बडी पूजाकी ॥ २८ ॥ वहां पर शत्रुओंके मारनेवाले श्रीरामचंद्रजी कुछेकादिन रहकर एक दिन विनय सहित उन महामुनि सुतीक्ष्णजीसे ॥२९॥श्रीरामचंद्रजी पूछते हुए कि, हे भगवन् ! इस वनमें मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् अगस्त्यजी ॥ ३० ॥ वसतेहैं, यह बात हमने बहुत ऋषि लोगोंसे सुनीहै परन्तु यह हमने अबतक नजान पाया.कि उन महा तपस्वीजीके रहनेका कौन वनहै ? ॥ ॥ ३१ ॥ फिर यहभी नहीं जानते कि उन धीमान् महर्षिजीका उस वनमें रमणीक आश्रम कौनसाहै ? उनके प्रसादके लिये लक्ष्मण और जानकीके सहित ॥ ३२ ॥ अगस्त्यजीके पास हम प्रणाम करनेको जाया चाहतेहैं । इस प्रकारका महा मनोरथ हमारे हृदयमें वर्त रहाहै ॥ ३३ ॥ वहां पर जाकर हम स्वयं मुनिराजजीकी सेवा करेंगे । इस प्रकार सुतीक्ष्णजीने धर्मात्मा रामचंद्रजीकी वाणी सुन ॥ ३४ ॥ दशरथजीके प्यारे दुलारे पुत्र श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हम लक्ष्मण सहित आपसे यह बतलानेकोही थे कि ॥ ३५ ॥ आप लक्ष्मण व जनककुमारी सीताजीके सहित अगस्त्यजीके निकट जाइये सो बडे भाग्यकी बातहै कि, आपनेही अपने मुखसे यह वार्ता पूँछी ॥ ३६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! महर्षि अगस्त्यजी जिस वनमें रहतेहैं उसको हम बतातेहैं,–हे तात ! इस आश्रमसे दक्षिण दिशाकी ओर सोलह कोश मार्ग चले जाइये, तब अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रम आपकी दृष्टि आवैगा ॥ ३७॥ इस आश्रमकी भूमि बडी व समानहै यहां पिप्पलीके वृक्षोंका वन शोभित होरहाहै और नाना भाँतिके पक्षी शब्द करतेहैं । ऐसे परम मनोहर और विविध भांतिके फल पुष्प युक्त वनके देशमें यह आश्रम प्रतिष्ठितहै ॥३८॥ वहांपर स्वच्छ वारिसे भरे बहुत सारे सरोवरहैं, हंस, कराकुल, चकवा, चकवी और सारस इत्यादि जलमें खेल किया करतेहैं ॥३९॥ हे श्रीरामचंद्रजी !उस आश्रममें आप एक रात्रि वास करकै प्रभात होतेही उस आश्रमके निकटस्थ वनको करवटमें छोड दक्षिणकी ओरको गमन कीजिये ॥ ४० ॥ बस चार कोश मार्ग चलतेही विविध भाँतिके वृक्षोंसे घिरा हुआ रमणीय वनमें हर्षित अगस्त्यजीके रहनेका आश्रम देखोगे ॥ ॥ ४१ ॥ सीता और लक्ष्मणजी तुम्हारे साथ वहां वास करकै परम प्रसन्न होंगे, क्योंकि वह अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त वन अतिरमणीयहै ॥ ४२ ॥ हे महामते !

यदि महर्षि अगस्त्यजीके दर्शन करनेका अभिलाषहै तो आजही जानेका विचार कीजिये ॥ ४३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण मुनिके ऐसे वचन सुन उनको प्रणाम करकै भ्राता लक्ष्मण और जानकीजीके सहित अगस्त्यजीके देखनेको प्रस्थान करते हुए ॥ ४४ ॥ मार्गमें जानेकेसमय बहुतसारे विचित्र वन, बादलोंकी समान ऊँचे २ पहाड, नदी सरोवर सबही श्रीरामचन्द्रजी देखते जातेथे ॥ ४५ ॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्णजीके बताये हुए मार्गमें यथासुखसे गमन करकै परम प्रसन्न और हर्षितहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४६ ॥ कि निश्चयही पुण्य कर्म करनेवाले महात्मा अगस्त्यऋषिके भ्राताका यह आश्रम दिखलाई देताहै ॥ ४७ ॥ क्योंकि जिस प्रकारसे सुनाथा वैसेही मार्गमें इस वनमेंको आते २ फल और फूलोंके बोझ-से झुकेहुए सैकडों हजारों पेड हमने देखेहैं ॥ ४८ ॥ यह देखो पकेहुए पिप्पलीके फलोंकी कडवी गन्ध पवन वेगसे बहीहुई चली आतीहै ॥ ४९ ॥ स्थान २ में इक ट्ठे किये हुए काठके बोझ और छिन्न वैडूर्यमणिके वर्णकी समान हरे कुशभी यहां देख पडतेहैं ॥ ५० ॥ आश्रममें स्थित हुई अग्निकी यह वही धूमशिखा, कृष्णमेघयुक्त पर्वतके शिखरकी समान वनके बीच दृष्टि आतीहै ॥ ५१ ॥ और यह ब्राह्मण लोग स्वच्छ तीर्थके जलमें स्नान करके अपने लाये हुये फूलोंके समूहसे इष्ट देवताओंकी पूजा कर रहेहैं ॥ ५२ ॥ हे सौम्य ! महर्षि सुतीक्ष्णजीके मुखसे जैसा श्रवण किया था उसीके अनुसार यहांपर सब कुछ देखकर हमको निश्चयही जान पडताहै कि, यही अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रमहै ॥५३॥ जिन महर्षि अगस्त्यजीने सब लोको-का हित करनेकी कामनासे बल सहित साक्षात् मृत्युकी समान दैत्यको मारकर इस दक्षिण दिशाकोभी सबके वसने योग्य कियाहै ॥ ५४ ॥ ऐसा प्रसिद्धहै कि पहले एक समय महा असुर ब्राह्मणोंका घात करनेवाले वातापि और इल्वल नामक दो क्रूर कर्म करनेवाले भाई इकट्ठे इस वनमें वास करतेथे ॥ ५५ ॥ उन दोनोंमेसे नि-र्दयी इल्वल जब श्राद्धका समय आवे तौ ब्राह्मणका वेष धर संस्कृत उच्चारण करके ब्राह्मणोंको निमंत्रण करै ॥ ५६ ॥ जब सब ब्राह्मण आजावें तब अपने भ्राता मेषरूपी वातापिको श्राद्धके कहे अनुष्ठानके अनुसार उत्तम रूपसे रांधकर सब ब्राह्मणोंको भोजन करादेवे ॥ ५७ ॥ तिसके पीछे जब ब्राह्मण भोजन कर चुके इल्वल अति ऊंचे स्वरसे (वातापि ! निकल आओ) यह वचन कहता ॥५८॥ वातापि भ्राताका शब्द सुनकर मेढेकी समान शब्द करता हुआ ब्राह्मणोंके

शरीर फाड २ निकल आता ॥५९॥ यह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मांस भोजी असुर इस प्रकारसे प्रतिदिन परस्पर मिलकर सहस्र २ ब्राह्मणोंकी हत्या करते ॥ ६० ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीने देवताओंकी प्रार्थनाके वश होकर श्राद्धमें उस महा असुर वातापिको भक्षण करलिया, ऐसी बात प्रसिद्धहै ॥ ६१ ॥ जब श्राद्ध पूरा होगया इस प्रकारसे कहके ब्राह्मणोंके हाथ धुलानेके लिये जल देकर "वातापि ! बाहर निकल आओ" यह कहकर इल्वल भ्राताको पुकारने लगा ॥ ६२ ॥ जब इल्वलने बार २ अपने भाईको पुकारा तब यह देखकर मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीने हँसकर विप्रघाती इल्वलसे कहा ॥ ६३ ॥ हमने तुम्हारे मेषरूपी भ्राता वातापिको पचा डाला; वह यमराजके गृहको चला गया सो अब उसको बाहर होनेकी सामर्थ्य कहां ? ॥ ६४ ॥ निशाचर इल्वल भाईके मरनेकी वार्त्ता सुन करके क्रोधयुक्तहो महर्षि अगस्त्यजीके मारनेको तैयार हुआ ॥ ६५ ॥ जैसेही वह मारनेको दौडा कि महर्षिजीने प्रज्वलित अग्निके समान दृष्टिसे एक बार देख दिया, बस देखने मात्रसेही वह भस्म होगया और प्राण त्यागन करदिये॥६६॥ जिन्होंने ब्राह्मणगणोंके ऊपर दयाके वश होकर इस प्रकारका औरके न करने योग्य अनुष्ठान कियाथा उन अगस्त्यजीके महात्मा भाईकाही यह तडागमय शोभित आश्रमहै ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ यह वार्त्ता कहतेही रहे कि इतनेमें भगवान् भास्कर अस्ताचलचूडावलम्बी हुए और संध्या होआई ॥ ६८ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विधिवत् सायंकालकी संध्या समाप्त करके अगस्त्यजीके भाईके आश्रममें प्रवेश किया और अगस्त्यजीके भाईको प्रणाम किया ॥ ६९ ॥ और अगस्त्यजीके भाईनेभी उनका भली भांति शिष्टाचार किया और कंद मूल फल खानेको दिये सो भोजनकर श्रीरामचंद्रजी एक रात्रि वहां पर बसे ॥ ॥ ७० ॥ फिर जब रात बीत गयी और सूर्य नारायण निकल आये तब श्रीरामचंद्रजीने बिदाकी प्रार्थना करते ऋषिसे निवेदन किया ॥७१॥ कि हे भगवन् ! हम आपको प्रणाम करतेहैं हमने यहां बडे सुखसे यह रात्रि बिताई अब इस समय बिदा दीजिये अब आपके बडे भाई गुरुदेव अगस्त्यजीके दर्शन करनेको हमारी अभिलाषा हुईहै ॥ ७२ ॥ यह कहकर ऋषिकी आज्ञा ले उनके आश्रमका वन देखते भालते सुतीक्ष्ण मुनिके बताए हुए आश्रमको जाते हुए ॥ ७३ ॥ जानेके समय वनके मध्यमें शत २ नीवार, पनस, शाल, वञ्जुल, तिनिश, चिरिबिल्व (नक्तमाल) मधूक, वेल ॥ ७४ ॥ तिन्दुक इत्यादि वृक्ष परस्पर फूली फली लताओंसे शोभित

सैकडों हजारों वृक्ष श्रीरामचंद्रजीने देखे ॥ ७५ ॥ अनेक प्रकारके पक्षीगण मतवाले होकर उन वृक्षोंपर गुंजार कर रहेथे कुसुमित शिखर लता और वानर गणोंके निकट रहनेसे वहां अतिशय शोभा होरही, और हाथियोंकी शूंडके आघातसे उन वृक्षोंकी टहनियां टूट फूट रहींथीं ॥ ७६ ॥ यह देखकर राजीवलोचन श्रीरामचंद्रजी अपने पीछे आते हुए निकटवर्ती लक्ष्मीके बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७७ ॥ इन सब वृक्षोंके पत्ते जैसे चिकने दिखाई देतेहैं और मृगगण जैसे शान्तचित्त दृष्टि आतेहैं सो इन सब बातोंसे ज्ञात होताहै कि उन विशुद्धचित्त महर्षि अगस्त्यजीका आश्रम अब अधिक दूर नहींहै ॥ ७८ ॥ जिन्होंने अनेक कर्म द्वारा लोकमें प्रसिद्ध अगस्त्य नाम पाया है, उनही महर्षिजीका थके हुए लोगोंके श्रमका हरनेवाला यह आश्रम दिखाई देताहै ॥ ७९ ॥ यज्ञका धुवाँ वनमें छाय रहाहै वृक्षोंकी डालियोंपर चीर वस्त्र टँग रहेहैं; वैरको छोडे हुए सब मृग इधर उधर घूमरहेहैं । अनेक प्रकारके पक्षी मधुर २ नाद कर रहेहैं ॥ ८० ॥ जिन्होंने मनुष्योंका हित करनेकी कामनासे बल सहित मृत्यु और असुरोंको जीतकर दक्षिण दिशाको सबके वास योग्य कर दियाहै ॥ ८१ ॥ और जिनके प्रभावसे राक्षस लोक त्रासित होकर इस दक्षिण दिशाकी ओर केवल देखते और आते तो हैं. परन्तु किसीको पीडा नहीं दे सकते; उन्हीं पुण्यकर्म करनेवाले महर्षि अगस्त्यजीका यह आश्रमहै ॥ ८२ ॥ उन पवित्र वेत्ता अगस्त्यजीने जबसे इस आश्रममें आकर वास कियाहै तबसे निशाचरलोग वैर छोडकर शान्तचित्तहोगये हैं ॥ ८३ ॥ भगवान् अगस्त्यजीकी यह दक्षिण दिशा आगस्त्यादिक नामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगई है और उनके प्रभावसे क्रूर कर्म करनेवाले निशाचरगणोंके दबजानेसे यह दिशा मुनिलोगोंके वास करने योग्य होगईहै ॥ ८४ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल उनकी आज्ञाका प्रतिपालनही करता हुआ, सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये और निरंतर नहीं बढता ❀ ॥ ८५ ॥ लोकोंके बीचमें विख्यात कर्म करनेवाले दीर्घायु

* एक समय अगस्त्यजीका शिष्य विन्ध्याचलपर्वत सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये अधिकतासे बढने लगा यह देख देवता बहुत भयभीतहो अगस्त्यजीकी शरण जाकर कहने लगे कि, आप अपने शिष्यको इस दुर्घट कार्यके करनेसे निवारण कीजिये तब अगस्त्यजी विन्ध्याचलके निकट गये पर्वतने इन्हें देख कर प्रणाम किया और चरण पकडे २ पूछा गुरु देव ! आज्ञा कीजिये कैसे आगमन हुआ ? अगस्त्यजी बोले जबतक हम लौटकर न आवें तबतक तुम योंही पडे रहो,विन्ध्यने तथास्तु कहा, तबसे अगस्त्यजी दक्षिणदिशामें आकर रहने लगे और फिर उधर न गये विन्ध्याचल गुरुआज्ञासे आजतक लेट रहाहै ॥

महर्षि अगस्त्यजीका विनय युक्त मृगगण सेवितं यही आश्रमहै ॥ ८६ ॥ जबकि हम सर्व लोकोंमें पूजित सदा साधुलोकोंका हित चाहनेवाले साधु चरित्र इन महर्षि अगस्त्यजीके आश्रममें जायँगे, तब वह अवश्यही हमारा मंगल विधान करेंगे ॥ ॥ ८७ ॥ हे शुभदर्शन ! हम इसी आश्रममें रहकर महर्षि अगस्त्यजीकी आराधना करेंगे और वनवासका शेष समय यहीं विता देंगे ॥ ८८ ॥ इस आश्रममें देवता गन्धर्व, तपस्या करके सिद्ध हुए महर्षि लोग निराहार रहकर सदाही अगस्त्यजीकी भलीभांति सेवा किया करते हैं ॥ ८९ ॥ महर्षिअगस्त्यजीका प्रभाव ऐसाहै कि इनके आश्रममें झूंठ बोलनेवाला, शठ, दुष्ट, निर्लज्ज, पापपरायण पुरुष किसी भाँति जीता हुआ नहीं रहसकता ॥ ९० ॥ इस आश्रममें देव, यक्ष, नाग और पक्षी गण धर्मकी आराधना करनेके लिये नियताहारी होकर वास करते हैं ॥ ९१ ॥ महात्मा महर्षि लोग इस आश्रममें सिद्धहो देह त्याग नवीन देह धारणकर सूर्य तुल्य देदीप्यमान विमानमें सवार हो स्वर्गको गयेहैं ॥ ९२ ॥ जो समस्त पवित्र कर्म करनेवाले प्राणीगण इस आश्रममें रहतेहैं वह देवताओंकी उपासना करके देवताओंके प्रसादसे देवत्व, यक्षत्व, और विविध राज्योंको प्राप्त होतेहैं ॥ ९३ ॥ हे सुमित्राकुमार ! हम इस समय उसही आश्रममें आय पहुँचेहैं । तुम पहले प्रवेश करके उन मुनिसे यह निवेदन करदो कि हम सीताके सहित उनके आश्रममें आयेहैं ॥ ९४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

ऐसा जब रामचंद्रजीने कहा, तब उनके छोटे भईया लक्ष्मणजी आश्रममें प्रवेश करकै अगस्त्यजीके शिष्यके समीप पहुँचकर कहने लगे ॥ १ ॥ कि राजा दशरथजीके बडे पुत्र महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी स्त्री सीताजीके साथ महर्षिजीके चरणोंका दर्शन करनेको आयेहैं ॥ २ ॥ और हमारा नाम लक्ष्मणहै, हम उनके हितकारी परमभक्त और उनके अनुकूल चलनेवाले उनके छोटे भाई हैं सो कदाचित् आपने हमारी वार्त्ता सुनीही होगी ॥ ३ ॥ हमने पिताजीकी आज्ञासे अतिभयंकर वनमें प्रवेश कियाहै और अब भगवान् अगस्त्यमुनिके दर्शन करनेकी हमको अभिलाष हुईहै, सो आप उनसे यह वृत्तान्त निवेदन कर दीजिये ॥ ४ ॥

वह तपोधन लक्ष्मणजीके यह वचन श्रवण कर उनसे आपका आना निवेदन करता हूं यह कह कर इस वार्त्ताको महर्षि अगस्त्यजीसे कहनेके निमित्त अग्निगृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ ५ ॥ और वहां पहुँचकर हाथ जोड तपोबलसे प्रदीप्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे रामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहा ॥ ६ ॥ अगस्त्यजीका शिष्य लक्ष्मणजीके वचनके अनुसार कहने लगा कि अयोध्याजीके राजा दशरथ कुमार राम और लक्ष्मण ॥ ७ ॥ आपके आश्रममें अपनी भार्या सहित आयेहैं, वह शत्रुतापन आपकी सेवा करने व देखनेके लिये यहां आयेहैं ॥ ८ ॥ सो इसमें जैसा कर्त्तव्यहो वही आज्ञा आप कीजिये, शिष्यके मुखसे रामचन्द्र व लक्ष्मणजीका आगमन सुन ॥ ९ ॥ और महा भाग्यवती सीताजीकीभी आगमनकी वार्त्ता सुन करकै महर्षि अगस्त्यजी बोले, कि बडे भाग्यकी बातहै बहुत दिनोंपर श्रीरामचंद्रजी हमारे दर्शन करनेको यहां आयेहैं ॥ १० ॥ और मैंनेभी मनसे इनके समागमकी आकांक्षा कीथी तिससे आगे जाकर आदर मान सहित श्रीरामचन्द्रजीको भ्राता और स्त्री सहित ॥ ११ ॥ यहां लिवालाओ और अबतक तुम किस कारणसे उनको यहां नहीं लिवालाये, जब महात्मा धर्मज्ञ अगस्त्यजीने इसप्रकार कहा ॥ १२ ॥ तो शिष्य कर जोडकर जो आज्ञा अभी लिवाये लाताहूं कह और प्रणाम करकै तभी वहांसे बाहर आ आदर सहित लक्ष्मणजीसे बोला ॥ १३ ॥ आपमें राम कौनसेहैं ? वह भगवान् अगस्त्यजीके दर्शन करनेके लिये आवें और स्वयं प्रवेश करे अनन्तर लक्ष्मण उस शिष्यके सहित वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजी थे ॥ १४ ॥ और उस शिष्यको जनककुमारी सीता व श्रीरामचन्द्रजीको दिखादिया, उस शिष्यने बडी नरमाईसे अगस्त्यजीके वचन श्रीरामचंद्रजीसे जाय कहे ॥ १५ ॥ यथा नियम भलीभांति आदर सत्कार करकै श्रीरामचंद्रजीको लक्ष्मण व सीताजीके सहित आश्रममें प्रवेश कराया ॥ १६ ॥ उस आश्रममें प्रवेश करनेके समय श्रीरामचंद्रजीने देखा कि परम शान्तस्वभाव हरिण चारों ओर बैठेहैं, ब्रह्मा, शिव ॥ १७ ॥ विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चंद्र, भग, कुबेर ॥ १८ ॥ धाता, विधाता, पवन, पाशहस्त महात्मा वरुण ॥ १९ ॥ गायत्री, वसु, नागराज वासुकी आदि सर्प, गरुड ॥ ॥ २० ॥ कार्तिकेय और धर्म, इन सबकी पूजाके निमित्त अलग २ स्थान बने हुए एक २ करके श्रीरामचंद्रजीने देखे मुनिअगस्त्यजीभी अपने शिष्योंके संग होम शालामेंसे निकले ॥ २१ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी सब तपस्वियोंमें बडे तेजवान्

अगस्त्यजीको सामनेसे आते देखकर लक्षण युक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २२ ॥ हेलक्ष्मण ! भगवान् अगस्त्यजी ऋषि कुटीसे बाहर निकलतेहैं इस समय हम उदारता युक्त होकर उन तपःप्रकाशित ऋषिवरके निकट गमन करेंगे ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी कुटीसे बाहर आयेहुए सूर्यके समान तेजवान महर्षि अगस्त्यजीके चरण छूकर प्रणाम करते हुए ॥ २४ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजीके सहित ऋषिजीके चरणोंकी वंदना करके करजोड उनके आगे खडे रहे ॥ २५ ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीने आदरसहित रामचन्द्रजीको ग्रहण किया चरण पखारनेके लिये जल मँगवा दिया, आसन देकर बैठनेकी अनुमति दी फिर कुशल प्रश्न किया ॥ २६ ॥ तिसके पीछे अगस्त्यजीने अग्निमें आहुति देकर उन आये हुए पाहुनोंको अर्घ्य दिया, और वानप्रस्थ धर्मके अनुसार आहार करनेकी सामग्री दी ॥ २७ ॥ अनन्तर धर्मके जाननेवाले महर्षि अगस्त्यजी प्रथम स्वयं बैठ पीछे कर जोडकर बैठेहुए धर्मपंडित श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तपस्वी यदि पाहुनेका सत्कार न करकै उसके प्रति और कोई अन्यथा आचरण करै तो वह झूठी गवाही देनेवाले मनुष्यकी समान परलोकमें अपना मांस भक्षण करताहै ॥ २९ ॥ फिर आप तो महारथी और सब लोकोंके धर्मचारी राजाहैं तिसपर आपने प्रिय अतिथिकी भांति हमारे आश्रममें आगमन कियाहै । अतएव आपकी पूजा और सन्मान करना हमारा सब भांतिसे कर्त्तव्यहै ॥ ३० ॥ यह कहकर महर्षिजी फल, मूल, पुष्प, व औरभी उत्तम २ वनके पदार्थोंसे यथाभिलषित भांतिसे रामचंद्रजीकी पूजा करकै फिर कहने लगे ॥ ॥ ३१ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! हमको यह विश्वकर्माका बनाया हुआ, स्वर्ण और वज्र मणिसे विभूषित दिव्य और बडा वैष्णव चाप ॥ ३२ ॥ और सूर्यके समान प्रभावसम्पन्न उत्तम बाण यह दोनों चीजें हमें ब्रह्माजीने दीहैं और इन्द्रजीने दो तरकस जिनके बाण कभी नहीं निवडते हमको दियेहैं ॥ ३३ ॥ तीखे बाणोंसे परिपूर्ण और अग्निके समान चमकते हुए यह उत्तम दो तरकस और यह स्वर्णमय कोशबद्ध खड्ग इन्द्रजीने हमको दियाहै ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! पहले भगवान् विष्णुजीने इस वैष्णव धनुकी सहायतासे युद्धमें महाबली छली असुरोंको संहार करके देवताओंको दीप्तिमती लक्ष्मी प्रदान कीथी ॥ ३५ ॥ हेमानद ! वज्रधर इन्द्रजी जिसप्रकार वज्र धारण करतेहैं, तुमभी तैसेही पवित्रयश

प्राप्त करनेके अर्थ यह शर चाप खड्ग और दो तरकस ग्रहण करो ॥ ३६ ॥ महा-तेजस्वी भगवान् महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कहकर महापण्डित प्रवीण रामचन्द्रजीको वह समस्त अतिश्रेष्ठ वैष्णव आयुध देकर फिर बोले ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

हे श्रीरामचंद्र ! तुम जो सीतासहित हमको प्रणाम करने आये हो इससे हम तुम्हारे और लक्ष्मणके प्रति बहुतही प्रसन्न हुए हैं, तुम्हारा मंगल होवे ॥ १ ॥ यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि, मार्ग चलनेकी थकावटसे तुमको महाकष्ट हुआ है। जनककुमारी सुकुमारी जानकीजीभी विश्राम करना चाहती हैं ॥ २ ॥ यह बडी ही सुकुमार हैं, इन्होंने भला कभी काहेकोही कष्ट सहा होगा परन्तु पतिसे स्नेहके कारण इस बडे कष्ट देनेवाले वनमें यह आई है ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जानकीजीका मन जिसमें प्रसन्न रहे वही तुमको करना चाहिये, क्योंकि तुम्हारे साथ २ वनको आकर इन्होंने बडा दुष्कर कार्य कियाहै ॥ ४ ॥ हे रघुनन्दन ! जबसे स्वयंभूकी उत्पत्ति हुई है तबसे स्त्रियोंका स्वभावही ऐसा है कि, धनवान् पुरुषको ग्रहण करती और दारिद्रको त्याग करती हैं ॥ ५ ॥ स्त्रियें बिजलीकी चपलता, अस्त्रोंकी तीक्ष्णता, गरुड और पवनकी शीघ्रताका अनुकरण करती हैं ॥ ६ ॥ परन्तु इन तुम्हारी भार्या जानकीजीमें इन सबमेंसे कोई दोष भी नहीं है । यह देवताओंके बीचमें अरुन्धतीकी समान प्रशंसनीय और कीर्तिवती है ॥ ७ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! तुम सुमित्राकुमार और सीताजीके साथ जिस देशमें वास करोगे वही देश शोभायमान हो जायगा ॥ ८ ॥ जब ऋषिने इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड विनीत वचनसे अग्निके समान तेजस्वी उन महर्षि अगस्त्यजीसे कहा ॥ ॥ ९ ॥ हे मुनिवर ! हमारे, हमारी भार्याके, और हमारे भ्राताके गुणोंसे जो आप प्रसन्न हुएहैं इससे मैं धन्य और अनुग्रह भाजन हुआ ॥ १० ॥ तिससे आज्ञा कीजिये कि, ऐसा कोई स्थान है जहां वनभी बडा हो और जलभी सरलतासे प्राप्त होजाया करे और वहां हम कुटी बनाकर स्वच्छन्दतासे वास करसकैं ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके धर्मात्मा मुनिवर मुहूर्त भरतक चिंता करकै शुभ वचन बोले ॥ १२ ॥ हे वत्स ! इस स्थानसे

आठ कोशके अन्तरपर पंचवटी नामक विख्यात एक अति सुन्दर स्थान है इस स्थानमें फल, मूल और जल बहुतायतसे मिलताहै और अनेक प्रकारके पशुभी वहां वास करते हैं॥ १३॥तुम लक्ष्मणजीके साथ वहां जाओ और आश्रम बनाकर पिता दशरथजीका सत्य पालन करते हुए सुखसे वास करो ॥ १४ ॥ हे पापरहित ! हम स्नेहके वश होनेके कारण तपके प्रभावसे तुम्हारा और दशरथजीका समस्त वृत्तान्त जानते हैं कारण, दशरथजीका हमसे बडा स्नेहथा नहीं तो ऐसे वृत्तान्त जाननेकी क्या आवश्यकता थी ॥ १५ ॥ और हम तपके प्रभावसे यहभी जानते हैं कि, आपके मनमें क्या है जो कि यह प्रतिज्ञा करकै हमारे निकट आप वसैंगे, और फिर अब वासस्थानकी वार्ता क्यों पूछते हैं ? अर्थात् हमारे निकट राक्षस नहीं आसक्ते आप उनका मारना चाहते हैं इसकारण आप यहां रहना नहीं चाहते ॥ १६ ॥ इसही कारण हम कहते हैं कि, तुम पंचवटीको चले जाओ, वह बनैला देश अति रमणीय है वहा सीताके मनकोभी सन्तोष होगा ॥ १७ ॥ पंचवटी बडाई करनेके योग्य है, और बहुत दूरभी नहीं है, इस गोदावरीके निकटही है मिथिलेशदुलारी वहांपर प्रसन्न होकर रहैंगी ॥ ॥ १८॥ हे महाबाहो ! वह बहुत फल मूल करकै युक्त अनेक भांतिके विहंगमोंसे परिपूर्ण पुण्यमय और निर्जन देश अतिरमणीय है ॥ १९ ॥ तुमभी सदाचारी और रक्षाकार्य करनेमें समर्थ हो उस स्थानमें वास करकै तपस्वीलोगोंका पालन भली प्रकार कर सकोगे ॥ २० ॥ हे वीर ! यह जो जो महुयेके वृक्षोंका महावन दिखलाई देताहै उसके उत्तर ओर होकर तुमको जाना होगा, फिर उसके पीछे तुमको न्यग्रोध वृक्षोंकावन प्राप्त होगा ॥२१॥ तिसके पीछे विशेष स्थानपर पहुँचनेसे तुमको एकपर्वत दिखाई देगा, उस पर्वतके कुछ दूरही विख्यात पंचवटीका वन है वह सदाही फूला फला रहता है ॥२२॥ श्रीअगस्त्यजीके ऐसे वचन श्रवण करकै श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित सत्यवादी ऋषिका भली भाँति आदर सत्कार करके उनसे बिदा माँगतेहुए ॥ २३ ॥ अगस्त्यजीकी आज्ञा पाकर दोनोंजन उनके चरणोंकी वन्दना करकै सीताजीके साथ पंचवटी आश्रमके लिये चले ॥ २४ ॥ समरमें न डरनेवाले दोनों नृपकुमार धनुष धारण कर और तरकस बांधकर महर्षि अगस्त्यजीने जो मार्ग बता दियाथा अतिसावधानीसे उस मार्गके द्वारा पंचवटीकी यात्रा करते हुए ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आरण्यकांडे भाषायां त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

अनन्तर श्रीरामचंद्रजीने पंचवटीके मार्गमें जाते २ एक भयानक पराक्रमवान् महाशरीरवाले गीधको देखा ॥ १ ॥ महाभाग श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी वनमें इस पक्षीको देख राक्षस समझकर उससे पूछने लगे कि, तुम कौनहो ? ॥ २ ॥ गीध मधुर और प्यारे वचनोंसे उनको प्रसन्न करकै बोला, कि–हेवत्स ! तुम हमको अपने पिताका मित्र समझो ॥ ३ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने उसको पिताका मित्र जानकर पूजा करते हुए प्रेमभावसे उसका कुल और नाम पूँछा ॥ ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर गीध सब जीवोंकी उत्पत्तिके वर्णनका प्रसंग वर्णन करकै अपना कुल और नाम कहने लगा ॥ ५ ॥ हे महाबाहो ! हे राघव ! पूर्वकालमें जो कि, प्रजापति हुएथे, हम क्रमशः उन सबका नाम बतलाते हैं आप श्रवण कीजिये ॥ ६ ॥ कर्दम उन सबमें बडेथे उनके पीछे विकृत, शेष, संश्रय, वीर्यवान्, बहुपुत्र ॥ ७ ॥ स्थाणु, मरीचि, अत्रि, महाबलवान् क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह ॥ ८ ॥ दक्ष, विवस्वान, अरिष्टनेमि यह क्रमसे उत्पन्न हुए महात्मा कश्यप उन सबमें छोटेथे ॥ ९ ॥ हे महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी ! उनमें दक्षप्रजापतिके यशस्विनी लोकमें विख्यात साठ ६० कन्यायें उत्पन्न हुईं ॥ १० ॥ उनमें अति सुन्दरी आठ कन्याओंका कश्यपजी विवाह करते हुए । उनके नाम अदिति, दिति, दनु, कालका ॥ ११ ॥ ताम्रा, क्रोधवशा, मनु व अनला; विवाह होजानेपर प्रसन्नहो कश्यपजी इन दक्षकन्याओंसे बोले ॥ १२ ॥ कि, तुम हमारी समान त्रिलोकीका भरण पोषण करनेवाले पुत्र उत्पन्न करो यह सुन दिति अदिति दनु ॥ १३ ॥ और कालका यह तो वैसे पुत्र प्राप्त करनेके लिये अभिलाषिनी हुईं और शेष चारोंने पतिके कहनेमें ध्यान न लगाया अदितिके तेंतीस ३३ देवता हुए ॥ १४ ॥ अदितिके गर्भमें १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र २ अश्विनीकुमार उपजे । और दितिने भी बडे यशस्वी दैत्य उत्पन्न किये ॥ १५ ॥ पहले वन और समुद्रसहित यह पृथ्वी उनहीकी थी । हे अरिन्दम ! दनुने अश्वग्रीव नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ और कालकाने नरक और कालक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये क्रौञ्ची, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री और शुकी ॥ १७ ॥ ताम्रासे यह लोकविख्यात पांच कन्या जन्मी उसमें क्रौञ्चीसे उलूक पैदा हुए भासीसे भास जन्मे ॥ १८ ॥ श्येनीने अति तेजस्वी श्येन और गीधोंको प्रसव किया और धृतराष्ट्री

से सब हंस ॥ १९ ॥ और चकवा चकवियोंको भी उसीने उत्पन्न किया शुकी के नता कन्या हुई और नताके विनता उत्पन्न हुई ॥ २० ॥ हे राम! क्रोधवशाके दश कन्या उत्पन्न हुईं उनके नाम यहहैं यथा—मृगी, मृग, मंदा, हरी, भद्रमदा॥ २१॥ मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा, कद्रुका यह सब कन्यायें शुभ लक्षण सम्पन्न थीं ॥ २२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! समस्त मृग मृगीसे उत्पन्न हुए और काले व सफेद रीछ सृमर चमरी आदि मृग मन्दाके जन्मे ॥ २३ ॥ भद्रमदाने इरावती नामक कन्या प्रसव की उसका पुत्र लोकपाल महागज ऐरावत हुआ ॥ २४ ॥ सिंह वानर और गोपुच्छगण हरीके उत्पन्न हुए शार्दूलीने व्याघ्रोंको प्रसव किया ॥ ॥ २५ ॥ हे पुरुषवर श्रीरामचंद्रजी ! सब हाथी मातङ्गीके पुत्र हुए । श्वेताने दिग्गजोंको उत्पन्न किया ॥ २६ ॥ सुरभीके दो कन्या हुईं, यशस्विनी—रोहिणी और गन्धर्वी ॥ २७ ॥ रोहिणीने गौ बैल आदिकोंको और गन्धर्वीने अश्वोंको प्रसव किया, हे राम ! सुरसाने नागोंको प्रसव किया, और कद्रूके सर्प उत्पन्न हुए॥ ॥ २८ ॥ महात्मा कश्यपजीकी दूसरी स्त्री मनुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह सब मनुष्य जन्मे ॥ २९ ॥ सो ऐसी कहावत चली आतीहै कि, मुखसे ब्राह्मण वक्षःस्थलसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य, और चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ३० ॥ अनलाने परम श्रेष्ठ फलयुक्त वृक्ष जने, विनता शुकीकी पौत्री, और कद्रू सुरसाकी कन्या बहन हुई ॥ ३१ ॥ उनमें कद्रूने सहस्रों नागपुत्र उत्पन्न किये यही सब पृथ्वीको धारण किये हुएहैं और विनताके दो पुत्र गरुड व अरुण हुए ॥ ३२ ॥ हम तिनही गरुडजीसे उत्पन्न हुएहैं, सम्पाति हमारे बडे भाईहैं ! हे अरिनाशक ! हमारा नाम जटायु व हमारी माताका नाम श्येनी जानिये ॥ ३३ ॥ हे तात ! यदि इच्छा होवे तौ हम तुम्हारी वनमें वसनेके समय सहायता करैं और जब तुम लक्ष्मणजीके सहित कहीं वनमें कंद, मूल, फल लेने जाया करोगे तो हम सीताजीकी रक्षा किया करेंगे ॥ ३४ ॥ रामचंद्रजी प्रफुल्लतासे जटायुको भेंट और उसकी पूजाकर उसको प्रणाम करते हुए, और पिताजीके साथ जो मित्रता उसकी थी सो उसे जटायुके मुखसे वारंवार श्रवण करने लगे ॥ ३५॥ फिर वह बलवान् जटायुके हाथमें सीताजीकी रक्षाका भार सौंपकर उसको साथले लक्ष्मणजीके सहित शत्रुओंको जलाते वनकी रक्षा करनेके लिये सुप्रसिद्ध पंचवटीमें गमन करते हुए ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० आरण्यकांडे भाषायां चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः १५.

तिसके पीछे यह अनेक प्रकारके सर्प और पशुयुक्त पंचवटीमें गमन करकै तेजसे प्रकाशमान भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य ! महर्षि अगस्त्यजीने जिसको बतायाथा अब हम उसी सदा फूले फले वन करकै शोभायमान पंचवटीमें आगयेहैं ॥२॥ आश्रम बनानेके योग्य स्थान निर्णय करनेमें तुम भलीभाँति चतुरहो तिससे इस काननके चारों ओर दृष्टि डालिये कि,कौनसे स्थानमें हमारे मनमाना आश्रम बनसकताहै ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! जिस स्थानमें तुम हम और जानकीजी विशेषप्रसन्नता सहित रह सकें और जलभी जहां निकटही हो ऐसे स्थानको तुम खोजो ॥ ४ ॥ जिस जगह वन आर जल दोनोंही रमणीय और पावनहों व ईंधन, पुष्प, कुश, जल जहां निकटही पाया जावे ऐसा स्थान देखो ॥५॥ श्रीरामचन्द्रजीने जब इसप्रकार कहा तब लक्ष्मणजीने कर जोडकर सीताजीके सामने रामचन्द्रजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भाई साहब ! हम आपके विद्यमान रहते सैकडों वर्षतकभी स्वाधीन नहीं हैं न कुछ विचारही सकतेहैं और हमारा विचार ठीक भी नहीं है तिससे अब आप स्वयंही मनोहर स्थान देख भाल हमको वहां आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ७ ॥ महाद्युतिमान् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन परम प्रसन्न हो विचारकरकै सर्व गुणों करके युक्त एक मनोहर स्थान खोज लेते हुए ॥ ८ ॥ यह स्थान सब भांतिसे मनोहर और आश्रम बनानेके योग्य था वहां श्रीरामचन्द्रजी पदार्पण कर अपने हाथसे लक्ष्मणजीका हाथ पकडकर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान परम श्रीसम्पन्न भूमि यहांकी बराबर है और फूले हुए वृक्षोंसे घिराहुआ है तिससे तुम इस स्थानमें चित्तानुसार पर्णकुटी बनाओ ॥ १० ॥ सूर्यके समान उज्ज्वल चित्त प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि जिनमें आरही हैं ऐसे कमलके फूलोंके सहित यह पुष्करणी यहांसे निकटही बहरही है ॥ ११ ॥ विद्वात्मा महर्षि अगस्त्यजीने जिसप्रकार कहा था यह देखो वैसेही फुलाने वृक्षोंसे शोभित गोदावरी दृष्टि आती है ॥ १२ ॥ वहां हंस और कारंडव बोल रहे हैं चकवा चकवी पक्षियोंसे शोभायान यह नदी न यहांसे बडी दूर है न बहुत निकटही है मृगोंके यूथके यूथ जहां घूम रहे हैं ॥ १३ ॥ खिले हुये वृक्षोंसे शोभित मोर गण जहां नाद कररहे हैं बहुत गुफा जिनमें विद्यमान परम मनोहर देखनेमें दिव्य बडे २ ऊंचे यह सब पहाड दिखाई देते हैं ॥ १४ ॥ उन सब पहाडोंके स्थान २ सुवर्ण चांदी और ताम्र वर्णकी विचित्र रचनासे सजेहुए हाथियोंके समान शोभा पा रहे हैं ॥ १५ ॥

साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, निवार, निमिश, पुन्नागसे शोभित ॥ १६ ॥ आम, अशोक, तिलक, केतकी और चंपा आदि पुष्प, गुल्म, लता इत्यादि वृक्षोंसे शोभायमान ॥ १७ ॥ स्यन्दन, चन्दन, कदंब, लुचकुच, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, ढाक और पटल इन तरुवरोंसे भी घिरे हुए हैं ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! यह स्थान अतिशय पवित्र, अतिशय मनोहर, अनेक प्रकारके मृग, और पक्षियोंसे परिपूर्ण है; सो जटायुके सहित इस स्थानपर हम वास करेंगे ॥ १९ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब श्रीलक्ष्मणजीने बहुत शीघ्र रामचन्द्रजीके रहनेके लिये परम श्रेष्ठ एक स्थान बनाया ॥ २० ॥ उसमें बडी भारी पर्णशाला बनाई भीतें मिट्टीसे उठादीं सुन्दर खंभ गाड दिये, ऊपर लंबे २ बांस धरे ॥ २१ ॥ उन तिरछे बासोंपर शमीकी डालियें काट २ कर छादीं फिर उन शाखाओंको रस्सियोंसे अति दृढता सहित बांध दिया, कुश, कांश, और शर पत्रसे भलीभांति उसका छाकर बराबर करदिया ॥ २२ ॥ तिसपर शमीकी डालियोंकी बत्तियें छा कसकर बांधदी, ऐसा मनोहर स्थान लक्ष्मणजीने श्रीरामचंद्रजीके रहने के लिये बनाया ॥ २३ ॥ जब स्थान बन चुका तो श्रीमान् लक्ष्मणजी गोदावरी नदीमें नहाकर वहांसे कमलके फूल और अनेक फल लेकर आश्रमको लौटे॥२४॥ फिर लक्ष्मणजीने फूलोंसे यथाविधि वास्तुशान्ति करके उस कुटीको पवित्रकर श्रीरामचंद्रजीको दिखाया ॥२५॥ श्रीरघुनंदन रामचन्द्रजी सीताके सहित लक्ष्मणजीकी बनाई वह शुभदर्शन कुटी देखकर परमप्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ और बहुतही हर्षमें भरकर दोनों बाँहोंसे लक्ष्मणजीको स्नेह सहित अपनी छातीसे लगा लिया और बडे मनोहर प्रेमसने वचन बोले ॥ २७ ॥ हे कार्यकरनेमें चतुर ! हम तुम पर बहुतही प्रसन्न हुए हैं तुमने यह बडा भारी कार्य किया सो इस कार्यका तुमको पुरस्कार देना चाहिये अतएव इसके बदलेहीमें हमने तुमसे भेटकी ॥२८॥ हे लक्ष्मणजी ! तुम्हारी समान विचारवान् सबका भाव जाननेवाले, उपकार माननेवाले, और धर्मके जाननेवाले पुत्रके रहते राजा दशरथजीकी मृत्यु नहीं हुई ॥ २९ ॥ लक्ष्मीके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे ऐसा कहकर परम सुख भोगमय बहुत फल युक्त उस आश्रमपदमें वास करने लगे ॥ ३० ॥ वह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण करकै सेवित होनेपर देवलोकमें देवताकी समान वहां कुछ दिन वास करते हुए ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

महात्मा रामचन्द्रजीके वहां सुखसे वास करते २ शरत्काल बीता और सबका प्यारा हेमन्त समय आया ॥ १ ॥ एक समय रात्रि बीतकर प्रभात हुआ तो उस समय श्रीरामचन्द्रजी स्नान करनेके लिये रमणीक गोदावरी नदीपर जाते हुए ॥ २॥ वीर्यवान् भ्राता लक्ष्मणजी सीताजीकेसाथ जलका कलश हाथमें लेकर उनके पीछे २ चलते हुए नम्रता से बोले ॥ ३ ॥ हे प्रिय बोलनेवाले ! जो इस समय आपको प्याराहै, यह वही हेमन्तकाल उपस्थित हुआहै । इस हेमन्तके समागमसेही शुभ संवत्सर मानो सजकरही मनोहर हुआहै ॥ ४ ॥ शरदीके प्रभावसे सबही लोगोंके शरीर रूखे होगये, और पृथ्वी अनाजोंसे भरपूर होरहीहै और अग्निही इस समय लोगोंको प्रिय लगतीहै शरदीसे पानी नहीं छुआ जाता ॥ ५ ॥ इस समय मनुष्य गण नये अनाजसे देवता और पितरोंकी विशेष भांतिसे पूजा करके नवशस्य निमित्त यज्ञ करते हुए निष्पाप हुए हैं ॥ ६ ॥ इस समय सब देशोंमें काम्यवस्तु, दहि, दूध, गोरस आदि बहुत प्राप्त होताहै, इस समय विजयकी इच्छा किये हुए राजा लोग देशोंमें घूमनेके लिये यात्रा करतेहैं ॥ ७ ॥ दक्षिण दिशामें सूर्य भगवान्का अधिक अनुराग होनेसे उत्तर दिशा तिलकहीन स्त्रीकी नांई शोभारहित होगईहै ॥ ८ ॥ एक तो हिमालयपर स्वभावसेही बहुत पाला पडताहै तिसपर अब सूर्य भगवान् उससे बहुत दूर होगयेहैं; तिससे हिमतानका हिमालय (पालेका घर) नाम ठीक २ हो-रहाहै ॥ ९ ॥ इस समय दुपहरियामें घूमना अच्छा लगताहै धूप लगनेसे सुख होताहै, इस समय सूर्य सबके सुख देनेवाले, और छाया तथा जल एकवारही नहीं सेवन किया जाता ॥ १० ॥ अब सूर्य नारायणका वह पहलासा तेज नहींहै कुहरा पडने व पवन चलनेसे जाडा बहुतही अधिक पडताहै तिस जाडेके पडनेसे जीवमात्रही जडीभूत होगये, तिससे सबही वन सूनेसे जान पडतेहैं प्रभातकाल हिमग्रस्त होकर प्रकाशित होताहै ॥ ११ ॥ पुष्य नक्षत्र युक्त इस पुष्यमासमें और पाला पडती हुई धूसर वर्ण इन दिनोंको रात्रिमें विना छाये हुए स्थानमें नहीं सोया जाता अब रात्रियों में शीत अधिक पडता है ॥ १२ ॥ जिसप्रकार श्वासकी वाफ लगनेसे दर्पण अंधासा होजाताहै, वैसेही सुखसेव्यतादि सबही सौभाग्य इस समय सूर्यसे दबजाने और बर्फके द्वारा किरणोंके ढक जाने और धूसरवर्ण होजा-नेसे चंद्रमाकाभी अब प्रकाश नहीं है ॥ १३ ॥ तुषार करकै मलीन होनेसे चां-

दनी अब पूर्णमासीकी रात्रिमेंभी नहीं खिलती केवल दीखतीहै जैसे सीताजी धूमके लगनेसे श्याम होगईहैं और शोभित नहीं होतीं ॥१४॥ स्वभावतः शीतलता युक्त पछादिया पवन अब हिमसे आवृत और उससे मिलकर दूना शीतलहो चलरहा है ॥ १५ ॥ यव और गेहुओं करके पूर्ण ओस जिनमें पडीहुई ऐसे समस्त वन सूर्यके उदय होनेपर शब्द करते हुए सारस और क्रौञ्चादिक पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा विस्तार करतेहैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके वर्णवाले शालि समूह खजूरके फूलकी समान तन्दुल भरीहुई बालोंके लगनेसे कुछ एक झुके हुए विराजरहेहैं ॥ १७ ॥ सूर्य आकाशमें ऊँचे उठकर चन्द्रमाकी समान शीतल अल्प प्रकाशमय दृष्टि आतेहैं क्योंकि इधर उधर फैलीं हुई उनकी किरणें पालेसे ढक रहीहैं ॥ १८ ॥ धूपका तेज सबेरे २ तो कछ होताही नहीं दुपहर को कुछ एक सुखका देनेवाला होता है और उसी समय वर्ण कछ पीला पडजानेसे पृथ्वीमें शोभित होता है ॥ १९ ॥ प्रभातमें ओसकी बूंदोंके गिरनेसे हरी २ घास गीली होरहीहै उस घासपर सूर्यकी किरणैं पडनेसे वन भूमिकी सीमा नहीं रहती ॥२०॥ वनैला हाथी अधिक प्यासा होनेपरभी शीतल जल छूतेही उसी समय शूंड खैंच लेताहै ॥ २१ ॥ डरपोक आदमी जिस प्रकार युद्धमें नहीं जाते, वैसेही यह जलचर पक्षीगण जलके समीप बैठे रह करभी किसी प्रकारसे जलमें डुबकी नहीं मारते ॥ २२ ॥ प्रसून शून्य वनश्रेणी रात्रिमें ओस और अंधकारसे ढकजाने, और प्रभातको कुहरके अंधेरेसे छिप जानेपर ऐसी लगतीहै मानो सोय रहीहै ॥ २३ ॥ अब समस्त नदियें बाफसे ढकी हुईहैं, और उनके तीरका रेतभी पालेके पडनेसे गीला होरहा है, और शब्द करतेहुए सारसोंके घूमनेसे सब नदियें बहुतही शोभायुक्त हुईहैं ॥ ॥ २४ ॥ बर्फके गिरने और सूर्यका तेज मंद होनेसे, शीतके वशहो पर्वतोंके अग्रभागका जलभी प्रायः स्वादिष्ट होगयाहै ॥ २५ ॥ अब जराके वश होजानेसे पत्तोंके गिरजाने और पंखडियोंके टूट जाने व हिमग्रस्त होजानेसे कमल फूलमें केवल डंडी मात्र रह गईहै अब कमलाकर सरोवर शोभा नहीं पाते ॥ २६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस दारुण हेमन्त कालमें धर्मात्मा भरतजी आपकी भक्तिके वशहो नगरमें रहकरभी दुःखका बोझ सहन करते हुए तपस्या करते होंगे ॥ २७ ॥ और राज्य मान और अनेक प्रकारके राज्योचित सुख छोडकर नियत समयपर आहार करके तपस्वी हो शीतल पृथ्वीपर शयन करते होंगे ॥ २८ ॥ वह निश्चय प्रति दिन इस समय निरालस्यहो मंत्री आदिकोंके साथ सरयू नदीमें नहानेके लिये जाते होंगे ॥

॥ २९ ॥ भरतजी स्वभावसेही सुकुमारहैं और परम सुखसे पलकर इतने बडे हुए हैं। सो अब वह किस प्रकारसे पाला पडते हुये प्रभात कालमें सरयूके जलसे स्नान करते होंगे ? ॥ ३० ॥ आर्य ! वह कमलनेत्र, श्यामवर्ण, बडाई करके युक्त शोभावान्, सूक्ष्मोदर, धर्मज्ञ, सत्यवादी, श्रीमान्, परस्त्रीविमुख, जितेन्द्रिय ॥ ३१ ॥ प्रिय वचन बोलनेवाले शत्रुओंका दमन करनेवाले लंबी भुजाओंवाले लज्जाशील श्रीमान् भरतजी सब सुख भोगको जलांजलि देकर अंतःकरणसे आपकोही आश्रय किये हुएहैं ॥ ३२ ॥ हे वनवासिन् ! यद्यपि आपके भ्राता महात्मा भरतजी तापस धर्मका आश्रय करके वनवासी नहीं हुएहैं तथापि उन्होंने आपके अनुरूप कार्यकर स्वर्गको जीत लियाहै ॥ ३३ ॥ जगतमें जो यह कहावत चली आती है कि, मनुष्यों में पिताका भाव नहीं आता बरन् माताहीका स्वभाव आताहै सो भरतजीने इस कहावतके विरुद्ध कर दिखवाया क्योंकि उनमें कैकेयीका स्वभाव नहीं है ॥ ३४ ॥ परन्तु श्रीराजाधिराज महाराज दशरथजी जिसके स्वामी और साधु भरतजी जिसके पुत्र वह जननी कैकेयी किस प्रकारसे ऐसी क्रूर बुद्धिवाली हुई ? ॥ ३५ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीने जब भाईके स्नेहके वश हो इस प्रकार कहा तब श्रीरामचंद्रजी माता कैकेयीकी वह निन्दा न सहतेहुए कहने लगे ॥ ३६ ॥ हे भइया ! मँझली माता कैकेयीकी निन्दा मत करो, तुम केवल इक्ष्वाकुनाथ भरतजीकेही गुणगणोंका बखान करो ॥ ३७ ॥ यद्यपि हमारी बुद्धि एक मात्र वनवासमें निश्चित और दृढव्रत हुईहै, तथापि भरतजीके स्नेहके वश होकर बावरीसी होगईहै ॥ ३८ ॥ भरतजीकी प्रिय मधुर हृदयको अमृतकी नांई सिंचन करनेवाली मनको आह्लाद देनेवाली वार्त्ता बार २ हमारे मनमें स्मरण हो रही है ॥ ३९ ॥ नहीं जानते कि, कितने दिनोंमें फिर महात्मा भरतजी और शत्रुघ्नजीसे तुम्हारे सहित हम मिलेंगे ॥ ४० ॥ रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारसे विलाप करते २ भ्राता लक्ष्मण और सीताके सहित गोदावरी नदीपर पहुँचकर स्नान करते हुए ॥ ४१ ॥ फिर सबने गोदावरीके जलसे पितृगणोंको देवतोंको तर्पण करके उदित सूर्य व और दूसरे देवताओंका स्तोत्र किया ॥ ४२ ॥ भगवान् भूतनाथ पार्वती और नंदीके सहित स्नान करके जिस प्रकारसे शोभाको प्राप्त होते हैं सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित नहाकर श्रीरामचन्द्रजीने भी वैसेही शोभा धारण की ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे० भाषायां षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७.

श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी, व लक्ष्मणजी तीनों जन स्नान करके गोदावरीके तीरसे आश्रमको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीने आश्रममें पहुँच कर लक्ष्मणजीके साथ प्रथम कालकी सब क्रिया कर पर्णशालामें प्रवेश किया ॥ २ ॥ और महर्षि लोगोंसे पूजे जाकर वहां सुखसे वास करने लगे, उस काल सीताजीके सहित पर्ण-शालामें आसीन होनेसे ॥ ३ ॥ महाबाहु रामचन्द्रजी; चित्रा नक्षत्र युक्त चन्द्रमा-की समान शोभा पाने लगे। तिसके पीछे भ्राता लक्ष्मणजीके सहित रामचन्द्रजीने अनेक प्रकारकी कथा वार्त्ता आरंभ करदी ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे बैठे रहकर कथा वार्त्ता कहनेमें लगे हुये हैं कि, इतनेहीमें कोई राक्षसी अपनी इच्छासे घूमतीहुई वहां आई ॥ ५ ॥ यह राक्षसी दशवदन रावणकी बहन थी नाम इसका शूर्पणखा था वह देवताओंकी समान रामचन्द्रजीके निकट आकर उनको देखती हुई ॥ ६ ॥ उसने देखा कि, रामचन्द्रजीका वदन प्रदीप्तमान है, बाहें घुटनोंतक आती हैं दोनों नेत्र कमलदलकी समान बडे हैं, चाल हाथीकी समान है शिरपर जटा धारण किये हुये हैं ॥ ७ ॥ अंग प्रत्यंग अति कोमल हैं, बल विक्रम अपार है ! शरीर राज-लक्षणों करकै युक्त है ! वर्ण नीले कमलकी समान श्यामता लिये हुये, हैं कोटि मदनकी समान सुन्दर हैं ॥८॥ इसप्रकार साक्षात् इन्द्रकी समान श्रीरामचन्द्रजीको देखकर राक्षसी कामसे मोहित हुई । श्रीरामचन्द्रजीका वदन मण्डल श्रेष्ठ था। राक्षसीका मुख खराबथा रामचन्द्रजीका मध्य देश गोलाकार व राक्षसीका उदर अति बृहत् था ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके दोनों नेत्र अति विशाल व राक्षसीकी आंखें अति बुरी थीं, रामचन्द्रके अति श्रेष्ठ घूंघरवाले बाल थे और राक्षसीके केश ताम्रवर्ण थे ! श्रीरामचन्द्रजी प्रिय रूपवान् और राक्षसी महाभयानक रूपथी श्रीरामचन्द्रजीका अति मधुर स्वरथा और राक्षसीका स्वर नितान्त कर्कश भीषण और भयंकर था ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रजी युवा थे, व राक्षसी महावृद्धा थी, श्रीरामचन्द्रजी अति मधुर वचन बोलनेवाले, व राक्षसी अत्यन्त कर्कशभाषिणीथी, श्रीरामचन्द्रजी न्याय वृत्त, और राक्षसी दुर्वृत्तथी श्रीरामचन्द्रजी देखनेमें जैसे प्यारे थे ! वह राक्षसी, देखनेमें वैसीही कुप्यारी थी ॥ ॥ ११ ॥ ऐसी शूर्पणखा महाकामातुर होकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोली कि, तुम जटा रखाये तपस्वीका वेश धारे धनुष बाण लिये स्त्री सहित ॥ १२ ॥ किस कारणसे

राक्षसोंसे सेवित दिशामें आयेहो तुम्हारे यहांपर आनेका क्या प्रयोजन है ? सो यथार्थ कहो ॥ १३ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी राक्षसी शूर्पणखाकी यह वार्ता सुनकर सरलता सहित कुछ न छिपाते हुए सब वर्णन करनेलगे॥ १४॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि, देवताओंकी समान विक्रमवान् दशरथजी नामक एक राजाथे हम उनके ज्येष्ठ पुत्रहैं लोकमें हमारा नाम रामहै ॥ १५ ॥ और इनका नाम लक्ष्मण है, यह हमारे आज्ञाकारी छोटे भ्राताहैं, और यह विदेहकुमारी हमारी भार्या है इनका सीता ऐसा नामहै ॥ १६ ॥ पिता और माता कैकेयीके कहनेसे धर्मके लाभकी आशा और धर्मकी रक्षा करनेके कारण वनमें वास करनेके लिये हम इस स्थानमें आये हैं ॥ १७ ॥ इससमय यह हमारी इच्छा तुमको जाननेकी तुम कौनहो किसकी बेटीहो; और किसकी स्त्रीहो ! हमें तो ऐसा जान पडता कि, तुम राक्षसोंका मन मोहने वाली राक्षसी हो ॥ १८ ॥ और तुम किसलिये यहां आई हो सो सत्यही सत्य कहो ! यह वचन सुनकर वह मदनसे आतुर हुई राक्षसी बोली ॥ १९ ॥ हे रामचंद्र ! तुम ठीक २ हमारा परिचय सुनो हम कहती हैं; हम शूर्पणखा नामक कामरूपा राक्षसी ॥ २० ॥ सबको भय उपजाती हुई अकेली इस वनमें घूमा करतीहैं, हमारे भइयाका नाम रावणहै सो कदाचित् तुमने इसका वृत्तान्त व नाम सुनाही होगा ॥ २१ ॥ हमारे और दो भाइयोंका नाम कुम्भकर्ण और विभीषणहै कुम्भकर्ण अति बलवान्है और सदा सोताही रहता है, और विभीषण परम धार्मिक है राक्षसोंके चारित्र उसमें नहीं हैं ॥ २२ ॥ खर और दूषण यह दोनोंभी हमारे भ्राता रणमें बडे वीर्यवान् और बलशाली लोकमें प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी ! तुमको प्रथम देखतेही हम उन सबको छोड छाँड तुम्हारा अपूर्व रूप देख पुरुषोत्तम जान प्रेमके मारे अपना पति बनानेके लिये यहां आईहैं ॥ २४ ॥ हममें बडा पराक्रमहै, और बल होनेके कारण जहां इच्छा होतीहै वहीं स्वच्छन्दतासे घूमती रहती हूं । सो तुम सदाके लिये हमारे स्वामी होना । इस सीताको लेकर क्या करोगे ॥२५॥ यह सीता विकटाकार और कुरूपाहै, किसी भांतिभी यह तुम्हारे योग्य नहीं है हमको देखो; हमहीं रूपके हेतु तुम्हारी भार्या बननेके योग्य हैं ॥ २६ ॥ हम तुम्हारे इस भ्राताके सहित इस मानवी, कुरूपा, असती कराला और नतोदरी सीताको भक्षण करजांयगी ॥ २७ ॥ तुम कामभोग में तत्पर होकर हमारे सहित

और पर्वतोंके शृंगोंको देखते हुए दंडकारण्यमें विचरण करोगे ॥ २८ ॥ वचन बोलनेमें चतुर रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी यह वचन सुन ऊंचे स्वरसे हँसकर क्रूरनयना शूर्पणखासे बोले ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा०वा० आदि०आरण्यकाण्डे भाषायां सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

श्रीरामचंद्रजीने उपहास करनेके लिये हँसकर मधुर वचनसे उस कामके फंदमें फँसी शूर्पणखासे कहा ॥ १ ॥ अयि कल्याणी ! हमारा विवाह होगयाहै यह सीताजी हमारी स्त्रीहैं । सो तुम सरीखी स्त्रियोंको सौतका होना बहुतही दुःखका विषय है ॥ २ ॥ परन्तु हमारे यह छोटे भ्राता लक्ष्मणजी सच्चरित्र श्रीमान् वीर्यवान् और प्रिय दर्शनहैं । इनका विवाह अभी नहीं हुआहै अथवा अकृतदार इनके निकट स्त्री नहींहैं अथवा इन्होंने स्त्री परिग्रह नहीं कियाहै ॥ ३ ॥ इन्होंने पहले कभी स्त्रीका सुख नहीं भोगा है इसी कारण यह विवाहार्थी हुएहैं और विशेष करकै यह युवाहैं तिससे यह सब प्रकारसे तुम्हारे लायक स्वामी होंगे ॥ ४ ॥ हे बडे नेत्रोंवाली ! सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार सुमेरुकी भजना करतीहै, तुमभी वैसेही सौत रहित होकर हमारे इन भाईकी स्वामीकी भांतिसे सेवा करो ॥ ५ ॥ वह कामसे मोहित हुई राक्षसी रामचंद्रजीके यह वचन सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजीके निकट जाकर कहने लगी॥६॥मैं सब स्त्रियोंसे अधिक सुन्दर हूं तिससे तुम्हारे इस रूप लायकही भार्या बनूंगी तुम हमारे सहित सुखपूर्वक समस्त वनोंमें विचरण करोगे ॥ ७ ॥ उस राक्षसीसे ऐसा सुन वचन बोलनेमें चतुर सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी मन्द मन्द हँसकर उससे यह युक्तियुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ अयि कमलवर्णनि ! हम दासहैं फिर किस कारण तुम हमारी स्त्री बनकर दासी बननेकी अभिलाषिणी हुईहो ! हम इन बडे भ्राता रामचन्द्रजीके दासहैं ॥ ९ ॥ हे विशालनेत्रवाली ! तुम सिद्धकामा, और आनन्दिता होकर सर्व भावसे संपत्तिमान् हमारे बडे भ्राता आर्य श्रीरामचन्द्रजीकी दूसरी स्त्री बनो क्योंकि उनसे विवाह करनेमें तुम्हारी विधि भली मिलेगी । उनका श्यामरंग तुम्हारे वर्णसे कुछ २ मिलता हुआहै । परन्तु हमारा तुम्हारा रंग कुछभी नहीं मिलता ॥ १० ॥ फिर जब इनसे विवाह कर लोगी तो यह कुरूपा, असती, जिनके सामने और कोई सती नहीं भय उपजानेवाली, कृशोदरी, और वृद्धा भार्या

को त्याग करकै तुममेंही अनुरागी हो जांयगे ॥ ११ ॥ अयि वरवर्णिनि ! अयि वरारोहे कौन चतुर पुरुषहै जो तुम्हारे इस श्रेष्ठ रूपका अनादर करकै मानुषीमें अनुरागीहो ? ॥१२॥जब लक्ष्मणजीने इस प्रकार कहा तौ बडे पेटवाली सबलोकोंको डरावनेवाली निशाचरी शूर्पणखा उस हँसीकी बातको न समझकर लक्ष्मणजीकी बातको सत्यही समझी ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह मोहित होकर पर्णकुटीमें सीताजीके साथ बैठे हुये शत्रुओंके तपानेवाले अजेय श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगी ॥ ॥ १४ ॥ कि तुम इस बुढिया कुरूपा कृशोदरी, भय उपजानेवाली असती स्त्रीमें अनुरागी होकर हमारा आदर सन्मान नहीं करते ॥ १५ ॥ तिससे तुम्हारे सामने ही इसी मुहूर्त्तमें हम इस मानुषीको भक्षण करैंगी और सौतहीन होकर यथासुखसे घूमा करैंगी ॥ १६ ॥ यह कहकर जलते अंगारेकी समान चमकते हुये नेत्रोंवाली निशाचरी महाक्रोधमें भरकर हरिणके बच्चोंकी समान नेत्रवाली सीताजीके सामनेको दौडी जैसे रोहिणीकी ओर उल्का धावमानहो ॥ १७ ॥ उस यमकी फांसीकी समान राक्षसीको सामने आते देखकर श्रीरामचन्द्रजी क्रोधमें भर उसको रोक लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! क्रूरस्वभाव वाले ! दुष्टोंके साथमें हंसी करनाभी किसी भांति कर्तव्य नहीं है । देखो इस परिहासके होनेसेही जानकीजीको अपने जीवनमें संदेह हुआ है ॥ १९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस समय तुम इस कामसे मत्त हुई बडे पेटवाली कुरूपिणी असती राक्षसीको औरभी कुरूप करदो ॥ २० ॥ महाबलवान् श्रीलक्ष्मणजीने रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर महाक्रोधित हो तलवार उठाकर उनके सामनेही राक्षसी शूर्पणखाके नाक कान काट डाले ॥ २१ ॥ नाक कान कटाये हुये घोर स्वभाववाली वह राक्षसी उस समय विकट शब्दसे चिल्लातीहुई जहांसे आई थी उसी वनकी ओर शीघ्रतासे दौडी ॥ २२ ॥ अति भयंकर शरीरवाली कुरूपा वह राक्षसी शरीरमें रुधिर लगायेहुये वर्षाकालीन बादरकी समान विविध प्रकारके शब्द करने लगी ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वह बांहें उठाकर घावोंसे रुधिर बहाती–गर्जती हुई महा वनमें प्रवेशकर गई ॥ २४ ॥ वहां प्रवेश करकै उसी कुरूप रूपसे राक्षस गणोंसे घेरे हुए जनस्थानवासी उग्र तेजवान् अपने भाई खरकेनि कट जाकर आकाशसे वज्रपातकी समान पृथ्वीमें गिरी ॥ २५ ॥ रुधिर जिसके सब अंगोंमें लगा हुआ भय और मोहसे जिसका चित्त ठिकाने नहीं ऐसी उस खरकी बहिन राक्षसी

शूर्पणखाने खरसे स्त्री और भ्राताके सहित श्रीरामचन्द्रजीका वनमें आना और उनसे अपने नाक कान काटे जानेका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्य० भाषायां अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः १९.

राक्षसगण खर अपनी बहनको कुरूपा, शरीरमें रुधिर लगाहुआ और पृथ्वीमें पडाहुआ देखकर क्रोधसे संतापित हो बूझने लगा ॥ १ ॥ खरने कहा, उठकर बैठो, वृत्तान्त तो कहो, मूर्च्छा और चित्तकी चपलताको छोडो, स्पष्ट २ कहो कि, किसने तुमको ऐसा विरूप किया ? ॥ २ ॥ किसने सामने बैठे हुए, कुण्डली बाँधे हुए निरपराध विषधर काले सांपको खेलसेही उंगलीके पोरुएसे छेडकर जगायाहै ? ॥ ३ ॥ उसने तेरेसाथ कुत्सित व्यापार कर अब भयंकर विष पिया, अपने गलेमें कालकी फांसी डाली सो वह अज्ञानी इस बातको जो विपत्ति उसके ऊपर पडेगी उसको नहीं समझा है ॥ ४ ॥ बल विक्रम सम्पन्न यमराजकी समान चलनेवाली कामरूपिणी यमसमान तुम किसके पास गईथी, कि जिसने तुम्हारी यह दशा की है ? ॥ ५ ॥ देव गन्धर्व भूत और महात्मा ऋषि लोगोंमें कौन ऐसा वीर्यवान् है कि जिसने तुमको विरूप किया है ॥ ६ ॥ देवताओंमें पाकशासन सहस्रलोचन, इन्द्रके सिवाय, ब्राह्मणमें हम ऐसा और किसीको नहीं देखते जो हमारा अप्रियकार्य करे ॥ ७ ॥ हंस जिस प्रकार जलसे मिलेहुए दूधको अलग कर पीलेताहै आज हम भी प्राण हरणकारी तीरोंके समूहसे उसके शरीरसे प्राण अलग करेंगे कि, जिसने तुमको विरूप किया है ॥ ८ ॥ समर में युद्ध करके शरजालद्वारा छिन्न मर्म किस मरे हुए पुरुषका फेन सहित रुधिर पृथ्वीने पीनेकी इच्छाकी है ? ॥ ९ ॥ लडाईमें युद्ध करके मारेहुए किस पुरुषके देहसे मांस नोच२ कर आनंद सहित चील गिद्धादि पक्षी खायँगे ॥ १० ॥ हम संग्राममें जिसके ऊपर चढाई करेंगे उस हतभागेको क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या पिशाच, क्या राक्षस, कोईभी उद्धार करनेको समर्थ नहीं होगा ॥ ११ ॥ इस समय तुम सहज २ सावधान होकर हमसे कहो कि, किस दुष्ट व्यक्तिने वनमें पराक्रम प्रकाश करके तुमको पराजित किया है ? ॥ १२ ॥ महाक्रोधित हुए अपने भाई खरके यह वचन सुनकर शूर्पणखा आंसू पोंछती हुई बोली ॥ १३ ॥ कि तरुण, रूपसम्पन्न, सुकुमार महाबलवान् कमलनयन

चीर व मृगचर्म धारण किये ॥ १४ ॥ कन्द मूल फलके खानेवाले, जितेन्द्रिय, तपस्वी, ब्रह्मचारी राजा दशरथके दो पुत्र राम लक्ष्मण ॥ १५ ॥ वह देखनेमें गन्धर्वराजकी समान और राजलक्षणोंकरके युक्त जान पडतेहैं । वह दोनों जन देव हैं; अथवा दानव इसका कुछ निश्चय नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ हमने देखा है कि, वहां पर उन दोनों जनोंके साथ एकरूपवती सब भूषण धारण किये हुए युवास्थाको प्राप्त स्त्रीभीहै, ॥ १७ ॥ उन दोनों भाइयोंने मिलकर उस स्त्रीके कहनेसे, जैसे कोई अनाथ कुलटा स्त्रीकी दुर्दशा करताहै, वही दशा हमारी की अर्थात् नाक कान काट डाले ॥ १८ ॥ हम कुटिल चरित्रवाली उस स्त्रीका और उन दोनोंजनोंका झाग सहित रुधिर समरमें पान करनेकी इच्छा करती हैं ॥ १९ ॥ तुम हमारी यह पहली अभिलाषा पूर्ण करो हम संग्राममें उस स्त्रीका और उन दोनोंका खून पियेंगी ॥ २० ॥ जब शूर्पणखाने यह वचन कहे तब खरने क्रोधित होकर महाबलवान् यमकी समान [१४] राक्षसोंको आज्ञादी कि ॥ २१ ॥ शस्त्र लगाए हुए चीर व मृगचर्म पहरे हुए दो मनुष्य घोर दण्डकारण्यमें स्त्रीसहित आये हैं ॥ २२ ॥ सो तुम उन दोनों जनोंको और उस दुष्टा स्त्रीको मार करकै लौट आओ क्योंकि हमारी बहन उनका रुधिर पियेगी ॥ २३ ॥ हे राक्षसो ! तुम लोग शीघ्र जाकर बलसे उन दोनों जनोंको संहार करकै हमारी बहनका यह अभीष्ट मनोरथ पूरा करो ॥ २४ ॥ तुमने युद्धमें उन दोनों भाइयोंको मार डालाहै सो देखकर हमारी यह बहन अतिशय संतोषित और हर्षित होकर युद्धके स्थलमें उनका रुधिर पियेगी ॥ २५ ॥ इस प्रकारकी आज्ञा पाकर यह चौदह राक्षस वायुसे चलायमान मेघकी समान शूर्पणखाके साथ जहां श्रीरामचन्द्रजीथे, उस स्थानकी यात्रा करते हुए ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० आरण्य० भाषायां एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

तिसके पीछे शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें आई, और राक्षसोंको सीताजीके सहित उन दोनों भ्राताओंको दिखा दिया ॥ १ ॥ उन राक्षसोंने पर्णशालामें महाबलवान् श्रीरामचंद्रजीको श्रीसीताजीके सहित बैठा और लक्ष्मणजीसे सेवित देखा ॥ २ ॥ श्रीमान् रघुनन्दन रामचन्द्रजी इन राक्षसोंको आयाहुआ

देखकर दीप्तिसे तेजमान भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! एक घडीभर तुम सीताजीके निकट रहो। इतनेमें हम इस राक्षसीके पक्षपाती इन सब राक्षसोंको मार डालें ॥ ४ ॥ तब विदितात्मा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करकै तथास्तु कह उनकी बात शिरमाथे चढाते हुए ॥ ५ ॥ व इधर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रभी सुवर्णभूषित महाधनुषमें रोदा चढाय इन सब राक्षसोंसे बोले ॥ ६ ॥ हम दो भ्राता हैं, नाम हमारा राम व लक्ष्मण है राजा दशरथजीके पुत्र हैं हम सीतासहित इस दुर्गम दण्डकारण्यमें आये हैं ॥ ७ ॥ हम फल मूल खानेवाले अपनी इन्द्रियोंको जीतेहुएहैं तपस्वी और धर्मचारी होकर दण्डकारण्यमें वास करतेहैं, सो तुम किसकारण हमारे ऊपर चढाई करते हो ॥ ८ ॥ यदि कहो कि तुम तपस्वी होकर धनुष क्यों धारण किये हो तौ इसका उत्तर यह है कि तुम लोग पापात्मा हो सो महावनमें ऋषि लोगोंकी आज्ञासे हम तुमको विनाश करनेके लिये धनुष धारणकर यहां आयेहैं ॥ ९ ॥ सन्तुष्ट होकर इसी स्थानमें खडे रहो, आगे न बढो; हे निशाचरगण ! यदि प्राणोंका मोह होवे, और तुम इसका प्रयोजन समझते हो तौ यहांसे लौट जाओ हम किसीको नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ ब्रह्मघाती, शूलधारी, भयंकर यह चौदह राक्षस श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करकै महा-क्रोधित हो बोले ॥ ११ ॥ सबही लाल २ नेत्र कर रामचंद्रके प्रति कठोर वचन कहते थे वह सब श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको नहीं जानते थे इससे हर्षयुक्त हो, मधुर वचन बोलनेवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ तुमने हमारे प्रभु महात्मा खरको क्रोध उपजायाहै, इस कारण अभी युद्धमें हमारे हाथसे मारे जाकर तुमको शीघ्रही प्राण छोडने पडेंगे ॥ १३ ॥ तुम इकले हो और हम बहुतहैं, इसलिये लडाईमें युद्ध करना तौ दूर रहै हमारे सामने भी तुम खडे नहीं हो सकोगे ॥ १४ ॥ हमारे इन बाहोंसे परिघ, शूल और पटासे घायल होकर तुमको प्राणवीर्य और हाथमें धारण किया हुआ धनुष त्याग करना पडेगा ॥ ॥ १५ ॥ यह चौदह राक्षस इस भांतिसे कहकर महा क्रोधित हो आयुध और खड्ग उठाकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडे ॥ १६ ॥ और यह सब दुर्जय अस्त्र शस्त्र शूलादि श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलानेलगे । उन चौदह राक्षसोंके चलाये हुए शूल आदि श्रीरामचन्द्रजीने ॥ १७ ॥ चौदहही स्वर्ण भूषित बाणोंसे काटकर फेंक दिये। तत्पश्चात् महातेजवान् श्रीरामचन्द्रजीने सूर्यके समान

प्रभाववाले बाण ग्रहणकर॥१८॥ उनको धनुष पर चढाय महा क्रोधवान् हो चौदह राक्षसोंको ताककर शिला पर पैनाये बाण ॥ १९ ॥ छोडे, जिसप्रकार इन्द्र वज्र छोडते हैं । यह सब नाराच अति वेगसे राक्षसोंकी छातियोंमें प्रवेश कर रुधिरमें सने ॥ २० ॥ पृथ्वीमें गिरे जिस प्रकार बँमईमेंसे सांप निकला करते हैं राक्षसभी इन सब बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदयहो पृथ्वीमें गिरे । जैसे जड कटे हुये वृक्ष भूमिमें गिर पडते हैं ॥ २१ ॥ वह राक्षस कलेजेमें बाण लगनेके कारण रुधिरमें सराबोर हो रहे थे, प्राण जाते रहे थे उनकी सूरतें बिगड गई थीं ऐसा उन राक्षसोंको गिरा हुआ देखकर राक्षसी शूर्पणखा क्रोधसे अधीरा होकर ॥ ॥ २२ ॥ अपने भाई खरके पास जा फिर कातरहो गिर पडी उस समय उसके शरीरका रक्त कुछेक सूख गया था इस कारण वह गोंद लगी लताके समान दृष्टि आती थी ॥ २३ ॥ राक्षसी अपने भ्राता खरके निकट शोकसे पीडितहो घोर चिल्लाने लगी और उदासीन मुख व विकट शब्दसे रोने लगी ॥ २४ ॥ खरकी बहन शूर्पणखा राक्षसी युद्धमें राक्षसोंको मराहुआ देख वेगसे दौडआकर खरसे बोली कि, राक्षस सब मारे गये ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां विंशतितमः सर्गः ॥२०॥

२१ सर्ग

अनर्थके निमित्त आईहुई शूर्पणखाको फिर पृथ्वीमें पडा हुआ देखकर क्रोधमें भर खर फिर जोरसे कहने लगा ॥१॥ कि, हमने तुम्हारा प्रिय कार्य करनेके लिये मांस खानेवाले, चौदह राक्षसोंको आज्ञादी है सो अब फिर तुम किस कारणसे रोरही हो ? ॥ २ ॥ वह राक्षस जो कि, हमने भेजे हैं सब हमारे अनुरागी भक्त और सदाही हित करनेवाले हैं वह किसीके मारेसे मरनेवाले नहीं हैं और सबही अंतःकरणसे हमारी आज्ञाका पालन करते रहते हैं ॥ ३ ॥ फिर तुम किस कारण हानाथ २ कह बार २ चिल्लाकर सर्पके समान लोट रहीहो, सो इसका क्या कारण है ! उसको मैं जानना चाहता हूं ॥ ४ ॥ हमसा रक्षक होनेपरभी तुम किस कारण अनाथके समान विलाप करती हो ! उठो और शोकका त्याग करो ॥ ५ ॥ खरने जब इस प्रकार कहकर विशेष भांतिसे शूर्पणखाको समझाया बुझाया तब दुर्द्धर्ष शूर्पणखा आँसूभरे नेत्रोंको पोंछ बोली ॥ ६ ॥ कि,

हमारे नाक कान दोनोंही गये हैं और मैं खूनसे भीज गई हूं इस अवस्थामें पहलेके समान फिर तुम्हारे पास आई हूं और तुमने हमको बहुत समझाया बुझाया ॥ ७ ॥ परन्तु तुमने जो हमारा प्रिय कार्य करनेकी कामनासे लक्ष्मण सहित भयानक रामचन्द्रको मारडालनेके लिये जो वीर चौदह राक्षस भेजे थे ॥८॥ रामचन्द्रने मर्मभेदी बाणोंसे छोडकर शूल, पटा आदि हाथमें लिये हुए क्रोधपरायण, उन सबही राक्षसोंको युद्धमें मारडाला ॥ ९ ॥ अतिशय तेजस्वी राक्षसोंको क्षणभरमेंही पृथ्वी पर पडा हुआ देख और रामचंद्रका यह भारी कार्यदेख मुझको महा भय लगताहै ॥ ॥ १० मैं डरी हुईहूं, उत्कंठितहूं, और विषादित होकर सबही जगह भय देखती हुई तुम्हारी शरणमें आईहूं ॥ ११ ॥ तुम किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करते हम विषाद रूप मगर और गोहोंसे भरे हुए तरङ्ग उठते हुए गंभीर शोकसागरमें डूब रहीहैं ॥ १२ ॥ जो मांस खानेवाले राक्षस हमारे साथ तुमने भेजेथे उन सबको रामचन्द्रने तीखे बाणोंसे मारडाला ॥ १३ ॥ यदि हमारे ऊपर और उन सब राक्षसोंकी सन्तानोंके ऊपर तुमको दयाहो, यदि रामचन्द्रसे युद्ध करनेकी शक्ति और तेज तुममेंहो ॥ १४ ॥ तब तौ राक्षस कुलके कण्टक रूप दंडकारण्यवासी रामचंद्रको आजही मारडालो यदि शत्रुओंके मारनेवाले रामचन्द्रको तुम आजही संहार न कर डालोगे ॥ १५ ॥ तौ हम लाजरहित होकर तुम्हारे सामनेही प्राण त्याग करैंगी, क्योंकि हमें अपनी बुद्धिसे जान पडता है कि तुम संग्राममें ॥ १६ ॥ रामचन्द्रके सामने खडे न हो सकोगे, यद्यपि तुम्हारे साथ चतुरंगिनी सेनाभी भारी है और तुम अपनेको शूर कहकर अभिमानभी करतेहो किन्तु वास्तवमें तुम शूर नहीं हो और तुम्हारा विक्रमभी मिथ्या कहनेकेही लियेहै ॥ १७ ॥ हे मूढ ! हे कुलाधम ! तुम इस मुहूर्त्तही बन्धु बान्धव कुटुम्ब सहित इस जनस्थानसे भाग जाओ नहीं तौ राम और लक्ष्मणको संग्राममें संहार करो ॥ १८ ॥ राम लक्ष्मण मनुष्यहैं यदि उनको मारनेकीभी सामर्थ्य तुममें नहींहै तौ हीनवीर्य दुर्बल होकर किस प्रकार से यहां रह सकोगे ॥ १९॥ रामचन्द्रके तेजसे निन्दितहो थोडेही समयमें तुम्हारा नाश हो जायगा । दशरथकुमार रामचन्द स्वभावसेही अतिशय तेजस्वी हैं ॥२०॥ और उनके भाई लक्ष्मणभी महावीर्यवान्हैं, कि जिन्होंने हमारे नाक कान काट डाले हैं इस प्रकारसे वह बडे उदरवाली राक्षसी बहुत भाँतिसे विलाप कर ॥ २१ ॥

अपने भ्राता खरके निकट शोकके मारे व्याकुलहो अचेत होगई और दुःखसे व्याकुलहो दोनों हाथोंसे छाती पीट २ कर रोने लगी ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः २२.

शूर्पणखाने जब क्रोधमें भरकर इस प्रकार खरका तिरस्कार किया तब तेजस्वभाववाला शूरवीर खर राक्षसोंकी सभाके बीचमें उससे कठोर वचन कहने लगा ॥ ॥ १ ॥ कि तुम्हारा अपमान होनेसे जो क्रोध हमको हुआहै उसकी तुलना नहींहै घावमें छोडे हुए नमकीन जलके समान इस क्रोधको धारण करनेकी हममें शक्ति नहींहै ॥ २ ॥ रामचन्द्र और लक्ष्मण तौ मनुष्यहैं. हममें जो पराक्रमहै उससे हम रामको कुछ नहीं गिनते उस रामने जो कुकर्म कियाहै उसके पापसे वह आजही निहत होकर प्राण त्याग करेगा ॥ ३ ॥ इस कारण तुम रोना धोना छोड डरका त्याग करो हम अवश्यही रामके सहित लक्ष्मणको यमपुरीमें पठावेंगे ॥ ४ ॥ अयि राक्षसि ! अब मरणोन्मुख रामचंद्रजी जब हमारे शरसे घायल होकर मर जांयगे तब तुम उनका लाल २ गरम २ रुधिर पान करना ॥ ५ ॥ शूर्पणखा खरके मुखसे निकले हुए यह वचन सुन मोहसे अधिक हर्षमें भर फिर उस राक्षस श्रेष्ठ खरकी बडाई करने लगी ॥ ६ ॥ जब निशाचरी शूर्पणखाने प्रथम निन्दाकी और फिर प्रशंसाकी तब तत्क्षण खर दूषण नामक अपने सेनापतिसे बोला ॥ ७ ॥ कि हे शुभदर्शन ! जो सब भांतिसे हमारा प्रिय अनुष्ठान करनेवालेहैं जो कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखाते अतिवेगवान् भयंकर चौदहहजार राक्षस ॥ ८ ॥ जो लोगोंकी हत्या करके सदा खेला करतेहैं जिनका पराक्रम भयानक और जिनका वर्ण नीले बादरके समानहै ऐसे राक्षसोंको सब प्रकारसे सजाकर हमारे सामने लाओ ॥ ९ ॥ इसके सिवाय शीघ्र चलनेवाला रथ, धनुष, विचित्र बाणसमूह तेजधारवाली अनेक भांतिकी शक्तियें और खड्गभी ले आओ ॥ १० ॥ हे रणपंडित ! महानुभव राक्षसोंके प्रथमही महात्मा पुलस्त्यवंशसे उत्पन्न हम जो रामचंद्र राक्षसोंको मारनेके लिये आये हैं उन दुर्विनीत रामचंद्रके वधार्थ संग्राममें आगे जानेकी इच्छा करतेहैं ॥ ११ ॥ खरने जब इस प्रकार कहा तौ दूषण तुरन्तही विचित्र वर्णवाले श्रेष्ठ घोडे जिसमें जुतेहुए सूर्यके समान चमकता

हुआ रथ खरके समीप ले आया ॥१२॥ इस रथका आकार मेरु पर्वतकी समान सब गहने इसमें तपाये हुए सुवर्णके लगेथे पहिये सुवर्णके बनेथे और दोनों गुम्मजभी वैदूर्य मणिके बनेथे ॥ १३ ॥ जिसमें मछली पुष्प, द्रुम, शैल, चन्द्र-कांत मणि यह सुवर्णके लगे हुएथे और सुवर्णकेही पक्षि और तारागणभी इस रथ-में जड रहेथे ॥ १४ ॥ छोटी २ पेटियाँ, इसमें लगी हुईथीं खर क्रोधमें भराहुआ, कुछभी विलम्ब न करके ध्वजा पताका युक्त अच्छे घोडों करके चलाये जाते हुए रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ खरको सवारहुआ देखकर दूषणने रथ चर्म आदि हथियार लिये, ध्वजा युक्त बडी सेनाको युद्धके लिये पयान करनेकी आज्ञादी उसने जब सब राक्षसोंसे इस प्रकार कहा ॥ १६ ॥ तब भयंकर चर्म ध्वजा युक्त वह राक्षसोंकी सेना महावेगसे महाकुलाहल मचाती हुई जनस्थानसे चली ॥ ॥ १७ ॥ उस सेनामें राक्षस मुद्गर, पटा, तेजशूल, फरशे, खड्ग चक्र, व तोमरादि शस्त्र धारण किये शोभायमानथे ॥ १८ ॥ शक्ति, परिघ, महा भयंकर धनुष, गदा तलवार मूसल और भयंकर अस्त्र शस्त्र ग्रहण कर राक्षस जनस्थानसे निकले ॥ १९ ॥ इस प्रकार खरके मनकी बात करनेवाले बडे भयंकर स्वरूप चौदह हजार राक्षस जनस्थानसे बाहर हुए ॥ २० ॥ वह भयं-कर राक्षस जब महावेगसे धावमान हुये तब इसको देखकर खरका रथभी कुछ तिनके निकटही पहुँचा ॥२१॥ सारथिने खरकी आज्ञा जानकर विचित्र वर्णवाले सुवर्णके गहने पहने घोडोंको शीघ्रतासे चलाया ॥ २२ ॥ उस समय रिपुघाती खरका चलताहुआ रथ अपने शब्दसे सहसा दिशा विदिशाओंको भर देता हुआ ॥ २३ ॥ अतिबलवान् वह बडे स्वरवाला खर क्रोधमें भर यम-राजकी समान शत्रु संहार करनेमें विशेष शीघ्रता युक्त हो ओले वर्षाने वाले महा मेघकी समान गर्जता हुआ सारथीसे बोला कि, रथ जलदी जलदी चलाओ ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां द्वाविंशःसर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः २३.

जब इस प्रकारके वह भयंकर राक्षसोंकी सेना युद्ध करनेके लिये चली, तब ग-र्दभकी समान धूसरवर्ण महा डरावने मेघ आकाशमें उठकर कडा शब्द करके रुधिर

मिला हुआ जल वर्षाने लगे ॥ १ ॥ खरके रथमें जो तेज चलनेवाले घोडे जुत रहेथे, वह राजमार्गमें चलनेके समय सहसा फूल बिछी हुई बराबर हुई पृथ्वीमेंभी गिर पडे ॥२॥ सूर्य मंडलके चारों ओर श्यामवर्णका घेरा बन गया, इस घेरेका बाहरी भाग अरुण वर्ण और आकार अंगार चक्रकी समान गोलथा ॥ ३ ॥ इसके पीछे बडे आकारवाला भयंकर गिद्ध बडी ऊंची सुवर्णकी रथकी ध्वजाके निकट आकर पंख उठाकर उसके ऊपर बैठ गया ॥ ४ ॥ विकट शब्दकारी, मांस खानेवाले पशु पक्षीगण जनस्थानके समीप आकर भयंकर शब्द करकै चिल्लाने लगे ॥ ५ ॥ भयंकर सियार पूर्व दिशामें राक्षसोंका अमंगलदायक भयंकर घोर शब्द करने लगे ॥ ६ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान भयंकर मूर्तिवाले मेघ जलकी समान रुधिरकी वर्षा करके वहांके सब आकाशको एकबारही छालेते हुए ॥ ७ ॥ रुवें खडा करनेवाला ऐसा घोर अंधकार छाया कि दिशा विदिशा समस्त एक साथही उससे ढकगई, फिर कुछभी दृष्टि न आया ॥ ८ ॥ संध्या रुधिरसे भीगे वस्त्रकी समान वर्ण धारण करके अकालमेंही प्रकाशित होगई भयंकर पशुपक्षीगणोंने खरके सन्मुख मुख करके कठोर स्वरसे चिल्लाना आरंभ किया ॥ ९ ॥ श्वेत चील सियार और गिद्धगण खरको भय उपजाते हुए ऊंचे स्वरसे शब्द करने लगे, और युद्धमें जिनका बोलना महा अमंगलका उपजानेवालाहै, ऐसी शृगालियांभी भय उपजाती हुई ॥ ॥ १० ॥ सेनाके सामने मुखसे अग्निनिकालतीहुई घोर शोर करने लगीं सूर्यके निकट परिघाकार कबंध दिखलाई देनेलगा ॥ ११ ॥ महाग्रह राहुने विना अमावस्या और पर्वकालकेही सूर्यको ग्रस लिया पवन प्रचंड चलने लगी सूर्यकी दीप्ति जाती रही ॥ १२ ॥ और रात्रि न होनेपरभी तारागण पटबीजनेकी समान चमककर उदय हुए, तालावोंके कमल सूखगये मछलीभी सागर सरोवरमें हो लीन होगई और पक्षीभी नाशको प्राप्त होगये ॥ १३ ॥ उस समय सब वृक्ष फल फूलों करके रहित होगये और विना पवनके चलनेपरभी महा धूरि उडने लगी बादल लाल होगये ॥ १४ ॥ उस काल मैना पक्षी सिखाये हुये शब्दोंको त्याग करके (चीची कूचि इत्यादि) अर्थ रहित शब्द करने लगे, घोर भयावन उल्कायें बडे शब्दसे कांप करके पृथ्वीपर गिरने लगी ॥ १५ ॥ और वन उपवन और पर्वत सहित पृथ्वी कांपने लगी धीमान् खर रथमें बैठकर गर्जन करने लगा ॥ १६ ॥ खरकी वांई भुजा बहुतही कांपने लगी, स्वर बिगड गया, इस प्रकार इधर उधर

देखते २ उसके दोनों नेत्रोंमें आंसू भर आये ॥ १७ ॥ उस खरके शिरमें वारंवार पीर होने लगी, तथापि मोहके मारे वह संग्राममें जानेसे नहीं लौटा, इन सब रोम-हर्षण महाउत्पातोंको उपस्थित हुवा देख॥ १८॥खर हँसता २ सब राक्षसोंसे बोला कि, यह तो घोर दिखाई देनेवाले महाउत्पात इस समय हो रहे हैं इनको देखकर मैं ॥ १९ ॥ ऐसे कुछ नहीं समझता कि, बलवान् जिस प्रकार दुर्बलोंको नहीं गिनता वैसेही हमारे पराक्रम इन उत्पातोंको मनमें स्थान नहीं देते जो हम क्रुद्ध होवें तौ तीखे बाणोंसे आकाशमंडलसे तारागणोंको भी पृथ्वीपर गिरादें ॥ २० ॥ हम क्रोधित हों तो यमराजकीभी मृत्यु शोध लावें; इससे हम बलसे दर्पित रामचन्द्रको उसके भाई लक्ष्मण सहित ॥ २१ ॥ तीखे बाणोंके आघातसे विना मार डाले हुए नहीं लौटेंगे । जिसके लिये रामचन्द्र व लक्ष्मणकी विपरीत बुद्धि हुई और उन्होंने उसके नाक कान काट डाले॥ २२॥ऐसी हमारी बहन शूर्पणखा भ्राताके सहित रामका रुधिर पीकर सफल मनोरथ होवे । और हमें पराजय होनेका कछ डरही नहीं, क्योंकि आजतक हम किसी संग्राममें पहले नहीं हारे हैं॥ २३॥सो तुम लोगों-को ज्ञातही है इस कारण हम मिथ्या नहीं कहते जो हम क्रुद्ध हो जायं तौ मत्त ऐरावत हाथीपर असवार इन्द्रको ॥ २४ ॥ यद्यपि रणके मध्य उसके हाथमें वज्रभी हो तथापि मार डालें फिर राम लक्ष्मणके मारनेमें क्या बडी बात है? वह तौ मनुष्य हैं यह कहकर खर गर्जने लगा जिसे श्रवणकर राक्षसोंकी बडी भारी सेना॥ २५॥ अतुलित हर्षित हुई, यद्यपि यमके फंदमें फँसीथी । इस ओर युद्धके देखनेकी वास-नासे महात्मा लोग आये ॥ २६ ॥ उनमें ऋषिगण देवगण गन्धर्वगण, व सिद्ध लोग सबही आये । वह पुण्य कर्म करनेवाले वहां सबही एकत्र होकर परस्पर कहने लगे ॥ २७ ॥ कि गौ, ब्राह्मण, सुखसे रहैं इसके सिवाय औरभी सब लोकसम्मत प्राणियोंका मंगल होवे और श्रीरघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी युद्धमें पुलस्त्य-वंशी राक्षसोंको जीतें ॥ २८ ॥ जैसे चक्रधारी विष्णुजीने समस्त असुरश्रेष्ठोंको जीताथा । परमर्षिगण ऐसे, व औरभी अनेक प्रकारके वचन परस्पर कहने लगे ॥ ॥ २९ ॥ विमानोंमें बैठे हुए देवतालोग कौतूहलके वश होकर मृत्यु जिनकी निकट आईहै ऐसे राक्षसोंकी बडी सेनाको देखने लगे ॥ ३० ॥ इस समय खर रथपर चढा हुआ सेनाके अगले भागमें हुआ तब उसके अगल बगल श्येनगामी पृथुश्याम, यज्ञ शत्रु विहङ्गम, ॥ ३१ ॥ दुर्जय परवीराक्ष पुरुष, कलिकार्मुक,

हेममाली, महामाली, सर्वास्य, और रुधिराशन । यह बारह महावीर राक्षस खरको घेरे हुए जाते थे ॥ ३२ ॥ महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथ और त्रिशिरा, यह चार राक्षस दूषण सेनापतिके पीछे २ चले जाते थे ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार ग्रह-जाल चन्द्र और सूर्यको प्राप्त होता है, वैसेही भीम वेग सुदारुण महा बलवान् राक्षसगण संग्रामका अभिलाष किये हुये सहसा राजपुत्र रामचन्द्र और लक्ष्मणजीके निकट पहुँचे ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० आरण्यकांडे भाषायां त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः २४.

इस भाँति तीक्ष्ण पराक्रमवाला खर जब रामचन्द्रजीके आश्रमकी ओर चला, तब श्रीरामचन्द्रजीने भ्राता लक्ष्मणके सहित वह उत्पात जो कि, खरके चलनके समय हुये थे सब देखे ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी प्रजागणोंके अमंगलकारी महाघोर इन सब उत्पातोंको देखकर अस्वस्थ चित्तसे लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे महा-बाहो ! सब प्राणियोंके प्राणनाश करने वाले यह बडे भारी उत्पात राक्षसकुलका संहार करनेके लिये होरहे हैं सो तुम देखो ॥ ३ ॥ गर्दभकी समान धूसर वर्णवाले बादलोंका समूह इस आकाशमें इधर उधर दौडकर बडे शब्दसे गर्ज २ रुधिर बर्षताहै ॥ ४ ॥ हे चतुर ! हमारे सब बाणोंसे धुआं निकलताहै, सो यह युद्ध होनेका आनंद मना रहे हैं; और स्वर्ण जिनकी पीठमें लगा हुआ है ऐसे धनुषभी विचलित हो रहे हैं ॥ ५ ॥ वनचर पक्षीगण जिस प्रकारसे शब्द न करते हैं इससे राक्षसोंको भय और प्राणसंशय आकर उपस्थित हुआ है ॥ ६ ॥ अब शीघ्रही महायुद्ध होगा इसमें कुछभी संदेह नहीं है । परन्तु हे वीर ! हमारा यह दहना हाथ बार २ फडककर हमारे जयकी सूचना करता है ॥ ७ ॥ हे शूर ! हमारी जय और शत्रुओंकी पराजय निकट आय पहुँची है, तुम्हारा वदनभी प्रसन्न और प्रभायुक्त देख पडता है ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! युद्ध करनेके लिये तैयार हुए जिन पुरुषोंका मुख मलीन होजाता है, इससे उन लोगोंकी आयुका क्षय होता है ॥ ९ ॥ राक्ष-सोंके घोर और गंभीर गर्जनका यह शब्द भी अब सुनाई आता है । व उन क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंकी भेरीकी ध्वनिभी अब सुनाई आती है ॥ १० ॥ कल्या-णके चाहनेवाले ॥ ११ ॥ इस कारण पंडित पुरुष विपत्तीकी शंका रहनेसे प्रथमही

उस आनेवाली विपत्तीका ऐसा उपाय करते हैं कि, जिससे वह विपत्ति निकट न आवै ॥ ११ ॥ इस कारण तुम धनुष धारण करके जानकीजीको ले वृक्षों करके युक्त दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ ॥ १२ ॥ तुम हमारे इन वचनोंके प्रतिकूल आचरण मत करना । वत्स ! हम तुमको अपने चरणोंकी सौगन्ध देते हैं कि, तुम शीघ्रही जानकीको लेकर गिरिगुहामें चले जाओ ॥ १३ ॥ तुम शूर और बलवान्हो, निश्चय इन राक्षसोंका वधकर सकतेहो इसमें सन्देह नहीं है परन्तु हम आपही इन सर्व निशाचरोंके मार डालनेकी इच्छा करतेहैं ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी सीताजी के सहित शर और चाप ग्रहण करके दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले गये ॥ १५ ॥ जब जानकीजीके साथ लक्ष्मणजी पर्वतकी कन्दरामें चले गये तब श्रीरामचं-द्रजी बडे हर्षित हुए और कवच व बाण रघुनंदनजीने ग्रहण किया ॥ १६ ॥ अग्निवर्ण वाले कवचके धारण करनेसे श्रीरामचंद्रजी अन्धकारमध्यमेंसे उठे हुए महा अग्निके समान जान पडने लगे ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी धनुषको उठाय, बाणोंको ग्रहण कर प्रत्यंचाकी टंकारके शब्दसे दशोंदिशाओंको पूर्ण करते हुए भली भांतिसे दृढहो वहां खडे होगये ॥ १८ ॥ उस समय महात्मा देवगण, गन्धर्वगण, सिद्धगण, और चारणगण संग्राम देखनेकी अभिलाषसे वहां आये ॥ १९ ॥ लोकमें जो ब्रह्मर्षि प्रसिद्धहैं वह सब महर्षिभी वहां आये वह सब पुण्य कर्म करनेवाले एकत्र होकर परस्पर मिल कहने लगे ॥ ॥ २० ॥ गौ, ब्राह्मण व और सब लोकोंका सब प्रकारसे मंगलहो और श्रीरामचं-द्रजी युद्धमें पुलस्त्यवंशीय निशाचरोंको जीतें ॥ २१ ॥ जिस प्रकार श्रीविष्णुजीने चक्र हाथमें लेकर असुर श्रेष्ठोंको हरायाथा ऐसे रामचन्द्रजी जीतें । इस प्रकार कहकर वह फिर परस्पर अवलोकन करते हुए कहने लगे ॥२२॥ कि भयंकर कर्म करनेवाले राक्षस तौ चौदह हजार (१४०००) हैं, और धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी इकलेहैं, सो इससे कह नहीं सकते कि किस प्रकार युद्ध होगा ॥२३॥ इस प्रकारसे राजर्षिगण, सिद्धगण, विद्याधरादि समस्त देवयोनिगण प्रधान २ ब्रह्मर्षिगण कौतूह-लाक्रांत चित्त किये विमानोंपर स्थित हुए वहां खडेथे ॥ २४ ॥ महा तेजस्वी श्री रामचंद्रजीको तेजमें प्रविष्ट हुए समर स्थलमें अकेला खडा देख, प्राणिमात्रही भय-के मारे दुःखी हुए कि न जाने महाराजको आज कैसा परीश्रम पडैगा और कैसे

इन १४००० हजार दुष्टोंसे लडैंगे ? ॥ २५ ॥ महात्मा रुद्रजी जब क्रोध करतेहैं और उनका रूप जैसा होजाताहै, वैसाही क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामचंद्रजीका रूप होगया जिसके समान विकराल रूप और नहींथा ॥ २६ ॥ आकाशमें देव गन्धर्व और चारण लोग ऐसा कहही रहेहैं कि इतनेमें महा गंभीर शब्द करती, अति घोर ढाल खड्गादि हथियार लिये ॥ २७ ॥ चारोंओरसे राक्षसोंकी सेना अनी बनी ठनी आ पहुँची, जो वीरपनेकी वार्ता आपसमें कररहीथी ॥ २८ ॥ उस सेनाके कोई २ लोग धनुषकी प्रत्यंचा खैंच २ बजाते कोई बार २ जँभाई लेते कोई ऊंचे स्वरसे चिल्लाते और कोई नगाडोंकोही बजातेथे ॥ २९ ॥ इस सब सेनाके राक्षसों का ऐसा घोर शब्द हुआ कि जिससे वह वन भर गया, और उस शब्दसे वनचारी पशु पक्षीभी घबडा गये ॥ ३० ॥ और लौटकर पीछेको न देखतेहुए जिस जगह वह शब्द श्रवणगोचर न होवै वहांको भागे । व इस ओर राक्षसी सेना धूम धामसे श्रीरामचंद्रजीके निकट आय पहुँची ॥ ३१ ॥ उस सेनाके वीरगण अनेक प्रकारके हथियार धारण कियेथे, वह सेना समुद्र समान उफनती चली आतीथी, समरपंडित श्रीरघुनंदन रामचंद्रजीने नेत्र डाल चारों ओर निहारातो ॥ ३२ ॥ युद्ध करनेको खरकी सेना, उनकेसोंही चली आतीहै, तब श्रीरामचंद्रजीने धनुषको उठाय, और तरकसमेंसे बाण समूहको ग्रहणकर ॥ ३३ ॥ राक्षसकुलका संहार करनेके लिये महाक्रोध किया, उस समय श्रीरामचंद्रजीका ऐसा बिकट स्वरूप होगया मानों प्रलयकालकी अग्निहो ॥ ३४ ॥ वन देवता लोग उनका वह तेजसम्पन्न स्वरूप देखकर बडेही व्यथित हुए क्योंकि उन्होंने वह भयावना रामचंद्रजीका रूप काहे-को देखाथा । परन्तु दक्षका यज्ञ विनाश करनेको तैयार महादेवजीकी समान श्री-रामचंद्रजीकी वह क्रोधभरी मूर्ति उस समय उन सबने देखीथी ॥ ३५ ॥ जैसे नीले रंगके बादर सूर्योदयमें शोभा पातेहैं । राक्षससेनाभी अग्नि सम वर्ण, कवच, रथ आभरण और धनुष युक्त होकर उस काल वैसीही शोभा पाने लगी ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः २५.

अपने साथियोंके साथ आश्रममें आकर खरने शत्रुओंके मारनेवाले श्रीरामचं-द्रजीको क्रोधमें भरे और धनुष ग्रहण किये देखा ॥ १ ॥ ऐसा देखकर उसने

कठोर प्रत्यंचा युक्त धनुष उठाकर सारथिसे ऊंचे स्वरसे कहा कि रामचंद्रके सामने रथ लेचलो ॥ २ ॥ सारथिने खरकी आज्ञानुसार जहां महाबाहु श्रीरामचंद्रजी धनुषपर टंकार देते हुए इकले खडेथे वहांपर घोडोंको चलाया ॥ ३ ॥ खरको रामचंद्रजीके आगे जाताहुआ देखकर उसके मंत्री श्येनगम्यादि बारह राक्षस उसके चारोंओर हो लिये ॥ ४ ॥ तब रथपर चढा हुआ खर दुर्विनीत राक्षसोंके बीचमें ऐसा शोभित होताथा, जैसे ताराओंके बीचमें प्रदीप्त मंगल ग्रह शोभित होताहै॥ ५॥ अनन्तर वह खर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर युद्धमें हजार बाण छोडकर महा शब्दसे चिल्लाने लगा ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सब निशाचर क्रोधित होकर भयंकर धनुषधारी, निवारण करनेके अयोग्य दुर्जय श्रीरामचंद्रजीको ताककर विविध भांतिके शर वर्षाने लगे ॥ ७ ॥ वह राक्षससेना, युद्धमें क्रोधितहो अनेक २ लोहेके सुन्दर शूल, फांसी, तलवार, और फरसे आदिकसे श्रीरामचंद्रजीके ऊपर प्रहार करनेलगे ॥ ॥ ८ ॥ फिर वह बडे २ शरीरवाले महाबलवान्, मेघ समान निशाचर गण, रथ, घोडे हाथियोंपर चढ २ युद्धमें श्रीरामचंद्रजीको मार डालनेकेलिये उनके ऊपर दौडे ॥९॥ उनमें कुछ राक्षस पर्वतोंके शृंग समान आकारवाले हाथियोंपर चढकर श्रीरामचंद्रजीको युद्धमें मार डालनेके लिये आये, इस कारण वह सब रामचंद्रजी-पर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ १० ॥ जैसे मेघमाला पर्वतोंपर वर्षा करतीहै, वैसेही बाणवर्षा उन निशाचरोंने श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की, सब राक्षसोंके मध्य जानकीजीवन कैसे शोभित होतेथे ॥ ११ ॥ जैसे प्रदोषकी यामिनियोंमें पार्षदोंके मध्य महादेवजी शोभित होतेहैं । राक्षसोंके चलाये अस्त्र शस्त्र श्रीरामचन्द्रजीने १२॥ अपने बाणोंके सहित ग्रहण किये, जैसे नदियोंकी धाराओंको महोदधि ग्रहण करता है यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीके अंगमें अतिघोर वह अस्त्र शस्त्र लगेथे पर इससे उनको कुछ व्याधि न हुई ॥ १३ ॥ जैसे प्रकाशमान बहुतसे वज्रोंसे हिमालय पर्वतको पीडा नहीं होती । सर्व शरीरमें बाणोंके लगनेसे रुधिर बहनेसे श्रीरामचन्द्र ऐसे शोभित हुए ॥ १४ ॥ जैसे संध्याकालीन बादरोंके बीचमें होनेसे सूर्य भगवान् शोभित होतेहैं । रघुनंदनजीकी यह अवस्था देख देव; गन्धर्व, और सिद्ध व परमर्षिगण बडे विषादित हुए ॥ १५ ॥ कारण कि, अकेले रामचंद्रजीको सहस्रों निशाचर घेरे हुएथे । ऋषि आदिकोंकी यह अवस्था देख श्रीरामचन्द्रजीने महाक्रोध युक्तहो धनुषको जोरसे खैंच ॥ १६ ॥ शत २ सहस्र २ अति तीखे बाण छोडे वे सब

बाण किसीके रोकनेसे नहीं रुकते, बरन् अनिवारथे सहन करनेके योग्य नहींथे और देखनेमें यमराजकी फाँसीके समानथे ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने लीलापूर्वक सुवर्णसे चित्र विचित्र कंकपत्र युक्त बाण शत्रुकी सेनामें चलाये । वह सब बाण शत्रुकी सेनामें पहुँच २ ॥ १८ ॥ चलाई हुई यमकी फाँसियोंकी समान राक्षसोंका देह भेद व प्राण ग्रहण करकै रुधिरके लगनेसे लाल रंगके हो ॥ १९ ॥ आकाश में जाकर जलती हुई अग्निके समान शोभा पाने लगे, उस समय श्रीरामचन्द्रजीके चाप मंडलसे असंख्यो बाण छुटे ॥ २० ॥ श्रीरामचन्द्रजी उन सब बाणोंसे राक्षसों के शत २ शरासन और सहस्र २ शरासन, ध्वजाके अग्रभाग ढाल, कवच ॥ २१ ॥ हाथके गहनों करके युक्त बाहु हाथियोंकी शुण्डके समान जंघायें सैकडों हजारों काट डालीं ॥ २२ ॥ इनके अतिरिक्त सुवर्णके कवच धारण किये घोडे रथ और सारथी महावत व सवारसहित हाथी घुडसवारसहित घोडे ॥ २३ ॥ इन सबको धनुषसे छूटे हुए श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंने छिन्न भिन्न किया, और पैदलोंकोभी संहार करके यमराजके भवनमें पहुँचाया ॥ २४ ॥ राक्षसगण, अग्रभाग जिनका महातीक्ष्णहै ऐसे नालीक, नाराच, और विकर्ण समूहसे कट कुट कर भयंकर शब्द कर आरत पुकारने लगे ॥ २५ ॥ शुष्कवनश्रेणी जिस प्रकार अग्निको पाकर भली प्रकार घून २ कर जलतीहै, वैसेही राक्षस सेनाभी श्रीरामचंद्रजीके मर्मभेदी बाणों से पीडित होकर सुख प्राप्त करनेको समर्थ नहीं होसकी ॥ २६ ॥ उस सेनाके कोई २ महाबलवान् शूरवीर राक्षस महा क्रोधित होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, प्रास, फरसे और शूल इत्यादि चलाने लगे ॥ २७ ॥ महाबाहु वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने बाणोंसे राक्षसोंके चलाये हुए अस्त्र शस्त्रोंको रोक उनके प्राण हरण करके उनके मस्तकभी उडा देते हुए ॥ २८ ॥ गरुडजीके उडनेके समय जो उनके पंखोंसे पवन निकलतीहै जिस प्रकार उससे वृक्षसमूह पृथ्वीपर गिर जातेहैं वैसेही राक्षसगण छिन्नमस्तकहो पृथ्वीपर गिरने लगे उनका धनुष और ढाल तलवारभी टूट टाट गई ॥ २९ ॥ बचे बचाये राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे घायल होनेके कारण व्याकुल हो मलीनभावसे खरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥ यह देखकर दूषण महाक्रोधित होकर धनुष सँभाल भागे हुए राक्षसोंको धीर बँधाता हुआ क्रोधित कालके समान रोषपरायण श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख दौडा ॥ ३१ ॥ तब रणसे भागे हुए निशाचरगण दूषणका आसरा पाय लौटकर शाल, ताल,

शिला, पाश, मुद्गर, और शूल इन सब आयुधोंको धारण कर श्रीरामचन्द्रजीके सामने धाये ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंने संग्राममें आतेही शूल, मुद्गर, पाशादि अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर की ॥ ३३ ॥ फिर वृक्षोंकी वर्षा और शिलाकी वृष्टि प्रारंभ होनेपर तिस समय भयानक और घोर लोमहर्षण संग्राम होने लगा ॥ ३४ ॥ उधरसे राक्षसगण श्रीरामचन्द्रजी पर अस्त्र शस्त्र चला रहे थे इधरसे श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंपर बाण वर्षा करते थे, यह देखकर राक्षसोंने फिर अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचन्द्रजीको पीडित किया ॥ ३५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि, सर्व दिशा विदिशा राक्षसोंसे भर गई हैं और हमभी उनके बाणोंसे ढक गये हैं ॥ ३६ ॥ यह देख श्रीरामचन्द्रजीने बडा शब्दकर भयंकर राक्षसगणोंके ऊपर परम देदीप्यमान गान्धर्वास्त्र चलाया ॥ ३७ ॥ इस गान्धर्वास्त्रके चलानेके पीछे श्रीरामचन्द्रजीके धनुषसे हजार २ बाण निकलने लगे; उन निकलते हुए बाणोंसे समस्त दिशायें भरगईं ॥ ३८ ॥ राक्षसगण इस समय यह नहीं देख सके कि, कब श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ और भयंकर शर ग्रहण करते कब छोडते और कब धनुषको आकर्षण करते हैं परन्तु केवल उनके बाणोंसे महा व्यथित होने लगे ॥ ३९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे अन्धकार उत्पन्न होकर दिवाकर सहित आकाश मंडलको ढक लेता हुआ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी बराबर शरधारा छोडते चले जाते थे ॥ ४० ॥ उस बाण धारासे अनेक २ राक्षस महा घायल हुए कोई २ गिरे हुए कोई २ गिरते हुए दिखाई देते थे ऐसे राक्षसोंसे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ ४१ ॥ रणभूमिमें सर्वत्रही सहस्र २ राक्षस पतित, छिन्न, भिन्न, विदारित और कंठगत प्राण दृष्टि आने लगे ॥ ४२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे छिन्न भिन्न पगडी सहित मस्तक बाजू युक्त बाँह व अनेक २ भांतिके गहने ॥ ४३ ॥ अश्व, हस्ती, रथ, चमर, व्यजन, छत्र, व नाना प्रकारकी ध्वजाओंसे ॥ ४४ ॥ व शूल पटादि शस्त्रोंसे जोकि रामचन्द्रजीके बाणोंसे कट २ टूट गये थे यह पृथ्वी अति भयंकर होगई ॥ ४५ ॥ इस प्रकार बहुतसे राक्षसोंको मारे हुए व पृथ्वीमें पडे देख बचे बचाये राक्षसगण अतिशय कातर होकर शत्रुओंके जीतने वाले श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख जानेको और समर्थ नहीं हुए ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकांडे भाषायां पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

सर्गः २६.

महाबाहु दूषण अपनी सेनाको श्रीरामचन्द्रजीसे मरी हुई देख भयंकर सेनाके आक्रमण करनेके अयोग्य ॥ १ ॥ पांच हजार राक्षसोंको जो कि समरसे लौटनाभी नहीं चाहतेथे और महावेगवानथे उनको युद्ध करनेके लिये आज्ञादी ॥ ॥ २ ॥ वह सब राक्षस समरमें जाय शूल, पटा, खड्ग, और वृक्षादिक व बाणोंकी वर्षा लगातार श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर करने लगे, वह वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा प्राणों की हरण करनेवालीथी ॥ ३ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीने अपने तीखे बाणोंसेही उस वर्षाका ग्रहण किया और उसे ग्रहण करके नेत्र बंद कर लिये ॥ ४ ॥ फिर बडा क्रोध किया और सब राक्षसोंके संहार करनेका संकल्प किया उस समय क्रोध और तेजसे प्रकाशमान होतेहुए श्रीरामचंद्रजीने ॥ ५ ॥ दूषण सहित सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा की। फिर शत्रुदूषण सेनापति दूषण क्रोधित होकर ॥ ६ ॥ वज्रकीसमान बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीको निवारणकरने लगा। तब श्रीरामचंद्रजीने महाक्रोधकर छुरेके समान तेज बाणोंसे दूषणका धनुष ॥ ७ ॥ काटकर चार बाणोंसे उसके रथमें जो घोडे नहेथे उनको मारडाला। अश्वोंको तीक्ष्णबाणोंसे वधकर अर्द्धचंद्र बाणसे उसके सारथिका ॥ ८ ॥ शिर काटडाला। और तीन बाण मारकर खरकी छातीमें मारे। तब दूषणका धनुषभी टूटा रथभी चूर्ण हुआ और घोडे व सारथीभी उसके मारे गये ॥ ९ ॥ तब उसने जिसके देखनेसे रोंगटे हों, रुएं खडे हो जांय ऐसा पहाडके शृंग समान एक परिघ ग्रहण किया वह सुवर्णके बन्धोंसे बँधा देवताओंकी सेनाको मर्दन करनेवाला ॥ १० ॥ लोहेकी कीलोंसे जडा शत्रुओंकी चरबी जिसमें लगी हुई वज्रके समान कठोर व शत्रुपुरके द्वारका विदारण करनेवाला ॥ ११ ॥ ऐसे महासर्पके समान उस परिघको ले संग्राममें क्रूरकर्मकारी दूषणराक्षस श्रीरामचंद्रजीकी ओर धाया ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजीने उस दौडे आतेहुए दूषणके भूषणसहित दोनों कर काटडाले ॥ १३ ॥ हाथोंके कट जानेपर उसका वह बृहदाकार परिघ स्थानभ्रष्ट होकर इन्द्रध्वजाकी समान समरमें गिरा ॥ १४ ॥ हाथ कटजानेसे मुँहकेबल दूषणभी इसभांति पृथ्वीमें गिरा जैसे दांत टूट जानेपर महामनस्वी गजराज पृथ्वीमें गिरताहै ॥ १५ ॥ दूषण को संग्राममें मराहुआ और पृथ्वीमें पडाहुआ देखकर सबही प्राणी साधु २ कहकर श्रीरामचंद्रजीकी प्रशंसा करनेलगे ॥ १६ ॥ इसीसमय उस खरके तीन

सेनापति जो निशाचर सेनाके आगेही चलेथे परस्पर मिलकर मृत्युकी फाँसीसे बँधकर क्रोधमें भरकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाये ॥ १७ ॥ इन तीनोंके नाम महाकपाल, स्थूलाक्ष और महाबलवान् प्रमाथीथे, महाकपाल विशाल शूल, उठाय ॥ १८ ॥ स्थूलाक्ष
थी फरशा ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीकी ओर चले, इन
ने ऊपर आयाहुआ देख श्रीरामचंद्रजीने तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ १९ ॥ इन [illegible] अगवानी की । जैसे मनुष्य आयेहुये पाहुनोंकी अगुवानी व उचित पूजा कर लेते हैं । [illegible] [illegible]नंदनजीने [illegible] की ॥ २० ॥ [illegible] अग-णित बाणोंसे प्रमाथीका [illegible], और स्थूलाक्षकी मोटी आँखोंको पूरण करदिया ॥ ॥ २१ ॥ यह तीनों कटे हुये वृक्षोंकी नाईं पृथ्वीमें गिर पडे । इसके पीछे पांचह-जार जो दूषणके अनुयायी राक्षसथे उन सबको अति क्रोधकर एक क्षणभरमें ॥ ॥ २२ ॥ संहार कर उन सबको श्रीदशरथकुमारने यमपुरको पठादिया, तब दूषण व उसके अनुगामी सैन्यको मारा गयाहुआ सुन ॥ २३ ॥ खरने क्रोधित होकर महाबलवान् और दूसरे सेनापतियोंको इस प्रकारसे आज्ञादीं कि, सेनापति लोगो ! दूषण तौ अपने अनुगामियों समेत मारागया ॥ २४ ॥ बस अब तुम सब राक्षस गण एकत्रहो बडी भारी सेनाको साथ लेकर विविध आकारके अस्त्र शस्त्र छोडकर मनुष्याधम रामचन्द्रको मारडालो ॥ २५ ॥ खर सेनापतियोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधमें भर आपही श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख दौडा । श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम ॥ २६ ॥ दुर्ज्जय, परवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, सर्प्पास्य, महामाली रुधिराशन ॥ २७ ॥ यह बारह महावीर सेनापति अपनी सेनाके साथ श्रेष्ठ बाण वर्षातेहुए श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख धाये ॥ २८ ॥ इन सब राक्षसोंको तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने अपने ऊपर आताहुआ देखकर हेमवज्रविभूषित अग्नितुल्य बाणों से खरकी इस बची बचाई सेनापर प्रहार करना आरंभकिया ॥ २९ ॥ वज्रपडनेसे जिसप्रकार बडे २ वृक्ष गिर जातेहैं वैसेही श्रीरामचन्द्रजीके सुवर्ण पंख वाले सधूम अग्निके समान बाणोंसे राक्षसोंको संहार करनेलगे ॥ ३० ॥ श्रीरामचन्द्रजीने एक शत बाण चलाकर एकशत राक्षसोंका संहारकिया, व हजार बाण चलाकर हजार राक्षसोंका प्राण लेलिया ॥ ३१ ॥ राक्षसगण रुधिरमें सनेहुए पृथ्वीमें गिरे उनके कवच भषण और धनुष छिन्नभिन्न और विदीर्ण होगये ॥ ३२ ॥ यज्ञकी

वेदीपर जिसप्रकार कश बिछे होतेहैं वैसेही संग्रामकी समस्त पृथ्वी रुधिरसे सराबोर बाल खुले हुए राक्षसोंसे व्याप्त होरही थी ॥ ३३ ॥ सब राक्षसोंके मारे जानेसे वनभूमि उनके मांस व रुधिरकी कीचसे ढककर क्षणभरमेंही महाभयंकर नरककी समान होगई ॥ ३४ ॥ मनुष्यशरीरधारी रामचन्द्रने इकलेही विना रथपर चढे चौदह हजार भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसोंको मारडाला ॥ ३५ ॥ सब सेनाके बीचमें महारथी खर, त्रिशिरा और शत्रुओंके हनन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी केवल यह तीनजन शेषरहे ॥ ३६ ॥ बचेबचाये राक्षस सबही लक्ष्मणजीके बडेभाई श्रीरामचन्द्रजीसे मारेगये, यह समस्त राक्षस अतिशय बलवान, भयंकर, व बडे दुःखसे सहनेके योग्यथे ॥ ३७ ॥ इसप्रकार महासंग्राममें समस्त भयंकर बलवान् राक्षसोंको श्रीरामचन्द्रजीसे मराहुआ देखकर खर बडे भारी रथपर सवार होकर वज्र उठाये हुये इन्द्रके समान रामचन्द्रजीके मारनेको चला ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७.

इसके पीछे खर जब श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख धाया, तब सेनापति त्रिशिरा राक्षस उसके समीप आकर कहने लगा ॥ १ ॥ मैं विक्रमवान् हूं आप यह साहस त्याग करके मुझको रामचन्द्रको मार डालनेके लिये नियत करके समरमें महाबाहु रामचन्द्रको मुझकरके माराहुआही देखिये ॥ २ ॥ मैं आपके समीप हथियार छूकर सत्यही प्रतिज्ञा करताहूं कि, समस्त राक्षसोंके मारने योग्य रामचन्द्रको मैं निश्चयही मार डालूंगा ॥ ३ ॥ या तो संग्राममें मैंही मरूंगा, अथवा इन रामकोही मार डालूंगा आप क्षणके लिये रणके उत्साहको छोडकर दोनों ओरका युद्ध देखते रहिये ॥ ४ ॥ राम मारे जांयगे तो आप आनन्दित चित्तसे जनस्थानको चले जाइये, और जो मेरा संहार होवे तो आप स्वयंही युद्ध करनेके लिये रामचन्द्रके सन्मुख होना ॥ ५ ॥ त्रिशिरा मृत्युके लोभसे इसप्रकार खरको प्रसन्न करके युद्ध करनेके लिये उसकी आज्ञा लेकर श्रीरामचन्द्रजीके सामने दौडा ॥ ६ ॥ तीन शृंगवाले पर्वतकी समान वह तीन शिरवाला राक्षस देदीप्यमान घोडे जुते हुए रथमें चढकर श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख धाया ॥ ७ ॥ और महा मेघ जिस प्रकार जलधारा वर्षाता हुआ हो वैसेही जलके भीगे नगाडेकी समान शब्द करने लगा॥८॥

रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीने त्रिशिरा राक्षसको अपने सन्मुख आते देखकर धनुष उठाय शब्दकर तीखेबाण चढाय ॥ ९ ॥ त्रिशिराके मारे, उस समय अतिबलवान् सिंह और हाथीके समान श्रीरामचन्द्रजी और त्रिशिराका तुमुल संग्राम आरंभ हुआ जिसके देखनेसे रोम खडे हो जाते थे ॥ १० ॥ अनन्तर क्रोध न करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी त्रिशिरा करके तीन बाणोंके द्वारा ताडित होकर जो उनके माथे में लगे थे, उनके लगनेसे रोषयुक्तहो गर्वित वचन कहने लगे ॥ ११ ॥ कि, अरे ! विक्रम शूर निशाचर ! बस तेरा इतनाही बल है कि, तेरे चलाये हुए बहुत सारे बाण हमारे माथेमें फूलोंकी समान लगे मानो हमारी परीक्षा ली. हम तो जानते थे कि, तुममें कुछ विक्रम होगा, सो कुछभी नहीं ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्य है ! अब तू हमारे धनुषके रोदेसे छूटे हुए बाणोंके समूहको ग्रहण कर । यह कह बडा क्रोधकर विषधर सर्पोंकी समान ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने चौदह बाण त्रिशिराके हृदयमें मारे और चार घोडोंको सन्नतपर्व बाणोंसे ॥ १४ ॥ महातेजवान् श्रीरामचन्द्रजीने मार डाला और आठ बाणोंसे रथपरही उसके सारथिको मार गिराया ॥ १५ ॥ व एक बाणसे अति ऊँची उसकी ध्वजाको काट डाला जब सारथि और घोडे उसके मारे गये तब त्रिशिरा रथसे कूदनेको हुआ ॥ १६ ॥ तो उसी बीचमें महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधसे अनेक बाण उसके हृदयमें मारे जिनके लगनेसे वह फिर शस्त्र ग्रहण करनेको समर्थ नहीं हुआ ॥ १७ ॥ फिर अप्रमेयात्मा श्रीरामचंद्रजीने क्रोधमें भरकर वेगवान् तीन बाणोंकी सहायतासे उसके तीनों शिर काटडाले, तिसके पीछे धुवेंके समान रुधिर गिरता श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे पीडित त्रिशिरा ॥ १८ ॥ समरमें गिरा, जिसके शिर पहलेही गिर गयेथे । त्रिशिराके मारे जानेके पीछे शेष राक्षस भागकर खरकी शरणमें गये ॥ १९ ॥ और वहांभी खडे न होकर सिंह करके भय पाये हुए मृगयूथकी समान भागेही चले गये तिनको भागे हुए देख खरने रोषमें भर तिनको लौटाय शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीकी ओर दौडा जैसे राहु चंद्रमाकी ओर ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः २८.

दूषण और त्रिशिरा राक्षसको मरा हुआ देख संग्राममें श्रीरामचंद्रजीकी शूरता निहार खरके मनमेंभी भयका संचार हुआ ॥ १ ॥ खर विचार करनेलगा कि दूषण और त्रिशिराको, सहनेके अयोग्यपराक्रमवान् महाबलवान् राक्षसी सेनाके सहित अकेले रामचंद्रने संग्राममें मारडाला ॥ २ ॥ ऐसा विचार करता हुआ वह राक्षस खर उदास होकर श्रीरामचंदजीके ऊपर दौडा, जैसे नमुचि दैत्य इन्द्रके ऊपर धाया था ॥ ३ ॥ और बडे जोरसे धनुष खैंचकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर, क्रोधित सर्पके विषकी समान रुधिर पान करनेवाले बाण छोडे ॥ ४ ॥ फिर वह प्रत्यंचाको वारंवार टंकार देता, अपनी शिक्षा और अस्त्रोंको दिखाताहुआ अनेक भांतिके बाण छोडते २ संग्राम भूमिमें रथपर घूमनेलगा ॥५॥ और सब दिशा विदिशाओंको उस महारथी खरने बाणोंसे पूर दिया। रामचंद्रजीने सब दिशाओंको बाणोंसे भरा देख बडा भारी धनुष हाथमें लिया ॥ ६ ॥ व अग्निके अंगारोंकी समान सहन करनेके अयोग्य सायक समूहसे आकाशको पूर्ण कर दिया जैसे मेघमंडल वृष्टि करतेहैं ॥ ७ ॥ आकाश खर और श्रीरामचंद्रजीके छुटे हुए बाणोंसे छाकर सब प्रकारसे अवकाशरहित होगया अर्थात् पृथ्वी आकाशके बीच २ में सबही जगह बाणही बाण भरेथे ॥ ८ ॥ तब परस्पर एक दूसरेकी मार डालनेकी इच्छासे छोडे हुए बाणोंके जाल करके आकाशके छा जानेसे सूर्य भगवान्भी छिप गये ॥ ९ ॥ इसके पीछे महावत महागजके जिस प्रकार अंकुश मारताहै वैसेही खर तीखे नालीक नाराच और विकीर्ण अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचंद्रजीको घायल करने लगा॥ १०॥ उससमय सबही प्राणी रथमें बैठे धनुषधारी खरको राक्षस पाशधारी यमराजकी समान देखने लगे ॥ ११ ॥ उस काल खरने अपनी समस्त सेनाके विनाश करनेवाले पुरुषार्थमें टिके हुए धैर्यवान् महाबली रामचंद्रजीको रण करनेसे थके समझा ॥ १२ ॥ और सिंहकी समान विक्रम दिखाता हुआ सिंहकी समान इधर उधर घूमने लगा। सिंह जिस प्रकार मृग छौनाको देखकर नहीं डरता वैसेही श्रीरामचन्द्रजी खरको देख कुछभी नहीं घबडाये ॥ १३ ॥ अनन्तर खर सूर्य समान द्युतिशाली महारथपर चढकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट पहुँचा, जिस प्रकार आगके धोरे पतंग पहुँचतेहैं ॥ १४ ॥ तिसके पीछे महात्मा श्रीरामचन्द्रजीको खरने अपने हाथोंकी फुरती दिखाई और रामचन्द्रजीका बाण

चढाहुआ धनुष मुठीके धोरेसे काटडाला ॥ १५ ॥ फिर क्रोधमें भरकर इन्द्रके वज्रकी तुल्य प्रतापशाली तीखे सात बाण ग्रहण करकै श्रीरामचन्द्रजीके मर्मस्थान में मारे ॥ १६ ॥ और फिर सैकडों हजारों बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीको पीडित कर समरमें अपना उपमा रहित तेज दिखाताहुआ महाशब्दसे गर्जनेलगा ॥१७॥ उससमय श्रीरामचन्द्रजीका सूर्यकी समान प्रकाशमान कवच, सुन्दर तेज धार वाले बाणोंके समूहसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीमें गिरपडा ॥ १८ ॥ उस समय रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीका सब शरीर बाणोंसे विंधगया, तब श्रीरामचन्द्रजी क्रोधित होकर प्रज्वलित धूमरहित अग्निकी शोभा धारण करते हुए ॥ १९ ॥ उसके पीछे उन शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी शत्रुओंका संहार करनेके लिये और एक गंभीर शब्द करनेवाले धनुषपर रोदा चढातेहुए ॥ २० ॥ श्रीरामचन्द्रजी महर्षि अगस्त्यजीका दिया हुआ वह बृहत् वैष्णव धनुष उठाकर खरके ऊपर क्रोधित होकर धाये ॥ २१ ॥ तदनन्तर सुवर्णके पंखलगे तीखे बडे भारी बाणोंसे समरमें श्रीराम-चन्द्रजीने खरकी ध्वजा काटडाली ॥ २२ ॥ वह सुन्दर सुवर्णकी ध्वजा सहसा छिन्न होकर गिरनेके समयमें ऐसी शोभा धारण करतीहुई जैसे कभी देवताओंके नियमसे सूर्यनारायण पृथ्वीमें आयकर शोभितहो ॥ २३ ॥ यह देखकर मर्मजान-नेवाले खरने क्रोधितहो चार बाण छोडकर; जिस प्रकार लोग भालोंसे मतवाले हाथी को मारतेहैं, वैसेही श्रीरामचंद्रजीके हृदयको व और दूसरे मर्मस्थानोंको घा-यल किया ॥ २४ ॥ तिस समय वह महा धनुर्द्धारी श्रीरामचन्द्रजी, खरके धन्वासे छूटे हुए बहुतसे बाणोंसे विंधे जाकर, और रुधिरमें भीग महाक्रोधित हुए ॥२५॥ और धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ दृढभावसे श्रेष्ठधनुधन्वा ग्रहण करके खरको भली भांति नि-शाना बनाय उसके ऊपर छैः बाण छोडे ॥ २६ ॥ उनमेंसे एक बाणसे खरका मस्तक बींधा दोबाणोंसे दोनों भुजाओंको घायल किया, और अर्द्धचन्द्रतुल्य टेढे तीन बाणोंसे खरकी छातीमें प्रहार किया॥२७॥उसके पीछे उन इन्द्र समान महाबलवान् तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने बडा क्रोध कर सूर्यकी समान, धार धराये हुए तेरहबाण ग्रहण करकै उस खर निशाचरको निशाना बनाकर छोडे ॥२८॥ श्रीरामचन्द्रजीने एक बाणसे रथका युगकाय हुआ (जुआ) चार बाणोंसे चारु चित्र विचित्र घोडे, और एक बाणसे उसके सारथिका मस्तक छेदन कर दिया ॥ २९ ॥ तीन बाणोंसे रथके तीनों बाँस और दो बाणोंसे दोनों पहिये, और बारह बाणोंसे खरका बाण

सहित शरासन युक्त बायां हाथ ॥ ३० ॥ काटकर हँसते २ वज्र समान एक बाणसे खरको इंद्रसमान श्रीरामचंद्रजीने मारा ॥ ३१ ॥ तब वह खर राक्षस धनुष रहित, रथ रहित, सारथिं रहित होकर गदाले रथसे कूद पृथ्वीपर खडा हो-गया ॥ ३२ ॥ उस काल विमानमें बैठे हुए देवता और महर्षिगण महारथी श्री-रामचंद्रजीका यह कार्य अवलोकन करके परम हर्ष प्राप्त करते हुए और परस्पर एकत्रहो हाथजोडकर स्तुतिकर श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करते हुए ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०आरण्यकांडे भाषायां अष्टाविंशः सर्गः ॥२८॥

एकोनात्रिंशः सर्गः २९.

इसके पीछे खर रथहीन और हाथमें गदा धारण करके जब पृथ्वीमें खडा होगया तब महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी बोलनेमें मधुर परंतु वास्तवमें कठोर वचनसे खरसे बोले ॥ १ ॥ हेखर ! तैंने हाथी अश्व और रथादि युक्त सेनाके मध्यमें टिककर सर्वलोकमें निन्दित महाभयंकर कर्म कियाहै ॥ २ ॥ यदि त्रिलोकीका स्वामीभी निर्लज्ज होकर पाप कर्म करै और सर्व प्राणियोंको घबडानेवाला हो तौ वहभी अ-पने पदसे भ्रष्ट होजाताहै ॥ ३ ॥ अरे निशाचर ! सभी पुरुषलोकोंके विरुद्ध कर्म करनेवाले तीक्ष्ण स्वभाववाले पुरुषको, आये हुए काल सर्पके समान संहार कर डालतेहैं ॥ ४ ॥ जो व्यक्ति फल जानकरभी लोभ या कामदेवके वश होकर हिंसा परस्त्रीगमन इत्यादि पाप कर्म करताहै वह निश्चयही उस पापके फलको पाता है, जैसे अकालवृष्टिके साथ गिरेहुए पत्थरोंको लालचसे ब्राह्मणी (बामनी नामक कीडा) खाकर मर जातीहै ॥५॥ रेराक्षस ! दंडकारण्यवासी धर्माचरण करनेवाले महातेजवान तपस्वियोंको मारकर तुझको कैसा बुरा फल प्राप्तहोगा सो नहीं जानता ॥ ६ ॥ अथवा जो क्रूरस्वभाववाले जन चिरकाल पापकर्म करके लोकोंकी निन्दा पानेके पात्र हो जातेहैं, वह जन ऐश्वर्य पाकरभी जड गले हुए वृक्षके समान बहुत दिनोंतक नहीं रहसक्ते अर्थात् गिर पडतेहैं ॥ ७ ॥ वृक्ष जिस प्रकार समय पाय कर फूलता है; वैसेही समयके आजाने पर पाप कर्मका भयावना फल निश्चयही प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे निशाचर ! जिस प्रकार विष मिला हुआ अन्न खानेसे शीघ्रही मृत्यु होतीहै, वैसेही पाप कर्म करनेका फल थोडेही समयमें फलजाता है ॥ ९ ॥ रेराक्षस ! भयानक पाप कर्म करनेवाले और लोकोंका बुरा चाहनेवाले दुष्टोंको बा-

णोंसे मारनेकेही लिये ऋषिलोगोंने मुझे राजाकर यहां पठायाहै ॥ १० ॥ सर्प जिसप्रकार बमईको फोडकर पृथ्वीपर निकल आताहै, वैसेही इस समय हमारे शरासनसे छूटेहुए बाण तेरे शरीरको चीर फाडकर निकल आवेंगे॥ ११॥पहले तैंने जिन २ दंडकारण्यवासी धर्मचारी तपस्वीजनोंको भक्षण कियाहै सो तू आज हमसे युद्धमें माराजाकर सेना सहित उनके पीछे २ जायगा॥ १२॥पहले जो समस्त तापस तुझ करके मारे गयेहैं, आज वह विमानमें बैठकर तुझको हमारे बाणसे मरा और नरकमें जाता हुआ देखें ॥१३॥ रे नीच कुलमें उत्पन्न हुए! तू भली भाँति-से यत्न करके हमारे ऊपर प्रहार कर, किन्तु आज हम निश्चयही तालफलके समान तेरा शिर काटकर गिरादेंगे ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब क्रोधके वश होकर खरके दोनों नेत्र लालहो आये और क्रोधके मारे ज्ञान रहितहो खर हँसते २ श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥ १५ ॥ रेदशरथकुमार! समरमें साधारण राक्षसोंको मार वास्तवमें प्रशंसित न होनेपरभी तुम आपही किस प्रकारसे अपनी प्रशंसा करतेहो ॥ १६ ॥ बलवान् पराक्रमशाली नरगण तेजके मारे गर्वित होकर किसी समयभी अपनी प्रशंसा नहीं किया करते ॥ १७ ॥ जि-नका चित्त शुद्ध नहींहै,ओछा स्वभावहै ऐसे क्षत्रियोंमें अधम लोगही तुम्हारी समान निरर्थक गर्व प्रगट किया करते हैं ॥ १८ ॥ मृत्युसमयके निकट आजानेपर कौन वीर अपने वंशका परिचय देकर प्रशंसाके अयोग्य विषयमें अपनी प्रशंसा करताहै॥ ॥१९॥ जिस प्रकार आग अपने तापसे सुवर्णकी समान पीतलकी अधमताई प्रगट करतीहै वैसेही तुमने जो अपनी प्रशंसा की इस्से तुम्हारा ओछापनही प्रगट हुआ ॥ ॥ २० ॥ तुम क्या गदा धारण किये हुए समरमें टिके देखकर विविध धातुओंके आकार धराधर पर्वतकी समान हमको अकम्पनीय नहीं समझतेहो ॥ २१ ॥ हम लीलासेही गदा हाथमें लेकर समरमें पाशधारी यमराजकी समान तुम्हारा बरन् त्रिलोकीके सबही प्राणियोंका संहार कर सकतेहैं ॥ २२ ॥ हमको तुमसे औरभी कुछ कहनाथा, परन्तु उसको अब कुछ नहीं कहेंगे क्योंकि सूर्य अस्त होनेपर आ-गयेहैं सो विशेष देर लगानेसे युद्धमें विघ्न हो जायगा ॥२३॥ तुमने जो १४००० चौदह हजार राक्षस मार डालेहैं सो अब तुझको मारकर उनकी स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोछैंगे ॥ २४ ॥ यह कहकर खरने महाक्रोधितहो अतिश्रेष्ठ सुवर्णके बंद बँधी हुई गदा जो उसके हाथमें थी वह देदीप्यमान इन्द्रके वज्रकी समान उसने

रामचन्द्रजीके ऊपर चलाई ॥ २५॥ यह प्रज्वलित बडी गदा उसकी भुजासे छूटकर अगल बगलके वृक्षलतादिकोंको जलातीहुई श्रीरामचन्द्रजीके समीप आनेलगी ॥ २६ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने बाण जाल चलाकर साक्षात् मृत्युके फंदकी समान निकट आती हुई, उस बडी गदाके आकाशमेंही खंड २ कर डाले ॥ २७ ॥ अतीव हिंसा करनेके स्वभाव वाली सांपिनी जिसप्रकार मंत्र और औषधिप्रभावसे गिर जातीहै, वैसेही यह गदा श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे टुकडे २ हो पृथ्वीमें गिरपडी ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां एकोनत्रिंशः सर्गः ॥२९॥

त्रिंशः सर्गः ३०.

धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्रजी अपने बाणोंसे उस गदाको काटकर मुसकाय के धर्म्म भर स्वरसे कहनेलगे ॥ १ ॥ रे राक्षसाधम ! बस तुमने इतनाही अपना सब बल दिखाया तुम हम करकै हीन बल होकर वृथा क्यों गर्जना करतेहो ॥ २॥ तुम केवल निरर्थक बकवाद करनेमें समर्थहो। तुम्हारी गदाने हमारे बाणोंसे टुकडे २ होकर पृथ्वीमें गिरकर तुम्हारे विश्वासको नष्ट किया॥३॥और तुमने जो कहा था कि मरे हुए राक्षसोंके स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोछैंगे सो तुम्हारी यह बातभी मिथ्याहुई॥४॥ और गरुडजीने जिसप्रकार अमृत हरण कियाथा इस समय हमभी वैसेही नीच ओछे स्वभाववाले झूंठी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम्हारे प्राण हरण करेंगे ॥ ५ ॥ आज हमारे बाणों करकै विदारित होनेसे जब तुम्हारा शिर कट जायगा, तब पृथ्वी तुम्हारेगलेका झाग सहित रुधिर पान करैगी ॥ ६ ॥ आज तुम शिथिलहो गिरेहुए दोनों हाथोंसे सर्वांगमें रुधिर लगाये हुए दुर्लभ स्त्रीके समान पृथ्वीको चिपटाकर शयन करोगे ॥ ७ ॥ रेराक्षसकुलका नाश करनेवाले ! यह दंडकवन सब लोकोंका आश्रय स्वरूप ऋषिगणोंका आश्रम हो जायगा ॥ ८ ॥ रे राक्षस ! मेरे बाणसमूहकरकै जनस्थान राक्षसशून्य होनेसे मुनिगण निर्भय होकर सब प्रकारसे वनमें हो कर घूमेंगे ॥ ९ ॥ भयंकरी सब राक्षसीयें आज बन्धु बान्धवोंके मारेजानेसे रुदन करती हुई हमारे भयसे आज जनस्थानसे भाग जायँगी ॥ १० ॥ तुम जिनके पति हो सो वह तुम्हारेही समान वंशकी स्त्रियें आज शोकरसके मर्मको जानकर हीनवीर्य हो जायँगी॥११॥रे निर्लज्ज ! क्षुद्रात्मा ! ब्राह्मणकंटक ! मुनिगण तुमसे शंका करके

अग्निमें आहुति दिया करतेहैं सो आजसे वह भय जाता रहेगा ॥ १२ ॥ जब रघु-कुमार श्रीरामचन्द्रजीने महाक्रोधके वशहोकर इस प्रकार कहा तब निशाचर खर क्रोधयुक्तहो फिर बडे ऊंचे स्वरसे रामचन्द्रजीको दुर्वादिक कहताहुआ बोला ॥ ॥ १३ ॥ कि तुम निश्चयही गर्वितहो और भयहोनेपरभी भय नहीं करते, इसी कारण मृत्युके वश होकर क्या कहने लायक क्या न कहने लायकहै, उसको नहीं समझ सकते ॥ १४ ॥ जो पुरुष कि कालकी फाँसीमें बँध जातेहैं, उनकी अन्तः-करणादि छैः इन्द्रियोंकी वृत्ति विषय जाती रहनेके कारण उनको कार्याकार्यका ज्ञान नहीं रहता ॥ १५ ॥ निशाचर खरने श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहकर भ्रुकुटी टेढीकर निकटही बहुत बडा एक शालका वृक्ष देखा ॥ १६ ॥ उस बडे भारीशालके पेडको देखकर युद्धमें उसकोही अपना अस्त्ररूप बनानेके लिये खरने खिंच खिंचाकर उसको उखाड लिया ॥ १७॥ और घोर गंभीर शब्द करके दोनों भुजाओंसे इस वृक्षको उठा 'लो तुम मारे गये' यह कहकर वह वृक्ष श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलाया ॥ १८ ॥ प्रतापवान् श्रीरामचंद्रजीने अपने ऊपर आतेहुए इस शा-लके वृक्षको अनेक बाणोंसे काट डालकर युद्धमें खरको मारडालनेके लिये महा-कोप किया ॥ १९ ॥ महाक्रोध करनेके कारण श्रीरामचंद्रजीके नयन लाल २ हो आये, शरीरसे पसीना निकलने लगा, उन्होंने हजार बाणोंसे खरके अंगको छिन्न भिन्न करडाला ॥ २० ॥ पर्वतके झरनेसे जिसप्रकार पानीकी धारा निकलती रह-तीहै, वैसेही खरकी देहमें जो बाण लगनेके कारण छिद्र होगयेथे, उनसे रुधिर गिरने लगा ॥ २१ ॥ खर श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्याकुल हो और रुधिर गन्धसे मतवाला होकर श्रीरामचंद्रजीके सामने बहुत शीघ्रतासे धाया ॥ २२ ॥ यह रुधि-रसे डूबाहुआ और अतिशय क्रोधाविष्ट होकर इसप्रकारसे दौडा कि कृतास्त्र श्रीरा-मचंद्रजी शीघ्रतासे दो तीन परग पीछेको हटगये ॥ २३ ॥ इसके पीछे श्रीराम-चंद्रजीने खरके मारडालनेके लिये दूसरे ब्रह्मदंडकी समान अग्निसमान बाण ग्रहण किया ॥ २४ ॥ धीमान् देवराज इन्द्रजीने यह बाण श्रीरामचंद्रजीको अगस्त्यद्वारा दियाथा धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीने वही बाण धनुषपर चढाकर खरके ऊपर छोडा ॥ ॥ २५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने धनुषको खैंचकर वह महाबाण छोडा, तब वह बाण वज्रकेसमान शब्द करताहुआ खरकी छातीमें लगा ॥ २६ ॥ खर उस बाणकी

अग्निसे भस्महोकर. श्वेतारण्यमें[1] रुद्रकरके भस्महुए अन्धकासुरकी समान पृथ्वीमें गिरपडा ॥ २७ ॥ वृत्रासुर[2] जिसप्रकार वज्रसे, नमुचि[3] जिसप्रकार फेनसे, और बलासुर जिसप्रकार इन्द्रके वज्रसे हत होकर गिरेथे खरभी वैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसे नाशहोकर पृथ्वीमें गिरा ॥ २८ ॥ इससमय देवतागण चारणोंके सहित महाहर्ष और विस्मय युक्त होकर नगाडे बजातेहुए श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चारों ओरसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २९ ॥ और सब देवता चारणगण फूल वरसाकर बडे विस्मित हुए कि डेढही मुहूर्तमें तीखे बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीने ॥ ३० ॥ इस महायुद्धमें खर दूषण इत्यादि मुख्य राक्षसोंके सहित कामरूपी चौदह हजार राक्षसोंको मार डाला ॥ ३१ ॥ साक्षात् विष्णुजीकी समान सर्वदर्शी श्रीरामचंद्रजीका क्याही बडा आश्चर्यका कार्य है अहो ! क्या अद्भुत वीर्य है ! और क्या विस्मय उपजानेवाली दृढता हमने देखी ! ॥ ३२ ॥ यह बात कहते २ एकत्र हुए सब देवतालोग अपने २ स्थानको चलेगये। तिसके पीछे राजर्षि व महर्षिगण एकत्र होकर आये ॥ ३३ ॥ अगस्त्यजीके सहित श्रीरामचंद्रजीकी बडाईकर मुदित होकर सब ऋषिश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि, इसी कारणसे महातेजस्वी इन्द्रजी ॥ ३४ ॥ शरभंगजीके पुण्य आश्रममें आपके निकट आयेथे। इसी कारणसे महर्षिगण बडे उपायसे आपको यहां पर लाये हैं ॥ ३५ ॥ बस एक यही कार्य था कि, केवल इन पाप कर्म करनेवाले राक्षसोंको मरवानाथा क्योंकि यह सब हमारे शत्रुथे, सो हे दशरथकुमार ! आपने यह हमारा कार्य सिद्ध किया ॥ ३६ ॥ अब महर्षिलोग दंडकारण्यमें अपना २ धर्म स्वच्छन्द हो करेंगे। मुनिगण इतना कहही रहेथे कि, इतनेमें वीर लक्ष्मणजी सीताजीके सहित ॥ ३७ ॥ गिरिगुहासे सुखसहित बाहर आकर अपने आश्रममें प्रवेश करतेहुए

---

१ कावेरीनदीके किनारे श्वेतारण्यमें एक श्वेत नाम राजर्षि तप करतेथे, तब अन्धकासुर उन्हें मारनेको धाया उस समय शिवजीने लात मारकर उस राक्षसका संहार किया ॥ २ बृहस्पतिजीके रूठ जानेपर जब इन्द्रने विश्वरूपको पुरोहित किया तब इन्द्रने गुप्तरूपसे दैत्योंके निमित्त उसे आहुति देते देख मारडाला विश्वरूपके मरनेपर उसके पिताने यज्ञकुंडसे वृत्रासुरको उत्पन्न किया जिसका बडा युद्ध इंद्रके साथ हुआ तब इन्द्रने दधीच ऋषिसे उनकी जांघका हाड मांग वज्र बनाय उससे वृत्रासुरका संहार किया ॥ ३ नमुचि दैत्यको ब्रह्माजीका बरदानथा तुम गीले सूखे किसी प्रकारके आयुधसे न मरोगे तब इन्द्रने वज्रमें फैन लपेटकर मारा जो गीला सूखा नहींथा ॥ ४ राम २ कहत तन तजहिं, पावहिं पद निर्वान। कर उपाय रिपु मारे, छिनमें कृपानिधान ॥

इसके पीछे विजयी श्रीरामचंद्रजी महर्षियों करके पूजित होकर ॥ ३८ ॥ और ल-क्ष्मणजीसेभी पूजितहो अपने आश्रममें आगमन करतेहुए. तिन महर्षियोंके आनंद बढानेवाले शत्रुओंके दमन करनेवाले श्रीरामचंद्रजीको देख ॥ ३९ ॥ श्रीजानकीजी प्रसन्न हुईं, और अपने पति श्रीरामचंद्रजीसे अतिप्रेमपूर्वक मिलीं, और फिर राक्षसोंको मरे हुए देख परम सुख माना तथा ॥ ४० ॥ व श्रीरामचंद्रजीके समस्तही निरापद देखकर श्रीजानकीजी अति संतोषको प्राप्त हुईं ॥ ४१ ॥ अनन्तर सुकुमारी जनकदुलारी परम प्रेम और हर्षमें भरकर राक्षसकुलके संहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे फिर मिलीं और महात्मा ऋषिगण प्रफुल्लित होकर अनेक २ प्रकारसे श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करनेलगे ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकांडे भाषायां त्रिंशः सर्गः ॥३०॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१.

खर दूषण त्रिशिरा आदि राक्षसोंके मारेजानेपर अकम्पन नामक राक्षस शीघ्रतासे जनस्थानसे पलायनकर लंकामें जाकर रावणसे कहनेलगा ॥१॥ हे राजन्! जनस्थानवासी अनेक राक्षस संग्राममें मारे गये और उनके स्वामी खरकाभी संहार होगया। और मैं किसी भांतिसे जीता बच यहां भागकर आयाहूं ॥ २ ॥ जब अकम्पनने ऐसा कहा तौ क्रोधमें भरनेके कारण रावणके नेत्र लालहो आये और वह अपने तेजसे अकंपनको भस्मसा करताहुआ बोला ॥ ३ ॥ किसकी ऊमर बीत चुकी? त्रिलोकीमें किसको आश्रय मिलना दुर्लभ हुआहै? वह कौनहै जिसने हमारा महाभयंकर जनस्थान ध्वंस कर दिया! ॥ ४ ॥ हमारा अप्रिय कार्य करके इन्द्र, यम, कुबेर अथवा विष्णुभी सुखसे नहीं रह सकते ॥ ५ ॥ हम कालकेभी कालहैं हम अग्निकोभी जला सकतेहैं, अधिक क्या कहैं हम मृत्युकोभी मृत्युधर्ममें योजित कर सकतेहैं ॥ ६ ॥ हम क्रोधित हों तो अग्नि और सूर्यकोभी भस्म कर डालैं और हम अपने वेगसे पवनकाभी वेग रोक सकतेहैं ॥ ७ ॥ दशवदन रावण जब इस प्रकारसे क्रोधित हुआ तब अकंपनने मारे भयके हाथ जोड सन्दिग्ध वचनोंसे अभयदान मांगा ॥ ८ ॥ तब राक्षसवर दशाननने अकंपनको अभय दिया, तब अकंपन विश्वास कर स्पष्ट २ वृत्तान्त कहने लगा ॥९॥ कि श्रीराजा दशरथजीके पुत्र सिंहसमान पुष्ट अंगवाले युवाअवस्थाको प्राप्त एक रामचंद्र नामकहैं। उनके ऊं-

स्कन्धे व बडी २ भुजाहैं ॥ १० ॥ श्यामरूप, महा यशस्वी, शोभायमान, अपने तुल्य किसी दूसरेका बल विक्रम न रखनेवाले उनहीं श्रीरामचंद्रजीने जनस्थानमें दूषणके सहित खरका संहार कियाहै ॥ ११ ॥ राक्षसोंका राजा रावण अकंपनकी यह वार्त्ता सुनकर मदसे अंधे हाथीकी समान श्वास लेताहुआ यह वचन कहने लगा ॥ १२ ॥ हे अकम्पन ! तू यह तो बता कि, रामचंद्र समस्त देवता और इन्द्रके साथ मिलकर क्या जनस्थानमें आगमन करतेहैं ? ॥ १३ ॥ अकम्पन रावणके ऐसे वचन सुनकर उसके निकट फिर महात्मा श्रीरामचंद्रजीका बल और विक्रम कीर्त्तन करके कहने लगा ॥ १४ ॥ कि रामचंद्रजी महातेजस्वीहैं, सर्व धनुध धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठहैं, दिव्य शस्त्रास्त्रोंके गुणोंसे सम्पन्न संग्राममें बडेही धर्मात्मा इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीहैं ॥ १५ ॥ उनका छोटा भाई लक्ष्मणजीभी उनकेही समा· नहै उनका शब्द देवदुन्दुभीकी समान गंभीरहै दोनों नेत्र अरुण वर्णहैं और उनका मुख मंडल पूर्णमासीके चंद्रमाकी समानहै ॥ १६ ॥ वायु जिस प्रकार अग्निके साथ मिलकर जनस्थानको जला डालतीहै श्रीराजश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीनेभी वैसेही लक्ष्मण-जीके साथ मिलकर जनस्थानको ध्वंस कर डालाहै ॥ १७ ॥ महात्मा देवतालोग वहां नहीं आयेथे केवल श्रीरामचंद्रजीनेही फलका लगे हुए सुवर्ण पंख युक्त बाण छोडेथे इस कारण इस विषयमें संदेह करनेका प्रयोजन नहीहै ॥ १८ ॥ श्रीरामके सब बाणोंने पंचमुखके सर्प होकर राक्षसोंको भक्षण कियाहै । राक्षसलोग युद्धमें भयभीतहो जिस जिस दिशाको भागने लगे ॥ १९ ॥ उसी २ ओर उन्होंने देखा कि रामचंद्र उनके आगे खडेहैं हे निष्पाप ! इस प्रकार उन्होंने आपका अधिकार किया हुआ जनस्थान उजाड डाला " इसमें रामचंद्रजीकी अनंतशक्ति ईश्वरता सूचन करीहै" ॥ २० ॥ अकम्पनकी यह भयानक वार्ता सुनकर रावणने कहा कि हम राम लक्ष्मणको मारनेके कारण अभी जनस्थानको जांयगे ॥ २१ ॥ जब राव-णने इस प्रकार कहा तब अकंपन कहने लगा कि हे राजन् ! राममें जिस प्रकारका बल और पौरुष और चरित्रहै उसको श्रवण करो ॥ २२ ॥ कि जब महायशस्वी श्रीरामचंद्रजी क्रोध करें तो उनको निवारण करनेको ब्रह्मादि देवताओंकोभी साध्य नहींहै । वह जलसे पूर्ण नदीका वेगभी अपने बाणोंसे रोक सकतेहैं ॥ २३ ॥ आकाशमंडलसे ग्रह नक्षत्र और सर्व तारागणोंको रामचंद्रजी गिरा सकतेहैं और वह विपदमें पडी हुई पृथ्वीकोभी उबार सकतेहैं ॥ २४ ॥ समुद्रकी वेला भूमिको

तोड ताडकर रामचंद्र सब लोकोंको जलमें डुबो सकतेहैं वह अपने बाणोंसे सागरका अथवा पवनका वेगभी रोक सकतेहैं ॥२५॥ और वह महा यशस्वी श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ पुरुष अपने विक्रमसे समस्त लोकोंका संहार करके फिर नई प्रजाको उत्पन्न कर सकते हैं ॥ २६ ॥ हे दशानन ! पापात्मा लोग जिस प्रकार स्वर्गके जीत-नेकी सामर्थ्य नहीं रखते सो आप या आपके राक्षस लोग कोईभी युद्धमें श्रीरा-मचंद्रजीके जीतनेको समर्थ नहीं हैं ॥ २७ ॥ मैं तौ यह जानताहूं कि देवासुर सब एकत्र होकरभी उनको नहीं वध कर सकते, तौ भी उनके मारनेका एक उपाय है सो चित्त देकर सुनिये ॥२८॥ सीता नामक उनकी स्त्री एक लोकके मध्यमें सर्व श्रेष्ठ श्यामा अवस्थावालीहै वह स्त्रियोंमें रत्नकी नाई है वह रत्नोंसे भूषित है युवा अव-स्था आरही है उसके सब अंग बराबर हैं कोई बडा छोटा नहीं है॥२९॥ न देवी, न देवता, न गन्धर्वी, न अप्सरा, न पन्नगी कोई भी उसकी तुल्यता नहीं कर सकती फिर मनुष्यकी स्त्री किस भाँति उनके समान होसकती है ॥३०॥ सो अब महावनमें जाकर किसी प्रकार छल बल चतुराईसे उनकी वह स्त्री हर लीजिये जब उनकी स्त्री हरी जायंगी तब राम न बचैंगे बरन् अवश्यही मर जायँगे ॥ ३१ ॥ यह बात महाबाहु, राक्षसराज रावणके मनको भाई । वह सोच विचार, करके अक-म्पनसे बोला ॥ ३२ ॥ कि, अच्छा ! हम अकेले सारथीके साथ वहां जायंगे, और जानकीको हर्ष सहित इस लंकापुरीमें लावैंगे ॥ ३३ ॥ इसप्रकार कहकर राक्षसराज रावण सूर्यके समान प्रभाववाले रथपर जिसमें खच्चड जुतेथे सवारहो समस्त दिशा विदिशाओंको प्रकाशित करता हुआ चला ॥ ३४ ॥ राक्षसेन्द्रका वह रथ तारागणोंके मार्गमें वेगसे भराहुआ चलनेके कारण मेघमंडलमें चन्द्रमाकी समान शोभाविस्तार करता हुआ ॥ ३५ ॥ इसके पीछे रावण बहुत दूर चलकर ताडकाके पुत्र मारीचके स्थानपर पहुँचा मारीचने विविध प्रकारके खाने पीनेके पदार्थोंसे रावण राक्षसनाथकी पूजाकी । वह पदार्थ मनुष्योंके भक्षण करनेके अयोग्यथे ॥ ३६ ॥ जब मारीच इस प्रकार आसन, जल, और खाने पीनेकी वस्तुओंसे रावणकी पूजा कर चुका तब अर्थयुक्त वचन रावणसे बोला ॥ ३७ ॥ राजन् ! राक्षसाधिप ! राक्षसगण कुशल हैं ? परन्तु आपके शीघ्र यहां आगमन करनेसे मुझको राक्षसोंकी कुशलमें शंका होती है ॥ ३८ ॥ जब मारीचने इस प्रकार कहा तो वचन बोलनेमें चतुर महा तेजस्वी रावण कहने लगा ॥ ३९ ॥

हेतात ! बडे कठिन कर्म करनेवाले रामचन्द्रजीने हमारे खर आदि जो सीमारक्षक (हद्दकी रखवाली करनेवाले) थे उनको मार डाला और अब जनस्थानकोभी युद्धमें समस्तही विध्वंस कर दिया है ॥ ४० ॥ इस कारणसे तुमको रामचन्द्रजी की स्त्री हर लानेके कार्यमें हमारी सहायता करनी होगी । मारीच असुरनाथ रावणकी यह वार्त्ता सुनकर कहने लगा ॥ ४१ ॥ कि, किस मित्ररूपी शत्रुने तुमसे सीताकी वार्त्ता कही ? हे राक्षसश्रेष्ठ ! आपके विशेष भाँतिसे संतुष्ट करने परभी कोई आपसे सन्तुष्ट नहीं ज्ञात हो तो ॥ ४२ ॥ " सीताको लंकामें ले आओ " यह बात किसने आपसे कही, सो बताओ । किसने समस्त राक्षसकुलके शृंग काटनेकी इच्छा की है ॥ ४३ ॥ जिसने आपको इस प्रकारका उत्साह दिया है वह निश्चयही तुम्हारा शत्रु है. कारण कि, उसने सर्पके मुखसे दांत निकालनेके लिये आपको आगे बढाया है ॥ ४४ ॥ किसने ऐसा कर्म करकै तुम्हारे विनाशका मार्ग खोजा अर्थात् तुम्हें इस मार्गमें चलाना चाहा ? राजन् ! आप सुखसे सो रहे थे सो किसने तुम्हारे मस्तकपर प्रहार किया ॥ ४५ ॥ हे रावण ! विशुद्धवंश सूर्य कुलही जिनकी लम्बी शुण्ड है. प्रतापही जिनका मद है, जिनकी बडी भुजा-येही दोनों दांत हैं, उन रामरूप मदवाले हाथीको संग्राममें दर्शन करनेके योग्य आप नहीं हैं ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! संग्रामके मध्यकी स्थिरताके लिये उत्सुकताही मानों वाल हैं चतुर राक्षसगणरूपीमृगोंके नाश करने वाले बाणही मानों जिनके अंग हैं पूर्ण पैने खड्गही जिनके दांत हैं, सो इस प्रकारके रामरूप सोते हुए सिंहको जगा देनेके योग्य आप नहीं हैं॥ ४७ ॥ हे राक्षसराज ! धनुरूप प्राणोंको हरण करने वाले ग्राहादिक हिंसक जन्तुओंसे युक्त बाहुद्वारा बाणोंके छोडने रूप दलदलसे भरे और बाणरूप तरंगोंसे युक्त घोर युद्धरूप जलसे भरे अति घोर राम रूप पातालके मुखमें कूदना तुमको उचित नहीं है ॥ ४८ ॥ इस कारण हे लंकेश्वर ! राक्षसेन्द्र ! प्रसन्न होओ और प्रसन्न होकर सीधे २ लंकाको चले जाओ और वहां जाकर नित्य अपनी स्त्रियोंके सहित सुखसे विहार करो । और भार्या सहित श्रीरामचन्द्रजी भी वनमें आनंद भोगें ॥ ४९ ॥ जब मारीचने इस प्रकार कहा तब दशवदन रावण लंकाको लौटकर अपने श्रेष्ठ गृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ ५० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मी०आदि०आरण्यकाण्डे भाषायां एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२.

इसी अवसरमें इधर इकले श्रीरामचन्द्रजीसे भयंकर कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षसोंको मरेहुए देखकर ॥ १ ॥ व खर दूषण और त्रिशिराको मारा हुआ देखकर शूर्पणखा मेघकी समान गंभीर शब्दसे गर्जने लगी ॥ २ ॥ औरके करनेके अयोग्य श्रीरामचन्द्रजीका किया हुआ कर्म देखकर अति उकसाके रावण पालिता लंका नगरीको शूर्पणखा गई ॥ ३ ॥ वहां जाकर देखा कि, महातेजस्वी रावण विमानपर बैठा है, देवतागण जिसप्रकार इन्द्रके निकट बैठे रहते हैं। मंत्रीगण वैसेही रावणके धोरे बैठे हैं ॥ ४ ॥ सूर्यकी समान प्रकाशित हुए सुवर्णमय श्रेष्ठ आसनपर बैठनेसे, सुवर्णमय वेदिमध्यगत प्रज्वलित अग्निकी समान उसकी शोभा होरही है ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व, भूत व महात्मा व ऋषि लोगोंके जीतने अयोग्य अति भयंकर मुँह वाये मानों दूसरा यमराजही बैठाथा ॥ ६ ॥ फिर देवताओं व राक्षसोंके मणियुक्त वज्र कक्ष घाव सहित, और ऐरावत हाथीके दांतोंसे बडाभारी चिह्न छातीमें विद्यमान ॥ ७ ॥ उसकी वीस भुजा व दशशीर, पोशाक बडी सुहावन मनभावन, चौडी छाती, और शरीर राजलक्षण युक्त ॥ ८ ॥ वह जो वैदूर्य मणि पहर रहाहै, उसकी देहकी कान्तिभी वैदूर्यमणिके सदृश थी कानोंके कुंडल तपाये हुए सुवर्णके बने, वीसों भुजा परम सुन्दर, दांतोंकी कतार अति सुन्दर, वदन मंडल अतीव महान्, आकार पर्वतको समान ॥ ९ ॥ देवताओंके सहित सैकडों संग्रामोंमें विष्णुचक्रके लगानेसे व और २ अनेक महा संग्रामोंमें अस्त्रोंके प्रहारसे बहुत भांति ताडित हुआ ॥ १० ॥ और उसके सब अंगभी देवताओं करके शस्त्रद्वारा घायल हुएहैं किसीसे चलायमान नहींहों ऐसे समुद्रोंकोभी खलबलानेकी जिसमें विशेष सामर्थ्य है, और शीघ्रही सब कार्य करनेवाला ॥ ११ ॥ पर्वतोंके कंगूरोंको उखाडडालनेवाला देवताओंका मर्दन करनेवाला सबधर्मोंका जडसे उखाडनेवाला पराई पतिव्रता स्त्रियोंका सत्य हरणकारी ॥ १२ ॥ दिव्यास्त्रोंका प्रयोजककारी और सर्व यज्ञ विघ्नकारी, भोगवती नगरीमें जाय नागराज वासुकिको जीत ॥ १३ ॥ तक्षक नामक सर्पको पराजयकरता हुआ उसकी प्रियस्त्रीको हरण करनेवाला कैलासपर्वतपर गमन करके नरवाहन कुबेरको जीतनेवाला ॥ १४ ॥ और उसका मनइच्छासे चलनेवाला पुष्पक विमान हरण करनेवाला; चैत्ररथ नामक दिव्यवन, नलिनी, नन्दन, कानन, ॥ १५ ॥ व

औरभी सबदेवताओंके उद्यानोंका विनाश क्रोधसे जिसने करदिया है. फिर उदय होते हुए महाभाग्य चंद्रमा व सूर्यको ॥ १६ ॥ दोनोंबाँहोंसे निवारण करनेवाला पर्वतोंके समान ऊंचा व वीर्यवान व दश हजार वर्ष वनमें तपकर ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीको अपने सब शिर काट २ कर जिसने चढादियेथे, देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पतंग, वा उरग ॥ १८ ॥ किसीके द्वाराभी जिसको मृत्युका भय नहीं जिसने केवल मनुष्योंको कुछ न समझ उनसे अभय नहीं माँगा, और ब्राह्मण लोग यज्ञोंमें मंत्र पढ २ कर जिसकी स्तुति करनेलगेथे ॥१९॥ यह महाबलवान् रावण होमशालामें गमन करकै पवित्र सोमको नष्टकरदेता और दक्षिणा देनेके समय यज्ञको ध्वंसकरदेता सर्वदा ब्राह्मणहननादिक क्रूरकार्योंको कियाकरता ॥२०॥ सदा प्रजागणोंका अहित आचरण करता कर्कशथा अनेक प्रकारकी पीडा देकर सब लोकोंका भय उपजानेवाला होनेकेकारण लोक उसको रावण कहा करतेथे ॥ २१ ॥ राक्षसी शूर्पणखाने अपने क्रूर महाबली भ्राताको देखा । वह रावण दिव्यवस्त्र, दिव्य गहने, और दिव्य माला पहर रहाथा ॥ २२ ॥ आसनपर भलीप्रकारसे बैठाथा, उस काल कालकी मूर्त्तिसा प्रतीत होताथा ऐसा राक्षसनाथ महाभाग पौलस्त्यकुलनंदन रिपुओंका नाश करनेवाला ॥ २३ ॥ इस प्रकारके गुणोंसे युक्त रावणको देख लक्ष्मणजीने जो नाक कान काट डालेथे इसकारण भयसे विह्वलहो, मंत्रियोंके बीचमें बैठेहुए रावणसे बोली ॥ २४ ॥ इस प्रकारकी निशाचरी जो कि श्रीरामचंद्रजीके द्वारा कुरूपको प्राप्त होगईथी जिसका नाम शूर्पणखा था वह निर्भय दारुण वचन कहती हुई लोभसे मोहित भय दिखाती हुई दीप्तिमान् बड़े नेत्र वाले रावणसे बोली ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकांडे भाषायां द्वात्रिंशः सर्गः॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३.

उस समय दीन होरही शूर्पणखा क्रोधयुक्तहो सब लोकोंके रुवानेवाले रावणसे मंत्रिगणोंके सामने कडुवे वचन कहने लगी ॥ १ ॥ कि, तुम स्वेच्छाचारी होकर सदाही कामभोगमें मतवाले रहते हो और तुम किसी विषयमें किसीकाभी निषेध करना या बाधा देना नहीं मानते । इसी कारण अवश्यही जाननेके योग्य

जो इस समय भयंकर विपद आ पहुँची है, तुम उसको नहीं जानते ॥ २ ॥ परन्तु जो राजा स्त्री इत्यादिक ग्राम्य भोग वस्तुओंमें सदाही आसक्त रहता, स्वेच्छचारी और लोभी होता है। प्रजागण मशानकी अग्निके समान उस राजाका आदर नहीं करते ॥ ३ ॥ जो राजा यथाकालमें अपने सब कार्योंको नहीं करता है। वह राजा और उसके कार्य न करनेसे अपने राज्य सहित विनाशको प्राप्त होता है ॥ ॥ ४ ॥ जो राजा स्त्रीआदिकोंके आधीन रहकर दूतोंको नियुक्त करके प्रजाका हाल नहीं जानता है। तौ हाथी जिस प्रकार दूरसेही दल २ वाली नदीको त्याग करके चले जातेहैं, प्रजा लोगभी वैसेही उस राजाको त्याग देते हैं ॥ ५ ॥ औरभी जो नृपति लोग अपने आधीनमें न आये हुए राज्योंको उपाय करके अपने वश नहीं कर लेते, वह समुद्रमें पडे हुये पर्वतोंकी समान प्रकाश को नहीं प्राप्त होते ॥ ॥ ६ ॥ एक तो तुम स्वभावसेही चंचल हो और दूसरे कुछ तुम आचारभी नहीं करते; भला फिर विशुद्धचित्त देव दानव और गन्धर्वोंसे वैर करके तुम किस प्रकार राज्य कर सकोगे ॥ ७ ॥ हे राक्षस ! तुम बुद्धिरहित हो, बालकोंकेसा तुम्हारा स्वभाव है और जिस बातको जानना उचितहै, उसको भी नहीं जानते भला फिर किसप्रकारसे अपने इस राज्यकी रक्षा कर सकोगे ? ॥ ८ ॥ हे विजयी श्रेष्ठ ! जिन राजा लोगोंके आधीन खजाना, दूत और नीति नहीं होती, ऐसे राजा लोग साधारण मनुष्योंके समान हैं ॥ ९ ॥ राजा लोग सब जगह अपने दूतोंको नियुक्त करकै सब दूरका वृत्तान्त मानों देखते रहतेहैं इसी कारण वह दीर्घचक्षु कहे जाते हैं ॥ १० ॥ हम जानतीहैं कि, तुमने कहीं भी दूतादि नहीं नियत कियेहैं और तुम साधारण बुद्धिवाले मंत्रियोंके साथ सदाही बैठे रहतेहो। इसीकारणसे निजजन और जनस्थानका जो नाश होगयाहै उसको तुम नहीं जानते ॥ ११ ॥ देखो ! अति कठिन कर्म करनेवाले रामचंद्रने इकलेही भयंकरकर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षस खर दूषणसहित मार डाले॥ १२॥ उन रामचंद्रने ऋषिगणोंको अभय करदियाहै समस्त दंडकारण्यको निष्कंटक और जनस्थानको भयभीत कर दियाहै॥ १३॥ परन्तु हे रावण ! तुम तो लोभी मतवाले और सदाही पराये आधीन रहनेवालेहो इसीकारण तुम नहीं जानते कि, तुम्हारे राज्यपर क्या भय आ पहुँचाहै ॥ १४ ॥ जो राजा अति तीक्ष्णस्वभाववाला, असावधान, गर्वित, शठ और अल्पदान करने-वाला होताहै, विपदके समय प्रजाभी उस राजाकी रक्षाकरनेके लिये कोई यत्न

नहीं करती ॥ १५ ॥ जो राजा अतिशय अभिमानी होता, क्रोध स्वभाव-वाला होता, और जो अपने आपही अपना गौरव करता है, कोई जिसकी बातको नहीं सुनते । विपदके समय उसके सगेही उसका नाश कर देतेहैं ॥ ॥ १६ ॥ जो राजा राजकार्यको अपने हाथसे नहीं करता और भय होनेपरभी नहींडरता, ऐसे राजाको शीघ्रही राज्यभ्रष्ट होना पडताहै और सबही कोई उसे तृणके समान जानने लगतेहैं ॥ १७ ॥ सूखे काठ ढेले और धूलसेभी बहुत कार्य होसकते हैं, परन्तु राज्यभ्रष्ट हुए राजासे कोई कार्यभी नहीं होसकता ॥ १८ ॥ पहराहुआ वस्त्र और मलगिजी माला जिसप्रकार किसीकार्यकी नहीं होती। राज्य भ्रष्ट राजाभी वैसेही शांतिसम्पन्न होकरभी निरर्थक कहाताहै ॥ १९ ॥ जो राजा प्रमादहीन, सर्वज्ञ भली भाँतिसे जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, और धर्ममें रतहोतेहैं वही राजप-दपर चिरस्थाई होतेहैं ॥ २० ॥ जो राजा नेत्रोंसे निद्रित होनेपरभी नीतिरूप नेत्र विस्तार करके जागतेरहतेहैं, और जिनका क्रोध, व प्रसन्नता कार्यके समय प्रगटहो, वह राजाही लोकसमाजमें पूजे जातेहैं ॥ २१ ॥ परन्तु हे रावण ! तुम कुबुद्धि और इन समस्त गुणोंसे रहितहो, कारण कि राक्षसोंका वह सर्व नाशहुआ और तुमने दूतोंके द्वारा उसका कुछभी वृत्तान्त न जाना ॥ २२ ॥ तुम केवल पराया अपमान करते हो सदाही भोगविलासमें मतवाले बने रहतेहो देशकालका निश्चय करना नहीं जानते और गुण दोषका विचार करनेका सामर्थ्य तुम्हारी बुद्धि नहीं रखती. इस कारण तुमको शीघ्रही विपदग्रस्त और राज्यभ्रष्ट होना पडेगा ॥ २३ ॥ धन, बल, और गर्वयुक्त राक्षसनाथ रावण शूर्पणखाको इस प्रकारसे अपने समस्तदोष कहतेहुए देखकर बुद्धिलगाय बहुतही देरतक मनही मन विचारतारहा ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी०आदि आरण्यकाण्डे भाषायां त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४.

शूर्पणखा मंत्रियोंकी सभाके बीचमें अनेक प्रकारके कटुवचन कहरहीहै यह देखकर रावणने क्रोधित होकर पूछा ॥ १ ॥ राम कौनहै ? उनका वीर्य, रूप और पराक्रम कैसाहै ? वह किस कारणसे इस दुस्तर दंडकारण्यमें आयेहैं ? ॥ २ ॥ उन्होंने जिनसे कि खर दूषण और त्रिशिरा आदि राक्षसोंको युद्धमें मार डाला वह उन रामचंद्रजीके आयुध कैसेहैं ? ॥ ३ ॥ हे मनोहर शरीरवाली ! तुमको

किसने विरूप करदिया ? सब यथार्थही कहो । जब राक्षसराज रावणने इस प्रकारसे कहा तब राक्षसी क्रोधसे मूर्छितहो ॥ ४ ॥ जैसेका तैसा ठीक २ श्रीरामचंद्रजीका वृत्तान्त कहने लगी । उसने कहा रामचंद्र दशरथके पुत्र कामदेवकी समान रूपवान् दीर्घबाहु और विशाल नेत्र, वल्कल व मृगचर्म धारण किये हुए ॥ ५ ॥ उनका धनुष इन्द्रके धनुषकी समानहै उसमें सुवर्णके बंद लगेहैं उस धनुषको खैंचकर ॥ ६ ॥ तेज विषवाले सर्पोंके समान प्रदीप नाराच रामचंद्र छोडतेहैं यह हमने नहीं देखा कि ॥ ७ ॥ धनुषको किस समयमें खैंचतेहैं, यहभी हमने नहीं देखा केवल इतनाही देखाहै कि बाणवर्षा करके वह संग्राममें राक्षसोंका संहार करतेथे॥८॥ जैसे इन्द्र अकालमें ओले वर्षाकर श्रेष्ठ अन्नका नाश कर देतेहैं इसीप्रकार भयंकर वीर्यवान् १४०००हजार राक्षसोंको॥९॥तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे अकेले पैदल रामचंद्रजीने मारडाला । केवल आधेही मुहूर्तमें खरको दूषणके सहित संहारकर॥१०॥ऋषिगणोंको अभयदे समस्त दंडकवनको मंगलमय करदिया॥११॥ उन आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामचंद्रजीने स्त्रीके वधकी शंका करकै, केवल नाक कानही काटकर हमहींको अकेला छोडाहै ॥१२॥ लक्ष्मण नाम रामचंद्रका छोटा भाई महातेजस्वी गुण और विक्रममें अपने बडे भ्राताकी तुल्यहै, वह उनकाही अनुरागी भक्तहै । वह अतिशयबुद्धिमान् बलवान्, और वीर्यवान्है ॥ १३ ॥ विक्रमवानहै, क्रोधाविष्टहै, सबहीके जीतनेवाले, और आप किसीसे जीते जानेके योग्य नहीं है और श्रीरामचंद्रजीके दहिनेहाथ, बरन् शरीरके बाहर रहने वाले प्राणहैं ॥ १४ ॥ और रामचंद्रजीकी जो स्त्रीहै उसके नेत्र बडे २ हैं और वदन पूर्णमासीके चंद्रमाकी समानहै, रामचंद्रको बहुत प्यार करतीहैं, और वह सदा पतिकी प्यारी और हितकरनेवाला कार्य करती रहतीहैं ॥ १५ ॥ उस यशस्विनी रामचंद्रजीकी स्त्रीके केश, नासिका, उरू और रूप अति उत्तमहै । वह मानों उस बनकी अधिष्ठात्री देवी और दूसरी लक्ष्मीकी समान विराजमान होरहीहैं ॥ १६ ॥ उनके वर्णकी ज्योति तपाये हुए सुवर्णकी समानहै, कमर पतली और नखोंकी पंक्तिका शिर लालहै । वह अतिशय सुन्दरता युक्तहैं और सब स्त्रियोंकी शिरोमणिहैं, उन्होंने विदेह वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै, और वह सीतानामसे संसारमें विख्यातहैं ॥१७॥ न देवी न गन्धर्वी न यक्षिणी, न किन्नरी किसीकीभी सुन्दरताई उनकी शोभाके संगमें नहीं चलसकती. यहांतक कि, कभी हमने इस पृथ्वीपर इस प्रकारकी रूपवान

रमणी नहीं देखी ॥ १८ ॥ वह सीता जिसकी स्त्रीहों, और वह जिसको हर्षमें भर कर भेंटे वह पुरुष समस्त प्राणी क्या, वरन् इन्द्रसेभी अधिकसुखसे जीवन बिताता है ॥ १९ ॥ सीताके सबही अंग सब लोकोंके प्रशंसा करनेके योग्यहैं और पृथ्वीमें उसका रूप अतुलनीयहै। वह सुशीला तुम्हारेही लायक भार्या है, और तुम उसकेही अनुरूप पतिहो ॥ २० ॥ उसके दोनों पयोधर ऊँचेहैं. जंघा अति विशालहै और मुखमंडल अतिश्रेष्ठहै उसको हम सोच विचार कर तुम्हारी स्त्री होनेके योग्य जानने गईथी ॥ २१ ॥ हे महाभुज! सो इस कार्यको करतेही हुए क्रूर लक्ष्मणने हमारे नाक कान काट डाले, उस पूर्णचन्द्रमुख वाली विदेहकुमारीको देखतेही ॥ २२॥ तुम फूलबाणधारीके पुष्प बाणोंका लक्ष्य बनोगे, यदि उसको अपनी स्त्री बनानेका तुम्हारा आशय हो तो शीघ्रही रामचंद्रके जीतनेको दहिना चरण आगे धरकर चलो॥ २३॥ हे राक्षसराज रावण! हमारा यह वचन यदि तुम्हें रुचाहो तो जो हमने कहा उसको चित्तसे शंका त्यागकर करो॥ २४॥ हे महाबल! तुम उनको असमर्थ और अपनेको समर्थ जानकर इस सर्वाङ्गसुन्दरी सीताको बनानेमें यत्नवान होवो ॥ २५ ॥ रामचंद्रजीने सीधे चलनेवाले बाणोंसे समस्त उन जनस्थानवासी राक्षसोंको खर दूषणके सहित मारडालाहै यह सुनकर अब जो कुछ कर्तव्यहो सो करो ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकांडे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५.

शूर्पणखाके यह रोमहर्षण वचन सुन कर्तव्य स्थिरकर मंत्रियोंकी सम्मति ले रावण जनस्थानमें जानेको तैयार हुआ ॥ १ ॥ गमन करनेके समय उस कार्यको भली भाँतिसे छानकर, और उसके सब विषयोंको भली प्रकार सोच विचार दोष गुणभी समझ लेता हुआ, बल, अबल सब जानलिया, उसने जानकीका हरलाना महात्मा रामचन्द्रसे वैर करनाही ठीक जांचा ॥ २ ॥ सब कर्तव्योंका मनमें निश्चय कर स्थिरबुद्धिहो प्रथम रमणीक यानशालामें गया ॥ ३ ॥ और यानशालामें पहुँचकर राक्षसराज रावण गुप्तभावसे सारथिसे बोला कि, शीघ्रही रथ तैयार करो ॥ ४ ॥ रावणके ऐसा कहतेही एक क्षणमें शीघ्रता करनेवाले सारथिने जो रथ रावणकी इच्छानुसार था उस रथको सजाया ॥ ५ ॥ रावण उस इच्छानुसार

कंचनसे बने हुए रत्नभूषित पिशाचवदनवाले खिच्चड जिसमें जुते हुए, ऐसे रथपर सवार हुआ॥६॥जब वह रथ चला तब उसका शब्द मेघोंके गर्जनेकी समान होता था । कुवेरका छोटाभाई राक्षसपति श्रीमान् दशानन उस रथपर चढ, नदनदीपति समुद्रकी ओर चला ॥ ७ ॥ रावणके ऊपर जो चमर और छत्र लगे थे वह दोनों श्रेष्ठ थे, रावणके देहकी कांति वैदूर्यमणिके समान नीली थी, वह सब तपाये हुए सुवर्णके भूषण पहरे हुए था ॥ ८ ॥ उसके दशमुख, दश गर्दन, और वीस भुजा थीं देवगणोंके शत्रु, और मुनियोंके हनन करनेको यह रावण साक्षात् दश कँगूरों करकै युक्त पर्वतराजसा दिखाई देता था॥९॥वह रावण उस यथेच्छाचारी विमान पर चढकर ऐसा शोभित हुआ मानों सौदामिनीके संग घन श्याम बगलोंकी पांतिके साथ गगनमंडलमें जाता है ॥ १० ॥ रावण चलते २ समुद्रके तीरपर पहुँचा बीचमें उसने बहुतसे पर्वत व समुद्रकी तलैटीके देश देखे वह स्थान अनेक प्रकारके पुष्प फल और वृक्षोंसे शोभायमान थे ॥ ११ ॥ शीतल मंगल जलयुक्त तलैयां वहांपर थीं. वेदीयुक्त और बडे २ आश्रमोंसे वह देश अलंकृत था ॥ १२ ॥ केलेका वन चारों ओर लगा, नारियलके पेड अलगही लह लहा रहे थे; और शाल, ताल, तमालादि नाना जातिके पुष्पित वृक्ष लगेथे ॥ १३॥ वह स्थान, जो सदा नियमित भोजनमें मग्न रहते ऐसे परमर्षियोंसे शोभायमान था. नाग, गरुड, गन्धर्व और सहस्रों किन्नरभी वहांपर थे ॥ १४ ॥ और कामदेवको जिन्होंने जीत रक्खाहै, ऐसे सिद्ध और चारणगणभी उस स्थानमें शोभित हो रहे थे,आज्य, धूम्र, वैखानस, सारव, वालखिल्य, मरीचि आदिसे व्याप्तथा ॥ १५ ॥ दिव्य वस्त्रा-भूषण दिव्य माला,और दिव्य रूप स्त्रियोंसे व्याप्त । क्रीडा व रतिकी विधि जानने वाली हजारों अप्सराओंके साथ सिद्धगण विहार करतेथे॥ १६॥ देवोंकी श्रीसम्पन्न स्त्रियांभी घूम रही थीं. अमृत पीनेवाले देव दानवोंके समूह भी इधर उधर फिरते थे॥ १७॥हंस, क्रौञ्च, मण्डूक और सारससमूह चारों ओर बोलरहेथे । वैदूर्यमणिके समान नीलवर्णके पत्थर वहांपर विराजतेथे और समुद्र तरंगोंकी हिलौरवश वह देश सदाही शीतल और स्निग्ध भावकरके युक्तथा ॥ १८ ॥ इन सब वस्तुओंके सिवाय, रावण दिव्यमालायुक्त, गीत और बाजोंकी ध्वनि जिसमें होरही ऐसे श्वेतवर्ण विशालविमानोंको चारों ओर देखने लगा ॥ १९ ॥ जिन लोगोंने अपने तपोबलसे अनेक लोकोंको जीत लियाहै, और इच्छाचारीविमानों पर जो बैठेहैं;

कुबेरके छोटे भाई रावणने जानेके समय मार्गमें उन गन्धर्वगणोंको अप्सराओंके साथ देखा ॥ २० ॥ वहांपर वनमें गोंद रसमूल सहित हजारों सुन्दर, नासिकाको अपनी सुगन्धिसे तृप्त करनेवाले चंदनके वृक्ष देखे ॥ २१ ॥ अगरके मुख्य वन उपवन अंकोल वृक्षोंके सुगन्धित पुष्पित और जायफलके फलित वन उपवनादि देखे ॥ २२ ॥ तमालनाम एक वृक्षके फूल, और काली मिर्चके गुल्मसमूह समुद्रके किनारे फूले व मोतियोंके समूह गिरे हुए देखे ॥२३ ॥ पर्वत व मूँगोंकी चट्टानोंके समूह व चांदी सुवर्णके शृंगभी रावणने देखे ॥ २४ ॥ सुविमल जल पूर्ण अद्भुत मनोहर सोते धन धान्यके सहित स्त्री रत्नयुक्त ॥ २५ ॥ हाथी घोडे सहित अनेक प्रकारके नगर देखते हुए, रावणने शीतल मंद सुगन्ध पवनसहित ॥ २६ ॥ सिन्धुराजका अनूप किनारा देखा, वह देखनेमें स्वर्गकेही तुल्य था, वहांपर सब ओरसे मुनियों करके सेवित मेघसम श्याम एक बरगदका वृक्ष देखा ॥२७॥ उसकी समस्त शाखा चारोंओर शत योजनके घेरमें फैल रहीथीं जहांपर पहले बडे शरीरवाले हाथी और कछुएको ॥२८॥ गरुडजी भोजन करनेके लिये, इस पेडकी एक शाखापर बैठेथे पक्षियोंके स्वामी गरुडजीके बोझसे उसकी एक डाली ॥ २९ ॥ जिसमें बहुत पत्र लगेथे टूट गईथी उसी शाखाका आश्रय कर वैखानस, माष, मरीचिपायी, वालखिल्य ॥ ३० ॥ और धूम्राख्य परमर्षिगण मिलकर तपस्या कर रहे थे। धर्मात्मा गरुडजी उन ऋषियोंके प्रति दया करके एक पैरसेही उस शत योजनकी ॥ ३१ ॥ टूटी हुई शाखाको पकड दूसरे पैरसे गज कच्छपको दबाय महात्मा उनका मांस खाकर ॥ ३२ ॥ उस टूटी हुई शाखाकी सहायसे समस्त निषाददेशको नाश करादिया इस प्रकार मुनिगणोंको बचाकर गरुडजी परमहर्षित हुएथे ॥ ३३ ॥ अनन्तर उस हर्षके वशहो गरुडजीका विक्रम दूना बढगया, तो इस कारण मतिमान गरुडजी अमृतके लानेका विचार करते हुए ॥ ३४ ॥ और लोहेके जालको तोड ताड रत्नमय श्रेष्ठगृह फोड फाड महेन्द्र भवनसे अमृतले आयेथे॥ ३५॥ सो इस समय कुबेरका अनुज रावण गरुडचिह्नित महर्षिगण सेवित सुभद्र नामक इस वट वृक्षको देखता हुआ ॥ ३६ ॥ वहांसे नदीपति समुद्रके दूसरी पार जाकर दूसरे वनमें परम पवित्र रमणीक एक निर्जन आश्रम रावणने देखा॥ ३७॥ रावणने देखा कि मारीच नामक निशाचर मृगचर्म और जटाजूट धारण करके नियताहार कर वहां वास करताहै ॥ ३८॥ राक्षस मारीच रावणको देखतेही मिला और यथा विधानसे विविध भांतिकी

अमानुषी भोग्य वस्तुओंसे रावणकी पूजा करताहुआ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भोजनकी सामग्री व जलसे स्वयं रावणकी पूजाकर मारीच अर्थ युक्त वचन बोला॥ ॥४०॥ राजन् राक्षसेश्वर ! आपकी और लंकाकी कुशलतो है ? फिर आप किस कारणसे यहां शीघ्रही पधारे हैं ॥ ४१ ॥ जब मारीचने ऐसा कहा तब वचन बोलनेमें चतुर महातेजस्वी रावणने इसप्रकार कहना आरंभ किया ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ३६.

तात मारीच ! कहताहूं श्रवण करो । हम बडे दुःखीहैं, तुमही विपदके समय हमारी परम गतिहो ॥१॥ जिस स्थानमें हमारा भाई खर और महाबाहु दूषण व बहन शूर्पणखा रहा करतीथी उस जनस्थानको तुम जानतेहीहो॥२॥ मांसका खानेवाला राक्षस त्रिशिरा व औरभी बहुत निशाचरगण युद्धमें उत्साही व शूरवीर ॥३॥ मेरी आज्ञा पालन करते हुए वहां वास करतेथे । वह सब निशाचरगण महावनमें धर्मचारी ऋषियोंके अनुष्ठानमें सदाही बाधा दिया करतेथे॥४॥ इन सब राक्षसोंकी संख्या १४००० चौदह हजारथी । वह सबही भयंकर कर्मकरनेवाले शूर युद्धमें उत्साही और खरके चित्तके अनुसार कार्य करने वालेथे॥५॥ इससमय जनस्थानके रहनेवाले महाबलवान खरइत्यादि राक्षस युद्धमें रामचंद्रके साथ॥६॥ विविध भाँतिके अस्त्र शस्त्र धारणकरके व दुर्भेद्यकवच बांधकर युद्धमें भिडेथे तब रामचंद्रने महाक्रोध करके॥७॥कुछभी कठोर वचन न कहकर धनुषपर बाण चढाय उनको छोड चौदह हजार उग्रतेजवान राक्षसोंको ॥ ८ ॥ मनुष्य रामचंद्रने खर व दूषणसहित सबको संग्राममें तीक्ष्ण दीप्तिमान नाराचोंसे संहार किया ॥ ९ ॥ और त्रिशिराकोभी मार दंडकवनको अभय करदिया । उस रामचंद्रका आचरणभी ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि उसके पिताने उसको निर्लज्ज जानकर स्त्रीसहित घरसे निकाल दियाहै ॥ ॥ १० ॥ वही दुःशील, कर्कश, तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभी, और अविजितेंद्रिय, क्षत्रियकुल कलंक रामचंद्र इस राक्षसोंकी सेनाका मार डालनेवालाहै ॥ ॥ ११ ॥ जो धर्मका त्याग और अधर्मका आश्रय करके सदाही प्राणियोंका अहित करनेमें रत रहतेहैं जिसने विना वैरही केवल अपने बलके घमंडमें

आय ॥१२॥ नाक कान काटकर हमारी बहन शूर्पणखाको विरूप करदिया। इस कारण जनस्थानसे उसकी स्त्री सीता जोकि देवताओंसेभी चढकर रूपमें है ॥१३॥ हम अपने विक्रमसे ले आवेंगे तुमको हमारी सहायता करनी होगी,तुम महाबलवान् सहायके साथ ॥ १४ ॥ व अपने भाइयोंके संग हम सारे देवताओंकोभी कुछ नहीं गिनते, तिससे हे मारीच ! तुम हमारे इस विषयमें सहायक हो क्योंकि तुम समर्थहो ॥ १५ ॥ तुम महाशूरहो और सब प्रकारकी माया जानतेहो, वीर्यमें, युद्धमें, दर्पमें और उपायमें तुम्हारी समान दूसरा कोई नहींहै ॥१६ ॥ हे निशाचर ! इसी कारणसे इस समय हम तुम्हारे समीप आयेहैं इस समय हमारी सहायता करनेके लिये जो कुछ तुमको करना होगा सो हम कहतेहैं; तुम श्रवण करो ॥१७॥ तुम चांदीकी विन्दियें युक्त स्वर्णके मृग बनकर रामचंद्रके आश्रममें जा सीताके सामने इधर उधर फिरना ॥ १८ ॥ सीता मृगरूपी तुमको देखकर निःसन्देहही अपने स्वामी रामचंद्र और लक्ष्मणसे यह कहेगी कि इस मृगको पकडदो ॥ १९ ॥ जब वह रामचंद्र और लक्ष्मण मृगको पकडनेके लिये आश्रमसे दूर निकल जाँयगे तब हम शून्य आश्रम पाकर सीताको सुखसहित निर्विघ्न ले आवेंगे, जिस प्रकार राहु चंद्रमाकी प्रभाको हरण कर लेता है ॥ २० ॥ जब उनकी स्त्री हर लीजायगी तब रामचंद्र शोकके मारे दुर्बल होजांयगे तब कृतार्थ होकर यथासुख और निःशंक चित्तसे रामचंद्रको संग्राममें जीतलेंगे ॥ २१ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनतेही महात्मा मारीचका मुख सूख गया और वह अतिशय भयभीत होगया ॥ २२ ॥ और चिन्ताके वश होकर अपने सूखे होठोंको जीभसे चाटने लगा और उसके नेत्र मानों निमेषहीन होगये। मारीच आरतभावसे मृतकतुल्य होकर रावणकी ओर देखता रहगया ॥ २३ ॥ वह पहलेहीसे महावनमें श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जानताथा। इसीकारणसे भयभीत और शंकितचित्तसे हाथ जोडकर रावणसे अपने व उसके हितके करनेवाले वचन बोला ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकांडे भाषायां षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७.

महातेजस्वी राक्षसराजके यह वचन सुन वाक्यविशारद मारीच उससे बोला ॥ ॥ १ ॥ हे राजन् ! मुँह देखी कहनेवाले लोग बहुत मिलतेहैं किन्तु सुननेमें कुप्यारे और वास्तवमें हितकारीहों ऐसे वचनोंके कहने सुननेवाले दोनोंही संसारमें कम मिलते हैं ॥ २ ॥ एकतौ तुमने दूतोंको नहीं नियुक्त कर रक्खाहै कि, जिससे सब स्थानोंका वृत्तान्त तुमको मिलता रहै, दूसरे तुम्हारा स्वभाव चंचल है । इसी कारणसे रामचंद्र जो साक्षात् महेन्द्र और कुबेरकी समान, महावीर्यवान् और श्रेष्ठ गुणों करके युक्तहैं इस बातको तुमने नहीं जाना ॥ ३ ॥ हे तात ! रामचंद्रसे वैर करनेमें क्या राक्षसकुलका मंगल होगा ? रामचंद्र क्रोधित होनेपर क्या सर्व लोक राक्षसोंसे शून्य नहीं कर सकतेहैं? ॥ ४ ॥ क्या जानकी तुम्हाराही नाश करनेके लिये तौ उत्पन्न नहीं हुईहैं?कहीं सीताके ले आनेका यह व्यौहार तुम्हारे दुःखका कारण नहो ? ॥ ५ ॥ तुम इच्छानुसार चलनेवाले और निरंकुश हो अर्थात् तुम्हारा कहने सुननेवाला कोई नहीं है । इस कारण तुम्हारे राजा होते समस्त लंका तुम्हारे और सर्व राक्षसोंके साथ क्या विनष्ट नहीं होगी ? अर्थात् अवश्य होगी ॥ ६ ॥ तुम्हारी समान जो राजा, बुरे शीलवाला पाप बुद्धि और इच्छानुसार चलनेवाला होताहै, वह राजा अपनेको, समस्त राज्यको अपने कुटुंबियोंको नाश करनेका कारण होता है ॥ ७ ॥ रामचन्द्र अपने पिता करकै नहीं त्यागे गये हैं । वह मर्यादा रहित भी नहीं है,अथवा लोभी,दुःशील और क्षत्रियवंशके नाशकभी नहीं है॥८॥कौसल्याकुमार अपनी माताके आनंदको बढाने वाले धर्मसे वा गुणोंसे हीन नहीं हैं; उनका तीक्ष्ण स्वभाव नहीं है । और वह सदा सब प्राणियोंका अहित करनेमें रतभी नहीं हैं बरन् सबका हितकरनेमें तत्परहैं॥९॥अपने सत्यवादी पिताको कैकेयी करके ठगा हुआ देखकर वह उनके सत्यकी रक्षा करनेके लिये रामचन्द्रजी वनको चले आये हैं॥१०॥और पिता दशरथ, व रानी कैकेयीका प्रियकार्य करनेकी वासनासे राज्यसुखको जलांजलि देकर श्रीरामचन्द्रजी दंडकारण्यमें आये हैं॥११॥ हे तात ! रामचन्द्र कर्कशस्वभाववाले भी नहीं हैं, मूर्ख भी नहीं हैं, अजितेन्द्रियभी नहीं हैं और मिथ्या कहना तो दूरहै, वह इस झुंठाईके प्रसंगमें भी नहीं हैं । सो उनके प्रति ऐसे वचन कहना आपको उचित नहीं है॥१२॥अधिक कहाँतक कहूं; रामचन्द्र धर्ममूर्त्तिहैं, साधु हैं; सत्यपराक्रमवान्हैं और इन्द्र जिसप्रकार देवता-

ओंके स्वामी हैं वैसेही वहभी सब लोकोंके राजा हैं ॥ १३ ॥ वह अपने तेजसे जनककुमारी जानकीजीकी रक्षा करते हैं तुम किस प्रकारसे उनकी जानकीजीको हरण करनेकी इच्छा करते हो ? क्योंकि उनके हरण करनेकी इच्छा करना मानों सूर्यकी किरणको हाथसे पकडना है ॥ १४ ॥ सब बाणही जिसकी शिखा हैं, धनुष और खड्ग जिसका ईंधन हैं, और जिसकी सीमामें गमन करना असंभव है सो उस रामरूप प्रज्वलित अग्निमें सहसा प्रवेश करना तुमको उचित नहीं है ॥ १५ ॥ धनुषका चढानाहीं जिसका प्रकाशित मुख है, बाणही जिसकी दीप्ति है इसीसे असह्य धनुर्बाण धारण किये; इसीसे तीक्ष्ण और शत्रुओंकी सेनाके संहार कर्ता ॥ १६ ॥ कृतान्त समान रामचन्द्रजीके सन्मुख राज्य सुख जीवन और अपना इष्ट छोडकर तुमको जाना उचित नहीं । यदि गये भी तो जातेही तुम्हारा नाश हो जायगा ॥ १७ ॥ उनके तेजकी तुलना नहीं है. जानकी उनकीही स्त्री है और सदाही उनके धनुर्बलका आश्रय करके वनमें वास करती है । तुम किसी भाँति भी जानकी को हरण नहीं कर सकोगे ! ॥ १८ ॥ सिंहके समान चौडी छातीवाले नरसिंह रामचन्द्रजी नित्य अनुगत सीताजीको प्राणसे भी प्यारी समझते हैं ॥ १९ ॥ प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजस्वी रामचन्द्रजीकी प्रिय स्त्री श्यामा अवस्थावाली जानकीको हरलानेकी किसीको भी सामर्थ्य नहीं है ॥ २० ॥ हे राक्षसराज ! तुम्हारा इस निरर्थक उद्यमसे प्रयोजन क्या है ? जो वनमें रामचन्द्रजी कहीं तुम्हें मिलभी गये तो वहीं तुम्हारे जीवनकी इतिश्री होजायगी ॥ २१ ॥ देखो राज्य सुख प्राण यह इस संसारमें महादुर्लभहैं इससे जो सुखभोग किया चाहो तो रामचंद्रजीसे वैरभाव न करो अब यहांसे जाय सब विभीषणादि मंत्रियोंके साथ ॥ २२ ॥ सलाहकर अपना मतभी स्थिरकर गुण दोषोंको विचार रामचंद्रजीके और अपने बलको जांचकर ॥ २३ ॥ फिर रामचंद्रजीके बलमें अपना बल मिथ्या जान मेरी रायमें तो तुमको चुप रहना उचितहै। बस तुम्हारा हित इसीमें होगा हमारे इन कडे वचनोंको जो मैंने आपका हित करनेके लिये कहेहैं क्षमा करना ॥ २४ ॥ हमें कौसल्याधिप दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजीके साथ तुम्हारा युद्धमें समागम करना अच्छा नहीं लगता, इसकारण हे राक्षसनाथ ! फिरभी तुम्हारे हितकी युक्तियुक्त वार्ता कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा०वा०आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ३८.

मैं एक समय अपने बलवीर्यके घमंडके मारे पृथ्वीपर घूमता हुआ फिरताथा मेरे पर्वतकी समान शरीरमें सहस्र हाथियोंका बलथा ॥ १ ॥ हाथमें परिघ आयुध लिये मस्तकपर किरीट कानमें तपाये हुए सोनेके बने कुण्डल पहरेथा । मेरे देहकी कान्ति नीले बादरोंके समानथी इसप्रकारकी अवस्थामें लोकोंको भय उपजाताहुआ ॥ २ ॥ मैं दंडक वनमें घूम २ कर ऋषिलोगोंका मांस भक्षण करताथा । अनन्तर धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्रजी मेरे भयसे भीत होकर ॥ ३ ॥ स्वयं जाकर राजा दशरथसे यह बोले कि, अमावस्या और पूर्णमासीको जब हम समाधि अवस्थामें रहेंगे उस समय इन रामचंद्रको हमारी रक्षा करनीहोगी ॥ ४ ॥ हे राजन् ! मारीच राक्षससे हमको घोर भय उत्पन्न हुआहै । जब ऋषिने इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा राजा दशरथ ॥५॥ उन महर्षि महाभाग विश्वामित्रको प्रत्युत्तर देते हुए कि,रामकी अवस्था अभी सोलह वर्षसेभी कमहै और अस्त्रविद्याभी अभी इन्हें नहीं आती ॥६॥ इसकारण इनको नहीं देसकते परन्तु तुम्हारा कार्यकरनेके लिये हम अपनी बडी भारी चतुरंगिनी सेना सहित चलकर वहां उस निशाचरको ॥ ७॥ यमलोकमें पठावेंगे जोकि आपका शत्रुहै, जिसका संहार करना आपको अभीष्टहै, विश्वामित्रजी राजा दशरथजीके यह वचन सुन उनसे बोले ॥ ८ ॥ यद्यपि यह सत्यहै कि, आप संग्राममें देवताओंकेभी रक्षक हो और तुम्हारा किया कर्मभी तीनों लोकोंमें प्रगटहै परन्तु रामचंद्रके सिवाय और किसीका बलभी इस राक्षसका नाश करनेमें समर्थ नहीं होगा, इस कारण हे परंतप ! तुम्हारी जो बडी भारी चतुरंगिनी सेनाहै वह यहीं रहै ॥ ९ ॥ १० ॥ यह महातेजस्वी रामचंद्र बालक होनेपरभी राक्षसोंका नाश करनेमें समर्थ होंगे इससे हम इनको लेजाँयगे । हे राजन् ! तुम्हारा कल्याणहो ॥ ११ ॥ महर्षि विश्वामित्रजी यह कहकर श्रीरामचंद्रजीको साथले परमप्रीतियुक्त हो अपने सिद्धाश्रममें आये ॥ १२ ॥ तिसके पीछे जब महर्षि विश्वामित्रजी यज्ञ करनेके लिये दीक्षित हुए, तब श्रीरामचंद्रजी विचित्र धनुषकी टंकार करतेहुए विश्वामित्रजीके समीप आये ॥ १३ ॥ उनके गलेमें सुवर्णकी माला मस्तकपर अलकें हाथमें धनुष, दोनों नेत्र परम सुन्दर, एक मात्र जांघिया पहरे ब्रह्मचारीशरीर श्यामल वर्ण और अति सुन्दरताईसे शोभायमान, तबतक उनके रेख इत्यादि पुरुषचिह्न नहीं प्रगट हुएथे ॥ १४ ॥ वह अपने तेजसे

समस्त दंडकारण्यको सुशोभित करकै द्वितीयाके चंद्रमाकी समान उदय होते हुए दिखलाई देने लगे ॥ १५ ॥ उस समय हम तप्तकाञ्चन कुण्डलधारी, मेघका रंग धारण करकै ब्रह्माजीके दिये हुए वरप्रभावसे बल मदसे दर्पित हो विश्वामित्रजीके आश्रममें आये ॥ १६ ॥ मैं जैसेही उनसे छिपकर हथियार लेकर आया वैसेही हमको आया हुआ देखतेही श्रीरामचंद्रजीने तत्क्षणात् आयुध उठाकर हर्षित हो धनुषपर शर चढाया ॥ १७ ॥ बहुतही मोहवश होनेके कारण हमने बालक समझ उनको ध्यानमें न लाकर बड़ी शीघ्रतासे विश्वामित्रजीकी यज्ञवेदीके ऊपरको दौडे॥ ॥ १८ ॥ यह देखकर श्रीरामचंद्रजीने शत्रुओंके मारनेवाले तीखे बाणोंको चला हमें घायल कर शत योजन दूर समुद्रमें फेंक दिया ॥ १९ ॥ हे तात ! हमारे मारनेकी इच्छा उस समय उनको नहीं थी इसीकारणसे उन्होंने उस समय हमको संहार न कर रक्षा की तिसके पीछे हम रामचंद्रजीके बाणवेगसे मूर्च्छित होकर उतनी दूर चलेगये ॥ २० ॥ गंभीर समुद्रके जलमें गिरे और बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त कर लंकामें आये ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे हमने तो रक्षा पाई । परन्तु कठिन कर्म करनेवाले रामचंद्रने अशिक्षितास्त्र और बालक होनेपरभी हमारे सहायक सब राक्षसोंको मार डाला ॥ २२ ॥ इसी कारणसे निवारण करताहूं, कि यदि तुम रामचंद्रजीके साथ युद्ध करोगे तो भयंकर विपदमें पडकर नाशको प्राप्त होजाओगे ॥ २३ ॥ और अपने आप यत्न करके समाज उत्सवोंके देखनेवाले और क्रीडा रतिकी विधि जाननेवाले राक्षसोंके कारण वृथा संताप बटोरोगे ॥ २४ ॥ बस सीताहीके लिये, अटा और अटारि, वा धवरहरोंसे पूर्ण नानारत्नभूषिता लंका नगरीको तुम नाशवान देखोगे ॥ २५ ॥ जिस प्रकार किसी तालावमें सर्प होतेहैं तो वहांकी बिचारी मछलियांभी गरुड करकै मारडाली जातीहैं; इसी प्रकार जो लोक पाप नहीं करते, ऐसे शुद्धात्मा पुरुषभी, पापात्माके आश्रयमें रहनेसे उस पापात्माके पापसे विनाशको प्राप्त होतेहैं॥२६॥इस कारण तुम देखोगे कि तुम्हारे निजके दोषसे दिव्य चंदन शरीरमें लगाये हुए, दिव्य वस्त्राभूषण पहरे हुए निशाचर गण समूल भूमियोंमें गिरेंगे ॥ २७ ॥ और मरनेसे बचे आश्रयरहित राक्षस गण कोई स्त्री रहित हो कोई स्त्रीके सहित दशों दिशाओंको भागेंगे ॥ २८ ॥ तुम शरजालसे छाई हुई अग्निकी शिखासे पीडित हुई, ऐसी लंकापुरीके सबही गृह एकही कालमें भस्म हुए देखोगे ॥ २९ ॥ क्योंकि पराई स्त्रीके हरनकरनेकी तुल्य

और कोई भारी पाप नहीं है। हे राजन्! तुम्हारे रनवासमें सैकडों हजारों स्त्रियां विराजमान हैं ॥ ३० ॥ तुम अपनी ग्रहणकीहुई उनही समस्त स्त्रियोंमें आसक्त रहकर अपने वंश, अभीष्ट प्राण, राज्य, संपद, मान और राक्षसकुलकी रक्षा करो॥ ॥ ३१ ॥ यदि परमसुन्दरी स्त्रियें और मित्रोंके साथ सदाही सुख भोगनेकी इच्छा करतेहो तौ रामचन्द्रका अप्रिय कार्य मत करो ॥ ३२ ॥ हम तुम्हारे सुहृदहैं इसी कारण वारंवार तुमको निवारण करतेहैं यदि इतनेपरभी तुम बलपूर्वक सीताको हर लाओगे तौ निश्चयही तुमको रामबाणसे बन्धु बान्धवों सहित, क्षीणबल और क्षीणप्राण होकर यमराजके भवनमें जाना पडेगा ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० आरण्यकाण्डे भाषायां अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९.

उस कालमें तौ हम किसी प्रकारसे रामचंद्रजीके द्वारा इस भाँति युद्धमें छूट गयेथे, इस समय वह कहताहूं जो अब हुआहै, सो तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ जब दो मृगरूपी राक्षसोंके साथ हम दंडकारण्यको गये वहांभी इसीप्रकार पराजित हुए॥ ॥ २ ॥ जब हम दंडकारण्यको गयेथे तौ हमारी बडी अग्निके समान तौ जिह्वाथी बडे तीखे दांतथे, बडे २ सींगथे, महाबलवान् भयंकर रूप था, और दंडकारण्यमें मांस खातेहुए महामृगरूप से हम विचरण करतेथे ॥ ३ ॥ फिर जहां २ तीर्थरूपी वृक्षथे, अग्निहोत्र होतेथे, वहींपर तपस्वियोंको संहार भक्षण करतेहुए हम घूमतेथे ॥ ॥ ४ ॥ उस दंडकवनमें धर्मात्मा ऋषिगणोंको संहार २ उनका रुधिर पान करके मांस खा जातेथे ॥ ५ ॥ और महा कुटिल स्वभाववाले हो जो कोई मिलता उसे भय उपजाते, इस भांति रुधिर पीनेसे मतवाले हो हम दंडकवनमें घूमतेथे ॥ ६ ॥ जब तपस्वी धर्मका अवलंबनकिये हुए रामचंद्रको हमनें पीडित किया जब कि वह वनमें फिरतेथे ॥ ७ ॥ व महाभाग्यवाली जानकीजीकोभी डरवाया, तब महारथी, तपस्वीरूप सब प्राणियोंका हित करनेमें तत्पर लक्ष्मणजीकोभी पीडित किया ॥ ८ ॥ फिर महाबलवान् वनमें घूमनेवाले, रामचंद्रजीको तपस्वी मान पहले वैरका स्मरण कर ॥ ९ ॥ मारडालनेकी इच्छासे क्रोधित हो, यद्यपि उनके पराक्रमको जानतेथे तथापि अपने बडे २ सींग आगेको झुकाय मृगरूपसे उनपर धावमान हुए ॥ १० ॥ तब उन्होंने कानके समीपतक धनुषको खेंचकर तीन नाराच

हम तीन मृगोंके ऊपर चलाये, वह बाण गरुड व पवनकी गति समान चले ॥ ॥ ११ ॥ वह वज्रसम आकार वाले अति घोर रक्त पीनेवाले बाण हम तीनोंके ऊपर आगमन करनेलगे ॥ १२ ॥ हम बडे मूर्खथे, पहलेही रामचंद्रसे भय देखकर उनका पराक्रम भली भाँति जानतेथे तौभी लडे, परन्तु हम तो उनका पराक्रम जान भागकर किसी रीतिसे बचगये ! परन्तु वह हमारे सहाई राक्षस रामचंद्रजीके दो बाणोंसे मारे गये ॥ १३ ॥ हे रावण ! हम किसीप्रकारसे रामचन्द्रजीके बाणसे अपने प्राणोंको बचा तबसे तपस्वीका धर्म ग्रहणकर चित्तको रोके हुए इस स्थानमें योगका अवलंबन करके तपस्या करतेहैं ॥ १४ ॥ तबसे हम फांसी हाथमें लिये यमराजकी समान उन चीर व मृगचर्म धारण किये धनुषधारी रामचन्द्रको मानो प्रत्येक वृक्षके तले देखतेहैं ॥ १५ ॥ हम भयके मारे भीतहो निरन्तर सहस्रों रामको जहां तहां देखतेहैं। इस समस्तही वनमें मानो श्रीरामचंद्रजी हमको दिखाई देरहेहैं ॥ १६ ॥ हे राक्षसेश्वर ! हम रामचन्द्र करके रहित स्थान में भी, बराबर केवल उन्हीं रामचंद्रको देखतेहैं ! वरन् स्वप्नमेंभी उनको देखकर मैं डरके मारे जागतेकी समान इधर उधर दौडने लगताहूं ॥ १७ ॥ हे रावण ! हम तुमसे अधिक कहांतक कहैं कि हम रामचन्द्रसे यहांतक डर गये हैं कि–रत्न, रथ, इत्यादि जिन शब्दोंके आदिमें रकारहै उन शब्दोंके श्रवण करनेसेभी हमें डर लगताहै * ॥ १८ ॥ हम भली भाँति उन रघुनंदन रामचन्द्रजीके पराक्रमको जानते हैं। इस कारणसे उनके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है । वह राम बलि, अथवा नमुचिको संहार करनेमें भी समर्थ हैं ॥ १९ ॥ हे रावण ! तुम रामचन्द्रके सहित युद्ध करो वा न करो, परन्तु यदि हमको देखनेका अभिलाष करतेहो तौ हमारे साथ श्रीरामचन्द्रजीकी वार्त्ता मतकरो नहीं तौ हम यहांसे चले जाँयगे॥ २० ॥ इस लोकमें धर्मका अनुष्ठान करनेवाले योगयुक्त होकरभी बहुतसे पुरुष पराया अपराध करनेसे सपरिवार विनाशको प्राप्त हुए हैं ॥ २१ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे अपराधसे हमको नाश होना पडेगा. हे निशाचर ! जो तुम्हारी इच्छाहो सो करो, परन्तु हम तुम्हारे साथ नहीं चलेंगे, हमें अपने प्राण प्यारेहैं ॥ २२ ॥ वह महातेजवान् महाबुद्धिमान्, महाबलवान् रामचन्द्रजी वास्तवमेंही निशाचरों के कालहैं ॥ २३ ॥

---

* "दोहा" रावण राके सुनतही, रहत न मोहिं तन प्राण। तिन रघुनंदनसों न छल, करहु वचन मम बान ॥

यद्यपि पहले जनस्थानका रहनेवाला अपावन खर, शूर्पणखाके लिये रामचन्द्रसे मार डाला गयाहै, परन्तु इस विषयमें रामचन्द्रजीका क्या अपराध है सो तुम्हीं सत्य २ कहो ॥ २४ ॥ तुम हमारे बन्धुहो इस कारणसे हमने तुम्हारे मंगलकेही लिये यह सत्य वचन कहे, यदि तुम हमारे वचनोंको न मानकर रामचन्द्रसे वैर करोगे तो निश्चयही बन्धु बान्धवों सहित रामचंद्रजीके बाणोंसे युद्धमें विनाशको प्राप्तहो तुमको प्राणपरित्याग करना पडेगा ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०आदि०आरण्यकांडे भाषायां एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥ ३९॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०.

जिस प्रकार मृत्यु जिसकी निकटहै ऐसा रोगी औषधि ग्रहण नहीं करता ऐसेही सहनेके योग्य व उचित मारीचके वचन रावणने ग्रहण नहीं किये ॥ १॥ उस काल प्रेरित निशाचरपति रावणने मंगलजनक और युक्तियुक्त संग वचन कहने वाले मारीचसे अयोग्य व कठोर वचन कहे ॥ २ ॥ हे मारीच ! तुमने जो यह राजप्रतिकुलवचन हमसे कहे, यह अयोग्यहैं और ऊसरमें बीजबोनेकी समान ॥ ३ ॥ तुम्हारे वचन मुझे युद्धमें रामसे नहीं हरासकते कारण कि, वह मूर्ख पापशील और साधारण मनुष्यहैं ॥ ४॥ निष्फलहैं जो पुरुष साधारण स्त्रीके कहनेसे माता, पिता, राज्य और सुहृद्गणोंको छोडकर एकसाथ वनमें चला आयाहै यह मूर्खता नहीं तो क्याहै ॥ ५ ॥ सो हम तुम्हारे सामने अवश्यही युद्धमें खरका नाशकरनेवाले उस रामकी प्राणसे अधिक प्यारी भार्याको हरण करेंगे ॥ ६ ॥ रेमारीच ! हमने अपनी बुद्धिसे अपने हृदयमें ऐसा निश्चय करही लियाहै, सो इन्द्रके सहित सुरासुरगणभी इसके विरुद्ध नहीं कर सकते । अर्थात् हमको इस संकल्पसे नहीं हटा सकते ॥ ७ ॥ यदि हम इस कार्यकेविषयमें कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चय करनेको तुमसे पूछते, तब तुमको उसके दोष, गुण, हानि, लाभ उपाय; इत्यादि कहने उचितथे ॥ ॥ ८ ॥ जो ज्ञानवान मंत्री अपने ऐश्वर्यके अभिलाषी होतेहैं वह राजा करके पूजे जानेपर हाथ जोड पूछे हुए विषयका उत्तर नम्रतासे निवेदन करतेहैं ॥९ ॥ कारण कि, राजाओंके समीप, उपचार युक्त मनोहर, मंगलजनक अप्रतिकूल वचनही कहने ठीकहै ॥ १० ॥ मंगलजनक वचनसेभी यदि अपमान होता हो तो माननीय

राजालोग उस सन्मान रहित वचनोंको सुन प्रसन्न नहीं होते अथवा ग्रहण नहीं करते ॥ ११ ॥ हे निशाचर! अमिततेजस्वी महात्मा भूपतिलोग, अग्नि, इन्द्र, चंद्र, यम और वरुण इन पंच देवताओंका रूप धारण करतेहैं ॥ १२ ॥ इससेही हे मारीच! उनमें अग्निकी गरमाई, इन्द्रका पराक्रम; चंद्रमाकी शीतलताई, यम, राजकी समान दंडता, और वरुणके समान प्रसन्नता होती है ॥१३॥ इस कारणसे सबही अवसरमें पूजा व सन्मान करना योग्यताहै। तुम धर्मका विषय कुछभी न जानकर केवल मायाकेही आधीन हो रहेहो ॥ १४ ॥ इसीसे तुम्हारे गृहमें आने परभी तुमने हमारी पूजा न की, बरन् दौरात्मके वश होकर ऐसे कठोरवचन कहताहै हे राक्षस! हमने तुमसे इस कार्यके गुण नहीं पूछे न यह कि इस कार्यका करना कर्तव्यहै. अथवा नहीं ॥ १५ ॥ हे अमितविक्रम! हमने तो तुमसे यही कहाथा कि तुम इस कार्यमें हमारी सहायता करो ॥ १६ ॥ यह मेरे वचनानुसार जो कार्य तुमको करनाहोगा हम उसको कहतेहैं तुम श्रवणकरो कि तुम रजतबिन्दु विचित्र सुवर्ण मृग होकर ॥ १७ ॥ उन रामचंद्रके आश्रममें जायकर विदेहराजकुमारी सीताके सामने विचरणकर उनको लुभा अपने अभिलषित स्थानमें चले जाओ ॥१८॥ जनककुमारी सीताजी तुमको मायामयको सुवर्णका देखकर विस्मयको प्राप्त हो रामसे शीघ्र मृगके ले आनेको कहेगी॥१९॥तिसके पश्चात् जब काकुत्स्थनंदन राम आश्रमसे बाहर आकर तुम्हारे पीछे धावैं तब तुम उनको बहुत दूर तक ले जाना, और वहां ठीक रामचंद्रजीके बोलसा शब्द बनाकर बडे जोरसे "हा सीता हा लक्ष्मण!" ऐसा वचन उच्चारण करना ॥ २० ॥ तब ऐसा शब्द सुन करके सीता प्रेरणासे, व भाईकी सुहृदताके प्रेमसे, लक्ष्मणजीभी सम्भ्रान्तचित्तहो रामके निकट चले जायँगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार राम लक्ष्मण दोनोंही जब उस आश्रमसे चले जाँयगे, तब हम सीताको सुखसे हरणकरेंगे! जिस प्रकार इन्द्रने शचीका हरण कियाथा ॥ २२ ॥ हे सुव्रत निशाचर! मारीच! तुम इस प्रकार कार्यके पूरा करके जहां इच्छाहो वहां चले जाना। इस कार्यके पूरा होनेपर हम तुमको आधा राज्य देंगे ॥ २३ ॥ हे शुभदर्शन! तुम इस कार्यको पूर्ण करनेके लिये दंडकारण्यके मार्गमें मंगल सहित चलो, हमभी रथपर चढकर तुम्हारे पीछे २ चलतेहैं ॥ २४॥ हम रामको ठगकर बिना युद्ध किये सीताको प्राप्तकर कृतकार्य हो फिर लंकापुरीको तुम्हारे सहित लौटेंगे ॥२५॥ हे निशाचर! मारीच! यदि तुम हमारे वचनोंके

प्रतिकूल करोगे तो अभी हम तुमको मार डालेंगे, यह मेरा कार्य बलसे तुमको अवश्य करना होगा कोई पुरुष राजाके विरुद्ध आचरण करकै सुख संपत्ति नहीं पासकता ॥ २६ ॥ रामचन्द्रके निकट जानेसे तुम्हारे जीवनमें संशय मात्र है, परन्तु हमारे साथ विरुद्धाचरण करनेसे इसी समय तुम्हारी मृत्यु निश्चय होगी, सो अपनी बुद्धिसे यथोचित विचार कर इस विषयमें जो कर्त्तव्य हो सो करो ॥ २७॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१.

मारीच राक्षसपति रावण करके राजाकी समान मनोगत विषयमें आज्ञा पाकर शंका रहित चित्तसे यह कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे निशाचरराज ! किस पाप कर्म करनेवाले पुरुषने तुम्हें राज्य मंत्रिवर्ग, और पुत्रोंके सहित विनाश होनेका यह उपदेश दियाहै ? ॥ २॥ कौन पापात्मा तुम्हारे सुखसे सुखी नहीं होसकताहै? किस पापीने उपायके छलसे यह तुम्हारी मृत्युका उपाय तुम्हें बतला दियाहै ? ॥ ॥ ३ ॥ हे राक्षसनाथ ! तुम्हारे हीन वीर्य शत्रु लोग, निश्चयही बलवान् पुरुषके साथ तुम्हारा विरोध कराकर तुम्हारा नाश होता देखनेके अभिलाषी हुए हैं ॥ ४॥ हे रावण ! किस दुष्ट बुद्धि वालेने तुमको ऐसा उपदेश दियाहै ? उस दुष्टका यही अभिलाषहै कि तुम अपने कर्मोंके प्रभावसेही नाशको प्राप्त होओ ॥५॥ हे रावण ! मंत्रिगण किसी प्रकारसे मार डालनेके योग्य नहीं होते, परन्तु जो खोटे रस्ते में चलनेसे तुमको नहीं रोकते, वही मारडालनेके योग्यहैं ॥ ६ ॥ देखो तुम कामके वश होकर खोटे मार्गमें चलना चाहतेहो, और तुम्हारे मंत्री तथापि तुमको सब प्रकारसे नहीं रोकते श्रेष्ठ मंत्रियोंको राजा कुमार्गसे निगृहीत करना चाहिये ऐसा करनेसे राजा समझ सकतेहैं ॥ ७ ॥ हे निशाचर ! हे विजय करने वालोंमें उत्तम! मंत्रिगण अपने स्वामीकीही प्रसन्नतासे, धर्म, अर्थ, काम व यशको प्राप्त होतेहैं ॥ ८ ॥ और जो स्वामीकीही प्रसन्नता न हुई तो सबही व्यर्थ जाताहै और स्वामीके गुणोंमें विकार होनेके कारण सबही दुःख पातेहैं; और प्रजापरभी महाभय प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ नरपाल प्रजाओंके यश व धर्मकी प्राप्तिके मूलहोतेहैं ! इस कारण सबही अवस्थामें भलीभाँति राजाकी रक्षाकरनी ठीकहै ॥ ॥ १० ॥ हे निशाचर ! अति तीक्ष्ण स्वभाववाला सबका अनभल चाहनेवाला

महात्माओंके आगे नम्रतासे नहीं रहनेवाला राजा राज्यका पालन नहीं कर सकता है ॥ ११ ॥ जो मंत्री लोग बडी कठोर आज्ञा राजासे कहकर प्रकाशित करा देतेहैं, फिर वे लोगभी राजासे दुःख पातेहैं। जैसे अयोग्य ऊंचे रथ हांकनेवाले मंदबुद्धि सारथीभी मालिकके साथ रथगिरनेसे नष्ट होतेहैं ॥ १२ ॥ इस लोकमें अनेक मनुष्य उचित धर्मानुष्ठान किये अपने पदके योग्य पराये अपराधसे बंधुबांधवोंसहित नाशको प्राप्त हो गयेहैं ॥१३॥ हे दशानन ! प्रजा प्रतिकूलाचारी तीक्ष्णस्वभाव राजाकरके रक्षमान होकर, सियारों करके रक्षित शशाआदि मृग गणोंकी नाईं आगे प्रजा वृद्धिको प्राप्त नहीं होती॥१४॥अरे रावण! तुम खोटी बुद्धिवाले हो, इन्द्रियोंके वश हुए हो, कैडे स्वभाववाले हो ऐसे जो तुम जिनके राजाहो वह समस्तही निशाचर अवश्यही मृत्युके ग्रास हो जाँयगे ॥१५॥ जिससे कि तुम ससैन्य भावना कीहुई मृत्युसे भरेहुए शोचनीय हो, वैसेही तुम्हारा हमारे ऊपरभी काकतालीय न्यायकी समान अकस्मात् यह घोरदुःख आन पडाहै ॥ १६ ॥ रामचंद्रजी हमको मारकर फिर तुम्हारा संहार करेंगे। युद्ध करके शत्रुके हाथसे मारे जानेपर हम तो कृतार्थ होजाँयगे ॥१७॥ परन्तु तुम निश्चय जानों कि,हम तो रामको देखतेही मरे धरेहैं और यहभी भलीभाँति समझ रक्खो कि सीताको हरणकरतेही तुमभी अपने परिवारसहित मारे जाओगे ॥ १८ ॥ यदि हमारे साथ मिल रामचंद्रजीको धोखादे तुम सीता महारानीको आश्रमसे लेभी आये, तौ हमारी, तुम्हारी,लंकापुरी, व निशाचर गणोंकी किसीकीभी रक्षा न होगी ॥ १९ ॥ यदि तुम हमारे इन हित कारी वचनोंको न सुनकर ऐसा कार्य करनेसे नहीं रुकोगे तो तुम्हारा नाश हो जायगा क्योंकि जिस मनुष्यकी आयु क्षीण होजातीहै वह किसी सुहृद्के हितकारी वचनोंको नहीं माना करता ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आ० आरण्यकांडे भाषायां एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२.

मारीचने राक्षसराज रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर, फिर उसके भयसे भीतहो यहभी कह दिया कि अच्छा हम चलतेहैं ॥ १ ॥ वह धनुर्बाणधारी, और खड्ग धारण किये हुए रामचंद्रजी आयुध उठाकर हमारी ओर व तुम्हारी ओर देखैं तौ तुम अपने व हमारे प्राण गएही जानो ॥ २ ॥ हे तात ! रामचंद्रजीसे कैसाही

पराक्रम प्रकाश कर कोईभी जीवित नहीं लौट सकता फिर हम तौ तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचंद्रके बाणोंसे मृत्युको प्राप्तहो तुम्हारेही समान होजायँगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायँगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे ऊपर अपनी सामर्थ्य प्रकाश करकै जीताहुआ रहना संभव नहीं क्योंकि तुम अतिदुरात्माहो ! हम तुम्हारा करही क्या सकतेहैं ? हे राक्षसराज ! तुम्हारा मंगलहो हम चलतेहैं ॥ ४॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परमहर्षित हो उससे भली भाँति भेटा और यह वचन बोला ॥ ५ ॥ कि तुमने हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेको कहा तब यही वचन तुम्हारा वीरोचित हुआ । पहले तुम एक साधारण मारीच राक्षस थे पर अब तुम हमारी समान हुए ॥ ६ ॥ अब तुम हमारे साथ शीघ्रही इस रत्नविभूषित अंतरिक्षमें टिके हुए रथपर जिसमें कि पिशाचोंकी समान खच्चर जुत रहेहैं बैठो ॥ ७ ॥ फिर वहां पहुँचकर विदेहराज-कुमारी सीताको लुभाकर इच्छानुसार स्थानमें चल देना । तब हम राम लक्ष्मण सहित शून्य आश्रममें प्रवेश करकै बलपूर्वक सीताको हर लावेंगे ॥ ८ ॥ ऐसा सुनकर ताडकातनय मारीचने कहा कि, बहुत अच्छा चलिये । तत्पश्चात् रावण व मारीच विमान समान उस रथपर चढ ॥ ९ ॥ शीघ्रतासे उस आश्रमसे चले, और अनेक भाँतिके पत्तन वन ॥ १०॥ पर्वत नदी राज्य व नगरोंको देखते भालते दंडकारण्यमें आये जहां रामचन्द्रजीका आश्रमथा ॥ ११॥ और आश्रमको मारी-चके सहित रावणने देखा और दोनों जने उस रत्नभूषित रथसे उतरे ॥ १२ ॥ और मारीचका हाथ पकडकर रावण कहनेलगा कि, हे सखे ! वनमें केलोंके वृक्षों-से घिरा हुआ यह रामचन्द्रका आश्रम दिखाई देताहै ॥ १३ ॥ जिस कारणसे कि हम लोग यहां आयेहैं, इस समय शीघ्रतासे उस कार्यका आरंभ करो । निशाचर मारीच रावणके यह वचन सुनकर ॥ १४ ॥ महा अद्भुत मृगरूप धारण करके रामचन्द्रजीके आश्रमके द्वारपर फिरने लगा ॥ १५ ॥ इस मृगके शींगोंका अग्र-भाग मणिप्रवर सदृशथा, और मुखकी आकृति श्वेत कृष्ण विविध वर्णोंसे चित्रित थी वदनमंडल कमलके फूलकी समान, श्रवण युगल इन्द्रनील पद्मकी समानथे ॥ ॥ १६ ॥ गर्दन कुछ एक ऊंची, उदरभी इन्द्रनील मणिकी समता रखताथा पीछेका भाग महुयेके सुमनकी समान और वर्ण पद्मपरागकी तुल्यथा ॥ १७ ॥ खुरियें वैदूर्य मणिकी तुल्यथीं, दोनों जाँघें पतलीथीं सब सन्धियें एक दूसरीसे गठी

हुईथीं, और पूंछ इन्द्रधनुषकी समान ऊपरको उठी हुई विराजमान होरहीथी ॥ ॥ १८ ॥ उसका वर्ण चिकना और मनोहरथा और शरीर उसका अनेक भांतिके रत्नोंसे विभूषितथा उस मारीच राक्षसने क्षण भरमें यह परमशोभायुक्त मृगमूर्ति धारण की ॥१९॥ उस वनको शोभित करता हुआ और श्रीरामचन्द्रजीके आश्रम कोभी अपने परम मनोहर देखने योग्य रूपसे वह राक्षस प्रकाशमान करने लगा ॥ ॥ २० ॥ जानकीजीको ललचानेके लिये अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्र रूप धारण किये चारों ओर हरी २ घास चरता हुआ वह मृग रामचन्द्रजीके आश्रमपर विचरने लगा ॥ २१ ॥ उसके शरीरपर सैकडों चांदीके बिन्द लगेथे ऐसे कि, जिनके देखनेसे परम प्रीति उपजे; वह मृग कभी २ वृक्षोंकी कोपलके नये२ पत्ते खाता हुआ घूमनेलगा ॥ २२ ॥ कभी केलोंकी बगियामें और कर्णिका-रके वनमें प्रवेश करके और कभी श्रीसीताजीकी दृष्टिके सन्मुख जाकर इस प्रकार आश्रमके इधर उधर वह मृग मन्दगतिसे चलने लगा ॥ २३ ॥ पीठपर सुवर्णके द्वारा चित्र विचित्र होनेसे उसकाल इस महामृगकी अतिशय शोभा हुईथी वह यथासुखसे रामचंद्रजीके निकट घूमने लगा ॥ २४ ॥ आश्रममें घूमनेके समय कभी दौडता, कभी ठिठककर खडा होजाता, कभी मुहूर्त भरतक आगेको आश्रममें चलता, कभी फिर झटपट लौट आता ॥२५॥ कभी इधर उधर खेलता, कभी पृथ्वीपर लेट जाता, कभी आश्रमके द्वारपर आकर सुखसे चरते हुए मृग झुंडोंके साथ चरने लगता ॥ २६ ॥ कभी मृगोंके साथही साथ आकर फिर सीताजीको दिखाई देनेकी वांछासे फिर आश्रममें चला आता जानकीके दर्शनकी इच्छासे वह राक्षस मृग होगया ॥२७॥ इसप्रकार वह मृगताको प्राप्त होकर विचित्र मंडलोंसे कूद फांद करने लगा इसकी कूद फांद देख और वनके मृग ॥२८॥ उसके निकट आये और उसको सूँघतेही दशों दिशाओंको भागने लगे। मारीच यद्यपि सदा मृगोंको मारनेमें रतथा॥२९॥तथापि उसने अपना भाव छिपानेके लिये उन मृगोंको भक्षण नहीं किया केवल स्पर्श करने लगा। इसी समय शुभलोचना वैदेहीजी ॥ ॥ ३० ॥ उन्मादक दृष्टिसे देखती फूल चुननेके लिये कभी अशोक कभी कर्णि-कार और कभी आम वृक्षके निकट जातीथीं ॥ ३१ ॥ वनवास करनेके अयोग्य उन रुचिर वदना सीताजीने फूल चुनतेहुए, घूमते २ उस रत्नमय मृगको देखा ॥ ॥ ३२ ॥ उसके सब अंग मुक्तामणियोंसे चित्रितथे। ऐसी वराङ्गना और अति

सुन्दर दांत व अधरवाली जानकीजीने भली भांति उस मृगको देखा इस मृगके रुयें चांदी और गेरु धातुके समान थे ॥ ३३ ॥ श्रीजानकीजी विस्मयसे प्रफुल्ल नेत्रोंसे स्नेह सहित उस मृगको देखनेलगीं मायामय मृगभी रामप्यारी सीताजीकी ओर देखतारहा ॥ ३४ ॥ अनन्तर वह मृग उस वनको प्रकाशित करता हुआ इधर उधर घूमने लगा । जनककुमारी श्रीसीताजी अनेक रत्नमय अदृष्टपूर्व (जो पहले कभी नहीं देखा) मृगको देखकर अति विस्मयको प्राप्त हुई ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि०आरण्यकांडे भाषायां द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३.

सुश्रोणी, फूल चुनतीहुई सीताजीने इस मृगके शरीरके मध्य चांदीके बिंदु शोभायमान देख दोनों बगल उसके सुवर्ण व चांदीके देखे ॥ १ ॥ यह देखकर परम हर्षित हो अनिन्दितांगी, विशुद्ध वरवर्णिनी सीताजीने आयुध धारणकियेहुए रामचंद्र व लक्ष्मणजीको पुकारा ॥ २ ॥ हे आर्यपुत्र ! लक्ष्मणके सहित शीघ्र आओ इस प्रकारसे कहकर रामचंद्रजीको पुकारते २ इस मृगकी ओर देखने लगीं ॥ ३॥ सीताजीके पुकारनेपर पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी दोनोंजने इधर उधर देखते वहां आये और इस मृगको देखा ॥ ४ ॥ परन्तु लक्ष्मणजी मृगको देख शंकितहो श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे कि, महाराज ! हमें तो ऐसा समझ पडताहै कि, यह मृगरूपी निशाचर मारीच है ॥ ५ ॥ यह पापात्मा मारीच मृगरूप धारण करके परम हर्षसहित आखेटको वनमें आये हुए राजा लोगोंको मारडाला करताहै ॥ ६ ॥ यह राक्षस मायाका जाननेवालाहै, इसने मायाके बलसे इस प्रकारका मृगरूप धारण करलियाहै । हे पुरुषसिंह ! यह मृगरूप गन्धर्व नगरकी समान अब रमणीय और परम दीप्तियुक्त है, परन्तु वास्तवमें यह मृग नहीं है ॥ ७ ॥ हे रघुनंदन ! इस प्रकार रत्न चित्रित मृग कभी पृथ्वीपर नहीं हो सकता । हे जगन्नाथ ! यह निश्चयही माया है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ जब लक्ष्मणजी इस प्रकार कहने लगे तब कुछ एक मुस्कोई हुई सीताजीने राक्षसके छलसे मोहित हो लक्ष्मणजीको इस कहनेसे रोक दिया और आप परमहर्षितहो बोलीं ॥ ९ ॥ हेआर्यपुत्र ! इस अभिराम मृगने हमारे मनको हरण कियाहै हे महाबाहो !

इसको पकड लाओ हम इस मृगके साथ खेला करेंगी ॥ १० ॥ क्योंकि हमारे इस पुण्याश्रममें बहुतसे पुण्यदर्शन मृगगण चमर सृमर घूमा करतेहैं, जिनकी काली और सफेद पूछ होतीहै ॥ ११ ॥ और ऋक्ष, पृषत वानर व किन्नरादिभी घूमतेहैं यह सब महाबलवान् और रूपवान् हैं ॥ १२ ॥ परन्तु हे राजन् ! पहले कभी इस प्रकारका मृग हमारी दृष्टिमें नहीं आया, तेज क्षमा कान्तिमें यह मृगोंमें श्रेष्ठ ज्ञात होताहै ॥ १३ ॥ इसका सबही शरीर विविध वर्णोंसे विचित्र हो रहाहै । मध्य २ में रत्नोंके बिन्दु बनेहैं । यह मृग चन्द्रमाके समान वनभूमिको शान्ति भावसे प्रकाशित करता हुआ हमारे सन्मुख विराजमान हो रहाहै ॥ १४ ॥ अहह क्या सुन्दरताईहै ! अहो क्या श्रीहै ! आहा क्या शोभाहै ! क्या मधुर इसका बोलहै ! यह अपूर्व विचित्र अंगवाला मृग हमारे मनको चुराये लेताहै ॥ १५ ॥ यदि आप इसको जीता हुआही पकड देंगे तौ बडा अपूर्व यह पदार्थ सदा निकट रहकर विस्मय उपजाता रहा करैगा ॥ १६ ॥ जब हम वनवासके व्रतको पूरा कर कै फिर अपने राज्यमें चलेगी तब यह मृग हमारे रनवासका भूषण होगा ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! भरतजीको, आपको, हमारी सासोंको बरन सबकोही यह दिव्य मृगरूप विस्मय उत्पन्न करावैगा ॥ १८ ॥ हे पुरुषोत्तम ! यदि इस मृगको आप जीता न पकड सके, तौ इसका चर्मही परम मनोहर होगा ॥ १९ ॥ इस निहत मृगके सुवर्णमय चर्मको कुशासनपर बिछाकर उसपर बैठ तुम्हारे सहित भगवान्‌की पूजा करनेको हमारा अभिलाष हुआहै ॥ २० ॥ यद्यपि स्वामीको इस प्रकारकी प्रेरणा करना स्त्रियोंके लिये स्वेच्छाचारिताहै, और भयंकर, व अनुचितभीहै, तथापि इस मृगकी विचित्र देहने हमको बहुतही विस्मय उपजायाहै ॥ २१ ॥ उसके कंचनके समान रोम भली श्रेष्ठ मणिकी समान शृंग, प्रभातकालीन सूर्यकी नांई और आकाशकी समान प्रकाशमान ॥ २२ ॥ रूपसे श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें भी विस्मय की अवाई हुई सीताजीके ऐसे वचन सुनकर और उस अद्भुत मृगको देख ॥ २३ ॥ तिसके शरीरकी सुन्दरताईसे रामचन्द्रजी लुभा गये, तिसपै सीताजीने प्रेरणा की इस कारण हर्षितचित्त हो श्रीरामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ २४ ॥ कि, हे लक्ष्मण ! अवलोकन करो इस मृगका श्रेष्ठ रूप देखकर जानकीजीकी अभिलाषा उल्लासित हो उठी है । अतएव इस समय इसका प्राण धारण करना असंभव है ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण ! क्या वनमें, क्या नन्दनमें, क्या चैत्ररथकाननमें, अथवा पृथ्वीके किसी

स्थानमें भी इसके समान मृग नहीं है ॥ २६ ॥ देखो इसके रोमोंकी पँक्तियें कुछ सीधी कुछ वंकिमाकार कैसी शोभाको प्राप्त होरही हैं, और तिसपर उसमें सुवर्ण बिन्दुओंके चित्रित होनेसे औरभी सुन्दरताई आई है ॥ २७॥ देखो भइया ! मेघसे बिजली जिस प्रकार चमकती है वैसेही जमुहाई लेनेके समय उसके मुखसे अग्निकी शिखाके समान प्रदीप्त जीभ निकलती है ॥ २८ ॥ इसका मुखमंडल इन्द्रनीलमणि निर्मित पानपात्रके आकारसा है । पेट शंख और मोतीकी समान है, और इसके स्वरूपका निर्णय करना दुःसाध्य है; इसको देखनेसे किसका मन मोहित नहीं होता ॥ २९ ॥ इसका रूप पक्के सुवर्णकी प्रभासे परिपूर्ण है, और नाना प्रकारके रत्नमय है ऐसा दिव्य स्वरूप दृष्टि आनेसे किसका मन विस्मयको प्राप्त नहीं होता ? ॥ ॥ ३० ॥ धनुर्धारी नृपतिगण महा वनमें शिकार करनेके लिये प्रवृत्त हो मांसके लिये अथवा विहारके लिये बहुत मृगोंको मार डालते हैं ॥ ॥ ३१ ॥ अधिक करकै वह राजा लोक मृग वधमें उद्यत होकर बडे २ वनोंमें मणिरत्न सुवर्णादि धातुरूप धनका संग्रहभी करते हैं ॥ ३२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस प्रकार धनधान्यकी राशिसे खजाना बढता है । इसलिये वनमें सबही पुरुषोंकी ब्रह्मकी नांई मनकी इच्छा सफल होती है ॥ ३३ ॥ हे लक्ष्मण ! अर्थकी इच्छा करनेवाला पुरुष अर्थसाधन वस्तुके कारण निःसंशय चित्तसे उस कार्यमें लगै तो अर्थशास्त्रज्ञ पंडित लोग उसकोही ठीक अर्थ कहते हैं ॥ ३४ ॥ इस कारणसे इस मृगके वध करनेमें कुछ दुविधा करनेकी आवश्यकता नहीं है । सुमध्यमा जानकीजी हमारे साथ इस मृगरत्नके श्रेष्ठ व सुवर्णमय चर्मपर बैठेंगी ॥ ३५ ॥ क्या कदली और प्रियक मृगका चर्म क्या प्रवेणी नामक छागलका चर्म, क्या मेषादिकका चर्म । कोई भी चर्म इस मृगके चर्मकी समान कोमल, चिकना, व मनोहर हमको नहीं ज्ञात होता है ॥ ३६ ॥ यह ही मृग श्रीमान् है, और आकाशमें जो मृग विचरण करते हैं, वही श्रीमान् हैं ! बस इससे वह तारा मृग (मृगशिरा नक्षत्र) और यह महीमृग यही दोनों मृग दिव्य हैं ॥ ३७ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम कहते हो कि, यह राक्षसकी मायाहै, सो यदि वास्तवमें ऐसाही हो तोभी हमको इसका संहार करना कर्त्तव्यहीहै ॥ ३८ ॥ क्योंकि देखो इस दुरात्मा निर्दय मारीचने वनमें घूमते २ अनेक मुनिश्रेष्ठोंको मारडालाहै ॥ ३९॥ और अहेर खेलने जब राजालोग इस वनमें आये तो इस राक्षसने इसी भांति मायामृग बनकर परम धनुर्धर अनेक

राजाओंको संहार कियाहै। इस कारण इस मृगको वधकरनाही कर्त्तव्यहै ॥ ४० ॥ पेटमें रहतेही हुए जिस प्रकार खिचडीका गर्भ अपनी माताको मार डालताहै, वैसेही पूर्व समय इस वनमें राक्षस वातापिभी तपस्वी ब्राह्मणोंके पेटमें प्रवेश करकै उनको संहार किया करता था ॥ ४१ ॥ बहुत काल पीछे किसी समय वह वातापि तेजस्वी महामुनि अगस्त्यजीको प्राप्त होकर उनके द्वारा पचाया गयाथा ॥ ४२ ॥ फिर जब कि श्राद्धके पूर्ण होने उपरान्त वातापिको राक्षसरूप धारण करनेका इच्छुक देखा तब भगवान् अगस्त्यजी मुसकाय कर बोले ॥ ४३ ॥ वातापि! तूने अपने तेजसे ज्ञानरहित हो इस जीवलोकमें अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मारडालाहै, इसी कारणसे हमने तुमको पचाडाला ॥ ४४ ॥ हे लक्ष्मण ! जो हमारी समान धर्म निरत और जितेंद्रिय पुरुषका निरादर करताहै, उस राक्षसके प्राण वातापीही की समान नष्ट होजातेहैं ॥ ४५ ॥ अतएव मारीच इस आश्रममें आकर अगस्त्य जी करकै वातापिकी नांई हमारे द्वारा मारडाला जायगा। इस समय तुम कवच इत्यादि बांधकर यत्नसहित सीताजीकी रक्षा करो ॥ ४६ ॥ हे रघुनंदन ! हमारा कर्त्तव्य कार्य जानकीके आधीनहै इसलिये तुम सावधानीसे यहां टिके रहो, हम इस मृगको मारही डालेंगे, अथवा जीता हुआ पकड लावेंगे ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण ! इस मृगचर्म लेनेकी जानकीको बडी अभिलाषा हुई है, देखो अब हम बहुत शीघ्रतासे इस मृगको पकडनेके लिये जाँयगे ॥ ४८ ॥ इस मृगका चर्म सब मृगोंसे अच्छाहै, आज निश्चयही इसको प्राण त्याग करना पडेगा। लक्ष्मण ! हम जबतक इस मृगको नहीं मारडालें तबतक तुम सीताजीके साथ सावधानतासे आश्रममें टिके रहो ॥ ४९ ॥ हे लक्ष्मण ! मैं एक बाणसे शीघ्रही मृगको मारकर इसका चर्म ले आऊंगा जबतक हम लौट कर न आवें तबतक तुम सावधानीसे यहांपर रहना ॥ ५० ॥ हे लक्ष्मण ! तुम जानकीको लेकर अति बलवान् बुद्धिमान्, अच्छे कार्योंके करनेमें चतुर बली, श्रेष्ठ जटायुके साथ निरन्तर शंकित और सावधानीसे यहांपर रहना ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४.

परमतेजस्वी रघुनंदन ! रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे समझाय बझाय सुवर्ण निर्मित मुष्टि लगा हुआ खड्ग हाथमें लेते हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे जिसका बिचला भाग तीन जगहसे झुका हुआथा, ऐसा अपना भूषण स्वरूप धनुष ग्रहण करकै और दो तरकश बांध करकै प्रचंड पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी गये ॥ ॥ २ ॥ वह मृगश्रेष्ठ मृगोंका राजा रामचन्द्रजीको अपने सन्मुख आताहुवा देखकर भयके मारे अन्तरध्यानहो फिर थोडी दूरपै उनको दीख पडा ॥ ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीभी खड्ग और धनुष बाण धारण करके जिस ओर मृगथा उस ओरको धाये । और देखते हुए कि, मृग अपने रूपसे चारों ओर को प्रकाश करता हुआ मानो सामनेही विराजरहाहै॥ ४ ॥ कभी वह मृग शारंगपाणि रामको वारंवार देखकर वनमें दौडता कभी कुलांच मारकर दूर हो रहता कभी अपने रूपसे लुभाता ॥ ५ ॥ कभी शंकित और भ्रान्तचित्त होकर मानों आकाशको चला जायगा ऐसी छलांग मारता, कभी अदृश्य होजाता, कभी दिखाई पडने लगता ॥ ६ ॥ और कभी छिन्न भिन्न मेघसमूहमें घिरेहुए शारदीय चंद्रमंडलकी समान मुहूर्तभरमें अदृश्य होजाता और मुहूर्तमात्रमेंही दूर दिखाई देता ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे मृगरूपी मारीच छल बलकर दीखता छिपता रामचंद्रजीको आश्रमसे बहुत दूर ले गया ॥ ८ ॥ रामचंद्रजी उसकी मायासे मोहित और नितान्त अवश होकर क्रोधसे घिरे और बहुतही थककर एक पेडकी छायाके नीचे हरी दूबके खेतमें बैठगये ॥ ९ ॥ मृगरूपी मारीचने उनको उन्मादित करदियाथा, वह मारीच फिर अन्यमृगोंके साथ बहुत निकटही रामचन्द्रजीको दृष्टि आया ॥ १० ॥ वह मारीच राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको अपने पकडनेका अभिलाषी जानकर दौडा । और मारे भयके उस समय फिर अन्तर्धान होगया ॥ ११ ॥ और बहुत दूर जाकर फिर वृक्षसमूहोंके नीचे दिखाई दिया, महातेजवान् रामचन्द्रजी यह देखकर अब उस मृगका मार डालनाही निश्चय करते हुए ॥ १२ ॥ उन्होंने रोषमें भरकर फिर तरकशसे सूर्यकी समान शत्रुका नाश करनेवाला प्रज्वलित एक बाण निकाला ॥ ॥ १३ ॥ और उसको दृढ धनुषपर चढा बलसे खैंच जलती अग्निकी समान प्रकाशित तिस मृगपर ॥ १४ ॥ ब्रह्माका बनाया हुआ अतिप्रज्वलित अस्त्र, उस मृगरूपी राक्षस मारीचके योग्यही छोडा ॥ १५ ॥ शरश्रेष्ठ ब्रह्मास्त्रने छूटतेही

वज्रकी समान मृगरूपी मारीचका हृदय विदारण करडाला तब वह मारीच अतिशय आतुर होकर ताडके वृक्षसमान ऊपरको उछल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १६ ॥ और क्षीण प्राण मरनेके निकट पहुँच पृथ्वीपर गिरकर भयंकर शब्दसे बहुत चिल्लाया। उस राक्षसने मरनेके समय वह अपनी बनावटी छलकी देह त्यागन करदी॥१७॥ अनन्तर मारीच मरनेके समय उस मायामय देहको त्याग रावणकी आज्ञा स्मरण कर विचारने लगा कि, किस उपायका अवलंबन करनेसे सीता लक्ष्मणको यहां भेजें, और रावण शून्य आश्रमको पाकर सीताको हरण करले ॥ १८ ॥ यह विचारकर अपना काल आया हुआ जान रावणकी उपदेश की हुई सम्मतिके अनुसार "हा सीते ! हा लक्ष्मण !" कहकर रामचंद्रके समान कंठस्वर बनाकर उस राक्षसने चिल्लाना आरंभ किया ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके अनुपम बाणसे उसका मर्म स्थान इतना विंध गयाथा, कि फिर वह मृगरूप धारण नहीं करसका और राक्षसमूर्ति ग्रहण की ॥ २० ॥ मरनेके समय मारीचकी देह बडी भारी होगई उस भयंकर निशाचर मारीचको भूमिमें गिरा॥२१॥ रुधिरसे लिपटा पृथ्वीमें लोटताहुआ श्रीरामचंद्रजीने देखा और मनही मनमें सीता और लक्ष्मणके वचन स्मरण करके आश्रमकी ओर लौटे ॥२२॥ आश्रमको लौटनेके समय विचारनेलगे कि, लक्ष्मणजीने पहलेही कहाथा कि यह मारीचकी मायाहै। उनकीही बात इस समय सत्य हुई। यथार्थही मारीचको हमने मारडाला ॥ २३ ॥ इस समय मारीचने "हा सीते ! हा लक्ष्मण" बडे ऊंचे शब्दसे यह कहकर प्राण त्याग कियेहैं, न जाने सीता इस शब्दको सुनकर क्या करैंगी ॥ २४ ॥ अथवा महाबाहु लक्ष्मणजी किस अवस्थाको प्राप्त होंगे ! इस प्रकार चिन्ता करते २ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीके रोम खडे होगये ॥ २५ ॥ उस काल मृगरूपी राक्षसको मार डालकर और इसका इस प्रकार चिल्लाना सुनकर विषादके मारे तीव्र भयसे रामचंद्रजी भीत हुए ॥ ॥२६॥ तिसके पीछे वह एक और मृगको मारकर और उसका मांस ग्रहण करके शीघ्रतासे जनस्थानकी ओर चले ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा०वा०आदि०आरण्यकाण्डे भाषायां चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ४५.

यहां आश्रममें वनके मध्य अपने स्वामीकी समान बहु करुणाका शब्द सुनकर सीताजी लक्ष्मणसे बोली जाकर देख आओ रामचंद्रजीको क्या हुआ ! ॥ १ ॥ वह महाआरत वचनसे चिल्ला रहेहैं यह शब्द सुनकर हमारा मन प्राण अपने २ ठिकाने नहीं है ॥ २ ॥ वनके बीच ऊंचे स्वरसे रोते हुए अपने भ्राताका उद्धार करना तुमको अवश्य कर्तव्यहै । इस कारण तुम वेगही शरणार्थी अपने भ्राताकी रक्षाके लिये दौडो ॥ ३ ॥ गाय बैल जिस प्रकार सिंहके वशमें पडताहै, तुम्हारे भैयाभी वैसेही राक्षसके वशमें पडे हैं, परन्तु लक्ष्मणजीको मृग मारनेको गमन करनेके समय जो रामचंद्रजी आज्ञा देगयेथे उसको स्मरण करकै सीताजी इस प्रकार कहे जानेपरभी रामचंद्रजीके समीप नहीं गये ॥ ४ ॥ तब सीताजी नितान्त क्षुभित होकर लक्ष्मणजीसे बोली कि, हे लक्ष्मण ! तुम रामचंद्रजीके मित्र रूपी शत्रुहो ॥ ५ ॥ देखो तुम इस प्रकारकी अवस्थामेंभी उनकी रक्षा करनेके लिये नहीं जाते । इससे समझ पडा कि, तुम हमको लेलेनेके लिये रामचंद्रजीके विनाशकी कामना करतेहो ॥ ६ ॥ निश्चयही हमारे प्रति लुभानेसे तुम उनके समीप नहीं जाते इसी कारणसे रामचन्द्रजीकी यह विपद तुमको प्रिय लगती है । और तुमको उनसे कुछ स्नेह नहीं है ॥ ७ ॥ इसी कारण तुम महाद्युतिमान् रामचन्द्रजीको न देखकरभी निश्चिन्त बैठे हो । किन्तु तुम जो रामचन्द्रजीके आधीनमें होकर वनमें आये हो । तो उनके यहां संशयापन्न होनेसे ॥ ८ ॥ मुझसे यहां रहकर क्या कार्य होगा जब वैदेहीजीने आँखोंमें आंसू भरकर यह कहा कि, तुम्हारी तो यह दशा रही तो अब हम क्या करें ॥ ९ ॥ तब मृगीके समान डरी हुई सीताजीसे लक्ष्मणजी बोले कि, हे विदेहकुमारी ! नाग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव, राक्षस ॥ १० ॥ कोईभी आपके स्वामीको जीतनेंमें समर्थ नहींहै, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । हे देवि ! मनुष्य गन्धर्व, पक्षी ॥ ११ ॥ राक्षस, पिशाच, किन्नर, मृग, व अतिघोरजीव इनमें ऐसा कोईभी नहीं है ॥ १२ ॥ जो इन्द्रके समान पौरुषी श्रीरामन्द्रजीका सामना करसकै, फलतः उनको समरमें कोई मारभी नहीं सकता इस लिये तुमको ऐसा अनुचित नहीं कहना चाहिये ॥ १३ ॥ और रामचन्द्रजीके विना अकेली इस

वनके बीच त्याग करनेकोभी किसी प्रकारसे हमारा साहस नहीं होता, इन्द्रादि बलवान् देवगणभी अपने बलसे रामचन्द्रजीके बलको नहीं रोक सकते ॥ १४ ॥ अथवा सब त्रिलोकी समस्त देवतागणोंके सहित एकत्र मिलकरभी रामचन्द्रजीके पराजय करनेको सामर्थ्य नहीं रखते इससे आप शोक त्याग करकै स्थिर चित्त हूजिये ॥ १५ ॥ आपके स्वामी रामचन्द्रजी मृगोत्तमको हनन करकै शीघ्रही लौटेंगे और हम निश्चय कहते हैं कि, यह शब्द उनका नहीं है और न कोई यह देवप्रेरित शब्द है ॥ १६ ॥ निशाचर मारीचही गन्धर्व नगर सदृशी मिथ्या माया विस्तार करकै इसप्रकार शब्द चिल्लाकर कररहाहै। हे जानकि ! महात्मा राम करकै आप हमारे निकट सौंपी गई हैं ॥ १७ ॥ इसही कारणसे आपको त्याग करनेमें हमारा उत्साह नहीं होता। हे कल्याणि ! हे वरारोहे ! इन सब राक्षसोंके सहित हमारी शत्रुता होगई है ॥ १८ ॥ हे देवि ! खरको मार और जनस्थानको विध्वंस करनेसे राक्षस लोग इस महावनमें हमारे ऊपर अनेक प्रकारके मोहिनी मायाके वचन प्रयोग किया करतेहैं ॥१९॥ हे जानकि ! साधु लोगोंकी हिंसा करनाही राक्षस लोगोंका एकमात्र खेल है। इस कारण इस विषयमें चिन्ता करना किसीप्रकारसे भी आपको उचित नहीं है। जब लक्ष्मणजीने इसप्रकार कहा तब क्रोधके मारे जानकीजीके नेत्र लाल हो आये ॥ २० ॥ वह कठोर वचन सत्यवादी लक्ष्मणजीसे बोलीं कि, रे नृशंस ! कुलनाशक ! तुम श्रीरामचन्द्रको मरवाकर दया करके हमारी रक्षा करनेको तैयार हुए हो, इस कारणसे यह ध्यान आर्यजनोचित नहीं है ॥ २१ ॥ हमने जाना कि, रामचन्द्रजीकी यह बडी भारी विपद तुम्हारी परम प्यारी हुई है इसी कारण तुम उनको विपदमें पडा हुआ देखकर ऐसा कहते हो ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारी समान सदा क्रूर स्वभाव व गुप्त पापी शत्रुके मनमें जो ऐसा निन्दनीय पाप रहैगा तौ इसमें आश्चर्यही क्या है ? ॥ २३ ॥ तुम्हारा स्वभाव बडा खोटा है रामचन्द्रजी जो अकेले वनको आने लगे, तब हमारा लालच करकै तुमभी अकेले ही उनके साथ आये। अथवा छिपकर भरतके भेजे हुए तुम स्वामीके साथ आये हुए हो ॥ २४ ॥ किन्तु हे लक्ष्मण ! तुमने या भरतने जो मनमें सोचा है, वह सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि हम पद्मपलाशलोचन, नीलोत्पलश्याम ॥२५॥ श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्री होकर किस प्रकारसे अन्यजनकी अभिलाषा करेंगी। इससे हे लक्ष्मण ! हम तुम्हारे सामने निश्चयही प्राण त्याग देंगी ॥ २६ ॥ क्योंकि

रामचन्द्रजीके विना क्षण कालभी हम इस लोकमें प्राण धारण नहीं कर सकतीं । सीताजीके इस प्रकार रोमहर्षण कठोर वचन ॥ २७ ॥ सुन जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी हाथ जोडकर उनसे बोले कि, आप हमारी साक्षात् देवता हैं, इस प्रकार उत्तर देनेको हमारा साहस नहीं होता ॥ २८ ॥ परन्तु हे जानकि ! आपने जो यह अयोग्य वार्ता कहीहै सो स्त्रियोंके लिये इसका कहना कुछ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि इस लोकमें स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा देखाही जाता है ॥ २९ ॥ स्त्रियोंकी जाति, स्वभावसेही क्रूर चञ्चल, धर्मज्ञान हीन है, यह पिता पुत्र इत्यादिमें परस्पर भेद करा देतीहैं । किन्तु हे जानकि ! तुम्हारी यह वार्ता हम पर नहीं सही जातीहै ॥ ३० ॥ अति तपे हुए बाणोंकी नांई यह तुम्हारे वचन हमारे दोनों कानोंको विद्धकर रहे हैं । अच्छा ! वनवासी देवतागण सबही हमारे साक्षी रहकर श्रवण करें ॥ ३१ ॥ हमने यथार्थ वार्ता कही है तथापि तुम ने हमको कठोर वचन कहे तुमको धिक्कार है ! निश्चयही तुम्हारा विनाश काल उपस्थित है (राक्षसकुलकी नाश करानेवाली तुझको धिक्कार है यह गूढ है) जो हम पर ऐसी शंका करती हो ॥ ३२ ॥ हम सदाही गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन किया करते हैं इस रामचन्द्रजीकी आज्ञा मान तुम्हें छोड नहीं जातेथे । किन्तु तुम ने स्त्रीके स्वभाव और दुष्ट प्रकृतिके वश होकर हमको दुर्वचन कहे । हे वरानने ! जहां रामचन्द्रजी हैं हमभी वहां जाते हैं, तुम कुशल क्षेमसे रहो ॥ ३३ ॥ और समस्त वन देवता गण तुम्हारी रक्षा करें, हे विशालाक्षि ! बडे २ बुरे शकुन हमारे सामने प्रगट हो रहे हैं, इस कारणसे फिर रामचन्द्रजीके साथ आकर तुमको कुशल सहित देखें ॥ ३४ ॥ जब लक्ष्मणजीने इस प्रकारसे कहा तब जनकनन्दिनी सीताजी अविरलवाहिनी अश्रुधारासे भीजकर रोते २ लक्ष्मणजीसे बोली ॥ ३५॥ हे लक्ष्मण ! रामके विना हम गोदावरीमें डूब मरेंगी अथवा फांसीसे प्राण त्याग करेंगी अथवा किसी ऊंचे पर्वत इत्यादिक पर चढकर वहांसे अपनी देहको नीचे गिरा देंगी ॥ ३६ ॥ या तीक्ष्ण विष पान करेंगी, अथवा अग्निमें प्रवेश करेंगी * ॥

* कूर्म पुराणसे भी सिद्धहै कि जानकीजीकी यही प्रतिज्ञा पूर्ण थी कि अन्य पुरुषको स्पर्श न करूंगी अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगी इससेभी ध्वनि निकलतीहै कि जानकी अग्निमें प्रवेश कर गईथीं और यह मायाकी जानकीने लक्ष्मणसे ऐसे वचन कहे क्योंकि मायासेही ऐसा होताहै यथा-जगाम शरणंवह्नि मावसथ्यं शुचिस्मिता । प्रपद्येपावकं देवं साक्षिणं विश्वतो मुखम् । आत्मानंदीप्ति वपुषं सर्वभूत हृदिस्थितम् । गृहीत्वा माययावेषं चरन्ती विजनेवने । समाहर्तुं मनश्चक्रेतापसः किलकामिनीम् ॥

तथापि श्रीरामचन्द्रजीके विना और किसी पुरुषको हम कभी स्पर्श नहीं करेंगी ॥ ॥ ३७ ॥ सीताजी इस प्रकार शोक युक्त होकर रोते २ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर दुःखके मारे अपना उदर पीटने लगी (सर्व राक्षसोंके नाश विना मेरा उदरपूर्ति न होगी यह ध्वनिहै) ॥ ३८ ॥ लक्ष्मणजीने विशाल नयना जनकदुलारी सीताजी को महाआरत भावसे रोते देखकर बहुत समझाया बुझाया परन्तु फिर जानकी जीने अपने देवर लक्ष्मणजीसे और कुछ न कहा ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे जितेन्द्रिय और विशुद्ध चित्त लक्ष्मणजी हाथ जोड प्रणाम कर कुछ एक विनती करते हुए और वारंवार उनकी ओर देखते दुःखित हो रामचन्द्रजीके निकट को चले॥ ४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मी०आदि०आरण्यकांडे भाषायां पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६.

लक्ष्मणजी जानकीजीकी कटूक्तिसे पीडित हो क्रोधमें भर श्रीरामचन्द्रजीको देख नेके लिये अतिव्यग्रचित्तसे चले ॥१॥ तिसके पीछे दशानन रावण यह सुअवसर पाकर यतीका रूप धारण कर शीघ्रही श्रीसीताजीके सामने आया ॥२॥ वह कोमल गेरुआ वस्त्र पहरे शिरपर वार रखाये छत्री लगाये खडाऊं पहरे, बांये कंधेपर लाठी और कमंडलु हाथमें ॥ ३ ॥ वह अतिबली ऐसा त्रिदंडी संन्यासीका रूप बना सीताजीके सन्मुख हुआ जब कि दोनों भाई आश्रममें नहींथे ॥ ४ ॥ जिस प्रकार बिना चन्द्र सूर्यके सन्ध्याकालमें महा अंधकार हो आता है । वैसेही बिना राम और लक्ष्मणजीके सीताजीके निकट दशानन आकर परम यशास्विनी राजपुत्री जनकनन्दनीजीको देखनेलगा ॥ ५ ॥ जैसे चन्द्रमाकरके हीन रोहिणी नक्षत्रको राहु देख जनस्थानके समस्त वृक्ष उग्रस्वभाव पाप करनेवाले रावणको देखकर ॥ ॥ ६ ॥ हिलने झुलनेसे रहित होगये पवनका चलना बंद होगया । लाल २ नेत्र किये सीताजीके प्रति उसकी दृष्टिको लगा देख नदीभी शीघ्र गतिको त्याग मंद २ बहनेलगी ॥ ७ ॥ गोदावरी नदीका जलभी शंकाके वश होकर मंद २ बहने लगा। इसी अवसरमें रामचंद्रजीका अन्तर चाहनेवाला दशग्रीव ॥ ८ ॥ भिक्षुकका वेश बनाकर वैदेहीजीके निकट आन पहुँचा, यह महाकुरूप दशानन अति रूपवती पनेपतिके लिये शोक करती हुई ॥९॥ जानकीजीको ऐसे प्राप्त हुआ जिसप्रकार

चित्रानक्षत्रके निकट शनि आताहै, वहां पहुँच उसने ऐसा टीप टापका संन्यासी वेश बनाया, जिस प्रकार तिनकोसे कोई कुएँको पाटै, और वहां आने वाला चट उसमें गिरे ॥ १० ॥ ऐसा छद्मवेशी साधुका वेश धारण किये हुए रावण उन यशस्विनी रामदयिता जानकीजीकी ओर देखकर खडा हुआ ॥ ११ ॥ सुन्दर स्वरूप, दशनपंक्ति जिनकी मनोहर, वदन पूर्णचन्द्रसमान जो जानकीजी पर्णशाला बैठी अपने पतिके शोकसे पीडित होरहीथीं॥ १२॥ तिन कमलनेत्रा पीताम्बर धारण किये जानकीजीके निकट वह निशाचर हर्षसहित पहुँचा ॥ १३॥ ऐसी जानकीजीको देख रावण कामके बाणसे माराहुआ पीडितहुवा उस समय वेदका उच्चारण करकै जानकीजीकी प्रशंसा करकै कहनेलगा ॥ १४ ॥ तुम तीनोंलोकमें उत्तमहो; और पद्मिनीकी समान मनोहर कमल फूलोंसे समाकुल होरहीहो ऐसी प्रशंसा रावणने की ॥ १५ ॥ फिर कहा कि हे शुभानने ! तुम्हारा वर्ण विशुद्ध कांचनकी सदृश है तिसपर तुम पीले वर्णके रेशमीन वस्त्र पहरेहो कमल फूलोंकी माला गलेमें धारण कियेहो ॥ १६ ॥ हेवरारोहे ! तुमहीं, श्री, कीर्ति, लक्ष्मी, अप्सरा, अथवा भूतिहो या साक्षात् रतिकी समानहो जो वनमें इच्छानुसार विहार करती हो सो बतलावो कि तुम कौन हो ॥ १७ ॥ तुम्हारे सब दांत परस्पर समान हैं, उनका अग्रभाग कुन्दकी कोर सदृश मनोहर और श्वेत वर्णहै ! तुम्हारे नेत्र युगल विशाल; निर्मल अरुणाई लिये, और कृष्णताराओंकरकै युक्तहैं ॥ १८ ॥ तुम्हारा जघन, अति पीन व विशाल हैं और जांघें हाथीकी शुण्डके समान चढा उतार, बडे २ गोलाकर एकमें एक मिले कुछ कम्पायमान ॥ १९ ॥ तुम्हारे दोनों उरोज पीन हैं और जिनका अग्रभाग उठा हुआ है, परम मनोहर है और चिकने ताल फलके आकारवाले हैं ! और उन पर मणियोंकी माला पडी हैं ॥ ॥ २० ॥ फलतः तुम्हारे दांत नेत्र और मुसकुराना सबही कुछ रमणीय है । हे रमणीये ! नदी जिस प्रकार जलके वेगसे कूलको हरण करती है तैसेही तुमभी इन सबसे हमारे चित्तको हरण करती हो ॥ २१ ॥ तुम्हारे केश परम सुन्दर हैं, दोनों पयोधर अत्यन्त घने हैं, और तुम्हारा मध्य देश अर्थात् कमर इतनी पतली है कि, मुट्ठीके बीचमें आजाय । क्या देवी क्या गन्धर्वी, क्या यक्षी, क्या किन्नरी ॥ ॥ २२ ॥ कोई भी तुम्हारे समान रूपवान नहीं है । हमने इससे पहले पृथ्वीपर तुम्हारे समान रूपवती राजरानी नहीं देखी, तुम्हारा रूप यौवन, सुकुमारता ॥

॥ २३ ॥ और इस निर्जन वनमें वास यह चारोंही त्रिलोकीमें श्रेष्ठ हैं इस कारण बाहर चली आओ। तुम्हारा कल्याणहो वनवास करना तुमको उचित नहीं है ॥ ॥ २४ ॥ यहां तौ कामरूपी भयंकर निशाचरगण रहा करतेहैं, तुम तौ अति रमणीय प्रासादशिखर, नगर व उपवनोंमें ॥२५॥ जहां सब भोग्य वस्तु प्रस्तुतहैं, और सुगन्धिके पदार्थ धरे रहते हैं वह स्थान तुम्हारे रहनेके योग्य है; श्रेष्ठ मालायें, श्रेष्ठ सुगन्धियें श्रेष्ठ वस्त्रोंके तुम भोगने योग्यहो ॥ २६ ॥ हे असितेक्षणी ! फिर तुम्हारे लिये स्वामीभी तो श्रेष्ठही चाहिये, हे शुचिस्मिते ! रुद्रगण अथवा मरुद्गण ॥२७॥ या आठ वसुओंमेंसे किसीकी स्त्री हो, हे वरारोहे ! हमको तौ तुम स्पष्टही देवता प्रतीत होती हो, क्योंकि यहां गन्धर्व, देवता किन्नर कोई नहीं आने पाते ॥ २८ ॥ यहां वनमें तो राक्षसगणही वास किया करते हैं, फिर तुम यहां किस प्रकारसे आई हो, यहां तो वनमें वानर, सिंह, चीता, व्याघ्र, भेडिया, मृग ॥२९॥ गेंडे मृग पक्षी जीव कंक ऋक्षादि जीव रहते हैं. सो इनको देखकर तुम क्यों नहीं डरती हो ? और मतवाले कठोर मन शीघ्र चलनेवाले हाथियोंसे ॥ ३० ॥ तुम अकेली कैसे इस महावनमें नहीं डरतीहो, हे वरानने ! तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो कहांसे आई हो, और किस कारण इस दंडकारण्यमें ॥ ३१ ॥ अकेली विचरती हो, क्योंकि यह जगह घोर राक्षसों करकै युक्त इस प्रकारसे महात्मा रावणने वैदेहीजीकी प्रशंसा की ॥ ३२ ॥ उसको ब्राह्मण वेष धारण किये आया हुआ देख जानकीजीने यथाविधि अतिथिसत्कारसे सब भांति उसकी पूजा की ॥ ॥ ३३ ॥ प्रथम बैठनेके लिये आसन दिया फिर चरण धोनेको जल, पुनः फलाहारादिक जो रक्खे थे वह सौम्य दर्शन रावणको निवेदन किये ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणका वेष धारण किये लाल वस्त्र पहरे संन्यासीकी समान पात्र लिये जानकीजीने महात्माकी उपेक्षा न करनी चाहिये इस कारण ब्राह्मणकेही समान रावणका निमंत्रण करकै कहा ॥ ३५ ॥ हे विप्र ! आप कुशासनपर सुख सहित बैठ जाइये, और यह पाद्य ग्रहण कीजिये, व यह वनके फल सब आपकेही लिये रक्खेहैं, इनको भोजनकीजिये ॥ ३६ ॥ नरेन्द्रभार्या जानकीजीने जब इस प्रकार निमंत्रण किया तब रावण उनकी ओर देख अपना मन अर्पण कर अपने वध करानेको बलपूर्वक उनके हरलेजानेका निश्चय करताहुआ ॥ ३७ ॥ परमप्रिय भर्ति रामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित मृगया करने गयेथे. जानकी उस समय उनकी बाट देखती हुई इधर

उधर दृष्टि करने लगी, तौ केवल चारों ओर बडे विस्तारवाली हरे वर्णकी वनभूमि ही दृष्टि आई, परन्तु राम लक्ष्मणजी दिखाई नहीं दिये ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७.

जब संन्यासीवेषधारी रावणने हरण करनेके अभिलाषसे इस भांति पूछा तब सीताजी आपही आप विचार करने लगीं ॥ १ ॥ कि एक तो यह ब्राह्मणहै दूसरे अतिथिहै जो हम इससे नहीं बोलतीं, तौ कदाचित् शाप न देदे, एक मुहूर्त भर यह शोच विचार कर जानकीजी उससे बोली ॥ २ ॥ आपका कल्याणहो । हम मिथिलानरेश महात्मा जनकजीकी तौ कन्याहैं और श्रीरामचन्द्रजीकी प्रिय भार्याहैं हमारा नाम सीताहै ॥ ३ ॥ विवाह होनेके पीछे इक्ष्वाकुवंशियोंकी राजधानी अयोध्यानगरीमें बारह वर्षतक रहकर पूर्णमनोरथहो अनेक प्रकारके मनुष्योंको दुर्लभ सुख हमने भोगे ॥ ४ ॥ फिर तेरहवें वर्षमें राजा दशरथजीने मंत्रिगणोंके साथ सलाह करकै रामचन्द्रजीके अभिषेक करनेका उद्योग किया ॥ ५ ॥ उनकी आज्ञानुसार सब अभिषेककी तैयारियां होने लगीं, उस समय हमारी माननीया सासु कैकेयीजीने अपने स्वामी राजा दशरथजीसे दोवर मांगे ॥ ६ ॥ कैकेयीजीने अपनी कृतिके बलसे श्वशुरको धर्मके वशमें करकै हमारे स्वामी रामचन्द्रजीको वनवास, और भरतजीको अभिषेक, यह दो वर नृपश्रेष्ठ सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथजीसे मांगे ॥ ७ ॥ और उन्होंने सत्यप्रतिज्ञ, नृपतिश्रेष्ठ राजा दशरथजी अपने स्वामीसे दो वर मांगे और यहभी कहा कि जो रामचंद्रजीका अभिषेक होगा, तौ हम किसी प्रकारसे भी भोजन पान वा शयन न करेंगी ॥ ८ ॥ और यही हमारे जीवनका अंत होजायगा जो रामचन्द्रजीका अभिषेक हुआ तौ हम न जियेंगी । जब कैकेयीने इस प्रकार कहा तौ हमारे श्वशुर महाराज दशरथजीने ॥ ९ ॥ उनसे बहुत धनादि देनेकी प्रार्थना की परन्तु उन कैकेयीजीने न मानी उस समय महा तेजवान हमारे स्वामी पचीस वर्षके ॥ १० ॥ और हमारी आयु जन्मसे गणना करकै अठारह वर्षकी थी, हमारे स्वामी रामनामसे विख्यात हैं, वह सत्यवान, सुशील, निर्मल स्वभाव ॥ ११ ॥ विशालनेत्र, सर्व प्राणियोंके हितकारी महाबाहु हैं,

परन्तु इनके पिता महाराज दशरथजी कामसे आर्त होगये थे ॥ १२ ॥ इसकारण कैकेयीका प्रिय करनेके लिये उन्होंने इस प्रकारके गुणसम्पन्न रामचंद्र-जीको अभिषेक न किया और जब रामचंद्रजी अभिषेकार्थ अपने पिताके निकट आये तौ ॥ १३ ॥ कैकेयीने शीघ्रही उनसे यह वचन कहा कि, हे रघुनंदन ! तुम्हारे पिताजीने तुमको जो आज्ञा दीहै वह हमसे सुनो ॥ १४ ॥ हे काकुत्स्थ ! भरतको यह निष्कंटक राज्य देना होगा और तुम्हें चौदह वर्षके लिये वनमें रहना पडेगा ॥ १५ ॥ इसकारण तुम वनमें जाकर पिताके सत्यकी रक्षा करो और मिथ्यावादी न करो पिताको इस ऋणसे छुटाओ, तब दृढव्रत हमारे स्वामी, श्रीरामचंद्रजीने निडरहोकर कैकेयीसे ऐसाही होगा; यह कहा ॥ १६ ॥ हमारे दृढव्रतधारी स्वामीने उनके वचन सुनकर उसीके अनुसार कार्य किया. हे विप्र ! वह केवल लोकोंको दान किया करतेहैं; परन्तु कभी किसीसे कुछ ग्रहण नहीं करते सदाही सत्य कहतेहैं कभी मिथ्या नहीं कहते ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण ! बस यही रामचंद्रजीका श्रेष्ठ व्रतहै । उनके सौतेले भाई लक्ष्मणजी अतिशय वीरहैं ॥ १८ ॥ व सदा रामजीके संग रहा करतेहैं पुरुषव्याघ्रहैं समरमें निहारतेही शत्रुका संहार करतेहैं वह ब्रह्मचारी और दृढव्रतधारीहैं ॥ १९ ॥ धनुषबाण हाथमें ले, जटा रखाय तपस्वीका भेष बनाय रामचंद्रजीके व हमारे साथ २ वनमें चले आये ॥ २० ॥ इसप्रकार दृढव्रतधारी महात्मा रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण और अपनी स्त्री सहित जटा रखाय तपस्वी वेष धारणकर दंडकारण्यमें आये ॥ २१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! अब हम तीनजन कैकेयीके कारण राज्यभ्रष्ट होकर अपने तेजके प्रभावसे गंभीर वनमें विच-रण करते हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! एक मुहूर्त भर विश्रामकरो ॥ २२ ॥ अभी हमारे स्वामी बहुत सारे वनफल, मूल, और, रुरु, वराह व गोधा वध करके बहुत मांस द्रव्य ले यहां आते होंगे जब वह आवेंगे तब आपका भली भांतिसे सत्कार होगा इस्से विराजिये ॥ २३ ॥ इस समय आप अपना नाम गोत्र और वंश सत्य २ कहिये हे द्विज ! किस कारणसे आप इस दंडकारण्यमें अकेले घूमतेहैं ॥ २४ ॥ जब रामभार्या सीताने इस प्रकारके वचन कहे तो महा बलवान् राक्षसराज रावण उनको तीखा उत्तर देता हुआ बोला ॥ २५ ॥ हे जानकि ! सुर असुर और मनुष्य सहित समस्त लोक जिसके डरके मारे थर २ कांपतेहैं हम वही राक्षसोंके राजा रावणहैं ॥ २६ ॥ तुम्हारा लावण्य कांचनकी समान है और तुम रेशमी वस्त्र

पहररहीहो. हे अनिन्दते ! तुमको देखकर अपनी स्त्रियोंमें हमारा अब कुछभी अनुराग नहीं रहा ॥२७॥ हम बहुत सारी उत्तम स्त्रियें अनेक स्थानोंसे हरकर लायेहैं सो तुम उन समस्तके बीचमें पटरानी बनों॥ २८॥ तुम्हारा मंगलहो हे जानकि ! चारों तरफ समुद्रसे घिरीहुई पर्वतके शिर त्रिकूटपर लंका नामक जो नगरीहै वह हमारीही है ॥ २९ ॥ तुम वहां हमारे साथ महावनोंमें विचरण किया करोगी. हे भामिनि ! वहां विचरण करनेपर फिर तुमको इस वनमें वास करनेकी अभिलाषा नहीं रहेगी ॥ ३० ॥ हे सीते ! यदि तुम हमारी भार्या बनोगी तो सर्व वस्त्राभूषण भूषित पांच हजार दासिये तुम्हारी सेवा किया करेंगी ॥ ३१ ॥ "रावण यह जानता था कि, मैंने ऐसे पाप किये हैं कि, जिससे जप तप करनेसे कदाचित् मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती इस कारण विरोध करके राम जिनको तत्त्वसे ईश्वर जानता था उनके हाथसे मरनेमें मुक्तिकी प्राप्ति विचारकर जानकीसे ऐसे वाक्य कहे कि जो ऐसे निठुर वचन कहूं तो शीघ्र अधिक पाप करनेसे रामचन्द्रके हाथसे परम पद पाऊंगा" अनन्दिता जनककुमारी जानकीजी राक्षसराज रावण करकै इस प्रकार कही जानेपर महा क्रोधित हुई, और उसका अनादर करके कहने लगीं ॥ ॥ ३२ ॥ जो यहां पर्वत सुमेरुकी समान सबके आश्रय देनेवाले अकंपनीय, महासागरकी समान क्षोभ रहित हैं, ऐसे महेन्द्र तुल्य हम स्वामी रामचन्द्रजीकी अनूगता हैं ॥ ३३ ॥ जो सब शुभलक्षण युक्त वटवृक्षकी समान हैं, हम उनही सत्यप्रतिज्ञ महाभाग रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३४ ॥ जो आजानुबाहुवाले हैं, विशाल हृदय हैं, और सिंहकी समान विक्रमके साथ चलनेवाले हैं, हम उनही नृसिंह आर सिंहसदृश रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३५ ॥ उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाकी समान है कीर्ति बहुतही विस्तारित होरही है; और बांहे जिनकी अति बडी हैं हम उन्हीं राजकुमार जितेन्द्रिय रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३६ ॥ तुम शृगाल होकर सिंहीका अभिलाष करते हो, परन्तु तुम हमको नहीं ले सकते, जैसे सूर्यकी प्रभाको कोई नहीं छू सकता ऐसेही श्रीरामचन्द्रजीके तेज रूप अग्निसे घिरी हमको तुम पानेकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥ ३७ ॥ अरे अभागे राक्षस ! जब कि, तैंने रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याके हरनेका अभिलाष किया है, तब तू निश्चयही सब वृक्षोंको सुवर्णमय देखता होगा (स्वप्नमें सोनेका वृक्ष देखना मृत्युरूप है) अर्थात् तुमको हमारा प्राप्त करना ऐसा दुर्लभ है जैसे कोई दरिद्र सुवर्णके

सहस्रों पेड अपने गृहमें देखनेकी इच्छा करै ॥ ३८ ॥ मृगारि शीघ्रगामी और बडे क्षुधित सिंहके मुखसे या विषधर सर्पके मुखसे तुम दांत निकालनेकी इच्छा करते हो ॥ ३९ ॥ तुम पर्वतवर मन्दराचलको भुजासे उत्पाटन करना चाहते हो, और कालविष पीकर भी इस शरीर सहित कुशल जाया चाहते हो ॥ ४० ॥ क्या तुम सूची (सुई) से अपने नेत्रोंके खुजानेकी इच्छा करते हो, या छुरेकी धारसे अपनी रसनाको चाटना अच्छा समझते हो, क्योंकि जो तुम श्रीरामचन्द्रजी की परम प्यारी स्त्री नारी हमको पानेकी इच्छा करतेहो ॥ ४१ ॥ तुम ग्रीवामें पर्वतका शिखरबांध समुद्र उतरना विचारतेहो, और सूर्य चंद्रमा दोनोंको उभय भुजासे पकडना चाहते हो ॥ ४२ ॥ जो कि, तुमने श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी नारीको बलपूर्वक प्राप्त होनेकी इच्छा की है, सो यह इच्छा ऐसी है, जैसे कोई जलतीहुई अग्नि वस्त्रमें बांधकर ले जाना चाहै ॥ ४३ ॥ तुमने जो रामचन्द्रजीकी कल्याणव्रतवाली भार्याको हरनेकी इच्छा की है, सो यह इच्छा लोहेके त्रिशूलोंके बीचमें चलनेकी समानहै ॥ ४४ ॥ सिंह और शृगालमें, क्षुद्रनदी व सागरमें, अमृत और सिरकेमें जितना भेदहै उतनाही भेद श्रीरामचन्द्रजी और तुममें है ॥ ४५ ॥ कांचन, शीशे और लोहे में, चंदन जल और कीचडमें, वनमें हाथी और बिलाव में जितना अंतरहै, उतनाही अंतर श्रीरामचन्द्रजी और तुममें है ॥ ४६ ॥ गरुड और काकमें, मोर और जलमुर्गीमें, हंस और गीधमें जितना अंतरहै उतनाही अंतर श्रीरामचन्द्रजी और तुममें है ॥ ४७ ॥ महेन्द्रसम प्रभावशाली श्रीरामचन्द्रजी जो धनुष बाण धारण किये इस पृथ्वीपर टिकेहैं, तौ यदि तुम हमको हरभी ले जाओगे तौ तुम्हारे यहां हम वृद्धावस्थाको प्राप्त न होंगी, अर्थात् वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर हमको लेआवेंगे। जिसप्रकार घृतमें मक्खी पडजाय तो घृत दूषित नहीं होता, बरन् मक्खी ही प्राण देतीहै! अर्थात् हमारा कछ न होगा तुमही मारे जाओगे ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार पवनके चलनेसे कदलीका वृक्ष कंपायमान होकर हिलने लगताहै, वैसेही शुद्धस्वभाववाली तन्वंगी जानकीजी दुष्ट राक्षस से इस प्रकारके वचन कह थर २ काँपने लगीं ॥ ४९ ॥ तिन जनकात्मजा सीताजीको कंपायमान देखकर मृत्युसम प्रभावयुक्त रावण उनको डरपानेके लिये अपना कुल नाम और कर्म कहने लगा ॥ ५० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८.

जब सीताजीने इस प्रकारसे कठोर वचन कहे तब रावणने महा क्रोधित होकर भ्रुकुटि टेढी करके कहा ॥ १ ॥ हे वरवर्णिनि ! हम कुबेरके सौतेले भाईहैं। हम परमप्रतापशालीका नाम दशग्रीव रावणहै, तुम्हारा मंगलहो ॥ २ ॥ जिस प्रकार प्रजागण मृत्युसे भय करतेहैं, वैसेही हमारे भयसे भीत होकर, देव, गन्धर्व, पिशाच, पन्नग और उरग गण समस्तही सदा भागतेहैं ॥ ३ ॥ हमने किसी कारणवशसे क्रोधमें भर द्वन्द्व करके संग्राममें विक्रम प्रकाश करके सौतेले भाई कुबेरको सब प्रकारसे जीत लियाहै ॥ ४ ॥ इस कारण वह हमसे डरकर धन धान्य ऋद्धि सिद्धि से भरी पुरी अपनी लंकापुरी त्यागकर पर्वतराज कैलासमें वास करतेहैं ॥ ५ ॥ हेभद्रे ! हमने अपने वीर्यके प्रभावसे उन कुबेरका इच्छानुसार चलनेवाला परमसुन्दर पुष्पकनामक विमानभी हरण करलियाहै हम उसी विमानमें बैठकर आकाशमार्गमें चलतेहैं ॥६॥ हे मैथिलि ! हमें क्रोध उत्पन्न हुआ कि हमारा मुख देखतेही इन्द्रादि मुख्य देवतागण महाभयभीत होकर दशोंदिशाओंको भाग जातेहैं ॥ ७ ॥ जहां पर हम रहा करतेहैं, वायु वहां पर शंकासहित चला करतीहै और सूर्यभी हमारे भयसे आकाश मंडलमें चन्द्रमाकी समान देख पडताहै ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहें ? जहां पर हम बैठते उठते व घूमते घामतेहैं वहां पर वृक्षोंके पत्तेभी नहीं हिलते डुलते, नदियोंका जलभी बहनेसे रुक जाताहै ॥ ९ ॥ समुद्रके पार हमारी लंका नामक परम सुन्दरी नगरी है वह पुरी देखनेमें इन्द्रकी दूसरी अमरावतीहै भयंकर निशाचरगण उसमें रहा करतेहैं ॥ १० ॥ और वहांपर श्वेत धवरहरे वृक्ष बहुतसे शोभित हो रहेहैं, उस लंकापुरीके सब फाटक वैदूर्य मणिके बनेहैं और परकोटा सुवर्णकाहै चारों ओर जिसके समुद्ररूपी खाईहै जिस्से यह पुरी परम मनोहारिणी होगईहै ॥ ११ ॥ वहांपर सदाही बाजोंकी ध्वनि गूँजती रहतीहै। उसमें हाथी घोडे और रथ समूह बहुत भररहेहैं। वहांकी सब फुलवाडियें अभिलाषित फल देनेवाले वृक्षोंसे युक्त हैं जिससे वाडियोंकी अति शोभा होरहीहै ॥ ॥ १२ ॥ हे राजपुत्री सीते ! तुम हमारे साथ उस नगरीमें वास करोगी, तब फिर मनुष्योंकी स्त्रियोंको कभी स्मरणभी नहीं करोगी ॥१३॥ हे मनस्विनी वरवर्णिनी ! वहांपर तुम वह दिव्य भोग करके जो मनुष्योंको महादुर्लभहै क्षीणायु रामचं-

द्रको कभी मनमें स्मरण न करोगी ॥१४॥ और दशरथजीने भरतजीको राज्याभिषेक करकै मन्दवीर्यवाले अपने बडे पुत्र श्रीरामचन्द्रजीको वनमें भेज दिया ॥१५॥ हे बडे २ नेत्रवाली ! तुम उन राज्यभ्रष्ट गतचित्त तपस्वी रामके साथ रहकर क्या करोगी ? ॥ १६ ॥ हम समस्त राक्षसोंके राजा, कामबाणसे बींधे जाकर तुम्हारे पास आपही आयेहैं सो हमारा निरादर करना तुमको उचित नहींहै ॥ १७ ॥ हे भीरु ? हमारा निरादर करनेसे पछि तुमको पछताना पडेगा। जिस प्रकार उर्वशी राजा पुरूरवाको लात मारकर संतापित हुईथी ॥ १८ ॥ राम मनुष्यहै, वह युद्धमें हमारी एक अंगुलीकी समानभी नहीं होगा। हे वरवर्णिनि ! हम तुम्हारी सौभाग्यसेही आप यहां आयेहैं, इससे तुम हमको अपना पति बनाओ ॥ १९ ॥ जब रावणने इस प्रकारके वचन कहे, तब सीताजीके नेत्र क्रोधके मारे लाल २ होगये। वह उस निर्जन वनमें रावणसे यह कठोर वचन बोली ॥ २० ॥ सब देवताओंके नमस्कार करनेके योग्य उन परम पूजनीय, कुबेरजीको अपना भाई बताकर तुम किस प्रकार निन्दनीय कार्य करनेका अभिलाष करते हो ? ॥२१॥ हे रावण ! तुम्हारी समान खोटी बुद्धिवाला कर्कश और अजितेन्द्रिय पुरुष जिनका राजाहै, उनही सबही राक्षस गणोंको नाशको प्राप्त होना पडेगा ॥ २२ ॥ हे राक्षस ! इन्द्रपत्नी शचीको हरण करकै, चाहे कोई जीवित रहजाय, परन्तु रामभार्या हमको हरण करकै कौन पुरुष बच कल्याण पासकताहै ? ॥ २३ ॥ रे राक्षस ! अत्यन्त रूपवती देवराज इन्द्रके पीछे उनकी भार्याको बलपूर्वक हरण करकै चाहे किसीका जीवित रहना संभवभीहो. परन्तु हमसमान स्त्रीको रामचन्द्रजीके पीछे अपमानता करकै अमृत पियाहुआ पुरुषभी मृत्युके हाथसे नहीं बच सकैगा ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०आरण्यकांडे भाषायां अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥४८॥

एकोनपंचाशः सर्गः ४९.

प्रतापवान् दशग्रीव रावण सीताजीके यह वचन सुनकर, हाथपर हाथ मार अपने शरीरको बहुत बढाताहुआ ॥ १ ॥ तिसके पीछे वचन बोलनेमें चतुर दशशीश फिर जानकीजीसे बोला; समझपडा कि तुम उन्मत्त सी हो गईहो। क्या

हमारा वीर्य और पराक्रम तुम्हारे श्रवण गोचर नहीं हुआ ? ॥ २ ॥ हम आकाशमें टिके रहकर अपनी दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठा सकते हैं, सब समुद्रके जलकोभी पीसकतेहैं; और युद्धमें यमराजकोभी मार सकतेहैं ॥ ३ ॥ और तीखे बाणजालसे आकाशमें टिकेहुए सूर्यकोभी व्यथित कर सकते, और पृथ्वीमें गिरा सकतेहैं तीक्ष्ण बाणोंसे ध्रुवलोककोभी नष्ट कर महातलाको विदीर्ण करदूं हे अपने चित्तमें उन्मत्त हुई मेरा कामरूप देख ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहतेही क्रोधयुक्त होनेके कारण रावणके सांवरे नेत्र लाल होकर जलतीहुई अग्निकी समानताको पहुँचे ॥५॥ फिर वह कुबेरका छोटा भाई रावण डंडी भेसको त्यागकर शीघ्रही यमरूप समान अपना तीक्ष्ण रूप धारण करता हुआ ॥ ६ ॥ और महा क्रोधपरायण होकर तपाये सोनेके बनेहुए गहनोंसे सुशोभित होकर नील मेघ सदृश श्रीमान् निशाचर रूप प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ उस समय वह दशमुख व बीस भुजावाला होगया, और छलसे जो दंडीका भेष बनायाथा उसको छोड दिया और बडी कायावाला बनगया ॥ ८ ॥ उस राक्षसपति रावणने पहला रूप धारण कर लिया, परन्तु वस्त्र लाल रंगकेही पहरे रहा, और रमणीरत्न सीताजीको देखकर ॥ ९ ॥ उन सूर्यकी समान प्रभावाली, काले बालों करकै युक्त वस्त्राभूषण धारण किये हुए जानकीजीसे कहने लगा ॥ १० ॥ कि त्रिभुवनविख्यात स्वामीके प्राप्त करनेकी यदि इच्छाहो तौ हे वरारोहे ! हमारा आश्रय ग्रहण करो, हमही तुम्हारे समान पतिहैं ॥ ११ ॥ तुम बहुत कालके लिये हमारा भजन करो. हमहीं तुम्हारे वांछित और बडाई करने योग्य पतिहैं। हे भद्रे ! हम कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे जो तुम्हे प्यारा न हो ॥ ॥ १२ ॥ तुम मनुष्यके प्रति प्रीति त्यागकरकै हमारी ओर अपना प्रेम लगाओ, राज्यसे भ्रष्ट परिमित आयुवाले अर्थरहित, राममें ॥ १३ ॥ किन गुणोंसे तुम अनुरागिणी हुईहो ? हे मूढे ! पंडितमानिनि मैथिलि ! जो रामचन्द्र स्त्रीके कहनेसे राज्य और सुहृद्गणोंको छोडकर ॥ १४ ॥ जोकि हम हिंसक जन्तुओंके वास करने की भूमिमें वनके बीच वह दुर्मति रहताहै। इस प्रकार प्रिय वचन कहने के योग्य प्रिय वचन बोलनेवाली मैथिलीजीसे ॥ १५ ॥ यह कहकर अति दुष्टात्मा रावण जानकीजीके समीप आया और उनको ग्रहण किया, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों आकाशके बीच बुधने रोहिणीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥ उस समय सीता महारानी रावणके कठोर वचन सुन और इसका रूप देखकर

कुछ ऐसी मूर्छितसी होगई थीं कि शापके डरमें वाम बाहुसे तौ रावणने उनपद्मा-क्षीका केशपाश और दाहिनी भुजासे दोनों चरणोंको पकड उठा लिया ॥ १७ ॥ वनदेवता लोकभी उस समय उस पर्वत शृङ्ग सदश तीक्ष्ण डाढवाले महासर्पतुल्य रावणको देख भयभीत होकर दशों दिशाओंको भागगये ॥ १८ ॥ देखतेही रावणका वह मायामय स्वर्णमंडित गर्दभजुताहुआ भयंकर शब्दकारी दिव्य रथ वहां पर आ पहुँचा ॥ १९ ॥ उस रथको देख रावणने गंभीर स्वर कठोर वचनोंसे जानकीजीको डांटा और धमकाया और उनको गोदमें लेकर रथमें डाल दिया ॥ ॥ २० ॥ यशस्विनी सीताजी उस करके ग्रही जानेपर और भयसे व्याकुलहो हा राम ! हा राम ! कहकर पुकार करने लगी परन्तु रामचंद्रजी उस समय बहुत दूरथे ॥ २१ ॥ रावणकेप्रति जानकीजीका कुछभी अनुराग नहीं था इस कारणसे वह अपने छुडानेके लिये यथाशक्य चेष्टा करनेलगी, परन्तु कामके वशहुआ रावण पन्नगराजकी स्त्रीके समान उनको लेकर आकाशको उडगया ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षसराज रावण आकाशमें जानकी हरण करके लेचला जानकीजी कुछ मत्त भ्रान्त चित्त और आतुरकी समान यह कहकर बडे जोरसे विलाप करनेलगी॥ ॥ २३ ॥ हा गुरुचित्तप्रसादक ! महाबाहु लक्ष्मणजी ! कामरूपी राक्षस करके मैं हरी जातीहूं सो इसको तुम नहीं जानतेहो ॥ २४ ॥ हा राम ! तुम धर्मकी रक्षा करनेके लिये प्राण, सुख, संपत्ति सबकाही त्याग करतेहो, इस समय हम अधर्मके द्वारा हरी जातीहैं सो क्यों नहीं हमें आनकर बचाते ? ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानेवाले ! जो अविनयी होतेहैं आप उनका सदाही शासन किया करतेहैं, फिर क्यों नहीं ऐसेही पापात्मा रावणका शासन करतेहो ? ॥ २६ ॥ अन्यायी पुरुषके कर्मका फल शीघ्रही नहीं मिलता; जिस प्रकार नाजके पकनेमें कुछ समयका प्रयोजन होताहै इसी प्रकार समय आनेपर अन्यायका फल मिलताहै ॥२७॥ हे रावण ! तुमने कालके प्रभावसे चेतना रहित होकर यह जो कर्म किया इसके लिये तुमको रामचंद्रजीसे प्राणान्तकरनेवाली घोर विपदमें पडना होगा ॥ २८ ॥ हाय ! हम धर्मकी इच्छा करनेवाले यशस्वी रामचंद्रजीकी धर्मपत्नी होकर भी हरी जातीहैं । इतने दिन पीछे सब कुटुम्बियों सहित कैकयीकी मनोकामना पूर्ण हुई ॥ ॥ २९ ॥ इन पुष्पित कर्णिकार और जनस्थान, सबसेही हम यह प्रार्थना करतीहैं कि सब रामचंद्रजीसे कहदेना कि रावण सीताजीको हरण कर लेगया है॥ ३० ॥

हे हंस सारस सेवित तरंगिणि गोदावरी ! हम तुम्हारी वंदना करतीहैं; तुमभी शीघ्र रामचंद्रजीसे यह कह देना रावण जानकीको हरण करके लेगयाहै ॥ ३१ ॥ इस विविध प्रकारके वृक्ष काननमें जो देवता वास करते हैं, हम उन सबको नमस्कार करतीहैं, वहभी हमारे स्वामी श्रीरामचंद्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता कहैं ॥ ३२ ॥ इस वनमें मृग, पक्षी, इत्यादि जो कोई प्राणीभी वसतेहैं, हम उन सबकीही शरण आतीहैं ॥ ३३ ॥ वह सबही पशु पक्षी हमारे स्वामीसे उनकी प्यारी स्त्रीके हरनेका वृत्तान्त सुनावैं, और कहैं कि विवश होकर सीता रावण करके हरी गई हैं ॥ ३४ ॥ हमको यदि यमराजभी हर कर ले जांय और महाबाहु रामचंद्रजीको समाचार मिल जावै, तो वह अपना पराक्रम प्रकाश करके वहांसेभी हमको लेआवैंगे ॥ ३५ ॥ विशाल नेत्रवाली जानकीजीने अतिशय दुःखित होकर विलाप करते २ अचानक देखा कि गृध्रराज जटायु पेडपर बैठेहैं ॥ ३६ ॥ जटायुको देखकर रावणके वशमें पडीहुई सुश्रोणी जानकीजी भयके मारे दुःखित हो रोकर बोली ॥ ३७ ॥ आर्य जटायु ! अवलोकन करो यह पापात्मा राक्षसराज रावण हमको अनाथकी समान निर्दय भावसे हरण करके लिये जाता है ॥ ३८ ॥ आप इस महाबलवान् विजय चिह्न धारी दुर्मति क्रूर आयुधधारी निशाचर रावण को क्या ? निवारण नहीं कर सकेंगे ॥ ३९ ॥ आप इस निशाचरको निवारण करनेमें समर्थ नहीं हैं, इस कारण ही श्रीरामचन्द्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता ठीक २ कह देना, और लक्ष्मणजीसे यह सब वृत्तान्त ब्यौरेवार कहना ॥ ४० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां एकोनपंचाशः सर्गः ॥४९॥

पंचाशः सर्गः ५०.

जटायु भोजन करके गहरी नींदमें सोरहेथे वह यह शब्द सुनतेही जाग पडे और रावण और जानकी दोनोंको देखा ॥ १ ॥ फिर पर्वतके शृंगसमान बडी तेज चोंचवाले और वृक्षपर बैठेहुए श्रीमान् पक्षिराज जटायु मीठे वचनसे रावणको पुकारते हुए ॥ २ ॥ भ्रातः दशवदन ! हम पुराण धर्म निरत और सत्यप्रतिज्ञहैं, इनकी रक्षाकी हमने प्रतिज्ञा कीहै इस कारण तुम हमारे सामने ऐसा निन्दनीय कार्य कर-

नेमें प्रवृत्त न होवो ॥ ३ ॥ हम महाबलवान् गृध्रराज जटायु हैं और दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी भी साक्षात् महेन्द्र और वरुणजीके समान सब लोकोंके राजाहैं ॥ ॥ ४॥ वह सब लोकोंके हितकारी कार्य करनेको तैयार रहतेहैं, यह वरारोहा यशस्विनी उन्हीं लोकनाथ रामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी हैं ॥ ५ ॥ सीता इनका नामहै जिनको तुम हरण करनेको उद्यत हो सो तुम प्रजापालनरूप धर्ममें स्थिर रहकर किसप्रकारसे पराई स्त्रीको हरण करोगे ॥ ६ ॥ हे महाबलवान् ! विशेष कर राजपत्नियोंकी रक्षा करना सब भांतिसे कर्त्तव्य है, अतएव तुम पराई स्त्रीके हरण करनेरूप ओछे विषयकी नीच बुद्धिको निवारण करो ॥ ७ ॥ जिस कर्मके करनेसे लोकमें निन्दा हो, धीर पुरुष कभी ऐसे कार्यको नहीं किया करतेहैं। अपनी स्त्रीके समान पराई स्त्रीको परपुरुषके स्पर्शसे रक्षा करना सबही पुरुषोंको कर्त्तव्यहै ॥ ८ ॥ हे पौलस्त्यनंदन ! शास्त्रसे निश्चित न होनेपर भी शिष्ट जब राजाके अनुवर्ती होकर अनेकानेक धर्म, अर्थ अथवा काम विषयके अनुष्ठानमें रत होतेहैं ॥ ९ ॥ राजाही धर्म, राजाही काम और राजाही समस्त द्रव्योंमें उत्तम रत्न स्वरूपहै. धर्म, काम वा पाप समस्तही राजमूलकहैं ॥ १० ॥ हे राक्षसराज ! हम नहीं कह सकते कि, तुम पापस्वभाव और चपल होकर किस प्रकार दुष्कर्म करनेवाले जनको देवयोनि प्राप्त होनेके समान ऐसे ऐश्वर्यको प्राप्त हुए ? ॥ ११ ॥ जो पुरुष स्वेच्छाचारी होता है वह उस अपने स्वभावको त्यागन नहीं कर सकता, क्योंकि दुरात्माओंके स्थानोंमें पुण्य कभी टिक नहीं सकताहै ॥ १२ ॥ महाबल धर्मात्मा रामचन्द्रजीने तुम्हारे नगर व अधिकारमें कोई अपराध नहीं कियाहै, फिर तुम किस कारणसे उनका अपराध करतेहो ? ॥ १३ ॥ देखो ! जनस्थानका रहनेवाला खर अतिशय दुष्टथा तिससे सरलता करनेवाले रामने शूर्पणखाके लिये यदि उसको मार डालाहै ॥ १४ ॥ तौ इसमें रामचंद्रजीका क्या अपराधहै ? तुम वही लोकनाथ रामचंद्रजीकी भार्या हरण करकै लिये जातेहो ॥ १५ ॥ अभी जानकीको छोड दो; इन्द्रने जिस प्रकार वज्रसे वृत्रासुरको जलाडालाथा वैसेही कहीं रामचंद्रजी तुमको अनलकल्प रूप भयंकर दृष्टिसे भस्म न कर दें ॥ १६ ॥ तुमने जो अपने वस्त्रके अंचलमें महा विषैला सर्प बांधाहै सो उसको तुमने सर्प नहीं जाना है, अथवा तुम उस कालपाशको नहीं देखते हो जो तुम्हारे गलेमें पडीहै ॥ १७ ॥ हे सौम्य ! जिस भारको वहन करनेसे दबजाना न पडे वही बोझा लेकर चलना चाहिये।

और जो सहजहीसे पच जावे, और किसी प्रकार पीडा न करै उसही अन्नको खाना चाहिये ॥ १८ ॥ जिसकार्य करनेसे धर्म, कीर्ति वा चिरस्थाई यश, किसीके मिलनेकी भी संभावना न हो, बरन् उलटा उससे शरीरमें खेद हो, भला ऐसे कार्यके करनेकी कौन पुरुष इच्छा करैगा ? ॥ १९ ॥ हे रावण ! हमें साठ हजार वर्ष जन्म लिये हुए, तबसे विधिपूर्वक पिता पितामहादिकोंका पक्षियोंका राज्य पालन करते हैं ॥ २० ॥ यद्यपि हम बूढे होगयेहैं और तुम युवा धनुर्बाण-धारी कवचसम्पन्न और रथ पर सवारहो, तथापि हमारे सामने तुम निरापद जानकीको न लेजा सकोगे ❀ ॥ २१ ॥ मेरे देखते तुम बलसे जानकीको हरण नहीं करसकते जैसे कोई न्यायके तर्क और हेतुओंसे अचल वेदकी श्रुतिको हरण नहीं करसक्ता अर्थात् अन्यथा नहीं करसक्ता ॥२२॥ यदि तुम शूर हो युद्ध करो। अथवा हे रावण! एक मुहूर्त भर ठहर, पहले खर जिस प्रकार पृथ्वीपर शयन कर चुका तुमभी वैसेही मारे जाकर पृथ्वीपर शयन करोगे ॥ २३ ॥ जिन तुमने वारंवार युद्धमें दैत्य और दानवोंको मार डाला है, सो जटावल्कलधारी रामचंद्रजी शीघ्रही संग्राममें तुमको वध करेंगे ॥ २४ ॥ वह दो राजकुमार, राम लक्ष्मण अभी दूर हैं हम क्या करैं, रे नीच! तुमको शीघ्रही उनसे भीत होकर विनाशको प्राप्त होना पडेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ और जबतक कि, हम जीते हैं तबतकभी तुम हमारे सामने रामचंद्रजीकी प्रिय स्त्री कमलनेत्रा सुस्व-भावा इन जानकीजीको ले नहीं जा सकोगे ॥ २६ ॥ क्योंकि जबतक हम जीवित हैं तबतक प्राणतलकभी देकर महात्मा रामचन्द्र और दशरथजीका प्रिय कार्य हमको अवश्य करना उचित है ॥२७॥ इस कारण हे रावण ! एक मुहूर्त खडा रह खडा रह. तुझको हम देखेंगे जिस प्रकार बौर से फल तोड लिया जाता है तुमको हम रथसे नीचे गिरावेंगे ॥ २८ ॥ रे निशाचर ! जबतक हमारे प्राण तबतक भली भांति हम तुम्हारी युद्धकी पहुनई करेंगे ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आर० भाषायां पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

❀ भजन–गीधराज सुनि आरत वानी । नैन उठाय विलोकन लागे रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥१॥ परीं अधम निश्चरके वशमें जात पुकारत शारँग पानी ॥ २ ॥ महाक्रोधमें भर अधीरहो रार करनकी मनमें ठानी ॥३॥ पवन समान वेगसों धाये बोले ठहर तनक अभिमानी ॥४॥ चोर समान लिये सीताको जात कहां बचकै अभिमानी ॥ ५ ॥ यह कह चोंच मार रथ तोरचो रथीमार सुमिरे सुख दानी ॥ पुनि रावणको कियो मूर्छित लई उतार सीय महारानी ॥ ६ ॥ यह बलदेव भक्तके कर्तब युग २ कीरत चली सुहानी॥७॥

एकपंचाशः सर्गः ५१.

पक्षीराज जटायुने जब इस प्रकारसे कहा तब शुद्ध सुवर्णके बने कुंडल पहरे राक्षसराज रावण क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर उनके सामने बडे वेगसे दौडा ॥ १ ॥ फिर गगनमण्डलमें वायु प्रेरित दो मेघोंकी टक्कर जिस प्रकार लडती है, वैसेही इन दोनोंका महाघोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ २ ॥ पर लगे हुए माला पहरे हुए दो श्रेष्ठ पर्वतोंकी समान गृध्रराज जटायु और राक्षसेन्द्र रावणका अद्भुत संग्राम उपस्थित हुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे रावणने महाबलवान् गृध्रराजके ऊपर अनवरत महा भयंकर तीक्ष्णफलक लगेहुए नालीक और नाराच व विकर्णि समूह बाणोंकी वर्षा की ॥४॥ पक्षिराज जटायुने युद्धमें रावणके चलायेहुए अस्त्र और समस्त शरजाल ग्रहण किया ॥५॥ और गृध्रराजने अति तीखे नखून लगे हुए अपने दोनों चरणोंसे रावणके शरीरमें सहस्रों घाव करदिए अपने शरीरमें घाव हुए देख महावीर दशवदन रावणने क्रोध पूर्ण हो शत्रुके मार डालनेकी इच्छासे यमराजके दंडकी समान भयंकर दशबाण ग्रहण किये॥६॥७॥और कानतक धनुषको खेंचकर उन सीधे चलनेवाले तीखे रुधिरके प्यासे भयंकर शिलीमुख बाणोंको छोडकर जटायुको वध किया॥८॥ राक्षसराज रावणके रथमें रुदन करतीहुई जानकीको देखकर पक्षीराज जटायु उन समस्त बाणोंको कुछ न गिनतेहुए रावणके सन्मुख दौडे ॥ ९ ॥ और अपने दोनों चरणोंसे तेजस्वी जटायुने रावणका मणिमुक्ताभूषित बाणसहित शरासन तोड डाला ॥ १० ॥ अपने धनुषबाणको टूटा हुआ देखकर रावण महा क्रोधयुक्तहो दूसरा धनुष ग्रहण करकै शत २ सहस्र २ बाणोंकी वर्षा जटायु पर करने लगा ॥ ॥ ११ ॥ उस समय पक्षिराज जटायु उन शर समूहसे विंधकर घौंसलेमें बैठेहुए पक्षीकी समान शोभित होने लगे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे महातेजस्वी जटायुजीने अपने दोनों पंखोंसे उस शरजालको तोड ताड फिर अपने पंजोंसे रावणके महा धनुषको तोड डाला ॥१३॥ और पंखोंके प्रहारसे महा तेजस्वी जटायुने रावणका अग्निकी समान प्रदीप्त कवचभी खण्ड २ कर दिया ॥ १४ ॥ समरमें रावणका सुवर्णमय दिव्य कवच तोडकर जटायुजीने अतिशय शीघ्र चलनेवाले पिशाचवदन गधोंको जो रावणके रथमें जुते थे मारडाला ॥ १५ ॥ फिर वेगमें भरकर रावणकी इच्छानुसार चलनेवाले अग्निके समान प्रभावाले मणिरचित सोपानयुक्त तीन

बांस जिनमें लगे हुए ऐसे रावणके रथकोभी जटायुने तोडा ॥ १६ ॥ छत्र आदि धारण करनेवाले राक्षसोंके सहित पूर्ण चन्द्रमाके समान छत्र और व्यंजनभी जटायुने नीचे गिराया ॥१७॥ और फिर अपनी चोंचके प्रहारसे सारथीका बडाभारी शिरभी बडे वेगसे जटायुने काटा इस प्रकार परम श्रीसम्पन्न महाबलवान् पक्षिराज करकै ॥ १८ ॥ शरासन छिन्न रथके टूट जाने पर सारथी और घोडोंके मर जाने से जानकीजीको दोनों भुजाओंसे पकडहुए रावण पृथ्वीपर गिरा ॥ १९ ॥ रावणकी सावरीको टूटा फूटा देख; और स्वयं रावणकोभी पृथ्वीपर गिरा देख, समस्त प्राणी वारंवार " साधु साधु ! " कह कर गृध्रराजकी बडाई करने लगे ॥ ॥ २० ॥ तिसके पीछे रावण बडी ऊमर होनेके कारण बुढापा ग्रस्त पक्षियूथपति जटायुको थकाहुआ देख हर्ष सहित मैथिली सीताजीको ग्रहण कर आकाश मार्गमें गमन करने लगा ॥ २१ ॥ रावणके समस्तही युद्धसाधन विनष्ट और हत हो गयेथे, केवल एक खड्ग बच रहाथा । वह रावण उस अवस्थामेंभी नितान्त हृष्टचित्त होकर जानकीजीको गोदीमें बैठाय जानेको तैयार हुआ ॥ २२ ॥ महा तेजस्वी गृध्रराज जटायु बडे जोरसे कूद रावणके सामने दौडे और उसको भली भांति रोककर कहनेलगे ॥ २३ ॥ अरे अल्पज्ञानी रावण ! तुम समस्त राक्षस कुलको विनाश करनेके लियेही उन वज्र समान बाण धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीकी इन जानकीजीको हरण करता है ॥ २४ ॥ हम समझे कि, प्यासा होकर मनुष्य जिस प्रकार जल पीता है तूभी वैसेही मित्र, बन्धु, मंत्री, चतुरंग सेना और दास दासी इत्यादि समस्त परिजनोंके सहित विष पीनेको तैयार हुआहै॥२५॥ मूर्खलोग जिस प्रकार कर्मके फलको न जान कर शीघ्रही विष पीकर विनाशको प्राप्त होतेहैं वैसेही तुम्हारा सब परिवारके साथ सत्यानाश हो जायगा ॥ २६ ॥ तू कालकी फांसीमें बँधा है; मछली जिस प्रकार मांसका टुकडा लगी हुई वंशीको ग्रहण करनेके अर्थ अपना प्राण खोनेको उसके सामनेको दौडती है और निश्चयही उसके प्राण जाते हैं । सो इसी प्रकार तूभी किसी स्थानमें गमन करकै भी इस भांतिकी कालफांसीसे न छुटेगा ॥ २७ ॥ हे रावण ! राम लक्ष्मणको कोई नहीं जीत सकता । सो तू जो इस आश्रमका निरादरकर जानकीजीको लियेचला जाता है इस बातको यह सुनकरभी तुझे किसी भांति क्षमा नहीं करेंगे ॥ २८ ॥ तुझ डरपोकने सर्व लोक निन्दित जैसे कर्मका अनुष्ठान किया है सो

ऐसे मार्गमें तस्कर लोग चला करते हैं, और वीर लोग इस मार्गमें नहीं चलते ॥ ॥ २९ ॥ अरे रावण ! यदि तुझमें शूरताहो तौ युद्ध कर ! नहीं तौ एक मुहूर्त ठहर बस अपने भ्राता खरकी समान तूभी पृथ्वीमें शयन करैगा ॥ ३० ॥ मृत्युके समय लोग जिस प्रकारके कार्यको करते हैं सो तूभी अपना नाश करनेके लिये उसी भाँतिके अधर्म कार्य करनेको तयार हुआहै ॥ ३१ ॥ जिस अधर्म कार्यके करनेसे केवल पापही होताहै, उस कार्यके करनेमें कौन जन हाथ डालताहै ? इन्द्रादि लोकपाल अथवा स्वयं भगवान् ब्रह्माजीभी नहीं करते ॥ ३२ ॥ महाबलवान् जटायुजी इस प्रकारका नीतियुक्त वचन कहकर दशानन रावणकी पीठपर चिपटगये ॥ ३३ ॥ महावत दुष्ट हाथीपर चढकर जिशप्रकार अंकुश और भाला आदिसे उसके मस्तकको बींधता है, जटायुनेभी वैसेही रावणको पकड अपने तीक्ष्णनखोंकी चोटसे भली भाँति रावणको घायल किया ॥ ३४ ॥ और इसी भाँतिसे चोंचके आघात और पंजोंके प्रहारसे रावणकी पीठ नोचकर फिर उन्होंने नखून पंख और चोंचरूपी इन हथियारोंकी सहायतासे रावणके सब बाल उखाड डाले ॥ ३५॥ गृध्रराजके वारंवार प्रहार करनेसे रावण अति पीडित होगया, और क्रोधमें भरनेके कारण उसके अधर और सब शरीर कांपने लगे ॥ ३६ ॥ तब रावणने अतिव्याकुल और मूर्च्छित होकर बांई बगलमें भली भांति जानकीजीको दाब जटायुको एक लात मारी ॥ ३७॥ शत्रुदमनकारी पक्षिराज जटायुजीने उस लातके प्रहारको सहकर अपनी चोंचसे रावणके दश बाये हाथ मर्दन कर उखाड डाले ॥ ३८ ॥ बाहैं उखड जानेपरभी, रावणके शरीरसे सहसा नये हाथ निकल आये उस समय ऐसा ज्ञात हुआ मानो विषज्वालायुक्त सर्पगण बमईसे बाहर निकले ॥ ॥ ३९ ॥ इसके पीछे वीर्यवान् दशवदन क्रोधमें भर जानकीजीको छोड मुक्के और लातोंसे जटायुजीको मारने लगा ॥ ४० ॥ और जटायुजीभी उसे खुरचने व काटने लगे तब अनुपम पराक्रम गृध्रराज और राक्षसराजका घोर युद्ध होने लगा ॥ ॥ ४१ ॥ जटायुजी रामचन्द्रजीके उपकार करनेको युद्ध करतेथे तब रावणने खड्ग उठाकर उनके दोनों पंख दो चरण और दो बगले काट डालीं ॥ ४२ ॥ जब घोर कर्म करनेवाले निशाचरने पंख काट डाले तब गृध्रराज जटायु मृत्युके निकट पहुँचकर तत्क्षण पृथ्वीमें गिरे ॥ ४३ ॥ उनको रुधिर लगी देहसे पृथ्वीमें गिराहुआ देखकर सीताजी दुःखित हो बन्धुकी समान शीघ्रतासे उनकी ओर दौडी ॥

॥ ४४ ॥ लंकापति रावणने नीले मेघकी समान विपुल वीर्यवान् श्वेतवर्णयुक्त छातीवाले और भूपतित जटायुजीको बुझी हुई दावानलके समान शांत देखा ॥ ॥४५॥ अनन्तर चंद्रवदना जनककुमारी सीताजी रावणके वेगसे मर्दित व पृथ्वीपर पडेहुए जटायुजीको दोनों बाहोंसे पकडकर वारंवार विलाप करकै रोनेलगी॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० आर० भाषायां एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२.

रावण करके गृध्रराजका नाश देखकर चंद्रमुखी जानकीजी महादुःखितहो यह कहकर विलाप करने लगी ॥ १ ॥ नेत्रोंका फडकना कृष्णपुरुष दर्शनादि विषयके स्वम, पक्षियोंका देखना और पक्षियोंका स्वर श्रवण करना इत्यादि निश्चयही मनुष्योंके होनहार सुख दुःखकी सूचना करतेहैं ऐसा देखा जाताहै ॥ २ ॥ हे काकुत्स्थ रामचंद्र ! आज निश्चयही मृग और पक्षिगण इस विपदकी सूचना करकै हमारा वियोग जतानेको तुम्हारे सामने दौडते होंगे, तथापि तुम इस अपने बडे कष्टको नहीं जानतेहो ॥ ३ ॥ हे काकुत्स्थ ! यह विहङ्गम जटायु कृपा करकै हमारा उद्धार करनेके लिये यहां आकर हमारेही भाग्य दोषसे निहतहो पृथ्वीपर पडेहैं ॥ ४ ॥ हे नाथ रामचन्द्रजी ! लक्ष्मणजी ! तुम यहांपर हमारी रक्षा करो यह कहकर स्त्रीरत्न सीताजी अतिशय शंकित होकर बडे जोरसे रुदन करने लगी। उनके रोनेको निकटवर्ती प्राणियोंने सुना ॥ ५ ॥ उनके सब गहने और माला इत्यादि मैली होगई और अनाथकी नाई विलाप करने लगीं तब राक्षसपति रावण उनके सन्मुख दौडा ॥ ६ ॥ और जटायुको पकडे-हुए सीताजीको देखकर वारम्वार, इसे छोडो इसे छोडो, ऐसा रावणने कहा जिस प्रकार लता वृक्षोंको घेर लेतीहै ऐसे जटायुको पकडे जो सीताजी बैठीथीं उनके समीप ऐसी दशामें रावण आया ॥ ७ ॥ इस समय सीताजी रामचंद्रजीके विरहके मारे वनमें वारंवार राम ! राम ! करकै बडे शब्दसे रुदन करती हुई चिल्लाने लगी तब साक्षात् यमराजकी समान रावणने अपना नाश करनेके लिये उनके केश ग्रहण किये ॥ ८ ॥ जब जानकीजीका इस प्रकारसे अपमान हुआ तब सचराचर समस्त जगत् मर्यादा शून्य होकर घोर निबिड अंधकारसे छागया ॥९॥ फिर उस समय पवनका चलना बन्द होगया प्रभाकर प्रभाशून्य होगये उसी समय

दिव्यदृष्टिसे यह केशाकर्षण घटना देखकर ब्रह्माजीने जाना कि रावण सीताको हर लेगया * ॥ १० ॥ और श्रीमान् देवपितामह ब्रह्माजीने सब देवताओंसे यह बात कही कि अब कार्य सिद्ध हुआ क्योंकि अब अवश्यही श्रीरामचंद्रजी रावणको मार डालेंगे यह सुनकर कि, अब देवताओंको कष्ट न होगा इससे तौ सब देवगण हर्षित हुए व जानकीजीका हरण सुन परम दुःखित हुये ॥ ११ ॥ जानकीजीको हराहुआ देखकर दंडकारण्यवासियोंनेभी जान लिया कि दैवयोगसे रावणका विनाश आ पहुँचा इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ इस ओर सीताजी बार-म्बार राम और लक्ष्मणजीका नाम लेकर रोनेलगी राक्षसराज रावण उनको ग्रहण करके आकाशमार्गमें गमन करने लगा ॥ १३ ॥ तपेहुए सुवर्णके गहने पहने पीले रेशमीन वस्त्र पहरे राजनंदनी जानकीजी अतीव शोभान्विता सौदामिनी बिजली की समान दीप्ति धारण करती हुई ॥ १४ ॥ उस कालमें सीताजीके पीतवसन उडनेके कारण रावणभी अग्निद्वारा प्रदीप्त पर्वतकी समान अधिक विराजमान हुआ परम कल्याणी सीताजीके शरीरमें जो सुगन्धियुक्त अरुण वर्णके कमलदलथे; वह समस्त दशाननके अंगपर गिरते जातेथे ॥१५॥१६॥ इसके सिवाय जानकी-जीके विशुद्ध स्वर्ण वर्णके रेशमीन वस्त्र आकाशमें उडकर सन्ध्या कालीन सूर्य किरण शोभान्वित मेघोंकी समान शोभा विस्तार करने लगे ॥ १७ ॥ और सी-ताका निर्मल मुखमंडल रावणके अंकमें रहनेके कारण श्रीरामचंद्रजीके विना मृणालरहित कमलकी समान किसी भांति शोभित नहीं हुआ ॥ १८ ॥ नील मेघको भेदनकर उदय होते हुए चंद्रमाकीसमान सुन्दर ललाटसहित सुन्दर केशपर्यंत पद्मगर्भसम प्रकाशित विस्फोटकके चिह्नरहित॥१९॥दीप्तिमान् श्वेतवर्ण दन्तपंक्तिकी प्रभासे सुशोभित सुन्दर नेत्रयुक्त जानकीजीका वदन रावणके अंगमें स्थित आकाशमें इसप्रकारसे शोभापाने लगा ॥२०॥ अनवरत रोदनयुक्त आंसूओंके जलसे मलीन चंद्रमाकी समान प्रियदर्शन सुन्दर नासिकासहित, मनोहर, व लाल अधरों करकै युक्त सुवर्णके समान आकार कांतिवाला ॥ २१ ॥ रावण करकै कंपाय-

---

* रागनी वरुणाताल ॥ रोदनकर शिर धुनत जानकी ॥ हा रघुपति कित गये छोड मुहि रक्षाकीजे आन मानकी ॥ कपटभेषधरिदुष्ट हरण कियो सुधि न रही मोहि रेख आनकी ॥ हा लक्ष्मण तव वचन न माने अपने हित मैं आप हानकी ॥ मम रोदन धुनि सुनत न कोऊ क्या इच्छाहै कृपानिधानकी ॥ नारद काल आय नियरानो मति बौरानि यातुधानकी ॥

मान हुआ तिन श्रीजानकीजीका मुखमंडल आकाशमें दिनके चंद्रमाकी समान बिना श्रीरामचंद्रजीके शोभाको प्राप्त नहीं हुआ ॥ २२ ॥ सुवर्णकी बनी हुई क्षुद्र-घंटिका जिस प्रकार नीलवर्णके हाथीके आश्रयमें शोभा पातीहै, स्वर्णवर्ण जानकीजीभी वैसेही रावणके साथ शोभाको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ सीताजी पद्म केशरवर्ण और सुवर्णकी समान कान्तियुक्तथीं और उनके सब गहने तपेहुये सुवर्णके बनेथे । इस कारण रावणके सामने वह ऐसी शोभा धारण करती हुई, जिस प्रकार बिजली मेघमें विराजमान रहतीहै ॥ २४ ॥ उस कालमें सीताजीके गहनोंके शब्दसे दशानन शब्द करते हुए सुविमल नीलवर्ण मेघकी समानता धारण करता हुआ ॥ २५ ॥ जब सीताजीको रावण हरकर ले चला तो उनके मस्तकसे फूलोंकी झडीसी लगकर पृथ्वीपर गिरने लगी ॥ २६ ॥ परन्तु वही पुष्पवृष्टि रावणके गमनवेगसे उत्पन्न हुए पवनद्वारा कंपाई जाकर फिर कुबेरके छोटे भाई रावणकेही चारों ओर गिरने लगी ॥ २७ ॥ वह सीताजीके शिरके फूलोंकी झडी रावणके चारों ओर सुमेरुपर्वतके चारों ओर नक्षत्रोंकी पाँतिकी समान शोभित होतीथी ॥ २८ ॥ उसी समय जानकीजीके चरणसे रत्नभूषित नूपुर खसकर बिजलीके मंडलकी समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥ २९ ॥ श्रीजानकीजी नवतरु पल्लवकी समान रक्तवर्णवाली थीं, उनके साथ नीलेवर्णका रावण सुवर्णकी कन्या युक्त हस्तीकी समान शोभा पाने लगा इससे जानकीजी हाथीकी सुवर्णकी कौंधनीकी समान शोभा पाने लगीं ॥ ३० ॥ श्रीसीताजी महाज्वालाकी समान अपने तेजसे आकाशके बीच देदीप्यमान होने लगीं, कुबेरका भाई रावण उस अवस्थामें उनको आकाशमार्गमें गमन करके ले जाने लगा ॥ ३१ ॥ उस समय सीताजीके अग्नि वर्णवाले शब्दायमान उनकी देहसे खसककर सब भूषण पृथ्वीमें गिरने लगे, उस समय ऐसा बोध हुआ मानो पुण्य क्षीणहुए तारागण आकाशसे गिर रहे हैं ॥ ३२ ॥ सीताजीका चंद्र सदृश दीप्तिवाला हार उनके दोनों उरोजोंके मध्यसे भ्रष्ट होकर गगनसे गिरीहुई गंगाजीके समान शोभा विस्तार करता गिरने लगा ॥ ॥ ३३ ॥ उत्पातकी वायुके चलनेसे शिरसमूह कम्पित होनेके कारण विविध विहङ्गमयुक्त वृक्ष मानो जानकीसे "कुछ भय नहींहै !" यह कहने लगे ॥ ३४ ॥ कमलदलोंके विध्वंस होजानेसे, और मत्स्य इत्यादिक जलचरोंके व्याकुल हो जानेपर सब सरोवर सखीकी समान उत्साहरहित जानकीजीके शोकसे विह्वल होरहेथे

॥ ३५ ॥ सिंह, व्याघ्र, मृग और पक्षिसमूह क्रोधमें भरकर सीताजीकी परछांई-के पकडनेके लिये चारों ओरसे आकर उनके पीछे २ दौडने लगे॥ ३६॥ जानकी-जीके हर जानेसे समस्त पर्वत शृङ्गरूप बाहुपरम्परा उठाकर झरने रूप अश्रुधाराकुल वदनसे मानो रुदनही करने लगे॥ ३७॥ श्रीमान् सूर्यनारायणभी उस अवस्थामें जानकी जीको देखकर दीन और तेजहीन होगये और उनका मंडलप्रदेश धूँधला होगया ॥ ॥ ३८॥ जब कि, रावण रामभार्या सीताजीको हरण करके लिये जाताहै, तब फिर सत्य, दया, धर्म, सरलता और सुशीलता सबही संसारसे लोप होगई यदि ऐसा न होता तो रावण कैसे जानकीजीको हरता ? ॥ ३९ ॥ सबही प्राणी झुण्डके झुण्ड मिल-कर यह कह विलाप करने लगे, मृगछौनागण त्रासित होकर वारंवार शोभा-रहित नेत्रोंसे दीनमुखहो रोने लगे ॥ ४० ॥ नेत्र खोल २ बार २ यह देख वन-देवताओंका शरीर मारे भयके थरथरा कर कांपने लगा ॥ ४१ ॥ "राम-राम लक्ष्मण-लक्ष्मण" कह २ कर जोरसे रोती व दुःखसे पुकारती जानकीजीको मधुर स्वरसे बोलतीहुई देखकर वनदेवतोंने बडा दुःखमाना ॥ ४२ ॥ और बार २ उन-को पृथ्वीपर निहारती हुई कि कदाचित् रामचन्द्र आजाय तिलक विसना हुआ व्याकुल चित्त बुद्धिमती जानकीजीको अपना सर्वनाश करानेके निमि-त्तही रावण हरकर लेगया ॥ ४३ ॥ अनन्तर मनोहर दन्तवाली मन्द २ हास्य युक्त; जानकीजी राम और लक्ष्मण दोनोंको नहीं देखनेपर बन्धुजनके विरहसे मलिनमुखी और भयसे बहुतही पीडित हुई ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०आरण्य०भाषायां द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ५३.

रावणको आकाशमें उडताहुआ देखकर जनककुमारी सुकुमारी सीताजी महाभीत होकर घबडाई और बहुतही दुःखित हुई ॥ १॥ क्रोध करनेके कारण और रोते २ उनके दोनों नेत्र लाल हो आये, वह आर्तस्वरसे रोकर उस कालमें भयंकर नेत्र कियेहुए राक्षसपतिसे कहने लगीं॥ २॥ रे राक्षसाधम रावण ! हमको अकेला पाकर चोरी करके तू लिये भागाजाताहै अरे क्या इस नीचकर्मसे तुझे लाज नहीं आ-ती ? ॥ ३ ॥ रे दुरात्मन् ! मैं जान गई कि तू डरपोक स्वभाववालाहै इसी कारणसे हमारे हरण करनेका अभिलाष कर मायामय मृगरूप बना हमारे स्वामी

रामचन्द्रजीको छलसे दूर लेगया ॥ ४ ॥ और इस समय हमारी रक्षा करनेके लिये जो तैयार हुएथे उन हमारे श्वशुरके सखा गृध्रराज जटायुजीकोभी तैने मार डाला ॥ ५ ॥ हे राक्षसाधम ! इससेही जाना गया कि, तुझमें कुछ वीरता नहींहै तूने केवल हमको अपना नामही सुनाकर हरण किया, कुछ तुझ करके हम जीती नहीं गई, हाँ राम लक्ष्मणसे युद्ध कर हमें जीतता तौ एक बातथी ॥ ६ ॥ रे नीच शून्यमें पराई स्त्रीके हरण करनेका यह नीच निन्दनीय कार्य करके तू लज्जित नहीं होता ॥ ७॥ रे अपनेको शूर माननेवाले ! तूने जो यह अति निर्लज्ज और निन्दनीय कार्य कियाहै सो इसकी सब पुरुष चरचा कर २ के तुझे बुरा कहेंगे ॥ ८ ॥ तूने जो अपनी शूरताई की और शारीरक बलकी वार्ता कही सो तेरी इस शूरताको धिक्कारहै ! तेरे इस बलकोभी धिक्कारहै ! तेरे कुलके कलंकजनक ऐसे चरित्रपरभी धिक्कारहै ॥ ९ ॥ तू इस प्रकारसे हरण करकै शीघ्रताके साथ दौडा जाताहै फिर भला हम क्या कर सकें हां यदि एक मुहूर्तभी तू खडा रहै, तो प्राण लेकर नहीं लौटने पावेगा ॥ १० ॥ राजकुमार रामचंद्र और लक्ष्मणजीकी दृष्टिके आगे आते ही तू सेनासहित एक मुहूर्तभरभी प्राण धारण नहीं कर सकेगा ॥ ११॥ पक्षी जिस प्रकार वनमें लगी हुई दावानलको नहीं छू सकता, वैसेही उन राजकुमारोंके बाणोंका स्पर्श सहन करनेकी किसी भाँति तुझमें सामर्थ्य नहीं है ॥ १२॥ इसकारण हे रावण ! भली भाँति अपना हिताहित विचार करकै सीधी तरहसे हमको छोडदे । नहीं तौ हमारे स्वामी अपने भ्राताके सहित हमारे इस पकडेजानेपर महाक्रोधित हो ॥ १३ ॥ यदि तू हमको न छोडदेगा तौ तेरा विनाश करनेके लिये यत्न करेंगे, तू जिस आशयसे हमको हरण करकै लिये जाताहै ॥ १४ ॥ सो हे नीच राक्षस ! वह तेरा आशय कभी सिद्ध नहीं होगा हम उन देवसमान अपने स्वामीको न देखनेपर ॥ १५ ॥ शत्रुके वशमें रहकर बहुतकालतक प्राण धारण करनेको समर्थ न होगी, हमको समझ पडताहै कि तू अपना कल्याण और हित नहीं देखता ॥ ॥ १६ ॥ जिस प्रकार मृत्युके समय लोगोंकी बुद्धि विपरीत हो जातीहै अथवा मरनेके निकट किसीको पथ्य रुचिकर नहीं होता ॥ १७ ॥ रे राक्षस ! तू इस समयके कार्यमेंभी भय नहीं करता, इस कारण हम देखतीहैं कि तेरा गला कालकी फाँसीसे बँध गयाहै ॥ १८॥ और स्पष्टही समझ पडताहै कि, तेरी मृत्यु जो निकटहै इससे सब वृक्ष तुझे सुवर्णके दृष्टि आतेहोंगे, कारण कि जिनकी मृत्यु निकट होतीहै,

उनको वृक्ष सुवर्णकेही दीखतेहैं, और रक्तवाहिनी भयंकर वैतरणी नदी ॥ १९ ॥ और महाभीषण खड्गरूप पत्रयुक्त वृक्षोंका वन तू अति शीघ्र देखेगा ! और उत्कृष्ट वैदूर्यमणिमय पत्ते लगे हुए तपायेहुए सुवर्णके बने फूल लगे हुए ॥ २० ॥ और भी महद कंटकाकीर्ण सुतीक्ष्ण शाल्मली वृक्ष यह सब बहुत शीघ्र तुझको दिखाई देंगे ! उन महात्मा रामचंद्रजीका ऐसा अप्रिय कार्य करकै नहीं जी सकोगे॥२१॥ जिसप्रकार विषका पीनेवाला बहुत देरतक नहीं प्राण रख सकता, रे निर्घृण रावण ! इन सब बातोंसे स्पष्टहै कि तू कठिन कालकी फांसीसे बँधाहै ॥ २२ ॥ हमारे महात्मा स्वामीके सन्मुख संग्राममें प्राप्त होकर फिर तुम्हारा कहीं निस्तारा नहीं; फिर तू कहां जायकर बचेगा; उन्होंने अकेलेही विना अपने भ्राताकी सहायताके एक निमेष मात्रमें ॥ २३ ॥ चौदह हजार राक्षस मारडाले, वही सब अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले महाबलवान् वीर्यसम्पन्न श्रीरामचंद्रजी ॥ २४ ॥ सुतीक्ष्ण बाणोंके समूहसे अपनी प्रिय भार्याके हरनेवाले तुझको अवश्यही मार डालेंगे रावणके हाथोंके बीचमें बैठी वैदेहीजी भय और शोक युक्त होकर इसप्रकारसे व औरभी बहुत भांतिसे कठोर वचनके साथ करुणास्वरसे विलाप करने लगीं ॥ २५ ॥ वह महाव्याकुल होकर अपने छुडानेकी चेष्टा करती हुई करुणा सहित विलाप करकै अनेक वचन कहने लगीं, उस समय पापचारी रावण अपने शरीरको कंपाता हुआ उनको हरण करके ले चला ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०आरण्यकाण्डे भाषायां त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशः सर्गः ५४.

जब रावण हरण करकै लेचला तब जानकीजी और किसीको रक्षा करनेवाला न पाकर चली जाने लगीं । और जाते २ उन्होंने पर्वतके शृंगपर बैठेहुए प्रधान पांच बंदरोंको देखा ॥१॥ तब उन बडे २ नेत्रवाली जानकीजीने सुवर्णके रंगका अपना एक वस्त्र व कुछ गहने उतार उन बन्दरोंके बीचमें ॥ २ ॥ इस विचारसे डाल दिये कि, यह कदाचित् रामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त कहभी सकते हैं । वह जानकीजीका छोडा हुआ वस्त्र व भूषण बन्दरोंके बीचमें गिरा ॥ ३ ॥ जानकीजीके वस्त्र और भूषण डालनेका यह कर्म घबडाहटके मारे रावणने नहीं

जाना, उस कालमें सीताजी बहुतही रुदनकर रहीथी उनको अनिमेष लोचनसे ॥४॥ पीली आंखोंवाले वानरश्रेष्ठोंने सीताजीको अपने नेत्रोंसे वारंवार देखलिया व रावण पम्पापुरीको नांघ लंकापुरीकी ओर ॥ ५ ॥ रोती हुई सीताजीको लेकर चला गया, अपनी मूर्तिमान मृत्युस्वरूप सीताजीको हरण करके रावणके हर्षकी सीमा न रही ॥ ६ ॥ वह तेज डाढवाली और तेज विषवाली सर्पिणीकी समान सीताजीको अंकमे भरकर आकाशमार्गमें होकर बहुतसे पर्वत वन नदियां व तडागादि देखता हुआ ॥ ७ ॥ बडी शीघ्रताके साथ रावण मत्स्य, कच्छप, मगर नाके इत्यादिकोंके स्थान समुद्रको उतरगया, जिसप्रकार कि कमानसे छूटाहुआ बाण अति शीघ्रतासे सीधा चलताहै ॥८॥ जब रावणने जानकीजीको हरण किया, तब जगमाताका हरण होनेके कारण क्षुभित होकर वरुणालय समुद्र तरंगविहीन होगया, और उसमेंके मीन और बडे २ सब सर्प व्याकुल होगये ॥ ९ ॥ इस प्रकार जानकीजीके हरण करनेके समय यह दशा तो नदीनाथकी हुई और अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले चारणगण कहने लगे ॥ १० ॥ कि, अब रावण किसी प्रकार नहीं बच सकता यहींतक इसके जीवनका शेष होगया । सिद्धगण भी ऐसाही कहने लगे इस ओर रावण चेष्टारहितं मूर्च्छित सीताजीको गोदीमें लिये ॥ ११ ॥ अपनी लंकापुरीमें ले आया, वह सीताजीको नहीं लाया बरन कहींसे अपनी मृत्युको मोल ले आया । उस समय लंका नगरीमें बडे २ चौराहे और मार्ग सुशोभित हो रहे थे ॥ १२ ॥ वहां पहुँचकर अपने परम सुन्दर रनवासमें रावणने शोक मोहसे युक्त तीन परम सुन्दरीको जाकर बैठा दिया ॥ १३ ॥ उस समय ऐसा बोध हुआ मानों मय दानव अपने पुरमें आसुरी मायाले आयाहै, दशानन सीताजीको अपने रनवासमें स्थापन करकै घोर दर्शना पिशाचनियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ १४ ॥ कि, तुम भली भांतिसे इनकी रक्षा करो । कोई स्त्री व पुरुष हमारी बिना आज्ञा इन सीताको नहीं देखने पावै मुक्ता, मणि, सुवर्ण वस्त्र भूषण ॥ १५ ॥ इत्यादि जिस २ वस्तुकी यह इच्छा करै वह समस्तही इनको दी जाय यह मेरी आज्ञा है व जो कोई स्त्री तुममेंसे इन जानकीको अप्रिय वचन ॥ ॥ १६ ॥ ज्ञानसे व अज्ञानसे कहेगी वह निज शरीरमें अपने प्राणोंको न समझै इस तरह सब रक्षा करनेवालियोंसे कह महा प्रतापवान् रावण ॥१७॥ रनवाससे बाहर आ विचार करने लगा कि, इस समय हमको क्या करना उचित है यह सोच उसने

इधर उधर देखा तो आगेही मांसके खानेवाले आठ राक्षस बैठेथे ॥ १८ ॥ उन राक्षसोंको देखकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंके बल वीर्यकी प्रशंसा करने लगा ॥ १९ ॥ तुम लोग अनेक भाँतिके अस्त्र शस्त्र धारण करके शीघ्र इस स्थानसे जहांपर खर रहा करताथा उस जनशून्य जनस्थानको जाओ ॥ २० ॥ और तुम लोग वहां बल और पौरुषका आश्रय लेकर किसी-काभी डर न करके जनशून्य जनस्थानमें जाय टिके रहो ॥ २१ ॥ वहांपर खर और दूषणके सहित हमारी जो महावीर्यवान् बहुत सारी सेना रहतीथी, वह समस्त रामचंद्रके बाणसे खर दूषणसहित मारी गई ॥ २२ ॥ इस कारणसे हम को बडा क्रोध हुआहै, और इससेही हम बडे धीर्यवानका धीरजभी लोप होगया। इस समय रामचंद्रके प्रति हमारा महावैरभाव उपस्थित हुआहै ॥ २३ ॥ सो इस समय परमशत्रु रामके प्रति वह अपना क्रोध हम प्रगट करना चाहते हैं, जबतक हम युद्धमें उस महाशत्रुका बध नहीं करलेते, तबतक हमको सुखकी नींद न आवेगी ॥ २४ ॥ जिस प्रकार निर्धन पुरुष धन प्राप्त करकै सुखी होताहै, वैसेही खर दूषणके मारनेवाले रामचंद्रजीका नाश करकै हमभी सुखी होंगे ॥ २५ ॥ तुम लोग जनस्थानमें रहकर राम किस समय क्या करतेहैं, सदाही इस विषयकी यथा तथा खोज खबर लेते रहो ॥ २६ ॥ तुम सब लोग बडी सावधानीसे वहांपर चले जाओ, और सदा उस रामचन्द्रको मार डालनेके लिये यत्न करते रहना ॥ २७ ॥ हमने पहले संग्राममें अनेकवार तुम लोगोंके बलको जान लियाहै, बस इसी कारण से हमने तुम लोगोंको जनस्थानमें बिठाया ॥ २८ ॥ वह आठ राक्षस इन अर्थ युक्त मीठे वचनोंको सुन और रावणको प्रणाम कर लंका छोड करकै जनस्थानकी ओर गुप्तभावसे सबके सब चले ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे रावण श्रीजानकीजीको परमहर्षित चित्तसे ग्रहण करके और उनको अपने रनवासमें टिका, रामचन्द्रजीसे महा शत्रुता करकै मोहयुक्तहो परमानंदित हुआ ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशः सर्गः ५५.

रावणकी मतिमें भ्रम होगयाथा इसी कारणसे वह घोर महा बलवान् आठ राक्ष-सोंको जनस्थानमें भेजकर अपनेको कृतकृत्य समझता हुआ कि, अब हमें कोई

कार्य करनेको शेष नहीं रहा ॥ १ ॥ अनन्तर वह बराबर जानकीजीका स्मरण करते हुए रामबाणसे पीडित होकर उन जानकीजीको देखनेके लिये शीघ्रतासे अपने रमणीय गृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ २ ॥ राक्षस पति रावणने उस घरमें प्रवेश करकै दुःखपरायण सीताजीको राक्षसियोंके बीचमें बैठे हुए देखा ॥ ३ ॥ सीताजी शोकके भारसे महापीडा पाय अतिशय दीनभावको प्राप्तहो नेत्रोंसे आंसू बहातीं हुई बैठीथीं, उस समय ऐसा बोध होताथा मानो नौका वायुके वेगसे काँपकर जलमें डूबी हुईहै ॥ ४ ॥ अथवा जैसे मृगी यूथसे बिछुडकर कुत्तोंसे घिरीहो, सीताजी शोकके वश पडनेसे विवश और व्याकुलहो शिर झुकाये बैठीथीं ॥ ५ ॥ राक्षसपति रावण सन्मुख होकर उन शोकसे दीन हुई सीताजीकी इच्छा न रहनेपरभी बलात्कारसे उनको उस देव गृह सदृश दिव्यभवनको दिखाने लगा ॥ ६ ॥ यह घर अनेकप्रकार अटा अटारी और धवरहरोंसे परिपूर्णहै, सहस्रों स्त्रियां इसमेंहैं व अनेक प्रकारके पक्षी और विविध भांतिके रत्नभी इस गृहमेंहैं ॥ ७ ॥ उसके सब थंभ हाथीदांतके बनेथे, सुवर्ण, स्फटिक, रजत, और वैदूर्य निर्मित परम चित्रित और देखनेमें मनके हरण करने वालेथे ॥ ८ ॥ वहांपर समस्त वंदनवारे तपाये हुए सुवर्णकी बनी हुईथीं, और वहांपर निरन्तर दिव्य दुन्दुभी आठ पहर बजती रहतीथीं, रावण सीताजीके सहित इस गृहकी सुवर्णसे बनी हुई विचित्र सीढियोंपर चढा ॥ ९ ॥ वह घर हाथी दांत और चांदीनिर्मित होनेके कारण अति सुन्दर हजारों जालियें वहां लगी हुईथीं जिनको देखतेही मन हर जाय और भी बहुतसे घर वहां बनेथे जिनमें सुवर्णके जंगले लगेथे ॥ १० ॥ सब भूमिभाग सुधा धवलित और मणिसमूह चित्रित रहनेके कारण विचित्र शोभा दे रहाथा, इस प्रकारका भवन रावणने सीताजीको दिखाया ॥ ११ ॥ उस मन्दिरमें जगह २ बावली और छोटी २ तलैयेंभी बनीथीं जिनमें अनेक प्रकारके पुष्प खिल रहेथे दशग्रीव रावणने जानकीजीको यह सब कुछ दिखाया ॥ १२ ॥ इस प्रकारसे पापात्मा रावण जानकीजीको लुभानेकी इच्छासे अपना वह समस्त दिव्य गृह दिखलाकर कहने लगा ॥ १३ ॥ कि, हे जानकी ! यहां बत्तीस करोड राक्षस बालक और बूढोंको छोडकर हमारे आधीनहैं ॥ १४ ॥ उन सब भयंकर कर्म करने वाले राक्षसोंके हम स्वामीहैं । और हमारे इकलेकेही एक सहस्र दासहैं ॥ १५ ॥ अब हमारा यह समस्त राज्य तुम्हारेही वशमेंहै हे विशालाक्षि ! हमारा जीवन पर्यन्तभी तुम्हारे आधीनहै; अधिक

क्या कहें तुम हमारे प्राणोंसेभी प्यारीहो ॥ १६ ॥ हे मैथिली ! हमारे रनवासमें जो सब उत्तम स्त्रियां है, सो तुम हमारी भार्या होकर उन सबके ऊपर पटरानी बनो॥ ॥ १७ ॥ हे जानकी ! हमने जो कुछ कहा; वह तुम्हारे लिये विशेष हितकारीहै, तुम इस बातमें राजी होजाओ, दूसरी भाँतिका अभिप्राय करके क्या करोगी, तुम्हारे कारण हम बहुतही संतापित हुएहैं सो तुम प्रसन्न होकर हमको भजो ॥१८॥ चारों ओर सौयोजन समुद्रसे घिरी हुई शतयोजनके विस्तार वाली इस लंकापुरीको इन्द्रके सहित समस्त देव दानवभी किसी प्रकारका भय नहीं करासकें ॥ १९ ॥ क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या यक्ष, क्या ऋषि इन लोगोंमें हम किसीकोभी ऐसी नहीं देखते जो वीरतामें हमारी समान हो ॥ २० ॥ तो फिर भला, दीन, तपस्वी राज्यभ्रष्ट, पादचारी, अल्पप्राण मनुष्य रामको लेकर तुम क्या करोगी ॥ २१ ॥ इस कारणसे हे सीते ! हमही तुम्हारे योग्य पतिहैं; तुम हमाराही भजन करो; हे भीरु ! यौवन सदा नहीं रहता, इससे हमारे साथ इस लंका नगरीमें विहार करो ॥ २२ ॥ हे वरानने ! अब तुम रामचंद्रके देखनेकी आशा छोडो ! उनमें क्या शक्ति है जो वह मनोरथसेभी यहां पर आसकें ? ॥ २३ ॥ जिस प्रकार कोई वहां प्रचंड पवन आकाशमें चलते हुये बांधाचाहै, परन्तु नहीं बांध सकता, या प्रदीप्त अग्निकी शिखाको कोई हाथसे पकडना चाहै तो नहीं पकड सकता, ऐसेहीं रामभी यहां नही आ सकता ॥ २४॥ हे शोभने ! समस्त भुवनोंमें हम ऐसा किसीको नहीं देखते कि, जो पराक्रम प्रकाश करके हमारी भुजाओंसे रक्षित तुमको लेजासकै ॥ २५॥ अतएव तुम इस विशाल लंकाके राज्यका पालन करो, हमारी समान सब पुरुष तुम्हारे आज्ञाकारी दास हो जाँयगे। और हमकोभी यदि सेवक समझकर ग्रहण करो तो हमभी तुम्हारी आज्ञा के आधीन हो जाँयगे। सब देवतागण बरन् स्थावर जंगमादि समस्त जगत् तुम्हाराही दास हो जायगा ॥ २६ ॥ अब तुम अभिषेकके जलसे धौतदेहाहोकर सन्तुष्ट चित्तसे हमको तृप्तकरो पहले जन्मके तुम्हारे जो कुछ पापथे वह सब वनवास करने से क्षयको प्राप्त होगये ॥ २७ ॥ अब तुम लंकामें रहकर अपने पहले कियेहुए पुण्योंके फलको प्राप्तहो। हे मैथिलि ! यहांपर जो दिव्य मालायें दिव्यगन्ध ॥२८॥ और दिव्यभूषण रक्खेहैं तुम उन सबको हमारे साथ भोगकरो। हे सुमध्यमे ! भाई कुबेरका पुष्पक नाम ॥ २९ ॥ विमान सूर्यके समान प्रकाशमान हमारे यहां है

कुबेरके साथ संग्राम करके उसको हम जीत लायेहैं, वह अति विशाल रमणीयहै उसका वेग मनके वेगकी समानहै ॥ ३० ॥ सो हे सीते ! उस विमानपर चढ कर तुम हमारे साथ विहार सुखसहित करो । हे वरानने ! पद्मकी समान परम सुन्दर और सुविमल कान्ति सम्पन्न तुम्हारा मुख ॥ ३१ ॥ शोकके मारे मलीन होनेसे अब शोभित नहीं होता, इस कारण तुम शोक न करो जब रावणने इस प्रकारसे कहा तब पतिव्रता शिरोमणि सीताजी वस्त्रकी आडमें ॥ ३२ ॥ अपना चन्द्र समान वदनमंडल ढककर रोने लगीं चिन्तासे उनका देह पीला पडगया वह बहुत ही अस्वस्थकी समान ध्यानमें मग्न होगई ॥ ३३॥ इसको देखकर वीर्यवान निशा- चर रावण उनसे बोला कि, हे वैदेही ! धर्मलोप होजानेकी शंकासे लज्जित मतहोवो ॥३४॥ देखो तुम्हारे प्रति हम ऋषि गणोंके ही उपदेश कियेहुए विधिक्रमसे प्रणय बन्धन बांधनेको तैयार हुएहैं ऋषियोंने राक्षसविवाह बलात्कार ग्रहणसे लिखाहै यह लो हम अपने दशों शिरोंसे तुम्हारे मनोहर चरणोंको दबाते हैं ॥ ३५ ॥ हमारे प्रति प्रसन्नता प्रगट करनेमें और विलंब मतकरो हम तुम्हारे वशवर्ती दास हो जायँगे, हमने कामके वशहोकर यह जो वार्ताकही देखो इसका कोई अंश निरर्थक नहीं जाय ॥ ३६ ॥ रावणने कभी इसप्रकारसे किसी स्त्रीके चरणोंमें प्रणाम नहीं कियाथा न शिरधराथा । दशानन मृत्युके वशहोकर जनकनंदिनी मैथिलीजीसे इस प्रकार कहकर मनमें समझा कि, यह हमारीही होगई ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०बा०आदि०आर० भाषायां पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षष्ठपंचाशः सर्गः ५६.

शोकसे तपीहुई जानकीजी यह वचन सुन कुछ भय न करके मनहीमन रावणको तृणसमान समझती हुई उत्तर देती हुई कि ॥ १ ॥ राजा दशरथ साक्षात् धर्मके पर्वत सदृश अभेद्यसेतु और सत्य प्रतिज्ञासे सर्व संसारमें विख्यात थे श्रीरामचन्द्रजी उनकेही पुत्र हैं ॥ २ ॥ यह भी धर्मात्माके नामसे तीनों भुवनमें विख्यात हैं, वही दीर्घबाहु विशाल लोचन श्रीरामचन्द्रजी हमारे स्वामी और साक्षात् देवता हैं ॥ ॥ ३ ॥ उनके कंधे सिंहके समान हैं, वह महाद्युतिमान और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुये हैं वे भ्राता लक्ष्मणके सहित हो अवश्यही तेरे प्राणोंका वध करने यहां आवेंगे ॥ ४ ॥ यदि हम उनके सन्मुख बलपूर्वक इस प्रकारसे खेंची जाती तब तो युद्धमें

खरकी समान निहत होकर तुमकोभी रणभूमिसे शयन करना पडता ॥ ५ ॥ तुमने जिन सब घोरतर महाबलवान् राक्षसोंकी वार्त्ता कही सो गरुडके निकट सर्पसमूह की समान रामचन्द्रजीके निकट यह सब राक्षस हीनबल विहीनतेज हो जायँगे ॥ ॥ ६ ॥ तरंग जिस प्रकार गंगाजीके किनारेको तोडती है वैसेही श्रीरामचन्द्रजी अपने धनुषसे छूटे हुए उन स्वर्णभूषित बाणोंके समूहसे राक्षसोंके शरीरका भेदन करेंगे ॥ ७ ॥ हे रावण ! यद्यपि तू देव दानवोंसे अवध्य है, परन्तु रामचन्द्रके साथ यह बडा भारी वैर करकै किसी प्रकार तेरे प्राण न बचेंगे ॥८॥ वह बलवान श्रीरामचंद्रजीही तुम्हारे बचे हुए जीवनका समय पूरा कर देंगे। इससे यज्ञस्तम्भसे बँधे हुए पशुकी समान अब तुम्हारा जीना दुर्लभ है ॥ ९ ॥ यदि श्रीरामचन्द्रजी क्रोध भरे नेत्रोंके दृष्टिसे एक बारही तुझको देखें तो हे राक्षस ! तू तत्क्षणही भस्म हो जायगा जिस प्रकार महादेवजीकी नेत्राग्निसे कामदेव भस्म हो गया था ॥ १० ॥ जो चन्द्रमाकोभी आकाशसे पृथ्वीपर गिरा सकते या नाश करसकतेहैं वह सीताको भी अवश्यही यहां आकर इस स्थानसे छुडावेंगे ॥ ११ ॥ तेरी उमर बीतचुकी, श्री जाती रही, वीर्य समाप्त होगया, इन्द्रियांभी अपने २ कार्यसे शिथिल होगई, इससे विदित होताहै कि, तुम्हारे लिये लंका नगरी निश्चयही विधवा हो जायगी ॥ ॥ १२ ॥ तुमने जो पाप कार्य किया है इसका परिणाम कभी सुखकर नहीं होगा, क्योंकि तूने बिना विचारे भावके बिना बलात्कारकर पतिकी सेवासे हमको अलग किया है ॥ १३ ॥ हमारे वह महाद्युतिमान स्वामी अपने भ्राता लक्ष्मणके सहित केवल अपने वीर्यका आश्रय लेकर निडरहो निर्जन वनमें वास करते हैं ॥ ॥ १४ ॥ वह संग्रामस्थलमें बाणोंकी वर्षा करकै तेरी देहसे, बल वीर्य, घमंड, व ऐसा अहंकार अलग कर देंगे ॥ १५ ॥ कालके वश होकर जब कि, प्राणियोंका नाश निकट आजाताहै, तब वह कालके वश होकर कार्य अकार्यका विचार करनेमें ज्ञान रहित हो जाते हैं ॥ १६ ॥ रे राक्षसाधम ! जब कि, तैंने हमारा अपमान किया है, तब स्वयं तेरा, समस्त राक्षसोंका और सर्व रनवासोंके नाश होनेका काल आ पहुँचा है ॥ १७ ॥ जिस प्रकार ब्राह्मणों करकै मंत्रसे पढी हुई यज्ञकी सामग्रीसे विभूषित यज्ञ वेदी चंडालके छूने योग्य नहीं होती वैसेही हम भी तेरे स्पर्श करनेके योग्य नहीं हैं ॥ १८ ॥ रे राक्षसाधम ! रेपापात्मा ! हम नित्य धर्मपरायण श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी हैं, मन वचन कायसे स्वामीहीके प्रति

दृढव्रता हैं; इस कारण हम किसी प्रकारसे भी तेरे छूनेके योग्य नहीं हैं ॥ १९ ॥ जो हंसिनी कमल पुष्पोंके मध्यमें राजहंसके साथ नित्य क्रीडा करती हैं वह किस प्रकारसे तृणोंके बीच बैठे हुए मद्गु (जलकाकविशेष) के प्रति दृष्टि डालेंगी ॥ ॥ २० ॥ रेराक्षस ! यह देहस्वभावसेही संज्ञाहीन है इसको बांध, या इसपर आघात दे, जो तेरी इच्छा हो सो कर हम किसी प्रकारसे इस शरीरकी रक्षा नहीं करेंगी ॥ हमें प्राणोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २१ ॥ और अधिक तू जो हमारे शरीरको स्पर्श करे तौ हम अपने जीतेजी यह कलंक पृथ्वीपर विस्तार नहीं कर सकेंगी ! वैदेहीजी इस प्रकारसे कठोर वचन कह ॥ २२ ॥ फिर रावणसे और कुछ न बोलीं तब रावण सीताजीके कठोर और रोमहर्षण वचन सुनकर ॥ २३ ॥ सीताजीको डर पानेके लिये कहने लगा । कि, हे मैथिली ! मेरे वचन सुनो मैं बारह महीनेतक कुछ न कहूंगा ॥ २४ ॥ हे चारुहासिनी ! इस समयके मध्यमें यदि तुम हमको न प्राप्त होगी तौ रसोंई करने वाले हमारे प्रातःकलेवके लिये तुमको टुकडे २ कर काट डालेंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओंको रुवानेवाला रावण इस प्रकारसे कठोर वचन कहकर फिर क्रोधितहो राक्षसियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ २६ ॥ हे विकटरूपा, घोरदर्शना, रक्तमांसभोजी राक्षसीगण ! तुम सब शीघ्रही जानकीका समस्त गर्व तोड डालो ॥ २७ ॥ वह घोर दर्शना निशाचरीगण यह सुन तत्क्षणही हाथ जोड जो आज्ञा कहकर रावणके कहनेके अनुसार सीताजीको घेर लेती हुई ॥ २८ ॥ यह देखकर रावण मानों पृथ्वीको कंपित और विदीर्ण करता हुआ कई एक पग चलकर, उन घोर दर्शनवाली राक्षसियोंको विशेष रूपसे फिर आज्ञा करता हुआ ॥ २९ ॥ तुम जानकीको अशोक वनमें लेकर चली जाओ और सब मिलकर सदा इनको घेरे रहकर गूढ भावसे इनकी रक्षाकरो ॥ ३० ॥ वनकी हथिनीको जिसप्रकार वशमें किया जाताहै, तुम सबभी उसीतरहसे घोर तर्जन करकै अथवा समझा बुझाकर इनको हमारे वशमेंलाओ॥ ३१ ॥ जब राक्षसेन्द्र रावणने इस भांति आज्ञाकी तब राक्षसियें सीताजीको घेरकर अशोकवनमें ले गई ॥ ३२ ॥ अनेक जातिके मन वांछित पुष्प फल सम्पन्न वृक्ष समूह और सब काल मतवालेही विविध भांतिके विहंगम इस अशोक वनकी शोभाको बढातेथे ॥ ३३ ॥ शोकके वशमें पडी हुई जनक दुलारी मैथिलीजी अशोक वनके मध्य राक्षसोंके वशमें पडकर रहीं, जिस प्रकार व्याघ्रनियोंमें हरिणी रहती है ॥ ३४ ॥ अशोक वनमें फांसीसे बंधी डरपोक मृगीके

समान अतिशय शोकमें सीताजी रहीं, वह वहांपर किसी भांतिका सुख न प्राप्तकर सकीं ॥ ३५ ॥ विरूप नेत्रवाली राक्षसियों करकै घुडकी डरपाई व धमकाई जाकर परमप्रिय स्वामी और देवरको सदा स्मरण करकै और शोकसे सतानेके कारण चेतना रहित होकर जानकीजीने वहां किसी प्रकार शान्ति नहीं पाई ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां षट्पंचाशः सर्गः॥५६॥

क्षेपकः सर्गः।

जिस समय जानकीजीको लंकामें रावण लेगया उस समय ब्रह्माजीने देवताओं के राजा इन्द्रसे इस प्रकारके वचन कहे ॥ १ ॥ त्रिलोकीके हित करनेके निमित्त और राक्षसोंके नाशके निमित्त दुरात्मा रावण जानकीजीको लंकामें ले गयाहै॥२॥ वहां महाभाग्यवाली पतिव्रत धर्म युक्त जो सदा सुखहीसे इतनी बडी हुईहैं अपने स्वामीको न देखकर और राक्षसोंको देखकर ॥ ३ ॥ राक्षसियोंसे घिरी हुई पति-व्रत धर्म वाली जानकी समुद्रके बीचमें जो लंका पुरीहै उसमें स्थित हैं ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजी किस प्रकार जानेंगे कि वहां निन्दा रहित जानकीजीहैं बडे कष्ट और दुःखसे रामचन्द्रको स्मरण करती हुई जानकी ॥ ५ ॥ भोजनादिके न करनेसे निश्चय प्राणोंको त्यागन करदेंगी, सो जानकीजीके प्राण रक्षा करनेमें हमको बडा सन्देहहै ॥ ६ ॥ सो तुम शीघ्र यहांसे जाकर सुन्दर मुखवाली जानकीका दर्शन कर लंका पुरीमें प्रवेशकर यह हवि ले जाकर जानकीजीको देदो ॥ ७ ॥ जब यह वचन ब्रह्माजीने कहा तब रावणकी लंकापुरीमें इन्द्रजी आये और निद्राको अपने साथ लेते आये ॥ ८ ॥ तब इन्द्रने निद्रा देवीसे कहा कि, तू जाकर राक्षसोंको मोहित कर निद्रा देवी इन्द्रके यह वचन सुन कर परम प्रसन्न हुई ॥ ९ ॥ देवता-ओंके कार्य सिद्धिके निमित्त राक्षसोंको मोहित करती हुई इसी अवसरमें इन्द्राणीके पति इन्द्रजी ॥ १० ॥ उस स्थानमें प्राप्तहो वनमें स्थित हुई जानकीसे बोले कि हे भद्रे ! मैं देवताओंका राजा इन्द्रहूं, हे सुन्दर हास्य युक्त जानकी ! ॥ ११ ॥ मैं तुम्हारे और रामचन्द्रके कार्य सिद्ध करनेके निमित्त सहाय करनेको आयाहूं हे जन-ककुमारी ! तुम शोच मत करो ॥ १२॥ मेरी कृपासे सेना सहित रामचन्द्रजी सागर तर जायँगे; हे कल्याणी ! मेरीही मायाने इन राक्षसियोंको मोहित कियाहै ॥ १३॥

इसी कारण हे जानकी ! मैं यह हवि अन्न तुम्हें देनेको निद्राके साथ आयाहूं सो हे जानकी ! तुम इसे लो ॥ १४ ॥ हे जानकी ! मेरे हाथसे ये हवि भक्षण करनेसे तुमको क्षुधा और तृषा दश हजार वर्षतक भी न व्यापैगी ॥ १५ ॥ जब इन्द्रने ऐसा कहा तौ डरती हुई जानकी बोलीं कि मैं यह कैसे जानूं कि तुम शचीके पति इन्द्रहो ॥ १६ ॥ जो चिह्न राम लक्ष्मणके साथ मैंने आपके देखेथे यदि तुम देवताओंके राजा इन्द्र हो तौ उन चिह्नोंको दिखाओ ॥ १७ ॥ इन्द्रजी जानकीजीके वचन सुन पैरोंसे पृथ्वी न स्पर्श करते हुए और नेत्रोंको पलक लगना बंद होगया देवताओंकी यही पहचानहै कि पैरोंसे पृथ्वी नहीं स्पर्श करते उनके नेत्रोंके पलक नहीं लगते ॥ १८ ॥ धूलि रहित वस्त्र धारण किये हुए जो फूल मलीन नहों ऐसे फूलोंकी माला धारण किये इन लक्षणोंसे जानकीजी इन्द्रको पहचान परम हर्षित हुई ॥ १९ ॥ और फिर रोती हुई बोलीं; हे भगवन् ! भाग्यसे महाबाहु रामचंद्रका नाम उनके भाई सहित आज मैंने सुना ॥ २० ॥ जैसे मेरे श्वशुर दशरथजी, पिता जनकजी हैं तैसेही आज मैं तुम्हें देखतीहूं तुमसे मेरे पति सनाथ हुए ॥ २१ ॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हारी आज्ञासे यह दूधकी बनी खीर रघुकुलके बढाने हारी तुम्हारे हाथकी दी हुई मैं खाऊंगी ॥ २२ ॥ सुहासिनी जानकीजीने वह हवि इन्द्रके हाथसे लेकर प्रथम अपने स्वामी रामचन्द्र आर देवर लक्ष्मणजीको निवेदितकी ॥ २३ ॥ और कहा कि यदि मेरे महाबली भर्त्ता लक्ष्मण भाई सहित जीवितहैं तो यह जो मैं प्रेमसे देतीहूं वह यह पायस ग्रहण करैं ॥ २४ ॥ वह सुमुखी इस प्रकार खीरको निवेदन कर पीछे आप भक्षण करती हुई. जिसके खातेही भूंख प्यासका दुःख जाता रहा, इन्द्रसे यह कथा सुनकर कि, रामचंद्र शीघ्र आवेंगे, रामचन्द्रमें मनलगाती हुई ॥ २५ ॥ वह इन्द्रभी उस समय रामचन्द्र की कार्य सिद्धिके निमित्त प्रसन्न होकर स्वर्गको गये, और वह महात्मा चलते समय जानकीजीको समझाकर निद्रा सहित स्वर्गको पधारे । यह सर्ग क्षेपक है ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां क्षेपकः सर्गः ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ५७.

उस ओर श्रीरामचन्द्रजी मृग रूपसे विचरण करने वाले काम रूपी निशाचर मारीचको संहार करके शीघ्रही आश्रमके मार्गको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीजानकीजी-को देखनेके लिये अति वेगसे चले ! इसी समयमें एक शियार उनकी पीठकी पीछे महा कठोर शब्द करनेलगा ॥२॥ श्रीरामचन्द्रजी शियारके इस रोमाञ्चकर दारुण बोलको सुन अति भयभीतहो मनही मनमें शंका करने लगे ॥ ३ ॥ जिस प्रका-रका शब्द यह शियार कर रहाहै, इससे तौ ऐसा जान पडताहै, कि कोई अशुभ होगा। इस समय राक्षसोंने जानकीको भक्षण न कर लियाहो, और सीताजी कुशलसेहों तभी मंगलहै ॥ ४ ॥ मृगरूपी मारीचने जान बूझकर हमारे बोलके समान जो चिल्लाहटकीहै, यदि लक्ष्मणने उस बोलको सुना हो ॥ ५ ॥ वस लक्ष्मणजी उस स्वरके सुन्तेही तुरत सीताजी करके भेजे जाकर सीताको छोडकर वह शीघ्रही हमारे निकट आवेंगे ॥ ६ ॥ निश्चयही राक्षसोंने मिलकर जानकीके वध करनेकी अभिलाषा कीहै और इसी कारणसे राक्षस मारीचने सुवर्ण मृगरूप धारण करके हमको आश्रमसे बहुत दूर किया ॥ ७ ॥ और हमको दूर लाकर फिर हमारे बाणसे घायल होकर लक्ष्मणकोभी यहां लानेके लिये, हाय लक्ष्म-ण ! हम मारे गये ! यह कहकर उस राक्षसने प्राण छोडे ॥ ८ ॥ इस शब्दको सुन लक्ष्मणभी तौ चलेही आये होंगे, फिर जब वनमें आश्रम पर हम दोनों भाई न रहे तौ कैसे कहें कि, मंगल होगा। कारण कि, जनस्थानका नाश करनेके कारण हमसे और राक्षसोंसे भारी वैरहै ॥ ९ ॥ और तिसपर यहां हमको घोर दुर्निमित्त दिखाई देतेहैं, आत्मवान श्रीरामचंद्रजीने शृगालका शब्द सुनकर इस प्रकार चिन्ता करते२ ॥ १० ॥ लौटकर बडी शीघ्रतासे आश्रमकी ओर गमन करने लगे। मृगरूपी मारीच जो उनको आश्रमसे दूर ले आयाथा, इस कारण रामचंद्रजी जल्दीसे आश्र-मको चले ॥ ११ ॥ और शंकित चित्त होकर श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें पहुँचे तब सब मृग पक्षी गण इनके मनको उदास देखकर सब इनके निकट आये ॥ १२ ॥ वह सब मृग पक्षीगण उस कालमें रामचन्द्रजीकी बांई तरफ होकर कठोर स्वरसे शब्द करने लगे, उन महाघोर सब दुर्निमित्तोंको देखकर श्रीरामच-न्द्रजीने देखा तौ ॥ १३ ॥ प्रभाहीन हुए लक्ष्मणजी चले आतेहैं, देखते

ही देखते लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके निकट आ पहुँचे ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजीको विषादित व दुःखित देखकर लक्ष्मणजीभी विषादित और दुःखित हुए। तब श्रीरामचन्द्रजी अपने भ्राता लक्ष्मणजीकी निन्दा करने लगे ॥ १५ ॥ क्योंकि लक्ष्मणजी सीताजीको राक्षस सेवित सूने वनमें अकेली छोडकर आयेथे लक्ष्मणजीका बाँयां हाथ पकडकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ १६ ॥ आरतके समान श्रवण कठोर परिणाम मधुर वचन कहने लगे कि,—हे लक्ष्मण ! तुम सीताजीको त्याग कर जो यहां चले आये हो, यह तुमने अतीव निन्दाका कार्य किया है ॥ १७ ॥ हे शुभदर्शन ! तुमने जो अकेला छोडा इससे क्या सीताका भला होगा ? कभी नहीं ! हे वीर ! जनककुमारी अब आश्रममें नहीं हैं इस बातमें हमको अब कुछ संशय नहीं होता ॥ १८ ॥ पग पग पर जिस प्रकारके अशकुन हो रहे हैं इससे यह ज्ञात होता है कि, यातौ सीताको कोई वनचारी राक्षस चुराकर ले गया या मारकर खा गया होगा ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण ! जनककुमारीजी सब प्रकारसे कुशलहैं, क्या हम ऐसा देख पावेंगे ? हे पुरुषसिंह ! क्या जानकी सब प्रकार कुशलसे जीती हैं ?॥ २० ॥ हे महाबलवान् ! यह मृग गण, शियार, और पक्षी गण सूर्यकी ओरको मुख करकै महा भयंकर शब्द कर दशोंदिशाओंको देखते हैं मानो इनमें आग लगी है । ऐसे अपशकुन देखकर किस प्रकार कह दें कि, राजपुत्री सीताजी कुशलसे हैं ? ॥ ॥ २१ ॥ यह मृग रूपी राक्षसभी हमको ललचाकर दूर ले आया, जिसको फिर हमने बहुतही परिश्रम करकै किसी भांति मार पाया, मरनेके समय उसने निज राक्षस मूर्त्ति धारण की ॥ २२ ॥ हमारा मनभी बहुतही दीन और घबडाया हुआ है; और बाई आंखभी फडक रही है ! हे लक्ष्मण ! निःसन्देह सीता आश्रममें नहीं, यातौ उनको कोई हरण करकै ले गया, या मार्ग में मरी पडी होंगी ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकांडे भाषायां सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशः सर्गः ५८.

लक्ष्मणजी महादीन और उदास मन हो रहे थे। उनको सीताके विना आता हुआ देखकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी पूछने लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण ! जब हम वनको आये और उस समय जो हमारे साथही बनको आई थीं; और

तुम जिनको छोडकर यहां आये हो; वह सीता कहां हैं ॥ २ ॥ जब हम राज्यसे भ्रष्ट होकर दीन भावसे दंडकारण्यको आये और उस समय जो हमारे दुःखमें सहाय हुई, वह तनुमध्यमा जानकीजी कहां हैं ? ॥३॥ जिसके बिना हम एक मुहूर्त्त भरभी प्राण धारण करनेको उत्साही नहीं, वह देवकन्याके समान प्राण सहाय जानकीजी कहां हैं ? ॥४॥ हे लक्ष्मण ! हम उन तपाये हुए सुवर्णके समान प्रभावाली जनकात्मजाके बिना देवताओंकी प्रभुताई अथवा पृथ्वीकी रजाई लेनेकीभी अभिलाषा नहीं करते ॥ ५ ॥ हे वीर हमारी प्राणोंसेभी प्यारी जानकी क्या अभीतक जीती हैं, क्या हमने जो चौदह वर्षतक वनमें रहनेकी प्रतिज्ञाकी है यह मिथ्या तो नहोजाय ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! सीताके लिये हमारे प्राण त्यागने पर और तुम्हारे अयोध्यामें लौट जानेपर कैकेयी क्या सफल मनोरथ और सुखी होगी ॥ ७ ॥ कैकेयी इस प्रकार अपने पुत्रकी राज्यप्राप्तिसे जब सिद्ध काम होगी, तब क्या मृतपुत्रा, दीना, तपस्विनी, हमारी माता कौसल्याजीको विनयके साथ उसकी सेवा करनी होगी ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! वैदेही यदि जीवित हैं, तब तो हम फिर आश्रमको चलते हैं, और वह शुद्धचारिणी यदि परलोकमें चली गई हैं तो हमभी प्राण त्यागन करैंगे ॥ ९ ॥ जब हम आश्रममें पहुँचेंगे और सीता सन्मुख हँसकर यदि हमसे न बोलेंगी तबभी हम प्राण त्यागेंगे ॥ १० ॥ इस कारणसे हे लक्ष्मण ! तुम बताओ कि, जानकी जीवित हैं ? अथवा तुम्हारी असावधानतासे उन तपस्विनी जानकीजीको राक्षसोंने तो नहीं भक्षण कर लिया ॥ ११ ॥ वैदेहीजी कुमारी हैं, बालिकाहैं, और दुःख भोग करनेके अयोग्य हैं, वह इस समय हमारे दुःखसे निश्चय ही दुःखी हो शोच करके शोक करती होंगी ॥१२॥ अतिशय दुरात्मा क्रूर निशाचर मारीचने ऊंचे शब्दसे (हा लक्ष्मण !) कहकर सब प्रकारसे तुमको भय उत्पन्न करा दिया है ॥ १३ ॥ हम जानते हैं कि, हमारे बोलके समान वह बोल जानकीजीने सुनकर तुमको यहांपर भेजा है और तुमभी हमारे देखनेके लिये शीघ्रही यहांपर आयेहो ॥ १४ ॥ तुमने सीताजीको अकेली वनमें छोड यहां आकर बडा कष्टकर कार्य किया है । इससे निर्दयी राक्षसोंको हमारे किये हुए अपकारका प्रतिकार करनेको तुमने अवसर दे दिया ॥ १५ ॥ खरको मार डालनेसे मांसभोजी राक्षस गण बहुतही दुःखित होगये हैं । उन घोरनिशाचरोंने निश्चयही जानकीको मार डाला होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ हाय ! शत्रुसूदन लक्ष्मण ! हम

अब भांतिसे विपदमें डूबे अब हम क्या करें ? हमको शंका होतीहै कि, यह विपद् अवश्य होनहारहै ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुमुखी जानकीके लिये इस प्रकार चिंता करकै लक्ष्मणजीके सहित शीघ्रतासे जनस्थानमें आये ॥ १८ ॥ क्षुधा, श्रम, और प्यासके मारे रामचन्द्रजीका मुख सूख गयाथा उन्होंने शोकित चित्तसे दीर्घ निश्वास त्याग करते लक्ष्मणजीकी आर्य भावसे निन्दा करते २ इस प्रकारसे आश्रममें आयकर देखा तौ वहां सीता नहींहैं वह आश्रम शून्य पडाहै ॥ ॥ १९ ॥ जब सीताजीको न देखा तब श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें प्रवेश करके सीता जीके खेलनेके सब स्थान और वनवासके उठने बैठनेके स्थानमें ढूंढने लगे, परन्तु वहांभी जनकनंदिनीको न पाया, तब श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीके उठने बैठने और खेलनेके स्थानोंको विसूर २ स्मरण किया, स्मरण करतेही उनके रोम खडे होगये और बहुत घबडाये ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

जब इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीने आश्रमके मार्गमें वचन कहे और वह लक्ष्मण कुछ न बोले तब फिर महादुःखीहो रामचन्द्रजी सुमित्राकुमारसे बोले ॥ १ ॥ भाई तुम कैसे सीताजी छोडकर यहां चले आये ? जब कि हम तुम्हारेही विश्वास पर सीताको वनके बीच छोड आयेहैं ॥ २ ॥ यह देखतेही कि तुम सीताजीको त्याग कर यहां आयेहो, हमारा मन जो महा अनिष्टकी शंका करके व्यथित होता था वह हमारी शंका सत्यही सत्यहुई ॥ ३॥ तुमको मार्गमें दूरसेही जानकीके विन अकेला आता देखकर हमारा, हाथ वामनेत्र और हृदयका वायांभाग फडकने लगा ॥ ४ ॥ शुभलक्षण युक्त लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीकी यह वार्त्ता सुन महा दुःखित हो श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ५ ॥ हम आप् अपनी इच्छानुसार सीताजीको त्याग करकै यहां नहीं आये वरन् उनके पठाये हुये ही आपके निकट आयेहैं ॥ ६ ॥ आपके बोलके समान बोल बनाकर जो किसीने (हमें बचाओ) कहकर भय और व्याकुलताके स्वरसे जो चीत्कार कियाथा, सो वही चिल्लाहट जानकीजीके श्रवण गोचर हुई ॥ ७ ॥ उन्होंने लक्ष्मण हमें बचाओ वह करुणाका बोल सुनकर भयसे विकलहो आपके स्नेहके वशके मारे रोते २ हमसे यह कहना आरंभ किया कि शीघ्र

जाओ ॥ ८ ॥ वह वारंवार हमसे जानेको कहने लगीं, तब हमने उनको विश्वास दिलानेके लिये यह वार्त्ता कही ॥ ९ ॥ हम ऐसा किसी राक्षसको नहीं देखते जो श्रीरामचन्द्रजीको भय उपजासके, इससे यह करुणाका वचन रामचन्द्रजीका नहीं, वरन् यह वचन किसी राक्षसने वा और किसीने कहा होगा इस कारण आप बेखटके रहें ॥ १० ॥ हे सीते ! जो देवताओंकीभी रक्षा कर सकतेहैं, वह श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी "हमको बचाओ" यह नीच जनोचित वार्त्ता किसप्रकारसे कह सकतेहैं ॥ ११ ॥ इस कारणसे किसीने किसी कारण वश रामचन्द्रजीके बोलसा बोल बनाकर "लक्ष्मण हमको बचाओ" यह कह व्याकुल स्वरसे चिल्लाहट कीहै इसमें कुछभी सन्देह नहींहै ॥१२॥ हे शोभने ! किसी राक्षसने त्रासके मारे "बचाओ" यह शब्द कियाहै । इससे आप नीच स्त्रीजनोचित मनो वेदना त्याग कर दीजिये ॥१३॥ व्याकुल होनेकी कोई आवश्यकता नहीं, न घबडानेका कुछप्रयोजन, इस बातका विचार आप छोडें, क्योंकि लोकमें ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो संग्राममें श्रीरघुनंदन रामचन्द्रजीको ॥ १४ ॥ जीत सकै आजके समयही क्या वरन् कभी ऐसा नहीं हुआ और न आगेको होगा, श्रीरामचन्द्रजीको तो संग्राममें इन्द्रादि देवताभी नहीं जीत सकते ॥ १५ ॥ मोहितचित्त वैदेही जीने हमारे यह वचन सुन आंसू त्यागकर रोते २ हमको यह दारुण वचन कहे ॥ १६ ॥ कि हमारे प्रति तुम्हारा अत्यन्त पाप भाव स्थापित हुआहै, परन्तु भ्राताके विनष्ट होनेपर तुम किसी भांतिसे हमको प्राप्त नहीं कर सकोगे ॥ १७ ॥ हम समझीं कि तुम भरतके गुप्त भावसे पठाये श्रीरामचन्द्रजीके साथ आयेहो, इसीसे रामचन्द्रजीका आरत नाद करना सुन करभी तुम उनकी सहायतार्थ नहीं जाते ॥ १८ ॥ अथवा तुम हमारे गुप्त शत्रुहो, हमारेही ले लेनेके लिये रामचन्द्रजीके पीछे २ वनमें फिरतेहो और सर्वदा अवसर ढूंढते हो कि कब रामचन्द्र कहींको जायँ, और हम इनको ग्रहण करें इस कारणसे तुम उनकी सहायता करनेके लिये नहीं जाते ॥ १९ ॥ जब वैदेहीजीने इस प्रकार कहा, तब अति क्रोधके मारे हमारे नेत्र लालहो आये रोषमें भरकर अधर फडकने लगे और हम तैसेही आश्रमसे चल खडे हुए ॥ २० ॥ जब लक्ष्मणजीने इस प्रकारका कहना आरंभ किया, तब रामचन्द्रजी शोकसे मोहित हो कर उनसे बोले कि हे सौम्य ! तुम जो जानकीको छोडकर यहां चले आये वह अतिशय दुष्कर कर्म हुआ ॥२१॥ देखो, राक्षसोंका बल निवारण करनेकी हममें

विलक्षण सामर्थ्य है, उसको जानबूझ करभी तुम जानकीके यह क्रोध वचन सुन आश्रमसे बाहर चले आये ॥ २२ ॥ एक तौ स्त्री, दूसरे क्रोधित, ऐसी जानकीके कठोर वचनोंसे तुमभी उनको छोडकर यहां पर चले आये इससे हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं हुए ॥ २३ ॥ तुमने सीताके वचन सुन क्रोधके वशहो हमारी आज्ञाका उल्लंघन किया इससे तुम्हारा यह कार्य बहुतही निन्दनीय हुआ है ॥ २४ ॥ देखो ! यह राक्षस जो मृग बनकर हमको आश्रमसे दूरतक लायाहै वह हमारे बाण से माराहुआ पडाहै ॥ २५ ॥ हमने धनुष चढा खैंच उस पर बाण चढा लीलासेही एक बाणका इसके ऊपर प्रहार किया जिस बाणके लगनेसे इस राक्षसने मृगतनु छोड विकल स्वर कर बाजू पहरे हुये निशाचरका शरीर धारण कियाहै ॥ २६ ॥ उसकाल हमारे बाणसे घायल होकर दूरसेही श्रवण गोचरहो इस प्रकारका हमारा बोल बनाकर इस राक्षसके दारुण आर्त्तनाद करनेसे तुम उसको सुन इस समय जानकीको छोडकर यहां आयेहो ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि० आरण्यकांडे भाषायां एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

आश्रममें आनेके समय श्रीरामचन्द्रजीके वामनेत्रके नीचेका भाग अत्यन्तही फडकने लगा, पग २ पर चरण फिसलता, और शरीर कांपरहा था इन अपशकुनोंका यह प्रभावहै कि जिस कार्यके लिये जाओ उसकी सिद्धि नहीं होती ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी वारंवार अपशकुन होते देखकर आपही कहनेलगे कि, जाने सीता कुशलसेहैं अथवा नहीं ॥ २ ॥ यह सोचते विचारते सीताके दर्शनकरनेकी लालसासे शीघ्र २चलकर देखतेहुए कि आश्रम सूनापडाहै यह देखकर श्रीरामचंद्रजी बहुत उकसाये ॥ ३ ॥ वह वेग सहित इधर उधर भुजायें चला और घूमकर समस्त पर्णशालाके स्थान २ करके खोजनेलगे॥ ४ ॥रामचंद्रजीने पर्णशालामें गमन करकै देखा कि वहां सीता नहीं है जानकी बिन हेमंतऋतुके समागमसे ध्वस्तपद्मिनीकी समान हो पर्णशाला अत्यन्त श्रीविहीन अवस्थामें पडी थी ॥ ५ ॥ वनदेवतागण आश्रमको श्रीभ्रष्ट और विध्वस्त देखकर एकवारही छोडकर चलेगये आश्रमके मृग पक्षी और समस्त पुष्पभी मलीन होगयेथे, वहांपरके वृक्ष मानों रोरहेथे ॥ ६ ॥ मृगचर्म और कुश इधर उधर पडे और कुशासन छिन्नभिन्न और गिरे पडेथे, पर्णशालाकी ऐसी अवस्था

देखकर श्रीरामचंद्रजी वारंवार यह कहकर विलाप करनेलगे ॥७॥ कि निश्चय जानकी हरीगई, वा मृतक होगई अथवा किसी करके भक्षण करडालीगई, या वह डरपोक स्वभाववाली छिप रहीहैं या वनमें चली गईहैं ॥८॥ अथवा वह फूल फल चुननेके लिये कहीं वनमें गई हैं वा जल लानेकेलिये सरोवर वा नदीपर गई होंगी ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्रजीने यत्नपूर्वक ढूँढने भालने परभी वनके बीच प्रियाको कहीं न पाया, तब शोकके मारे उनके नेत्र लाल २ होगये उससमय वह उन्मत्तोंके समान फिरनेलगे॥ ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी शोकके समुद्रमें डूबकर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके नीचे दौडकर जानेलगे और विलाप करते २ नद नदी और पर्वतोंपर घूमनेलगे ॥ ११ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजी उन्मत्तकी समान कदम्बादि वृक्षोंसे सीताजीको पूछने लगे कि हे कदम्ब ! तुमने उन कदम्बप्रिया हमारी प्राणप्यारी जानकीको देखाहै ? यदि देखाहो तौ उन शुभानना की वार्त्ता हमसे कहो ॥ १२ ॥ हे बिल्व ! वह बिल्वसदृश स्तनवाली पल्लव समान कान्तियुक्त पीले रेशमीन वस्त्र धारणकिये सीताको यदि तुमने देखाहो तो बताओ ॥ १३ ॥ अथवा हे अर्ज्जुन ! प्रिया तुमको अतिशयचाहतीथी, सो वह क्षीणाङ्गी जनककुमारी जीवितहैं या नहीं सो बताओ ॥ १४ ॥ अथवा यह ककुभवृक्ष ककुभके समान जांघवाली सीताको निश्चयही जानताहोगा. क्योंकि इस वृक्षपर लता पुष्पफल सबही लगेहैं ॥ १५ ॥ और भ्रमरगणोंके संगीत रवसे परिपूर्ण शोभा पारहाहै । हे वनस्पति ! तुम सब वृक्षोंमें प्रधानहो । और जानकीभी सब रमणियोंमें श्रेष्ठहैं अतएव वह कहांहैं सो बताओ,❀ अथवा प्रिया तिलक पुष्पको बहुत प्यारकरतीथी इससे यह तिलक वृक्ष निश्चयही उनके वृत्तान्तको जानता होगा ॥ १६ ॥ हे अशोक ! तुम शोकको दूर किया करतेहो, इससे शोकसे हतचित्त मुझको प्रियाके साथ मिलाकर अपने नाम वाला हमको कर दो ॥ १७ ॥ हे ताल ! यदि तुमने उन पक्वतालकी समान स्तनवाली जानकीको देखा है और हमारे ऊपर कुछभी दया करते हो तब वह वरारोहा सीता कहां है ? सो हमको

❀ रागनी झंझौटी ताल एकताला । सीता बिनु देख कुटी सोचत रघुराई ॥ आस्ताई ॥ लक्ष्मण तुमकहा कीन इकली सिय छांडदीन निश्चर कोइ दाओ चीन्ह लेगयो उडाई ॥ १ ॥ सियविन व्याकुल शरीर मनना तनक धरतधीर पीर कौनं हरै नीर दृगचले बहाई ॥ २ ॥ प्रेमविवश रामभये द्रुमलतासों पूछनगये सोकविवश बोलत नाहिं सबरहे मुरझाई ॥ ३ ॥ आगे गृध्र भेटभई ताने सकल बातकही तेहि का प्रभु मोक्षदई नारद बलिजाई ॥ ४ ॥

बतादो ॥ १८ ॥ हे जामुन ! यदि जाम्बूनद सुवर्ण सम प्रभावाली हमारी प्रियाको तुमने देखा है तौ निःशंक चित्तसे बताओ ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार ! आज तुम पुष्पित होकर अत्यन्तशोभा पारहे हो और हमारी प्रियाभी तुमसे बहुतही स्नेह करती थीं सो यदि कहीं उन साध्वीको देखाहो तौ कहो ॥ २० ॥ इसी प्रकार आम, नीप, महाशाल, कटहल, व अनारको देख २ कर श्रीरामचन्द्रजी उनसे कहते थे ॥ २१ ॥ और बकुल, पुन्नाग, चन्दन, केतकी आदि और वृक्षोंके नीचे २ जाकर भ्रान्त चित्तहो उन्मत्तकी समान श्रीरामचन्द्रजी वनमें विचरने लगे ॥ २२ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी मृग इत्यादि पशुओंसे पूछते हुए बोले कि, हे मृग ! तुम क्या उन मृगछौनाकीसी आंखोंवाली सीताका कुछ वृत्तान्त जानते हो ? अथवा वह मृगलोचना मृगीगणोंके साथ मिलकर घूमती होंगी ॥ २३ ॥ हे गज ! तुम्हारीही शूंड समान आकारवाली उनकी जांघे हैं, यदि तुमने उनको देखाहो तौ कहो ? इससे हे गजराज ! हमें बतादो कि, वह कहां है ? ॥ २४ ॥ हे शार्दूल ! उन चंद्र वदना हमारी प्यारी मैथिलीको यदि देखा हो तो हमारा विश्वास करकै हमें बतादो ! तुमको कुछ भय नहीं है अर्थात् तुम इस बातसे न डरो कि, हम तुम्हें मार डालेंगे ॥ २५ ॥ हे प्रिये ! हे कमलेक्षणे ! तुम अब क्यों दौडी जाती हो ? हमने अब निश्चयही तुमको देख लिया है तुम किस कारणसे इन वृक्षोंके मध्यमें छिप कर हमसे नहीं बोलती हो ? ॥ २६ ॥ हे वरारोहे ! हम वारंवार कहते हैं कि, तुम खडीं रहो, व इधर उधर दौडती न फिरो, क्या हमारे ऊपर तुमको दया नहीं आती ? तुम तो कभी हमारे साथ इतना उपहास नहीं करती थीं क्यों हमारी उपेक्षा करतीहो ? ॥ २७ ॥ हे वरवर्णिनी ! हमने तुम्हारे पीले रेशमीन वस्त्र देखकर तुमको पहँचान लिया है, और यहभी हम देख रहे हैं कि तुम भागही रही हो इससे यदि तुम कुछ प्रेम हमारे साथ रखती हो तौ लौट आओ और भागती न फिरो ॥ २८ ॥ अथवा हे चारुहासिनी ! हमने जिसको देखाहै वह तुम नहींहो, तुमको तो निश्चय ही किसीने मारडाला, यदि ऐसा नहोता तो इस दारुण क्लेशके समयभी क्या तुमभी हमको छोड सकतीहो ॥ २९ ॥ स्पष्टविदित होताहै कि, मांस खानेवाले राक्षसोंने हमारा वियोग पाईहुई हमारी प्रियाके अंगोंको खंड २ करके खा लिया ॥ ३० ॥ अहो इनका वह मनोहर दांत वाला, श्रेष्ठ नासिका युक्त, शुभकुंडलसमन्वित, पूर्ण चंद्रमाके समान वदन राक्षसों करकै ग्रस्त होजाने पर निश्चयही

प्रभाहीन होगया होगा ॥ ३१ ॥ उनकी कोमल गरदन हार आदि भूषणोंसे भूषित जिसके वर्णकी ज्योति चंदनकी समान चिकनी और विशदहै सो राक्षसोंने ऐसी मनोहर गरदनकोभी खा डाला राक्षसोंने जब हमारी प्रियाको भक्षण किया होगा, तौ न जाने उन्होंने कितना विलाप किया होगा ॥ ३२ ॥ उनकी दोनों बांहै पल्लवकी समान कोमल और हाथोंके गहनोंसे सुशोभितहैं निश्चय ही राक्षसोंने इधर उधर फेंक फांक कर उनको खालिया उस कालमें उन दोनों बाहोंका अग्रभाग अवश्य कंपित हुआ होगा ॥ ३३ ॥ हाय ! हम क्या राक्षसोंके भोजनार्थ ही उनको आश्रममें अकेला छोडकर यहां आयेथे इससेही वह बन्धु बान्धव युक्त होकरभी राक्षसोंके पेटमें पड गईं और कोई बन्धु बान्धव काम न आया ॥ ३४ ॥ हे लक्ष्मण ! क्या तुमने प्राणप्यारीको कहीं देखाहै हा प्रिया ! हासीते ! हा भद्रे ! तुम कहां गईं इन शब्दोंको रामचन्द्रजी बार २ कह तेथे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार वारंवार विलाप करते २ रामचन्द्रजी वन २ में वेग सहित घूमने लगे कहीं ठोकर खाकर गिर पडते और कभी २ सब बन तथा दिशा विदिशाओंमें घूमने लगते ॥ ३६ ॥ कभी रामचन्द्रजी उन्मत्तकी समान दृष्टि आते कभी २ प्रियाके ढूँढने में तत्पर होकर वेग सहित नदी पर्वत झरने और समस्त वनों में भ्रमण करने लगे ॥ ३७ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी स्थिर होकर कहीं भी न रह सकते। और एक महा वनमें प्रवेश करके उसमें चारों ओर जानकीजीको एक२ वृक्ष और एक २ स्थल ढूँढने परभी रामचन्द्रजीका अभिलाष पूर्ण नहीं हुआ। परन्तु वह फिरभी प्यारी सुकुमारी जनकदुलारीकी खोज करनेमें परिश्रम करने लगे ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

इस प्रकार ढूँढते भालते श्रीरामचन्द्रजी फिर आश्रममें आये तौ देखा कि शून्य पडा है, पर्णशालामें कोई नहीं है आसन भी सब इधर उधर पडे हैं ॥ १ ॥ सब ओर वहां पर देख और वैदेहीजीको न पाकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके दोनों हाथ पकड रोकर बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! सीता कहां हैं ? इस आश्रमसे किस स्थान को चली गई हैं ? हे सौमित्र ! प्रियाको किसने हरण किया, वा भक्षण किया ? ॥

॥ ३ ॥ हे सीते ! यदि वृक्षकी आडमें छिपी रहकर तुम्हें उपहास करनेकी इच्छा हुई हो, तब तौ जितना चाहियेथा उतना उपहास होगया, अब अधिक न दुःखी करो । देखो ! हम महादुःखमें पडनेसे व्याकुल हो रहे हैं सो इस समय आनकर तुम शीघ्र हमको धीरजदो, और समझाओ ॥ ४ ॥ हे सौम्य ! तुम जो इन सब विश्वासी मृगछौनोंके सहित खेल करतीथीं सो इस समय यह सब तुम्हारे बिना नेत्रोंसे अश्रुजल भरे चिंता कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण ! सीताके विरहमें हम कभी जीवन धारण नहीं कर सकते, उनके हर जानेसे उत्पन्न हुए घोरतर शोकने हमको ढक लिया है ॥ ६ ॥ पितृदेव महाराज दशरथजीको निश्चयही हम परलोकमें मिलेंगे, और वह निश्चयही हमसे यह कहेंगे कि, हे राम ! हमने तो तुमको प्रतिज्ञा पूर्ण करनेको कहाथा, और तुमने भी स्वीकार कियाथा, कि हम चौदह वर्ष वनमें बसेंगे ॥ ७ ॥ सो तुम उस प्रतिज्ञाको पूर्ण बिना कियेही इस समय कैसे यहां पर आये ? स्वेच्छाचारी, मिथ्यावादी, और नीचता युक्त तुमको ॥ ८ ॥ धिक्कार है ! सो निश्चयही इस प्रकारके वचन पिताजी हमें कहेंगे विवश शोकसे व्याकुल, दीन और मनोरथ टूटे हुए ॥ ९ ॥ व दया करनेके योग्य हमको यहां छोड कहां जातीहो ? जिस प्रकार कुटिल मनुष्यको कीर्ति छोड देती है । हे वरारोहे ! हे सुमध्यमे ! तुम हमको न छोडो ॥ १० ॥ हम तुम्हारे विरहमें अपना जीवन परित्याग करेंगे श्रीरामचन्द्रजी सीता के दर्शनाभिलाषी होकर इस प्रकार विलाप करने लगे ॥ ११ ॥ परन्तु दुःखसे आरत हुए उन्होंने जानकीजीको न देखा; इस कारण वह जानकीके शोकमें निमग्न होकर ॥ १२ ॥ अतीव दल २ में फँसे हुए महागजकी समान बहुतही व्याकुल होगये । रामचन्द्रजीकी यह दशा देख लक्ष्मणजी उनके हितकी कामनासे कहने लगे ॥ १३ ॥ हे महाद्युतिमान् ! आप विषाद न कीजिये । हमारे साथ यत्न कीजिये तब अवश्यही सीताका दर्शन मिलेगा । हे वीर ! यह बहुत कन्दराओंसे शोभित गिरिवर जो है ॥ १४ ॥ और इस वनमें घूमना जानकीजीको बहुत प्यारा है, क्योंकि वनको देख वह सदा मत्त हो जातीथीं सो क्या अचरजहै कि वह वन देखने न चली गईहों अथवा कोई पुष्प शोभित कमल युक्त तलैयां देखने गई हों ॥ १५ ॥ अथवा मत्स्ययुक्त वेतसनामक विहंगसेवित नदीपर तौ न चली गई हों अथवा हम तुमको त्रासित करनेकी कामनासे इस वनके किसी स्थानमें तो न छिप रही हों ॥ १६ ॥ हे पुरुषसिंह ! वह यह

जाननेके लिये बनमें लुकाई हैं कि, हम वा आप किस प्रकारसे उनको खोजकर पालेंगे, सो हमको चाहिये कि उनके खोजनेका अवश्य यत्न करें ॥ १७ ॥ हे काकुत्स्थ! आपतोभी यह मानते हों कि जानकी इसी वनमें हैं तब तौ इस वनके सबही आश्रमोंमें खोजेंगे, अब शोक न कीजिये ॥ १८ ॥ जब सौहार्दकेवश होकर लक्ष्मणजीने इसप्रकार कहा तब रामचन्द्रजी सावधान चित्त होकर लक्ष्मणजीको संग ले ढूंढने लगे ॥ १९ ॥ बन, गिरि, तालाव, एक २ करके दोनों भाइयोंने सीताको ढूँढनेके लिये छाने ॥ २० ॥ फिर उन पर्वतोंके कँगूरों, चट्टान, व शिखर व सब रत्ती २ खोजे पर जानकीजीके दर्शन हुए ॥ २१ ॥ उस कालमें समस्त पर्वतको ढूँढ भालकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे भाई! इस पर्वत पर प्यारी जनकदुलारी तौ दृष्टि नहीं आतीं ॥ २२ ॥ लक्ष्मणजी समस्त दंडकारण्यमें विचरण करतेहुए भी जानकीजीको न पाकर दुःखसे संतप्तहो प्रदीप्त तेजवाले अपने भ्राता रामचंद्रजीसे बोले ॥ २३ ॥ कि महाबलवान् विष्णुजीने जिसप्रकार बलिको बांधकर इस पृथ्वीको प्राप्त कियाथा हे बुद्धिमान्! आपभी वैसेही जनक कुमारी सीताजीको पावेंगे ॥ २४ ॥ वीर लक्ष्मणजीके यह वचन सुन दुःखसे चित्त हरे हुए श्रीरामचंद्रजी अतिदीनतासे बोले ॥ २५ ॥ हे महाबुद्धिमान्! सारा वन खिले हुये कमल कमलाकरसरोवर बहुत सारी कन्दराओंसे युक्त बहुत झरनोंसे सुशोभित यह पर्वत जरा २ करके देखा व ढूँढा तथापि प्राणोंसे भी बहुत भारी प्यारी जानकीजीके दर्शन हमने न पाये ॥ २६ ॥ सीताजीके हरणसे संतापितहो श्रीरामचन्द्रजी शोकसे दुःखी और व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करते २ एक मुहूर्त भर तक विह्वल होरहे ॥ २७ ॥ वे बुद्धिहीन और चैतन्य रहित होगये और सर्व शरीर विह्वल होगया इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अतिशय व्याकुल और स्पन्दनाहीन होकर गरम लंबे २ श्वासलेकर विलाप करने लगे ॥ २८ ॥ इसके पश्चात् राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजीने वारंवार श्वास ले हा प्रिये! ऐसा कह गद्गद हो आंसूभर बडे शब्दसे रोदन करना आरंभ किया ॥ २९ ॥ रामचन्द्रजीको देखकर उनके प्रिय भ्राता लक्ष्मणजी शोकसे आरत हो विनय सहित हाथ जोड उनको समझाने बुझाने लगे ॥ ३० ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी उनके मुखसे निकलेहुए वचनोंका अनादर करकै प्रियतमा सीताजीके अदर्शनसे वारंवार रोदन करने लगे ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

महाबाहु धर्मात्मा कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके दर्शन न पा करके शोकके मारे चेतना रहित हो विलाप करने लगे ॥ १ ॥ वह सीताजीके दर्शन न पाकरभी, मानों उनको देखही रहे हैं इस भाव करकै कामबाणसे पीडित हो विलाप युक्त दुःखके साने वचन कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्रिये ! तुम पुष्पोंको अतिशय प्यार करती हो सो इस समय अशोक शाखा समूहद्वारा अपना शरीर ढक कर हमारे शोकको अतिशय बढाती हो ॥ ३ ॥ हे देवि ! तुम्हारी दोनों जांघे केलेके खंभकी सदृश हैं तुमने उनको कदलीसे छिपा रक्खा है सो हम उनको देख रहे हैं तुम अब उनको नहीं छिपा सकती हो ॥ ४ ॥ हे भद्रे ! तुम हँसते २ कर्णिकारके वनमें प्रवेश करती हो, परन्तु हमको पीडन करकै और अधिक उपहास करनेका प्रयोजन नहीं है ॥५॥ विशेष करकै आश्रमके स्थानमें परिहास करना अच्छा नहीं होता हे प्रिये ! यह तौ हम जानते हैं कि, स्वभावसेही तुम परिहासप्रिय हो ॥६॥ परन्तु हे विशालाक्षी! यह पर्णशाला शूनी पडी है इस कारण आओ । हे लक्ष्मण ! निश्चय होता है कि, सीताको राक्षसोंने भक्षण कर लिया अथवा वह उनको हरण करकै ले गये ॥ ७ ॥ इसी कारण वह हमको विलाप करते हुए देखकरभी हमारे निकट नहीं आती. हे लक्ष्मण ! इस पर ये मृग यूथगण रोदन करतेहैं ॥८॥ यहभी मानों यही कह रहे हैं कि, राक्षसोंने सीताका भक्षण कर लिया । हा अच्छे शीलवाली साध्वी ! हा वरवर्णिनी सुमुखि ! हा आर्या ! तुम कहां गई हो ॥ ९ ॥ अब सीता करकै रहित देशको गमन करना पडेगा, इतने दिनोंके पीछे कैकेयी देवी सफल मनोरथ हुई, क्योंकि अब वह देखेंगी कि, सीता सहित गये थे । और आये सीता रहित ! ॥ १० ॥ किस प्रकारसे हम सीता रहित अपने रनवासमें प्रवेश करेंगे ? सब लोग हमको वीर्य रहित और निर्दयी कहकर निन्दा करेंगे ॥ ११ ॥ सीताजीके बिना संग होनेसे निश्चयही हमको कातरता प्राप्त हो जायगी. कारण कि, जब हम वनवास करकै घरको लौटेंगे और उस समय मिथिलानाथ जनकजी ॥ ॥१२॥ कुशल पूछैंगे तौ किसप्रकार हम उनको अवलोकन करनेमें समर्थ होंगे ? विदेहराज निश्चय हमको बिना सीताके देखकर ॥ १३ ॥ अपनी पुत्री जानकीके विनाशसे संतप्तहो मोहके वश हो जायँगे ॥ पिता दशरथजीही धन्य हैं ! क्योंकि वे

स्वर्गमें वास करते हैं । अथवा अब हम भरतकी पालित अयोध्यापुरीको न जायँगे ॥ १४ ॥ अयोध्याकी बात तो एक ओर रही सीताके बिना तौ हम स्वर्गकोभी शून्य समझते हैं; इस कारण हे लक्ष्मण ! तुम अब हमको इस वनमें छोडकर अयोध्याको चले जाओ ॥ १५ ॥ हम जानकीके बिना किसी प्रकारभी जीवन धारण करनेको समर्थ नहीं हैं । तुम हमारी ओरसे भली भाँति भरतजीको गाढ आलिंगन कर कहना ॥१६॥ कि, रामचन्द्रजीने यह आज्ञा की है कि, तुमही इस राज्यका पालन करो ॥ हे विभो ! माता कैकेयी व सुमित्रा अपनी मातासे ॥ १७ ॥ और कौसल्याजीसे इनमेंसे प्रत्येकको हमारी आज्ञानुसार यथायोग्य तुम प्रणाम कह देना और सदा नकि वचनोंसे समझा बुझाकर यत्न सहित उनकी रक्षाभी करते रहना॥१८॥ हे शत्रुके मारनेवाले ! और मेरी मातामे सीताजीके व हमारे विनाशका वृत्तान्त भी विस्तार सहित तुम निवेदन कर देना ॥१९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुकेशी सीताके विरहमें महा व्याकुल होकर इस प्रकारसे विलाप करने लगे । तब भयके मारे लक्ष्मणजीका मुख पीला पडगया मन व्यथित हुआ और वह बहुतही आतुर होगये ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकांडे भाषायां द्विषष्टितमः सर्गः॥६२॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३.

राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी प्रियाविनहो शोक मोहसे आतुर होनेके कारण लक्ष्मणजीको विषाद उत्पन्न कराते हुए आपभी बडे तीव्र विषादको प्राप्त हुए ॥१॥ तिसके पीछे वह विपुल शोकमें डूबकर लंबे २ श्वास लेते हुये, रोते २ शोकसे घिरे हुए लक्ष्मणजीको उपस्थित विपदके अनुरूप वचन कहने लगे ॥ २ ॥ हम समझतेहैं कि हमारी समान बुरे कर्म करनेवाला दूसरा पुरुष पृथ्वीपर और नहींहै, देखो एकके पीछे एक इस प्रकार लगा तार शोक इकट्ठे होकर हमारे मन और हृदयको वेधे डालतेहैं ॥ ३ ॥ पहले जन्ममें हमने इच्छानुसार वारंवार बहुत सारे पाप कर्म कियेहैं आज उनका फल मिलरहाहै ! इसीकारण हमारे ऊपर दुःखके ऊपर दुःख पड रहेहैं ॥ ४ ॥ राज्यका नाश होना, पिताजीका मरना, माताजीको वियोग होना, और बन्धु बान्धवोंसे छूटना, यह सब बातें जब याद आतीहैं तौ हमारे शोकके वेगको परिपूर्ण कर देतीहैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण !

वनमें आकर सीताके साथ रहनेसे वह सब दुःखही छूट गयेथे बरन् शरीरको क्लेशका नाम नहीं जान पडताथा, परन्तु आज जानकीके वियोगसे, काष्ठके संयोगसे सहसा प्रदीप्त हुए अग्निके समान वही दुःख फिर प्रबल होगयेहैं ॥ ६ ॥ निश्चयही कोई राक्षस उन भीरुस्वभाववाली आर्या सीताको आकाशमार्गसे आय हरण करकै लेगयाहै हाय ! इसमें कोई सन्देह नहीं है ! कि उस समय सुन्दर बोलनेवालीने भयके विवशहो विकृतस्वरसे वारंवार रोदन किया होगा ॥ ७ ॥ सुंदर सदाही लाल चंदन लगानेके योग्य हमारी प्रियाके दोनों सुन्दर कुचमें निश्चयही राक्षसोंने भक्षण करनेके समय उनमें रुधिर लगादिया होगा जिससे वह शोभित नहीं होतेहोंगे हाय इतने परभी हमारे प्राण नहीं जाते ॥८॥ अब हम इस शरीरसे उनको न भेट सकेंगे। उनका मुखमंडल घूँघरवाले बालोंके बीचमें शोभित, और सुन्दर, सुमधुर, सुकोमल, और साफ चिकना सँवारा हुआहै, सो जानकीको राक्षसके वश होनेसे राहुमुखमें ग्रसेहुये चंद्रमाके समान निश्चय उस मुखकी अब सब सुंदरताई अलग होगई होगी ॥ ९ ॥ पतिव्रता प्रियाकी वह सुन्दर गरदन सदाही हारके गुच्छोंसे भूषित रहतीथी. सो रुधिरपान करनेवाले राक्षसोंने शून्यमें पाकर निश्चयही उसको भेदकर रुधिरपान कियाहोगा ॥ १० ॥ हमारे न होनेपर निर्जन वनमें राक्षसोंने चारों ओरसे घेरकर जब उनको खेंचना आरंभ कियाहोगा, तो उससमय वह बडे नेत्रवाली सीताने निश्चयही कुररीकी समान विलाप कियाहोगा ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण ! हम व हास्यमुख उदारस्वभाववाली सीता प्रथम हमारे साथ इस शिलातलपर तुम्हारे निकट बैठकर हँसते २ तुमसे कितनी बातें कहतीथीं ॥ १२ ॥ यह नदियोंमें श्रेष्ठ गोदावरीहै, जो हमारी प्रियाको सर्वदाही बहुतप्यारीथी, सो हमारे मनमें यह बातभी आतीहै कि कदाचित् वह इस नदीके तीर पर चली गईहो । परन्तु नहीं वह अकेली यहांपर कभी नहीं आतीथीं ॥ १३ ॥ तब क्या वह कमल दलके समान नेत्रवाली कमलमुखी जानकी कमल लेनेको चली गई हैं ? यहभी किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि वह कभी हमारे विना कमल लेने नहीं जातीथीं ॥ १४ ॥ अथवा वह इस पुष्पित वृक्षसमूह शोभित अनेक जातिके विहंगमोंसे पूर्ण यह वन अपनी इच्छानुसार देखनेको गई हैं यहभी बात किसी भांति संभव नहीं हो सकती, क्योंकि उनका डरपोक स्वभावहै अकेली वनके मध्य प्रवेश करनेसे वह बहुत डरतीथीं ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! सूर्य !

आप सबके कृताकृतको जानतेहैं, और सत्य मिथ्या सबके साक्षीभी आपहैं. इस कारणसे शोक हत हमको बतला दीजिये कि, हमारी प्रिया कहां चलीगई अथवा कौन उनको हरकर लेगया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहींहै जो नित्यही तुम्हारे ज्ञान मार्गमें उदित न होताहो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलमर्य्यादारक्षनी सीताने प्राण दिये हैं या वह किसीसे हरी गईहैं, अथवा कहीं मार्गमें टिक रहीहैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने शोकयुक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तब न्यायशास्त्रमें स्थित हो अदीन हुये सौमित्रि लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोडकर धीरज धारण करकै उत्साहयुक्तहो जानकीजीको ढूँढिये । उत्साही पुरुष संसारी दुष्कर कार्य करनेमेंभी कभी नहीं घबडाते ॥ १९ ॥ बडे पौरुषी लक्ष्मणजीने जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्रीरामचन्द्रजीने उस वचनको चिन्तनीय समझकर न गिना बरन् वह एक बारही धीरजको छोडकर फिर महा दुःखमें डूबगये ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४.

रावणकी हममें दृढ मनुष्य बुद्धि होजाय इस कारण फिर विलाप करने लगे दीन भावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे लक्ष्मण ! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ ॥ १ ॥ कि सीता कमल फूल लेनेको तौ वहां नहीं चली गईहैं ? जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तौ लक्ष्मणजी फिर ॥ ॥ २ ॥ शीघ्र २ पग धरकै गोदावरी नदीपर गये, और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारों ओर जरा २ करकै ढूँढ भाल रामचन्द्रजीसे शीघ्रही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि हमने सबही घाटोंपर ढूँढा परन्तु कहींपर उनको न पाया पुकारा भी परन्तु उन्होंने न सुना । हे आर्य ! जाने कौन देशमें क्लेशहारिणी जानकीजी चली गईहैं ॥ ४ ॥ सो उन सूक्ष्म मध्यमस्थान वालीका पता हम नहीं जानते लक्ष्मणजीके वचन सुनकर रामचन्द्र और भी दीन व संतापसे मोहितहो ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजी आपही गोदावरी नदीके तटपर गये और वहां खडे होकर बूझने लगे कि सीता कहां है ? ॥ ६ ॥ समस्त प्राणियोंने तथा गोदावरी नदी किसीने भी श्रीराम-

चन्द्रजीको यह न बताया कि मारे जानेके योग्य राक्षस रावण सीताको हरकर ले गयाहै ॥ ७ ॥ तब पृथ्वी जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पांच भूतोंने व प्राणियों ने गोदावरी नदीसे कहा कि रामचन्द्रजीसे सीताजीको बताओ, और सोच करते हुये रामचन्द्रजीने भी पूछा परन्तु गोदावरीने न बताया ॥ ८ ॥ न बतानेका कारण यह हुआ कि, रावणका रूप और उस दुष्टात्माके कार्योंका स्मरण करनेके मारे भय- से गोदावरीनदीने श्रीरामचन्द्रजीसे सीताको न बताया ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब गोदावरीने सीताजीके दर्शनसे निराश किया तब श्रीरामचन्द्रजी सीताके विरहसे व्यथित होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ हे शुभदर्शन ! यह गोदावरी तो कुछ भी उत्तर नहीं देती परन्तु हम सीताके विना अपने देशमें जाकर पिता जनकजीसे क्या कहेंगे ॥ ११ ॥ और वैदेहीजीकी मातासे विना जानकीके कैसे अप्रिय वचन कहेंगे, जो जानकीजी राज्यविहीन वनमें कंद मूलादि भोजन कर जीते हुये हमारे ॥१२॥सब शोक अपनयन करतीथीं वह वैदेही जी कहां गईं? हम जातिके लोगोंसे सहायक विहीन होनेके कारण और सीताजीका दर्शन न पानेके कारण॥१३॥जाग- रित रहनेसे रात्रि हमको बडी जान पडेगी अब हम मन्दाकिनी नदी जटा स्थान और झरना झरता हुआ यह पर्वत ॥१४॥ इन सबही स्थानोंमें विचरण किया करेंगे ! जिससे कि सीताजीको देखें। हे वीर ! यह मृगगण हमको बार २ देखतेहैं॥१५॥ इनके संकेतोंसे जान पडताहै कि मानों यह हमसे कुछ कहा चाहतेहैं, लक्ष्मणजीसे ऐसा कह उन मृगोंको देख पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी उन मृगोंसे बोले॥१६॥ हेमृगो ! सीता कहांहैं ? यह कहतेही आंसू निकल आये वाणी गद्गद होगई, जब महाराज श्रीरामचंद्रजीने ऐसा कहा तौ वह सब मृग सहसा उठ खडे हुए ॥१७॥ और जिस दिशाको रावण जानकीजीको हरण कर लेगयाथा ? उसी दक्षिण दिशाको मुख- कर आकाशकी ओर निहार २ देखने लगे ॥१८॥ वह सब मृगगण वारंवार उसी दक्षिण दिशाकी ओर मुखकर, चिंघडते, और फिर श्रीरामचंद्रजीकी ओर देख दक्षिणको दौडते ॥ १९ ॥ मृगगणोंकी यह धावमान होने और शब्दोंकी दशा देख लक्ष्मणजीने उनके हृदयका वृत्तान्त जान लिया॥२०॥ अत्यन्त धीमान् लक्ष्मणजी अपने बडे भ्राता रामचन्द्रजीसे आरत की समान बोले कि हे देव ! जब आपने इन मृगोंसे पूछा कि सीता कहांहैं ? तब यह सब एक एक उठ खडे होकर ॥२१॥ दक्षिण दिशाकी ओर पृथ्वीको दिखाने लगे। इस कारण चलिये हम लोगभी इसी

दक्षिण दिशाको चले चलें ॥२२॥ क्योंकि कदाचित् आपही सीता वहां मिलजांय, अथवा उनकी प्राप्तिका कोई उपाय मिलजावे, तब श्रीरामचन्द्रजी ऐसाहीहो कहकर दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥२३॥ इसके पश्चात् २ लक्ष्मणजी आगे २ आप चले दोनों भाईजन इधर उधर देखते भालते व आपसमें बात चीत करते २ चले ॥ २४ ॥ आगे चलकर देखा तो कहीपर फूल पडेहैं । पृथ्वीपर फूलोंकी वृष्टि पडी देखकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ २५ ॥ वह बडे दुःखित हो दुःखित लक्ष्मणजीसे बोले, कि हे लक्ष्मण! हम जानतेहैं कि यह वही पुष्पहैं ॥ २६ ॥ जो हमनें वैदेहीजीको दियेथे और उन्होंने यह सब अपने अंगोंमें धारण कियेथे, यह अभी कुम्हलाये नहीं, ऐसा बोध होताहै कि हमारा प्रिय करनेके लिये सूर्य, पवन, तपस्विनी पृथ्वीने ॥ २७ ॥ इन पुष्पोंकी रक्षाकीहै, महाबाहु धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीसे ऐसा कह ॥ २८ ॥ बहुत सारे झरने जिसमें झररहे ऐसे सामनेवाले पर्वतसे पुकारकर बोले. हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुमने क्या उन सर्वांगसुन्दरीको देखाहै ? ॥ २९ ॥ हमारी प्रिया हमारे विना रमणीय इस वनमें देखीहै ? जब उस पर्वतने इनकी बातका कुछ उत्तर न दिया तब यह क्रुद्ध होकर उस पर्वतसे बोले जिस प्रकार सिंह छोटे मृगोंसे कडककर बोलताहै ॥ ३० ॥ हे पर्वत ! जब तक हम तुम्हारे शृङ्ग तोड न डालें, तबतक तुम सोनेकी समान वर्ण वाली हमारी सीताजीको हमें दिखादो ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तौ मानों वह पर्वत जानकीजीको जानता हुआ श्रीरामचंद्रजीको बताना चाहताथा परन्तु रावणके भयसे नहीं बताया ॥ ३२ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वतसे फिर बोले कि तुम हमारे बाणानलकी अनन्त अग्निसे भस्म हो जाओगे ॥ ॥ ३३ ॥ फिर तृण वृक्ष व पल्लवादि जल जानेसे फिर कोई तुम्हारा आश्रय न लेगा हे लक्ष्मण ! आज इस गोदावरी नदीकोभी शुष्क करदेंगे ॥ ३४ ॥ यदि यह सब हमारी चन्द्रमुखी सीताको नहीं बताते तौ हम ऐसाही करेंगे, इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजी क्रोधान्वित होकर मानो उनको नेत्रोंसे भस्मही किये देतेथे ॥ ३५॥ इधर उधर देखते २ श्रीरामचन्द्रजीने पृथ्वीपर देखा जहां कि राक्षसके चरण चिह्न बनेथे, व उसी स्थानपर भयभीत और रामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छा किये इधर उधर दौडती हुई ॥ ३६ ॥ राक्षसके अनुसरण करनेसे जानकीजीकेभी पैरोंके चिह्न उन चिह्नोंके बीचमें बने देखे, सीताजीके व राक्षसके पद एकमें मिले देख श्रीरामच

न्द्रजीने बडा क्रोध किया ॥ ३७ ॥ धनुष व तूणीर (तरकस) कोभी टूटा फूटा पृथ्वीपर पडा देख रथकोभी रत्ती २ चूर्ण देख व्याकुलहो चकित होते हुये श्रीरामचन्द्रजी अपने प्यारे भ्रातासे बोले ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो जानकीजीके गहनोंके सुवर्णबिन्दु और बहुत सारी मालायें यहां पर टूटी पडीहैं ॥ ३९ ॥ हे भइया इस ओर देखो भूमिमें चारों ओर सुवर्णबिन्दु सम विचित्रित रक्त बिन्दुसमूह छिटक रहेहैं यह सीताका तो रुधिर नहींहै ॥ ४० ॥ हे भइया, लक्ष्मण हमको जान पडताहै कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीजीके खंड २ कर आपसमें बांट चूंट उनको खाडाला ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण ! ऐसा समझमें आताहै कि सीताके लिये झगडा होनेसे यहां दो राक्षसोंका घोर युद्ध हुआथा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे सौम्य ! किसीका यह मुक्ता मणिसे बना हुआ रमणीय विभूषित धनुष पृथ्वीपर टूटा हुआ पडाहै ॥ ४३ ॥ हे वत्स । या तो यह धनुष राक्षसोंका है । वा देवताओंका है । प्रातःकालके सूर्यकी समान अरुण (लाल) वैदूर्य मणिकी मूठ इसमें लगीहै ॥ ४४ ॥ किसीका यह सुवर्णका कवचभी रत्ती २ टूटा फूटा हुआ पृथ्वीपर पडाहै और यह शत २ शलाका समन्वित दिव्य माला शोभित छत्र किसका भूमि पर पडाहै ॥ ४५ ॥ हे सौम्य । इसका दंडा टूट गयाहै किसने तोडाहै व सोनेकी गर्दनी पडी पिशाचों समान मुख वाले गधे भी ॥ ४६ ॥ महा भयंकर व बडे आकारवाले किसीके रणमें मरे पडेहैं। फिर दीप्तिमान अग्निके समान अति देदीप्यमान समरमें स्वामीका प्रकाश करनेवाला ध्वजा युक्त किसीका युद्ध में काम देनेवाला रथभी पडाहै ॥ ४७ ॥ जो जगह २ पटकने व दे मारनेसे टूट गयाहै । वह किसीके रथ के लम्बे २ बाँसभी सुवर्णके विभूषणोंसे भूषित ॥४८॥ हे लक्ष्मण ! टूटे फूटे पडेहैं जिनको देखनेसे भय उत्पन्न होताहै । बाणोंसे पूर्ण किसीके तूणीरभी पृथ्वीमें पडेहैं॥ ॥ ४९ ॥ देखो ! चाबुक और बाग हाथमें लिये किसीका सारथिभी मृतक पडाहै । देखो यह किसी पुरुष राक्षसके जानेका प्रगट मार्ग बनाहै ॥ ५० ॥ हे शुभदर्शन ! किस कारणसे अतीव कठिन हृदय कामरूप निशाचर गणोंके साहित हमारा पहलेसे शत गुण अधिक वैर होगया ? तुम देखलेना कि इससे उनके जीवनका अंत होगा ॥ ५१ ॥ या तो राक्षसोंने सीताको हर लिया वा भक्षण कर लिया, अथवा उन तपस्विनीने प्राणत्याग करदिया होगा; किन्तु जब इस महाअरण्यमें जानकीजी मरणके निकट पहुँची तब पतिव्रत धर्मनेभी उनकी रक्षा न की ॥ ५२ ॥

हे लक्ष्मण ! इस प्रकारसे जब कि जानकी हरी गई और उस समय धर्मनेभी उनकी रक्षा न की तब संसारमें ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न और कौन पुरुष हमारा प्रिय करने में समर्थ होगा ? ॥ ५३ ॥ प्राणीगण इनही सब कारणोंसे अज्ञान प्रयुक्त समस्त लोकोंके कर्त्ता परमदयालु सुरवर परमेश्वरको नहीं मानतेहैं ॥ ५४ ॥ हमारा स्वभाव अतिशय कोमलहै, और सर्वदाही हम सब लोकोंका हित कार्य करतेहैं और करुणा सहित उनका शुभाशुभ विधान करतेहैं परन्तु हम सीताका उद्धार नकरसके, इस कारण इन्द्रादि देवता गण निश्चयही हमको वीर्य रहित समझेंगे ॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण ! विचार करके देखो ! कि हमको प्राप्त होकर दया दाक्षिण्यादि समस्त गुण दोष रूपमें बदल गये इन दोषोंसे हम छिप गये, अब कोई हमको पराक्रमवान् नहीं समझता इस्से अभी सब प्राणी व राक्षसोंका नाश करनेके लिये ॥ ५६ ॥ चंद्रमाकी चांदनीको मिटाय, महा सूर्यके समान उदयवत् हमारा प्रकाश देखो, जो कि सुशीलता इत्यादि गुणोंको छोड अब सबको ठीककरतेहैं ॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम देखते रहो कि अब यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, किन्नर, वा मनुष्य कोईभी सुख प्राप्त करनेको समर्थ नहीं होगा ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण ! आज हमारे बाणसमूहसे समस्त आकाश व्याप्त हो जायगा, देखो आज हम त्रिलोकवासी प्राणियोंके गमनागमन रोके देतेहैं आज हम त्रिलोकीको कालके कवरमें निक्षेप करेंगे ॥ ५९ ॥ जब हम सबका गमनागमन रोक देंगे तो इससे ग्रहोंकी चाल रुक जायगी चंद्रमा अन्तर्हित हो जांयगे वायु, अग्नि, और सूर्य इत्यादिकी द्युतिके नाशहोनेसे, सब जगह गाढा अंधकार छा जायगा ॥ ६० ॥ सबही शैल शिखर मथित हो जांयगे, समुद्र सूख जांयगे, वृक्षलता, और गुल्म विध्वंस होजांयगे, और वन एक साथही उजड जांयगे ॥ ६१ ॥ हम तीनों लोकोंका नाश करदेंगे यदि इन्द्रादि देवगण मंगलमय जानकीजीको नदेदेंगे ॥ ६२ ॥ तो हमारा पराक्रम देखना. हे लक्ष्मण ! इसी मुहूर्तमें वे हमारे पराक्रमको देखें कि, इस समय आकाशमेंभी कूदकर कोई न बच सकेगा ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण ! आज हमारे चापके मुखसे छूटेहुये शरजालसे निरन्तर मर्दित होकर सब जगत् महा व्याकुल मर्यादा शून्य हो जायगा, और मृग व पक्षीगण सबही सब भाँतिसे भ्रान्त और विनष्टहोजांयगे ॥ ६४ ॥ आज हम सीताके लिये कानतक प्रत्यंचा खेंच छोडे हुए बाणोंसे सब संसार पिशाच और राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ ६५ ॥ इस

संसारमें कोईभी हमारे इन बाणोंको निवारण नहीं करसकैगा, आज देवता लोग देखेंगे कि समूहके समूह बाण हम करकै रोष और क्रोधमें भरकर चलाये हुए कितनी २ दूरपर जाकर गिरते हैं न देवता न दैत्य न पिशाच न राक्षस ॥ ६६ ॥ जब हमारे क्रोधसे तीनों लोकोंका नाश हुआ तब कोईभी रक्षा न पावैगा अधिक क्या कहें, सुर, असुर, यक्ष और राक्षसोंके समस्तही लोक ॥६७॥ हमारे बाण-जालसे खंड २ होकर गिरेंगे आज हम बाणोंको छोडकर इन समस्त लोकोंको मर्यादा शून्य करेंगे ॥ ६८ ॥ हे लक्ष्मण ! प्रिया वैदेहीजी मरही गईहों अथवा हरही गईहों सो किसी अवस्थामें हों यदि ब्रह्मादि देवगण उन्हें हमको न देदें ॥ ६९ ॥ हम चराचर सहित इस सब जगत्का विनाश कर डालेंगे और जबतक हम सीताको न देख पावेंगे तबतक बाणोंसे चराचरको संतापित करेंगे ॥ ७० ॥ यह कहकर क्रोधसे श्रीरामचन्द्रजीकी आंखैं लाल २ हो आईं, होठ फडकने लगे, श्रीरामचन्द्रजीनें चीर वल्कल मृगचर्म और जटाजूट कसकर बांधा ॥ ७१ ॥ उस कालमें धीमान् रामचन्द्रजीने क्रोधित होकर जब ऐसे कार्यका अनुष्ठान किया तब उनका देह ऐसा प्रतिभात होने लगा कि, जैसे पूर्व कालमें रुद्रजी त्रिपुर वध करनेको तैयार हुएथे ॥ ७२ ॥ अनन्तर उन्होंने लक्ष्मणजीके निकटसे धनुष ग्रहण कर और दृढ रूपसे धारण करकै सर्प विष सदृश घोर प्रदीप्त सायक ॥ ७३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीनें उस धनुष पर चढाया । और प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधमें भरकर कहने लगे ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मण ! जरा, मृत्यु, काल, और विधि यह सब जिस प्रकारसे प्राणिमात्रके रोकनेसे नहीं रुक सकते, वैसेही हम क्रोधित हुए हैं । निःसन्देह कोई हमको निवारण नहीं कर सकैगा ॥ ७५ ॥ सुदन्तयुक्ता निन्दा रहित मिथिलाराजनंदिनी सीताको बिना प्राप्त हुए हम देव, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग और पर्वत सहित समस्त जगत् मर्दित करडालेंगे ॥ ७६ ॥

श्रीमद्रा० वा० आ० आर० भाषायां चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५.

सीताजीके हरणसे कातर हुये श्रीरामचन्द्रजी सन्तापित हो संवर्तकप्रलयकालकी अग्निके समान लोकोंका नाश करनेको तैयार हुए ॥ १ ॥ और प्रलयका-

लमें समस्त जगत् दग्ध करनेके अभिलाषी महादेवजीके समान वारंवार श्वास त्याग करतेहुए प्रत्यंचायुक्त शरासनको श्रीरामचन्द्रजी देखने लगे ॥ २॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका अदृष्ट पूर्व जो पहले कभी नहीं देखाथा, ऐसा क्रोध देखकरशुष्क मुख बना हाथ जोड उनसे बोले ॥ ३ ॥ आप पहलेसे मृदु, सब इन्द्रियोंको जीतनेवाले और सर्वभूतोंके हितकारी कार्य करनेमें तैयार हैं सो इस समय क्रोधके वश होकर अपना स्वभाव छोडना आपको योग्य नहीहै ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें श्री, वायुमें गति, पृथ्वीमें क्षमा, सूर्यमें दीप्ति, इन चारोंमें यह चार पदार्थ नित्य हैं और आपमें यश सहित यह चारों पदार्थ विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ एक जनके अपराधसे समस्त लोकको हनन करना आपको उचित नहीं है, निश्चयही हम जानते हैं कि, यह जो रथ टूटा पडा है यह एकही जनका है बहुतोंका नहीं ॥ ६ ॥ किन्तु यह जुआ युक्त और परिच्छेद सहित रथ किसका है, और क्यों कर टूटा है इसको हम नहीं जानते, देखिये यह स्थान खुरियोंसे खुद खुदाय रहा है और रुधिरसे भीगनेके कारण अतिशय भयंकर हो रहाहै ॥ ७ ॥ निश्चयही यहांपर संग्राम हुआहै ॥ और इन सब कारणोंसे यहभी बोध होताहै कि एक रथीके सहित और किसी पशुका युद्ध हुआहै दोजनोंका युद्ध नहीं हुआहै ॥ ८ ॥ बडी भारी सेनाके चरण चिह्न यहांपर नहीं दृष्टि आते इसलिये एक जनके अपराधसे समस्त लोकोंको विनाश करना आपको उचित नहींहै ॥९॥ राजा लोग सचराचरपर अतिशय शान्त और मृदु स्वभाववाले होतेहैं, और अपराधानुसार दंड दिया करतेहैं आपभी सर्वदा सब भूतोंके शरण्य और परम गतिहैं ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! संसारमें कौन पुरुष आपकी भार्याका वियोग आपसे अच्छा समझताहै कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व, दान, व सरित् सागर ॥ ११ ॥ और शैल कोई भी आपका अप्रिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अप्रिय साधुलोग नहीं कर सकते । हे राजन् ! जिसने सीताको हरण कियाहै इस समय उस जनकी खोज करना आपका कर्त्तव्य हुआहै ॥ १२॥ आप हमारे साथ धनुष हाथमें लेकर चलिये, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र वन पर्वत ढूँढैंगे ॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी ताल तलैयां व गुफायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही यत्न सहित आप ढूँढिये ॥ १४ ॥ जब तक कि आपकी स्त्रीके हरनेवालेको न पावैंगे, और इस प्रकार शान्त भावसे ढूँढनेपरभी इन्द्रादि देवगण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौशलेन्द्र ! पीछेसे आप उनको यथायोग्य

दंड दीजियेगा ॥ १५ ॥ हे नरेन्द्र ! शीलतासे सामसे और विनय अवलम्बन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्र सदृश सुवर्णपंखवाले शरजालसे समस्त संसारको संहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणके वाक्यसे क्रोध त्यागकर इसप्रकार शोक संतप्त और महामोहसे युक्त चेतना रहित होकर अनाथोंकी समान विलाप करना आरंभ किया॥ ॥१॥ लक्ष्मणजी उनके चरण छूकर एक मुहूर्तभरतक उनको समझाते बुझाते हुए कहने लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीने अनेक तपस्या और बहु विधि धर्मानुष्ठान करके आपको प्राप्त किया था जिस प्रकार देवता लोगोंने अमृतको बडे २ उपायोंसे प्राप्त किया था ॥ ३ ॥ भरतजीसे जैसा जैसा सुनाथा उससे तौ यही ज्ञात होताहै कि राजा दशरथ आपहीके गुणोंमें बंधकर, व आपकेही वियोगमें देवलोकको प्राप्त हुयेहैं ॥ ४ ॥ हे काकुत्स्थ ! यदि आपही इस आई हुई विपदको न झेलेंगे तौ अल्प प्राण मनुष्य कौन सह सकेगा ? ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप अपने चित्तको सँभालिये । विपद अग्निके समान सबही प्राणियोंको स्पर्श करतीहै किन्तु क्षण कालमेंही दूर चली जातीहै ॥ ६ ॥ लोकका स्वभावही यहहै । देखिये नहुषपुत्र ययाति, इन्द्रपदवी प्राप्त करके भी अनीतिसे स्वर्गसे च्युत हुआ था ॥ ७ ॥ जो हमारे पिताजीके पुरोहितहैं, उन महर्षि वसिष्ठजीने एक दिनमें शतपुत्र उत्पन्न किये और एकदिनमेंही विश्वामित्रसे वह सब नष्ट होगये॥८॥हे कौशलेश्वर ! जगन्माता, सर्व लोकके नमस्कार करने योग्य इस पृथ्वीकाभी चलायमानहोना पाया जाताहै अर्थात् भूकंपादि दुःख इसको हुआ करतेहैं ॥९॥ जो सूर्य चन्द्रमाकि, जगत्के नेत्र और साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, और जिनमें समस्त संसार टिका हुआ है उन महाबलवान् सूर्य चन्द्रमाकाभी ग्रहण हो जाता है॥ १०॥हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस प्रकारसे अति महत् भूत और देवतालोगभी जब दैवके वश हैं तब साधारण शरीरधारी प्राणियोंकी क्या गिनती है ? ॥ ११ ॥ अधिक क्या कहैं इन्द्रादि देवताओंमेंभी नीति और अनीति सुख दुःख सुना जाया करता है, इससे हे नरसिंह ! आप अब व्यथित न हूजिये ॥ १२ ॥ हे रघुनंदन ! यदि जानकीजी हरी गई हों, वा मृतक होगईहों तौभी साधारण पुरुषोंकी समान आपको शोक करना योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ हेवीर !

आपकी समान सर्वदर्शी और हितदर्शी मनुष्यगण सचराचर बडीभारी विपद पडने परभी शोक नहीं करते ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप भली भाँति विचार करकै यथार्थतासे शुभाशुभका विचार कीजिये । आपकी समान महाप्राज्ञ पुरुषगण बुद्धिसे विचार करकै शुभाशुभ भली भांतिसे जानलेते हैं ॥ १५ ॥ जिनके गुण और दोष जबतक प्रगट दृष्टिमें नहीं आते, तबतक उन सब अध्रुव अर्थात् अस्थिर कर्मोंके अनुष्ठानसे कभी इष्ट फलकी प्राप्तिकी आशा नहीं होसकती और उनका जानना बिना क्रिया योगके नहीं होता ॥ १६ ॥ हे वीर ! आपनेही प्रथम हमको अनेक बार इस प्रकारका उपदेश दियाहै और आपको उपदेश देनेमें तो साक्षात् बृहस्पतिजीभी समर्थ नहीं है ॥ १७ ॥ हे महाप्राज्ञ ! आपकी बुद्धिको देवता लोगभी नहीं पहुँच सकते अब आपकी वह बुद्धि शोकसे इसप्रकार ढक रही है, कि इस समय हम उसको जगा रहेहैं ॥ १८ ॥ हे इक्ष्वाकुप्रवर ! आप अपना दिव्य और मानवी पराक्रम विचार शत्रुसंहार करनेमें यत्न कीजिये ॥ १९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपको समस्त लोकोंके संहार करनेका क्या प्रयोजनहै ? आप उसी अपने शत्रुको जानकर उसे विध्वंसकर सीताको बचाइये ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मी०आदि०आरण्यकांडे भाषायां षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७.

लक्ष्मणजीके इसप्रकार अतिशय सारगर्भ सुन्दर वचन कहने पर सारके ग्रहण करनेवाले महाबाहु रामचन्द्रजीने उनको ग्रहण किया ॥ १ ॥ तिसके पीछे वह अपना बढा हुआ क्रोध शान्तकर विचित्र धनुष धारण करकै लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ २ ॥ हे वत्स ! हम इस समय कहां जांय क्या करैं और किस उपायसे जानकीको प्राप्त होवैं ? सो तुम इसका विचार करो ॥ ३ ॥ तब लक्ष्मणजी अति संतापित रामचन्द्रजीसे बोले कि इस जनस्थानकोही ढूँढना और खोज करना आपको उचित है ॥ ४ ॥ बहुत सारे राक्षसों करकै समाकीर्ण और विविध भाँतिके लता वृक्षोंसे युक्त इस जनस्थानमें अनेक गिरि गुहा कंदरा ॥ ५ ॥ पत्थरोंकी चट्टाने और अनेक जाति वाले मृगगणोंसे पूर्ण गुफायें किन्नर व गन्धर्व गणोंके फिरनेके स्थान और भवन जहां बहुत सारे हैं ॥ ६ ॥ सो आप हमारे सहित सावधान होकर इन सब जगहको ढूँढ लीजिये, आपकी समान बुद्धिसम्पन्न

महात्मा पुरुषोत्तम ॥ ७ ॥ आपदके समय कभी नहीं बिचलते, जैसे वायुके वेगसे पर्वत नहीं कांपते, यह सुन श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके साथ समस्त वन खोजा ॥ ८ ॥ उस समय श्रीमचन्द्रजीने बडा कोप करकै पैनी धारवाला भयंकर बाणभी धनुषपर चढायाथा, वहां जाते २ पर्वतकी समान आकारवाले बडे भाग्यवान् पक्षिश्रेष्ठ ॥ ९ ॥ जटायुको पृथ्वीपर पडा और रुधिरसे लिपटा हुआ देखा उसको पर्वतकी शृङ्गकी समान आकारवाला देख श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ इसमें कुछ संशय नहीं है कि इस गृध्ररूपी वनचर निशाचरनेही जानकीको भक्षण कर लियाहै,बस यह ठीकही ठीक जान पडता है यह राक्षस गृध्र बना-वनमें घूमताहै ॥ ११ ॥ यह राक्षस उन विशालाक्षी सीताजीको भक्षण करकै यथासुखसे विश्राम कर रहाहै । इस कारण हम सीधे चलनेवाला अग्निके समान प्रकाशमान भयंकर बाणोंसे इसका संहार करैंगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजी यह कहकर क्रोधित हो समुद्रप न्त पृथ्वीको कँपाते हुये धनुषपर तीक्ष्ण बाण चढाय उसके देखनेको चले ॥ १३ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज जटायु सफेन रुधिर उगलता हुआ अतिशय कातर वचनोंसे उन दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीसे बोला॥ १४॥ आयुष्मान्! तुम औषधिकी समान जिनको इस महावनमें खोजते हो, वह देवी जानकी और हमारे प्राण दोनोंही रावणने हरलियेहैं॥ १५॥हे रघुनंदन! महाबलवान् दशानन आपके और लक्ष्मणजीके आश्रममें न रहनेपर सूनेसे जानकीको हर ले जाता हुआ हमने देखाहै॥ १६॥उस समय हमने सीताजीको छुटानेके लिये सन्मुख हो युद्ध करकै उसके रथ और छत्रको तोड डाला तब रावण पृथ्वीमें गिरा॥ १७॥ यह जो धनुष और बाण टूटे हुये पडे हैं यह उसकेही हैं और रामचंद्रजी ! यह उसकाही संग्राममें काम देनेवाला रथहै । जो टूटा हुआ पडाहै ॥ १८॥ और यह सारथीभी उसीका है जो हमारे पंखोंके प्रहारसे मरकर पृथ्वीपर पडाहै जब हम बूढे होनेके कारण लडते २ थक गये तब राक्षसनाथ रावणने खङ्ग से हमारे पंख काट डाले ॥ १९॥ और सीताजीको लेकर आकाशमार्गमें चला गया, प्रथम तो हम रावणकरकै मारेही गये हैं, सो इस समय हमारा वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी गिद्धके मुखसे सीताजीके विषयक प्रिय वचन सुनतेही महाधनुषको त्याग करके आलिंगन करलेते हुए ॥ २१ ॥ और शोकसे अवश हो पृथ्वीमें गिरकर लक्ष्मणजीके सहित रोदन करने लगे। यद्यपि श्रीरामचंद्रजो महावीर थे

तथापि दूना संताप पाकर बहुत व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ उसकाल जटायुको एकान्तमें पडे वारंवार ऊंची श्वास लेते हुये देख शोकसे आतुर हो श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २३ ॥ हम राज्यसे भ्रष्ट हुये वनमें वास हुआ, सीताजी हरी गईं और जटायुकी मृत्यु होगई हमारे खोटे कर्मसे उपस्थित हुई यह विपत्ति अग्निकोभी भस्म कर सकतीहै ॥ २४ ॥ हम अपने भाग्यकी क्या बात कहैं ! हम इस दुःखके संतापसे शान्ति पानेके लिये तलहीन तटहीन महासागरकोभी उतरैं ! तो वह सरित्स्वामी समुद्रभी निश्चयही हमारे दुर्भाग्यके प्रभावसे एक वारही सूख जायगा ॥ २५ ॥ सचराचर लोकोंमें हमसा अधिक मन्दभाग्य और कोई नहीं है क्योंकि हमने इतनाबडा दुःखका जाल पाया है ॥ २६ ॥ यह महाबली गिद्धराज हमारे पिताके प्रिय सखाहैं, सो यहभी हमारे भाग्यके फेरसे घायल होकर पृथ्वीपर शयन कररहेहैं * ॥ २७ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारके अनेक वचन कहते लक्ष्मणजीके सहित पिताकी समान स्नेह दिखातेहुये जटायुको स्पर्श करते हुये ॥ २८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी पंख कटे रुधिरमें डूबे गृध्रराज जटायुको चिपट कर "हमारी प्राणप्रिया मैथिली कहां गई है" यह कहकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २९ ॥

इ० श्रीम० वा० आ० आरण्यकाण्डे भाषायां सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८.

श्रीरामचंद्रजी भयंकर राक्षसके प्रहारसे पृथ्वीपर पडे हुये जटायुको देखकर परमबंधु सुमित्रापुत्रसे कहते हुये ॥ १ ॥ निश्चयही यह पक्षी हमारेलिये यत्न करके हमारेही लिये राक्षससे मारे जाकर अब प्राणत्याग करते हैं ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! इनका बोल धीमा पडगया और दृष्टिहीन हो आईहै और प्राणभी अति

---

* सवैया ॥ दीन मलीन अधीन है अंग विहंग परचो क्षिति खिन्न दुखारी ॥ राघव दीन दयालु कृपालु को देख दुखी करुणा भइभारी ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि नैन सरोजनमें भरिवारी ॥ बार हि बार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटानसों झारी ॥ १ ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि निहारैं और नैननसों जल डारें ॥ टूक हो जाते हैं सीताविथाके जो याकी स्नेहकथाको विचारैं ॥ छोड चलै केहि हेतु हमें हमें सोंह निहारिहै संग सिधारै ॥ यों कहि राम भरे जल नैन जटायुकी धूरि जटानसों झारैं ॥ २ ॥

मात्र व्याकुल होकर कुछेक इनकी देहमें टिक रहेहैं॥ ३॥हेजटायु ! तुम्हारा कल्याणहो, यदि फिर तुममें कुछ बोलनेकी शक्ति हो तो सीताहरणका वृत्तान्त और तुम कैसे मारे गये, यह सब कह दीजिये॥ ४॥ और रावणने किसनिमित्त आर्या जानकीको हरण किया और हमने उसका क्या अपराध कियाथा, जो वह हमारी प्राणप्यारीको हरण करके लेगया ॥ ५ ॥ हे विहंगवर ! हरणके समय जानकीका वह पूर्ण शशिसदृश मनोहर मुखमंडल कैसा हो गयाथा ? और उन्होंने उस समय क्या कहा था ॥६॥ उस राक्षसराज रावणका वीर्य, रूप और कर्म किसप्रकारकाहै । हे तात ! उसका निवास कहांपरहै ? जो हम पूछतेहैं सो सब बता दीजिये ॥ ७ ॥ तब धर्मात्मा जटायु लडखडाती वाणीसे विलाप करते व पूछतेहुये श्रीरामचन्द्रजीसे यह वचन बोला ॥ ८ ॥ राक्षसोंके राजा दुरात्मा रावणने वायु और दुर्दिन (जब कि आकाशमें बादल आजातेहैं) कारिणी महामायाका आश्रय करकै सीताका हरण कियाहै ॥ ९ ॥ हे तात ! जब हम लडते २ बहुत थकगये; तब निशाचर हमारे दोनों पंख काट सीताको ग्रहण करकै दक्षिण दिशाको चलागया ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! अब हमारे प्राण रुकतेहैं और दृष्टिभी भ्रमित होतीहै और हमको सब वृक्ष सुवर्णके दिखाई देतेहैं, मानो सब वृक्ष अपने शिरके केशोंमें खश और फूलोंकी माला पहर रहेहैं ॥ ११ ॥ रावण जिस मुहूर्तमें सीताको हर लेगयाहै; उस मुहूर्तमें धनका स्वामी अपना बहुत दिनका नष्ट (खोया हुआ) धनभी शीघ्रही प्राप्त करलेताहै, अर्थात् इस मुहूर्तकी खोई चीज शीघ्र मिल जातीहैं ॥ १२ ॥ इस मुहूर्तका नाम विंदहै, इस मुहूर्तकी खोई हुई वस्तु शीघ्र मिल जातीहै, सो रावण इसको नहीं जानताहै, हे राम ! इस कारण वंशीका मांस ग्रहण करनेसे काली मछलीके समान शीघ्र उसका विनाश होगा ॥ १३ ॥ इस मुहूर्तमें खोई हुई वस्तुही नहीं मिलती किन्तु शत्रुका नाशभी होताहै, तुमभी श्रीजानकीजीके प्राप्त होनेके विषयमें और कुछ संदेह न करो । रावणको संग्राममें मारकर शीघ्रही सीताके सहित विहार करनेको तुम समर्थ होंगे ॥ १४ ॥ तिसके पीछे रामचन्द्रजीके साथ संभाषण करनेवाले सावधान चित्त मरनेके निकट गिद्धराज जटायुके मुखसे मांसयुक्त रुधिर बहनेलगा ॥ १५ ॥ उस समय जटायुने रावण विश्रवाका पुत्र, और कुबेरका भाईहै केवल इतनाही कहकर दुर्लभ प्राण त्याग करदिये ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोडे बोलिये ! बोलिये ! इसप्रका

रसे कहने लगे उसी समय उनके सामनेही जटायुके प्राण शरीरको त्याग करकै आकाशको चलेगये ॥ १७ ॥ उस समय गिद्धराज चरणयुगल फैलाय अपना शरीर फटफटाय भूमिमें शिर गिराय पृथ्वीमें गिरपडे ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पर्वत-समान बडे आकारवाले ताम्रवत् रक्तनेत्र गृध्रको मरा हुआ देखकर दुःखितहो लक्ष्म-णजीसे बोले ॥ १९ ॥ राक्षसोंके वसनेयोग्य दंडकारण्यमें बहुत वर्षोंसे यह जटा-युजी रहतेथे, सो आज उन्होंने देह त्याग करदिया ॥ २० ॥ इस प्रकार यह अने-क वर्षतक जीवितथे, वह आज निहत होकर पृथ्वीमें शयन कर रहेहैं,हम समझे कि कालको उल्लंघन करना सहज नहीं है ॥ २१ ॥ लक्ष्मण ! देखो ये गृध्र हमारा कै-सा उपकारी है, सीताजीको उद्धार करनेमें तैयार होकर बली रावण दुरात्माकरकै यह मारे गयेहैं ॥ २२ ॥ और हमारे निमित्त पितृपितामहप्राप्त महत् राज्य परित्याग करकै इनगृध्रराजने प्राण छोडेहैं ॥२३॥ हम जानतेहैं कि सभी जातियोंमें शूरता युक्त शरण देनेवाले धर्माचरण करनेवाले साधु देखे जातेहैं सो मनुष्यादिके सिवाय पक्षिआदि तिर्य्यग्योनिमेंभी ऐसे लोग देखेजातेहैं ॥ २४ ॥ हे सौम्य ! हमारेही लिये इस गृध्रने प्राण छोडेहैं इसलिये इसकी मृत्युसे सीताके हरणसेभी अधिक हम-को दुःख हुआहै ॥ २५ ॥ महा यशस्वी श्रीमान् राजा दशरथजी जिस प्रकारसे हमारे पूजनीय और माननीयहैं परोपकार करने और पिताजीका सखा होनेसे यह विहंगम श्रेष्ठभी हमको वैसेही हैं ॥ २६ ॥ हे सुमित्रानंदन ! तुम काठ ले आओ हम अग्नि उत्पन्न करकै हमारे लिये प्राण दिये हुए इन गृध्रराजका दाह करेंगे ॥ ॥ २७ ॥ हे लक्ष्मण ! यह जटायु पक्षियोंके राजा,और घोर कर्म करनेवाले राक्ष-सके हाथसे मारेगये हैं, हम इनको चितापर रखकर दाह करेंगे ॥ २८ ॥ यज्ञशील और आहिताग्नियोंकी जो गति होती है, समरसे पराङ्मुख न होनेवाले, और भूमि-दान करने वाले पुरुषोंकी जो गति होती है ॥ २९ ॥ हे महाबलवान् गृध्रराज ! तुम हमकरकै संस्कृत और हमारीही आज्ञासे उन सब श्रेष्ठगतियोंको प्राप्त होवो ॥ ॥ ३० ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकारसे यह कहकर दुःखित हो अपने बंधुकी समान पक्षिराज जटायुको जलती हुई चितामें चढाकर दाह करते हुए ॥ ॥ ३१ ॥ फिर वह महायशस्वी वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी के साथ वनमें गये और बडे आकारवाले मृगोंका वधकर उनका मांस ले फिर वहां आये जहां जटायुको दाह कियाथा। वहां आ जटायुको पिंड देनेके लिये तृण फै-

लाये ॥ ३२ ॥ और उस समस्त मांसके टुकडे २ कर डाले और उनके पिंड बना उनको हरी घासपर रख जटायुके अर्थ प्रदान किये॥ ३३॥ब्राह्मणलोग प्रेत पुरुषकी स्वर्ग प्राप्ति होनेके लिये जिन मंत्रोंका जप किया करते हैं, श्रीरामचन्द्रजी जटायुको शीघ्र स्वर्ग प्राप्त करानेके लिये उन्ही समस्त मंत्रोंका जप करनेलगे ॥ ३४॥ तिसके पीछे राजकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनोंजन गोदावरीनदीपर जाकर जटायुके लिये तर्पण करते हुए ॥ ३५ ॥ वह दोनों जन स्नान करकै शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जटायुको जल देकर पिंड व तिलाञ्जलि देते हुए ॥ ३६ ॥ गृध्रराज जटायु दुष्करकार्य करते हुए युद्धमें मारे जाकर और महर्षिसदृश श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे संस्कारित्त हो परमपवित्र पुण्यगतिको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ तब राम और लक्ष्मण दोनों जन जलादिक्रिया समाप्त करकै पक्षिश्रेष्ठ जटायुके प्रति पितृबुद्धि स्थापित कर वहांसे प्रस्थान करते हुए और सीताजीके खोजनेमें मन लगा कर सुरश्रेष्ठ विष्णु और इन्द्रजीकी समान वनमें प्रवेश करतेहुए ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां अष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९.

जब पक्षिराज जटायुकी जलक्रिया होचुकी तब श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनों वहांसे चलकर वनमें सीताजीको ढूँढते भालते हुए पश्चिमदिशाकी ओर चले ॥ १ ॥ और धनुष बाण खड्ग हाथमें लेकर दोनों भ्राता जिस मार्गमें तबतक कोई मनुष्य नहीं गयाथा, उसी पश्चिम दक्षिण कोणवाले मार्गको चले ॥ २ ॥ उस मार्गमें अनेक प्रकारके झाड वृक्ष वल्ली लता आदि लगनेके कारण वह चारोंओरसे घिर रहाथा, इसी कारणसे वह अतिभयानक वा दुर्गम बोध होताथा ॥ ३ ॥ उस मार्गमें होकर फिर वह महाबलवान् दोनों रघुवीर दक्षिणदिशाकी ओर बडी वेगसे महावनमें होकरकै चले ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे जाते २ जनस्थानसे तीन कोश दूर क्रौञ्चनामक घनें वनमें पहुँचे ॥ ५ ॥ यह वन अतिशय दुर्गम देखनेमें बहुत सारे मेघोंकी समान महाघनाथा, अनेक प्रकारके सुन्दर फूलोंके खिले रहनेसे मानों वह सब भाँतिसे हर्षपूरितथा और मृग व पक्षीभी उसमें बहुत थे ॥ ६ ॥ दोनों भ्राता सीताजीके हरणसे दुःखित हो और उनके दर्शनकी कामनासे वह वन ढूँढते २ शान्तिके वश स्थान २ पर खडे हो जाने लगे ॥ ७ ॥ फिर

वह पूर्वकी ओर तीन कोश चलकर क्रौंचारण्यको नांघकर मातंगमुनिके आश्रमको देखते हुए ॥ ८ ॥ उस आश्रमका वन महाभयंकरथा और भयंकर स्वभाववाले अनेकजातिके मृग और पक्षीभी वहां बहुतथे, और अनेक प्रकारके वृक्षोंसे घिरे रहनेके कारण वह वन बडा घनाथा ॥ ९ ॥ फिर उस वनमें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीने पातालकेसिमान गहरी एक गिरी गुफा देखी, इस गुफामें नित्यही अंधकार रहताथा ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीने उसके निकट पहुँचकर उसमें भयंकर आकारवाली और विकृत वदन एक राक्षसीको देखा ॥ ११ ॥ राक्षसी देखनेमें अति भयंकरीथी, खाल अति कडीथी थोडे पराक्रमियोंको बडा भय देनेवाली भयंकर क्रूरतायुक्त लम्बा पेट तीक्ष्ण डाढेंबडी विकराल ॥ १२ ॥ स्वभाव अति भयंकर था बडे २ मृगोंको वह भक्षण करती, रूप बडा भयावना शिरके बाल खुले, ऐसी उस राक्षसीको दोनों भाइयोंने देखा ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह निशाचरी रामचंद्रजीके आगे खडे हुये लक्ष्मणजीके निकट आकर कहने लगी कि "आओ हम तुमसे विहार करें" ऐसा कहकर उसने लक्ष्मणजीको ग्रहण किया ॥ १४ ॥ और वह राक्षसी उनको चिपटाकर कहनेलगी कि, हे नाथ ! हमारा अयोमुखी नाम है, अब तुमको परम लाभ हुआ और तुमही हमारे प्यारे हुये ॥ ॥ १५ ॥ हे नाथ ! हमारे सहित सब जीवनतक नदियोंके किनारोंपर और नानाप्रकारके पर्वतोंपर तुम विहार किया करना ॥ १६ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले लक्ष्मणजीने इस बातसे क्रोधित होकर खड्ग उठाकर उस राक्षसीके नाक कान व स्तन काटडाले ॥ १७ ॥ जब उसके कान नाक व स्तन काट डाले गये तब वह घोर दर्शनवाली राक्षसी विकट शब्दसे चिल्लाकर शब्द करतीहुई जहाँसे आईथी वहां को दौडी ॥ १८ ॥ जब वह वहांसे भाग गई तो महातेजवान शत्रुओंके मारनेवाले श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाई वेगसहित चलतेहुए एक गहन वनमें पहुँचे ॥ १९ ॥ वहां पहुँचकर सत्यवक्ता, शीलवान् पवित्र स्वभाव और परम तेजस्वी लक्ष्मणजी हाथ जोडकर तेजसे प्रदीप्तमान श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ २० ॥ हे भ्रातः ! हमारा बांया हाथ जलदी २ फडकताहै और मन मानो बहुत उकसाताहै और प्रायः दुर्लक्षणभी बहुत दृष्टि आतेहैं ॥ २१ ॥ इस्से हे आर्य ! आप सज करके तैयार होरहैं; और हमारी बात सुनें यह सब अपशकुन स्पष्टही कहे देतेहैं कि, भय आयाही चाहताहै ॥ २२ ॥ परन्तु विजय हमारी अवश्य होगी । क्योंकि यह अतिभयानक

वञ्चुलक पक्षी मानों हमारी युद्ध विजय कहता हुआ शब्द कर रहाहै ॥२३॥ फिर जब महातेजस्वी श्रीराम लक्ष्मणजी उस समस्त वनको ढूँढ रहेथे कि इतनेमेंही एक विपुल शब्द मानो उस वनको विध्वंस करता हुआ होने लगा ॥ २४ ॥ उस वनमें एकाएकी प्रचंड पवन चलने लगा और इस वायुके चलनेसे वृक्ष परस्पर टकराने लगे । तब उसमेंसे एक शब्द समस्त वनको शब्दायमान करता उत्पन्न हुआ ॥२५॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित खड्ग धारण करके "यह शब्द कहांसे हुआ" यह जाननेके लिये अभिलाषी होकर इधर उधर देखतेथे कि चौडी छातीवाला बृहदाकार एक राक्षस सहसा देखपडा ॥२६॥ उसका पेट बहुत बडा व नाम उसका कबन्धथा, वह श्रीरामचंद्रजीके आगे आनकर खडा होगया, उसका मस्तक और गर्दन नहींथी शरीर बहुत बडाथा, मुख पेटमें था ॥ २७ ॥ रुवें भालेके समान तीखे और सीधे थे आकार उसका महापर्वतकी समान ऊंचाथा स्वर मेघके गर्जनेकी तुल्य, रंग नीले मेघकी समान, व स्वभाव और आकार उसका बडा भयंकरथा ॥ २८ ॥ और उसका एक नेत्र माथेमेंथा यह अग्निकी ज्वालाके समान प्रदीप्त और बडी २ धूमिली पलकें इसपर थीं और यह नेत्र बडाभी बहुत था ॥२९॥ और उसका दूसरा नेत्र छातीमें था यह नेत्र अतिशय भयंकर और तीक्ष्ण दिखावका था, उसका मुखभी बडा भारीथा और उसके मुखमें बडे २ दांतोंकी पंक्तियां थीं वह उस मुखके मानो लीलेही लेताथा होट चाटरहाथा ॥३०॥ और वह अपनी चार २ कोशकी लंबी दोनों बांहोंसे पकड २ ऋक्ष, सिंह, मृगादिकोंको भक्षण करता चला आताथा ॥ ॥ ३१ ॥ वह अपनी दोनों बांहोंसे विविधप्रकारके मृग, पक्षी, ऋक्ष और मृगयूथोंको पकडता और अपने मुखमें छोडताथा ॥ ३२ ॥ जिस मार्गसे होकर राम लक्ष्मणजीको जानाथा, वह उसीको रोकेहुये पडाथा, तब राम लक्ष्मणजीने घूमकर एक कोश पर जाकर देखा तो ॥ ३३ ॥ अति घोरदर्शन दारुण भयंकराकार बडे शरीरवाला कबन्ध दिखलाई पडा वह अपनी दोनों भुजाओंसे जीवजन्तुओंको सब प्रकारसे पकडताथा और उसके शरीरकी गठन देखनेसे ठीकही वह कबंध ज्ञात होताथा ॥ ३४ ॥ फिर महाबलवान् कबन्धने दोनों बडी २ बाँहें फैलाकर राम और लक्ष्मण दोनोंकोही बलसे पीडन करके दोनोंको एक साथही ग्रहण करलिया ॥ ३५ ॥ दृढ धनुष और खड्ग धारण किये हुए तीव्र तेजमान् महाबलवान्, महाबाहु, वह दोनों भ्राता कबन्धसे खेंचे जाकर अवश होगये ॥

॥ ३६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तौ स्वभावसेही धैर्यवान् और शूरतासंपन्न थे, वह तौ कुछभी व्याकुल न हुये, परन्तु लक्ष्मणजी बालक और अनाथ होनेके कारण एक-वारही महा व्याकुल होगये ॥ ३७ ॥ और शोककरके राघवनंदन बडे भ्राता श्री रामचन्द्रजीसे बोले कि हे वीर ! देखो हम विवश होकर राक्षसके वश हुयेहैं ॥ ॥ ३८ ॥ इसकारण एक मात्र हमकोही देकर आप छूट जाइये । और हमें इस-राक्षसके आगे बलिकी भांति देकर यथा सुखसे आप भाग जाइये ॥ ३९ ॥ काकुत्स्थ राम ! हम निश्चयही समझतेहैं कि आप शीघ्रही वैदेहीको प्राप्त होंगे और पिता पितामहका राज्यभी शीघ्रही आप करेंगे ॥ ४० ॥ अब इससमय यही प्रा-र्थना है कि आप राज्यपदपर प्रतिष्ठित होकर आप सदाही हमको स्मरण करते रहा कीजिये जब लक्ष्मणजीने इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजी उनसे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे वीर ! वृथा भीत न हूजिये तुमसरीखे पुरुष कभी व्यथित नहीं होतेहैं, दोनों भाइयोंसे इसी समय वह क्रूर ॥ ४२ ॥ महाबाहु, दानवश्रेष्ठ कबन्ध कहनेलगा कि तुम्हारे कंधे बैलोंकी समान ऊँचेहैं और हाथमें तुमने बडे २ धनुष और खड्ग धारण कियेहैं, सो बताओ कि तुम कौनहो ? ॥ ४३ ॥ तुम लोग भाग्यसेही इस भयंकर देशमें आकर हमारे नेत्रोंके सन्मुख पडेहो तुम्हारा यहांपर क्या कार्यहै और तुम किस कारणसे यहांपर आयेहो सो कहो ॥ ४४ ॥ हम भूखे होकर यहांपर टिक रहेहैं सो तुम धनुष बाण और खड्ग धारण किये हुये तेज सींगवाले बैलकी स-मान यहांपर हमारे मुखमें आय पडेहो ॥ ४५ ॥ परन्तु अब हमारे मुखमें पड तुम्हा-रा जीवित रहना दुर्लभ है दुरात्मा कबंधके यह वचन सुनकर ॥ ४६ ॥ श्रीरामच-न्द्रजी वदन सुखाकर लक्ष्मणजीसे बोले कि हे सत्यविक्रम ! प्रिया सीताजीके हर-णसे विषम विपद आपडी है, सो इससे निश्चयही प्राण संहार होनेकी संभावनाहै तिसके ऊपर फिर वारंवार यह कष्टके ऊपर कष्ट पड रहेहैं ॥ ४७ ॥ अबतो यह महादुःख हमको प्राप्त हुआ है, अब प्रियाके पानेकीभी आश त्याग करैं । हे लक्ष्म ण ! सब प्राणियोंमें कालका बडा वीर्य दिखलाई देता है ॥ ४८ ॥ हे नरश्रेष्ठ ल-क्ष्मण ! देखो हम तुम दोनों कालकेही प्रभावसे कैसे दुःखमें पडे हैं,प्राणियोंको दुःख देनेमें कालको कुछभी डर नहीं है ॥ ४९ ॥ कालके वश हो बडे शूरवीर अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले पुरुषभी रेतेस्रे बनाये हुये पुलकी समान संग्राममें खस जातेहैं ॥

॥ ५० ॥ सत्य और अनतिक्रमणीय दृढविक्रमसम्पन्न, प्रतापवान् महायशस्वी दशरथनंदन बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीको देख ऐसा कहते २ ज्ञानके प्रभावसे अपने चित्तको स्थिर किया ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा०वा०आदि०आरण्यकाण्डे भाषायां एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥६९॥

सप्ततितमः सर्गः ७०.

श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण इन दोनों भाइयोंको अपनी बाँहोंकी फांसीमें बँधाहुआ वहां खडा देख कबन्ध उनसे बोला ॥ १ ॥ अरे क्षत्रियश्रेष्ठ ! दोनों जन ! हम भूखे हुए हैं, विधाताने तुम दोनोंको चेतनारहित करकै हमारे खानेको भेजदिया है । इसलिये हमको देख अब तुम क्या राह देख रहे हो तैयार होवो ॥ ॥ २ ॥ उसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजी दुःखित व विक्रमप्रकाश करनेमें कृत निश्चय होकर उस कालके अनुसार वाक्य श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ कि यह राक्षसाधम हम दोनोंही जनको पकडे हुआ है इसकारण आइये हम.अभी दो खड्गोंसे इसके बडे भारी दोनों हाथ काट डालें ॥ ४ ॥ यह बडे आकारवाला भयंकर राक्षस केवल अपनी भुजाओंकीही सहायतासे सब लोकोंको सर्वप्रकारसे जीत अब हम तुमको मारनेके लिये तैयार हुआ है ॥ ५ ॥ परन्तु हे राजन् ! यज्ञमें आये हुए छागोंकी समान चेष्टा रहित होकर मरना क्षत्रियोंके लिये बहुतही निंदाकी बात है ॥ ६ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीकी ऐसी वार्ता सुन निशाचर कबंध क्रोधित होकर मुँहवाय उनको भक्षण करनेके लिये तैयार हुआ ॥७॥ तब देश और कालके जाननेवाले श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भ्राताओंने खड्ग ग्रहण करकै उसकी दोनों भुजायें कन्धेपरसे काटडालीं ॥ ८ ॥ चतुर श्रीरामचन्द्रजीने उसकी दाहिनी भुजा और वीर्यवान् लक्ष्मणजीने उसकी बांई भुजा शीघ्रतासे काट डाली ॥९ ॥ जब बाहें काट डाली गईं तब भयंकर शब्द करता हुआ महाबाहु कबन्ध मेघकी समान घोर शब्द करकै गगनमण्डल और दशों दिशाओंको अपने शब्दसे भर देता हुआ गिरपडा ॥१०॥ फिर अपनी दोनों भुजाओंको कटाहुआ देखकर दानव कबंध रुधिरसे डूबाहुआ दोनों भाइयोंसे बोला कि, तुम कौनहो ? ॥ ११ ॥ जब कबन्धने इस प्रकारसे पूछा तब महाबलवान् शुभ लक्षणयुक्त काकुत्स्थ लक्ष्मणजी कबंधसे रामचन्द्रका परिचय देतेहुए बोले ॥ १२ ॥ यह इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए हैं

और श्रीरामनामसे यह लोकमें विख्यात हैं और हम इनके छोटे भाई हमारा नाम लक्ष्मण है ॥ १३ ॥ सौतेली जननी कैकेयीकरके इनकी राज्यप्राप्ति रोकी जाकर सर्व त्यागी करा यह वनको पठाये गये सो यह हमारे और अपनी भार्याके साथ वनमें विचरण करतेथे ॥ १४ ॥ कि वनमें वास करनेके समय इन देवतुल्य प्रतापशाली श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या हरी गई हैं सो उनको ही ढूँढते २ हम लोग यहांपर आये हैं ॥ १५ ॥ और तुम कौन हो? जो कबन्धकी समान वनमें घूमते हो! तुम्हारी जांघ टूटी हुई हैं और अति शय दीप्तयुक्त वदनमंडल छातीमें लगा हुआ है ॥ १६ ॥ जब लक्ष्मणजीने ऐसा कहा तब इन्द्रके वचनका स्मरण करताहुआ कबन्ध प्रसन्न होकर बोला ॥१७॥ कि आपलोग दोनोंही पुरुषोंमें श्रेष्ठहैं। आप अच्छी तरहसे तो आये आज भाग्यसेही हमने आप लोगोंको देखाहै और आपने जो हमारे बंधनरूप हाथ काटडाले सो यहभी हमारे बडे सौभाग्यकी बातहै इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥१८॥ जिसभाँतिसे हमारा इस विरूपताका रूपथा, व जिस ऊधमसे हम इस कुरूपताको प्राप्त हुये सो सब ज्योंका त्यों कहतेहैं आप श्रवण करें॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषायां सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१.

हे महाबाहु श्रीरामचंद्रजी! पूर्वकालमें हमारा रूप अत्यन्त सुन्दर अचिन्तनीय ऐश्वर्य महाबल व पराक्रमयुक्त और तीनों लोकोंमें विख्यातथा ॥ १ ॥ और सूर्य चंद्रमा व इन्द्रके शरीरकी समान हमाराभी रूप था, सो ऐसा रूप धारण कर हम तीनों लोकोंको डरपाने लगे ॥ २ ॥ हम घूम २ कर वनवासी ऋषिलोगोंको भयभीत करतेथे एक समय जाते २ हमने स्थूलशिरा नामक महर्षिको कोपित कराया ॥ ३ ॥ वे महर्षिजी विविधभाँतिके वनके फूल फलादि इकट्ठे कर रहेथे कि, हमने अपने रूपके गर्वसे उनको धिक्कारा और क्रोधित कराया तब उन्होंने हमारी ओर देख अति घोर शाप दिया ॥ ४ ॥ कि जाओ मूर्ख! तुम्हारा रूपभी हमारेहीसा कुरूप होजायगा, जब हमने क्रोधयुक्तहो उनको शापदेते हुये देखा तो शापके उद्धारके लिये प्रार्थना की, कि इनका निवारण कब होगा ॥ ५ ॥ तब शापके अन्त होनेके लिये उन्होंने कहा कि, जिस समय श्रीरामचंद्रजी तुम्हारे हाथ काट डालेंगे और विजन वनमें तुमको फूँक देंगे ॥ ६ ॥ बस उसी समय तुम

अपना सुविपुल और मनोहर रूप प्राप्त करलोगे, सो हे लक्ष्मण ! हम दनुके श्रीमान् पुत्रहैं ॥ ७ ॥ संग्राममें इन्द्रजीके शापसे यह कबंधकासा रूप हमने पायाहै उसका ठीक २ वृत्तान्त यह है कि आगे हमने अत्युग्र तप करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तब उन्होंने हमको दीर्घायु प्रदान की तिसके पीछे हमारे चित्तमें भ्रम हुआ और जिससे हमने गर्वित होकर विचारा कि, इन्द्र हमारा क्या कर सकते हैं क्योंकि अब तौ हमने दीर्घायु पालीहै ॥ ९ ॥ ऐसी बुद्धिमें स्थिर हो संग्राममें हमने इन्द्रको ललकारा तब उन्होंने अपना सौ धारका वज्र हमारे ऊपर छोडा जिसके लगनेसे॥ १० ॥ मस्तक कनपटी आदि सब अंग हमारे शरीरके भीतर पैठ गये । तिसके पीछे हमने अपनी मौत चाहीभी परन्तु उन्होंने हमें यमपुरको न भेजा ॥ ११ ॥ बरन् केवल उन्होंने इतनाही कहा कि, जाओ पितामह ब्रह्माजीका वचन सत्य होवे और तुम बहुत दिनोंतक जीवित रहो तब हमने उनसे कहा कि, आपका वज्र लगनेसे हम शिर कनपटी मुख आदि अंगोंसे रहित होगये फिर भला हम किस प्रकारसे बिना कुछ खाये पिये दीर्घ कालतक जीवन धारण करने में समर्थ होंगे ॥ १२ ॥ इस बातको सुनकर इन्द्रजीने कहा कि, बहुत अच्छा अब तेरी बाहें एक योजन लंबी हो जायँगी और दीर्घकालतक जीवितभी रहोगे ॥ ॥ १३ ॥ यह कहकर उन्होंने हमारे पेटमें बडे २ दांत सहित मुखभी बना दिया तबसे हम अपने बडे दोनों हाथ फैलाकर वनचरोंको पकड २ मुखमें डाल लेतेहैं॥ १४ ॥ उनमें सिंह व्याघ्र ऋक्ष आदि जो मिलते उनको पकड २ कर हम भक्षण किया करते थे, इन्द्रजीने फिर यहभी कहा था कि, जब श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी॥ १५॥ समरमें तुम्हारे दोनों हाथ काटेंगे तब तुम स्वर्गको जाओगे । तबसे हे राजसत्तम ! हम इसी शरीरसे इस वनमें ॥ १६ ॥ जिस २ को देखलेतेहैं उस २ को ग्रहण कर लेतेहैं, व यहभी हमको निश्चयथा कि इन्द्रके वचनानुसार कोई न कोई अवश्य हमको मिलता रहेगा ॥ १७ ॥ सदा अपना ऐसाही विचार रखतेहैं कुछ विशेष भ्रमभी नहीं करतेथे, सो इस समय हमने सत्य २ जाना कि, श्रीरामचन्द्रजी आपही हैं क्योंकि और कोई हमको नहीं मारसकता ॥ १८ ॥ क्योंकि महर्षिजीने जो कुछ कहा सो सत्यही हुआहै, इस कारण हे रामचन्द्रजी ! और तो हमसे कुछ नहीं हो सकता परन्तु हे नरश्रेष्ठ ! बुद्धिद्वारा आपकी कुछ सहायता कर सकेंगे ॥ १९ ॥

अर्थात् जब आप हमको अग्निमें जलादेंगे तब हम आपको एक मित्र बतावेंगे, जब इस प्रकारसे उस दनुके पुत्रने महात्मा धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे कहा तौ ॥ २० ॥ लक्ष्मणजीके सामने उससे श्रीरामचन्द्रजी बोले कि, रावणकरकै हमारी यशस्विनी भार्या सीताजी हरी गईहैं ॥ २१ ॥ हम उस समय भ्राताके सहित जनस्थानसे सुखपूर्वक कहींपर चले गयेथे, तब वह उनको हरण करके ले गयाथा हम उस राक्षस रावणका केवल नाममात्र जानतेहै, परन्तु उसका रूप ॥ २२ ॥ निवास व प्रभाव कुछभी नहीं जानते। केवल शोकसे आर्त हुये अनाथकी समान इसी भाँतिसे वन २ में घूमते फिरतेहैं ॥ २३ ॥ सो तुम हमारे ऊपर उपकार करकै हमारे ऊपर दया करो उसको बताओ और हाथियोंके दाँतोंसे टूटे हुये सूखे काठ बटोरकर तुमको ॥ २४ ॥ एक गढा खोद उसमें हे वीर ! हम तुमको जलादेंगे अब जो पुरुष सीताको हरण करकै जिस जगह लेगयाहै, सो समस्त हमसे कहो ॥ २५ ॥ यदि यथार्थही तुम इस बातको जानतेहो तौ इससे हमारा बडा मंगल हो जायगा, जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह दानवश्रेष्ठ ॥ २६ ॥ अच्छा बोलनेवाला श्रीरामचन्द्रजीसे बडी कुशलताके साथ कहनेलगा, हमको अभी दिव्यज्ञान नहींहै इस कारण यह नहीं जानते कि, जानकी कहांहै ॥ २७ ॥ परन्तु जो तुमको उन्हें बतावेगा, उसको हम तुम्हें बतावेंगे, आप हमें भस्म कीजिये फिर हम अपना पहला रूप प्राप्त करकै जो कि रावणको जानताहै उसको आपसे बतादेंगे ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! जिस महावीर्य राक्षसने आपकी सीताजीको हरण कियाहै सो विना भस्म हुये हम किसी प्रकारसेभी उनको न जान सकेंगे ॥ २९ ॥ हे राम ! पहले हमने बडा विज्ञानथा सो इस शापके प्रभावसे हमारा वह दिव्यज्ञान नष्ट होगया और हम अपनेही कर्मके दोषसे ऐसे संसारमें निन्दित रूपको प्राप्त हुयेहैं ॥ ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जबतक सूर्य भगवान्के घोडे थककर अस्ताचलको न चले जांय, क्योंकि अब अस्ताचलको जानाही चाहतेहैं तिससे पहलेही आप हमको गढेमें डालकर यथाविधिसे भस्म कर दीजिये ॥ ३१ ॥ हे महावीर रघुनंदन ! जब यथाविधिसे आप हमको गढेमें रखकर फूंक देंगे तब हम बतलावेंगे कि कौन रावणको जानताहै ॥ ३२ ॥ हे राघव हे वीर ! आप उस अच्छीवृत्तिवाले पुरुषके साथ मित्रता करलेना वह पराक्रमी वीर आपकी बडी

भारी सहायता करैगा ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! त्रिलोकीमें ऐसा कुछभी जिसको यह पुरुष न जानता हो वह प्रथम किसी बडेही कारणके वश होकर त्रिलोकीमें घूमाहै ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० आर० भाषायां एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२.

जब कबन्धने उन दोनों वीरशिरोमणियोंसे ऐसा कहा तब नरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीने पर्वतकी गुफामें लेजाकर उसको अग्नि देदी ॥ १ ॥ लक्ष्मणने बडी२ उल्काओंको प्रज्वलित करके चारों ओरसे अग्नि लगादी तब चिता भलीभाँतिसे जलने लगी ॥ २ ॥ तब कबन्धका घीके पिंडेकी समान चरबीसे परिपूर्ण बडा भारी शरीर अग्निसे धीरे २ जलने लगा ॥ ३ ॥ जब चिता जलकर रहगई तब महाबलवान् कबंध उसीसमय चिताको कंपायमान करता हुआ निर्मल वस्त्र और दिव्य माला धारण करके धुआँरहित अग्निके समान उसमेंसे निकला ॥ ४ ॥ और दिव्य कांतियुक्त शरीरसे वेगमें भर आनंदसहित उसी समय आकाशको गया उसके समस्त अंग प्रत्यंग गहनोंसे भूषितथे ॥ ५ ॥ तिसके पीछे वह अतिशय उजले हंसयुक्त यशस्कर विमानमें बैठकर अपनी शरीरकी प्रभासे दशों दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें उठ श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करके कहने-लगा कि हे रघुनंदन ! जिस उपायसे आप सीताको प्राप्त करसकेंगे वह रीति ठीक२ २ सुनो ॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय यह जो छैः युक्ति व उपायहैं, सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब बातोंका विचार करतेहैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ सो इसमें दुर्दशाके समय समाश्रय नामक जो उपायहै, उसका आश्रय करना कहाहै सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करतेहैं सो इस समय आप-कोभी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेका प्रयोजन हुआ है, क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर राज्यादिसे भ्रष्ट हुएहैं। और इसी कारणसे आपके ऊपर तुम्हारी स्त्रीका हरणस्वरूप महादुःखभी आनकर पडाहै ॥ ॥ ९ ॥ इस कारणसे हे राजवर ! आपको दूसरेके सहित जिसका परिवारभी बहुत हो; उससे अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमने भली भांतिसे सोच विचारकर देख

लियाहै कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥ ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानर है उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्रहै वालिहै; उस वालिने क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकालदियाहै ॥ ११ ॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूकपर्वतपर अपने चार वानरोंके सहित रहताहै यह ऋष्यमूक पर्वत चारों ओर पंपातक शोभित हो रहाहै ॥ १२॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महावीर्यवान्, महातेजस्वी, महादीप्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, नीतिशास्त्रका जाननेवाला, धारण-शक्तियुक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान् और महाबलपराक्रमयुक्तहै परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिने घरसे निकालदियाहै ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूँढने भालनेमें आपका सहायक और मित्र होगा। सो आप अब शोक करनेमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेटसकता, जो होनहारहै वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ ! कालकी गति बडी दुर्गमहै ॥ १६ ॥ इस कारणसे हे वीर ! आप शीघ्रही इस स्थानसे महापराक्-मवान् सुग्रीवके पास जाकर उससे मित्रता करलीजिये, हे रघुनंदन ! इसी समय आप चले जाइये॥ १७॥ प्रज्वलित अग्निके सन्मुख उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८॥ क्योंकि वह कृतज्ञहै कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेवालाहै, वीर्यवान् भी है और विशेषकरके इस समय स्वयंभी किसीकी सहायता चाहताहै सो आपभी उसके कार्यको करदेंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेवाला सुग्रीव सफल मनोरथ हो आप-का कार्यभी अवश्य करदेगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्यभगवान्से उत्पन्न हुआ है, इससे वह साधारण वानर नहींहै और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है ॥ २० ॥ वह सूर्य नारायणका औरसपुत्र वालिके संग वैर होनेके कारण दुःखित हैं, इससे आप अस्त्र शस्त्र अग्निके समीप धरकर ऋष्यमूक पर्वतपर बैठे हुए उस वानरनाथसे॥ २१॥ सत्यताके साथ मित्रताई कीजिये, हे राघव ! वह वानरश्रेष्ठ सब स्थानोंमें कपिकुंजरोंके साथ जाजाकर ॥ २२ ॥ फिर भली भांतिसे नरमांसके खानेवाले राक्षसोंकेभी लोकमें जासकताहै हे राघव। लोकमें ऐसा कोई स्थान नहीं जिसे सुग्रीव न जानता हो ॥ २३ ॥ हे शत्रुओंके तपानेवाले रघुनं-दनजी ! सहस्रकिरण सूर्य भगवान्की किरणें जहांतक पडती हैं, उतने बीचमें जि-तनी २ नदियां और बडे २ पर्वत व पर्वतोंकी गुफा हैं ॥ २४ ॥ समस्त जगतमें

जहां कहीं आपकी भार्या जानकीजी होंगी सो हे रघुनन्दन ! वह सुग्रीव ढुंढ-वायकर आपसे मिला देगा कारण कि, वह तुरंत सब दिशाओंमें बडे शरीरवाले वानरोंको पठावेगा ॥ २५ ॥ व तुम्हारे वियोगसे शोच करती हुई श्रीजानकीजीको वह रावणके घरमें हुई तौ वहांसेभी ढूँढ लाकर आपको मिला देंगे ॥ २६ ॥ अनाथा निंदारहित सीताजी मेरु पर्वतके शिखरके अग्रभागमें हों अथवा पातालमें निवास करती हों, कपिराज सुग्रीवजी वहीं जाकर राक्षसोंका नाश करके आपकी भार्या सीताको ले आवेंगे और आपसे मिला देंगे ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३.

कबन्ध इसप्रकारसे सीताजीके शोधका उपाय बताकर फिरभी श्रीरामचन्द्रजीसे यह अर्थयुक्त वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! यही वहांका कल्याणदायक मार्ग है जिधर यह फूले हुए मनोहर वृक्ष लगरहे हैं, जो यहांसे पश्चिमकी ओर दृष्टि आते हैं ॥ २ ॥ उन वृक्षोंमें जामुन, चिरोंजी, कटहर, वट, पाकर, तेंदू, पीपल, कठचंपा, आम आदि अनेक प्रकारके हैं ॥ ३ ॥ और धवई, नागकेशर, अगेथू, तिलक, किलवार, श्याम, अशोक, कदम्ब, कँदैल, यह सब पुष्पित वृक्ष लगे हैं ॥ ४ ॥ हरे २ अशोक, नींबके वृक्ष सब प्रकारके औरभी उत्तम २ वृक्ष हैं सो आप उनपर चढके अथवा बलसे हिलाकर फल भमिमें गिराकर ॥ ५ ॥ अमृत समान फल खाते पीते हुए दोनों चले जाओ, हे काकुत्स्थ ! उस फूले वृक्षद्वारा परिपूर्ण वनसे आप निकल जायँगे ॥ ६ ॥ तब और एक नन्दन और उत्तर कुरुदेशके समान वन मिलेगा, जिसमें सब कालमें फले ऐसे मीठे फलवाले वृक्ष भी लग रहे हैं ॥ ॥ ७ ॥ उस वनमें सब समयमें सब ऋतु चैत्ररथ वनकी समान विद्यमान रहती हैं, वह सब वृक्ष फलभारसे झुके हुए देख पडते हैं ॥ ८ ॥ वह सब मेघों और पर्वतोंकी समान शोभायमान होते हैं । वहांपरभी उनपर चढकर अथवा जोरसे हिला झुला भूमिमें गिराकर जैसा ठीक समझा जाय ॥ ९ ॥ अमृतकी समान फल वह वृक्ष आपको देंगे, इस भाँतिसे दोनों भ्राता पर्वतोंपर होते हुए इस वनमें जाय ॥ ॥ १० ॥ फिर पंपानामक सरोवरपर पहुँचोगे, यह सरोवरमें शिवार, शर्करा, (कंकर) और विछलनी भूमि नहीं है सब घाट बराबर बने हैं ॥ ११ ॥ हे राम !

उसमें रेती बहुत श्रेष्ठ है विविध भाँतिके कमल उसमें फूलते हैं, हंस, राजहंस, क्रौंच कुरर आदि पक्षी ॥ १२ ॥ पम्पाके जलमें पैरते हुए मनोहर शब्द बोलते हैं, वह मनुष्योंको देखकरभी नहीं डरते, क्योंकि पहले उन्हें किसीने कभी नहीं माराहै ॥ ॥ १३ ॥ हे श्रीरघुनंदन ! आप स्थूलशरीरवाले घीके पिंडकी समान इन पक्षियोंको और रोहित, चक्रतुंड व नल नामक मछलियोंको वहांपर भक्षण कीजिये ॥ ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जिनके पंख नहीं होते और बडे शरीर जिनके होते हैं, त्वक् और बहुत कांटों करकै युक्त ऐसी श्रेष्ठ मछलियोंको बाणोंसे मारकर और अग्निमें भूनकर आप पंपासर पर भक्षण कीजिये ॥ १५ ॥ इसके सिवाय लक्ष्मणजी आपके प्रति भक्तिके वश होकर वहांके कमलपुष्पोंमें विचरती हुई उक्त मछलियोंके समूह आपको देंगे ॥ १६ ॥ पंपाका जल कमलपुष्पोंकी सुगंधिसे युक्त रोग विहीन स्वास्थ्यकर सुशीतल, चांदी और स्फटिक मणिके समान निर्मलहै जिसके पीनेसे कोई भी क्लेश नहीं होता ॥ १७ ॥ उस समयमें लक्ष्मणजी पुरैनके पत्तोंका दोना बना वह जल लाकर आपको पिलावेंगे और बडे २ वन्दर पर्वतोंकी कन्दराओं और वृक्षोंके रहनेवाले ॥ १८ ॥ सन्ध्याके समय घमनेके कालमें लक्ष्मणजी आपको दिखावेंगे, वह बडे २ वानर जल पीनेके अर्थ बैलोंके समान शब्द करते हुये आतेहैं ॥ १९ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! फिर पंपापर बडे हृष्ट पुष्ट नीले पीले भी बहुतसे बन्दर वृक्षोंकी शाखा हाथमें लिये हुये सन्ध्याके समय विचरते आप देखेंगे ॥ २० ॥ पंपाका शीतल जल देखकर व पीकर आप शोक भूल जायँगे और वहां फूले हुये तिलक, नक्तमालक आदिक वृक्षहैं ॥ २१ ॥ और रघुनंदन वहांपर भांति २ के कमल भी फूल रहेहैं परन्तु उन पुष्पोंकी माला बनाकर पहरनेवाला वहांपर कोई पुरुष नहीं रहता ॥ २२ ॥ वह फूल न कभी मुरझातेहैं, न अपने आपसे गिरते हैं कारण कि, वहांपर मतंग ऋषिके चेले जो ऋषिलोगहैं, वह एकाग्रचित्त होकर वहां रहतेथे ॥ ॥ २३ ॥ वह सब शिष्य ऋषिलोग अपने गुरुजीके लिये वनके फल फूल लेने जाते हुये, बोझके मारे थकजानेपर उनके शरीरसे जो पसीनेकी बूंदें पृथ्वीपर गिर पडती थीं ॥ २४ ॥ वही २ स्वेदबिन्दु उस कालमें उनके तपके प्रभावसे होगये हैं हे रघुनंदन ! ऋषिलोगोंके पसीनेकी बूँदोंसे उत्पन्न होनेके कारण यह सब पुष्प अविनाशी होगयेहैं ॥ २५ ॥ यद्यपि सब ऋषिलोग वहांसे अन्तर्धान होगयेहैं परन्तु अबतक उनकी परिचारिका श्रमणी नामक शबरी वहांपर दृष्टि आतीहै ॥ २६ ॥

हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप साक्षात् देवताओंकी समान सब लोगोंके नमस्कार करने योग्यहैं नित्य धर्मपरायण श्रमणी आपको अवलोकन करकै स्वर्गको चली जायगी ॥ ॥ २७ ॥ हे काकुत्स्थनंदन ! जब आप पंपाके पश्चिम तीरपर जाँयगे तब महर्षि मतंगका अनेक आश्रमोंमें गुप्त आश्रम दृष्टि आवैगा ॥ २८ ॥ पृथ्वीमें यह आश्रम अतुलनीय है मतंग मुनिजीके प्रभावके वशसे हाथीभी इस आश्रम काननको नहीं खलबला सकते ॥ २९ ॥ इसीकारणसे वह वन मतंग वनके नामसे प्रसिद्ध हुआहै. हे रघुनंदन ! वह वन देवताओंके नंदनवनकी समान रमणीयहै ॥ ३० ॥ उसमें अनेक प्रकारके पक्षी सुहावनी बोली बोलते हैं वहां प्रवेश करकै आप अच्छी तरहसे विहार कर सकैंगे और पंपाके सामनेही वृक्षसमूहसे सुशोभित ऋष्यमूक पर्वतहै ॥ ३१ ॥ इस कठिनसे आरोहण करनेके योग्य पर्वतकी रक्षा छोटे सर्प किया करते हैं और यह पर्वत उदार ब्रह्माजी करकै पहले समयमें बनायागयाथा ॥ ३२॥ उस उदारपर्वतके शृंगपर जो पुरुष शयन करके स्वप्नमें जो धन प्राप्त करैं तौ जागनेपरभी उसको वही धन मिलताहै ॥ ३३ ॥ अधर्म कार्य करनेमें रत पापकर्म करनेवाले पुरुषके उस पर्वतपर चढनेपर राक्षसलोग उसके शयन करनेके समय उसको पकडकर वहीं संहार करदेतेहैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! तिसके पीछे आप मतंगाश्रम निवासी पंपातटविहारी हाथियोंके बच्चोंका घोर शब्द श्रवण करोगे॥ ॥ ३५ ॥ उन सबके सिवाय आप कुछ एक लाल वर्णकी मदधारा चुआतेहुए मेघवर्ण वेगयुक्त हाथियोंके दलके दल इधर उधर घूमते हुए देखोगे ॥ ३६ ॥ वह हाथी पंपाका निर्मल सुन्दर और अत्यन्त सुखकारी सुवासित नीर पीकरके ॥ ॥ ३७ ॥ पंपासरोवरमें विहारसे निवृत्तहो वनमें विहार किया करतेहैं। हे श्रीरामचंद्रजी! वहांपर आप रीछ, गैंडे, व्याघ्र और नील मणिवत् कोमलकान्तिवाले ॥ ३८॥ कोमल और सुन्दर वनैले पशु रुरु मृग देख शोक परित्याग करदेवोगे; हे श्रीरामचन्द्रजी ! उस पर्वतकी कंदराभी अति शोभायमानहै ॥ ३९॥ उस कंदराके द्वारपर सदाही भारी शिला लगी रहती है इस कारण सरलतासे उसमें प्रवेश करना नहीं हो सकता उस गुफाके पूर्वद्वारपर एक बडा भारी अचल जलका कुंडहै ॥ ४० ॥ उस कुंडके किनारेपर बहुतसे मूल व फलोंसे युक्त अनेक २ भांतिके रमणीक वृक्ष लगेहैं, और वहींपर धर्मात्मा सुग्रीवजी वानरोंके सहित वास करतेहैं ॥ ४१ ॥

वह सुग्रीवजी कभी २ उस पर्वतके शिखरपरभी बैठे रहते हैं, इस प्रकारसे वह कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीसे बताय ॥ ४२ ॥ फूलोंकी माला पहरे, सूर्यके समान प्रकाशित आकाशमें टिका हुआ शोभित होने लगा, उस बडे भाग्यवालेको श्रीराम लक्ष्मणजीने देखकर ॥ ४३॥ उस कबंधसे कहा कि, अच्छा इस समय हम सुग्रीवके निकट जाते हैं, और तुमभी स्वर्गको जाओ उसने भी दोनों भाइयोंसे कहा आप अपने कार्यकी सिद्धिके निमित्त जाइये ॥ ४४ ॥ तब कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीकी आज्ञा लेकर प्रसन्न होकर स्वर्गको चला ॥४५॥ उस कालमें कबंध अपना पहला रूप प्राप्त करकै शोभा समन्वित और प्रदीप्त शरीर होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करकै कहने लगा कि आप सुग्रीवके साथ मित्रता स्थापन कीजिये ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० बा० आदि० आरण्यकाडे भाषायां त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४.

जब कबंध इसप्रकारसे कहकर स्वर्गको चला गया तब श्रीराम लक्ष्मणजी कबंधका बताया हुआ मार्ग लेकर पंपासरोवरकी ओर पश्चिम दिशाको चले ॥ १ ॥ जिस समय श्रीराम लक्ष्मणजी सुग्रीवके देखनेको जा रहेथे उस समय पर्वतोंके शिखरोंपर मधु समान स्वादयुक्त फल व फूलवाले अनेक २ वृक्ष उनके नयनगोचर होने लगे ॥ २ ॥ वह दोनों भ्राता मार्गमें एक रात्रि एक पर्वतके ऊपर रहकर प्रभात होतेही पंपाके पश्चिम किनारेपर जा पहुँचे ॥ ३ ॥ पंपाके पश्चिम किनारे पर पहुँचकर शबरीका रमणीय आश्रम श्रीरामं लक्ष्मणजीने देखा ॥ ४ ॥ और उस विविध वृक्षसमूहसे समाकीर्ण रमणीय आश्रमको देखते हुये उसमें प्रवेश करकै शबरीके निकट आये ॥ ५॥ तब सिद्ध शबरी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखतेही हाथ जोडे हुये बुद्धिमान् दोनों भाइयोंके चरणोंमें प्रणाम करती हुई ॥ ६ ॥ और यथा विधिसे पाद्य आचमनीयभी शबरीने दिया, तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी धर्मनिरता शबरीसे बोले ॥ ७ ॥ कि, तुमने सुख व विघ्नोंको तौ जीत लिया है, तुम्हारा तप बढता तो है और क्रोध तो तुम्हारे वशमें है, हे तपोधने ! ॥ ८ ॥ तुम्हारे सब नियम तौ भली भांतिसे चले आते हैं, तुम्हारे मनको तौ सदा सुख रहताहै ? हे चारुभाषिणी ! तुम्हारे गुरुकी सेवा करनी तौ तुम्हैं फलवती हुई है ॥ ९ ॥

जब श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार पूछा तो सिद्ध लोगोंकी अभिमता और तप सिद्धा शबरी सामने निकल कर उनसे निवेदन करती हुई ॥ १० ॥ आज आपके दर्शनोंसे मेरे तपकी सिद्धि हुई, जन्म सफल हुआ, गुरुगणोंकी पूजा भलीभाँतिसे होगई ॥ ११ ॥ और तपस्याभी सार्थक होगई. हे पुरुषोत्तम ! आप देवताओंमे श्रेष्ठ हैं सबके अन्तरात्मा हैं सो इस समय आपकी पूजा करनेसे हमें ब्रह्मलोक प्राप्त होगया ॥ १२ ॥ हे साम्यै ! हे मान देनेवाले, हे शत्रुघाती ! आपके शुभकारी नेत्रोंकी दृष्टि पडनेसे हम पवित्र होगई, अब आपके प्रसादसे हमको सब अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १३ ॥ जिनकी हम सेवा करतीथीं वह ऋषि आपके चित्रकूट पर्वतपर पधारतेही अनुपम देदीप्यमान देवविमानोंमें चढकर इस आश्रमसे स्वर्गको चले गये हैं॥ १४ ॥ वह सब महाभाग्यवान् धर्मात्मा महर्षिलोक स्वर्ग जानेके समय हमसे कह गये कि श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे इस पुण्यजनक आश्रममें आवेंगे ॥ १५ ॥ सो तुम लक्ष्मणजीकी और उन श्रीरामचंद्रजीको अतिथिकी समान आदरसत्कारसे पूजा करना, उनके दर्शन करनेसेही तुमको सर्व अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १६ ॥ हे पुरुषोत्तम ! उस समय वह महाभाग्यशाली महर्षिलोग हमसे इसप्रकार कहगयेथे हे पुरुषश्रेष्ठ ! तभीसे हमने विविध भाँतिके भले २ फल ढूंढकर ॥ १७ ॥ आपकी सेवाके लिये धर रक्खे हैं यह सब फल इसी पंपाके तीरवाले वृक्षोंके हैं धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी शबरी करके इस प्रकार कहे जाकर उससे यह वचन बोले ॥ १८ ॥ कारण कि, श्रीरामचन्द्रजीने अपने मनमें विचार-लिया कि, यह परमात्माकोभी भलीभांति जानती है यह समझ उससे कहा कि, हमने कबंधसे तुम्हारा प्रभाव और आचारका माहात्म्य ॥ १९ ॥ श्रवण किया था सो तुम यदि उचित समझो तो हम प्रत्यक्ष उनका वृत्तान्त देखनेकी इच्छा करते हैं, श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे निकला हुआ ऐसा वचन सुन ॥ २० ॥ शबरी उन दोनों भ्राताओंको वह बडा वन दिखाकर कहने लगी कि, मृग और पक्षियोंसे परि-पूर्ण काले बादरकी समान श्यामरंगका यह वन देखिये ॥ २१ ॥ हे रघुनन्दन ! इस वनका नाम मतंग वन प्रसिद्ध है. हे महाद्युतिमान् ! इस वनमें विशुद्धात्मा हमारे गुरु लोग मंत्र पूजित यज्ञ करनेके लिये वेदके मंत्रोंसे काल हरण करते थे ॥ २२ ॥ यह वही प्रत्यक्स्थल नामक वेदी है; जिस वेदीपर बैठकर हमारे परम पूजनीय गुरु लोग पुष्पांजलिसहित श्रमयुक्त हाथोंसे देवताओंकी पूजा करते थे ॥ २३ ॥

हे रघुवर ! देखिये यह वही अनुपम प्रभायुक्त वेदी उनके तपोबलसे आजभी अपनी दीप्तिसे दशों दिशाओंको दिपा रही है ॥ २४ ॥ जब वह ऋषि लोग उपवासोंके परिश्रमसे आलसी होकर स्नान करनेको जानेमें समर्थहीन होगये, तब उनके चिन्ता करतेही यह सात समुद्र यहां आगये सो आप देखिये॥ २५॥ हे रघुनन्दन ! ऋषिलोगोंने स्नान करके यहां वृक्षोंपर जो अपने गीले वस्त्र टांगदिये हैं सो वह अबतक नहीं सूखेहैं॥ २६ ॥उन्होंने देवताओंका कार्य साधन करनेके लिये जो नीले कमलोंके सहित यह जो समस्त पुष्प देवताओंको चढायेथे सो वह अबतक नहीं मुरझायेहैं ॥ २७॥ आप सब वन देख चुके और जो बात श्रवण करनेके योग्यथी वह श्रवणभी करचुके अब हमने इस देहके छोडनेका अभिलाष कियाहै सो आप आज्ञा दीजिये ॥ ॥ २८ ॥ जिनका यह आश्रमहै और जिनकी हम परिचारिका हैं उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके निकट जानेका हमारा अभिलाष हुआहै ॥२९॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित शबरीकी यह धर्मयुक्त वार्ता सुनकर अतिशय हर्षित हुये और बोले कि यह बडे आश्चर्यकी बातहै ॥ ३० ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी दृढव्रतवाली शबरीसे बोले कि, हे भद्रे ! तुमने हमारी पूजा भली भाँतिसे की अब तुम सुख ससहित जहां जाना चाहती हो वहांपर चली जाओ * ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने इसप्रकारसे आज्ञा दी तब जटा, चीर और कृष्णमृगचर्मके वस्त्र पहरेहुये शबरी अपने शरीरको अनलमें आहुति दे ॥ ३२ ॥ प्रज्वलित अग्निके समान स्वर्गको चली गई स्वर्गमें गमन करनेके समय उसके आभरण मालायें व चंदनादि सुगन्धित लगानेके सब पदार्थ दिव्य होगये ॥ ३३ ॥ उसकालमें वह दिव्यही वस्त्र पहरनेके कारण परम मनोहारिणी दृष्टि आतीथी, और वह दीप्तिमान् विद्युत्की समान उस स्थानको प्रकाशित करनेलगी ॥ ३४॥उसके गुरु वह विशुद्धात्मा महर्षिगण जिस स्थानोंमें विराजमानथे श्रमणीभी आत्मसमाधिके प्रभावसे परम पवित्र उस पुण्यलोकको चली गई ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आ०आरण्यकांडे भाषायां चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥७४॥

---

* भामिनि जो तैं नेहलगायो ॥ मुक्त भई सब आस पासते ब्रह्मलोक फलपायो॥ युगयुग कीरति चलि है तेरी कियो ऋषिन मन भायो ॥ मातकाल तेरो सुमिरन करिकै रैनको पाप नशायो ॥ यो बलदेव प्रसाद कहैं प्रभु वेद विरद अस गायो ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ७५.

जब शबरी अपनी तपस्याके प्रभावसे स्वर्गको चलीगई तब धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण जीके सहित चिन्तना करने लगे ॥ १ ॥ वह उन धर्मात्मा महर्षिगणोंका अद्भुत प्रभाव विचार एकही परमहितकारी अपने भ्राता श्रीलक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सौम्य ! हमने उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके आश्चर्ययुक्त यह आश्रम देखे यहांपर मृग और व्याघ्रलोग वैरभाव छोडकर विचरण करते हैं और अनेकप्रकारके पक्षीभी वास करतेहैं ॥ ३ ॥ उनके स्थापन किये हुये इन सप्त सागर तीर्थोंमें हमने यथाविधानसे स्नान और पितृलोगोंको तर्पणभी किया ॥ ४ ॥ इससे हमारे अशुभभी नष्ट होगये और कल्याणभी प्राप्त होगया. हे लक्ष्मण ! इससे हमारा मन इससमय बहुतही प्रफुल्ल होरहाहै ॥ ५ ॥ और हे नरव्याघ्र ! इस समय हमारा हृदयभी शुभभावसे पूरित है सो अब अच्छाही होगा इस कारण हम उस मनोहर पंपासरपर चलें ॥ ६ ॥ जिस पंपाके निकटही ऋष्यमूक पर्वत प्रकाशित होरहाहै जहांपर धर्मात्मा सूर्यके पुत्र सुग्रीवजी वसतेहैं ॥ ७ ॥ नित्य वालीके भयसे भीत चारों वानरों सहित वहांपर रहते हैं हम चारों वानरोंकेसहित शीघ्रही उन वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीको वहांपर देखने चलेंगे ॥ ८ ॥ कारण कि, सीताजीको खोजना हमारा कार्य है; वह उन्हीं सुग्रीवके हाथमें है जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी उनसे बोले ॥ ९ ॥ कि, हमारा मनभी शीघ्रता करता है इसकारण जल्दी चलिये । यह सुन पृथ्वीश्वर दोनों भाई उस मतंगाश्रमसे चले ॥ १० ॥ और वहांसे चलकर पंपाके तीरपर पहुँचे वहांपर देखा तो उसके चारों ओर अनेकप्रकारके पुष्पित वृक्ष लगे थे ॥ ११ ॥ वहांपर पहुँचनेके समय कोयल अर्जुन तोता मैना आदि पक्षी गण वहांपर शब्द कर रहे थे ऐसा शब्दायमान होता हुआ इस महावन ॥ १२ ॥ ऐसे जाति २ के वृक्ष और समस्त सरोवरोंको देखते कामसे संतप्त हो श्रीरामचन्द्रजी उस श्रेष्ठ ह्रदके तीर पहुँचगये ॥ १३ ॥ उस ह्रदका जल अति मीठा शीतल है और यह मतंगसरनामसे विख्यातथा ऐसे उस उत्तम जल बहतेहुए मतंगसरमें श्रीरामचन्द्रजीने स्नान किया ॥ १४ ॥ तब वहां पर अव्याकुलतासे और मोहित चित्तसे श्रीरामचन्द्रजी गये फिर दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी

शोकसे व्याकुल हो ॥ १५ ॥ वहां प्रवेश किया जो पुरैनके पत्तोंसे छाया और कमल फूलोंसे युक्त है उस पंपासरोवरपर तिलक, अशोक, पुन्नाग, बकुल-उद्दाल इत्यादि बहुत लग रहे हैं ॥ १६ ॥ मनोहर वन उसके किनारेपर लगा-हुआ है पद्मोंकरके आवृत और स्फटिककी समान निर्मल जल और सुखस्पर्श चिकना रेतीसे घिरा हुआ है ॥ १७ ॥ वह पंपासर मछलियें और कछुओंसे शो-भित है, फैली फली बेलें जिसको सखियोंके समान घेरे हुये हैं जिसके किनारे २ बहुतसे वृक्ष लगे हुये ह, ॥ १८ ॥ गन्धर्व, किन्नर, सर्प, यक्ष, और राक्षसगण उसके इधर उधर घूमते हैं और वह अनेक जातिके वृक्ष और लताओंसे घिरा हुआ है उसका जल शीतल और महाशोभायमानहै ॥ १९ ॥ वह कहीं लाल कमल और कह्लारसे छारहाहै इससे लाल वर्ण और कहीं नीले कमल फूलोंके खिलनेसे नीला और कहीं बबूलोंसे छायाजानेके कारण श्वेत वर्ण होगया है और अनेक व-र्णोंसे चित्रित होनेके कारण रंग बिरंगी हाथीकी झूलकी समान शोभायमान है ॥ ॥ २० ॥ उह अरविन्द, उत्पल और पुष्पित आम बनके समूहसे पूरित और मयू-रोंके शब्दसे शब्दायमान ॥ २१ ॥ पंपा सरोवरको रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके सहित देखा उसको देखकर, तेजस्वी दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी विलाप करने लगे ॥ २२ ॥ श्रीरामचंद्रजीने फिर देखा कि, तिलक, बीजपूरक, वट, लोधद्रुम पुष्पित करवीर, फूला हुआ पुन्नाग ॥२३॥ मालती, कुंद, गुल्म, भांडीर, निचुल, अशोक, सप्तपर्ण, केतकी, चमेली, अतिमुक्तक ॥ २४ ॥ इत्यादि औरभी अनेक प्रकारके वृक्ष वहां शोभित होरहेहैं श्रीरामचन्द्रजी बोले, इसकेही किनारे पहले कहा हुआ धातुओंसे सजा हुआ पर्वत ॥ २५ ॥ विख्यात ऋष्यमूक विचित्रपुष्प-युक्त वृक्षोंसे युक्तहै महात्मा हरि ऋक्षरजके पुत्र ॥ २६ ॥ महावीर सुग्रीव नाम-करके वहां वसते हैं सो हे नरश्रेष्ठ ! उस वानरनाथ सुग्रीवके पास चलें ॥ २७ ॥ सत्य विक्रमवान् श्रीरामचन्द्रजी फिर लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे लक्ष्मण ! हम राज्य भ्रष्ट दीन और सीतागत प्राण होकर किस भांतिसे सीताके विरहमें जीवन धारण करें ? ॥२८॥ श्रीरामचन्द्रजी सीताजीमें चित्त लगाये और मदनसे पीडितहो ल-क्ष्मणजीसे ऐसा कह महाशोक प्रकाश करते हुये उस कमलपुष्पोंसे यक्त मनोहर पंपाके तीरमें पैठते हुये ॥ २९ ॥ और चारों ओरका विविध भांति वन देखते

भालते जाते हुये धीरे २ अनेक प्रकारके पक्षियोंके समूहसे आकुल सुन्दर वन शोभित पंपासरमें लक्ष्मणके सहित रामचन्द्र पैठे ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

इसके आगे किष्किंधाकांड है जिसके प्रथम यह श्लोक है ॥ कमल, लालकमल मछलियोंसे युक्त पंपासरोवरके किनारे लक्ष्मणसहित जाकर महात्मा रामचन्द्र व्याकुलेन्द्रियहो विलाप करने लगे ॥

दोहा—रघुनंदन संकटहरन, विघ्न विनाशन आप ।
ब्रह्म सच्चिदानंदघन, दूर करो संताप ॥
गुणसागर नागर परम, नरतनु धारि खरार ।
लीला विस्तारी जगत, नित मंगल दातार ॥
जो नर नित सुमिरन करैं, गुणगण प्रभुके गाय ।
ते विनु श्रम संसारके, पारभये सुख पाय ॥
भक्तन हित कारण धरो, प्रभुने मनुज शरीर ।
ऋषि मुनियनकी दासकी, दूर करी सबपीर ॥
कृपा अनुग्रह अस करो, रहैं तुम्हारे ध्यान ।
प्रभु ज्वालाप्रसादको, यह वरदान न आन ॥
जिमि २ ऋषियनसों भयो, प्रभुको शुभ संवाद ।
सो सब भाषामें कियो, बुध ज्वालाप्रसाद ॥
पढहिं सन्तजनकृपा करि, सुमिरहिं लक्ष्मणराम ।
यामें कुछ संशय नहीं, सिद्ध होत सब काम ॥

इति आरण्यकाण्ड समाप्त ।

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय-बंबई.

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-भाषा ।

किष्किन्धाकाण्डम्-४.

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें

मुदितकर प्रसिद्ध किया ।

किष्किन्धाकाण्डम्-४.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-भाषा ।

किष्किन्धाकाण्डम् ४.

प्रथमः सर्गः १.

दोहा-सीता ढूँढन चित दिये, बाण विराजत हाथ ॥
श्यामवरण दुखहरणभव, वंदौं श्रीरघुनाथ ॥ १ ॥

श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः । जब इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित पद्म, उत्पल, और मछलियोंसे परिपूर्ण उस परममनोहर पुष्करिणी पर गये तब उनकी इंद्रियें व्याकुल होगईं, उस समय वह बहुभाँतिसे विलाप करने लगे ॥ १ ॥ और फिर जब उस पंपासरोवरको भली भाँति देखा, तब हर्षमें भरनेके कारण उनकी इन्द्रियां कांपने लगीं, और वह कामदेवके वशहो लक्ष्मणजीसे बोले॥२॥हे सुमित्राकुमार! देखो, देखो, वैडूर्यमणिके समान स्वच्छ जलवाली पंपा, खिले हुए कमल और कमलपत्र व विविध भांति वृक्षोंके विराजित होनेपर कैसी शोभित होती है ॥ ३ ॥ देखो लक्ष्मण ! पंपाके निकटवाले वन कैसे मनोहर दिखलाई देते हैं, और वहां ऊंचे शिखरवाले शैल और वृक्ष कैसे मनोहररूपसे विराज रहे हैं ॥ ४ ॥ तुम विचार करकै देखो कि हमारा हृदय राज्य भ्रष्ट होनेसे, भरतजीके जटावल्कलादि धारण करनेसे, व सीताजीका हरण हो जानेके शोकसे बहुतही सन्तापित है और इससे मनको पीडाभी होती है, और मातापिताके छूटनेकाभी महा दुःख है ॥ ५ ॥ तथापि शीतल जल वाली अनेक प्रकारके पुष्पोंसे शोभित, विचित्र काननयुक्त यह पंपा शोकसे व्याकुल हमारे मनको हरणकरकै सुख और शांति देरही है ॥६॥ यह पंपा सरोवर कमल फूलोंसे व उनके पत्रोंसे छा रहा है उसका दर्शन बडाही मनोहर है, इसपर सर्प, व्याल, मृग, व पक्षीगण सदाही घूमा करते हैं ॥ ७ ॥ यह नीला पीला व हरित शाद्वल वृक्षोंके ढेरके ढेर फूलोंके गिरनेसे अधिकतर शोभा पा रहाहै ॥ ८ ॥ पुष्पभारसे शोभित सब तरु शिखर पुष्पिताग्र लता वेलोंसे घिरनेके कारण परम शोभा धारण कर रहे हैं ॥ ९ ॥ हे सुमि-

त्रासुवन ! इस समय इस स्थानमें पंच बाणका जगानेवाला वसंतकाल वर्त्तमान है, सुखदायक समीर सन सन करकै मन्द २ चल रही है, मनोहर मधुमास (चैत्र) मधुर सुगंधिके सहित आया हुआ है, वृक्षोंके शिखर फूल फलसे शोभित होरहे हैं इसकारणसे यह स्थान कैसा मनोहर हो गया है ॥ १० ॥ लक्ष्मण ! देखो जिस प्रकारसे जलचर गण जलकी वर्षा करते हैं, वैसेही पुष्प वर्षणकारी बनोंका कैसा अपूर्व मनोहर रूप प्रकाशित हो रहाहै ॥ ११ ॥ मनोहर पत्थरोंके ऊपर उगे हुये वृक्ष पवनके वेगसे कंपायमान हो पृथ्वीके ऊपर फूलोंके ढेरके ढेर छोड उसको ढके लेते हैं ॥ १२ ॥ हे भइया ! देखो वृक्षोंके ऊपरसे वहुतसे फूल गिर पडे हैं और बहुत फल चारोंओर गिर रहे हैं इससे ऐसा जान पडता है मानों पवन उन फूलोंकी राशिसे विहार कर रहा है ॥ १३ ॥ और पवन बहु कुसुम शाली वृक्षोंकी शाखाओंको इधर उधर कंपायमान कर रहा है इसलिये मधुपान मत्त भ्रमरगण अपने २ स्थानसे खसक कर पवनका पीछा करते हैं ॥ १४ ॥ और पवन, मतवाले कोकिल कुलके कलरव रूप मृदंगकी ध्वनिसे नृत्य सीखकर पर्वतकी कंदराओंसे निकसनेके समय मानों गान कर रहा है ॥ १५ ॥ हे लक्ष्मण ! और देखो यह पवन सब शाखाओंको कंपायमान करकै मानों सब वृक्षोंको बांध देता है ॥ १६ ॥ यह पवन चन्दनकी समान शीतल और सुख-स्पर्श व महकताहुआ पुण्य रूप होकर प्राणियोंका आश्रयधारण करता है और निश्चय श्रम दूर करता है ॥ १७ ॥ यह देखो मधुगंध युक्त बनमें पवन द्वारा हिलनेसे सब वृक्ष, गुंजार करते हुये भौंरोंके द्वारा मनोहर शब्द कर रहे हैं ॥ ॥ १८ ॥ फिर पर्वत अपने ऊपर उत्पन्न मनोरम महावृक्षोंके द्वारा मानों शिखर-युक्त होकर विराजमान हो रहे हैं ॥ १९ ॥ वृक्षोंकी फुनगियां फूलोंके द्वारा ढक जानेसे और उनके ऊपर भौंरोंके गुंजार करने, व पवन वेगके कारण उनके चलायमान होनेसे ऐसा जानपडता है मानों सब वृक्षोंने एक बारही नृत्य गीत आरंभ कर दियाहै ॥ २० ॥ देखो लक्ष्मण ! कठचम्पेके वृक्ष पीत फूलोंसे छाये रहनेके कारण ऐसे जान पडते हैं मानों वह सुवर्णके गहने पहने पीताम्बरधारी पुरुषोंके समान शोभा पारहेहैं ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण ! इस वसंतकालमें अनेक भाँतिके पक्षीगण मनोहर ध्वनि कर रहे हैं तिससे हमारा सीताजीका विरह दुःख एकबारही उकसाताहै ॥ २२ ॥ इस समय हम जानकी की विरहानलमें

महा संतप्त होरहेहैं तिसके ऊपर यह पंचबाण अतिशय पीडा दे रहाहै और कोकिल कलकंठसे ध्वनि करके मानों हमारेप्रति अपना साहस दिखारहेही हैं ॥ २३ ॥ यह देखो मनोरम वनके झरनोंमें सब जल कुक्कुट हर्षित होकर कल निनाद करके हमको शोचनीय और शोकातुर कियेदेते हैं ॥ २४ ॥ पहले जब हम प्रियाके सहित एक आश्रममें रहतेथे, उस समय यह कोकिल कलनादसे बोलता था तब सीता हमको बुलाकर परम प्रसन्न होती थी॥२५॥यह देखो! चित्र विचित्र अनेक प्रकारके पक्षी विविध भाँतिके शब्दोंसे ध्वनि करतेहुये चारों ओर वृक्ष लता और पौधोंपर उड २ कर बैठते हैं ॥२६॥ भइया यह देखो ! अनेक जातिके पक्षी और भ्रमर मधुर स्वरसे बोलनेवाले अपने २ जोडेके साथ मिल और हर्षित होकर झुंडके झुंड घूम रहेहैं ॥ २७ ॥ इस पम्पाके किनारेपर पक्षियोंके झुंडके झुंड जलमुरगी कोकिला की बोलीके समान बोल आनंदित होते हैं ॥ २८॥ यह सब वृक्ष भ्रमर गणोंके गुंजार करनेसे मानों बोल रहेहैं व इसी कारणसे हमको कामोद्दीत कराते हैं अशोकके पत्ते अंगारोंके समान, भ्रमर गुंजार बडे शब्दके समान ॥ २९ ॥ नये २ पत्ते अरुण रंगकी ज्वालाके समान हो वसंत ऋतु अग्निवन मानों हमको भस्म करैगा । अब सूक्ष्मपलक नेत्रा, सुकेशी, व मीठे वचन बोलनेवाली ॥ ॥ ३० ॥ जानकीजीके विना देखे हमारे जीवेत रहनेका क्या प्रयोजन है कारण कि यह सुन्दर वनयुक्त वसंत समय॥ ३१ ॥ कोकिलका शब्द जिसका डांडहै वह हमें और जानकीजीको एक संग साथ रहनेसे सुखदायी होता फिर कामके प्रयासों समेत वसंतके गणोंसे बढा ॥ ३२॥ यह शोकानल अति शीघ्र हमको भस्मकर देगा प्राणप्यारी जानकीको विना देखे इन सुन्दर वृक्षोंके देखनेसे ॥ ३३ ॥ यह काम बढताही जायगा, तिसपर विना देखे जानकीके यह हमको शोक ही उपजाता है ॥ ॥ ३४ ॥ यह वसंतकाल देखतेही देखते ठंडी पवन चलाय स्वेदको बंद करताहै और मृगशावकनयनी श्रीजानकीजीकी चिन्ता और शोकके मारे व्याकुल कराय हमको ॥ ३५ ॥ बहुतही संतापित करता है और ऐसेही चित्ररथ नामक वनका यह महाक्रूर पवन भी हमको तपाता है। और यह मोर नाचते हुये इधर उधर शोभायमान होरहेहैं ॥ ३६ ॥ मानो स्फटिक मणियोंके झरोखोंमें बैठे हुये अपने पंख पवनसे हिला झुला रहेहैं यह सब अपनी २ मोरनियोंके साथ उन्मत्त हो रहे हैं ॥ ३७ ॥ यह सब मोर कामदेवसे व्याकुल हुए हमको अधिक काम बढाते हैं

हे लक्ष्मण ! देखो इस नृत्य करते हुये मोरके पास ॥ ३८ ॥ कामसे व्याकुल हुई मुरैलियाँ कैसी पर्वतों परके कँगूरों पर नाच रहींहैं । उन्हीं मोरनियोंके निकट मनसे मोरभी दौडताहै ॥ ३९ ॥ फिर पंख फैलाय खडा होजाताहै, कुछ विलम्बमें अपनी बोली बोल मानो उस मोरनीको हँसाताहै । हम जानते हैं कि, जिस वनमें हमारी प्राणजीवनी हरीगई हैं उस वनमें मोर नहीं थे ॥ ४० ॥ इसी कारण यह मोर अपनी स्त्रीके साथ इस रमणीक वनमें नाचताहै, यदि इसके सन्मुख जानकीजी हरी जाती तो शोकके कारण इसको नाचनेकी याद न रहती । हे लक्ष्मण! विना जानकीजीके यह चैत्रमास हमको तो बडाही दुष्कर जान पडताहै ॥ ४१ ॥ क्योंकि इस समयमें पशु पक्षियेंभी प्रियानुराग प्रगट करतीहैं, देखो लक्ष्मण ! यह मोरनियें कामसे पीडित हो मोरोंके पास दौडी जाती हैं ॥ ४२ ॥ हाय ! यदि वह विशाल नेत्रवाली देवी जानकीजी इस समय न हरी जातीं, तो वहभी मदनसे चंचलायमान मन होकर हमारे निकट प्राप्त होनेकी वासना करतीं ॥ ४३ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो इस वसंतके समयमें पुष्पभारसे छाये वनसमूहोंके सब पुष्प हमारे जान तो अतिशय निष्फल होरहेहैं ॥ ४४ ॥ वृक्षोंके अति सुन्दर मनोहर पुष्प भ्रमरगणोंके सहित पृथ्वीपर गिर रहेहैं पर विना सीताके हमारे लेखे व्यर्थहैं ॥ ४५ ॥ हमारे चित्तको मतवाला करनेवाले पक्षीगण हर्षित होकर झुंड २ कलरव करकै कलध्वनि कर रहेहैं परस्पर एक दूसरेको बुलातेहैं ॥४६॥ हाय ! जबकि यहां वसंतहै, तबतो उन प्राणप्यारीके निकट भी वसंतका उदय हुआ होगा । यदि हुआ होगा तौ हम विना, हमारे समान वहभी परवश होनेके कारण निःसन्देह कातर और शोकसे व्याकुल हुई होंगी ॥ ४७ ॥ यदि वहां वसंतका उदय नभी हुआहो तथापि वह नलिननयनी हमारे विना वहां किस प्रकारसे रहती होगी ॥ ४८ ॥ अथवा यदि उस स्थानमें वसंत विद्यमानभी हो तथापि वह सुश्रोणी सीता शत्रुओंसे भयभीत और घुडकी जाकर क्या करेंगी ? सो कुछ हमारी समझमें नहीं आता ॥ ४९ ॥ हाय! वह श्यामा, कमल दलकी समान नेत्रयुक्त मृदुभाषण करनेवाली जनकनंदिनीजी, वसंत कालको प्राप्त होकर हमारे विरहमें निश्चयही प्राण त्यागदेंगी इसमें कोई संदेह नहींहै ॥५०॥ हमने बुद्धिसे; हृदयमें निश्चय कियाहै कि हमारे विरहमें वह साध्वी पतिव्रता सीताजी कभी जीवित नहीं रहसकैंगी ॥ ५१ ॥ जानकीजीके हृदयका भाव निश्चयही हमारे प्रति स्थापितहै, और हमारा भावभी निश्चयही सीताजीके प्रति

लगाहुआहै ॥ ५२ ॥ यह पुष्पगंध वहन करनेवाला सुशीतल व स्पर्शसे सुख उप जानेवाला वायु स्त्रीकी चिन्ता करतेहुये हमारे निमित्त अग्निके समान उष्ण लगताहै ॥ ५३ ॥ पहले सीताजीके साथ रहते जिसको सदाही हम परम मित्र समझतेथे, इस समय सीताजीके विना वही समीर हमको शोक उत्पन्न करानेवाला होरहाहै ॥ ५४ ॥ सीताजीके संयोगसमयमें इस काकपक्षीने आकाशमें उडकर अपनी कठोर बोली बोल जानकीजीके वियोगकी सूचना दीथी अब इस समय जब कि, उनका वियोग होरहाहै, तब यह पक्षी प्रसन्नतासे वृक्षपर बैठा फिर उनके मिलनेको जतारहाहै ॥ ५५ ॥ इसलिये इस विहंगमनेही सीताजीको हरण करलियाहै और फिर यही पक्षी हमारे साथ उन विशालनयना जानकीजीका मिलन करादेगा ॥ ५६ ॥ हे लक्ष्मण ! यह सुनो, फूलेहुये वृक्षकी फुलगीपर बैठे कूजन करकै यह पक्षीगण मदनानंद बढानेवाला मधुर शब्द कर रहे हैं ॥५७॥ देखो यह सब भ्रमर तिलकमंजरीके ऊपर बैठ परम सुखसे मधु पीरहेथे, सो अचानक पवनसे ताडित होकर फिर वेगसहित तिलकमंजरीके निकट जा रहेहैं जैसे कोई मदसे कंपायमान अपनी प्रियाके निकट पहुँचता है ॥ ५८ ॥ यह अशोक वृक्ष कामीजनोंको अत्यन्तही शोकका बढानेवाला होता है देखो मानो यह पवनसे कंपित अपने पत्रोंद्वारा हमको डरपाताहुआ खडा है ॥ ५९ ॥ हे लक्ष्मण ! यह फूलेहुए आमके वृक्ष मानों कामके रससे आसक्त, व अंगराग लगायेहुये मनुष्यकी समान ही खडे हैं सो तुम देखो ॥६०॥ हे पुरुषसिंह लक्ष्मण ! यह देखो ! हम इस पंपाके तीरवाले विचित्र बनमें किन्नर लोग जिधर तिधर विचरण करतेहुये घूम रहे हैं ॥ ६१ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम यह देखो कि, फिर यहांपर यह सुगन्धित कमल जलमें तरुण सूर्यके समान शोभा विस्तार कर रहे हैं ॥ ६२ ॥ यह प्रसन्नसलिला पंपा सुगन्धियुक्त नील अरुण कमलसे और हंस कारण्डव इत्यादि जलचर पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा पारहा है ॥ ६३ ॥ जलमें जो कमल फूल तरुण सूर्यके समान शोभा विस्तार कर रहे हैं, सो भ्रमरोंके समूह उनकी घँगोंलोंपर बैठे हैं, यह पंपा सरोवर चारों ओर कमल फूलोंके छा जानेसे अपूर्व शोभा प्रगट कर रहा है ॥६४॥ इस पंपाकी बगलवाले विचित्र वन, बराबर चक्रवाकोंके झुण्डोंसे, और पानी पीनेके अभिलाषी मृग और हाथियोंके दलसे युक्त होकर शोभा पाते हैं ॥ ६५ ॥ देखो लक्ष्मण ! इसके विमल जलमें पवनसे उत्पन्नहुई लहरोंके द्वारा ताडित होकर

यह कमलफूल नर्तकीके समान विराजमान हैं ॥ ६६ ॥ हे लक्ष्मण ! इस समय पद्मपलाशनेत्रवाली प्रियपंकजा जनकसुताके विना देखे हम अब जीवन धारण करनेका अभिलाष नहीं करते ॥ ६७ ॥ अहो ! कामकी कैसी कुटिलता है । देखो ! जिनके साथ वियोग होगया और जिनका मिलना अति दुर्लभ है सो यह कुटिलता, उनही कल्याणके वचन कहनेवाली कल्याणी प्रियाकी बार २ स्मृति दिलाती है ॥ ६८ ॥ अहो ! हम इस कठिन मदनकोभी धारण करसक्ते ! किन्तु यह फूलेहुये वृक्ष और वसंत बहुत पीडित करता है, इसलिये हम बहुतही सामर्थ्यहीन होगये हैं ॥ ६९ ॥ उन जानकीजीके साथ रहकर जिनको हम परम रमणीय समझतेथे; इस समय सीताके विरहमें वही हमको अत्यन्त अप्रिय लगते हैं ॥ ७० ॥ यह कमलदल यद्यपि कामके जगानेवालेभी हैं तथापि सीताजीके नेत्रोंकी समता धारण करते हैं, यह समझकर हमारे नेत्र उनके दर्शनमें मन लगाये हैं ॥ ७१ ॥ दूसरे वृक्षोंके मध्यमें हो बाहर निकलकर कमलकेशरको छूकरके सीताजीके श्वास पवनके समान यह मनोरम समीर बह रही है ॥ ७२ ॥ हे लक्ष्मण ! पंपाकी दक्षिण तरफको देखो कि, गिरिशृङ्गोंके ऊपर कठचंपाके वृक्षोंकी फूलीहुई शोभायमान शाखायें कैसी मनोहर दीख रही हैं ॥७३॥ यह पर्वतराज विविध भाँतिकी गेरू आदि धातुओंसे विभूषित होकर वायुवेगसे उठाहुआ विचित्र रेणुजाल विस्तार कर रहा है ॥ ॥ ७४ ॥ गिरिकी सब स्थलियां पल्लवहीन सब भाँतिसे खिलेहुये टेसूके वृक्षोंसे प्रदीप्त अग्निके समान शोभित होरही हैं ॥ ७५ ॥ पंपाके तीरवाले मधुगन्धि वृक्ष इसके जलसे सींचे जाकर सदा बढते रहते हैं. इस पंपाके किनारे पर कुसुमित मालती, मल्लिका, कँवल, कंदेला ॥ ७६ ॥ केतकी, सिन्दुवार, चमेली, बिजौरा, नींबू, पुरैन, कुन्द ॥ ७७ ॥ चिलोलु, महुआ, अशोक, बकुल, चम्पा, तिलक, नागवृक्ष ॥ ७८ ॥ नीलकमल, फलाहुआ अनिल, शोक, लोध्र, सिंहकेशर, पिंजर, गिरिपृष्ठ ॥ ७९ ॥ अंकोल, कुरंट, चूर्णक, नींब, आम, पाटलि, फूलाहुआ कोविदार ॥ ८० ॥ मुचकुन्द, अर्जुन, केतकी, दूसरी जातिकी शतावरी, शिरस, खैर, शीसम यहभी पहाडके शृंगोंपर दिखलाई देतेहैं ॥ ८१ ॥ शाल, टेसू, लाल कुरबक, तिनिश, नक्तमाल, चन्दन, स्यन्दन ॥ ८२ ॥ दूसरी जातिके तिलक, फूलेहुये नाग वृक्ष, यह सब वृक्ष फलरहेहैं व इनके अग्रभागमें फलीहुई बेलें लिपट

रहीहैं. इससे यह अति शोभित होरहेहैं॥८३॥ हे लक्ष्मण ! देखो पंपाके किनारे यह अति चित्र विचित्र, विविध भाँतिके वृक्ष देखो कि, इनकी डालियां पवनके लगनेसे कैसी हिलरही हैं और उनसे कैसी शोभा होतीहै ॥ ८४ ॥ वृक्षोंमें बेलैं लिपट रहीहैं, जैसे कामसे उत्पन्न हो श्रेष्ठ स्त्रियें अपने २ पतिको चिपट जातीहैं, और देखो कि, पवन इस वृक्षसे उस वृक्षको इस पर्वतसे उस पर्वतको एक वनसे दूसरे वनको जाकर ॥ ८५ ॥ बहुत सारा रस चख आनन्दित होकर महकताहै, पंपाके किनारेवाले किसी २ वृक्षकी शाखा अधिक पुष्पयुक्त होनेके कारण सुशोभित हो सुगन्धित होरही हैं ॥ ८६ ॥ और कोई कुछेक निकलीहुई कलियोंकी मंजरीसे श्यामवर्णकी समान शोभा पारहे हैं यह फूल मीठेहैं, यह स्वादयुक्त हैं, यह फूल खिलाहुआहै ॥ ८७ ॥ इस प्रकार समझ और अनुरागी होकर भ्रमर गण उड २ कर पुष्पोंपर बैठते हैं और रस लेकर उडके और फूलों पर बैठ जातेहैं, इसप्रकारसे मधुके लोभी मधुकर पंपाके तीरवाले वृक्षोंपर बैठते उठतेहैं ॥ ८८ ॥ देखो तो इस भूमिपर कैसे फूल बिछेहैं, इस कारण यह सुखसहित शयन करनेके योग्यहै यह पुष्प अपने आप गिरेहैं, किसीने तोडकर नहीं गिराये, परन्तु ऐसे गिरेहैं, मानो शयन करनेके लिये सेज बिछाई गई है ॥ ८९ ॥ इस पर्वतके सब कँगूरोंपर पीले लाल इत्यादि विविध भाँतिके पुष्पसमूहद्वारा विविध भाँतिकी चादरसी बिछरही हैं ॥ ९० ॥ हे लक्ष्मण ! हिमके अंत वसंतकालमें वृक्षगणोंकी पुष्पोत्पत्ति देखो ! मानो सब वृक्ष एक दूसरेको पुकार २ पुष्प उत्पन्न कररहे हैं ॥ ॥ ९१ ॥ वृक्षसमूहोंकी फूलभरी शाखायें भौरोंकी गुंजारसे परस्पर पुकार २ मानो शोभा विस्तार कररही हैं ॥ ९२ ॥ देखो लक्ष्मण ! यह कारण्डव पक्षी इस विमल जलमें डुबकी मार कामदेवको जगाताही हुआ मानो अपनी स्त्रीके सहित रमण कररहाहै ॥ ९३ ॥ मन्दाकिनीकी समान पम्पाका यह रूप और मनको रमानेवाले इसके गुणोंका समूह, जो पृथ्वीपर विख्यातहै सो यह ठीकही ठीकहै ॥ ९४ ॥ हे लक्ष्मण ! हम यदि इस स्थानमें उन पतिव्रता सीताजीके दर्शन पाते तो इन्द्रपुरी व अयोध्याकी भी इच्छा न करके इस स्थानमेंही वास करते ॥९५॥ हे लक्ष्मण ! जो हम तुम्हारे साथ इन रमणीक हरे भरे क्षेत्रोंमें वास करें तो हमारी और जगह वास करनेकी वासना न रहै ॥ ९६ ॥ विविध भाँतिके पुष्पसमूह और विविध वर्णके यह वृक्ष, इस वनमें विना प्राणप्यारीके हमको विविध भाँतिकी चिन्ता उत्पन्न करातेहैं ॥९७॥

हे लक्ष्मण! शीतल जल युक्त, कमल सहित, चकई चकवा; जल मुरगी और बत्तक आदि सेवित इस पंपाको देखो ॥ ९८ ॥ करांकुल जलबुड्डी, आदि जलचर पक्षियोंसे सेवित व किनारे २ और दूसरे पक्षियोंके बोलनेसे यह पंपा अधिक शोभायमान होरहीहै ॥ ९९ ॥ यह प्रमुदित विविध भाँतिके पक्षी हमें उन पंकजनयनी, चन्द्रमुखी श्यामा * जनकनंदिनी, प्रिया जानकीजीकी स्मृति दिलातेहैं । और देखो! इन विचित्र पर्वतके कँगूरों पर मृगगण हरिणियोंके साथ॥१००॥ इधर उधर विहार करके मृगशावकनयनी वैदेहीके विरहमें हमको व्यथित कर रहेहैं ॥ १०१ ॥ यदि हम मतवाले पक्षियोंसे पूर्ण इस मनोहर कंगूरेपर उन प्राणप्यारीका दर्शनपावें तबहीं हमको शान्ति और सुखकी प्राप्ति होसकतीहै ॥ १०२ ॥ हे लक्ष्मण! यदि वह सुमध्यमा पतिव्रता जानकीजी हमारे साथ इस पंपाकी पवन सेवन करें तबहीं हम जीवन धारण करनेको समर्थ होवें ॥ १०३ ॥ हे लक्ष्मण! कमलकी सुगन्धि वहन करनेवाले, शोकविनाशन इसपंपाके पुण्यवान् पवनको धन्य पुरुषही सेवा करते हैं ॥ १०४ ॥ वह श्यामा, कमलनयनी जनककुमारी सीताजी हमारे विरहमें अवश होकर प्राण धारण करनेमें कभी समर्थ नहीं होंगी ॥ १०५ ॥ हाय! वह धर्मशील, सत्यवादी, महाराज जनकजी जब सभाके बीचमें हमसे सीताजीकी कुशल पूँछेंगे तब हम उनसे क्या कहेंगे ॥ १०६ ॥ हम अतिशय मंदभागीहैं, पिताजीने हमको वनमें पठाया तब सीताजी हमारे साथ २ आईं। हा! इस प्रकारके पतिव्रत धर्ममें टिकीहुई सीताजी इस समय कहां हैं ॥ १०७ ॥ हाय लक्ष्मण! हम राज्यभ्रष्ट और हतबुद्धि होकर वनको आये, सो उस समय जो जानकीजी हमारे साथ २ आईथीं उन सीताजीके विना इस समय दीन होकर हम किस प्रकारसे प्राण धारण करनेको समर्थ हों ॥ १०८ ॥ उन सीताजीका कमल समान मनोहर शीतला आदिके दागोंसे रहित सुगन्धि मुख कमल न देख पाकर हमारा मन मोहके वशहो व्याकुल हुआ जाताहै ॥ १०९ ॥ हे लक्ष्मण! उन सीताजीका मुसकान सहित गुणयुक्त सुमधुर हितकारी अतुल वचनामृत कभी हम फिरभी श्रवण कर सकेंगे? ॥ ११० ॥ वह सर्व सुलक्षणवाली श्यामा साध्वी वनमें हमको प्राप्त होकर दुःखके समयभी सुखिनी होकर वचनामृत वर्षाकर हमको

---

* जो नारी शीतकालमें ऊष्ण और ऊष्ण कालमें शीतल होती है और जिसके सर्वांग निन्द्रारहित हों उसको श्यामा कहतेहैं।

सुखी करतीं ॥ १११ ॥ हे राजकुमार लक्ष्मणजी ! जब कि हम अयोध्याको लौटेंगे तब मनस्विनी कौशल्याजी " सीता कहांहैं ? " यह पूछैंगी तब हम उनसे क्या कहैंगे ? ॥ ११२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस समय तुम निश्चय जानो कि, हम सीताके विना कभी जीवन धारण करनेको समर्थ नहीं होंगे, इसलिये हमारा मरण निश्चय जान तुम अयोध्याजीको चले जाकर, भरतजीके साथ मिलो ॥ ११३ ॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजीने इस प्रकार अनाथकी समान जब विलाप करना आरंभ किया, तब लक्ष्मणजीने उनसे अर्थयुक्त वचन कहने आरंभ किये ॥ ११४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! आप शोकका त्याग कीजिये आप पुरुषोत्तमहैं इसलिये आपको शोक करना उचित नहीं है. आपसरीखे न्यायवान्, धीरवान्, निष्पाप पुरुषोंमें ऐसी शोकबुद्धिका होना सब भाँतिसे असंभवहै ॥ ११५ ॥ विरहसे उत्पन्न हुआ दुःख और प्रियजनके प्रति स्नेहको छोड दीजिये देखिये अतिशय स्नेह युक्त अर्थात तेलमें पडनेसे गीली बत्तीभी जल जाती है ॥ ११६ ॥ यदि रावण पातालमें वा उससेभी अधिक गुप्तदेशमें भागजाय, तथापि कदापि वह जीवित नहीं रहसकता ॥ ११७ ॥ वह पापमतिवाला राक्षस कहां रहताहै ? और उसकी क्या इच्छाहै पहले इस बातको आप जान लीजिये, तब इसके पीछे या तो वह सीताको छोडही देगा अथवा मारा जायगा ॥ ११८ ॥ यदि रावण जानकीजीको न देगा तब वह सीताजीके सहित चाहैं (दैत्य माता) दितिके गर्भमें चलाजाय तोभी हम उसको निःसन्देह मारडालेंगे ॥ ११९ ॥ हे आर्य ! आप मनकी दीनताको छोडकर स्वस्थ हूजिये आप तो जानतेहीहैं कि नष्ट कार्य विनायत्नकिये कभी सिद्ध नहीं होता ॥ १२० ॥ हे आर्य ! उत्साहही बलवान् है उत्साहसे अधिक श्रेष्ठबल और कुछभी नहीं है इस संसारमें उत्साहको कुछभी दुर्लभ नहीं है इसलिये उत्साहका अवश्यही आसरा लेना चाहिये ॥ १२१ ॥ उत्साह युक्त पुरुषगण कभी नहीं घबडाते, इसलिये हम केवल उत्साहकाही अवलम्बन करकै जानकीजीको फिर प्राप्त करलेंगे । इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ १२२ ॥ आप महात्मा और कृतविद्यहैं सो आप अपने आत्मस्वरूपको क्यों नहीं जानते, इसलिये शोकको त्याग करकै यह कामी पुरुषोंकीसी वृत्ति छोड दीजिये ॥ १२३ ॥ जब श्रीलक्ष्मणजीने इस प्रकारसे समझाया बुझाया तब शोकसे हतचित्त हुए श्रीरामचन्द्रजीने शोक और मोहको छोडकर धैर्य धारण किया ॥ १२४ ॥ तब अचिन्त्य पराक्रम श्रीरामच-

न्द्रजी अव्यग्र चित्तसे उस वृक्ष समूहसे परिपूर्ण मनोरम पंपासरको घूम २ देखने लगे ॥ १२५ ॥ तिसके पीछे महात्मा श्रीरामचन्द्रजी वनस्थली, झरने व कंदराओंको अवलोकन करते २ लक्ष्मणजीके सहित उद्विग्नचित्तहो उन सबका विचार करते सीताजीके दुःखसे उपहत चित्तहो आगे चले ॥ १२६ ॥ सुस्थिरचित्त महात्मा मत्त मातंगकी समान चाल चलनेवाले लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका इष्ट विचार करते हुए धर्मके बलसे और पराक्रमसे उनकी रक्षा करने लगे ॥ १२७ ॥ अद्भुतदर्शन श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मण दोनोंजने ऋष्यमूक पर्वतके निकट विचरण कर रहेथे कि, उसी समय वानरगणोंके राजा सुग्रीवजीने ऋष्यमूककी ओर घूमते २ इन दोनों जनोंको देखा, वह उनको देख त्रासयुक्त हो भोजनादिकी चेष्टासे विरत हुए ॥ १२८ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीभी उसी स्थानमें घूमने लगे, गजतुल्य मंद चाल चलनेवाले महात्मा वह शाखामृग उस स्थानमें घूमकर चिन्तायुक्त और भयसे अति भीतहो उन राम लक्ष्मणजीको देख अति विषादको प्राप्त हुए ॥ १२९ ॥ उस वानरगणों करके सेवनीय मतंगमुनिके शापसे वालि जिसमें प्रवेश नहीं कर सकताथा, ऐसे पुण्याश्रममें वानर सुग्रीवादि वहां सदा रहाकरतेथे। इस समय महावीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीको वहां आते हुये देखकर वह शाखामृग अतिशय भीत और त्रासित हुए ॥ १३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

उन अति श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए महात्मा श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयोंको देखकर वानरराज सुग्रीव अत्यन्त भय पाय गये ॥ १ ॥ वह वानरवर व्याकुलचित्त हो दशों दिशाओंमें देखते किसी एक स्थानमें स्थिर होकर न टिक सके ॥२॥ उन महाबलवान् दोनों वीरोंको देखकर सुग्रीवजीने वहां ठहरनेकी इच्छा न की, उन अति डरेहुए कपिश्रेष्ठका चित्त अत्यन्त विषादको प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ वह धर्मात्मा सुग्रीवजी परम व्यग्रचित्तसे ऊंच नीचका विचार कर सब वानरोंके साथ ॥ ४ ॥ वानरराज सुग्रीव श्रीरामलक्ष्मण दोनों भाइयोंको देख बडी ऊबके साथ अपने मंत्रियोंसे कहने लगे ॥ ५ ॥ यह दोनों वीर निश्चयही वालिके भेजेहुये चीरवसन पहर, वह रूप बना यहांपर आकर इस वनमें घूमरहेहैं ॥ ६ ॥ इसके पीछे

सुग्रीवजीके साथी उन धनुषधारी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखकर उस गिरिके तटसे और दूसरे पर्वतके शिखरपर चले गये ॥७॥ उनमेंसे बडे २ यूथोंके अधिपति वानरगण शीघ्रतासे यूथपति सुग्रीवके निकट जाकर उनको घेरकर खडे हुये ॥ ८ ॥ एक दूसरेका सुख दुःख भोग करनेवाले वह वानरगण पर्वतके कँगूरोंको कंपित करते हुये एक शिखरसे दूसरे शिखरपर कूद फांद करने लगे ॥ ९ ॥ तिसके पीछे वह सब महाबलवान् वानरगण छलाँग मार २ कर उस पर्वतपरके जमेहुये फूले फले वृक्षोंको उखाडने लगे ॥ १० ॥ अनन्तर वह बडे २ महाबलवान् कपिगण उस महापर्वतके सब स्थानोंमें मृग, बिलाव, वाघादिकोंको त्रास उपजाकर कूद फांद कर चलने लगे ॥ ११ ॥ फिर सुग्रीवजीके मुख्य २ साथी जो कि मंत्रीथे वह कपिश्रेष्ठ सुग्रीवके सन्मुख जा हाथ जोडकर खडे होगये ॥ १२ ॥. तब वचन बोलनेमें चतुर हनुमान्जी वालिके डरसे अनिष्टकी शंका करतेहुये भयभीत सुग्रीवजीसे बोले ॥१३॥ सब वानरगण भयका त्याग करैं. कारण कि, यह मलयाचल पर्वत है यहांपर वालिके भयकी कोई संभावना नहीं ॥ १४ ॥. हे वानरश्रेष्ठ ! आप जिसके भयकी शंका करके व्याकुलचित्त होते हैं उस दुर्दर्शन क्रूर स्वभाववाले वालिको हम यहां नहीं देखते हैं ॥ १५ ॥ हे सौम्य ! जिस पापकर्म करनेवाले अपने बडे भाईसे आपको डर है वह दुष्टात्मा वाली यहांपर नहीं है इसलिये उस करके कोई भयका कारणभी हम नहीं देखते हैं ॥ १६ ॥ हे कपीश्वर ! आश्चर्यहै कि, आप अपना शाखामृगत्व स्पष्टही कर रहे हैं आप वानर जातिहैं उसी लघुचित्तताके कारण आप अपनी बुद्धिको स्थिर नहीं कर सकतेहैं ॥ १७ ॥ बुद्धि और विज्ञान युक्तहो संकेतमात्रसे आपको सब काम करलेने चाहिये राजा कुबुद्धिका आश्रयकरकै सर्व.जीवकी रक्षा नहीं करसकता ॥ ॥ १८ ॥ सुग्रीवजी हनुमान्जीके यह शुभकारी वचन सुनकर उनसे अतिहितकारी वचन कहते हुये ॥ १९ ॥ हनुमन् ! दीर्घबाहुयुक्त बडी २ आंखोंवाले शर चाप खड्ग धारण किये हुये देवताओंके पुत्रसमान इन दोनों वीरोंको देखकर किसको भय उपस्थित नहीं होगा ॥ २० ॥ हम जानते हैं कि, यह दो पुरुषश्रेष्ठ वालिके ही भेजेहुये यहां आये हैं, क्योंकि राजा लोगोंके बहुत सारे मित्र हुआ करते हैं इस कारण इस विषयमें विश्वास न करना चाहिये ॥ २१ ॥ मनुष्योंको अवश्य जानना कर्तव्य है कि, शत्रुलोग गुप्तभेदसे घूमा करते हैं

अविश्वासी वह शत्रुगण विश्वासी पुरुषोंको समय पातेही मार डालते हैं ॥ २२ ॥ वाली कार्य करनेमें बडा कुशल है. वह इस बातको भली प्रकार करसकताहै, अर्थात् हमें मारडालने सकता है; क्योंकि राजालोग बहुदर्शी और उपायोंके जाननेवाले होते हैं; इसलिये मनुष्योंको चाहिये कि, प्राकृत वेशमें उनके आशय को जाने ॥ २३ ॥ हे कपिवर ! तुम स्वाभाविक वेशसे जाकर उन दोनों जनोंके समाचार रूप और बोल चालसे भली भाँति जानकर आओ ॥ २४ ॥ तुम हर्षित मनसे जाकर प्रशंसा व इङ्गितसे उनको विश्वासमें लाकर उनके मनका भाव जान- लेना ॥ २५ ॥ हे वानरवर ! तुम हमारी ओरको मुखकर, उनके धनुष धारण करके यहां आनेका कारण और प्रयोजन जान आओ ॥ २६ ॥ ऐसा करनेसे यदि यह लोग विशुद्धभावयुक्त होंगे तोभी तुमको अवश्य ज्ञात होजायगा, और भाषण व रूपादिद्वारा यदि वह दुष्टभाव रखते होंगे तो वहभी सब समझ पडैगा॥ ॥ २७ ॥ कपिराज सुग्रीवजीसे इस प्रकार आज्ञा पाकर पवनपुत्र हनुमान्जी श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट जानेको मन करते हुये ॥ २८ ॥ महानुभाव कपिवर हनुमान्जी उन अतिभीत दुर्द्धर्ष सुग्रीवजीके वचन मान जहां श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्म- णजीके सहित विचरतेथे उस स्थानमें गमन करते हुये ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

॥ सर्गः ३.

हनुमान्जी महात्मा सुग्रीवजीके वचन सुनकर ऋष्यमूक पर्वतसे राम लक्ष्मण- जीके निकट कूदकर गमन करते हुये ॥ १ ॥ जब हनुमान्जी चले तो इन्होंने विश्वस्त बुद्धिका आश्रय करकै कपिरूप छोड भिक्षुकका रूप धारण किया ॥ २ ॥ तिसके पीछे हनुमान्जी मनोहर और विनीत होकर उनके निकट जा प्रणाम करकै उन दोनों भ्राताओंसे बोले ॥ ३ ॥ प्रथम तो उन दोनों वीरोंकी बडी प्रशंसा की, और फिर वानरोत्तम हनुमान्जीने विधिविधानसे उनकी पूजा भी की ॥ ४ ॥ फिर मृदुभावसे उन सत्यपराक्रम दोनों वीरोंसे कहने लगे कि, आप राजर्षिसदृश, और देवतुल्य व्रतधारी तपस्वी और ब्रह्मचारियोंमें अग्रणीय ॥५॥ इन सब मृग और दूसरे वनचारियोंको भयभीत करते हुये किस कारणसे इस देशमें आये हैं ॥ ६ ॥ आप लोग पंपाके तीरवाले वृक्षोंको चारों ओरसे देखकर इस पुण्यजलवाली

नदीकी शोभाको बढा रहे हो ॥ ७ ॥ आप लोग कृतकार्य, धैर्यवान् सुवर्णकी कांतिकी समान चीर पहरे बडी बाँहोंवाले और ऊंचे श्वांसें लेते हुये कौन हैं जो अपना अपूर्व रूप दिखा इन वनवासिनी प्रजाओंको पीडा देते हो ॥ ८ ॥ आपका देखना सिंहकी समान है आप महाबलवान् और महापराक्रम युक्त हैं; और आप दोनों जनोंके इन्द्रधनुषकी समान धनुष देखकर ज्ञात होता है कि, आप देखतेही शत्रु-ओंका नाश करेदेंगे ॥ ९ ॥ हम देखते हैं कि, आप श्रीमान् रूपसम्पन्न वृषभतुल्य परा-क्रम करनेवाले हाथीकी शुंड समान चढा उतारवाली लंबी भुजायें धारण किये द्युति-मान् नरश्रेष्ठ ॥ १० ॥ आप दोनों जनोंकी प्रभासे यह पर्वत प्रकाशित हो रहाहै और दोनों हीजन आप राज्य करनेके योग्यहो यहां पर कैसे आये? ॥ ११ ॥ आप दोनों जनोंके नयन कमलदलकी समानहैं और आप दोनों वीर जटा मंडल धारण कियेहैं; परस्पर एक दूसरेसे मिलता हुआ रूप धारण किये हमारी समझमें देवता-ओंके लोकसे आप यहां पर आयेहो ॥ १२ ॥ अथवा आपलोग चंद्रमा सूर्यतो नहींहैं? जो देवलोकसे अपनी इच्छानुसार मनुष्य लोकमें आयेहैं, आपलोग विशाल वक्षस्थल सहित मनुष्यों का रूप धारण किये कोई देवहीहो ॥ १३ ॥ आप दोनों वीरोंके कंधे सिंहके समानहैं, मानों वीररसही दोरूप धारण कर आयाहै? आप मानों मदयुक्त वृषभहीहो, बाहें आपकी लंबी, गोल और परिघाकारहैं ॥ १४ ॥ आप सब भूषण धारण करनेके योग्य किसकारणसे भूषण धारण नहीं कर रहेहैं? हम आप दोनों जनोंको ऐसा समझतेहैं कि आप इस पृथ्वीकी रक्षा करनेके यो-ग्यहैं ॥ १५ ॥ वन, सागर, विन्ध्यहिमालयादि पर्वत सहित भूमिका पालन कर-नेके योग्य आपहैं, यह जो दो धनुष आप धारण कियेहैं, यह भी चित्र विचित्र, सचिक्कण और चित्र विचित्र चन्दनाद्यनुलेपनयुक्तहैं ॥ १६ ॥ यह आपके धनुष वज्रधारी इन्द्रके धनुषकी समान प्रकाशित होतेहैं, और आप दोनों जनोंके तरक-शभी तीखे नाराचोंसे भरपूरहैं ॥ १७ ॥ जितने इनमें बाणहैं, यह शत्रुको स्पर्श करतेही प्राण लेने वालेहैं, और प्रज्वलित सर्पकी समान दीप्तिवाले बडे लंबे चौडे तपाये हुये सुवर्णसे भूषित जिनमें कब्जे लगे ॥ १८ ॥ यह खड्ग विराजमानहैं मानों केंचुली छोडे हुए सर्प हैं। फिर हम आपसे इस प्रकार कह रहेहैं, परन्तु आपलोग हमसे क्यों नहीं भाषण करते? ॥ १९ ॥ हे वीरो! इस समय हमारा आप परिचय श्रवण करें; सुग्रीव नामक एक धर्मात्मा श्रेष्ठ वानरहै, वह अपने बडे

भाईसे निकाले जाकर त्रासित व दुःखितहोकर इस समस्त पृथ्वीपर भ्रमण किया करतेहैं ॥ २० ॥ हम उसके वानरोंमें मुख्य हनुमान् नाम वानर उन वानरराज महात्मा सुग्रीवजीके भेजे हुए आपके पास आये हैं ॥ २१ ॥ उन धर्मात्मा सुग्रीवजीने आपके सहित मित्रता करनेकी इच्छा की है, हम पवनके पुत्र उन सुग्रीवजीके मंत्री और साथी हैं ॥ २२ ॥ यदि कहो कि वानरके मंत्री भिक्षुक कैसे ? उसपर कहतेहैं हम कामचारी और इच्छानुसार चलनेवाले सुग्रीवजीकी प्रियकामनासे भिक्षुकके रूपसे गुप्त वेषमें आपके निकट आयेहैं ॥ २३ ॥ वचनके जानने वाले और बोलनेमें चतुर हनुमान्जी श्रीराम लक्ष्मणजी दोनों वीरोंसे ऐसा कहकर फिर कुछ न बोले ॥ २४ ॥ श्रीमान् रामचंद्रजी उनके यह वचन सुन प्रफुल्ल वदन हुये और बगलमें खडेहुये अपने भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २५ ॥ कि यह हनुमान् महात्मा कपिराज सुग्रीवजीके मंत्री हैं, व उन्हींका प्रिय करनेकी कामनासे यह हमारे पास आयेहैं ॥ २६ ॥ हे लक्ष्मण ! सुग्रीवजीके सचिव वाक्यविशारद शत्रुओंका नाश करने वाले इन कपिश्रेष्ठसे तुम मधुर वचनोंके साथ वार्त्ताकरो॥ २७॥ तुम यह भी जानलो कि जिस पुरुषने ऋग्वेद नहीं पढा, यजुर्वेद अथवा सामवेद नहींपढा वह पुरुष कभी ऐसे वचन कहनेमें समर्थ नहीं होसकता कि, जैसे वचन इन्होंने कहे ॥ २८ ॥ हम समझतेहैं कि इन वानर श्रेष्ठने निश्चय समस्त व्याकरण शास्त्र पढाहै, क्योंकि यह हमारे साथ बहुत देरसे गीर्वाण भाषा बोल रहेहैं, परन्तु उसमें इन्होंने एकभी दूषित शब्द प्रयोग नहीं किया॥ २९॥इनके मुख, नेत्र, ललाट अथवा भौंह आदि और अंगोंमें बोलनेके समय कोई दोष नहीं पाया जाता॥ ३०॥ इनके वचन विस्तारसे रहित हैं, सन्देहयुक्त नहीं होते इन्होंने स्पष्ट २ मध्यम स्वरमें बिना देर लगाये हुये अन्तरमें टिके हुये कंठ गत सब वचन कहे हैं ॥ ३१॥ इन्होंने संस्कार युक्त अविलम्बित अद्भुत कल्याणदायिनी हृदय हरणकरनेवाली मनोहर वाणी उच्चारण की है ॥ ३२ ॥ छाती, कंठ, शिर इन तीन स्थानोंसे निकली हुई इनकी विचित्र वाणी हाथमें खड्ग उठाये हुये शत्रुका चित्तभी श्रवण करतेही प्रसन्न करदे इन वाक्योंसे महावीरजीकी सर्वज्ञता और शास्त्रज्ञता सूचित की ॥ ३३ ॥ हे लक्ष्मण ! जिस राजाके ऐसे श्रेष्ठ दूत हैं उन राजाके सब कार्य क्यों न सिद्ध होंगे ॥ ॥ ३४॥ जिनके इस प्रकारके गुणवान् कार्यका साधन करनेवाले दूत विद्यमान हो उनके सब कार्य निःसन्देह सिद्ध होजाते हैं ॥ ३५ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने इस

प्रकारसे कहा तो वचन बोलनेमें चतुर लक्ष्मणजी पवनपुत्र सुग्रीवजीके मंत्री हनु-मानूजीसे कहने लगे ॥ ३६ ॥ हे बुधवर ! महात्मा सुग्रीवजीके गुण हम लोग जानते हैं और उन्हीं कपिश्रेष्ठ सुग्रीवजीको हम खोजते हैं ॥ ३७ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! सुग्रीवजी जो कुछ कहैंगे हम तुम्हारे वचनोंका गौरव करकै वैसेही करैंगे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ इसके पीछे कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमानूजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन करकै अत्यन्त हर्षित हुये, और जयकी सिद्धिके विषयमें मनको समाधान कर सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजीमें मित्रता करानेकी इच्छा करते हुये ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

हनुमानूजी श्रीलक्ष्मणजीके वह मधुर भावभरे वचन श्रवण करकै अत्यन्त हर्षित चित्त हुये और मनही मनमें इन्होंने सुग्रीवजीके कार्यकी सिद्धि जानी ॥ १.॥ और विचारा कि, महात्मा सुग्रीवजीको राज्य प्राप्त होनेकी विलक्षण संभावना है क्योंकि यह कृतकार्य दोनों वीर अचानक यहां पर आय पहुँचे हैं ॥ २ ॥ और इनके साथ मित्रताई होनेकी भी पूरी २ आशा है अनन्तर वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमानूजी अत्य-न्त हृष्ट होकर वचन बोलनेमें कुशल श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ ३ ॥ कि, आप अपने छोटे भाईके साथ पंपाके कानन शोभित, दुर्गम अनेक प्रकारके हिंसक जन्तु-ओंसे परिपूर्ण घोर वनमें किस कारणसे आये हैं ? ॥ ४ ॥ हनुमानूजीके यह वचन श्रवण करकै, लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे पवन पुत्रको सब बताने लगे ॥ ॥ ५ ॥ कि अयोध्यानगरमें दशरथजीनामक धर्मवत्सल द्युतिमान एक राजाहुये, वह अपने धर्मके अनुसार नित्यही चारों वर्णकी प्रजाका पालन करते रहते ॥ ६ ॥ उनका द्वेष करनेवाला कोई नहीं हुआ, उनके प्रति किसीने वैरभाव नहीं प्रकाश किया वह दूसरे ब्रह्माजीकी समान समस्त जीवोंका पालन और रक्षा करते ॥ ७ ॥ उन्होंने बहुत २ दक्षिणा सहित अनेक अग्निष्टोमादि यज्ञ किये । यह रामचंद्रजी लोकमें विख्यात उनके प्रथम पुत्रहैं ॥ ८ ॥ यह समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले और पिताकी आज्ञाका पालन करनेवालेहैं, दशरथजीके यह सबमें बडे पुत्र व गुणवानहैं ॥ ९ ॥ सब राजलक्षणों करके युक्त और समस्त राज्य सम्पद विशि-

ष्ठहैं। यह राज्यभ्रष्ट होकर हमारे साथ वनमें वास करनेके लिये यहांपर आयेहैं ॥ ॥ १० ॥ जिस प्रकार महातेजस्वी सूर्यनारायण प्रभाके सहित अस्ताचलचूडा-वलंबी होतेहैं वैसेही यह प्रिया भार्या सीताके सहित इस स्थानमें आयेथे ॥ ११ ॥ हम इनके छोटे भाई हैं यह कृतज्ञ और बहुज्ञहैं इनके गुणगणोंसे वश होकर इनकी सेवा किया करतेहैं और लक्ष्मण हमारा नामहै ॥ १२ ॥ यह सुख भोगनेके योग्य राज्य पानेके लायक, सर्व जीवोंके हितकारी ऐश्वर्यसे विहीन वनवासमें निरत ॥ ॥ १३ ॥ इन श्रीरामचंद्रजीकी भार्या कामरूपी राक्षसकरके हरीगई हैं जिस राक्षसने सीताको हरण कियाहै उसको अभीतक हमने नहीं जान पायाहै ॥ १४ ॥ दनु नामक दितिका एक पुत्र शापके वशसे कबन्धराक्षस हुआथा, उस राक्षसनेही वानरपति सुग्रीवजीका और उनकी सामर्थ्यका वर्णनकर हमसे कहा कि ॥ १५ ॥ वह वानरनाथ महावीर्यवान् सुग्रीवजीही तुम्हारी भार्याके हरण करनेवालेको जानते होंगे वह कबन्ध राक्षस दनु हमसे ऐसा कह दिव्यरूपसे दीप्तिमान्हो स्वर्गको चला गया ॥ १६ ॥ हे हनुमन्! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेसे जो कुछ वृत्तान्तथा सो सब यथार्थही कहदिया, अब हमने व श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवजीकी शरण ग्रहणकी ॥ ॥ १७ ॥ जो श्रीरामचंद्रजी पहले बहुतसा धर्मादि दान करकै बहुतसे यशको प्राप्त हुएहैं जो पहले लोकोंके नाथथे वही इस समय सुग्रीवजीका आश्रय ग्रहण करतेहैं ॥ १८ ॥ सीता जिनकी पुत्रवधू और जोकि लोकोंके शरण देनेवाले और धर्मवत्सलथे उन्हीं लोक गणोंका आश्रय देनेवाले दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीकी शरण लेतेहैं ॥ १९ ॥ जो धर्मात्मा पहले लोकोंके आश्रय देनेवाले और शरण देनेवालेथे सो वही श्रीरामचंद्रजी अब सुग्रीवजीकी शरण लेते हैं ॥ ॥ २० ॥ जिनकी प्रसन्नतासे समस्त लोक प्रसन्न होजातेथे; वही श्रीरामचंद्रजी अब वानरराज सुग्रीवजीकी शरण ग्रहण करतेहैं प्रसन्नताकी इच्छा करतेहैं॥ २१॥ पूर्व समयमें राजा दशरथजीने जिन गुणयुक्त पृथ्वीनाथोंका सन्मान कियाथा ॥ ॥ २२ ॥ उनकेही सर्व लोकमें विख्यात ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्रजी वानरेन्द्र सुग्रीवजीकी शरण लेतेहैं ॥ २३ ॥ यह श्रीरामचन्द्रजी इस समय अपनी प्रियाके शोकसे व्याकुल होकर सुग्रीवजीकी शरणमें आयेहैं इस लिये सब यूथोंके सहित सुग्रीवजीको रामचन्द्रजीके प्रति प्रसन्न होकर इनके सब कार्य अवश्यही करने चाहिये ॥ २४ ॥ वाक्यविशारद हनुमान्जी लक्ष्मणजीके वह रोरो

करकै कहेहुये वचन सुनकर यह उत्तर देते हुये ॥२५॥ कि जितेन्द्रिय, बुद्धिमान्, ऐसे महात्मा पुरुषके साथ सुग्रीवजीको अवश्य मिलना चाहिये, क्योंकि ऐसे लोग निःसन्देह भाग्यसेही निकट आतेहैं ॥ २६ ॥ वह सुग्रीवजीभी राज्यभ्रष्टहैं, और वालिके साथ वैर बँधनेसे उस करकै सताये और भयभीत रह वनमें वास करतेहैं, इसी कारणसे वालिने उनकी स्त्रीकोभी हरण करलियाहै ॥ २७ ॥ वह सूर्यपुत्र सुग्रीवजी हम लोगोंके साथ मिलकर सीताजीके ढूँढनेमें अवश्यही आपकी सहायता करेंगे ॥ २८ ॥ हनुमान्‌जी सुमधुर और कोमल वचनोंसे यह सब वार्त्ता कह श्रीरामचन्द्रजीस कि, हे वीर ! अब हम सुग्रीवजीके पासको चलेंगे ॥ २९ ॥ जब हनुमान्‌जीने ऐसा कहा तब धर्मात्मा लक्ष्मणजी हनुमान्‌जीकी यथायोग्य प्रशंसा कर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ३० ॥ हे राघव ! यह वानर पवनपुत्र जिसप्रकारसे हर्षित होकर बात कहतेहैं इससे ज्ञात होताहै कि, सुग्रीवजीभी कुछ कार्य आपसे करावेंगे, इसलिये समझ पडताहै कि आपकाभी सब कार्य सिद्ध होजायगा ॥ ३१ ॥ पवनकुमार हनुमान्‌जी जिस प्रकारसे हर्षित होकर प्रसन्न वदनसे वार्त्ता कर रहेहैं इससे ज्ञात होताहै कि, इन्होंने कभी झूंठ नहीं. बोला ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे महापंडित पवनपुत्र हनुमान्‌जी उन दोनों रघुवीरोंको लेकर सुग्रीवजीके पास चले ॥ ॥ ३३ ॥ कपिकुंजर भिक्षुकका रूप छोड वानर रूप धारण कर अपनी पीठपर दोनों वीरोंको चढाय सुग्रीवजीके निकट गमन करनेलगे ॥ ३४ ॥ वह विपुल यशस्वी कार्यकरनेमें वीर अमित पराक्रम और विमल चित्त पवनपुत्र कृतकृत्यकी समान हर्षितहो श्रीराम लक्ष्मण सहित उस गिरिवर पर जापहुँचे ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.

हनुमान्‌जी ऋष्यमूक पर्वतपरसे मलयाचलपर जाय सुग्रीवजीसे श्रीराम लक्ष्मणजीकी आगमन वार्ता निवेदन करके कहने लगे ॥ १ ॥ कि, यही महापंडित सत्य पराक्रम विपुल वायशोला श्रीरामचंद्रजी हैं यह भ्राता लक्ष्मणजीके साथ इस स्थानमें आये हैं ॥ २ ॥ इन श्रीरामचंद्रजीने इक्ष्वाकुओंके विशुद्ध वंशमें दशरथजीके औरससे जन्म ग्रहण कियाहै, यह अपने धर्मको पालनेके लिये पिताकी आज्ञा पाकर उसके पालन करनेमें यत्नवान् हुये हैं ॥ ३ ॥ उन नृपतिश्रेष्ठ दशरथजीने

राजसूय और अश्वमेधादि यज्ञोंमें अग्निको तृप्त किया, और उन यज्ञोंमें सैकडों हजारो गायें और मणियें दक्षिणादों ॥ ४ ॥ उन्होंने तपस्या और सत्य वचनद्वारा पृथ्वीका पालन किया उनकी स्त्रीके लिये उनके पुत्र यह श्रीरामचंद्रजी वनमें आयेहैं ॥ ५ ॥ तबसे यह महात्मा बराबर वनमें वास करतेथे कि, किसी समय रावण आकर इनकी भार्याको हरण कर लेगया सो यह अब आपकी शरण आयें हैं ॥ ६ ॥ यह श्रीराम लक्ष्मणजी पूजनीय जनोंमें अग्रणीय हैं यह दोनों जनें आपके सहित मित्रता करनेकी वासनासे यहां आये हैं आप इनका सत्कारकर पूजन करो ॥ ७ ॥ कपिराज सुग्रीवजी हनुमान्‌जीके वचन सुनकर प्रीतिपूर्वक प्रफुल्ल देहसे श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ८ ॥ कि आप धर्मशील विनीत सबके वत्सल और महातपस्वी हैं, महात्मा हनुमान्‌जीने आपके समस्त गुण हमको बतायेहैं ॥ ९ ॥ हे राघव ! हम वानर हैं हमारे साथ आपने जो मित्रता करनेकी वासनाकी है यह हमारा सत्कार और परमलाभही है ॥ १० ॥ यदि हमारे सहित मित्रताई करनेकी आप वासना करतेहों तो हम अपने दोनों हाथ पसारते हैं आप हमको अपने करकमलसे ग्रहण करके निश्चिन्त हो हाथसे हाथ मिलाय प्रतिज्ञापूर्वक मित्रतारूपकी मर्यादा स्थापित कीजिये ॥ ११ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके यह सुखकर वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुये और अपने हाथसे सुग्रीवजीका हाथ पकडा ॥ १२ ॥ तब सुग्रीवजीभी सीताजीके वियोगसे पीडित श्रीरामचंद्रजीसे भलीभाँति मिले भेंटे तिसके पीछे शत्रुओंके दमन करनेवाले हनुमान्‌जीने भिक्षुकका रूप त्याग दिया जो कि उन्होंने सुग्रीवको विश्वास दिलानेके लिये फिर धारण कियाथा ॥ १३ ॥ भिक्षुकका रूप त्याग हनुमान्‌जी दो काष्ठको ले आये और घिसकर उनमेंसे अग्नि निकाली फिर पुष्पादि द्वारा उस दीप्तिमान् अग्निकी पूजा कर ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजी और सुग्रीवजीके बीचमें उस अग्निको धर दिया तब वह दोनों जन दीप्तिमान् अग्निकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ १५ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी और सुग्रीवजी दोनों परम प्रसन्नतासे मित्र होगये फिर वानरेन्द्र व नरेन्द्र दोनों ॥ १६ ॥ परस्पर एक दूसरेको देखकर तृप्त नहीं होतेथे। "आप हमारे प्रियसखा व हृदयनिवासी हैं. हमारा व आपका सुख दुःख एकहै" ॥ ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीने हर्षित होकर यहवचन श्रीरामचंद्रजीसे कह एक साखूकी शाखा जो अनेक पुष्पपत्रोंसे भूषित थी अपने हाथोंसे तोड ॥ १८ ॥ भूमिपर बिछादी तब

सुग्रीवजी स्वयं श्रीरामचन्द्रजीके साथ उसी शाखापर बैठे और लक्ष्मणजीके लिये हर्षित होकर पवनपुत्र हनूमान्‌जीने ॥ १९ ॥ परम पुष्पित चन्दन वृक्षकी शाखा बैठनेको दी तत्पश्चात् प्रसन्न हर्षितहो सुग्रीवजी मधुर वाणीसे ॥ २० ॥ प्रफुल्ललोचन श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि, हे श्रीरामचंद्रजी ! हम घरसे खदेडे जाकर भयभीतहो भ्रमण किया करतेहैं ॥ २१ ॥ हमारी स्त्रीभी हरलीगई है इसीकारण हम त्रासित होकर इस दुर्गम वनमें वास करतेहैं, हमारा चित्त क्षणमात्रको अविचलित नहींहोता, रातदिन डरके मारे व्याकुल रहा करतेहैं ॥ २२ ॥ हे राघव ! वालिने हमारेसाथ वैर कियाहै, वह हमारा बडा भाईहै, हे महाभाग ! हम वालिके भयसे भीतहुयेहैं, सो आप हमारा उस भयसे उद्धार कीजिये ॥ २३॥ हे काकुस्थ ! जिससे वालिकरकै हमको कुछभी भय न रहै वैसाही उपाय करना आपको सब भाँति उचितहै, जब सुग्रीवजीने यह कहा, तब धर्मज्ञ, तेजस्वी, धर्मवत्सल ॥ २४ ॥ काकुस्थकुल-तिलक श्रीरामचन्द्रजी हँसकर सुग्रीवजीसे बोले कि, हे कपिवर ! हमारे साथ मित्रता करनेमें तुम्हारा विशेष उपकार होगा यह हम भली भाँति जानतेहैं ॥ २५ ॥ इसमें कुछ संदेह नहींहै कि तुम्हारी भार्याके हरण करनेवाले वालिको हम मार डालेंगे. देखो ! हमारे यह सूर्यकी प्रभाके तुल्य तीक्ष्ण फलकयुक्त अमोघ बाण॥ २६॥ उस दुष्ट वालिके ऊपर वेगसहित गिरेंगे और वह सायक कंकपत्रलगे, इन्द्रके वज्रकी समान ॥ २७ ॥ अति तेज सीधे क्रोधायमान भुजंगके समान वालिको डसैंगे, तुम अब वालिको तीक्ष्ण और विष समान ॥ २८ ॥ बाणोंसे मरकर दूसरे पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरा हुआ देखोगे, अपना हित करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुन सुग्रीवजी परमप्रसन्न होकर उनसे कहने लगे ॥ २९ ॥ कि हे नरसिंहवीर ! हम आपके प्रसादसे राज्य और भार्याको प्राप्त करैंगे हे नरदेव ! हमारा शत्रु बडा भाई वालि जिससे हमको मारनहीं सके आप ऐसा उपाय कर दीजिये ॥ ३० ॥ इन श्रीरामचन्द्र और सुग्रीवजीकी मित्रताई होनेके समयमें जानकीके वालिके और राक्षसोंके, कमल, सुवर्ण और अग्निके समान बाँये नेत्र एक बारही फडकने लगे ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

तिसके पीछे सुग्रीवजी प्रसन्न होकर फिर श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे कि, हे श्रीरामचन्द्रजी हम आपका वृत्तान्त जानतेहैं हमारे श्रेष्ठमंत्री और तुम्हारे सेवक ॥ ॥ १ ॥ हनुमानूजीने हमें यह सब बतला दियाहै कि, जिस निमित्त आप भ्राता लक्ष्मणजीके सहित वनमें आकर वास करतेहैं ॥ २ ॥ आपकी भार्या मिथिलेश कुमारी जानकीजीको राक्षस हरणकर लेगया आप और धीमान् लक्ष्मणजीके न रहने पर रुदन करतीहुई सीताजीको वह लेगया ॥ ३ ॥ वह तौ अवसर देखही रहाथा जैसेही आप दोनों जन दूरगये वैसेही वह उनको लेगया, कुछ दूर ले जानेके पीछे उसे गृध्रराज जटायु मिले. और उन्होंने सीता हरणका विरोध किया, तब राक्षस उनको संहार सीताजीको लेगया, और आपको भार्या वियोग दुःख देदिया ॥ ४ ॥ जो हुआ सो हुआ परन्तु अब हम थोडेही कालमें यह आपका भार्यावियोग दुःख दूर करेंगे, हम नष्ट हुई देव श्रुतिके समान सीताजीको उद्धार करकै आपके निकट ले आवेंगे इसमें कुछ संदेह नहींहै। हे शत्रुनाशन! वह रसातल वा आकाश कहींभी क्योंनहो मैं आपकी भार्याको लाकर मिला दूंगा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! हमारा यह वचन आप सत्यही जाने इन्द्रके सहित सुरगण व समस्त असुरगण कोईभी जानकीजीको नहीं छिपा सकेगा ॥ ७ ॥ हे महाबाहु! आपकी भार्याको विषकी समान पचानेको कोईभी समर्थ नहीं होगा, हम निश्चयही उनको ले आवेंगे इसलिये आप शोक छोड दीजिये ॥ ८ ॥ हम अनुमानसे समझते हैं कि, वह दुष्टाचारी रावण जब उनको हरण करकै लिये जा रहाथा, तब हमने उनको देखाथा, कदाचित् वही जनककुमारी होंगी ॥ ९ ॥ उस समय वह राम! राम! और लक्ष्मण! यह कहकर बडे शब्दसे रो रहीथीं उस समय वह रावणके वशमें पडी पन्नगराज वधूकी समान प्रगट होरहीथीं ॥ १० ॥ उस समय हम और हमारे चार मंत्रियोंको पर्वत पर बैठे देख उन्होंने अपना उत्तरीय वस्त्र और उत्तम २ कुछ गहने छोडे ॥ ११ ॥ हमने उन सब आभूषणादिकोंको उठाकर धर रक्खाहै! हम उन सबको लातेहैं आप उन सबको पहँचान लीजिये ॥ १२ ॥ जब सुग्रीवजीने ऐसा कहा तो प्रियबोलनेवाले श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवजीसे बोले कि हे सखे! विलम्ब क्यों करतेहो? उनको शीघ्र लेआओ ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर सुग्रीवजी उनका प्रिय करनेकी कामनासे शैलकाननसे शीघ्र

पर्वतकी गहन कंदरामें प्रवेश करते हुये ॥ १४ ॥ वानरनाथने शीघ्र उत्तरीय वस्त्र और वह सब गहने लाय यह देखिये ! यह कहकर शीघ्र रामचन्द्रजीको दिखाये ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी वस्त्र और गहने देख व ग्रहण कर कुहरसे ढके चन्द्रमाकी समान अश्रुयुक्तहो रुद्धकंठ हुये ॥ १६ ॥ वह सीताजीके स्नेहसे उत्पन्न आंसुओंसे दूषित हो हा प्रिये! कहकर धीरज छोड पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी उन उत्तम गहनोंको बार २ हृदयमें लगा बिलमें बैठे क्रोधित सर्पकी समान ऊंचे २ श्वास छोडने लगे ॥ १८ ॥ तिसके पीछे जब आंसुओंका वेग कम हुआ तो बगलमें बैठे हुये लक्ष्मणजीको देख शोकके वेगसे श्रीरामचन्द्रजी औरभी विलाप करने लगे ॥ १९ ॥ वह बोले देखो लक्ष्मण! जब जानकीजी हरण कीजातीथीं तब उन्होंने यह उत्तरीय और यह भूषण पृथ्वीपर फेंक दियेथे ॥ २० ॥ हरणके समय सीताजीने हरी घासवाली भूमिपर यह भूषण अपने अंगोंसे निकालकर डाल दियेहैं देखो ! यह सब वैसेके वैसेही हैं, कुछ मलीन नहीं हुये ॥ २१ ॥ इस रीतिसे रामचन्द्रने लक्ष्मणजीसे कहा, तब लक्ष्मणजी कहने लगे कि, मैं जानकीजीके बाहु भूषण नहीं जानता हूं और कर्णकुंडलभी नहीं जानताहूं ॥ २२ ॥ परन्तु नित्य प्रति श्रीजानकीजीके चरणोंका नमस्कार करनेसे उन्होंके पादभूषण नूपुर मात्रको जानताहूं तब श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवजीसे बोले ॥ २३ ॥ कि हे सुग्रीवजी ! तुमने उन हरण की जाती हुईको कहां देखा ? और किस स्थानमें उग्ररूपी राक्षस हमारी प्राणप्रिया सीताजीको हरण करकै ले गया सो तुम बताओ ॥ २४ ॥ और वह राक्षस कहां वास करता है कि जिसके करनेसे हमपर बडी विपद पडी है, और उसकेही निमित्त हम सब राक्षसोंका संहार करैंगे ॥ २५ ॥ उसने जनक-सुताको हरण कर हमको क्रोध उपजाया, मानो अपनी मृत्युका बंद द्वार आपही खोल लिया ॥ २६ ॥ हे कपिपते ! जिस राक्षसने हमारी प्यारी भार्याका अपमान कर उनको वनसे हरण कर लिया है, तुम उस राक्षसका नाम बताओ, हम उस शत्रुका तत्काल संहार कर यमपुरीमें पठावेंगे ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

वानरराज सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके यह आर्तवचन श्रवण कर हाथ जोड आंसू भर गद्गदस्वरसे उनसे कहने लगे ॥ १ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी ! हम उस पापमति, और बुरे कुलमें उत्पन्न उस राक्षसका स्थान, कुल, विक्रम, या उसकी सामर्थ्यको कुछभी नहीं जानते हैं ॥ २ ॥ परन्तु हे अरिन्दम ! हम सत्य करकै प्रतिज्ञा करते हैं कि जिससे जानकीजी प्राप्त होजावें, हम वैसा करनेमें सब भांति यत्न करेंगे, इसलिये आप शोक छोडदीजिये ॥ ३ ॥ रावणको वंशसहित संहा-रकर आपके पौरुषका विस्तार कर आप जिससे शीघ्र प्रसन्न और संतुष्ट होवें, हम वही कार्य करेंगे ॥ ४ ॥ आप इतने विकल न हूजिये अपने धीरजका आश्रय लीजिये आपसमान पुरुषोंको इस प्रकारकी लघुताका आश्रय लेना उचित नहीं है ॥ ५ ॥ हमकोभी स्त्रीके हर जानेसे उत्पन्न महादुःख प्राप्त हुआहै, तथापि हमने धैर्यका परित्याग करकै शोकका आश्रय नहीं लिया ॥ ६ ॥ हमने अतिनीच वानरजाति होकरभी शोक नहीं किया, फिर आप तो महात्मा विनीत, और धीरज-वान् पुरुषहैं, सो आप तो कभीभी शोक नहीं करेंगे, इसमें अधिक कहनाही क्या ॥ ७ ॥ आप शोकसे निकला हुआ अश्रुजल, अपने धीरज और बलसे रोकिये; कारण कि पराक्रमी पुरुषोंकी मर्यादा और धारणाशक्ति आप त्याग कर-नेके योग्य नहींहैं ॥ ८ ॥ धीरजवान पुरुष, विपद्के समयमें धनकी कमताईमें, भयके समय वा प्राणशंका उपस्थित होनेपरभी अपनी बुद्धिसे विचारकर कार्य कर-नेसे कभी व्याकुल नहीं होते ॥ ९ ॥ जो मूढ पुरुष नित्य ही विकलाईका आश्रय लेता है, वह पुरुष बोझसे लदी नौकाकी समान अवश्यही शोकके जलमें डूबजाता है ॥ १० ॥ यह हम आपके निकट हाथ जोड़कर कहते हैं कि, आप प्रसन्न होवें और पौरुषका आश्रय करकै अपने अंतरमें शोकको बैठनेका अवकाश नदें ॥ ११ ॥ जो पुरुष शोक किया करतेहैं उनको सुख नहीं होता बरन उनका तेजभी क्षीण हो जाताहै, इसलिये आप शोकका परित्याग कीजिये ॥ १२ ॥ हे राजेन्द्र ! अत्यन्त शोक करनेवाले मनुष्योंके जीवनमेंभी संशय होजाताहै इसलिये आप शोकको छोड करके धीरज धारण कीजिये ॥ १३ ॥ हम मित्रभावसेही हितकी बात कहतेहैं कुछ आपको उपदेश नहीं देते. सो आप हमारी मित्रताईका आदर करके केवल धीरजका आश्रय ग्रहण कीजिये ॥ १४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवके इसप्रकार सुमधुर समझानेवाले

वचन सुनकर वस्त्रके सिरेसे अपना अश्रु परिपूर्ण वदन पोंछडाला ॥ १५॥ लोकनाथ काकुत्स्थकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजी श्रीसुग्रीवजीके वचनोंसे अपनी प्रकृतिमें टिक धीरज धारण करते हुये और वानर राज सुग्रीवजीको हृदयसे लगाय मिले और कहने लगे ॥ १६ ॥ हे सुग्रीव ! स्नेहयुक्त हितकारी चतुर सखाको जो कर्तव्य और उचितहै, वह समस्तही तुमने किया ॥ १७ ॥ तुम्हारे समझानेने हमें स्वस्थ और अपनी प्रकृतिपर स्थिर किया विशेष करके ऐसे समयमें तुम्हारी समान बन्धु मिलने महादुर्लभ हैं ॥ १८ ॥ परन्तु तुम घोर दुरात्मा रावणके संहार करने और जनककुमारीका खोज करनेके लिये विशेष यत्न करो ॥१९॥ और हमभी विश्वासी चित्तसे जिस कार्यको करैं वहभी तुम हमसे कहो, क्योंकि वर्षाकालके समय अच्छेखेतमें बीज बोये हुयेकी समान तुम्हारेभी सब विचार सफलहैं ॥ २० ॥ हे वानरशार्दूल ! हमने जो अभिमानसे तुमसे कहा कि, हम वालिको मारही डालेंगे, इस वाक्यकोभी तुम सत्यही सत्य जानो ॥ २१ ॥ हमने पहले कभी मिथ्या वचन नहीं बोला, और न कभी आगेको बोलेंगे हमने अब सत्यही सत्य तुमसे प्रतिज्ञा और शपथ की ॥ २२ ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजीने हर्षित हो श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर अपने बडे २ मंत्रियोंके साथ भलीभांति अपने मनमें समझ लिया कि श्रीरामचन्द्रजीने जो प्रतिज्ञा की है वह अब पूरी हुई ॥ २३ ॥ इसप्रकारसे एकान्तमें मिलकर नर और वानर दोनों अपने सुख दुःख प्रगट करते हुये ॥२४॥ नृपगणोंके अधीश्वर महानुभाव श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर वानर प्रधान सुग्रीवजी मनही मनमें विचार करने लगे कि, अब निःसन्देह हमारा कार्य सिद्ध हो गया ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

जब श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर ऐसे वचन कहे तो सुग्रीवजी हर्षित होकर वीरवर लक्ष्मणजीके बडे भ्राता श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ कि अब हम निःसन्देह सर्वप्रकारसे देवतागणोंके अनुगृहीत हुये, क्योंकि आप समान गुणवान् पुरुषके साथ हमारी मित्रता हुई ॥ २ ॥ हे शुद्धात्मा ! प्रभो ! जब आप सहाय हैं तब तो देवताओंका राज्यलेनेमेंभी समर्थ हैं, हमारा अपना राज्य लेना तो एक अति

साधारण बात है ॥ ३ ॥ हे राघव ! जब कि हमने रघुवंशमें उत्पन्न हुये पुरुषसे अग्निके सन्मुख मित्रता प्राप्त की तब अवश्यही हम अपने बन्धु बान्धव और सुहृद्-गणोंके प्रीतिपात्र और माननीय हुये, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ४ ॥ और हम-कोभी आप अपना योग्य ही मित्र समझिये, हमारे अंतःकरणमें आपके प्रति जिस प्रकारका स्नेहभाव उदय हुआहै उसको हम कहने और प्रगट करनेमें समर्थ नहींहैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्रिय जीतनेवालोंमें प्रथम गिनेजानेके योग्य ! आप सरीखे कृतविद्य महात्मागणोंमें सखाओंकी निश्चल प्रीति होगी, इसमें संदेहही क्याहै ? ॥६॥ साधु मित्र लोग, साधुसखाओंके, सुवर्ण, चांदी व और दूसरे उत्तम २ गहने आदिको अपना देखकर अलग नहीं देखते, बरन भेदरहित होकर परस्परही समझते हैं, कि यह अपना है सो उनका, और उनका है सो हमारा ॥७॥ धनवान्‌ही हो; वा नि-र्धनहो, दुःखीहो वा सुखीहो अथवा दोषरहितहो, वा दोषयुक्त हो परन्तु मित्र मित्रही-को परमगति समझते हैं ॥८॥हे पापरहित! जो परस्पर एक स्नेहहीको देखते हैं वह परस्पर मित्रके लिये धनको छोड सुखसे मुँह मोड, और देशतकसे रिश्ता तोड मित्रके अनुसार बर्ताव करते हैं, और उसे कभी नहीं छोडते हैं ॥९॥ सुग्रीवजीके यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी, उत्फुल्लकान्ति धारण किये हुये, इन्द्र समान धीमान् लक्ष्मणजीके सन्मुख उन प्रियदर्शन वानरराजसे बोले कि हे सखे ! निःसंदेह यह जो आपने कहा सबही यथार्थ है ॥ १० ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजीने, श्रीराम-चन्द्रजी और महाबलवान् लक्ष्मणजीको पृथ्वीपर बैठा हुआ देख चंचलभावसे चारों ओर दृष्टि डाली ॥ ११ ॥ तब वानरश्रेष्ठने देखा कि, उत्तम पुष्प, और कुछेक पत्तोंसे युक्त भ्रमरगणोंसे सुशोभित समीपही एक शालका वृक्ष लगा है ॥ १२ ॥ उस वृक्षकी बहुत पत्तोंवाली एक शाखा तोड श्रीरामचन्द्रजीके लिये आसन बना उनके सहित उसपर आपभी बैठे ॥ १३ ॥ सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजीको बैठा हुआ देखकर हनुमान्‌जीनेभी लक्ष्मणजीके लिये एक शालशाखा तोड आसन बनादिया और उसपर विनीतभावसे लक्ष्मणजीको बैठाया ॥ १४ ॥ तब सुप्रसन्नमन सागरकी समान गंभीर स्वभाव युक्त श्रीरामचन्द्रजीको शालपुष्प परिपूर्ण उस गिरिवरपर बैठा हुआ देखकर ॥ १५ ॥ सुग्रीवजी हर्षित हो मधुर हितकारी वचनोंसे प्रेम और हर्षमें भरनेके कारण व्याकुल होकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १६ ॥ कि हम अपने भ्रातासे अपकारको प्राप्तहो भार्याको खोय और

भयसे कातर होकर ऋष्यमूक पर्वतपर विचरतेहैं ॥ १७ ॥ सो यहांपरभी हम उस वालिके भयसे त्रासित और भयसे चेतना रहित रहा करतेहैं, कारण कि हमारे भ्राता वालिने गृहसे हमको निकाल अबतकभी हमसे वैर नहीं छोडा ॥ १८ ॥ हे सर्वलोकोंको अभय देनेवाले ! हम वालिके भयसे महा आर्त और अनाथ होगयेहैं सो हमारे ऊपर आप प्रसन्न हूजिये ॥ १९॥ जब सुग्रीवजीने ऐसा कहा तो धर्मज्ञ धर्मवत्सल तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी हँसते हुये उनसे बोले ॥ २०॥ कि उपकार करनेहीसे मित्र और अपकार करनेहीसे शत्रु होताहै तुमसे फिर कहते हैं कि हम आजही तुम्हारी भार्याके हरण करनेवाले उस वालिको मार डालेंगे ॥ २१ ॥ हे महाभाग ! हमारे यह कार्त्तिकेय वनसे उत्पन्न सुवर्ण भूषित बडे वेगवाले तीखे बाण देखो ॥ २२ ॥ कि जिनकी शिखा व नली चील्हके पंखोंकी समान बनी हैं ऐसे इन्द्रके वज्रकी समान सुपर्वा तीखे फलकयुक्त और क्रोधसहित सर्पकी समान यह बाणहैं ॥ २३ ॥ हम तुम्हारी भार्याके हरनेवाले पापी शत्रु भ्राता वालिको इन्हीं अपने बाणोंसे पर्वतकी समान गिराकर मार डालेंगे सो तुम देखोही-गे ॥ २४ ॥ वाहिनी सेनाके पति सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुन अतुल हर्ष प्राप्तकर साधु ! साधु । कह श्रीरामचन्द्रजीकी बडाई करने लगे ॥ २५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! हम शोकके मारे व्याकुलहैं और आप शोकसे पीडित पुरुषोंकी गतिहैं, सो आपको हम अपना मित्र जानकर अपना दुःख प्रगट करतेहैं ॥ २६ ॥ आपने अपना हाथ दे अग्निको साक्षी करके हमको अपना मित्र बनाया है सो हम सत्यही सत्य कहतेहैं कि, आप हमारे प्राणोंसेभी अधिक प्यारे माननीयहैं ॥ २७॥ हम अपना विश्वासी मित्र समझकर आपसे अपना सब वृत्तान्त कहते हैं, क्योंकि अप-ना वृत्तान्त आपके निकट कहनेसे हमारे मनका दुःख बहुत हलका होजाताहै॥ २८॥ इसप्रकारसे कहते २ सुग्रीवजीके नेत्रोंमें आँसू आगये और उनकी वाणी कफसे दूषित होगई जिससे कि फिर वह ऊंचेस्वरसे कुछ न बोलसके॥ २९॥ वानरराज सुग्रीवजीने नदीके वेगकी समान आये हुए आँसुओंके वेगको सहसा अपने धीरजसे धारण कर लिया क्योंकि उन्होंने श्रीरामचंद्रजीके निकट बैठकर रोना उचित न जाना॥ ३०॥ तेजस्वी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी आँसुओंका वेग रोक दोनों नेत्रोंको पोछ श्रीरामचं-द्रजीसे बोले ॥ ३१ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! पहले बलवान् वालिने हमको हमारे राज्यसे भ्रष्टकर कठोर वचन सुनाकर घरसे निकाल दिया ॥ ३२ ॥ उसने हमारी

प्राणसेभी अधिक प्यारी स्त्रीको हरण करके हमारे सब इष्ट मित्रोंको बांध रक्खा है ॥ ३३ ॥ हे राघव ! वह दुष्टात्मा हमारा नाश करनेके लिये अनेकवार यत्न कर चुकाहै परन्तु हमको मारनेके लिये उसके भेजे हुए सब वानरोंको हमने मार डालाहै ॥ ३४ ॥ हम उसी हेतुसे आपको देखकर शंका करके आपके निकट आनेमें डरेथे क्योंकि भयसे सब पुरुष डरा करतेहैं ॥ ३५ ॥ केवल यह हनुमानादि वानरगण हमारी सहायता करतेहैं इसही कारणसे हम अतिशय कष्टमें पडकरभी प्राण धारण किये हुयेहैं ॥ ३६ ॥ यह हमारे स्नेही मित्र वानरगण हमारी सब प्रकारसे रक्षा करतेहैं यह लोक हमारे बैठनेपर बैठते और हमारे कहींको चलनेपर चलते हैं ॥ ३७ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! बहुत कहनेसे क्याहै। हमने अपना-सबही वृत्तान्त संक्षेपसे कहदिया, हमारे शत्रु और बडे भाई वालिका पौरुष अत्यन्त विख्यातहै ॥ ३८ ॥ उसका नाश होनेसे हमारा दुःखभी नाशको प्राप्त होगा, उसका वध होनेहीमें सुख और जीवन संचारकी आशा हो सकती है ॥ ३९ ॥ हमने शोकसे पीडित होकर जो अपने शोकके नाश करनेका उपाय बताया है, बस इससे हमारा दुःख जा सकताहै. दुःखितही हो वा सुखीही हो; मित्रही मित्रकी गति होजाताहै ॥ ४० ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बोले कि, तुम्हारा वैर वालिसे किस कारण हुआ सो उसको हम यथार्थ रूपसे श्रवण करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ४१ ॥ हे वानरवर ! तुम्हारे बीचमें वैर होनेका कारण सुन बलाबल विचारकर फिर तुम्हारा कार्य करेंगे ॥ ४२ ॥ तुम्हारा अपमान सुनकर हमारा कोप बलवानहो हृदयकम्पनकारी वर्षाकालीन वारिवेगकी समान बढता जाताहै ॥ ४३ ॥ हम जबतक धनुष नहीं चढाते हैं तबतक तुम हर्षितचित्तसे सब वृत्तान्त कहदो, जैसेही कि, हम बाण छोडेंगे वैसेही तुम्हारा रिपु मर जायगा, इस बातको निःसन्देह ठीक २ कर जानो ॥ ४४ ॥ महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर सुग्रीवजी अपने चार मंत्रियों सहित अतुलित हर्ष प्राप्त करतेहुये ॥ ४५ ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजीने प्रसन्नवदन हो रामचन्द्रजीसे वालिसे वैर होनेका कारण वर्णन करना आरंभ किया ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

वालिनामक शत्रुओंका विनाशक हमारा बडाभाई पिताका और जबतक वैर न हुआथा तबतक हमाराभी अत्यन्त प्रियथा ॥ १ ॥ जब पिताजीकी मृत्यु हुई तब वालिको बडा पुत्र समझ मंत्रियोंने परस्पर सम्मतिकर उसको वानरोंका राजा बनाया ॥ २ ॥ वह पिता पितामहादिकोंका राज्य पालन करने लगे, हम उनके निकट दासकी समान विनीतभावसे रहने लगे ॥ ३ ॥ पहले किसी समयमें मायावी नामक तेजस्वी दनुपुत्रके साथ स्त्रीके निमित्त वालिका वैर हुआथा, यह दानव पहले मयका पुत्र था, फिर दुन्दुभीका पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ एक समय जब कि, रात्रिके कालमें सब सो रहे थे कि वही मायावी किष्किन्धापुरीके द्वारपर आकर वालिको रणकरने लिये पुकारने लगा ॥ ५ ॥ हमारे भ्राता वाली उस समय सोतेथे, उसका भयंकर शब्द सुन और उसके न सह सकनेपर वेगसहित बाहरको चले ॥ ६ ॥ वहांसे झपट क्रोधके वशमें हो उस असुरश्रेष्ठको मारनेके लिये तैयार हुये, तिसके पीछे समस्त स्त्रियोंने और हमने उनको निवारण किया ॥ ७ ॥ परन्तु महाबलि वालिने किसीकी एक बात न सुनी, और संग्राम करनेके लिये चल दिये, और महा बलवान् होनेके कारण सुहृदताके स्नेहसे हमभी उनके पीछे २ चलेगये ॥ ८ ॥ वह असुर हमारे भ्राता वालिको व हमको उनके पीछे २ दूरसे आताहुआ देखकर भयभीतहो वेग सहित भागनेलगा, ॥ ९ ॥ जब वह त्रासित होकर वेगसहित दौडा तब हम दोनों जनेभी उसके पीछे २ वेगयुक्त हो दौडे, क्योंकि निशानाथके उदय होनेसे उस समय चांदनी खिल रहीथी ॥ १० ॥ वह राक्षस भागते २ पृथ्वीके तृणोंकरकै छायेहुये एक दुर्गम और बडे खोहमें प्रवेश करगया, तब हम दोनों भाई उस गुफाके आगे खडे रहे ॥ ११ ॥ उस शत्रुको गुफामें बैठा हुआ देख हमारे भ्राता वाली क्रोधसे मूर्च्छित हो हमसे बोले ॥ १२ ॥ कि हे सुग्रीव ! जबतक हम इस शत्रुका संहार करकै न फिरैं तबतक तुम यहींपर खडे रहना ॥ १३ ॥ हमने उनके साथ बिलमें जानेके लिये प्रार्थना की परन्तु उन्होंने अपने चरणकी सौगन्धदिला, हमको साथले चलनेसे रोका, और आप उस बिलमें प्रवेश कर गये ॥ १४ ॥ जब वह बिलमें प्रवेश करगये तब हमको बिलके द्वारेपर खडे २ एक वर्षसेभी अधिक काल बीतगया ॥ १५ ॥ जब एक वर्ष बीतगया तब हमने जाना कि, हमारे भाई विनाशको प्राप्तहुये हमारा चित्तभी स्नेहके मारे अत्यन्त चंचल होगया और हम अनिष्टकी

शंका करने लगे ॥ १६ ॥ तथापि हम वहां खडेही रहे तब कुछदिन पीछे उस बिलसे फेनसहित रुधिर निकलते हुये देखकर हम अत्यन्त दुःखित हुये कारण कि, वालिका रुधिर इसी प्रकार था ॥ १७ ॥ तब गर्जना करनेवाले असुरगणोंका घोर शब्द हमको सुनाई आया परन्तु संग्राममें गयेहुये अपने बडे भाई साहब वालिका हमको कोई शब्द न सुनपडा ॥ १८ ॥ हमने इन चिह्नोंसे जाना कि हमारे भाईसाहब मारे गये तब इस कारणसे एक पर्वताकार शिला उस गुफाके द्वारपर अडादी ॥ १९ ॥ और शोकार्त्त चित्तसे उनकी जलक्रिया करके हम किष्किन्धामें आये यद्यपि हमने वालिके वधकी वार्त्ता बहुतही छिपाई, परन्तु मंत्रीलोगोंने उसको किसी प्रकारसे जान लिया ॥ २० ॥ तिसके पीछे उन सब मंत्रियोंने मिलकर हमारी इच्छा न रहतेभी हमको राज्यपर बैठाल दिया, हम यथान्यायसे राज्यका पालन करतेथे ॥ २१ ॥ कि इतनेमें वालि उस रिपुदानवको संहार करके घर आगये, और हमको राज्यासिंहासनपर बैठे देखकर क्रोधसे लाल २ नेत्र कर लिये ॥ २२ ॥ तब उस समय उसने हमारे मंत्रियोंको बँधवाकर उनका कठोर वचनोंसे तिरस्कार किया. हेराघव ! यद्यपि हममें इतना बल था कि, उस पापाचारी वालिको बांधलें ॥ २३ ॥ परन्तु भ्राताकी प्रतिष्ठा मान हमारी बुद्धि ऐसी न हुई कि; हम उन्हें बँधुआ करें जब वह अपने शत्रुको मारकर पुरमें प्रवेश करते हुए ॥ २४ ॥ तब हमने सन्मान करके उन महात्माके चरण ग्रहण कर प्रणाम किया, परन्तु न तो वह प्रसन्नही हुये और न हमको आशीर्वादही दिया ॥ २५ ॥ हमने बार २ उनके चरणोंमें अपना मुकुट सहित मस्तक धरकर प्रणाम किया परन्तु वालि क्रोधके वश हो किसी प्रकारसेभी हमारे ऊपर प्रसन्न न हुए ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

तब हम उनके व अपने हितकी कामनासे, वेगसे आये हुए क्रोधसे भरकर बैठे अपने भ्राताको प्रसन्न करने लगे ॥ १ ॥ हे अनाथोंकी रक्षाकरनेवाले ! बडे भाग्यकी बातहै कि, आप शत्रुका संहार करके कुशलसहित फिर अपने गृहको आयेहैं। हम अनाथ हैं, हमारे तो एक आपही नाथहैं ॥ २ ॥ यह पूर्णचंद्रमाके समान दीप्तिमान् बहुशलाकायुक्त छत्र और चँवर जो कि इतने दिनों हम धारण करतेथे. सो अब

इनको आप धारण कीजिये ॥ ३ ॥ हे नृपवर ! हम उस बिलके द्वारपर एक वर्षतक खडे रहे इससे बहुत कातर होगये, फिर बिलसे उत्पन्न हुई शोणितकी धार अवलोकन करके ॥ ४ ॥ शोक और घबडाहटसे हमारा हृदय अत्यन्त चंचल हुआ और सब इंद्रियेंभी अत्यन्त व्याकुल होआईं तब हम पर्वतके शिखरसे गुफाका द्वार रोककर ॥ ५ ॥ उस स्थानसे फिर आकर किष्किन्धामें चले आये मंत्रियोंने और पुरके लोगोंने हमको अत्यन्त विषादित देखकर ॥ ६ ॥ राज्यसिंहासनपर बैठालदिया, परन्तु राज्यसिंहासनपर बैठनेकी हमारी इच्छा नहींथी । जोहो आप हमारे इस अपराधको क्षमा कीजिये, आप अबभी पहलेहीकी समान राजाहैं और जैसे प्रथम हम आपके सेवकथे वैसेही अबभीहैं ॥७॥ और हम जो राज्यसिंहासन पर बैठाये गये, यह बात तो आपके न होनेपर थी, जैसे आप मंत्रियोंको छोड गयेथे वैसेही सब मंत्रीभी अबतक हैं, और राज्यमें शत्रुभी कोई नहीं है ॥ ८ ॥ हमारे पास तो आपका यह राज्य मानो थातीकी भाँति रक्खारहा अब आप इसको लेलें । हे शत्रुनिषूदन सौम्य ! हमारे ऊपर अब आप रोष न करैं ॥९॥ हे राजन् ! हम आपके आगे हाथ जोड शिर झुकाकर यह प्रार्थना करते हैं, कि मन्त्रि और पुरवासियोंने बलात्कार ॥१०॥ हमको राज्य करनेमें लगा दियाथा, इस कारणसे कि, आपके न रहनेपर शूने देशमें कोई शत्रु चढ न आवे और इसे जीत न ले. हे श्रीरामचन्द्रजी ! हमने विनीतभावसे ऐसे ऐसे मधुर वचन कहे, पर उन हमारे बडे भ्राताने हमारा बडा अपमान कर ॥ ११ ॥ तुझको धिक्कार है, तुझको धिक्कारहै वारंवार ऐसे कठोर वचन कहे तत्पश्चात् सब प्रजा और मन्त्रि व और नौकर चाकरोंको बुलाकर ॥१२॥ सब सुहृद्गणोंके मध्यमें हमको अत्यन्त दुर्वचन कहने लगे कि, तुम सब लोग जानते हो कि,पहले मायावी नामक महा असुर रात्रिमें यहां आयाथा॥१३॥ उसने क्रोधित और युद्धाकांक्षी होकर हमको पुकारा उसका पुकारना सुनकर हम राजगृहसे बाहर निकले ॥ १४ ॥ और हमारे पीछे २ यह दारुण हमारे भाई भी चले उस रात्रिमें हम दोनों जनोंको वह महाबलवान् असुर देखकर ॥ १५ ॥ भयके मारे त्रासित हो भाग चला तब हम भी बराबर उसके पीछे २ दौडे गये, तब वह बडे वेगसे भागते २ एक बिलमें प्रवेश कर गया ॥ १६ ॥ तब उस दुष्ट व कठोरचित्तको एडी गुफामें घुसा हुआ देखकर हमने इस अति क्रूरदर्शन अपने भाईसे कहा ॥ १७ ॥ इस असुरको विनामारे हम नहीं जायँगे, सो जबतक हम इसको मार कर आवैं तबतक तुम इस गुफाके द्वारपर हमारी राह देखते रहना

॥ १८ ॥ हम यह जानकर कि, सुग्रीव तो द्वारपर खडेही हैं उस दुर्गम बिलमें घुसे सो वहांपर उसे ढूंढते ढूंढते ही हमें एक वर्ष लगगया ॥ १९ ॥ संवत्सर बीतनेके पीछे मारे डरके व्याकुल वह हमें मिला, बस हमने देखतेही उसको बन्धु बांधवों सहित मार डाला ॥ २० ॥ संहार करनेके समय वह ऐसा चिल्लाया कि उससे और उसके मुखसे निर्गत रुधिर धारसे वह गुफा पूर्ण होगई ॥ २१ ॥ उस महा-बलवान् शत्रुको संहार करकै जब हम सुखपूर्वक गुफाके बाहरको आरहेथे तब उस समय देखा कि गुफाका द्वार बंद पडा है ॥ २२ ॥ तब हम "भइया सुग्रीव ! सुग्रीव" कहकर जोरसे पुकारने लगे परन्तु उस समय कुछ उत्तर न पाकर हम बडे दुःखी हुये ॥ २३ ॥ फिर हम बहुत सारे चरण प्रहारोंके द्वारा उस शिलाको ढकेल उस गुफासे निकल नगरमें आये हैं ॥ २४ ॥ यह सुग्रीव भायपनका स्नेह भुलाकर राज्यके लोभसे हमको गुफामें बंदकर आया इससे हमको अत्यन्त क्रोध हुआ है ॥ २५ ॥ वानरराज निर्भय वालिने ऐसा कहकर एक मात्र धोती पहराकर हमको घरसे निकाल दिया ॥ २६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! हमारी स्त्रीको हरण करकै उस वालिने हमको बहुतही मारदी उस वालिके ही भयसे समुद्र वनयुक्त यह समस्त पृथ्वी हम घूमते थे ॥ २७ ॥ हम अपनी स्त्रीके हरण होजानेके दुःखसे महादुःखित इस ऋष्यमूक पर्वतपर चले आये। क्योंकि, यहांपर मतंगजीके शापसे वालि नहीं आसकता ॥ २८ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! हमने आपसे वालिसे वैरभाव होनेका समस्त ही कारण कह सुनाया; देखिये इसमें हमारा कुछभी अपराध नहीं है बरन् हम विना अपराधही यह महादुःख पारहेहैं ॥ २९ ॥ हे सर्वलोकको अभय देनेवाले! वालिको मारकर उसके भयसे भीत और व्याकुल हमारे ऊपर आप प्रसन्न हूजिये ॥ ३० ॥ वह तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी यह धर्म साने वचन सुन हँसकर सुग्रीवसे बोले ॥ ३१ ॥ हे सुग्रीव ! हमारे यह तीखे सूर्यसमान प्रका-शित अमोघ बाण उस दुराचारी वालिके ऊपर क्रोधमें भरकर गिरेंगे ॥ ३२ ॥ हम जबतक तुम्हारी भार्याको हरण करनेवाले उस वालिको नहीं देख पातेहैं, तभीतक वह कुचारित्र पापाचारी जीवित रहैगा ॥ ३३ ॥ हम अनुमानसे देखतेहैं कि, तुम शोकसागरमें डूब रहेहो, हम तुमको इस शोकसागरसे उद्धार करेंगे और तुमको फिर तुम्हारा राज्य प्राप्त होजायगा॥ ३४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके हर्ष और पौरुषके बढा-नेवाले वचन सुनकर सुग्रीवजी परमप्रसन्न हो बडे अर्थयुक्त वचन बोले ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

श्रीरामचन्द्रजीके हर्ष और पुरुषार्थके बढानेवाले वचन सुनकर सुग्रीवजी उनकी पूजाकर प्रशंसा करतेहुये ।। १ ।। कि, आप क्रोधितहोकर रुधिरके प्यासे प्रज्वलित सुतीक्ष्ण मर्मभेदी बाणोंसे निश्चयही प्रलयकालीन सूर्य भगवानकी समान सम्पूर्ण लोकोंको भस्म करसकतेहैं ॥ २ ॥ प्रथम आप वालिका पौरुष धीरता और वीर्य हमसे सावधान चित्त होकर श्रवण करलीजिये, फिर जैसा उचित हो समझ बूझकर कीजिये ॥ ३ ॥ वालि सूर्योदयके प्रथमही पश्चिमसमुद्रसे पूर्व और दक्षिणसमुद्र और उत्तरसमुद्रके किनारेतक घूम आताहै, परन्तु इतना चलनेसेभी वह कुछ नहीं थकता ॥४॥ वह महावीर्यवान् वालि पर्वतोंके अग्रभागपर चढकर शिखरों-को उखाडकर ऊपरको उछालदेताहै और फिर उनको हाथसे पकडलेताहै ॥ ५ ॥ वालिने अपना बल प्रकाश करनेके लिये, वनमें लगे हुए बहुतेरे सारवान् वृक्षोंको उखाडकर चूर्ण करदिया है ॥ ६ ॥ कैलास पर्वतके शिखरकी समान दुन्दुभी नाम-क वीर्यवान् महिष हजार हाथियोंका बल अपने शरीरमें धारण करताथा ॥ ७ ॥ वीर्यके मदसे मतवाला बन, और वरदान पानेके कारण मोहितहो वह महाकाय दु-न्दुभी समुद्रके निकटगया ॥ ८ ॥ वह रत्नाकार समुद्रकी तरंगोंको रोक समुद्रसे बोला कि तुम हमको युद्धदानदो ॥ ९॥ तब धर्मात्मा महाबलवान् समुद्रने उठकर उस बलसे मतवाले दुष्टकालप्रेरित असुरसे कहा ॥ १०॥ हे युद्धविशारद ! तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी हममें सामर्थ्य नहींहै हां जो पुरुष तुम्हारे साथ युद्ध करैगा, उ-सको बतलातेहैं श्रवणकरो ॥ ११ ॥ महा अरण्यमें हिमवान नामसे विख्यात तप-स्वियोंको आश्रय देनेवाले, शिवजीके श्वशुर एक पर्वतराजहैं ॥ १२ ॥ उसगिरि में बहुतसे झरने, कन्दरा, और सोते विद्यमानहैं । सो वह गिरिराज तुमको प्रसन्न करनेमें समर्थ होंगे, अर्थात् तुमसे युद्ध करसकैंगे ॥ १३ ॥ वह असुरश्रेष्ठ समुद्रको अपनेसे डरा हुआ जानकर धनुषसे छूटे हुये बाणकी समान शीघ्रताके सहित सीधा हिमालयके वनमें पहुँचा ॥ १४ ॥ और उन पर्वतराजपर पहुँच उनकी ऐरावत ह-स्तीके तुल्य सफेद शिलायें पृथ्वीपर फेंक २ कर सिंहनाद करने लगा ॥ १५ ॥ तब श्वेत जलधर तुल्य सौम्य, प्रीतिका उपजानेवाला आकार धारण कर हिमवान-जी अपने एक शिखरपर खडे होकर दुन्दुभिसे बोले ❀ ॥ १६ ॥ हे धर्मवत्सल

❀ यह शरीरधारी हिमालयकी देवशक्ति है ॥

दुन्दुभे ! तुम हमको क्लेश नदो जो लोग रण कार्यको कुछभी नहीं जानते हमतो उन तपस्वियोंके आश्रयदाताहैं ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् गिरिराज हिमवानके ऐसे वचन सुनकर दुन्दुभी क्रोधसे लाल २ नेत्रकर उनसे बोला ॥ १८ ॥ यदि तुम हमारे साथ युद्ध करनेमें असमर्थ हो, और हमारे भयसे उद्यम विहीन हो तौ हम युद्ध करनेकी इच्छा किये हुयेसे कौन पुरुष युद्ध कर सकताहै; तुम उसको हमें बतादो ॥ १९ ॥ वचन बोलनेमें चतुर धर्मात्मा हिमाचलजी, उसके ऐसे वचन सुनकर उस क्रोधसे मतवाले असुरश्रेष्ठसे बोले ॥ २० ॥ हे महाप्राज्ञ वालि नामक इन्द्रका पुत्र बडा प्रतापी वानरहै, वह अतुल प्रभावाली किष्किन्धा नाम नगरीमें वास करता है॥ २१ ॥ वह महा प्राज्ञवालि तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी सामर्थ्य रखताहै जिसप्रकार नमुचिदैत्यके साथ इन्द्रने युद्ध कियाथा, ऐसेही वालि तुम्हारे साथ द्वंद्वयुद्ध करैगा ॥ २२॥ यदि तुमको युद्ध करनेकी इच्छा हो तो तुम शीघ्रही उसके निकट चले जाओ वह समरकर्ममें कुशल, शूर और अतिशय तेजस्वी है ॥ २३ ॥ जब हिमाचलजीने ऐसा कहा तो दुन्दुभी क्रोधयुक्त हो अतिशीघ्रताके सहित वालिकी किष्किन्धानाम नगरीमें आया ॥ २४॥ उस असुरने वर्षाकालके समय आकाशमें जलपूर्ण महामेघकी समान तेज सींगयुक्त अपना महाभयानक रूप धारण किया ॥ २५ ॥ फिर महाबलवान् दुन्दुभी किष्किन्धाके द्वारपर आ भूमिको कंपाता हुआ नगाडेके शब्द समान सिंहनाद करने लगा ॥ २६ ॥ वह दर्पमें भरे मतवाले हाथीकी समान किष्किन्धाके द्वारवाले वृक्ष तोड और अपने खुरोंसे भूमिको विदीर्ण कर सींगोंसे खोदने लगा ॥ २७ ॥ उस समयमें वालि रनवासमें स्त्रियोंके निकट बैठाथा, वह उस शब्दको न सहन कर तारागणोंके सहित चन्द्रमाकी समान सब स्त्रियोंके साथ बाहर चला आया॥ २८॥ समस्त वनचारियोंका, और वानरगणोंका राजा वालि दुन्दुभीसे स्पष्ट २ थोडे अक्षरोंमें बोला ॥ २९ ॥ हे महाबलवान् दुन्दुभे! तुम किस कारणसे इस नगरके द्वारको रोके हुये गर्जना कर रहे हो? तुम हमारा बल भलीभांति जानते हो, इस कारणसे इस समय अपने प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ वानरश्रेष्ठ बुद्धिमान् वालिके ऐसे वचन सुनकर लाल २ नेत्र कर दुन्दुभी वालिसे बोला ॥ ३१ ॥ हे वीर! तुम अपनी स्त्रियोंके निकटही अपनी बडाईके वचन कह रहे हो; आज हमारे साथ युद्ध करो; तब तुम्हारा बल जाना जायगा ॥ ३२ ॥ अथवा अब हम रात्रिकालमें अपने क्रोधको रोके रहते हैं,

तबतक तुम सूर्यके उदय होनेतक कामभोगमें आसक्त हो इन स्त्रियोंके सहित रात्रि बिताओ ॥ ३३ ॥ प्रभात हम तुमसे युद्ध करलेंगे। और तुम सब वानरगणोंसे मिल भेंटलों और सब सुहृदोंकोभी आदर मानसे प्रसन्न कर आओ ॥ ३४ ॥ किष्किन्धा पुरीको चारों ओरसे देखभाल लो और अपने पुत्रोंमेंसे किसीको राज्यसिंहासनभी देदो, और अपनी स्त्रियोंसे क्रीडा भी करलो क्योंकि हम तुम्हारा सब अहंकार तोड तुमको मार डालेंगे ॥ ३५ ॥ जो पुरुष, मत्त, प्रमत्त, भागेहुये, आयुधरहित, दुबले और तुम्हारी समान मदसे मोहित पुरुषको मारताहै वह गर्भहत्याके पापको प्राप्त होताहै इस कारण इस समय हम तुमको नहीं मारते हैं ॥ ३६ ॥ यह श्रवण कर हँसता हुआ वालि उस क्रोधमें भरे मन्दमति असुरसे बोला कि, यहलो हमने तारा आदि स्त्रियोंको त्याग किया ॥ ३७ ॥ यदि तुम संग्राम करनेमें निडरहो, तब तो हमको मतवाला मत समझो, कारण कि यह स्त्रियोंकरकै उपजा हुआ मद युद्धमें बल होनेके अर्थ वीरोंके मद-पानकी समान जानो ॥ ३८ ॥ उस असुरसे इस प्रकार कहकर, वालि अपने पिता इंद्रकी दी हुई जय देनेवाली काञ्चनमय माल गलेमें पहरकर युद्ध करनेके लिये तैयार होगया ॥ ३९ ॥ कपिश्रेष्ठ वालिने उस पर्वत समान दुन्दुभीके दोनों सींग पकड घोर शब्द कर उसको ढकेल कर गिरा दिया और बडी गर्जना की ॥ ४० ॥ वालि दुन्दुभीको गिराकर सिंहनाद करकै गर्जनेलगा। वालिने दुन्दुभीको इतने बलसे गिराया कि उसके कानोंसे रुधिर बहने लगा ॥ ४१ ॥ फिर परस्पर जीतनेकी इच्छा किये वालि और दुन्दुभीका क्रोधमें भरनेके कारण महाघोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ ४२ ॥ इंद्रतुल्य पराक्रमशाली वाली लात, घूंसा, जांघ, शिला और वृक्षोंके द्वारा युद्ध करने लगा ॥ ४३ ॥ इस प्रकारसे वानर और असुरका युद्ध होने लगा। युद्ध होते २ असुरका बल क्षीण होता और वालिका बल बढता जाताथा ॥ ४४ ॥ तब वालिने दुन्दुभीको पकडकर पृथ्वीपर पटक दिया, उस प्राणविनाशक युद्धमें दुन्दुभी वालि करके चूर्ण करडाला गया ॥ ४५ ॥ दुन्दुभीके नाक कान आदिसे बहुतसा रुधिर निकलने लगा. वह महा-बाहु असुर पृथ्वीपर गिरकर प्राण त्यागन करता हुआ ॥ ४६ ॥ वालिने उस विगतप्राण और चेतना रहित असुरको अपनी बाहोंसे पकड और घुमाकर एकबा-रही एक योजनके अंतरपर फेंक दिया ॥ ४७ ॥ वह जब वेग सहित फेंका

जारहाथा, तब उसके मुखसे रुधिरकी बूंदें पवनके सहारेसे छिटककर मतंगमुनिके आश्रमपर गिरीं ॥ ४८ ॥ हे महाभाग ! मुनिश्रेष्ठ मतंगजी अपने आश्रमपर रुधिरकी बूंदे गिरी हुईं देख विचारने लगे कि यह कौनहै? ॥ ४९ ॥ कि जिस-दुरात्माने हमको रुधिरसे भिगो दिया ! वह दुर्बुद्धि मूढ और अज्ञानी पुरुष कौन है ? ॥ ५० ॥ यह कहकर मुनिवरजीने बाहर निकल कर देखा तो एक पर्वताकार भैंसा विगतप्राण होकर पृथ्वीपर पडाहै ॥ ५१ ॥ उन्होंने तपोबलसे जान लिया कि, यह कार्य वालि वानरका किया हुआहै । तब उन्होंने उसके फेंकनेवाले वानरको महाघोर शापदिया ॥ ५२ ॥ कि जिस वानरने हमारा आश्रित यह वन रुधिर बहानेसे दूषित कियाहै, वह यहांपर नहीं आसकैगा और जो आवैगा तो तत्क्षण मर जायगा ॥ ५३ ॥ असुरकी देह फेंककर जिसने हमारे आश्रमके बहुतसे वृक्ष तोड डालेहैं, वह यदि हमारे आश्रममें प्रवेश करैगा । बरन् इस आश्रमके चारों ओर किनारे २ चार कोशके घेरमें भी ॥ ५४ ॥ वह दुर्बुद्धि आजायगा तो भी निश्चयही प्राणत्याग करैगा । उसका सखा या मंत्री जो कोईभी हमारे वनमें वास करेगा ॥ ५५ ॥ उनके प्राणकाभी नाश हो जायगा ! वह लोग यहांपर वास नहीं करने पावेंगे ! सो वह हमारे वचन सुनकर कहीं और वसनेको चले जाँय यदि वह लोग यहां वास करैंगे तो हम उनकोभी यही शापदेवेंगे ॥ ५६ ॥ कारणकी इस वनकी रक्षा हम नित्यही पुत्रवत् करते हैं, और जो कोई वालिकी ओरका वानर यहांपर रहेगा, तो उसके रहनेसे पत्र अंकुरका विनाश होगा, और फल मूलादिभी नहीं रहैंगे ॥ ५७ ॥ आजके दिनतक हमारे शापकी मर्यादाहै; प्रभात होतेही वालिकी ओरके जिस किसी वानरकोभी यहांपर हम देखेंगे; तो वह बन्दर हजारों वर्षतक यहांपर पर्वत होकर रहैगा ॥ ५८ ॥ तिसके पीछे उस वनके रहनेवाले सब वानरगण मुनिजीके यह वचन सुनकर वहांसे चलेगये; तब उनको वहांसे निकल आये हुये देखकर वालि बोला ॥ ५९ ॥ मातंगवनके रहनेवाले तुम सब लोग किस निमित्तसे हमारे निकट आयेहो सब वनवासी कुशलसहित तो हैं ? ॥ ६० ॥ उन सब वानरोंने सुवर्ण मालाधारी वालिसे वह समस्त कारण कह सुनाया और यहभी बतादिया कि, आपको मुनिजीने शाप दियाहै ॥ ६१ ॥ वालि वानरगणोंके वचन सुनकर महर्षि मतंगजीके निकटजा हाथ जोड उनको प्रसन्न करने लगा ॥ ६२ ॥ परन्तु महर्षिजी उसकी बातोंको

एक न सुनकर अपने आश्रममें चलेगये, और वालि शापके भयसे अत्यन्त विह्वलहो-गया ॥ ६३ ॥ हे नरनाथ श्रीरामचन्द्रजी ! फिर वालि शापके भयसे भीत होकर कभी महागिरि ऋष्यमूक पर्वतपर प्रवेश करनेकी इच्छा नहीं करता, वरन् इस पर्वतको कभी देखनेभी नहीं आता ॥ ६४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! इस वनमें इसका आना नहीं हो सकता यह जानकर हम विषादरहितहो मंत्रियोंके साथ इस वनमें वास करते हैं ॥ ६५ ॥ यह देखिये ! उस मदोन्मत्त, गतप्राण महाअसुर दुन्दुभिकी बडी २ हड्डियोंका ढेर गिरिशिखरकी तुल्य यहां प्रकाशित हो रहाहै जिसको वालिने अपनेवीर्यकी वृद्धिसे यहां उठाकर फेंक दियाथा ॥ ६६ ॥ यह जो सात शालके वृक्ष बहुत शाखाओं करके युक्त एकही जगह छता बाँधकर जमेहैं, सो कभी २ वालि अपने बलवीर्यको प्रगट करनेके लिये एक वृक्षकी जड पकड हिलाता तो यह सातों वृक्ष हिल जातेथे ॥ ६७ ॥ हे नृपवर ! यह हमने आपसे वालिके अद्भुत महावीर्यका वर्णन किया सो आप उस वालिको संग्रामके मध्य किस प्रकारसे संहार करनेमें समर्थ होंगे ? ॥ ६८ ॥ सुग्रीवजीने जब ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी हँसकर सुग्रीवजीसे बोले कि, श्रीरामचन्द्रजी कौनसे कर्मको करडालें कि जिस्से तुमको वालिके वधका विश्वास होजाय ? ॥ ६९ ॥ सुग्रीवजी बोले कि पहले वालि इन शालके वृक्षोंमेंसे एकको पकड जब चाहताथा तब एकही बारमें बारम्बार सब वृक्षोंको हिला देताथा ॥ ७० ॥ सो रामचन्द्रजी यदि एक बाणसे इनमेंका कोई वृक्षभी तोड डालें तबहीं हम इनका विक्रम देखकर वालिको मरा हुआ समझें ॥ ॥ ७१ ॥ और यदि उस मरे हुए भैंसेकी इन सब अस्थियोंको एक चरणसे उठाकर शीघ्रता सहित श्रीरामचंद्रजी दोशत धनुषकी दूरीपरभी फेकदें तोभी हम वालिको मरा हुआ समझें ॥ ७२ ॥ रक्तवर्ण लोचनवाले सुग्रीवजी लक्ष्मणजीसे ऐसा कह, श्रीरामचंद्रजी वालिको मारसकैंगे या नहीं ऐसी चिन्ता करके फिर श्रीरामचंद्रजीसे बोले॥७३॥शूरश्रेष्ठ वालि वीरश्रेष्ठ पुरुषकेही साथ युद्ध करनेका अभिलाष किया करताहै उसका वीर्य बल लोकमें प्रसिद्धहै वह अत्यन्त बलवान् और युद्धमें जीतनेके अयोग्यहैं॥७४॥ उसके सब कार्य देवताओंकोभी दुष्कर दृष्टि आतेहैं । उन्हीं सब कार्योंकी चिन्तना करतेहुए हम ऋष्यमूकपर्वतपरभी अत्यन्त भीत और चिन्तना युक्त रहतेहैं ॥ ७५ ॥ उस अजेय, ढिठाई करनेसे बाहर और सहन करनेके अयोग्य वालिकी चिन्तना करते हुये हम ऋष्यमूकपर्वतको नहीं छोड सकतेहैं ॥ ७६ ॥

हम हनुमानादि पांच मंत्रियोंके साथ जोकि हममें प्रीति रखतेहैं उद्विग्न और शंकित हो इस महावनमें विचरण करतेहैं ॥ ७७ ॥ हे मित्रवत्सल पुरुषश्रेष्ठ ! आप वांछनीय उत्तम मित्रहैं, हिमालयकी समान सारयुक्त जानकर हमने आपका आश्रय लियाहै ॥ ७८ ॥ हे राघव ! हम उस बलशाली दुष्ट अपने भ्राता वालिका बल जानतेहैं परन्तु समरमें आपका वीर्य कैसाहै ? इसको हम अभी नहीं जानते, इस कारणसे वालिके मारनेमें दुबधा समझतेहैं ॥ ७९ ॥ न हम आपकी तुलना वालिकी बराबर करतेहैं न आपका निरादर करतेहैं, न भय दिखातेहैं, परन्तु उस वालिके भयंकर कर्मोंको विचार हम अत्यन्त कातर होतेहैं ॥ ८० ॥ परन्तु हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपकी वाणी, धीरता और आकृतिहीसे आपकी वीरशालिताका प्रमाण मिलताहै, यह सबही गुण राखसे ढकी हुई अग्निकी समान आपके तेजकी सूचना करतेहैं ॥ ८१ ॥ श्रीरामचन्द्रजी महात्मा सुग्रीवजीके यह वचन सुन मंद मुसकाय उनसे कहने लगे ॥ ८२ ॥ हे वानर नाथ ! यदि हमारे पराक्रममें तुम्हारा विश्वास नहींहै तो हम शीघ्रही समरके विषय उत्तम विश्वास उत्पन्न कराये देतेहैं ॥ ८३ ॥ लक्ष्मणजीके बडे भाई श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कह सुग्रीवजीको समझाय और अपने पैरके अँगूठेसे दुन्दुभीका देह लीलापूर्वक ॥ ८४ ॥ महाबाहु रामचंद्रजीने उठाकर दशयोजन अर्थात् चालीस कोसपर फेंक दिया इस प्रकार सूखे हुये असुरके तनुको पैरके अंगूठेसे वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने उठाय कर फेंका ॥ ८५ ॥ तो इसको देखकर सुग्रीवजी फिर बोले ! वानरगणोंके और लक्ष्मणजीके आगे दीप्तिमान सूर्य नारायणकी समान श्रीरामचन्द्रजीसे सुग्रीवजी फिर यह अर्थ युक्त वचन बोले ॥ ८६ ॥ हे सखे ! पहले यह देह गीला और मांस सहितथा, तब उस समय हमारे भाई वालिने बडे परिश्रमसे यह देह उठाकर फेंकाथा ॥ ८७ ॥ हे रघुनंदन ! यह देह इस समय मांसहीन, लघु और तृणतुल्यहै, सो उसको आपने हर्ष युक्तहो विना परिश्रमके उठाकर फेंक दिया ॥ ८८ ॥ हे राघव ! सो इस फेंकनेसे आपका बल अधिकथा वालिका बल अधिकहै यह नहीं जानागया । क्योंकि गीली और सूखी वस्तुके बोझमें बडा भारी अन्तर होताहै ॥ ८९ ॥ अभी आपके और वालिके बल जाननेके विषयमें संशय रही । जोहो, जिससमयकि आप इनमेंसे एकभी शालके वृक्षको तोड डालेंगे, तो बलाबल सब जाना जायगा ॥ ९० ॥ आप इस हाथीकी शूंडके समान धनुषपर रोदा चढाकर कानतक खींच महाशर छोडिये ॥ ९१ ॥

आपका छोडा हुआ बाण निश्चयही इस शालके वृक्षको तोड डालेगा इसमें कुछ संदेह नहींहै। और इसविषयमें कुछ विचार करनेकाभी प्रयोजन नहीं, क्योंकि आप सौगन्ध करके हमसे मित्रता करनेमें नियुक्त हुएहैं ॥ ९२ ॥ जिस प्रकारसे तेज-समूहके मध्यमें दिवाकर, पर्वतोंके समूहके मध्यमें हिमवान्; और चौपायोंके मध्यमें केसरी सिंहहै. वैसेही आप मनुष्योंमें विक्रम करनेके विषयमें श्रेष्ठहैं। इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥ ९३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

सुग्रीवजीके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजीने उनको विश्वास दिलानेके लिये धनुष ग्रहण किया ॥ १ ॥ मानप्रद श्रीरामचंद्रजीने उस घोरतर धनुषपर एक बाण चढाय उसके शब्दसे दशोंदिशाओंको पूर्ण करके शालके वृक्षके ऊपर वह बाण छोडा ॥ २ ॥ सुवर्णकी समान चमकता हुआ वह बाण बलवान् श्रीरामचंद्रजीके द्वारा चलाया जाकर सात तालके वृक्षोंको तोडता, पर्वतको फोड़ता भूमिमें प्रवेश करगया ॥ ३ ॥ वह सायक महावेगसे सातों वृक्षोंको तोडकर धूमधाम फिर तरकसमें आनकर प्राप्तहुआ ॥ ४ ॥ वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके बाण वेगसे सात तालके वृक्षोंको टूटा हुआ देखकर परम विस्मयको प्राप्तहुए ॥ ५ ॥ तब सुग्रीवजीके मालादि सब भूषण खसक पडे, उन्होंने पृथ्वीपर गिर शिर झुका श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम किया, और श्रीरामचंद्रजीके ऊपर प्रीति प्रगटाय हाथ जोडकर खडे होगये ॥ ६ ॥ सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीका यह कर्म देखकर प्रसन्नहो, सर्वशास्त्र विशारद वीरवर धर्मज्ञ श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥७॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप वालिको मार डालेंगे, इसमें संदेहही क्याहै क्योंकि आप इन्द्रके सहित सब देवताओंकाभी संग्राममें संहार कर सकतेहैं। फिर वालि विचारा तो है ही क्या ? ॥ ८ ॥ आपने एकही बाणसे सप्तताल तोडे और पर्वतकी भूमि फोड डाली; इसलिये रणमें आपके आगे कौन पुरुष ठहर सकताहै ? ॥ ९ ॥ इन्द्र और वरुणकेतुल्य आपको सुहृद पाय आज हमारा शोक बीता; और उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! यह हम आपको हाथ जोडतेहैं कि, आप हमारी प्रसन्नताके लिये वैरीरूप हमारे भ्राताको मार डालिये ॥ ११ ॥ महाप्राज्ञ

श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजीके समान प्रियतम, प्रियदर्शन सुग्रीवजीको भेंटकर कहने लगे ॥ १२ ॥ हे सुग्रीव ! अब यहांसे शीघ्रही किष्किन्धा पुरीको चलो और तुम आगे २ गमन करके उस अपने निंदित भाई वालिको पुकारो ॥ १३ ॥ यह कहकर श्रीरामचंद्रजी व और भी सब वानर किष्किन्धापुरीमें जाय वृक्षोंसे देह छिपाय सघनवनमें खडे हो गये ॥ १४ ॥ सुग्रीवजी अपने वस्त्रोंको कसकर पहर वालिको पुकारनेके लिये घोर शब्द करने लगे मानों आकाशको भेदन करतेही हुये घोर शब्दकर रहेथे ॥ १५ ॥ अपने भाई सुग्रीवकी वह गर्जना सुन महा बलवान् वाली क्रोधसे अधीरहो अस्ताचलके समीपमें निकलतेहुये सूर्यनारायणकी समान बडे वेगसहित अपने पुरसे निकला ॥ १६ ॥ तिसके पीछे आकाशमें बुध और मंगल ग्रहकी समान् वालि और सुग्रीवका घोर तुमुलयुद्ध होने लगा ॥ १७ ॥ दोनों भाई क्रोधसे अधीरहो वज्र तुल्य चपेट और वज्रतुल्य घूसोंके प्रहारसे परस्पर चोट चलानेलगे ॥ १८ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी धनुष धारण कर एकही प्रकारका रूप धारण किये हुये दो अश्विनीकुमारोंकी समान दोनों भाइयोंको अवलोकन करने लगे ॥ १९ ॥ जबतक श्रीरामचंद्रजीने भली भाँति यह न पहचाना कि, इनमें कौन वालि और कौन सुग्रीवहै तबतक वह प्राणनाशकारी बाण न चलाया ॥ २० ॥ रामचंद्रजी तो इस विचारमें थे कि इतनेहीमें सुग्रीवजी वालिसे हारकर भागे वह श्रीरामचंद्रजीको न देख पाकर ऋष्यमूक पर्वतकी ओर दौडने लगे ॥ २१ ॥ वालिभी क्रोधमें भरकर पीछे ही पीछे दौडा तब थके हुये सुग्रीवजी उसके प्रहारसे जर्जर और रुधिरमें डूबकर महावनमें प्रवेश करते हुये ॥ २२ ॥ महाबलवान् वालि उसवनमें सुग्रीवको पैठा हुआ देख शापके भयसे वहां नहीं जासका और बोला; जावो अब तुम बच गये यह कह वहांसे लौट आया ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजी भी लक्ष्मण और हनुमानजीके सहित जहाँपर सुग्रीवथे उसी वनमें प्रवेश करते हुये ॥ २४ ॥ सुग्रीवजी, लक्ष्मणके सहित श्रीरामचंद्रजीको आगमन करते हुये देखकर लज्जित हो नीचा मस्तक किये पृथ्वीको देखते दीन वचनसे बोले ॥ २५ ॥ आपने विक्रम दिखा और "वालिको युद्धके लिये पुकारो" ऐसा कहकर कुछभी न किया शत्रुसे हमको बडी मार दिलवाई, इससे आपका क्या कार्य हुआ ? ॥ २६ ॥ हे राघव! जो उसी समय आप कह देते कि, हम वालिको न मारेंगे, तोही अच्छाथा कारण कि, फिर हम यहांसे वहां क्यों जाते ॥ २७ ॥ जब महात्मा सुग्रीवजीने

इस प्रकार दीनवचन कहे तब श्रीरामचंद्रजी करुणा कर उनसे बोले ॥ २८ ॥ हे सुग्रीव! तुम क्रोधको त्यागन करो, जिसकारणसे हमने बाण न चलाया उसकारणको तुम सुनो ॥ २९ ॥ वस्त्राभूषण, वेष, प्रमाण और चालसे तुम दोनोंमें परस्पर एकहोनेके कारण कुछभी अंतर नहीं देख पडताथा ॥ ३० ॥ स्वर, वचन, कान्ति और विक्रममेंभी तुम दोनों जन समान थे इससे हमने उस समय न जाना कि कौन वाली और कौन सुग्रीवहैं॥ ३१ ॥हे वानरश्रेष्ठ ! इसी कारणसे हम रूप और समानताके दिखावसे मोहितहो महावेग्वान् शत्रुविनाशकारी बाण न चलासके ॥ ३२ ॥ तुम दोनोंका एकसा रूप ही देखनेके कारण शंकितहो, प्राणोंका अंत करनेवाला घोर बाण छोडनेको हम असमर्थ हुये। यदि तुम दोनोंकी सादृश्यताके हेतुसे तुम्हारेही बाण लगजाय, तो बस मूलकाही विनाश होजाय, अर्थात् न हमें सीता मिले न तुम्हें राज्य, बस यही बात हमारी शंकामें मूलकारण हुई ॥ ३३ ॥ हे कपीश्वर ! अज्ञानता और बडी शीघ्रतासे यदि कहीं तुम्हारेही बाण लग जाता, तब हमारी मूर्खता, और बालकताका निःसन्देह सबजगह प्रचार होजाता ॥ ३४ ॥ हे वानर!अभयदान देकर यदि फिर उसकाही वध कियाजाय तो बडा भारी अद्भुत पातक होताहै। यहभी तुम मानलो कि, हम, लक्ष्मण और श्रेष्ठ वर्णवाली सीताजी ॥ ३५ ॥ सबही तुम्हारेहैं, और तुम्हारेही आधीनहैं, क्योंकि इस वनमें तुमही हमारे एकमात्र रक्षाके करनेवालेहो, इसलिये तुम फिर युद्ध करनेको जाओ और कुछ शंका न करो ॥ ३६ ॥ तुम इसही मुहूर्त देखोगे कि, वाली हमारे बाणसे घायल होकर पृथ्वीमें गिरकर छटपटाताहै ॥ ३७ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! तुम कोई चिह्न धारण किये जाओ कि जिससे द्वन्द्व युद्ध करनेके समय हम तुमको पहचानलें ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम यह सुन्दर खिली हुई गजपुष्पी उखाडकर इन महात्मा सुग्रीवजीके गलेमें पहरा दो ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे महात्मा लक्ष्मणजीने पर्वतके तटपर उत्पन्न हुई कुसुमराशि युक्त गजपुष्पलता लाकर सुग्रीवजीके गलेमें डालदी ॥ ४० ॥ तब सुग्रीवजी उन कंठलता द्वारा, बगलोंकी मालासे सुशोभित संध्याकालके जलधरकी समान शोभायमान होने लगे ॥ ४१ ॥ सुग्रीवजी, श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंपर ध्यान देकर अपनी देहसे दिपने लगे और श्रीरामचन्द्रजीके साथ फिर किष्किन्धा पुरीको चले ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

वह धर्मात्मा लक्ष्मणके बडे भ्राता श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवजीके सहित वालिके विक्रमसे पाली जातीहुई किष्किन्धा पुरीको गमन करते हुये ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुवर्णभूषित बडा धनुष उठाकर आदित्यतुल्य रणमें कार्यको सिद्ध करनेवाले बाण ग्रहण करके गमन करनेलगे ॥ २ ॥ दृढ गरदनवाले सुग्रीवजीभी महाबली महात्मा श्रीराम लक्ष्मणजीके आगे २ चलने लगे ॥ ३ ॥ फिर पीछे वीर हनुमान और वीर्यवान् नल नील, और महातेजस्वी तार यह चार वानर सुग्रीवजीके सेनापति और मंत्रीभी चले ॥ ४ ॥ यह सब मार्गमें फूलोंके भारसे झुके पेड, स्वच्छ जल वहनेवाली समुद्रगामिनी नदियाँ और तडाग देखते जातेथे ॥ ५ ॥ कंदरायें पर्वत, झरने और गुफा बडे २ शिखर और प्रिय दर्शन दरें देखते हुये ॥ ६ ॥ वैदूर्यमणिके समान विमल जल बहते, फूले हुये कमलफूलोंसे युक्त, शोभायमान तडाग मार्गमें देखते जातेथे ॥ ७ ॥ कारंडव, सारस, हंस, वंजुल जलकुक्कुट, चक्रवाक इत्यादि पक्षी मधुर बोल रहेथे ॥ ८ ॥ कोमल घास व अंकुर चरकर निर्भय हो वनमें फिरनेवाले, वनस्थलियोंमें बहुत सारे हारिण इन्होंने बैठे हुये देखे ॥ ९ ॥ तडागोंके शत्रु और श्वेत दातोंसे भूषित, घोररूप, नदियोंके करारे गिरानेवाले बनैले हाथीभी जाते २ देखे ॥ १० ॥ जल वहनेवाले पर्वतोंके तीर किलकिलाते जंगम पर्वताकार हाथियोंकी नांई रेणु उडाते प्राकृत वानरभी जाते २ देखे ॥ ११ ॥ और दूसरे वनमें चरनेवाले जीवगणोंको, व आकाशमें चरनेवाले पक्षियोंको देखते सुग्रीवजीके वशवर्त्ती सब वानर चलेजातेथे॥ १२॥ वह वानर जब कि बडेवेगसे चल रहेथे तब श्रीरामचन्द्रजी वृक्षोंसे परिपूर्ण एक वृक्ष झुंडको देखकर सुग्रीवजीसे बोले ॥ १३ ॥ इस वृक्ष झुंडके चारों ओर वृक्षोंका समूह लगाहै सो यह मिलेहुये बादलोंकी समूहोंके तुल्य प्रकाशमान होताहै ॥ १४ ॥ हे सखे ! यह सब क्याहै ? इसके जाननेके लिये हमें बडा कौतूहल उत्पन्न हुआ है, सो तुम हमारे इस कौतूहलको दूरकरो ॥ १५ ॥ महात्मा श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर सुग्रीवजी मार्गमेंही चलते २ उस बडे वनका वृत्तान्त वर्णन करने लगे ॥ १६ ॥ हे राघव ! श्रमका विनाश करनेहारा बडे विस्तारवाला उद्यान और वनयुक्त स्वादुफल और जलयुक्त यह आश्रम ॥ १७ ॥ जो दृष्टि आताहै, इसमें सप्तजन नामक दृढव्रत धारण करनेवाले सात मुनि रहा करतेथे; यह सातों ऋषि नीचेको शिर किये रात्रि

दिन जलमें रहते ॥ १८ ॥ यह मुनिलोग सातवें रोज केवल पवनका आहार करतेथे, और अचल वास करते, इस प्रकारसे वह मुनिगण सातसौ वर्षतक तपस्या कर अपने २ शरीरसहित स्वर्गको चलेगये ॥ १९ ॥ उन मुनिलोगोंकेही प्रभावसे यह आश्रम वृक्षोंके कोटसे घिराहुआहै इस आश्रममें इन्द्रके सहित सुर और असुर गणभी कुछ उपद्रव नहीं करसकते ॥ २० ॥ पक्षी या दूसरे वनचारी जीवगण इस आश्रमके भीतर नहीं जाते और जो कोई मोहके वशहो इसमें चलाभी जाय सो वह वहांसे लौट नहीं सकता ॥ २१ ॥ यहांसे अप्सराओंके मधुरगीत और गहनोंके शब्द, व बाजोंकी ध्वनि सुनाई आया करती है और दिव्य गन्धभी यहांसे आती रहती है ॥२२॥ इस आश्रममें तीन अग्निभी दीप्तिमान रहते हैं इधर निहारिये कि कपोतके रंगका धूसरवर्णवाला धुआं इन सब वृक्षोंमें छाय रहाहै ॥ २३ ॥ मेघोंसे घिरे हुये वैदूर्यमणिके पर्वतोंकी समान धूमयुक्त होनेके कारण यह वृक्ष प्रकाशमान हो रहेहैं ॥ २४ ॥ हे धर्मात्मन् ! आप लक्ष्मणजीके सहित सावधानचित्तसे हाथ जोडकर इन मुनिजनोंके लिये प्रणाम कीजिये ॥ २५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जो पुरुष इन सिद्धात्मा ऋषिलोगोंको प्रणाम करता है, उसके शरीरमें किंचित्मात्र पाप नहीं ठहर सकता ॥ २६ ॥ जब सुग्रीवजीने ऐसा कहा, तब श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके सहित हाथ जोडकर उन महात्मा मुनिजनोंके लिये प्रणाम किया ॥ २७ ॥ उनको प्रणाम कर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मण, सुग्रीव व औरभी सब वानर हर्षित होकर गमन करने लगे ॥ २८ ॥ वह सब जन सनजन आश्रमसे दूर आकर वालिकी पालीहुई उस दुर्द्धर्ष किष्किन्धा नगरीमें पहुँचे ॥ २९ ॥ फिर श्रीराम, लक्ष्मण और वानरगण अपने २ उग्र तेजवाले अस्त्र शस्त्रोंको धारण कर शत्रुको मार डालनेकेलिये इंद्रपुत्रकी प्रतिपालित किष्किन्धा नगरीमें दूसरी बार आये ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

वह सब जन वालिकी किष्किन्धापुरीमें शीघ्रतासे पहुँच अपने२शरीरोंको वृक्षोंसे छिपाकर सघन वनमें खडे होगये ॥ १ ॥ बडी गर्दनवाले और वनको देख प्रसन्नहोनहार सुग्रीवजी चारों ओर दृष्टि डाल बडा कोप कर ॥२ ॥ सहायसे स्थि-

तहो अत्यन्त घोर गर्जनकर वालिको संग्राम करनेके लिये पुकारने लगे, उनके नादसे आकाशमंडल मानो फटा जाताथा ॥ ३ ॥ वायुके वेगसे चलायमान महा मेघकी समान गर्जकर बालसूर्यसदृश सिंहसम गतिवाले सुग्रीवजी ॥ ४ ॥ श्रीराम चन्द्रजीको कार्य करनेमें चतुर देखकर बोले कि, हे महाराज ! वानरोंके बन्धनसे घिरी, तपाये हुये सुवर्णसे भूषित ॥ ५ ॥ और मंत्रादि युक्त वालिकी किष्किन्धा पुरीमें हम लोग पहुँच गये हे वीर ! आपने पहले वालिका वध करनेके लिये जो प्रतिज्ञा कीहै ॥ ६ ॥ उसको आप शीघ्र पूर्ण कीजिये जिस प्रकार फलने फूलनेका समय आकर वृक्षलताओंको पुष्प फलसे पूर्ण कर देता है । जब धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीसे सुग्रीवजीने ऐसा कहा ॥ ७ ॥ तब शत्रुओंका संहार करनेवाले श्रीरामचंद्रजी उनसे बोले कि, गजवेल धारण कराय तुम्हारी देहमें जो पहँचान ॥८॥लक्ष्मणजीने बनाईहै, उस गजलताके धारण करनेसे तुम्हारी ग्रीवा औरभी शोभित होती है ॥ ९ ॥ जैसे कभी आकाशमें नक्षत्रोंकी मालाके निकट आजानेसे सूर्य भगवान् शोभायमान होतेहैं आज इस समयतक तो वालिके द्वारा कीहुई शत्रुता और भय तुमको प्राप्तहै ॥ १० ॥ परन्तु आज एकही बाणद्वारा रणस्थलमें वह विनाश कर देगे, हे सुग्रीव ! आज तुम भ्रातारूपी शत्रुको शीघ्र हमें दिखादो ॥ ११ ॥ वह आज हमारे बाणसे घायल होकर वनमें धूलके ऊपर गिरकर छटपटावेगा, यदि इतनेपरभी उसके प्राण रहजायँ, अर्थात् वह जीता हुआ बचकर फिर तुम्हें दीख पडे ॥ १२ ॥ तब तुम इस स्थानसे चले जाना, और हमारी निन्दा करना या हमको धिक्कारदेना, हमने केवल एकही बाणसे तुम्हारे सन्मुख सात तालवृक्ष तोड डाले ॥ १३॥ तिससे तुम जानलो कि, वाली हमारे बाणसे मराहुआ धराहै, हमने प्रथम कष्टमें पडनेसेभी कभी मिथ्या वचन नहीं बोला ॥ १४ ॥ कारण कि, धर्मका लोभ हमको बहुतही है । इससे मिथ्या नहीं कहते, हम निःसंदेह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे तुम भ्रम व शोकको छोडो ॥ १५ ॥ जैसे इन्द्रजी वर्षा करके धान्यके खेतोंको फलवान् करतेहैं ऐसेही हम पराक्रम करेगें । इसलिये हे सुग्रीव ! उस सुवर्णमाला धारण किये हुए वालिको पुकारो ॥ १६ ॥ और तुम ऐसा शब्द करो कि,जिससे वालि क्रोधयुक्त होकर शीघ्रही बाहर चला आवे । क्योंकि,वाली विजयको सदाही चाहताहै, और बडाईके पानेको इच्छाकिये सदाही घूमा करताहै और पहले कभी तुम उसको पराजितभी नहीं करसकेहो इसकारणसे वह शब्द सुन शीघ्रही आवैगा इसमें

कोई संदेह नहीं॥ १७॥इससे तुम्हारा पुकारना श्रवण करतेही वाली तुरंत आवैगा,क्यों-कि वह अत्यन्तही रणप्रियहै इसके अतिरिक्त समरमें शत्रुकी गर्जना सुनकर वाली नहीं सहसकेगा ॥ १८॥ जो अपने वीर्यको जानतेहैं वह शत्रुका गर्जनविशेष करकै स्त्रियोंके सामने सुनकर कभी चुप चाप नहीं बैठे रहते । ऐसे श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर सुवर्णके समान वर्णवाले सुग्रीवजी ॥ १९ ॥ भयंकर शब्दसे आकाशमंडलको मानो भेदन करतेही हुये गर्जन करने लगे । उस शब्दसे त्रासित और प्रभाहीन होकर गाय बैल इधर उधर भागने लगे ॥ २० ॥ जैसे राजाकी ओरसे कुछ दोष होनेपर कुलकी स्त्रियें तित्तर वित्तर हो फिरती हैं ऐसे संग्रामभूमिसे भागे हुये घोडोंकी समान सब मृग गण भागने लगे ॥ २१ ॥ और क्षीणपुण्य गृहगणोंकी समान आकाशमें उडते हुये पक्षी पृथ्वीमें गिरने लगे ॥२२॥ तिसके पीछे पवनसे चलायमान होनेके कारण चंचल तरंगें जिसमें उठती हों ऐसे नदियोंके पति समुद्रकी तुल्य, सूर्यपुत्र सुग्रीवजी, श्रीरामचंद्रजीके वचनोंका विश्वास कर अपनी शूरतासे वर्द्धित तेज होकर मेघकी समान गर्ज २ घोर शब्द करने लगे ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीम० वा० आदि० किष्किन्धाकाण्डे भाषायां चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः १५.

उस समय वाली रनवासमें अपनी स्त्रियोंके बीचमें बैठाथा । उससे महात्मा सुग्रीवजीका घोर गर्जना सुनकर न सहागया ॥ १ ॥ सर्व प्राणियोंको कंपायमान करनेवाला वह नाद सुनकर एकवारही वालिका सब मद नष्ट होगया और महा क्रोधित हुआ ॥ २ ॥ सुवर्णकी समान दीप्तिशाली वाली क्रोधसे परिपूर्ण होकर राहुसे ग्रसे हुये सूर्यकी समान तत्कालही प्रभाहीन होगया ॥ ३॥ क्रोधके मारे दांत बाहर निकल आनेसे कराल आकारावाले वालीके नेत्र जलती हुई अग्निके समान होगये,उस समय वह ऐसा ज्ञात होताथा कि, जिस प्रकार किसी कुंडसे कमल फूल तोड लिये जांय, और कमलकी डंडियें ऊपर चमकने लगें॥ ४॥वह सहनेके अयोग्य शब्द श्रवणकर वाली पैर धरनेसे मानो पृथ्वीको फाडताही हुआसा बडे वेगसे बाहरको चला ॥ ५ ॥ तब तारा वालिको लिपटकर, सौहार्द दिखाती भयके मारे व्याकुलहो आगेकी भलाईके लिये यह वचन बोली ॥ ६ ॥ हे वीरवर ! नदीके वेगकी समान आये हुये इस क्रोधको आप त्यागकर दीजिये, जिस प्रकार शयनसे

प्रातःकाल उठकर रात्रिकी धारण की हुई फूलमाला लोग त्याग करदेते हैं ॥ ७ ॥ हे वीरेन्द्र ! आप कल प्रातःकालही संग्राम करलीजिये, क्योंकि आपका शत्रु अत्यन्त लघुहै, और इस समय युद्ध न करनेसे किसी प्रकारकी तुम्हारी छुटाई भी तो नहीं होतीहै ॥ ८ ॥ आप जो सहसाही बाहर युद्ध करनेके लिये जाते हैं सो मेरी सम्मतिमें यह ठीक नहीं और जिस कारणसे मैं रोकती हूं वह भी श्रवण कीजिये ॥ ९ ॥ यही सुग्रीव पहले महा क्रोधकर तुम्हें युद्धके लिये पुकारकर तुम्हारे आघातसे समरमें विमुख किस अवस्थाको प्राप्त हो भागाथा ॥ १० ॥ वह ऐसा समरविमुख और बहुत मार पाकरभी यहां आकर फिर तुम्हें पुकारताहै इससे हमको शंका होतीहै ॥ ११ ॥ इस समय उसका जिस प्रकारका अहंकार, बर्ताव और घोर गर्जन श्रवण करनेसे ज्ञात होताहै कि, अल्प कारणसे कदापि वह यहां पर नहीं आया ॥ १२ ॥ हम विचार करती हैं कि सुग्रीव विना सहायके इससमय यहां नहीं आया, बरन् वह एक बडाभारी सहायकपाय यहां आकर गर्जरहाहै॥ १३॥ और सुग्रीव स्वभावसेही बुद्धिमान् और चतुर वानरहै, उसने विना बलवीर्यकी परीक्षा किये कभीं किसीसे मित्रता नकी होगी ॥ १४ ॥ हे वीरवर ! हमने पहलेही कुमार अंगदसे जो वृत्तान्त सुना है; वही हितकर वचन कहतीहैं, तुम श्रवण करो ॥ १५ ॥ कि कुमार अंगद कहीं वनको घूमनेके लिये चला गयाथा, वहांपर दूतोंने उससे आकर निवेदन किया ॥ १६ ॥ उन्होंने कहा कि अयोध्याके राजा इक्ष्वाकुकुल उत्पन्न महाराज दशरथजीके पुत्र समरमें दुर्जय श्रीराम लक्ष्मणजी वनको आयेहैं ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीका प्रिय कार्य साधन करनेके लिये वह दोनों दुर्द्धर्ष वीर तैयार हुएहैं, वही संग्रामस्थलमें सुग्रीवके बडे सहाय बनेहैं ॥ १८ ॥ वही रामचन्द्रजी प्रलयकालकी अग्निके समान शत्रुओंके विनाश करनेके लिये उठेहैं; वह साधुओंके आश्रयदाता वृक्ष, और दुःखी जनोंके परम गतिहैं ॥ १९ ॥ वह आरत जनोंको अभय देनेवाले, यशके भाजन, ज्ञान और विज्ञान युक्त पिताकी आज्ञामें रतहैं ॥ २० ॥ जिस प्रकार शैलराज हिमवान् धातुसमूहोंके आकरहैं, वैसेही श्रीरामचन्द्रजीको गुणसमूहकी महाखान जानो सो उन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे विरोध करके तुम्हारा भला नहीं होगा ॥ २१ ॥ हे शूर ! श्रीरामचन्द्रजी रणकालमें अजीत और अप्रमेय हैं तुम उनके साथ विरोध कर मंगल न पाओगे । हे वीर ! हम कछ तुम्हारी निन्दा नहीं करतीहैं ॥ २२ ॥ बरन् हित-

कारी वचन कहतीहैं सो तुम श्रवण करके वैसाही करो वह यह कि तुम शीघ्रतासे सुग्रीवको युवराजपदवी देदो ॥ २३ ॥ हे वीरेंद्र ! तुम छोटे भाईके साथ विरोध न करो, हमारी तो यह इच्छाहै कि, तुम्हारी और श्रीरामचन्द्रजीकी प्रीति होजाय ॥ २४ ॥ और दूसरे हमारी यहभी इच्छाहै कि, वैरभाव त्यागकर सुग्रीवके ऊपर तुम प्रसन्न होजाओ,क्योंकि यह सुग्रीव तुम्हारा छोटा भाई है, इससे तुम्हें अवश्यही इसका लालन पालन करना चाहिये; सो ऐसा करनेसे तुम्हारा मंगल होगा ॥२५॥ सुग्रीव ऋष्यमूकपे रहै, अथवा यहांपे रहै, वह आपका बन्धुहीहै, इस समस्त पृथ्वी-पर उसकी समान आपका बन्धु हम दूसरा नहीं देखतीहैं ॥ २६ ॥ इस कारण वैरभाव छोडकर दान मानादि द्वारा सत्कार कर उसको ग्रहण कीजिये, फिर वह स्वयंही वैर छोड तुम्हारे निकट रहने लगेगा ॥ २७ ॥ बडी गरदनवाला सुग्रीव तुम्हारा परम बन्धुहै, सो आप उसके साथ सुहृदता स्थापन कर लीजिये, इसके सिवाय तुम्हारी दूसरी गति हम नहीं देखतीं ॥ २८ ॥ यदि तुम हमको अपना हित करनेवाली जानते हो, यदि हमारा प्रिय कार्य करना तुम चाहतेहो, तो हम अपना प्रियकार्य समझकर जो कुछ तुमसे प्रार्थना करतीहैं उन हमारे वचनोंको आप क्षमाकरैं ॥२९॥हे वीरेन्द्र! तुम हमारे हितकारी वचन श्रवणकर और क्रोधके वशमें न पडो, व इन्द्रतुल्य तेजसम्पन्न उन कौशलराजपुत्रोंके साथ विरोध करनेसे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥ ३० ॥ उस समय ताराने वालिसे इस प्रकारके हितकर वचन कहे परन्तु विनाशके समय कालसे ग्रसेहुए वालिको वह वचन कुछभी नभाये ॥ ३१ ॥ सत्य कहाहै, कि "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः"

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

चन्द्रवदनी ताराने जब वालिसे इस प्रकार कहा, तो वह ताराको धिक्कारता हुआ ऐसे वचन बोला॥ १ ॥हे श्रेष्ठमुखवाली ! हमारा भ्राता हमारा बडा शत्रुहै और फिर इस समय गर्वसहित गर्जन कर रहाहै तब भला हम किस प्रकारसे इसके गर्जनको सहलें॥२॥ जो लोग शत्रुकरकै कभी नहीं जीते गये और जो शूर रणस्थलसे विना शत्रुके जीते कभी नहीं लौटे हे भीरु ! उनके लिये अपमानका सहन करना मरनेसे भी अधिक जानो ॥ ३ ॥ रणस्थलमें युद्धाभिलाषी हीनग्रीव सुग्रीवका गर्वसहित

गर्जना हम किसी प्रकार नहीं सहसकते ॥ ४ ॥ हे प्रिये ! श्रीरामचन्द्रजीके कार्यों-को विचार कर हमारे लिये विषाद करना तुमको उचित नहीं है क्योंकि वह धर्मके जाननेवाले और कृतज्ञ हैं वह कभी पापका कार्य नहीं करेंगे ॥ ५ ॥ तुम और सब स्त्रियोंके सहित लौट जाओ हमारे पीछे २ न आओ हमारे प्रति तुम्हारी सुहृद-ता और भक्ति जितनी चाहिये उतनी दिखाई जाचुकी ॥ ६ ॥ हम संग्राममें जा सुग्रीवके सहित युद्ध कर उसका दर्प चूर्ण करेंगे परन्तु उसको प्राणोंसे नहीं मारेंगे सो तुम उसके मरनेकी शंका छोड दो ॥ ७ ॥ हम रणमें खडे हुये सुग्रीवके प्रति विशेष अत्याचार नहीं करेंगे केवल वृक्षोंके प्रहारसे और घूसोंसे उसे मारेंगे जिससे वह पीडित हो अपनी गुफाको चला जायगा ॥ ८ ॥ हे तारे ! वह दुरात्मा हमारा हंकार और प्रहारादि नहीं सह सकेगा इसमें कुछ संदेह नहीं, कि तुमने हमारी बुद्धिकी सहायता करकै सुहृदता दिखाई ॥ ९ ॥ तुमको हमारे प्राणोंकी शपथ है कि तुम इन सब स्त्रियोंके साथ लौट जाओ, हम रणस्थलमें भ्राताको केवल जीतही कर लौट आवेंगे, और उसे प्राणोंसे नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ प्रियवादिनी दक्षिणा ना-यका तारा वालिको भेटकर उसकी प्रदक्षिणा कर मंदमद रोते२वहांसे लौटी॥ ११ ॥ शोकसे मोहित हुई स्वस्तिके मंत्र जाननेवाली तारा विजयकी इच्छा किये स्वस्ति-वाचन करके सब स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गई ॥ १२ ॥ जब सब स्त्रियोंके साथ तारा अपने घरमें चली गई, तब वाली क्रोधित हुये महासर्पकी समान श्वास लेता हुआ नगरीसे बाहर निकला ॥ १३॥ वानरराज वालिने लंबे २ श्वास लेकर बडे वेगसे आय रोषमें भर शत्रुको देखनेकी वासनासे चारों ओरको दृष्टि डाली ॥ ॥ १४ ॥ तिसके पीछे श्रीमान् वालिने सुवर्ण सम पिंगलनेत्र, कच्छ कसकर बाँधे हुये, पृथ्वीपर दृढरूपसे खडे देदीप्यमान अनलतुल्य सुग्रीवजीको देखा ॥ १५ ॥ महाबलवान् परम क्रोधित वाली सुग्रीवजीको इस प्रकारसे खडा देख आपभी वस्त्रोंको कसकर पहन लेता हुआ॥ १६॥वीर्यवान् वाली कच्छ बाँध मुक्का उठाय सुग्रीवजीके सन्मुख जाय युद्धके लिये समयको देखने लगा॥ १७॥सुग्रीवजीभी दृढ मुक्का बाँधकर दर्पमें भर सुवर्णकी माला पहरे वालिकी ओर गमन करने लगे ॥ १८॥ वालि रणप-ण्डित क्रोधसे लाल २ नेत्र सुग्रीवको महावेगसे आता हुआ देखकर बोला ॥ १९॥ यह देखो सब उंगलियोंको सकोडकर हमने दृढरूपसे जो यह महामुष्टिका बाँ- ; हम इसको महावेगसे तुम्हारे ऊपर चलावेंगे इसमें कोई संदेह नहीं कि, इसके

लगतेही तुम्हारा प्राण निकल जायगा॥ २०॥ जब वालिने ऐसा कहा तब सुग्रीवजीभी उससे क्रोधित होकर बोले कि देख ! यह हमने जो मुक्का बांधाहै यहभी तुम्हारे मस्तकपर पडकर प्राण लेहीलेगा ॥ २१ ॥ तब वालिने अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसे जाकर सुग्रीवजीके मुक्का मारा । उस मुक्केके लगनेसे सुग्रीवजी झरने सहित पर्वतकी समान रुधिर उगलते २ पृथ्वीपर गिरे ॥ २२ ॥ फिर सुग्रीवजीने झट-पट उठकर अति तेजीसे निःशंकहो एक शालका वृक्ष उखाड वालिके मारा, जैसे इन्द्रजीने वज्रसे पर्वतोंको माराथा ॥ २३ ॥ उस वृक्षके लगनेसे विह्वलहो वाली समुद्रके मध्य चलती बहुत बोझसे लदीहुई नावके समान चल विचल होने लगा ॥ २४ ॥ वह भयंकर बल वीर्यशाली चन्द्रमा सूर्यकी समान, गरुडतुल्य वेगवान् घोरतरदेहधारी वाली और सुग्रीव महाघोर युद्ध करने लगे ॥ २५ ॥ परस्पर एक दूसरेका दोष ढूंढनेमें तैयारहुये दोनों वीर परस्पर चोट चलाने लगे लडते २ बलवीर्य युक्त वाली समरमें जयशाली हो बढा ॥ २६ ॥ और सूर्यपुत्र महाबलवान् सुग्रीवजी हीनबल होने लगे, वालिने इनका गर्व खर्वकर डाला; और इनका विक्र-मभी कम होनेपर आया ॥ २७ ॥ परन्तु सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके दिखानेके अर्थ वालिके ऊपर बडा कोपकर, जड व शाखा सहित वृक्ष उखाड, पर्वत शिखर, और वज्रसम धारवाले नखोंसे ॥ २८ ॥ और मुष्टिका, जांघ, चरण, और बाहोंसे फिर लडने लगे और वालिभी इन्हीं आयुधोंसे लडताथा; इस कारण इन दोनों जनोंका संग्राम ऐसा हुआ कि जैसा इन्द्रजीके साथ वृत्रासुरका हुआथा॥ २९॥ वह वनचारी दोनों वानर रुधिरसे नहाय महामेघकी समान घोर शब्दसे परस्पर तर्जन गर्जन करने लगे ॥ ३० ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि, सुग्रीव अब बहुतही हीनबल होगयेहैं; इस कारणसेही वारंवार सब दिशाओंकी ओर निहारतेहैं ॥ ३१ ॥ महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवको भयातुर देखकर वालिके संहार करनेकी इच्छासे वारंवार बाणोंकी ओर दृष्टि पात करने लगे ॥ ३२ ॥ फिर विषधर सर्पकी समान बाण धनुषपर चढाकर यमराजके कालचक्रकी समान धनुषको टंकारने लगे ॥ ३३ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने धनुषको टंकारा तो उस शब्दसे मृग व पक्षिगण युगान्त होनेके दुकालकीसमान मोहको प्राप्तहो वेगसहित भागनेलगे ॥ ३४ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीने प्रदीप्त अग्निकीसमान वज्रतुल्य शब्द करताहुआ वह महाबाण छोडा वह वालिकी छातीमें जाकर महावेगसे लगा॥ ३५॥ तब महातेजवान् वीर्यवान्

वानरराज वाली बाणके वेगसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार आश्विनमासमें पूर्णमासीके अंतमें इन्द्रध्वज गिर पडताहै, वैसीही वालिके प्राण निकलने लगे, और वह बनाय मूर्च्छित होगया॥ ३७ ॥ कफके मारे उसका कंठ रुकगया और सहज २ आर्त स्वर उसने प्रगट किया ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार श्रीशंकरजी मुखसे धूमसहित अग्नि छोडतेहैं वैसेही कालकी समान नरोत्तम श्रीरामचंद्रजीने सुवर्णविभूषित शत्रुओंका नाश करनेवाला बाण वालिपर छोडा ॥ ३९॥ फिर शरीरसे रुधिर निकलता हुआ पर्वतपरसे उत्पन्न हुए अशोक वृक्षकी समान इन्द्रसुत वाली चेतनारहित, पवनवेगसे टूटे हुए इन्द्रध्वजकी समान पृथ्वीपर गिरपडा ॥ ४० ॥

इत्यार्षे श्रीम० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७.

जब श्रीराचमन्द्रजीने बाण मारा, तब वह रणशूर वाली उस बाणसे घायल हो कटे हुये वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १ ॥ उज्ज्वल सुवर्णके भूषण धारण किये हुये वाली डोरी छोड दिये हुये इंद्रध्वजकी समान गिरकर अपने सब अंग पृथ्वीपर लुटाता हुआ ॥ २ ॥ जब वानरगणोंका राजा वाली पृथ्वीपर गिर पडा तब उसके राज्यकी भूमि चंद्रमारहित आकाशकी समान शोभाहीन होगई ॥ ३॥ यद्यपि वालि पृथ्वीपर गिर पडा, परन्तु उस महात्माके लक्ष्मी, तेज, प्राण और पराक्रम कुछ न गये॥ ४ ॥ इन्द्रकी दी हुई अति उत्तम रत्नभूषित सुवर्णकी माला, उस वानरश्रेष्ठके प्राण, तेज और देह लक्ष्मीको धारण किये रही ॥ ५॥ वानरराज उस सुवर्णकी मालासे संध्याकालीन जलधरकी समान शोभा धारण करता हुआ॥ ६॥ यद्यपि वालि गिर पडा, परंतु उस समयभी ऐसा शोभित होताथा कि, मानों लक्ष्मी, माला, देह और मर्म घाती शर इन रूपोंमें प्रगटहो शोभायमान होरही है ॥ ७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटा हुआ स्वर्गका साधक वह बाण उस वीर वालिको परमगतिका देनेवाला हुआ ॥ ८ ॥ युद्धस्थलमें शिखारहित अग्निकी समान गिरे पुण्य क्षय होनेपर देवलोकसे खसे ययातिकी तुल्य ॥ ९ ॥ युगान्तके समय पृथ्वीमें गिरे हुये सूर्यकी समान इन्द्रकीसमान दुर्द्धर्ष उपेन्द्रकी समान दुस्सह ॥ १० ॥ चौडी छातीवाले महाबाहु प्रदीप्तवदन सिंहलोचन इन्द्रके पुत्र हेममाली वालिको ॥ ११ ॥

रणस्थलमें देख श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित उसके निकट गये जहां वह वीर बुझी हुई अग्निके समान पृथ्वीपर गिरा पडाथा ॥ १२ ॥ वह मानके करने योग्य श्रीराम लक्ष्मणजी बहुत मानके योग्य उस वीरश्रेष्ठ वालिके निकट उसको देखते २ गये ॥ १३ ॥ वाली महाबलवान् श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको देखकर धर्मयुक्त कठोर वचन बोला ॥ १४ ॥ अल्पतेज; अल्पप्राण, चेतना रहित, भूमिपतित वालि रणगर्वित श्रीरामचंद्रजीसे गर्वित वचन कहने लगा ॥ १५ ॥ हे राम ! आपके सहित हमने सन्मुख युद्ध नहीं किंवा फिर भला आपने हमको मार कर किस गुणको प्राप्त किया हम सुग्रीवके साथ युद्ध करनेमें लगे रहकर आपके द्वारा मारे गये ॥ १६ ॥ हे राम ! आप करुणामय प्रजागणोंके हितमें निरत कुलीन, सत्वसम्पन्न, तेजस्वी, वेदविहितकर्मकारी ॥ १७ ॥ महोत्साही, दृढव्रतधारी उचित अनुचित कालके जाननेवाले लज्जाशीलहैं पृथ्वीके सबही मनुष्य इस प्रकारसे कहकर आपका यश बखानते हैं ॥ १८ ॥ दम, शम, क्षमा, धर्म, धीरज, सत्यता और पराक्रम व अपकारियोंको दंड देना यह समस्त राजा लोगोंके गुणहैं ॥ १९ ॥ सो हम आपमें यही समस्त गुण सुना करते थे और यह भी ज्ञातथा कि, आप सत्कुलमें जन्मे हैं, यही कारण हुआ कि ताराके रोकनेपर भी हम सुग्रीवसे युद्ध करते हुये ॥ २० ॥ हम दूसरेके सहित यह विचार कर युद्धमें नियुक्त थे कि आप धर्मको छोडकर हमको क्यों मारनेलगेहैं और इसी कारण वश आपकी ओरसे कुछ चिन्ता न की हमारी बुद्धि आपके दर्शनसे पहले यह थी कि,आप धर्मके प्रतिपालकहैं परन्तु अब यह बुद्धि जातीरही ॥ २१ ॥ परन्तु हमने भली प्रकार चिन्ह लिया कि धर्मध्वज आप, अधार्मिक तृणोंसे ढके हुये अंधकूपकी समान, नष्टात्मा ॥ २२ ॥ असज्जनहो परन्तु सज्जनोंका वेश धारण किये हुये पापिष्ठी पावकतुल्य ढके हुये कपट धर्मसे छिपे हो हमने पहले न जाना कि, आप ऐसे हैं ॥ २३ ॥ आपके राज्यमें या नगरमें हमने कोई पाप वा बुरा आचरण नहीं किया फिर आपने किस कारणसे हमें मारा ? हम नहीं जानते कि आप कौन हैं ॥२४॥ हम नित्य फल मूल भोजन करनेवाले वनवासी वानर सुग्रीवसे युद्धकरतेथे कुछ आपको तो नहीं छेडा था फिर आपने क्यों हमें मारा ? ॥ २५ ॥ हे राजन् ! आप राजा दशरथजीके पुत्र प्रिय दर्शनहैं और आपमें धर्मानुसार चिह्नभी दृष्टि आतेहैं. कि जिससे ज्ञात होताहै कि आप कभी अधर्म न करते होंगे ॥ २६ ॥ क्षत्रिय कुलमें

उत्पन्न हुआ वेद जाननेवाला इसलिये संशय रहित धर्मचिह्न धारण करकै कौन पुरुष क्रूरकर्मका आचरण करताहै ? ॥ २७ ॥ रघुकुलमें आपने जन्म लियाहै, संसारमें धर्मवान्के नामसे आप विख्यातहैं; फिर भला शुभरूप धारण करके आपने अधर्म कर्म क्यों किया ? ॥ २८ ॥ हे राजन् ! साम, दान, क्षमा, सत्य, धीरज और पराक्रम व शत्रुको दंड देना यह समस्त राजाओंके गुणहैं ॥ २९ ॥ हे नरेश्वर ! हम फल मूलके भोजन करनेवाले वनचर पशुतुल्यहैं, हमारी बुद्धि पशुकी समान होजाय तौ आश्चर्य नहीं परन्तु आप नगरवासी पुरुषहैं आपका ऐसा स्वभाव क्योंकर हुआ॥ ३०॥ आप सोना, चांदी, इत्यादिकोंके ऊपरही विवाद व युद्ध कर सकते हैं हम वनवासी और फलोंके खानेवालेहैं सो हमारे फल मूलके ऊपर आप किसी प्रकार लोभ नहीं कर सकते ॥ ३१ ॥ नीति, विनय, अनुग्रह, निग्रह, इन चार बातोंके अतिरिक्त राजा लोग और किसी बातमें स्वेच्छाचारी नहीं होते ॥ ३२॥ आप स्वेच्छाचारी कोपनस्वभाव चंचलचित्त राजकार्योंमें अयोग्यहैं, जहां तहां धनुषसे बाण छोडते फिरतेहैं॥ ३३ ॥ मनुष्योंके राजा होनेपरभी धर्ममें आपका आदर नहीं यथार्थ अर्थमें बुद्धि स्थिर नहींहै बरन आप स्वेच्छाचारी होकर इंद्रियगणोंके वशमें पड खींचे फिरतेहैं ॥ ३४ ॥ हम विन अपराधीको बाणसे मार अति निन्द-नीय कर्मका अनुष्ठान कर आप सज्जनोंके बीचमें क्या कहेंगे ? ॥ ३५ ॥ राज-घाती, ब्रह्मघाती, चोर, प्राणियोंको मारनेवाला, नास्तिक, परिवेत्ता[1] यह सब पुरुष नरकको जातेहैं ॥ ३६ ॥ चुगली करनेवाला, कादर मित्रका मारनेवाला गुरुतल्पग[2] यह लोगभी निःसन्देह पापियोंके लोकको जाते हैं ॥ ३७ ॥ हम लोगोंका चर्म आप लोगोंके धारण करने योग्य नहीं हमारे रुवें और हड्डियेंभी सज्जनलोग नहीं ग्रहण करते, और मांसभी आप सरिखे धर्मचारी गणोंके अयोग्यहै, इस कारण राजाओंके आखेट धर्मका बहानाभी आप हमपर नहीं कर सकते॥ ३८॥ हे राघव ! गैंडा, सई, गोह, खरगोश, शशा, और कछुआ, यह पांच पंचनखवाले जीव ब्राह्मण और क्षत्रियोंके भक्षण करने योग्यहैं ॥ ३९ ॥ बुद्धिमान् लोग वान-रका चमडा, हड्डी, और रुवेंको स्पर्शतक नहीं करते और मांस तो हमारा अभ-

सो हम उन्हीं पंचनखवाले वानरको आपने किस कारणसे वध किया ?

१ बडे भाईका विवाह विनाही हुये छोटा जो विवाह कर लेताहै उसको परिवेत्ता कहते हैं ॥
२ गुरुकी स्त्रीको हरण करनेवाला ॥

॥ ४० ॥ हाय ! सर्व ज्ञान सम्पन्न ताराने हमको सत्य और हितकारी वचन कहेथे, परन्तु हम अज्ञानवश उसके वचनोंको न मानकर कालके कराल गालमें पडे ॥ ४१ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! विधर्मी पतिको प्राप्त कर जिस प्रकार सुशील स्त्री सनाथ नहीं होती वैसेही आपको पाय पृथ्वी सनाथ नहीं हुई ॥ ४२ ॥ महाराज दशरथजी तो महात्मा पुरुषथे उनसे शठ पराया बुरा करनेवाले नीच मिथ्या भाषी आपने किस प्रकारसे जन्म ग्रहण किया ॥ ४३ ॥ रामरूप हस्तीने सज्जन लोगोंका धर्म उल्लंघन कर सदाचारकी रस्सी तोड और धर्मरूप अंकुशको न मारकर हमको मार डाला ॥ ४४ ॥ अशुभ, अयुक्त, सज्जनोंसे निन्दित कार्य कर, जब आप सज्जनसमाजमें बैठेंगे, तब उन लोगोंसे आप क्या कहेंगे ? ॥ ४५ ॥ हे राम ! आपने हम उदासीन जनके ऊपर ऐसा विक्रम प्रकाश किया, परन्तु अपकारी पुरुषके ऊपर आपका पराक्रम दृष्टि नहीं आता ॥ ४६ ॥ हे राजकुमार ! यदि आप प्रगट होकर हमसे संग्राम करते तो अभी हमसे मारे जाकर निःसन्देह आप यमराजका भवन देखते ॥ ४७ ॥ हे राम ! मनुष्य लोग जिस प्रकार सोतेहुये सर्पको मार डालते हैं आपने भी वैसे ही अप्रगट रहकर अतिशय दुर्द्धर्ष हमको प्राणसे मार डाला ॥ ४८ ॥ तुमने सुग्रीवका प्रिय करने और अपनी स्त्री प्राप्त करनेके लिये हमको मारडाला, यदि पहलेहीसे आप हमें जतादेते तो हम एक दिनके बीचमें निःसन्देह आपकी भार्या मैथिलीको लादेते ॥ ४९ ॥ हम निःसन्देह तुम्हारी भार्याके हरण करनेवाले दुरात्मा राक्षस रावणको संग्राममें विनाहने उसके गलेमें रस्सी बाँधकर आपके निकट ले आते ॥ ५० ॥ मैथिली समुद्रके जलमें, वा पातालमें अथवा जहां कहीं भी होती आपकी आज्ञा पाते ही जानकी आपके पास ले आते, जैसे मधु कैटभ दैत्य करकै हरीहुई शुक्ल यजुर्वेदकी श्रुतिको हयग्रीवजी ले आयेथे ॥ ५१ ॥ यह तो ठीकही ठीक हुआ कि हमारे स्वर्ग जाने पर सुग्रीव राजा होंगे, परन्तु यह कार्य अत्यन्त अनुचित हुआ कि, आपने हमको अधर्मसे मार डाला ॥ ५२ ॥ एक दिन सबहीको कालके गालमें जानाहै; फिर इससे हम मृत्युको प्राप्त हुए, तो क्या हुआ ? परन्तु आप हमको अधर्मसे वधकर जब राज्य प्राप्त करेंगे, और उस समय राज्य स्थित प्रजागण प्रश्न करेंगे तो उनको आप क्या उत्तर देंगे ? यह विचार लेना ॥

॥ ५३ ॥ इस प्रकार बाणकी चोटसे व्यथित होकर वानरराज महात्मा वालिका मुख पीला पडगया और वह सूर्य समान तेजवान् रामचन्द्रको देखते २ मौन हो रहा ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां सप्तदशः सर्गः ॥ १७॥

अष्टादशः सर्गः १८.

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा घायल, अचेतन वाली, श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार धर्म-अर्थ कामसहित हितकारी व कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ उस वानरवरको प्रभा-हीन सूर्यकी समान, जलरहित मेघकी समान और बुझी हुई आगके समान वचन कह चुपहुये ॥ २ ॥ धर्म, अर्थ, गुणयुक्त, उत्तम वानरनाथ वालिसे बहुत निन्दा किये जानेपरभी श्रीरामचन्द्रजी बोले ॥ ३ ॥ धर्म, अर्थ, काम, लौकिक आचार इन सबको विनाजाने तुम बालककी समान हमारी निन्दा क्यों करतेहो ॥ ४ ॥ तुम आचार्य, समस्त वृद्ध और बुद्धिमानोंके बिना पूछे ही वानर स्वभावहीकी चपलताके हेतु हमारी निन्दा करनेकी इच्छा करते हो ॥ ५ ॥ हम इक्ष्वाकुवंशि-योंके पूर्वपुरुष मनुजीने, शैल वन और काननादि सहित यह पृथ्वी हम लोगोंको दी तिससे इस पृथ्वीके जितने मृग, पक्षी व मनुष्यहैं सबपर अनुग्रह और दंड करने-का अधिकार हमहींको है ॥ ६ ॥ सत्यशाली, सरल स्वभाव, दंड और अनुग्रह करनेमें निरत, धर्म, अर्थ व कामके तत्वको जाननेवाले, धर्मात्मा भरतजी इस स-मय इस पृथ्वीका पालन करते हैं ॥ ७ ॥ जिसमें नीति, विनय और सत्य देखा जाय वही देश काल ज्ञाता पुरुष राजा हो सकताहै, सो यह सब भरतजीमें है ॥ ॥ ८ ॥ हम व और दूसरे नृपतिगण, उनसे धर्माचरण करनेके निमित्त आज्ञा पाकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर विचरतेहैं ॥ ९ ॥ जब कि नृपतिश्रेष्ठ धर्मवत्सल भरतजी समस्त पृथ्वीका पालन कर रहेहैं, तब कौन पुरुष धर्मका अप्रिय साधन करनेमें समर्थ हो सकताहै ? ॥ १० ॥ हम अति उत्तम अपने धर्ममें टिके रह भरतजीकी आज्ञा शिरपर धारण कर, धर्ममार्ग छोडनेवाले पुरुषोंका विचार किया करतेहैं ॥ ॥ ११ ॥ तुमने धर्मको क्लेश देकर निन्दनीय कर्म कियाहै—तुम राजधर्मका अप-मानकर उसमें नहीं टिके हुए अधिक कर कामाधीन हुएहो ॥ १२ ॥ धर्ममें और अच्छे मार्गमें चलनेवाले बडे भ्राता, पिता और जो विद्या पढावै यह तीनोंजन पिताके

तुल्य होतेहैं ॥ १३ ॥ छोटाभाई पुत्र और गुणवान् शिष्य इन तीनों जनोंको पुत्रकी तुल्य समझना चाहिये इसमें धर्महीं कारणरूप गिना जाताहै ॥ १४ ॥ हे वानर ! सज्जनोंका परम धर्म अति सूक्ष्महै सो हृदयमें टिका हुआ आत्मा शुभ अ-शुभ समस्तही जान सकताहै ॥ १५ ॥ तुम चपलस्वभाव, जन्मान्ध और मूढहो चपलबुद्धि जन्मान्ध वानरगणोंके सहित सलाह कर व उनके निकट उठने बैठनेसे तुमभी वैसेही होगयेहो ॥ १६ ॥ तुम श्रवण करो कि, हम यह वचन स्पष्ट प्रगट कर कहतेहैं कि, तुम केवल रोषमें भर हमारी निन्दा करतेहो सो यह तुमको उचित नहींहै ॥१७॥ हम तुमको यहभी बतलातेहैं कि, जिस कारणसे हमने तुमको मारा है तुम सनातन धर्मको छोड छोटे भ्राताकी स्त्रीसे रमण करते हो सो इसका विचार तुमही करलो कि, यह बात उचित है वा अनुचित ॥ १८ ॥ महात्मा सुग्रीवके जीवित रहते पापाचारी तुमने उनकी स्त्री अपनी भ्राताकी वधूसे कामके अधीन हो रमण किया ॥ १९ ॥ इस लिये तुमने कामाचारी हो धर्मके मार्गको उल्लंघन कि,या । उस भ्रातृभार्याकी धर्षणा करनेके हेतु हमने यह दंड तुमको दियाहै ॥ २० ॥ हे वानरवर ! लोकोंके व्यवहारकी मर्यादाको उल्लंघन करनेवाले लोक विमुख पुरुषको मारनेके सिवाय हम और कोई दंड नहीं देखते ॥ २१ ॥ हम श्रेष्ठ कुलमें उत्प-न्न हुये, क्षत्रिय पापको नहीं सहसकते, सहोदरा भगिनी अथवा छोटे भ्राताकी स्त्रीसे ॥ २२ ॥ रमण करनेवाले पुरुषको मार डालनाही ठीक दंड है महीपाल भरतजीने हमको इसी प्रकारकी आज्ञा की है, सो हमने उनकी आज्ञानुसारही कार्य किया है ॥ २३ ॥ तुमने धर्मकी मर्यादाको तोडा है, जो गुरु होकर धर्मकी मर्यादा तोडै, तो परलोकमें धर्मपालक होकर उसकोभी विना दंड दिये नहीं छोड सकते ॥ २४ ॥ भरतजीने कामाधीनहो स्वेच्छानुसार चलनेवाले पुरुषोंको दंड देनेकी व्यवस्था कीहै, सो हम लोग उन भरतकी आज्ञा पालन करके तुम्हारी समान धर्मकी मर्यादा तोडनेवाले पुरुषोंको विनाश करते हैं ॥२५॥ जैसे लक्ष्मणजीके सङ्ग हमारी मित्रताईहै, वैसेही सुग्रीवजीभी हमारे सखाहैं, सो सुग्रीवजी हमारी मित्रतासे अपना राज्य व स्त्री पानेके लिये हमारे निकट आये हैं, यह वानर हमारा बडा प्रियकारीहै ॥२६॥ और दूसरे हमने सब वानरोंके सहित प्रतिज्ञाभी कीहै कि, तुम्हारा राज्य और तुम्हारी स्त्री तुम्हें दिलादेंगे। सो भला हमसमान पुरुष प्रतिज्ञाको किस प्रकारसे त्याग कर सकते हैं ॥ २७ ॥ इन सब धर्मसंयुक्त बडे कारणोंके समूहके निमित्त

हमने तुमको दंड दिया है सो तुमभी इसको उचितही समझो ॥ २८ ॥ तुमको दंड देना सब भांतिसेही धर्मानुसार ज्ञात होता है। और मित्रका उपकार करनाभी धर्मचारी पुरुषोंको अवश्यही कर्तव्य है ॥ २९ ॥ सो तुमको दंड देकर हमने धर्महीका वर्ताव कियाहै महात्मा मनुजीके चरित्रवान् दो श्लोक हमने सुन रक्खे हैं सो उनको हमने तथा सबही धर्म कुशल जनोंने ग्रहण कियाहै ॥ ३० ॥ उन-श्लोकोंका अर्थ यह है कि पाप करनेवाले मनुष्यगण राजदंड ग्रहण करके सुकृत करनेवाले पुरुषोंकी समान निर्मल होकर स्वर्गमें गमन करते हैं ॥ ३१ ॥ हम पापी हैं इसलिये हमको आप दंड दीजिये, यह कहकर जो पापी राजाके निकट चला जाय, उसको राजा दंड दे अथवा न देकर कृपा दिखा छोडदे तौ उन दोनों बातोंसे पापी तो अपने पापसे छूटगया, परन्तु छोड देनेसे उस पापका भागी राजा होताहै ॥ इसलिये हमने तुमको दंड दिया ॥ ३२ ॥ शिष्टाचारका भी प्रमाण देतेहैं जैसा कि, पाप तुमने कियाहै; वैसाही पाप एक समय किसी श्रमण (आर्हत संन्यासी) ने कियाथा कि, जिसको हमारे पुरुषा मान्धाताजीने घोर दंड दिया ॥ ३३ ॥ और राजालोगोंने भी प्रथम पापियोंको दंड दियाहै, अधिक क्या कहें, पाप करनेवाले पुरुष कभी आपभी पापका प्रायश्चित्त करके शुद्ध हुआ करते हैं ॥ ३४ ॥ हे वानरशार्दूल ! पछतावा करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है, हमने धर्मानुसारही तुम्हारा संहार कियाहै, क्योंकि हमभी धर्मशास्त्रके वशहैं, कुछ स्वाधीन नहींहैं ॥ ३५ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! इस विषयमें औरभी कारणहैं; वह भी तुम्हें बतातेहैं उनको सुनकर तुम मनमें उपजाहुआ क्रोध छोडदो ॥ ३६ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! न तो इसलिये कुछ हमारे मनको संतापहै, न कुछ क्रोधहीहै, क्योंकि बहुत सारे मांस खानेवाले नरगण, जाल, फांसी; व विविध भांतिके कपट कर ॥ ३७ ॥ छिपकर, वा प्रगट होकर भागते और डरेहुये वा विश्वास कर बैठेहुए बहुत मृगोंको पकडतेहैं ॥ ३८ ॥ जो राजालोग सावधान या असावधान दुष्ट मृगोंको काननमें हनन करते हैं उनकोभी मनुष्य वध करनेके समान अघ नहीं प्राप्त होता, चाहें मांसके अर्थ वा यज्ञार्थ चाहें जिसके लिये मारें उन्हें कुछभी दोष नहीं होता ॥ ३९ ॥ बहुत सारे धर्मके जाननेवाले राजर्षिलोगोंने शिकार खेलते २ अनेक वनैले मृग मार डालेहैं, व इसी कारणसे हमने तुमको बाण मारकर संहार किया। क्योंकि तुमभी तो शाखामृगहीहो ॥ ४० ॥ चाहें तुम हमसे युद्ध करतेथे या न करतेथे

परन्तु थे तो मृगही; इससे हमने तुमको मारा ॥ ४१ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! राजालोग दुर्लभ और शुभकारी धर्म और जीवनतक दानकर देतेहैं कुछ संदेह नहीं ॥ ४२ ॥ राजालोगोंको न मारना चाहिये, उनके ऊपर क्रोध कर तर्जनादि न करना चाहिये, और न कुप्यारे वचन कहे, क्योंकि यह राजालोग देवता हैं मनुष्यके रूपमें पृथ्वीपर फिरा करतेहैं ॥ ४३ ॥ तुम धर्मका मार्ग न जानकर केवल क्रोधके वशहो पितापितामहादिकोंके धर्ममें टिके हुये हमारी निन्दा करतेहो ॥ ४४ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा, तब वालि अपने कहेहुये पहले कठोर वचनोंका पछतावा कर व्यथित होने लगा, और भली भांतिसे धर्मके तत्त्वको जानकर फिर रामचन्द्रजीमें दोषबुद्धि नहीं करता हुआ ॥ ४५ ॥ तब उसने हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि, हे नरश्रेष्ठ! इस बातमें कुछ संशय नहीं कि, आपने हमसे जो कुछ कहा वह सब सत्यही सत्यहै ॥ ४६ ॥ श्रेष्ठ पुरुषके आगे नीच पुरुष बोलनेको समर्थ नहीं होता, हमने पहले अज्ञानताके मारे जो वचन कहेथे ॥ ४७॥ सो उनसे आप कुछ दोष न ग्रहण करें आप प्रमाणित धर्मादितत्त्वके यथार्थही विचार कर्ताहैं, और इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि, आप प्रजागणोंका हित करनेमें निरतभीहैं ॥ ४८ ॥ इसमें कुछ संशय नहीं कि, आपकी स्थिर बुद्धि कार्य कारणके सिद्ध करनेमें निपुणहै ॥ ४९ ॥ हे धर्मज्ञ ! हम धर्म उल्लंघन करनेवाले पुरुषोंके अग्रणी और पापीहैं सो आप धर्मयुक्त वचनोंसे हमको उत्तम लोक देकर प्रतिपालन कर लीजिये ॥ ५० ॥ वालि दल २ में फँसेहुये हाथीकी समान आर्त्त स्वरसे श्रीरामचन्द्रजीसे दीन वचन बोला उस समय उसका कंठ आंसुओंसे रुक गयाथा ॥ ५१ ॥ हम अपने लिये, ताराके लिये, और वानरगणोंके लिये शोक नहीं करते, हम तो केवल सोनेके बाजू पहरे बालक अंगदके ही लिये शोक करतेहैं क्योंकि मैं तो भगवान्‌से मारा गया तारासे सुग्रीव प्रीति करैगा, वानर सेवा कर रह जायँगे, बस अंगदका कहीं ठीक नहीं ॥ ५२ ॥ जब वह बचाहीथा, तबसे हमने उसका लालन पालन किया, वह हमको न देखकर दीन भावको प्राप्तहो उस तडागकी समान सूख जायगा कि, जिसका जल हाथियोंने पीलियाहो ॥ ५३ ॥ हे राम ! ताराके गर्भसे उत्पन्न हमारे इकलौते, कच्चीबुद्धियुक्त महा बलवान् अंगद बालककी आप रक्षा कीजिये; हे महाराज ! कहीं मेरे पुत्रको कष्ट न हो ॥ ५४ ॥ सुग्रीवकी बुद्धि ऐसी बदल दीजिये कि वह अंगदसे प्रीति करनेलगै । क्योंकि आप कार्य अकार्यके विधानमें सबके सिखलाने और रक्षा करनेवाले हैं,इस कारण इनको

आप भली भांतिसे पालते पोषते रहिये ॥ ५५ ॥ हे नरेश्वर ! आप भरत और लक्ष्मणजीमें जिसप्रकारकी स्नेहबुद्धि रखतेहैं, वही बुद्धि सुग्रीव और अंगदके प्रति कीजिये ॥ ५६ ॥ हमने दोष कियाहै, कहीं यह समझकर ताराको दोष न दिया जाय, हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप ऐसा कीजिये कि, जिससे शोचनीय उस स्त्रीको सुग्रीव प्रतिपालन करे व निरादर न करै ॥ ५७ ॥ आपके वशमें रहकर आपके चित्तका अनुयायी और आपके अनुग्रहका भाजन होकर वह वानर राज्यको पालनकर सकता, ॥५८॥ समस्त पृथ्वीको, पालनकर सकता, और स्वर्गका राज्य भी करनेमें निःसन्देह समर्थ हो सकताहै, फिर इस तुच्छ राज्यकी क्या चलाई। हे श्रीरामचन्द्रजी ! हम इसी लिये तारा करके रोके जानेपर भी आपके हाथसे अपने वधकी वांछा कर ॥ ५९ ॥ भ्राता सुग्रीवके साथ द्वंद्व युद्ध करने लगे। वानरराज वालि रामचंद्रजीसे यह कह चुप होरहा ॥ ६० ॥ तब श्रीरामचंद्रजी धर्मार्थसंयुक्त साधु संमत वचनोंसे ज्ञानी वालिको समझाने लगे ॥ ६१ ॥ हे वानरश्रेष्ठ वालि ! हमने गुप्त वध रूप अकार्य कियाहै, ऐसा तुम कभी मत समझना और ऐसाभी न समझना कि तुमको हमने इसलिये माराहै; कि तुमने अपने भाईकी स्त्रीको हर लियाहै, क्योंकि हम तुमसे अधिक परिशोधित बुद्धि द्वारा धर्म और शास्त्रानुसार कार्य करतेहैं, बस यही बात तुमभी समझो ॥६२ ॥ जो पुरुष दंडपाने योग्य जनको दंडदेताहै, और दंडपाने लायक जन जिस करके दंड पाताहै उसकी कार्यसिद्धि और कारणसिद्धि विनाशको नहीं प्राप्तहोती ॥ ६३ ॥ इसलिये दंड पाकर तुम पापसे छूटगये और दंडसे बताये हुए मार्ग द्वारा तुम अपने धर्मसंयुक्त मार्गको प्राप्तहोगये ॥६४॥ हे वानरश्रेष्ठ ! तुम अपने हृदयमें टिकाहुआ शोक और मोह दूर करदो; क्योंकि पहले किये हुए कर्मोंको तुम उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं होसकते ॥ ६५ ॥ जिसप्रकारसे अंगदमें तुम भाव रखतेथे. वही भाव हमारा और सुग्रीवका उसमें रहैगा; इसमें कुछ संदेह नहीं है उसकी प्रीति हममें होगी ॥६६॥ वालि, उन महात्मा रणजयी श्रीरामचंद्रजीके धर्मयुक्त सावधान मधुरवचन सुनकर उनसे बोला ॥ ६७ ॥ हे इन्द्रके समान भीमविक्रम श्रीरामचंद्रजी ! हमने बाणके आघातसे चेतना रहित और बुद्धिहीनहो जो कुछ दुर्वचन कहाहो सो आप प्रसन्न होकर हमारे उस अपराधको क्षमा करदीजिये ॥ ६८ ॥

इत्यार्षे श्रीम० वाद्रा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां अष्टादशःसर्गः॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः १९.

बाणसे पीडितहो वानरराजवालि श्रीरामचंद्रजीके हेतुयुक्त वचन सुन फिर कुछ उत्तर न देसका ॥ १ ॥ एक तो सुग्रीवजीके मारेहुए पत्थरोंकी चोट व वृक्षोंकी चोटसे वालिके अंग छिन्न भिन्न और घायल होरहेथे. तिसपर श्रीरामचंद्रजीके बाणसे आहतहो दीर्घ श्वास लेताहुआ वह मरणान्तमें मोहको प्राप्त हुआ ॥ २॥ वालिकी भार्या ताराने रनवासमेंही यह वार्त्ता सुनी कि वानरशार्दूल वालि संग्राम स्थलमें श्रीरामचंद्रजीके चलाये हुए बाणसे मारागया ॥ ३ ॥ पुत्रके सहित तारा पतिके मारे जानेकी दारुण वार्ता सुनकर उद्विग्न चित्तहो गिरिकंदरसे निकलकर किष्किन्धापुरीसे सहसा चली ॥ ४ ॥ अंगदजीके सब जो महाबल रक्षा करनेवालेथे वह धनुष धारण किये श्रीरामचंद्रजीको देख भयके मारे भागने लगे ॥ ५ ॥ फिर ताराने देखा कि निहत यूथपति और यूथसे बिछुडे हुए मृगगणोंकी नाई वानरगण डरकर भाग रहेहैं ॥ ६ ॥ दुःखिता तारा शरद्वारा शयन करते हुएकी समान श्रीरामचंद्रजी करके त्रासित वालिको देख भागते हुए वानरोंके निकट गमन करके कहने लगी ॥ ७ ॥ हे वानरगण ! तुम लोग जिस राजासिंहके आगे होकर युद्ध करतेथे. इस समय उसको त्याग चित्तमें भ्रमितहो क्यों भागे जातेहैं ? ॥ ८ ॥ राज्यके लिये उन वानर राजके क्रूर भ्राता सुग्रीवजीसे भेजे जाकर श्रीरामचन्द्रजीने दूर खडेहो दूर जानेवाले बाणसे क्या उन वानरराज वालिको मारडाला ? ॥ ९ ॥ कपिकी स्त्रीके वचन सुनकर कामरूपी वानरगण वालिकी स्त्री तारासे कालोचित प्रबोध वचन कहने लगे ॥ १० ॥ हे तारे ! आपका शत्रु अभी जीवितहै इसलिये आप लौट जाकर अंगदकी रक्षा और पालन कीजिये काल, राम रूप धर वालिको अपने पुरमें लिये जाताहै ॥ ११ ॥ वालिके द्वारा छोडे हुए बहुतसारे वृक्ष और शिलाओंको व्यर्थ करके श्रीरामचन्द्रजीने इंद्रकी समान वालिको वज्र तुल्य बाणके प्रहारसे मारडाला ॥१२॥ हे वानरराजप्रिये ! जब इंद्र समान वह वानरराज वालि मारे गये, तब यह समस्त वानरगण श्रीरामचंद्रजीके बलसे भीत होकर चारों ओरको भागतेहैं ॥१३॥ इससमय आप वीर गणोंसे नगरीकी रक्षा करकै अंगदको राज्यसिंहासनपर बैठाल दीजिये,जब वह राज्यपर बैठ जायँगे तो सब वानरगण इन

वालिपुत्रकी सेवा करेंगे ॥ १४ ॥ हे सुमुखी ! अथवा यह स्थान तुमको अच्छा न लगैगा तो सुग्रीवादि वानरगण शीघ्रतासे इस स्थानमें और किले आदिकमें प्रवेश करेंगे ॥ १५ ॥ जब यह लोग किलेमें चले जाँयगे, तो भार्याहीन वा भार्यासहित टिके हुए जो वनचारी वानरगण इस स्थानमें टिकेहैं उनको सुग्रीवादि वानरगणोंसे महा भय प्राप्त होगी ? क्योंकि इन लोगोंने पहले सुग्रीवादिसे बडा छल कियाहै ॥ १६ ॥ चारुहासिनी तारा थोडी दूर खडे हुए वानरोंके वचन श्रवण करके अपने योग्य वचन उनसे कहने लगी ॥ १७ ॥ उन महाभाग कपिश्रेष्ठ हमारे पतिके मरजानेसे हमको पुत्र, राज्य, वा जीवनसे क्या प्रयोजनहै ॥ १८ ॥ जो हमारे पति श्रीरामचन्द्रजीके छोडे हुए बाणसे मारे गयेहैं, हम उन्हीं महात्माके चरण कमलकी शरणमें गमन करैंगी ॥ १९ ॥ यह कहकर शोकसे विह्वल हुई तारा रोते २ दौड दुःखके मारे दोनों हाथोंसे शिर और छातीको पीटने लगी ॥ २० ॥ वह सती शीघ्रतासे चलते२ समरमें न भागने वाले, भूमिमें गिरे, दैत्येन्द्रोंको मारने वाले ॥ २१ ॥ वज्र चलानेवाले इन्द्रकी समान, पर्वत समूहोंको उखाड कर फें-कनेवाले, महा प्रचंड पवन युक्त महामेघकी समान घोर शब्द करने वाले ॥ २२ ॥ इन्द्र तुल्य पराक्रमवान् बाण वृष्टि संयुक्त मेघकी समान वानरगणोंके मध्यमें श्रेष्ठ शूर भयंकर गर्जन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे गिराये ॥ २३ ॥ मांसके लिये व्याघ्र द्वारा मारे हुए हाथीके समान गिरे॥ २४ ॥ सर्वलोकसे पूजित पताकासहित वैदिक मंत्रसे अर्चित अंतरमें भुजंगयुक्त वामीको सर्पके निमित्त गरुडने जैसे उन्मथित कियाहो ऐसे, विध्वंसित देवालयकीसमान दुर्दशाग्रस्त वालिको देखा ॥ २५ ॥ और भूमिमें खडे महाधनुष चढाये श्रीरामचन्द्रजीके सहित लक्ष्मण और अपने पतिके छोटे भाई सुग्रीवको ताराने देखा ॥ २६ ॥ इन सबको लांघ रणस्थलमें गिरे अपने स्वामीको देखकर व्यथित और उद्विग्नहो तारा गिर पडी ॥ २७ ॥ फिर तारा सोती हुईकी समान उठकर "हा आर्यपुत्र !" ऐसा कह पतिको मृत्युके पाशसे बँधा देख रोने लगी ॥ २८ ॥ सुग्रीवजी कुररीकी समान रोती हुई ताराको और उसके पुत्र अंगदको देख विषादके मारे महा समुद्रमें डूबगये ॥ २९ ॥

इ० श्रीमद्रा०वा० आ० कात्यायनकुमारपंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषानुवादे किष्किन्धाकांडे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

चंद्रवदनी तारा श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे प्राणविनाशी बाणसे मरे हुए देख अपने पति ॥ १ ॥ वालिके निकट जाकर बाणसे हत हुए उस कुंजरकी समान गिरे हुएसे लिपट भलीभांति मिली ॥ २ ॥ फिर पर्वतकी समान दीप्तिमान् पडे हुए वृक्षकी नांई वालिको देखकर शोक और संतप्त हृदयसे विलाप करने लगी ॥ ३ ॥ हे दारुणविक्रम ! वानर श्रेष्ठ वीरवर ! इस समय तुम अत्यन्त अपराधिनी हमसे क्यों नहीं बोलते हो ? ॥ ४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! उठकर उत्तम सेजपर शयन करो. नृप-श्रेष्ठ इस प्रकार पृथ्वीके ऊपर शयन नहीं करतेहैं ॥ ५ ॥ हे वसुधाधिप ! यह पृथ्वी तुमको अत्यन्त प्यारीहै. क्योंकि हमको छोडकरभी तुम शरीरसे पृथ्वीको चिपटाये हुएहो ॥ ६ ॥ हे वीर ! हम जानगईं कि तुम यहां धर्म और. शास्त्रके अनु-सारही चलतेथे. इससे कोई दूसरी अति रमणीक पुरी स्वर्गसम किष्किन्धा नगरीकी तुल्य तुमने बनालीहै ॥ ७ ॥ हमने वसन्तके समयमें जो विहार सुगंधित वनोंमें आपके साथ किये हैं. उन सबका आपने शेष कर दिया ॥ ८ ॥ हम निरानंद और निराश होकर सागरमें डूबीं, हे यूथपोंके नाथ ! यह सब बातें आपहीके मर जानेसे हुईं ॥ ९ ॥ हमारा हृदय बडा कठिन है, जो आपको पृथ्वीपर पडे देखकरभी मारे शोकके संतापित हो विदीर्ण होकर सहस्र खंड नहीं होजाता ॥ १० ॥ हे वानरनाथ ! आपने सुग्रीवकी स्त्रीको हरण करके उनको जो राज्यसे निकालदिया आज उसी कार्यका यह फल प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ हमने आपकी कुशलकी वांछाकर और हितैषिणीहो जो हितकारी वचन कहेथे सो आपने कहा न मानकर हमारी निन्दा कीथी ॥ १२ ॥ हेआर्य ! इस समय हम समझती हैं कि आप रूपयौवनसंपन्न अनुकूल नायिका अप्सरागणोंके चित्त मथोगे, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १३ ॥ हे वीर ! हमने निश्चय जाना कि जीवनका अंत करनेवाला काल निश्चयहै क्योंकि सुग्रीवके वश करके जिस कालने तुम्हारे प्राण हरण कर लियेहैं ॥ १४ ॥ यद्यपि तुम सुग्रीवके साथ युद्ध करनेमें लगरहेथे तथापि काकु-त्स्थकुलतिलकजीने अधर्मका अनुसरण करके तुम्हारा वध किया. और तिस परभी वह नहीं पछताते ॥ १५ ॥ इससे पहले हमने कभी कोई दुःख नहीं पायाहै, सो इस समय हम अत्यन्त दीन अनाथ व कृपाके योग्य हो शोकसंतापित हृदयसे वैधव्ययंत्रणाका भोग करैंगी, इसमें कुछ सन्देह नहींहै ॥ १६ ॥ हे वत्स

अंगद ! तुम्हारे कनिष्ठ तात सुग्रीव इस समय क्रोधसे मूर्छित होरहेहैं. हम नहीं कह सकतीं कि तुम कुमार उन सुग्रीवसे सुखके योग्य होकर किसप्रकारकी दुरवस्थाको भोगोगे ॥ १७ ॥ हे वत्स पुत्र ! इस समय तुम अपने धर्मवत्सल पिताको भली भांतिसे देखलो, क्योंकि इस समयसे उनका दर्शन महादुर्लभ हो जायगा ॥ १८ ॥ हे नाथ ! हे वीरश्रेष्ठ ! इस समय तुम सदाके लिये परदेशको जातेहो इसलिये इस अपने पुत्रको समझाते बुझाते जाओ और हमारे प्रति कुछ आज्ञा करके पुत्रका मस्तक सूँघिये ! ॥ १९ ॥ तुम्हें मारकर श्रीरामचन्द्रजीने बडा भारी कर्म किया, वह ऐसा करके उस प्रतिज्ञासे उऋण हुये जो उन्होंने सुग्रीवके साथ कीथी॥२०॥ हे सुग्रीव ! तुम्हारे शत्रु भ्राता अब मारे गये, इस समय तुम सफलमनोरथहो रुमाको प्राप्त करो, और उद्विग्नता छोडकर राज्य भोगो ॥ २१ ॥ हे वानरेश्वर ! हम आपकी प्रियभार्या आपके सन्मुखही रोदन कर रही हैं, सो तुम हमसे क्यों नहीं बोलते ? यह देखिये तुम्हारी औरभी बहुतसारी स्त्रियां यहां आकर विलाप कर रहीं हैं ॥ २२ ॥ वे वानरी ताराके इस भांति विलाप कलाप सुन और दूसरी वानरियें अंगदको ग्रहणकर दुःखित हो रोदन करने लगीं ॥ २३ ॥ हे अंगदधारिन् वीर-वर ! इस गुणयुक्त सुन्दरबाजूबंदवाले अंग प्रिय पुत्र अंगदको परित्याग करकै तुम सदाके लिये विदेश जाते हो, सो यह अत्यन्त अनुचित कर्म होता है ॥२४॥ हे महाबाहो ! यदि हमने कोई अपराध कियाहो, तब उसका विचारकरकै क्षमा कर दीजिये। हे वानरवंशनाथ ! देखिये, हम अपना शिर तुम्हारे चरणोंपर धरती हैं ॥ २५ ॥ निन्दा रहित तारा सब वानरियोंके सहित करुणाके वचन कह विलाप कर, वालिके निकटही बैठ मरणव्रत ग्रहणकर प्राण त्यागनेका निश्चय करती हुई ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां विंशतितमः सर्गः॥२० ॥

एकविंशः सर्गः २१.

फिर आकाशसे गिरे तारेकी समान ताराको पृथ्वीपर पडी हुई देखकर वानर यूथपति हनुमानजी, उसको धीरे २ समझाने बुझाने लगे ॥ १ ॥ समस्त जीव-जन्तुगण अपने कर्मके हेतु शमादिगुण और रागादि रोषकृतकार्य करकै परलोकमें बलात्कार शुभ और अशुभ फलकी प्राप्ति करतेहैं ॥ २ ॥ तुमभी पाप पुण्यरूपी

कर्मकी फाँसीसे बँधी हुईहो, इसलिये स्वयं शोचेजानेके योग्य होकर तुम किसके लिये शोक करतीहो ? और कर्मानुसार फल पाय दीनहो किस दीनके ऊपर दया कर रहीहो, इस पानीके बबूलेकी तुल्य देहका कौन शोच करतीहो ? सो तुम हमें बताओ ॥ ३ ॥ यह तुम्हारे पुत्र कुमार अंगद जीवितहैं, तुम इनका लालन पालन करो, और इस समय तुम अपने स्वामी वालिकी पर लोकके लिये उचित क्रियाका यत्न करो ॥ ४ ॥ प्राणियोंकी सद्गति कुछ नियत नहीं है, इस लिये पंडित गण इस लोकमें लौकिक शुभ कर्मोंको किया करतेहैं ॥ ५ ॥ जिनवानरेन्द्रके जीवन समयमें शत २ सहस्र २ अर्बुद वानर इनकी आशा बांधकर जीवन धारण करतेथे. यह वही वानरश्रेष्ठ इस समय कालकवल में पतित होतेहैं॥६॥ जब कि यह नीतिशास्त्र द्वारा राजकार्य देखकर साम दान क्षमादि परायण होकर धर्मजितोंके मार्गको प्राप्त हुये, तुम फिर इनके लिये शोक क्यों करतीहो ? ॥ ७ ॥ हे निन्दारहितचीरतवाली ! समस्त वानरगण तुम्हारे पुत्र अंगद और वानर पतिका समस्त राज्य. तुम्हारेही वशमें होगा, इसमें कुछभी संदेह नहींहै ॥८॥ इसलिये इन शोकसे संतापित अंगदजीको और सुग्रीवजीको कुछ आज्ञा दीजिये; तुम करके प्रेरित हो यह अंगद यहांका राज्यकरें ॥ ९॥ यह अंगद पुत्र तुम्हारा विद्यमानहै इसीलिये तुम शोक न करो और वालिकी समस्त क्रिया इन अंगदको करनी चाहिये, क्योंकि इस समय इन सब कर्मोंका करनाही ठीक २ होगा ॥ १० ॥ वानरराज वालिका अग्निसंस्कार करके अंगदका राज्याभिषेक कीजिये इसमें कुछ संदेह नहीं है. कि जब आप अपने पुत्रको सिंहासन पर बैठे देखैंगी तब अवश्यही शान्ति प्राप्त करेंगी ॥ ११ ॥ हनुमानजीके यह वचन सुनकर स्वामीके मरणसे अति दुःखित तारा वहां खडे हुये हनुमान जीसे बोली ॥ १२ ॥ अंगदकी समान शतपुत्रोंसे अधिक इन प्राण दिये वीरश्रेष्ठ हमारे स्वामीका शरीर स्पर्श करना निःसंदेह हमारे लिये श्रेष्ठहै ॥१३॥ स्त्री होनेके कारणसे हम सुग्रीव या अंगदजीकीस्वामिनी अथवा राज्य योग्य नहीं हो सकतीं इन हमारे स्वामीके पीछे अंगदके कनिष्ठ तात सुग्रीवही समस्त राज्य कार्यके स्वामी होंगे ॥ १४ ॥ हे हनुमान ! हम अंगदको राज्य पर अभि-षिक्त करें इस प्रकारकी बुद्धि करना कदापि कर्तव्य नहीं है क्योंकि पिताही पुत्रका बन्धुहै माता बन्धु नहीं हो सकती ॥ १५॥ वानर राजके आश्रय विना इस लोक

वा परलोकमें हमारा मंगल कर और कुछ भी नहीहै इन सन्मुख खडेहुये निहत वीर करके सेवित इसशय्याकी सेवा करना हमारे लिये निःसंदेह अति श्रेयस्करहै ॥ १६॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां एकविंशः सर्गः ॥२१॥

द्वाविंशः सर्गः २२.

मृत्युसेज पर पडे हुए वालिने चारों ओर निहारते २ मंद २ श्वास ले अंगदके आगे खडे हुए सुग्रीवजीको देखा ॥ १ ॥ वालि विजय प्राप्त किये उन वानर वर सुग्रीवजीसे स्नेह सहित यह स्पष्ट वचन बोला ॥ २ ॥ हे सुग्रीव ! पहले किये हुए रोषके कारण इस समय वा आगेको हमारे प्रति दोष बुद्धिका तुम परित्याग करदेना ।। ३ ।। हम दोनों भाइयोंमें एकवारही भायपनका सुख और राज्यसुख नहीं रहा बरन इसके विपरीत वैर भाव रहा विधाताने राज्यसुख हम तुमको एक साथ भोगना नहीं लिखाथा ।। ४ ।। तुम इस समय इन वनवासी लोगोंके राजा होवो और हम इस समय यमपुरको जाते हैं इसमें अब कुछभी विलंब नहीं है ।।५।। हम इस समय जीवन राज्य विपुल राज्य लक्ष्मी और आनंदित यश समस्तही परित्याग करतेहैं ॥ ६ ॥ हे वीर ! हम इस मरणावस्थामें जो कुछ कहते हैं वह दुष्कर होनेसे भी तुमको अवश्य करना चाहिये, क्योंकि ऐसे समयकी बात सब कोई मानते हैं ॥ ७ ॥ सुखके योग्य और सुखसेही पालनकर बडे हुये बुद्धिमान् बालक अंगदके मुखको देखो कि जो रोताहुआ पृथ्वीपर पडाहै ॥ ८ ॥ सो हमारे प्राणसेभी अधिक प्यारे गुणवान् इस पुत्रको अपने पुत्रकी समान पालन करना, पहले जिस प्रकार हम इसके समस्त प्रयोजन सिद्धकरतेथे वैसेही अब तुम करते रहना ॥ ९ ॥ हे वानरेश्वर ! जैसे प्रथम हम इसके सब प्रकारसे पिता, दाता, परित्राता,(रक्षक)और भयमें अभय देनेवालेथे, वैसेही इस समय तुम हो, कारण कि पिता और पितृव्य समानही हैं ॥ १० ॥ तुम्हारे तुल्य पराक्रमवान् यह श्रीमान् ताराकुमार अंगद राक्षसोंके वध करनेके समय तुम्हारे आगे २ चलेगा ॥ ११ ॥ यह तेजस्वी युवा तारापुत्र बलवान अंगद रणमें विक्रम प्रगट करके हमारेही समान समस्त कार्य करैगा ॥ १२ ॥ और सुषेणकी पुत्री यह तारा सूक्ष्मार्थके निर्णय करने, वा उत्पाती कामोंका विचार करनेमें बडी निपुण है ॥ १३ ॥ यह साध्वी जो कुछ कहै, उसको तुम संशयरहित होकर करना, देखो ! इस ताराकी सम्मति

कभी अन्यथा न जाय ॥ १४ ॥ तुम निःशंकचित्त होकर श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी साधना करना, यदि न करोगे तो अधर्म होगा तब अपनी अपमानता और धर्मज्ञ होनेसे यह रामचन्द्रजी तुमको मारभी डालेंगे ॥ १५ ॥ हे सुग्रीव ! यह दिव्यकाञ्चनीयमाला तुम पहरलो, इसमें अतिउत्तम विजयलक्ष्मी वास करती है, सो हम मरे हुयेभी इस मालाको पहरे रहेंगे तो इसकी श्री जाती रहेगी, इस कारण तुम इसको अभी धारण करलो॥१६॥जब वालिने भायपनके मारे स्नेहयुक्त हो ऐसा कहा तब सुग्रीवजी हर्ष परित्याग करकै राहुसे ग्रसेहुये चन्द्रमाकी समान मलीन मूर्ति होगये ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीने स्थिर चित्तसे वालिके कहे हुये वचनोंके अनुसार कार्यकर उसकी आज्ञा लेकर वह काञ्चनीमाला पहरली ॥ १८ ॥ मृत्युके निकट पहुंचा वालि वह काञ्चनीमाला सुग्रीवको दे आगे खडे हुये अपने पुत्र अंगदसे स्नेहके वशहो कहने लगा ॥ १९ ॥ तुम प्रिय अप्रिय वचन सहते, देश कालके अनुसार सुख दुःख भुगतते इन सुग्रीवके वश होवो ॥ २० ॥ हे महाबाहो ! पहले हम जिस प्रकार तुम्हारे अपराध करने परभी तुम्हारा लालन पालन करतेथे ! सो यदि अबभी वैसेही अपराध करोगे तो सुग्रीव तुमको अधिक प्यार नहीं करेंगे इसलिये सब भांतिसे इन सुग्रीवजीकी सेवा करना ॥२१॥ हे अरिन्दम ! तुम इनके अमित्र वा शत्रुके साथ न मिलना सुग्रीवही तुम्हारे ईश्वर और पालन कर्ताहैं सो तुम शांत हो इनके वशमें रहना ॥ २२ ॥ अब तुम इनसे अतिस्नेह न करना और न शत्रुता क्योंकि यह दोनोंही महा दोषकी खानिहैं; इसलिये इन दोनोंके मध्यमें होकर तुम चलते रहना॥२३॥इस प्रकार कहतेहुये बाणसे पीडित वालिके नेत्र दांत घूमने और निकल कर भयंकराकार होगये और उसका प्राण वायु निकल गया॥ २४ ॥ फिर समस्त वानर और वानरपतिगण ऊंचे स्वरसे विलाप और परिताप करने लगे ॥ २५ ॥ जब वानरनाथ वालि स्वर्गको चलागया तब किष्किन्धा नगरी और वहांकी समस्त फुलवाडियाँ व पर्वत शून्ने होगये ॥ २६॥ वानरश्रेष्ठ गन्धर्वगणोंका पराजय करनेवाला वालिमहात्मा जब मारागया तब समस्त वानर गण प्रभाहीन होगये जिस महात्मा वालिनें गन्धर्वके साथ महायुद्ध कियाथा ॥ २७ ॥ उस गन्धर्वका नाम गोलभ था, उस महा बलवानसे पंद्रह वर्षतक विना दिन रात्रिमें विश्राम लिये वालिने घोर युद्ध किया ॥ २८॥ फिर सोलहवें वर्षमें वालिने उसको माराथा, कराल डाढवाले वालिने उस दुर्विनीत गन्धर्वको मार कर ॥ २९ ॥

हमारा सब काम महा भयसे उद्धार कियाथा । हाय ! वह वालि क्यों मारागया ॥ ३० ॥ जिस प्रकार सिंहयुक्त महावनमें गोयूथपति मरजाय तब वहांपर गायें सुख नहीं पातीं ऐसेही वानरनाथ वालिके मरजानेसे वानरगण किसी प्रकारसे सुख न पासके ॥ ३१ ॥ तब तारा महादुःखके समुद्रमें डूबकर अपने मृतक स्वामीका मुख निहार जैसे आश्रित लता छिन्न महावृक्षको चिपट कर पृथ्वीमें गिरतीहै. वैसेही वालीको लिपटाय भमिपर गिरी ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः २३.

फिर तारा कपिराज वालिका मुख चुम्बन करती जगविख्यात अपने मृतक स्वामीसे कहने लगी ॥ १ ॥ हे वीरश्रेष्ठ ! तुम हमारे वचन न सुनकर पथरीली वा दुःख देनेवाली पृथ्वीपर शयन कर रहे हो ॥ २ ॥ हे वानर नाथ ! हम जानती हैं कि पृथ्वी तुमको हमसे अधिक प्यारी है क्योंकि उसको चिपट कर शयन कर रहे हो और हमसे बोलतेतक नहीं ॥ ३ ॥ यह राम रूप विधि सुग्रीवके वश में होगया वह सुग्रीव आजही अपनी भार्यासे मिल जायगा इसलिये सुग्रीवही विक्रमवान् और साहसी जान पडताहै ॥ ४ ॥ जो बडे २ ऋच्छ और मुख्य २ वानरगण बलवान् आपकी सेवा करतेथे उनका और शोक करते हुये अंगदका रोदन ॥ ५ ॥ और हमारा यह विलाप श्रवण करके तुम क्यों नहीं जागते हो हेवीर ? जिस पर तुम संग्राममें मरकर शयन किये हो यह वह स्थलहै ॥ ६ ॥ कि, जहाँ तुम्हारे हाथोंसे मरकर शत्रुगण शयन किया करतेथे हे विशुद्धबलयुक्त लोकोंके व युद्धके प्रियकारी हमारे प्यारे ॥ ७ ॥ हमारा आदर मान करनेवाले ! हम अनाथ हैं सो तुम हमको छोडकर कहाँ चले जातेहो, पंडित लोगोंको उचित है कि शूर पुरुषको अपनी कन्या न विवाहै ॥ ८ ॥ क्यों कि देखो शूरकी भार्या हम शीघ्रही विधवा हुईं, हाय हमारा मानभी गया और अधिक स्थिर सुख भी विनाशको प्राप्त हुआ॥९॥ हम इस समय अगाध विपुल शोक सागरमें डूब गईं हम जानती हैं कि, हमारा हृदय अत्यन्त कठिन और लोहेका बना हुआ है ॥ १० ॥ जो लोहेका बना हुआ न होता तो प्राणप्यारे स्वामीको मरा हुआ देखकर अबतक शत खंड होजाता हाय हमारे प्रिय स्वामी स्वभावसेही हमको प्रिय व सुहृद ॥ ११॥ संग्राम

करनेमें पराक्रमवान शूर वहभी मृत्युको प्राप्त हुये जो नारी पतिहीना है वह पुत्रवती भी होय तौभी उसे॥ १२॥ पंडितगण विधवाही कहते हैं चाहै उसको कितनाही धन धान्य हो हे वीर! अपने ही अंगोंसे निकले रुधिरके घेरमें तुम सोते हो ❀॥ १३॥ मानों वीरवधुओंके समान रंगवाले अपनी शय्यापरही शयन कियेहो। हे वानरनाथ! तुम्हारे अंगोंमें धूल और रुधिर जहाँ तहाँ लग रहा है ॥ १४ ॥ इसकारण हम अपनी दोनों बाहोंसे तुमको लिपट नहीं सकतीं; इस अति दारुण शत्रुतामें सुग्रीव कृतार्थ होगये ॥ १५ ॥ क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके छूटे हुये एकही बाणसे जिसका भय दूर होगया, हम उसी हृदयमें लगेहुये बाणके कारण तुम्हारे अंग स्पर्श नहीं कर सकतीं ॥ १६ ॥ हाय क्या कष्ट है? कि तुम्हारे मरनेपर भी हम तुमको हृदयसे न लगा सकीं। तारा इस प्रकारसे बिलाप कर रहीथी कि नीलवीरने वालिके हृदयसे बाण निकाला॥ १७॥ वह बाण इस भांति निकला जैसे गिरिगुहामें टिका हुआ सर्प निकलताहै, उस बाणके निकलनेके समय प्रभाभी हुई ॥ १८ ॥ जिसप्रकार अस्ताचलके ऊपर उदयहुई सूर्य नारायणकी द्युति शोभायमान होती है। तत्पश्चात् वालिके सब आहतस्थानोंमें रुधिरका प्रवाह निकला॥ १९॥ जैसे धराधरसे तांबा और गेरूसे मिलकर जल धारा निकलती है, रणकी धूलमें लोटते हुये अपने पतिको ॥ २०॥ नेत्रवारिसे तारा उस शूरको धोती हुई, और सब अंगोंमें रक्तलगे मृतक पतिको देख॥ २१॥ तारा पिंगल नेत्र निज सुत अंगदसे कहने लगी कि हे बेटा! अंतकालके समयको प्राप्त हुये अपने पिताकी अतिदारुण अवस्थाको देखो॥ २२॥ जो शत्रुता बलात्कारसे इन्होंने की यह उसी कर्मका फल है, हे पुत्र! प्रातःकालीन सूर्य भगवानके समान ज्वलित देह, और यमसदनको जाते हुये अपने पिताजीको भली भाँति देखलो ॥ २३ ॥ हे पुत्र! तुम मान देनेवाले राजा अपने पिताको प्रणाम करो, ऐसा सुनकर उसने उठ पिताजीके चरणोंको ग्रहण कर॥ २४॥ और गोल २दोनों बाहोंसे चरण थामकर कहा, कि मैं अंगदहूं" तब तारा ने कहा जिस प्रकार पहले प्रणाम करनेपर आप कहतेथे कि, ॥ २५ ॥ दीर्घा-

❀ जहँ पिय तहीं सबै सुख साज ॥ पिय विहीन सुरपुरको सुख सखि आवै कौने काज। पिया विना धन धाम काम किमि जर जाओ यहराज ॥ पियविन तिय चाहे सुख संपति परै तासु परगाज ॥ विधवा होय सजावत तनुको लागत जाहि न लाज ॥ तापर दुःख पडैगो औतही जाय कहाँ सो भाज॥ मिश्र यही कर्त्तव्य सबनको राम भजो शिरताज ॥ ना हित पर मँझ धार सिन्धु बिच डूबहि सकल समाज ॥

यु होवो' यह कहकर अब आशीर्वाद क्यों नहीं देते ? फिर ताराने कहाकि सिंहसे मारे हुये वृषभको देख बच्चा सहित गायके समान मृत्युको प्राप्त हुये तुम्हारे निकट अपने पुत्रके सहित हम बैठी हैं ॥ २६ ॥ तुम संग्राम यज्ञ पूर्णकर चुके हो. इस समय पत्नीके बिना रामके अस्त्ररूप वारि द्वारा तुम्हारा यज्ञान्त स्नान किस प्रकारसे पूर्णहुआ ॥ २७ ॥ देवराज इन्द्रने संग्राममें सन्तुष्ट होकर जो सुवर्णकी माला तुमको दीथी, वह माला इस समय हम तुमको धारण किये नहीं देखतीं इसका कारण क्या है ? ॥ २८ ॥ हे मानद ! चारों ओर घूमते हुये सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार अस्ताचलको नहीं परित्याग करती है, वैसेही प्राण निकल जानेपरभी राजश्री आपको नहीं छोडती है ॥ २९ ॥ हाय ! हमने हितकारी जो वचन कहेथे उनको सुनकरभी आपने ग्रहण नहीं किया, इस समय युद्धस्थलमें निहत आपके सहित पुत्रवती हमभी विनाशको प्राप्त हुई ! हाय इस समय लक्ष्मी देवी हमकोभी परित्याग कर गई ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः २४.

अत्यन्त वेगशाली अति कठिनसे तरने योग्य अतुल शोक समुद्रमें डूबती हुई ताराको विलाप करते देखकर वालिके छोटे भाई सुग्रीव अपने भ्राताके मारे जानेसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुये ॥ १ ॥ ताराको रोतीहुई निहार मनस्वी सुग्रीवजी अत्यन्त दुःखित और खिन्न मनहो सब नौकर चाकरोंके साथ धीरे २ श्रीरामचन्द्र जीके समीप चले ॥ २ ॥ सुग्रीवजी वहां पहुँचकर उग्र भुजंग समान बाण युक्त शरासनधारी शास्त्रोंमें कहे हुये लक्षणों करके सहित यशस्वी रामचन्द्रजीको बैठे हुए देखकर बोले ॥ ३ ॥ हे नरनाथ ! आपने जो प्रतिज्ञा कीथी, उसको तो आपने कार्यद्वारा पूरा करदिया, परन्तु अब हम इस निंदनीय जीवनके भोग करनेकी इच्छा नहीं करते ॥ ४ ॥ वालि हमारे भाईके मरजानेसे यह तारा अंगद, और पुरवासी लोग दुःखित व संतप्त होकर रोदन कर रहेहैं इसलिये राज्यके लाभ करनेको हमारा मन सुख शान्ति प्राप्त नहीं करता ॥ ५ ॥ क्रोधके कारण, वैर अमर्षके हेतु, धर्षणा और अपमानता होनेसे पहले भ्राताका वध हमारी मतिके अनुकूलथा। परन्तु हे इक्ष्वाकु श्रेष्ठ ! वानरराज वालिके मारेजानेसे इस समय हम अत्यन्तही

तीव्रतासे संतापित होरहेहैं ॥ ६ ॥ उस पर्वतश्रेष्ठ ऋष्यमूक शैलपर वासकर; जैसे तैसे जीविका निर्वाह करना हम अच्छा समझते हैं, परन्तु भइयाको मारकर स्वर्ग प्राप्त होनाभी हमें अच्छा नहीं लगता ॥ ७ ॥ इन मतिमान् महात्माने हमसे कहा था, कि हम तुमको मारनेकी इच्छा नहीं रखते हैं; तुम जहां इच्छाहो वहां चले जाओ, यह उनके वचन उन्हीं महात्माके योग्यथे ? परन्तु यह हमारे वचन और भ्राताके मारनेका कर्म करानेवाली दुष्ट बुद्धि हमारे योग्य हुई. कि हम नीचने उनको मारही डाला ॥ ८ ॥ काम भोगमें अत्यन्त शक्तिमान् हमने भ्राता होकर भी राज्य और उसके सुखका, व भ्राताके वधरूप दुःखका अंतर न विचारा ! हाय ! महागुण संपन्न भाईका वध किस प्रकारसे सम्मत और रुचिकर हो सकताहै ॥ ९ ॥ हाय ! अपने बडेपनका उल्लंघन होना विचार हमारा वध करनेको, उन महात्माकी इच्छा नथी, परन्तु भ्राताके प्राण हरनेवाले हम नींचने बुद्धिकी दुष्टताके हेतु, निःसंदेह उस महात्माको उल्लंघन करदिया ॥ १० ॥ जब कि वाली युद्धमें हमको मारना प्रारंभ करता और हम जब भागकर रोया और चिल्लाया करते, तब वह हमसे समझा बुझाकर कहते कि जाओ, ऐसा कार्य फिर मत करना परंतु हमको वध नहीं करते ॥ ११ ॥ महात्मा वालिने अपनी श्रेष्ठता की बडाई, और भायपनकी रक्षा की परन्तु हमने निःसंदेह काम क्रोध और वानरता दिखाई है ॥ १२ ॥ देवराज इन्द्रजी विश्वकर्माके पुत्र विश्वरूप* ब्राह्मणका वध करके जिस प्रकार पाप को प्राप्त हुएथे हमने भी भ्राताका वध कर वैसेही, यह दीनताके अयोग्य, वर्जनीय, दर्शनके अयोग्य, कामनाके अयोग्य, भ्रातृवधरूप, पाप बटोरा ॥ १३ ॥ पृथ्वी, जल, वृक्ष, और स्त्रियोंने इन्द्रजीके उस पापको ग्रहण कियाथा, परन्तु हम वानरजातिका पाप कौन ग्रहण करनेकी इच्छा करैगा ॥ ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! इस प्रकारका अयुक्त कुलनाशक कर्म करके हम तो प्रजागणोंका सन्मान और यौवराज्यपदवीकेभी योग्य नहींहैं, फिर भला, राज्यप्राप्ति के योग्य हम कैसे हो सकतेहैं ? ॥ १५ ॥ वृष्टिसे वर्षे हुये जलका वेग जिस प्रकार

---

* जब विश्वरूपको इन्द्रने अपना पुरोहित किया. और पीछे उसे राक्षसोंसे मिला देख मारडाला तब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी. तब ब्रह्माजीने उसे चार जगह बांटा. पृथ्वीको दिया जिससे यह जहां तहां ऊषर होगई, वृक्षोंको एक भाग दिया जो गोंदरूप हुआ कीकडका गोंद छोड बाकी गोंद अशुद्धहैं. जलको एक भाग दिया जो कोई रूपहै. एक भाग स्त्रीको दिया जो महीनेके महीन रजस्वला होकर छूनेके अयोग्य होती हैं ।

नीचे ही की ओरको गिरताहै वैसेही अतिनीच पापकारी, लोकोंके अपकार करने वाला हमारा यह महान् शोक वेग हममें स्थिर हुआ है ॥ १६ ॥ सहोदर भ्राता का मारा जानाही जिसके शरीरके अन्यान्यमाग, व लोमहैं, और सहोदर भाईके विनाशसे उत्पन्न हुआ संताप जिसके हाथ, नेत्र; शिर और दंतहैं, वह मतवाला पाप मय महाहाथी; नदीके किनारेकी समान हमको वोझसे गिराये देताहै ॥ १७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! पीला सुवर्ण अग्निके मध्यमें तपायेजानेसे नौ सादरके द्वारा जिस प्रकार मैलको परित्याग कर देताहै. वैसेही इस असह पापके द्वारा जन्म जन्मांतरोमें बटोरा हुआ हमारा पुण्य दूर होरहाहै ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! अंगदजीके शोक संताप करनेसे महा बलवान् वानरश्रेष्ठ गणोंके इस कुलका आधा भाग तो नाशको प्राप्त हुआ, और आधा भाग हमारे पास जीवित रहा, ऐसा हम विचार करतेहैं ॥ ॥ १९ ॥ हेवीरवर ! पुत्रका होना सुलभहै अपने सब सुजन सुलभ वशमें हो सकतेहैं, परन्तु अंगदकी समान गुणवान पुत्र कहां प्राप्त होगा ? क्योंकि यह रो २ कर अपने प्राण दे रहेहैं, और ऐसा देशभी कहीं नहीं है जहांपर हम अपने उन सहोदर भ्राता वालिको प्राप्त कर सकेंगे ॥२०॥ इस समय वालीके विना हम जीवन धारण नहीं कर सकतेहैं।हां तारा यदि जीवित रहैं तो वह केवल अंगदका प्रतिपालन करने हीके लिये वचेंगी, परन्तु पुत्रके विना वहभी कदापि न जियेंगी, यही हमारा स्थिर निश्चयहै॥२१॥इसलिये हम इस पापी जीवनको रखनेकी इच्छा कदापि नहीं करते।हम अपने भ्रातावालि और अंगदजीसे मित्रताईकी इच्छा करके अग्निमें प्रवेश करें और यह समस्त वानरगण आपकी इच्छामें रह कर सीताजीको खोजेंगे ॥ २२ ॥ हेमनुजेन्द्रनंदन ! हमारे विद्यमान न रहनेसेभी, यह वानर लोग आपके समस्त कार्यका साधन करेंगे । सो हम कुलनाशक जीवन धारण करनेके अयोग्य पाप करनेवालेको आप मरनेकी आज्ञा दीजिये ॥ २३ ॥ वालिके छोटे भाई सुग्रीवजीने अत्यन्त कातर होकर जब इस प्रकारसे कहा तब शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी अश्रुपूर्ण नेत्र होकर एक मुहूर्ततक उदासरहे ॥ २४ ॥ उस समय पृथ्वीकी समान क्षमावान्. भुवनके रक्षा कर्ता श्रीरामचंद्रजी, शोकके मारे उत्सुक हुई अतिशय दुःखमें डूबी रोतीहुई ताराके प्रति वारंवार दृष्टि करने लगे ॥ २५ ॥ तब मुख्य२ मंत्रियोंने उदार बुद्धि, कपिराजपत्नी सुन्दर नेत्रवाली ताराको वालिकी देहसे लिपटी हुई पडी देख उसको पृथ्वीपरसे उठाया ॥२६॥

जब मंत्रीलोग पतिके निकटसे उसको लियेआतेथे, तब तारा हाथपैर छट पटाकर पतिके निकट जानेकी इच्छा करने लगी; और जब मंत्री उसको श्रीरामचंद्रजीके निकट लेही आये, तब धनुषबाण धारण किये अपने तेजसे दीप्तिमान् दिवाकरकी समान श्रीरामचंद्रजीको देखा ॥ २७ ॥ मृगनयनी तारा सुन्दरनेत्रवाले, पहले कभी न देखे हुये सर्वलक्षणसम्पन्न पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको देखकर यह वही रघुवीर रामचंद्रजी हैं, यह जानती हुई ॥ २८ ॥ अतिदुःखित तारा उन दुर्द्धर्ष इन्द्रतुल्य पराक्रमी महानुभाव श्रीरामचंद्रजीके निकट आर्त और विह्वल होकर शीघ्र जा पहुंची ॥ २९ ॥ शोकके मारे चंचलस्वभावसम्पन्न संभ्रांतशरीरवाली मनस्विनी तारा शुद्धभावयुक्त , रणस्थलमें उत्कर्ष कर्म करनेवाले उन श्रीरामचंद्रजीके समीप प्राप्त हो उनसे कहने लगी ॥ ३० ॥ आप दुर्द्धर्ष, आपके गुण किसीके प्रमाण करनेके योग्यनहीं, इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले; उत्तम धर्मयुक्त सावधान उदारकीर्ति, चतुर पृथ्वीके तुल्य क्षमा करनेवाले और दिव्य देह अरुणकमलनयन ॥ ३१ ॥ आपके अंग अतिशय दृढ आप महाबलवान् धनुष बाण धारण करनेवाले दिव्य शरीरधारी लक्ष्मीयुक्त राज्य छोड अपने अंगसे उत्पन्न मंगलकर्मयुक्तहो अर्थात् मनुष्यदेहका अभ्युदय छोड दिव्यदेहके अभ्युदयसे युक्त हुए हो ॥ ३२ ॥ आपने जिस बाणसे हमारे प्राणसमान प्यारे पति वालिको माराहै, उसी बाणसे आप हमकोभी मार डालिये, इस बाणसे मरनेके कारण हम उनके निकट पहुंच जांयगी, क्योंकि हमारे प्राणपति हमारे विना दूसरी स्त्रीसे रमण नहीं करते ॥ ३३ ॥ हे अमलकमलदलनेत्र ! हमारे प्राणनाथ स्वर्गमें पहुँच हमको न देखकर अनेक प्रकारके फूल मणि और मुक्ता आदिकोंसे जूडागूंथे विचित्र अप्सरा ओंकोभी भजना न करेंगे ॥ ३४ ॥ हे वीर ! आप जिस प्रकारसे जानकीके विरहमें दुःखितहो हिमालयके मनोहर निम्नदेशमेंभी रमण नहीं करते वैसेही हमारे विना वाली स्वर्गमें शोकके मारे निःसंदेह पीले पड जांयगे ॥ ३५ ॥ आप जानतेहैं कि स्त्रीके विना कुमार पुरुष दुःखको प्राप्त होताहै, सो यह जानकर आप हमको मार डालिये क्योंकि फिर वालिको हमारे न देखनेका दुःख न मिलैगा ॥ ३६ ॥ हे राजपुत्र ! आप महात्मा होनेसे कदाचित् विचार करें कि स्त्रीके मारनेसे हमको स्त्रीहत्यासे उत्पन्न पाप लग सकताहै, परन्तु यह पाप आपको कदापि नहीं लग सकेगा क्योंकि इस तारा और वालिकी आत्माको आप एकही समझिये, इसलिये

आपको स्त्रीवध करनेका पाप नहीं लगेगा ॥ ३७ ॥ आप जानतेहैं कि शास्त्रोंके प्रयोग और वेदोंके वचनोंसे स्त्री और पुरुषकी आत्मा अलग २ नहीं हो सकतीहै इसलिये ज्ञानीलोग कहा करतेहैं कि स्त्रीके दानसे अधिक लोकमें और कोई दान नहीं है ॥ ३८ ॥ हे वीर ! आप धर्मको विचार हमको संहार वालिको स्त्रीका दान कीजिये जिससे कि आपको स्त्रीदान करनेका फल प्राप्त होगा और स्त्रीहत्याका पाप फिर किस प्रकारसे आपको लग सकताहै ॥ ३९ ॥ हम अनाथ हैं ! इससे अतिपीडित अनाथ पतिके आलिंगनसे, छुटाकर और जगह लेआई गई, और आरत हैं सो हमको वध न करना आपका बडा अनुचित कर्महै । क्योंकि हम मातंग सम विलासगामी, वानरश्रेष्ठ बुद्धिमान् ॥ ४० ॥ इन्द्रकी दी हुई सुवर्णकी माला धारण किये हुये वालिके विना जीवन धारण नहीं करसकतीं, महात्मा विभु श्रीराम चंद्रजीसे जब ताराने ऐसा कहा तब श्रीरामचंद्रजी उसको समझाते हुए हितकारी वचन बोले ॥ ४१ ॥ हे वीरभार्ये ! तुम उदास न होवो यह सब लोक ब्रह्माजीके बनाये हुए हैं । यहभी जानलो सबही कहतेहैं, कि समस्त सुखदुःख संयोग वियो- ग, यह सब ब्रह्माजीही करतेहैं ॥ ४२ ॥ इन तीनों लोकोंकी सृष्टि करके ब्रह्माजी- नेही उनकी सब विधि नियत कीहै, सो सब लोक उस विधिकेही वशमें रहतेहैं और किसी प्रकारसेभी उस विधिका उल्लंघन करनेको समर्थ नहीं होते, जब तुम्हारा पुत्र युवराजपदवीको प्राप्त होगा, तिससे तुम फिरभी वालिकी संयोगजनित प्रीति- को प्राप्त होगी और सुख भोग करती रहोगी ॥ ४३ ॥ विधाताने शूरलोगोंका विधानही इस प्रकारसे निर्माण कियाहै. तुम समझलो कि, वीरोंकी स्त्रियां कभी विलाप नहीं करतीं, प्रभावशाली और परवीरके हनन करनेवाले महात्मा श्रीरामचंद्र जीने जब इस प्रकारसे समझाया तब सुवेशधारिणी वीरनारी ताराने विलाप करना छोड दिया ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः २५.

सुग्रीव, तारा और अंगद इन समान शोक उत्पन्न उन लक्ष्मण सहित श्रीराम चन्द्रजी सबको समझानेके योग्य यह वचन बोले ॥ १ ॥ जिससे मृतक जनका

भला होवे तुम सबको वही करना चाहिये इसलिये शोक और संतापसे कुछ प्रयो-जन नहीं अब तुम सब वालिकी पारलौकिक क्रियाओंको करो ॥ २ ॥ लोकाचार की रीतिको अवश्य करना चाहिये, इसलिये रो पीटकर तुम सबने लोकरीतको पाला किन्तु काल उल्लंघन करनेके लिये तुम्हारे किसी कर्मका साधन न होगा क्योंकि कालको उल्लंघन करनेमें कोई समर्थ नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ नियति अर्थात काल ही लोकके उत्पन्न करनेका कारण है,कालही कर्म साधन करनेका कारणहै, और काल ही सब प्राणियोंके नियोग करनेमें कारण है॥ ४ ॥कोईभी किसीका कर्त्ता नहींहै कोईभी किसीके नियोग करनेमें ईश्वर नहींहै सब लोक पहले कियेहुये कर्मोंके वशहो स्थिति कर रहेहैं ॥ ५ ॥ कालरूप ईश्वर कालको अर्थात् जन्म मरणादिरूप व्यवस्थाको उल्लंघन नहीं कर सकता. भगवान् काल कभी हीन नहीं होते पहले किये हुये कर्म से प्राप्त होकर कोई जीव देवतादिकोंको भी उल्लंघन नहीं कर सकता अर्थात् जो उत्पत्तियोगसे उत्पन्न होताहै जो नष्टवान् है सो नष्ट होजाताहै ॥ ६ ॥ काल कि-सीसे बंधुता नहीं रखता अर्थात् काल प्राप्त होनेपर सबहीको संहार करता है; कालका हेतु नहीं कालके ऊपर किसीका पराक्रम नहीं चलसकता अर्थात् महा पराक्रमशाली पुरुष भी कालको प्राप्त हो मरजाताहै काल किसीसे मित्र या जाति का सम्बन्ध नहीं रखता, और कालहीके कारणसे काल किसीके वशमें नहीं रहता है ॥ ७ ॥ धर्म अर्थ और काम कालके परिपाक स्वरूप होकर कालचक्रके आधी-नहो रहेहैं सो इसको विवेकवान् जन देखते रहते हैं ॥ ८ ॥ यह वानरराज वाली साम, दान और अर्थके संयोगसे पवित्र क्रिया फलको प्राप्तहो यहांसे अपनी प्रकृ-तिमें चला गयाहै ॥ ९ ॥ महात्मा वालिने कालधर्मको प्राप्त होकर स्वर्गको लोभ कियाहै, इसलिये निजधर्मसे संयोग होनेके हेतु उसने निःसन्देह जय पाई है ॥ १० ॥ वानरराज वाली जिसको प्राप्त हुआहै, वह सर्वोपरि श्रेष्ठ कालहै, इसलिये संताप करनेका कुछ प्रयोजन नहींहै । इससमय कालोचित कर्तव्य कर्म. तुमको करने चाहिये ॥ ११ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजी यह वचन कहचुके तब परवीरघाती लक्ष्मणजी चेतनारहित वानरप्रभु सुग्रीवसे बोले ॥ १२ ॥ हे सुग्रीव ! तुम तारा और अंगदके साथ इस समय वालिके प्रेतकार्यकी क्रिया आरंभ कर पहले दाह-कर्म निर्वाह करो ॥ १३ ॥ नौकर चाकरोंको आज्ञादो कि, वह वालिकी दाह-क्रिया करनेके लिये सूखे बहुतसारे दिव्य, चंदनादि काष्ठ ले आवें ॥ १४ ॥ तुम

इससमय दीन अंगदको समझाओ बुझाओ तुम स्वयं इस समय मूढबुद्धि न करो, और इससमय यह पुरी अपनेही आधीन जानो ॥ १५ ॥ इससमय माला और विविधप्रकारके वस्त्र, घृत, तेल और गंधादि, जिस २ वस्तुका प्रयोजनहो वह सब अंगदलावें ॥ १६ ॥ हे सचिव तार ! तुम शीघ्र जाकर शिबिका ले आओ शीघ्रता करना इस समय विशेष भांतिसे गुणका कार्य जानना (अर्थात्शिबिका शीघ्रले आओगे तो अच्छा होगा) ॥ १७ ॥ शिबिकाको वहन करनेके योग्य वानरगण बलवान् वालिको उठानेके लिये तैयार होवें॥ १८॥सुमित्राजीके आनंद बढानेवाले, परवीरघाती लक्ष्मणजी सुग्रीवसे यह कहकर अपने भाईके निकट खडे रहे ॥ १९॥ सचिवश्रेष्ठ तार, लक्ष्मणजीके यह वचन सुनकर सभ्रांतमन हो शिबिका लानेके लिये शीघ्रतासे गुहामें प्रवेश करता हुआ ॥ २० ॥ वह तार उसके उठानेके योग्य शूर वानरगण करकै उठाई हुई पालकीको लेकर फिर उस स्थानमें आया जहां श्रीरामचन्द्रजीथे ॥ २१ ॥ वह पालकी बहुतही उत्तमथी, उसमें बैठनेके लिये अच्छे २ आसन बनेथे, यह दिव्य और रथके तुल्यथी । काष्ठके उत्तम चित्रित काम इसमें किये गयेथे, पक्षियोंके आकार बन रहेथे ॥ २२ ॥ वह सुघटित चित्रितपैदल सिपाहियोंसे भूषितथी, सिद्धलोगोंके विमानकी समान उसमें जालियें और झरोखे लग रहेथे ॥ २३ ॥ और प्रवेश करनेके लिये सुन्दर द्वार बनेथे उसके सबही अंग सुडौलथे, वह बडी लंबी चौडीथी, कारीगरोंने उसको काठका बनायाथा, और शोभाके लिये उसके भीतर एक क्रीडा पर्वत भी बन रहाथा, शिल्पियोंने उसमें अपनी अति महीन, मनोहर कारीगरी दिखाई थी ॥ २४ ॥ बहु मूल्यवान भूषण व हार और चित्र विचित्र फूलोंके धरनेसे वह शिबिका शोभितथी, वन व कन्दरादिक सबहीं उसमें रचीगई थीं, रक्तचंदनके कामसे वह सब जगह सजाई गईथी ॥ ॥ २५ ॥ पद्मादि पुष्पोंके हजारों हार उसमें टंग रहेथे, और लटक रहेथे, इससे वह प्रातःकालीन सूर्यके समान सब ओरसे प्रकाशित हो रहीथी ॥ २६ ॥ ऐसी शिबिका अवलोकन करकै श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा कि, शीघ्र वालिको इस शिबिका अर्थात् (पालकी) पर चढाकर इसका प्रेतकार्य व दाहकार्य कराया जाय ॥ २७ ॥ अंगदके सहित सुग्रीवजीने रोते २ वालिको उठाय उस पालकी पर लिटाया ॥ २८ ॥ गतप्राण वालिको विविध भांतिके उत्तम हार, वस्त्र, पुष्प, और गहनोंसे सजायकर उस शिबिकापर चढाया ॥ २९ ॥ तब वानरराज सुग्रीव-

जीने यह आज्ञा दी कि, हमारे भाई वालिकी क्रिया विधिविधानसे की जाय, उसमें किसी प्रकारका भेद न पडने पावे ॥ ३० ॥ विविध भांतिके बहुत सारे रत्नोंकी वखेर करते २ वानरगण आगे २ चलें, और उनके पीछे २ शिबका चलै ॥ ३१ ॥ हे वानरगण! जिस प्रकारसे पृथ्वीमें राजा लोगोंकी महान धन सम्पत्ति देखी जाती है, वैसेही हमारे भाई वालिकी सत्क्रियाका निर्वाह होवै ॥ ३२ ॥ ऐसी आज्ञाको प्राप्त कर तार आदि वानर अंगदजीको आगे लेकर जैसा सुग्रीवजीने कहाथा वैसेही क्रिया करनेका आरंभ करने लगे; जैसे महाराजाधिराजोंकी क्रिया की जाती है ॥ ३३ ॥ सब वानरगण रोते चिल्लाते पुकारते अपने परमबन्धु स्नेही मित्रके कारण चले जातेथे तिनके पीछे वानरियें जो कि वालिके वशमें थीं चलीं ॥ ३४ ॥ जिनका प्राणपति मरगया था, ऐसी तारा इत्यादिक वानरीगण "वीर! वीर! प्यारे! प्यारे" शब्द करकै रोदन करने लगीं ॥ ३५ ॥ वह सब करुणाभरे शब्दसे रोते २ पीछे २ चलीं उन वानरियोंके रोने और चिल्लानेके शब्दसे उस वनमेंके मानो॥ ३६ ॥ सब वन और पर्वत रोदन करने लगे, इसप्रकारसे गमन कर पर्वतके नीचे बहती हुई नदीके तीरमें कि जहांसे जल निकटहीथा ॥ ३७ ॥ ऐसे निर्जनस्थानमें वनचारी वानरोंने चिता बनाई उन वानरश्रेष्ठोंने अपने कन्धोंसे शिबिका चिताके निकटही उतार दी॥ ३८ ॥ और शोकके मारे व्याकुल हो सबके सब एकान्तमें खडे हो रहे, तब तारा अपने पतिको शिबिकापर पडा हुआ देखकर ॥ ३९ ॥ उसका शिर अपनी गोदीमें रखकर महादुःखित हो विलाप करने लगी। हा वानर महाराज! हा हमारे प्यारे! ॥ ४० ॥ हा महाबाहो! हा हमारे प्रिय! तुम हमको देखो! यह सब वानरगण शोकसे पीडित होरहे हैं, सो तुम इन सबको क्यों नहीं देखतेहो? ॥ ४१ ॥ हे मानद! यद्यपि प्राण छूट गये हैं, परन्तु तो भी मानो तुम्हारा मुख हर्षितही होरहा है और जीवितकी समान अस्त होते हुये सूर्यकी भांति जान पड़ता है ॥ ४२ ॥ हे वानरराज! यह रामरूप काल तुमको परलोकमें ले जानेके लिये खेंच रहा है, इन रामचन्द्रजीने रणस्थलमें एकही बाणको चलाय; इन सब वानरियोंके सहित हमको विधवा कर दिया ॥ ४३ ॥ हे राजेन्द्र! यह समस्त वानरियें झपटकर चलना नहीं जानती हैं, यह पैदलही, इतनी दूर दौडी चली आई हैं, सो क्या आई हुई इनको तुम नहीं देखतेहो? ॥ ४४ ॥ हे कपिश्रेष्ठ! यह सब चन्द्रवदना भार्या इष्ट चाहनेवाली हैं, सो तुम इनको और सुग्रीवको क्यों नहीं

देखते हो ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! यह तारा इत्यादि महिर्षिगण तार आदि सचिव लोग और पुरवासी तुमको घेरे हुये विषादित होरहे हैं सो तुम इनको क्यों नहीं देखते ॥ ४६ ॥ हे शत्रुनाशक ! आप सब मंत्रियोंको विदा दीजिये, फिर हम तुम सब मिलकर कामसे मत्तहो यहां वनमें विहार करेंगे॥ ४७॥ पतिशोकसे व्याकुल हुई ताराने जब इस प्रकारसे विलाप किया, तब शोकसे आरत हुई, और वानरियों-ने उसको उठाया ॥ ४८ ॥ फिर सुग्रीवजीके साथ अंगदजीने रोते २ शोकके मारे व्याकुल इन्द्रिय होकर वालिको चिताके ऊपर धर दिया ॥ ४९ ॥ तिसके पीछे विकलेंद्रिय अंगदजीने विधिपूर्वक लंबे मार्गमें गमन करनेवाले अपने पिता वालिको अग्नि प्रदानकर उनकी प्रदक्षिणा की ॥ ५० ॥ वानरश्रेष्ठगण विधिपूर्वक वालिका सत्कार करके जलक्रिया करनेके लिये पवित्र और निर्मल जलवाली नदी-पर गये ॥५१॥ वहां पहुँच अंगदजीको आगेकर सुग्रीव तारा इत्यादि सबही वानर-गण वालिके अर्थ जल देने लगे ॥ ५२ ॥ महाबलवान् श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवहीकी समान शोककर उनकेही साथ दीनभावसे वालिका प्रेतकार्य कराया ॥ ५३ ॥ फिर अति बलवान् श्रीरामचंद्रजीके एक बाणसे निहत प्रदीप्त अग्नितुल्य तेजस्वी वालिको अग्निद्वारा प्रदीप्त और दग्ध करके सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्र लक्ष्मणके निकट आये ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः २६.

वालिकी दाहक्रिया कर शोककी आगसे संतापित हुए उदासमन गीलेवस्त्र पहरे सुग्रीवजी जब रामचंद्रजीके निकट आये, तब बडे २ वानर चारोंओरसे उनको घेरकर खडे हुए ॥ १ ॥ सब वानरलोग महाबाहु सरलतासे कर्म करनेवाले श्रीरामचंद्रजीके निकट, ब्रह्माजीके समीपवर्ती ऋषियोंकी समान हाथ जोडे हुए खडे रहे ॥ २ ॥ फिर तरुणसूर्यकी समान लालमुखवाले सुवर्णके पर्वतकी तुल्य पवनपुत्र हनुमानजी हाथ जोडकर बोले ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपके प्रसादसे इन सुग्रीवजीने बडे २ दांतवाले बल और ऐश्वर्य सम्पन्न महात्मा वानरलोगोंका यह पितामहादिकोंका राज्य प्राप्त किया ॥४॥ हे प्रभो ! आपकी कृपासे महात्मा लोगोंकोभी दुष्प्राप्य यह राज्य इन्हैं मिला, इस

लिये अब यह आपकी आज्ञा पाय अपनी सुन्दर किष्किन्धानगरीमें प्रवेशकर ॥ ५॥ सब सुहृदगणोंके साथ समस्त कार्य सम्पन्न करेंगे फिर वह विविध भांतिकी सुगन्धि और औषधियोंसे विधिविधानसहित स्नान कर ॥ ६ ॥ रत्न मालादि द्वारा भली भांतिसे आपको पूजेंगे, सो इसलिये आप कृपा करके इस रमणीय गिरिगुहामें वसी किष्किन्धापुरीको चलिये ॥ ७ ॥ और स्वामी सम्बन्ध बांधकर इन सब वानरोंको हर्षित कीजिये शत्रुदमनकारी खरारि श्रीरामचन्द्रजीसे जब हनुमानजीने ऐसा कहा तो ॥ ८ ॥ अति बुद्धिमान् वाक्यविशारद श्रीरामचन्द्रजी हनुमानजीसे बोले कि हे साधो ! हम चौदह वर्षतक ग्राम या नगरमें ॥ ९ ॥ प्रवेश नहीं करेंगे, क्योंकि हमको पिताजीकी ऐसीही आज्ञाहै और हम उस आज्ञाके वशहैं । उस समृद्धि-शाली दिव्य गुहामें वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ॥ १० ॥ प्रवेश करें और तुम सब शीघ्रही विधिपूर्वक उनको राज्यपर अभिषेकित करो श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीसे ऐसा कह फिर सुग्रीवसे कहा ॥ ११ ॥ कि तुम लोकाचारके जाननेवालेहो, इसलिये इन बल विक्रमशाली वीर अंगदको युवराजपदवी देदेना ॥ १२ ॥ यह तुम्हारे बडे भाई वालिका पुत्रहै विक्रमशालीभी तुम्हारी समानहै, इसलिये उदार आत्मा अंगद सब भाँतिसे युवराजपदवीके योग्यहैं ॥ १३ ॥ हे सौम्य ! जिसमें वर्षा होती है ऐसा जो चौमासाहै, तो उसमें जलका वर्षानेवाला यह श्रावणमास पहलाहै ॥ १४ ॥ इसलिये इस समय सीताजीके खोजनेकी तैयारी नहीं होगी इसलिये तुम अपनी पुरीमें प्रवेश करो, और हम लक्ष्मणजीके सहित इस पर्वतपर वास करतेहैं ॥ १५॥ हे सौम्य ! यह गिरिगुहा पवनयुक्त, मनोहर, विशाल, जलयुक्त और बहुत सारे कमल जिस नीरमें खिले हुए ऐसे जलाशयोंसे शोभितहै, इसलिये यह सब भांतिसे हमारे वास करने योग्यहै ॥ १६ ॥ जब कार्तिक मास लगै तब तुम रावणका नाश होनेके लिये यत्न करना । हे सौम्य ! यही प्रतिज्ञाहै इसलिये अब तुम अपनी पुरीको चले जाओ ॥ १७ ॥ तुम राज्यपर स्थापित होकर सुहृदगणोंके हर्षको बढाओ; वानरश्रेष्ठ सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसी आज्ञा पाकर ॥ १८ ॥ वालिपालित मनोरम किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए वानरेन्द्र सुग्रीवजी जब कि, किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए तब सहस्र २ वानरोंने ॥ १९ ॥ उनको घेरे हुए पुरीमें प्रवेश किया फिर समस्त प्रजाके लोग वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीको पुरीमें आये हुये देखकर ॥ २० ॥ मस्तक झुका पृथ्वीमें गिरकर प्रणाम करते हुए

तब सुग्रीवजीने प्रेमसहित कुशल पूछ २ कर उन सबको उठाया ॥ २१ ॥ महाबलवान् वीर्यवान् सुग्रीवजी फिर अपने भ्राताके रनवासमें गये, तब उन भीम विक्रम करनेवाले वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीको देख ॥ २२ ॥ सब इन्द्रतुल्य वन्दरों व सुहृदोंने उनको राज्यपर स्थापित किया और सुवर्णकी डंडी लगाहुआ श्वेत छत्र उनके लिये ले आये ॥ २३ ॥ और केशोंके दो शुक्ल चमर लाये, उनमेंभी सुवर्ण की डंडी लगीथीं अनेक प्रकारके रत्न, समस्तबीज और सब औषधियें एकत्रित कीं ॥ २४ ॥ क्षीरवाले वृक्षोंके अंकुर सब भांतिके फूल, शुक्लवस्त्र, शुक्लही उबटन ॥ २५ ॥ सुगंधियुक्त हार, स्थलकमल, दिव्य चंदन, विविध भांतिकी सुगन्धें ॥ ॥ २६ ॥ अक्षत, सुवर्ण, प्रियंगु, मधु, सरसों, दही, व्याघ्रचर्म, बडे मोलकी दोनों उपानह, (जूता) ॥२७॥ और समालम्भन नामक अनुलेपन, गोरोचन, मैनशिल, इत्यादि अभिषेककी सामग्रियें लाई जाने लगीं फिर सुलक्षणयुक्त सोलह कन्या हर्षित होकर अभिषेकके स्थानमें आईं ॥ २८ ॥ फिर वानरश्रेष्ठका अभिषेक करानेके लिये रत्न, वस्त्र और भोजनसे, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको संतोषित किया गया ॥ ॥ २९ ॥ तत्पश्चात् वेदशास्त्रज्ञ जनोंने किनारेपर कुश बिछाय प्रदीप्त अग्निमें मंत्र पढ २ कर घृतकी आहुति दी ॥ ३० ॥ पीछे जब होम होगया तब सुवर्णयुक्त श्रेष्ठ बिछौनोंसे बिछाहुआ चित्र और मालाओंसे शोभित रमणीय प्रासादके शिखा-पर ॥ ३१ ॥ श्रेष्ठ सिंहासनपर पूर्वको मुख करवाय सुग्रीवजीको बैठाय विविध मंत्र पढकर सब नदी, नद, व अनेक प्रकारके तीर्थोंसे ॥ ३२ ॥ और सब समुद्रोंसे विमल जल लालाकर सब वानरश्रेष्ठोंने स्वर्णके कलशोंमें भरदिया ॥ ३३ ॥ पवित्र वृषभके सींगोंमें सुवर्णके कलशोंमें भरकर लाय २ शास्त्रके दिखाये मार्गा-नुसार और महर्षियोंकी बताई हुई विधिके समान ॥ ३४ ॥ गय, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान् और जाम्बवान् ॥ ३५ ॥ इन्होंने विमल सुगन्धियुक्त जलसे सुग्रीवजीको स्नान कराया जैसे आठों वसु इन्द्रजीको स्नान करातेहैं ॥३६॥ जब इस प्रकारसे सुग्रीवजीका अभिषेक होगया तब प्रधान २ सैकडों हजारों वानरगण हर्षितहो आनन्द ध्वनि करने लगे ॥ ३७ ॥ वानर-राज सुग्रीवजीने श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा प्रतिपालन करके अंगदजीको भेंट युवराज पदवीपर अभिषिक्त किया ॥ ३८ ॥ जब अंगदजीभी युवराजकी पदवीपर अभिषिक्त होचुके तब महात्मा वानरगण हर्षकी ध्वनि करके " बहुत अच्छा,

बहुत अच्छा" शब्द कर सुग्रीवजीकी बडाई करने लगे ॥ ३९॥ जब सुग्रीव और अंगदजीका अभिषेक होगया;तब सब कपिगण प्रसन्न होकर महात्मा श्रीराम लक्ष्मणजीकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ गिरिगुहामें बसीहुई किष्किन्धा पुरी हृष्टपुष्ट जनोंके चलनेफिरने और ध्वजा पताकाओंसे सुशोभित होकर मनोरम रूप बना शोभा पाने लगी ॥ ४१ ॥ अभिषेकका सब वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीसे कह कपि-सेनापति महावीर्यवान् सुग्रीवजी, अपनी स्त्री रुमाको प्राप्त होकर सुरराजकी समान वानरराज्यपर स्थापित हुये ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०किष्किन्धाकांडे भाषायां षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७.

सुग्रीवजी अभिषेक होजानेपर श्रीरामचंद्रजीके आज्ञा ले सब वानरोंके सहित जब किष्किन्धा पुरीमें चलेगये तब श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राताके सहित प्रस्रवण पर्वतपर चले गये ॥ १ ॥ यह पर्वत शार्दूल मृगगणोंके शब्दसे युक्त और भयंकर गर्जन करनेवाले सिंहोंके झुन्डोंसे भरपूर अनेक प्रकारकी झाडी लता और वृक्षोंसे परिपूर्ण ॥ २ ॥ रीछ, वानर, गोपुच्छ और बिलावादिकरके सेवित मेघराशि तुल्य दृष्टि आनेवाला, पवित्र करनेवाला, कल्याणकर और शोभायमान था ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीके सहित उस पर्वतके शिखरपर एक बडी लम्बी चौडी गुफा अपने वास करनेके लिये स्वीकार की ॥ ४ ॥ विमलात्मा रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवसे वर्षाभर इस पर्वतपर रहनेका नियमकर कालोचित महा वचन ॥ ५ ॥ विनीत लक्ष्मीके बढानेवाले भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले कि, यह पर्वतकी गुफा बहुत बडी है और इसमें चारोंओरसे पवन आतीहै ॥ ६ ॥ हे शत्रुघाती लक्ष्मण ! अब चौमासेभर यहीं बसेंगे हे राजकुमार ! यह पर्वतका शृङ्ग अति रमणीकहै ॥ ७ ॥ यह श्वेत, काली और लाल वर्णोंकी शिलाओंसे शोभायमान है अनेक प्रकारके धातु द्रव्य इसमें पूर्ण हैं और नदीके मेढकभी इसमें हैं ॥ ८ ॥ विविध वृक्षोंके समूहसे मनोहर विचित्र लतायुक्त नाना विधि विहंगम व उत्तमोत्तम मोरोंके शब्दसे शब्दायमान ॥ ९ ॥ और खिली हुई मालती कुन्द, गुल्म, सिन्दुवार, शिरस, कदम्ब, अर्जुन, सर्जादि वृक्षोंसे सुशोभित हैं ॥१०॥ हे नृपात्मज ! खिले हुये कमलफूलोंसे भूषित यह जलाशय पानीके बढनेसे हमारी गुहाके धौरेही हो जायगा ॥ ११ ॥

यह गुहा पूर्वकी ओरको नीची है इसकारण वास करनेमें बडा सुख देगी और पश्चिमकी ओरको ऊंची है सो वर्षा होनेपर पवनकी झकझोरसे इसमें जलभी नहीं आने पावैगा ॥ १२ ॥ हे लक्ष्मण ! गुहाके द्वारपर नीचेमें शोभायमान लम्बी चौडी अलग अंजनकी समान काली शिला पडीहैं ॥ १३ ॥ हे वत्स लक्ष्मण ! यह देखो उत्तरकी ओर अंजनके ढेरकी तुल्य उदित मेघकी समान सुशोभित पर्वतके शिखर विराजमानहैं ॥ १४ ॥ दक्षिणके ओरभी कैलासपर्वतके शिखरकी समान श्वेत मेघोंकी तुल्य अनेक प्रकारकी धातुओंसे रँगा हुआ यह गिरिशृंग शोभा पारहा है ॥ १५ ॥ यह देखो गुहाके अग्रभागमें चित्रकूट पर्वतके निकट बहती हुई मन्दाकिनी नदीके समान कीचड रहित पूर्ववाहिनी नदी बहती है ॥ १६ ॥ इसके तटपर चन्दन, तिलक, शाल, तमाल अतिमुक्तक, पद्मक और अशोक वृक्ष शोभित होरहेहैं ॥ १७ ॥ वानीर, तिमिद, बकुल, केतक, हिन्ताल, तिनिश, नीप, वेत, कृतमालक आदि वृक्ष शोभायमानहैं ॥ १८ ॥ यह नदी किनारोंपर लगे हुये अनेकप्रकारके वृक्षोंसे सब जगह ऐसी शोभायमानहै जैसे वस्त्र भूषण धारण किये हुये युवास्त्री शोभा पाती हैं ॥ १९ ॥ अनेक रत्नों करकै युक्त यह नदी शत२ पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान और परस्पर अनुराग करते हुये चकवा चकवियोंसे सुशोभित हो रही है ॥ २० ॥ फिर यह नदी हंस और सारसोंके द्वारा सेवित होनेसे अनेक प्रकारके रत्नोंसे विभूषित हो अपने रमणीक किनारोंसे मानो हँसही रही है ॥ २१ ॥ इस नदीमें किसी २ जगह नीले कमल कहीं २ लाल कमल और कहीं २ दिव्य शुक्ल वर्णवाले कुमुदके फूलोंसे शोभा होरही है ॥ २२ ॥ यह रमणीया सौम्यदर्शन नदी शत २ जल, पक्षी, मोर और क्रौंचोंके कलरवसे शब्दायमान होकर मुनिगणोंसे सेवित होतीहै ॥ २३ ॥ देखो इस स्थलमें चन्दनके वृक्षोंकी लंगार और दशों दिशा मानो सब हमारे मनके अनुसारही उदित होकर शोभा पारहीं हैं ॥ २४ ॥ अहो लक्ष्मण ! यह क्या परम रमणीय स्थानहै, हे परवीरघाती ! आओ हम इस स्थानमें परम सुखसे वास करें ॥ २५ ॥ हे राजकुमार! सुग्रीवजीकी मनको रमण करनेवाली पुरी चित्र विचित्र काननवाली किष्किन्धा यहांसे निकटही बसती है ॥ २६ ॥ हे विजयिश्रेष्ठ ! यह सुनो शब्द करनेवाले वानरोंकी मृदंग ध्वनिके सहित गीत और बाजा बजानेका शब्द सुनाई आताहै॥ २७॥ कपिवर सुग्रीवजी राज्य और स्त्री और महत् राज्यलक्ष्मी प्राप्त करके सुहृदगणोंके

सहित प्रीति और महा आनंद प्राप्त करेंगे ॥ २८ ॥ यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी गुहा और कुंजयुक्त उस प्रस्रवण पर्वतपर लक्ष्मणजीके सहित वास करने लगे ॥ २९ ॥ उस बहुत द्रव्य सम्पन्न सुखाकर पर्वतपर वास करकै श्रीरामचन्द्रजीको कुछभी प्रसन्नता न हुई ॥ ३० ॥ प्राणसेभी अधिक प्यारी उन हरी हुई भार्या सीताजीको जब स्मरण करते, और विशेषकरकै उस समय जब कि, उदयाचलपर उदित होते हुये निशानाथ चन्द्रमाको अवलोकन करते ॥ ३१ ॥ तब सीताजीसे उत्पन्न हुए शोकके आँसुओंसे हतबुद्धिहो श्रीरामचन्द्रजी, सुखकी सेजपर शयन करकैभी रात्रिमें निद्रा प्राप्त नहीं कर सकतेथे ॥ ३२ ॥ नित्यशोकपरायण श्रीरामचन्द्रजीको शोक करते देखकर उनकीही समान दुःखी लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीसे विनय सहित वचन बोले ॥ ३३ ॥ हे वीरवर ! आप व्यथित होकर शोक न कीजिये, कारण यह कि, आप जानतेहैं कि शोक करनेवाले लोग सदा कष्टही पाया करतेहैं ॥ ३४ ॥ हे रघुनंदन ! आप लोकमें नित्यही कर्मके अनुष्ठान करनेवाले, दैवपरायण, आस्तिक, धर्मशील और उद्यमशालीहैं ॥ ३५ ॥ जो आप किसी प्रकारका उद्योग न करकै अपना चित्त ऐसाही व्याकुल किये रहेंगे तो वह कपटाचारी राक्षस रावण संग्राममें किस प्रकार आपके हाथसे मरेगा ? ॥ ३६ ॥ आप अपने मानसक्षेत्रसे शोकवृक्ष जडसे उखाड डालिये और व्यवसाय बुद्धि स्थिर कीजिये, ऐसा करनेसे आप सपरिवार रावणका संहार करनेको समर्थ होसकेंगे ॥ ३७ ॥ हे रघुवीर ! आप वन, सागर और पर्वतोंके सहित इस पृथ्वीको उलट पलट कर सकतेहैं; फिर रावणका मारना तो एक साधारण बातहै ॥ ३८ ॥ अब वर्षाकाल आगयाहै; सो इसके बीतनेपर आप शरत्कालके आनेकी वाट देखिये जैसेही शरत्काल आया कि, रावणको उसकी सेना, व राज्य सहित वध कर डालिये ॥ ३९ ॥ हम भस्मसे ढकी हुई अग्निको आहुति देकर प्रदीप्त करनेकी समान आपके सोते हुये वीर्यको उकसातेहैं ॥ ४० ॥ लक्ष्मणजीके शुभकारी व हितकारी उन वचनोंका आदर करकै सुहृद और स्नेही लक्ष्मणजीसे श्रीरामचन्द्रजी बोले ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण ! तुमने अनुरक्त, स्निग्ध, हितकर और सत्यविक्रमी लोगोंकी समानही वचन यथार्थही कहे ॥ ४२ ॥ यह लो, हमने समस्त कार्योंके विनाश करनेवाले शोकको परित्याग कर, विक्रमके विषयमें रुके हुए तेजको उत्साहित किया ॥ ४३ ॥ हम सुग्रीव और सब नदियोंकी प्रसन्नता करते हुए (अर्थात् सुग्रीवभी बहुत दिनोंके दुःखपाये

हुए विश्राम पालेंगे और नदियेंभी बरसात बीतने पर उतर जायँगी) तुम्हारे, वचनको मान शरत्कालकी वाट देखते हैं ॥ ४४ ॥ वीरपुरुषोंके साथ जो कुछभी उपकार किया जाताहै, तो वेभी अवश्यही उसका प्रत्युपकार करतेहैं, इससे निश्चयहै कि सुग्रीवं हमसे उपकार पाकर प्रत्युपकार करेंगे यदि अकृतज्ञ होकर वह प्रत्युपकार न करें तो उन महात्मागणोंका मन (जिनके साथ पहले उपकार किया गया हो) अर्थात् मित्रादि नाशको प्राप्त होजातेहैं ॥ ४५ ॥ फिर लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन ठीक २ समझकर अपनी शोभित बुद्धि दिखाते हुए मनोज्ञ श्रीरामचन्द्रजीसे हाथ जोड कहने लगे ॥ ४६ ॥ हे नरेन्द्र ! आपने जो कहा यही मेराभी मतहै, वानरवर सुग्रीव शीघ्रहीं सहायता करनेमें नियुक्त होंगे आप वर्षाकालको बिताते हुए शरद् कालकी राह परखिये वर्षाकाल बीतनेपर शत्रुका वध करना ॥ ॥४७॥ आप कोपको नियमितं किये हुये हमारे सहित एकत्र वासकर वर्षा कालके चौमासेको बिता शरद् समयकी राह परखिये । आप अवश्यही शत्रुके मार डालनेमें समर्थ हैं। इस समय आप मृगराजसेवित इस पर्वतपर वास कीजिये ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः २८.

तब श्रीरामचन्द्रजी वालिको मारकर सुग्रीवको राज्य दे माल्यवान पर्वतपर वसकर लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ १ ॥ यहलो वर्षाकाल आ पहुँचा देखो ! पर्वतोंके समान मेघोंके समूहोंसे आकाशमण्डल ढकगया ॥ २ ॥ स्वर्गस्थली, समुद्रका जलरूप रस सूर्यकी किरणोंके द्वारा पीकर, कार्तिकादि नव मासतक गर्भधारण करके लोकोंका जीवन स्वरूप जलरूप रसायन छोडती है॥ ३॥ सूर्यभगवान् आकाशमें आरोहण करके कुटज और अर्जुन मालाकी समान मेघसोपान श्रेणीसे उस गगनमण्डलको अलंकृत करतेहैं ॥ ४ ॥ सन्ध्या समयकी ललाईसे और अंतभागमें श्वेतवर्ण स्निग्ध मेघरूप छिन्न वस्त्रोंने, मानो आकाशके घाव स्थानोंमें पट्टी बाँध रक्खी है ॥ ५ ॥ मन्द पवनरूप निःश्वास युक्त सन्ध्याकी ललाई मानो चन्दन लगाये हुये है, श्वेतवर्णके मेघोंसे युक्त आकाश मानो कामातुर होगयासा जान पडता है ॥ ६ ॥ ग्रीष्मके तापसे महाकष्टित नये पानीके छिडके जानेसे, शोकसे संतापित यह पृथ्वी, सीताजीकी समान आंसू छोडती है ॥ ७ ॥

मेघके उदरसे निकले हुये, कपूर लगे जलकी समान शीतल, और केतकीकी सुगन्धियुक्त पवन अँजलि द्वारा पान करनेके योग्य होगया है ॥ ८ ॥ उस पर्वतपर अर्जुनके सब वृक्ष कुसुमित होगये हैं केतकीकी सुगन्धि युक्त और सुग्रीवकी समान शत्रुरहित होकर जलकी धारसे अभिषेकित होरहे हैं ॥ ९ ॥ मेघरूप चीर वल्कल धारी, धारारूप यज्ञोपवीतयुक्त गुहाके मुखमें पवन शब्दयुक्त सब पर्वत, वेदाध्ययन करनेवाले बटुकगणोंकी समान शोभायमान हो रहे हैं ॥ १० ॥ इस वर्षाकालमें आकाशस्थल बिजलीरूप सुवर्णके कोडेसे ताडित होकर हृदयमें वेदना पाय घोर शब्द कर रहाहै ॥ ११ ॥ हम विचार करते हैं कि, नीलमेघकी गोदीमें बैठी हुई बिजली चमककर रावणके अंकमें बैठी कृपा करनेके योग्य-तपस्विनी जानकीजीके समान प्रकाशित हो रही है ॥ १२ ॥ यह सब दिशायें मेघोंसे छारही हैं इसलिये तारागण और चन्द्रादि छिप गये हैं इसलिये इस समय यह सब दिशायें कामीगणोंको सुखकी देनेवाली होगई हैं ॥ १३ ॥ हे लक्ष्मण ! कहीं २ नदीवारिके संयोगसे उत्पन्न हुई वाफयुक्त वर्षाके आनेसे समुत्सुक पर्वतके शृङ्गोंपर, पुष्पित कुटजवृक्ष सीताके शोकसे उत्पन्न हमको कामोद्दीपन कराते हुये टिके हैं ॥ १४ ॥ हेलक्ष्मण ! इस वर्षाकालमें धूल उडनी बंद होगईहै वायु पालायुक्त हो चलताहै, ग्रीष्म कालके समस्त दोष दूर हो शान्तिको प्राप्त होजातेहैं राजाओंकी यात्रा बंद होगई और परदेशी मनुष्य अपनी प्यारीके विरहमें रहनेसे असमर्थहो अपने २ देशको चले आतेहैं ॥ १५ ॥ इस समयमें सब चक्रवाक अपनी २ प्यारी चकवीके सहित बसनेके लिये मानस सरोवरपर चले जाते हैं । और इस समय बराबर वर्षा होनेके कारणसे मार्गोंमें रथादि सवारियोंका चलनाभी बंद होगया है ॥ १६ ॥ इस समयमें कहीं प्रकाशहै कहीं अप्रकाशहै क्योंकि, आकाशमंडल मेघसमूहसे छारहाहै और कहीं पर्वतोंसे संरुद्ध हो रहाहै इसलिये तरंगहीन महासमुद्रकी समान शोभायमानहै ॥ १७ ॥ सारवू और कदम्बके फूलोंसे युक्त, पर्वतकी धातुओंसे मिश्रित, ताम्रवर्ण मोरोंकी बोलीसे शब्दायमान, पहाडी नदियें शीघ्रतासे बही जातीहैं ॥ १८ ॥ इस समयमें सब जीवगण रसयुक्त भ्रमरोंकी समान, अनेक जम्बूफूलोंको भक्षण करतेहैं; और पवनसे, संचालित अनेक वर्णके पकेहुये आमफल पृथ्वीपर गिर रहेहैं॥ १९॥ बिजलीरूप पताका लगाये और बगलोंकी पंक्तियुक्त माला पहरे, शैल शिखरतुल्य भयंकर नाद करनेवाले मेघगण रणमें खडेहुये मतवाले हाथियोंकी समान गर्जना

कर रहेहैं ॥ २० ॥ जिनके तृणयुक्त सब स्थान वर्षाके जलसे तृप्त होगयेहैं और जिनमें मोर सदासेही नाच रहेहैं और मेघगण अतिवर्षा करके अब थम रहेहैं, सो ऐसे वन अपराह्ण कालमें अधिक शोभा धारण किये हुयेहैं, ॥ २१ ॥ इस कालमें बकमाला युक्त सब मेघ बहुत सारे पानीका बोझ लादे हुये पर्वतोंके बडे २ शृङ्गों पर बार २ विश्राम करके फिर चले जातेहैं ॥ २२ ॥ गर्भधारण करनेके लिये मेघके प्रति कामयुक्त बकपंक्ति हर्षवतीहो वायुसे कंपायमान श्रेष्ठ श्वेत कमल फूलोंकी मालाके समान मनोहर आकाशके गलेमें पडकर शोभा पारहीहै ॥ २३ ॥ इस समयमें नई उत्पन्न हुई इन्द्रवधू, वीरबहुटियोंके मध्यमें पडनेसे चित्रित तृणोंसे ढकी हुई भूमि, मध्य २ में लाखके रंगकी बिन्दियां लगाय श्वेत वर्णका कम्बल ओढे स्त्रीकी समान शोभितहै ॥ २४ ॥ इस वर्षाकालमें क्रम २से निद्रा केशवको और नदियें द्रुतवेगसे सागरको, बकपांति हर्षित होकर मेघको, और कामिनी स्त्रियां अपने प्रीतम पतिको प्राप्त होती हैं ॥ २५ ॥ इस समय वनोंमें मोर नाच रहेहैं, कदमके पेडोंकी डालियोंमें पुष्प खिल रहेहैं, वृषभ गायोंके ऊपर कामातुर हो रहेहैं, और मही अनाज और वनसे मनोहर होगईहै॥२६॥इससमय नदियां बही जातीहैं. मेघ वर्ष रहेहैं मतवाले हाथी गर्ज रहेहैं, वन चमक रहेहैं, प्यारीके विरहमें विरहीगण ध्यान कर रहेहैं, मोरगण नाच रहेहैं और वानरगण आशायुक्तहो श्वास ले रहेहैं ॥ २७ ॥ नवीन झरनोंपर हाथी केतकी पुष्पकी सुगन्धि सूंघकर मतवाले हृष्ट और जल गिरनेके शब्दसे आकुलित हो मोरगणोंके सहित शब्द करतेहैं ॥ २८ ॥ कदम्बकी डालीपर अनुरागी हुये भौरोंके झुण्ड जलकी धारा गिरनेसे आहतहो पहले क्षणका इकट्ठा कियाहुआ गाढ पुष्परसरूप मद परित्याग किये देतेहैं ॥२९॥ जामनके वृक्षोंकी डालियें अंगार चूर्ण समूह तुल्य अधिकरसवाले फलके समूहसे, भ्रमरगणोंसे पीजातीहुईसी प्रकाशमान होरहीहैं ॥ ३० ॥ विद्युत् रूप पताकासे अलंकृत गंभीर महाशब्द युक्त मेघगण रण करनेको तैयार हाथियोंकी समान शोभित होतेहैं ॥ ३१ ॥ पर्वत वनके चलनेवाले अपने मार्गमें टिके हुए युद्धकी कामना किये गजेन्द्रगण, मेघकी गर्जना सुन दूसरे शत्रु हाथीके गर्जनेकी शंकाकर युद्ध करनेके लिये लौट रहे हैं ॥ ३२ ॥ किसी २ जगह भ्रमरगण गुंजार कररहेहैं, कहीं मोर नाच रहेहैं, कहीं हाथियोंके झुण्ड मतवाले होकर शोभा पारहेहैं, इस प्रकारसे समस्त वन इन सब वस्तुओंसे प्रकाशित होतेहैं ॥ ३३ ॥

कदम्ब सर्ज्ज, अर्ज्जुन, कन्दलयुक्त मधु समान वारिसे पूर्ण वनभूमि मदमाते मोरोंके शब्द और नृत्यसे मद्यपान करनेके स्थानकी समान जान पडतीहै ॥ ३४ ॥ मोती की समान गिरा, पत्तोंपर लगा इन्द्रका दिया निर्मल जल, पीले विवर्ण पंखवाले प्यासे पक्षीगण हर्षित होकर पान कर रहेहैं ॥ ३५ ॥ भ्रमर ध्वनिरूप मधुर गीत और उसमें वानरोंकी ध्वनि कंठताल, मेघशब्द मृदंगध्वनि, इसप्रकारसे वनमें मानों संगीत होना प्रारंभ हुआहै ॥ ३६ ॥ कभी नृत्य करकै कभी शब्द करकै कभी वृक्षकी डालियोंपर बैठ करकै कभी लंबे पंखोंको भूषण रूप विस्तार करकै मोरगण वनस्थलमें संगीत कर रहेहैं ॥ ३७ ॥ वानरगण मेघोंके शब्दसे बहुत दिनोंसे ग्रहण की हुई निद्राको परित्याग करकै जागरितहो, अनेक प्रकारका रूप धार व अनेक प्रकारका शब्द करकै नये जलकी धारासे पीडितहो किल२.कर रहेहैं ॥ ॥ ३८ ॥ समस्त नदियें, चक्रवाकसमूहको अपने किनारोंसे हटाती और अपने ढहे हुये करारोंको जलवेगसे बहाती, वर्षाके जलसे पूर्ण होनेके कारण मदान्धहो भोग करानेकी इच्छासे अपने स्वामी समुद्रके निकट चली जाती हैं ॥ ३९ ॥ नील मेघोंके समूहमें आसक्त, नील जल भरे बादल दावाग्निसे दग्ध हुये पहाडोंमें दावाग्नि दग्ध सब पर्वत एक दूसरेकी जडमें बँधेहुयेसे ज्ञात होते हैं ॥ ४० ॥ इस कालमें नीप और अर्ज्जुनके पुष्पकी सुगन्धिसे वसे हुए वनके रमणीक थलोंमें मोर मतवाले होकर नाच रहेहैं । हरी घासपर वीरबहूटियां शोभा पाय रही हैं, और हाथीभी इधर उधर झूम २ कर फिर रहेहैं ॥ ४१ ॥ भ्रमरगण हर्षित होकर नये जलकी धारासे पुष्परस विहीन कमल फूलोंको त्याग, पुष्परस सहित कदम्बके नये पुष्पोंको पान कर रहेहैं ॥ ४२ ॥ इस कालके समय वनमें गजेन्द्रगण मत्त, वृषभगण मुदित सिंहगण अतिशय पराक्रम कर रहेहैं, पर्वत मनोहर हैं नृपतिगण उद्योगविहीन हैं। और इन्द्रजी मेघोंसे क्रीडा करनेमें लग रहेहैं ॥ ४३ ॥ महाजलकी धारवाले गगनमें फैले हुए मेघगण समस्त समुद्रोंमें शब्द उठा रहेहैं, और नदी तडाग सरोवर वापियोंको पूर्ण करते पृथ्वीके ऊपर जल बहा रहेहैं ॥ ४४ ॥ इस कालमें अति वेग सहित वर्षाकी धार गिरतीहै पवनभी अति वेगसे चलतीहै नदियें किनारोंको तोडती फाडती कुमार्गमें दहाडती चली जातीहैं ॥ ४५ ॥ मनुष्यगण जिस प्रकारसे राजाको स्नान कराते हैं, वैसेही इन्द्रजीके दिये पवन करके आये मेघरूप घोडोंके द्वारा स्नान करके पर्वतगण मानों अपना रूप और श्री दिखलातेहैं ॥ ४६ ॥ इस

कालमें मेघोंसे ढके हुए आकाशमें तारागण और सूर्यके दर्शन नहीं होते हैं, धरणी नवीन जलकी धारासे तृप्त होगई सब दिशाओंमें अंधकार छा जानेके कारण उनमें कुछभी प्रकाश विदित नहीं होता ॥ ४७ ॥ पर्वतोंके बडे २ शिखर जलधाराके गिरनेसे धोये जाकर और महाप्रभाववाले विपुल लंबे मोती रूप झरनोंके द्वारा अधिक शोभायमान होरहेहैं ॥ ४८ ॥ पर्वतोंके बडे २ झरनोंका पानी चटानोंपर वेग सहित बहताहुआ मोरोंके शब्दसे युक्त पर्वतोंकी गुफाओंमें टूटे हुए डोरेवाले हारकी समान छितराकर गिर रहाहै ॥ ४९ ॥ पर्वतोंके विपुल वेगवान झरने गिरिशृङ्गोंकी तली धोते हुए महावेगसे गिरकर महा गुफाओंमें मुक्तासमूहकी समान रोके जातेहैं ॥ ५० ॥ स्वर्गीय स्त्रीगणोंके रतिकार्यके मर्दनसे टूटकर अतुल मोतियोंके हारकी समान चारों ओर जलधारा गिर रहीहैं ॥ ५१ ॥ पक्षियोंके घोंसलोंमें चलेजानेसे और कमल फूलोंके बंद होनेसे मालती पुष्पके खिलनेसे, सूर्यका अस्त होना जाना जाताहै, नहीं तो बराबर बादलोंके छाये रहनेसे सूर्यभगवान्‌का अस्त नहीं जाना जासकता ॥ ५२ ॥ इस कालमें नृपति लोगोंकी यात्रा बंद हो रहीहै, जो किसी राजाकी सेना किसी शत्रुपर चढ चलीथी वहभी मार्गमें जहांकी तहां रही। और वैर व मार्ग जलने सबको समान कर दिया ॥ ५३ ॥ वेद पढनेकी अभिलाषा किये साम जाननेवाले ब्राह्मणोंका यह भाद्रपद रूप वेद पढनेका समय आपहुँचाहै ॥ ५४ ॥ कौशलाधिपति भरतजी अब कर लेने आदिके सब कार्योंसे निवट, जीवन साधन करनेकी समस्त वस्तुयें एकत्र कर आषाढी पूर्णिमासे कुछ विशेष अनुष्ठान करने लगे होंगे ॥५५॥ इस समय सरयूनदी वर्षाके जलसे पूर्ण होगई होगी; इस समय सरयू नदीका वेग ऐसा बढता होगा, कि जैसे हमको आये देख अयोध्यावासी प्रजा कुलाहल करेगी ॥ ५६ ॥ वर्षाके गुणसमूह भली भांति प्रकाशित हो रहेहैं। इस समय सुग्रीव विजय करके वह बडा भारी राज्य पाय अपनी स्त्रियोंके साथ विविध भांतिके सुखभोगोंमें आसक्त होरहेहैं ॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण! परन्तु हमारी प्यारी हरी गई हैं, और हमारा बडाभारी राज्यभी छूट गया, सो जलसे कटते हुए नदीके किनारेकी समान इस समय हम दुःखी हो रहे हैं ॥ ५८ ॥ हमारा शोक अति बडाहै, वर्षा अतिशय दुर्गमहै, रावण महाशत्रुहै, यह सबही हमको बडे अपार ज्ञात होतेहैं॥५९॥ इस वर्षाहीके कारण शत्रुपर चढाई नहीं की जाती, क्योंकि मार्ग सब अति दुर्गम

हो रहेहैं इससे सुग्रीवजीने सीताजीके ढूंढ भालनेके विषयमें हमसे कहाभीथा परन्तु तब हमने उनसे कुछभी न कहा ॥ ६० ॥ और सुग्रीव अत्यन्त कष्ट पाकर अपनी स्त्रियोंसे मिलेहैं, और हमारा कार्य अत्यन्त भारी थोडे समयमें नहीं होगा, इसी कारण हम उनसे कुछ कहनेकी इच्छा नहीं करते ॥ ६१ ॥ इसमें कुछ सन्देह नहींहै कि, सुग्रीव विश्राम करके आपही समयको आया जान उपकारका स्मरण करैगा ॥ ६२ ॥ इसलिये हे लक्ष्मण ! हम सब नदियोंकी और सुग्रीवकी प्रसन्नताको चाहते यहांपर कालकी प्रतीक्षा किये टिके हुएहैं ॥ ६३ ॥ वीर लोग उपकार करनेवालेका अवश्यही प्रत्युपकार किया करतेहैं और जो उपकारको प्राप्त होकर उसको नहीं मानते तो वीरगणोंका मन असन्तुष्ट होजाताहै, क्योंकि कोई किसीके साथ उपकार करनेका उत्साह नहीं करते ॥ ६४ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा, तो वह हाथ जोड उन वचनोंका आदर करते हुये अपना विश्वास उनपर प्रगट करके मनकी जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ॥ ६५ ॥ हे महाराज ! आपने जो कुछ कहा, उस सबकोही सुग्रीवजी शीघ्रही करेंगे, इस समय आप शरदकालको परखते हुये शत्रुके विनाशमें बुद्धि लगाइये इस वर्षा कालको बिता दीजिये ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा०वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः २९.

विगत विद्युत और विगतवारिद, सारससमूहसे निनादित मनोहर चांदनीसे अनुलिप्त विमल आकाशको अवलोकन करकै सुग्रीवके निकट हनुमान्जी गये ॥ १ ॥ सुग्रीव अत्यन्त समृद्धिशाली होकर धर्म और अर्थको इकट्ठा करनेके विषयमें शिथिल और असत् पुरुषोंके मार्ग अर्थात् कामवृत्तिमें अत्यन्त आसक्तचित्त ॥ २ ॥ और सब कार्योंमें निवृत्त वालिके मारनेसे कृतकार्य हुये । समस्त इष्ट और मनोरथ लाभ किये हुये राज्यको प्राप्त कर ॥ ३ ॥ अपनी स्त्री रुमा और वांछा करने योग्य ताराको प्राप्त करकै व्यथा रहितहो ॥ ४ ॥ अप्सरागणोंके सहित देवराज इन्द्रकी समान दिन रात विहार करतेहैं सब राज्यभार मंत्रिलोगोंके ऊपर छोड करकै फिर उसको देखतेभी नहीं ॥ ५ ॥ वह मंत्रीगणोंके कार्यकी चतुरतासे राज्यके पालन करनेके विषयमें संदेह न करकै कामवृद्धकी नाईं टिके हुयेहैं ऐसे सुग्री-

वक्तो देख अर्थतत्त्वके जाननेवाले सब अर्थोंको निश्चित किये कालोचित धर्मतत्त्वको जाननेवाले ॥ ६ ॥ वाक्यविशारद श्रीहनुमान्जी प्रीतियुक्त हेतु सम्पन्न मनोहर वचनोंसे वाक्यतत्त्वके जाननेवाले वानरपतिको ॥ ७ ॥ समझाय बुझाय प्रसन्न कर सत्ययुक्त हितकारी साधक साम,धर्म, अर्थ व नीतियुक्त प्रेम प्रीति सम्पन्न विश्वास निश्चय किये वचन ॥ ८ ॥ सुग्रीवजीके निकट जाकर हनुमान्जी बोले कि, आपने राज्य यश और कुलसे चली आई हुई विपुल राज्यलक्ष्मी प्राप्त कीहै ॥ ९ ॥ इस समय मित्रगणोंका शेषकार्य साधन करनेके कर्त्तव्यका यत्न करना आपको उचितहै। जो काल जाननेवाला पुरुष मित्रलोगोंमें सदाही साधुताके भावसे वर्त्तता है ॥ १० ॥ उसका राज्य, कीर्ति और प्रताप वृद्धिको प्राप्त होताहै। जिसका खजाना, सेना और इन्द्रियादि युक्त देह और दंड मित्रोंके सहित समान हैं वह पुरुष बडे राज्यको भोगता है ॥ ११ ॥ इस कारण अच्छे चरित्रवाले आप हानि रहित मार्गमें टिककर जानाहुआ मित्रका कार्य यथाविधिसे कीजिये ॥ १२ ॥ जो मनुष्य समस्त कार्यको परित्याग करकै मित्रके कार्यको करनेमें यत्नवान् नहीं होता, वह उत्साह विहीन और चंचलचित्त होकर अनर्थकी परम्परासे वृद्धिमें रुकजाता है ॥ १३ ॥ जो समय को बिताकर मित्रका कार्य करते हैं वह चाहे बडे भारी अर्थको भी साधन करदें परन्तु कालके बीतने से वह विना हुयेहीकी समान है इसलिये समय बीतने पर कार्यका करना न करना बराबर है ॥ १४ ॥ इसलिये हे शत्रुवीरोंको मारनेवाले! अब समय बीताही चाहताहै सो अब जानकीजीके ढूंढने भालनेरूप श्रीरामचन्द्रजीका कार्य पूरा कीजिये ॥ १५ ॥ समयके जाननेवाले रामचन्द्र तुमसे नहीं कहेंगे कि अब समय बीतताहै यद्यपि वह महात्मा श्रीरामचन्द्रजी शीघ्रही अपने कार्यको साधन करनेकी इच्छा करते हैं परन्तु आपके वश हो वह विलंब कर रहे हैं ॥ १६ ॥ आपके इस बडे कुल राज्यकी प्राप्तिके हेतु और दीर्घ कालके बन्धु उन श्रीरामचन्द्रजीका अतुल प्रभावहै और वह गुणगणोंसे अनुपम हैं ॥ १७ ॥ हे कपिनाथ! उन्होंने पहले ही आपका कार्य पूरा कर दियाहै सो इस समय आप उनका कार्य करनेके लिये श्रेष्ठ वानरगणोंको आज्ञादीजिये ॥ १८ ॥ प्रेरणाके विना स्वयंही विचार कर कार्य करनेसे, समयका उल्लंघन नहीं होता, जो कार्य कि आज्ञा किये जाने, अर्थात् प्रेरणा होनेपर कियाजाता है, वह कार्य होजानेपरभी उस कार्यका काल व्यतीत हो

जाता है इससे हुआ न हुआ बराबर है ॥ १९ ॥ हे वानरनाथ ! यदि आपका कोई पुरुष उपकार न करै तोभी आप उसका उपकार किया करते हैं, फिर श्रीरामचन्द्रजीने तो वालिको मार करकै आपको राज्य प्रदान किया है; सो आप जो उनका उपकार करेंगे उसमें कहनाही क्या ! ॥ २० ॥ आप वानर और रीछोंके राजा हैं, और श्रीरामचन्द्रजी शक्तिमान और अतिशय विक्रमशाली हैं आप श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके हेतु उनका कार्य करनेके लिये क्यों तैयार नहीं होते ? ॥ २१ ॥ दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी सुर असुर और भुजंगोंकोभी बाणोंसे अपने वशमें करनेको समर्थ हैं, वह तो केवल आपकी प्रतिज्ञाको परखते हैं ॥ २२ ॥ उन्होंने प्राण त्याग न करनेकी आशंका न करकै आपका बडा भारी कार्य किया है, इसलिये हम पृथ्वी व आकाशमें जहां कहींभीहो जानकीजीको ढूंढ लावेंगे॥ २३॥ देव, दानव, गन्धर्व, असुर, मरुद्गण और यक्षगण सबही रणमें रामचन्द्रजीसे भय करते हैं, फिर उनसे राक्षसगण क्यों भय नहीं करेंगे ? ॥ २४ ॥ इस प्रकारके शक्तियुक्त श्रीरामचन्द्रजीने पहलेही आपका उपकार किया है, इसलिये हे कपिराज ! इससमय सब प्रकारसे आपको उनका उपकार करना उचित है ॥ २५ ॥ हे कपीन्द्र ! आपकी आज्ञासे हम वानरोंके मध्यमें, किसकी गति पृथ्वीके नीचे, जलमें अथवा आकाशमें न होगी ? ॥ २६ ॥ हे अनघ ! करोडों दुर्द्धर्ष वानर आपके वशमें हैं, सो आप आज्ञा दीजिये कि, कौन किस स्थानमें जाय ॥ २७ ॥ यथाकालमें उत्तम रूपसे निरूपित हनुमानजीके यह वचन सुनकर बुद्धिमान् सुग्रीवजीने उन वचनोंमें उत्तम मतिं की ॥ २८ ॥ उस समय मतिमान् सुग्रीवजीने नित्य हितकारी और उद्यमशील नीलवीरको समस्त दिशाओंसे सेना इकठी करनेके लिये आज्ञा दी ॥ २९ ॥ सुग्रीवजीने कहा कि–जिससे समस्त यूथपालगण अपने २ सेनापतियोंके सहित अपनी समस्त सेना ले यहांपर चलेआवें, तुमको ऐसा यत्न करना चाहिये ॥ ३० ॥ उनमेंसे जोकि, शीघ्र चलनेवाले सब दिशाओंको जाननेवाले और दृढ संकल्प करनेवाले हैं, उनको तुम बहुतही शीघ्र हमारे पास भेज देना॥ ३१ ॥ और तुम स्वयं सेनापति आदिकोंको देखते भालते रहो ॥ ३२ ॥ जो जो वानर लोग एक पखवाडेके बीचमें इस स्थानमें नहीं आवेगा, उसे बिना विचारे प्राणदंड देदो ॥ ३३ ॥ हमारी आज्ञाके वशमें टिके वृद्ध वानरगणोंके निकट तुमही

अंगदके साथ चले जाओ । वानरश्रेष्ठ वीर्यवान् सुग्रीवजी इस प्रकारकी व्यवस्था करके राजमंदिरमें प्रवेश करते हुये ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां एकोनत्रिंशः सर्गः॥२९॥

त्रिंशः सर्गः ३०.

इधरतो सुग्रीव राजमंदिरमें गये उधर गगनमण्डल मेघरहित हुआ और बरसातकी रातोंके बीतजानेपर श्रीरामचन्द्रजी कामशोकसे पीडित हुये ॥ १ ॥ वह आकाशमण्डल निर्मल, विमल चन्द्र मण्डलकी चांदनीसे युक्त शरद ऋतुकी रात्रि देख ॥ २ ॥ जनककुमारी सीताको हरा हुआ, सुग्रीवको कामासक्त और कालको बीतजाता हुआ देख अत्यन्त कातर और मोहित हुये ॥ ३ ॥ अनन्तर मतिमान् नृपति श्रीरामचन्द्रजी एक मुहूर्त्त भरमें चित्तकी सावधानताको प्राप्तकर, जानकीजीकी चिंता करने लगे, क्योंकि वही बराबर इनके मनमें बसी रहतीथीं ॥ ४ ॥ आकाश मंडल मेघ और बिजलीसे रहित होनेके कारण विमल हुआ, और सरोवरोंमें सारसकी पुकार सुन श्रीरामचन्द्र अति आरत वाणीसे विलाप करने लगे ॥ ५ ॥ वह हेम धातु विभूषित पर्वतके अग्रभागमें बैठ शरदऋतुका आकाश देख मनही मनमें प्रियाका ध्यान करने लगे ॥ ६ ॥ जो सारस तुल्य शब्द करने वाली, सारसगणोंके शब्द सुनकर आश्रममें आनंदित होती, वह इस समय किस प्रकारसे मन बहलाती होगी ! ॥ ७ ॥ वह मृगशावकनयनी सुवर्णके पुष्प सदृश, पुष्पयुक्त आसनके वृक्षोंको देखकर, हमको विनादेखे किस प्रकारसे मन मुदित करती होंगी ॥ ८ ॥ जो मधुर भाषण करनेवाली श्रीजानकीजी प्रथम कलहंसोंके शब्दको श्रवण कर जागतीथी, वह सर्वांगश्रेष्ठ इस समय किस प्रकारसे आनंदको प्राप्त करती होंगी ! ॥ ९ ॥ वह कमलदलकी समान आंखोंवाली जानकीजी चक्रवाकोंका कलशब्द श्रवण करके किस प्रकारसे जीवन धारण करनेको समर्थ होंगी ? ॥ १० ॥ हम उन मृगनयनीके विना, सरोवर, नदियें, वापी, वन और काननमें विचरण करके कुछभी सुख प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होतेहैं ॥ ११ ॥ एकतो हमारा विरह, दूसरे सुकुमारताके हेतु अपने साथ शरदके गुणोंसे नित्य प्रकृत कामदेव उनको अतिशय पीडा देता होगा ॥ १२ ॥ सारंग नामक चातक पक्षी इन्द्रजीसे जिस प्रकार कातर होकर जलकी प्रार्थना करताहै, वैसेही राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी

अनेक भांतिके विलाप करने लगे ॥ १३ ॥ फिर लक्ष्मीयुक्त लक्ष्मणजी जोकि भाईके दुःखसे दुःखी, फलोंको लानेके लिये पर्वतोंके कँगूरों पर गयेथे, लौट आकर अपने बडे भाई साहबको देखते हुये ॥ १४ ॥ मनस्वी लक्ष्मणजी अति शीघ्रतासे दुस्सह चिन्तायुक्त ज्ञानहीन और अतिदीन श्रीरामचन्द्रजीको देखकर उनका विषाद दूर करनेके लिये अतिदीनतासे बोले ॥ १५ ॥ हे आर्य ! आप आत्म पौरुषको पराजितकर, और कामके वशहो क्या कर्म करतेहैं ? आप शोक करके चित्तकी एकाग्रता दूरकररहेहैं, ऐसे समयमें आप समाधि योगकर समस्त दुःखोंका नाश कीजिये ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! आप धीरज धारण करके शौच स्नानादिक्रिया योग कर मनको निर्मल कर लीजिये, और यथाकालमें समाधि योगके अनुगतहो सब कार्योंका समाधान कीजिये ॥ १७ ॥ हे नरनाथ ! जानकीजी आपसेही सनाथ होसकतीहैं, वह दूसरेसे कभी सनाथ नहीं होसकतीं, क्योंकि प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाको प्राप्त होकर कौन नहीं दग्ध होता अर्थात् अग्निवत् जानकीजीकी ज्वालासे रावणका नाश होजायगा ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्षणयुक्त दुर्द्धर्ष लक्ष्मणजीसे तत्वार्थ, नीतिसम्मत, पथ्य और हितकारी व धर्मयुक्त वचन बोले ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण कुमार ! तुमने जो कहाहै उस कर्मयोग व ज्ञानयोगका निश्चयही साधन करना उचितहै अति दुःखसे वृद्धिको प्राप्त हुए सहन करनेके अयोग्य इस अपने वीर्य बलके फलकीभी अवश्य चिंता करनी चाहिये ॥ २० ॥ फिर कमलदलनेत्रवाली जानकीजीका स्मरण करके रामचन्द्रजीका मुख विवर्ण होगया, और वह लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २१ ॥ इन्द्रजी वर्षाकी धारासे पृथ्वीको तृप्तकर अन्न उपजानेके कार्यको पूराकर अब सिद्ध काम हुए ॥ २२ ॥ हे राजकुमार ! मेघगण धीर गंभीर शब्द युक्त पर्वत व नदियोंके समीप आय २ जल वर्षाय २ अब थकगयेहैं ॥ २३ ॥ नीले कमलकी पखडियोंके समान श्याम रंगके मेघ सब दिशाओंको श्याम रंगमय करते हुए मद रहित हाथीकी समान शान्त वेगसे चलने लगे ॥ २४ ॥ कुटज और अर्जुन पुष्पकी सुगन्धि वाला जल अपने गर्भमेंसे वर्षाय पवनसे उठे हुए बादल, विचरण करकै अब शान्त होगयेहैं ॥ २५ ॥ हे पापरहित लक्ष्मण ! मेघ मातंग मोर और झरने इन सबका शब्द एकवारही बंद होगयाहै ॥ २६ ॥ महामेघके समूहोंसे धुए हुए विचित्र कँगूरे पर्वतोंके समूह चन्द्रमाकी किरणोंके पडनेसे शोभायमान ; ॥ २७ ॥ इस समय शतावरीके वृक्षोंकी डालियोंमें, तारा चन्द्र और सूर्य-

की प्रभामें; उत्तम गजेन्द्रगणोंकी लीलामें, अपनी लक्ष्मीका भाग करके शरत्काल आ पहुँचाहै ॥ २८ ॥ इस समय शरत्कालकी गुण युक्त लक्ष्मीकी शोभाने अनेक वस्तुओंमें आश्रय लियाहै, वह लक्ष्मी सूर्य नारयणकी पहिली किरणसे खिले हुए कमल फूलोंमें अधिक शोभायमान होरहीहै ॥ २९ ॥ यह शरत्काल शतावरीके फूलोंको सुगन्धि युक्त करता, भ्रमर गणोंमें ध्वनि उपजाता, पवनके पीछे २ चलता मतवाले हाथियोंका दर्प चूर्ण करके अधिक शोभित हो रहाहै ॥ ३० ॥ इस समय हंसगण, मनोहरविशाल पंखवाले, कामप्रिय, पद्मपरागसे सने, महानदियोंके किनारोंपर खडे हुए चक्रवाकोंके झुण्ड सहित विहार कररहेहैं ॥ ३१ ॥ मतवालेहाथियोंके झुण्डमें, घमंडी वृषभोंमें, और नदियोंके निर्मल जलमें शरदलक्ष्मी खंड २ हो कर शोभायमान होरहीहै ॥ ३२ ॥ आकाशमंडलको बादलोंसे छूटाहुआ देख, वनोंमें भूषणरूप पंख पसार, प्रियामें अनुरागशून्य शोभाशून्य और उत्सवशून्य होकर समस्त मोरगण ध्यान कर रहेहैं ॥ ३३ ॥ मन हरण करनेवाली सुगन्ध बहुत सारे सुवर्णकी समान रंगके उजले आसन वृक्षोंकी डालियें फूलोंके भारसे झुककर वनस्थलीको महाशोभायमान कररही है ॥ ३४ ॥ तडाग प्रिय अपनी २ प्यारी हथनियोंके साथ रहनेवाले, वनके फूलोंके सूँघने वाले,मदके भारसे आलसीहुये, मद से उत्कट गजेन्द्रसमूहोंकी गति अति धीमी पड गई है ॥ ३५ ॥ आकाशमण्डलका वर्ण विमल असिके तुल्य हो गया है नदियोंके जलका प्रवाह अत्यन्त घट गया है, पवन कमलफूलकी गन्धसे युक्त और शीतल होकर चलती है, सब दिशायें अंधकारसे छूटकर प्रकाशित होरहीं हैं ॥ ३६ ॥ सूर्यनारायणकी धूपका ताप लगनेसे पृथ्वीपरकी कीचडका नाश होगया, धूल उडने लगी यह शरदऋतु परस्पर वैर किये हुये नृपतिलोगोंकी चढाई करनेका समय है ॥ ३७ ॥ इस समय शरदके गुणसे बैलोंका रूप और शोभा बढजाती है, बडे प्रसन्न, धूरियुक्त अंगवाले, मदमत्त वृषभ इस समय युद्धकी इच्छा करे हुये गायोंके बीचमें खडे शब्द करते हैं ॥ ॥ ३८ ॥ कामके व्याप्त होनेसे जिनका अनुराग बढगया है, ऐसी अपने परिवारके सहित धीरे २ गमन करनेवाली हथिनी वनमें मतवाले चलते हुये अपने पतिके पीछे घेरती हुई चलती हैं ॥ ३९ ॥ अपने सुंदर पंखरूप भूषणका त्याग किये, मोरगण नदीके किनारोंपर रहनेवाले सारसोंसे धमकी पाकर दीनमलीन हो चले जाते हैं ॥ ४० ॥ गजेन्द्रगणोंके गलफुओंको भेदकर मदकी धार निकल रही है-

वह गजराज खिले हुये कमलफूलोंसे युक्त सरोवरमें बैठे हुये कारण्डव और चक्र-वाकोंको पीडित करके जल पीरहे हैं ॥ ४१ ॥ सारसगणोंके शब्दसे शब्दायमान, कीचड रहित, वालुकासे पूर्ण बैल गायोंसे युक्त नदियोंके समूहमें हंसगण हर्षित होकर कूदते फांदते हैं ॥ ४२ ॥ इस समय नदी मेघ, झरने, जल अति बढा हुआ पवन, मोर, और उत्सव रहित वानरोंका शब्द बंद हो गया है ॥ ॥ ४३ ॥ इस समय अनेक वर्ण वाले और नये मेघोंके उदय होनेपर जो चल फिर नहीं सकतेथे, इस कारण मृतककी तुल्य घोर विषधर बहुत दिनोंसे भूखे सर्पगण, बिलसे निकलकर घूम रहे हैं ॥ ४४ ॥ इस समय शोभायमान चन्द्रमाकी किरणोंका स्पर्श होनेसे, तारारूप नेत्र पुतलियोंके तारे धारण किये हर्षवती सन्ध्या आकाशस्थलको छोडे देती है ॥४५॥ इससमय उदय हुआ चन्द्रमा रात्रिके मुखकी समान, तारागण खुले हुये मनोहर नेत्रोंकी समान और चांदनी श्वेत बासनोंकी समान है इस कारणसे इस समय रात्रि वस्त्र धारण कियेहुये अच्छे लक्षणवाली स्त्रीकी समान विराजमान है ॥ ४६ ॥ इस समय सारसगण पकेहुये धानोंकी बालें खाय, हर्षित होकर पवनसे चलायमान मालाकी समान वेग सहित आकाशमें उडे जारहे हैं ॥ ४७ ॥ इस समय इस महाकुण्डके जलमें एक हंस सो रहा है, और उसही सरोवरमें बहुत सारे बबूलेभी शोभा पारहेहैं; इससे ऐसी शोभा हो रही है, मानो रात्रिके समय नक्षत्रगणोंसे युक्त मेघ सहित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा निकले हुये शोभा पारहेहैं ॥ ४८ ॥ इस शरदकालमें हंसगण वापि-योंके चन्द्रहार स्वरूप, खिले हुये कमल फूल मानों उनकी माला हैं सो इन वस्तु-ओंसे शोभित होनेके कारण वह वापियें विभूषित उत्तमास्त्रियोंकी समान उत्तम शोभा धारण किये हुयेहैं ॥ ४९ ॥ प्रभातकालमें बाँसोंका शब्दरूप नगाडेद्वारा मिला पवनका किया हुआ शब्द गुफाओंकी ध्वनि और वनैले बैलोंके शब्दसे मिलकर मानों परस्पर एक दूसरेके शब्दको बढा रहाहै ॥ ५० ॥ जिनमें धोये हुये विमल महीन कपडेकी तुल्य खिले हुये फूल हैं, ऐसी हँसती हुई व मन्द कम्पायमान नई काशके समूहोंसे नदियोंके किनारे शोभायमान हो रहेहैं ॥ ५१ ॥ वनके मध्य मधुपान करनेमें चतुर मतवाले हर्षित भ्रमरगण, कमल फूल और आसन पुष्पके परागसे रँग, गौरवर्णहो सुगन्धिके लोभसे पवनमें उडे जारहेहैं ॥ ५२ ॥ निर्मल जल, खिलें हुए फूलोंके समूह, क्रौंचका शोर पके हुए धानोंका वन, मन्द पवन,

और विमल चन्द्रमा, यह सब वर्षाका जाना और शरद ऋतुका आना बता रहेहैं ॥ ५३ ॥ इस समय प्रभातकालमें अपने पतियों करके भोगी जानेसे आलस्य पाई हुई कामनियोंकी समान, मीनरूप तगडी धारण किये नदी वधूटियोंकी गति मन्द होगईहै ॥ ५४ ॥ चक्रवाक व शिवारयुक्त काशरूपी वसन पहरे हुए नदियोंके मुख पत्र रेखा युक्त और रोचन लगाये वधूटियोंके मुखकी समान शोभा धारण किये हुएहैं ॥ ५५ ॥ प्रफुल्ल बाण और आसन पुष्पोंसे चित्र विचित्र हर्षित भ्रमरोंकी गुंजारसे गुंजायमान, वनोंमें प्रचंड धनुष धारण किये कामदेव विरही जनोंको दंड देनेके लिये अत्यन्त प्रचंड होगया ॥ ५६ ॥ मेघ अति वृष्टिसे सब लोकोंको संतुष्ट कर, नदी तडागोंको पूर्ण और वसुधाको धान्यसे पूरित कर, इस समय आकाश-मण्डलको त्याग चले गयेहैं ॥ ५७ ॥ इस समय नदियें धीरे २ अपने किनारे दिखातीहैं, जैसे नवीन् आई हुई वधुयें नये संगमसे लज्जाशीलहो अपने २ पतिको अपने जांघादिअंग शनैः दिखाती हैं ॥ ५८ ॥ हे सौम्य! निर्मल जलाशय सारसोंके शब्दसे शब्दायमान चक्रवाकोंसे पूर्ण समस्त जलसे शोभायमान होरहेहैं ॥ ५९ ॥ हे राजकुमार! परस्पर वैर रखनेवाले और एक दूसरेके जीतनेका अभिलाष किये राजा लोगोंके उद्योग करनेका यह समय आगयाहै ॥ ६० ॥ राजालोगोंकी यात्रा करनेका यही प्रथम समय है, परन्तु यात्राकी उपयोगी तैयारियोंको करते अबतक सुग्रीव दृष्टि नहीं आते ॥ ६१ ॥ इस समय पर्वतके शिखरोंपर असन; सतावरी, कोविदार, दुपहरिया, व श्याम आदि तरुगण फूले हुए दृष्टि आतेहैं ॥ ६२ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो इस समय हंस, सारस, चक्रवाक और कुरर आदि पक्षी नदियोंकी रेतियोंमें बैठेहैं ॥ ६३ ॥ हम प्राणप्यारी सीताजीको न देखनेसे और उनके शोकसे अत्यन्त आरत होगयेहैं; इसलिये हमारे लिये तो यह वर्षाका चौमासा मानों सौ वर्षकी समान बीताहै * ॥ ६४ ॥ प्राणजीवनी भार्या सीताजी भयंकर दंडकारण्यको उद्यानकी समान जान

---

* जानकी विन जीवन अति भारी ॥ अस्ताई ॥ पल पखवाडे घडी महीने, दिवसवर्ष मम बीतें, रात्रिकाल युगसे लागतहैं यह गति भई हमारी ॥ अवल जान घर जनते न्यारें लख यह काम सतावै। ताहूपर सुग्रीव विरतहो हमरी सुरत विसारी ॥ जानकी० ॥ विमलाकाश सरोवर निर्मल भये शरदके आये। या अवसर मोहिं मैन सतावे सुमन बाणकर धारी ॥ जानकी० ॥ वरषत नीर नेत्रसों अविरल नेह महादुख दाई। जनक लडैतीके विं। देखे, हैं बलदेव दुखारी ॥ जानकी० ॥

करके चकवीकी नांई वन आनेके समय हमारे पीछे २ आईथीं ॥ ६५ ॥ हे लक्ष्मण ! प्रियाविहीन राज्यहराये दुःखी आरत वनमें निकालेहुये हमपर सुग्रीव क्यों नहीं कृपा करते ॥६६॥ कि इन अनाथ राज्य खोये, रावणसे पीडित दीन, घरसे निकाले हुये कामी रामने हमारी शरण ग्रहण की है ॥ ६७ ॥ यही कारण विचार कर दुरात्मा सुग्रीव तुच्छ व पराजित समझ कर हमारा निरादर करताहै ॥ ६८ ॥ सीताजीके ढूंढनेके समयका स्थिरकर और प्रतिज्ञाकर वह दुर्मति सुग्रीव कृतार्थहो इस समय उसको स्मरणकर नहीं जागता ॥ ६९ ॥ तुम हमारे वचन सुन किष्किन्धा नगरीमें गमन कर उस मूर्ख व स्त्रीके सुखमें आसक्त वानर सुग्रीवसे कहना ॥ ७० ॥ कि जो पुरुष कार्यार्थी होकर आये हुए, और प्रथम अपना उपकार किये हुए पुरुषको आशा देकर फिर उसका कार्य पूरा नहीं करता वह इस लोकमें अधमपुरुष कहा जाताहै ॥ ७१ ॥ अच्छा हो, वा बुराहो जो वचन दिया गयाहै; ऐसे वचनको जो पुरुष सत्य रूपमें ग्रहण करतेहैं, वही निःसंदेह वीर और पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ७२ ॥ जो लोग अपना काम निकाल लेते, और जिसका कार्य सिद्ध नहीं हुवा है ऐसे मित्रके कार्य वा उपकारको साधन नहीं करते; उनके मरनेपर मांसके खानेवाले जन्तु गणभी उनके मांसको नहीं खाते ॥ ७३ ॥ तुम निश्चयही संग्रामस्थलमें, हमसे खेंचे हुए सुवर्णकी पीठवाले और बिजलीकी समान गुणयुक्त धनुषका रूप देखनेकी इच्छा करते हो ॥ ७४ ॥ तुम फिर यह श्रवण करनेकी इच्छा करते हो कि हम संग्रामभूमिमें क्रोधित हो वज्रके शब्दकी समान प्रत्यंचाकी घोर टंकार करें ॥७५॥ हे वीर हे कुमार नृपात्मज ! जब कि हम उसका सब बल जानतेहैं; और वह तुम्हारे सहाययुक्त हमारे पराक्रमकोभी जानताहै तौभी उस सुग्रीवको यह चिन्ता नहीं कि, यह वालिकी तरह मुझे मार डालेंगे बडे आश्चर्यकी बातहै ॥ ७६ ॥ हे पराये पुरको जीतनेवाले लक्ष्मण ! वानरराज सुग्रीव कृतार्थ होकर किस कारण इस समय वालीके वध और इस मित्रताईको स्मरण नहीं करते हैं ॥ ७७ ॥ वर्षाके बीतनेपरही प्रतिज्ञाके पूर्ण करने का समय है, सो यह चार मासभी बीत गये तथापि वह विहारके सुखमें आसक्त होकर हमारी प्रतिज्ञाको नहीं जानता ॥ ७८ ॥ वह सुग्रीव अपने मंत्री और इष्ट मित्रगणोंके सहित मधुपानमें मत्त होकर हमारे ऊपर दया नहीं प्रगट करते ॥७९॥

हे महाबलवान् ! हे वीरश्रेष्ठ ! इस समय तुम जाकर सुग्रीवसे हमारे क्रोधका रूप निवेदन करो, और यह सब कठोरवचनभी उनसे कहदेना ॥ ८० ॥ जिस मार्गमें मारा जाकर वालि गयाहै; वह मार्ग कुछ इस समय छोटा नहीं होगयाहै; वह सबही भांतिसे हमारे वशमें है। हे सुग्रीव ! तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कार्य करो अपने भाई वालीकी राहमें न जाओ ॥ ८१ ॥ हमने रणस्थलमें केवल एक बाणसे वालीहीको मार डाला, परन्तु तुम जो सत्यसे भ्रष्ट हुए तौ तुमको हम बन्धु बांधवों सहित मार डालेंगे ॥ ८२ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस विषयमें औरभी करने योग्य कार्य जोकि, हितकारी हों वह २ सब उनसे कह देना, क्योंकि इस शीघ्रतासे करने योग्य कार्यमें विलंब होगयाहै ॥ ८३ ॥ और यहभी कह देना कि हे वानरेश्वर ! नित्य धर्म, दर्शन करके जो प्रतिज्ञा तुमने की है उसको तुम पूरा करो देखो ! कहीं तुम हमारे छोडे हुए बाणसे मरकर वालीको मत देखना ॥ ८४ ॥ वह मानववंशके बढानेवाले उग्र तेजवान् लक्ष्मणजी, यह देखकर कि बडे भाई साहबका क्रोध अत्यन्त बढता जाताहै और यह दीनभावसे विलाप कर रहेहैं, सुग्रीवके प्रति अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ८५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१.

श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई नरेंद्रपुत्र लक्ष्मणजी, अगाध वीर्य कामसे उत्पन्न हुए शोकसे युक्त नरेन्द्रपुत्र राजकुमार अपने ज्येष्ठभ्राता श्रीरामचन्द्रजीसे इसप्रकार बोले ॥ १ ॥ वह वानर साधु लोगोंके चारित्रपर नहीं टिकेगा, वह मित्रताका मूल राज्यलाभरूप फलभी मनमें न समझेगा, और वानर राज्य, लक्ष्मीकोभी भोग नहीं करैगा और उसकी बुद्धि प्रतिज्ञाके प्रतिपालन करनेमें भी आगे नहीं बढेगी ॥ २ ॥ वह अपनी बुद्धि क्षय होजानेके कारणसे स्त्री आदिकोंके सुखमें आसक्त होगयाहै, आपको प्रसन्नताके हेतु उसकी यह बुद्धि नहीं होगी कि उसका प्रत्युपकार करै, वह इस समय मरकर वालीको देखे ! इस दुष्टबुद्धि सुग्रीवको राज्य देना कुछ उचित नहीं हुआ ॥ ३ ॥ हमारे क्रोधका वेग उकसा आताहै, कि जिसके धारण करनेमें हम समर्थ नहीं हैं आज हम उस मिथ्यावादी सुग्रीवको मार करके अंगदको राज्य दे देंगे, वह वालिपुत्र मुख्य २ वानरगणोंके

सहित सीताजीको खोजेंगे ॥ ४ ॥ इतना कह और धनुष धारण करके लक्ष्मणजी खडे होगये । तब परवीरघाती श्रीरामचन्द्रजी रणस्थलमें प्रचंड कोपशाली लक्ष्मणजीकी ओर देखकर उनको नम्र करते हुये बोले ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मणजी ! तुम सरीखे पुरुष मित्रवधरूप पापका आचरण नहीं करते, जो पुरुष उचित ज्ञानसे कोपका संहार कर डालताहै, वही वीर और पुरुषोंके मध्यमें श्रेष्ठहै ॥६॥ हे लक्ष्मण! वह मित्रघातरूप अकार्य तुमको करना उचित नहीं है, तुम सुग्रीवके प्रति साधुताका वर्ताव करके पहलेकी समान प्रसन्न हो जाओ ॥७॥ तुम रूखेवचनोंको छोड करके समयका उल्लंघन करनेवाले सुग्रीवको समझाते बुझातेहुए हितकर वचन कहना ॥ ८ ॥ जब रामचंद्रजीने ऐसा कहा तो पुरुषश्रेष्ठ, परवीरघाती वीरवर लक्ष्मणजी अपने बडे भाईकी आज्ञासे किष्किन्धापुरीमें प्रवेश करते हुये ॥ ९ ॥ फिर शुभमति बुद्धिमान् भ्राताका हित करनेमें रत लक्ष्मणजीने कोप प्रगट करते हुये कपिराज सुग्रीवके भवनमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ मन्दराचल पर्वतकी तुल्य लक्ष्मणजी इन्द्रके धनुषकी समान कालान्तक यमकी समान पर्वतके शिखरकी तुल्य धनुष धारण करके गमन करते हुये ॥ ११ ॥ मनमें विचारा कि, जैसे उत्तर प्रत्युत्तर भाई साहबने सुग्रीवसे कहनेको कहेहैं; उन्हींके अनुसार कार्य करना उचितहै, यही विचार बृहस्पतिजीके समान बुद्धिमान् लक्ष्मणजीने सब उत्तर शोचलिये ॥ १२ ॥ और उसही मध्यमें अपने बडे भ्राताकी कामक्रोधाग्निसे युक्त लक्ष्मणजी बडे वेगसे चले, अति वेगसे चलनेके कारण अप्रसन्नहुए वायुकी समान चले जातेथे ॥ १३ ॥ वेगवान् लक्ष्मणजी शाल, ताल, अश्वकर्ण इत्यादि वृक्षोंको गिराते जाते और पर्वतके शृंगोंको तोडते उखाड़ते इधर उधर फेंकते जाते ॥ १४ ॥ वह पर्वतकी . शिलाओंको अपने दोनों चरणोंसे खंड २ करते, दूर २ पर चरण धरते, कार्यके वशहो अति शीघ्रतासे चलने लगे; उस समय ऐसा ज्ञात होताथा कि मानों कोई मतवाला हाथी तोडता फोडता चला आताहै ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुश्रेष्ठ लक्ष्मणजीने बडे २ पर्वतोंके बीचमें बसी हुई सेनासमूहसे परिपूर्ण दुर्गम कपिराज पुरी किष्किन्धा नगरीको देखा ॥ १६ ॥ सुग्रीवके ऊपर क्रोध करनेसे लक्ष्मणजीके अधर फडकने लगे; उन्होंने किष्किन्धा नगरीके बाहर घूमते हुये बहुतसे बडे २ बन्दरोंको देखा ॥ १७ ॥ कुंजरकी समान वानरगणोंने पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीको क्रोधित देख भयभीतहो पर्वतोंपर जाय बडे २ पर्वतोंके शिखर और वृक्ष ग्रहण

कर लिये और खडे होगये ॥ १८ ॥ लक्ष्मणजी उन वानर गणोंको आयुध ग्रहण किये हुए देखकर बहुत लकडी डालनेसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान दूने क्रोधित होगये ॥ १९ ॥ तब शत २ वानरगण प्रलयकालकी मृत्युके समान लक्ष्मणजीको अत्यन्त क्रोधित देखकर चारों ओर भाग खडे हुये ॥ २० ॥ उनमेंसे प्रधान २ वानरोंने सुग्रीवके भवनमें प्रवेश करके लक्ष्मणजीके क्रोधमें भरकर आनेका समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २१ ॥ कामसे आसक्त हुआ सुग्रीव उस समय ताराके सहित मिलकर सुखभोग रहाथा; उसने उन कपिश्रेष्टोंके वह वचन नहीं सुने॥ २२॥ जब सुग्रीव कुछ न बोले तब मंत्रियोंकी आज्ञासे कि जबतक हम न बुलाने जाँय तबतक कुमारको वहां ठहराओ पर्वत व हाथियोंकी अनुहार मेघ समान वानरगण रोम फुलाकर लक्ष्मणजीके रोकनेके लिये किष्किन्धापुरीसे निकले ॥ २३ ॥ वह सबही वानर नख और डाढरूप आयुधवाले विकटाकार और सबही सिंहकी समान भयंकर डाढवाले दृष्टि आतेथे ॥ २४ ॥ किसीमें दश हाथीका किसीमें शत हस्तीका और किसीमें हजार हस्तियोंका बलथा इन सब वानरोंकी एकसीही कान्तिथी ॥ २५ ॥ जब यह बाहर आये तो क्रोधित हुये लक्ष्मणजी उन वृक्षधारी महाबलवान् वानरोंसे व्याप्त किष्किन्धा नगरीको देखते हुये ॥ २६ ॥ तब महावीर्यवान् समस्त वानर दुर्गकोटकी बाहर दिवारीसे बाहर परिखाके पार आकर प्रकाशित भावसे लडनेको खडे होगये ॥ २७ ॥ जितेन्द्रिय वीरवर लक्ष्मणजी सुग्रीवका प्रमाद और अपने भ्राता श्रीरामचन्द्रजीके कार्यको विचार कर बहुत क्रोध करते हुये ॥ २८ ॥ लंबे २ और गर्म २ श्वास ले क्रोधके मारे लाल २ नेत्र होनेसे नरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी धूमसहित अग्निकी समान प्रकाशित होने लगे ॥ २९ ॥ फल लगे हुये बाणही मानो लप लपाती हुई प्रज्वलित जीभ धारण किये धनुषही जिसका शरीरहै ऐसे विषभरे पांचशिरवाले भुजंगकी समान वह प्रकाशमान हुये ॥ ३० ॥ कालाग्निकी समान प्रदीप्त और क्रोध किये हाथीके समान प्रकाशमान, लक्ष्मणजीको देखकर अंगदजी अत्यंत शोकातुर हुये ॥ ३१ ॥ महायशस्वी लक्ष्मणजीने क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर अंगदजीको आज्ञा दी कि, हे वत्स ! हमारे आनेकी वार्ता सुग्रीवसे निवेदन करो ॥ ३२ ॥ उनसे कहना कि हे शत्रुनाशक ! श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मण अपने भ्राताके संतापसे संतापितहो तुम्हारे पास आय द्वारपर खडे हैं ॥ ३३ ॥ हे परवीरघाती ! यदि तुम्हारी रुचि

होय तो उनके वचनका प्रतिपालन करो। हे वत्स! इतनी बात कहकर तुम वहांसे लौट आना ॥ ३४ ॥ अंगद लक्ष्मणजीके यह वचन सुन शोकोपहतचित्तहो अपने चचा सुग्रीवसे जाकर बोले कि, हे तात! रामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी यहां आये हैं ॥ ३५ ॥ कार्य करनेमें चतुर अंगदजी लक्ष्मणजीके तीव्र वचनोंसे दीन वदन और भ्रान्तचित्त हो सुग्रीवके निकट जाकर पहले रुमाके दोनों चरणोंकी वंदना करते हुये ॥ ३६ ॥ उग्र तेजस्वी अंगदजीने सुग्रीवजीके दोनों चरण ग्रहण करकै फिर रुमाके चरणोंमें प्रणामकर फिर ताराको प्रणाम कर लक्ष्मणजीके आनेकी वार्त्ता कही ॥ ३७ ॥ वह मदनमोहित मदमत्त वानर सुग्रीव निद्रासे क्लांत-चित्त होनेके कारण अंगदजीके वचन और प्रणामको न जान सका ॥ ३८ ॥ फिर भय मोहित वानरगण लक्ष्मणजीको क्रोधित देखकर उनको प्रसन्न करते २ भय तथा क्रोधसे किलकिला शब्द कर उठे ॥ ३९ ॥ उन वानरलोगोंने लक्ष्म-णजीको देखकर सुग्रीवके निकट जाय उनको जगानेके लिये वज्रतुल्य और महा समुद्रके महातरंगकी समान भयंकर शब्द करना प्रारंभ किया ॥ ४० ॥ उस बडे भारी शब्दसे वानरराज सुग्रीवकी नींद टूटी, उस समय मारे मदके उनके नेत्र अरुण होरहे और माला आदि गहने खस रहेथे वह बहुत व्याकुलचित्तहो जागपडे ॥ ४१ ॥ जब सुग्रीव जागरित होगये तब अंगदजीके मुखसे समस्त वचन सुनकर परामर्श देनेमें चतुर व प्रियदर्शन दो मंत्री सुग्रीवजीके पास आये॥ ४२॥ वह यक्ष और प्रभाव प्रभावशाली चतुर धर्म, और अर्थके विषयमें ऊंच नीच कहनेके निमित्त आये हुये दोनों मंत्री लक्ष्मणजीके आनेके, विषयमें कहने लगे ॥ ४३॥ वह दोनों मंत्री आसन पर बैठेसेवकोंसे उपास्यमान अर्थयुक्त वचनोंसे सुग्रीवको प्रसन्न करकै बोले, कि जिसप्रकार सुरपतिको देवतागण प्रसन्न करते हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन्! आपको राज्य दिलानेवाले वह त्रिलोकीका राज्य करने योग्य महाभाग सत्यप्रतिज्ञ, दोनों भाई श्रीराम लक्ष्मणजी मनुष्यभावको प्राप्त हुये हैं अर्थात् मनुष्य नहीं ईश्वर हैं ॥ ४५ ॥ उन दोनोंमेंसे एक जन लक्ष्मणजी धनुष धारण करकै पुरीके द्वारपर खडे हुए हैं, उनकेही निमित्त वानरगण भीत और कम्पित होकर शब्द कर रहे हैं ॥ ४६ ॥ वह यह श्रीरामचन्द्रजीके भ्राता लक्ष्मणजी कि, जो अपने बडे भाईके वचनकोही सारथि बना और कर्त्तव्य अर्थके निश्चयरूप रथपर श्रीरामचन्द्रजीके वचन मान यहांपर आये हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन्! हे अनघ! यह ताराके पुत्र

अंगदजी उन्हीं लक्ष्मणजीके भेजे हुये तुम्हारे पास अति शीघ्र आये हैं ॥ ४८ ॥ हे वानरपते! वह लक्ष्मणजीही क्रोधसे लाल नेत्र किये मानो अपनी लोचनाग्निसे वानरगणको जलातेही हुये द्वारपर खडे हैं ॥ ४९ ॥ हे राजन्! आप इस समय पुत्र और बान्धवगणोंके सहित शीघ्र जाकर मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनके रोषको शान्त कीजिये ॥ ५० ॥ हे राजन्! धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने जिस प्रकारसे आपका कार्य साधन किया है आप, सत्यनिष्ठ हो सावधानचित्तसे उनकी प्रतिज्ञाका पालन कीजिये ॥ ५१ ॥

इ० श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२.

अंगदजीके वचन सुन उन मंत्रिगणोंके सहित आत्मवान् सुग्रीवजी कोपायमान लक्ष्मणजीको प्रसन्न करनेके लिये आसनसे खडे होगये ॥ १ ॥ मंत्रके विषयमें निष्ठावान् मंत्रकुशल सुग्रीवजी गुरु लघु विचार कर मंत्र जाननेवाले मंत्रियोंसे कुछ न बोले ॥ २ ॥ हमने कोई दुष्ट वचन नहीं कहा, और कोई दुष्ट कार्य नहीं किया; फिर श्रीरामचन्द्रजीके भ्राता लक्ष्मणजी किस निमित्त कुपित हुये हैं! इस बातकी हमें बडी चिंता है ॥ ३ ॥ हम जानते हैं कि हमारे असुहृद्, दोषोंके ढूंढनेवाले शत्रुलोगोंने हमारे दोष निःसन्देह रामानुज लक्ष्मणजीसे कहेहैं ॥ ४ ॥ इस विषयमें यथाविधि और यथाबुद्धि तुम सब लोग विचार करो कि यही बात है, अथवा कुछ और ॥ ५ ॥ हमको श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजीसे कुछ भय नहीं है; परन्तु विना अपराधसे कोपित हुये मित्रसेही भय हुआ करता है ॥ ६ ॥ मित्रताई करना सदाही सरल है परन्तु मित्रताका निवाहनाही बडा कठिन कार्य है क्योंकि चित्तकी अस्थिरतासे हुये अल्प कारणसे प्रीतिमें भेद पड जाता है ॥ ७ ॥ इस निमित्तही हम महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे त्रासित हुये हैं, क्योंकि जो प्रत्युपकार करनेको हम समर्थहैं वह अबतक हमने पूरा नहीं किया ॥ ८ ॥ जब सुग्रीवजीने इस प्रकार कहा, तो मंत्रिगणोंमें श्रेष्ठ हनुमानुजी अपने तर्कसे बोले हुये मंत्रियोंके बीचमें बोले ॥ ९ ॥ हे कपिगणेश्वर! आप जो उत्तम उपकारको नहीं भूलते यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि महात्मा लोगोंका स्वभावही ऐसा होताहै ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रजीने भयको छोडकरके

दूरसेही आपका प्रिय कार्य करनेके लिये इन्द्रतुल्य पराक्रमशाली वालीको मार-डाला ॥ ११ ॥ इसलिये श्रीरामचन्द्रजी प्रेमके हेतुसेही आपके प्रति क्रोधित हुएहैं, इसमें कुछभी संदेह नहींहै, उस प्रेमके कोपके हेतुही उन्होंने इन लक्ष्मीवान् लक्ष्मण-जीको आपके पास भेजाहै ॥ १२ ॥ हे कालके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! आपने भोगके समय मतवाले होकर समयको नहीं जाना, इस समय आप देखिये कि, सीताजीके ढूँढनेका काल सुशोभित शरदृतु आईहै, इसलिये खिलेहुए शतावरीके वृक्षोंसे पृथ्वी शोभायमान होरहीहै ॥ १३ ॥ आकाशमंडलमें ग्रह नक्षत्र सब निर्मल हो-गये, मेघ जहांके तहां बिलाय गये, दिक् सरित्, और समस्त सरोवर प्रसन्न होगयेहैं ॥ १४ ॥ हे कपिश्रेष्ठ! सीताजीके ढूँढनेके निमित्त उद्योग करनेका समय आगया, और उसको आपने अबतक नहीं जाना, आपतो भोगसुखमेंही मतवालेहैं बस इसी कारणसे लक्ष्मणजी यहांपर आये हैं ॥ १५ ॥ हृतभार्या इस लिये अत्यन्त कातर महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके पुरुषान्तर (लक्ष्मणजी) से सुने हुये कठोर वचन आप सहन करें ॥ १६ ॥ आपने अपराध कियाहै, इसलिये हाथ जोडकर लक्ष्मणजीकी प्रसन्नताके सिवाय और किसी कार्यसे हम आपका मंगल कार्य नहीं देखते ॥१७॥ राजकार्यमें नियुक्त मंत्रीलोगोंको उचितहै कि, राजासे अवश्यही हितकर वचन कहैं, इस कारणसेही भय छोडकर हमने यह निश्चित वचन आपसे कहे ॥ १८ ॥ श्री-रामचन्द्रजी क्रोधित हो धनुष चढाकर देव, असुर और गन्धर्वोंके सहित समस्त जगत् अपने वशमें रख सकतेहैं ॥ १९॥ विशेष करके पहला उपकार स्मरण किये हुये कृतज्ञ पुरुष जिनको फिरभी प्रसन्न करना होगा, सो ऐसे पुरुषोंपर क्रोध करना उचित नहीं है ॥ २० ॥ हे राजन्! आप पुत्र और इष्ट मित्रोंके सहित मस्तक झुका प्रणामकरके अपनी प्रतिज्ञामें टिकिये कि जैसे स्त्रीका कल्याण पतिके आधीनमें रहनेहीसे होताहै ॥ २१ ॥ हे कपीन्द्र! श्रीराम और उनके भाई श्रीलक्ष्मणजीकी आज्ञाको मनके द्वाराभी उल्लंघन करना आपका कर्त्तव्य नहींहै, और आपका मन वालिवधके हेतु इन्द्र तुल्य पराक्रम शाली श्रीरामचन्द्रजीके अमानुषिक बलको तो जानताहीहै ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०किष्किन्धाकांडे भाषायां द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३.

हनुमानजीने तो इस प्रकारसे सुग्रीवको समझाया बुझाया, तब परवीरविनाशी लक्ष्मणजी अंगदजीके द्वारा सुग्रीवकी आज्ञाको प्राप्तकर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पालन करनेके हेतु मनोहर गुहामें बसी किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ ॥ १ ॥ द्वारपर खडे हुए महाबलवान् समस्त वानर लक्ष्मणजीको देख हाथ जोडकर खडे होगये ॥ २ ॥ दशरथकुमार लक्ष्मणजीको क्रोधसे लम्बे २ श्वास लेते हुए देखकर कपिगण त्रासित होगये और इनको रोक न सके ॥ ३ ॥ श्रीमान् लक्ष्मणजीने वह दिव्यरत्नमयी दिव्य रत्नसे बनी, फूले हुए वनवाली रमणीक गुफा देखी ॥ ४ ॥ वह बडे २ धवरहरे और अटा अटारियोंसे अनेक विधिके रत्नोंसे, और सर्वदा उत्पन्न होते हुए वृक्षोंके समूहसे परिशोभित होतीथी ॥ ५ ॥ और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, वस्त्राभूषण पहरे, माला व अम्बरधारी प्रियदर्शन देव और गन्धर्वपुत्र वानरगणोंसे शोभायमानथी ॥ ६ ॥ चन्दन अगर और कमल आदि फूलोंकी सुगन्धिसे सुगन्धित, उसके मार्गोंमें मदिरा और मधु पीनेवाले लोग घूम रहेथे ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजीने उस स्थानमें विन्ध्याचल और मेरु पर्वतकी तुल्य बहुत सारे भूमि धवरहरे और विमल जलवाली नदियोंके समूह देखे ॥ ८ ॥ आगे चले तो अंगदजीका रमणीक गृह देख और मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज, शरभ ॥ ९ ॥ विन्दुमाली, सम्पाति, सूर्याक्ष, हनुमान, वीरबाहु, सुबाहु, महात्मा नल, ॥ १० ॥ कुमुद, सुषेण, तार, जाम्बवान, दधिवक्र, नील, सुपाटल, सुनेत्र, ॥ ११ ॥ इन सब मुख्य २ वानरोंके अति विचित्र दृढ गृह महात्मा लक्ष्मणजीने राजमार्गपर चलते हुये देखे ॥ १२ ॥ यह सब गृह श्वेतवर्णके बादरकी समान उजले सुगन्धित चन्दनादि वस्तु, और हारोंसे युक्त अति धन धान्यसे भरेपुरे व स्त्रीरूपी रत्नोंसे शोभायमानथे ॥ १३ ॥ इन सब गृहोंके मध्यमें कुछेक अरुण व श्वेतरंगवाले पर्वतसे घिरे जानेके कारण मूढ व्यक्तिके प्रवेश करनेके अयोग्य इन्द्रभवनकी सदृश सुग्रीवजीके गृहको लक्ष्मणजीने देखा ॥ १४ ॥ कैलासके शिखरकी समान श्वेतवर्ण धवरहरे और सर्वकालमें फल उत्पन्नकारी पुष्पित वृक्षोंसे परिशोभित ॥ १५ ॥ व इनके अतिरिक्त औरभी इन्द्रके दिये धनादि और श्याम मेघघटाकी समान कल्पवृक्षादिसे शोभितथा इसकारण कि, इन तरुवरोंकी छाया बडी शीतलकारिणी होतीथी ॥ १६ ॥ उस घरके द्वारपर बलवान् हाथमें

अस्त्र शस्त्र लिये हुये वानरगण खडेथे, उसका गुम्बज दिव्यमालासे ढका हुआ और तपाये हुये सुवर्णसे बना ॥ १७ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् महा मेघमें प्रवेश करतेहैं वैसेही महाबलवान् लक्ष्मणजी सुग्रीवके मनोहर गृहमें प्रवेश करते हुये, और किसी वानरने उनको नहीं रोका ॥ १८ ॥ धर्मात्मा लक्ष्मणजी सुग्रीवकी सवारियें व आसनसे युक्त सात फाटक नांघकर शयन गृहके अंतःपुरमें पहुँचे ॥ १९ ॥ उस अंतःपुरके अनेक स्थानोंमें महा मूल्यवान विस्तरोंसे विशिष्ट बहुत सारे उत्तम २ आसन और सुवर्ण चांदीसे बनेहुये अनेक पर्यंकभी पडेथे ॥ २० ॥ उस अंतःपुरमें प्रवेश करतेही लक्ष्मणजीने बराबर अक्षरताला समताल सहित वीणा आदि बाजोंसे उत्पन्न हुआ मधुर स्वर श्रवण किया ॥२१॥ महाबलवान् लक्ष्मणजी सुग्रीवके गृहमें रूप यौवन सम्पन्न होनेसे गर्वित अनेक आकारवाली बहुत स्त्रीरत्नोंको देखते हुये ॥ २२ ॥ उनमें कोई २ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई, उत्तम माला, व उत्तम भूषण वसन धारण किये हुई, माला गूंथनेमें लग रहींथीं ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीने सुग्रीवजीके सुख भोगमें परितृप्त, व्यग्रतारहित और अत्युत्तम भूषणधारी नौकर चाकरोंको देखा ॥ २४ ॥ फिर श्रीमान् सुमित्राकुमार लक्ष्मणजी नूपुर व कौंधनीके घुंघरुओंकी ध्वनि सुनकर व औरभी गहने आदिकोंके शब्द सुन परस्त्रीदर्शनसे लज्जित हुये ॥ २५ ॥ वह गहनोंका शब्द श्रवण करके रोषके वेगसे अत्यन्त कुपित हुये और शब्दसे दशोंदिशा पूरित करते हुये प्रत्यंचाकी टंकार करनेलगे जिससे कि, स्त्रियोंके भूषणोंका शब्द बंदहो ॥ २६ ॥ उस रनवासमें प्रवेश करनेके हेतु आचारको आगे किये हुये लक्ष्मणजी, श्रीरामचंद्रजीके कार्यमें सुग्रीवकी अप्रवृत्तिके हेतु कोपयुक्त होकर आगे रनवासमें न बढकर एकान्तस्थानमें खडे रहे ॥२७॥ कपिराज सुग्रीवजी उस धनुषकी टंकारको श्रवणकर त्रासितहो लक्ष्मणजीका आगमन जान अपने श्रेष्ठ आसनसे उठ खडे हुये ॥२८॥ उन्होंने विचारा कि अंगदजीने जैसे पहले हमें इनके आगमनको बतायाथा सो इस समय भ्रातावत्सल लक्ष्मणजीका आगमन हमने भली भांति जाना ॥ २९ ॥ अंगदजी करके कहे हुये सुग्रीवजी, धनुषकी टंकारके शब्दसे लक्ष्मणजीका आगमन जान विवर्णमुख होगये ॥ ३० ॥ फिर वानरश्रेष्ठ व्यग्रता रहित सुग्रीवजी त्रासके मारे चंचलचित्त हो प्रियदर्शनवाली तारासे कहने लगे ॥३१॥ हे शुभे ! श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी स्वभावसे मृदुलचित्तहैं सो इसका क्या कारणहै कि, यह क्रोधित होकर

यहां आयेहैं सो तुम कहो ? ॥ ३२ ॥ हे अनिन्दिते ! कुमारके रोषका कौन कारण दृष्टि आताहै ? क्योंकि नरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी कभी अकारण क्रोध नहीं करते ॥ ३३ ॥ हमने यदि उन लोगोंका कोई अपराध किया हो और यदि तुम समझती हो; तो उसको शीघ्र बुद्धिसे विचार कर हमसे कहो ॥ ३४ ॥ अथवा हे भामिनि ! तुम स्वयं ही उनके दर्शन कर और समझाने बुझानेका वचन कह उन्हें प्रसन्न करो ॥ ३५ ॥ विशुद्धात्मा लक्ष्मणजी तुमको देखतेही क्रोध छोड देंगे, क्योंकि महात्मा लोग स्त्रियोंके निकट दारुण क्रोध नहीं करते हैं ॥ ३६ ॥ जब तुम समझा बुझाकर उनको प्रसन्न करलोगी, तिसके पीछे हम कमलदल समान नेत्रवाले शत्रुनाशी लक्ष्मणजीके दर्शन करेंगे ॥ ३७ ॥ तब महामतवाली चाल चलती, मद पान करनेसे विह्वल नेत्र हुई, सूक्ष्म मध्यभागके कारण नमित देह होती और श्रेष्ठ लक्षणवाली तारा सुवर्णकी लम्बी क्षुद्रघंटिका पहरे लक्ष्मणजीके निकट गयी ॥ ३८ ॥ मनुजराजकुमार महात्मा लक्ष्मणजी वानरराजकी स्त्री ताराको देखकर स्त्रीकी निकटताके हेतु क्रोध रहित हो नीचे मुखकर खडे होगये ॥ ३९ ॥ तारा मदिरापान करनेके कारण मतवाली होरहीथी इस कारण लज्जाहीन होकर राजपुत्रकी प्रसन्नताकी दृष्टिके हेतु महाअर्थयुक्त समझाने बुझानेके वचन प्रेमसहित ढिठाईसे कहने लगी ॥ ४० ॥ हे राजकुमार ! आपके क्रोधका क्या कारण है ? कौन पुरुष आपकी आज्ञामें नहीं टिका हुआ है ? कौन जन सूखे वृक्षोंको जलानेवाली अग्निमें शंका रहित चित्त होकर गिराहै ॥ ४१ ॥ लक्ष्मणजी ताराके प्रेम सहित सान्त्वना वाक्य सुनकर प्रणयके दिखानेवाले, निःशंकभावसे बोले ॥ ४२ ॥ तुम्हारा पति धर्म और अर्थका लोप करके वेगही कामासक्त होरहा है; सो तुम उसके हितकारी कार्यमें लगी रहकर क्या इस बातको नहीं जानती हो ॥ ४३ ॥ वह राज्यकी रक्षा करनेके लिये चिंता नहीं करता; और हम लोग जो शोकसे व्याकुल होरहे हैं इसकोभी नहीं विचारता उसने राज्यकी रक्षा करनेके लिये एक साधारण सभा बनारक्खी है और आप केवल काम भोगमेंही लगा रहता है ॥ ४४ ॥ कपीश्वरने हमारे कार्य करनेके लिये चारमासकी अवधि बांधकर प्रतिज्ञा की; सो वह उस प्रतिज्ञाको तोड व इस अवधिको नांघकरभी कामके विहारमें ऐसा आसक्त हो रहा है; कि अपनी प्रतिज्ञा व हमारे कार्यको कुछभी नहीं जानता ॥ ४५ ॥ धर्म और अर्थकी सिद्धके लिये मधुमदादि पानकरना ठीक नहीं है, क्योंकि इसको

पानकरनेके हेतु धर्म और अर्थ दोनोंका नाश होजाता है ॥ ४६ ॥ उपकार करनेवालेके साथ प्रत्युपकार न करनेसे धर्म लोप होजाता है; और जब गुणवान् मित्रका कार्य नाशको प्राप्त हो जाता है तब कृतज्ञके अर्थकाभी लोप होजाता है॥ ४७॥ मित्रका कार्य साधन करना और सत्य धर्म परायणता इन दोनोंको छोड देनेसे धर्मकी रक्षा नहीं होती ॥ ४८ ॥ हे तारे ! तुम कार्यके निश्चयको भली भांतिसे जानती हो, सो इस उपस्थित कार्यके लिये जो कुछ करना उचित हो, वही किया चाहिये, बस यही बात तुम सुग्रीवसे जाकर कहो ॥ ४९ ॥ तारा, लक्ष्मणजीके वह धर्मार्थसंबंधयुक्त मधुर वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके उल्लंघन होनेके हेतु विश्वासयुक्त वचन फिर उनसे बोली ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्रकुमार ! मित्रके योग्य कार्य तो अभी नहीं बीता है, इस कारणसे आपके कोपका समय अभी नहीं आपहुँचा है और अपनेके ऊपर आपको क्रोध करना कर्त्तव्यभी नहीं है । हे वीर ! आपका प्रयोजन साधन करनेकी इच्छा किये अपने मित्रका कोई अपराधभी होजाय तोभी आप उसे सहलेनेके योग्यहैं ॥ ५१ ॥ हे कुमार ! आप गुणवान् हैं इसलिये हीन पुरुषके ऊपर आपका क्रोध करना अनुचित है आप सरीखे पुरुषगण सतोगुणसे क्रोधको वश किये हुये तपस्यापर आधार रखते हैं; इसलिये किस प्रकारसे आप क्रोधके वशमें हो सकते हैं ॥ ५२ ॥ उस वानरबन्धुके ऊपर क्रोधका कारण हम जानतीहैं, और हम यहभी जान चुकीहैं कि सीताके ढूंढनेका समय आगयाहै; और आपने हम लोगोंका जो कार्य कियाहै; और आपके प्रति हम लोगोंका जो कर्तव्य है उसकोभी हम जानतीहैं ॥ ५३ ॥ अबतक आपके क्रोध करनेका कारण नहीं हुआहै; यह भी हम जानती हैं; हे नरश्रेष्ठ ! कामदेवका सहन करनेके अयोग्य जो बल है, उसको भी हम जानती हैं सुग्रीव् जो स्त्रीजनोंके प्रति काममें लगे हुये व और कार्योंके करनेमें अनुरागी नहीं है यह भी ज्ञात है ॥ ५४ ॥ आपकी बुद्धि अबतक कामतंत्रके रसको नहीं जानती क्योंकि "दिनादशके अलवेले ललाहो" इसी कारणसे आप क्रोधके वश हुये हैं काममें आसक्त हुये मनुष्यगण देश काल और अर्थ किसीकी परवाह नहीं करते ॥ ५५ ॥ सो हे परवीरनाशक ! आपके भ्राता हमारे निकट तुम्हारे डरसे छिपे हुयेहैं इसलिये कामसे आसक्त और काम के वश होनेसे लज्जाहीन वानरवंशोंके नाथका अपराध आप क्षमा कर दें ॥ ५६ ॥ जिनका चित्त धर्म और तपस्या करनेमें ही केवल लगा रहता है;

ऐसे महर्षिगणभी मोहित होकर कामके वश हो जाते हैं । फिर सुग्रीव तो वानर जाति तिसपर स्वभावसे ही चंचलचित्त और राजा इसलिये इसका काम भोगमें आसक्त होना कुछ आश्चर्यकी बात नहींहै ॥ ५७ ॥ मद भरनेके कारण आलस्य युक्त हुई आँखवाली वानरी तारा अतुल बुद्धिमान् लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर फिर खेद पूर्वक अपने पतिका हित करनेवाले यह वचन बोली ॥ ५८ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! यद्यपि सुग्रीव कामासक्त हो रहाहै तौभी उसने आपका कार्य साधन करनेके लिये पहलेहीसे आज्ञा देदीहै ॥ ५९ ॥ विविध पर्वतवासी कामरूपी सहस्र २ करोड २ महावीर्यवान् वानरगण यहाँपर आय चुके हैं ॥ ६० ॥ हे महाबाहो ! आपने अंतःपुरमें प्रवेश न करकै सदाचारकी रक्षा की है अब आप इस समय रनवासमें प्रवेश करिये क्योंकि छल रहित मित्रभावसे मित्रकी स्त्री देखनेमें कभी अधर्म नहीं होता ॥ ६१ ॥ शत्रुनाशक महाबाहु लक्ष्मणजी ताराकी अनुमति व शीघ्रता पाकर अंतःपुरमें प्रवेश करते हुये ॥ ६२ ॥ लक्ष्मणजीने वहां प्रवेश करकै महामूल्यका बिछौना बिछेहुये कांचनके बने आसनपर सुग्रीवको बैठे देखा ॥ ६३ ॥ दिव्य भूषण पहरे अति दिव्य रूपवान् अति यशस्वी दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये इन्द्रकी समान दुर्जय ॥६४॥ दिव्यमाला व दिव्याभरण इत्यादि पहरे स्त्रियों करकै चारोंओरसे सेवित, कपिराज सुग्रीवको लक्ष्मणजीने देखा तौ उनके लाल नेत्र अन्तक कालकी समान होगये ॥ ६५ ॥ श्रेष्ठ हेम वर्ण, विशाल नेत्र, आसन पर बैठे वीरवर सुग्रीवने रुमाको चिपटाये महावीर्यवान् विशाल नेत्रवाले लक्ष्मणजीको देखा ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४.

उन अवारित क्रोध किये पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीको अन्तःपुरमें आये हुये देख सुग्रीवजी अत्यन्त व्यथित हुये ॥१॥ तेजसे देदीप्यमान क्रोधान्वित अपने भाईकी दुःखानलसे सन्तापित दशरथकुमार लक्ष्मणजीको लम्बे २ श्वास लेते हुये देखकर ॥ २ ॥ कपिश्रेष्ठ सुग्रीवजी अपना स्वर्णासन त्यागकर इन्द्रकी अलंकृत ध्वजाके समान उठ खडे हुये ॥ ३ ॥ सुग्रीवजीके उठनेपर रुमा इत्यादि सब स्त्रियें खडी हो गईं; जिसप्रकार गगनमंडलमें चन्द्रमाके निकल आनेपर तारागण उसके चारों ओर

शोभित होते हैं ॥ ४ ॥ श्रीमान् अरुणनेत्र सुग्रीवजी हाथ जोड महान् कल्पवृक्षकी समान खडे रहगये ॥ ५ ॥ क्रोधित हुए लक्ष्मणजी नक्षत्रोंके बीचमें टिके हुये चन्द्रमाकी समान रुमाके सहित नारियोंके बीचमें खडे हुए सुग्रीवसे बोले ॥ ६ ॥ श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न, अगाध बुद्धि सम्पन्न, जितेंद्रिय, दयावान्, कृतज्ञ और सत्यवादी राजाही लोकमें पूजे जाते हैं ॥ ७ ॥ जो राजा अधर्ममें टिका हुआ उपकारी मित्रकी प्रतिज्ञा पूरण नहीं करताहै उससे अधिक निठुर पुरुष और कौनहै ॥ ८ ॥ पुरुषगण एक अश्वके लिये मिथ्या कहनेसे; सौ घोडोंके मारनेका दोष प्राप्त करतेहैं; और एक गौके लिये मिथ्या कहनेसे सहस्र गोवधके दोषी, और पुरुषके विषयमें मिथ्या कहनेसे अपने और स्वजनोंके विनाशका दोष प्राप्त करतेहैं ॥ ९ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! प्रथम मित्रसे उपकार प्राप्त होकर जो पुरुष मित्रगणोंका प्रत्युपकार नहीं करते, वह पुरुष कृतघ्न और सर्वजीवोंसे मार डालनेके योग्य होतेहैं ॥ १० ॥ हे वानर ! सर्वलोकनमस्कृत ब्रह्माजीने कृतघ्न पुरुषको देख क्रोधित होकर पहले यह श्लोक गायाथा कि ॥ ११ ॥ गौके मारनेवाले, मदिरा पान करनेवाले, चोर; व्रतको तोडनेवाले इन सबका उद्धार सज्जनोंने कहाहै, परन्तु कृतघ्नपुरुषका उद्धार किसी प्रकारसे नहीं हो सकता ॥ १२ ॥ हे वानर ! तुम अनार्य, कृतघ्न और मिथ्यावादी बने जातेहो क्योंकि तुमने पहले कृतार्थ होकर उसका प्रतिकार नहीं किया ॥ १३ ॥ हे वानर ! जिससे कि रामद्वारा तुम्हारा कार्य सिद्ध होगयाहै इस कारणसे अब तुमको सीताजीके ढूँढनेमें यत्न करना अवश्यकीयहै ॥ १४ ॥ तुम इस समय मिथ्यावादी होकर ग्रामीण भोगसुखमें आसक्त हो रहेहो; महाराज श्रीरामचंद्रजी दुष्टस्वभाववाले मेडककी बोली बोलते सर्पकी समान तुमको नहीं जानतेथे जैसे सर्पने मेडकको पीछेसे पकडा हो और वह बोले तौ लोग उसको सर्प नजानकर मेडक समझतेहैं ॥ १५ ॥ करुणामय महाभाग महात्मा रामचंद्रजीने वानरोंका नीच, पाप करनेवाले तुमको वानरोंमें राज्य दियाहै ॥ १६ ॥ यदि तुम महात्मा श्रीरामचंद्रजीका किया हुआ उपकार न मानोगे तो शीघ्रही उनके बाणसे मारे जाकर वालिको देखोगे ॥ १७ ॥ हे सुग्रीव ! जिस बाणसे वाली मारागयाहै, वही बाण अब श्रीरामचंद्रजीके हाथमें है; इसलिये तुम प्रतिज्ञाका पालन करके वालिके मार्गका अनुसरण न करो ॥ १८ ॥ तुम श्रीरामचंद्रजीके

धनुषसे छूटे हुये वज्र तुल्य बाणोंका दर्शन न करनेसे सुखी होकर भोग सुख अनुभव करसकोगे; इसलिये श्रीरामचंद्रजीका कार्य तुम अग्रहण न करो ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा०आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५.

अपने तेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणजीने जब इस प्रकारसे कहा तब चंद्रमुखी तारा लक्ष्मणजीसे बोली ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण ! इन सुग्रीवसे कर्कश वचन कहना आपको उचित नहीं है, यह कपीश्वर आपके मुखसे इस प्रकारके वचन श्रवण करनेके योग्य नहीं हैं॥ २॥ हे वीर ! यह सुग्रीव, अकृतज्ञ, शठ, दारुण मिथ्यावादी और छलकारी नहीं हैं॥ ३॥ श्रीरामचंद्रजीने रणस्थलमें जो उपकार किया है; वह औरसे होनेके अयोग्यहै सो यह वानर, उसको भूले नहीं हैं ॥ ४ ॥ हे परवीरनाशी ! रामचन्द्रजीके प्रसादसे सुग्रीवजीने कीर्ति, स्थिर राज्य, रुमा और हमको प्राप्त किया है ॥ ५ ॥ बहुत दिन दुःख भोगनेके उपरान्त, अति उत्तम सुख पाकर विश्वामित्रजीकी समान इन्होंने आये हुए समयको न जाना ॥ ६ ॥ इन माननीय धर्मात्मा महर्षि विश्वामित्रजीने घृताची अप्सरापर अनुरागीहोकर दशवर्ष बीतते हुए नहीं जानेथे एकही दिन जाना ॥ ७ ॥ जब कि कालके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी धर्मात्मा विश्वामित्रजीने प्राप्त कालको नहीं जाना तब स्वभावसेही नीच जातिकी तो बातही क्याहै ? ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मणजी ! देहधर्ममें टिके हुए, थके हुए कामभोगसे अतृप्त जनका अपराध आप श्रीरामचन्द्रजीसे क्षमा कराइये ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! आप साधारण पुरुषकी समान विना निश्चित अर्थ जाने हुए सहसा क्रोधके वश न होवें ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपकी समान सत्वगुणविशिष्ट पुरुष विना विचारे सहसा क्रोधके वश नहीं होजाते ॥ ११ ॥ हे धर्मके जाननेवाले ! हम नम्रता सहित सुग्रीवकेलिये आपको प्रसन्न कराती हैं; सो आप इस उत्पन्नहुए महाक्रोधको छोड दीजिये ॥ १२ ॥ हमको जानपडताहै कि, यह सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके लिये रुमाको, हमको, अंगदको, राज्य, धन, धान्य और पशु इत्यादि समस्तकोही परित्याग करदेंगे ॥ १३ ॥ सुग्रीव उस अधम राक्षसको मारकर रोहिणीके सहित चन्द्रमाकी समान सीताजीसे श्रीरामचन्द्रजीको मिलादेवेंगे ॥ १४ ॥ लंकामें रावणके पास इस समय सौ

हजार करोड छत्तीस अयुत और सौ हजार अर्थात् दस खरव चार लाख साठ हजार राक्षसोंकी सेना है ॥ १५ ॥ उन समस्त दुर्द्धर्ष कामरूपी सेनाको विना मार डाले सीताके हरण करनेवाले रावणका वध न होसकैगा ॥ १६ ॥ हे लक्ष्मणजी ! सुग्रीव विना सहायके प्राप्त हुये उस सेना और विशेष करके उस क्रूरकर्म करनेवाले रावणको मारनेमें समर्थ न होंगे ॥ १७ ॥ उन देश कालके जाननेवाले वालिने हमसे यह सब वार्ता कहीथी, सो हमने जैसी उनसे सुनी तैसेही कहती हैं; और उसके बलको हम जानती नहीं हैं ॥ १८ ॥ आपका सहाय करनेके निमित्त सेना बुलानेके लिये प्रधान २ वानरगण भेजे गये हैं; वह लोग युद्धमें कुशल बहुतसे वीर्यवान् वानरगणोंको दिशा विदिशाओंसे लेआवेंगे ॥ १९ ॥ यह कपीश्वर उन सब महाबलवान वानरगणोंकी राह देखरहेहैं; उन सबके विनाआये श्रीरामचन्द्रजीकी कार्यसिद्धिके लिये यह नहीं निकलतेथे ॥ २० ॥ सुग्रीवजीने पहले जिस प्रकारकी सुव्यवस्था कीहै "कि एक पक्षमें जो वानर न आया, वह मारडाला जायगा" सो इससे अब समस्त महाबलवान् वानरसेना आयाही चाहती है ॥ २१ ॥ हे शत्रुनाशी ! आप क्रोध परित्यागकरें; अतिशीघ्र आज ही हजार २ करोड २ ऋक्ष, सौ करोड गोपुच्छ और सैकडों करोड तेजस्वी वानरोंकी सेना आवैगी ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! आपका क्रोधसे दीप्तिमान मुख और अरुणारे दोनों नेत्र देखकर वानरराजकी सब स्त्रियां शान्तिको नहीं प्राप्त कर सकतीं और सब पहलेसेही शंकित होरही हैं ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ३६.

जब ताराने विनीत भावसे इस प्रकारके धर्म संगत वचन कहे तब लक्ष्मणजी मृदुभावको धारणकर उनके वचन ग्रहण करते हुए ॥ १ ॥ जब लक्ष्मणजीने ताराके वचन मान क्रोध त्याग करदिया, तब सुग्रीवजीनेभी गीले वस्त्रकी समान बडा भारी भय त्याग दिया, जो कि उन्हें लक्ष्मणजीसे प्राप्त हुआथा ॥ २ ॥ फिर वानरराज सुग्रीवजीने कंठमें पडी मादक गुणवाली अपनी विचित्रमाला तोड डाली-कि जिसके तोडतेही मद रहित होगये ॥ ३ ॥ तदनन्तर वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी महाबलवान् लक्ष्मणजीको हर्षित कराते हुए विनीत वाणीसे कहने लगे ॥ ४ ॥ हे सुमित्रानंदन ! हमने, स्त्री, कीर्ति, वानरोंका राज्य जोकि छुटगयाथा, श्रीरा-

मचन्द्रजीके प्रसादसे इन सबको फिर प्राप्त किया ॥ ५ ॥ हे राजकुमार ! कौन पुरुष सुकर्मद्वारा विख्यात देव स्वरूप उन श्रीरामचंद्रजीके उपकारके किसी अंशकाभी बदला देनेमें समर्थ होगा ? ॥ ६ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी हमारी सहायता केवल नाममात्रसे प्राप्तकर अपने तेजसेही रावणको संहार सीताजीको प्राप्त होवेंगे ॥७॥ जिन्होंने केवल एक बाणसेही सात तालके वृक्ष व पर्वत और पृथ्वीको विदीर्ण करदिया; उनको किसीकी सहायताका क्या प्रयोजनहै ? ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! जिनके धनुषकी टंकारके शब्दसे सशैल पृथ्वी कम्पित होजातीहै; उनको किसीकी सहायका क्या प्रयोजनहै ? ॥ ९ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! नरवर रामचन्द्रजी जब अपने वैरी रावणका वध करनेके लिये गमन करेंगे तब हमभी उनके पीछे २ चले जाँयगे ॥ १० ॥ हम उनके दासहैं; सो विश्वास और प्रेमके हेतु यदि कोई अपराध कियाभी हो तब इस आज्ञामें रहनेवालेका अपराध क्षमा करनाचाहिये क्योंकि जिस दाससे अपराध नहीं होता ऐसा दास तो कहीं मिलताही नहीं ॥ ११ ॥ महात्मा सुग्रीवजीनें जब यह वचन कहे; तब उनको सुनकर लक्ष्मणजी प्रसन्न हुये; और स्नेह सहित उनसे बोले ॥ १२ ॥ हे वानरनाथ ! हमारे भ्राता तुमको विनीत और सहाय प्राप्त होकर सर्वथा सनाथ हुएहैं ॥ १३ ॥ हे सुग्रीव ! जिस प्रकारका तुम्हारा प्रभाव और सरल भावहै; इससे तुम कपिराज लक्ष्मीको भोगनेके लिये बहुतही योग्यहो इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तुमको सहाय पाकर प्रतापवान् हुएहैं इससे वह निःसंदेह शीघ्रही शत्रुका नाश करनेमें समर्थ होंगे ॥ १५ ॥ हे सुग्रीव ! तुम धर्मज्ञ, कृतज्ञ हो और संग्राममें विमुख होनेवाले नहींहो, सो इस प्रकारके तुम्हारे वचन ठीकहीहैं ॥ १६ ॥ हमारे बडे भाई श्रीरामचंद्रजीके और तुम्हारे सिवाय कौन विद्वान् पुरुष ऐसे वचन कहनेको समर्थ होसकताहै ? ॥ १७ ॥ हे कपिवर ! क्या विक्रममें, क्या बलमें सब भांतिसे रामचंद्रजीको समानही सहाय भाग्यसेही प्राप्त हुईहै ॥१८॥ परन्तु हेवीर ! तुम हमारे साथ शीघ्रही इस स्थानसे चलकर; स्त्री हरजानेके दुःखसे महाकातर श्रीरामचंद्रजीको सन्तोष प्राप्त कराओ॥१९॥ हे सखे ! शोकसे व्याकुल श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर, हमने जो कुछ कठोर वचन कहेहैं वह तुम क्षमा करो॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मीकीये आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां षट्त्रिंशःसर्गः॥ ३६॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७.

सुग्रीव महात्मा लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहे जाकर एक ओर खडे हुये हनुमान-जीसे बोले ॥ १ ॥ महेन्द्राचल, हिमालय और कैलास पर्वतके शिखरपर और मन्दराचल पाण्डु शिखर; व पंच शैलपर जो वानर रहतेहों ॥ २ ॥ पश्चिमकी ओर तरुण सूर्य तुल्य वर्ण वाले नित्य दीप्यमान समुद्रके अन्तवाले पर्वतोंपर जो टिक-रहेहों ॥ ३ ॥ सन्ध्याकालमें उदय हुये मेघकी समान उदयाचल और अस्ताचल और पद्माचलपर जो भयंकर आकारवाले वानरगण वास करतेहैं ॥ ४ ॥ और अंजन पर्वत परके रहनेवाले अंजन वर्णके मेघकी तुल्य गजेन्द्र तुल्य बलशाली जो वानर रहतेहैं ॥ ५ ॥ और महाशैलकी गुहामें रहनेवाले कनकसमान वर्णवाले वानरसमूह और मेरुपर्वतके पार्श्वमें रहनेवाले; और धूम्रागिरिपर रहनेवाले कपि वृन्द ॥ ६ ॥ और महारुण पर्वतके रहनेवाले, तरुण सूर्यकी समान प्रभावाले मधुपान कारी; भयंकर विक्रम करनेवाले वानरसमूह ॥७॥ और सुगन्धियुक्त सुरम्य वनमें और तपस्वी गणोंके आश्रमवाले मनोहर बडे २ सब ओरके, बनोंमें जो वानर वसतेहों ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहें; बरन् पृथ्वीपर जितने वानर वसतेहों तुम उन सबको, शीघ्र चलनेवाले, सामदानादिकी विधि जाननेवाले, वानरोंके द्वारा शीघ्रही इस स्थानपर बुलालो ॥ ९ ॥ यद्यपि हम जानतेहैं कि, प्रथम वानरोंको बुलानेके लिये महावेगवान वानरगण भेजे गयेहैं; तथापि उनको शीघ्रता करानेके लिये और २ मुख्य २ वानरोंको भेजो ॥१०॥ जो २ वानर कामभोगमें आसक्त और बडे आलसीहैं उन सबको शीघ्रही यहांपर लेआओ ॥ ११ ॥ हमारी आज्ञासे जो वानरलोग दशदिनके बीचमें यहांपर नहीं आजाँयगे; हम उन राजाज्ञाके न मान-नेवाले दुरात्मावानरोंको मारडालेंगे ॥ १२ ॥ जो कपिश्रेष्ठ हमारी आज्ञामें टिके हुये हैं वह सब सहस्र २ कोटि २ वानर हमारी आज्ञासे अभी चले जांय विलंब न करें ॥ १३ ॥ हमारी आज्ञाका प्रतिपालन करनेके हेतु घोररूप मेघ और पर्वतोंकी समान वानर श्रेष्ठगण मानो आकाशमंडलको छायलेते हुये उन वानरोंको शीघ्रता करानेके लिये यहांसे जांय ॥ १४ ॥ हमारी आज्ञा प्रतिपालन करनेके लिये समस्त वानरगण शीघ्रतासे वेगभरी चाल चलकर समस्त वानरोंको लेआवें ॥ १५ ॥ पवनकुमार हनुमानजीने सुग्रीवजीके यह वचन सुनकर सब दिशाओंमें विकराल वानर भेजदिये ॥ १६ ॥ कपिनाथके भेजे हुये

वानरगण पक्षी और नक्षत्रोंके मार्गका अवलंबन करके आकाशस्थलमें उसी क्षण गमन करने लगे ॥ १७ ॥ बडे २ मुख्य वानरलोग समस्त वानरोंको श्रीरामचंद्रजीका कार्य साधन करनेके हेतु समुद्र, वन, और सरोवरोंपर भेजने लगे ॥ १८॥ दंडआदि देनेमें मृत्युपतितुल्य वानरराज सुग्रीवकी आज्ञा श्रवण कर सब वानर शंकितहो प्रस्थान करते हुए ॥ १९ ॥ तिसके पीछे उस अंजनगिरिसे तीन करोड महा बलवान् वानर आयकर श्रीरामचंद्रजीके निकट गये ॥ २० ॥ और जिस पर्वतपर सूर्य नारायण अस्त होजातेहैं; उस स्थानके रहनेवाले तपाये हुए सुवर्णकी समान वर्णयुक्त दश करोड वानर आये ॥ २१ ॥ कैलास पर्वतके शिखरोंपरसे, सिंह केशर तुल्यवर्ण वाले हजार करोड वानर आपहुँचे ॥ २२ ॥ हिमालय पर्वत पर रहने वाले फल मूल भक्षण कारी करोड हजार वानर किष्किन्धामें आये ॥ २३ ॥ अंगार तुल्य वर्ण युक्त विकटाकार भयंकर कर्मकारी कोटि सहस्र वानर विन्ध्याचल पर्वतसे शीघ्र २ आगमन करनेलगे ॥२४॥ क्षीरसमुद्रकी वेला भूमिमें टिके तमाल वनवासी नारियल खानेवाले असंख्य वानरगण आने लगे ॥ २५ ॥ वन गुफा, और नदियोंके समूहसे महा बलवान् वानरी सेना, मानों सूर्य नारायणको पानही करती हुईसी आने लगी ॥ २६ ॥ हनुमानजीके भेजे हुए जो समस्त वानरगण कपिसेनाको शीघ्रता करानेके लिये गयेथे, उन्होंने हिमालय पर्वतपर महेश्वर यज्ञवाट स्थित भगवद्धाम महावृक्षके दर्शन किये ॥ २७ ॥ पहले उस महा पर्वतपर समस्त देवताओंका मन संतुष्ट करनेवाला महेश्वर दैवत मनोहर, अश्वमेध यज्ञ हुआथा ॥ २८ ॥ तिस यज्ञमें बहुत सारे अन्नादिकके पडनेसे उत्पन्न हुए अमृततुल्य स्वादुयुक्त फल मूल वानरगणोंने उस स्थानपर देखे ॥ २९ ॥ जो पुरुष उस अन्नसे उत्पन्न हुए उन फल मूलोंको भक्षण करै तो वह एक मासतक आहार न करकै भी तृप्तही रहताहै ॥ ३० ॥ फल मूल भक्षण करनेवाले उन प्रधान २ वान्रोंने वह सब दिव्य फल मूल लिये और अनेक प्रकारकी ओषधियें भी जो वहांपर लगी हुईथीं ग्रहणकी ॥ ३१ ॥ कपिगण सुग्रीवको संतोषित करनेके लिये उस यज्ञस्थानसे सुगन्धिवान और मनोहर फूलभी लेते आये॥ ३२॥ वह समस्त कपिश्रेष्ठ पृथ्वीके समस्त वानरोंको शीघ्रतासे लेकर सब यूथोंके आगे आने लगे ॥ ३३ ॥ वह शीघ्रगामीवानरोंके झुण्ड मुहूर्त मध्यमें किष्किन्धामें जहां वजीथे आय पहुँचे ॥ ३४ ॥ उन्होंने वह समस्त ओषधियें और मूल फल

जोकि यज्ञभूमिसे तोड लायेथे, सुग्रीवको देकर कहा ॥ ३५ ॥ महाराज ! आपकी आज्ञा पालन करनेके हेतु पृथ्वी भरके समस्त वानरगण, पर्वत, वन और नदियोंको नांघते हुए यहांपर चले आतेहैं ॥ ३६ ॥ जब उन वानरोंने ऐसा कहा, तो वानरनाथ सुग्रीवजीने हर्षित और प्रसन्न होकर उनके दिये हुए सर्व उपहारके पदार्थ ग्रहण किये ॥ ३७ ॥

श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ३८.

वानरनाथ सुग्रीवजीने उन सबके दिये समस्त उपहार ग्रहण करके, व प्रशंसाकर उन सबको बिदा किया ॥ १ ॥ उन हजार २ कार्य किये हुए. वानरगणोंको बिदा देकर अपनेको और महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको सुग्रीवजी कृतार्थ समझते हुए ॥ २ ॥ अनन्तर लक्ष्मणजी सुग्रीवको हर्षित करते हुए उन महाबलवान् वानरोंके पति सुग्रीवजीसे मधुर वचन बोले ॥ ३ ॥ हे सौम्य ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इस समय किष्किन्धासे चलो । लक्ष्मणजीके ऐसे सुन्दर वंचन सुनकर ॥ ४ ॥ सुग्रीवजी परम प्रसन्न होकर उनसे बोले कि, आप चलिये हम सबभी आपकी आज्ञाके आधीन हो चलते हैं ॥ ५ ॥ शुभ लक्षण सम्पन्न लक्ष्मणजीसे ऐसा कह सुग्रीवजीने तारा आदि स्त्रियोंको गृहमें जानेके लिये बिदा किया ॥ ६ ॥ तब सुग्रीवने "यहां आओ २" यह कहकर ऊंचे स्वरसे वानरोंको पुकारा, उनके वचन सुनकर वानरगण शीघ्र वहांपर आ पहुंचे ॥ ७ ॥ तारादि स्त्रियोंको देखनेके योग्य वे वानरगण हाथ जोड खडे होगये तब सूर्यसमान प्रभावाले सुग्रीवजीने उनसे कहा ॥ ८ ॥ तुम शीघ्रतासे हमारी परम मनोहर पालकी लेआओ ।-सुग्रीवजीके वचन सुन शीघ्र विक्रम करनेवाले वानर ॥ ९ ॥ उनकी परम मनोहर शिबिका ले आये तब वानरनाथ सुग्रीवजीने शिबिकाको आयाहुआ देखकर ॥ १० ॥ लक्ष्मणजीसे कहा कि, आप इसपर सवार हो जाइये यह कहकर उस सूर्यकी समान प्रभावाली सुवर्णकी शिबिकापर सुग्रीवजी ॥ ११ ॥ लक्ष्मणजीके सहित सवार हुये, बहुतसे वानर उस पालकीको उठाये हुये थे। सुग्रीवजीके ऊपर श्वेत वर्णका छत्र लगाया गया ॥ १२ ॥ और शुक्लवालोंका चमरभी चारों ओरसे होताथा शंख भेरियोंके नादका शब्द होताथा बंदीगण स्तुति करतेथे ॥ १३ ॥ सुग्रीवजी अत्युत्तम राजलक्ष्मीको प्राप्त होकर शत शत महाबलवान् वानर-

गण कि जिनके हाथमें बडे पैने २ शस्त्रथे ॥ १४ ॥ घेरे जाकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट गमन करनेलगे । रामकरके सेवित उत्तम स्थानमें गमन करकै ॥१५॥ महातेजस्वी सुग्रीवजी लक्ष्मणजीके सहित शिबिकापरसे उतर श्रीरामचन्द्रजीके निकट जाय हाथ जोडकर खडे होगये ॥ १६ ॥ सुग्रीवजीको हाथ जोडे हुये देखकर सब वानरगणभी श्रीरामचन्द्रजीको हाथ जोडकर खडे हुये तब सब वानर और सुग्रीवजीको हाथ जोड खडे हुये देख श्रीरामचन्द्रजी पंकज कलियोंसे युक्त तडागकी समान ॥ १७ ॥ वानरराजकी बडी सेनाको देख सुग्रीवजीके प्रति प्रसन्न हुये। और चरणपर खडे हुये वानरनाथ सुग्रीवजीको श्रीरामचन्द्रजीने उठाया॥ १८॥ और अति आदरमान करके प्रेम सहित उनसे मिले, धर्मात्मा रामचन्द्रजीने सुग्रीवसे भेटकर बैठनेको कहा ॥ १९ ॥ और जब सुग्रीवजी बैठगये तब श्रीरामचन्द्रजी, उनसे बोले कि धर्म, अर्थ, और कामका जो समय २ पर सेवन ॥ २० ॥ विभाग करकै किया करता है, हे वीर ! वानरश्रेष्ठ ! वही राजा कहाता है । और जो धर्मको त्याग करकै अर्थ और कामकी सेवा करता है ॥ २१ ॥ वह इस तरहसे जागता है; कि जिस प्रकार वृक्षकी फुलंचीपर सोता हुआ जब गिरता है तभी जागता है, अमित्रोंके वधमें युक्त, मित्रोंके संग्रह करनेमें रत ॥ २२ ॥ राजा त्रिवर्गकी अर्थात् धर्मअर्थ और कामकी सेवा करता है वही धर्मसे संयुक्त होता है । हे शत्रुदमनकारी ! सीताके ढूँढनेके लिये उद्योग करनेका यह समय आगया है ॥२३॥ सो तुम सब मंत्रिगणोंके सहित इस विषयमें सलाह करो सुग्रीवजी इस प्रकार कहे जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २४ ॥ हे महाबाहो ! आपके प्रसादसे हमने नष्ट हुई, राज्यलक्ष्मी, कीर्ति और कुलके क्रमसे चले आये हुये कपिराजकोभी प्राप्त कियाहै ॥ २५ ॥ हे देव ! जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारे प्रसादसे प्रसन्न आपके लक्ष्मणजीके किये उपकारका जो प्रत्युपकार न करै वह पुरुषोंके मध्यमें दूषित गिना जाता है ॥ २६ ॥ हे परवीरनाशी ! यह सैकडों हजारों बडे २ वानर पृथ्वीपर रहनेवाले समस्त महाबलवान् वानरोंको लेकर यहां उपस्थित हुये हैं ॥ २७ ॥ शूरश्रेष्ठ घोर दर्शन वानर ऋक्ष और गोपुच्छ सबही वन और पर्वतोंपरके दुर्गम मार्ग जाननेवाले हैं ॥ २८ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! देव और गन्धर्वोंके पुत्र कामरूपी वानरगण अपनी २ सेना गणोंके साथ मार्गमें टिक रहे हैं ॥२९॥ हे शत्रुविनाशन! इन सेनापति वानरोंके साथ, शत २, सहस्र २, कोटि २ अयुत २ शंकु २ (सौ

हजारका लाख, सौ लाखका करोड, दश हजारका अयुत, करोड लाखका शंकु होताहै) ॥ ३० ॥ अर्बुद,सौ अर्बुद मध्य मध्य और अन्त्य २ समुद्र २परार्द्ध २ संख्यावाले वानरगणोंसे परिवृत (हजार शंकुका एक अरब, दश अवरका एक मध्य, दश मध्यका एक अन्त्य, बीस अन्त्यका एक समुद्र, तीस समुद्रका एक परार्द्ध होताहै) ॥ ३१ ॥ वानरगण मेघ और पर्वतकी समान मेरु और विन्ध्याचलके रहनेवाले, इन्द्रकी समान विक्रमकारी, यहांपर आवेंगे ॥ ३२ ॥ और सीताजीको खोजने जांयगे, व राक्षसोंके साथ युद्ध करके रावणको मार जानकीको आपके निकट ले आवेंगे ॥ ३३ ॥ तब राजपुत्र वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी आज्ञामें टिके हुये कपिराजका भलीभांति उद्योग देख हर्षके हेतु खिले हुये नीलकमलकी समान प्रफुल्लित होगये ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९.

सुग्रीवजीने हाथ जोडकर जब इस प्रकारसे कहा तब धार्मिक श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी,दोनों भुजा पसार उनसे मिलकर बोले ॥ १ ॥ कि यदि देवराज इन्द्रजी जल वर्षातेहैं तो कुछ आश्चर्य नहीं, सहस्रकिरणवाले सूर्य भगवान जो अपनी किरणोंसे आकाशके अन्धकारको दूरकर उसे प्रकाशित करतेहैं, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं ॥ २ ॥ और इसमेंभी कुछ आश्चर्य नहीं कि,चन्द्रमा जो अपनी विमल किरणोंसे आकाशको निर्मल करतेहैं। ऐसेही तुम्हारी समान सात्विक पुरुष जो मित्रगणोंकी प्रीति साधन करेंगे इसमें विचित्रताही क्याहै ? ॥ ३ ॥ हे सुग्रीव ! तुमसे जो शुभकारी कार्य होगा तो इसमें कुछ आश्चर्य नहींहै। हे सुग्रीव ! हम जानतेहैं कि,तुम सदाही प्रिय बोलनेवालेहो ॥ ४ ॥ हम तुम्हारे साथ मिलकर समरमें समस्त शत्रुगणोंके जीतनेको समर्थ होंगे, तुम हमारे सुहृद और मित्रहो, इसलिये हमारी सहाय करना तुम्हारा सबसे बडा कर्तव्यहै ॥ ५ ॥ इस राक्षसने अपना नाश करनेके लिये जानकीको हरण कियाहै अनुह्लाद पहले जिस प्रकार छलसे पौलोमी शचीको हरण करके नाशको प्राप्त हुआथा वैसेही निःसन्देह यह राक्षस विनाशको प्राप्त होगा ॥ ६ ॥ शत्रुओंके मारनेवाले इन्द्रजीने जिस प्रकार शचीके हरनेवाले और दैत्यको देनेमें अनुमति करनेवाले बलसे दर्पित शचीके पिताको मारडालाथा, हमभी

वैसेही शीघ्र तीखे बाणोंसे उस राक्षस रावणका नाश करेंगे ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी ऐसा कहही रहेथे कि, इसी समयमें सूर्यकी किरणोंसे गरम हुई धूलराशि तीव्र प्रभाको ढककर आकाशमें उठी ॥ ८ ॥ उस अन्धकारसे दूषित होकर सर्व दिशायें छाय गई और पर्वत वन काननके सहित पृथ्वी कम्पायमान होने लगी ॥९॥ फिर तेज दांतवाले बलवान पर्वताकार असंख्य वानरोंसे समस्त पृथ्वी परिपूर्ण होगई ॥ १० ॥ फिर पलक मारतेही सैकडों करोड यूथनाथ वानरोंसे पृथ्वी परिपूर्ण होगई ॥ ११ ॥ नदियों परके रहनेवाले, पर्वतोंके रहनेवाले समुद्रादिकोंके रहनेवाले और वनोंके रहनेवाले महाबलवान मेघसमान गर्जनकारी वानर आये ॥ १२ ॥ दुपहरके सूर्यकी समान वर्णवाले और शशितुल्य गौरवर्णवाले वानर बहुत कमल परागकी समान वर्णवाले, बहुत श्वेत और सुवर्णसमवर्णवाले थे ॥ १३ ॥ उनमें दश करोड हजार वानरोंको साथ लिये श्रीमान् शतबली नामक वानर दृष्टि-आया ॥ १४ ॥ तिसके पीछे कांचन पर्वतकी तुल्य वर्ण वाला ताराका पिता सुषेण अनेक बहुत सहस्र कोटि वानरोंकी सेनाके संहित आ पहुँचा ॥ १५ ॥ फिर सुग्रीवजीका श्वशुर रुमाका पिता तार नामक बली वानर यूथप, हजार करोड वानरोंकी सेनाके सहित आया ॥ १६ ॥ फिर, पद्मपरागकी समान वर्णवाला और घोर प्रभात कालीन सूर्यके रंगकी समान मुखवाला महा बुद्धिमान् वानरश्रेष्ठ और सब वानरोंमें अति उत्तम ॥ १७ ॥ बहुत सहस्र वानरोंकी सेनाके सहित हनुमानजीका पिता श्रीमान् केशरी नामक वानर आया ॥ १८ ॥ गोपुच्छ वानरोंका राजा भयंकर विक्रमकारी गवाक्ष, करोड सहस्र वानरोंको साथ लेकर आ पहुँचा ॥ १९ ॥ भयंकर वेगवान रीछोंका राजा शत्रुओंका मारनेवाला धूम्र नामक ऋक्ष दो सहस्र करोड ऋक्षोंकी सेना लिये हुये आया ॥२०॥ पनस नामक वीर्यवान यूथपति वानर महाबलवान् घोररूप तीन करोड वानर संग लिये वहां आगमन करता हुआ ॥ २१ ॥ नील वर्णी अंजन पुंजकी समान द्युतिमान महाकाय नील नामक यूथपति दशकोटि वानरोंको संग लिये हुये आया ॥ २२ ॥ सुवर्ण पर्वतके तुल्य द्युतिवाला महा वीर्यवान गवय नामक यूथपति पांच करोड सेनाके संग उपस्थित हुआ ॥ २३ ॥ दरीमुख नामक बलवान यूथपति हजार कोटि वानरोंकी सेना संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट आय पहुँचा ॥ २४ ॥ मैन्द और द्विविद नामक

महाबलवान वानर अश्विनीके पुत्र दोनों कोटि २ सहस्र वानरोंकी सेना संग लिये हुये आये ॥ २५ ॥ गज नामक बलवान वीर तीनकरोड वानरोंकी सेनाको ले आया और ऋक्षोंका राजा महा तेजस्वी जाम्बवान् ॥ २६ ॥ दशकोटि ऋक्षोंकी सेनाले सुग्रीवजीके वशमें आया रुमण नामक तेजस्वी पराक्रमी वानरपति बहुतसे वानरोंके साथ ॥२७॥ और महाबलवान् सौ करोड वानर सेना संग लिये आया तिसके पीछे लक्ष २ करोड २ वानर संग लिये ॥२८ ॥ महा पराक्रम करनेवाला गन्धमादन नामक यूथप आया तिसके पीछे हजार पद्म और हजार शंख कपियोंकी सेनाको साथलिये ॥ २९ ॥ अपने पिता वालिके तुल्यपराक्रम करनेवाले अति-बुद्धिमान् वानरसेनापतियोंके शिरमौर युवराज अंगदजी आये, फिर तारागणोंके समान प्रकाशमान अतिभयंकर पराक्रम करनेवाले वानरोंको संग लिये तारनाम यूथनाथ आया ॥ ३० ॥ उस तारके साथ अति प्रचंड पांच कोटि वानरसेना थी तदनन्तर इन्द्रजानुनामक महावीर यूथनाथ ॥ ३१ ॥ ग्यारह कोटि वानरोंको संगलिये हुये दिखाई दिया फिर प्रभातकालके बालसूर्यके वर्णके समान रंभ नामक वानर यूथपति ॥ ३२ ॥ दशहजार एक शत वानरोंकी सेनाको संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ; इसके पीछे महावीर यूथपति दुर्मुख नामक वानर ॥ ३३॥ महाबली दोकरोड वानरोंकी सेनाको संग लिये हुये दिखाई दिया फिर कैलास पर्वतके शिखरकी तुल्य आकारवाले भयंकर पराक्रमकारी वानरों की ॥ ३४ ॥ हजार करोड सेना संग लिये आते हुये हनुमानजी दिखाई दिये फिर महा वीर्यवान् नल नामक यूथनाथ वृक्षोंपर रहनेवाले ॥ ३५ ॥ शत कोटि एक सहस्र एक वानरोंकी सेना संग लिये हुये आया। फिर श्रीमान् दरी मुख नामक वानरपति नदीप्रदेशसे दशकोटि वानरोंकी अनी संगलिये हुये ॥ ३६॥ महात्मा सुग्रीवजीके निकट शब्द करता प्राप्त हुआ शरभ कुमुद वह्नि और रंभ ॥ ३७ ॥ व और भी बहुतसे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंके यूथप सब पृथ्वी वन और पर्वत आदिकोंको ढकते हुये आये ॥ ३८ ॥ व अनेक प्रका-रके नामधारी यूथप आये कि,जिनकी संख्या नहीं है, इन सब वानरदलोंके मध्यमें कोई कोई दल आता जाताथा, और कोई आय २ करके बैठता जाताथा ॥ ३९ ॥ उन दलोमेंके कोई २ वानर उन्हैं घेरते छलांग मारते कोई २ गर्जते सुग्रीवजीके निकट पहुँचने लगे,जिस प्रकार मेघ सूर्यके निकट गमन करतेहैं॥ ४०॥

और सबही वानर बहुत शब्द कर रहे थे वह सब महाबली सुग्रीवजीके निकट पहुँच कर मस्तक झुकाय २ अपना २ आना निवेदन कररहे थे॥ ४१ ॥ और कोई २ सुग्रीवजीके निकट पहुँचकर, उनका यथोचित आदर सन्मान कर हाथ जोड कर खडे होनेलगे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे धर्मात्मा सुग्रीवजीने शीघ्रताके सहित श्रीरामचं-द्रजीके निकट जाय हाथ जोड उनसे समस्त वानर और वानरयूथपतियोंका आगमन निवेदन किया फिर वानरयूथपोंसे बोले ॥ ४३ ॥ हे समस्त वानरेन्द्रगण ! पर्वत, झरने, और वनके समूहोंमें उस सैनाको टिकाकर कि, जिसका बल अच्छी तरहसे तुम सब जानते हो। विधिपूर्वक इस बातका निर्णय करो कि कौन वानर आया और कौन नहीं आया ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०.

फिर कपिराज सुग्रीवजी, कार्यमें कुशल होकर नरश्रेष्ठ परबल विनाशी श्रीराम-चन्द्रजीसे बोले ॥ १॥ कि हमारे राज्यमें रहनेवाले इन्द्रकी समान बलवान् काम-चारी वानरयूथप लोग यहां पहुंचकर अपनी २ सेनाओंमें टिके हुयेहैं ॥ २ ॥ यह सब बहुत स्थानोंमें अपना पराक्रम प्रगट किये हैं, ऐसे भयंकर विक्रमकारी, दैत्य दानवोंकी तुल्य घोररूप बलवान् समस्त वानरोंकी सेना आय पहुंची है ॥ ३ ॥ यह सब कर्म करनेमें विख्यात, अपने वीर्यमें विख्यात बडे बलवान् युद्धमें कभी थक तेही नहीं, पराक्रम करनेमें विख्यात अर्थका निश्चय करनेमें स्थिर प्रतिज्ञावान् ॥ ॥ ४ ॥ बडे श्रेष्ठ, समुद्रके तीरपर बसनेवाले और अनेक पर्वतोंके वासी, आपके दास यह करोड़ २ वानरगण यहांपर आगयेहैं ॥ ५ ॥ हे शत्रुनाशी ! वह सब वानर देशोंके पालनेवाले स्वामीके हित कार्यमें रत आपके इच्छानुसार कार्यको साधन करनेमें निःसन्देह समर्थ होंगे ॥ ६ ॥ वही यह हजार २ कोटि २ बहुत स्थानोंमें अपने पराक्रमको प्रकाश किये घोररूपी, दैत्य दानवोंकी समान वानरगण यहांपर आगयेहैं ॥ ७ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अब समय उपस्थित है; अब जैसा आपका विचारहो वह कहिये, यह सब आपकी सेना आपके वशमेंहै; इस समय जो ठीक और उचित आज्ञाहो वह इनको दीजिये॥ ८॥ हम इन लोगोंका ठीक बल जानतेहैं, और आपका कार्यभी तत्वसे जानतेहैं तथापि आप इन सबको युक्तिसे युक्त हो वही आज्ञा

॥ ९ ॥ जब सुग्रीवजीने इस प्रकार कहा तब दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी दोनों बाहें पसार उनसे भेंटकर बोले ॥ १० ॥ हे सौम्य ! हे महापंडित! जनककुमारी सीताजी जीवितहैं; अथवा नहीं; और रावण किस देशमें रहता है इस बातका पता लगाना उचित है ॥ ११ ॥ जब यह बात जानली जायगी तब रावणके स्थानपर और वैदेहीजीके निकट पहुंचकर तुम्हारे साथ परामर्श करके समयानुसार उचित कार्यका विधान किया जायगा ॥ १२ ॥ हे वानरनाथ ! हम या लक्ष्मण इस कार्यके साधन करनेमें समर्थ नहींहैं ! तुमहीं इस कार्यके कारणहो और तुम्ही इसके सिद्ध करनेमें समर्थहो ॥ १३ ॥ हे वीर ! तुम निःसन्देह हमारे कार्यको जानतेहो इसलिये तुमहीं इस विषयमें निश्चित कार्यको सोच विचारकर आज्ञा देदो॥ १४ ॥ तुम हमारे अनुपम सुहृद, बलवान् पंडित, समयको भली प्रकारसे जाननेवाले अर्थ विचारनेवालोंमें अग्रगण्यहो और हमारा हितकारी कार्य करनेमें लगे हुयेहो॥ १५॥ जब सुग्रीवजीसे श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब सुग्रीवजी बुद्धिमान् श्रीराम लक्ष्मणजीके आगेही वानरश्रेष्ठ ॥ १६ ॥ पर्वत सम आकारवाले मेघकी समान शब्दकारी विनत नाम यूथपसे बोले कि हे वानरोत्तम ! चन्द्रमा व सूर्यकी समान वर्णवाले वानर संगले ॥ १७ ॥ जो देश काल और नीति शास्त्रके जाननेवालेहों उनको साथले, कार्य करनेमें निश्चय किये औरभी सैकडों सहस्रों वानरोंको साथ लिये ॥ १८ ॥ पूर्वदिशाको चलेजाओ. वहांपर पर्वत, वन इत्यादि स्थलोंमें जनककुमारी सीताजी और रावणके बसनेके स्थानको ढूंढो (चारों दिशाओंमें रावणके रहनेके स्थानथे) ॥ १९ ॥ ढूँढनेके समय सब पर्वतोंकी कन्दराओंमें दुर्गम स्थानोंमें, सब वनोंमें और नदियोंमें, रमणीय गंगा सरयू कौशिकी ॥ २० ॥ कालिन्दी, मनोहर यमुना और यमुनाके समीपवाले सब पर्वतोंको, और सरस्वती, सिन्धु, मणितुल्य स्वच्छ जल वाला शोणभद्र ॥ २१ ॥ मही और शैल कानन सहित कालमही औरभी समस्त नदियोंमें और ब्रह्ममाल, विदेह, मालव, काशिराज, और कौशलदेश ॥ २२ ॥ मागध, महाग्राम, पुण्ड्र, अंग, इन समस्त देशोंमें और कोषाकार रेशमके कीडे जहां होतेहैं, व चांदीकी खानिवाली भूमिमें जहाँ खानोंसे चांदी निकलतीहै ॥ २३ ॥ उन सब स्थानोंमें तुम लोग सीताजी और रावणका स्थान खोजते हुये, जहां कहींभी श्री रामचन्द्रजीकी भार्या और दशरथजीकी पुत्रवधू जानकीजीहों देखना ॥ २४ ॥ और जो जो पर्वत और नगर समुद्रके टापुओंमें हों,

और मन्दराचल पर्वतके किनारोंपर जो देश वसते हों, उन सबमें तुम भली प्रकार ढूँढना भालना ॥ २५ ॥ जो कानोंतक वस्त्र लपेटेहों और जिनके कान अधरपर्यन्तहों और जिनका घोर लोह सम मुखहो, बडे वेगसे चलनेवाले व एक पादक लोग जो टापुओंमेंहैं॥ २६ ॥ और अक्षसन्तान बलवान्राक्षस, किरात तीक्ष्णचूडावाले बडे बाल वाले सुवर्णसमान दीप्तिमान्, प्रियदर्शन॥ २७ ॥ और जिन किरात देशोंमें कच्ची मछलियें भक्षण कीजाती हैं, ऐसे किरातगण; नीचेके भागमें मनुष्योंकी समान आकारवाले और ऊपरके भागमें व्याघ्रके समान आकार वाले नर व्याघ्र लोग जो कि जलके मध्यमें रहतेहैं ॥ २८ ॥ इन सब राक्षसोंके स्थानोंमें भली भांति देखना भालना पर्वतोंको देखते भालते जिन देशोंमें अथवा द्वीपोंमें उछल कूदकर जाना हो सके, वहां उछेल कूदकर नौकासे जहां जाना हो वहां नौकाद्वारा जाना ऐसे सब देशोंमें ढूंढना तुम्हारा परम कर्त्तव्यहै ॥ २९ ॥ और तुम बडे यत्नके साथ सप्त राज्य सुशोभित यवद्वीपमें जाना, और सुवर्णकारी पुष्पोंसे शोभित रूपक द्वीपमें ढूंढना यही तुम्हारा कर्त्तव्यहै ॥ ३० ॥ जब सुवर्णद्वीपको ढूंढकर आगे चलोगे, तब देव दानवगण करके सेवित शिशिर नामक पर्वत मिलैगा, उसके कँगूरे आकाशको भेद करके मानो स्वर्गको छू रहेहैं ॥ ३१ ॥ इन सब द्वीपादिकोंके पर्वतोंके दुर्गोंमें वनोंमें, और नदियोंके प्रगट होनेके स्थानोंमें, तुम यशस्विनी रामभार्या जानकीजीको ढूंढना ॥ ३२ ॥ फिर समुद्रके उस पार जाकर, सिद्ध चारण सेवित लाल जल वाला शोण नामक नद मिलेगा ॥ ३३ ॥ वहां उसके रमणीक तीर्थमें, विचित्र वनोंमें, और कन्दरायुक्त सब पर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना ॥ ३४ ॥ भयंकर अनेक उपवनोंसे युक्त पर्वतोंसे निकली हुई समस्त नदियोंमें और कन्दरायुक्त सब पर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना तुम्हारा अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ३५॥ फिर भयंकर पवनके सन्नाटेसे भयंकर शब्द करता हुआ, अति उग्र तरंगयुक्त समुद्रके द्वीपको तुम लोग देखोगे ॥ ३६ ॥ इस इक्षु समुद्रमें ब्रह्माजीकी आज्ञा पाये हुये, भूंखसे सताये असुरगण नित्य २ परछांयी ग्रहण करके प्राणियोंको भक्षण किया करतेहैं, सो यहांपर बडी सावधानीसे जाना ॥ ३७ ॥ इसलिये तिस समयमें मेघोंके समान गर्जते और बडे २ सर्पोंसे सेवित होनेके कारण पार जानेके अयोग्य उस समुद्रमें सुघाटपर उतरना ॥ ३८ ॥ जब इसके पार होजाओगे, तब लाल रंगके जलसे भरे भयंकर लोहित नामक सागरपर जाकर वहां एक बडा भारी शाल्मलीका वृक्ष

देखोगे ❀ ॥ ३९ ॥ वहांपर पक्षिनाथ गरुडजीका, कैलास पर्वतकी समान अनेक रत्नोंसे भूषित विश्वकर्माका बनाया हुआ गृह विराजमानहै ॥ ४० ॥ वहांपर समुद्रके पर्वतोंके श्रृंगोंपर पर्वततुल्य भयंकर देहधारी, नानारूपी, भयावह, मंदेह नामवाले राक्षसगण नीचे मुख किये लटके रहते हैं ॥ ४१ ॥ यह राक्षस सूर्यके उदय होनेपर उनसे युद्ध करनेको आकर सूर्यके तेजसे तीनों वर्णोंके दियेहुये सन्ध्या समयके जलसे घायल होकर समुद्रके जलमें गिर पडते हैं और फिर जीवित होकर इन पर्वतके कँगूरोंपर लटकने लगते हैं ॥ ४२ ॥ इन राक्षसोंको सन्ध्याके समय प्रतिदिन ब्राह्मणलोग मारते हैं, उनके मारनेसे सूर्यरूपी भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, इससे आगे बढकर उजले बादरकी समान क्षीर सागर देखोगे ॥ ४३ ॥ यह क्षीरसागर अपनी लहरोंसे ऐसा शोभायमान हो रहा है, मानो मोतियोंका हार पहर रहा हो, उस क्षीरसागरके मध्यमें तुम अति श्वेत ऋषभ नामक पर्वत देखोगे ॥ ४४ ॥ इस पर्वतके ऊपर सुवासित पुष्पयुक्त अनेक प्रकारके वृक्ष लगे हैं और वहींपर एक तालावभी बडा उत्तमहै जिसमें अनेक भांतिके पुष्प खिल रहे हैं ॥ ४५ ॥ इसका नाम सुदर्शनसर है, यह राजहंसोंसे व्याप्त है और इसके किनारे २ देव, चारण, यक्ष, किन्नर, अप्सरा गण ॥ ४६ ॥ हर्षित हो विहार करनेके लिये उसीके तटमें घूमा करते हैं । क्षीरसागर उतरनेके पीछे हे वानरगण ! ॥ ४७ ॥ जलोद सागरको शीघ्रही देखोगे, यह समुद्र सब प्राणियोंको भय उपजाने वाला है इस कारणकि वहां पर और्व्व ऋषिसे उत्पन्न तेजसे महा हयमुख तेज उत्पन्न हुआ है ॥ ४८ ॥ उस अद्भुत महावेग हयमुख तेजका प्रलयकालमें सचराचर जगत् अन्न स्वरूप कहाता है । उस स्थानमें असमर्थ विनाशकी शंकासे डरे हुये प्राणियोंका महा आर्त शब्द श्रवण आया करता है; यह प्राणी उस हयमुखके देखनेसे डरकर रोया करते हैं ॥ ४९ ॥ स्वादु समुद्रके उत्तरतीरमें तेरह योजन विस्तारवाला कनकतुल्य प्रभाशाली सुवर्णकी चट्टानोंसे युक्त एक महान पर्वत है ॥ ५० ॥ वहांपर हे वानरो ! तुम चन्द्रमाकी तुल्य श्वेत वर्णवाले कमलदलकी समान विशाल नेत्रवाले धरणीधर भुजंगको देखोगे ॥ ५१ ॥ वहीं सहस्र शिरवाले नीलाम्बर धारण किये सब देवताओंके नमस्कार करनेके योग्य अनन्तजी पर्वतके शिखरपर बैठे रहते हैं ॥ ५२ ॥ इनके शिरके निकट

❀ इससे शाल्मलि द्वीपका अनुमान होताहै ॥

तीन स्कंधवाली सुवर्णकी केतुस्वरूप ताल वृक्षके आधारसे बनी हुई वेदी विराजित है उसपर अनंतजी प्रतिष्ठित हैं ॥ ५३ ॥ इन्द्रजीने उस तरुवरको पूर्व दिशाके चिह्नस्वरूप सीमाके अंतमें बिन्दुकी समान निर्माण कर रक्खा, है उसके आगे परम हेममय देवताओंका होता श्रीमान् उदय पर्वत है ॥ ५४ ॥ इस पर्वतकी एक कोटि सौ योजन चौडीहै, और उसके कँगूरे ऐसे ऊंचे हैं कि, आकाशको स्पर्शही किये लेते हैं। वह सुवर्णकी बनी वेदी आधार पर्वतके सहित विराजमान है ॥ ५५ ॥ इस पर्वतपर फूले हुये सुवर्णमय सूर्यकी समान ताल, तमाल और कर्णिकारके वृक्ष शोभायमान होरहे हैं ॥ ५६ ॥ वहांपर एक योजन विस्तारवाला और दश योजन ऊंचा सुवर्ण मय सौमनस शृङ्ग है ॥ ५७ ॥ पूर्वकालमें पुरुषोत्तम विष्णुजीने राजा बलिको छलकर जब सब लोक नापेथे तब पहला चरण उन्होंने वहां रखकर दूसरा चरण मेरुके शिखरपर रक्खाथा ॥५८॥ सूर्य नारायण उत्तरदिशामें घूम जम्बूद्वीपकी परिक्रमा करके फिर उसी ऊंचे शिखरवाले पहले कहे हुये सौमनस शिखरपर टिके हुए फिर जम्बूद्वीपमें रहनेवाले मनुष्योंको दृष्ट आते हैं ॥ ५९ ॥ और इसी शिखरपर, सूर्य समान प्रकाशमान तपस्वी, दीप्ति प्रयुक्त वैखानस वालखिल्य महर्षिगण प्रकाशित होते हैं ॥ ६० ॥ जिसके समीप सुदर्शन द्वीप प्रकाशित होताहै और जब इस सौमनस शिखरपर सूर्य उदय होतेहैं, तभी सब प्राणियोंके नेत्रोंमें उजाला आताहै, इसका प्रकाश सबको ज्ञात है ॥ ६१ ॥ उस पर्वतकी पीठ कन्दरा, और वनमें तुमलोग रावणसहित जानकीजीका अनुसन्धान करना ॥ ६२ ॥ सुवर्ण शैलके और महात्मा सूर्यकेही तेजसे युक्त हो अरुण वर्णकी सन्ध्या प्रकाशित होतीहै ॥ ६३ ॥ जिससे कि समस्त भुवनोंमें प्रकाश करनेके लिये सूर्यके उदयकी आवश्यकता देख प्रथमही ऊपरमें टिके हुए सब जनोंका प्रवेशद्वार स्वरूप उदयगिरिको ब्रह्माजीने बनायाथा इससेही इसको पूर्वदिशा कहतेहैं ॥ ६४ ॥ उस पर्वतकी पीठपर झरनोंमें और गुफाओंमें, तुम लोग रावण और जानकीजीकी खोज करना ॥ ६५ ॥ उदयाचलके आगे इस पूर्व दिशामें जिसके अधिष्ठाता इन्द्रादि देवताहैं वहां सूर्य चन्द्रमाका प्रकाश नहीहै इस कारणसे अंधेराही अंधेराहै, इसलिये यहांसे आगे कोई नहीं देख सकता ॥ ६६ ॥ इन सब पर्वतोंमें, कन्दराओंमें, नदियोंमें, जितने कि, समस्त स्थान हमने कहे इन सब स्थानोंमें तुम लोग जानकीजीका पता लगाना ॥ ६७ ॥ हे कपिश्रेष्ठगण ! बस

यहींतक तुमलोग जानेको समर्थ हो; इसके आगे सूर्य भगवान रहित और सीमा रहित जो स्थान हैं उन सबको हम नहीं जानते ॥ ६८ ॥ जहां जानकीजी हों, और रावणके स्थानमें उदयाचल पर्वततक जाकर एक मासके पूर्ण होते २ तुम लोग फिर आना ॥ ६९ ॥ एक मासके ऊपर वहांपर न रहना यदि कोई एक मासके ऊपर रहेगा तो उसको हम मार डालेंगे, जाओ जनककुमारी जानकीजी-को ढूंढभाल और उनका पता लगाकर आओ ॥ ७० ॥ इन्द्रकी स्त्री,वनादिकोंसे सुशोभित पूर्वदिशाको तुम चतुर वानर उत्तम रीतिसे खोज करकै राघवप्रिया सीताजीको पायकर फिर सब जन सुखी होना ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्कि० भाषायां चत्वारिंशः सर्गः ॥४०॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१.

वानरराज वीरवर सुग्रीवजीने उस वानरोंकी सेनाको पूर्वदिशाकी ओर भेजकर कार्यके साधनका निर्णय करनेमें चतुर वानरोंको दक्षिण दिशामें भेजा॥ १॥ उनमें अग्निपुत्र नील महाबलवान् हनुमानजी ब्रह्माका पुत्र महाबलवान् जाम्बवान् ॥ २ ॥ सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ ॥ ३ ॥ मैन्द द्विविद, गन्धमादन, ताराके पिता सुषेण, उल्कामुख, अनंग, यह दोनों अग्निके पुत्र ॥ ४ ॥ व अंगद इत्यादि वेगसे चलनेवाले महापराक्रमी वानरोंको सब देशोंके जाननेवाले सुग्रीवजीने दक्षिण दिशामें पठाया ॥ ५ ॥ जितने वानर दक्षिण दिशाको भेजे गये उन समस्त वानरोंके मुखिया बडे बली अंगदजीको करकै सुग्रीवजीने दक्षिण दिशाको भेजा ॥ ६ ॥ कपीश्वर सुग्रीवजी उस दिशामें जो जो देश दुर्गमथे, वह समस्तही उन वानरयूथपोंको बताने लगे ॥ ७ ॥ कि तुम लोग, सहस्र शिखरवाले विविध वृक्ष लताओंसे विराजमान विन्ध्याचलपर्वतको प्रथम देखोगे फिर महाभुजंगगण सेवित रमणीक नर्मदा नदी मिलैगी ॥ ८ ॥ फिर गोदावरी और रमणीक कृष्णावेणी नदी मिलैगी; तदनन्तर मेकल, उत्कल, दशार्ण आदि देश मिलेंगे ॥ ९ ॥ फिर आब्रवन्ती, अवन्ती पुरी दिखलाई देगी। पश्चात् विदर्भ, ऋष्टिक, मनोहर माहिषक ॥ १० ॥ इत्यादि सबदेश दृष्टि आवेंगे, फिर मत्स्य, कलिंग, कौशिकादि देशोंको भली भांति खोजना; और नदी गुफा सहित

दंडकारण्यमेंभी ढूंढना ॥ ११ ॥ तिसके पीछे तुम सबोंको दूसरी गोदावरी नदी दिखाई देगी इसके आगे, आन्ध्र, पुन्ड्र, चोल, पाण्ड्य, केरल ॥ १२ ॥ आदि देश और अयोमुख नामक अनेक धातुओंसे युक्त पर्वत जिसपर बडे विचित्र शिखरहैं, मिलेगा; इसका वनभी सदा फूला फलाही रहताहै ॥ १३ ॥ चन्दनका वनभी इस पर लगा हुआहै; इस मलयाचलको भली भांति अनुसन्धान करना फिर स्वच्छ जलवाली दिव्य ॥ १४ ॥ अप्सराओंके झुन्डोंसे सेवित कावेरी नदी देखोगे, तिसके पीछे मलय पर्वतके अग्रभागमें बैठे हुए ॥ १५ ॥ महातेजसम्पन्न आदित्य तुल्य ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्यजीको देखोगे. फिर प्रणामादि द्वारा उनको प्रसन्न करकै उनकी आज्ञासे चल ॥ १६ ॥ विविध ग्राह युक्त महानदी ताम्रपर्णीके पार होगे। चंदनके वनके द्वारा विचित्र ढकी हुई द्वीपोंसे युक्त, स्वच्छजलवाली वह नदी ॥ १७ ॥ सर्व शृंगार किये स्त्रीकी समान अपने पतिरूप समुद्रमें जा मिलती है फिर हेममय दिव्यमुक्तामणि विभूषित ॥ १८ ॥ कपाट युक्त पाण्ड्य वंशियोंका फाटक देखेंगे। हे वानरो! फिर तुम निश्चय समुद्रके निकट पहुँचोगे, उस समुद्र पार होनेके विषयमें समर्थ और असमर्थ विचारकर उसके पार होना ॥ १९ ॥ उस समुद्रके पार होनेका उपाय कहते हैं सो तुम श्रवण करो कि इसका उपाय अगस्त्यजी तुमको बतावेंगे उनसे सब समाचार जान महेन्द्र पर्वतपर जाय चित्र विचित्र शृङ्गोंपर चढ ॥ २० ॥ समुद्रके पार होजाना, यह पर्वत सुवर्णमय और समुद्रके एक पार्श्वमें डूबा हुआ है और नाना प्रकारके फूले फले वृक्षोंसे शोभायमान है ॥ २१ ॥ यह पर्वत देव, यक्ष, अप्सरा, सिद्ध और चारण गणोंसे सेवित होनेके कारण परम मनोहर है ॥ २२ ॥ देवराज इन्द्रजी प्रत्येक अमावास्या और पौर्णमासीको इस पर्वतपर आगमन किया करते हैं। इसी समुद्रकी दूसरीपार सौ योजन विस्तारवाला एक द्वीप है ॥ २३ ॥ वहांपर कोई मनुष्य नहीं जासकता वहांपर चारोंओर विशेष करकै द्वीपमें सीताजीकोढूँढना ॥ २४ ॥ हम जानते हैं कि वही स्थान इन्द्रतुल्य दीप्तिमान् राक्षसपति दुरात्मा और वध करनेके योग्य रावणका वासस्थल है ॥ २५ ॥ इस दक्षिण समुद्रके बीचमें अङ्गारिका नाम विख्यात परछांई पकडकर जीवोंको खैंचकर भक्षण करनेवाली राक्षसी वास किया करतीहै॥ २६॥ इसप्रकारके संशययुक्त देशोंमें विशेष ढूँढ भाल संशय रहित होकर अमित तेजवान् नरेंद्र श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याका पता लगाओ ॥ २७ ॥ उस लंकाद्वीपको

लाँघकर शत योजन वाले समुद्रके बीचमें परम सुन्दर पुष्पितक नाम पर्वत सिद्ध चारण गणोंसे सेवित ॥ २८ ॥ चन्द्र सूर्यकी किरणोंसें प्रभाशाली सागरके जलका आश्रय लेकर अपने विपुलकँगूरोंसे मानो स्वर्गको छूलेता टिका हुआहै ॥ २९ ॥ उसके कांचनमय एक शृङ्गकी सेवा सूर्य भगवान् किया करतेहैं, कृतघ्न, नास्तिक और निर्लज्ज मनुष्य गण इन शृङ्गोंको नहीं देख सकते ॥ ३० ॥ हे वानरगण ! तुम लोग इस पर्वत श्रेष्ठको प्रणाम करकै सीताजीको खोजना । उस दुर्द्धर्ष पर्वतको लांघकर आगे सूर्यवान् नाम पर्वत ॥ ३१ ॥ पर पहुँचोगे इसका विस्तार चौदह योजन है और यह अति दुर्गमहै, फिर इससे आगे चलकर वैद्युत नाम पर्वतहै ॥ ॥ ३२॥ यह सर्वकालमेंही मनोहरहै और सब कामना युक्त फलोंके देनेवाले वृक्ष इसपर लगे हुयेहैं । वहांपर उत्तम भोजन फल मूल खाय ॥ ३३ ॥ और मधु पीकर तृप्तहो तुम सब लोग आगे बढना तहां नेत्र और मनको आराम देनेवाला कुंजर नामक पर्वतहै ॥ ३४ ॥ वहांपर पहले विश्वकर्म्माजीने अगस्त्यजीका भवन बनायाथा । यह भवन विस्तारमें एक योजन और उंचाईमें दश योजनहै ॥ ३५ ॥ इस सुवर्ण मय गृहमें अनेक प्रकारके दिव्य रत्न भूषित होरहेहैं । इसी कुंजर पर्वत पर सर्पोंके रहनेका स्थान भोगवती नाम पुरीहै ॥ ३६ ॥ यह पुरी बडे मार्गवाली, दुर्द्धर्षहै, और सब ओरसे रक्षितहै, और महा विषैले तेज दांत वाले घोर सर्पभी इसकी रक्षा करतेहैं ॥ ३७ ॥ जहांपर महाघोर सर्पराज वासुकीजी बसतेहैं, ऐसी भोगवती पुरीमें जाय सबलोग ॥ ३८ ॥ वहांपरके ढके ढकाये सब गुप्त देशोंको भली भांतिसे ढूंढना, उस देशको नांघ आगे बढकर बैलके आकारवाला बडाभारी ॥ ३९ ॥ सर्व रत्नमय परम सुन्दर ऋषभ नामक पर्वत मिलैगा । इसपर गोशीर्षक पद्मक; हरिश्याम, ॥ ४० ॥ दिव्य विशेष २ चंदन अग्निसम प्रभाशाली उत्पन्न होतेहैं उन चन्दनोंको देखकर तुम कुछ बात न करना और उनको छूनाभी मत ॥ ॥ ४१ ॥ कारण कि उस वनकी रक्षा रोहित नामक घोर गन्धर्व किया करतेहैं वहांपर पांच गन्धर्वोंके पति सूर्यकी समान प्रभावाले ॥ ४२ ॥ शैलूष, ग्रामणी, शिक्ष, शुक, और बभ्रु रहतेहैं उसपर सूर्य चन्द्र और अग्निके समान प्रकाशित देह पुण्यात्मा लोगोंके रहनेकें स्थान बनेहैं ॥ ४३ ॥ ऐसे पृथ्वीके अंतमें दुर्द्धर्ष तथा स्वर्गके सुख जीतनेवाले लोग रहतेहैं इसके आगे दारुण पितृलोकहै, जहांपर मनुष्य नहीं जा सकते ॥ ४४ ॥ यहां अंधकारसे ढकीहुई यमराजकी राजधानी संयमिनी

नाम पुरीहै वहांपर तुम क्षणमात्रभी नहीं ठहर सकतेहो, हे वानरश्रेष्ठगण ! तुमलोग यहींतक ढूंढनेको समर्थहो इससे आगे और फिर मनुष्यादिक किसीकीभी गति नहीं है ॥ ४५ ॥ जो जो स्थान हमनें बताये तुम सब इनमें व और स्थान-भीजो कि दिखाईदें इन सबको देखभाल सीताजीकी गति जानकर फिर आओ ॥ ४६ ॥ जो वानर एक मासके भीतर लौटकर "हमने सीताजीको देखाहै" यह वचन कहैगा वह हमारी समान विभवशाली होकर सुखसे विहार करैगा ॥ ४७ ॥ उससे अधिक और कोईभी हमारा प्रिय न होगा, व अनेक बार अपराध करने-परभी हमारा बन्धु रहैगा ॥ ४८ ॥ हे वानरगण ! तुम लोग अमित बल विक्रम शाली और विपुल गुण सम्पन्न कुलमें उत्पन्न हुये हो, इस समय तुम सब, कि, जिससे जनककुमारी सीताजी प्राप्त होजायँ इस विषयमें अनुकूल पुरुषार्थ प्रकाशकर विशेषभांतिसे यत्न करते रहो ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां एकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२.

अनन्तर सुग्रीवजी उन समस्त वानरवृन्दोंको दक्षिणदिशामें भेजकर मेघकी समान सुषेण नाम वानरसे बोले ॥ १ ॥ यह सुषेण ताराके पिता, और वालि सुग्रीवके श्वशुर, भयंकर विक्रम करनेवालेथे, इससे उनके हाथ जोड प्रणाम कर सुग्रीवजी बोले ॥ २ ॥ और महर्षि मरीचिके पुत्र अर्चिष्मान् नामक महावानरसे जो कि अति शूरवीर कपिगणोंसे सेवित, महेन्द्राचल सम आकारवाला और प्रकाशमान था ॥ ३ ॥ और बुद्धिमें खगपति तुल्य द्युतिमान् और मरीचिके सुन्दर माला धारण किये मारीच नाम अति गुण धाम और महाबलवान् ॥ ४ ॥ ऋषि-पुत्रथे उन सबको पश्चिम दिशामें जानेके लिये सुग्रीवजीने आज्ञा दी, इनके साथ दो लक्ष यूथपति व और वानरोंकी तो कुछ गिन्तीही नहीं ॥ ५ ॥ हे वानरो ! सुषेण सहित तुम लोग वैदेहीजीको जाय कर ढूंढो, प्रथम सौराष्ट्र देश फिर बाह्लिक तिसके आगे चंद्र चित्र ॥ ६ ॥ इत्यादि मनोहर विभवशाली जनपद, और बहुतसे पुर और पुन्नाग, वन, बकुल उद्दालक ॥ ७ ॥ तथा केतक आदिके वृक्षोंसे व्याप्त कुक्षि देशको ढूंढना, हे वानरश्रेष्ठो ! पश्चिमकी ओरको बहनेवाली शीतल जल युक्त पवित्र नदियेंभी ढूंढना ॥ ८ ॥ तपस्वियोंका वन बडे दुर्गम पर्वत, अति ऊंची

वनस्थलियें, जल रहित देश, शीतल शिलायें ॥ ९ ॥ और अनेक भांतिके पर्वत समूहसे युक्त पश्चिम दिशाको खोजना फिर पश्चिम दिशाको आकर पश्चिम समुद्र देखोगे ॥ १० ॥ इस समुद्रमें बडे २ नाके मगर आदि जलजीव भरे हैं इसके आगे केतक खंड और गहन तमाल वनके मध्य ॥ ११ ॥ और नारियलके काननमें वानरगण विहरते हैं;इन सब स्थानोंमें दुष्ट रावणके स्थानसहित सीताजीको हूँढना ॥ १२ ॥ और समुद्रके किनारेकी भूमिवाले सब पर्वत, वन, और मुरची पत्तन, और रमणीक जटापुर ॥ १३ ॥ अवंती, और दो पुरी, अंगलेपा व आलक्षित नामक समस्त वन विशाल राज्य और विशाल वाणिज्यके स्थान देखना॥ १४ ॥ वहांपर सिन्धुनद और सागर संगमके स्थलमें महा तरु समूह समन्वित शत शिखरवाला, सोमगिरि नामक एक महान् पर्वतहै ॥ १५ ॥ उस पर्वतके रमणीक प्रस्थ देशमें सिंह नामक पक्षी वास करतेहैं; वह तिमि, मत्स्य, और हाथियोंको पंजेसे पकडकर अपने घोंसलेमें लेजाय भक्षण कर लेतेहैं ॥ १६ ॥ उन सिंह पक्षियोंमें गये और गिरिशृङ्गोंपर सन्तापित व उद्दीप्त हाथी मेघोंके गर्जनकी समान शब्द किया करतेहैं ॥ १७ ॥ यह हाथियोंके झुण्ड उस पर्वतके किनारे जो समुद्र है उसपरभी विचरा करतेहैं उस पर्वतका एक सुवर्णमय शृंग इतना ऊँचा है मानो स्वर्गको चला गयाहै, और उसपर भांति २ के चित्र विचित्र वृक्ष लगेहैं; ॥ १८ ॥ वहांपर तुम सब वानर लोग काम रूप धारण करकै शीघ्रतासहित सब स्थानोंको ढूंढना । उसी समुद्रमें पारियात्र नाम पर्वतकी चोटी कोटि शत योजन विस्तारकीहै ॥ १९ ॥ हे वानर गणो ! उस कोटिका देखना दुर्गम होने परभी तुम लोग उसे देखोगे । जहांपर चौवीस कोटि २४०००००००० गन्धर्व और तपस्वी गण मिलकर तपस्या करतेहैं॥ २० ॥ यह सब अग्निकी तुल्य दीप्यमान घोर पापकारियोंके जलानेको पावककी शिखाके तुल्य प्रकाशित चारों ओर घूमा करते हैं ॥२१॥ भयंकर कर्मकारी वानर गण ऐसे चले जायँ कि मानों उनको देखाही नहीं और उनके साथ कोई छेड छाडभी न की जाय और वहांका कोई फल भी न तोडा जाय ॥२२॥ क्योंकि वह धीर्य वीर्यशाली महाबलवान् दुर्द्धर्ष वीर गण उन फलोंकी रक्षा किया करते हैं ॥ २३ ॥ वहांपर जानकीजीके ढूँढनेमें यत्न कर्त्तव्यहै यद्यपि उन गन्धर्वोंका प्रभाव बडाहै तथापि कपिपनकी चेष्टा करते हुए तुम रहना क्योंकि विना अपराध किये उन लोगोंसे किसीको भयका कारण नहीं होता ॥ २४ ॥

वहींपर वैदूर्य मणिके रंगका और हीरेकी चमककी समान अनेक भांतिके वृक्षोंसे शोभित ॥ २५ ॥ शत योजनका चौडा और शोभायमान वज्रनाम महा पर्वत है उस पर्वतकी समस्त बडी-२ कन्दरायें देखना ॥ २६ ॥ उसके आगे समुद्रके चतुर्थ भागमें टिका हुआ चक्रवान् नाम पर्वत है, वहींपर विश्वकर्माजीने सहस्र आरागजका चक्र बनायाथा ॥ २७ ॥ वहींपर पुरुषोत्तम विष्णु भगवान्‌-जीने पञ्चजन और हयग्रीव नामक दो दानवोंका संहार करकै शंख और चक्र ग्रहण कियाथा ॥ २८ ॥ उस पर्वतके मनोहर शृङ्गोंपर और समस्त विशाल गुफाओंमें वैदेहीजी और रावणको ढूंढना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ २९ ॥ इसके आगे अगाध समुद्रमें चौंसठ योजनकी उँचाईवाला सुवर्णशृङ्ग युक्त वराह-नामक पर्वत है ॥ ३० ॥ उस पर्वतपर प्राग्ज्योतिष नामक सुवर्णमय पुरहै उसमें नरक नामक दुष्टात्मा दानव वास करता है ॥ ३१ ॥ उस पर्वतके रमणीक कँगूरों और गुफाओंमें रावणके सहित जानकीजीको ढूंडना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ ३२ ॥ उस कांचन गर्भ शैलराजको नांघकर धारा और झरनों करकै सहित सर्व सोवर्ण नाम पर्नत दिखाई देगा ॥ ३३ ॥ उस पर्वतपर वराह सिंह व्याघ्रादि जन्तु गण सर्वदाही अपने शब्दकी प्रति ध्वनि श्रवण कर दर्पित हो शीघ्रतासे फिर गर्जन करने लगते हैं ॥ ३४ ॥ इसके आगे मेघ नामक पर्वत है इस पर्वतपर पाकशासन श्रीमान् इन्द्रजीका देवताओंने सुरराज्यपर अभिषेक कियाथा ॥ ३५॥ इस महेन्द्र परिपालित अचल राजको नांघकर तुम सुवर्णके साठ हजार पर्वत देखोगे ॥ ३६ ॥ यह सब पर्वत प्रभात कालके सूर्यके समान प्रकाशित हैं और फूले फले हुये सुवर्ण मय वृक्षोंके समूहसे शोभायमान हैं ॥ ३७ ॥ उन साठ हजार पर्वतोंके मध्यमें एक अति उत्तम राजाके समान सुवर्ण मय मेरुपर्वत है; पहले सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर इसको वरदान दियाथा ॥ ३८ ॥ वह वरदान इस प्रकार दियाथा कि एक समय नारायणने उस अचलसे कहाकि हमारे प्रसादसे तुम्हारे आश्रित समस्त पर्वत दिन रात्रिमें सुवर्ण मय हो जायँगे ॥ ३९ ॥ और तुम्हारे ऊपर जो देव दानव और गन्धर्व गण वास करेंगे वह हमारे भक्तगण सुवर्णकी समान प्रभावान हो जायँगे ॥ ४० ॥ इस सावार्णि मेरु पर्वत पर विश्वदेव गण वसुगण, मरुद्गण, और सुरलोकके रहनेवाले देवता लोग आगमन करकै पश्चिमसन्ध्यामें ॥ ४१ ॥ सूर्यदेवकी उपासना करते हैं सूर्य देव उनसे पूजित और

सर्व जीवोंकी दृष्टिसे अदृश्य हो अस्ताचलको प्राप्तहोजाते हैं ॥ ४२ ॥ इसके आगे दशहजार योजनके विस्तारवाले अस्ताचल पर्वत पर सूर्य नारायण आधे मुहूर्तमें मेरु पर्वतसे पहुँचते हैं ॥ ४३ ॥ उसी पर्वतके शिखरपर बडे २ दिव्य, सूर्यकी समान प्रभावाला बहुत धवरहरेवाला भवन विश्वकर्माका बनाया हुआ है ॥ ४४ ॥ वह अनेक प्रकारके पक्षी और वृक्ष समूहके चित्रित होनेसे शोभायमान है; यहीं पाश हस्त वरुण देवजी का स्थान है ॥ ४५ ॥ आगे मेरुकी चोटीमें दश शाखा वाला सुवर्ण मय परम सुन्दर एक ताल वृक्ष शोभायमान हो रहाहै, उस पर्वतके मूलमें विचित्र वेदी बनी हैं ॥ ४६ ॥ उस पर्वत के समस्त दुर्गम स्थानोंमें, सरोवरोंमें, और नदियोंमें, तुम सब जनोंको जानकी जी और रावणका ढूंडना उचित है ॥ ४७ ॥ इसी मेरु पर्वतपर ब्रह्माजी के तुल्य देदीप्यमान अपने तेजसे प्रकाशित धर्मात्मा मेरु सावर्णि नाम विख्यात तपस्वी वास करते हैं ॥ ४८ ॥ उन सूर्यके समान प्रकाशित महर्षि मेरु सावर्णिजीको शिर झुका प्रणाम करके जानकी जीका समाचार पूछना॥४९॥रात्रिके बीत जानेपर सूर्य नारायण उदयाचलपर्वतसे मेरु सावर्णितकप्रकाश करके अस्त हो जातेहैं॥५०॥हे कपिवरगण! वानरगण यहीं तक जासकतेहैं कि जहांतक सूर्यका प्रकाश और मर्यादा है, और इसके आगे हम कुछभी नहीं जानते हैं ॥ ५१ ॥ रावणका स्थान और जानकीजीके निकट गमन करनेके लिये अस्ताचलतक चले जाकर एक मास पूर्ण होते २ लौट आओ ॥ ॥ ५२ ॥ एक माससे ऊपर वहांपर मत लगाना और जो एक माससे पीछे आवे गा उसको हम मार डालेंगे, हमारे श्वशुर महावीर्य सुषेण तुम लोगोंके साथ जायँगे ॥ ५३ ॥ तुम सब उनकी आज्ञामें रहना, और जो कुछ यह कहैं वह श्रवण करना क्योंकि यह हमारे श्वशुर बडे हाथवाले और महाबलशाली हैं इससे गुरु हैं ॥५४॥ और तुम सबभी पराक्रमी और कर्त्तव्य कार्यका निश्चय करनेवाले हो; तथापि इनको नियम बतलानेवाला जानकर पश्चिम दिशाको खोजो ॥ ५५ ॥ जब उपकारका बदला प्रत्युपकार देदेंगे तब हम लोग कृतकार्य हो जायँगे, इसके सिवाय रावणका वध होनेतक जो समस्त प्रिय कार्य हैं उन सबको तुम लोग देश काल और अर्थके अनुसार विचार लेना ॥ ५६ ॥ तब सुषेणादि निपुण वानरगण सुग्रीवजीके विनीत वचन सुन उनसे बिदा ले प्रीति सहित पश्चिम दिशाको चले गये ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां द्विचत्वारिंशः सर्गः॥ ४२॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३.

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी, अपने श्वशुरको पश्चिम दिशामें भेजते हुये और शतबल नामक वानरनाथसे कह ॥ १ ॥ बोले, सर्वज्ञ कपिराजने जो वचन कहे वह सबही अपने और श्रीरामचन्द्रजीके हितके लियेथे ॥ २ ॥ सुग्रीवजी बोले कि हे विक्रमशालिन् ! तुम अपने मेलके शतसहस्र वनवासी वानरोंके साथ समस्त यमसुत मंत्रिगणोंके सहित यात्रा करो ॥ ३ ॥ और हिमालय पर्वतको कर्णफूल बनाये उत्तर दिशामें जायकर यशस्विनी श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको ढूंडो ॥ ४ ॥ हे कृतार्थ अर्थ ज़ाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! श्रीरामचन्द्रजीका यह प्रियकार्य पूरा हो जानेपर हम उनके ऋणसे छूट जायँगे ॥ ५ ॥ महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने हमारा प्रियकार्य सिद्ध कियाहै सो यदि हम उनका कुछभी प्रत्युपकार करसकें तो हमारा जीवन सफल होजाय ॥ ६ ॥ जिसने अपने साथमें कोई उपकार नहीं कियाहो, यदि उसके साथ भी कोई उपकार कर दिया जाय तोभी जीवन सफल होजाता है फिर जो कि पहलेही उपकार कर चुका हो उसका कार्य सिद्ध करनेमें और कहना ही क्याहै ॥ ७ ॥ तुम लोग हमारे हितकी कामना करते हुए जिससे जानकीजी मिलजायँ या उनका पता लगजाय, इस प्रकारकी बुद्धि धारण करो, ऐसा करना सब भांतिसे तुमको उचितहै ॥ ८ ॥ शत्रुओंके पुर जीतनेवाले श्रीरामचन्द्रजी सर्व प्राणियोंके मान्य और प्रिय हैं सो यह हमारे ऊपर परम प्रसन्न होरहे हैं ॥ ९ ॥ तुम लोग अपनी बुद्धि और विक्रमसे जैसे होसके वैसे बहुतसे दुर्गम स्थान, नदी और पर्वत सबमें जानकीजीको ढूंढो ॥ १० ॥ उस उत्तर दिशाकी ओर जानेमें म्लेच्छ, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत, कुरु, मद्रक ॥ ११ ॥ कम्बोज, वरद, यवन और शकोंके नगर देखकर हिमालय पर्वतको खोजना ॥ १२ ॥ लोध्र और पद्मक वनमें और देवदारुके वनमें जानकीजी और रावणका अनुसंधान करना तुम्हारा कर्तव्यहै ॥ १३ ॥ फिर सोमाश्रमपर जाय देवता और गन्धर्वगणोंसे सेवित बडे २ कँगूरोंसे युक्त कालनामक पर्वतको तुम लोग देखोगे ॥ १४ ॥ उस पर्वतकी बडी कन्दराओंमें और सब दुर्गम स्थानोंमें उन निन्दा रहित श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको तुम लोग ढूंढना ॥ १५ ॥ उस काल पर्वतको नाँघकर हेमगर्भ महापर्वत सुदर्शनपर तुम लोग जाओगे ॥ १६ ॥ फिर अनेक भांतिके पक्षियोंसे परिपूर्ण और विविध प्रकारके वृक्षोंसे शोभायमान पक्षिलोगोंका वासस्थान देवसखा नाम महापर्वतहै ॥ १७ ॥ उसकी सुवर्णमय

कन्दराओंमें, और समस्त निर्झरोंमें रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूंढना ॥ १८ ॥ उस देवसखा पर्वतके आगे शत योजनका लम्बा चौडा एक मयदानहै, जिसमें पर्वत, नदी, वृक्ष, और कोई जन्तु भी नहीं हैं॥ १९॥तुम सब इस रोमहर्षण मयदानको नांघकर श्वेत वर्णवाले कैलासपर्वतको पाकर हर्षितचित्त होगे॥ २० ॥ उस कैलास पर्वतपर श्वेतवर्ण मेघकी प्रभाके समान सुवर्णसे सजाया हुआ मनोहर कुबेरजीका भवन विश्वकर्माजीने बनायाहै ॥२१॥ उस भवनमें बहुत सारे कमलफूलोंके सहित हंस और कारंडवादि जल पक्षियोंसे परिपूर्ण अप्सरा झुन्डोंसे सेवित एक तलैया विद्यमानहै ॥२२॥ उस भवनमें धनद यक्षराज सर्व लोकोंके नमस्कार किये जानेके योग्य विश्रवाके पुत्र श्रीमान् कुबेरजी गुह्यक गणोंके साथ आनंद सहित वास किया करतेहैं ॥ २३ ॥ उस कैलासपर्वतकी चन्द्र तुल्य प्रकाशित, पर्वत-श्रेणीमें और गुफाओंमें जरा जरा करके रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूंढना ॥ २४ ॥ वहांसे चलकर तुम लोग क्रौंचगिरि देखोगे, उस पर्वतके दुर्गम बिलोंमें बडी सावधानीसे प्रवेश करना, क्योंकि उसके ऊपरके बिल बडी कठिनाईसे प्रवेश करनेके योग्यहैं ॥२५॥ और उस पर्वतपर सूर्यकी समान प्रभावाले महात्मा देवरूप, महर्षि गण देवता लोगोंसे प्रार्थना कियेजानेपर वहां वासकरतेहैं ॥२६॥ क्रौंच पर्वतकी और दूसरी गुफायें, और कंगूरे, दरैंव नितम्बोंको भली प्रकार ढूंडना ॥२७॥ इसी पर्वतका एक शिखर वृक्षोंसे रहित कामशैल और पक्षीगणोंका आश्रय स्थान मानस सरोवरहै, वहांपर देवता, राक्षस और मनुष्यादि जीवगणोंके पहुँचनेकी गति नहीं है ॥ २८ ॥ इसकारणसे युक्तिपूर्वक तुम सब उस पर्वतके छोटे और बडे शृंगोंको देखना, क्रौञ्च पर्वतसे आगे चलनेपर मैनाक नाम पर्वत दिखाई देगा ॥ २९ ॥ उसपर मयदानवने आपही अपने रहनेके स्थानको बनायाहै । उस मैनाकके शृंग; प्रस्थ; और कन्दराओंमें सीताजीको ढूंढना ॥ ३० ॥ यह मैनाक पर्वत अश्वमुखी (किन्नरी) स्त्रियोंका भवन है, इस देशको नांघकर सिद्धसेवित आश्रमोंपर पहुँचोगे ॥ ३१॥वहांपर सिद्ध, वैखानस, वालखिल्य; आदि तपस्वीगण वास करतेहैं, वह पाप रहित सिद्ध व तपस्वि गणोंके वन्दन करनेके योग्य हैं ॥ ३२ ॥ इस कारण विनय सहित उन सब लोगोंसे सीताजीका समाचार पूछना उचितहै । वहांपर एक वैखानस नाम सरोवरहै । जिसमें सुवर्णके कमल खिल रहेहैं ॥ ३३ ॥ उस सरोवरपर प्रभात कालके सूर्यकी समान रंग वाले शुभ

हंसगण भ्रमण किया करते हैं और कुबेरजीकी सवारीका सार्वभौम नामक ॥ ३४॥ गज अपनी हथनियोंके साथ वहां विचरा करताहै, इस सरोवरके नांघनेपर सूर्य चंद्र विहीन और नक्षत्र व मेघोंसे रहित नित्य आकाशस्थल है॥ ३५॥ वहांपर तो केवल सूर्य नारायणकी किरणोंसे प्रकाश होता रहता है; वहांपर अपनेही तेजकी प्रभासे दीप्तिमान देवसमान सिद्धलोग तप किया करतेहैं ॥ ३६॥ उस देशके आगे शैलोदा नामक नदी बहतीहै, उसके दोनों किनारोंपर कीचक नामक बाँस उत्पन्न होतेहैं ॥ ३७॥ वही बांस सिद्धलोगोंको शैलोदके पार लेजातेहैं और फिर वही इस पारको लेआतेहैं। इसी नदीके दूसरी पार पुण्यात्मा जनोंके निवासका स्थान उत्तर कुरुदेश है ॥ ३८ ॥ उस उत्तरकुरुके रहनेवाले जन, सुवर्ण, पद्मसमान्वित पुष्करिणियोंके जलसे तर्पण किया करतेहैं ॥ ३९ ॥ वहांपर नीलवर्णके जिनमें वैदूर्य मणियोंके पत्ते लगरहे ऐसे सुवर्णमय लाल कमलफूलोंसे विभूषित सहस्र २ नदियां विराजमानहैं ॥ ४० ॥ प्रभातकालके सूर्यके समान प्रकाशित समस्त जलाशय, महामणि, महारत्न और विचित्र सुवर्णकी केशरवाले ॥ ४१ ॥ नीलवर्णके कमलफूलोंसे व वनोंके समूहसे बडे २ मोलके मुक्तामणियोंसे और धनसे यह देश पूर्णहै ॥ ४२ ॥ वहांपर सब नदियोंके किनारे सुवर्णमय होरहेहैं, जिससे कि बडी शोभा होतीहै, और उनके किनारोंपर रत्नोंके तरुवर लग रहे हैं ॥ ४३ ॥ उन सब अग्निसमान प्रकाशित वृक्षोंमें सुवर्णके फूल लगे हैं; उन वृक्षोंमें नित्य फल फूल लगे रहते और पक्षीगण मीठी वाणीसे बोला करतेहैं ॥४४॥ किसी २ वृक्षमें दिव्य रसकी सुगन्धि और समस्त कमनीयपदार्थ उत्पन्न हुआ करतेहैं व और जितने उत्तम २ वृक्षहैं वह अनेक प्रकारके वसन उत्पन्न किया करतेहैं ॥ ४५ ॥ किसी २ श्रेष्ठ वृक्षमें स्त्री और पुरुषोंके पहरने योग्य उत्तम गहने उत्पन्न होतेहैं जो मुक्ता और वैदूर्यमणियोंसे चित्रित होतेहैं ॥ ४६ ॥ किन्हीं २ वृक्षोंमें सब ऋतुओंमें पहरनेके योग्य वस्त्रही फला करतेहैं; और तरुवरमें बडे मोलके खिलौने फला करतेहैं ॥ ॥ ४७ ॥ बहुतसे वृक्षोंमें चित्र विचित्र विस्तरे फला करतेहैं किन्हीं २ वृक्षोंमें मनोहर हार ॥ ४८ ॥ और बहुतसे वृक्षोंमें बडे मोलकी सवारियां और खाने पीनेकी वस्तुयें उत्पन्न होतीहैं, उस स्थानमें रूप यौवन सम्पन्न गुणयुक्त स्त्रियां ॥ ४९ ॥ दीप्यमान गन्धर्वगण, किन्नरगण, सिद्धगण, नागगण, विद्याधरगण, अपनी २ स्त्रियोंके सहित वहां विहार करतेहैं ॥५०॥ वह सबही पुण्यवान्, सबही रतिपरायण

सबही कामभोगयुक्त होते और अपनी २ स्त्रियोंके सहित वास करतेहैं ॥ ५१ ॥ वहांपर समस्त जीवगणोंके रमणीक हास्य स्वरके सहित गीत, और बाजोंकी ध्वनि सदाही सुनाई आया करतीहै ॥ ५२ ॥ वहांपर कोईभी असन्तुष्ट नहीं, किसीको किसी प्यारी वस्तुका वियोग नहीं । वहांपर दिन २ मनोहरगुणोंकी भरती हुआ करतीहै ॥ ५३ ॥ जब उस पर्वतसे तुम आगे चलोगे तो उत्तरसमुद्र आवैगा वहांपर सुवर्णमय सोम नामक एक महा पर्वत विद्यमान है ॥ ५४ ॥ यद्यपि वहांपर सूर्यका प्रकाश नहीं है तथापि सोम पर्वतकी प्रभासे ही वहां ऐसा प्रकाश रहताहै कि, जैसा सूर्ययुक्त देशमें रहता है ॥ ५५ ॥ वहांपर विश्वात्मा एकादश रुद्रात्मक महादेवजी और देवेश्वर ब्रह्माजी सब ब्रह्मर्षिगणोंके साथ वास करतेहैं ॥ ५६ ॥ कुरुके उत्तर देशमें तुमलोग कदापि मतजाना, क्योंकि वहांपर और कोई जीवधारी नहीं जा सकता ॥ ५७ ॥ वह सोमगिरि नामक पर्वत देवतालोगोंकेभी जानेके योग्य नहीं है तुम लोग केवल उसका दर्शनही करके लौट आना ॥ ५८ ॥ हे वानरश्रेष्ठगण वानरलोग यहींतक जा सकते हैं, इसके आगे सीमा रहित और सूर्यरहित स्थानों को हम नहीं जानते ॥ ५९ ॥ हमने जो स्थान बताये, उन सबही स्थानोंको तुम लोग ढूंढना, और जो स्थान कि, हमारे बतलानेसे रह गये हों, उन सबको अपनी बुद्धिके अनुसार तुमलोग खोजना ॥ ६० ॥ ऐसा करनेसे श्रीरामचन्द्रजीका और हमारा अति प्रियकार्य होजायगा । हे अनिलतुल्य ! और अनल तुल्य वानरगण ! उन जनककुमारीका पता लगानेसे, हम तुम सबही निःसन्देह कृतकृत्य हो जायँगे ॥ ६१ ॥ फिर कृतार्थ हो हमसे पूजित और शत्रुरहित हो सब मनोहर गुणोंसे विभूषित और भूतगणोंसे आश्रय स्वरूप हो अपनी प्रियाके सहित सुख स्वच्छन्दतासे तुमलोग घूमना ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषाया त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४.

यद्यपि सब वानरोंको सुग्रीवजीने सब ओरको जानेके लिये आज्ञा दी. तथापि सुग्रीवजीने निश्चय कियाथा कि, कार्यकी सिद्धि हनुमानजीसेही होगी इस कारण कपिश्रेष्ठ हनुमानजीसे ॥ १ ॥ वानरनाथ सुग्रीवजी परम प्रीतिसे बोले, क्योंकि यह हनुमान्‌जी पवनके पुत्र और बडे पराक्रमीथे ॥ २ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! भूमिमें,

वा पक्षियोंके उडनेके स्थान अन्तरिक्षमें या मेघोंके चलनेके स्थान अम्बरमें, अथवा स्वर्गमें किम्वा सलिलमें, कहींभी तुम्हारी गति नहीं रुक सकती ॥ ३ ॥ असुर, गन्धर्व, नाग, नर और देवताओंके लोक व समुद्र, पृथ्वी और पातालादि समस्त लोकोंको तुम जानते हो ॥ ४ ॥ हे महावीर ! क्या गतिमें, क्या तेजमें, क्या शीघ्रतामें, सबमें तुम अपने पिता तेजस्वी पवनकीही समान हो ॥ ५ ॥ और तुम्हारी समान तेजशाली जीव तीनों लोकमें नहीं है; इस कारण जिससे सीताजीका पता लगजाय ऐसा यत्न करनेमें तुमको विशेष यत्न करना उचितहै ॥ ६ ॥ हे नीतिपंडित हनुमन् ! तुममेंही बल, बुद्धि, पराक्रम देश और कालज्ञान और नीति यह समस्तही विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्जीसेही कार्यकी सिद्धि विचार करके, और हनुमानजीके बल विक्रमकी और सीताजीके उद्धार करनेकी गुरुताको मनहीमनमें विचारकरने लगे ॥ ८ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने विचारा कि, कपिराज सुग्रीवजी यह समझेहुये हैं कि, हनुमानजीसेही कार्यकी सिद्धि होगी और हमाराभी अधिक तर यही विचारहै कि, इससेही कार्यकी सिद्धिहोगी ॥ ९ ॥ यह हनुमानजी अपने कर्मोंसे प्रसिद्ध हुयेहैं और राजाभी इनके ऊपर कृपा करताहै, यदि यह वीरकेशरी सीताजीके ढूँढनेको जायँगे तो अवश्यही कार्यकी सिद्धि होगी॥ १० ॥ महा तेजस्वी रामचन्द्रजी हनुमानजीको कार्यके साधन करनेमें श्रेष्ठ विचार करके कृतार्थकी समान सन्तुष्ट होगये हर्षके कारण उनकी सब इन्द्रियां प्रफुल्लित होगईं ॥ ११ ॥ तिसके पीछे परवीरघाती श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर एक अंगूठी जिसपर उनका नाम खुदा हुआथा सीताजीको निशानी देनेके लिये हनुमानजीको अर्पण करदी ॥ १२ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! इसनिशानीसे जानकीजी तुमको निश्चित हमारे निकटसे आया हुआ झटपट जानजायँगी और विश्वाससे तुमको देखेंगी॥ १३ ॥ हे वीरेन्द्र ! तुम्हारी दृढ चित्तता और अनुपम विक्रम और सुग्रीवजीका आदेश इन सबसेही हमको अपने कार्यकी सिद्धि जान पडतीहै ॥ १४ ॥ यह कपिश्रेष्ठ हनुमानजी उस अँगूठीको माथे चढा हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीके दोनों चरणोंकी वन्दना करके गमन करनेको तैयार हुये ॥ १५ ॥ पवनपुत्र कपिवीर; वह बडीभारी सेना संग लेकर मेघ रहित विमल आकाशमें तारा गणोंसे शोभित विशुद्ध मण्डल चन्द्रमाके समान शोभा पाने लगे ॥ १६ ॥ हे सिंहविक्रम ! अतिबल शालिन् !

पवनपुत्र ! हमने तुम्हारेही बलका आश्रय कियाहै; तुम इस समय ऐसा विधान विपुल विक्रमसे करो कि जिससे जानकीजी प्राप्त होजांय ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्कि० भाषायां चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ४५.

अनन्तर कपिराज सुग्रीवजी सब वानरोंको पुकारकर उनसे श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धि करनेके लिये कहने लगे ॥ १ ॥ हे वानरश्रेष्ठगण ! तुम सबही हमारी अतिउग्र आज्ञाको जानकर रावण और जानकीजीको खोजो वानरश्रेष्ठ यह अपने स्वामीकी उग्रआज्ञा सुनकर ॥ २ ॥ टीडीकी समान पृथ्वीको छायकर समस्त वानर गण गमन करने लगे, श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजीके सहित उस प्रस्रवणपर्वतपर बसे ॥ ३ ॥ सीताजीका समाचार जाननेमें एक महीनेकी अवधि निश्चय कर रामचन्द्र जी वहां बसे फिर हिमाचलसे युक्त रमणीक उत्तर दिशाको ॥ ४ ॥ कपिश्रेष्ठ शत वलि अपनी सेनाको लेकर गया और विनत नामक यूथनाथ उत्तर दिशाको चला ॥ ५ ॥ और तार अंगदादिसहित पवनपुत्र हनुमान्जी अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिण दिशाको गये ॥ ६ ॥ और वानरशार्दूल सुषेण वरुणजीसे पाली जाती हुई घोर पश्चिम दिशाकी ओर सिधारा ॥ ७ ॥ तब सब ओरको यथानुरूप वानरोंकी सेनाको भेजकर कपिनाथ राजा सुग्रीवजी हर्षित चित्त हुये ॥ ८ ॥ इसप्रकार भेजे जाकर सकल वानरयूथप अपनी २ बताई हुई दिशाओंको शीघ्रतासे गमन करते हुये ॥ ९ ॥ महाबलवान् वानर दल, नाद, उच्चनाद, गर्जन और क्रोधपूर्वक अनेक प्रकारके शब्द करते हुये दौडे ॥ १० ॥ वानरराज सुग्रीवजी करके भेजे हुये सब वानर हाथ जोडकर "हम रावणको मार डालेंगे" हम जानकीजीको ले आवेंगे ॥ ११ ॥ कोई २ बोले कि हम इकलेही रणस्थलमें रावणको पाय सहायसहित उसको मार जानकीजीको ले आवेंगे ॥ १२ ॥ कोई बोले कि आप धीरज धरैं यदि जानकीजी पातालमें भी हों तो भी श्रमसे कम्पायमान होती हुई कामिनीको "स्थिर होओ" इस प्रकारसे समझा दृढता सहित हम अकेलेही उनको वहांसे ले आवेंगे ॥ १३ ॥ हम वृक्षोंको उखाड डालेंगे, हम पर्वतोंको तोड फोड डालेंगे, हम पृथ्वीको विदीर्ण कर डालेंगे, हम समुद्रको खल बला डालेंगे ॥ १४ ॥ हम एक छलांगमें एक योजन, हम एक शतसे भी अधिक योजन एक छलांगमें कूदजांयगे ॥

॥ १५ ॥ हमारी गति पृथ्वीमें, समुद्रमें, पर्वतोंमें व वनोंमें पातालमें कहीं भी नहीं रुक सकती, हम सबही स्थानोंमें जा सकतेहैं ॥ १६ ॥ इस प्रकार उन वानर राज सुग्रीवजीके निकट एक २ वानर अपने बलके दर्पसे ऐंठते अकडते ऐसा कहने लगे ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६.

जब चारों ओरको सब वानरोंके झुण्ड चले गये तब श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे कहा कि तुमने समस्त पृथ्वीमण्डलका समाचार किस प्रकारसे जाना ? ॥ १ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो सुग्रीवजी शिरनवाय श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि आप श्रवण करें हम सब विस्तारसहित कहते हैं ॥ २ ॥ जब भैंसेकी समान आकारवाले दुन्दुभी नामक दानवके पीछे धावमान होकर वाली मलयाचलपर्यंत चलागया ॥३॥ जब वह महिष मलयाचलकी गुफामें प्रवेश करगया तब वाली भी उसके वध करनेकी वासनासे उस पर्वतकी गुफामें बैठा ॥ ४ ॥ हम उस गुफाके द्वार पर विनीत हो टिके रहे और एक संवत बीतगया तौभी वाली नहीं लौटा ॥ ५ ॥ फिर रुधिरकी धारासे वह बिल परिपूर्ण होगया तिसको देख हम विस्मित और भाईके शोकसे जर्जरित हो गये ॥ ६ ॥ फिर हमने बुद्धिरहित होकर स्थिर किया कि बडा भाई वाली मारागया ऐसा समझकर पर्वतकी समान एक खंड बिलके द्वारपर लगाय उसको बंद किया ॥ ७ ॥ हमने विचारा कि महिष इसमेंसे निकलनेका उद्योग करेगा तो आपही इससे दबकर मर जायगा ऐसा विचार, और भ्राता वालीके जीवनसे निराशहो हम किष्किन्धाको चले आये ॥ ८ ॥ नगरमें आय तारा और रुमा व बडे राज्यको पाय बन्धु बान्धवोंके सहित हम सुखसे वास करने लगे ॥ ९ ॥ फिर वानरश्रेष्ठ वाली उस दानवको मारकर नगरमें आया तब हमने भयसे भीतहो और गौरवके हेतु फिर उसको राज्य देदिया ॥ १० ॥ दुष्टात्मा वाली व्यथित हो हमारे मारडालनेकी इच्छा करता हुआ हमारे पीछे दौडा तब हमभी अपने मंत्रियोंके सहित भागने लगे ॥ ११ ॥ बरन् हमारे सबही साथी वालीके भयसे भागे हमने भागते २ मार्गमें अनेक भांतिकी नदियें वन नगर इत्यादि देखे ॥ १२ ॥ इसी प्रकारसे सब भूमि जिसका आकार अलातचक्रकी

समानहै, हमने गोपदके गढेकी समान अवलोकन करली ॥ १३ ॥ फिर पूर्व दिशामें जायकर विविध भांतिके वृक्ष गुफा सहित पर्वत और अनेक प्रकारके रमणीक सरोवर देखे ॥ १४ ॥ वहांपर धातुमंडित पर्वत और नित्य अप्सराओंके रहनेका स्थान क्षीरसमुद्रभी देखा ॥ १५ ॥ वहां भी हमारे पीछे २ वाली आया तब वहांसे हम भागते २ फिर उदयाचलपर्वतपर आये॥ १६ ॥ पूर्व दिशासे हम विन्ध्याचल और विविध वृक्षोंसे युक्त चन्दन वृक्ष परिशोभित दक्षिणदिशाको भागे ॥ १७ ॥ वहांपरभी दूसरे पर्वतपर हमने अपने पीछे वालीको भागते हुए देखा तब हम वहांसेभी भागे और फिर पश्चिम दिशाको आये ॥ १८ ॥ पश्चिम दिशामें विविध देश, अनेक पर्वत, और गिरिश्रेष्ठ अस्ताचलको देख, वहांभी वालीके आनेका समाचार पाय फिर उत्तर दिशाको भागे ॥ १९ ॥ उत्तर दिशामें पहुँच हिमवान्, मेरु और उत्तर समुद्रतक हम चले गये, परन्तु वालीके भयसे हमको कहीं शरण नहीं मिली ॥ २० ॥ तब बुद्धिमान् हनुमान्‌जीने हमसे कहा कि, हे राजन् ! इस समय हमको याद आया कि यह वानरराज वाली ॥ २१ ॥ मतंगमुनिके शापसे शापित जब उस आश्रममंडलमें प्रवेश करैगा तब उसके मस्तकके शत खंड हो जाँयगे ॥२२॥ वहांपर वास करनेसे हम सब बेखटके सुखसे वास कर सकेंगे हे राम ! जब हनुमानजीने ऐसा कहा तो हम ऋष्यमूक पर्वत पर आये ॥ २३ ॥ वहांपर वाली मतंगजीके शापभयसे भीत हो नहीं आया । हे राजन् इस प्रकारसे हम समस्त पृथ्वीमण्डल दर्शन करके इस गुफामें आयेथे ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्कि०भाषायां षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७.

जानकीजीके ढूंढनेके निमित्त आज्ञा पायकर सब कपिश्रेष्ठ शीघ्रतासे अपने लिये नियत की हुई दिशाको गये ॥ १ ॥ वह लोग, सरोवर, नदियें, तृणस्थान (काछा) आकाश, नगर, सरित, दुर्गम स्थान और सब देश खोजनेलगे ॥ २ ॥ समस्त वानरगण सुग्रीवजीके बताये हुए पर्वत वन और कानन सहित सब देशोंको ढूंढने लगे ॥ ३ ॥ वह दिनके समय सीताजीके ढूंढनेको आकाशमार्गमें रहकर रात्रिके समय पृथ्वीपर आजातेथे ॥ ४ ॥ वह सब वानर दिनके समय देशोंमें समस्त ऋतुओं फलपुष्पशाली वृक्षोंको प्राप्त होकर रात्रिमें फलादि खाते और सोते॥ ५ ॥

जिस दिवससे गमन कियाथा उस दिवसको प्रथम लगा कर एक मास बीतनेपर प्रथम दिनही निराशापूर्वक आय २ कर सुग्रीवजीके निकट एकत्र होने लगे ॥ ६॥ महावीर विनत अपने मंत्रियोंके सहित पूर्वकी ओर सीताजीको ढूंढ उनको न देख पाकर लौट आया ॥ ७॥ महाकपि शतबलि समस्त उत्तर दिशाको छान बीन कर अपनी सब सेनाके सहित लौट आया ॥ ८ ॥ सुषेण एक मास बीतजानेपर अपने सब वानरोंके सहित सीताजीको ढूंढकर सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ ॥ ९॥ उस प्रस्रवणगिरिपर लक्ष्मण सहित रामचन्द्रको प्रणाम कर सुग्रीवजीसे बोला॥ १०॥ हमने समस्त पर्वत, गहन, वन, सागर, नदी, जनपद, ग्राम, पुरादि ढूंढे ॥ ११ ॥ आपके बताये हुए सब गुहादि स्थान ढूंढे और अनेक भांतिके कुंजभी बार २ खोजे ॥ १२ ॥ उनमें जो गहन देशथे उनको वारंवार ढूँढा जो दुर्ग गहन विषम स्थानथे बडे २ जीवोंके रहनेके स्थानोंमें ढूंढा और उन्हें मारा जो रुरु देशहैं उन्हें बार २ देखा ॥ १३ ॥ हे वानरेन्द्र ! महावीर्यवान् और महाकुलमें उत्पन्न हुए हनुमान्जी सीताको अवश्यही जानसकेंगे क्योंकि, सीताजी जिस दिशाको गईहैं, पवनकुमार हनुमान्जी उसी दक्षिण दिशामें गयेहैं ॥ १४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्कि० भाषायां सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८.

इधर कपिवर हनुमानजी तार और अंगदजीके सहित सुग्रीवजीकी बताईहुई दिशामें गमन करनेलगे॥ १॥वह समस्त कपिगणोंकेसहित दूर गमनकरके विन्ध्याचलकी सघन गुहादि खोजनेलगे ॥ २॥ पर्वत और उनके आगे बहतीहुई नदी दुर्गमस्थान सरोवर अनेक तरुवर सघनवृक्षोंसे युक्त विविधपर्वत ॥ ३॥ भलीभांति सबवानरोंने दक्षिणदिशामें ढूँढा परन्तु कहीं जनककुमारी सीताजीको न पाया ॥ ४ ॥ वह वानर कंद मूल फलादि भक्षण करते जहां तहां उछल कर निर्जल, निर्जन शून्य गहन भयंकर दर्शन ॥ ५ ॥ गहन वन व औरभी वैसेही दूसरे अनेक स्थान ढूँढकर बहुत पीडित हुये क्योंकि गुहा और सघन वह देश खोज करना अत्यन्त दुष्करहै ॥ ६ ॥ निडर वानरवीर यूथपोंने वह देश परित्याग पूर्वक और एक बडे देशमें प्रवेश किया जहां कोई जा नहीं सकताथा वहां यह निडर ढूँढने लगे ॥ ७॥ उस स्थानके वृक्षों में फल फूल, या पत्ते कुछभी नहींथे नदियोंमें जल नहींथा, और कंदभी नहीं पाया जाता ॥ ८ ॥ वहांपर भैंसे नहीं फिरतेथे, मृग नहीं चरतेथे, बरन् हाथी, सिंह,

पक्षी इत्यादि औरभी कोई बनैले जीव नहींथे ॥ ९ ॥ वहांपर वृक्ष, औषधि, बेलें, वीरुध वहांपर स्थलोंमें दर्शनीय स्निग्ध पत्रवाले खिले कमलफूल ॥ १० ॥ सुगन्धि युक्त भ्रमरगणोंसे शोभित तडागभी नहीं दिखलाई देतेथे । उस स्थानमें कन्दु नामक महाभाग सत्यवादी तपोधन ॥ ११ ॥ क्रोधको जीतेहुए, दुर्द्धर्ष, नियमावलम्बी महर्षि रहतेथे । उनका इस वनमें एक दश वर्षका बालक पुत्र ॥ १२ ॥ मरणको प्राप्त होगया, तब धर्मात्मा उनमुनिने क्रोधित होकर उस सब महावनको शाप दिया ॥ १३ ॥ कि यह बडा वन कठिनसे प्रवेश करनेके योग्य मृग पक्षी इत्यादि और सब जीवोंको आश्रय देनेके अयोग्य हो जायगा उन सब वानरोंने उस वनके सब पर्वतोंकी कन्दरायें॥ १४ ॥ व नदियें आदि सबही खोजे पर उन महात्माओंने वहांभी जनककुमारी सीताजीको न पाया ॥ १५ ॥ अथवा सुग्रीवजीके प्रियकारी श्रीरामचन्द्रजीकी वनिता हरण करनेवाले रावणकोभी नहीं देखा वह सब वानर लता और झाडियोंसे ढके उस भयंकर ॥१६॥ वनमें प्रवेश करके देवताओंसे निर्भय हुए भयंकर कर्म करनेवाले एक राक्षसको देखते हुए वानरोंने उस पर्वताकार घोर असुरको देखकर ॥ १७ ॥ दृढरूपसे अपना तिरस्कार मानते हुए और जांघिया आदि वस्त्र पहरे वह बली राक्षसभी उनसमस्त पर्वताकार वानरोंको देखकर उनसे बोला कि, देखो मैं अभी तुम सबको मारे डालताहूं ॥ १८ ॥ यह कहकर घूसातान क्रोधकर वह उनसब वानरोंपै धाया उसको इस भांतिसे आता हुआ देखकर सहसा वालिकुमार अंगदजीने ॥ १९ ॥ यही रावणहै यह समझकर उसके एक चपेटलगाई वह वालिपुत्र अंगदजीके चपटाघातसे व्याकुल हो मुखमें रुधिर वमन करता ॥ २० ॥ उखडेहुए पर्वतकी समान वह राक्षस पृथ्वीपर गिरा, उस असुरके मृतक हो जानेसे वानरगण विजयलक्ष्मी पाय परमानंदको प्राप्त हुएं ॥ २१ ॥ फिर उन समस्त वानरोंने पर्वतकी समस्त कंदराओंको और बनको ढूंढा पर वहांभी सीताजीको न पायकर एक दूसरे वनमें प्रवेश करते हुये ॥ २२ ॥ वहांपर उन्होंने बडी घोर भयानक कई एक पर्वतकी कन्दरायेंभी देखीं उन सब वानरोंने वहांभी जरा २ करकै ढूंढा और सीताजीको नदेख वहांसे निकल श्रमसे कातरहो दीन भावसे एक वृक्षकी जडमें बैठ गये ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा वा० आदि० कि० भाषायां अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशः सर्गः ४९.

फिर महा पंडित अंगदजी थककर समस्त वानरोंको क्रम २ से समझाकर कहने लगे ॥ १ ॥ वन, पर्वत, नदी, दुर्गमस्थान, गहन, दरें, पर्वतोंकी गुफा, यह सब स्थान रत्ती २ करकै ढूंढे गये ॥ २ ॥ परन्तु इन सब जगह श्रीजानकीजी या दुष्कर्म करनेवाले जानकीजीके हरणकारी राक्षस रावणको न पाया ॥ ३ ॥ हम लोगोंको दिया हुआ एक मासका समयभी कबका बीतगया सुग्रीवजीकी आज्ञा बडी कडी है, इस कारण तुम लोग फिर खोजो ॥ ४ ॥ इसलिये सबकोही आलस्य, शोक, निद्रा, परित्याग करकै इस प्रकार ढूंढना चाहिये जिससे जानकीजी मिलजांय ॥ ५ ॥ खेदित न रहना, चतुरता, और मनको जीतना, यह सबही कार्यसिद्धिके कारण हैं, इसी कारण हम तुमसे ऐसा कहते हैं ॥ ६ ॥ हे वानरो इस कारण इस समय तुम सब आलस्यको छोडकर वन और जितने दुर्गम स्थान हैं सबको जरा २ करकै खोजो ॥ ७ ॥ जो लोग कार्यको करते हैं उनको उस कार्यका फल अवश्यही मिलता है परन्तु एक बार खेदयुक्त होनेसे फिर उत्साह आना अत्यंत कठिन हो जाता है ॥ ८ ॥ हे वानरगण ! सुग्रीवजी बडे क्रोधी राजा हैं, वह बडा कडा दंड दिया करते हैं, इसलिये उनसे और महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे भय करना उचित है ॥ ९ ॥ तुम्हारे सबके हित करनेहीके लिये हमने ऐसा कहा है; यदि रुचि हो तो इस कार्यको करो; जिससे जितना कार्य होसकै उतनाही कार्य करे; और तुमने जो कुछ हितकारी बात विचारी हो वहभी कहो ॥ १० ॥ अंगदजीके वचन सुनकर गन्धमादन नामक वानर प्यासके मारे और परिश्रमसे व्याकुल हो कहने लगा ॥ ११ ॥ अंगदजीने जो कुछ कहा वह हितकारी और अनुकूल है इसलिये इनके कहनेकें अनुसार सब कोई कार्य करो ॥ १२ ॥ हम सब जन पर्वत कन्दरायें, शिला, वन और पर्वतोंके शूने स्थान फिर ढूंढै ॥ १३ ॥ जिस प्रकार सुग्रीवजीने बताया है उसी प्रकारसे गिरिदुर्ग और पर्वतोंके झरने सब फिरकर ढूंढो ॥ १४ ॥ यह सुनकर समस्तही बलवान वानरगण फिर उठे और विन्ध्याचलकी कानन पूर्ण दक्षिण दिशामें घूमने लगे ॥ १५ ॥ घूमते २ उन्होंने एक शरदकालके मेघके तुल्य रंगवाला शिखर और गुफादि युक्त चांदीका एक पर्वत देखा उसपर चढ ॥ १६ ॥ और उसी गिरिपर सीताजीके देखनेकी इच्छा किये समस्त वानरोंने सातपत्तेवाले वृक्षोंका वन और लोध्रका

रमणीक वन देखा, उस सबमेंभी उन्होंने जानकीजीको न देखा ॥ १७ ॥ विपुल-विक्रमकारी वानरलोग थककर उस पर्वतकी चोटीपर चढे, परन्तु वहांपरभी श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्यारी जानकीजीको उन्होंने न देखा ॥ १८ ॥ वह वानरगण उस पर्वतकी बहुत सारी कन्दराओंको देखते भालते इधर उधर चढने लगे ॥ १९ ॥ जब बहुत देरतक परिश्रम करनेपरभी कुछ फल न पाया तब भूमिपर आय थककर व्याकुलचित्त हो एक वृक्षकी जडका आश्रयकर बैठे रहे ॥ २० ॥ जब उन लोगोंकी कुछ एक थकावट दूर होगई और विश्रामभी मिलगया तब फिर उत्साहित हो दक्षिण दिशाको ढूँढने लगे ॥ २१ ॥ हनुमानादि कपिगण प्रथम भली प्रकारसे विन्ध्याचल ढूँढकर फिर सुग्रीवजीकी बताईहुई समस्त दक्षिण दिशा ढूंढनेलगे॥ २२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किं० भाषायां एकोनपंचाशः सर्गः ॥४९॥

पंचाशः सर्गः ५०.

कपिश्रेष्ठ हनुमान् तार और अंगदजीके सहित विन्ध्याचल पर्वतकी गुफा और समस्त सघन वन ढूंढने लगे ॥ १ ॥ वह वानर सिंह शार्दूल युक्त गुफा विषमस्थान और पर्वती बडे २ झरने जिनमें विमल जल वहताथा ॥ २ ॥ और उस पर्वतके दक्षिण और पश्चिमवाले कोनोंपर खोज करने लगे, तबतक सुग्रीवजीने जो समय उनके लिये नियत कियाथा वह बीतगया ॥ ३ ॥ वह पर्वत बडी कठिनाईसे खोजनेके योग्यथा कारण कि अनेक प्रकारकी गुफा व सघन विस्तारित वन विद्यमानथे, हनुमानजीने उन समस्त पर्वतोंको ढूंढा ॥ ४ ॥ परस्पर एक दूसरेके निकट रहकर एक एक करके गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन ॥ ५ ॥ मैन्द, द्विविद, हनुमान्, जाम्बवान्, युवराज अंगद, तार, इन सबने वनमें फिरते हुये ॥ ६ ॥ पर्वतके समूहसे युक्त दक्षिण दिशाको ढूंढते भालते हुये एक अति ऐंडी गुफा देखी ॥ ७ ॥ उसका ऋक्षबिल नामथा, वह अति दुर्गम और दानवोंसे रक्षित बेल पत्तोंसे ढक रहीथी. क्षुधा और प्यास लगनेके कारण थके जलपान करनेकी इच्छा किये ॥ ८ ॥ लता पातादिकोंसे छाये उस महाबिलको देखते हुये, उसमेंसे क्रौञ्च, हंस, सारस आदि पक्षी निकल रहेथे ॥ ९ ॥ जलसे भीगे कमल परागसे रँगीले अरुण चकवा चकवीभी दृष्टि आये, उस सुगन्धिवान, बडे कठिनसे प्रवेश करने योग्य बिलको प्राप्त होकर ॥ १० ॥ सब वानरयूथपोंका मन विस्म-

यसे व्याकुल होगया उन सब वानरश्रेष्ठोंको उस बिलके विषयमें बडी शंका उत्पन्न हुई ॥ ११ ॥ वह तेजस्वी महा बलवान् वानर गण अनेक प्रकारके जीवोंसे परिपूर्ण राजा बलिके स्थानके तुल्य उस बिलके द्वारपर आये ॥ १२ ॥ वह बिल बडे कष्टसे दर्शन करनेके योग्य अतिघोर सब स्थानोंमें दुर्गम थी, तब पर्वतकी समान पवनकुमार हनुमानजी ॥ १३ ॥ जोकि वनपर्वतोंका विषय भली भांति जानतेथे घोरदर्शन वानरोंसे बोले कि, हम सबने दक्षिणदिशामें पर्वतोंसे घिरे हुये सब देश ढूंढडाले ॥ १४ ॥ और हम अब बहुतही थक गये, परन्तु जानकीजीको अबतक नहीं पाया; इस बिलसे हंस, क्रौञ्च, सारस ॥ १५ ॥ और जलसे भीगे चकवा चकवीभी इस स्थानसे निकल रहेहैं इससे निश्चय होताहै, कि यह कूपहीहो; वा न्हदहीहो, परन्तु जल इसमें अवश्यहै ॥ १६ ॥ और देखो इस बिलके द्वार पर हरे और चिकने पौधे उत्पन्न होरहेहैं इतना कहकर सबही उस महा अंधियारे बिलमें प्रवेश करते हुये ॥ १७ ॥ वहांपर सूर्य चंद्रमाका प्रकाश नहीं था इसकारण उस बिलमें पैठतेही वानरोंके रोम खडे होगये उन वानरोंको उसमें सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी इत्यादि निकलते दिखाई पडे ॥ १८ ॥ परन्तु वह सब वानर निडरहो उस अँधियारे बिलमें प्रवेश करते चलेही गये, परन्तु वानरगण अपनी दृष्टि या पराक्रम वहां प्रगट नहीं करसके ॥ १९ ॥ उन वानरोंकी गति वायुकी गतिके समान दृष्टि नहीं आतीथी, वरन अंधकारमें डूबीजातीथी वह कपिकुंजर वेगसे उस बिलमें प्रवेश करते हुये ॥ २० ॥ जब उस बिलके भीतर पहुंचे तो उन्होंने मनोहर प्रकाशित उजाले सहित स्थान देखा उस भयंकर अनेक प्रकारके वृक्ष लगे बिलमें ॥ २१ ॥ एक दूसरेको पकडे चारकोशतक चले आये तिसके पीछे प्याससे आतुर जलके लिये वह भ्रान्त चित्त होगये ॥ २२ ॥ और थकावटके मारे उस बिलमें गिरपडे, मार्ग चलनेके कारण थकितहो कुछ समयतक वैसेही पडे रहे क्योंकि, वह बहुत दुर्बलहो रहेथे ॥ २३ ॥ उन वानरोंने इधर उधर देखकर समझा कि, बस अब यहींपर हमारा मरण होगा फिर बडे कष्ट और यत्नसे चले तो आगे एक बहुत प्रकाशमय बन दृष्टि आया ॥ २४ ॥ उस वनके सुवर्णमय वृक्षोंकी प्रभा अग्निकी प्रभाके तुल्यथी, उन वृक्षोंमें ताल, तमाल, पुन्नाग, वंजुल, धव ॥ २५ ॥ चंपक, नाग कर्णिकार यह सब वृक्ष फूलरहेथे और विचित्र लाल वर्णके गुच्छे और

कोंपल इन वृक्षोंमें लगेथे ॥ २६ ॥ उन वृक्षोंपर जो बेलैं छाईहुईथीं, वही उनके गहनेकी समान शोभायमान हो रहीथीं, उन सबके थांवले वैदूर्य्य-मणिके बनाये गयेथे ॥ २७ ॥ यह सब वृक्ष कांचनमय होनेसे प्रकाशमानथे और सरोवरोंमें नील वैदूर्यमणिके सजीवसे पक्षी गुंजार कर रहेथे ॥ २८ ॥ बाल-सूर्यके समान रंगवाले बडे २ वृक्ष सुवर्णके ही लग रहेथे, और सरोवरोंमें मीनभी सुवर्णके हीथे, कमलभी सब हेममयथे ॥ २९ ॥ इस प्रकारकी स्वच्छ जलवाली पुष्करिणियोंके देखनेके अतिरिक्त शत २ विमान वहांथे जिनमें अनेक चांदीके बनेथे अनेक सोनेके थे ॥ ३० ॥ सब सुवर्णमय झरोंखोंमें मोतियोंकी झालर लगीथी, सुवर्ण व चांदीके बने वैदूर्यमणियुक्त ॥ ३१ ॥ वहां अनेक-प्रकारके गृह वानरोंने देखे और फल पुष्पयुक्त मूंगे मणियोंके वृक्षभी देखते हुए ॥ ३२ ॥ सुवर्ण सम भ्रमर और मधु और मणि काञ्चन सेवित सुवर्णके शयन करने उठने बैठनेके आसन विराजमानथे ॥ ३३ ॥ अनेक भांतिकी और अति विशाल यह सब वस्तुयें वानरोंने देखीं और भोजन करनेके सोने चांदी व कांसीके वर्तनोंके ढेरके ढेर देखे ॥ ३४ ॥ अगर और दिव्य चन्दनोंकी बड़ी २ राशियें देखीं । और अति पवित्र भोजन करनेके लायक मूल और फल ॥ ३५ ॥ बडे २ मूल्यवान् शिबिकादि यान और रसवान बहुत सारा मधु देखा बडे मोलके वस्त्र समूहभी इकट्ठे देखे ॥३६॥ और विचित्र शाल दुशाले और मृगचर्मोंके पुंजके पुंज इधर उधर उस बिलमें पडे हुए उन महा कांतिवाले ॥ ३७ ॥ शूरवीर वानरोंने देखे; जब वह बहुत आगे बढे तब उन्होंने दूरसे एक स्त्री देखी, उन वानरोंने उस स्त्रीको कृष्णमृग चर्मके वस्त्र धारणकिये देखा ॥ ३८ ॥ वह नियमित आहार करनेवाली तपस्विनी मानों अपने तेजसे प्रज्वलित होरहीहै उसे देख सब वानर विस्मय युक्त हो उसको चारों ओरसे घेरकर खडे होगये । तब हनुमानजीने उससे पूँछा कि, तुम कौनहो ? और यह बिल किसकाहै ? ॥ ३९ ॥ वह पर्वत तुल्य देहधारी हनुमानजी हाथ जोडकर उस वृद्ध तपस्विनीसे बूझने लगे कि तुम कौनहो ? और बिल भवन व यह समस्त रत्न किसकेहैं ? सो तुम बताओ ॥ ४० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचाशः सर्गः ॥५०॥

एकपंचाशः सर्गः ५१.

हनुमानजी यह कहकर फिर उस चीर और मृगचर्म धारण करनेवाली धर्मचारिणी महाभागा तपस्विनीसे बोले ॥ १ ॥ हम लोग सब भांतिसे थकित प्यासे और खिन्न होकर सहसा इस अंधकारसे ढके हुए बिलमें चले आयेहैं ॥ २ ॥ हम लोग अधिक करकै प्यासे होनेके कारणही इस बडे भारी बिलमें प्रवेश कर आये हैं परन्तु यहांपर आय यह विविध भांतिके अद्भुत पदार्थ देखे ॥ ३ ॥ जिनके देखतेही हम सब व्यथित, सम्भ्रान्त चित्त और हतबुद्धि होगये हैं, यह प्रभात कालीन सूर्यकी समान प्रभावाले सुवर्णमय वृक्ष किसके हैं ? ॥ ४ ॥ यह पवित्र भोजन करनेके पदार्थ फल मूलादि किसके हैं ? सुवर्णमय विमान चांदीके बने गृह ॥ ५ ॥ सुवर्णमय मणियोंके जाल लगे यह झरोखे पुष्पित फलवान् पुण्यदायक सुगन्धिसे महकते ॥ ६ ॥ जाम्बूनदके सुवर्णमय वृक्ष किसके तेजसे उत्पन्न हुये हैं सुवर्णमय कमल फूलसे विमल जलमें कैसे बने ॥ ७ ॥ मछलियां और कछुये किसके तेजसे सुवर्णमय हुये ? यह सब आपके प्रभावसे अथवा और किसी तपस्याके बलसे बनेहैं ? ॥ ८ ॥ हम सब इस बातको कुछ भी नहीं जानते आप अनुग्रह करकै यह सब वृत्तान्त हमसे कहदीजिये, जब हनुमानजीने उस धर्मचारिणी तपस्विनीसे ऐसा कहा ॥ ९ ॥ तब सब प्राणियोंके ऊपर दया करनेवाली वह तपस्विनी हनुमानजीको उत्तर देती हुई हे वानरश्रेष्ठ ! महा तेजस्वी मय* नामक एक मायावी दानवथा ॥ १० ॥ उसने ही यह सब सुवर्णमय वन मायासे बनाया पहले यह दानव मुख्य दानवोंका विश्वकर्मा अर्थात् शिल्पी था ॥ ११ ॥ यह काञ्चनमय दिव्य भवन उसकाही बनाया हुआ है उसने हजार वर्ष तपस्या करकै इस बडे वनको ॥ १२ ॥ ब्रह्माजीसे वर पायकर बनाया और शुक्राचार्यजीके समस्त शिल्पविद्यारूप धनको प्राप्त करता हुआ अर्थात् उसको सब प्रकारका काम बनाना आगया और यह समस्त बनाय समस्त भोग्य वस्तुओंका ईश्वर हो ॥ १३ ॥ कुछ कालतक सुखसे इस महावनमें वास कियाथा, तिसके पीछे वह दानवश्रेष्ठ हेमानामवाली अप्सरामें आसक्त हुआ ॥ १४ ॥ तब पुरन्दर इन्द्रजीने यह सब वृत्तान्त जानकर युद्धकर उसको अपने

---

* दैत्योंमें जो कारीगर होताहै उसे मयकी पदवी प्राप्तहोतीहै ॥

वज्रसे नाश कर दिया फिर ब्रह्माजीने यह उत्तम वन हेमाको देदिया ॥ १५ ॥ यथेच्छा भोग, और यह सुवर्णमय गृहभी हेमाको देदिया । हम मेरुसावर्णिकी स्वयंप्रभा कन्याहैं ॥ १६ ॥ हे वानरश्रेष्ठों ! हम इस हेमाके भवनकी रक्षा किया करतीहैं । हमारी प्रियसखी नृत्य और गीतमें विशारद हेमाहै ॥ १७ ॥ हम उसके दिये हुए वरसे इस बडेवनकी रक्षा करतीहैं तुम्हारा क्या कार्य है और किस कारणसे तुम सब इस जंगलके मार्गमें आयेहो ? ॥ १८ ॥ और किस प्रकारसे तुमने यह दुर्गम वन देखा तुम सबही इस व्यवहारके द्रव्योंको भोगकर फल मूल जल आदि भोजनकर पानी पी करकै अपने आनेका समस्त वृत्तान्त हमसे कहो ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्कि० भाषायां एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशः सर्गः ५२.

ऐसा श्रवण करके सब वानरोंने विश्रामकर भोजन पान किया तब वह धर्मचारिणी तपस्विनी एकाग्र चित्तहो उन वानरोंसे इस प्रकार बोली ॥ १ ॥ हे वानरो ! यदि फल खायकर तुम्हारी थकावट मिटगईहो, और यदि हमारे श्रवण करनेके अयोग्य नहो तो तुम्हारे आनेकी कथाके श्रवण करनेकी हम वासना करतीहैं ॥ २ ॥ पवनकुमार हनुमानजीने उस तपस्विनीके यह वचन सुनकर सरल भावसे यथार्थ वृत्तान्त कहना आरम्भ किया ॥ ३ ॥ इन्द्र और वरुणतुल्य सर्व लोकोंके राजा दशरथजीके पुत्र श्रीरामचन्द्रजी दंडकवनमें आये ॥ ४ ॥ वह अपने भ्राता लक्ष्मण और अपनी भार्याके सहित वनमें आये, उनकी भार्याको जनस्थानसे बलात्कार रावण हरण करके ले गया ॥ ५ ॥ उनके सखा वीर सुग्रीवजी वानरोंके राजाहैं उन्होंनेही हमको यहांपर भेजाहै ॥ ६ ॥ हम लोग अंगदादिप्रधान २ वानरोंके सहित अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिणदिशामें आयेहैं ॥ ७ ॥ उन सुग्रीवजीने आज्ञादीहै कि, तुम सब वानर मिलकर सीता और कामरूपी राक्षस रावणको ढूँढो ॥ ८ ॥ उनकी आज्ञासे हम दक्षिण दिशाको समस्त वन और समुद्र खोज क्षुधितहो थककर वृक्षोंके नीचे बैठगये ॥ ९ ॥ हम सब वानर पीले वदन ध्यान परायणहो, चिन्ताके महासागरमें डूब गये और किसी प्रकार उसके पार न जाय सके ॥ १० ॥ तब चारों ओर निहार २ कर देख रहेथे कि इतनेमें लता पत्रकादिकोंसे ढका छाया यह बडा बिल दृष्टि आया ॥ ११ ॥ उस समय इस

बिलसे जलके भीगे जल और कमलकी रेणु जिनके पंखोंमें लगी, ऐसे हंस कुरर और सारस पक्षी निकल रहेथे ॥ १२ ॥ उनको देखकर हमने कहा कि हम इस बिलमें प्रवेश करेंगे और सब वानरगणभी अनुमान करके इस बिलमें प्रवेश करनेको सम्मत हुए ॥ १३ ॥ फिर कार्य करनेमें शीघ्रता युक्त वानरगण एक दूसरेका हाथ पकड बिलमें प्रवेश करने लगे ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे हम इस अन्धकारसे ढके हुए बिलमें पैठेहैं हमारा यही कार्यहै इसी कार्यके हेतु हम यहां आयेहैं ॥ १५ ॥ हम सबही थकित और क्षुधित होकर आपके निकट आये और आपने अतिशय अतिथि सत्कारके धर्मानुसार हमें फल मूल खानेको दिये ॥ १६ ॥ जिनको भक्षण करके हमने जीवधारण किया हम मरने पर हुए और आपने हम लोगोंको बचाया ॥ १७ ॥ इसकारणसे यह वानरगण आपका क्या उपकार करें सो आप बताइये जब सब वानरोंने सर्वज्ञा स्वयम्प्रभा तापसीसे ऐसा कहा तौ॥ १८॥ वह समस्त वानरयूथपोंसे बोली कि, हम समस्त कार्य करनेमें चतुर वानरोंके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ १९ ॥ अपने धर्मानुसार चलती हुई हमारा किसी बातसे कुछ प्रयोजन नहीं है इति सर्गः ५२॥जब इसप्रकार उस तपस्विनीने धर्मसंगत शुभ वचन कहे ॥ २० ॥ तब हनुमानजी उस अनिन्दिता शुभनेत्रवाली तपस्विनीसे बोले कि, आप धर्मचारिणी हैं इसलिये हम सबनेही आपकी शरण ग्रहणकी॥ २१॥ जो महात्मा सुग्रीवजीने एक मासका समय हमें दियाथा वह समय तो इस बिलमेंही रहते २ बीत गया ॥ २२ ॥ इसलिये आप शीघ्रता सहित हमको इस बिलसे बाहर निकालिये क्योंकि उन सुग्रीवका वचन उल्लंघन करनेसे हमको आयुहीन होना पडेगा ॥ २३ ॥ इसलिये आप सुग्रीवके भयसे हम लोगोंका उद्धार कीजिये हे धर्मचारिणी ! हमको बडाभारी कार्य करना है ॥ २४ ॥ जो हम इस बिलमेंही बंद रहेंगे तो हमारा वह कार्य सिद्धि नहीं होगा जब हनुमानजीने यह कहा तो वह तपस्विनी बोली ॥ २५ ॥ कि जो यहांपर प्रवेश करता है, वह फिर जीवितही यहांसे निकलनेको समर्थ नहीं होता परन्तु हम अपने नियमकी उपार्जन कीहुई तपस्याके प्रभावसे ॥ २६ ॥ समस्त वानरोंको इस बिलसे उद्धार करैंगी हे वानरश्रेष्ठो ! तुम सब अपने २ नेत्र बंद करो ॥ २७ ॥ क्योंकि बिना नेत्र बंद किये इस स्थानसे निकलनेमें समर्थ नहीं हुआ जाता यह सुन सब वानरोंने अपने सुकुमार हाथोंकी अंगुलियोंसे ॥ २८ ॥ अपने नेत्र झटपट बंद किये क्योंकि

उनको उस बिलसे निकलनेकी वासनाथी, जब सब महात्मा वानरोंने अपने २ नेत्र अपने २ हाथोंसे बंद किये ॥ २९ ॥ तब उस तपस्विनीने एक पलमें उन सब वानरोंका बिलसे उद्धार किया, जब वह सब बाहर आगये तब वह धर्मचारिणी तपस्विनी उन सबसे बोली ॥ ३० ॥ वह उस विषमस्थानसे वानरोंको निकाल उनको समझा बुझाकर कहने लगी कि, अनेक प्रकारके वृक्षलता आदिसे पूर्ण श्रीमान् विन्ध्याचल यही है ॥ ३१ ॥ यह दूसरा प्रस्रवण पर्वत है, यह महासागर दृष्टि आता है हे वानरगणो ! तुम्हारा मंगल हो अब हम अपने स्थानको जांयगी यह कहकर स्वयम्प्रभा तपस्विनी उस परम सुन्दर बिलमें प्रवेश कर गई ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० भाषायां किष्किन्धाकांडे द्विपंचाशः सर्गः ॥५२॥

त्रिपंचाशः सर्गः ५३.

जब सब वानर बिलके बाहर आये तब उन्होंने अपार घोर भयंकर तरंग उठताहुआ, गर्जता वरुणालय सागर देखा ॥ १ ॥ मय करकै मायासे बनाये हुये गिरिदुर्गको ढूंढतेही ढूंढते उन वानरोंका वह समय बीतगया जो सुग्रीवजीने नियम कर दियाथा ॥ २ ॥ तब महात्मा वानरवृन्द, विन्ध्याचलके पुष्पिततरु शोभित एक पर्वतपर बैठ चिंता करनेलगे ॥ ३ ॥ फिर वह वानरगण फूलोंके बोझसे परिपूर्ण शत २ लतामंडित वसंतकालके वृक्षोंको देखकर बहुतही शंकित हुये ॥ ४ ॥ वह यह विचारकर कि सुग्रीवजीका नियत किया समय बीतगया और वसंतकाल आगया, पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ५ ॥ तब उन अति श्रेष्ठ वृद्ध वानरोंका बडा आदर मान करते हुये यथावत् अनुमान करकै अति मधुर वाणीसे ॥ ६ ॥ सिंह वृषभके कंधेवाले मोटी और बडी भुजावाले महापंडित युवराज अंगदजी बोले ॥ ७ ॥ कि हम कपिराज सुग्रीवजीकी आज्ञा पाय किष्किन्धासे निकले हैं सो तुमको यह नहीं जान पडता कि बिलमेंही पडे २ एक महीना होगया ॥ ८ ॥ हमने क्वारमासके प्रारंभसे नियमित समयको निरूपण कियाहै, सो क्वारमास बीततेही वह समय बीतगया अब क्या कियाजाय ? ॥ ९ ॥ तुमसे इस कारण पूछतेहैं कि आप सब विनीत मार्गमें पंडित अपने स्वामीके हितमें निरत और समस्त कार्योंके करनेमें निपुण ॥ १० ॥ कार्य साधन करनेमें अनुपम सर्व दिशा विदिशाओंमें अपने पौरुषसे प्रसिद्ध हुये इसी

कारणसे राजाज्ञाको प्राप्तकिये हमको आगेकर यहां आयेहो ॥ ११ ॥ जिस कार्यके लिये हम भेजेगये अभीतक वह कुछभी सिद्ध नहीं हुआ इस लिये विना संशय सबका मरण हुआ क्योंकि वानरराज सुग्रीवजीका कार्य न किये कौन पुरुष सुखी होसकताहै ॥ १२ ॥ सुग्रीवजीका नियत किया हुआ समय तो बीतहीगया; इस समय हम सबको प्रायोपवेशन करके प्राण त्यागन करना सब भांतिसे ठीकहै ॥ १३ ॥ सुग्रीवजीका स्वभाव अति तीक्ष्णहै, तिसपर वह इस समय सब वानरोंके राजाहैं, सो उनका अपराध होनेपर किसी भाँति क्षमा न करेंगे॥१४॥ सीताजीका पता न लगनेसे वह अवश्यही हम सबको मार डालेंगे, सो उस मरनेसे इस समय कहीं पुण्यस्थानमें प्राण दे देना हमारे लिये भलाहै ॥ १५ ॥ जो हम लोग यहांसे किष्किन्धाको चले जांयगे तो सुग्रीवजी निश्चयही हम सबको मार डालेंगे इस कारण इस समय यही पुत्र, स्त्री, धन, और गृहादि समस्तको छोड, प्राण त्याग करना हमें बहुत अच्छाहै इसमें कोई सन्देह नहीं ॥१६॥ जो तुम कहो कि सुग्रीवने तुमको युवराज कियाहै, वह तुम्हें नहीं मारेंगे, सो अबतक उन्होंने हमको युवराजपदवी नहीं दीहै, इसलिये उस नीचपनकी मृत्यु होनेसे इसी स्थानपर मृत्यु पाना हम अच्छा समझतेहैं ॥१७॥ सर्व कार्य करनेमें चतुर श्रीरामचन्द्रजीने हमको युवराजपदवीपर अभिषेक किया, सुग्रीव तो प्रथमहीसे हमसे वैराचरण करतेहैं, फिर वह जिस समय जानेंगे कि इन्होंने कार्य पूरा नहीं किया ॥ १८ ॥ तो उसीसमय हमको वह तीक्ष्ण दंड देकर मार डालेंगे, अपने सुहृदगणोंके निकट उस निन्दनीय मृत्युकी अपेक्षा, इस पवित्र समुद्रके तीरपर प्राणत्याग करना हमारे अर्थ बहुत श्रेष्ठ होगा इसमें संशयही क्याहै ॥ १९ ॥ युवराज कुमार अंगदजीके यह वचन सुनकर प्रधान २ वानरगण करुणासहित वचन कहने लगे ॥ २० ॥ कि सुग्रीवजी तो तीखे स्वभाववाले, और रामचन्द्रजीका प्रिय कार्य करनेमें अनुरक्त हैं वा रामचन्द्र जानकीमें अनुरक्तहैं यदि काम हो जाय और समयके बीत जानेपर भी ॥ २१ ॥ वह सुग्रीव नियत किये समयको बीता हुआ देख जानकीको देखने और विना देखनेपरभी रामचन्द्रजीका प्रिय करनेको, निश्चयही हम सबको मार डालेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ अपराधी जन अपने स्वामीके समीप गमन करनेको समर्थ नहीं होते और तिसपै हम सुग्रीवजीके प्रधान पुरुष होकर आये हैं ॥ २३ ॥ हम विनाही सीताजीके देखे और उनका वृत्तान्त न पाय कदापि वीर सुग्रीवके नि-

कट न जांयगे, चाहे यमपुरको चले जाँय ॥ २४ ॥ भयसे पीडित वानरगणोंके यह वचन श्रवण करकै तार बोला कि, तुम लोग विषाद न करो यदि तुम्हारी इच्छा हो तौ सबही इस बिलमें प्रवेश करेंगे और यहां रहैंगे ॥ २५ ॥ यह बिल मायासे बना हुआ होनेके कारण अत्यन्त दुर्गम है, इसमें बहुतेरे पुष्प भोजन करनेकी सामग्री, पीनेके पदार्थ जल इत्यादि हैं, यहांपर इन्द्रसे भी हम लोगोंको भय नहीं है फिर भला वानरराज और रामचन्द्रजीसे हम लोगोंको क्या भय हो सकताहै॥ २६॥ अंगदजीके अनुकूल वचन श्रवण कर सब वानर उन वचनोंकी प्रतीति करकै बोले कि युवराज जिसमें हमारे प्राण न जांय आपको शीघ्रही उस कार्यका विधान करना चाहिये ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्कि० भाषायां त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशः सर्गः ५४.

चंद्रमाकी समान प्रभाशाली तारने जब इस प्रकारसे कहा तो हनुमानजीने अनुमान किया कि बस अब अंगद करकै सुग्रीवका राज्य गया ॥ १ ॥ हनुमानजीने अंगदजीको शुश्रूषादि अष्टविध गुण बुद्धि चतुरंग सेना और देश कालज्ञतादि चौदह गुण निधान विचारा ॥ २ ॥ हनुमानजीने विचारा कि, अंगद सदाही तेज बल और पराक्रमसे शुक्ल पक्षकी आदिसे लेकर प्रभा लक्ष्मी युक्त चंद्रमाकी समान वर्त्तमान होरहाहै ॥ ३ ॥ यह युवराज बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान और विक्रममें अपने पिताकी समानहै, तार वानरसे सेवित है जैसे इन्द्रजी शुक्रके वचनोंसे सेवित होते हैं ॥ ४ ॥ ऐसे अंगदजीको अपने स्वामीका प्रयोजन सिद्ध करनेमें थकित देख सर्व शास्त्रविशारद हनुमानजी समाधान करते उनसे बोले ॥ ५ ॥ वह हनुमानजी चार प्रकारोंके उपायोंमेंसे दूसरा उपाय भेद वर्णन करके सारयुक्त वचनोंसे उन समस्त वानरोंको भेद करते हुये ॥ ६ ॥ जब सब वानरोंमें भेद पडगया तब हनुमानजीने दंड सहित भयंकर वचनोंसे अंगदको भय दिखाकर कहा ॥ ७ ॥ हे ताराकुमार ! तुम युद्ध करनेमें पिताकी तुल्य सामर्थ्य रखतेहो, यदि कपिगण तुमको राज्यमें अभिषेकित करें तो तुम पिताजीकी ही समान दृढतासे राज्य धारण करनेमें समर्थ होगे ॥ ८ ॥ परन्तु हे वानरश्रेष्ठ ! चंचलचित्त वानर लोग अपने स्त्री पुत्रोंको सुग्रीवके वशमें पडा देख तुम्हारी आज्ञाका बिना पुत्र दाराके यहांपर बैठे हुए मान्य न करेंगे

॥ ९ ॥ हम तुमसे इन सबके सामनेही कहतेहैं कि यह लोग पुत्र स्त्रीको छोडकर तुम्हारे पर अनुराग न करेंगे यह जाम्बवान्, नील महाकपि सुहोत्र, ॥ १० ॥ और हम व समस्तही वानरगणको, साम, दान, भेद व दंड द्वारा सुग्रीवजीके निकटसे तुम नहीं खेंच सकते ॥ ११ ॥ बलवान पुरुष दुर्बलको जीतकर आसन पाय सकताहै, इसलिये दुर्बलको अपनी रक्षा करते हुए बलवानसे वैर न करना चाहिये ॥ १२॥ और जो तुम इस गुफाको अपना रक्षण करनेवाला समझो सो यहभी वृथाहै, क्योंकि इस बिलका विदारण करना लक्ष्मणजीके बाणोंका एक अति लघु कामहै ॥ १३ ॥ जब इन्द्रने मयपर क्रोध करकै इसमें वज्र माराथा तो इसमें एक छोटासा छेदही होगयाथा, परन्तु जब लक्ष्मणजी क्रोध करेंगे तो तीक्ष्ण बाणोंकी धारासे इसको पत्तोंके पुरटकी समान छिन्न भिन्न कर डालेंगे इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ १४ ॥ कारण कि, लक्ष्मणके पास ऐसे पर्वतोंके तोडनेवाले वज्र तुल्य बाण बहुत सारे विद्यमानहैं ॥ १५ ॥ हे परवीरघाती! जैसेही कि इस बिलमें तुम अपना वास स्थान बनाओगे तबही यह सब वानरगण कृत निश्चय होकर निःसंदेह तुमको छोडकर चले जायँगे ॥ १६ ॥ यह सब वानर अपने २ स्त्री पुत्रोंकी याद करकै व्याकुल हो भूखों मरेंगे। इस प्रकार दुःखके पानेसे खेद युक्त हो तुमको पीछे छोड चले जायँगे ॥ १७ ॥ फिर तुम हित चाहनेवाले बन्धु और सुहृदजनोंसे रहित सदा चंचल चित्तहो एक तिनकेसेभी घबडा जाया करोगे ॥ १८ ॥ जो तुम विग्रह करोगे तो लक्ष्मणजीके महा भयंकर तेज उग्र वेगवान दुर्द्धर्ष बाणोंका समूह तुमको संहार करेगा * ॥ १९ ॥ तुम हमारे संग जो विनीत भावसे सुग्रीवजीके पास चलोगे, तो सुग्रीवजी आदिसे अन्ततक समस्त वृत्तान्त श्रवण करकै तुमको अवश्य राज्यमें अभिषेकित करेंगे ॥ २० ॥ तुम्हारे पितृव्य सुग्रीवजी, धर्मराज, प्रीतिमान्, दृढव्रत, पवित्र और सत्य प्रतिज्ञहैं वह कदापि तुम्हारा विनाश नहीं करैंगे ॥ २१ ॥ वह सुग्रीवजी तुम्हारी माताका प्रियकार्य करने वाले हैं, उसकेही निमित्त उनका जीवन है, और सुग्रीवके और कोई पुत्रभी नहीं है, कि वह उसे राज्य देदेंगे इसलिये अंगद! तुम अवश्य किष्किन्धाको चलो ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्कि० भाषायां चतुष्पंचाशः सर्गः ॥५४॥

* दोहा—तासों मनमें शान्तिकर, ढूंढौ वन चित लाय। जनकसुता निज भाग्य वश जो कदापि मिलजाय॥

पंचपंचाशःसर्गः ५५.

हनुमान्‌जीके धर्म संगत स्वामीका सत्कार करनेके योग्य विनय समन्वित वचन सुनकर अंगदजी बोले ॥ १ ॥ हे हनुमन् ! स्थिरता, मनकी पवित्रता, सलज्जता, सरलता, विक्रम, और धीरता सुग्रीवजीमें यह कछभी दृष्टि नहीं आता ॥ २ ॥ जो पुरुष माताकी तुल्य धर्ममें वर्तमान बडे भ्राताकी प्यारी रानी स्त्रीको, उसके पुत्र हमारे जीवित रहते स्वीकारकरले अर्थात् अपनी स्त्री बनाले, वह अत्यन्त घृणितहै और धर्मके विषयको कुछ नहीं जानता इसलिये वह अत्यन्त अधार्मिकहै॥ ३॥ जो दुरात्मा भ्राता युद्धमें लगे हुये अपने भ्राताके मार्गको बिलमें शिला लगायकर रोक दे, वह किस प्रकारसे धर्मका जाननेवाला हो सकताहै? ॥ ४ ॥ महायशवान् कृतकार्य श्रीरामचन्द्रजीको जो सत्यसे ग्रहण करके भूलगया वह किसकी सुकृति व उपकार स्मरण रखसकता है ॥ ५ ॥ जो अधर्मका भय नहीं करते जिसने केवल लक्ष्मणजीके भयसेही सीताजीके खोजनेकी आज्ञादी है, उसको धर्मका भय किस प्रकारसे संभव है ? ॥ ६ ॥ वह पापरूप, कृतघ्न, स्मृतिमार्गके कहे हुये धर्मसे भ्रष्ट हुआ है, चंचल चित्त सुग्रीवके प्रति विशेषतः उसकेही कुलमें जन्म लेकर कौन उत्तम पुरुष विश्वास कर सकता है ॥ ७ ॥ सुग्रीव गुणवान हो, अथवा गुणरहित हो, परन्तु वह शत्रुकुल पुत्र हमको राज्यमें प्रतिष्ठित करके किस प्रकारसे जीवित रख सकैगा ॥ ८ ॥ हमारी बिलमें प्रवेश करनेकी मंत्रणा भेद हो गई है, इस लिये अपराधी, हीन, दुर्बल, और अनाथकी समान हम किष्किन्धामें गमन करके किस प्रकार जीवित रह सकेंगे ॥ ९ ॥ शठ, क्रूर, निठुर, सुग्रीव राज्यके लिये यदि हमको प्राणोंसे न मारे, तोभी हमें बन्धुआ तो अवश्यही करलेंगे ॥ १० ॥ हे वानरगण ! बन्धन और अपवादसे किसी पुण्यस्थानमें जाकर मरना हमारे लिये अच्छाहै, इसलिये हमें आज्ञा देकर आप सब जने अपने २ घरोंको चले जाइये ॥ ११ ॥ हम आप लोगोंसे प्रतिज्ञा करतेहैं कि हम किष्किंन्धामें न जांयगे इस स्थानमें हम मरण व्रत ग्रहण करेंगे क्योंकि हमारा मरणही श्रेष्ठहोगा॥ १२ ॥ प्रथम हमारी ओरसे राजाजीको प्रणाम करके कुशल पूछना और श्रीराम लक्ष्मणजीसेभी प्रणाम करके कुशलपूछना ॥ ॥ १३ ॥ और उन राजा व छोटे हमारे तात सुग्रीवजीसे प्रणाम करके कुशल पूछना और हमारी माता रुमासेभी आरोग्य पूर्वक कुशलपूछना ॥ १४ ॥ और हमारी माता ताराकोभी आप भली भाँति समझा देना, क्योंकि वह करुणावती

तपस्विनी स्वभावसेही हमको बहुत प्यार करती हैं ॥ १५ ॥ क्योंकि वह वहांपर हमारा मरण सुनकर निश्चयही अपने प्राणोंको परित्याग करदेंगी, प्रणाम सहित यह सब वृद्धोंसे ॥ १६ ॥ कह-कर अंगदजी रोदन करते हुए भूमिपर कुश बिछाय मरनेके लिये उदासीन हो बैठगये, उनको इस प्रकार मरनेपर उतारू देख सब वानरश्रेष्ठ रोनेलगे ॥ १७ ॥ वह सबके सब रोदन कर नेत्रोंसे जल धारा गिराती और सुग्रीवकी निन्दा और वालिकी बडाई करने लगे ॥ १८ ॥ और अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर सब वानर मरनेके लिये निश्चय तैयारहो उनको घेरकर बैठ गये ॥ १९ ॥ और सबही समुद्रके जलमें आचमन कर पूर्वमुखहो समुद्रके दक्षिण किनारेकी ओर कुशोंकी चोटीकर उनपर मरनेको बैठ गये ॥ २० ॥ मरनेकी इच्छा किये वानर अपने मरणको श्रेष्ठही मानतेहुए श्रीरामचंद्रजीका वनवास, राजा दशरथका मरण ॥ २१ ॥ जन स्थानका विध्वंस, जटायुका मरण, जानकीका हरण, वालिका वध और श्रीरामचंद्रजीका क्रोध कहते २ वानरगणोंको भय प्राप्त हुआ अर्थात् उनपर एक बडी विपत्ति आई ॥ २२ ॥ पर्वतकी समान बहुत बलवाले वानरोंके प्रवेश करनेसे और उस पर्वतके शिखरपर कूदकर चढनेसे वह पर्वत झरने सहित शब्दायमान हुआ जैसे आकाशमें मेघ शब्द करतेहों ॥ २३ ॥

इ० श्रीमद्रा० वा० आदि० भाषायां किष्किन्धाकांडे पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशः सर्गः ५६.

जिस पर्वतपर सब वानर लोग मरनेको बैठ गयेथे, उस पर्वतपर एक गृध्रराज आकर उपस्थित हुआ, यही बडी भारी विपत्ति वानरोंके लिये आई ॥ १ ॥ उस संपाति नामक चिरंजीवी विहंगम श्रेष्ठका बल पौरुष विख्यात था, और यह जटायुका बडा भाईथा कि जिसने श्रीरामचंद्रजीके कार्यमें अपने प्राण देदियेथे ॥ २ ॥ वह उन वानरोंका बोल सुन विन्ध्याचल पर्वतकी कन्दरामेंसे निकल सब वानरोंको वहां बैठे देख हर्षित होकर कहने लगा ॥ ३ ॥ कर्मके फलसे प्राणियोंके भाग्य अदलते बदलते रहतेहैं उसके अनुसारही यह सब भोजनकी सामग्री बहुत दिनोंके पीछे आज मेरे सामने आई है ॥ ४ ॥ हम बराबर २ लंगारसे बैठे हुए इन वानरोंको क्रम २ से मारकर भोग लगाते जाँयगे, वा इनके मरतेही क्रमसे मरते हुएको खा जांयगे पक्षी श्रेष्ठ सम्पातिने वानरोंको देखकर जब इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥ तब वानरोंको

भक्षण करनेके लिये लोभी हुए उस पक्षीके ऐसे वचन सुनकर अंगदजी दुःखित होकर हनुमानजीसे बोले ॥ ६ ॥ देखो ! सीताजीके बहानेसे वानर लोगोंकी विपत्तिके लिये साक्षात् यमराजकी समान यह पक्षी इस स्थानमें आयाहै ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धि न हुई, न राजाहीकी आज्ञाके अनुसार कार्य हुआ । यह देखो ! इस समय वानरोंके लिये यह अज्ञात विपद आय पहुँची ॥ ८ ॥ देखो एक जटायु पक्षीने श्रीजानकीजीका हित करनेको जो कार्य कियाथा वह समस्त हमने तुमने श्रवणकर रक्खाहै ॥ ९ ॥ इस प्रकार तिर्यक् योनिमें जन्म ग्रहण करके हम वानरोंकी समान सबही प्राणी प्राणत्याग करकेभी श्रीरामचन्द्रजीके हित करनेका यत्न करते हैं ॥ १० ॥ वह श्रीरामचन्द्रजीके प्रति स्नेह और करुणाके वशहो उनका उपकार करते हैं, इसलिये उनका उपकार करनेके लिये तुम-लोगभी अपना जीव दे डालो ॥ ११ ॥ धर्मज्ञ जटायुने श्रीरामचन्द्रजीका कैसाकार्य कियाथा हम सब भीतो श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके लिये थके थकाये जीव देनेको तैयार बैठेहैं ॥ १२ ॥ और हम गिरि दुर्गतक चले आये * परन्तु श्रीजानकीजीको कहीं न देख पाया ! वह गृध्रराज जटायु रावणके हाथसे मरकर सुग्रीवके भयसे छूट परमगतिको प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ जटायुके और राजा दशरथजीके मरणसे, फिर जानकीजीके हरणकी इन सब घटनाओंसे वानरगणोंको इस समय प्राण संशय आपहुँचाहै ॥ १४ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीका सीताजीके सहित वनमें वास, और श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे बालिका वध ॥ १५ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीके क्रोधसे राक्षसोंका वध, और अब हमारा मरण यह सब बातें एक कैकेयीके वरदान माँगनेहीके कारण हुई हैं ॥ १६ ॥ गृध्रराज महामति सम्पाति उन वानरोंके कहे हुये अपने अनुजके विषयमें अकीर्तित कृपण असुखकर वचन सुनकर अत्यन्त चकितहो भूमिमें पडे हुये उन वानरोंको देखकर बोले ॥ १७ ॥ गंभीर स्वरवाले तीक्ष्ण चोंच धारी गृध्र अंगदजीके मुखसे निकले हुये वह वचन सुनकर बोला ॥ १८ ॥ भाई कौन हमारे प्राणोंकी समान प्यारे भ्राता जटायुके वधका समाचार प्रचार करताहै ? कि जिसको सुनकर हमारा मन कम्पायमान होताहै ॥ १९ ॥ जनस्थानमें रावण और जटायुका युद्ध किस प्रकारसे हुआ ? हाय ! बहुत दिनके पीछे हमने अपने प्यारे भ्राताका नाम सुना ॥ २० ॥ परन्तु हम इच्छानुसार इस पर्वत परसे उतर नहीं सकते इसलिये यह इच्छाहै कि

* सब पक्षी आदि जीव मात्रके सुग्रीव राजाथे सबको आज्ञा माननी पडतीथी ॥

तुमलोग उतारलो, हम तुम सब पर गुणज्ञ, विक्रमोंसे प्रशंसनीय अपने लघुभ्राताके ॥ २१ ॥ नामका कीर्तन बहुत दिनोंके पीछे श्रवण करनेके कारण अत्यन्त प्रसन्न हुये॥ हे वानरश्रेष्ठो ! मैं उसका विनाश सुना चाहताहूं॥ २२॥ कि जनस्थानका रक्षनेवाला हमाराभाई कैसे मारागया। और वही हमाराभाई दशरथजीका सखा कैसे हुआ ॥ २३॥ कि जिन दशरथजीके बडे प्यारे ज्येष्ठ पुत्र गुरुजनके प्रिय श्रीरामचंद्रजीहैं ! सूर्यकी किरणोंसे अपने पर जल जानेके कारण हम उड नहीं सकते ॥ २४ ॥ इसलिये हे शत्रुओंके मारनेवाले वानरो ! हम इस पर्वतसे उतरना चाहतेहैं ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां षट्पंचाशः सर्गः ॥५६॥

सप्तपंचाशः सर्गः ५७.

वानरयूथपतियोंने शोकके हेतु उस गृध्रके टूटे फूटे वचन सुनकर भी उसका विश्वास न माना क्योंकि वह वानर उसके वध वचन रूप कर्मसे शंकित हो रहेथे ॥ १ ॥ उन मरनेके लिये व्रत धारण किये हुये वानरोंने गृध्रको देखकर मनमें समझा कि, यह भयंकर पक्षी हम सबोंको ही भक्षण करेगा ॥ २ ॥ हमतो प्राणत्याग करनेके लिये प्रायोपवेशन किये ही हैं, सो यदि यह गृध्र जो हमको भक्षण करले तो हमने जो मरण वासना की है वह सिद्ध हो जायगी और हम कृतार्थ हो जांयगे ॥ ३ ॥ समस्त कपियूथपोंने इस प्रकार बुद्धि करके संपातीको पर्वतसे नीचे उतारा तब फिर अंगदजी उससे बोले ॥ ४ ॥ हे पक्षिन् ! ऋक्षराज नामक पृथ्वीपति प्रतापवान् वानरोंके राजा हमारे पितामहथे उनके दो पुत्र अति धार्मिक हुये ॥५॥ वह सुग्रीव और वाली अति विक्रमशाली हुये उनमें विख्यातकीर्ति हमारे पिता वाली वानरोंके राजा हुये ॥ ६ ॥ जब सब जगत्के राजा इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुये दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी दंडक वनमें आये ॥ ७ ॥ वह श्रीरामचंद्रजी पिताकी आज्ञासे धर्ममार्गमें टिककर भ्राता लक्ष्मण और अपनी भार्या वैदेहीजीके सहित वनमें आये ॥ ८ ॥ जबकि रामचंद्रजी आश्रममें नहींथे तब रावण बलसे उन रामचंद्रजीकी स्त्री सीताजीको हरण करके लेगया उनके पिता दशरथजीके मित्र जटायु नाम गृध्रराजने ॥ ९ ॥ देखा कि आकाशमार्गमें होकर रावण जानकीको हरण किये लिये जाताहै, तो उन्होंने रावणको विरथ कर दिया और उससे सीताजीको छीनलिया परन्तु वृद्ध होनेके कारण जब वह लडते २ थक

गये तब रावणने संग्राममें उनको संहार कर दिया ॥ १० ॥ जब इसप्रकार गृध्र जटायु बलवान रावणके हाथसे मारागया तब श्रीरामचंद्रजीनें अपने हाथोंसे जटायुकी दाहक्रियाकर उसे उत्तम गतिको पहुँचाया ॥ ११ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीने हमारे चचा सुग्रीवजीसे मित्रता की जिससे उन्होंने हमारे पिता वालिको मारडाला ॥ १२ ॥ हमारे पिताजीने सुग्रीवको उनके मंत्रियों सहित राज्यसे निकाल दियाथा जिससे वह ऋष्यमूक पर्वतपर रहतेथे इसीलिये श्रीरामचंद्रजीने हमारे पिताको मार सुग्रीवको राजा बनाया ॥ १३ ॥ उन वानरनाथ सुग्रीवजीने अपने राज्य पर स्थापित होकर सब वानर यूथपोंको आज्ञादी जिससे कि हम यहांपर आयेहैं ॥ १४ ॥ और रामचंद्रजीके कहनेसे हमने इस कार्यमें लगे हुये अनेक स्थानोंमें जानकीजीको खोजा, परन्तु रात्रिकालमें सूर्यकी प्रभाके समान हमने उनको कहीं न पाया ॥ १५ ॥ हम सब बडी सावधानीसे दंडकारण्यको ढूँढ रहेथे कि अज्ञानके वश होकर एक बिलमें प्रवेश कर गये ॥ १६ ॥ वह मयदानवका बनाया हुआहै, उस बिलकोही ढूँढते २ सुग्रीवजीका नियत किया हुआ एक मासका समय बीतगया ॥ १७ ॥ हम लोग वानरराज सुग्रीवजीकी आज्ञाके प्रतिपालक, उनके नियत किये समयके बीत जानेसे भयके कारण मरनेके लिये प्रायोपवेशन व्रत धारण किये हुयेहैं ॥ १८ ॥ क्योंकि लक्ष्मण सुग्रीव और रामचन्द्रजीके क्रोध करनेसे हमें मरना पडेगा, इसलिये हम वहां न जाकर यहांही प्राण त्यागनेको तयार हुयेहैं ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्कि० भाषायां सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशः सर्गः ५८.

जब जीवनको त्याग करनेके लिये निश्चय किये वानरोंने इस प्रकार करुणाके भरे वचन कहे तब गृध्रराज सम्पाति नेत्रोंमें जल भरकर गंभीर स्वरसे उन वानरोंसे बोले ॥ १ ॥ हे वानरयूथपो ! बलवान् रावणसे जिसको वध किया हुआ तुम कहतेहो वही हमारा छोटाभाई जटायु था ॥ २ ॥ यह कठोर वार्त्ता हमने बुढापे और पंखोंके न रहनेसे सुनकर सहन करली क्योंकि इस समय रावणसे अपने छोटे भाईका वैर लेनेके लिये हममें सामर्थ्य नहींहै ॥ ३ ॥ पूर्वकालमें वृत्रासुरके वधके समय जयके अभिलाषी होकर हम दोनों भ्राता, ज़लती हुई किरणोंवाले सूर्य नारा-

यणके निकट पहुँच गये ॥ ४ ॥ जब हम आकाशमार्गमें अति वेगसे गमन कर रहेथे, तब सूर्यके मध्य स्थलमें पहुँचकर जटायु सूर्यकी किरणोंसे बहुत व्याकुल हुआ ॥ ५ ॥ हमने सूर्यकी किरणोंसे भ्राताको दुःखित देख स्नेहके मारे अतिशय कातर हो उस भ्राताको अपने दोनों पंखोंसे ढक लिया ॥ ६ ॥ हे वानरश्रेष्ठो ! तब सूर्य नारायणकी किरणोंसे पंख जल गये, और हम इस विन्ध्याचल पर्वत पर गिरे तबसे इस स्थानमें रहते हुए हमने भ्राता जटायुका कुछ समाचार नहीं जाना ॥ ७ ॥ जटायुके बडे भ्राता संपातीसे इस प्रकार कहे जाकर महाप्राज्ञ युवराज अंगदजी कहने लगे ॥ ८ ॥ जो आपही जटायुके भ्राताहैं, तो हमारे वचन आपने सुनेही हैं, इस समय यदि ज्ञात होतो आप उस राक्षस रावणका स्थान बता दीजिये ॥ ९ ॥ यदि आप उस विचार रहित राक्षसोंमें नीच रावणको जानते हों तो दूर हो या निकट हो उसका स्थान हमें बता दीजिये ॥ १० ॥ जब अंगदजीने ऐसा कहा तब जटायुका भ्राता महातेजस्वी सम्पाति वानरोंको हर्षित कराता हुआ अपने अनुरूप वचन बोला ॥ ११ ॥ हे वानरश्रेष्ठो ! हमारे पंख जल गयेहैं, इस समय बल वीर्य कुछभी नहींहै तथापि हम केवल वचनकेही सहारे श्रीरामचन्द्रजीका उत्तम सहायकरेंगे॥ १२॥हम वरुणलोक और जहांतक लोक त्रिविक्रमवामनजीने नापेहैं,वहभूरादिलोक सबकोजानतेहैं और देवासुरोंकासंग्राम और समुद्रसे अमृतका मंथन इत्यादि सबकुछ हमने देखाहै ॥ १३॥ जराअवस्थाके आजानेसे हमारातेज हतहोगया, और प्राण शिथिल हो आये नहीं तो श्रीरामचन्द्रजीका प्रथम कार्य हमकोही अवश्य करना चाहियेथा ॥ १४ ॥ सर्वगहनोंसे भूषित, रूपयौवन सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताजीको रावण हरण किये लेजा रहाथा, तब हमने उसको देखाहै ॥ १५ ॥ वह सीताजी, राम २ लक्ष्मण २ शब्द कह चिल्लाय २ अपने अंगोंके गहने निकाल २ पृथ्वीपर फेंकतीथी ॥ १६ ॥ उनका उत्तम रेशमीन वस्त्र पर्वतके आगेमें सूर्यकी प्रभाके समान शोभा पारहाथा, और वहभी स्वयं काले वर्ण वाले राक्षसोंके निकट आकाशमें रहती हुई बिजलीकी समान शोभा विस्तार करतीथीं ॥ १७ ॥ उन्होंने जो राम २ अपने मुखसे कहाथा सो अब हमने जानाकि वह श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताजीथीं अब उस राक्षसके रहनेका स्थान हम कहतेहैं तुम श्रवण करो ॥ १८ ॥ विश्रवाका पुत्र; और कुबेरका साक्षात् भ्राता रावण नामक वह राक्षस लंका नगरीमें वास करताहै ॥

॥ १९ ॥ वह लंका यहांसे चारसौ कोशकी दूरीपर एक समुद्रके द्वीपमें वसीहै, उस मनोहर लंकापुरीको विश्वकर्माने बनायाहै ॥ २० ॥ उस पुरीमें सब सुवर्ण-मय द्वार सुवर्णहीकी चित्र विचित्र वेदियां और बडे सुवर्णहीके राजमंदिर बने हैं, और उस पुरीकी भूमि सब जगहही समान है ॥ २१ ॥ उसकी चहारें दिवारीभी सुवर्णमय सूर्यकी प्रभाके समान झलकतीहै उस लंकानगरी में अतिदीना जानकीजी रेशमीन वस्त्र पहरे हुए वसतीहैं * ॥२२॥ वह रावणके अंतःपुरमें रोंकी हुई राक्षसि-योंसे रक्षा की जाती हैं, तुम उस नगरीमें जनककुमारी सीताजीको देखोगे ॥२३॥ महादुर्गम और प्रचारादिसे रहित लंका पुरीके चारों ओर सागर है, उन शतयोजन समुद्रके पार होकर उस दक्षिण किनारेपर जाय फिर रावणको देख माओगे, इस्से हे वानरश्रेष्ठो ! तुम शीघ्र वहां जाओ और अपना २ विक्रम दिखाओ ! हम अपने ज्ञानसे निश्चय देखते हैं, कि तुम लोग जानकीजीको देखकर लौट आओगे । कबूतर आदि धान्य जीवी पक्षी जो आकाश मार्गमें उडतेहैं इसलिये प्रथम पंथ इनका ॥ २४ ॥ दूसरा मार्ग जो इससे कुछही उँचा है वह फलादि खानेवाले काकोंकाहै; और बटेर क्रौञ्च कुरर आदि इनसेभी कुछ ऊंचे तीसरे मार्गमें उडते हैं ॥ २५ ॥ उनसे ऊंचे चतुर्थ मार्गमें बाज उडतेहैं; इनसे ऊर्ध्व पांचवें मार्गमें गृध्रजातेहैं बल वीर्य युक्त रूपयौवनसम्पन्न ॥२६॥ हंसोंका छठा मार्ग है, जो गृध्र-केभी मार्गसे ऊंचा है और गरुडोंकी गति सबसे श्रेष्ठ है,उनकी समान ऊपर आका-शमें और कोईभी जानेको समर्थ नहीं होता, हे कपिवरो ! हम लोगोंका जन्म वैन-तेय अरुणसे हुआ है ॥२७॥ जिस राक्षसने पराई स्त्रीको हरण करके दुष्कार्य किया और हमारे भ्राता जटायुको मार डाला है, सो उसका पता बतानेसेही मानो हमने उससे अपने भाईका वैर लेलिया ॥ २८ ॥ हम यहां रहकरभी रावण और जानकीजीको देख रहे हैं क्योंकि हम लोगोंकी आंखोंका बल गरुडकी दिव्य आं-खोंसे उत्पन्न है इसलिये यह दृष्टि बहुत दूरतक जाती है ॥ २९ ॥ हे वानरो ! इस कारण और मांसादि भक्षण करनेके बलसे हम शतयोजनकी वरन् इससेभी कुछ अ-धिक दूरकी वस्तु देख सकते हैं ॥ ३० ॥ स्वभावसेही हम गृध्रोंकी वृत्ति दूरकर स्थित भोजनादि देखनेकी बनीहै और मुर्गे आदिकी दृष्टि उस पेडकी जडही तक पहुँचतीहै जिसपर वह रहाकरते हैं ॥ ३१ ॥ तुम लोग क्षार समुद्रको नांघनेके लिये

* तहां वसत सिय जनकदुलारी । रामचन्द्र बिन निपट दुखारी ॥

कोई उपाय खोज करो, इससे जानकीजीके निकट पहुँचकर कार्य सिद्ध कर किष्कि-न्धाको लौट आना ॥ ३२ ॥ तुम हमको समुद्रके किनारे पर लेचलो हम वहांपर उस स्वर्गको गये हुये अपने महात्मा छोटे भाईको जलांजली देंगे ॥ ३३ ॥ जब सम्पातिने ऐसा कहा तो महात्मा वानरवृन्द उस पंख जले हुये सम्पातिको न-दनदी पति समुद्रके तीरपर ले आये ॥ ३४ ॥ तब वानरगण उस पक्षिनाथको समुद्रके तीरपर ले गये और सीताजीका वृत्तान्त प्रातकर आनंदित हुये ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्कि० भाषायां अष्टपंचाशःसर्ग ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

फिर गृध्रराज सम्पाति करकै कहे हुये अमृतमय वचन सुनकर वानर गण अ-त्यन्त हर्षित होनेकी कथा बार २ कहने लगे ॥ १ ॥ इसके पीछे वानरपति जाम्बवान्जी समस्त वानरगणोंके सहित भूमिशयनसे सहसा उठे और गृध्रराजसे क-हने लगे ॥ २ ॥ कि यद्यपि आप सब बताय चुके तथापि फिर एकबार सीताजी इस समय कहां हैं ? किस पुरुषने उनको देखा है ? और किसने उनको हरण कियाहै, यह सब कहकर बनवासी वानरोंका विशेष उपकार साधन कीजिये ॥ ३ ॥ वह कौनहै कि जिस पुरुषने दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मणजीके धनुषसे छूटे हुये बाण समूहके विक्रमकी चिन्ता नहीं की ॥ ४ ॥ सम्पाति उन प्रायोपवेशन त्यागे हुए सीताजीका वृत्तान्त श्रवण करनेकी इच्छा किये वानरोंको समझा बुझा-कर फिर प्रेमसे इस प्रकार वचन बोला ॥ ५ ॥ हे वानरो ! सीताजीके हरणका वृत्तान्त जैसे हमने सुनाहै और वह बडे २ नेत्र वाली इस समय कहांपर रहती हैं सो तुम श्रवण करो जिसने हमसे कहा वहभी सुनो ॥ ६ ॥ हम क्षीणप्राण क्षीण पराक्रम और वृद्ध अवस्थायुक्त इस पर्वतकी अनेक योजनकी चौडी गुफामें बहुत दिनोंसे गिरकर रहतेहैं ॥ ७ ॥ हमारा पुत्र सुपार्श्वनामक पक्षिश्रेष्ठ हमारी इस अव-स्थाको जानकर यथा समयमें आहार देकर हमारा प्रतिपालन करता ॥ ८ ॥ ग-न्धर्व गणोंको काममें बडा अभिलाष, सर्पगणोंमें बडा क्रोध, मृगगणोंमें बडा भय, और हमारी क्षुधा अत्यन्त तीक्ष्ण जाननी ॥ ९ ॥ एक समयमें हमारा पुत्र सूर्यो-दयके समयसे गया २ सन्ध्याको बिनाही आहारके हमारेपास आया उससमय हम भूंखके मारे व्याकुलहो आहारकी बाट देखरहेथे ॥ १० ॥ भोजन न पानेके कारण हमने अपने

पुत्रको दुर्वचनोंसे परिपीडित किया तब प्रीतिका बढानेवाला पुत्र हमारा सन्मानकरता हुआ हमसे बोला॥ ११ ॥हेतात!हम यथा समयमें मांसकी खोजकरनेकेलिये आकाशमें उडकर महेन्द्र गिरिका द्वार रोककर खड़ेथे ॥ १२ ॥ हम नीचेको मुखकरके समुद्रके अंतरमें चरनेवाले सहस्र जीवगणोंका मार्ग रोककर टिके रहे ॥ १३ ॥ वहांपर देखा कि अंजनकी समान काले वर्णवाला कोई जीव उदित सूर्यकी समान प्रभायुक्त एक स्त्रीको संग लेकर जाय रहा है ॥ १४ ॥ तब हमने उसको देखकर विचार किया कि यह स्त्री पुरुषही आज हमारे पिताके भोजन बनेंगे परन्तु उस जीवने बहुत गिडगिडाकर हमसे मार्ग मांगा ॥ १५ ॥ नीच पुरुषोंके निकट शान्ति भाव दिखानेसे वहभी विनाश नहीं कर सकते फिर हमारी समान जीव भला कैसे इस बातको न करें ॥ १६ ॥ जब हमने उस जीवको छोड दिया तब मानो वह आकाश मार्गको पीछेछोडता हुआही अति वेगसे चला। तब समस्त आकाशचारि-योंने हमारी पूजा व प्रशंसाकी ॥ १७ ॥ तब महर्षियोंने हमसे कहा कि, भाग्यके वशसेही सीताजी जीवित रहीहैं, यह पुरुष इस स्त्रीके सहित भाग्यसेही तुमसे छूट गया तुम्हारा मंगलहो ॥ १८ ॥ जब परम शोभायमान महर्षियोंने यह कहा तब हमने जाना कि यह पुरुष राक्षसपति रावण ॥ १९ ॥ और यह स्त्री सीता रामचं-न्द्रजीकी भार्या हैं, इस समय हमने देखा कि मारे शोकके उनके सब आभरण गिरे पडतेहैं और उनका रेशमीन वस्त्रभी शिथिल हुआ जाता है ॥ २० ॥ उनके शिरके बाल छूटे हुएथे राम लक्ष्मणजीका नाम लेले रोती चली जातीथीं ! हे तात ! इसलिये आज मुझको देरहुई ऐसा उस श्रेष्ठ वचन बोलनेवालेने कहा ॥ ॥ २१ ॥ जब सुपार्श्वने हमसे यह समस्त निवेदन किया, तब उसको सुनकर हमारी बुद्धि कुछभी फिर पराक्रम करनेको न हुई * ॥ २२ ॥ हम पक्षी होकर भी पक्षहीन हैं, इसलिये किस प्रकारसे युद्धादिके लिये उद्योग करें ? परन्तु हां जो कुछ वचन बुद्धिके गुणानुसार हम सहाय कर सकते हैं ॥ २३ ॥ सो तुम सुनो, वह कार्य तुम लोगोंके बल वीर्यसे पूरा होगा वचन और बुद्धिसे हम तुम सबका प्रिय और हितका कार्य करेंगे ॥ २४ ॥ इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जो श्रीराम-चंद्रजीका कार्यहै वह हमाराही है तिसपर तुम भी तो बुद्धिमान, बलवान मनस्वी ॥ २५ ॥ देवतालोगोंको भी बडे कष्टसे प्राप्त होनेके योग्य हो, क्योंकि तुम्हें

* दोहा—पंखहीन अवसर गये, सुत बल कीन्ह धिकार ॥ गहि मम निकट न लायऊ, हती रामकीनार॥

कपिराज सुग्रीवजीने भेजाहै कंकपत्र युक्त श्रीराम लक्ष्मणजीके बाण ॥ २६ ॥ तीन लोकोंका उद्धार और उनका नाश करनेमें समर्थ हैं, दशानन रावण तेज युक्त बलवान होनेपर भी सर्व कार्योंको करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले तुम लोगोंको कुछ अजीत नहीं होगा ॥ २७ ॥ अब कुछभी विलम्ब लगानेका प्रयोजन नहीं है, इस समय बुद्धिका निश्चय करो क्योंकि तुम्हारी समान बुद्धिमान् लोग कार्य सिद्ध करनेमें कुछभी आलस्य नहीं करते ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०किष्किन्धाकांडे भाषायां एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

जब सम्पाति स्नान और अपने भाईकी जलक्रिया करकै बैठ गया तब वानर लोगभी रमणीक पर्वतपर उसको चारों ओर घेरकर बैठ गये ॥ १ ॥ समस्त वानरोंके साथ अंगदजीके समीप बैठा हुआ सम्पाति पंखोंके उपजने का हेतु निशाकर मुनिजीके वचनोंका विश्वास कर फिर हर्षित हो कहने लगा ॥ २ ॥ हे समस्त वानरो ! तुम लोग चुपचाप रहकर ध्यान देकर सुनो हमने उन जानकीजी को जिस प्रकारसे जानाहै उसका सब वृत्तान्त ठीक २ कहतेहैं ॥ ३ ॥ हे वानरो ! पहले जब सूर्य नारायणकी किरणोंसे हमारे पंख जलगये और जब हम अति तापित अंग होकर इस विन्ध्याचल पर्वतकी चोटीपर गिरे ॥ ४ ॥ छः रात्रितक विह्वल और अचेत पडे रहकर फिर कहीं हमें चेतना आई तब हम दशों दिशाओंकी ओरको देखने लगे, परन्तु कहीं भी कुछ दृष्टि न आया ॥ ५ ॥ फिर सागर, नदी पर्वत,सरोवर और बनादिकोंका दर्शन करते २ हमारे बुद्धि आई और स्थिर हुई ॥ ६ ॥ तब कहीं हमने जाना कि शिखर युक्त और अनेक कन्दरावाले हृष्ट पुष्ट पक्षियोंसे परिपूर्ण विन्ध्याचल पर्वतके दक्षिण समुद्रके किनारे हम पडे हैं ॥ ७ ॥ इस स्थानमें देवताओंसे पूजित एक आश्रमथा इस आश्रममें निशाकर नामक उग्र तप करने वाले एक ऋषि वास करतेथे ॥ ८ ॥ उन ऋषिके साथ आठ हजार वर्ष हमने इस पर्वतपर वास किया. फिर वह धर्मात्मा निशाकरमुनिजी स्वर्गको चले गये ॥ ९ ॥ वह धर्मात्मा ऋषि जब इस स्थान पर रहतेथे तब हम विन्ध्याचलके भयंकर अग्रभागसे अतिकष्ट सहित तीक्ष्ण कुशवाली पृथ्वीपर आये ॥ १० ॥ उन ऋषिका दर्शन करनेकी लालसासे जटायुके सहित पहले भी हम बहुत बार उनसे

मिलेथे, तब बडे कष्टसे उनके पास पहुँचे ॥ ११ ॥ उनके आश्रमके निकट सदा सुगन्धि युक्त पवन चलाकरता वहांपर फूलहीन या फलहीन कोई वृक्ष दृष्टि नहीं आताथा ॥ १२ ॥ उस आश्रममें आयकर एक पेडकी जडमें बैठे भगवान् निशाकर मुनिके दर्शनका अभिलाष हम कर रहेथे ॥ १३ ॥ तिसके पीछे अपने तेजसे दीप्तिमान् दुर्द्धर्ष, स्नानकर उत्तरको मुखकर महर्षिजी आ रहेहैं ऐसा हमने दूरसे देखा ॥ १४ ॥ दरिद्र प्राणी जिस प्रकार दाताको घेरकर पीछे २ आतेहैं, वैसेही शूकर, रीछ, सिंह, व्याघ्र और अनेक प्रकारके सर्प उनको घेरे हुये चले आतेहैं ॥ १५ ॥ राजाको रनवासमें पैठा जानकर मन्त्री आदि जिस भाँति अपने २ स्थानको चले जातेहैं वैसेही ऋषि श्रेष्ठको आश्रममें आया हुआ जानकर सब प्राणी अपने २ स्थानको चले गये ॥ १६ ॥ ऋषिजी हमको देख प्रसन्न हो आश्रममें चले गये, और एक मुहूर्त्त तक ठहर आश्रमसे फिर बाहर आय हमसे आनेका कार्य पूछने लगे ॥ १७ ॥ कि हे सौम्य ! तुम्हारे पंखोंका विकार देखकर हम तुमको पहँचान नहीं सकते हैं; तुम्हारे यह पंख अग्निसे जल गये और शरीर व प्राणभी जलेहीके तुल्य होगये हैं ॥ १८ ॥ हमने पहले पवनकी समान वेगवाले गृध्रोंके राजा कामरूपी दो भ्राता गृध्रोंको देखाथा ॥ १९ ॥ हे सम्पाते ! उनमें तुम बडे और जटायु तुम्हारा छोटा भाई है; तुम लोगोंने प्रथम मनुष्यका शरीर धारण करकै कई बार हमारे चरण पकड लियेथे यह हमें सबही ज्ञातहै ॥ २० ॥ तुम्हें कौनसे रोगने आकर घेर लिया ? दोनों पंख कैसे गिर पडे ? अथवा किसने तुमको यह दंड दियाहै, सो हम पूछतेहैं, सो यह सब वृत्तान्त ठीक २ हमको बतलाओ ॥ २१ ॥

इत्या० श्रीमद्रा०वा०आदि० किष्किन्धा० भाषायां षष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

मुनिजीके पूछे जानेपर सम्पातिने जो सूर्य भगवान्के निकट पहुँचनेका दारुण कठिन कर्म किया, वह उस समस्त वृत्तान्तको कहने लगा ॥ १ ॥ हे भगवन् ! हमारे शरीरमें बडे २ घाव होजानेके कारण लज्जाके मारे व्याकुलेन्द्रिय और थकित होनेसे बोलनेकी शक्ति हममें नहीं रहीहै ॥ २ ॥ हम और जटायु दोनों

उडानके विषयमें गर्वकर और इन्द्रियोंके जय गर्वसे मोहित हो परस्पर पराक्रम दिखा जयकी कामना कर आकाश मार्गमें उडे ॥ ३ ॥ कैलासपर्वतके शिखरपर मुनिजनोंके सामने हम यह दावँ लगाकर उडे कि जबतक सूर्य अस्त न हो तब तक उनको छूकर फिर पृथ्वीमें चले आना चाहिये ॥ ४ ॥ हम उस समय ऊपर उडकर पृथ्वीमें नगरोंको इस प्रकारसे देखने लगे मानो अलग २ रथके पहियेहैं ॥ ५ ॥ कहीं बाजोंका शब्द कहीं गहनोंकी झनकारका शब्द सुनते हुए कहीं अनेक गानेवाली लाल वस्त्र धारण किये हुए स्त्रियोंको देखने लगे ॥ ६ ॥ आकाशमें उडकर शीघ्रतासे हम दोनों भाई सूर्य भगवान्‌के निकट जानेको परिश्रम करते हुये और वहांपर हमने एक अतिविस्तारवाला दूबका वन देखा॥७॥पृथ्वीको देखा तो वह पर्वतोंसे घिरी हुईथी और नदीरूप डोरोंसे मानों गुँथ रहीथी ॥ ८ ॥ हिमाचल विन्ध्याचल और सुमेरु पर्वत आकाशसे जल आकारवाली पृथ्वीमें सरोवरोंमें गजकी समानदृष्टि आतेथे ॥ ९ ॥ तब ऐसा देखकर हम दोनोंकोही अति तीव्र स्वेद, खेद, भय, मोह, और दारुण मूर्च्छा आने लगी ॥ १० ॥ हम दोनों दक्षिण आग्नेय और पश्चिम दिशा कुछभी नहीं समझसके केवल प्रलय कालमें जले हुए पुरुषकी समान बुद्धिरहित होगये ॥ ११ ॥ हमारा मन नेत्रोंके सहित सूर्याग्निसे भस्म होनेकी तुल्य होगया, फिर हमने अतिकष्टसे मनके साथ नेत्रोंको मिलाय ॥ १२ ॥ अनेक यत्नकरकै सूर्यनारायणको देखा तो उस समय वह सूर्य पृथ्वीकी तुल्य वा इससे अधिक प्रमाण वाले दिखाई दिये ॥ १३ ॥ जटायु तो हमसे विनाही पूछे पाछे पृथ्वीपर गिर पडा, उसको गिरते देख हमनेभी आकाशसे अपनेको छुडाया॥ १४ ॥ हमने अपने दोनों पंखोंसे जटायुको ढका इसलिये जटायुके पंख न जलकर हमारे पंख प्रमादके मारे जल गये और हम वायुमार्गसे गिरनेलगे ॥ ॥ १५ ॥ उस समय हमको ऐसा ज्ञात हुआ कि मानों जटायु तो जनस्थानमें गिरा और हम दग्धपंख और जड होकर इस विन्ध्याचल पर्वतपर गिरे ॥ १६ ॥ हम राज्यहीन, भ्राताहीन, पंखहीन, और विक्रमहीन हो गये हैं, सो अब इस पर्वतके शिखरपरसे गिरकर अपने प्राण त्याग करेंगे यह हमारी इच्छा है ॥ १७ ॥

इत्या० श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० कि० भाषायां एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

हम अत्यन्त दुःखित हो मुनिश्रेष्ठ निशाकरजीसे इस प्रकार कह रोने लगे तब महात्मा महर्षिजी एक मुहूर्त्ततक ध्यान धरकर बोले ॥ १ ॥ तुम्हारे दोनों पंख व दूसरे पंख दो चक्र फिर जम आवेंगे और प्राण, विक्रम, बलभी तुममें वैसाही होजायगा ॥ २ ॥ हमने पुराणोंमें सुनाहै और तपके बलसे जानाभीहै कि, आगेको एक बडी भारी घटना होगी ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुकुलके बढानेवाले एक दशरथ राजा और राम नामक उनके एक महातेजस्वी पुत्र होंगे ॥ ४ ॥ वह सत्य-पराक्रम श्रीरामचंद्रजी अपने पिताकी आज्ञासे अपने छोटे भाई लक्ष्मण सहित वनको जाँयगे ॥५॥ रावण नामक राक्षस उनकी भार्याको जनस्थानमें हरण करैगा, वह रावण समस्त देव और दानवोंसे अवध्य होगा ॥ ६ ॥ उन सीताजीको रावण अनेक प्रकारकी भोज्य, भक्ष्य और भोग वस्तुओंसे ललचावेगा परन्तु वह महाभागा दृढ व्रत धारण करनेवाली दुःखसे ग्रसीहुई सीताजी किसीको ग्रहण या कार्यमें नहीं लावेंगी ॥ ७ ॥ देवराज इन्द्रजी यह वृत्तान्त जानकर उनको अमृत तुल्य देवता-लोगोंकोभी दुर्लभ परमान्न देआवेंगे ॥ ८ ॥ सीताजी वह अन्न निश्चय इन्द्रजीका दिया हुआ जानकर उसका अग्रभाग उठाय मंत्र पाठकर पृथ्वीमें श्रीराम लक्ष्मण-जीके लिये छोडदेंगी ॥ ९ ॥ उस मंत्रका अर्थ यह था कि यदि हमारे स्वामी और देवर लक्ष्मण जीवितहों अथवा देवलोकको चले गयेहों, यह अन्न उनके निमित्त दिया गया ॥ १० ॥ हे विहंगम संपाते ! रामदूत वानरगण सीताजीके ढूँढनेको भेजे जाकर जब यहां आवेंगे, उस समय तुम उनसे सीताजीके समाचार बताओगे ॥ ११ ॥ तुम और कहीं न जाओ, ऐसी अवस्थामें कहां जाओगे; इस लिये यहीं देश कालकी बाट परख, तुम अपने दोनों पंख फिर प्राप्तकरोगे ॥ १२ ॥ हम अभी तुमको पंख देसकतेहैं; परन्तु तुम इस अवस्थामें लोकोंका हित साधन करोगे, इस कारण हमने तुमको पंख नहीं दिये ॥ १३ ॥ तुम दोनों रघुवीर श्रीराम, लक्ष्मणका, ब्राह्मणोंका, गुरुजनोंका, मुनिसमूहोंका और इन्द्रका कार्य कर सकोगे ॥ १४ ॥ श्रीराम, लक्ष्मण दोनों भाइयोंका दर्शन करनेकी तो हमारीभी इच्छाथी परन्तु अब आगे हम इस शरीरके धारण करनेको समर्थ नहींहैं इसलिये तनु त्याग करेंगे ! तत्त्वदर्शी मुनिजीने हमसे ऐसा कहाथा ॥ १५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्किन्धाकांडे भाषायां द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३.

वाक्यविशारद मुनिवर इस प्रकार व औरभी बहुत वचनोंसे हमारी प्रशंसाकर और हमको आज्ञादे अपने आश्रममें चलेगये ॥ १ ॥ हम उस पर्वतकी कन्दरासे धीरे २ सरककर विन्ध्याचल पर्वतपर आयकर तुम्हारे आनेकी राह परख रहेथे ॥ २ ॥ जब उन मुनिजीने हमसे ऐसा कहाथा तबसे लेकर समय धरनेसे इस समय शत ❀ वर्षसेभी कुछ अधिक बीत गयेहैं हम उन मुनिका वचन हृदयमें धारण कर देशकालको परख रहेहैं ॥ ३ ॥ महायात्राको प्राप्तकर महर्षि निशाकर जब स्वर्गको चले गये तब हम बहुत तर्क करके अत्यन्त सन्तापित हुये ॥ ४ ॥ हमारी प्राण रक्षा करनेके लिये मुनिवरने जो बुद्धि हमको दीथी, उसके अनुसार मरण बुद्धि हमने छोडदी ॥ ५ ॥ जैसे अग्निकी शिखा अन्धकारका नाश कर देतीहै, ऐसेही उस बुद्धिने हमारे संतापका नाश करदिया, दुरात्मा रावणके बलको अपने पुत्रके बलसे थोडाजान ॥ ६ ॥ हमने अपने पुत्रको फटकारा और कहा कि. तैंने सीताका विलाप सुन; और राम लक्ष्मणको सीतासे वियोगित सुन क्योंनहीं उनका उद्धार किया ? तब उसने कहा कि प्रथम हमने उनको जानकी यह जानाही नहीं, जब वह चली गईं तब सिद्ध लोगोंके मुखसे सुना कि यह सीताजीथीं ॥ ७ ॥ इसीलिये दशरथजीके पुत्रका प्रिय कार्य मुझसे नहीं होसका, क्योंकि पुत्रने वह श्रम न किया, जबकि सम्पाति वानरोंके साथ इस प्रकार वार्त्ता कह रहाथा ॥ ८ ॥ कि वानरोंके सामनेही उसके दोनों पंख जम आये वह अपनी देहमें अरुण वर्णके पंख उगे हुये देखकर ॥ ९ ॥ अतुलनीय हर्ष प्राप्त करके वानरोंसे बोला कि अमित तेजस्वी महर्षि निशाकरजीके प्रसादसे ॥ १० ॥ हमारे सूर्यकी किरणोंसे जले हुये दोनों पंख फिर जम आये, हम जिस समय युवा अवस्थाको प्राप्त थे उस समय जिसप्रकारका पराक्रम हममें था ॥ ११ ॥ इस समय भी वैसाही बल पौरुष हमने प्राप्त किया तुम सर्व प्रकारसे यत्न करो अवश्यही सीताजीको पाओगे ॥ १२ ॥ जब कि हमारे पंख जम आये, तब विश्वास होताहै कि तुम्हारा कार्यभी अवश्य सिद्ध होगा, इस प्रकार पक्षिश्रेष्ठ सम्पाति उन समस्त वानरोंसे ऐसा कह ॥ १३ ॥ अपने जमे हुए पंखोंसे पहलेही की समान पक्षियोंकी गति जाननेकी इच्छासे उस पर्वतके शिखरसे उडा, उसके यह वचन सुन अत्यन्त हर्षित मनसे वानरश्रेष्ठगण सी-

---

❀ यह शतशब्द बहुवाचीहै प्राचीनोंने कहाहै आठ हजारसे कुछ अधिक वर्ष बीतगये ॥

ताजीके ढूँढनेमें अपना २ विक्रम दिखानेको तैयार हुए ॥ १४ ॥ फिर पर्वत तुल्य विक्रमवान अति पौरुषी वानरगण जनककुमारी जानकीजीको खोजनेके लिये अभिजित् मुहूर्त्तमें दक्षिण दिशाको चले ॥ १५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्कि० भाषायां त्रिषष्टितमःसर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४.

गृध्रराजसे इस प्रकार कहे हुए सिंहतुल्य विक्रमवान वानरगण प्रीतिसे प्रफुल्लित चित्त हो इधर उधर कूद फांद परस्पर मिलकर हर्षध्वनि. करने लगे ॥ १ ॥ रावणके नाशकारी सम्पातिके वचन सुनकर हर्षयुक्त वानरगण सीताजीका दर्शन करनेके निमित्त समुद्रके तीरपर आये ॥ २ ॥ भयंकर विक्रमकारी वानरलोग समुद्रके किनारे आये, वहां उन्होंने चन्द्र सूर्य समन्वित जिसमें सब लोकोंका प्रतिबिम्ब पडताथा ऐसा समुद्र देखा ॥ ३ ॥ महा बलवान् वानरवीरोंने दक्षिण समुद्रके उत्तर किनारेपर प्राप्त होकर उस स्थानमेंही सेनाको टिकाया ॥ ४ ॥ यह समुद्र किसी स्थानमें निद्रितकी नांई स्थित था, कहीं बालकोंकी समान अपनी बडी तरंगोंसे खेल रहाथा, कहीं २ पर्वताकार जलराशिसे घिरा हुआथा ॥ ५ ॥ कपिवीरगण, पातालवासी दानवेन्द्रोंसे व्याप्त रोमहर्षणकारी समुद्र देखकर बडे विषादको प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ वानरगण आकाशकी समान पार जानेके अयोग्य समुद्रको देखकर 'किस प्रकार कार्यकी सिद्धि होगी किस प्रकार इसके पार जाँयगे' आपसमें यह कहकर बडे व्याकुल हुए ॥७॥ वानरश्रेष्ठ अंगदजी सब वानरोंको समुद्रके देखनेसे भयभीत समझ समझा बुझाकर कहने लगे ॥ ८ ॥ तुम लोग विषाद न करो, क्योंकि शोकमें मग्न होना अत्यन्त दोषका विषयहै, क्रोधित विषैला सांप जिस प्रकार बालकोंको मार डालता है इसी प्रकार शोकभी पुरुषको संहार. करताहै ॥ ९ ॥ विक्रम प्रगट करनेका अवसर आनेपर जो पुरुष शोक किया करतेहैं, वह तेजहीन होजाते और उनका कार्य कभी सिद्ध नहीं होता ॥ १० ॥ इसप्रकार कहते २ रात्रि बीतगई, तब युवराज अंगदजी वृद्ध वानरोंके साथ मिलकर सलाह करने लगे ॥ ११ ॥ देवताओंकी सैना जिस प्रकार इन्द्रजीके चारों ओर बैठतीहै वैसेही वानरोंकी सेना अंगदजीको घेरकर बैठी ॥ १२ ॥ वालिकुमार अंगदजी और

हनुमान्जीके सिवाय और कोई उस वानरी सैनाके स्थिर करनेमें समर्थ नहीं होसकताथा ॥ १३ ॥ फिर शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीमान् अंगदजी वृद्ध वानरोंका और सब सैनाका सन्मान करकै सार वचन बोले ॥ १४ ॥ कौन महातेजस्वी इस समय समुद्रको लांघेगा ? कौन वानर इस समय शत्रुओंके मारनेवाले सुग्रीवजीकी प्रतिज्ञाको सत्य करैगा ? ॥ १५ ॥ कौनवीर चार शत कोशका मार्ग एक छलांगमें पार करैगा ? कौन वानर इन समस्त यूथप वानरोंको महाभयसे उद्धार करैगा ॥ १६ ॥ किसके प्रसादसे हम सब वानर गण कार्य सिद्धकर यहांसे घरको लौट अपने घर जाय स्त्री पुत्र और गृहको देखकर सुखी होंगे ॥ १७ ॥ किसके प्रसादसे यह समस्त वनवासी वानर गण हर्षित होकर, राम लक्ष्मण और वनचरोंके राजा सुग्रीवजीके निकट जायँगे ॥ १८ ॥ यदि कोई वानरश्रेष्ठ इस सागरके लाँघनेको समर्थहो, वह शीघ्रही हमको पुण्यकारी अभय दक्षिणा देवे ॥ १९ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर किसी वानरने कुछभी उत्तर न दिया, समस्त वानरसेना मौनभावको धारणकर चुपचाप होगई ॥ ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ अंगदजी फिर उन सब वानरोंसे बोले, कि तुम सबही दृढ विक्रम करनेवाले हो, और तुम कलंकरहित कुलमें जन्म ग्रहण करकै सदाही लोकोंमें पूजे जाते हो ॥ २१ ॥ यदि तुम लोगोंमेंसे कदाचित् कोई शत योजनका समुद्र न लांघ सकताहो, तब जो जितनी दूर जानेमें समर्थ है वह हमसे कहो ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० किष्कि० भाषायां चतुःषष्टितम सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ६५.

तब मुखिया २ वानरगण अंगदजीके यह वचन सुनकर उत्साहके सहित गतिके विषयमें अपनी २ सामर्थ्य कहने लगे ॥ १ ॥ गज, गवाक्ष, गवय शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, अंगद और जाम्बवान् इन वानरोंने प्रथम कहना आरंभ किया ॥ २ ॥ उनमेंसे प्रथम गजने कहा कि हम दशयोजन लांघ जानेमें समर्थ हैं, गवाक्षने कहा हम बीस योजन चलेजायँगे ॥ ३ ॥ तहां शरभ नाम वानर उन वानरोंसे बोला कि हम एक छलांगमें तीस योजन जा सकते हैं ॥ ४ ॥ ऋषभ

वानरने वानरोंसे कहा कि, हम एक कुदक्कें चालीस योजनतक चले जाँयगे इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥ ५ ॥ उनमें महातेजस्वी गन्धमादन वानरने कहा कि, हम कूदकर एक छलांगमें निःसंशय पचास योजनतक जायँगे ॥ ६ ॥ मैन्द नामक वानरने समस्त वानरोंसे कहा कि हम साठ योजन लाँघनेको समर्थ हैं ॥ ७ ॥ तब महातेजस्वी द्विविदने कहा कि हम सत्तर योजन तक जा सकते हैं इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥८॥ अतिधीर वीरबलवान् कपिश्रेष्ठ सुषेणने कहा कि हम प्रतिज्ञा करके कह सकते हैं कि हम अस्सी योजन तक चले जायँगे ॥ ९ ॥ जब सब वानरोंने ऐसा कहा, तब उनका सन्मान कर वृद्धकपि जाम्बवान् उनसे कहनेलगे ॥ १० ॥ पूर्वकालमें हम अपनी गतिके विषयमें विशेष पराक्रमी थे परन्तु इस समय हमारी आयु बहुत होगई है ॥ ११ ॥ इस समय जो कार्य आ पडाहै उसको हम त्याग नहीं सकते कि जिस कार्यके लिये श्रीरामचंद्रजी और कपिराज सुग्रीवजी कृतनिश्चय हुये हैं वह कार्य अवश्यही साधन करना पडैगा ॥ १२ ॥ इस समय जहांतक हमारे जानेकी गतिहै वह सुनो कि इस समय एक छलांगमें हम नव्वे योजनतक जा सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ जाम्बवान्ने फिर उन वानरश्रेष्ठोंसे कहा कि पहले हमारा गमन करनेमें इतनाही पराक्रम नहीं था ॥ १४ ॥ बरन उस समय ऐसा पराक्रम था कि जब सनातन त्रिविक्रम वामन रूपी विष्णुजीने राजा बलिके यज्ञमें तीन पदसे तीनों लोक नाप लिये तब हमने उनकी प्रदक्षिणाकी थी ॥ १५ ॥ पहले हम ऐसे पराक्रमी थे परन्तु अब वृद्ध होगये इस समय हम पहलीसी छलांग नहीं मार सकते युवावस्थाके समय हमारी समान किसीमें बल नहीं था ॥ १६ ॥ हम इस समय नव्वे योजन लांघ सकतेहैं अधिक नहीं, परन्तु इतनेमें इस कार्यकी सिद्धि नहीं होती ॥ १७ ॥ इसके पीछे महाप्राज्ञ अंगदजी महाकपि जाम्बवान्का आदर करते हुए महा अर्थयुक्त वचन बोले ॥ १८ ॥ हम शतयोजन एक छलांगमें जासकतेहैं, परंन्तु इसमें सन्देहहै कि लौट सकेंगे अथवा नहीं॥ १९॥ वाक्य विशारद जाम्बवान् उन कपिश्रेष्ठ अंगदजीसे बोला,—कपिवर ! तुम्हारी गतिकी शक्तिको हम जान्तेहैं, कि तुम जाभी सकतेहो और लौटभी आ सकतेहो ॥२०॥ सो इतनीही दूर नहीं बरन सैकडों हजारों योजन कूदकर तुम जा सकते और लौटकर आसकतेहो ॥ २१ ॥ परन्तु हे तात ! स्वामी कभी भेजनेके योग्य

नहीं हो सकता, क्योंकि वह सबको प्रिय होताहै आप सबको भेज सकतेहैं॥ २२॥ तुम हमारे स्वामी हो, इस लिये अपनी स्त्रीके समान प्रतिपालन करनेके योग्य हो, अर्थात् तुम्हारे प्राण और बलकी रक्षा करना हम लोगोंका अवश्य कर्त्तव्यहै, तुमको स्वामीभावमें टिककर सेनाको आज्ञा देनी चाहिये यही लौकिक विधिहै॥ २३॥ हे शत्रुनाशी ! तुम इस कार्यके मूलहो, इसलिये सबकोही अपनी स्त्रीकी समान तुम्हारी रक्षा करनी उचितहै ॥ २४ ॥ कार्यके मूलकी रक्षा करनी चाहिये. यही कार्यवेत्ता लोगोंकी नीति है, यदि प्रधान मूल बना रहेगा तो प्रधान फलोदय रूप गुण सिद्ध हो सकताहै ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानेवाले ! इसलिये सत्य विक्रम और बुद्धिसम्पन्न तुमही इस कार्यके साधन करनेमें हेतु हो; इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ २६॥ हे कपिश्रेष्ठ ! तुम हम लोगोंके गुरुपुत्र और गुरुहौ तुमको आश्रय करकै हम लोग कार्यके साधन करनेमें समर्थ हो सकतेहैं ॥ २७ ॥ महाप्राज्ञ जाम्बवान्ने जब इस प्रकारसे कहा तब महाकपि वालीके पुत्र अंगदजी जाम्बवान्को उत्तर देते हुए ॥ २८ ॥ यदि हमभी न जांय व औरभी कोई वानर न जाय तौ फिर प्रायोपवेशन करकै प्राणोंका छोडनाही हमारे लिये अच्छाहै ॥ २९ ॥ उन बुद्धिमान् कपिपति सुग्रीवजीकी आज्ञाका प्रतिपालन न करकै यदि किष्किन्धाको चले जाँय तो वहांभी प्राणरक्षाका कोई उपाय नहीं दृष्टि आता ॥ ३० ॥ वह सुग्रीव निग्रह और अनुग्रहके ईश्वरहैं उनकी आज्ञाका पालन बिना किये किष्किंधामें चले जानेसे निश्चयही प्राणका विनाश होगा इसमें कुछभी सन्देह नहींहै ॥ ३१ ॥ इसलिये आप तत्त्वदर्शी समस्त वानर लोग ऐसा कुछ विचार कीजिये कि जिससे सुग्रीवजीका कहा जानकीजीका दर्शन रूप कार्य अवश्यही होजाय ॥ ३२ ॥ तब कपिवीर जाम्बवान्जी अंगदजी करकै इस प्रकार कहे जाकर उनको उत्तर देते हुये ॥ ३३ ॥ हे वीर ! उस कार्यके अनुष्ठानमें कुछभी कसर नहीं होगी, जो कि इस कार्यको पूरा करेगा; सो यह देखो हम उसको भेजते हैं ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे कपिवर जाम्बवान् वानरगणोंमें श्रेष्ठ एकान्त स्थानमें चुपचाप सुखसे बैठे हुए हनुमान्जीसे बोले ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्कि० भाषायां पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

जाम्बवान्जी अनेक शतसहस्र वानरसेनाको शोकाकुल देखकर हनुमान्जीसे इस प्रकार कहने लगे ॥ १ ॥ हे समस्त वानरकुलमें श्रेष्ठ हनुमन् ! हे सर्वशास्त्र विशारद ! तुम इकले और चुप क्यों बैठेहो ? इस लोकके कृत्यको देखकर तुम किस कारणसे कुछभी नहीं कहते ॥ २ ॥ हे हनुमन् ! तुम तेज और बलमें वानरराज सुग्रीव और श्रीराम लक्ष्मणजीकी तुल्यहो ॥ ३ ॥ भगवान् कश्यपजीके पुत्र महाबलवान् विनतानंदन गरुडजी सर्व पक्षियोंमें श्रेष्ठ और विख्यात हैं ॥ ४ ॥ हे महाबल ! हमने बहुतवार देखाहै कि उस महाबलवान् महाबाहु पक्षीने सागरसे बडे २ सर्पोंको पकडाहै ॥ ५ ॥ उन गरुडजीके दोनों पंखोंमें जितना बलहै; तुम्हारी दोनों बाँहोंमेंभी वैसाही बलहै, तुम्हारा विक्रम और तेज किसी भाँतिभी उनसे कम नहीं है ॥ ६ ॥ तुम समस्त जीवोंके मध्यमें एक विशेष पदार्थहो, फिर तुम समुद्रको लांघनेके लिये क्यों नहीं तैयार होते ? ॥ ७ ॥ अप्सरागणोंमें श्रेष्ठ पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा विशेष करके अंजनानामसे विख्यात, केशरनाम वानरकी स्त्री हुई ॥ ८ ॥ उस स्त्रीकी तीनों लोकोंमें उपमा नहींथी, हे तात ! उसने शापके हेतु कामरूप धारणकरनेवाली वानरीहो जन्मलिया ॥ ९ ॥ वह अंजना, वानरश्रेष्ठ महात्मा कुञ्जरकी कन्या मनुष्यदेह धारण किये रूप यौवनसम्पन्न हुई ॥ १० ॥ रेशमीन वस्त्र पहरे विचित्रमाला और गहने पहने हुये एक दिन वह कामिनी वर्षाकालके मेघकीसमान पर्वतके शिखरपर विहार करतीथी ॥ ११ ॥ पवन देवताने उस पर्वतके अग्रभागमें बैठी हुई विशालाक्षीका अरुण-अंचलका सूक्ष्म मनोहर वस्त्र उठालिया ॥ १२ ॥ फिर पवनदेवताने उसकी सुगोल चढाव उतारवाली दोनों ऊरु, ऊंचे २ दोनों पयोधर और सुशोभित मनोहर मुख देखा ॥ १३ ॥ तिस वृत्तनितम्बिनी, पतली कमरवाली शुभ सर्वाङ्गी परमयशस्विनीको देखतेही पवनदेव कामसे मोहित होगये ॥ १४ ॥ कामदेवसे सब अंग मथितहोनेके कारण उस निन्दारहित स्त्रीमें लीनहो पवनदेवजीने उसको अपनी लम्बी भुजाओंसे पकड भली भाँतिसे भेंटा ॥ १५ ॥ तब उस साधु चरित्रवाली स्त्रीने सावधानहोकर कहा कि कौन हमारा पातिव्रत्य भंग करनेकी इच्छा करताहै ॥ १६ ॥ तब अंजनाके वचन सुनकर पवनदेव बोले कि, हे श्रेष्ठनितम्बोंवाली ! हमने तुम्हारा व्रत भंग नहीं कियाहै; तुम कुछ भय न करो ॥ १७ ॥ हे यशस्विनी ! हम तुमको

आलिंगनकरके मनहीसे तुम्हारेऊपर अनुरागी हुयेहैं; इसलिये व्रत भंग न होकर तुम्हारे वीर्यवान् बुद्धिसम्पन्न पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १८ ॥ वह पुत्र महासत्त्व, महातेजवान्, महाबलवान्, पराक्रमी होगा; और लाँघने कूदनेमें भी हमारेही समान होगा ॥ १९॥ हे कपीन्द्र! पवनजीके यह वचन सुनकर तुम्हारी माता सन्तुष्ट हुई, और उन्होंने गुहामें जायकर तुमको उत्पन्न किया ॥ २० ॥ तुम बालकपनसेही महावनमें रहतेथे, एक दिन प्रभातकालके समय सूर्यभगवानको उदय हुआ देख उनको फल विचार ग्रहण करनेकी इच्छाकिये तुम छलांग मार आकाशको चले ॥ २१ ॥ तीन शतयोजन चले जानेपर और सूर्यकी किरणोंके तेजसे संतापित होकर भी तुम विषादको नहीं प्राप्त हुए ॥२२॥ हे कपिवर! तुमको आकाशमें जाता हुआ देख इन्द्रने क्रोधकर तुम्हारे ऊपर वज्र चलाया ॥ ॥ २३ ॥ तब उसशिखरके अग्र भागपर तुम्हारी बाईं हनु टूट गई, इसी कारणसे तुम्हारा हनुमान् नाम हुआ ॥ २४ ॥ गन्धवह पवनजी तुमको वज्रसे घायल देखकर अत्यन्त कोपित हुए और उन्होंने तीनों लोकोंमें वहना बंदकिया ॥ २५ ॥ पवनको न पायकर त्रिलोकमंडल क्षुभित होगया, भुवनेश्वर देवतालोग त्रासितहो घबडायकर चंचल चित्तसे पवन देवको प्रसन्न करने लगे ॥ २६ ॥ हे तात! जब पवनजी प्रसन्न हुए तब ब्रह्माजीने वर दिया कि तुम्हारा यह सत्यविक्रम पुत्र किसी शस्त्रसे नहीं मरैगा ॥ २७ ॥ और तुमको वज्राघातसे भी व्यथाहीन देखकर सहस्र नेत्र देवपति इन्द्रजीने प्रसन्न होकर उत्तम वरदान दिया ॥ २८ ॥ कि जब यह तुम्हारा पुत्र इच्छा करैगा तबही इसकी मृत्यु होगी; इस प्रकारसे तुम केशरी वानरके भयंकर विक्रमकारी क्षेत्रजपुत्र हुएहो ॥ २९ ॥ तुम मारुतके औरस पुत्रहो तेजमेंभी उनके समान और कूदने फांदनेमेंभी उनके ही समान हो ॥ ३० ॥ हम इस समय हीन बल और हीन वीर्य होगयेहैं, सो इस समय चतुर और विक्रम युक्त तुम हमारे निकट दूसरे कपिराज सुग्रीवजीकी समान विद्यमान हो ॥ ३१ ॥ हे वत्स! जब वामनजीने राजा बलिको छलकर तीन चरणसे तीनों लोक नाप लियेथे, तौ उस समय हमने शैल, वन, काननसहित इस पृथ्वीकी इक्कीसवार प्रदक्षिणा कीथी ॥ ३२ ॥ जब देवताओंकी आज्ञासे हमने जिनको मथनेसे अमृत निकलता है; उन सब औषधियोंका संग्रह कियाथा उस समय हमारे शरीरमें बडा बलथा॥ ३३॥ सो वही इस समय हम अतिशय वृद्ध हैं; इसलिये अत्यन्त हीनबल और विक्रमर-

हित होगये हैं; इस समय तुमहीं हम सबके मध्यमें सर्व गुणवान् ॥ ३४ ॥ विक्रम करने, और उछलने कूदनेमें सर्वश्रेष्ठहो, इसलिये तुम तैयार होवो; यह वानरोंकी सैना तुम्हारे बल वीर्य देखनेका अभिलाष करतीहै ॥ ३५ ॥ इसलिये वानरश्रेष्ठ ! उठकर महा समुद्रको नांघ जावो, हनुमन् ! तुम्हारा लंकामें जाना सर्व जीवोंका भी हितकारीहै इसमें कुछ संदेह नहीं, तुम्हारी गति सब जीवोंसे अधिकहै ॥ ३६ ॥ हेवानरश्रेष्ठ हनुमन् ! सब वानर गण शोकाकुल होगये हैं अब क्यों देर करते हो .जैसे विष्णुजीने त्रिविक्रमरूप धराथा वैसेही तुमभी महावेगसे इस समय समुद्रको लांघ जाओ ॥ ३७ ॥ तब ऋक्षश्रेष्ठ जाम्बवान् करकै प्रेरित होकर महावीर पवनपुत्र हनुमान्जी वानर सैनाको हर्षित करकै उत्साह युक्त हो समुद्रके लांघने योग्य देहको धारण करते हुये ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमहा० वा० आ० कि० भाषायां० षट्षष्टितमःसर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमःसर्गः ६७.

फिर शतयोजन समुद्रको लाँघनेके लिये बढे हुये वानरोत्तम हनुमान्जीको सहसा वेगसे परिपूर्ण देख ॥ १ ॥ एकाएकी सब वानर गण शोकको छोड हर्षयुक्त हो शब्द करते हुए महाबलवान् हनुमान्जीकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ बलिको छलने और त्रिलोकी को नाँपने के लिये नारायणजीको उत्साहित देखकर सब प्रजा जिस प्रकार हर्षित और उत्साहित हुईथी सब वानर लोगभी हनुमान्जीको देखकर वैसेही हर्षित और विस्मयको प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ जब वानरोंने स्तुतिकी तब महाबलवान् वानर हनुमान्जी बढने लगे और पूंछको घुमाकर हर्षके हेतु बलको प्राप्त होनेलगे ॥ ४ ॥ जब वृद्ध वानर श्रेष्ठोंने इस प्रकारसे प्रशंसा की तब हनुमान्जी तेजसे परिपूर्ण, और बडी अनुपम देह युक्त हो गये ॥ ५ ॥ जिसप्रकार महासिंह भारी पर्वतकी गुहामें जँभाई लेताहै, वैसेही वायुके औरस पुत्र हनुमान्जीभी जँभाई लेने और बढने लगे ॥ ६ ॥ जब बुद्धिमान् हनुमान्जी बढे तो उनका मुख प्रदीप्त और टूटे हुये पात्रकी समान होगया और वह धुँआरहित अग्निके समान शोभा पाने लगे ॥ ७ ॥ उनके रोम फूल गये तब हनुमान्जी वानरोंके बीचमेंसे उठे और वृद्ध कपियोंको प्रणाम करकै कहने लगे ॥ ८ ॥ आकाशमें टिकेहुये बलवान् अनुपम अग्निके सखा पवनजी जैसे पर्वतोंके अग्रभागको तोड डालतेहैं ॥ ९ ॥

हम उन्हीं महात्मा शीघ्रगामी पवनजीके औरस पुत्र हैं और कूदने फांदनेमें उनकी ही समान हैं ॥ १० ॥ हम विस्तारित आकाशको छूने वाले, मेरु पर्वतकी विना वि- श्राम किये हुये सहस्र परिक्रमा करसकतेहैं ॥ ११ ॥ और हम अपनी बाँहोंके वेगसे चलायमान किये हुये समुद्रके द्वारा, पर्वत, कुण्ड और नदी सहित समस्त लोकोंके डुबानेको समर्थ हैं ॥ १२ ॥ हमारी ऊरु और जांघोंके वेगसे वरुणालय समुद्र उफन जायगा और उसमेंके टिके हुये ग्राहादि जन्तुगण ऊपर तैर आवेंगे ॥ १३ ॥ पक्षियोंके कुलसे सेवित सर्पोंको भोजन करनेवाले गरुडजी जिस समयमें जितनी दूर जाय सकते हैं हम उतनीही देरमें उनसे हजार गुण मार्ग चल सकतेहैं ॥ १४ ॥ और उदयाचल पर्वतसे चले हुये प्रज्वलित किरणवाले सूर्यनारायणके निकट गमन करनेको हम समर्थ हैं और अस्त होनेसे प्रथम हम उनके आगे जा सकते हैं ॥ १५ ॥ फिर पृथ्वीतक आकर उसको विनाही छुये अति भीम वेगसे सूर्यके निकट जा सकते हैं, फिर सौ योजनका जाना क्या बडी बातहै ? ॥ १६ ॥ हम समस्त आकाशचारी ग्रह नक्षत्रादिकोंको लांघजांय, समुद्रको सोखलें और पृथ्वीको चीडफाड डालें ॥ १७ ॥ हे वानरगण ! छलांग मारकर पर्वतसमूहको चूर्ण कर सकतेहैं; और अतिवेगसे समुद्रकोभी सुखाय सकतेहैं ॥ १८ ॥ हम जब आकाशमें छलांग मारकर वेगसे गमनकरेंगे, तब वेगके वशसे विविध लता और वृक्षोंके पुष्प समूह हमारे पीछे २ उडकर चलेंगे ॥ १९ ॥ जबकि हम घोर- तर आकाशमें उठकर गमन करेंगे, तब हमारा मार्ग उन पहले कहे पुष्पादिकोंसे, बहुतसारे नक्षत्रोंसे शोभित छायापथकी समान शोभा धारण करैगा ॥ २० ॥ हे वानरगण ! उस समयभी हमें सबप्राणी बराबर देखेंगे, देखो ! इस समय हमने म- हामेरुकी तुल्य देह धारणकीहै ॥ २१ ॥ हम आकाशस्थलको ढकते हुये और अम्बरस्थलको ग्रास करतेही हुयेसे गमन करेंगे, तुमलोग देखते रहो ! हम गमन करनेके समय मेघसमूहको छिन्नभिन्न, पर्वतोंको कम्पायमान, और समुद्रको शोषण करलेंगे तुम लोग देखते रहो ॥ २२ ॥ गरुडजीकी, हमारी, और पवनजीकी शक्ति समस्त जीवगणोंसे बढकरहै, जब कि हम आकाशमें गमन करेंगे, तब सुवर्णराज गरुडजी और पवनजीके सिवाय हमारे साथ चलनेमें कोई प्राणीभी समर्थ नहीं होगा ॥ २३ ॥ हम बादलसे निकली हुई बिजलीकी समान एक निमेषमेंही अवलम्ब

स्थलमें एकाएकी प्राप्तहो जांयगे ॥ २४ ॥ हम जब कि समुद्रका

लांघेंगे तब वामनजीने तीन चरणकी गतिसे जिस प्रकार तीनों लोक नापेथे, हमारी गति और हमारा रूप वैसाही हो जायगा ॥ २५ ॥ हम अपनी बुद्धिसे देख रहेहैं, कि हमारेमनकी चेष्टाभी ऐसीही होतीहै कि हम जानकीको देखेंगे । इसलिये हे वानरगण ! तुमलोग इस समय आनंद मचाओ ॥ २६ ॥ हमारे मनमें ऐसा विचार होताहै कि इस समय वेगमें पवन और गरुडजीके तुल्य होकर दशहजार योजन निराधार हम सरलतासे फलांग जांयगे ॥ २७ ॥ हम वज्रधारी इन्द्रजी, और स्वयंभू ब्रह्माजीके हाथसेभी एकाएकी विक्रम सहित छलांगमारकर अमृत लाय सकतेहैं ॥ २८ ॥ हम समझते हैं कि यदि हम चाहें तो लंकापुरीको उखाड़करभी यहां ले आसकते हैं, अमित प्रभावाले वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी ऐसा कहकर बहुत गर्जे ॥ २९ ॥ तब सब वानरगण हर्षित और विस्मितहो उनको देखने लगे । जातिके शोकका नाश करनेवाले हनुमान्‌जीके ऐसे वचन सुनकर ॥ ३० ॥ कपी-श्वर जाम्बवान् वेगवान् उन पवनात्मज केशरीपुत्र वीर हनुमान्‌जीसे बोले ॥ ३१ ॥ हेतात ! तुमने अपनी जातिवालोंका विपुल शोक नाश करदियाहै, तुम्हारी क-ल्याणकी इच्छासे यह सब वानर यहां आयकर ॥ ३२ ॥ समस्त तुम्हारी यात्राके समय अर्थ सिद्ध होनेके लिये मंगल कीर्तन करेंगे; अब तुम वृद्ध कपिगणोंके मतसे और ऋषियोंकी प्रसन्नतासे ॥ ३३ ॥ और गुरुगणोंके प्रसादसे महासमुद्रके पा-रजाओ हम सब वानर तुम्हारे आनेके समयतक एक चरणसे खडे रहकर तपस्या करते रहेंगे ॥ ३४ ॥ हे हनुमन् ! समस्त वनवासियोंका जीवन इस समय तुम्हारे आनेहीपरहै । तब वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमान्‌जी सब वानरोंसे बोले ॥ ३५ ॥ इस स-मुद्रको लांघनेके विषयमें इस लोकमें कोईभी हमारा वेग धारण करनेको समर्थ नहींहै. परन्तु इस शिलायुक्त बडे और स्थिर महेन्द्र पर्वतके शिखर दृढ होनेके का-रण हमारे वेगको धारण करनेमें समर्थ है इसीपरसे हम कूदेंगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अनेक प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त और धातुओंसे परिशोभित यह बडे शिखर अवश्य हमारे गमन वेगको धारण करलेंगे ॥ ३८ ॥ यह बडे शिखर यहांसे शतयोजनके लांघनेका वेग धारण करलेंगे यह कह शत्रुनाशी पवनतुल्य पवनकुमार हनुमान्‌जी पर्वतोंमें श्रेष्ठ महेन्द्रपर्वतपर चढे ॥ ३९ ॥ इस पर्वतपर भाँति २ के पुष्प लगरहेथे, इस पर्वतके दूब संयुक्त श्याम वर्णके क्षेत्रोंमें मृगगण चररहेथे, इस पर्वतपर सबही ऋतुओंमें पुष्पफल लगेरहते और अनेक प्रकारकी लतायें फूल रहीथीं ॥ ४० ॥

इसपर सिंह शार्दूल और मतवाले हाथी सुखसे विहार करके घूम रहेथे, यह पर्वत मतवाले पक्षियोंसे पूर्णथा और इसपर झरनेभी बहुतथे ॥ ४१ ॥ महा बलवान् महेंद्रकी तुल्य विक्रमकारी कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी महेन्द्रपर्वतके एक २ ऊंचे शिखरपर घूमने लगे ॥ ४२ ॥ महात्मा हनुमान्‌जीने दोनों भुजाओंसे उसे पीडित किया तब वह शैल अपने ऊपर चरनेवाले प्राणियोंके साथ सिंहसे डरतेहुये हाथीके समान मानों चिल्लाने लगा ॥ ४३ ॥ जब हनुमान्‌जीने कूदनेके लिये उस पर्वतको अजमाया तब उस पर्वतकी शिलाओंके टूट २ कर गिरनेसे सब झरने नष्ट होने लगे। उस पर्वतके मृग और हाथी त्रासित होगये और बडे २ वृक्ष कांपने लगे ॥ ४४ ॥ मदिरा पीनेके संसर्गसे रतिमें अत्यन्त आसक्त बहुत सारे गन्धर्वोंके जोडे, और विद्याधर और उडनेवाले पक्षियोंने इस पर्वतके कँगूरोंका त्याग किया॥ ॥ ४५ ॥ वहांके सर्पभी उस महागिरिको छोड २ भागकर चले, और उस महेंद्र पर्वतके बहुत सारे शृङ्गभी गिरपडे ॥ ४६ ॥ उस समय सर्पगण आधे निकले हुए अपने फणोंसे बार २ फुफकार करने लगे, तब ऐसा ज्ञात हुआ मानों महेंद्र महीधर पताकाओंसे शोभायमान होरहाहै ॥ ४७ ॥ सब ऋषि लोग, अपने झुण्डसे बिछुडे यात्रीकी समान घबडाय और व्याकुल चित्त हो उस पर्वतकी बडी कन्दराओंका दुःखीहो त्याग करने लगे ॥ ४८ ॥ वह शत्रुसंहारकारी, वेगवान, मनस्वी, महानुभाव, महात्मा हनुमान्‌जी सागर कूदनेके लिये वेगयुक्त होनेके लिये सावधान चित्तहो मनही मनमें लंकापुरीका स्मरणकर मनसेही वहां पहुँचे ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषानुवादे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

इसके उपरान्त सुन्दर काण्डहै जिसकी आदिमें यह श्लोकहै इसके उपरान्त शत्रुओंके मारनेवाले महावीरजी चारणोंके चलनेके मार्गमें रावणसे हरीहुई जानकीजीको ढूँढनेकी इच्छा करते हुये

दोहा—श्रीरघुपतिके दास शुभ, जै श्रीमारुतवीर।
कृपा अनुग्रह कर हरो, महा कठिन मम पीर ॥ १ ॥
जिमि सीता सुधि लैनको, छिनमें चले सुजान।
तिमि ज्वालाप्रसादकी पीर मिटाओ आन ॥ २ ॥

प्रभु तुम सब जानत सदा, नित प्रति अगम अगाध ।
कृपा अनुग्रह कीजिये, दूर करो अपराध ॥ ३ ॥
हा सेवक तव चरणको, नित अनन्य हनुमान ।
क्यों नहिं टारत कष्ट अति, तुम्हैं रामकी आन ॥ ४ ॥
आवहु दुःख मिटायकर, सुखी करहु निज दास ।
तव गुण गावहुँ मैं सदा, कीजिय नित्य हुलास ॥ ५ ॥
महावीर संकट हरन, करन सकल आनंद ।
तुम्हैं रामकी आन मम, काटहु सब दुख फंद ॥ ६ ॥
दास जानकर कृपा कर, अपनी ओर निहार ।
प्रभु ज्वालाप्रसादके, दीजै संकट टार ॥ ७ ॥

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय-बंबई-